पुस्तक सं. 4

# भारतीय संविधान सभा

## के

## विवाद

## की

## सरकारी रिपोर्ट

( हिन्दी संस्करण )

**खण्ड VII (ब) - 01-12-1948 से 08-01-1949**

लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित

द्वितीय पुनर्मुद्रण 2015

---

जैनको आर्ट इण्डिया; 13/10, डब्ल्यूईए, करोल बाग, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित

# भारतीय संविधान सभा

अध्यक्ष:
**माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद**

उपाध्यक्ष:
**डॉ. एच.सी. मुखर्जी**

संवैधानिक सलाहकार:
**सर बी.एन.राव, सी.आई.ई.**

सचिव:
**श्री एच.वी.आर. आयंगर, सी.आई.ई.,**
आई.सी.एस.

संयुक्त सचिव:
**श्री एस.एन. मुखर्जी**

उप सचिव:
**श्री जुगल किशोर खन्ना**

अवर सचिव:
**श्री के.वी. पद्मनाभन**

मार्शल:
**सूबेदार मेजर हरबन्स राय जैदका**

Con. 3.VII. 17. 48
350

अंक 7
संख्या 17

बुधवार,
1 दिसम्बर,
सन् 1948 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा—(जारी)..... 1083-1158
[अनुच्छेद 12 तथा 13 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

बुधवार, 1 दिसम्बर, सन् 1948 ई.

---

*भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टिट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः साढ़े नौ बजे समवेत् हुई। उपाध्यक्ष महोदय (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) अध्यक्ष-पद पर आसीन थे।*

---

## विधान का मसौदा—( जारी )

अनुच्छेद 12—(जारी)

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान् आज का कार्य आरम्भ होने के पूर्व क्या मैं आपसे प्रार्थना कर सकता हूं कि मेरे विद्वान् मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर को, जिनसे प्रायः अपने अवस्था जन्य अनुभव के आधार पर परामर्श देने के लिये आग्रह किया जाता है, सभा के मध्य में कोई ऐसा स्थान दिया जाये जो न बहुत दाहिने को हो और न बायें को ताकि सभा में सभी लोग उनकी बातें सुन सकें और समझ सकें।

***उपाध्यक्ष** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): सभा की इच्छा को पूर्ण करने का प्रयास किया जायेगा।

हमने अनुच्छेद 12 पर विचार-विमर्श समाप्त कर दिया था और डॉ. अम्बेडकर ने उत्तर भी दे दिया था। मुझे खेद है कि मैं उन सदस्यों की इच्छा पूरी नहीं कर सकता जो उस पर फिर विचार-विमर्श आरम्भ करना चाहते हैं। अब मैं विभिन्न संशोधनों पर यथाक्रम मत लूंगा।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 12 के खण्ड (1) में 'title' (उपाधि) शब्द के बाद 'not being a military or academic distinction' (अतिरिक्त उस उपाधि के जो सैन्य सम्बन्धी हो अथवा सांस्कृतिक हो) शब्द रखे जायें।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 12 के खण्ड (1) में 'be conferred' (प्रदान) शब्दों के बाद 'or recognized' (अथवा स्वीकृत) शब्द रखे जायें।"

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 12 के खण्ड (1) में 'State' (राज्य) शब्द के बाद (हिन्दी रूपान्तर में खण्ड के अन्त में) 'and the State shall in no way recognize any title conferred by the British Government on any citizen of India prior to August 15, 1947' (और राज्य 15 अगस्त सन् 1947 ई. के पूर्व भारत के किसी नागरिक को ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त किसी उपाधि को किसी प्रकार भी स्वीकार न करेगा) शब्द जोड़ दिये जायें।"

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 12 के खण्ड (1) में 'conferred' (प्रदान) शब्द के बाद 'or recognized' (अथवा स्वीकृत शब्द रखे जायें।"

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 12 के खण्ड (2) के स्थान में निम्नलिखित खण्ड रखा जाये:

'(2) No title conferred by any foreign State on any citizen of India shall be recognized by any State.'

(भारत के किसी नागरिक को किसी विदेशी राज्य द्वारा प्रदत्त उपाधि को कोई भी राज्य स्वीकार न करेगा।)

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 12, संशोधित रूप में, विधान का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

अनुच्छेद 12, संशोधित रूप में, विधान का अंग बना लिया गया।

## अनुच्छेद 13

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 13 पर विचार करेंगे।

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि:

"अनुच्छेद 13 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'13. Subject to public order or morality, the citizens are guaranteed—

(a) freedom of speech and expression;

(b) freedom of the press;

(c) freedom to form association or unions;

(d) freedom to assemble peaceably and without arms;

(e) secrecy of postal, telegraphic and telephonic communications.

'13-A. All citizens of the Republic shall enjoy freedom of movement throughout the whole of the Republic. Every citizen shall have the right to sojourn and settle in any place he pleases. Restrictions may, however, be imposed by or under a Federal Law for the protection of aboriginal tribes and backward classes and the preservation of public safety and peace.'

[13. लोक-व्यवस्था अथवा लोक-शील के अधीन नागरिकों को निम्नलिखित अधिकारों की प्रत्याभूति दी जाती है—

(क) भाषण और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य;

(ख) समाचार-पत्रों का स्वातंत्र्य;

(ग) पार्षद् अथवा संघ बनाने का स्वातंत्र्य;

(घ) शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का स्वातंत्र्य;

(ङ) डाक, तार और दूरभाष संचार की गोपनीयता।

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

13-क. गणराज्य के समस्त नागरिकों को गणराज्य में सर्वत्र अबाध पर्यटन का अधिकार होगा। प्रत्येक नागरिक को अपनी इच्छानुसार किसी भी स्थान में निवास करने और बस जाने का अधिकार होगा। किन्तु आदिवासी जातियों और पिछड़े हुये वर्गों के रक्षार्थ तथा लोक-क्षेत्र और शांति के परीक्षणार्थ संधान के कानून द्वारा अथवा उसके अधीन आरक्षण आरोपित किये जा सकते हैं।]"

श्रीमान्, अनुच्छेद 13 की वर्तमान शब्दावली बेढंगी है। उसमें एक महत्वपूर्ण विषय अर्थात् समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य का कोई उल्लेख नहीं है। श्रीमान्, मेरे विचार से इसके विरुद्ध यह तर्क उपस्थित किया जायेगा कि यह स्वातंत्र्य खण्ड (क) में अर्थात् भाषण और अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य में सन्निहित है। परन्तु श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि वर्तमान युग समाचार-पत्रों का युग है और समाचार-पत्र उत्तरोत्तर प्रबल होते जा रहे हैं। इसलिये उचित तो यह होगा कि समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य का पृथक् रूप से और स्पष्ट रूप से उल्लेख हो।

श्रीमान्, अनुच्छेद 13 में भाषण और अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य की, शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन के स्वातंत्र्य की, पार्षद् अथवा संघ बनाने के स्वातंत्र्य की, भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में अबाध पर्यटन के स्वातंत्र्य की, भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने के स्वातंत्र्य की, सम्पत्ति के अवापन, संधारण और यापन के स्वातंत्र्य की और कोई व्यवसाय, वृत्ति, वाणिज्य अथवा व्यापार करने के स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति दी गई है। यद्यपि इस अनुच्छेद में इन सब बातों की प्रत्याभूति दी गई है किन्तु इस प्रत्याभूति से किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन में कोई प्रभाव न पड़ेगा और न राज्य के लिये लोक-व्यवस्था के हित में कानून बनाने में कोई अवरोध होगा। श्रीमान, वास्तव में इस अनुच्छेद में भाषण और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य की जो प्रत्याभूति दी गई है उससे किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा अथवा न उससे राज्य के लिये अपमान-लेख, अपमान-वचन, मान-हानि, राजद्रोह अथवा शिष्टता या शील पर आघात या राज्य के प्राधिकार अथवा उसके आधार को जर्जर करने वाली किसी बात के सम्बन्ध में कानून बनाने में कोई अवरोध होगा। इसलिये श्रीमान्, यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 13 में जिन अधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है उनका

उसी अनुच्छेद की धारा से खण्डन हो जाता है। इसके अतिरिक्त उन्हें विधान-मण्डल की स्वेच्छाचारिता के अधीन कर दिया गया है। श्रीमान्, इन प्रत्याभूतियों का यह कहकर भी खण्डन कर दिया गया है कि शिष्टता तथा शील और राज्य के प्राधिकार अथवा आधार को जर्जर बनाने के सम्बन्ध में अपराधों को रोकने के लिये वर्तमान कानून प्रवर्तन में रहेगा। यह बहुत ही मोटे शब्दों में प्रावहित किया गया है। इस प्रकार यद्यपि एक ओर कुछ स्वतंत्रतायें दी गई हैं तो दूसरी ओर जैसा कि मैंने बताया है, उसी अनुच्छेद द्वारा उनका अपहरण कर दिया गया है। "राज्य के प्राधिकार अथवा उसके आधार को जर्जर करने" के अपराध को रोकने के लिये अभिरक्षण की व्यवस्था करना एक लम्बी-चौड़ी बात है जिससे भाषण और अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य का मूलाधिकार ही वास्तव में अप्रभावी हो जाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दूषित विदेशी राज के अधीन समाचार-पत्रों को जितनी स्वतंत्रता प्राप्त थी उससे अधिक विधान के मसौदे के अधीन उपलब्ध होने वाली नहीं है और चाहे राजद्रोह सम्बन्धी किसी कानून द्वारा नागरिकों के अधिकारों का कितना ही हनन क्यों न हो, उस कानून के निराकरण के लिये उन्हें कोई भी साधन प्राप्त न होंगे।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, 'जन-सामान्य के हितों के लिये' शब्द बहुत विस्तृत हैं और इनके आधार पर विधायी तथा अधिशासी प्राधिकारी मनमाने ढंग से काम करने लगेंगे। सर्वेण्ट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी के श्री एस.के. वाजे ने इस अनुच्छेद की आलोचना करते हुये यह ठीक ही कहा है कि यदि सरकार का बुरा उद्देश्य प्रमाणित न हुआ, जोकि वास्तव में कभी प्रमाणित हो भी नहीं सकता, तो सर्वोच्च न्यायालय के लिये आयंत्रण लगाने वाले कानून का समर्थन करने के अतिरिक्त और कोई चारा न रह जायेगा। आगे चल कर, श्रीमान् विधान के मसौदे में प्रधान को यह भी अधिकार दिया गया है कि जब कभी वे यह समझें कि भारत की सुरक्षा, युद्ध के भय के कारण अथवा देश के अन्दर हिंसापूर्ण कार्यों के कारण, संकट में है तो वे सद्यस्कृत्यस्थिति सम्बन्धी उद्घोषणायें कर सकते हैं। इस परिस्थिति में प्रधान को नागरिक स्वतंत्रता का अपहरण करने का अधिकार है।

श्रीमान्, नागरिक स्वतंत्रताओं का अपहरण सैन्य कानून के प्रवर्तन के समान ही है। संयुक्त राज्य अमेरिका तक में नागरिक स्वतंत्रताओं का कभी अपहरण नहीं होता। आक्रमण अथवा विद्रोह की स्थिति में वहां केवल वंद्युपस्थापन के अधिकार का अपहरण होता है। यद्यपि इस अनुच्छेद में व्यक्तिगत स्वातंत्र्य प्रदान किया गया है परन्तु उस पर विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग स्वेच्छा से आयंत्रण लगा

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

सकते हैं क्योंकि उनको विधान-मण्डल के सत्रों के मध्य में किसी वैधानिक प्रावधान द्वारा अबाध रूप से अध्यादेशों को प्रवर्तन में लाने का अधिकार प्राप्त है। इसलिये मूलाधिकारों को केवल विधान-मण्डल के ही नहीं बल्कि अधिशासी-वर्ग के अधिकार-क्षेत्र की परिधि के बाहर होना चाहिये। श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर ने नागरिक स्वतंत्रताओं पर आयंत्रणों का समर्थन करते हुये यह मत प्रकट किया था कि अन्तिम रूप से नागरिक स्वतंत्रताओं की परिभाषा करने और सर्वोच्च न्यायालय पर इसके लिये निर्भर रहने के बजाय कि वह पुलिस की शक्तियों के सिद्धान्त को निश्चित करे, मसौदा-समिति ने राज्य को ही इस योग्य बना दिया है कि वह सीधे-सीधे नागरिक स्वतंत्रताओं को सीमित कर दे। यदि हम संयुक्त राज्य अमेरिका की पुलिस की शक्तियों के कानून का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो हमें यह स्पष्ट हो जायेगा कि विधान के मसौदे में जो आयंत्रण रखे गये हैं वे संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा प्रावहित आयंत्रणों से कहीं अधिक व्यापक हैं। विधान के मसौदे के अनुसार राजद्रोह सम्बन्धी कानून, सरकारी गोपनीय बातों से सम्बन्धित अधिनियम आदि दमन में सहायक कानून उसी प्रकार बने रहेंगे जैसे कि वे इस समय हैं। यदि इस देश के लोगों को पुलिस की शक्तियों के अधीन पूर्ण नागरिक स्वतंत्रतायें प्रदान करनी हैं तो दमन में सहायक सभी कानूनों को, जिसमें राजद्रोह सम्बन्धी कानून भी सम्मिलित है, या तो समाप्त करना होगा या उनमें सारभूत परिवर्तन करने होंगे और सरकारी गोपनीय बातों से सम्बन्धित अधिनियम के भी एक भाग को समाप्त करना होगा। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि इस अनुच्छेद में सारभूत परिवर्तन करने चाहियें और मैंने जिस प्रवेष्टि का सुझाव रखा है उसे इसके स्थान पर रख देना चाहिये। श्रीमान्, मुझे आशा है कि यह सभा मेरे प्रस्ताव पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेगी। यदि विधान के मसौदे द्वारा हमें जो कुछ भी मूलाधिकार प्राप्त हों उन्हें जहां-तहां खण्डित कर दिया गया और इस प्रकार यदि लोगों को पूर्ण नागरिक स्वतंत्रतायें प्राप्त न हुईं तो, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि मूलाधिकारों की सुखद प्राप्ति अभी दूर ही रहेगी और इस विधान-निर्माण से इस देश को कुछ भी लाभ न होगा।

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं यह मान लूं कि 441वां संशोधन उपस्थित नहीं किया जायेगा? मैं किसी प्रकार के वादानुवाद की आज्ञा नहीं देता परन्तु मैं उस पर मत लूंगा। क्या मैं यह मान लूं कि संशोधनकर्त्ता इसे उपस्थित नहीं करना चाहते हैं?

(संशोधन संख्या 441 उपस्थित नहीं किया गया।)

(संशोधन संख्या 413 और 414 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 415 और 418 । वे एक समान हैं। मैं संशोधन संख्या 415 को उपस्थित करने की आज्ञा देता हूं। वह पण्डित लक्ष्मीकांत मैत्र तथा अन्य लोगों के नाम से है जिनमें श्री कामत भी हैं।

***श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) से 'Subject to the other provisions of this article' (इस अनुच्छेद के अन्य प्रावधानों के अधीन रहते हुये) शब्द निकाल दिये जायें।"

इस धारा के (2), (3), (4), (5) और (6) खण्डों में कई प्रावधानों का उल्लेख है। इसलिये 'Subject to the other provisions of this article'] (इस अनुच्छेद के अन्य प्रावधानों के अधीन रहते हुये) शब्द अनावश्यक हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): मेरा यह निवेदन है कि यह संशोधन मसौदे में सुधार करने के सम्बन्ध में है।

***उपाध्यक्ष:** श्री चट्टोपाध्याय, आप आगे बढ़िये।

***श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय:** इसके अतिरिक्त चूंकि यह अनुच्छेद मूलाधिकारों के सम्बन्ध में है इसलिये इसके आरम्भ में इन अधिकारों और स्वत्वों की निश्चित रूप से गणना होनी चाहिये और आरम्भ में ही परादिक न होने चाहियें। प्रत्येक परादिक को यथाक्रम स्थान मिलना चाहिये। इसलिये मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं।

(संशोधन संख्या 419 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** अब हम संशोधन संख्या 416 पर आते हैं जो प्रोफेसर के. टी. शाह के नाम से है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह** (बिहार: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) में 'the other provisions of this article' (इस अनुच्छेद के अन्य प्रावधानों के) शब्दों के स्थान में

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

'this Constitution and the laws thereunder or in accord therewith at any time in force' (इस विधान और इसके अधीन बनाये हुये कानूनों अथवा इससे सम्मत किसी समय प्रयुक्त कानूनों के) शब्द रखे जायें और 'all citizens shall have' (सब नागरिकों को) शब्दों के बाद 'and are guaranteed' (और यह प्रत्याभूति दी जाती है और यह) शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधित अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

" 'Subject to this Constitution and the laws thereunder or in accord therewith at any time in force, all citizens shall have and are guaranteed the right, etc.' "

(इस विधान और इसके अधीन बनाये हुये अथवा इससे सम्मत कानूनों के, जो किसी समय प्रयुक्त हों, अधीन रहते हुये सब नागरिकों को यह प्रत्याभूति दी जाती है और यह अधिकार होगा—इत्यादि।)

श्रीमान्, इस संशोधन को उपस्थित करके मैं यह बताना चाहता हूं कि यदि जिन स्वतंत्रताओं की इस अनुच्छेद में गणना की गई है। उन्हें केवल इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अनुसार होना है और केवल इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अधीन ही उनकी प्रत्याभूति दी जाने वाली है, तो इससे स्वतंत्रता के वचन अथवा आश्वासन मिलने के बजाय उसका अधिक अंश में निराकरण हो जाता है क्योंकि प्रत्येक खण्ड में मुख्य प्रावधान के बजाय अपवादों पर अधिक जोर दिया गया है। वास्तव में एक दांयें हाथ से जो कुछ दिया गया है उसे तीन या चार या पांच बांयें हाथों से छीन लिया गया है। इसलिये मेरे विचार से यह अनुच्छेद निराकरणमूलक हो गया है।

मेरा यह विश्वास है कि न यह उद्देश्य था और न यह अर्थ ही था, जिन मसौदाकारों ने अन्य अनुच्छेदों को भी रखा है, उनका यह आशय अथवा उद्देश्य न था कि यह अनुच्छेद निराकरणमूलक हो जाये। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इसको इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अधीन करने के बजाय हमें इसे विधान के प्रावधानों के अधीन करना चाहिये। अर्थात् इस विधान में यह अनुच्छेद स्थित रहेगा। यदि आप इन अपवादों पर जोर देना चाहते हैं तो अपवाद भी स्थित रहेंगे। परन्तु इससे विधान की भावना, विधान की आधारभूत विचारधारा को सर्वोपरिता

मिल जायगी। मेरा यह नम्र निवेदन है कि यदि आप इस अनुच्छेद पर ही जोर देंगे तो यह न हो सकेगा। यदि आप केवल 'इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अधीन' शब्द कहते हैं तो आप स्पष्टत: इस पर जोर देते हैं और इसे आवश्यक बना देते हैं कि यह अनुच्छेद स्वतंत्र रूप से पढ़ा जाये और केवल यही पढ़ा जाये यद्यपि यह आवश्यकता से अधिक आयंत्रण-मूलक है। मैं जानता हूं कि यह कहा जा सकता है कि निर्वचन के नियमों के अनुसार सारे विधान को पढ़ने की आवश्यकता होगी और उसके केवल एक खण्ड को पढ़ लेना पर्याप्त न होगा। यदि यह बात है तो मैं यह पूछता हूं कि अन्य अनुच्छेदों के समान इस अनुच्छेद में भी इन शब्दों को रखने में क्या हानि है—"subject to the provisions of this Constitution" (इस विधान के प्रावधानों के अधीन) और "subject also to the laws in force at any time and the laws thereunder" (इसके अधीन बनाये हुये कानूनों अथवा किसी समय प्रयुक्त कानूनों के भी अधीन)? इस अनुच्छेद के अधीन अथवा किसी अन्य अनुच्छेद के अधीन जो कानून निराकृत न हो गये हों अथवा जिनका उत्सादन न हो गया हो, वे प्रयुक्त रहेंगे। इस अनुच्छेद के अनुसार जो नये कानून आप बनायेंगे वे भी प्रयुक्त रहेंगे, जिससे इस विधान द्वारा जिन स्वतंत्रताओं को प्रदान किया गया है अथवा जिनकी प्रत्याभूति दी गई है उनके खण्डन को रोकने के लिये आप जितने भी अभिरक्षण चाहें रख सकेंगे।

फिर हम इसी अनुच्छेद की ओर क्यों ध्यान आकर्षित करें और इसी पर क्यों जोर दें यद्यपि इसमें, मैं इसे फिर कहूंगा, स्वतंत्रता के बजाय स्वतंत्रता पर आयंत्रण तथा अपवाद ही अधिक हैं? इस अनुच्छेद के एक ही उपखण्ड में 5, 6 अथवा 7 शीर्षक देकर इन स्वतंत्रताओं की संक्षेप में गणना कर दी गई है। अपवादों का पृथक् रूप से पृथक् उपखण्डों में उल्लेख है। इसके अतिरिक्त उनकी परिधि इतनी विस्तृत बना दी गई है कि मेरी समझ में नहीं आता कि कौन-सी ऐसी बात है जो इन अपवादों में सम्मिलित नहीं की जा सकती है। वास्तव में इस अनुच्छेद द्वारा जिन स्वतंत्रताओं की प्रत्याभूति दी गई है अथवा जिनका आश्वासन दिया गया है, वे इतने भ्रामक हो जाते हैं कि जब कभी राज्य अथवा प्राधिकारी किसी व्यक्ति को उनसे वंचित करना चाहेंगे तो उसे उन्हें देखने के लिए एक सूक्ष्मदर्शी यंत्र की आवश्यकता होगी। इसलिये मैं यह फिर कहूंगा कि आपको सारे विधान के प्रावधानों की, उसकी प्रस्तावना की तथा अन्य अनुच्छेदों और अध्यायों की ओर संकेत करना चाहिये जिससे इस विधान की भावना सरलता से तथा पूर्ण रूप से

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

समझ में आ सके और केवल इस अनुच्छेद की ओर संकेत न करना चाहिये क्योंकि मेरे विचार से यह विधान की भावना के प्रतिकूल है। किसी महोदय ने कल इस विधान को वकीलों का कल्पवृक्ष कहा था। सभी लिखित और अलिखित विधानों के आधार पर बहुत ही चित्ताकर्षक कानूनी वितंडावाद हो सकता है। साधारणतया संघानीय राज्यों के विधानों के सम्बन्ध में यह और भी अधिक हो सकता है। परन्तु चाहे यह जानबूझकर किया गया हो या अनजाने, विशेषत: यह मसौदा कानूनी वितंडावाद के लिये पूर्ण अवसर प्रदान करता है। निस्संदेह इससे जनसाधारण को हानि ही होगी। चाहे राज्य जीते या हारे कम से कम जनसाधारण को और देश को एक छोटे से वर्ग से अर्थात् वकीलों के वर्ग से हार खानी ही पड़ेगी।

मेरा यह भी सुझाव है कि इन स्वतंत्रताओं की केवल गणना करके यह कहना पर्याप्त न होगा कि ये नागरिकों को प्राप्त होंगी। मैं यह चाहता हूं कि ये शब्द भी जोड़े जायें कि इस विधान द्वारा इन स्वतंत्रताओं की प्रत्याभूति दी जाती है। अर्थात् यदि कोई अपवाद किया जाये तो, जब तक वह सारे विधान और उसके प्रत्येक भाग के आशय के अनुसार न्यायसंगत न ठहराया जाये, वह इस अनुच्छेद में प्रत्याभूत स्वतंत्रताओं का खण्डन करने वाला माना जायेगा।

उदाहरणार्थ उपखण्ड (5) की शब्दावली ऐसी व्यापक है कि अपवाद की परिधि के अन्दर सब कुछ आ जाता है जिसके फलस्वरूप एक बड़े खण्ड में जिन स्वतंत्रताओं की प्रत्याभूति दी गई है उनका व्यवहार में कोई प्रभाव नहीं रह जाता है। इसलिये मेरे विचार से यह आवश्यक है कि मैंने जिन शब्दों का सुझाव किया है उनको इस अनुच्छेद में स्थान दिया जाये, अर्थात् 'This Constitution and the laws thereunder or in accord therewith at any time in force' (इस विधान और इसके अधीन बनाये हुये कानूनों अथवा इससे सम्मत किसी समय प्रयुक्त कानूनों के) शब्दों को 'the other provisions of this article' (इस अनुच्छेद के अन्य प्रावधानों के) शब्दों के स्थान में रखा जाये और 'all citizens shall have' (सब नागरिकों को) शब्दों के बाद 'and are guaranteed' (यह प्रत्याभूति दी जाती है और यह) शब्द जोड़े जायें। मुझे आशा है कि यह संशोधन सभा को स्वीकार्य प्रतीत होगा।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 417 और 418 का आशय एक समान है। मैं संशोधन संख्या 417 के उपस्थित किये जाने की आज्ञा दे सकता हूं। यह संशोधन मि. लारी के नाम से है।

***एक माननीय सदस्य:** वे सभा में उपस्थित नहीं हैं।

***उपाध्यक्ष:** तब संशोधन संख्या 418 उपस्थित किया जा सकता है। यह श्री मुकुट बिहारी लाल भार्गव के नाम से है।

*संशोधन उपस्थित नहीं किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 420, 421 और 424 का आशय समान है और मेरा यह सुझाव है कि सभा को उन पर एक साथ विचार करना चाहिये। मैं यह सुझाव करता हूं कि संशोधन संख्या 421 उपस्थित किया जाये। यह प्रोफेसर के. टी. शाह के नाम से है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में 'expression, (हिन्दी में 'भाषण') शब्द के बाद 'of thought and worship, of press and publication' (विचारों की अभिव्यक्ति और उपासना तथा समाचार-पत्रों और प्रकाशन के) शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधित अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

"Subject to other provisions of this article, all citizens shall have the right—

(a) to freedom of speech and expression of thought and worship; of press and publication;"

[इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अधीन रहते हुये सब जनपदों को अधिकार होगा—

(क) भाषण और विचारों की अभिव्यक्ति तथा समाचार-पत्रों और प्रकाशन के स्वातंत्र्य का;]

इस संशोधन को उपस्थित करते हुये मैं यह स्वीकार करता हूं कि मैं यह देखकर चकित हुआ कि यह बातें छोड़ दी गई हैं। मैं यह नहीं जानता कि नागरिक स्वतंत्रताओं के ये महत्त्वपूर्ण अंश जानबूझकर छोड़ दिये गये अथवा अनजाने। खण्ड में केवल भाषण और अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य का उल्लेख है। मेरी समझ में नहीं आता कि मसौदाकार के मस्तिष्क में किस प्रकार का भाषण-स्वातंत्र्य था जब कि वे अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य का पृथक् रूप से उल्लेख करते हैं। मेरे विचार से भाषण और अभिव्यक्ति बहुत-कुछ एक साथ चलते हैं। सम्भवत:

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

'expression' (अभिव्यक्ति) शब्द अधिक व्यापक हो क्योंकि इसमें चित्र अथवा ऐसी कलाओं की अभिव्यक्ति भी सम्मिलित है जिनका माध्यम केवल शब्द अथवा भाषण नहीं है। यदि यह माना जाये कि 'expression' (अभिव्यक्ति) शब्द रखने के सम्बन्ध में यही व्याख्या की जा सकती है, अथवा इसी प्रकार पुष्टि की जा सकती है, तो फिर भी मेरी समझ में नहीं आता है कि आराधना के स्वातंत्र्य को क्यों छोड़ दिया गया है। मैं स्वयं कोई बहुत आराधना करने वाला व्यक्ति नहीं हूं। वास्तव में मैं प्रत्यक्ष में आराधना अथवा प्रेम नहीं करता परन्तु मेरा यह विचार है कि अधिकांश लोग आराधना की आवश्यकता अनुभव करते हैं और आराधना के उद्देश्य से कई कार्य करते हैं। यदि विधान में यह स्पष्ट न किया गया कि इसकी भी स्वतंत्रता है, तो इस स्वतंत्रता को सीमित किया जा सकता अथवा लोग इससे वंचित किये जा सकते हैं। स्वतंत्रता से आराधना करने के सम्बन्ध में ही सब धार्मिक लड़ाइयां लड़ी गईं और मसौदाकार इसे भली-भांति जानते होंगे कि वे इस समय भी लड़ी जा रही हैं। लगभग 300 वर्ष पूर्व अमेरिका के वर्तमान संघ के जन्मदाताओं को अपने घर में आराधना की स्वतंत्रता न मिलने के कारण ही संयुक्त राज्य अमेरिका अस्तित्व में आया। इसी कारण अधिकांश आधुनिक विधानों में आराधना की स्वतंत्रता का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। इसलिये मेरी यह धारणा है कि यदि इस सम्बन्ध में अधिक कुछ न कहा जाये तो इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इसे छोड़ दिया गया है। जब तक मसौदा-समिति तर्कपूर्ण और प्रभावपूर्ण ढंग से यह न समझा सके कि यह क्यों छोड़ दिया गया है, मैं यह तो कहूंगा कि हमारा विधान अपूर्ण है और यदि इसे सम्मिलित न किया गया तो नागरिक स्वतंत्रताओं के एक महत्वपूर्ण अंग के सम्बन्ध में अपूर्ण ही रहेगा।

'समाचार-पत्रों और प्रकाशन की स्वतंत्रता' के सम्बन्ध में भी यही तर्क उपस्थित किया जा सकता है। वास्तव में इससे भी बलशाली तर्क उपस्थित किया जा सकता है। यह सभी को विदित है कि सभी विधानों के सम्बन्ध में और सभी ऐसे देशों में जहां उदार विधान प्रयुक्त है, समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में भी बहुत ही कटु वैधानिक संघर्ष हुआ है। बहुत त्याग और बलिदान के उपरान्त ही उसकी प्राप्ति हुई है। उन देशों में अब वह प्राप्त हो चुकी है और उसका प्रतिष्ठित स्थान है। कुछ देशों के लिखित विधान नहीं हैं तो वह वहां की प्रथाओं और न्यायालयों के निर्णयों के अनुसार प्राप्त हैं। जिन देशों के लिखित विधान हैं उन्होंने समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है।

यदि मुझे ठीक स्मरण है—मेरी त्रुटि ठीक की जा सकती है यद्यपि मेरे विचार से इसकी आवश्यकता न होगी—संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र में समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता को प्रमुख स्थान दिया गया है और उसका विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आता कि हमारे मसौदाकारों ने इसे क्यों छोड़ दिया है। मेरे विचार से कुछ विशेष कारणों को ध्यान में रख कर ही उन्होंने समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता का मसौदे में उल्लेख में किया होगा। परन्तु जब तक वे उन्हें बतायें नहीं और इसे समझायें नहीं कि उसे छोड़ क्यों दिया है, मेरा यह विचार है कि जिस प्रकार के संशोधन का मैंने प्रस्ताव किया है वह बहुत ही आवश्यक है।

समाचार-पत्रों की कटु आलोचना की जा सकती है। मेरे विचार से समाचार-पत्रों ने कई बार पदारूढ़ अधिकारियों की दृष्टि से न्यायोचित सीमाओं का उल्लंघन किया है। परन्तु यदि समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता को सीमाबद्ध करने के लिये कोई कानून बनाया गया तो उसे 'काला कानून' ही कहा जायेगा जैसा कि उसे हमारे एक वर्तमान मंत्री महोदय ने विधान-मंडल के अन्तिम अधिवेशन से पहले अधिवेशन में बताया था जब कि एक विशेष परिस्थिति में समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता को सीमित करने का प्रयास किया जा रहा था। यद्यपि उनसे कई बातों में मेरा मतैक्य नहीं था परन्तु इससे उनके प्रति मेरे हृदय में प्रेम उमड़ आया। विधेयक के तीसरे पाठ में भी वे अकेले विरोध करते रहे और मैंने यह अनुभव किया कि उन्होंने बहुत बड़ी सेवा की।

इस सभा में ऐसे लोगों के उपस्थित होते हुए भी मुझे आश्चर्य है कि समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता का कोई उल्लेख नहीं किया गया है और विधान में एक बहुत बड़ी कमी रहने दी गई है। यह मेरी कल्पना के बाहर है कि हमारे अनुभवी मसौदाकारों ने समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता का उल्लेख क्यों नहीं किया क्योंकि इसका किसी प्रावधान में उल्लेख न करके यदि कभी किसी प्रथा अथवा किसी कानून के आशय के अनुसार इसे स्थान देने का प्रश्न उठेगा तो यह स्वतंत्रता विधान को व्यवहार में लाने वाले लोगों की दया पर ही निर्भर रहेगी। मैं फिर यह कहूंगा कि समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता को भ्रमवश स्वच्छन्दता समझा जा सकता है और अवश्य ही यह इच्छा होती है कि उसे रोका जाये। यदि इस स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता का रूप दिया गया तो उसे सीमाबद्ध करने के लिये कई प्रकार से कानून बनाये जा सकते हैं अथवा कानूनों को कई प्रकार से व्यवहार में लाया जा सकता है। मैं सच्चे हृदय से फिर यह कहूंगा कि यदि इसका उल्लेख

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

न किया गया तो एक बहुत बड़ा दोष रह जायेगा। आप सभा में बहुमत में होने के कारण इसे बनाये रख सकते हैं परन्तु यदि आप मेरे संशोधन को अस्वीकार करने पर जोर देंगे तो आप संसार को कभी भी यह समझाने में सफल न होंगे कि आपका विधान एक उन्नतिशील, उदार विधान है।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 420, क्या इसे उपस्थित किया जा रहा है?

(मि. नजीरुद्दीन अहमद अपनी जगह पर बोलने के लिये खड़े हुये।)

आप यहां आने का कष्ट न करें। मैं केवल यह जानना चाहता हूं कि क्या आप इसे उपस्थित करना चाहते हैं? क्योंकि यदि आपको ऐसी इच्छा हो तो मैं इस पर मत लूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं इस पर बोलना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** आप इस पर सामान्य वादानुवाद के समय बोल सकते हैं परन्तु शर्त यह है कि आपको इसके लिये अवसर मिले।

आपने मुझे निर्णय करने का अधिकार दिया है। आप कृपा करके बैठ जाइये। उस पर मत लिया जायेगा।

**श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, क्या बिना वादानुवाद हुए ही?

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 422 ।

(श्री लक्ष्मीनारायण साहू मंच पर आये।)

आपको बोलने की आज्ञा नहीं दी जाती। क्या आप उसे उपस्थित करना चाहते हैं?

**श्री लक्ष्मीनारायण साहू** (उड़ीसा : जनरल): जी हां।

(संशोधन संख्या 424 उपस्थित नहीं किया गया।)

**उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 423 की आज्ञा नहीं दी जाती।

(संशोधन संख्या 425 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 426 ।

**ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर** (पूर्वी पंजाब : सिख): यह अमेण्डमेण्ट आर्टिकल 19 क्लाज़ 1 एक्सप्लेनेशन 1 से कवर हो जाती है। इसलिये मैं इसे मूव नहीं करना चाहता।

***उपाध्यक्षः** वे क्या कह रहे हैं? मैं समझ नहीं पा रहा हूं।

***एक माननीय सदस्यः** वे संशोधन को नहीं उपस्थित कर रहे हैं।

(संशोधन संख्या 427 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 428, 429, 430 और 432 का आशय समान है। इसलिये इन पर एक साथ विचार किया जायेगा। संशोधन संख्या 428 उपस्थित किया जा सकता है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, क्या मैं सभी संशोधनों को उपस्थित करूं और उन सभी पर बोलूं?

***उपाध्यक्षः** केवल संशोधन संख्या 428 पर।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** क्या अन्य सभी पर मत लिया जायेगा?

***उपाध्यक्षः** अवश्य।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ग) के अन्त में (हिन्दी रूपान्तर में आरम्भ में) 'for any lawful purpose' (किसी वैध कार्य के लिये) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। उपखण्ड (4) में इसी बात को अधिक विस्तृत रूप में रखा गया है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैंने इस आपत्ति पर सावधानी से विचार किया है और मैं यह बताने जा रहा था कि इस दृष्टिकोण से क्या कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। इसी कारण मैं संशोधन उपस्थित करने के लिये यहां आया हूं।

***उपाध्यक्ष:** आप आगे बढ़िये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, इस संशोधन द्वारा मैं केवल यह व्यक्त करना चाहता हूं कि लोगों का भाषण-स्वातंत्र्य, पार्षद् अथवा संघ बनाने का स्वातंत्र्य, भारत के राज्य में अबाध पर्यटन और किसी भी स्थान में निवास करने का स्वातंत्र्य इस प्रतिबन्ध के अधीन होना चाहिये कि वह कानूनी उद्देश्य से हो।

जहां तक श्री सन्तानम् के प्रश्न का सम्बन्ध है, उनका इस सिद्धान्त से कोई मतभेद नहीं है। उनका तर्क यह है कि इन प्रतिबन्धों का खण्ड (2), (3), (4), (5) और (6) में पर्याप्त उल्लेख है। मैं इस सभा का और विशेषत: श्री सन्तानम् का ध्यान अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। उसमें शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार दिया गया है। 'शान्तिपूर्वक और निरायुध' शब्द श्री सन्तानम् की दृष्टि से आपत्तिजनक हो सकते हैं क्योंकि यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि ये शब्द अनावश्यक हैं और खण्ड (3) में यह प्रतिबन्ध पर्याप्त रूप से प्रावहित है। मेरा यह निवेदन है कि मेरे नाम से जो संशोधन हैं उनके द्वारा अन्य खण्डों में भी मसौदा बनाने के इसी सिद्धान्त का अनुसरण करने की चेष्टा की गई है। मेरा यह निवेदन है कि यदि ये शब्द उपखण्ड (ख) में हैं तो इनको उपखण्ड (क), (ग), (घ), (ङ) और (च) में भी स्थान दिया जाना चाहिये। यदि हम 'किसी वैध कार्य के लिये' शब्दों को प्रविष्ट कर देते हैं तो उनके सम्बन्ध में कोई भी विधान-मण्डल हस्तक्षेप न कर सकेगा। परन्तु यदि हम (2), (3), (4), (5) और (6) की वर्तमान शब्दावली से सन्तोष कर लेते हैं तो उनके सम्बन्ध में विधान-मण्डल हस्तक्षेप कर सकते हैं। इसलिये अन्तर यह है कि यदि मेरे सुझाव के अनुसार इन शब्दों को उपखण्डों में प्रविष्ट कर लिया गया तो वे मूलाधिकारों के अंग हो जायेंगे। अर्थात् यदि कोई व्यक्ति बोलेगा तो वह किसी वैध कार्य के लिये बोलेगा। यदि वह पार्षद् अथवा संघ बनाता है तो उसे वैध ढंग से उन्हें बनाना चाहिये अर्थात् उसे ऐसे निषिद्ध कार्य जैसे षड्यंत्र आदि को न रचना चाहिये और न उनमें भाग लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त यदि वह भारत के राज्य-क्षेत्र में पर्यटन करना चाहता है तो मेरे विचार से इस पर भी यह प्रतिबन्ध होना चाहिये कि यह वैध उद्देश्य से किया जाये। किसी पुरुष को रेलगाड़ी में किसी जनाने दर्जे में न जाना

चाहिये और न उसे किसी महिला के श्रृंगार के कमरे में जाना चाहिये। कोई व्यक्ति यह कह सकता है कि मैं इस सभा-भवन के अन्दर रहता हूं। इन बातों को रोकने के लिये प्रतिबन्ध होने चाहिये। मेरा यह निवेदन है कि जैसे आपने उपखण्ड (ख) में स्पष्टतया इन शब्दों का प्रवेश किया है, उसी प्रकार यदि आप उपखण्ड (क), (ग), (घ), (ङ), (च) और (छ) में भी इन्हें प्रविष्ट करें तो ये मूलाधिकारों के अंग हो जायेंगे और खण्ड (2), (3), (4), (5), और (6) से विधान-मण्डलों को उन्हें निराकृत करने की कोई शक्ति प्राप्त न होगी। इसी कारण को ध्यान में रख कर मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है। श्रीमान्, इस विषय पर सावधानी से विचार होना चाहिये।

(संशोधन संख्या 431 और संख्या 433 से 437 तक उपस्थित नहीं किये गये।)

**उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 438 और 443 का पहला भाग। श्री कामत!

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (छ) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

मैं इस संशोधन को उस रूप में उपस्थित कर रहा हूं जैसा कि मैंने इसे सूची संख्या 2 के अपने संशोधन संख्या 79 द्वारा संशोधित किया था और जो इस प्रकार है:

संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 438 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (छ) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(h) to keep and bear arms' [(ज) आयुधों को रखने और धारण करने का]"

और खण्ड (6) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ा जाये:

"'(7) Nothing in sub-clausech) of the said clause shall affect the operation of any existing law, or prevent the State from making any law, imposing, in the interest of public order

[श्री एच.वी. कामत]

peace and tranquillity, restrictions on the exercise of the right conferred by the said sub-clause.'

[उक्त खण्ड के उपखण्ड (ज) से किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर कोई प्रभाव न पड़ेगा अथवा राज्य के लिये भी कोई ऐसा कानून बनाने में कोई बाधा न होगी जिससे उक्त उपखण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकार पर लोक-व्यवस्था, शांति अथवा अक्षोभ के हित में आयंत्रण लगें।]'"

श्रीमान्, आज इस सभा में इस संशोधन को उपस्थित करते हुये मैं कुछ गर्व का अनुभव कर रहा हूं जो, मुझे आशा है, क्षम्य होगा। इस पर विचार करते हुये कि इससे पिछले सौ वर्षों का कलुषित काल समाप्त हो जायेगा और इस संशोधन के विषय के महत्त्व को भी समझते हुये, श्रीमान्, क्या मैं आपसे यह अपील कर सकता हूं कि मुझे समय के सम्बन्ध में कुछ छूट दे दी जाये क्योंकि मैं इस समस्या को पूर्ण रूप से इस सभा के सम्मुख उपस्थित करना चाहता हूं? क्या मैं डॉ. अम्बेडकर से अथवा जो कोई मसौदा-समिति की ओर से उत्तर दें उनसे यह प्रार्थना कर सकता हूं कि वे जो कुछ इस सभा में कहा जाये उसे ध्यानपूर्वक सुनें? कल हमने यह अनुभव किया कि दिन के समाप्त होते समय डॉ. अम्बेडकर थके होने के कारण, मेरे विचार से, शीर्षक सम्बन्धी वादानुवाद की ओर ध्यान न दे सके।

***उपाध्यक्ष:** कल जो कुछ हुआ उसकी ओर संकेत करने की मैं आपको आज्ञा नहीं देता।

***श्री एच. वी. कामत :** संशोधन के सम्बन्ध में बोलने के पहले क्या मैं यह बता सकता हूं कि अनुच्छेद 13 में एक महत्वपूर्ण बात छोड़ दी गई है? मूलाधिकार सम्बन्धी उप-समिति ने, जिसके सभापति सरदार पटेल थे, जो प्रतिवेदन उपस्थित किया था उसमें उल्लिखित 13 से 18 तक के अधिकारों का शीर्षक रखा गया है 'स्वतंत्रता के अधिकार'। जो मसौदा इस समय इस सभा के सम्मुख उपस्थित है उसमें से यह उप-शीर्षक निकाल दिया गया है। दिसम्बर सन् 1946 ई. से जुलाई 1947 ई. तक जिस समिति की बैठक हुई उसकी पहली माला के प्रतिवेदन में, जिससे मैं पढ़ रहा हूं, अनुच्छेद 13 के पहले ही 'स्वतंत्रता के अधिकार' उप-शीर्षक है।

अब मैं, श्रीमान्, संशोधन को उठाता हूं। हम में से जो लोग पिछले तीस वर्ष अथवा उससे अधिक समय से भारत में काम करते आये हैं उन सभी का यह अनुभव है कि सभी लोगों की, उनके सभी वर्गों की यह मांग रही है। पहले तो

यह पिछली शताब्दी में ब्रिटिश सरकार ने जो अपमानजनक शस्त्र-सम्बन्धी कानून बनाया था उसके विरोध के रूप में की गई थी और इसके अतिरिक्त स्वरक्षा के अधिकार की प्रत्याभूति प्राप्त करने के लिये की गई थी। पिछली दो दशाब्दियों में कांग्रेस के विभिन्न प्रस्तावों द्वारा यह मांग की गई थी। सबसे महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक प्रस्ताव वह था जो मूलाधिकारों के सम्बन्ध में कराची में स्वीकार किया गया था। श्रीमान्, मैं उस प्रस्ताव से कुछ प्रासंगिक उद्धरणों को सभा के सम्मुख रखता हूं:

> "इस कांग्रेस की यह धारणा है कि लोगों को कांग्रेस की स्वराज की कल्पना से परिचित कराने के लिये यह आवश्यक है कि कांग्रेस की स्थिति ऐसे ढंग से बताई जाये जो उनकी समझ में आ सके। जनसाधारण का शोषण समाप्त करने के लिये राजनैतिक स्वतंत्रता में करोड़ों भूख से पीड़ित लोगों की आर्थिक स्वतंत्रता भी सम्मिलित होनी चाहिये। इसलिये कांग्रेस यह घोषित करती है कि किसी भी विधान में, (कृपया 'किसी भी विधान में' शब्दों की ओर ध्यान दीजिये) जिसके सम्बन्ध में उसकी ओर से सहमति प्रदान की जाये, यह प्रावहित होना चाहिये अथवा स्वराज सरकार को यह प्रावहित करने की शक्ति दी जानी चाहिये कि..."

इसके बाद विभिन्न मूलाधिकारों की गणना की गई है जिनमें एक मूलाधिकार यह है:

> "प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार होगा कि वह तत्सम्बन्धी आनियमों और आरक्षणों के अधीन आयुध रखे और उन्हें धारण करे।"

श्रीमान्, मूलाधिकारों की इस सूची में, जिसे कांग्रेस के कराची अधिवेशन में स्वीकार कर लिया गया था मैं यह देखता हूं कि उसमें दिये हुये मूलाधिकारों में से इस अधिकार के अतिरिक्त इस विधान के मसौदे में अन्य सभी मूलाधिकार समाविष्ट कर लिये गये हैं।

इस संशोधन के सम्बन्ध में मैं यह भी कहना चाहता हूं कि इसे उपस्थित करने में मैं अकेला नहीं हूं क्योंकि कांग्रेस के मंत्रियों—श्री शंकरराव देव और आचार्य जुगलकिशोर—ने भी संशोधन संख्या 443 उपस्थित किया है जिसका आशय मेरे संशोधन के समान ही है।

***उपाध्यक्ष:** क्या आप यह सुझा रहे हैं कि यह काम केवल कांग्रेस का ही है? मेरा तो यह विचार था कि यह काम सभी दलों के सहयोग का फल है।

***श्री एच.वी. कामतः** परन्तु, श्रीमान्, इससे सभी सहमत होंगे कि इस सभा में कांग्रेस दल का ही बहुमत है और यदि वह दल अपनी पुरानी घोषणाओं का समर्थन नहीं करने जा रहा है, यदि वह अपने पुराने दृष्टिकोण को छोड़ना चाहता है और अपने पुराने प्रस्ताव को कार्यान्वित करने नहीं जा रहा है तो उस दल की क्या दशा हो गई है? यदि कराची में स्वीकृत इस प्रस्ताव की आधारभूत बात ही को त्याग दिया गया तो मैं इस सभा से पूछता हूं कि क्या हम लोगों की सम्मति में गिर नहीं जायेंगे? श्रीमान्, यह मांग केवल मांग ही के रूप में नहीं रही है। मुझे स्मरण है कि सन् 1923 अथवा 1924 ई. में नागपुर में आयुध-सम्बन्धी कानून के विरोध में एक आन्दोलन हुआ था और उसमें सारे भारत के सत्याग्रहियों ने भाग लिया था। वह छः महीने तक चलता रहा और आयुध-सम्बन्धी कानून के विरोध में इस आन्दोलन का कांग्रेस ने समर्थन किया। आज हम यह कह सकते हैं कि परिस्थिति बदल गई है और अब हम अपने मूलाधिकारों में इस प्रकार की किसी बात को समाविष्ट नहीं करना चाहते। श्रीमान्, इस तर्क के सम्बन्ध में मैं कुछ समय बाद बोलूंगा।

मैं इस तर्क के बल को समझता हूं कि इस परमाधिकार को वर्तमान समय में नहीं देना चाहिये। सम्भवतः पदारूढ़ लोगों को यह भय है कि इस अधिकार का दुरुपयोग किया जायेगा। इसी कारण मैंने इस परादिक को इस अनुच्छेद के अन्य परादिकों के अनुरूप ही बनाया है। मैं स्वयं इन विस्तृत परादिकों के पक्ष में बहुत नहीं हूं। इस सम्बन्ध में भी मैं समिति की पहली माला के प्रतिवेदन के पृष्ठ 21 और 29 की ओर माननीय डॉ. अम्बेडकर का ध्यान आकर्षित करता हूं। पृष्ठ 21 में मूलाधिकार-सम्बन्धी उस उप-समिति का प्रतिवेदन है जिसके सभापति माननीय सरदार पटेल थे। बाद को इसी प्रतिवेदन पर इस सभा में विचार-विमर्श हुआ और उसमें परिवर्तन किये गये और मूलाधिकार-सम्बन्धी समिति के मौलिक प्रतिवेदन में जो विस्तृत परादिक थे, उनको उस प्रतिवेदन-सम्बन्धी प्रस्ताव में स्थान नहीं दिया गया जिसे विधान-परिषद् ने स्वीकार किया था। सम्भवतः डॉ. अम्बेडकर के लिये इसका स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता है।

संशोधन के विषय पर आते हुये, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, मैं इस अधिकार को परमाधिकार का रूप नहीं देना चाहता। इसीलिये मैंने इस परादिक को स्थान दिया है जिसके अनुसार लोक-व्यवस्था, शांति और अक्षोभ के हित में आयंत्रण रखे गये हैं। यह कहा जा सकता है कि देश में कई विध्वंसकारी अथवा इसी प्रकार के लोग हैं और वे इस अधिकार का दुरुपयोग कर सकते हैं और

साधारण नागरिक को इस प्रकार जो अधिकार प्रदान किया गया है उससे लाभ उठा सकते हैं। परन्तु क्या मैं इस सभा से यह कह सकता हूं कि विध्वंसकारी तथा अन्य दुष्ट और दुराचारी तथा अपराधी आयुधों को प्राप्त करते रहे हैं और करते रहेंगे चाहे आयुध-सम्बन्धी कोई कानून हो या ने हो। वास्तव में कानून के मार्ग पर चलने वाले लोगों को ही इस व्यवस्था से हमेशा हानि हुई है और इन दुष्टों से उन्हीं की रक्षा करने की आवश्यकता है। पिछले बारह महीनों के इतिहास ने इसे अकाट्य रूप से प्रमाणित कर दिया हैं कि इन अपराधपूर्ण बलवों और दंगों में हिंसक लोगों अथवा विध्वंसकारी लोगों को हानि नहीं होती बल्कि हानि होती है कानून के मार्ग पर चलने वाले लोगों को। वास्तव में इन्हीं की रक्षा आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त यह तर्क भी उपस्थित किया जा सकता है कि हमें केवल ऐसे अधिकारों को ही स्थान देना चाहिये जिनके सम्बन्ध में यह भय हो कि नागरिक इनसे वंचित किये जा सकते हैं। किन्तु यदि हम इस तर्क की ध्यानपूर्वक परीक्षा करें और इस तर्क के प्रकाश में इस अनुच्छेद की भी परीक्षा करें तो हम यह देखेंगे कि ऐसे अधिकार भी जैसे भारत के राज्यक्षेत्र में अबाध पर्यटन का अधिकार, भारत के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार और ऐसे ही अन्य अधिकार जिनके बारे में इस प्रकार का न तो कोई भय है और न सन्देह है कि वे नहीं दिये जायेंगे, इस अनुच्छेद में सम्मिलित किए गये हैं। परन्तु केवल इस अधिकार को अर्थात् आयुध रखने और धारण करने के अधिकार को इस अनुच्छेद में स्थान नहीं दिया गया है। यदि मेरा यह विवादशून्य प्रस्ताव भी अर्थात् आयुध धारण करने की साधारण स्वतंत्रता भी इस सभा को स्वीकार्य न हो तो मेरे विचार से हमारे देशवासियों पर बहुत ही खराब प्रभाव पड़ेगा और वे यह सोचेंगे कि सरकार लोगों का विश्वास नहीं करती है, वे उसके विश्वासपात्र नहीं हैं और वह उनसे डरती है। श्रीमान्, सरकार के मन्त्रियों के लिये यह कहना उचित ही है कि उनको लोगों की रक्षा करनी है। अपने बंगलों के बाहर सन्तरियों को तैनात करके वे यह तर्क तो उपस्थित कर ही सकते हैं। परन्तु किसी साधारण नागरिक की रक्षा के लिये कोई सशस्त्र सन्तरी नहीं रहते और उसके मकान के बाहर भी कोई सन्तरी पहरा नहीं लगाते। यदि सरकार लोगों को यह समझाना चाहती है कि वह उनका विश्वास नहीं करती और उसको उनसे भय है—यदि यही सरकार का दृष्टिकोण है तो वह ऐसा कहे। इससे यह प्रमाणित हो जायेगा कि यह सरकार लोकप्रिय सरकार नहीं है और इसका लोगों पर विश्वास नहीं है।

[श्री एच.वी. कामत]

यदि आपकी सरकार लोकप्रिय सरकार है तो पिछले सौ वर्षों के कलंक को मिटाने के लिये कम से कम इतना तो आप कर ही सकते हैं।

यह तर्क भी उपस्थित किया जा सकता है कि कांग्रेस ने, महात्मा गांधी ने और हमारे नेताओं ने हिंसा से नहीं, बल्कि अहिंसा से अपनी रक्षा करना सिखाया है। परन्तु, श्रीमान्, क्या मैं नम्रतापूर्वक इस सभा को यह स्मरण करा सकता हूं कि महात्मा गांधी यह कहते थे कि "यदि सम्भव हो तो अहिंसापूर्वक विरोध कीजिये और रक्षा कीजिये, परन्तु यदि आवश्यक हो तो हिंसापूर्वक भी कीजिये। मुझे घृणा है कायरता से"। श्रीमान्, हाल में सरदार पटेल ने स्वयं इस सिद्धान्त का प्रचार किया है। उन्होंने देश में भ्रमण करके लोगों से कहा—"भागो मत, कायर मत बनो, यदि आवश्यक हो तो हिंसापूर्वक भी विरोध करो"। हत्यारे, गुण्डे और अपराधी के सामने भागो मत। सभी साधनों से अपनी रक्षा करो। मैं देख रहा हूं कि मेरे माननीय मित्र भी शंकरराव देव हंस रहे हैं। वे मुस्करा सकते हैं और हंस सकते हैं परन्तु मैं उन्हें बताना चाहता हूं कि जो अन्त में हंसता है उसी की हंसी सबसे अच्छी होती है। उन्होंने एक संशोधन उपस्थित किया है परन्तु मैं कह नहीं सकता कि उनको उसकी चिन्ता है अथवा नहीं। अन्त में मैं केवल यह कहूंगा कि यदि हम कांग्रेस दल के लोग, जिनका इस सभा में बहुमत है, अपने पुराने वचनों को पूरा करना चाहते हैं, यदि हमारी इच्छा यह है कि हम अपने पूर्व स्वीकृत प्रस्तावों को कार्यान्वित करें, यदि हम अपने आपको धोखा नहीं देना चाहते हैं, तो मैं इस सभा से अपील करता हूं कि वह इस संशोधन को स्वीकार कर ले और इस प्रकार पिछले सौ वर्षों के कलंकपूर्ण काल के अपमानजनक अध्याय का अन्त कर दे।

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि क्या संशोधन संख्या 443 का प्रथम भाग उपस्थित किया जाने वाला है?

***श्री शंकरराव देव** (बम्बई : जनरल): जी नहीं, श्रीमान्।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्त प्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र ने अभी जो संशोधन उपस्थित किया है उसका मैं हृदय से समर्थन करता हूं।...

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं यह सुझाव कर सकता हूं कि सामान्य विचार-विमर्श अभी आरम्भ करने के बजाय हम उसे उस समय तक के लिये स्थगित कर दें

जब तक कि सभी संशोधन उपस्थित न हो जायें? हम मौलाना साहब को बोलने का अवसर देने के लिये यथासम्भव प्रयास करेंगे। क्या वे अपनी जगह पर बैठ जायेंगे। (*हंसी*)

शांति, शांति। यदि मौलाना साहब बोलना चाहें तो उन्हें इसका अधिकार है। मौलाना साहब, मुझे इसका खेद है कि मैंने आपसे अपनी जगह पर वापस चले जाने को कहा। इस सभा के एक पुराने सदस्य को इस प्रकार सम्बोधन करना खेदजनक है।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान् मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (छ) के बाद निम्नलिखित नया उपखण्ड जोड़ा जाये:

'(h) to follow the personal law of the group or community to which he belongs or professes to belong.

(i) to personal liberty and to be tried by a competent court of law in case such liberty is curtailed.'

[(ज) उस समुदाय अथवा सम्प्रदाय के वैयक्तिक कानून का अनुसरण करने का जिसका कि वह सदस्य हो अथवा जिसका सदस्य होने की उसने घोषणा की हो।

(झ) वैयक्तिक स्वतंत्रता का और इस स्वतंत्रता के सीमित होने पर किसी अधिकृत न्यायालय द्वारा न्याय किये जाने का।]"

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। यह सभा निदेशक सिद्धान्तों के अध्याय में इस आशय के एक अनुच्छेद को स्वीकार कर चुकी है कि एकविध व्यवहार-संहिता होनी चाहिये। अब माननीय सदस्य महोदय यह प्रस्तुत करना चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को उस समुदाय अथवा सम्प्रदाय के वैयक्तिक कानून का अनुसरण करने का स्वातंत्र्य होना चाहिये जिसका कि वह सदस्य हो अथवा जिसका सदस्य होने की उसने घोषणा की हो। यह उस अनुच्छेद के विरोध में है जो स्वीकार हो चुका है। हम यह निर्णय कर चुके हैं कि जहां तक सम्भव हो वैयक्तिक कानून एकविध व्यवहार-संहिता के अधीन होना चाहिये और यह संशोधन उस अनुच्छेद के सिद्धांत के विरुद्ध है।

[श्री सी. सुब्रह्मण्यम्]

जहां तक संशोधन के दूसरे भाग का सम्बन्ध है उस पर उस समय विचार-विमर्श होना चाहिये जब हम अनुच्छेद 15 को उठायें।

***उपाध्यक्षः** यह कोई औचित्य प्रश्न नहीं है। मि. मोहम्मद इस्माइल अपना भाषण जारी रख सकते हैं।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहबः** वास्तव में जब निदेशक सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श हो रहा था तो मैंने इसी प्रकार का प्रस्ताव रखा था। मैंने यह स्पष्ट कर दिया था कि वैयक्तिक कानून का यह प्रश्न मूलाधिकारों के अध्याय के अधीन रखा जाना चाहिये और मैंने यह भी कहा था कि मैं इस संशोधन को उचित अवसर पर उपस्थित करुंगा।

वैयक्तिक कानून लोगों के उस समुदाय अथवा वर्ग के धर्म का अंग है जो उस कानून का अनुसरण करता है। यदि कोई बात वैयक्तिक कानून में हस्तक्षेप करती है तो वह समुदाय और जनसाधारण, जो अपनी साधारण बुद्धि से इस प्रश्न पर विचार करेंगे, इसे धर्म में हस्तक्षेप समझेंगे। पहले एक अवसर पर इस विषय पर बोलते हुये श्री मुन्शी ने कहा था कि इस प्रश्न का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्होंने यह भी कहा था कि आखिर इसका धर्म से क्या सम्बन्ध। एक प्रतिष्ठित वकील होने के नाते उन्हें यह जानना चाहिये कि वैयक्तिक कानून का यह प्रश्न केवल धर्म पर ही आधृत है यदि वह धार्मिक नहीं है तो वह कुछ भी नहीं है यदि वे यह कहते हैं कि किसी धर्म में ऐसी बातें न होनी चाहिये तो यह दूसरी बात है। यह प्रश्न तो उन विपरीत विचारधाराओं का है जिनका सम्बन्ध इससे है कि धर्म में क्या होना चाहिये और क्या न होना चाहिये। लोगों में मतैक्य नहीं होता है और इस सम्बन्ध में विभिन्न विचार रखने वाले लोगों को एक-दूसरे के दृष्टिकोण के प्रति सहिष्णुता दिखानी चाहिये। कुछ धर्म ऐसे हैं जिनमें वैयक्तिक कानून का कोई स्थान नहीं है परन्तु हिन्दू धर्म और इस्लाम के समान कुछ ऐसे धर्म हैं जिनमें वैयक्तिक कानून का स्थान है। इसलिये मेरा यह कहना है कि लोगों को अपने वैयक्तिक कानून का अनुसरण करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये।

डॉ. अम्बेडकर ने इस सभा में यह भी कहा था कि वैयक्तिक कानून के अनुसरण का प्रश्न ऐसा नहीं है जिसमें परिवर्तन न हो, जो स्थायी हो। वास्तव में मुसलमानों में भी कुछ वर्ग ऐसे हैं जो इस्लाम के वैयक्तिक कानून का अनुसरण

नहीं करते हैं, परन्तु यह प्रश्न दूसरा ही है। यह कहना उचित नहीं है कि चूंकि एक वर्ग किसी धर्म के किसी कानून का अथवा उस धर्म के किसी अंग का अनुसरण नहीं करना चाहता, इसलिये अन्य लोगों को भी उसका अनुसरण न करना चाहिये और उनको धर्म के उस अंग को न मानने के लिये बाध्य न किया जाना चाहिये जिसे उसी सम्प्रदाय के कुछ वर्ग न मानते हों।

श्रीमान्, यह उचित नहीं है, वास्तव में उन लोगों के लिये जो अपने धर्म का और अपने इस कानून का अनुसरण करते हैं। यह कनून स्थायी है क्योंकि, जैसा कि समझा जाता है, लोगों को अपनी इच्छानुसार धर्म में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है। कुछ लोग ऐसे हैं जो अपने धर्म का खण्डन करते हैं परन्तु उन लोगों की बात अलग है। हम अन्य लोगों को अपने धर्म का खण्डन करने के लिये बाध्य नहीं कर सकते। वैयक्तिक कानून का सम्बन्ध उन्हीं लोगों से है जो उसका अनुसरण करते हैं। इससे सारे सम्प्रदाय के लिये अथवा जनसाधारण के लिये कोई बन्धन नहीं होता। इस सभा को स्मरण होगा कि एक अन्य प्रश्न के सम्बन्ध में जो वास्तव में धार्मिक प्रश्न है—मेरा अर्थ गो-वध से है—उस सम्प्रदाय के अतिरिक्त जो गो-वध निषेध को एक धार्मिक प्रश्न समझता है, अन्य सम्प्रदायों पर भी एक प्रकार का दायित्व रखा गया है। श्रीमान्, अपने मित्रों के विचारों और भावनाओं का आदर करते हुये अल्पसंख्यकों ने, जिनको गो-वध करने और गो-मांस भक्षण करने का अधिकार है, सभा के सम्मुख जो प्रस्ताव था उसे स्वीकार कर लिया यद्यपि यह प्रश्न ऐसा था जिसका केवल एक विशेष सम्प्रदाय पर प्रभाव न पड़ता था। परन्तु श्रीमान्, वैयक्तिक कानून को मानने का प्रश्न केवल उन विशेष सम्प्रदायों से सम्बन्ध रखता है जो उसका अनुसरण करते हैं। किसी दूसरे सम्प्रदाय को बाध्य करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): क्या माननीय सदस्य महोदय को ज्ञात है कि पाकिस्तान में गो-वध पर आयंत्रण लगाये गये हैं?

***उपाध्यक्ष:** क्या माननीय सदस्य महोदय अध्यक्ष पद को सम्बोधन करेंगे?

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब:** मैं उन्हें ठीक-ठीक नहीं सुन पाया। मैं नहीं जानता कि मेरे मित्र क्या कहने की चेष्टा कर रहे हैं?

***उपाध्यक्ष:** आप उनकी ओर ध्यान न दीजिये। क्या माननीय सदस्य महोदय अपना भाषण जारी करेंगे?

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** मैं माननीय सज्जन से यह पूछ रहा था कि क्या उन्हें यह ज्ञात है कि पाकिस्तान, अफगानिस्तान और कई मुस्लिम देशों में गो-वध पर आयंत्रण है। भारत में भी मुसलमान बादशाहों ने ऐसे आयंत्रण रखे थे।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहबः** उन्होंने इस प्रकार की व्यवस्था की हो या न की हो, मैं यह कहना चाहता हूं कि इस प्रश्न का सम्बन्ध एक विशेष सम्प्रदाय से है परन्तु चूंकि वह सम्प्रदाय इस वध को बन्द कराना चाहता था, अन्य सम्प्रदाय जिसे इसे रोकने की आवश्यकता न थी इसके लिये राजी हो गया। वैयक्तिक कानून से एक ऐसे विशेष सम्प्रदाय का सम्बन्ध है जो विशेष प्रकार के वैयक्तिक कानूनों का अनुसरण करता रहा है और इस सम्बन्ध में यह प्रश्न ही नहीं उठता कि अन्य लोगों को उस कानून का अनुसरण करने के लिये बाध्य किया जाये। यह प्रश्न तो अल्पसंख्यकों के अथवा बहुसंख्यकों के अपने वैयक्तिक कानून का अनुसरण करने की स्वतंत्रता का है। वास्तव में मैं जानता हूं कि असंख्य हिन्दू ऐसे हैं जो वैयक्तिक कानून में हस्तक्षेप को धर्म में हस्तक्षेप समझते हैं। श्रीमान्, मुझे ज्ञात है कि उन्होंने अधिकारियों के पास अथवा उन लोगों के पास जिनका इस विषय से सम्बन्ध है, एक बहुत बड़ा प्रार्थना-पत्र भेजा है। इसलिये केवल मुसलमानों का ही नहीं बल्कि हिन्दुओं का भी यह विचार है कि यह एक धार्मिक प्रश्न है और इसमें हस्तक्षेप न होना चाहिये। किसी सम्प्रदाय के वैयक्तिक कानून से अन्य सम्प्रदायों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिये, श्रीमान्, मेरा यह अनुरोध है कि प्रत्येक सम्प्रदाय को वैयक्तिक कानून का अनुसरण करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिये। इससे अन्य सम्प्रदायों के अधिकारों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न होगा।

इसके अतिरिक्त श्री मुन्शी ने यह भी कहा कि मिश्र अथवा तुर्की जैसे मुस्लिम देशों में इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं है। श्रीमान्, मैं उन्हें यह स्मरण कराना चाहता हूं कि तुर्की पर एक सन्धि का दायित्व हैं उस सन्धि के अधीन यह प्रत्याभूति दी गई है कि गैर-मुसलमान अल्पसंख्यक अपने पारिवारिक कानून और वैयक्तिक स्थान का नियमन अपनी प्रथाओं के अनुसार करा सकते हैं। तुर्की पर इसका दायित्व है और इस समय उस देश में इसे निभाया जा रहा है।

जहां तक मिश्र का सम्बन्ध है, उस देश में कभी भी वैयक्तिक कानून का कोई प्रश्न नहीं उठा। परन्तु इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है कि उस देश

में अल्पसंख्यकों ने जो कुछ चाहा वह उन्हें दिया गया। वास्तव में जो कुछ उन्होंने मांगा उससे अधिक उनको दिया गया। यदि वे वैयक्तिक कानून के सम्बन्ध में भी कुछ अधिकार चाहते तो वे भी उनको दिये जाते।

इनके अतिरिक्त अन्य देश भी हैं। यूगोस्लाविया में मुसलमानों को अपने पारिवारिक और वैयक्तिक कानूनों का अनुसरण करने का अधिकार दिया गया है।

इसलिये मैंने जो मांग की है वह मेरी अपनी कोई विशेष मांग नहीं है अथवा इस देश के अल्पसंख्यक सम्प्रदाय की कोई विशेष मांग नहीं है। श्रीमान्, इसे संसार के अन्य भागों में भी अच्छी प्रकार समझ लिया गया है।

श्रीमान्, मैं यह भी उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (6) के बाद निम्नलिखित नये खण्ड जोड़ दिये जायें:

'(7) Nothing in the clauses (2) to (6) of this article shall affect the right guaranteed under sub-clause (h) of clause (1) of this article.'

[(7) इस अनुच्छेद के खण्ड (2) से (6) तक की किसी बात से इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (ज) के अधीन प्रत्याभूत अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।]' "

यह एक समनुवर्त्ती खण्ड है। यह समझा गया है कि पूर्वोक्त संशोधन से अर्थात् अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ज) से वैयक्तिक कानून की प्रत्याभूति दी जा चुकी है। यह नया खण्ड (7) इसलिये रखा गया है कि (2) से (6) तक के खण्डों से वैयक्तिक कानून के सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप न हो सके।

अब मैं नये खण्ड (1) पर आता हूं। वह इस प्रकार है:

" 'to personal liberty and to be tried by a competent court of law in case such liberty is curtailed."

[(झ) वैयक्तिक स्वतंत्रता का और इस स्वतंत्रता के सीमित होने पर किसी अधिकृत न्यायालय द्वारा न्याय किये जाने का]

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

इसका अल्पसंख्यकों अथवा बहुसंख्यकों से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका सम्बन्ध प्रत्येक नागरिक के अधिकार से है। वैयक्तिक स्वातंत्र्य वास्तव में स्वातंत्र्य का प्राण है। इसी आधार पर देश के स्वातंत्र्य की भीति खड़ी की जानी चाहिये। परन्तु श्रीमान्, इस वृहत् विधान में इस वैयक्तिक स्वातंत्र्य के प्रश्न को अकेला छोड़ दिया गया है। केवल अनुच्छेद 15 में वैयक्तिक स्वातंत्र्य का एक जगह उल्लेख किया गया है और उसे 'विधि द्वारा नियत कार्य-प्रणाली' पर निर्भर कर दिया गया है। मैं यहां इस विवाद में नहीं पड़ना चाहता कि ये शब्द 'न्यायोचित विधि सम्मत कार्यप्रणाली' होने चाहियें अथवा 'विधि द्वारा नियत कार्यप्रणाली' परन्तु मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि वैयक्तिक स्वातंत्र्य का विधान में केवल उल्लेखमात्र किया गया है। परन्तु वैयक्तिक स्वातंत्र्य मूलाधिकारों का आधारभूत अधिकार है और इसका उल्लेख विधान में जिस साधारण ढंग से किया गया है उस प्रकार न होना चाहिये था।

मैं आपकी अनुमति से यह दिखाने के लिये एक उद्धरण पढ़ूंगा कि अन्य देशों के विधानों में वैयक्तिक स्वतंत्रता के इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न को कैसा स्थान दिया गया है।

भारत से बहुत छोटे देशों ने भी इस प्रश्न पर अधिक गम्भीरता से और यदि मुझे यह कहने की आज्ञा हो तो मैं कहूंगा कि अधिक पवित्रता से विचार किया है। पोलैण्ड के विधान में अन्य बातों के साथ यह भी कहा गया है कि 'यदि किसी मामले में न्यायालय की आज्ञा तुरन्त ही नहीं उपस्थित की जा सकती (क्योंकि न्यायालय की आज्ञा से ही किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता संकुचित की जा सकती है) तो वह गिरफ्तारी के 48 घण्टे के अन्दर दी जानी चाहिये और उसमें गिरफ्तारी के कारणों का उल्लेख होना चाहिये। जो लोग गिरफ्तार हो गये हों और जिनको 48 घण्टे के अन्दर न्यायालय के अधिकारियों के हस्ताक्षरों के साथ लिख कर गिरफ्तारी के कारण न बताये गये हों वे तुरन्त ही मुक्त कर दिये जायेंगे।'

'अपनी आज्ञा को व्यवहार में लाने के लिये जोर देने के लिये शासनाधिकारी जिन साधनों को काम में ला सकते हैं उनका कानूनों में उल्लेख है।'

इसके अतिरिक्त उस विधान में यह भी कहा गया है कि 'कोई कानून किसी ऐसे नागरिक को जो अन्याय अथवा अनाचार का शिकार हुआ हो, न्याय कराने के वैधानिक साधनों से वंचित नहीं कर सकता है।'

श्रीमान्, एक दूसरा देश अर्थात् यूगोस्लाविया इस सम्बन्ध में और भी आगे बढ़ गया है। उसने यह प्रावधान रखा है कि:

"किसी व्यक्ति को गिरफ्तारी अथवा हिरासत के कारणों की सूचना मिल जाने पर उसे अधिकार है..."

***श्री सी. सुबह्मण्यम्:** वैयक्तिक स्वतंत्रता के प्रश्न केवल अनुच्छेद 15 ही के अधीन आते हैं। इस अनुच्छेद के अधीन वे अप्रासंगिक हैं। अनुच्छेद 15 में वैयक्तिक स्वातंत्र्य का इस प्रकार उल्लेख है : "भारत के राज्य-क्षेत्र में किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा वैयक्तिक स्वातंत्र्य से विधि द्वारा नियत कार्यप्रणाली को छोड़कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा और न किसी व्यक्ति को विधि के सामने समता से अथवा विधियों के समरक्षण से वंचित रखा जायगा।" इसलिये वैयक्तिक स्वतंत्रता के प्रश्न पर अनुच्छेद 13 के अधीन विचार-विमर्श करने से क्या लाभ होगा?

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब:** मैं इस विषय पर बोल चुका हूं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसका उस अनुच्छेद में उल्लेख है। परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि चूंकि इसका उल्लेख वहां है इसलिये उसी अनुच्छेद के प्रसंग में इसकी चर्चा होनी चाहिये। मेरी यह धारणा है कि अनुच्छेद 13 के अधीन, जिसमें नागरिकों की विभिन्न स्वतंत्रताओं का उल्लेख है, इसको स्थान देना अधिक उपयुक्त होगा। इन स्वतंत्रताओं में यह सब से अधिक महत्वपूर्ण स्वतंत्रता है। इसलिये मेरे यह कहने में कोई हानि नहीं है कि इस महत्वपूर्ण प्रश्न का अनुच्छेद 13 के अधीन उल्लेख होना चाहिये। इसी दृष्टि से मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है और मैं उस संशोधन पर बोल रहा हूं।

श्रीमान्, आपकी आज्ञा से मैंने जो संशोधन उपस्थित किया है उसमें कहा गया है कि नागरिक को अपने वैयक्तिक स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति दी जानी चाहिये। मैं कह रहा था कि यूगोस्लाविया के विधान में यह प्रावहित है कि: "कोई व्यक्ति किसी अपराध अथवा अनाचार के लिये तब तक गिरफ्तार न किया जायेगा जब तक कि कोई अधिकृत अधिकारी ऐसी लिखित आज्ञा न दे जिसमें उस पर लगाये हुये अभियोग का उल्लेख हो। इस आज्ञा को उस व्यक्ति की गिरफ्तारी के समय अथवा गिरफ्तारी के 24 घण्टे के अन्दर दिया जाना चाहिये। गिरफ्तारी की आज्ञा के विरुद्ध किसी अधिकृत न्यायालय में तीन दिन के अन्दर अपील की जा सकती है। यदि इस समय के अन्दर कोई अपील न की गई हो—यह एक महत्वपूर्ण बात है—तो पुलिस के अधिकारियों को उसके बाद 24 घण्टे के अन्दर

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

इस आज्ञा की सूचना अधिकृत न्यायालय को अवश्य ही देनी चाहिये। इस आज्ञा की सूचना मिलने पर न्यायालय दो दिन के अन्दर इस गिरफ्तारी की आज्ञा का या तो समर्थन करेगा या उसे रद्द कर देगा और उसका निर्णय तुरन्त ही कार्यान्वित किया जायेगा। जो सरकारी कर्मचारी इस प्रावधान का खण्डन करेंगे वे स्वतंत्रता का गैरकानूनी तौर से अपहरण करने के लिये दण्डित किये जायेंगे।"

श्रीमान्, हमारा विधान एक वृहत् विधान है। हमारे मित्रों ने संसार में सबसे वृहत् विधान बनाने के लिये एक दूसरे को बधाइयां दी हैं। जिस विधान से मैंने अभी आपके सम्मुख एक उद्धरण रखा था उसमें केवल 12 अनुच्छेद हैं। वह हमारे विधान से बहुत छोटा है परन्तु वैयक्तिक स्वतंत्रता के सम्बन्ध में उसमें इतने विस्तृत प्रावधान को स्थान दिया गया है। जहां तक वैयक्तिक स्वातंत्र्य के अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न का सम्बन्ध है, हमारे वृहत् विधान में कुछ ही शब्दों में उसका उल्लेखमात्र कर दिया गया है।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, इस देश के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न लोक-रक्षा अधिनियम बनाये गये हैं और वे व्यवहार में हैं। इनमें जिस प्रकार का वैयक्तिक स्वातंत्र्य है वह वास्तव में वैयक्तिक स्वातंत्र्य का उपहास मात्र है। अधिशासीवर्ग की स्वेच्छा से कोई भी व्यक्ति गिरफ्तार किया जा सकता है। वह कारागार में डाल दिया जाता है और वह जानता तक नहीं कि उसे क्यों कारावास में सड़ना पड़ रहा है अथवा किस अभियोग पर उसे हिरासत में रखा गया है। जहां कहीं कानून के अनुसार सरकार पर यह दायित्व भी है कि वह उसे यह बताये कि उसे किन कारणों से हिरासत में रखा गया है, अधिशासी-वर्ग इसके लिये जितना समय चाहता है लेता है। ऐसे भी उदाहरण हैं जबकि सम्बन्धित व्यक्तियों को कई सप्ताहों तक और कई महीनों तक उनके ऊपर लगाये हुये अभियोग की सूचना नहीं दी गई और जब ये अभियोग बताये गये तो उनमें से कई इस प्रकार के थे कि किसी न्यायालय के सम्मुख एक क्षण के लिये भी उनका समर्थन नहीं हो सका। किसी बन्दी को अथवा किसी गिरफ्तार किये हुये अथवा हिरासत में रखे हुए किसी व्यक्ति को इसका अधिकार नहीं दिया गया है कि वह किसी न्यायालय के सम्मुख उस आज्ञा की वैधानिकता की जांच करवाये। विदेशी राज के अधीन अर्थात् अंग्रेजों के राज के अधीन भी कानून इस प्रकार व्यवहार में नहीं लाया गया।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, एक अन्य प्रकार का तर्क उपस्थित किया जा रहा है और वह यह है कि अंग्रेजों की बात दूसरी थी, वे इस देश में विदेशी थे और अब तो अपना राज है। यह सच है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हम नागरिकों की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में मनमाने ढंग से व्यवहार कर सकते हैं। नौकरशाही आखिर नौकरशाही ही है चाहे वह विदेशी राज में हो या स्वराज में हो। विदेशी राज में ही नहीं बल्कि स्वराज में भी लोग शक्ति पाकर भ्रष्ट हो जाते हैं। इसलिये, श्रीमान्, जैसा कि अन्य स्वतंत्र देशों में किया गया है, अधिशासी वर्ग की स्वेच्छाचारिता से नागरिकों की बड़ी सावधानी से रक्षा की जानी चाहिये। संसार के लगभग प्रत्येक देश में नागरिकों के वैयक्तिक स्वातंत्र्य की रक्षा के लिये विस्तृत प्रावधान रखे गये हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि केवल भारत में ही ऐसा क्यों न हो। इसलिये मैं आशा करता हूं कि विधान के रचयिता इस प्रश्न पर फिर विचार करेंगे और वैयक्तिक स्वातंत्र्य की रक्षा के लिये यथोचित प्रावधानों को विधान में स्थान देंगे।

श्रीमान्, अपने संशोधन में मैंने वैयक्तिक स्वातंत्र्य का विस्तृत रूप से उल्लेख नहीं किया है। मैं केवल यह चाहता हूं कि यदि किसी नागरिक का वैयक्तिक स्वातंत्र्य खण्डित किया जाये तो उसे न्यायालय के सम्मुख उपस्थित होने और न्याय कराने का अधिकार होना चाहिये। मैं यह चाहता हूं कि भारत के नागरिक को यह बहुमूल्य अधिकार दिया जाना चाहिये।

श्रीमान्, क्या मैं संशोधन संख्या 502 के अन्य समनुवर्त्ती संशोधनों को भी उपस्थित कर सकता हूं। मैंने केवल संशोधनों की सूची के पृष्ठ 53 में उल्लिखित संशोधन को अर्थात् उपखण्ड (7) को उपस्थित किया है। उसका सम्बन्ध वैयक्तिक कानून से है। क्या मैं अब संशोधन के दूसरे भाग को उपस्थित कर सकता हूं, जिसका सम्बन्ध सूची के पृष्ठ 54 में दिये हुये दो नये खण्ड 8 और 9 से है?

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य यह कर सकते हैं परन्तु वे भाषण न दें।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहबः** श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि निम्नलिखित दो नये खण्ड जोड़ दिये जायें :

"(8) Nothing in clauses (2) to (6) shall affect the right guaranteed under sub-clause (i) of clause (1) of this article.

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

(9) No existing law shall operate after the commencement of this Constitution so far as the same affects adversely the right guaranteed under sub-clause (i) of clause (1) of this article and no law shall be passed by the Parliament or any State which may adversely affect the right guaranteed under sub-cause (i) of cause (1) of this article."

[(8) खण्ड (2) से (6) तक की किसी बात से इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (1) के अधीन प्रत्याभूति अधिकार पर कोई प्रभाव न पड़ेगा।

(9) इस विधान के आरम्भ होने के पश्चात् कोई वर्तमान कानून, जहां तक उसका प्रभाव इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (1) के अधीन प्रत्याभूति अधिकार के विरुद्ध पड़ता है, प्रयोग में न रहेगा और संसद अथवा कोई राज्य कोई ऐसा कानून न बनायेगा जिसका प्रभाव इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (1) के अधीन प्रत्याभूत अधिकार के विरुद्ध पड़े।]

ये केवल समनुवर्ती संशोधन हैं।

***उपाध्यक्षः** अब हम संशोधन संख्या 442, 499, 443 का दूसरा भाग, 468 और 501 को उठायेंगे। इन सबका आशय समान है। मेरा यह मत है कि नये अधिनियमों के अधीन जो दो नये संशोधन उपस्थित किये जा सकते है, वे संशोधन संख्या 442 और 499 हैं। अन्य संशोधनों पर मत लिया जायेगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम आयंगर** (मद्रास : जनरल) : इन सबका संबंध प्रतिनिधियों को चुनने की इस स्वतंत्रता से है। इस प्रकार यह एक नया विषय है और इस कारण इस पर विचार-विमर्श स्थगित किया जा सकता है।

***उपाध्यक्ष :** 499वां संशोधन कैसा है?

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव :** वह भी इसी विषय के सम्बन्ध में है।

***उपाध्यक्षः** इस सारे संशोधन-समूह पर विचार-विमर्श स्थगित किया जाता है।

(संशोधन संख्या 444 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष :** संशोधन संख्या 445।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'Liberty of the person is guaranteed. No person shall be deprived of his life, nor be arrested or detained in custody, or imprisoned, except according to due process of law, nor shall any person be denied equality before the law or equal protection of the laws within the territory of India."

(व्यक्ति के स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति दी जाती है। भारत के राज्य-क्षेत्र में किसी व्यक्ति को, यथोचित विधि-सम्मत कार्यप्रणाली को छोड़ कर अन्य प्रकार न तो अपने प्राण से वंचित तथा न गिरफ्तार किया जायेगा अथवा हिरासत में रखा जायेगा अथवा कारागार में रखा जायेगा और न किसी व्यक्ति को विधि के सामने समता के अथवा विधियों से समरक्षण से वंचित रखा जायेगा।)

श्रीमान्, यह संशोधन भी उन्हीं संशोधनों के समान है जिन्हें मैं इस सभा के सम्मुख रखने का प्रयास कर रहा हूं और जिनका उद्देश्य आधुनिक उदार विधानों के सिद्धान्तों की परिभाषा करना तथा उन्हें इस विधान में समाविष्ट करना है, क्योंकि यह खेद की बात है कि हमारे विधान में उन्हें जानबूझ कर स्थान नहीं दिया गया है। जब से लोग नागरिक स्वतंत्रताओं को समझने लगे हैं तब से वैयक्तिक स्वतंत्रता को भी समझने लगे हैं और मुख्यत: इसी आधार पर उनके और स्वेच्छाचारी शासकों के बीच संघर्ष होता रहा है। केवल वैयक्तिक स्वातंत्र्य की न्याय्य मांग को कुचलने के लिये ही स्वेच्छाचारी शासक अपनी पूरी शक्ति लगाता रहा है। बिना यथोचित विधिसम्मत कार्यप्रणाली के ही स्वेच्छाचारिता से गिरफ्तार करने और हिरासत में रखने के विरुद्ध संघर्ष करने के व्यक्ति के स्वातंत्र्य के आधार पर ही अंग्रेजों के विधान तथा क्रान्ति द्वारा समुद्भूत फ्रांसीसी विधान की उन्नति हुई। जब कभी-स्वेच्छाचारी शासक के तर्क का दिवाला निकला है उसकी यही इच्छा रही है कि जो लोग उससे सहमत न हों, उन्हें कारागार में बन्द कर दिया जाये। इसीलिये जब कभी किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में यह शंका हुई कि वह थोड़ा भी मतभेद प्रकट करेगा अथवा थोड़ी भी असुविधा

[प्रो. के.टी. शाह]

उत्पन्न करेगा अथवा किसी प्रकार भी असमंजस में डाल देगा, तो जो लोग स्वेच्छाचारिता से अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहते थे, उन्हें यही रास्ता दिखाई दिया कि उस व्यक्ति को, बिना उस पर अभियोग लगाये हुये ही अथवा बिना मुकद्दमा चलाये हुये ही उसे गिरफ्तार कर लिया जाये अथवा हिरासत में रख दिया जाये। वास्तव में बहुत से आधुनिक विधानों में इस प्रकार का एक प्रमुख अनुच्छेद रखा गया है कि वैयक्तिक स्वतंत्रता की पवित्रता मान्य होगी और विधान द्वारा प्रत्याभूत होगी। हम एक नये मार्ग पर चल रहे हैं और हमें अपने विधान में ऐसी बातों को समाविष्ट करने से न छोड़ देना चाहिये, जिनकी पवित्रता मेरे विचार से मान्य होनी चाहिये और जिनको दुहराने से कोई हानि न होगी बल्कि हमारा नैतिक बल बढ़ेगा ही।

श्रीमान्, इस विधान का मसौदा ऐसे समय में बनाया गया, जब लोग असाधारण कार्य में व्यस्त थे। पिछले बारह-चौदह महीनों की दु:खद घटनाओं का भी मसौदाकारों पर यह प्रभाव पड़ा कि उस समय के गुण्डाराज में व्यक्ति के स्वातंत्र्य को किसी प्रकार संकुचित करना आवश्यक था। इसी कारण वैयक्तिक स्वातंत्र्य की पवित्रता का इस विधान में साधारण शब्दों में ही उल्लेख किया गया है। परन्तु अब चौदह महीनों की कालावधि के समाप्त होने पर मैं इस सभा के सम्मुख यह सुझाव रखना चाहता हूं कि इन दु:खद स्मृतियों को भुला देना चाहिये। निस्संदेह हमें दुर्भाग्य से यह अनुभव हुआ कि व्यक्ति अनेक भावनाओं से प्रेरित होकर हिंसा का मार्ग ग्रहण करने लगे और इस प्रकार अपने समाज के लोगों को हानि पहुंचाने लगे कि कोई भी सभ्य राज्य उसे सहन नहीं कर सकता है। इसलिये उस समय यह आवश्यक था कि ऐसे लोगों को तुरन्त ही ठिकाने लगा दिया जाय। इस प्रकार की सद्यस्कृत्यस्थिति में, इस प्रकार की परिस्थितियों में यदि आप यथोचित विधिसम्मत कार्यवाही के लिये, यथोचित वारण्ट निकालने के लिये, किसी शासनाधीश की प्रतीक्षा करते रहें अथवा सभी प्रकार की कानूनी रस्मों के पूरा होने की प्रतिक्षा करते रहें, तो यह सम्भव है कि न्याय हो ही नहीं और कानून तथा न्याय संकट में पड़ जायें। परन्तु, श्रीमान्, मेरा इस सभा से यह निवेदन है कि वह एक अपूर्व तथा असाधारण परिस्थिति थी और हमें आशा है कि वह फिर कभी उत्पन्न न होगी। विधान इन असाधारण परिस्थितियों के लिये नहीं बनना चाहिये बल्कि साधारण परिस्थितियों के लिये और सतर्क लोगों के लिये बनना चाहिये, जिनसे यह आशा की जा सकती है कि वे कानून को मानने वाले होंगे और गुण्डों की दया पर ही निर्भर न रहेंगे। श्रीमान्, हम विधान बना रहे हैं इस

प्रकार के लोगों के लिये न उन असाधारण लोगों के लिये, जिन्होंने थोड़े समय के लिये अपनी सुधबुध खो दी हो क्योंकि उनके साथ असाधारण कार्यप्रणाली के अनुसार ही व्यवहार किया जा सकता है।

अन्य विधानों के समान इस विधान में भी सद्यस्कृत्यस्थिति के सम्बन्ध में प्रावधान हैं, जब कि साधारण विधान का परित्याग कर दिया जाता है। विधानों के प्रयोग में इस प्रकार के असाधारण अपवादों से मुझे कोई प्रेम नहीं है, परन्तु मेरी भी यह धारणा है कि सद्यस्कृत्यस्थिति में चाहे यह कितना ही खेदजनक क्यों न हो, वैधानिक स्वतंत्रताओं की कुछ काल तक उपेक्षा करनी होती है। परन्तु विधान बनाते समय हमें यह न समझना चाहिये कि हर समय सद्यस्कृत्यस्थिति ही उपस्थित है और इसलिये नागरिक स्वतंत्रताओं जैसी आधारभूत बातों को छोड़ न देना चाहिये।

इसलिये मैं इस विधान में यह निश्चयोक्ति चाहता हूं कि वैयक्तिक स्वातंत्र्य का आदर किया जायेगा तथा वह कानून द्वारा प्रत्याभूत होगा और कोई व्यक्ति बिना यथोचित विधिसम्मत कार्यप्रणाली के न तो गिरफ्तार किया जायेगा, न हिरासत में रखा जायेगा और न कारागार में रखा जायेगा। उस कार्य-प्रणाली को आप प्रावहित कर सकते हैं। इस विधान के अधीन बनाये हुये कानून उस कार्य-प्रणाली को निश्चित कर सकते हैं। यदि यह कार्यप्रणाली पूर्णतया व्यवहार में लाई जाती है अथवा किसी सीमा तक व्यवहार में लाई जाती है, तो उस सीमा तक इस प्रकार का भय होने का कोई कारण नहीं है कि वैयक्तिक स्वातंत्र्य का निरादर किया जायेगा। फिर इसे प्रदान क्यों नहीं किया जाता और वैयक्तिक स्वातंत्र्य का उल्लेख क्यों नहीं किया जाता? स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासकों की शक्ति का जनतंत्रात्मक विधानों द्वारा प्रतिशोध का वैयक्तिक स्वातंत्र्य ही सदा से एकमात्र लक्षण रहा है। मेरे अधिकांश संशोधनों की जो दशा हुई है, उसे दृष्टि में रखते हुये मुझे यह शंका है कि मेरा यह प्रयास भी निरर्थक है। किन्तु जब तक मसौदाकारों का विरोध तर्कहीन ही न हो, मैं उनके मस्तिष्क में तथा अपने श्रोताओं के मस्तिष्क में यह भ्रम उत्पन्न नहीं करना चाहता कि वे तर्कहीन हैं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 446, 447 और 448। इन सबका आशय समान है। संशोधन संख्या 448 उपस्थित किया जा सकता है। वह श्रीमती रेणुका रे,डॉ. केस्कर, श्री सतीशचन्द्र और श्री मोहनलाल गौतम के नामों से है।

(संशोधन संख्या 448 और 446 उपस्थित नहीं किये गये।)

***महबूबअली बेग साहब बहादुर** (मद्रास: मुस्लिम): श्रीमान्, एक और संशोधन है, संशोधन संख्या 451 जो मेरे नाम से है, उसका सम्बन्ध खण्ड (2), (3), (4), (5) और (6) को निकालने से है।

***उपाध्यक्ष:** वह दूसरे संशोधन-समूह के अधीन आता है और उस पर बाद को विचार होगा।

***महबूबअली बेग साहब बहादुर:** तब उसके बदले मैं संशोधन संख्या 447 को उपस्थित करता हूं। श्रीमान्, मैं उपस्थित करता हूं:

"That clauses (2) to (6) of article 13 be deleted and the following proviso be added to clause (1):

'Provided, however that no citizen in the exercise of the said right, shall endanger the security of the State, promote ill-will between the communities or do anything to distrub peace and tranquility in the country."

[अनुच्छेद 13 के खण्ड (2) से (6) तक निकाल दिये जायें और खण्ड (1) के साथ निम्नलिखित परादिक जोड़ दिया जाये:

'पर कोई नागरिक उक्त अधिकार को प्रयोग में लाने में राज्य की सुरक्षा को संकट में न डालेगा। विभिन्न सम्प्रदायों के बीच विद्वेष न फैलायेगा अथवा कोई ऐसा काम न करेगा जिससे देश की शान्ति और अक्षोभ भंग हो।']

उपाध्यक्ष महोदय, मुझे यह दिखाई देता है कि जिन मूलाधिकारों की खण्ड (1) के अधीन गणना की गई है, उनका (2) से (6) तक के खण्डों में खण्डन कर दिया गया है क्योंकि ये मूलाधिकार प्रथम तो वर्तमान कानूनों के अधीन कर दिये गये हैं। यदि पहले जो कानून व्यवहार में रहे हैं, जो कानून मेरे मतानुसार गैरकानूनी हैं, जो कानून दमनशील रहे हैं, जो कानून नागरिकों को अपने मानुषिक अधिकारों से वंचित करने के लिये बनाये गये थे, खण्ड (2) से (6) तक में प्रावहित रहे, तो उनसे अब भी नागरिक इन अधिकारों से वंचित रहेंगे। मैं केवल अपराध-सम्बन्धी कानूनों के संशोधक कानून, समाचार-पत्र सम्बन्धी कानून और उन विभिन्न सुरक्षा-सम्बन्धी कानूनों की ओर संकेत करूंगा जो प्रान्तों ने बनाये हैं। इन (2) से (6) तक के खण्डों में यह भी कहा गया है कि यदि वर्तमान कानून कठोर तथा दमनशील न रहे और इन अधिकारों का खण्डन करने के लिये

पर्याप्त रूप से विस्तृत न रहे, तो अनुच्छेद 7 के अधीन परिभाषित राज्य, जिनमें विधान-मण्डल, अधिशासी-वर्ग और स्थानीय निकाय ही नहीं बल्कि स्थानीय अधिकारी भी सम्मिलित हैं, विध्वंस को सम्पूर्ण कर देंगे। मैं बढ़ा-चढ़ा कर कोई बात नहीं कह रहा हूं। मैं अभी यह बताऊंगा कि किसी उद्वेगवश मैंने यह आलोचना नहीं की है और न यह अतिशयोक्ति ही है। मूलाधिकार आधारभूत, स्थायी और पवित्र होते हैं और इनकी प्रत्याभूति इस उद्देश्य से होनी चाहिये कि कोई राज्य अपनी दमनशील शक्तियों को प्रयोग में न ला सके और इसी उद्देश्य से विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग का अधिकार-क्षेत्र पृथक्-पृथक् होना चाहिये। यदि विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग के अधिकार-क्षेत्रों का पृथक्करण न हुआ तो ये मूलाधिकार साधारण अधिकारों का रूप ले लेंगे और आधारभूत न रहेंगे। मूलाधिकारों का यही आशय है, यही महत्व है।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर ने अपने प्रारम्भिक भाषण में कहा था कि मूलाधिकार परमाधिकार नहीं है। उनके इस कथन में कोई सन्देह नहीं है। वे जनसाधारण के हितों तथा राज्य की सुरक्षा के अधीन ही रहते हैं, परन्तु प्रश्न यह है कि इसका निर्णय कौन करेगा कि क्या किसी व्यक्ति ने इस प्रकार सीमा का उल्लंघन कर दिया है कि राज्य की सुरक्षा संकट में पड़ गई है? श्रीमान्, मेरे मतानुसार तथा सर्वमान्य सिद्धान्तों के अनुसार इसका निर्णय अधिशासी-वर्ग अथवा विधान-मण्डल नहीं करेगा, बल्कि राज्य का न्यायाधीश-वर्ग करेगा कि किसी नागरिक ने सीमा का उल्लंघन इस प्रकार किया है अथवा नहीं कि राज्य की सुरक्षा संकट में पड़ गई है। अमेरिका के विधान-निर्माताओं ने उस प्रख्यात चौदहवें संशोधन द्वारा इस विभेद को स्वीकार किया था, जिसमें स्पष्ट शब्दों में यह उल्लिखित है कि कोई कांग्रेस ऐसा कानून नहीं बना सकती है जिसमें भाषण-स्वातंत्र्य, सम्मेलन-स्वातंत्र्य और समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में बिना जांच किये हुये निर्णय किया गया हो।

इंग्लैण्ड में भी, जहां कोई लिखित विधान नहीं है, दो महत्वपूर्ण तथा प्रभावपूर्ण अभिरक्षण रखे गये हैं। वे उस देश के कानून के अधीन हैं। उनके देश का कानून वह कानून है जिसके द्वारा वहां के लोगों को भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मिली है और यथोचित विधिसम्मत कार्यप्रणाली के अभाव में उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती है। ये दो अभिरक्षण हैं। जिन आयंत्रणों को (2) से (6) तक के खण्डों में स्थान दिया गया है, वे केवल जर्मनी के विधान में मिलते हैं। केवल जर्मनी के विधान में ही मूलाधिकार उन कानूनों के

[महबूबअली बेग साहब बहादुर]

प्रावधानों के अधीन रखे गये हैं जिन्हें विधान-मण्डल बनाये। इसका अर्थ यह है कि नागरिक केवल उन्हीं अधिकारों को प्राप्त कर सकते थे, जो विधान-मण्डल उन्हें समय-समय पर प्रदान करता था। इससे मूलाधिकारों का मूलोच्छेदन ही हो जाता है और मूलाधिकार वास्तव में मूल-अधिकार नहीं रह जाते। श्रीमान्, मैं यह कहूंगा कि आप इससे परिचित हैं कि इसका परिणाम क्या हुआ। हिटलर अपने विधान-मण्डल से किसी भी कानून को पास करवा सकता था और जर्मनी के विधान-मण्डल द्वारा बनाए हुए कानूनों के प्रावधानों के अधीन बिना मुकद्दमा चलाये हुये ही जर्मनों को बन्दी-शिविरों में रख सकता था। हम जानते हैं कि इसका परिणाम क्या हुआ। सभी लोग एक ही वर्ग के बना दिये गये और उनको एक ही विचारधारा को अपनाने का आदेश दिया गया। जिस किसी का मतभेद हुआ, वह बन्दी-शिविर भेज दिया गया। इसका परिणाम हुआ फासीवाद और स्वच्छन्द शासन की स्थापना।

(इस अवसर पर उपाध्यक्ष महोदय ने समय की ओर ध्यान दिलाने के लिये घण्टी बजाई।)

मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि मुझे कुछ समय और दे दिया जाये। मैंने अभी-अभी इस विषय की व्याख्या आरम्भ की है।

***उपाध्यक्षः** मुझे खेद है कि बिना मेरी अनुमति के आपको समय नहीं मिल सकता। मैं यथासमय आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप समाप्त कर दें और अपनी जगह पर चले जायें। मुझे आशा है कि आप मेरी इच्छा का आदर करेंगे।

***महबूबअली बेग साहब बहादुरः** श्रीमान्, इन्हीं कारणों से 30 अप्रैल सन् 1947 ई. को जब मूलाधिकार-सम्बन्धी समिति के सभापति सरदार पटेल ने इन मूलाधिकारों को उपस्थित किया था, इस आदरणीय सभा ने इस प्रकार के खण्डों को निकाल दिया था। उन्होंने इन सभी परादिकों को निकाल देने के लिये प्रस्ताव किया था। 30 अप्रैल सन् 1947 ई. के दिन जो विचार-विमर्श हुआ, उसमें पण्डित जवाहरलाल नेहरू प्रभृति कई प्रमुख सज्जनों ने भाग लिया था और इन सभी परादिकों को निकाल दिया गया था। भारत के प्रधान-मंत्री ने यह कहा था कि:

> "किसी मूलाधिकार पर किसी समय-विशेष की कठिनाई को ध्यान में रख कर विचार न करना चाहिये, किन्तु इस दृष्टि से विचार करना चाहिये कि आप उसे विधान में स्थायी रूप से स्थान दे रहे हैं।"

इसलिये, श्रीमान्, इस आदरणीय सभा ने 30 अप्रैल सन् 1947 को विचार-विमर्श के पश्चात्, जिसमें श्री मुन्शी प्रभृति प्रमुख सज्जनों ने भाग लिया था, इन परादिकों को निकाल दिया गया था। मेरा यह आदरपूर्ण निवेदन है कि उस निर्णय को न मानकर इन प्रावधानों को फिर स्थान देना एक प्रतिक्रियावादी कार्यवाही है। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि हमें इसकी आज्ञा न देनी चाहिये। मेरा यह निवेदन है कि इन तीन परादिकों के रहने से मूलाधिकारों का पूर्णतया शून्यन हो जाता है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि तीन या चार दृष्टिकोणों से इस प्रश्न पर विचार किया जाये।

(उपाध्यक्ष महोदय ने समय की ओर ध्यान दिलाने के लिये फिर घण्टी बजाई।)

श्रीमान्, आपकी आज्ञा से.....

***उपाध्यक्ष:** जी नहीं। कई और लोग भी बोलने वाले हैं। मैं अब आपसे अनुरोध करता हूं कि आप मेरी आज्ञा मानें।

***महबूबअली बेग साहब बहादुर:** श्रीमान्, मैं कुछ ही क्षण और चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** मैं आपको काफी समय दे चुका हूं। अन्य लोग भी बोलने वाले हैं। मेरा उनके प्रति भी दायित्व है।

अब हम आगे के दो संशोधनों को उठायेंगे। पहला संशोधन संख्या 449 है और दूसरा संशोधन संख्या 453 है। इन दो में से मेरे विचार से संशोधन संख्या 453 अधिक विस्तृत है और उसे उपस्थित किया जा सकता है। वह डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या तथा अन्य लोगों के नाम से है। इस संशोधन पर भी एक संशोधन है।

**श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यह संशोधन संख्या 453† जो हम सब के नाम से है, रस्मी तौर से उपस्थित किया

---

†यह संशोधन इस प्रकार है:

"अनुच्छेद 13 के खंड (2) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'Nothing in sub-clause (a) of clause (1) of this article shall affect the operation of any existing law, or prevent

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

जाये। मैं एक दूसरे कार्य-विवरण-पत्र में सूची 4 में देखता हूं कि इस संशोधन पर भी एक संशोधन किया गया है। श्रीमान्, मैं उस संशोधन को स्वीकार करता हूं। यदि आप कृपा करके उस संशोधन के उपस्थित किये जाने की आज्ञा दें, तो मैं उसे स्वीकार कर लूंगा; यह आवश्यक नहीं है कि यह संशोधन उपस्थित किया जाये।

***उपाध्यक्षः** श्री मुन्शी!

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। जब तक यह संशोधन उपस्थित न किया जाये, इस पर कोई संशोधन उपस्थित नहीं किया जा सकता है। इसके बारे में यह नहीं समझा जा सकता है कि यह उपस्थित कर दिया गया है।

***उपाध्यक्षः** क्या आप यह चाहते हैं कि वे संशोधन को पढ़ दें! मैंने इस ओर ध्यान नहीं दिया। श्री मुन्शी!

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं अतिरिक्त सूची में दिये हुये संशोधन संख्या 86 को उपस्थित करता हूं, जो इस प्रकार है: संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 453 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

---

the State from making any law relating to libel, slander, defamation, offences against decency or morality or sedition or other matters which undermine the security of the State.'

[इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) की किसी बात से अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, शील अथवा शिष्टता का खण्डन करने के अपराध तथा राजद्रोह अथवा किसी अन्य ऐसे विषय से सम्बद्ध किसी वर्तमान कानून पर प्रभाव, तथा किसी नये कानून के बनाने में राज्य के लिये अवरोध, न होगा।]"

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (2) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये :

'Nothing in sub-clause (a) of clause (1) of this article shall affect the operation of any existing law, or prevent the State from making any law relating to libel, slander, defamation, or any matter which offends against decency or morality or which undermines the security of, or tends to overthrow, the State.' "

[इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) की किसी बात से अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, शील अथवा शिष्टता का खण्डन करने वाली अथवा राज्य की सुरक्षा को दुर्बल करने वाली या राज्य की उन्मूलन प्रवृत्ति रखने वाली किसी बात सम्बन्धी किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव, तथा किसी नई विधि के बनाने में राज्य को अवरोध, न होगा।]

श्रीमान्, इस संशोधन के औचित्य की चर्चा करने के पूर्व मैं एक शाब्दिक त्रुटि की ओर संकेत करना चाहता हूं। मुझे विश्वास है कि डॉ. अम्बेडकर मुझे इसको ठीक करने की आज्ञा देंगे। मेरा यह प्रस्ताव है कि "shall affect the operation of any existing law" शब्दों के बाद "in so far as it relates to" शब्द रखे जायें क्योंकि इन शब्दों से इस वाक्यखण्ड का सम्बन्ध 'to libel etc.' से हो जाता है। इससे अर्थ स्पष्ट हो जाता है और मेरा विश्वास है कि मेरे माननीय मित्र इसे स्वीकार कर लेंगे।

जहां तक इस संशोधन के औचित्य का सम्बन्ध है, इसमें दो परिवर्तनों का प्रस्ताव है। मूल खण्ड में 'sedition' (राजद्रोह) शब्द आया है। मूल खण्ड इस प्रकार है,–"relating to libel, slander, defamation, sedition or any other matter..." (अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, राजद्रोह अथवा..) इस संशोधन में 'sedition' (राजद्रोह) शब्द को निकालने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त इस संशोधन में यह भी प्रयास किया गया है कि 'undermines the authority or foundation of the State' (राज्य के प्राधिकार अथवा उसके आधार को जर्जर करने वाली किसी बात) के स्थान में.....

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मुझे एक औचित्य-प्रश्न करना है। हमारे सामने यह संशोधन नहीं है। सूची 4 में यह संख्या नहीं मिलती। मेरे विचार से

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

यह संशोधन आज ही घुमाया गया और इसलिये इस पर विचार नहीं किया जा सकता। हमें इस सम्बन्ध में जो कार्यवाही हो रही है, उसे समझने के लिये कुछ समय मिलना चाहिये।

***उपाध्यक्षः** मेरे विचार से संशोधन के उपस्थित होने तक संशोधनों पर संशोधन उपस्थित किये जा सकते हैं। मेरे विचार से प्रत्येक सदस्य की मेज पर इसे रख दिया गया था।

***श्री के.एम. मुन्शीः** वास्तव में 458वें और 461वें संशोधन को एक ही संशोधन का रूप दे दिया गया है। श्रीमान्, इस संशोधन में कोई नई बात नहीं है।

***उपाध्यक्षः** श्री मुन्शी, आप बोलिये।

***पण्डित हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं श्री मुंशी से प्रार्थना कर सकता हूं कि वे अपने संशोधन को एक बार और पढ़ दें? यह संशोधन किस पर किया गया है?

***श्री के.एम. मुन्शीः** यह पृष्ठ 49 में दिये हुये संशोधन संख्या 453 पर एक संशोधन हैं। वास्तव में इसमें सूची में दिये हुये दो संशोधन सम्मिलित कर दिये गये हैं। यह इस प्रकार है:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (2) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये :

'(2) Nothing in sub-clause (a) of clause (1) of this article shall affect the operation of any existing law, or prevent the State from making any law relating to libel, slander, defamation."

[इस अनुच्छेद के खण्ड 1 के उपखण्ड (क) की किसी बात से अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, शील अथवा शिष्टता का खण्डन करने वाली, किसी बात सम्बन्धी किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव, तथा किसी नई विधि के बनाने में राज्य को अवरोध, न होगा।]

परिवर्तन यह किया गया है कि 'sedition' (राजद्रोह) शब्द निकाल दिया गया है।

"or any matter which offends against decency or morality" (शील अथवा शिष्टता का खण्डन करने वाली कोई बात) शब्द रखे गये हैं।

इसके अतिरिक्त एक परिवर्तन और है।

"or which undermines the security of, or tends to overthrow the State" (राज्य की सुरक्षा को दुर्बल करने वाली अथवा राज्य के उन्मूलन प्रवृत्ति वाली)

संशोधन संख्या 461 की यही शब्दावली है। उसका उद्देश्य.....

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): क्या मैं यह समझूं कि 'morality' (शील) शब्द निकाल दिया गया है?

**श्री के.एम. मुंशी:** मैंने 'morality' (शील) शब्द को पढ़ा था।

***उपाध्यक्ष:** जहां तक उसका सम्बन्ध है आपको किसी प्रकार की शंका न होनी चाहिये।

**श्री के. एम. मुन्शी:** यह सभा मुझे इस प्रकार की कोई बात करने की आज्ञा न देगी। श्रीमान्, इस संशोधन की विशेषता यह है कि इसमें 'राजद्रोह' शब्द को निकालने का प्रयास किया गया है और उसके स्थान में उससे अच्छी शब्दावली अर्थात्—"राज्य की सुरक्षा को दुर्बल करने वाली अथवा राज्य के उन्मूलन प्रवृत्ति वाली" रखी गई हैं। उद्देश्य यह है कि 'देशद्रोह' शब्द निकाल दिया जाये, क्योंकि इसका आशय संदेहात्मक है और इसका विभिन्न अर्थों में प्रयोग होता है और इसके स्थान में ऐसे शब्द रखे जायें जो स्पष्ट रूप से राज्य के विरुद्ध किसी अपराध को व्यक्त करते हैं।

***श्री अमियकुमार घोष** (बिहार : जनरल): मैं इस सम्बन्ध में एक सूचना चाहता हूं। मैं यह जानना चाहता हूं कि बिना किसी संशोधन को प्रस्तुत किये हुये क्या उस पर कोई संशोधन उपस्थित किया जा सकता है?

***उपाध्यक्ष:** संशोधन रस्मी तौर पर उपस्थित किया जा चुका है।

***श्री के.एम. मुन्शी:** मैं यह बता रहा था कि 'राजद्रोह' शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है और यह इस सभा के सदस्यों के लिये ही नहीं बल्कि संसार के सभी न्यायालयों के लिये संदेह का कारण रहा है। इसकी परिभाषा बहुत

[श्री के.एम. मुन्शी]

साधारण है और वह बहुत पहले अर्थात् सन् 1868 ई. में की गई थी। उसके अनुसार "राजद्रोह में ऐसा सब व्यवहार सम्मिलित है, चाहे उसका शाब्दिक रूप हो अथवा कार्यरूप हो अथवा लिखित रूप हो, जिसका उद्देश्य राज्य के अक्षोभ को भंग करना हो अथवा अनजान लोगों को राज्य का उन्मूलन करने के लिये प्रेरित करना हो"। परन्तु वास्तव में व्यवहार में इस शब्द की गति विचित्र हुई है। डेढ़ सौ वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड में सभा करना अथवा जलूस निकालना राजद्रोह समझा जाता था। किसी समय किसी ऐसे मत को ग्रहण करना भी, जिससे राज्य के विरुद्ध विद्वेष उत्पन्न हो, राजद्रोह समझा जाता था। हमारी दण्ड-संहिता की कुख्यात धारा 124-ए किसी समय इतने इतने व्यापक ढंग से प्रयोग में लाई जाती थी कि मुझे स्मरण है, एक मामले में एक जिलाधीश की आलोचना पर भी वह लागू की गई थी। तब से लोकमत बहुत कुछ बदल गया है और चूंकि अब हमारा शासन जनतंत्रात्मक है, हमें शासन की आलोचना का स्वागत करना चाहिये और उसमें तथा इस प्रकार की उत्तेजना फैलाने में हमें विभेद करना चाहिये जिससे सुरक्षा और सुव्यवस्था ही, जिस पर सभ्य जीवन आधृत रहता है, संकट में पड़ जाये और राज्य का ही उन्मूलन हो जाये। इसलिये यह शब्द 'राजद्रोह' निकाल दिया गया है। वास्तव में जनतंत्र का प्राण ही सरकार की आलोचना है। दलबन्दी से शासन-व्यवस्था में उलटफेर करने के सम्बन्ध में अवश्य ही मतप्रकाश होता है, परन्तु वह जनतंत्र की आधार—शिला है और इसलिये विभिन्न शासनप्रणालियों के सम्बन्ध में मतप्रकाश का स्वागत करना चाहिये क्योंकि इससे जनतंत्र सजीव हो उठता है। इसलिये इस संशोधन का उद्देश्य इस प्रकार की दो स्थितियों में अन्तर करना है। हमारे संधान-न्यायालय ने निहारेन्दु दत्त मजूमदार बनाम सम्राट के मुकद्दमे में, जिसका उल्लेख संधान-न्यायालय के तीसरे और चौथे प्रतिवेदनों में है, इसमें विभेद किया है कि जिस समय भारतीय दण्ड-संहिता बनाई गई थी, उस समय 'राजद्रोह' का क्या अर्थ था और सन् 1942 ई. में उस शब्द से क्या समझा जाता था। भारत के मुख्य न्यायाधीश के निर्णय के एक उद्धरण से यह स्पष्ट हो जायेगा कि इस समय राज्य के विरुद्ध अपराध से क्या समझा जाता है। उसके पृष्ठ 50 में कहा गया है कि—"राजद्रोह इस कारण अपराध नहीं माना गया है कि ऐसा करने से सरकारों के जर्जरित अहंकार की क्षतिपूर्ति होती है, बल्कि इसलिये कि सरकार और कानून के प्रति निष्ठा नहीं दिखाई गई है क्योंकि यदि उनका आदर नहीं किया गया तो केवल अराजकता ही फैल सकती है। इस प्रकार

लोक दुर्व्यवस्था अथवा लोक-दुर्व्यवस्था की तर्कयुक्त आशा अथवा सम्भावना ही इस अपराध का सार है। जिन कार्यों अथवा शब्दों के सम्बन्ध में आपत्ति की गई हो, उनसे या तो दुर्व्यवस्था के लिये उत्तेजना उत्पन्न होनी चाहिये या तर्कपूर्ण लोगों की दृष्टि में उनका यह उद्देश्य अथवा इस प्रकार की प्रवृत्ति होनी चाहिये।"

इसलिये इस संशोधन में ऐसे शब्द रखे गये हैं जिनसे 'राजद्रोह' का वह अर्थ यथेष्ठ रूप से व्यक्त होता है जिसे किसी जनतंत्रात्मक राज्य की आज की पीढ़ी समझती है और इस प्रकार वास्तव में कोई सारवत् परिवर्तन नहीं किया गया है। केवल संदेहात्मक शब्द 'राजद्रोह' को इस अनुच्छेद से निकालने का प्रयास किया गया है। अन्यथा यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि हम भारतीय दण्ड-संहिता की धारा 124-ए को, जो कुछ समय पूर्व एक अच्छा कानून समझा जाता था, अथवा उसके आशय को बनाये रखना चाहते हैं। श्रीमान्, इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** स्पष्टीकरण के उद्देश्य से क्या मैं अपने विद्वान मित्र श्री मुन्शी से यह पूछ सकता हूं कि "any other matter" (किसी ऐसे अन्य विषय) वाक्यांश से "other" (अन्य) शब्द निकाल देने से इस संशोधन के अर्थ के सम्बन्ध में क्या कुछ संदेह अथवा कठिनाई उत्पन्न न हो जायेगी? यदि वे विधान के मसौदे के अनुच्छेद 13 को देखें तो वे उसमें "any other matter" (किसी अन्य बात) शब्द प्रयुक्त पायेंगे। यहां "other" (अन्य) शब्द को निकाल दिया गया है जिसका अर्थ यह होगा कि जहां तक अपमान-वचन, मान-हानि और अपमान-लेख का सम्बन्ध है उनसे शिष्टता अथवा शील की हानि नहीं हो सकती, किन्तु किसी अन्य बात से हो सकती है। क्या श्री मुन्शी यह कहना चाहते हैं कि मान-हानि, अपमान-वचन अथवा अपमान-लेख से शिष्टता अथवा शील की हानि नहीं होती है?

***श्री के.एम. मुन्शीः** इस अनुच्छेद के मूल खण्ड के मसौदे में ये शब्द थे—

"libel, slander, defamation, sedition or any other matter which offends against decency or morality or undermines the authority or foundation of the State."

(अपमान-लेख, अपमान-वचन, मान-हानि, राजद्रोह अथवा शिष्टता या शील पर आघात या राज्य के प्राधिकार अथवा उसके आधार को जर्जर करने वाली किसी अन्य बात सम्बन्धी...) अपमान-वचन और मानहानि को शिष्टता अथवा शील पर आघात से सम्बद्ध करना आवश्यक नहीं है और न उनसे राज्य का

[श्री के.एम. मुन्शी]

अधिकार ही जर्जर होता है। "any matter" (किसी ऐसे विषय) शब्द एक स्वाधीन श्रेणी की ओर संकेत करते हैं। दूसरी श्रेणी किसी ऐसे विषय की है, जो राज्य के विरोध में हो। इसलिये 'other' (अन्य) शब्द अनुपयुक्त होगा।

***श्री एच.वी. कामतः** अनुच्छेद के मसौदे में 'other' (अन्य) शब्द का संकेत अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, राजद्रोह इन सभी की ओर है।

***श्री के.एम. मुन्शीः** मैं अपने माननीय मित्र से सहमत नहीं हूं।

***उपाध्यक्षः** क्या आप 449वें संशोधन को उपस्थित करना चाहते हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** जी हां।

***उपाध्यक्षः** उस पर मत लिया जायेगा। अब हम संशोधन संख्या 450 451, 452, 453, 465 और 478 पर आते हैं। इन सबका आशय समान है और इसलिये इन सभी पर एक साथ विचार होना चाहिये। संशोधन संख्या 450 को उपस्थित करने की आज्ञा दी जाती है।

***सरदार हुकुम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 13 के खण्ड (2), (3), (4), (5) और (6) निकाल दिये जायें।"

श्रीमान् यदि अनुच्छेद 13(1) के उपखण्ड (क), (ख) और (ग) को स्वतंत्र रूप से देखा जाये तो उनका उद्देश्य यही प्रतीत होता है कि राज्य की बाध्य करने की शक्ति के होते हुये व्यक्ति को रक्षण प्रदान किया जाये। परन्तु अनुच्छेद 13 के (2) से (6) तक के उपखण्डों से इन रक्षण-सम्बन्धी खण्डों का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। इनमें यह कहा गया है कि अनुच्छेद 13 के खण्ड (क), (ख) और (ग) की किसी बात से किसी भी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर कोई प्रभाव न पड़ेगा अर्थात् अपराध-सम्बन्धी कानून का संशोधन अधिनियम, समाचार-पत्र-सम्बन्धी अधिनियम और अन्य कई ऐसे सुरक्षा सम्बन्धी अधिनियमों पर कोई प्रभाव न पड़ेगा जो उपखण्ड (1) में अगणित अधिकारों का खण्डन करते हैं और जो मानवी स्वतंत्रताओं का दमन करने के लिये बनाये गये थे। यदि ये पहले की तरह जारी रहे तो जिस परिवर्तन के लिये इतना शोर किया गया है,

वह कहां होने जा रहा है? अधिकारों को मूलाधिकार घोषित करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि नागरिक की स्वतंत्रता की रक्षा की जाये, ताकि तत्कालीन साधारण विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग उसमें हस्तक्षेप न कर सकें। अनुच्छेद 13(1) में जिन अधिकारों की गणना की गई है वे इस प्रकार के हैं कि यदि कोई व्यक्ति स्वेच्छा से भी उनको त्यागना चाहे तो वह ऐसा नहीं कर सकता है। विशेषतया तत्कालीन सरकार तो, जब तक कोई विशेष परिस्थिति उपस्थित न हो जाये, उनका खण्डन कर ही नहीं सकती। परन्तु यहां सम्मेलन के स्वातंत्र्य को, समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य को और अन्य स्वातंत्र्यों को विचित्र रूप दे दिया गया है और उन्हें बिल्कुल ही विधान-मण्डल की स्वेच्छा पर निर्भर कर दिया गया है। इससे सारी खूबसूरती जाती रही है। इस खण्ड के अधीन वर्तमान कानूनों को ही नहीं लाया गया है, किन्तु राज्य को अपमान-लेख, अपमान-वचन आदि के सम्बन्ध में किसी प्रकार का कानून बनाने की असाधारण शक्ति दे दी गई है। यह कहा जा सकता है कि राजद्रोह, अपमान-वचन, अपमान-लेख आदि के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति तथा अधिकार-क्षेत्र प्राप्त होना ही चाहिये। परन्तु अमेरिका जैसे अन्य देशों में सर्वोच्च न्यायालय ही सारी परिस्थिति और वातावरण को ध्यान में रख कर इस सम्बन्ध में निर्णय कर सकता है और यह कह सकता है कि वैयक्तिक स्वातंत्र्य की पर्याप्त रक्षा हुई है, अथवा नहीं अथवा विधान-मण्डल ने नागरिक के स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में हस्तक्षेप किया है अथवा नहीं। तुला न्यायाधीश-वर्ग के हाथ में रहती है और वे सभी सभ्य देशों में सच्चाई से तोलते रहे हैं, जिसके फलस्वरूप नागरिक की रक्षा होती रही है और उसकी स्वतंत्रता के सम्बन्ध में विधान-मण्डल अनुचित रूप से हस्तक्षेप नहीं कर सके हैं। परन्तु इन (2) से (6) तक के उपखण्डों को स्थान देकर हमारे विधान के अधीन एक विचित्र प्रणाली का अनुसरण किया जा रहा है। माननीय प्रस्तावक महोदय ने यह कह कर इन उपखण्डों का समर्थन किया है कि इन आयंत्रणों में से प्रत्येक के सम्बन्ध में वे कम से कम एक उदाहरण दे सकेंगे। यही एक अन्तर है जहां इन देशों में इन स्वतंत्रताओं के क्षेत्रों का और इन आयंत्रणों की परिधि का नियमन न्यायाधीश-वर्ग करता है, अनुच्छेद 13 के (2) से (6) तक के खण्डों से विधान-मण्डल को यह शक्ति दे दी गई है। अनुच्छेद 13 (1) (क) में भाषण-स्वातंत्र्य का अधिकार दिया गया है, परन्तु राज्य के आधार को जर्जर करने वाले विषयों के सम्बन्ध में 13 (2) के अधीन विधान-मण्डल को किसी भी अधिनियम को बनाने की शक्ति देकर इस अधिकार को आयंत्रित कर दिया गया है। यह प्रतीत होता है कि सम्मेलन का अधिकार 13 (1) (ख) के अधीन

[सरदार हुकुम सिंह]

प्रत्याभूत है, परन्तु 13 (3) में यह प्रतिबन्ध रख दिया गया है कि लोक-व्यवस्था के हित में कानून बनाये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त 13(4) से 13(6) तक के अधीन 'जनसाधारण के हित में' इन स्वतंत्रताओं को आयंत्रित करने के लिये किसी प्रकार के कानून बनाये जा सकते हैं। जो कोई कार्यवाही की जाये अथवा जो कोई कानून बनाया जाये, उसके बारे में इसका निर्णय कौन करेगा कि यह "जनसाधारण के हित में है" अथवा "लोक-व्यवस्था के हित में है" अथवा उसका सम्बन्ध किसी ऐसे विषय से है जो "राज्य के प्राधिकार को अथवा आधार को जर्जर करता है"? इससे सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र बहुत संकुचित हो जायेगा। उसके सम्मुख केवल एक ही प्रश्न रह जायेगा और वह यह होगा कि क्या विचाराधीन कानून "लोक-व्यवस्था के हित में है" अथवा नहीं। न्यायालय के निर्णय के लिये केवल यही विषय रह जायेगा कि विधान-मण्डल का अधिकार क्या है और जब उसे एक बार वह ज्ञात हो जायेगा कि सरकार का यह सच्चा विश्वास था कि "लोक-व्यवस्था के हित में" विचाराधीन कानून आवश्यक था, तो फिर उसके हस्तक्षेप के लिये कुछ न रह जायेगा। अनुच्छेद 13(3) के परादिक की शब्दावली इस प्रकार है कि सर्वोच्च न्यायालय को इसका अधिकार ही नहीं रह जाता कि वह इस सम्बन्ध में विचार करे और निर्णय करे कि वास्तव में ऐसी परिस्थिति उपस्थित थी कि इस प्रकार का कानून बनाना आवश्यक था। न्यायालय को जो प्रावधान रखे गये हों, उनके सम्बन्ध में तथा जो आयंत्रण लगाये गये हों, उनके सम्बन्ध में निर्णय करने का कोई अधिकार न रह जायेगा।

इसे अधिक स्पष्ट करने के लिये हम 13(2) के अधीन बनाये हुये राजद्रोह-सम्बन्धी कानून का उदाहरण ले सकते हैं। सर्वोच्च न्यायालय को केवल इसका निर्णय करना होगा कि जो कानून बनाया गया है वह 'राजद्रोह' के सम्बन्ध में है या नहीं। यदि उसका 'राजद्रोह' से सम्बन्ध हो तो न्यायाधीश-वर्ग को यह निर्णय करना होगा कि वह न्याय्य है। यह न्यायाधीश का कर्त्तव्य न रह जायेगा कि वह यह देखें कि जो प्रावधान रखे गये हैं वे कहीं दमनशील अथवा अन्यायपूर्ण तो नहीं हैं। यदि 13(2) के अधीन रखा हुआ आयंत्रण उसी रूप में रहने दिया जायेगा, तो नागरिकों को राजद्रोह के सम्बन्ध में किसी भी कानून को गैरकानूनी घोषित कराने का अवसर ही नहीं मिलेगा, चाहे वह कितना ही दमनशील क्यों न हो और चाहे 13(1) (क) के अधीन दी हुई स्वतंत्रतायें उससे कितनी ही आयंत्रित क्यों न हो और उनका कितना ही शून्यन क्यों न हो।

"न्यायालय" केवल इस दिशा में विचार करने के लिये बाध्य हो जायेगा कि विधान के अधीन संसद को राजद्रोह के सम्बन्ध में किसी प्रकार के भी कानून बनाने का अधिकार दिया गया है और उसने ऐसा ही किया है। इसमें विधान का कहीं खण्डन नहीं होता। इसके विपरीत मसौदे में पहले से ही यह कह दिया गया है कि यदि संसद राजद्रोह के सम्बन्ध में कोई कानून बनाता है, तो वह न्याय्य है। 13 (1) में जो स्वातंत्र्य वर्णित है, उसकी भी यही दशा हो जाती है क्योंकि (2) से (6) तक के खण्डों से उसका शून्यन हो जाता है।

यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि राष्ट्रीय सरकार के अधीन विधान-मण्डल पर, लोगों के प्रतिनिधियों पर, जो प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर चुने जायेंगे, इसका विश्वास किया जा सकता है और यह विश्वास करना भी चाहिये कि वे नागरिकों के अधिकारों की पूर्णतया रक्षा करेंगे। परन्तु यह ठीक ही कहा गया है कि, "यद्यपि अधिशासी-वर्ग के आक्रमण का अब कोई भय नहीं रह गया है, परन्तु विधान-मण्डल का अत्यधिक हस्तक्षेप होने लगा है और आधुनिक काल में इसी हस्तक्षेप के भय से नागरिक को मुक्त करने के लिये मूलाधिकारों की घोषणा की जाती है जैसे कि पहले वह स्वेच्छाचारी राजाओं के अत्याचार से उसे मुक्त करने के लिये की जाती थी।"

अधिकार-पत्र का उद्देश्य ही यह होता है कि ये अधिकार साधारण विधान-मण्डल के प्रभाव में न रहें, परन्तु यदि हम विधान-मण्डल को ही, जो जनतंत्रात्मक राज्य में केवल एक राजनैतिक दल का रूप ले लेता है, इन अधिकारों के सम्बन्ध में, जो पत्र में पवित्र तथा मूलाधिकार घोषित किये गये हैं, यह निर्णय करने का अधिकार दे दें कि इनका कब शून्यन होता है, जैसा कि हमने अनुच्छेद 13 के (2) से (6) तक के खण्डों द्वारा किया है तो हम इन स्वतंत्रताओं को केवल काल्पनिक ही बना रहे हैं।

जब संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे अन्य देशों में न्यायाधीश-वर्ग पर ही पूर्ण विश्वास किया गया है और दीर्घ काल के अनुभव के पश्चात् यह प्रमाणित हुआ है कि ऐसा करना अनुचित न था, तो हम भी वैयक्तिक स्वतंत्रताओं और राज्य के हितों के रक्षण का भार इसी वर्ग को क्यों न सौंपे और क्यों स्वतंत्रता को इतने अपवादों से और इन उप-खण्डों से क्यों संकुचित कर दें?

श्रीमान्, मैं सभा से यह सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***उपाध्यक्षः** सूची में आगे का संशोधन वैकल्पिक संशोधन संख्या 451 है, जो मि. महबूबअली बेग के नाम से है।

***महबूबअली बेग साहब बहादुरः** श्रीमान् मैं उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (2), (3) (4), (5) और (6) के पहले निम्नलिखित शब्द प्रविष्ट किये जायें:

'Without prejudice and subject to the provisions of article 8.'

(अनुच्छेद 8 के प्रावधानों के अधीन तथा बिना उनके विपरीत गये हुये।)"

इस संशोधन को मैंने दो उद्देश्यों से उपस्थित किया है। पहले तो मैं इस सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर के तथा मसौदा-समिति के विचारों से परिचित होना चाहता हूं कि इन परादिकों से अनुच्छेद 8 का किस प्रकार सम्बन्ध है। यह पूछा जा सकता है कि इन (2) से (6) तक के खण्डों पर अनुच्छेद 8 के आदेशों का प्रभाव पड़ता है अथवा नहीं। यदि इन पर पड़ता है तो मैं आपकी अनुमति से अनुच्छेद 8 की ओर संकेत करना चाहता हूं। उसमें कहा गया है:

"इस विधान के प्रारम्भ होने के सद्य:पूर्व भारत के राज्य-क्षेत्र में प्रवृत्त सब कानून, उस मात्रा तक शून्य होंगे जिस तक कि वे इस भाग के प्रावधानों से असंगत हैं।"

"इस भाग के प्रावधानों से असंगत हैं" शब्दों का अपमान-लेख सम्बन्धी वर्तमान कानूनों पर तथा सम्मेलन के अधिकारों के प्रयोग पर लगाये हुये आयंत्रणों के सम्बन्ध में वर्तमान कानूनों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसका अर्थ यह है कि (2) से (6) तक के अनुच्छेदों में जिन वर्तमान कानूनों का उल्लेख किया गया है, उन सबका अनुच्छेद 8 के अधीन शून्यन नहीं होता है। अनुच्छेद 15 के नीचे जो टिप्पणी दी हुई है उससे पता लग जाता है कि उद्देश्य क्या है, क्योंकि उसमें बताया हुआ है कि 'personal' (वैयक्तिक) शब्द क्यों समाविष्ट किया गया है। उसमें कहा गया है:

"समिति की यह सम्मति है कि 'liberty' (स्वातंत्र्य) शब्द के आगे 'personal' (वैयक्तिक) शब्द विशेषण के रूप में रखा जाना चाहिये, क्योंकि यदि ऐसा न किया गया तो इसका विस्तृत अर्थ लगाया जा सकता है और इसमें उस स्वातंत्र्य को भी सम्मिलित किया जा सकता है जिसका अनुच्छेद 13 के अधीन उल्लेख है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यदि किसी वर्तमान कानून का सम्बन्ध अपमान-लेख से अथवा सभाओं से या सम्मेलनों से अथवा भाषण या अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य से हो तो वह बना रहता है, यद्यपि अनुच्छेद 8 में यह कहा गया है कि यदि कोई प्रवृत्त कानून मूलाधिकारों से असंगत हो तो उसका शून्यन हो जायेगा। इस प्रकार हम इस स्थिति में पड़ जाते हैं। पिछले दिनों में वर्तमान कानूनों द्वारा जैसे कि अपराध-सम्बन्धी कानून के संशोधक अधिनियम, समाचार-पत्र सम्बन्धी अधिनियम अथवा सुरक्षा-सम्बन्धी अधिनियमों द्वारा जो आयंत्रण रखे गये हैं, वे खण्ड (1) में उल्लिखित स्वतंत्रताओं से असंगत हैं। वे प्रवर्तन में रहेंगे और उनका शून्यन नहीं हुआ है। इसके स्वभावत: यह अर्थ लगाया जा सकता है।

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं वह यह है। विधान द्वारा विधान-मण्डल को अथवा अधिशासी-वर्ग को कुछ शक्तियां दी गई हैं। यह दूसरी बात है कि कोई न्यायालय इस कार्यवाही के औचित्य पर अथवा अनौचित्य पर आपत्ति कर सकता है अथवा नहीं। मेरा यह मत है कि जब विधान में ही विधान-मण्डल को अथवा इस प्रसंग में राज्य को, जिसमें विधान-मण्डल, अधिशासी-वर्ग, स्थानीय निकाय और इस प्रकार की अन्य संस्थायें सम्मिलित हैं, शक्ति देने के सम्बन्ध में प्रावधान है तो न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र समाप्त हो जाता है क्योंकि न्यायाधीश यह कहेंगे कि जब विधान ही में विधान-मण्डल को नागरिक के अधिकारों का अपहरण करने, उनको आयंत्रित करने अथवा सीमित करने का अधिकार दिया गया है तो वे कानून के अथवा व्यवस्था के औचित्य पर अथवा अनौचित्य पर विचार नहीं कर सकते जब तक कि वह अनधिकृत रूप से प्रयुक्त न हो। इसका निर्णय अधिकारी-वर्ग ही कर सकता है कि क्या ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है कि किसी विशेष कानून को बनाना अथवा व्यवस्था को स्थापित करना आवश्यक हो गया है। फिर भी मैं मसौदा समिति के सभापति महोदय से यह पूछना चाहता हूं कि इस परिस्थिति में अर्थात् जब कि विधान में ही यह प्रावधान हो कि विधान-मण्डल को अथवा अधिशासी वर्ग को यह शक्ति प्राप्त है कि वे खण्ड (1) में उल्लिखित अधिकारों को संकुचित करने के लिये आज्ञा दे सकते हैं अथवा कानून बना सकते हैं; तो क्या न्यायालय उस आज्ञा अथवा कानून के औचित्य पर अथवा अनौचित्य पर विचार कर सकता है और किसी कानून को अमान्य अथवा किसी अधिनियम को अन्याय्य घोषित कर सकता है? मेरे विचार से न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र विधान में स्पष्ट शब्दों में यह कह कर समाप्त हो जाता है कि राज्य को लोक-व्यवस्था के हित में अपमान-लेख अथवा सम्मेलन के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति प्राप्त होगी और...।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई: जनरल): श्रीमान् यदि मुझे अपने माननीय मित्र के भाषण के बीच में बोलने दिया जाये तो मैं यह कहूंगा कि मैं उनकी बात समझ गया हूं और मैं इसका दायित्व ग्रहण करता हूं कि मैं उनको उसके अर्थ के सम्बन्ध में सन्तुष्ट कर दूंगा। इसलिये उनके लिये कि इस पर अब अधिक विस्तार से बोलना अनावश्यक है।

***महबूबअली बेग साहब बहादुर:** तीसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं वह यह हैं अब जो व्यवस्था स्थापित होगी वह है। संसदात्मक जनतंत्र की व्यवस्था अथवा किसी राजनैतिक दल का उसके अधिशासी-वर्ग अथवा उसकी सरकार द्वारा शासन। इस संसदात्मक जनतंत्र में अथवा एकदल शासन में हम समझ सकते हैं कि लोगों को किस सीमा तक मूलाधिकार प्राप्त होंगे। इस स्थिति में जन-साधारण के हित में क्या यह आवश्यक न होगा और एक बुद्धिमत्ता की बात न होगी कि एक दल द्वारा शासित भविष्य के विधान-मण्डलों को अथवा अधिशासी-वर्ग को इस विधान द्वारा ही शक्तियां न प्रदान की जायें? जैसी कि कहावत है कि "शक्ति से भ्रष्टाचार होता है" और यदि इस विधान की ही धाराओं द्वारा एक-दल शासन के हाथ में अत्यन्त शक्ति दे दी गई तो उसका विधान-मण्डल अथवा अधिशासी-वर्ग भी अत्यन्त भ्रष्टाचारी हो जायेगा। इसलिये, मेरा यह प्रस्ताव है कि यदि ये सब परादिक आवश्यक हैं तो उन्हें इस प्रावधान के अधीन कर देना चाहिये कि उपखण्ड (1) में उल्लिखित स्वतंत्रताओं से असंगत कोई कानून न बनाया जायेगा और न लागू किया जायेगा। श्रीमान्, मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब हमारे सामने जो संशोधन-समूह है उसमें संशोधन संख्या 454, 455, 469, 475, 481 और 485 का प्रथम भाग है। इन सबका आशय समान है और मैं संशोधन संख्या 454 को उपस्थित करने की आज्ञा देता हूं। इस संशोधन पर भी कुछ संशोधन हैं।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव:** श्रीमान्, मैं उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 13 के (2), (3), (4) (5) और (6) खण्डों में से 'affect the operation of any existing law, or' (किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा) शब्द निकाल दिये जायें।"

इस खण्ड पर माननीय डॉ. अम्बेडकर ने एक संशोधन प्रस्तुत किया है

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं यह सुझाव कर सकता हूं कि जब आप संशोधन संख्या 454 को उपस्थित करें तो उसे अपने नये संशोधन के साथ उपस्थित करें?

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव:** मैं संशोधन संख्या 454 को उपस्थित कर चुका हूं और उस पर एक संशोधन प्रस्तुत किया गया है जो माननीय डॉ. अम्बेडकर के नाम से हैं। इस पर मैंने एक संशोधन उपस्थित किया है जो आज की सूची में संख्या 3 देकर दिखाया गया है। मैंने संशोधन संख्या 454 पर दो अन्य संशोधन भी उपस्थित किये हैं। इसलिये मैं आपकी अनुमति से उन सबको एक साथ उपस्थित करूंगा। श्रीमान्, मैं उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों पर संशोधन की सूची 1 के संशोधन संख्या 49 के सम्बन्ध में–

(1) अनुच्छेद 13 के खण्ड में जहां 'any' (कोई) शब्द दुबारा आया है उसके स्थान में 'reasonable' (न्यायोचित) शब्द रखा जाये और उक्त खण्ड में से 'Sedition' (राजद्रोह) शब्द को निकाल दिया जाये।

(2) अनुच्छेद 13 के खण्ड (3), (4), (5) और (6) में 'restrictions' (आयंत्रण) शब्द के पहले 'reasonable' (न्यायोचित) शब्द रखा जाये।"

इन संशोधनों का यह उद्देश्य है: मैं यह चाहता हूं कि 'affect the operation of any existing law, or' (किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा) शब्दों को निकाल दिया जाये और यह भी चाहता हूं कि (3), (4), (5) और (6) खण्डों में 'restrictions' (आयंत्रण) शब्द के पहले 'reasonable' (न्यायपूर्ण) शब्द रखा जाये। मैं यह भी चाहता हूं कि खण्ड (2) में जहां 'any' (कोई) शब्द दूसरी बार आया है उसके स्थान में 'reasonable' (न्यायोचित) शब्द रखा जाये।

यदि सभा ने मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तो खण्ड (3) इस प्रकार हो जायेगा:

"Nothing in sub-clause (b) of the said clause shall prevent the State from making any law, imposing in the interests of public order reasonable restrictions on the exercise of the right conferred by the said sub-clause."

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

[उक्त खण्ड के उपखण्ड (ख) की किसी बात से लोक-व्यवस्था के हित में उक्त उपखण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकार के प्रयोग पर न्यायोचित आयंत्रणों का आरोप करने वाले किसी कानून के बनाने में राज्य के लिये अवरोध न होगा।]"

जहां तक संशोधन संख्या 454 के प्रभाव का सम्बन्ध है यदि 'affect the operation of any existing law, or' (किसी वर्तमान कानून पर प्रभाव, अथवा), शब्द निकाल दिये जायें तो इसके फलस्वरूप इस समय प्रवृत्त सभी कानून समाप्त न हो जायेंगे परन्तु केवल ऐसे कानून अथवा ऐसे कानूनों के अंश समाप्त हो जायेंगे जो अनुच्छेद 13 में वर्णित मूलाधिकारों से असंगत हो और अनुच्छेद 8 प्रभाव में रहेगा।

अब मैं इनमें से एक एक संशोधन पर विचार करूंगा। पहले मैं 454वें संशोधन को उठाना चाहता हूं।

आप देखेंगे कि जहां तक अनुच्छेद 8 का सम्बन्ध है वह कानूनों के उन अंशों को छोड़ कर जो भाग 3 द्वारा प्रदत्त मूलाधिकारों से असंगत हैं, इस समय प्रवृत्त सभी कानूनों को जीवित रखता है। ये शब्द 'affect the operation of any existing law, or' (किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा)...

**उपाध्यक्ष:** आप किसी ऐसी बात पर कैसे विचार कर सकते हैं जिसे डॉ. अम्बेडकर ने उपस्थित न किया हो?

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव:** पहले तो इस सभा ने यह प्रस्ताव स्वीकार किया है कि सभी संशोधन, चाहे वे रस्मी तौर पर उपस्थित न किये गये हों, उपस्थित किये हुये समझे जायेंगे। दूसरी बात यह है कि डॉ. अम्बेडकर के संशोधन उपस्थित करने के बाद यदि आप मुझे एक बार और बोलने देंगे तो मुझे सन्तोष हो जायेगा। केवल समय की बचत के लिये मैंने यह प्रणाली अपनाई है और मैंने इसके लिये आपकी अनुमति ले ली थी यद्यपि इसकी आवश्यकता न थी।

***उपाध्यक्ष:** अच्छी बात है।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** धन्यवाद। मैं इस सम्बन्ध में बोल रहा था कि 'affect the operation of any existing law or' (किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा) शब्दों का क्या प्रभाव होगा और मैंने सभा से यह निवेदन किया था कि जहां तक अनुच्छेद 8 के शब्दों का सम्बन्ध है, यदि ये शब्द उनमें सम्मिलित न भी हों तो सभी वर्तमान कानून प्रवर्तन में रहेंगे। भाग 3 के अनुच्छेद 8 के कारण वे समाप्त न हो जायेंगे। यह अनुच्छेद इस प्रकार है:

> "इस विधान के प्रारम्भ होने से सद्य:पूर्व भारत के राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त सब कानून, उस मात्रा तक शून्य होंगे, जिस तक कि वे इस भाग के प्रावधानों से असंगत हैं।"

इसलिये वास्तव में विधान इसको प्रभाव में लाना चाहता है कि जिस सीमा तक वे कानून असंगत हैं वहां तक वे शून्य समझे जायेंगे। विशेष प्रवृत्त रहेंगे। इसलिये यदि 'affect the operation of any existing law, or' (किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा) शब्द न रहेंगे तो इससे कोई अन्तर न पड़ेगा। यदि आप उस संशोधन की परीक्षा करें जिसे डॉ. अम्बेडकर उपस्थित करने वाले हैं तो उसका भी वही प्रभाव होगा क्योंकि उनके संशोधन में "in so far as it imposes" (जहां तक वह यह आरोप करता है कि) शब्द आये हैं। इस प्रकार मेरे संशोधन के अनुसार और उनके संशोधन के अनुसार भी अनुच्छेद 13 पर अनुच्छेद 8 का प्रभाव पड़ता है। यदि सभा मेरे संशोधन संख्या 454 को स्वीकार कर लेती है तो डॉ. अम्बेडकर का संशोधन अनावश्यक हो जाता है।

***उपाध्यक्षः** मुझे यह प्रतीत होता है कि यदि डॉ. अम्बेडकर अपना संशोधन उपस्थित करें तो आपका संशोधन अनावश्यक हो जाता है।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** मेरा संशोधन फिर भी आवश्यक होगा क्योंकि उसका सम्बन्ध अन्य विषयों से भी है।

***उपाध्यक्षः** मैं इस विषय पर आपसे बहस नहीं करना चाहता।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** इस विधान में कई खण्ड ऐसे हैं जिनमें वर्तमान कानूनों को जहां तक हो सके बनाये रखने का प्रयास किया गया है। यह प्रयास सबसे पहले अनुच्छेद 8 में किया गया है। अनुच्छेद 8 के अनुसार केवल

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

असंगति की सीमा तक इन कानूनों का शून्यन हो जायेगा। इसलिये आगे अधिक प्रयास करने की आवश्यकता न थी।

अनुच्छेद 27 में फिर कुछ ऐसे कानूनों को बनाये रखने का प्रयास किया गया है जो अनुच्छेद 27 के परादिक की परिधि में आते है। इतने से संतोष न होकर विधान में एक और अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 307 रखा गया है जो इस प्रकार है:

> "इस विधान के अन्य प्रावधानों के अधीन रहते हुये इस विधान के प्रारम्भ के सद्य:पूर्व भारत के राज्यक्षेत्र में सब प्रवृत्त कनून तब तक प्रवृत्त रहेंगे जब तक कि समर्थ विधान-मण्डल या अन्य समर्थ प्राधिकारी द्वारा वे परिवर्तित, विखण्डित या संशोधित न कर दिये जायें।"

व्याख्या 1 में प्रवृत्त कानूनों की परिभाषा की गई है और खण्ड (2) में इस प्रश्न के कुछ अंगों पर विचार किया गया था। यदि ये धारायें न भी होतीं तो यह साधारण सिद्धान्त तो बना रहता कि सम्बन्धित कानून उस समय तक प्रवृत्त रहेगा जब तक कि वह किसी कानून द्वारा विखण्डित न कर दिया जाये अथवा किसी न्यायालय द्वारा गैरकानूनी न घोषित कर दिया जाये। इसलिये जहां तक वर्तमान कानून को जारी रखने का सम्बन्ध है, ये शब्द अर्थात् 'affect the operation of any existing law, or' (किसी वर्त्तमान कानून पर प्रभाव, अथवा) बेकार और अनावश्यक हैं। परन्तु यदि केवल शब्दाडम्बर की त्रुटि को ही दूर करना होता तो मैं इस संशोधन को उपस्थित न करता। इनका एक दूसरा प्रभाव भी पड़ता है और उसे मुझ से पहले बोलने वाले वक्ता महोदय जोर देकर बता चुके हैं। मेरे पास कई व्यक्तियों से और कई संस्थाओं से प्रार्थना-पत्र आये हैं और उन्होंने अपने तारों और पत्रों में यह कहा है कि ये शब्द निकाल दिये जाने चाहियें क्योंकि समझा यह जाता है कि यदि अनुच्छेद 8 विधान का अंग है तो उसी प्रकार अनुच्छेद 13 भी उसका अंग है। संख्याक्रम से अनुच्छेद 13 बाद को आता है और संख्या की दृष्टि से उसका महत्व अधिक है। यदि अनुच्छेद 8 कानून है तो अनुच्छेद 13 भी कानून है। वास्तव में अनुच्छेद 13 अनाश्रित है और यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि सभी वर्तमान कानून अनुच्छेद 8 के होते हुये भी जारी रहेंगे। लोगों को इसका भय है और इसीलिये डॉ. अम्बेडकर ने भी बाध्य होकर मेरे संशोधन संख्या 454 पर एक संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 49 उपस्थित किया है।

यह निर्वाचन और यह तर्क गलत हो सकता है। यह भले ही न्यायसंगत न हो, परन्तु यह उपस्थित तो किया ही जा सकता है। मेरे विचार से कानून को सरल होना चाहिये और उसे अस्पष्ट अथवा अगम्य न होना चाहिये। इसलिये इन दुष्टतापूर्ण और भ्रमपूर्ण शब्दों को निकाल दिया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त चूंकि इन शब्दों से लोग भ्रम में पड़ सकते हैं, मेरे विचार से जब तक इनको निकाला न जायेगा लोगों का भय दूर नहीं हो सकता है।

जब मैं 9 से 13 तक के और 26 तक के अनुच्छेदों को पढ़ता हूं और इन मूलाधिकारों को भी पढ़ता हूं, तो सच्ची बात यह है कि इनमें मैं एक ऐसे मूलाधिकार का अर्थात् मतदान के अधिकार का अभाव पाता हूं जो वास्तव में किसी भी देश के निवासी को प्राप्त होना चाहिये।

***उपाध्यक्षः** इस समय इस विषय पर विचार नहीं हो रहा है।

**पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** अनुच्छेद 15 पर भी विचार करते समय सभा इस निर्णय पर पहुंचेगी कि मूलाधिकारों में सबसे महत्वपूर्ण अधिकार को अर्थात् वैयक्तिक स्वातंत्र्य और जीवन के अधिकार को न्याय्य नहीं बनाया गया है और न उसका अनुच्छेद 13 में उल्लेख ही है। यदि इस सभा को देश की वर्तमान स्थिति का ध्यान है तो वह इस निर्णय पर पहुंचेगी कि चाहे इसे और जो कुछ कहा जाये परन्तु संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। भाषण और अभिव्यक्ति का स्वातंत्र्य उपखण्ड (2) से आयंत्रित कर दिया गया है। सौभाग्य से माननीय श्री मुन्शी ने आपसे कहा है कि 'राजद्रोह' शब्द निकाल दिया जाये। यदि इन शब्दों को अर्थात् 'affect the operation of any existing law, or' (किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा) को न निकाला गया तो इसका यह प्रभाव होगा कि राजद्रोह का वही अर्थ लगाया जायेगा जो अभी तक लगाया जाता रहा है, यद्यपि प्रिवी कौंसिल ने सन् 1945 ई. में इसके विरुद्ध निर्णय किया है। यदि वर्तमान कानून को अनुच्छेद 8 द्वारा अनियंत्रित तथा अशासित रूप में प्रवर्तन में रखा जायेगा तो स्थिति असह्य हो जायेगी और उसका निराकरण भी न हो सकेगा। इसलिये मेरा निवेदन यह है कि भाषण और अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में यदि आप वर्तमान कानूनों को, बिना उनकी किसी न्यायालय में जांच कराये हुये, जारी रखेंगे तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जायेगी जिसे भारत के नागरिक संतोषजनक न समझेंगे।

[पण्डित ठाकुरदास भार्गव]

इसी प्रकार इस समय आपको शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार प्राप्त है परन्तु सन् 1947 ई. में एक ऐसा कानून बनाया गया है जिसके अनुसार शांतिपूर्ण सम्मेलनों पर भी बिना चेतावनी दिये हुये आकाश से बम-वर्षो की जा सकती है। इस समय कई ऐसे प्रावधान प्रयुक्त हैं जो शांतिपूर्ण सम्मेलन के भी विरुद्ध हैं। यही बात सम्मेलनों और संघों पर निषेध के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** क्या मेरे माननीय मित्र को इसकी छूट है कि वे खण्डों पर सामान्य रूप से बोलें?

***उपाध्यक्ष:** मैं उनका ध्यान इसी ओर आकर्षित करने का प्रयास कर रहा हूं।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** मुझे यह कहना ही पड़ेगा कि यह इस सभा की कार्यप्रणाली का निरादर करना है। यदि कोई सदस्य किसी संशोधन पर बोलें तो उन्हें अपने को उसी संशोधन तक सीमित रखना चाहिये। इस अवसर से लाभ उठा कर उन्हें सभी प्रकार की बातें न कहना चाहिये।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव:** मैं संशोधन पर ही बोल रहा हूं परन्तु जिस प्रकार डॉ. अम्बेडकर बोलते हैं और अपने को व्यक्त करते हैं वह बहुत ही आपत्तिजनक है। वे खड़े होकर क्यों धमकी देकर या बढ़-चढ़ कर बोलते हैं?

***उपाध्यक्ष:** यह दिखाई देता है कि हर कोई आपे से बाहर हो गया है। केवल अध्यक्ष ही आपे में है। (*हंसी*) मैंने अभी श्री भार्गव को चेतावनी दी थी और जब डॉ. अम्बेडकर खड़े हुये तो उन्हें भी आगाह करने जा रहा था। मुझे इसका पूर्ण विश्वास है कि वे अपनी भावना में बह गये। मैं समझ नहीं पाता कि इतनी उत्तेजना क्यों उत्पन्न हो। वे कई दिनों से लगातार अत्यधिक काम करते रहे हैं। मैं उनकी स्थिति को समझता हूं और मैं आशा करता हूं कि सभा इस मामले को यहीं समाप्त कर देगी।

मुझे आशा है कि श्री भार्गव अब स्थिति को समझ गये हैं।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** मैं केवल संशोधन पर ही बोलूंगा। परन्तु जिस समय कोई सदस्य किसी संशोधन पर बोल रहा हो उस समय सदस्यों को यह निर्णय करने का अधिकार नहीं है कि क्या प्रासंगिक है और क्या अप्रासंगिक है।

***उपाध्यक्षः** मैं यही कहने जा रहा था, परन्तु बीच में विघ्न डाल दिया गया।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान् मैं फिर यह कहूंगा कि जब तक ये आपत्तिजनक शब्द न निकाले जायेंगे और जब तक वर्तमान कानून को बिना उसकी किसी न्यायालय में जांच कराये हुये जारी रखा जायेगा तब तक देश की स्थिति बहुत ही असंतोषजनक रहेगी। मैं वर्तमान कानून की ओर यह बताने के लिये संकेत कर रहा हूं कि वह आपत्तिजनक है और यदि उसका कानून के समान ही प्रभाव रहा तो मूलाधिकारों को प्रदान करने से कोई लाभ न होगा। इसलिये मुझे मूलाधिकारों के सम्बन्ध में बोलने का अधिकार है। यदि आपकी आज्ञा न होगी तो मैं न बोलूंगा; परन्तु मेरी यह धारणा है कि मैंने जो कुछ कहा है और जो कुछ कह रहा हूं वह बिल्कुल प्रासंगिक है। (**माननीय सदस्यः** 'बोलिये'।) श्रीमान्, यदि मैं देश की स्थिति की ओर और इस ओर संकेत न करूं कि इस कानून से देश की तनातनी की वर्तमान स्थिति नहीं सुलझती है, तो मैं पूछता हूं कि मूलाधिकारों से ही क्या लाभ है?

***उपाध्यक्षः** केवल इसे स्मरण रखिये कि आप इस ओर साधारणतया संकेत कर सकते हैं और इसे अपने इस समय के भाषण का आधार नहीं बना सकते हैं। आप अपने तर्क को सिद्ध करने के लिये इन सब बातों को अपना साधन बना सकते हैं। परन्तु साथ ही इसका ध्यान रखें कि आवश्यक समय से अधिक समय न लें।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** मैं इसका अनुभव करता हूं कि व्यर्थ ही सभा का समय नष्ट करना पाप है। मैं यथासम्भव संयम से बोल रहा हूं। आपने जो सलाह दी है उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं। यदि आप पसंद न करें तो मैं वर्तमान स्थिति की ओर भी संकेत न करूंगा।

परन्तु कुछ दिन पूर्व माननीय सरदार पटेल ने अपने एक दीक्षान्त भाषण में सारे देश से यह कहा कि खेत के मजदूर को और एक साधारण व्यक्ति को

[पण्डित ठाकुरदास भार्गव]

भारतीय स्वतंत्रता की सुखानुभूति प्राप्त नहीं हुई है। यद्यपि भारत स्वतंत्र है परन्तु यह सुखानुभूति आज किसी को प्राप्त नहीं है। यह क्यों? यदि मूलाधिकार प्रावहित हैं और लोगों को वे प्राप्त हैं तो उन्हें स्वतंत्रता की यह सुखानुभूति क्यों नहीं प्राप्त है? इसका कारण यह है कि वर्तमान कानूनों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 8 में जो कुछ दिया गया है उसका इन आपत्तिजनक शब्दों द्वारा अपहरण हो गया है और इसलिये लोग हमारी बातों को कोई महत्व नहीं देते। जनसाधारण के नैराश्य का यही कारण है। इस विषय के सम्बन्ध में वर्तमान स्थिति की ओर संकेत करके मैं केवल इस पर जोर देना चाहता था कि वर्तमान स्थिति अत्यंत असंतोषप्रद है। मैं इस सम्बन्ध में केवल इतना ही कहूंगा।

'न्यायोचित' शब्द जोड़ने के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किया गया है, उसके सम्बन्ध में मैं सभा से यह प्रार्थना करता हूं कि उस पर शांतिपूर्वक तथा उत्तेजनारहित होकर विचार किया जाये। हमने सरदार हुकुमसिंह और मि. महबूबअली बेग के भाषण सुने हैं। उन दोनों ने यह प्रश्न किया है कि यदि विधान-मण्डल को मूलाधिकारों के सारभूत तत्वों को ही आयंत्रित करने का अधिकार प्राप्त हुआ तो मूलाधिकारों की ही क्या गति होगी? यह सत्य है। क्या इस देश के लोगों तथा इसके निवासियों का भाग्य-विधाता अधिशासी-वर्ग होगा अथवा विधान-मण्डल अथवा न्यायालय? यही सब प्रश्नों का मूल प्रश्न है। यह प्रश्न उठाया गया है कि यदि विधान-मण्डल किसी अधिनियम का निर्माण करे तो क्या वह अन्तिम समझा जायेगा? यदि आप (3) से (6) तक के खण्डों पर विचार करें तो आप इस निर्णय पर पहुंचेंगे कि यदि किसी कानून के उद्देश्य और कारण सम्बन्धी विवरण में यह कहा गया हो कि उसका उद्देश्य लोक-हितसाधन तथा लोक-व्यवस्था की रक्षा करना है तो आयंत्रणों के सम्बन्ध में न्यायालय इस देश के निवासियों की किसी प्रकार भी सहायता न कर सकेंगे। इसी प्रकार यदि किसी कानून की किन्हीं धाराओं के प्रवर्त्तन-खण्ड में अधिनियम में ही इस प्रकार के शब्द रख दिये गये तो कौन-सा न्यायालय यह कह सकेगा कि वास्तव में विधान-मण्डल को इस कानून को बनाने का अधिकार नहीं था। मेरा यह निवेदन है कि सर्वोच्च न्यायालय को ही अन्तिम निर्णायक होना चाहिये और उसी को हमारे देश के निवासियों के भाग्यों का अन्तिम रूप से फैसला करने का अधिकार होना चाहिये। इसलिये यदि आप इस स्थान पर 'न्यायोचित' शब्द रख दें तो प्रश्न हल हो जाता है और सभी संदेह दूर हो जाते हैं।

श्रीमान्, एक वक्ता महोदय ने यह पूछा था कि इस निर्जीव अनुच्छेद 13 में प्राण ही कहां है? मैं इसमें प्राण फूंक रहा हूं। यदि आप उसमें 'न्यायोचित' शब्द को रख दें तो 'न्यायालय को इस पर विचार करना होगा कि विचाराधीन अधिनियम लोक-हित का साधन करता है अथवा नहीं और इस पर भी विचार करना होगा कि विधान-मण्डल ने जो आयंत्रण रखे हैं वे उस समय की स्थिति में उचित, न्यायोचित और आवश्यक हैं अथवा नहीं। न्यायालयों को इस प्रश्न पर विचार करना होगा और विधान-मण्डल अथवा अधिशासी-वर्ग लोगों के मूलाधिकारों से खिलवाड़ न कर सकेंगे। न्यायालय ही अन्तिम रूप से इसका निर्णय करेंगे। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि हमें इन शब्दों में से अर्थात् 'न्यायोचित' 'उचित' अथवा 'आवश्यक' में से किसी शब्द को, जिसे यह सभा उचित समझे, प्रविष्ट करना चाहिये। मेरी यह धारणा है कि डॉ. अम्बेडकर 'न्यायोचित' शब्द के पक्ष में हैं। इसीलिये न्यायोचित पक्ष ग्रहण करने के लिये मैंने 'न्यायोचित' शब्द रखा है। अन्यथा यदि 'आवश्यक' अथवा 'उचित' शब्दों के समान कोई शब्द स्वीकार किये गये होते तो इनसे देश की स्वतंत्रता का किसी अंश में अपहरण न होता बल्कि उसमें वृद्धि ही होती। इसलिये मैं आदरपूर्वक यह प्रार्थना करता हूं कि जो संशोधन मैंने उपस्थित किया है उसे स्वीकार कर लिया जाये ताकि अनुच्छेद 13 न्याय्य हो सके। अन्यथा अनुच्छेद 13 निरर्थक हैं। वह इस समय पूर्ण रूप से न्याय्य नहीं है। इसलिये न्यायालयों को यह कहने का अधिकार न होगा कि आयंत्रण आवश्यक अथवा न्यायोचित हैं या नहीं। यदि न्यायालयों के सम्मुख कोई मुकदमें उपस्थित किये गये तो उन्हें केवल इसका निर्णय करना होगा कि आयंत्रण लोगों का हितसाधन करते हैं अथवा नहीं, परन्तु यह कानून के शब्दों द्वारा ही निश्चित रूप से स्पष्ट होगा। इसलिये न्यायालय इस सम्बन्ध में कुछ न कह सकेंगे कि किसी मूलाधिकार का खण्डन हुआ है अथवा नहीं। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि यदि आप 'न्यायोचित' शब्द का प्रविष्ट कर देंगे तो आप न्यायालयों को यह कहने का अन्तिम अधिकार दे देंगे कि जो आयंत्रण रखे गये हैं वे न्यायोचित, न्यायोचित रूप से आवश्यक हैं अथवा नहीं। इन शब्दों के साथ मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधन संख्या 454 के सम्बन्ध में..."

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। क्या 454वां संशोधन उपस्थित किया जा चुका है?

***उपाध्यक्षः** आप कृपा करके बोलिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** "संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 454 के सम्बन्ध में–

(1) अनुच्छेद 13 के खण्ड (3), (4), (5) और (6) में 'any existing law' (कोई वर्तमान कानून) शब्दों के बाद 'in so far as it imposes, (जहां तक वह यह आरोपित करता है) शब्द प्रविष्ट किये जायें, और

(2) अनुच्छेद 13 के खण्ड 6 में 'in particular' (विशेषतया) शब्दों के बाद 'nothing in the said clause shall affect the operation of any existing law in so far as it prescribes or empowers any authority to prescribe, or prevent the State from making any law' (उक्त खण्ड की किसी बात से किसी वर्तमान कानून पर, जहां तक वह यह निर्धारित करता है अथवा किसी प्राधिकारी को यह निर्धारित करने की शक्ति देता है अथवा राज्य को किसी कानून को बनाने से रोकता है, प्रभाव नहीं पड़ेगा) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

***सय्यद अब्दुर रऊफ** (आसाम : मुस्लिम): श्रीमान्, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। मेरे विचार से डॉ. अम्बेडकर के संशोधन को संशोधन संख्या 454 पर संशोधन नहीं कहा जा सकता। संशोधन संख्या 454 का उद्देश्य यह है कि (2), (3), (4), (5) और (6) खण्ड निकाल दिये जायें, परन्तु डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का उद्देश्य उन खण्डों में कुछ शब्दों को प्रविष्ट करना है। इसलिये उसे संशोधन पर संशोधन के रूप में नहीं उपस्थित किया जा सकता।

***उपाध्यक्षः** मुझे यह प्रतीत होता है कि डॉ. अम्बेडकर मूल खण्डों को तो बनाये रखना चाहते हैं, परन्तु उनमें कुछ बातें जोड़ देना चाहते हैं। इसलिये मेरा निर्णय है कि औचित्य-दृष्टि से उनका संशोधन ठीक है।

***श्री एच.वी. कामतः** इससे मूल संशोधन का ही शून्यन हो जायेगा।

***उपाध्यक्षः** कृपया आप अपनी जगह पर बैठ जाइये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अनुच्छेद 13 और अनुच्छेद 8 पर तथा अनुच्छेद 13 के कुछ परादिकों में आये हुये 'वर्तमान कानून' शब्दों पर जो भाषण दिये गये हैं उनको सुन कर मुझे यह प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध में बहुत भ्रम

है कि वर्तमान कानून के बारे में क्या किया जायेगा। मूल अनुच्छेद वास्तव में अनुच्छेद 8 है और उसमें स्पष्ट तथा निर्विवाद रूप से यह कहा गया है कि विधान के इस भाग में उल्लिखित मूलाधिकारों के विरोध में जो कोई भी वर्तमान विधि होगी उसका शून्यन हो जायेगा। यह एक आधारभूत बात है और मुझे इस सम्बन्ध में तनिक भी सन्देह नहीं है कि यदि किसी निपुण वकील से अनुच्छेद 13 में आये हुये 'वर्तमान कानून' शब्दों का निर्वचन करने को कहा जायेगा तो वह यही कहेगा कि 'वर्तमान कानून' का अर्थ उस वर्तमान कानून से है जो मूलाधिकारों के विरुद्ध न हो। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि इन उपखण्डों में आये हुये 'वर्तमान कानून' शब्दों का यही अर्थ लगाया जायेगा। यह आवश्यक नहीं है कि जब कभी 'वर्त्तमान कानून' शब्द आयें तो अनुच्छेद 8 के प्रावधान को दुहराया जाय क्योंकि यह निर्वचन का नियम है कि कानून के निर्वचन के लिये तत्सम्बन्धी सभी धाराओं पर विचार किया जाये और उनका ऐसा अर्थ लगाया जाये कि एक धारा से दूसरी धारा का खण्डन न हो। इसलिये मसौदा-समिति न यह अनुभव किया कि उसने अनुच्छेद 8 में यह पूर्णतया प्रावहित कर दिया है कि कोई भी वर्तमान कानून, जहां तक वह मूलाधिकारों के विरुद्ध हो, समाप्त हो जायेगा। मसौदा-समिति ने यह आवश्यक नहीं समझा कि विभिन्न खण्डों में जहां कहीं 'वर्तमान कानून' शब्द आयें उनके आगे कोई विशेषण रखा जाये। मैं यह देखता हूं कि बहुत से लोग इस खण्ड को इस प्रकार नहीं पढ़ पाये हैं। 'वर्तमान कानून' शब्दों को पढ़ते समय वे यह भूल गये हैं कि अनुच्छेद 8 में क्या प्रावहित है। मैंने उपखण्ड (3), (4), (5) और (6) पर इसीलिये एक संशोधन उपस्थित किया है कि साधारण व्यक्ति को किसी प्रकार का भ्रम न हो। मैं इसे स्पष्ट करने के लिये अपने संशोधन के साथ उपखण्ड (3) को पढ़ूंगा:

"Nothing in sub-clause (b) of the said clause shall affect the operation of any existing law in so far as it imposes, or prevent the State from making any law, imposing in the interests of public order reasonable restrictions on the exercise of the right conferred by the said sub-clause."

[उक्त खण्ड के उपखण्ड (ख) की किसी बात से लोक-व्यवस्था के हित में उक्त उपखण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रयोग पर न्यायोचित आयंत्रण आरोप करने वाली किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर, जहां तक वह इन्हें आरोपित करे, प्रभाव अथवा किसी कानून के बनाने में राज्य के लिये अवरोध न होगा।]

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

मैंने श्री भार्गव का संशोधन स्वीकार कर लिया है और इसलिये 'न्यायोचित' शब्द जोड़ दिया है।

मेरे विचार से अब 'in so far as it imposes' (जहां तक वह इन्हें आरोपित करे), शब्दों को जोड़ने से विचारपूर्ण हो जाता है और इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रह जाता है कि वर्तमान कानून को केवल उस सीमा तक परित्राण मिल जाता है जहां तक वह न्यायोचित आयंत्रणों को आरोपित करता है। मेरे विचार से इस संशोधन को स्थान देने के बाद अब यह समझने में कोई कठिनाई न होगी कि वर्तमान कानून का केवल सीमित रूप से परित्राण किया गया है। उसका तभी परित्राण हो सकेगा जब वह मूलाधिकारों के विरोध में न हो।

उपखण्ड (6) की शब्दावली भिन्न है क्योंकि उसका आशय उपखण्ड (3), (4) और (5) से भिन्न है। माननीय सदस्य उसे स्वयं पढ़ कर समझ लेंगे कि उसका अर्थ क्या है।

मेरे मित्र पण्डित ठाकुरदास भार्गव ने मसौदा-समिति की बहुत बड़ी आलोचना की और उसे इसके लिये दोषी ठहराया कि वह वर्तमान कानूनों की रक्षा करने में बहुत आगे बढ़ गई है। मेरी समझ में नहीं आता कि वे मसौदा-समिति से क्या चाहते हैं। क्या वे यह चाहते हैं कि हम सीधे-सीधे यह कह दें कि जिस दिन से विधान अस्तित्व में आयेगा, सभी वर्तमान कानून समाप्त हो जायेंगे?

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** जी नहीं, बिल्कुल यही नहीं चाहता।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** हमने यह कहा है कि जहां तक वर्तमान कानून विधान के प्रावधानों से असंगत होंगे उनका खण्डन हो जायेगा। निस्सन्देह इस देश का शासन इस पर निर्भर है कि इस समय प्रवृत्त कानून बने रहें। यदि वर्तमान कानूनों को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाये तो सारा शासन छिन्न-भिन्न हो जायेगा।

अब मैं अनुच्छेद 307 को उठाता हूं। उन्होंने यह कहा कि हमने ऐसे प्रावधान रखे हैं जिनके अनुसार जब तक वर्तमान कानूनों में संशोधन न हो वे प्रवर्तन में रहेंगे। मेरे विचार से जो व्यक्ति कानून को जानता है उसे यह समझना चाहिये कि जब विधान अस्तित्व में आ जायेगा, इस देश में कानून बनाने का एकाधिकार

संसद् को अथवा अपने क्षेत्रों के सम्बन्ध में स्थानीय विधान-मण्डल को प्राप्त होगा। यह स्पष्ट है कि यदि आप यह कह देते हैं कि जब तक संसद् कोई कानून न बनाये अब कोई कानून प्रवर्तन में न रहेगा और न उसका कोई प्रभाव होगा तथा न वह अधिकृत ही समझा जायेगा, तो क्या स्थिति होगी? स्थिति यह होगी कि पहले के विधान-मण्डलों ने, केन्द्रीय विधान-सभा ने अथवा प्रान्तीय विधान-सभाओं ने जो भी कानून बनाये हैं उनके टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे क्योंकि संसद् अथवा स्थानीय विधान-मण्डलों द्वारा, जिनको ही इस विधान के अधीन कानून बनाने का अधिकार है, न निर्मित होने के कारण वे अधिकृत न समझे जायेंगे। इसलिये यह आवश्यक है कि विधान में इस आशय का एक प्रावधान होना चाहिये कि जो कोई कानून बन गये हैं वे केवल इस कारण समाप्त न हो जाने चाहिये कि संसद् ने उन्हें नहीं बनाया है। इसी कारण अनुच्छेद 307 को इस विधान में प्रविष्ट किया गया है। इसलिये, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि मेरा संशोधन, जो वर्तमान कानून के उस अंश पर जोर देता है जो मूलाधिकारों के होते हुये भी प्रवर्तन में रहेगा, उस कठिनाई को दूर कर देगा जिसे कई सदस्यों ने इस कारण अनुभव किया है कि उन्हें अनुच्छेद 13 को अनुच्छेद 8 के साथ पढ़ना कठिन प्रतीत हुआ है। इसलिये मेरे विचार से मेरे इस संशोधन से स्थिति स्पष्ट हो जाती है और मुझे आशा है कि इसे स्वीकार करने में सभा को कोई कठिनाई न होगी।

(संशोधन संख्या 454 पर संशोधन संख्या 50 उपस्थित नहीं किया गया।)

(संशोधन संख्या 455, 469, 475 और 481 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** तब हम संशोधन संख्या 485 के पहले भाग को उठायेंगे। सभा इसे समझ सकती है कि विभिन्न संशोधनों पर मत लेने में जो समय लगता है उसे कम करने में मुझे बड़ी कठिनाई हो रही है।

***सय्यद अब्दुर रऊफ:** मैं यह चाहता हूं कि संशोधन के पहले भाग पर मत ले लिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** तब हम दूसरे संशोधन-समूह अर्थात् 456, 472, 484 और 495वें संशोधनों को उठाते हैं।

(संशोधन संख्या 456, 472, 484 और 495 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** दूसरे समूह में संशोधन संख्या 457, 466, 473 और 494 आते हैं।

(संशोधन संख्या 457, 466, 473 और 494 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** अब हम संशोधन संख्या 458 पर आते है, जो मि. मोहम्मद ताहिर और सय्यद जाफर इमाम के नाम से है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** यह मि. महबूबअली बेग के उपस्थित किये हुये संशोधन में आ जाता है।

***उपाध्यक्षः** फिर भी यह प्रस्तावक की इच्छा पर निर्भर है।

***मि. मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 13 के खण्ड (2) में 'sedition' (राजद्रोह) शब्द के बाद 'communal passion' (साम्प्रदायिक उत्तेजना) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, हम यह देखते हैं कि इस खण्ड के अधीन हम राज्य को अपमान-लेख; अपमान-वचन, मानहानि, राजद्रोह और राज्य के विरुद्ध इसी प्रकार के अपराधों के सम्बन्ध में कुछ शक्तियां दे रहे हैं। मैं यह चाहता हूं कि 'राजद्रोह' शब्द के साथ ये शब्द अर्थात् 'साम्प्रदायिक उत्तेजना', भी जोड़ दिये जायें जिनका अर्थ किसी सम्प्रदाय को दूसरे सम्प्रदाय के विरुद्ध उभाड़ना, उत्तेजित करना है।

श्रीमान्, ये शब्द अर्थात् अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, राजद्रोह, भारतीय दण्ड-संहिता में सामान्य रूप से पाये जाते हैं परन्तु सौभाग्य से अथवा दुर्भाग्य से इस संशोधन के शब्द उसमें नहीं आये हैं। इसका कारण सामान्य है। भारतीय दण्ड-संहिता और पुराने कानून एक ऐसी सरकार ने बनाये जो हमारे लिये विदेशी थी। अब वह समय आ गया है जब हमें अपने गुणों को तथा अपने दोषों को समझना चाहिये। हमें यह विदित है कि कुछ सम्प्रदायों के अन्य सम्प्रदायों के विरुद्ध आन्दोलन करने और उत्तेजना फैलाने से सारे देश को बहुत हानि हुई है। इसलिये, श्रीमान्, मेरा यह विचार है कि इन शब्दों को स्थान देना आवश्यक है। वास्तव में, मैं यह कहूंगा कि यदि अपने देश में, जो अब एक स्वतंत्र देश है,

आपस में सच्चा व्यवहार करना चाहें तो इन शब्दों को विधान में स्थान दिया जाना चाहिये। मैं डॉ. अम्बेडकर से तथा इस सभा से यह प्रार्थना करता हूं और यह अपील करता हूं कि वे तर्कपूर्ण और विचारपूर्ण होकर इन शब्दों को प्रविष्ट कर लें।

अन्त में, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि श्री मुन्शी ने एक संशोधन उपस्थित किया है, परन्तु मैं कह नहीं सकता कि वह स्वीकार होगा अथवा नहीं। यदि यह सभा उस संशोधन को स्वीकार करे तो मेरा यह अनुरोध है कि उस संशोधन में, अथवा जहां कहीं उचित समझा जाये, इन शब्दों को भी प्रविष्ट किया जाये। इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्षः** अब हम संशोधन संख्या 459 पर आते हैं। यह मि. टामस के नाम से है। यह एक शाब्दिक संशोधन है और इसलिये इसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती।

अब हम 460 और 461वें संशोधनों तथा संशोधन संख्या 462 के दूसरे भाग को उठाते हैं। मैं संशोधन संख्या 461 के उपस्थित किये जाने की आज्ञा देता हूं क्योंकि यह तीनों संशोधनों में सब से अधिक विस्तृत है। यह श्री मुन्शी के संशोधन में आ जाता है। क्या 460वां संशोधन उपस्थित किया जा रहा है?

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** मैं उसे नहीं उपस्थित करना चाहता।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 462 । श्री कामत!

***श्री एच.वी. कामतः** यह संशोधन संख्या 461 में आ जाता है।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 462, पहला भाग। मैंने अभी दूसरे भाग को उठाया था। पहला भाग बहुत कुछ शाब्दिक संशोधन है और इसलिये उसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती।

संशोधन संख्या 463 और 464 दो भिन्न व्यक्तियों द्वारा उपस्थित किये गये हैं, परन्तु उनका आशय समान है। संशोधन संख्या 464, जो श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी के नाम से है, उपस्थित किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 464 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर के संशोधन संख्या 463 का क्या होगा?

***ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर:** श्रीमान्, मैं उसे नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** तब हम संशोधन संख्या 467 और 474 को उठाते हैं। संशोधन संख्या 467 उपस्थित किया जा सकता है। वह श्री श्यामानन्दन सहाय के नाम से है।

***श्री श्यामानन्दन सहाय** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (3) में 'restrictions' (आयंत्रण) शब्द के बाद (हिन्दी में पहले) 'for a defined period' (निश्चित समय तक) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, सभा के सम्मुख इस संशोधन को उपस्थित करते हुये मेरे मस्तिष्क में सर्वोपरि यह बात है कि इन तीन स्वतंत्रताओं के सम्बन्ध में अर्थात् भाषण-स्वातंत्र्य, सम्मेलन-स्वातंत्र्य और पर्यटन-स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में, जिनके बारे में इतनी बातें कही जाती हैं, क्या हमने वह सब कर दिया है जिसकी हमसे प्रत्येक व्यक्ति को आशा थी? इस सभा में ही नहीं बल्कि इसके बाहर भी सभी लोगों की जो इच्छा है उसे दृष्टि में रखते हुये मैं यह स्वीकार करता हूं कि मुझे इन खण्डों की शब्दावली पसंद नहीं आई। श्रीमान् मैं अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) की शब्दावली की ओर संकेत करूंगा। इस उपखण्ड में यह कहा गया है कि सभी नागरिकों को शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार होगा। यह एक मूलाधिकार है जिसे हम लोगों को इस विधान द्वारा प्रदान कर रहे हैं। हमें यह देखना चाहिये कि अनुच्छेद 13 के खण्ड (3) के प्रकाश, में, जो एक आयंत्रण खण्ड है, यह कैसा प्रतीत होता है। खण्ड (3) में कहा गया है कि उक्त खण्ड के उपखण्ड (ख) की किसी बात से लोक-व्यवस्था के हित में उक्त उपखण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रयोग पर आयंत्रण आरोप करने वाले किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा किसी कानून के बनाने में राज्य के लिये अवरोध न होगा। श्रीमान्, हम उपखण्ड (ख) द्वारा केवल शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार दे रहे हैं। यह सम्मेलन का अधिकार सभी दशाओं में सम्मेलन का अधिकार नहीं हैं। पहला प्रतिबन्ध तो यह है कि शान्तिपूर्वक सम्मेलन हो और इसके अतिरिक्त एक दूसरा प्रतिबन्ध भी है। वह प्रतिबन्ध यह है कि सम्मेलन निरायुध होना चाहिये। इन प्रतिबन्धों के ऊपर उपखण्ड (3) में यह कह रहे हैं कि राज्य को एक और आयंत्रण-शक्ति प्राप्त होगी। इसके स्थान में तो मैं यह चाहता कि खण्ड (3) और (4) विधान के अंग

ही न होते। परन्तु यदि मसौदा-समिति की और अन्य लोगों की, जिन्होंने इस विषय पर सावधानी से विचार किया है, यह धारणा है कि शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन के सम्बन्ध में भी आयंत्रण आवश्यक है तो मैं आदरपूर्वक यह निवेदन करता हूं कि इस शक्ति को यह कहकर और भी आयंत्रित करना आवश्यक है कि इस शक्ति को आयंत्रित करने के लिये जो कोई भी कानून बनाया जाये वह निश्चित समय ही के लिये हो। मेरे विचार से यह सभा इससे सहमत न होगी कि किसी राज्य को कानूनों की किताब में किसी ऐसे स्थायी कानून को स्थान देना चाहिये जिससे शान्तिपूर्वक सम्मेलन का मूलाधिकार आयंत्रित हो जाता हो।

विधान में किसी विशेष सरकार के लिये किसी विशेष समय में और किसी विशेष परिस्थिति में केवल यह किया जा सकता है कि उसे इन दशाओं में इस अधिकार को आयंत्रित करने की शक्ति दी जा सकती है, परन्तु वह किसी निश्चित समय ही के लिये दी जा सकती है और, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि मेरे संशोधन का यही उद्देश्य है। इस खण्ड के सम्बन्ध में सबसे अच्छी व्याख्या यही की जा सकती है कि मसौदा-समिति ने इस विषय में अत्यधिक सावधानी दिखा कर गलती की है और इसलिये उसने सम्भवत: सरकार को बहुत कुछ प्रदान किया है और नागरिकों को बहुत कम प्रदान किया है। इस दृष्टि से, मेरा निवेदन है कि दोनों उपखण्डों में अर्थात् उपखण्ड (3) और (4) में 'निश्चित समय तक' शब्द रखे जायें ताकि यदि किसी समय किसी राज्य को इन अधिकारों को आयंत्रित करने के लिये कोई कानून बनाना पड़े तो वह उसे निश्चित समय तक ही प्रवर्तन में रखे। इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि कोई राज्य इस प्रकार का कानून बना ले, तो यदि आवश्यक हो तो वह दुबारा ऐसा कानून बना ही नहीं सकता। परन्तु साथ ही हमें विधान में यह प्रावहित कर देना चाहिये कि हम किसी ऐसे आयंत्रक कानून को इस देश का स्थायी कानून होने की आज्ञा नहीं दे सकते। किसी राज्य को ऐसा कानून बनाने की शक्ति नहीं प्राप्त होनी चाहिये जिससे शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार स्थायी रुप से आयंत्रित हो जाये। मेरे विचार से किसी भी राज्य को, चाहे वह कितना ही लोकप्रिय और जनतंत्रात्मक क्यों न हो, इस प्रकार की व्यापक शक्ति प्रदान करना उचित न होगा। देश के उच्च हितों को ध्यान में रखते हुये, विशेषतया जब उसका यह निर्माण-काल है, राज्य को ऐसे मूलाधिकारों के सम्बन्ध में जैसे भाषण-स्वातंत्र्य, सम्मेलन-स्वातंत्र्य और पर्यटन-स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में इतनी विस्तृत शक्तियां दे देने से, मुझे विश्वास है, हानि ही होगी और इसका फल यह होगा कि किसी

[श्री श्यामानन्दन सहाय]

स्वतंत्र देश के स्वच्छंद वातावरण के स्थान में यहां प्राण-अवरोधक तथा प्राण-शोषक वातावरण उत्पन्न हो जायेगा। श्रीमान्, मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं और सभा से यह सिफारिश करता हूं कि यह स्वीकार कर लिया जाये।

(संशोधन संख्या 470 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 471 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती क्योंकि वह शाब्दिक है। संशोधन संख्या 476 और 477 का आशय समान है। मैं 476वें संशोधन के उपस्थित किये जाने की आज्ञा देता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं किः

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (4) में 'the general public' (जन-सामान्य) शब्दों के स्थान में 'public order or morality' (लोक-व्यवस्था अथवा शील) शब्द रखे जायें।"

उस खण्ड में ये शब्द अनुपयुक्त हैं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 477 भी इसी के समान है। संशोधन संख्या 479, 480 और 486 का आशय समान है।

(संशोधन संख्या 479, 480 और 486 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 482 और 483 ।

(संशोधन संख्या 482 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** 483—सरदार हुकुमसिंह!

***सरदार हुकुम सिंहः** श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं किः

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में 'existing law' (वर्तमान कानून) शब्दों के बाद 'which is not repugnant to the spirit of the provisions of article 8' (जो अनुच्छेद 8 के प्रावधानों की भावना के विरोध में न हो) शब्द रखे जायें।"

माननीय डॉ. अम्बेडकर ने हमारी शंकाओं को ठीक ही समझा है। हमारी यह धारणा है कि जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं। उनमें से अधिकांश का उद्देश्य यही है। निस्संदेह हमें यह शंका है कि यदि इन अनुच्छेदों को, अर्थात् अनुच्छेद 8 और 13 को, अलग-अलग रखा जाये तो इनके विभिन्न अर्थ लगाये जा सकते हैं। डॉ. अम्बेडकर ने इस पर जोर दिया है कि यदि विधान के कोई विशेष अनुच्छेदों के बारे में किसी न्यायालय को किसी विषय के सम्बन्ध में अर्थ लगाना हो तो तत्सम्बन्धी सभी अनुच्छेदों पर विचार किया जायेगा। इस प्रकार अनुच्छेद 8 के प्रावधान सब पर लागू होंगे क्योंकि उसमें कहा गया है कि—"इस विधान के प्रारम्भ होने के सद्य:पूर्व भारत के राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त सब कानून, उस सीमा तक शून्य होंगे जिस तक कि वे इस भाग के प्रावधानों से असंगत हैं"। हमने इसे स्वीकार कर लिया है और हमारी यह धारणा है कि इसे स्पष्ट कर देना चाहिये कि जो भाग असंगत हैं वे असंगति की सीमा तक शून्य हो जायेंगे। यदि, जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने बताया है, यही उद्देश्य है तो इसे इस खण्ड में भी क्यों स्पष्ट नहीं कर दिया जाता। इसमें हानि ही क्या है? मेरी समझ में नहीं आता कि यदि हम इसे स्पष्ट कर दें कि ये प्रावधान अनुच्छेद 8 के अधीन हैं तो इससे क्या हानि होगी और किस प्रकार शब्दावली का सौन्दर्य बिगड़ जायेगा। यह स्वीकार करना होगा कि इस समय कुछ ऐसे कानून प्रयुक्त हैं जिनसे लोगों की स्वतंत्रता आयंत्रित हो जाती है। मैं पंजाब के भूमि-हस्तान्तरण अधिनियम का उदाहरण देता हूं। उसके अनुसार कुछ जातियां अपनी ही जाति के लोगों की भूमि खरीद सकती हैं, परन्तु अन्य जातियों के लोग उसे नहीं खरीद सकते। यदि इस विभेद का कोई आर्थिक आधार होता और यदि यह प्रावहित होता कि सभी छोटे कृषकों के अधिकारों का अभिरक्षण होगा और उनकी छोटी-छोटी भूमियों का हस्तान्तरण न हो सकेगा तो यह बात समझ में आने वाली थी और इस प्रकार के प्रावधान का स्वागत ही होता। परन्तु जब यह विभेद है तो हम भी यह अनुभव करते हैं कि जहां तक यह कानून अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) के प्रावधानों से असंगत है, इसका शून्यन हो जाना चाहिये। इसमें सम्पत्ति के अवापन, संधारण तथा उत्सर्जन की स्वतंत्रता दी गई है, परन्तु यदि यह भूमि-हस्तान्तरण अधिनियम अपने वर्तमान रूप में बना रहा और 'कृषक' की परिभाषा नहीं बदली गई तो कलह होगा और न्यायालय भी अनुचित अर्थ लगा सकते हैं। इसलिये डॉ. अम्बेडकर की व्याख्या के अनुसार यदि यही उद्देश्य है कि अनुच्छेद 8 के प्रावधान सभी पर लागू होंगे तो हमें इसे स्पष्ट कर देना चाहिये। इसीलिये मैंने यह

[सरदार हुकुमसिंह]

सुझाव रखा है कि 'वर्तमान कानून' शब्दों के बाद 'जो अनुच्छेद 8 के प्रावधानों की भावना के विरोध में न हों' शब्द रखे जायें। मेरा यही उद्देश्य है। मैं यह चाहता हूं कि यह स्पष्ट कर दिया जाये ताकि इस सम्बन्ध में कोई सन्देह न रहे।

***उपाध्यक्ष:** अब हम उठाते हैं संशोधन संख्या 485 का दूसरा भाग, जो सय्यद अब्दुर रऊफ के नाम से है और संशोधन संख्या 488 का पहला भाग, जो डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या और अन्य लोगों के नाम से है। दोनों में से बाद में कहा हुआ संशोधन अधिक विस्तृत है और वह उपस्थित किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 488 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** इस दशा में संशोधन संख्या 485 का दूसरा भाग, जो सय्यद अब्दुर रऊफ के नाम से है, उपस्थित किया जा सकता है।

***सय्यद अब्दुर रऊफ:** श्रीमान् मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में 'State' (राज्य) शब्द के स्थान में 'Parliament' (संसद्) शब्द रखा जाये।"

श्रीमान्, उपखण्ड (घ), (ङ) और (च) में हमारे सबसे महत्वपूर्ण मूलाधिकार वर्णित हैं। परन्तु खण्ड (5) से हमारे अधिकांश अधिकारों का अपहरण हो जाता है क्योंकि राज्यों को यह शक्ति दी गई है कि यदि वे चाहें अथवा जब कभी वे चाहें इन अधिकारों को आयंत्रित अथवा संकुचित कर सकते हैं और इनका अपहरण भी कर सकते हैं। हमें स्मरण है कि 'राज्य' शब्द की परिभाषा में भारत के राज्य-क्षेत्र में अथवा भारत सरकार के नियंत्रण में स्थानीय अधिकारी भी सन्निहित हैं। ग्राम-पंचायतें, छोटी-छोटी नगर-समितियां, म्युनिसिपल्टियां और स्थानीय बोर्ड भी कुछ सीमा तक राज्य ही हो जाते हैं और इन राज्यों पर यह छोड़ दिया गया है कि वे इन बहुमूल्य मूलाधिकारों के सम्बन्ध में कार्यवाही करें। श्रीमान्, मैं आपके सामने एक उदाहरण रखूंगा। यदि आप थोड़ी देर के लिये यह मान लीजिये कि यदि राजनैतिक विचारों के कारण किसी गांव में अथवा किसी पंचायत के क्षेत्र में बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों के बीच फूट पड़ जाये और यदि पंचायत बहुमत से यह प्रस्ताव स्वीकार कर ले कि किसी विशेष क्षेत्र में अल्पसंख्यक स्वतंत्रता से न पर्यटन कर सकेंगे और न निवास कर सकेंगे और न अपनी सम्पत्ति का उत्सर्जन कर सकेंगे, तो कौन-सा कानून बहुसंख्यकों को

ऐसा करने से रोकेगा और कौन-सा कानून अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करेगा? चूंकि ये बहुमूल्य अधिकार हैं इसलिये किसी राज्य को इनके सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार न दिया जाना चाहिये। श्रीमान्, मेरे मतानुसार संसद् ही इन प्रश्नों पर संतोषजनक रूप से विचार कर सकती है। चूंकि छोटे-छोटे राज्यों के हाथ में, जिनमें ग्राम-पंचायतें भी होंगी, इस शक्ति को देना बहुत संकटपूर्ण होगा; इसलिए हमें बहुत सावधानी से विचार करना चाहिये। इसीलिये मैंने यह सुझाव रखा है कि 'राज्य' शब्द के स्थान में 'संसद्' शब्द रखा, जाये।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 487, 489 और 490 का आशय समान है। संशोधन संख्या 487 उपस्थित किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 487 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 489 जो मि. मोहम्मद ताहिर और सय्यद जाफ़र इमाम के नाम से है।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में 'either' (अथवा) शब्द और 'or for the protection of the interests of any aboriginal tribe' (किसी आदिवासी जाति के हित-रक्षार्थ) शब्द निकाल दिये जायें।"

श्रीमान्, मैं इस सम्बन्ध में कोई भाषण देने नहीं जा रहा हूं, परन्तु केवल यह निवेदन करना चाहता हूं कि इन शब्दों के निकल जाने से इस खण्ड को सामान्य रूप प्राप्त हो जायेगा। किन्तु उसमें आदिवासी जातियों की रक्षा अवश्य ही सन्निहित है। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि मसौदा-समिति का भी यही मत था, परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि इस खण्ड में ऐसी शब्दावली क्यों रखी गई है। जो कुछ भी हो, मेरे विचार से अच्छा तो यही होगा कि इन शब्दों को उसी प्रकार निकाल दिया जाये जैसा मैंने सुझाया है।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 490 उसी संशोधन के समान है जो अभी उपस्थित किया जा चुका है और इसलिये उसे उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है।

संशोधन संख्या 488 का दूसरा भाग और संशोधन संख्या 491 का आशय समान है। संशोधन संख्या 491, जो डॉ. अम्बेडकर के नाम से है, उपस्थित किया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में 'aboriginal' (आदिवासी) शब्द के स्थान में 'scheduled' (अनुसूचित) शब्द रखा जाये।"

जब मसौदा-समिति मूलाधिकारों के प्रश्न पर विचार कर रही थी तो उस समय वन-जातियों के क्षेत्रों के सम्बन्ध में जो समिति नियुक्त की गई थी उसने अपना प्रतिवेदन उपस्थित नहीं किया था और इसलिये मसौदा बनाते समय हमें 'आदिवासी' शब्द रखना पड़ा। बाद को हमने देखा कि वनजातियों के क्षेत्र-सम्बन्धी समिति ने भी 'अनुसूचित जातियां' शब्द प्रयोग किये थे और इसलिये इस विधान से जो अनुसूचियां संलग्न हैं उनमें हमने 'अनुसूचित जातियां' शब्द प्रयोग किये हैं। भाषा की एकरूपता की दृष्टि से 'आदिवासी' शब्द के स्थान में 'अनुसूचित' शब्द रखना आवश्यक है।

***उपाध्यक्ष:** मेरे विचार से इस संशोधन पर एक संशोधन है। वह सूची 1 का संशोधन संख्या 56 है जो श्री फूलसिंह के नाम से है।

(सूची 1 का संशोधन संख्या 56 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** इसका अर्थ यह है कि इस संशोधन संख्या 491 का स्वरूप जैसे का तैसा बना रहा।

अब हम संशोधन संख्या 488 पर आते हैं।

(संशोधन संख्या 488 उपस्थित नहीं किया गया।)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (6) में 'public order, morality or health' (लोक-व्यवस्था, लोक-शील अथवा लोक-स्वास्थ्य) शब्दों के स्थान में 'the general public' (जन-सामान्य) शब्द रखे जायें।"

ये शब्द अर्थात् 'लोक-व्यवस्था, लोक-शील अथवा लोक-स्वास्थ्य' इस खण्ड के लिये अनुपयुक्त हैं।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** जनाब वाला, मेरा अमेंडमेंट नम्बर 500 हस्बज़ैल है–

'That after clause (6) of article 13, the following new clause be added:

'(7) The occupation of beggary in any form or shape for person having sound physique and perfect health whether major or minor is totally banned and any such practice shall be punishable in accordance with law.' "

जनाब वाला, मैंने यह तरमीम इसलिये पेश की है कि अगर हाउस इस तरमीम के साथ इत्तफाक करे तो यकीनन इसका नतीजा यह होगा कि हमारे मुल्क के अन्दर लेबर की जो डिफीकल्टीज़ हैं, वह एक हद तक बहुत ज्यादा सौल्व हो जाती है। हमारे मुल्क के अन्दर इण्डस्ट्रीज, जो कि वाकई बहुत जरूरी हैं, और बगैर लेबर के वह अक्सर जगहों में नाकाम रही हैं, वह एक हद तक कामयाब हो सकती हैं। इसके अलावा मैं यह अर्ज करूंगा कि हमारे मुल्क के अन्दर हजारों, लाखों नहीं बल्कि करोड़ों इन्सानों के दिल के अन्दर खुद्दारी, सैल्फ रेसपैक्ट का माद्दा पैदा हो जायगा। हम देखते हैं कि हमारे मुल्क के अन्दर बहुत से लोग जो अच्छे खासे तन्दुरुस्त लोग हैं, जो मेहनत कर सकते हैं, मेहनत से रोजी पैदा कर सकते हैं, वह आपको सड़कों पर भीख मांगते नज़र आयेंगे। उनसे अगर आप पूछें कि भाई तुम मेहनत कर सकते हो, अपनी मेहनत से अपनी परवरिश कर सकते हो, अपनी मेहनत से मुल्क को फायदा पहुंचा सकते हो, तो वह जवाब में यही कहेंगे कि साहब यह हमारा आबाई पेशा है और हम यह करने पर मजबूर हैं। मैं यह अर्ज़ करूंगा कि इस जमाने में दुनिया की सरज़मीन पर इतने मुल्क आबाद हैं, अगर आप नज़र उठाकर देखेंगे तो यह बदनुमा धब्बा सिर्फ हमारे ही मुल्क पर नज़र आयेगा। इस वजह से मैं यह चाहता हूं कि हमारे कान्स्टीट्यूशन में इसके मुतल्लिक एक ऐसा नमूना पेश किया जाये जो मुल्क के लिये बेहतर हो। बेशक वह लोग जो कि कुछ मजबूर है, बहुत से बदनसीब हमारे मुल्क में अन्धे हैं, लंगड़े हैं, हाथों और पांवों से मजबूर हैं, वह वाकई किसी हद तक इसके मुस्तहक हो सकते हैं। इनके वास्ते ख्वाह इनफरादी तौर पर या किसी दूसरी सूरत से भीख मांगना ठीक कहा जा सकता है। लेकिन इसके लिये भी मैं यह अर्ज़ करूंगा कि ऐसे लोगों की स्टेट ज़िम्मेवार हो और ऐसे लोगों के लिये कोई ऐसी अन्जुमन किसी ऐसे घर या किसी ऐसी जगह पर कायम की जाये, जो ऐसे लोगों की परवरिश कर सकें। लेकिन वह लोग जो तन्दुरुस्त हैं, अच्छे हैं तो

[श्री मोहम्मद ताहिर]

उनसे अपने मुल्क के अन्दर काम लेना चाहिये। हमारी लेबर प्राबलम बहुत हद तक इससे सौल्व हो जायगी। और करोड़ों इन्सानों ने जो भीख मांगने का तरीका अख्तियार कर लिया है वह भी बाज़ आ जायेंगे। और इससे सैल्फ रेस्पैक्ट यानी खुद्दारी का माद्दा भी पैदा हो जायगा। लिहाजा मैं उम्मीद करता हूं कि मेरी यह तरमीम डॉक्टर अम्बेडकर साहब मंजूर फरमायेंगे और हाउस भी इसको मंजूर करने में मदद करेगा। इन अलफ़ाज के साथ मैं यह तरमीम हाउस के सामने पेश करता हूं।

*इसके पश्चात् परिषद् बृहस्पतिवार, 2 दिसम्बर सन् 1948 ई. के प्रातः साढ़े नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।*

---

Con. 3.VII. 18. 48
350

अंक 7
संख्या 18

बृहस्पतिवार,
2 दिसम्बर,
सन् 1948 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी)..... 1159-1238
[अनुच्छेद 13 और 14 पर विचार (जारी)]

# भारतीय विधान-परिषद्

बृहस्पतिवार, 2 दिसम्बर, सन् 1948 ई.

---

*भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः साढ़े नौ बजे उपाध्यक्ष (डॉक्टर एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में हुई।*

---

## अनुच्छेद 13—(जारी)

***उपाध्यक्षः** (डॉक्टर एच.सी. मुकर्जी): हम अनुच्छेद 13 पर वाद-विवाद को पुनः आरम्भ करेंगे।

मैं इस सम्बन्ध में सभा के विचार जानना चाहता हूं कि हम अनुवर्त्ती संशोधनों पर किस प्रकार विचार करें—कल हमने इन संशोधनों पर विचार-विमर्श स्थगित कर दिया थाः

संशोधन संख्या 442, संख्या 499, संख्या 443 का दूसरा भाग, संख्या 468 और संख्या 501 ।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): क्या मैं यह सुझाव पेश कर सकता हूं कि इन पर विचार इस समय इसलिये स्थगित रखा जाये क्योंकि इनका सम्बन्ध मतदान में स्वतंत्र पसन्द रखने से तथा ऐसी बातों से है। जिनके बारे में अनुच्छेद 13 में पहले ही से कोई प्रावधान नहीं है। इनको बाद में मौलिक अधिकारों से सम्बद्ध एक स्वतंत्र खण्ड के रूप में पेश किया जाये। ऐसा करने से अनुच्छेद 13 के पारित करने में कोई बाधा न होगी। उससे सम्बन्धित संशोधन पहले ही प्रस्तावित किये जा चुके हैं और इस पर विचार-विमर्श आरम्भ हो सकता है।

***उपाध्यक्षः** क्या सभा का यही विचार है?

***माननीय सदस्यगणः** जी हां।

***उपाध्यक्षः** तो फिर हम अनुच्छेद पर सामान्य वाद-विवाद करेंगे। इस अनुच्छेद पर बहुत से माननीय सदस्य बोलना चाहते हैं। अतः सभा की अनुमति

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[उपाध्यक्ष]

से मैं सामान्यतया प्रत्येक भाषण के लिये 10 मिनट नियत करना चाहता हूं। जहां मैं आवश्यक समझूंगा इस समय को बढ़ा दूंगा। क्या इस दस मिनट के समय को नियत करने के लिये सभा मुझे अनुमति देती है?

***माननीय सदस्यगणः** जी हां।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्, दो संशोधनों को स्थगित कर दिया गया है। जब तक वे पेश नहीं किये जाते तब तक सम्पूर्ण अनुच्छेद पर किस प्रकार सामान्य वाद-विवाद हो सकता है?

***उपाध्यक्षः** वे कौन-कौन से संशोधन हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** संख्या 499 और संख्या 422 ।

***उपाध्यक्षः** वे नये खण्ड के अंग होंगे।

**सरदार भूपेन्द्रसिंह मान** (पूर्वी पंजाब : सिख): साहिब सदर, मैं आज़ादी तहरीरी और तकरीरी को शहरी आज़ादी की जान समझता हूं और इसको बुनियादी अधिकार मानता हूं। जनता के लिये आमतौर पर लेकिन माइनोरिटीज के ख्याल से खासतौर पर इसे राइट ऑफ एसोसियेशन और राइट ऑफ स्पीच को निहायत ज़रूरी समझता हूं। आखिर इन्हीं के ज़रिये हम हुकूमत के पास अपनी आवाज़ पहुंचा सकते हैं और अपने साथ होने वाली बेइन्साफी की रोकथाम कर सकते हैं। इन्हीं अधिकारों को मनवाने के लिये मुल्क ने कितनी ही लड़ाइयां लड़ीं और एक सख्त जद्दोज़हद के बाद इस अधिकार को मनवाया। लेकिन जब इस अधिकार को लागू करने का वक्त आया है तो हुकूमत एक किस्म की झिझक महसूस कर रही है और जो बात पहले नाखूब समझी जाती थी, उसे खूब बनाया जा रहा है। एक हाथ से जो चीज़ दी जाती है, दूसरे हाथ से उसे छीन लिया जाता है। हर क्लाज़ के बाद इतनी पाबन्दियां लगाई जा रही हैं। मौजूदा कानून को बदल गये वाकयात के बावजूद लागू करना आज़ादी तहरीर व तकरीर के साथ मज़ाक करना है। मौजूदा कानून के खिलाफ तो हम शुरू से ही लड़े हैं। लेकिन अब आप इसी को ठूंस रहे हैं। वही पुरानी बातें आप चलाना चाहते हैं कि न वकील हो, न दलील हो और न अपील हो। जलसा अगर किया जाये तो उसको तोड़ने के लिये लाठियों का इस्तेमाल किया जाये और लोगों को बगैर मुकद्दमा चलाये हुये जेल में बन्द कर दिया जाये और जमाअतों को खिलाफ कानून करार देना, हमें तो यह तस्वीर

अच्छी दिखाई देती नहीं। आप इन सब बातों को कायम रखना चाहते हैं तो, मैं समझता हूं कि आप इस तरह से यह पाबन्दियां लगा कर बहुत ही बेइन्साफी कर रहे हैं। चन्द अधिकार ऐसे थे जिनको कि हम बहुत ही जरूरी समझते थे। आपने उनको स्टेट पोलिसी के क्लाज़ में रख दिया है जिनको कि हम अदालत में जाकर मंजूर नहीं करा सकते और उन अधिकारों को आप मोड़-तोड़ कर डाइलूट कर रहे हैं। यहां तक कि इनमें कोई ठोस चीज़ बाकी नहीं रह जाती।

साहिब सदर, मैं चाहता हूं कि इन अधिकारों पर यह कड़ी पाबन्दियां न लगाई जावें। और आप अपोजीशन को जो अमन और बगावत आमेज अपोजीशन न हो, उसे पूरा-पूरा मौका दिया जाना चाहिये क्योंकि आखिर जितनी भी जम्हूरी गवर्नमेण्ट और निज़ाम हैं, उनमें अपोजीशन जरूरी होता है। मैं समझता हूं कि लीगल और बा अमन अपोजीशन को दबा देना फासिज़्म की तरफ जाना है।

**सेठ गोविन्ददास** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): सभापति जी, मौलिक अधिकारों की धारा 13 मौलिक अधिकारों की समस्त धाराओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इन धाराओं के द्वारा हमको जिन बातों के अधिकार दिये गये हैं वे सभी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यहां पर कल श्री दामोदरस्वरूप सेठजी ने और श्रीयुक्त के.टी. शाहजी ने अपने सुधार पेश किये। उन सुधारों में ज्यादातर यही कहा गया कि जो अधिकार हमें एक हाथ से दिये जाते हैं वे दूसरे हाथ से वापस लिये जा रहे हैं। कुछ दूर तक यह बात सही हो सकती है। परन्तु यदि हम इस समय की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों परिस्थितियों को देखें और इस बात पर गौर करें कि हमें अभी हाल ही स्वतंत्रता प्राप्त हुई है, हमारी सरकार अभी बाल्यावस्था में है, तो हमको मानना पड़ेगा कि सरकार के हाथ में उन अधिकारों का रहना आवश्यक है, कि जो अधिकार इन अधिकारों के देने के बाद भी सरकार ने अपने हाथ में रखे हैं। हम देखें कि हमारे पड़ोसी देश बर्मा में क्या हो रहा है? हम देखें कि इस समय एशिया के दूसरे बहुत बड़े देश चीन में लड़ाई चल रही हैं वहां पर क्या हो रहा है? इन सब बातों को देखने के पश्चात् हमको इस बात पर विचार करना चाहिये कि इस समय की हमारी जो राष्ट्रीय परिस्थिति है और हमारे पड़ोसी देशों में जो कुछ हो रहा है उसको देखते हुए इन अधिकारों का सरकार के हाथ में रहना कितना आवश्यक है।

मैं तो स्वयं उस मत का होता कि ये सब अधिकार हमारी जनता को दे दिये जायें और इन अधिकारों के सम्बन्ध में जो पाबन्दियां लगाई गई हैं, वे न रहें।

[सेठ गोविन्ददास]

परन्तु आज वैसी परिस्थिति नहीं है। मुझे इन अधिकारों में से कुछ अधिकारों के सम्बन्ध में विशेष रूप से कहना है। इसमें पहली उपधारा freedom of speech and expression की। जहां तक इस स्वतंत्रता का सम्बन्ध है वहां तक आगे जो पाबन्दी है उसमें जो 'sedition' शब्द आया है उसके विषय में यहां एक सुधार पेश हुआ है। बड़े हर्ष की बात है कि हम इस सुधार के अनुसार 'sedition' शब्द को निकाल देना चाहते हैं। हमारे यहां जो फौजदारी कानून है उस कानून में 124-अ दफा जब लायी गई थी उसका मैं यहां के माननीय सदस्यों को स्मरण दिलाना चाहता हूं। उन्हें याद होगा कि वह दफा लोकमान्य बालगंगाधर तिलक को सज़ा देने के लिये खासतौर पर बनाई गई थी। उसके बाद उस दफा के अन्तर्गत हम लोगों में से न जाने कितनों को किस-किस प्रकार से सजायें दी गईं। मुझे यहां पर कुछ व्यक्तिगत बातें याद आ जाती हैं। मैं एक ऐसे कुटुम्ब से आता हूं कि जो कुटुम्ब अपनी राजभक्ति के लिये हमारे मध्यप्रान्त में बहुत प्रसिद्ध था। एक परम्परा थी हमारे यहां खिताब पाने वालों की। मेरे दादा को राजा का खिताब था, मेरे चचा साहब दीवान बहादुर थे और मेरे पिता जी भी दीवान बहादुर। मुझे आज बहुत खुशी है कि अब इस देश में कोई खिताब मिलने वाला नहीं है। परन्तु ऐसे कुटुम्ब से आने पर भी 124-अ में मेरे ऊपर मुकद्दमा चलाया गया। वह मुकद्दमा एक बड़ी दिलचस्प बात पर चलाया गया था। मेरे परदादा को सोने का एक कमरपट्टा मिला था, हीरों से जड़ा हुआ। उनको सन् 1857 में सरकार को मदद देने के लिये अंग्रेज सरकार ने इसे दिया था और उस पर लिखा हुआ था "In recognition of his services during the Mutiny in 1857"। मैंने सन् 1930 के सत्याग्रह आन्दोलन में अपने भाषण में कहा कि मेरे परदादा ने विदेशी सरकार को मदद देने के लिये यह कमरपट्टा पाया। ऐसी सरकार को मदद देकर उन्होंने पाप किया था और अब मैं उस पट्टे पर यह खुदवाना चाहता हूं कि जिस सरकार को स्थापित करने के लिये उन्होंने 1857 में सहायता देकर पाप किया, उस पाप का प्रायश्चित उनके परपोते ने उस सरकार को उखाड़ने का प्रयत्न किया है। इस पर मेरे ऊपर 124-अ में मुकद्दमा चलाया गया और दो वर्ष के लिये मुझे कड़ी सजा दी गई। कहने का मतलब यह है कि इस सभा के अनेक सदस्य ऐसे हैं जिनको इस 124-अ धारा के अनुसार sedition में न जानें कितनी बड़ी-बड़ी सजायें दी गई थीं। बड़ी खुशी की बात है कि हमको अब freedom of speech and expression इस उपधारा में दी जा रही है और इसमें से 'sedition' शब्द भी निकल जाने वाला है।

दूसरे जिस बात पर मैं आपका ध्यान आकर्षित कराता हूं वह इस धारा की 'बी' उपधारा हैं। उसमें यह लिखा है: (to assemble peacefully without arms; 'without arms') पर मैं आपका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित कराना चाहता हूं। मैं यह मानता हूं कि हमको बिना हथियारों के ही इस तरह के जमावों का अधिकार होना चाहिये। हमने अहिंसा की दीक्षा ली थी और अहिंसा के द्वारा हमने स्वराज्य प्राप्त किया। यह सत्य बात है कि इस समय संसार की जैसी परिस्थिति है, उसके कारण हमको सेनायें रखनी पड़ती हैं। परन्तु मैं तो इस बात को मानता हूं कि यदि मानवता का कल्याण होने वाला है तो बिना अहिंसा के वह नहीं हो सकता। इस तरह की जो सभायें हों, उनमें हमें जमा होने का अधिकार तो होना चाहिये पर बिना शस्त्रों के।

इसके बाद दो उपधारायें हैं, जिन पर मैं आपका ध्यान आकर्षित करता हूं। वे हैं 'एफ' और 'जी'। इन उपधाराओं की शब्दावली इस प्रकार है:

"to acquire, hold and dispose of property; " and

"to practise any profession or to carry on any occupation trade or business."

मैं तो इस बात को मानता हूं कि जिस प्रकार अहिंसा के बिना इस संसार में मानवता का कल्याण नहीं हो सकता, उसी प्रकार जब तक व्यक्तिगत सम्पत्ति की समाप्ति नहीं हो जायगी, तब तक सच्ची शांति स्थापित नहीं हो सकती। मैं समाजवादी या साम्यवादी नहीं हूं। परन्तु इसके साथ मैं यह भी कहना चाहता हूं कि इस सम्पत्ति की रक्षा के लिये धनवानों को, बड़े-बड़े व्यापारियों को, बड़े-बड़े जमीदारों, को, ताल्लुकेदारों को जो कार्यवाहियां करनी पड़ती हैं, उनसे किसी को सच्चा सुख नहीं मिल सकता। यह बात नहीं है कि जिनके पास धन नहीं है, केवल वही दु:खी है, निर्धन तो दु:खी हैं ही, परन्तु इस समय की सामाजिक रचना में जिनके पास धन है, वह निर्धनों से अधिक दु:खी हैं और आज यह सोने की तौक धनवानों का गला घोट रही है। उनके पास यह सम्पत्ति बहुत दिनों से चली आ रही है। इसीलिये वे इसे रखने के इच्छुक हैं, सुख के लिये नहीं। बलपूर्वक यदि सम्पत्ति का हरण किया गया तो सच्चे समाजवाद या साम्यवाद की स्थापना नहीं हो सकती। रूस के दृष्टान्त से यह सिद्ध हो जाता है। वहां बलपूर्वक व्यक्तिगत सम्पत्ति का हरण हुआ। जिसका फल यह निकला कि वहां व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त न हो सकी, वरन् अब भी उल्टी बढ़ रही है। परन्तु यदि हम इस

[सेठ गोविन्ददास]

देश में तथा संसार में मूल्यों में परिवर्तन करने का प्रयत्न करें और इस तरह के वायुमण्डल की उत्पत्ति करें जिससे स्वयं लोग इस सम्पत्ति से अपना पिंड छुड़ाना चाहें, तो ठीक अवस्था आ सकती है और सच्चे समाजवाद की स्थापना सम्भव हो सकती है। दुनिया में मूल्यों में समय-समय पर परिवर्तन हुआ है। पहले आदमी-आदमी को खा जाता था, यह इतिहास-सिद्ध बात है। उस समय जो आदमी सबसे अधिक आदमियों को खाने की क्षमता रखता होगा, उसकी समाज पूजा करता होगा क्योंकि वही वीर माना जाता होगा। एक दूसरा समय आया जबकि गुलामों का रोजगार होता था। जो सबसे अधिक गुलाम अपने पास रखते थे, वे सबसे बड़े आदमी माने जाते थे। परन्तु उस अवस्था में भी परिवर्तन हुआ। आज जितने धनवान हैं, उनको हमारे समाजवादी लुटेरे, डाकू कहते हैं। वे यह कहते जरूर हैं, परन्तु क्षमा करें यदि मैं कहूं कि उनमें से अधिकांश समाजवादी ऐसे हैं, जिनको यदि यह सम्पत्ति मिल जाये तो वे समाजवाद को स्वयं छोड़ दे। आवश्यकता है विचारों में परिवर्तन की। और यदि समाज में ऐसे विचारों का प्रसार होकर मूल्यों में परिवर्तन हुआ, तो सचमुच ये धनवान् चोर और उठाइगीरे माने जाने लगें। तो कोई भी इस सम्पत्ति को नहीं रखना चाहेगा। अहिंसा के द्वारा ही इस प्रकार का मत-परिवर्तन और हृदय-परिवर्तन हो सकता है। मुझे आशा है कि आगे चल कर विधान में से सम्पत्ति सम्बन्धी उपधारायें निकल जायेंगी।

मैं इस मौलिक अधिकारों की पूरी 13 धारा का हृदय से समर्थन करता हूं।

***श्री जयपाल सिंह** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, जहां तक मेरा सम्बन्ध है यह विशेष अनुच्छेद मुझे किसी प्रकार से भी भयभीत नहीं करता है, यद्यपि अनेकों मौलिक अधिकारों को बहुत से अपवादों द्वारा कण्टकाकीर्ण बना दिया गया है। मेरे लिये तो यह स्पष्ट है कि इस विधान में हम चाहे जो कुछ रखें, उसका मूल्य—हमारे लिये उसका उपयोग—उस विधि पर निर्भर होगा जिस विधि से हम इन बातों को क्रियान्वित करेंगे। परन्तु एक या दो बातें ऐसी हैं कि मैं चाहूंगा कि डॉक्टर अम्बेडकर उन पर प्रकाश डालें। पहली बात जिसको मैं उनके द्वारा स्पष्ट कराना चाहता हूं वह संशोधन सख्या 491 के सम्बन्ध में है जिसको उन्होंने पेश किया है और जिसमें वे "आदिवासी" शब्द के स्थान में "अनुसूचित" शब्द रखना चाहते हैं। श्रीमान्, जब कभी भी ऐसी अवस्था में आदिवासियों पर प्रभाव डालने वाली किसी भी बात पर मुझे वाद-विवाद करना पड़ा है उस समय मेरा अहित ही हुआ है। इसका स्पष्ट कारण यह है कि वनजाति सम्बन्धी

उप-समितियों की दो रिपोर्टों पर इस सभा में पूर्णरूप से वाद-विवाद नहीं हो पाया है, जिसका फल यह हुआ कि सभा अपना सामूहिक दृष्टिबिन्दु न बना सकी अथवा किसी सामूहिक निर्णय तक न पहुंच सकी जैसा कि अन्य समस्त अनुच्छेदों के सम्बन्ध में हुआ है; अर्थात् उन अनुच्छेदों के सम्बन्ध में जो हमारे देश के गैर-वनजाति लोगों पर प्रभाव डालते हैं।

इस शब्द "वनजाति सम्बन्धी" के प्रश्न को ही लीजिये। जहां तक मुझे विदित है किसी भी उप-समिति ने अनुसूची बनाने के कार्य को नहीं किया। मुझे यह भली प्रकार विदित है कि जिस उप-समिति का मैं सदस्य था उसने इस प्रकार का कोई भी कार्य नहीं किया और सच तो यह है कि स्वयं मसौदा-समिति ने ही विधान के मसौदे में जो कुछ भी भारतीय सरकार-एक्ट में मिला उसे रख दिया। अब सूची की ओर देखिये।

दूसरी बात जिसके बारे में मैं स्पष्टीकरण कराना चाहता हूं वह यह है कि दोनों उप-समितियों की सिफारिशों में जिन परामर्शदात्री परिषदों और प्रादेशिक परिषदों का जिक्र है क्या वे तथाकथित अनुसूचित क्षेत्रों के बाहर भी कार्य करेंगी। यदि उनसे बाहर कार्य करने में वे समर्थ न होंगी तो मैं डॉक्टर अम्बेडकर से यह जानना चाहूंगा कि उन आदिवासियों के सम्बन्ध में क्या होगा जो उन अनुसूचित क्षेत्रों से बाहर करोड़ों की संख्या में हैं। जहां तक मैं विधान की भाषा को समझ सका हूं, प्रादेशिक परिषदें और परामर्शदात्री परिषदें गवर्नर को परामर्श देने के लिये हैं या यों कहिये, यदि एक बार यह स्वीकार कर लिया जाता है कि प्रादेशिक समितियां और परामर्शदात्री समितियां अनुसूचित क्षेत्रों से बाहर भी कार्य कर सकती हैं तो मेरा प्रश्न हल हो जाता है।

पश्चिमी बंगाल को लीजिये। जो कुछ प्रस्तावित किया गया है उसके अनुसार पश्चिमी बंगाल में अनुसूचित क्षेत्र नहीं होंगे। पश्चिमी बंगाल में 16 लाख आदिवासी हैं। मैं यह जानना चाहता हूं कि उनके सम्बन्ध में क्या होगा। न तो प्रादेशिक समितियां हैं और न वहां परामर्शदात्री समितियां ही होंगी। उनकी भलाई के लिये, इसलिये कि क्या किया जाये और क्या नहीं किया जाये, उनके पक्ष तथा विपक्ष में कौन-सा अधिनियम लागू होगा, इन सब बातों के लिये गवर्नर को कौन मंत्रणा देगा? मैं समझता हूं कि यह एक प्रश्न है जिसे स्पष्ट करना ही है।

श्रीमान्, वनजातियों की सूची, जो इस विधान के मसौदे में है, वह बहुत ही असन्तोषजनक है। मैं उसमें से एक या दो उदाहरण दूंगा। श्रीमान् आप स्वयं

[श्री जयपाल सिंह]

पश्चिमी बंगाल से आये हैं। बंगाल को तीन प्रान्तों में बांट दिया गया है, बंगाल संयुक्त—वर्तमान पश्चिमी बंगाल, बिहार और तत्पश्चात् उड़ीसा। इनकी प्रादेशिक सीमाओं के बारे में अंग्रेजों के अपने निजी कारण थे, किन्तु आज कल आप यह भली प्रकार जानते हैं कि वर्तमान सीमाओं के बारे में तीनों प्रान्तों में से कोई भी सन्तुष्ट दिखाई नहीं देता। पश्चिमी बंगाल बिहार का कुछ भाग चाहता है; बिहार भी पश्चिमी बंगाल का कुछ भाग चाहता है। उड़ीसा भी बिहार से कुछ प्रदेश लेने की रट लगाये हुये है। यह वर्तमान राजनैतिक स्थिति है, परन्तु आदिवासियों पर इसका किस प्रकार प्रभाव पड़ता है? एक प्रकार से वनजाति सम्बन्धी उप-समिति तो बेकार-सी हो गई है क्योंकि लाखों की संख्या में रियासतों की जनता प्रान्तों में मिला दी गई है। उड़ीसा के ही प्रश्न को लीजिये। जब वनजाति सम्बन्धी उप-समिति उड़ीसा गई तो उसे केवल उन क्षेत्रों के सम्बन्ध ही विचार करना पड़ा जो कि अपवर्जित अथवा अंशत: अपवर्जित थे। वर्तमान स्थिति यह है कि लगभग 24 रियासतों को उड़ीसा में मिला दिया गया है और अनेकों अन्य रियासतों को मध्यप्रान्त में मिला दिया गया है। इनमें से बहुत-सी रियासतों में आदिवासी बड़ी-बड़ी संख्याओं में हैं। उनके सम्बन्ध में क्या होगा? जिन-जिन अनुसूचित क्षेत्रों की उप-समिति ने सिफारिश की है वह वास्तव में तुच्छ है। उसमें समस्त आदिवासियों की जनसंख्या नहीं आती है, विशेषकर मध्यप्रान्त और उड़ीसा के दोनों प्रान्तों की।

अत: मैं यह चाहता हूं कि डॉक्टर अम्बेडकर मुझे यह स्पष्ट बतायें कि जो कुछ प्रावधान, जो कुछ रियायतें वे इस विधान में रखना चाहते हैं वे उन क्षेत्रों में भी लागू होंगी या नहीं जिनका अनुसूचित क्षेत्रों के अन्तर्गत विशेष कर उल्लेख नहीं किया गया है।

तत्पश्चात् मैं अनुच्छेद 13(1) (ख) अर्थात् "शान्तिपूर्वक निरायुध सम्मेलन" के बारे में कुछ कहना चाहता हूं। मुझे यह बताना है कि आयुध अधिनियम को आदिवासियों के विरुद्ध बड़े अपकारक रूप में लागू किया गया है। यद्यपि वे अपने जीवन के सामान्य कार्यक्रम के रूप में प्रतिदिन ऐसा करते हैं और वे पीढ़ी-दर-पीढ़ियों से ऐसा करते चले आ रहे हैं और आज भी वे वही कर रहे हैं जो वे पूर्व काल से ही ऐसा कर रहे थे। फिर भी इसी बात से कि आदिवासी धनुष बाण, लाठी अथवा कुल्हाड़ी धारण करते हैं इसीलिये कुछ राजनैतिक दलों

ने तो यह धारणा तक बना ली कि वे लोग (आदिवासी) किसी उत्पात के लिये तैयारी कर रहे हैं। मैं आपको ओरावों का उदाहरण दूं। हमारी इस परिषद् में केवल एक ओरांव सदस्य हैं। आदिवासियों का ओरांव-समूह भारत के आदिवासियों में चौथा बड़ा समूह है। आज कल उनके यहां वे उत्सव हो रहे हैं जिनको हम यात्रा अथवा मेला कहते हैं। उनके सांस्कृतिक कार्यों के ये वार्षिकोत्सव हैं। उनके यहां एक उत्सव होता है जिसमें ओरांव गांव का मुखिया झण्डा लेकर चलता है और शेष जन अपने साथ लाठी लेकर चलते हैं और वे अनेकों अखाड़े या गांवों की ओर जाते हैं। उन लोगों का यह उत्सव है; पीढ़ी-दर-पीढ़ियों से वे इसे सीधे-साधे अहितकर रूप में करते चले आये हैं और अब गत वर्ष तथा गत वर्ष से एक वर्ष पूर्व हमसे कहा गया कि हम हथियार लेकर उत्सव में न चलें। यह बताने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि बिहार के यहां ऐसे अनेकों सदस्य हैं जो अपने घर तक कभी भी वापस नहीं पहुंच सकते, यदि उनके मार्ग में मनुष्यों अथवा आयुधों के सहारे रक्षा न की जाये। अपने देश में हम जंगल में रहते हैं और प्रत्येक व्यक्ति—मैं आपको यह भी बता दूं कि स्त्रियां तक भी—अपने साथ वह वस्तु रखती हैं जिसे कि आयुध कहा जा सकता है, परन्तु आयुध की सच्ची परिभाषा में वे आयुध नहीं हैं। जब कभी हमें सभा करनी हो और यदि लोग अपनी सदैव की वस्तुओं को साथ लेकर आवें तो मैं जानता हूं कि क्या उससे यह अर्थ लगाया जायेगा कि हम अशांतिपूर्वक सम्मेलन कर रहे हैं और गैर-कानूनी प्रयोजन के लिये आयुध-धारण किये हुये हैं। इन प्रश्नों का, श्रीमान्, मैं स्पष्टीकरण चाहता हूं।

मैं एक और उदाहरण दूंगा। प्रत्येक सात वर्ष के पश्चात् छोटा नागपुर में यह प्रथा है कि वे एक उत्सव मनाते हैं जिसे वे 'ईरा सेन्द्रा, जानी शिकर' कहते हैं। प्रत्येक सात वर्ष के पश्चात् स्त्रियां पुरुषों के समान वेष धारण करती हैं और जंगल में शिकार करती हैं—याद रखिये पुरुषों के समान वेष धारण करके। वह एक ऐसा अवसर है जब कि स्वभावतः स्त्रियां पुरुषोचित पराक्रम का प्रदर्शन करना चाहती हैं। वे मनुष्यों के समान आयुध धारण करती हैं—तीर, कमान, लाठी, बेला इत्यादि। श्रीमान्, विधान में इस विशेष अनुच्छेद के अनुसार सरकार यह अर्थ लगा सकती है कि प्रत्येक सात वर्ष के पश्चात् स्त्रियां किसी संकटास्पद प्रयोजन के लिये एकत्रित होती हैं। मैं सभा से आग्रह करता हूं कि वह ऐसा कोई काम न करे जिससे सीधी-सादी जनता में उथल-पुथल पैदा हो। हमारे देश में बहुत ही शान्त स्वभाव के नागरिक हैं और हमें किसी ऐसे काम के करने में, जिसके प्रति उन्हें भ्रम हो जाये और जो उत्पात का कारण हो जाये, बहुत ही सचेत रहना चाहिए।

[श्री जयपाल सिंह]

श्रीमान्, जैसा कि मैं कह चुका हूं इस विशेष अनुच्छेद को स्वीकार करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु मैंने सोचा कि इन दो विशेष प्रश्नों पर मैं डॉ.अम्बेडकर के स्पष्ट विचार जानने का प्रयास करूं।

**उपाध्यक्षः** श्री हनुमन्थैया!

***काजी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): मैं आपकी दृष्टि में नहीं आया, श्रीमान्,

***उपाध्यक्षः** दुर्भाग्यवश मेरे केवल दो ही आंखें हैं। वे आपकी ओर अबकी बार जायंगी।

***एक माननीय सदस्यः** श्रीमान्, आप तीसरी आंख क्यों नहीं रखते हैं?

***उपाध्यक्षः** आप सामने की बेंच पर क्यों नहीं आ जाते हैं? मैं कहता हूं कि यह तो सभा का ही दोष है जिसने सर्वसम्मति से एक बूढ़े आदमी को अपना उपाध्यक्ष चुना। उसकी नेत्र-ज्योति उतनी अच्छी नहीं है जितनी कि उनसे कम आयु वाले व्यक्तियों की है। श्री हनुमन्थैया!

***श्री के. हनुमन्थैया** (मैसूर): उपाध्यक्ष महोदय, यह अनुच्छेद हम सबके कुछ अत्याकांक्षित अधिकारों का समामेलन करता है। विगत साठ से कुछ अधिक वर्षों से, जिस काल में स्वतंत्रता-आन्दोलन स्वरूप ग्रहण कर रहा था, इस अनुच्छेद में समामेलित मौलिक अधिकारों को प्राप्त करने के लिये हमने अनेकों भाषण दिये और अनेकों बलिदान किये। परन्तु यहां के अनेकों सदस्यों का दृष्टि-बिन्दु तथा कुछ बाहर के लोगों की सम्मति यह है कि इन मौलिक अधिकारों को इतना संकुचित कर दिया गया है कि उनके मूल महत्व का ही नाश हो गया है। श्रीमान्, प्रत्येक कानून, चाहे वह अधिकार के रूप में हो अथवा कर्त्तव्य के, तत्कालीन समाज की परिस्थिति के अनुसार अपना रूप ग्रहण करता है। हमने उन कष्टों और दुःखों को सहा जो हमारे ऊपर ब्रिटिश साम्राज्यवादी के दमनकारी कानूनों द्वारा लादे गये थे। इसके कारण स्वभावतः हम शुद्ध मौलिक अधिकारों के समर्थक हो गये और यही हमारी आशा थी। परन्तु अन्त में जब हम उन अगणित कठिनाइयों से मुक्त हुये तो हमें अपनी समाज के अन्तर्गत ही ऐसे व्यक्तियों से मुठभेड़ हुई जो मनुष्य, समाज को नुकसान पहुंचाने और कानूनों को तोड़ने के लिये इन अधिकारों से लाभ उठाना चाहते थे। अतः इस कारण

मसौदा-समिति को तथा अनेकों प्रान्तों और केन्द्र की सरकारों की भी इन अधिकारों को अपने शुद्ध मूल रूप में संरक्षण करने के लिये बहुत ही विवश होना पड़ा। जो व्यक्ति हिंसा में विश्वास करता है और जो हिंसात्मक विधि द्वारा राज्य और समाज में उथल-पुथल पैदा करना चाहता है उसे इन अधिकारों के सहारे अपने साधनों की पूर्ति नहीं करने देना चाहिये। इस आशय की पूर्ति के लिये ही मसौदा-समिति ने इन मौलिक अधिकारों के प्रवर्त्तन को परिसीमित करना उचित समझा है।

दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि परिसीमित करने का अधिकार विधान-मण्डल को होना चाहिये या न्यायालय को। यह बड़ा ही विवादास्पद प्रश्न है। बहुत से लोग सोचते हैं—और वह भी बड़े शुद्ध अन्तःकरण से कि विधान-मण्डल या अधिशासी-वर्ग का इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं है कि वे इन मौलिक अधिकारों के प्रवर्त्तन में इनकी परिसीमायें निर्धारण करें और यह कार्य न्यायालयों को सौंप दिया जाना चाहिये क्योंकि वे राजनैतिक प्रभावों से मुक्त हैं, स्वाधीन हैं और बिना किसी पक्षपात के विचार कर सकते हैं। इस विचार को बहुत से लोग तथा विचारक माने हुये हैं। श्रीमान्, यद्यपि में उस सदिच्छा का आदर करता हूं, जिससे कि यह तर्क हमारे सामने रखा जाता है किन्तु फिर भी मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि इस आदर्श को व्यवहार में किस प्रकार लाया जा सकता है। अन्ततोगत्वा न्यायालय तो किसी भी विधि का निर्वचन उसके उस समय विद्यमान रूप के अनुसार ही कर सकते हैं किन्तु कोई भी विधि अपने असली रूप में सर्वदा के लिये उपयोगी अथवा उचित सिद्ध नहीं हो सकती। समाज परिवर्तित होते हैं, सरकारें बदल जाती हैं और वर्ष-वर्ष के बाद नहीं तो दस-दस वर्ष के बाद लोगों के मानसिक गठन तथा स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है। अतः यह आवश्यक है कि विधि ऐसी हो जो स्वयं ही परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुकूल हो जाये। यह तो स्वाभाविक बात ही है कि न्यायालय विधान-निर्माण का कार्य नहीं कर सकते; उनका काम तो विधियों का निर्वचन ही है। अतः इस प्रयोजन से कि भविष्य में अस्तित्व में आने वाली परिस्थितियों से विधि का तालमेल रहे, विधान-मण्डलों को यह शक्ति दे दी जाती है कि वे मौलिक अधिकारों के प्रयोग को सम्यक प्रकार से नियंत्रित अथवा परिसीमित करें। और यह तो साफ ही है कि विधान-मण्डल ऐसे लोगों से मिल कर तो बनता नहीं जो जनता की इच्छा के बिना ही उसमें आ गये हैं। इसके विपरीत उसमें तो जनता के ऐसे सच्चे प्रतिनिधि ही होते है जैसों के लिये इस संविधान में प्रावधान किया गया है। अतः यदि किसी समय विधान-मण्डल यह उचित समझता है कि उन

[श्री के. हनुमन्थैया]

अधिकारों को विशेष प्रकार और खास रीति से विनियमित किया जाये तो उसमें कोई बुराई की बात नहीं हो सकती और न वह बात निरंकुशवादिता का द्योतक हो सकती है और न उससे मूलाधिकारों में कोई कमी आ सकती है। मुझे वास्तव में खुशी हुई है कि मौलिक अधिकारों के प्रयोग करने को नियमित करने का अधिकार न्यायालयों की अपेक्षा विधान-मण्डलों को दिया गया है।

श्रीमान्, यहां अनुच्छेद 13 में लगभग 13 मौलिक अधिकारों का समामेलन किया गया है। मैं सच्चे हृदय से यह कह सकता हूं कि मसौदा-समिति ने प्रथम चार स्वतंत्रताओं को रखने में बहुत अच्छा कार्य किया है—भाषण और अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य, शान्तिपूर्वक सम्मेलन का और पार्षद् बनाने का स्वातन्त्र्य और भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में अबाद् पर्यटन का स्वातंत्र्य। आगामी तीन खण्डों में जो अधिकार दिये गये हैं अर्थात् देश के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार, सम्पत्ति के अवापन, संधारण और यापन का अधिकार और कोई व्यवसाय-वृत्ति, वाणिज्य अथवा व्यापार करने का अधिकार, वे मेरी सम्मति में मौलिक अधिकार नहीं कहे जा सकते; वे वास्तव में मौलिक अधिकार नहीं हैं। वे तो संसद् अथवा राज्यों के विधान-मण्डलों द्वारा बनाये जाने वाली विधियों से सम्बन्ध रखने वाले विषय ही हैं। मैं यह कह सकता हूं कि स्विट्जरलैण्ड तथा न्यूजीलैण्ड के अतिरिक्त अन्य किसी देश ने इन तीनों अधिकारों को, जिन्हें अनुच्छेद 13 में मौलिक अधिकारों के रूप में समाविष्ट किया गया है, मौलिक अधिकार का दर्जा नहीं दिया है। सम्पत्ति अवापन करना, किसी विशेष नगर में बस जाना, देश के किसी भाग में जिसमें किसी व्यक्ति द्वारा चाहे किसी व्यवसाय अथवा व्यापार का करना, वास्तव में मौलिक अधिकार नहीं है। इस कथन के लिये मुझे क्षमा कर दिया जायेगा कि जिन व्यक्तियों ने इन वैधानिक प्रस्तावों को रूपरेखा देने का कार्य किया है उनमें से अधिकांश समाज के सर्वोच्च स्तर के व्यक्ति हैं। आखिरकार वे वही सोच सकते हैं जो उनके मनोविज्ञान, उनके वर्ग तथा उनके समाजस्तर के अनुरूप हैं। इसी दृष्टिबिन्दु से उन्होंने इन तीन अधिकारों का निर्माण किया है। इस बारे में कि ये तीन अधिकार मौलिक हैं अथवा नहीं, यह ठीक होगा कि हम ग्रामीण लोगों तथा प्रदेशों के लोगों के दृष्टिबिन्दु के आधार पर निर्णय करें। मैं तो यह धारणा रखता हूं कि ये अधिकार न होकर देय हैं जिनको ग्रामों तथा प्रदेशों के लोगों पर लादने का प्रयत्न किया गया है। मैं बहुत कुछ चाहता हूं कि मसौदा-समिति और यह परिषद् इन तीनों

अधिकारों को निकाल दे और उनको प्रदेशों के विधान-मण्डलों के स्वविवेकात्मक निर्णय पर छोड़ दे, पर इसके लिये बहुत देर हो गई है और अब तो हमें इन्हें किसी न किसी प्रकार से स्वीकार करना ही पड़ेगा। इससे भविष्य में यह विरोध उत्पन्न होगा कि अपने-अपने क्षेत्रों में जनता के हितों और अधिकारों के संरक्षण के लिये प्रदेश इस विधान द्वारा प्रदत्त इन तीनों अधिकारों में टालमटोल करने का प्रयास करेगा। यह अवश्य होगा। मेरे मन में इस बात के बारे में किसी प्रकार का संशय नहीं है कि यह मुकद्दमेबाजी का एक बड़ा साधन हो जायेगा। कल दैवयोग से मैंने सर आइवर जैनिंग्स की हमारे मौलिक अधिकारों पर सम्मति पढ़ी। वे कहते हैं कि इस अध्याय में जो अधिकार प्रदान किये गये हैं और विशेषकर इस धारा में दिये गये अधिकार इतने उलझे हुये हैं, इनमें इतना वाग्जाल है कि वैधानिक वकीलों के लिये आय का यह एक लाभदायक साधन होगा। इस बात में सच्चाई पर्याप्त मात्रा में है। मौलिक अधिकारों की व्याख्या और परादिकों द्वारा जो वर्जन जोड़े गये हैं उनकी रचना इस प्रकार की है—और उनकी रचना इसी प्रकार से ही हो सकती थी क्योंकि समस्त संकटास्पद स्थितियों का पूर्वानुमान करना असम्भव है—कि मुकद्दमेबाजी इतनी अधिक होगी जितनी हम में से किसी ने भी न कभी देखी हो और न उसका अनुमान ही किया हो। प्रत्येक व्यक्ति जो अपने आपको पीड़ित समझता है वह किसी भी न्यायालय की शरण ले सकता है और सर्वोच्च न्यायालय में व्यक्ति प्रतिव्यक्ति, व्यक्ति प्रति राज्य, राज्य प्रति राज्य और केन्द्रीय सरकार प्रति राज्य सरकार के अभियोगों की भरमार हो जायेगी। यह मुकद्दमेबाजी, मैं तो नहीं समझता हूं, कि देश के हित में सहायक होगी। इसके सम्बन्ध में तो मुझे तर्क करने की आवश्यकता ही नहीं है कि मुकद्दमेबाजी नि:सन्देह दोनों दलों का नाश कर देती है। कन्नाड़ी भाषा में एक कहावत है जिसका अर्थ यह है "अभियोग में जीता हुआ दल हारे हुये के समान है और हारा हुआ दल मरे के समान है"। और जब कभी भी इन खण्डों की व्याख्या के सम्बन्ध मुकद्दमेबाजी होती है राजनैतिक वाद-विवाद भी उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार से मौलिक अधिकार प्रदान करने से—विशेषकर जैसे कि अन्तिम तीन वाक्य-खण्डों में है—इन मौलिक अधिकारों की व्याख्या पर मुकद्दमेबाजी के रूप में लगातार राजनैतिक विप्लव उत्पन्न होते रहेंगे।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन:** उपाध्यक्ष महोदय, इस तथ्य को तो अस्वीकार ही नहीं किया जा सकता कि यह अनुच्छेद इस विधान के मसौदे की आत्मा है। इस अनुच्छेद के अभाव में यह विधान निष्प्राण हो जायेगा। यह भी समझ लेना चाहिये

[काज़ी सैयद करीमुद्दीन]

कि अनुच्छेद 13 के अन्तर्गत रखे गये अधिकार नि:संदेह अविच्छेद्य अधिकार हैं। पर सवाल यह है कि ये अधिकार सरकारों की इच्छा के अधीन होंगे अथवा ये ऐसे सिद्धान्त हैं जिन्हें हम निर्माण कर रहे हैं और जो न तो विधि का ही विषय होंगे और न विधान-मण्डल की इच्छाओं के ही अधीन होंगे। मेरा निवेदन हैं कि अनुच्छेद 13 में उल्लिखित सिद्धान्त ऐसे व्यक्ति के ऐसे मूलभूत अधिकार हैं जिन्हें विधान-मण्डल की इच्छा के अधीन किया ही नहीं जा सकता। किन्तु इस अनुच्छेद के खण्ड (2) से लगायत (6) जनता से उसी आश्वासन को वापस ले लेते हैं जिसके कारण वे निश्शंक रह सकते हैं। अत: मेरा निवेदन है कि खण्ड (2) लगायत (6) बहुत ही खतरनाक खण्ड हैं। मान लीजिये किसी राज्य में एक ऐसा राजनैतिक दल है जो केन्द्रीय सरकार का विरोधी है और वह राजनैतिक अल्पसंख्यकों अथवा धर्मिक अल्पसंख्यकों के लिये बहुत ही घातक कानून निर्माण करता है, तो इस सम्बन्ध में क्या किया जा सकता है? लोगों को कष्ट सहने पड़ेंगे और अकथनीय क्लेश सहने होंगे। विशेषकर "वर्तमान कानूनों के प्रवर्तन के अधीन" शब्द बड़े ही अन्यायपूर्ण हैं। आज भारत में क्या स्थिति है? लगभग वैसी ही है जैसी कि एक घिरे हुये देश की होती है। समस्त प्रान्तों में गुण्डा, लोक-क्षेम इत्यादि अधिनियम लगे हुये हैं जिनकी न तो अपील है और जिनके अनुसार गिरफ्तार करने के लिये न किसी वारण्ट की आवश्यकता है और अनुचित रूप से तलाशी ली जा सकती है। इस सब के बावजूद इस अनुच्छेद में यह बात रख दी गई है कि ये सब कानून मान्य रहे आयेंगे। ये सब कानून, जिनके अधीन न तो अपील हो सकती है और जो न समुचित प्रतिनिधान का प्रावधान करते हैं, ये सब कानून अनुच्छेद 13 के अधीन मान्य रहे आयेंगे। यह बात तो सब जानते हैं कि आजकल हम लोग विकट स्थिति में हैं। किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं कि अनुच्छेद 13 की रचना विकट स्थितियों को ध्यान में रख कर की जाये। अनुच्छेद के एक भाग में शांतिपूर्वक निरायुध सम्मेलन का अधिकार दिया गया है। विधान-निर्माताओं द्वारा इससे अधिक और क्या प्रतिबन्ध लगाया जा सकता था और इसके अतिरिक्त भी राज्य के विधान-मण्डलों को और भी अधिक प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार दिया गया है जैसा कि खण्ड (3) और (4) में दिया हुआ है। अब प्रश्न यह है कि कोई विशेष कानून लोक-हित में है या नहीं, साथ ही यह भी सवाल है कि ऐसा करने का अधिकार न्यायाधीश-वर्ग को सौंपा जाना चाहिये या राज्य के विधान-मण्डलों को। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप यह बात भली प्रकार समझ लें कि मौलिक अधिकारों से सम्बन्ध रखने वाले इन खण्डों का निर्वाचन हम विधान-मण्डलों की इच्छा पर नहीं छोड़ सकते।

प्रत्यक्ष है कि ऐसी अवस्था में राज्यों के विधान-मण्डलों में से प्रत्येक के बहुमत के लिये अल्पमत के प्रति अन्याय करना पूर्णतया सम्भव होगा, चाहे फिर वह अल्पमत राजनैतिक हो अथवा सामुदायिक हो। यदि ऐसा हुआ तो इन मौलिक अधिकारों के रखने का प्रयोजन ही कुछ न रहेगा। सच तो यह है कि ये मौलिक अधिकार रखे ही इसलिये जा रहे हैं जिससे कि विधान-निर्माण की शक्ति सीमित हो जाये। किन्तु खण्ड (2) से लेकर खण्ड (6) तक के खण्डों से हम अनुच्छेद 13 के विस्तार को बढ़ा रहे हैं और साथ ही प्रान्तीय अथवा राज्य के विधान-मण्डलों की शक्ति-सीमा को भी बढ़ा रहे हैं। पर इससे केवल राजनैतिक तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों की पूरी हानि होगी। जिस रूप में यह अनुच्छेद है यदि यह इसी रूप में स्वीकार कर लिया जाता है तो मेरा निवेदन यह है कि इससे उन अधिकारों का हरण हो जायेगा जो इस विधान के अनुच्छेद 8 के अन्तर्गत प्रदान किये गये हैं। इन प्रतिबन्धों जैसे प्रतिबन्ध संसार के किसी विधान में नहीं है। अमरीका के विधान में ये समस्त अधिकार न्यायाधीश-वर्ग को सौंप दिये गये हैं केवल इस कारण से कि राजनैतिक दलों को, जिनका समय-समय पर निर्वाचन होता रहता है, कानूनों की व्याख्या करना नहीं सौंपा जा सकता। मुख्य सिद्धान्त तो यह होना चाहिये कि जिसका निषेध नहीं है वह विधिवत् है। इसके अतिरिक्त दो संशोधन पेश किये गये हैं, एक श्री मोहम्मद इस्माइल द्वारा और दूसरा श्री ताहिर द्वारा। मेरा निवेदन यह है कि दोनों संशोधन बड़े ही निर्दोष हैं और अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिये ये दोनों बहुत ही आवश्यक हैं। श्री इस्माइल का संशोधन इस पक्ष को ग्रहण करता है कि वैयक्तिक कानून का सम्मान होना चाहिये और इस बात को विधान में रखना चाहिये। बाहर के लोगों तथा इस विधान-परिषद् के सदस्यों को यह समझ लेना चाहिये कि एक मुसलमान वैयक्तिक कानून को धर्म का अंग समझता है और मैं आपको यह ठीक विश्वास दिलाता हूं कि इस देश में ऐसा कोई भी मुसलमान नहीं है—कम से कम मेरे देखने में तो कोई आया नहीं है—जो कि धार्मिक अधिकारों के आदेशमूलक प्रावधानों तथा वैयक्तिक कानूनों में परिवर्तन चाहता हो और यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जो आदेशमूलक सिद्धान्तों अथवा धर्म में वैयक्तिक कानून के रूप में परिवर्तन चाहता है तो वह मुसलमान नहीं हो सकता। इसलिये यदि, आप सचमुच अल्पसंख्यकों की रक्षा करना चाहते हैं—क्योंकि यह असाम्प्रदायिक राज्य है पर इसका आशय यह नहीं है कि लोग किसी धर्म को न मानें—और यदि मुसलमान अल्पसंख्यकों अथवा किसी अन्य अल्पसंख्यक के यही विचार हैं कि वे वैयक्तिक कानून का पालन करना चाहते हैं, तो उन कानूनों की रक्षा करनी चाहिये। श्री ताहिर का संशोधन बड़ा ही

[काज़ी सैयद करीमुद्दीन]

महत्वपूर्ण है और मेरा विचार है कि विधान-परिषद् के प्रत्येक सदस्य ने यह अनुभव किया होगा कि वह महत्वपूर्ण है, क्योंकि 15 अगस्त के पश्चात् हमने देख लिया कि उस साम्प्रदायिक उत्तेजना के लिये मुसलमान उत्तरदायी हैं अथवा हिन्दू, जिससे समाज के समस्त गुणों का लोप हो गया। वह वास्तव में एक ऐसा वर्ण था जो समाज का नाश कर रहा था और वह नाश कर ही देता यदि केन्द्रीय सरकार हस्तक्षेप न करती। और फिर साम्प्रदायिक उत्तेजना को अपराध मान लेना चाहिये। मेरी सम्मति से यह बड़ा प्रमुख संशोधन है जिसको पेश किया जा चुका है और डॉ. अम्बेडकर द्वारा यह स्वीकार किया जाना चाहिये। श्रीमान्, जैसा कि मैंने कहा है, डॉ. अम्बेडकर ने भी अपनी पुस्तक "राज्य और अल्पसंख्यक" में कहा है:

> "मुद्रण, सम्मेलन और परिषद् की स्वतन्त्रता को संकुचित करने वाले कानून नहीं बनाये जायेंगे पर लोक-शान्ति और लोक-शील को विचार में रखते हुये ऐसे कानून बन सकेंगे।"

1947 में वे इस बात से सहमत थे कि अनुच्छेद 13 का प्रथम भाग ही हमारे विधान में रखा जाये परन्तु एक वर्ष में ही उनमें इतना परिवर्तन हो गया कि उन्होंने इतने प्रतिबन्ध लगा दिये कि जो कुछ भी अनुच्छेद 8 द्वारा दिया गया है वे उसे भी छीन लेते हैं।

***उपाध्यक्ष:** आप इस बात में गलती करते हैं कि डॉ. अम्बेडकर ही विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रत्येक बात के लिये उत्तरदायी हैं। पूरी की पूरी मसौदा-समिति पर यह उत्तरदायित्व है।

**काज़ी सैयद करीमुद्दीन:** मेरा निवेदन यह है कि यदि आप इस सभा के अल्पसंख्यकों की सम्मति लें—एक सिख प्रतिनिधि तो बोल ही चुके हैं और अब मैं बोल रहा हूं—और यदि आप मत लें तो आपको विदित होगा कि देश के अल्पसंख्यक यह कहेंगे कि अनुच्छेद 13 से उनका पर्याप्त संरक्षण न होगा। इसलिये मैं गम्भीरतापूर्वक निवेदन करता हूं कि (2) से (6) तक के खण्डों को निकाल दिया जाये। मैं अन्य दो संशोधनों का जिनका मैंने उल्लेख किया है जोरदार समर्थन करता हूं। जिस रूप में अनुच्छेद 13 है यदि यह इसी रूप में स्वीकार किया जाता है तो वह अल्पसंख्यकों को मान्य नहीं होगा। यह कोई भाषण-स्वतन्त्रता नहीं है जिसकी आप प्रत्याभूति कर रहे हैं। यह कोई मुद्रण सम्बन्धी स्वतन्त्रता नहीं हैं जिसे आप प्रदान कर रहे हैं। आप एक हाथ से दे रहे हैं और दूसरे से ले रहे हैं।

***चौधरी रणवीर सिंह** (पूर्वी पंजाब : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं उन सज्जनों से सहमत नहीं हूं जो इस अन्तर्तर्ती काल में इन प्रावधानों के हटाने के पक्ष में हैं। इसी कारण मैंने अनुच्छेद 13 में दो और प्रावधानों की सूचना दी है। वे निम्न रूप में हैं कि:

"अनुच्छेद 13 में निम्न नये (7) और (8) खण्ड जोड़ दिये जायें:

'(7) इस खण्ड के उपखण्ड (घ), (ङ) तथा (च) की किसी बात से किसी ऐसी वर्तमान विधि के प्रवर्त्तन पर प्रभाव न होगा और न राज्य को कोई ऐसी विधि बनाने में रुकावट होगी जो भूमि को जोतने वालों अथवा कृषकों के हित की रक्षा के लिये उन लोगों पर, जो खेतिहर नहीं हैं कृषि-भूमि की अवाप्ति अथवा संधारण के बारे में आयंत्रण लगाती है।

(8) उक्त खण्ड (घ), (ङ) और (च) उपखण्डों की कोई बात राज्य को न्यूनातिन्यून अविच्छेद्य भूमि के आर्थिक संधारण की घोषणा करने वाले कानून के निर्माण करने से नहीं रोकेगी।' "

श्रीमान्, आगे और विचार करने पर मैंने अपने विचार बदल दिये और इन संशोधनों को पेश नहीं किया, क्योंकि मैंने सोचा कि इस अनुच्छेद के उपखण्ड (5) में "जन-सामान्य के हित में" शब्द से मेरा आशय पूर्णतया पूरा हो जाता है अर्थात् कृषि करने वालों अथवा मजदूरों के हितों की रक्षा के लिये जब कभी प्रतिबन्धों का लगाना आवश्यक समझा जायेगा, सरकार को यह अधिकार होगा कि वह समाज के किसी वर्ग पर प्रतिबन्ध लगा दे अथवा उन कानूनों को जो लागू हैं लागू रहने दे और जिनके बारे में सरकार यह समझे कि किसानों अथवा मजदूरों के हितों की रक्षा के लिये वे आवश्यक हैं।

मैं पूर्वी पंजाब से आया हूं और वहां एक ऐसा कानून है जो भूमि-विच्छेद अधिनियम के नाम से प्रसिद्ध है और जिसके अनुसार कुछ वर्गों को कानून से भूमि अवापन करने का अधिकार नहीं है। मैं अपने मित्रों, विशेषकर हरिजनों से इस बात में सहमत हूं कि हरिजनों तथा अन्य लोगों को जो कि वास्तव में कृषि करने वाले हैं, भूमि अवापन का अधिकार हो। पर मैं यह नहीं समझ पाता कि प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह कृषि करता हो या नहीं कृषकों के समान समझा जाये और उसे कृष्य भूमि अवापन करने की स्वतंत्रता हो। यदि यह दशा होगी तब तो हम एक नई समस्या खड़ी करेंगे—जमींदारी की समस्या—वह समस्या जिसे हम

[चौधरी रणवीर सिंह]

देश से मिटा रहे हैं अथवा मिटाने का वचन दे चुके हैं। अनेकों प्रान्तों में जमींदारी-प्रथा मिटाने का कानून बन चुका है। पंजाब के सम्बन्ध में मेरा विचार है और इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भूमि-विच्छेद अधिनियम के फलस्वरूप पंजाब में जमींदारी-प्रथा का अभाव है और जिस उग्र रूप में यह अन्य प्रान्तों में है वैसे रूप में यहां नहीं है और यही वास्तविक कारण है कि अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पंजाब के किसान अधिक उन्नत अवस्था में हैं। अत: मेरा यह पुष्ट और ठीक विचार है कि राज्य के विधान-मण्डलों तथा विभिन्न सरकारों को अकृषकों पर कृष्यभूमि के अवापन करने और संधारण के बारे में प्रतिबन्ध लगाने की स्वतंत्रता हो और कृषि करने वाले अथवा किसानों की रक्षा के लिये न्यूनातिन्यून अविच्छेद्य भूमि के आर्थिक संधारण की घोषणा करने की स्वतंत्रता हो।

हमारे देश की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग कृषि पर निर्भर है और वे ही कृषि करने वाले हैं। अत: "जन-सामान्य के हित" शब्दों का आशय केवल कृषकों और मजदूरों से ही है न कि केवल मध्यवर्गीय बौद्धिक तथा श्वेतवस्त्रधारी वाचाल लोगों से।

***उपाध्यक्ष:** मौलाना हसरत मोहानी (करतल ध्वनि)—मुझे हर्ष है कि मौलाना हसरत मोहानी ने इस देश की जो बड़ी-बड़ी सेवायें की हैं उन्हें सभा प्रमाणित करती है। वे अपनी मातृभूमि की पूर्ण स्वतंत्रता के पक्ष के समर्थन करने वाले प्रथम व्यक्ति थे।

**मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): जनाब आली, मैं इस वक्त जो खड़ा हुआ हूं तो पहले मेरा ख्याल था कि मैं सिर्फ मिस्टर कामत ने जो तरमीम पेश की है, उसकी तहेदिल से ताईद करूं। और अब भी मैं इस ख्याल से यहां आया हूं कि बाद में और जो तकरीरें हुईं और जो बहुत-सी तरमीमात पेश हुईं, उनमें से मैं एक तरमीम जो मि. मोहम्मद इस्माइल मद्रास ने पेश की है, उसकी पूरी ताईद करता हूं और इसके अलावा जो तरमीम मिस्टर के.टी. शाह ने पेश की है, उसकी भी ताईद करता हूं। इसमें मि. मोहम्मद इस्माइल की जो तरमीम है, उसका जो दूसरा हिस्सा है, उसमें वह पर्सनल लिबर्टी का जिक्र करते हैं। मिस्टर के.टी. शाह की जो तरमीम है, वह भी इसी तरह की हैं। इनके मुताल्लिक मैं अखीर में अर्ज करूंगा। सबसे पहले मैं मि. कामत की तरमीम की पूरी ताईद करना चाहता हूं। मि. कामत ने जो यह बात कही है कि हर एक शख्स

को इसका हक होना चाहिये कि वह हथियार रख सके। यह एक टेस्ट अमेण्डमेण्ट है। अगर डॉक्टर अम्बेडकर और उनकी कमेटी दयानतदार है, तो उनको बिना शुबाह इस सेक्शन को मंजूर करके इसको फौरन इसमें दाखिल करना चाहिये। अगर वह इसमें किसी किस्म का हजर-बजर या उज्र करें जैसा कि वह मुझे उम्मीद है कि कर सकते हैं क्योंकि डॉक्टर अम्बेडकर की कानूनी काबलियत मुसल्लिमा है। वो अगर यह चाहें तो दिन को रात और रात को दिन कर सकते हैं और इसको ऐसा करके निकाल सकते हैं। तो मैं उनसे यह कहूंगा कि यह एक टेस्ट अमेण्डमेण्ट है और अगर इसको दाखिल नहीं करेंगे तो इसके माने यह होंगे कि आपकी टेन्डेन्सी भी इसी तरफ है जिस तरफ कि ब्रिटिश गवर्नमेंण्ट की थी। आपको मालूम है कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने क्या किया था। उन्होंने हिंदुस्तान के ऊपर 'आर्म्ज़ एक्ट' लगा दिया था। इसका नतीज़ा यह हुआ था कि हिन्दुस्तान के कुल रहने वाले बिल्कुल बेकार होकर रखे गये थे। अगर आपकी मन्शा भी यही है तो वह अलग बात है। लेकिन अगर यहां पर कौमी हुकूमत है और हिन्दुस्तानी गवर्नमेण्ट है तो कोई वजह नहीं कि आप किसी शख्स को उस हक से महरूम करें। अगर आप 'आर्म्ज़ एक्ट' को बना कर इसमें शामिल करेंगे और लोगों को यह हक नहीं देंगे तो मैं यह कहूंगा कि आपका ऐटीट्यूड और तरीका इससे भी बदतर है जो कि ब्रिटिश गवर्नमेंट का था। It will be in the worst form ब्रिटिश गवर्नमेंट ने जो 'आर्म्ज़ एक्ट' बनाया था, वह मासवाय रूलिंग सेक्शन के हर एक पर लागू था। हमारा यह ख्याल था कि जब हमारी अपनी हुकूमत होगी तो ऐसा नहीं होगा। बदकिस्मती से यहां पर इस वक्त पार्टी गवर्नमेण्ट है और वह इसको इसमें इस वजह से रखना चाहते हैं कि जो उनके पोलिटिकल अपोनेन्ट्स हैं, उनके खिलाफ यह 'आर्म्ज़ एक्ट' जारी किया जाये। और जो उनके अपनी पार्टी के आदमी हैं, उन पर लागू न किया जायें।

मैं अपने इस जाती तजुरबे की बिना पर जो कि मुझे यू. पी. के मुताल्लिक है, अर्ज करना चाहता हूं। मैं खासकर कानपुर शहर, जिसको कि मैं रिप्रेजेण्ट करता हूं, के मुताल्लिक अर्ज़ करूंगा कि वहां पर यू.पी. गवर्नमेण्ट ने तमाम उन पार्टियों पर जिनसे उनको यह खौफ था कि वह आयन्दा जनरल इलेक्शन में उनके खिलाफ खड़े होंगे, ख्वाह वह सोशलिस्ट पार्टी के थे या कम्युनिस्ट पार्टी के थे या इण्डिपेन्डेण्ट सोशलिस्ट पार्टी के थे, जिसमें तमाम मुसलमान आते हैं या फारवर्ड ब्लाक के थे या और भी वह लोग जिन पर कि उनको यह शबाह था कि वह उनके खिलाफ इलेक्शन में खड़े होंगे, उन पर छांट-छांट कर पाबन्दी

[मौलाना हसरत मोहानी]

लगा दी और किसी न किसी बहाने से 'डिफेन्स ऑफ इण्डिया एक्ट' की जद में लाया, किसी को गुंडा बना कर और किसी को कम्युनिस्ट बनाकर और किसी को यह कह कर कि वह हैदराबाद को सपोर्ट करता है और वहां के लिये चन्दा जमा करता है और किसी को यह कह कर कि वह कम्युनिस्टों की इस पार्टी से ताल्लुक रखता है जो कि 'अण्डर ग्राउण्ड' कार्यवाहियां करते हैं, जेल भिजवाया गया। गर्ज यह है कि तमाम रायल पोलिटिकल पार्टी के खिलाफ उन्होंने इस चीज को आयद कर दिया और मुसलमानों के साथ यहां तक भी किया गया कि जो कोई भी पोज़ीशन वाला मुसलमान कानपुर में रहता था, उसके घर की तलाशी ली गई और उसके घर से अगर एक छुरी जो कि बावर्चीखाने में तरकारी काटने के काम आती है, भी निकली तो उसको आर्म्ज़ एक्ट की ज़द में लाकर जेलखाने भेज दिया। उनमें से बाज को तो छोड़ दिया गया है, और बाज अभी भी जेलखाने में है। इसलिये मैं आपसे यह अर्ज करूंगा कि आप जो कि एक पार्टी गवर्नमेण्ट हैं, यह आपके लिये एक टेस्ट है। आपको चाहिये कि आप मिस्टर कामत की तरमीम को मन्जूर करके हर एक आदमी को आर्म्ज़ रखने का हक दे दें। अगर आप ऐसा नहीं करेंगे तो आप इंग्लिश ब्यूरोक्रेसी के बजाय इण्डियन ब्यूरोक्रेसी की मिसाल कायम करेंगे।

दूसरी बात जो मैं अर्ज करना चाहता हूं, वह यह है कि मि. मोहम्मद इस्माइल और प्रोफेसर शाह दोनों की तरमीमात एक ही मजमून की हैं। हमारी प्राइवेट लिबर्टी और पर्सनल राइट्स के बारे में मैं यह कहना चाहता हूं कि जब तक आप किसी कोर्ट में मुकद्दमा करके ऐलानिया किसी के खिलाफ कुछ साबित नहीं कर सकते तब तक डिफेन्स ऑफ इण्डिया के रूल्स लागू करके किसी को भी चाहे वह आपकी रायल पोलिटिकल पार्टी का हो या किसी और पार्टी का हो अगर बन्द करें तो वह जायज़ नहीं है। अगर आपने 'डिफेन्स ऑफ इण्डिया रूल' के तहत या किसी और आर्डिनेन्स के तहत किसी को आज जेल में भेज दिया तो हैवियस कार्प्स का क्या होगा वह कहां पर होगा। क्योंकि हाईकोर्ट को उसमें दखल देने का हक ही नहीं है। अगर 100 में से किसी एकाध केस में दखल दिया भी हो तो इसका मतलब यह नहीं है कि आमतौर पर ऐसा किया है। इसलिये मैं यह अर्ज करता हूं कि इस चीज को न रखा जाये और हर एक को पर्सनल लिबर्टी हो।

तीसरी बात मैं मुख्तसरन अर्ज करूंगा वह यह कि जो मेरे दोस्त मिस्टर मोहम्मद इस्माइल ने कही है जिसकी बहुत से लोगों ने ताईद की है। मैं यह कहना चाहता हूं कि किसी को भी चाहे वह पोलिटिकल पार्टी का हो, चाहे वह कम्यूनल पार्टी का हो, किसी को भी किसी के पर्सनल लॉ में दखल देने का हक नहीं

है। मैं खुसूसन मुसलमानों के मुताल्लिक कहता हूं कि उनके पर्सनल लॉ में जो तीन चीजें हैं, यानी रिलीजन, लैंग्वेज और कलचर, वह किसी आदमी ने नहीं बनाये हैं। बल्कि उनके पर्सनल लॉ जो तलाक, निकाह और विरासत के मुताल्लिक हैं, वह कुरान में से हैं। और उनकी तशरीह वहां मौजूद है। अगर किसी के दिमाग में यह बात है कि वह मुसलमानों के पर्सनल लॉ में दखल दे सकता है तो मैं उससे यह कह दूंगा कि इसका नतीजा बहुत ही बुरा होगा।

*[मैं इस सभा में यह कह सकता हूं कि उनको दु:ख होगा। अपने वैयक्तिक कानून में किसी प्रकार के हस्तक्षेप को मुसलमान सहन नहीं करेंगे। यदि कोई ऐसा कहने का साहस करता है तो मै यह घोषणा करता हूं कि.....।]

***उपाध्यक्ष:** शान्ति, शान्ति।

***मौलाना हसरत मोहानी:** उसको इस बात में विश्वास करना चाहिये कि अपने वैयक्तिक कानून में किसी प्रकार के हस्तक्षेप को मुसलमान सहन नहीं करेंगे और उनको मुसलमानों के हर प्रकार के दृढ़ विरोध का कड़ा मुकाबला करना होगा।

*(बाधायें)*

***श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या आप उन लोगों को नर-बलि देने का अधिकार देंगे जो उसमें विश्वास करते हैं और अपने वैयक्तिक नियम के बहाने उसकी मांग करते हैं?

*(बाधायें)*

***उपाध्यक्ष:** क्या माननीय सदस्य कृपा कर अपने-अपने स्थान ग्रहण करेंगे?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): मैं अनुच्छेद 13 को उसके समस्त अपवर्जनों तथा संरक्षणों के सहित समर्थन करता हूं। हमारे राष्ट्रीय हित के लिये ये प्रतिबन्ध आवश्यक हैं। इस कथन को मैं प्रमाण देकर पुष्ट करूंगा।

***एक माननीय सदस्य:** क्या माननीय सदस्य अपना भाषण पढ़ रहे हैं?

***उपाध्यक्ष:** वे अपना भाषण पढ़ रहे हैं और ऐसा करने के लिये मैंने उनको आज्ञा दे दी है।

**श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** यदि पूंजीवाद की धमकी का सामना करना है तो वैयक्तिक स्वतंत्रता को कम करना ही होगा। उन्नीसवीं शताब्दी के राष्ट्रीय राज्यों को उन संकटों का तनिक भी सामना नहीं करना पड़ा जिनका आधुनिक राज्य को सामना करना पड़ता हैं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के राजनैतिक षड्यन्त्रों से लोग उस समय अपरिचित थे। राजनैतिक अपराधी अपनी पापयुक्त योजनाओं की पूर्ति के लिये जिन विधियों और चालों की शरण लेता था उनसे प्राचीन काल के प्रशासक भली प्रकार परिचित है। कनून और न्यायिक संस्थाऐं इन परिस्थितियों का सामना करने के लिये यथेष्ट रूप में शक्तिशाली थीं। जिन चालों और विधियों का आधुनिक कानून तोड़ने वालों द्वारा अधिकतर प्रयोग किया जाता है उनको उन्नीसवीं शताब्दी के सामान्य कानूनों तथा न्यायिक संस्थाओं द्वारा नहीं रोका जा सकता है। यदि उस शोषक वर्ग को समाप्त करना है जो लाभ तथा शोषण द्वारा उन्नत होता है और यदि हमारे आधुनिक जीवन की समस्त संस्थाओं की सुरक्षा तथा सत्ता को साम्यवादियों द्वारा संकट में डाले जाने से बचाना है तो राज्य को बृहद् स्वविवेकात्मक अधिकार प्रदान करने चाहिये और वैयक्तिक स्वतन्त्रता को बहुत कम कर देना चाहिये।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): माननीय सदस्य अपना भाषण इतनी जल्दी-जल्दी पढ़ रहे हैं कि हम उसको समझ नहीं सकते हैं। क्या मैं यह निवेदन करूं कि यह मान लिया जाये कि उनका भाषण पढ़ा गया।

***उपाध्यक्षः** श्री ब्रजेश्वर प्रसाद, क्या आप इस बात से सहमत हैं कि यह मान लिया जाये कि आपका भाषण पढ़ा गया? (कुछ देर ठहर कर) माननीय सदस्य श्री रोहिणी कुमार के सुझाव से श्री ब्रजेश्वर प्रसाद सहमत नहीं हैं?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** राज्य के प्रति शंका करना गलत है। आज राज्य की बागडोर ऐसे मनुष्यों के हाथों में है जो लोगों की किसी प्रकार की हानि करने में पूर्णतया असमर्थ हैं। ऐसी सम्भावना नहीं है कि वह बागडोर ऐसे लोगों के हाथों में पहुंच जायेगी जो जनता के विरोधी हैं। यदि राज्य की बागडोर प्रतिक्रियावादियों के हाथों में पहुंच गई तो वैयक्तिक स्वतंत्रता की वैधानिक प्रत्याभूति अधिक काल तक के लिये अक्षुण नहीं रह पायेगी। यदि आप राजनैतिक प्रतिक्रियावादियों के राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने और उनके प्रभुत्व को रोकना चाहते हैं तो देश के शासकों को व्यापक स्वविवेकात्मक अधिकार देने चाहियें।

आधुनिक उन्नतशील राज्य में व्यक्ति और राज्य में परस्पर कोई अधिक झगड़ा नहीं है। क्योंकि राज्य का निर्माण व्यक्तियों से होता है। हम स्वयं ही स्वार्थ से विमुख तथा परे होकर राज्य का रूप हैं। व्यक्ति की राज्य से पृथक् तथा अभिन्न कोई अपनी शक्ति नहीं है। राज्य और व्यक्ति एक ही मुद्रा के दो रुख हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी में अधिशासी-वर्ग ने आधुनिक राज्य की रचना और कला में प्रगति नहीं की। नागरिकों के जीवन से उसका बहुत कम सम्बन्ध था। आधुनिक राज्य के अधिशासी-वर्ग को इस सम्बन्ध में प्रमुख भाग लेना होगा। कौशल के किसी अभाव द्वारा उसमें विघ्न नहीं होना चाहिये। यदि राज्य को यथेष्ट अधिकार नहीं दिये गये तो आधुनिक जीवन, समाजवाद और समुदायवाद की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती। आधुनिक राजनीति का झुकाव विचार और शील के वर्गीकरण की ओर है। मिल और स्पेन्सर के सिद्धान्त युग की आवश्यकताओं और मांगों से पूर्णतया असम्बद्ध हो गये हैं। राजनैतिक विचारकों तथा वास्तविक प्रशासकों इन दोनों की ही चिन्ताओं तथा वफादारी का सर्वप्रथम पात्र समाज है न कि व्यक्ति। आधुनिक जीवन की वास्तविक परिस्थितियों ने व्यक्ति को आदर और गरिमा के उस उच्च शिखर से, जहां पर उसको व्यक्तिवाद ने बिठा रखा था, हटाकर उपेक्षा तथा महत्वहीनता की स्थिति में रख दिया है।

ऐसे समाज में वैयक्तिक स्वतंत्रता संकटास्पद है जिसमें 80 प्रतिशत से भी अधिक मनुष्य निर्धनता, निरक्षरता, साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता के गहरे दलदल में फंसे हुये हैं।

यह विचारना केवल भ्रम मात्र है कि यदि इन वैयक्तिक अधिकारों को स्पष्ट भाषा में बिना किसी प्रतिबन्धों तथा संरक्षणों के विधान में निर्धारित कर दिया जाता है, तो उनको दृढ़ता से प्राप्त किया जा सकेगा। इन अधिकारों का उपभोग किसी भी विधान की परिधि के बाहर कुछ सामाजिक शर्तों के पूरी होने पर निर्भर है। मनुष्य वैयक्तिक स्वतंत्रता का तब तक कदापि उपभोग नहीं कर सकता जब तक समाज पूंजीवाद के आधार पर संगठित है, जब तक युद्ध तथा विदेशियों के हस्तक्षेप की आशंका है और जब तक निर्धनता, निरक्षरता, साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयता हम में वर्तमान है। संगठित धर्मों की शक्ति के क्षीण होने पर और आर्थिक समानता तथा राजनैतिक स्वातंत्र्य के आदर्शों पर आश्रित संसार-राज्य की स्थापना होने पर ही मनुष्य वैयक्तिक स्वतंत्रता प्राप्त कर सकेगा।

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

यह पूर्णतया विधान-निर्माताओं की दुष्टता अथवा अज्ञानता के कारण नहीं है कि वैयक्तिक अधिकारों पर इतने प्रतिबन्ध लगे हुये हैं। शताब्दियों से पिछड़े रहने और विदेशी कुशासन की विरासत को लेखनी की एक रेखा द्वारा नहीं मिटाया जा सकता। किसी युग की दुर्व्यवस्था का निराकरण वैधानिक प्रत्याभूतियों द्वारा नहीं किया जा सकता। वैधानिक प्रत्याभूतियां केवल उन वैयक्तिक अधिकारों को प्राप्त करने में सुविधा प्रदान करती हैं जिनका रूप मुख्यतया आन्तरिक हो और जो तर्क तथा उचित आचरण द्वारा प्राप्त किये जा सकें। यदि हम वैयक्तिक स्वतंत्रता प्राप्त करना और उसका उपभोग करना चाहते है तो हमें ठीक प्रकार से विचार करना, बोलना और कार्य करना चाहिये। साम्प्रदायिकता के आधार पर शिक्षा की उन्नति तथा प्रगति से ही वैयक्तिक स्वतंत्रता की नींव दृढ़ आधार पर रखी जा सकती है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, क्या मैं अपने मित्र से यह निवेदन कर सकता हूं कि वे यदि अन्य विराम चिह्न न रखें तो कम से कम कुछ पूर्ण विराम तो रखें ही?

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य का समय समाप्त हो चुका है। परन्तु श्री कामत ने जो कुछ कहा है उससे किसी प्रकार से भी सभा की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ी।

**प्रोफेसर यशवन्त राय** (पूर्वी पंजाब : जनरल): माननीय अध्यक्ष महोदय, पंजाब के हरिजन ड्राफ्टिंग कमेटी के प्रधान के बहुत ज्यादा आभारी हैं कि उन्होंने कांस्टीट्यूशन के अन्दर आर्टिकिल 13 को रखा है। आज तक पंजाब के अन्दर यह प्रथा है कि एक खास कम्यूनिटी ही जमीन खरीद सकती है और खेती-बाड़ी का काम कर सकती है। लेकिन हरिजन जिनमें 90 प्रतिशत ऐसे लोग हैं जो खेती-बाड़ी का काम करते हैं उनको जमीन खरीदने की इज़ाज़त नहीं है और न वह अपने मकान बनाने के लिये ही ज़मीन खरीद सकते हैं। लेकिन इस आर्टिकिल के पास हो जाने से उनको यह सुविधा मिल जायेगी कि वह अपने मकान बनाने और रहने के लिये ज़मीन खरीद सकते हैं, और साथ ही खेती-बाड़ी करने के लिये अगर उनके पास इतनी शक्ति हो तो वह ज़मीन खरीद सकते हैं। इसलिये मैं समझता हूं कि जो तकलीफें पंजाब के हरिजनों को हो रही हैं, गांव-गांव के अन्दर जमींदार और उनके बीच क्लैशैज़ हो रहे हैं और कहीं-कहीं पर उनको मकानों से बाहर तक नहीं जाने दिया जाता है, और बहुत-सी मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा है, ऐसी बातें भविष्य में नहीं होंगी। लेकिन जो मुसीबतें

आजकल उन पर आ रही हैं वह इसलिये हैं कि उनका यह ख्याल था कि कांग्रेस गवर्नमेंट हमारी ही नेशनल गवर्नमेण्ट होगी और उसके पावर में आने पर हमको मकान बनाने और ज़मीन खरीदने की इजाजत मिल जायेगी और जो तकलीफें हमारी हैं वह सब दूर हो जायंगी। हमारी इण्डियन नेशनल कांग्रेस का यह क्रीड था कि राज्य स्थापित होने पर सबको घर बनाने और खेती-बाड़ी की और किसी भी किस्म की तकलीफ नहीं होगी। इस बात को आप भी महसूस करते हैं कि हरिजनों को यह चीजें मिल जानी चाहियें क्योंकि हमारी जो कांग्रेस गवर्नमेण्ट है वह अब स्थापित हो चुकी है।

इसलिये आर्टिकिल 13 में, क्लाज एफ बहुत ही जरूरी है क्योंकि इसमें हमारे लिये वह सहूलियतें जो हम चाहते थे मिल गई हैं। जो दिक्कतें आजकल हमें पेश आ रही हैं मेरे ख्याल में अब वह काफूर हो जायेंगी। इसलिये मैं इस आर्टिकिल का समर्थन करता हूं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** उपाध्यक्ष महोदय, हमारे नये विधान में से "राजद्रोह" शब्द को निकाल देने का जो निश्चय सभा ने किया है मुझे उसके लिये सभा को बधाई देनी चाहिये। यह अभागा शब्द "राजद्रोह" इस देश में अनेकों क्लेशों का कारण रहा है और हमारी स्वतंत्रता प्राप्ति को यथेष्ट समय तक के लिये रोके रहा है।

फिर भी इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैं सभा का ध्यान उस स्थिति की ओर आकर्षित करना चाहता हूं जो हमारे तथा वनजाति-क्षेत्रों के लोगों में उत्पन्न हो गई है। ब्रिटिश सरकार इन क्षेत्रों को अपने रक्षा स्थानों के रूप में ही रखना चाहती थी और एक क्षण के लिये भी उसने यह नहीं सोचा कि उसे किसी समय इस देश को छोड़ना होगा। वे वनजाति के लोगों को सदैव के लिये पूर्णतया अपने अधिकार में रखना चाहते थे और पहाड़ों को वे अपने सुरक्षित स्थानों के रूप में रखना चाहते थे और इसलिये उन्होंने ऐसे नियम बना दिये थे जिनके द्वारा समतल भूमि का रहने वाला सामान्य व्यक्ति पहाड़ों में रहने वाले अपने भाइयों से नहीं मिल सकता था। श्रीमान्, मुझे हर्ष है कि इस अनुच्छेद में हमने यह निर्धारित किया है कि भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में सब लोग अबाध यात्रा कर सकेंगे। परन्तु यह बड़े दुर्भाग्य की बात हैं कि हम उस परादिक का निराकरण नहीं कर सकते जिसमें यह कहा गया है कि कोई विशेष राज्य ऐसा कानून बना सकता है जिसके द्वारा पर्यटन की इस स्वतंत्रता को प्रतिबन्धित किया जा सकेगा। श्रीमान्,

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

मैं सभा का ध्यान केवल एक बड़ी दु:खपूर्ण घटना की ओर आकर्षित करूंगा जो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हुई है। कुछ मास पूर्व केन्द्रीय विधान-मण्डल के कुछ सदस्यों को हमारे माननीय मित्र श्री के. सन्तानम् के नेतृत्व में मनिपुर राज्य में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यद्यपि प्रान्तीय सरकार के अफसरों ने हमें वहां स्वतंत्रतापूर्वक जाने की आज्ञा दे दी परन्तु मनिपुर राज्य की आज्ञा से हमको उसके अन्दर घुसने से पूर्व एक घंटे से अधिक रुके रहना पड़ा। मेरा विश्वास है कि इस विधान के पारित होने के पश्चात् ऐसी स्थिति कभी भी उत्पन्न नहीं होगी और यह कि इस विधान के पारित होने के सद्योपरान्त ही इस बात की कार्यवाही की जायगी कि हम राज्यों के उन भागों में जिनमें अब अनुसूचित वनजातियां बसी हुई हैं स्वतंत्रतापूर्वक आ-जा सकें। अनुसूचित वनजातियों और समतल भूमि में रहने वाले लोगों में परस्पर और भी अधिक मैत्री होनी चाहिये और इन स्थानों में पर्यटन सम्बन्धी रुकावटों को दूर करने के लिये पूरी-पूरी कार्यवाही करनी चाहिये।

तत्पश्चात्, श्रीमान्, मुझे यह जान कर खुशी हुई कि भारत के किसी भी भाग में अपना व्यवसाय करने के लिये लोग स्वतंत्र होंगे। जहां तक यह कागज़ पर है, वहां तक तो बहुत ही अच्छा है, पर अनेकों बार ब्रिटिश सरकार ने कहा था कि वह इन पहाड़ियों में से किसी पहाड़ी में भी किसी व्यक्ति को कभी भी वकालत नहीं करने देगी। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि विधान के इस अनुच्छेद के पारित हो जाने के पश्चात् इस बात की कार्यवाही की जायेगी कि भारत के किसी भाग में किसी व्यक्ति को कोई भी व्यवसाय करने में यदि कोई प्रतिबन्ध हो तो उसे दूर किया जाये।

अब यह मेरा दुर्भाग्य है कि प्रोफेसर शाह के संशोधन संख्या 416 पर मुझे कुछ शब्द कहने पड़ रहे हैं। किसी ऐसे व्यक्ति के संशोधनों पर विचार करना, जो अपने संशोधनों को लिखता है और उन पर विचार करता है, बहुत ही सरल है। परन्तु किसी ऐसे व्यक्ति के संशोधनों पर विचार करना बहुत कठिन तथा संकटापन्न है जो अपने समस्त हजारों संशोधनों को अपने मस्तिष्क में लेकर चलता है और उनको सीधे इस सभा में अपने मस्तिष्क से बाहर निकालता है। श्रीमान्, संशोधन संख्या 416 उन समस्त बातों के बारे में कुछ शब्दों का पुर:स्थापन करता है, जो इस विधान के प्रावधानों के अधीन हैं। परन्तु हमें यह

विदित है कि सभा ने इन शब्दों को "इस विधान के प्रावधानों के अधीन" हटाना स्वीकार सा ही कर लिया है। लेकिन हम यह देखते हैं कि प्रोफेसर साहब ने उसी वाग्जाल को उस संशोधन में रख दिया है। क्या वे विधान में इन शब्दों को तुकबन्दी के लिये प्रयोग करना चाहते हैं? कवि अनेकों शब्दों को केवल तुकबन्दी के लिये प्रयोग करने के शौकीन होते हैं। यदि इन शब्दों का प्रयोग केवल तुकबन्दी के लिये है तब तो मैं इसे मान सकता हूं अन्यथा मेरे विचार से तो वे निरर्थक हैं। मैं अपने मित्रों को 'guaranteed' शब्द के प्रयोग के विरुद्ध सचेत करूंगा। श्रीमान्, हमने विविध वस्तुओं के प्रति प्रत्याभूति का वचन देते हुये विज्ञापन देखे हैं। मैं स्वयं एक ऐसे विज्ञापन के फेर में आ चुका हूं। एक बड़े पूरे पृष्ठ का विज्ञापन किसी दवा की प्रत्याभूति करता था कि यदि आप सात दिन तक उस दवा का सेवन करेंगे तो आपके स्वास्थ्य में उन्नति होगी और आप सैण्डो के सदृश शक्तिशाली हो जायेंगे। "प्रत्याभूति" शब्द वहां वर्तमान था। परन्तु सात या चौदह दिन उस दवा का सेवन करने के पश्चात् मुझे यह विदित हुआ कि उसका कुछ भी असर नहीं है। उससे मेरे स्वास्थ्य में कुछ भी उन्नति नहीं हुई। बाजार में अनेकों रत्नों के सम्बन्ध में भी, यद्यपि वे सब रासायनिक रत्न होते है, सौदागर इस बात की प्रत्याभूति देते हैं कि रत्न अपनी चमक तथा गुणों को कायम रखेंगे। परन्तु एक पखवाड़े के पश्चात् ही चमक उड़ जाती है और रत्न काले पड़ जाते हैं। इसलिये "प्रत्याभूति" शब्द का प्रयोग बहुत ही संकटापन्न है। इस देश में इस शब्द के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। भारत में हम इस शब्द के इतने अभ्यस्त हो गये है कि जब हम इसका प्रयोग देखते हैं तभी हम इस पर शंका करने लगते हैं। जब हम किसी वस्तु को प्रत्याभूति सहित देखते हैं हम समझ जाते हैं कि यह प्रत्याभूति रहित है और असली नहीं है। इसलिये यह अच्छा होगा कि विधान को बिना 'प्रत्याभूति' शब्द के ज्यों का त्यों रहने दिया जाये। इस शब्द के अभाव में हम उसे अच्छी तरह समझ सकते हैं। और तभी हम यह समझेंगे कि किसी अनिच्छित बात को छिपाने का प्रयत्न नहीं किया गया है। खण्ड ज्यों का त्यों बिना 'प्रत्याभूति' शब्द के बिलकुल ठीक है।

श्रीमान्, स्वीकृत संशोधनों सहित इस अनुच्छेद पर मेरी हार्दिक स्वीकृति है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में यह सत्यरूप में कहा जा सकता है कि यह हमारी स्वतंत्रता का अधिकार-पत्र है और समस्त विधान के मसौदे में कदाचित् यही सब से अधिक महत्वपूर्ण अनुच्छेद है। जिस मूल रूप में यह सभा के समक्ष रखा गया

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

था उस पर अनेकों आलोचनायें हो सकती थीं और वे उचित ही थीं। अब मेरे विचार से उसमें वस्तुत: परिवर्तन कर दिया है। श्री भार्गव तथा अन्य सदस्यों के संशोधनों को स्वीकार करने का जो वचन डॉ. अम्बेडकर ने दिया है उससे मुझे आशा होती है कि यह अनुच्छेद अपने अन्तिम रूप में हमारी स्वतंत्रता का वास्तविक अधिकार-पत्र होगा।

श्रीमान्, मेरे मित्रों द्वारा पेश किये गये कुछ संशोधनों की जो आलोचना की गई है उसका हमको विश्लेषण करना चाहिये। सर्वप्रथम यह आलोचना की गई है कि समस्त परादिकों का आशय प्रथम खण्ड में दी हुई स्वतंत्रताओं को रद्द करना है। परन्तु यदि हम सावधानी से प्रत्येक उपखण्ड की परीक्षा करें तो हमें यह विदित होगा कि यह आलोचना न्यायसंगत नहीं है। खण्ड (2) में से 'राजद्रोह' (sedition) शब्द को निकाल दिया गया है और 'प्राधिकारी' (authority) शब्द को हटा दिया गया है। अत: खण्ड (2) में कानून से युक्त वे बातें रह जाती हैं जिनका सम्बन्ध अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि अथवा शिष्टता या शील पर आघात या राज्य के आधार को जर्जर करने वाली बातों से है। कानून की किताब में केवल यही रहेगा।

जैसा कि कल संकेत किया गया था, अमरीका में भी जहां न्यायालयों को परमाधिकार दिया गया है, सर्वोच्च न्यायालय को इस अधिकार को परिसीमित करने के लिये विवश होना पड़ा। हम यह कर रहे हैं कि सर्वोच्च न्यायालय के स्थान में हम स्वयं ही इस अधिकार को परिसीमित कर रहे हैं। वर्तमान रूप में यह परिसीमा जितनी पहले थी उसकी अपेक्षा अब कम विस्तृत हैं। मेरे विचार से सभा को इससे संतोष हो जायेगा।

इस सम्बन्ध में मैं केवल एक शब्द और कहना चाहता हूं। खण्ड (1) (क) में यह कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक को भाषण और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का अधिकार होगा। जैसा कि मैंने अपने एक संशोधन में विचार प्रकट किया है, हमें यहां मुद्रण-स्वातंत्र्य को रखना चाहिये। मैं आशा करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर इस खण्ड में मुद्रण-स्वातंत्र्य के संशोधन को प्रस्तुत करेंगे।

खण्ड (3) के सम्बन्ध में मुझे इस बात की खुशी है कि 'युक्तियुक्त' (reasonable) के जोड़ने के पश्चात् वह स्वतंत्रता का और भी अधिक विस्तृत

अधिकार-पत्र हो गया। उसमें यह कहा गया है कि 'इस खण्ड के उपखण्ड (ख) की किसी बात से लोक-व्यवस्था के हित में उक्त खण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकारों' के प्रयोग पर 'युक्ति-युक्त' आयन्त्रणों का आरोप करने वाले किसी कानून के प्रवर्तन पर प्रभाव अथवा किसी कानून के बनाने में राज्य के लिये अवरोध न होगा।

इसके अन्तर्गत वर्तमान कानून, जहां तक कि वे ऐसे आयंत्रणों का आरोप करते हैं जो लोक-व्यवस्था अथवा लोक-शील के हित में नहीं हैं, रद्द हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति इस बात को मानेगा कि लोक-व्यवस्था का प्रबन्ध करना ही होगा। संशोधित रूप में उप-खण्ड अपने पहले रूप से अच्छा है। अब सर्वोच्च न्यायालय यह निर्धारित कर सकता है कि कौन-सी बातें लोक-व्यवस्था के विरुद्ध हैं और कौन नहीं।

खण्ड (4) के सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि मजदूर लोग अब यह अनुभव करेंगे कि उनको स्वतन्त्रता का अधिकार-पत्र मिल गया। वे अब ऐसे संघ बना सकते हैं जो लोक-व्यवस्था अथवा लोक-शील के हितार्थ युक्तियुक्त आयंत्रणों के अधीन हो। अत: आज मजदूर लोग डॉ. अम्बेडकर को, उन संशोधनों को स्वीकार करने के लिये जिनसे मूल खण्ड में परिवर्तन हो गया है, धन्यवाद देंगे। मूल रूप के अनुसार आप सम्मेलन नहीं कर सकते थे क्योंकि वह जन-साधारण की इच्छाओं के विरुद्ध था। अब आपको यह सिद्ध करना होगा कि किसी सम्मेलन को रोकने का निर्णय लोक-व्यवस्था अथवा लोक-शील के हित की रक्षा के लिये है। मजदूरों के लिये यह स्वतंत्रता का एक महान् अधिकार-पत्र है।

तत्पश्चात् मैं खंड (5) को लेता हूं। यह उपखंड (घ), (ङ) और (च) की विशेषता है। उसमें कहा गया है: "उपखंड (घ), (ङ) और (च) की किसी बात से इत्यादि, इत्यादि" "अथवा अनुसूचित जातियों के हित-रक्षार्थ"। हमने उसमें "युक्तियुक्त" शब्द जोड़ दिया है। यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। ऐसे अधिकार जैसे कि समस्त देश में अबाध पर्यटन बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। कुछ लोगों ने इस ओर संकेत किया है कि आजकल ऐसे अनेकों कानून वर्तमान है, उदाहरणस्वरूप पूर्वी पंजाब में, जो वास्तव में बहुत ही बुरे हैं और यह खंड उनमें से अनेकों को रद्द नहीं कर सकेगा।

इसके पश्चात् खंड (6) है जो व्यवसाय करने के सम्बन्ध में है। जो संशोधन स्वीकार कर लिये गये हैं उनके योग से यह खंड भी बहुत अच्छा हो गया है।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

एक बात मैं और कहना चाहता हूं। श्री कामत् अपने संशोधन द्वारा आयुध-धारण करने का अधिकार चाहते है। संसार के अनेकों विधानों में इस अधिकार को मान्य किया गया है। समस्त इतिहास में हमने स्वयं यह चाहा था कि यह हमारा अधिकार हो। मुझे यह ठीक याद है कि महात्मा गांधी ने 1930 में लार्ड इर्विन को आठ बातों के सम्बन्ध में, जिनको वे चाहते थे कि स्वीकार कर ली जायें, जब पत्र लिखा था तो उनमें एक बात यह आयुध-धारण करने के अधिकार की थी। आयुध-धारण करने के इस अधिकार का प्रश्न सन् 1878 का प्रश्न है जब कि गदर के पश्चात् अंग्रेजों ने राष्ट्र को निःशस्त्र कर दिया था। मेरे विचार से स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् हमें कम से कम इस बात की आज्ञा दे देनी चाहिये, क्योंकि केवल सशस्त्र व्यक्ति ही सरकार का पक्ष-समर्थन कर सकता है। मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ अवश्य करेंगे।

तत्पश्चात् राजद्रोह के सम्बन्ध में भी मैं कुछ कह दूं। हमारे महान् नेता लोकमान्य तिलक जैसे तथा अन्य नेता धारा 124-(क) के शिकार बने थे। मैं डॉ. अम्बेडकर को इस बात के लिये बधाई देता हूं कि उन्होंने इस शब्द को खण्ड में इस प्रकार से रखा कि उससे खण्ड का रूप प्रकट हो गया।

**श्री एच.जे. खांडेकर** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, क्लाज 13 के बारे में मैं कुछ अपने विचार आपके सामने रखने के लिये यहां आया हूं। क्लाज 13 को अगर रास्ते में चलने वाला आदमी भी पढ़े और वह यहां तक पढ़े कि उसके सब-क्लाज 1 के 'जी' तक पहुंच जाये तो वह यह समझने लगेगा कि इस देश के अन्दर स्वराज्य आ गया और हर इन्सान को इसमें फ्रीडम मिल गयी। मगर आगे चल कर सब-क्लाज 2, 3, 4, 5 और 6 पढ़े तो यह समझ लेगा कि इस देश के अन्दर अभी तक स्वराज्य नहीं आया। जो भी सीधे हाथ से सब-क्लाज 1 में दिया गया है वह बांये हाथ से आगे के सब-क्लाज में ले लिया गया है। मैं समझता हूं कि मेरी इस विचारधारा को बहुत से मेम्बरान सपोर्ट करते होंगे। इस क्लाज के अनुसार इस हिन्दुस्तान के नागरिकों को जो अधिकार दिये गये हैं उनमें अगर हम, उप-सभापति जी, सब क्लाज 1 को पढ़ें तो 'ए' में तो यह लिखा है: "फ्रीडम ऑफ स्पीच एण्ड एक्सप्रेशन", जिसके लिये कि आप और इस हाउस के बहुत सारे सदस्य जानते हैं कि 1941 ई. में "फ्रीडम आफ स्पीच और एक्सप्रेशन" के लिये महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में हम लोगों ने व्यक्तिगत सत्याग्रह किया था और इस देश के हजारों ही नहीं बल्कि

लाखों लोगों को जेल के अन्दर सड़ना पड़ा था। उस समय हम यह सोच रहे थे कि जब हमारा राज्य आ जायेगा तो इस देश के हर एक नागरिक को "फ्रीडम ऑफ स्पीच और एक्सप्रेशन" मिलेगी। यहां आर्टिकिल 13 में "फ्रीडम ऑफ स्पीच और एक्सप्रेशन" दी गयी है। मगर सब-क्लाज 2 से यह सब बायें हाथ से ले लिया गया है। मैं आपको बताना चाहता हूं कि प्रान्तीय सरकारों ने अभी बहुत से कानून बनाये हैं और वह सब इस आर्टिकिल के अनुसार जारी रहेंगे और आगे चल कर भी इस तरह के कानून बनाने की गुंजाइश इसमें रखी गयी है। कई प्रान्तों में गुण्डा एक्ट, असेंशियल सर्विसेस कानून और पब्लिक सेफ्टी एक्ट बनाये गये हैं और मैं आपको यह कहूं तो आपको ताज्जुब होगा कि इस देश के बड़े-बड़े शहरों में जब से हमारी पापुलर मिनिस्ट्री ने चार्ज लिया है तब से दफा 144 लागू हुई है और आप यह देखेंगे कि बड़े-बड़े शहरों में 5 या 7 आदमी इकट्ठा नहीं हो सकते। वह आपस में बातचीत नहीं कर सकते; वह अपने विचार प्रकट नहीं कर सकते। अगर यही परिस्थिति इस कानून से आगे बढ़ी रही तो जो फ्रीडम हम इस देश के लिये चाहते हैं वह फ्रीडम क्लाज 13 के सब-क्लाज 1 'ए' में जो दी गयी है वह सब-क्लाज 2 से खत्म हो जाती है। इसलिये मैं तो चाहता हूं कि एक-एक सब-क्लाज को आपके सामने लाऊं और उस पर अपने विचार प्रकट करूं और आखिर में आपसे यही कहूं कि इस आर्टिकल को आप फिर ड्राफ्टिंग कमेटी के पास भेज दें ताकि वह इस पर फिर विचार करके इस देश में जिस तरह की चीज की जरूरत है उस तरह की चीज इसमें शामिल करके फिर पेश करे तो फिर हाउस उसे खुशी से पास करे। लेकिन जैसा यह क्लाज इस समय है उस तरह पास हो गया तो सब मतलब समाप्त हो जायगा।

उप-सभापति जी, क्लाज 'बी' में कहा गया है:

ably and without arms, इसका मतलब भी सब-क्लाज 3 से खत्म हो जाता है। इसी तरह 'सी' में कहा गया है: to form associations or unions तो हमको associations or unions को form करने की फ्रीडम तो दी गयी है कि हम एसोसियेशन और यूनियन बनावें और उनके जरिये आन्दोलन करें; मसलन् हम मजदूरों का आन्दोलन शुरू कर सकते हैं और किसी मिल के अन्दर या फैक्टरी के अन्दर मजदूरों की पगार या बोनस की मांग करने के लिये जरूरत पड़े तो वह एक साथ इकट्ठा होकर मिल सकते हैं और सभा कर सकते हैं, लेकिन सभा करने की पाबन्दी का जो कानून है वह लागू होगा और इस प्रकार वह अपना आन्दोलन जो कानून सभा न करने का बना हुआ है और आगे बनेगा

[श्री एच.जे. खांडेकर]

उसके अनुसार नहीं कर सकेंगे। अगर मजूदर अपने बोनस मांगने के लिये आन्दोलन करें तो उन पर वह सब पाबन्दियां लागू होती हैं और सरकार चाहे तो उनको आन्दोलन न करने दे और इकट्ठा न होने दे। तो इसका मतलब क्या है कि ऐसोसियेशन तो स्थापित कर दिया जाये मगर सब-क्लाज 4 के अनुसार वह सब अधिकार वापस ले लिया जाता है और इसलिये इस सेक्शन से न तो मजदूरों की भलाई है और न आम जनता की भलाई है।

आगे चल कर to move freely throughout the territory of India, यह इसका 'डी' सेक्शन है। उसके अनुसार हर नागरिक को किसी भी प्रान्त या किसी भी गांव में जाने का अधिकार दिया गया है और इसके साथ ही साथ 'डी' का अधिकार भी सब-क्लाज 5 के अनुसार छीन लिया गया है। मैं आपको एक उदाहरण दूंगा। बड़े ताज्जुब की बात है कि इस देश में एक कानून 'क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट' है जिसके अनुसार एक आदमी जिस दिन जन्मता है उसी दिन से उसको गुनाहगार सिद्ध किया जाता है। ऐसी भी बदकिस्मत कौम इस देश के अन्दर मौजूद है जो इस कानून के अनुसार जो अधिकार हर इन्सान को दिया गया है कि वह 'फ्रीली मूव' कर सके इण्डिया की किसी भी टैरिटरी में, वह अधिकार उसको नहीं मिलेगा। उप-सभापति जी, आपको यह मालूम होगा कि क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट के मुताबिक यह जितने भी जरायम पेशा लोग हैं वह उस एक्ट के अनुसार अगर हिन्दुस्तान के अन्दर कहीं जाना चाहें तो नहीं जा सकते। उनको वह स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। मैं आपको बताऊं कि हमारे यहां मांगगारोडी के नाम की एक जाति है। अगर खापा नाम के गांव से उन्हें सांवनेर नाम के गांव को जाना होता है तो पुलिस उनके पीछे जाती है और सांवनेर तक पहुंचा कर आती है। इसी तरह अगर वह सांवनेर से काटोल जाते हैं तो सांवनेर का पुलिस वाला उनके पीछे जाकर काटोल के पुलिस वाले के यहां सुपुर्द करके आवेगा। उनके लिये कोई फ्री मूवमेण्ट नहीं है। और अगर यह मूवमेण्ट की फ्रीडम 'डी' के मुताबिक दी जाती है तो वह सब-क्लाज 5 से ले ली जाती है। तो इन क्रिमिनल ट्राइब्स को जो कि हिन्दुस्तान के निवासी हैं उनको वह फ्रीडम नहीं दी जा रही है जो कि उन्हें दी जानी चाहिये। वरना बड़ा अन्याय होगा।

इसी तरह आगे चल कर आगे है– to aquire, hold and dispose of property यह जो फ्रीडम दी गयी है उसके बारे में मेरे एक मित्र प्रोफेसर यशवन्तरावजी ने बताया कि एक बदकिस्मत कौम इस देश के अन्दर पंजाब के

अन्दर है और वह एक शेड्यूल्ड कास्ट है। पंजाब में जो 'लैण्ड एलीनेशन एक्ट' है उसके अनुसार पंजाब के हरिजन जमीन नहीं खरीद सकते और आपने जो यहां यह अधिकार हरएक नागरिक को जमीन लेने का दिया है उसके साथ ही साथ आपने दूसरे सब-क्लाज में उसे छीन लिया है जिसके अनुसार वह जो 'लैण्ड एलीनेशन एक्ट' पंजाब में है वह वैसे ही कायम रहेगा। जो अधिकार हरिजन को इस कान्स्टीट्यूशन के मुताबिक दूसरे नागरिक के समान मिलना चाहिये वह सामन अधिकार पंजाब के 'लैण्ड एलीनेशन एक्ट' के अनुसार पंजाब के रहने वाले हरिजन को नहीं मिल सकता।

**पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): इस सेक्शन से अब जरूर मिलेगा।

**श्री एच.जे. खांडेकर:** किस सेक्शन से?

**पं. ठाकुरदास भार्गव:** इसी सेक्शन 13 से अब मिलेगा।

**श्री एच.जे. खांडेकर:** यहां तो इस प्रकार कहीं नहीं लिखा है। अगर यह ऐसे का ऐसा ही पास हुआ तो पंजाब के रहने वाले हरिजनों को जो अधिकार मिलना चाहिये वह नहीं मिलेगा।

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं आप लोगों को यह संकेत करूं कि परस्पर वार्तालाप करने से यह उत्तम होगा कि आप लोग अध्यक्ष को सम्बोधन करें?

**श्री एच. जे. खांडेकर:** बहुत अच्छा, श्रीमान्।

*[अब इस सब-क्लाज 1 का जो 'जी' है "to practise profession of any business" और इसके जो अधिकार हैं, वह सब-क्लाज 6 से छिन गये हैं और इससे हम लोगों के ऊपर क्या आपत्ति आने वाली है यह उप-सभापति जी, मैं आपके सामने रखना चाहता हूं। इस देश के अन्दर सबसे बदकिस्मत कौम है भंगी, मेहतर की कौम और उस मेहतर की कौम को चाहे आप कितने अधिकार दे दें और उनको भी कहें कि तुम्हारे लिये अधिकार हैं। लेकिन मेहतरों के लिये आज तक किसी ने कोई अधिकार नहीं दिया और उस गरीब कौम ने कभी अधिकारों का उपभोग नहीं किया, उस कम्युनिटी के बारे में यह कहूं कि 'to practise any profession, trade, or business' अगर एक मेहतर जो आज म्युनिस्पैलिटी का काम करता है। मुझे दूसरे प्रान्तों की बात नहीं मालूम मगर अपने प्रान्त की बात मुझे अच्छी तरह मालूम है। अगर एक मेहतर यह चाहे

[श्री एच.जे. खांडेकर]

कि वह अपना धन्धा छोड़ दे तो कानून के मुताबिक उसको डिप्टी कमिश्नर को एक नोटिस इस बात का देना पड़ता है और अगर वह उसको (discharge) कर दे, छोड़ दे तो वह मेहतर नौकरी छोड़ सकता है। मैं तो इस ख्याल का आदमी हूं कि मेहतर की कौम से ही लोग नफरत करते हैं। अगर उसका काम ही लोगों की नजरों में नफरत है तो मैं सारे हिन्दुस्तान के मेहतरों को बार-बार यही कहता आया हूं और उप-सभापति जी, आपके जरिये भी मैं मेहतरों को कहना चाहता हूं कि जब लोग उनको और उनके काम को ही गन्दा समझते है और उनको अछूत समझते हैं तो उनको उस काम को जितनी जल्दी हो सके छोड़ देना चाहिये और दूसरे लोग जिस प्रकार काम करते हैं उनको भी वही काम करने चाहियें। मेरे कहने के मुताबिक मेहतरों का काम छोड़ना चाहते हैं और इस कानून के जरियें यह जो सब-क्लाज 1 'जी' में अगर उनको यह अधिकार दिया गया है कि वे भी कोई भी धन्धा कर सकते हैं। अगर वे, सारे देश के मेहतर यह धन्धा छोड़ दें तो वह जो सब-क्लाज 6 है कि 'in the interest of public' और जैसा डॉक्टर अम्बेडकर ने अमेण्डमेण्ट रखा है उस 'पब्लिक इन्टरेस्ट' में उनका काम आ जायेगा। अगर सारे मेहतर या तो दिल्ली शहर के या बम्बई शहर के या कलकत्ते के किसी भी शहर के सारे के सारे मेहतर पाखाना साफ करने का, सड़कें साफ करने का अपना काम बन्द कर दें तो यह 'public interest' के खिलाफ बात हो जायेगी और उस कानून के मुताबिक और 'असेंशियल सर्विसेस एक्ट' के अनुसार सारे मेहतरों के ऊपर पाबन्दी लगायी जायेगी कि उनको यह काम करना ही होगा। तो आप कैसे समझते हैं कि इस क्लाज के अनुसार सारे मनुष्यों को समस्त अधिकार दिये गये हैं। इसलिये जो मुसीबतें हमारे सामने हैं, हमारे काश्तकारों के सामने, हमारे मजदूरों के सामने, हमारे मेहतरों के सामने इस क्लाज से मुसीबत आने वाली है। इसलिये मेरा यह कहना है और हाउस मेरी स्पीच सुनने के बाद इस बात को मान लेगा कि यह जो क्लाज है इसको फिर 'Drafting Committee' के सामने भेजा जाये और उसमें अदल-बदल करके फिर से इस हाउस के सामने रखा जाये। यह मेरा सुझाव है और इन शब्दों के साथ मैं अपना भाषण समाप्त करता हूं।]

**श्री अलगूराय शास्त्री** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, उपाध्यक्ष महोदय, धारा 13 में मौलिक स्वतंत्रता के सभी महत्वपूर्ण अंगों का उल्लेख है। इस दृष्टि से यह धारा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कुछ छोटे-छोटे संशोधनों के साथ यह स्वीकार होने जा रही है। इस पर बहुत मित्रों ने आक्षेप किया है कि इस धारा में जो मौलिक

अधिकार दिये गये हैं उनको दूसरे प्रतिबन्धनों से छीन लिया गया है। मैं समझता हूं कि स्वतंत्रता के साथ उत्तरदायित्व आवश्यक है। फिर जो मित्र यह आक्षेप करते हैं कि इस धारा में दिये गये अधिकारों को जो दूसरे वाक्य खण्ड इस धारा के अन्तर्गत 2, 3, 4, 5, 6 में आये हैं उनसे हटा लिया गया है। उन्होंने यह विचार नहीं किया है कि उन प्रतिबन्धनों में यह अधिकार आगे आने वाले जिन धारा सभाओं को दिया गया है उन धारा सभाओं को कौन चुनेगा, वह धारा सभा किस से बनी हुई होंगी। जनता के प्रतिनिधि धारा सभा में बैठेंगे और वह चाहेंगे जो प्रतिबन्ध वह चाहेंगे, प्रतिबन्धन लगायेंगे। ऐसे प्रतिबन्धन जनता के हित में ही होंगे। जो स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक होगा, जनशान्ति की रक्षा की दृष्टि से अनिवार्य होगा, जन-रक्षा की दृष्टि से वांछित होगा, वही प्रतिबन्ध लगाया जायेगा, जनता की स्वतंत्रता को कुचलने के लिये नहीं।

स्वतंत्रता एक बड़ी भारी कला है। इससे बड़ी कला जितनी कि नाचने और गानें की कलायें है। नाचना और गाना जो जानता है वह अपनी ध्वनि पर अधिकार रखता है, अंग-भंगि और पाद प्रक्षेप पर प्रतिबन्ध और नियंत्रण रखता है। नाचने और गाने के कुछ बने हुये निश्चित नियमों से बंध कर उसे चलना होता है; वह उच्छृंखलता के साथ बेसुर, बेताल, नाच-गा नहीं सकता। उस पर नियमों का पूरा नियंत्रण रहता है। हमको पूरी स्वतंत्रता दी जा रही है तो पूरी स्वतंत्रता के कदापि अर्थ यह नहीं है कि हम किसी प्रतिबन्ध को न मानें। भाषण-स्वतंत्रता के ये माने नहीं हैं कि हमारे जी में जो आये वह बकने लगें। किसी कायदे और रूल्स का अनुसरण न करें। धारा-सभाओं में, सरकारी लेजिस्लेचरों में हमको कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है, कायदे कानून मानने पड़ते हैं। हम स्वतंत्र जनता के प्रतिनिधि की हैसियत से यहां पर बैठे हैं किन्तु हमारे ऊपर सैकड़ों प्रतिबन्ध हैं, अनेक प्रकार के बन्धन हमारे ऊपर हैं। स्वतंत्रता के साथ प्रतिबन्ध होना आवश्यक है, "कविहि अर्थ आखर बल सांचा, करतल ताल गतिहिं नट नाचा"। नट नाचता है तो एक नियत ताल पर, बेताल नहीं; उसकी गति ताल के अनुरूप होती है।

एक स्वतंत्र राष्ट्र, एक स्वतंत्र जाति को स्वतंत्रता मिलती है तो वह जाति अपने ऊपर उत्तरदायित्व धारण करती है। इस कारण हम यह नहीं कह सकते कि जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं वह हमारी उन्नति में बाधक होंगे। मेरे एक मित्र ने भंगी की बात कही है। मैं सन् 24 से इस जाति में काम करता आ रहा हूं। मुझे 24 वर्ष का व्यक्तिगत अनुभव है। निस्संदेह बेचारे भंगियों और दूसरे अछूत कहलाने

[श्री अलगूराय शास्त्री]

वाले भाइयों को अपार कष्ट है उनकी दशा शोचनीय है, किन्तु यहां इस धारा 13 के अन्दर जो प्रतिबन्ध लगे हैं उनका अर्थ यह नहीं है कि भंगियों को उनका वही वर्तमान पेशा करना पड़ेगा। किसी को इस धारा से कोई पेशा करने के लिये विवश नहीं किया जायेगा। इस धारा से तो व्यक्ति को कोई भी पेशा करने की सर्वथा स्वतंत्रता रहेगी, विवशता नहीं। मैं तो समझता हूं कि "एफ" और 'जी' में जो स्वतंत्रता दी गई है उसका स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। "एफ" में प्रत्येक व्यक्ति को सम्पत्ति प्राप्त करने, सम्पत्ति को रखने और उसके उपभोग करने के अधिकार का उल्लेख है। तथा अंग "जी" में व्यवसाय, उद्योग एवं जीविकोपार्जन के मनमाने साधनों को काम में लाने की स्वतंत्रता दी गयी है। यह सच है कि खण्ड 5 तथा 6 में इन स्वतंत्रताओं को नियमित करने का अधिकार सरकार को दिया गया है किन्तु इस सम्बन्ध में थोड़ा स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। अनुच्छेद 13 के ये दोनों अंश "एफ" और "जी" बहुत व्यापक हैं। अत्यन्त अनियंत्रित स्वतंत्रता देते हैं। इतनी स्वतंत्रता संकट से मुक्त नहीं है। आज हमारे समाज में वेश्यावृत्ति चलती है। क्या आगे भी यह इसी प्रकार चल सकेगी? कदापि नहीं चलनी चाहिये। वेश्यावृत्ति के लिये यह व्यवस्था होनी चाहिये कि यह रुके और उसका स्थान अधिक उपयोगी साधन ले सकें। इस पर प्रतिबन्ध होना आवश्यक है।

आज हमारे समाज में मादकद्रव्य बेच कर जीविकोपार्जन की स्वतंत्रता है। अभी डाइरेक्टिव प्रिंसिपल्ज़ में हमने मादकद्रव्य-निषेध के लिये व्यवस्था की है, किन्तु मौलिक अधिकारों में अनियंत्रित जीविकोपार्जन का अधिकार दे दिया गया है। दोनों परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। व्यवस्था यह होनी चाहिये कि औषधि के लिये छोड़ कर मादकद्रव्य विक्रय करके कोई जीविका न उपार्जित कर सके।

आज हमारे समाज में भिक्षावृत्ति चलती है। क्या यह इसी तरह चलती रहेगी? इसे सुन्दर ढंग से रोकने की व्यवस्था होनी चाहिये।

आज हमको स्वतंत्रता मिल गई है। हमको इस तरह के कार्य नहीं करने चाहियें जिससे कि हम इसकी रक्षा न कर सकें। हमको अच्छे नागरिक बनना है। हमें यह भी देखना है कि हमारी स्वतंत्रता का दुरुपयोग न किया जाये। अब तक हमारे ऊपर विदेशी शासन था। विमाता (सौतेली माता) की तरह उसका भारत की प्रजा के प्रति व्यवहार था। इंग्लिस्तान में एक दवा में भी उचित मात्रा से अधिक

मादकद्रव्य नहीं मिलाया जा सकता, किन्तु यहां बाजारों में खुले तौर पर ठर्रा शराब की बोतलें बिकती रही हैं। हमारी माता स्वतंत्रता अपनी सन्तान को ऐसी अवांछनीय स्वतंत्रता कदापि नहीं दे सकती, उन्हें उन्मार्ग गामी नहीं बनने दे सकती।

प्रतिबन्ध तो ऊंची नागरिकता में होते ही हैं "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्" बोलने की स्वतंत्रता है, सत्य बोलने की स्वतंत्रता है परन्तु अप्रिय सत्य की नहीं यह प्रतिबन्ध है, अच्छे नागरिक को यह प्रतिबन्ध मानना पड़ता है। इन कारणों से मैं, जो संशोधन अभी अम्बेडकर साहब ने पेश किये हैं और जिनका जिक्र आ चुका है, उनके साथ इस 13वीं धारा का अभिनन्दन करता हूं।

मैं एक बात और कहना चाहता हूं कि मुझे लगता है कि "एफ" और "जी" में जो अधिकार दिये गये हैं वह कदाचित् अधिक हैं।

मैंने जीविकोपार्जन के सम्बन्ध में कुछ कहा है। लेकिन अब धन-सम्पत्ति संग्रह के बारे में एक शब्द कह कर बैठ जाना चाहता हूं। जिस प्रकार की स्वतंत्रता दी जा रही है उसके अनुसार पूंजीपति और सामन्तशाहों को पूरा अधिकार है कि वह सम्पत्ति-उपार्जन करें और उसका उपभोग करें। उसका उपभोग और उपार्जन अभी जिस तरह हो रहा है उसमें श्रमिक और मजदूर कमाता है और वह खाते हैं। "बैल कमाता है और घोड़ा खाता है" यह कहावत चरितार्थ हो रही है। इस तरह की बात नहीं होनी चाहिये। तो इसका इंटरप्रिटेशन आगे चल कर इस तरह हो जाना चाहिये कि आज जो व्यक्तिगत सम्पत्तिवाद का रूप है उसको समाजगत सम्पत्तिवाद का रूप दिया जा सके। सारे उत्पादन के साधन और उत्पादित वस्तु के वितरण का अधिकार एवं नियंत्रण समाज के हाथ हो, व्यक्तियों के हाथ में न हो। "Unless the individual ownership yields place to collective ownership—social ownership—there cannot be real Swarajya."

तो इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि इस तरह से इन प्रतिबन्धों की व्याख्या की जाये–इनको इंटरप्रेट किया जाये। इन शब्दों के साथ मैं इस धारा का समर्थन करता हूं।

***श्री अमिय कुमार घोष** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, आज हम इस विधान के एक बड़े ही महत्वपूर्ण खण्ड पर विचार कर रहे हैं। हम नागरिकों की स्वतंत्रता पर विचार कर रहे हैं। अर्थात् भारत निवासियों को इस विधान के

[श्री अमिय कुमार घोष]

अन्तर्गत क्या अधिकार होंगे। सम्पूर्ण खण्ड के पढ़ने पर मुझे यह प्रतीत होता है कि इस अनुच्छेद के उप-खण्ड (1) में जो अधिकार मान्य किये गये हैं उनको उत्तरवर्ती परादिकों द्वारा बहुत कुछ निराकृत कर दिया गया है। विधान में दो मुख्य बातें होती हैं और वे बातें ये हैं कि हमारे अधिकार क्या हैं और हमारी सरकार किस प्रकार की होगी। विधान में यही दो मुख्य विषय होते हैं और अन्य विषय उनसे ही निकलते हैं और इसलिये प्रत्येक व्यक्ति यह आशा करता है कि जहां तक मनुष्यों के अधिकारों का सम्बन्ध हैं उनको स्पष्ट तथा सीधी-सादी भाषा में अभिव्यक्त कर दिया जाये जिससे कि एक सामान्य व्यक्ति जिस समय इस विधान को पढ़े यह ठीक-ठीक समझ जाये कि उसके क्या-क्या अधिकार हैं और उसके अधिकारों पर क्या-क्या नियंत्रण हैं। मेरे कहने का यह आशय नहीं है कि सद्यस्कृत्य स्थिति अथवा गम्भीर परिस्थितियों में स्वतन्त्रता को किसी सीमा तक आयंत्रित करने की आवश्यकता नहीं है। मैं अधिकारों के आयंत्रणों और संतुलन में विश्वास करता हूं परन्तु इसके साथ-साथ मैं यह कहूंगा कि वे आयंत्रण बिल्कुल ठीक और स्पष्ट हों और असंदिग्ध भाषा में उनको रखा जाये तथा निर्णय के लिये न्यायालयों पर नहीं छोड़ा जाये।

श्रीमान्, आप देखेंगे कि इन (2), (3), (4), (5) और (6) समस्त उप-खण्डों में हमने 'जन सामान्य के हित', 'जन सामान्य हित, 'लोक-व्यवस्था' और 'सम्पत्ति' शब्दों का बिना उनकी व्याख्या किये हुये प्रयोग किया है और मेरे विचार से सर्वोच्च न्यायालय को यह बताने के लिये कि इन शब्दों का वास्तविक अर्थ क्या है, सैकड़ों वर्ष लगेंगे। उपखण्डों में ऐसे शब्द रख कर केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान-मण्डलों को ऐसे कानून बनाने का व्यापक अधिकार दे दिया है जिनके द्वारा वे उस स्वतन्त्रता पर आयंत्रण लगा सकते हैं जो इस अनुच्छेद के उपखण्ड (1) द्वारा लोगों को दी गई है। मैं इस अनुच्छेद की आलोचना में नहीं पड़ना चाहता हूं, मैं तो केवल यही कहना चाहता हूं कि यह समस्त खण्ड बड़ा ही निराशाजनक है।

मैं माननीय डॉक्टर बी.आर. अम्बेडकर का ध्यान विशेषतया उप-खण्ड (5) की ओर आकर्षित करूंगा। जो अधिकार खण्ड (1) के (घ), (ङ) और (च) उप-खण्डों द्वारा मान्य किये गये हैं उनको इस उप-खण्ड (5) द्वारा लगभग अमान्य कर दिया है। इसके कारण निवास स्थान और सम्पत्ति के अवापन तथा यापन सम्बन्धी विषयों की ठीक स्थिति के सम्बन्ध में अनेकों व्यक्तियों के मन

में गम्भीर चिन्ता उत्पन्न हो गई है। (ङ) और (च) के सम्बन्ध में खण्ड (5) के ठीक-ठीक अर्थ के लिये और भी स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। और मैं यह भी नहीं समझ पाता हूं कि इस खण्ड में "किसी आदिवासी जाति के हित-रक्षार्थ" शब्द क्यों रखे गये हैं। इनका ठीक-ठीक अर्थ क्या है, यह समझने में मैं असमर्थ हूं। क्या इसका अर्थ 'वनजाति-क्षेत्र' से है अथवा यह कि जहां कहीं कोई आदिवासी जाति रहती है, उनकी संख्या का ध्यान न रखते हुये, विधान-मण्डल उनके हितों का संरक्षण करते हुये कानून बना सकते हैं, उदाहरण के रूप में यदि दिल्ली में 15 आदिवासी रहते हैं तो क्या केन्द्रीय विधान-मण्डल कोई ऐसा कानून बना सकता है जिसके द्वारा वह इन पन्द्रह या सोलह आदिवासियों के हितार्थ अन्य व्यक्तियों के अधिकारों को आयंत्रित कर सके? यह बात तो मैं समझ सकता था कि वनजाति-क्षेत्र के सम्बन्ध में यह बात होती। परन्तु कोई भी व्यक्ति यह नहीं समझ सकता है कि जहां कहीं भी थोड़े से आदिवासी हों वहां का विधान-मण्डल कोई ऐसा कानून बना सके जिसके द्वारा वह उन थोड़े से व्यक्तियों की रक्षार्थ अन्य सब लोगों के अधिकार आयंत्रित कर सके।

श्रीमान्, मुझे यह प्रतीत होता है कि यह स्थिति संदिग्ध और भद्दी है और इसको स्पष्ट करना चाहिये। मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि खण्ड (घ) को उप-खण्ड (5) के साथ क्यों मिला दिया गया है। मेरा व्यक्तिगत विचार यह है कि इस उपखण्ड द्वारा अबाध पर्यटन आयंत्रित कर दिया गया है। नागरिकों को पर्यटन का स्वतंत्र अधिकार होना चाहिये। केवल प्रशासन अथवा राजनैतिक आधार पर विवेकपूर्वक ऐसे कानून के निर्माण करने का अधिकार केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय विधान-मण्डलों को दिया जा सकता है जिनके द्वारा वे लोगों के पर्यटन को आयंत्रित कर सकते हैं और इस अधिकार को बहुत कम तथा विशेष परिस्थिति में काम में लाना चाहिये। स्वतन्त्रता के प्रत्येक विषय पर जन सामान्य के हित में आयंत्रणों का आरोप किया गया है। परन्तु वह हित क्या है यह हम नहीं जानते और न कहीं वह बताया ही गया है। विभिन्न राज्यों और केन्द्र में ऐसे शब्दों की व्याख्या कई प्रकार से की जा सकती है और इसके कारण परस्पर पृथक् तथा विरोधी कानून बन सकते हैं। श्रीमान्, इससे बड़ी गड़बड़ी होगी। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि यदि इस अनुच्छेद का अध्ययन किया जाये और इस पर विचार किया जाये तो उससे निराशा ही होगी। थोड़ा और अधिक प्रयत्न करने से तथा इस ओर कुछ रुचि रखने से इस अनुच्छेद की रचना ऐसी सुन्दर भाषा में हो जाती कि समस्त विधान में यह एक आदर्श अनुच्छेद होता।

***उपाध्यक्षः** श्री टी.टी. कृष्णमाचारी!

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल) क्या मैं यह जान सकता हूं, श्रीमान्, कि क्या आप वक्ताओं को चिटों के आधार पर बुला रहे हैं?

***उपाध्यक्षः** मैं अपने कार्य-संचालन के सम्बन्ध में आपको कोई भी सूचना देने के लिये तैयार नहीं हूं।

***श्री गोपाल नारायण** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): इसका अर्थ यह है कि हमें बार-बार खड़े होने की आवश्यकता नहीं है। श्रीमान्, क्या हमें बारम्बार खड़ा होना है अथवा चिटें भेजनी हैं?

***उपाध्यक्षः** यह तो आपके हाथ में है। आप दोनों काम कर सकते हैं; आप चिट भी भेज सकते है और खड़े भी हो सकते हैं अथवा आप दोनों कामों में से एक भी न करें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, जैसा कि पूर्व-वक्ता ने कहा है, कदाचित् यह अनुच्छेद इस भाग में बड़ा ही महत्वपूर्ण है और यह वह अनुच्छेद है जो उन अधिकारों को क्रमबद्ध करता है, जिनको पाने के लिये हमने भारत में अपनी स्वतंत्रता-प्राप्ति-हेतु सारे कष्ट सहे। श्रीमान्, वास्तव में उस विधि के अनुसार राज्य इस विशेष अनुच्छेद में गिनाये हुये अधिकारों के प्रयोग करने का हक लोगों को दे रहा है कि वे यह प्रतीत कर सके कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये उन्होंने जो कार्य किये और जो त्याग किये वे वास्तव में उचित थे।

श्रीमान्, न तो मैं यह कहता हूं कि इस अनुच्छेद की रचना ठीक है और न मैं यह मानता हूं कि इस अनुच्छेद के भागों पर (2), (3), (4), (5), और (6) खण्डों में प्रावहित वर्जनों से उस स्वतंत्रता तथा अधिकार में कमी नहीं होती है जो खण्ड (1) में व्यक्तियों के लिये स्वीकृत किये गये हैं। परन्तु राजनीति का विद्यार्थी होने के नाते मुझे यह मानना पड़ेगा कि कोई अधिकार निरपेक्ष तो हो ही नहीं सकता और प्रत्येक अधिकार को विशेष परिस्थितियों में किसी न किसी विधि द्वारा संकुचित करना ही पड़ेगा क्योंकि ऐसा हो सकता है कि किसी अधिकार का पूर्णतः उसी सीमा तक प्रयोग नहीं किया जाये जो उस अधिकार के प्रतिपादन करने वाले शब्दों से प्रकट होती है। यह तो केवल दो कट्टर विचारधाराओं में परस्पर समझौते का विषय है। हाल ही में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के कारण यह हो सकता है कि हम उन समस्त अधिकारों को, जिनका प्रयोग व्यक्ति द्वारा हो सकता है, निरपेक्ष रूप में चाहते हैं। यह एक दृष्टिकोण हुआ। दूसरा दृष्टिकोण

यह है कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् जिस राज्य की सत्ता स्थापित की गई है वह शैशव में है और उसे अभी अनेकों प्रकार के कष्ट सहने हैं और इस बात को सुनिश्चित करने के लिये, कि राज्य निर्विघ्न होकर कार्य करे, जो कुछ हम कर सकते हैं उसका आश्वासन हमें देना चाहिये चाहे उसमें इस अनुच्छेद द्वारा प्रदत्त अधिकारों का न्यूनन ही क्यों न हो जाये। यद्यपि मुझे कभी-कभी किसी विशेष अवसर पर मसौदा-समिति के सामान्य कार्य की तीव्र आलोचना करनी पड़ी है, पर इसमें शक नहीं कि मसौदा-समिति ने इस बात में सुन्दर मध्यम मार्ग ग्रहण किया है कि उसने इस अनुच्छेद में उन अधिकारों की उचित क्रमबद्ध व्यवस्था की है जो व्यक्तियों के लिये आवश्यक समझे गये हैं और इसके साथ-साथ उसने उन अधिकारों पर ऐसे प्रतिबन्ध लगा दिये हैं जिनसे यह आश्वासन हो जाये कि राज्य और विधान, जिनके निर्माण करने का आज हम प्रयत्न कर रहे हैं, अबाध रूप में फलें-फूलेंगे।

श्रीमान्, भाषा का विषय सदैव बड़ा ही जटिल रहा है। जिन भावों का प्रतिपादन भाषा मुझे कराती है, सम्भव है वह अन्य व्यक्ति को उन्हीं भावों का प्रतिपादन न करा सके और ऐसा ही भाव मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने प्रकट किया है कि चूंकि हम एक ऐसी भाषा में विधान-निर्माण कर रहे हैं जो हमारे लिये विदेशी है उसके ठीक-ठीक अर्थ को हम नहीं समझ सकते। क्या हमें अपनी किसी भाषा में विधान-निर्माण करना चाहिये? इससे तो और भी बड़ी कठिनाई हो जायेगी, क्योंकि एक वर्ग के लोगों की भाषा वही नहीं है जो दूसरे वर्ग की है। इसके अतिरिक्त अभी हमारी भाषा में यथार्थ चिन्तन करने में इतनी उन्नति नहीं हुई है कि हम अपने वैधानिक प्रयोजनों के लिये उसे ग्रहण कर सकें। यह सत्य है कि यहां क्रमबद्ध किये गये इन विशेष प्रतिबन्धों की व्याख्या के लिये हमें सर्वोच्च न्यायालय पर निर्भर होना पड़ेगा या भविष्य में कुछ ऐसे प्राधिकारी बनाने पड़ेंगे जो यह निश्चित करें कि लोगों के अधिकारों को कम तो नहीं किया जा रहा है।

जिस परिस्थिति में हम हैं उसके सम्बन्ध में आज बोलते हुये हम केवल यही विचार प्रस्तुत कर सकते हैं कि राज्य की दृढ़ता को कायम रखने के लिये उन अधिकारों को कम किया जायेगा। जिस राज्य की अब स्थापना की गई है उस पर उसकी स्थापना के पश्चात् ही प्रथम 18 माह में अनेकों कष्ट पड़े हैं, और सभा का प्रत्येक सदस्य इस बात से परिचित है। केवल शरणार्थी समस्या को हल करने के लिये ही नहीं, अथवा न इस बात के ही लिये कि देश में ऐसी अनेकों शक्तियां हैं जो इस राज्य की वर्तमान रूप में उन्नति नहीं चाहती हैं, बल्कि उन

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

अनेकों आर्थिक कठिनाइयों के लिये, जो आज देश के सन्मुख हैं, सरकार को विशेष अधिकारों की आवश्यकता है। समस्या यह है कि क्या हम अपना विधान उन प्रतिबन्धों के साथ बना रहे हैं जो आज वर्तमान वस्तुस्थिति के अनुसार आवश्यक हैं; अथवा हमें उस काल का चिन्तन करना है जब वातावरण शान्त हो जायेगा और जब इन अधिकारों का प्रयोग करना राज्य के लिये आवश्यक न होगा। मेरा फिर यही विचार होता है कि इस विषय पर भी मसौदा-समिति तथा मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने सुन्दर मध्यम मार्ग को पसन्द किया है।

बैठने से पूर्व एक विषय और है जिस पर मैं जोर देना चाहूंगा। इस सभा में यद्यपि हम में से अधिकतर लोग एक ही दल के हैं, फिर भी आर्थिक विषयों पर हमारे विचार भिन्न-भिन्न हैं। इस खास बात में हम सब साथ थे कि अंग्रेज यहां से चले जायें; हमारी सबकी यही इच्छा है कि हमारा विधान स्थायी हो और जन साधारण को जिस बात की बहुत आवश्यकता है और जिसे वह पूर्व शासन व्यवस्था द्वारा प्राप्त नहीं कर सका उसे प्राप्त कराने का उसे आश्वासन दे। परन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये, किस विधि को ग्रहण किया जाये, इन बातों में हमारे विचार बहुत ही भिन्न-भिन्न हैं और इतने भिन्न हैं कि वे परस्पर विरोधी हैं। यह देख कर मैं खुश हूं कि मौलिक अधिकारों को क्रमबद्ध करते हुये इस विशेष अनुच्छेद में मसौदा-समिति ने उन आर्थिक उलझनों को न रखना पसन्द किया जो कि अन्य विधानों में रखी गई हैं। मेरे विचार से यह बड़ी बुद्धिमानी का कार्य हुआ है। मैं जानता हूं कि इस सभा में मेरे एक मित्र ने अनुच्छेद 13 के एक विशेष उपखण्ड (च) पर आपत्ति की है जो सम्पत्ति के अवापन, धारण और यापन से सम्बन्धित है। मैं इनको तथा अन्य उन लोगों को जिनके विचार भी उन्हीं जैसे हैं, यह आश्वासन देना चाहता हूं कि इसका वास्तविक अर्थ यह नहीं है कि यह निजी सम्पत्ति के सम्बन्ध में कोई ऐसा बड़ा अधिकार है; बल्कि किसी पूर्णतया समाजवादी राज्य-व्यवस्था में कोई व्यक्ति जिस अधिकार की इच्छा करेगा उससे यह किसी प्रकार भी अधिक नहीं है। जो कुछ किसी व्यक्ति के पास है, जो कुछ उसके जीवन के लिये नितान्त आवश्यक है, वह घर जिसमें वह रहता है उसके अधिकार में हो; वह चल सम्पत्ति जो उसके पास होनी चाहिये, वे वस्तुयें जो उसे खरीदनी हैं उसको प्राप्त हों। ये ऐसे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति के लिये उचित हैं और जिनको मेरे विचार से कोई भी समाजवादी राज्य-व्यवस्था—यदि वह साम्यवादी नहीं है तो—स्वीकार करेगी।

अमरीका के संविधान में सन्निहित अधिकार-पत्र द्वारा अथवा उसी संविधान के चौदहवें संशोधन द्वारा जो अधिकार मान्य किये गये हैं, उन परिगणित अधिकारों का जो आर्थिक महत्त्व है वैसा कोई महत्त्व इस हमारे संविधान में दिये गये अधिकारों का नहीं है और मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि इस संविधान की यह एक विशेष बात हैं। यद्यपि यह ठीक है कि हमारे देश में अभी तक निहित हित मौजूद हैं और उनका प्रभाव भी काफी है, फिर भी जहां तक हमसे बन पड़ा है हमने यही चाहा है कि इन आर्थिक परिस्थितियों को हम वह महत्त्व न दें जो कि उन्हें अमरीका के संविधान में विशेष रूप से दिया गया है और मुझे आशा है कि मेरे वे माननीय मित्र, जिन्होंने अभी इस अनुच्छेद के एक विशेष खण्ड, अर्थात् खण्ड (च) के बारे में आपत्ति उठाई थी, यह अब समझ गये होंगे कि जहां तक सम्पत्ति-अधिकार का सम्बन्ध है इस खण्ड को कोई विशेष महत्त्व नहीं है और यह इसीलिये रख दिया गया है क्योंकि इस प्रकार के अधिकारों की परिगणना में इस अधिकार की गणना करा देना भी लोगों के हृदय को प्रिय लगता है।

श्रीमान्, भविष्य कैसा होगा इस बारे में हम में से किसी को भी पूरा ज्ञान नहीं है, किन्तु इतना हम सब जानते हैं, कम से कम हम में से बहुतों को तो यह विश्वास है कि भविष्य सुन्दर होगा और भविष्य में राज्य प्रगतिशील होगा और यह भविष्य ऐसा होगा जिसमें राज्य लोगों के आर्थिक जीवन में अधिकाधिक मात्रा में हस्तक्षेप करेगा और ऐसी बात इसलिये न करेगा कि वह व्यक्तियों के अधिकारों को संकुचित करना चाहता है, वरन् इसलिये करेगा कि व्यक्तियों का जीवन सुन्दर हो। ऐसे राज्य की मैं कल्पना करता हूं—एक ऐसा राज्य जो निश्चेष्ट न रहे बल्कि सचेष्ट हो और इस देश में लोगों की दशा उन्नत करने के निमित्त काम करे। मेरी यह धारणा है और यह सुविख्यात तथ्य है कि किसी भी विधान में जिसका निर्माण किया जाता है उसमें विगत राजनैतिक विचारों का ऐसा समन्वय होना चाहिये कि उससे नई उन्नतिशील तथा आलोचनात्मक विचारधारा का नया स्तर तैयार हो जाये। मेरे विचार से जिस प्रकार अनुच्छेद 13 में अधिकारों को क्रमबद्ध किया गया है उससे ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं। श्रीमान्, इस विशेष अनुच्छेद की, जो कि मौलिक अधिकारों की आत्मा है, अंग्रेजों के विधान के भाष्यग्रन्थों से अथवा अमरीका के विधान-ग्रन्थों से अथवा अन्य किसी विधान से तुलना करने से कोई लाभ नहीं क्योंकि उनके आधार पूर्णतया भिन्न हैं। किसी व्यक्ति के यह कहने से कोई लाभ नहीं कि कोई विशेष बात अंग्रेजों के विधान में नहीं है। अंग्रेजों का कानून-विज्ञान सर्वथा भिन्न है, क्योंकि अंग्रेजों का

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

पार्लियामेंट पूर्णतया प्रथाश्रित अधिकारों की परिगणना का कोई प्रावधान नहीं करता है। प्रथाओं पर तो निर्भर किया भी नहीं जा सकता, क्योंकि वे बदलती रहती हैं और पार्लियामेण्ट पूर्ण प्रभुताशील होने के नाते उन्हें जब चाहे बदल सकती है। इस कार्य के लिये वैधानिक संशोधनों की भी आवश्यकता नहीं होती। पार्लियामेंट ऐसे नये कानून बना सकती है जो शताब्दियों से स्थापित रूढ़ियों और परिपाटियों को जड़ मूल से उखाड़ दे। परन्तु जहां तक अमरीका के उदाहरण का सम्बन्ध है, और यह सच है कि ऐसे अन्य उदाहरण हैं जो अमरीका के उदाहरण के अनुरूप हैं—हमारी विचारधारा और अमरीका के निर्माताओं की विचारधारा में तथा अब तक जो अमरीका ने माना है उसमें एक विशेष अन्तर है और वह यह है कि अमरीका के विधान का आर्थिक आधार हमारे विधान के उस आर्थिक आधार से, जिसको हम सोच रहे हैं, सर्वथा भिन्न है। अतः कोई भी सादृश्य किसी सीमा तक ही प्रयोज्य है इस कारण कोई भी हमारा मित्र, जो इस अनुच्छेद में अथवा अनुवर्त्ती अनुच्छेदों में अमरीका के विधान के विशेष प्रावधानों या विशेष शब्दों को लाना चाहता है, तो उसको यह मानना पड़ेगा कि इस सभा के बहुमत का आर्थिक दृष्टिकोण उससे सर्वथा अलग है जिस पर न्यूनाधिक रूप में प्रारम्भ से ही तथा उसके बाद भी अमरीका का विधान निश्चित हुआ और जिसके आधार पर वहां के विधिशास्त्र ने उस विधान से सम्बद्ध कई प्रकार की रूढ़ियों को जन्म दिया है।

श्रीमान्, मैं यह कहना चाहूंगा कि जो संशोधन मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने प्रस्तुत किये हैं, विशेष कर वे जो उन्होंने खण्ड (4), (5) और (6) पर किये हैं, उनसे मूल खण्डों में बहुत सुधार हो जाता है और मेरा निजी विचार यह है कि मूल मसौदे में जो कमियां थीं वे इनसे दूर हो जाती हैं। परन्तु मैं एक खास संशोधन पर जोर देना चाहूंगा जो मेरे मित्र श्री मुन्शी ने पेश किया है और जो यहां उपस्थित नहीं हैं। उस संशोधन का प्रयोजन केवल भावनात्मक ही है उसमें 'राजद्रोह' शब्द नहीं है। श्रीमान्, इस देश में 'राजद्रोह' शब्द के उल्लेखमात्र से हम कुपित हो जाते हैं क्योंकि हमारे राजनैतिक आन्दोलन के दीर्घ काल में 'राजद्रोह' शब्द का प्रयोग हमारे नेताओं के विरुद्ध किया गया। इस शब्द के प्रति घृणा प्रदर्शन करने में हम ही अनोखे नहीं हैं। वैधानिक कानून के विद्यार्थियों को यह स्मरण होगा कि 18वीं शताब्दि के अन्त में अमरीका की कानून की पुस्तकों में एक प्रावधान था, जो राजद्रोह के सम्बन्ध में एक विशेष कानून की व्यवस्था करता था जो केवल कुछ वर्षों के लिये था और न्यूनाधिक रूप में 1802 में अप्रचलित हुआ। इस शब्द से इस प्रकार की घृणा लगभग विश्वव्यापी सी प्रतीत होती है। यहां तक कि वे लोग भी घृणा प्रदर्शन करते हैं

जिनको इस शब्द के अर्थ और विषय से उतना कष्ट नहीं हुआ है जितना हमें। इसके साथ-साथ मेरे माननीय मित्र श्री मुन्शी का संशोधन जहां तक इस राज्य का सम्बन्ध है एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करता है। यह सम्भव हो सकता है कि दस वर्ष पश्चात् मौलिक अधिकारों में भाषण-स्वातन्त्र्य, सम्मेलन-स्वातन्त्र्य के निरपेक्ष अधिकार के वर्जन की व्यवस्था करना आवश्यक न हो। पर देश की वर्तमान दशा में मेरे विचार से यह आवश्यक है कि इन अधिकारों के प्रयोग पर कुछ विशिष्ट निर्बन्ध होने चाहियें। मेरे माननीय मित्र भी मुन्शी द्वारा पेश किये गये संशोधन में राज्य का अर्थ विधान है और मेरे विचार से जब हम एक ऐसा विधान बना रहे हैं जो हमारी सम्मति में दो सम्भाव्य बाह्य विचारों का समझौता है और हमारे लोगों की बुद्धि के अनुरूप है, तो यह आवश्यक है कि उस विधान के संधारण के लिये हमें समस्त सम्भाव्य सावधानियों को बरतना चाहिये और इसलिये मैं विचार करता हूं कि मेरे माननीय मित्र श्री मुन्शी द्वारा पेश किया गया संशोधन एक सुखद मध्यममार्ग है और ऐसा है कि आवश्यकता पड़ने पर जिसकी व्याख्या ऐसी की जा सकती है, यदि दुर्भाग्यवश ऐसी आवश्यकता हो जाय, कि राज्य को विशृंखलात्मक शक्तियों के विरुद्ध पर्याप्त रक्षा प्राप्त हो जाये।

श्रीमान्, एक और विषय है जिसका मैं बैठने के पूर्व जिक्र करना चाहता हूं और वह यह है कि अनुच्छेद 13 का उपखण्ड (ग) बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। मैं नहीं जानता हूं कि लोग वास्तव में इस बात को मानेंगे या नहीं, जब उनको यह विदित होगा कि अन्य देशों में विशेषकर संयुक्त राष्ट्र अमरीका में मजदूरों के अधिकारों को मान्य करने के विषय के, यूनियन के रूप में सम्मेलन करने के विषय के प्रारम्भिक अधिकार प्राप्त करने में मजदूरों को असीम कष्ट सहने पड़े। मैं नहीं समझता कि इस विशेष अनुच्छेद का खण्ड 4 अनावश्यक रूप में खण्ड (1) के उप-खण्ड (ग) द्वारा प्रदत्त अधिकारों का न्यूनन करता हो। मेरे निजी विचार ये हैं कि हमने उन कठिनाइयों का अन्त करने का न्यूनाधिक रूप में प्रयास किया है जिनका सामना अन्य देशों को इस सम्बन्ध में करना पड़ा और हमने मजदूरों को संगठन करने के वैध अधिकार, अपने और संघ के सदस्यों के जो न्यायोचित अधिकार हैं, उनके लिये आन्दोलन करने और उनको प्राप्त करने का आश्वासन उनको दे दिया है। मेरे विचार से यह न्यूनाधिक रूप में इस देश के मजदूरों के लिये अधिकार-पत्र है और यह देख कर मुझे खुशी हुई कि इस विशेष अधिकार को कम करने के लिये स्थिर स्वार्थरत व्यक्तियों ने किसी प्रकार का भी प्रयत्न नहीं किया। श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र श्री मुन्शी के संशोधन और खण्ड (4), (5) और (6) में डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधनों तथा "युक्तियुक्त"

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

शब्द के परिवर्द्धन के साथ, जिसको मेरे माननीय मित्र श्री ठाकुरदास भार्गव ने रखा है, यह विशेष अनुच्छेद मेरी सम्मति से हमारे अधिकारों को उचित रूप से क्रमबद्ध करता है और उन अधिकारों का उचित रूप से निर्बन्धन भी करता हैं। इन विशेष अधिकारों का क्रियान्वित करना हमारे लोगों के चातुर्य्य पर तथा इस बात पर निर्भर होगा कि हम स्वतन्त्रता के विचारों को किस प्रकार उन्नत करते हैं जो कि अभी बहुत ही अवनत अवस्था में हैं। नि:सन्देह यह सत्य है कि हमारे नेतागण कभी-कभी जल्दबाजी करते हैं, वे और अधिक शक्तियां चाहते हैं, जब उनके सामने कठिन परिस्थितियां आ जाती हैं तो वे यह सोचते हैं कि उनसे मुक्त होने का एकमात्र साधन यह है कि और शक्तियां प्राप्त हों। वे इस बात को नहीं मानते कि वे लोगों के नेता है इस देश के छटे छटाये नेता हैं। प्रत्येक नेता का अपना व्यक्तित्व है और उनके व्यक्तित्व तथा प्रभाव का सामूहिक असर किसी भी प्रचण्ड अधिकार की आवश्यकता को मेट सकता है। इस प्रकार का आत्मविश्वास तो कुछ समय पश्चात् ही उत्पन्न होगा—इस समय तो वे उन लोगों के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहते हैं जो इस देश के शासन-कार्य में हमारे पूर्ववर्त्ती थे, जिनका लोगों के साथ कोई भी सम्पर्क न था, जो कभी मंच पर नहीं पहुंच सकते थे और किसी कार्य को करने के लिये लोगों को प्रेरित नहीं कर सकते थे और जो केवल ऐसी शक्ति चाहते थे जिनका नौकरशाही के माध्यम द्वारा प्रयोग हो सके। इस विचारधारा में परिवर्तन होगा और अवश्य होगा, क्योंकि हमारे नेता गण्यमान्य व्यक्ति हैं। सभा इस बात को अवश्य ही स्वीकार करेगी कि प्रधान मन्त्री और उपप्रधान मन्त्री यदि किसी मंच पर पहुंच जायें तो करोड़ों व्यक्तियों को प्रभावित कर सकते हैं, केवल उनके शब्द लोगों के कानों तक पहुंचने चाहिये। जिन अधिकारों को यहां क्रमबद्ध किया गया है उनको इतना कम करना, कि वे निष्प्राण हो जायें, उन नेताओं पर निर्भर है जो हमें आगे प्राप्त होंगे और वे नेता लोग अभी देवताओं की गोद में खेल रहे हैं। उस समय तक के लिये हमने यथाशक्ति वह सर्वोत्तम कार्य किया है जिसकी कल्पना मात्र ही मानव कर सकता है।

श्रीमान्, हमारे समक्ष जो अनुच्छेद है, मैं उसका समर्थन करता हूं।

**श्री लक्ष्मीनारायण साहू** (उड़ीसा : जनरल): सम्माननीय उपप्रधान जी, जो अनुच्छेद 13 पर हम लोग यहां विचार कर रहे हैं उस अनुच्छेद पर पहले मैं एक बात कहना चाहता हूं कि जो स्वाधीनता हम लोगों को इसमें दी गई है उस स्वाधीनता के पहले subject to other provisions of this article लिख

कर पहले से डरा दिया गया है कि तुम लोग स्वाधीन हो, तुमको यह स्वाधीनता मिलती है, लेकिन स्वाधीनता इतने तरीके की मिलती है ज्यादा नहीं। फिर इसके नीचे जो उपखण्ड 2, 3, 4, 5, 6 लगाये गये हैं उससे फिर भी कहा जाता है कि तुम लोग इतने स्वाधीन ही हो, नहीं तो तुम लोगों को बहुत तकलीफ होगी, तुम दुःख में गिरोगे।

इसलिये मैं पहले कहना चाहता हूं कि यह दोनों हटा देने चाहिये। पहले तो "subject to other provisions of this article" इसको हटा देना चाहिये और नीचे जो उपखण्ड लगाये गये हैं 2, 3, 4, 5, 6 उनको हटा देना चाहिये तब तो हम लोगों के सामने स्वाधीनता की जो मूर्ति है वह हमें मालूम होगी कि कैसी है। जब तक यह उपधारा रहेगी तब तक हम लोगों को स्वाधीनता की पूरी मूर्ति मालूम नहीं हो सकती।

और एक बात मैं देखता हूं कि यह सेक्शन बनाने में ऐसा हुआ कि हम लोग जैसे एक मन्दिर बनाते हैं तो मन्दिर बनाते-बनाते, उसका जो प्रवेश द्वार है, जिसको हम लोग मुखशाला बोलते हैं, वह इतना बड़ा हो गया कि मन्दिर बहुत छोटा हो गया। हम लोगों के यहां उड़िया में एक कहावत है:

"घरे न पसुनू चाल बाजुछि देर लकू मुखशाला बलि गला"। इसका मतलब यह है कि हम लोग एक घर बनायें लेकिन घर के भीतर घुसने के वक्त केलपोष या (thatch) सर में लगता है। इसलिये मैं देखता हूं कि इसके ऊपर बहुत बहस हो गई है तो भी हम चाहते हैं कि हम लोग इसके ऊपर और अच्छी तरह से सोचें विचारेंगे और Drafting Committee इस पर ज्यादा ध्यान देगी और इस प्रकार की जो चीजें रहती हैं उनको हटा देना चाहिये और क्लाज 2, 3, 4, 5, 6 को हटा देना चाहिये। यह जब तक नहीं होगा हम लोग दिल में स्वाधीनता का स्वाद नहीं समझ सकते हैं, और बार-बार हमको इसका डर लगेगा।

यह कानून बनाने के लिये मैं देखता हूं कि जो आदमी कानून अपनी तरफ से तोड़ने के लिये कोशिश करते थे वही आदमी जब इस स्थान पर आ गये हैं, शासन के स्थान पर तो उन्हें जैसे डर लगता है कि बाहर के आदमी जो हैं वह सब कानून तोड़ देंगे, इसलिये वह कानून को इतना जकड़ देते हैं कि जिस से बाहर के आदमी जो अभी शासन के मालिक हैं उनसे बाहर जो आदमी हैं वह इधर-उधर भाग नहीं सकते हैं।

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

यह तो मैं कहता हूं कि सेक्शन 13 के भीतर जो हम लोग अभी बनाते हैं Draft Constitution उसमें बहुत ऐसी धारायें आ गई हैं, जिसमें हम लोग इधर-उधर भाग नहीं सकते हैं, तो भी क्यों इतना डर होता है। Article 25 में तो सब कहा गया है कि: "The right to move Supreme Court by appropriate proceedings for the enforcement of the rights conferred by this part is guaranteed." अत: अनुच्छेद 13 के सब provisions हटा देने चाहियें। आर्टिकल 25 से तब तो गवर्नमेण्ट को भी सुविधा होगी और जो good citizen है, उसको भी सुविधा हो जायेगी। जब तक यह नहीं होगा तब तक तो हम लोग स्वराज्य का आनन्द नहीं पा सकेंगे। और एक बात यह भी स्वच्छ है कि हम लोग बराबर चिल्लाते थे कि self-government is better than good government अब हम लोग ऐसी कोशिश करते हैं कि self-government का ख्याल नहीं करते हैं, कैसी good government होगी और good government किसके लिये। आज जो स्थान पर है वह तो इतना डरते हैं कि वह जिसे आने का आदर दिये थे, शायद जो बाहर के आदमी हैं, पोलिटिकल पार्टीज़ हैं, वह शायद कानून तोड़ देंगी। इसलिये इसमें बहुत बन्धन रखे गये हैं। इसलिये मैं चाहता हूं कि Fundamental Rights जो हैं वह Fundamental होने चाहियें। इसके भीतर इतने क्लाज, सब-क्लाज, इतने भेद रखने ठीक नहीं हैं।

और एक बात आदिवासियों के बारे में। श्री जयपालसिंह ने जो कुछ कहा है उसके साथ मैं थोड़ी दूर तक सहारा देना चाहता हूं। आदिवासी जो हैं वह आर्म्स ले कर जाते हैं। लेकिन यह हमको देखना चाहिये कि इस अंश में जो कहा गया है कि "to assemble peaceably and without arms"। उन लोगों की जो रीति-रिवाज हैं जिसमें वह आर्म्स लेकर जाते हैं उसको हटा दिया जायेगा या नहीं। मेरा ख्याल है कि जहां aboriginals के बारे में दूसरी-दूसरी बातें कही हैं, उन पर शायद यह लागू नहीं होगा। तो जब लागू नहीं होगा तो यह ठीक है। तो भी यह रहता है। तो "to assemble peaceably and without arms" जो यहां है इसमें मेरा कोई झगड़ा नहीं है। लेकिन आर्म्स एक्ट को हटा कर सब आदमियों को आर्म्स देने का अधिकार और हम लोग डरपोक नहीं रहेंगे, यह प्रबन्ध इस कान्स्टीट्यूशन में कहीं नहीं है। इसलिये मैं चाहता हूं कि यह प्रबन्ध यहां होना चाहिये कि आर्म्स एक्ट हटा दिया गया और सब आदमियों को आर्म्स रखने की इजाजत दी जायेगी। इस बारे में मैं ज्यादा नहीं कहना चाहता हूं।

अक्सर आज minority, minority बोलते हैं, उसकी बात अब नहीं करनी चाहिये। minority क्या है, जब हम लोग सब आदमियों के लिये एक provision करते हैं दो नहीं हैं, तो minority कौन है। Depressed Class minority है या नहीं? minority है। Aboriginals minority है या नहीं? minority है। मुसलमान minority है या नहीं? मुसलमान minority है। और दूसरे-दूसरे आदमी हैं जो कहेंगे हम भी minority हैं। Political parties में minority थी हिन्दू मुसलमान की, लेकिन फिर दूसरे आ गये। डिप्रेस्ड क्लासेज के भीतर दूसरा आ जायेगा। यह aboriginals इसी तरह हैं। इसलिये मैं चाहता हूं कि यह शब्द "minority" को हटा देना चाहिये, जहां-जहां वह आया है और सेक्शन 13 को ऐसा बनाना चाहिये जिसमें सब आदमियों के दिल में ऐसा भाव पैदा हो जायेगा कि सच्चा हम लोगों को स्वराज्य मिला है, स्वाधीनता मिली है और किसी आदमी को डर नहीं है। वह जहां चाहे हर एक आदमी के माफिक उसे भी घूमने-फिरने की इजाज़त मिली है, यह समझता है।

***श्री देशबन्धु गुप्ता** (दिल्ली): सभापति जी, इससे पहले मुझे एक बार ड्राफ्टिंग कमेटी की सिफारिशात पर इजहार राय करने का अवसर मिला है। उस मौके पर मैं इस काबिल न था कि मैं अपने लायक दोस्त डॉक्टर अम्बेडकर को और ड्राफ्टिंग कमेटी को इनकी सिफारिशात पर मुबारिकबाद दे सकता। उन सिफारिशात का सम्बन्ध चीफ कमिश्नर्स प्रोवेन्सेज़ से था। लेकिन आज मैं यह महसूस करता हूं कि यह दफा 13 जो कि हमारे बुनियादी हकूक से ताल्लुक रखती है वह इस काबिल है। खासतौर पर उस में जो तरमीम कर दी गई है उसके बाद यह दफा इस काबिल हो गई है कि उस पर हमें ड्राफ्टिंग कमेटी को हृदय से मुबारिकबाद देना चाहिये।

मेरे बाज दोस्तों ने यह ऐतराज उठाया है कि हकीकत में जो कुछ दिया गया है, वह दूसरे हाथ से ले लिया गया है लेकिन अगर आप गौर करें तो दरअसल ऐसा नहीं है। अगर किसी व्यक्ति को ऐसी आज़ादी दी जाये जिसका अर्थ यह हो कि उससे दूसरे व्यक्ति की आज़ादी में फर्क आये तो मैं समझता हूं कि इस तरह की आज़ादी की मांग करना वास्तव में सही किस्म की आज़ादी की मांग करना नहीं है। मिसाल के तौर पर यह कहा गया है कि जो लोग जरायम पेशा हैं, उन के एक जगह से दूसरी जगह जाने पर पाबन्दी लगा दी गई है। मैं पूछना चाहता हूं कि क्या यह ठीक होगा कि जब कि क्रिमिनल ट्राइब्स के लोग दूसरे लॉ अबाइडिंग सिटीज़न के लिये एक मुसीबत का सामान हो सकते हैं तो उनके

[श्री देशबन्धु गुप्ता]

मूवमेंट पर कोई रेस्ट्रिक्शन न लगाया जाये क्या कोई सीरियसली यह कह सकता है कि क्रिमिनल ट्राइब्स पर जो पाबन्दियां लगाई जाती हैं, जो रेस्ट्रिक्शन लगाये जाते हैं वह नहीं होने चाहियें और अगर वह लगाये जाते हैं तो उनसे हमारी आज़ादी में किसी प्रकार की कोई कमी पड़ जाती है।

इसी प्रकार से ज़मीन के बारे में कहा गया है कि हमारे हरिजन भाई अब ज़मीन नहीं खरीद सकेंगे। 'लेण्ड एलीनेशन एक्ट' इसी प्रकार से बना रहेगा। यह ठीक है कि 'लेण्ड एलीनेशन एक्ट' का काबिल एतराज़ पहलू या आब्जेक्शनेबुल फीचर यह था कि चन्द कास्ट डिफाइन कर दी गई थीं। जैसे कोई बनिया है या ब्राह्मण है या हरिजन है तो वह ज़मीन नहीं खरीद सकता। वह एक गलत बात थी। लेकिन आज जो यह एक बुनियादी हक ज़मीन खरीदने का हर शख्स को दिया जा रहा है, उसने हकीकत में इस रेस्ट्रिक्शन को हटा दिया है। अब अगर कोई पाबन्दी लगाई जायेगी तो यह साबित करना होगा कि वह माकूल रेस्ट्रिक्शन है या नहीं। और इसका फैसला जो बात इसी दफा में रखी गई है, उसके मुताबिक हमारी सुप्रीम कोर्ट करेगी। यह एक बहुत बड़ी चीज़ है। दफा हाजा के मसौदे में पहले एक कमी थी मगर रीज़नेबिल शब्द की जो तरमीम मेरे दोस्त पण्डित ठाकुरदास भार्गव की तहरीक पर मानी गई है, उसमें इस कमी को भी दूर कर दिया है। अब कोई ऐसी बात नहीं है कि जिससे किसी तरह की कोई नाजायज़ पाबन्दी लगाई जा सकती हो। ऐसा हुआ तो उसके खिलाफ अपील होगी जिसका फैसला हमारे यहां की सुप्रीम अदालत करेगी। जिसमें हमारे हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े माहिरीन मुश्तमिल होंगे। इसलिये मैं समझता हूं कि हमें इस धारा का स्वागत करना चाहिये। इसके बारे में कोई इस तरह का इम्प्रैशन देना कि यह हमारी आज़ादी में किसी तरह की कमी करती है, एक गलत बात होगी। हमें समझना चाहिये कि अब हमारा देश आज़ाद हो चुका है। और जैसा कि मेरे मित्र पंडित अलगूराय शास्त्री ने कहा कि इस आज़ादी के साथ ही साथ हम पर कुछ जिम्मेदारी भी आयद होती हैं। और उन जिम्मेदारियों को अगर हम नहीं मानेंगे तो वह एक जंगल की आज़ादी होगी। और मैं समझता हूं कि वह एक ऐसी आज़ादी नहीं होगी कि जिसका हम स्वागत कर सकें। इसलिये मैं समझता हूं कि यह क्लाज जिस प्रकार से अब बन चुका हैं, और इसमें जो तरमीम हो चुकी हैं, उसे हमें सहर्ष स्वीकार करना चाहिये और समझना चाहिये कि यह हमारे कान्स्टीट्यूशन

का एक आधार है और ऐसा आधार है जिस पर हम खुशी महसूस कर सकते हैं। और दुनिया के सामने अपना मस्तक ऊंचा करके चल सकते हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** श्रीमान्, मैं अनुच्छेद 13 को बहुत ही महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद समझता हूं क्योंकि वह उन कुछ मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में है जो संसार के समस्त स्वतन्त्र देशों तथा समस्त स्वतन्त्र नागरिकों को समान रूप से प्राप्त हैं। इस अनुच्छेद पर अनेकों संशोधन पेश किये गये हैं। उन सबको तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है। कुछ लोग खण्ड 1 में दिये गये अधिकारों पर समस्त आयंत्रणों को हटाना चाहते है। अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) में जिन मौलिक अधिकारों की प्रत्याभूति की गई है वे भाषण और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य, सम्मेलन-स्वातन्त्र्य, राज्य-क्षेत्र के अन्तर्गत अबाध पर्यटन का अधिकार, कोई भी व्यवसाय करने का अधिकार और कहीं भी बस जाने का अधिकार। इस खण्ड में रखे गये मौलिक अधिकारों के अपवाद हैं और वे अनुवर्त्ती खण्ड (2), (3), (4), (5) और (6) में दिये गये हैं। कुछ संशोधन इन खण्डों के निकालने के लिये हैं और कुछ संशोधन सुधार के लिये हैं जिससे कि इन परादिकों द्वारा उन अधिकारों का हरण न किया जा सके जो खण्ड (1) के अन्तर्गत प्रत्याभूत किये गये हैं।

पण्डित ठाकुरदास भार्गव ने एक संशोधन पेश किया है जिसमें यह कहा गया है कि यदि उन अधिकारों पर आयन्त्रणों का आरोप करना ही है जो खण्ड (1) में प्रत्याभूत किये गये हैं तो उन आयंत्रणों को युक्तियुक्त होना चाहिये। मेरा विश्वास है कि यह संशोधन यथेष्टरूप में परिस्थिति के अनुकूल होगा।

भाषण-स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में हमने उस आयंत्रण में सुधार कर लिये हैं जिसका खण्ड (2) में आरोप किया गया है। 'राजद्रोह' शब्द को हटा दिया गया है। यदि हमको यह विदित हो जाये कि उस समय की सरकार का यह स्वभाव हो गया है कि वह अपनी सत्ता स्थापित बनाये रखे, चाहे उसका प्रशासन कितना ही बुरा हो, तो देश के प्रत्येक व्यक्ति का यह मौलिक अधिकार होना चाहिये कि वह अहिंसात्मक तरीके से, लोगों को प्रेरित करके, प्रशासन में उसके दोष प्रकट करके, उसकी कार्यविधि में दोष प्रकट करके तथा ऐसे ही अन्य प्रकारों द्वारा उस सरकार को उखाड़ फेंके। 'राजद्रोह' शब्द पूर्ववर्त्ती प्रशासन-काल में घृणित हो गया था। हमने इसलिये 'राजद्रोह' शब्द को हटाने के संशोधन को स्वीकार किया है, सिवाय उस सूरत में जब कि समूचे राज्य को उखाड़ फैंकने के लिये या शक्ति

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

द्वारा अथवा अन्य प्रकार से नष्ट करने के लिये, जिससे कि दुर्व्यवस्था उत्पन्न हो जाये, प्रयास किया जाये। परन्तु सरकार पर हर प्रकार के आक्रमण को कानून के अन्तर्गत अपराध नहीं बनाना चाहिये। हमने वह स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है और हमने यह निश्चित कर दिया है कि कोई भी सरकार अपनी हिफाजत में कोई दण्ड-कार्यवाही तब तक न करे जब तक कि 'भाषणों द्वारा समूचे राज्य को उखाड़ फैंकने का प्रयास न किया जा रहा हो।

इसके पश्चात् कुछ ऐसे संशोधन हैं जो निर्धारित किये हुये मौलिक अधिकारों में परिवर्द्धन करने के लिये रखे गये हैं। उन पर विवरणपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। उन संशोधनों में से प्रमुख संशोधन इस बात की प्रत्याभूति करने के सम्बन्ध में हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को वैयक्तिक कानून के प्रयोग करने का अधिकार है। हमको समझ लेना चाहिये कि इसका क्या अर्थ होगा। हमने उस निदर्शक खण्ड में वैयक्तिक कानून पर पर्याप्त वाद-विवाद किया है; जिसमें यह निदेश दिया गया था कि जल्दी या देर में एक रूप व्यवहारविधि-संहिता बनाई जाय। इस प्रकार के संशोधन पेश किये गये हैं और कहा गया है कि जब तक मौलिक अधिकारों में ऐसा प्रावधान न रखा जायेगा तब तक कोई सुरक्षा नहीं होगी और बहुसंख्यक सम्प्रदाय अपने वैयक्तिक कानून को सबके लिये लागू कर सकेगा या नीचता से किसी भी सम्प्रदाय के वैयक्तिक कानून को रौंद सकेगा। हम सम्प्रदायों को लें। यहां मुख्यतया तीन धर्मों के लोग रहते हैं। यदि हम पहले मुसलमानों के बारे में विचार करें तो हमें पता चलता है कि मौलिक अधिकारों में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके बल पर, उनके वैयक्तिक कानूनों की मनमानी अवहेलना की जा सके। इस देश का विद्यमान कानून इस बात की यथेष्ट प्रत्याभूति देता है कि ऐसा न हो सकेगा। पर हमारे जिन मित्रों ने ये संशोधन पेश किये हैं वे इस बात के लिये दुहरी प्रत्याभूति चाहते हैं कि उनके वैयक्तिक कानूनों में हस्तक्षेप न किया जाये। मेरा निवेदन यह है कि यह मांग अव्यवहार्य है क्योंकि उक्त उन्नत समाज में रहने वाला व्यक्ति, चाहे फिर वह किसी विशेष सम्प्रदाय का सदस्य ही क्यों न हो, यह चाहता है कि उसके वैयक्तिक कानून में परिवर्तन हो जाये। आइये, हम मुस्लिम कानून को ही लें। मैं केवल उन दो या तीन संशोधनों का ही उल्लेख करूंगा जो शरियत के अनुसार निर्धारित कानूनों में किये गये हैं। अभी-अभी 1939 में ही केन्द्रीय विधान-मण्डल ने विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत मुसलमानों में विवाह-विच्छेद करने का कानून पारित

किया था। आपको यह जान कर खुशी होगी कि मुस्लिम कानून के अन्तर्गत मनुष्य को तलाक शब्द का उच्चारण करके विवाह-विच्छेद करने का पूर्ण अधिकार है और एक और प्रकार का विवाह-विच्छेद है जिसे खुला कहते हैं। स्त्री को सामान्यतया विवाह-विच्छेद का अधिकार नहीं है। उसे ऐसा करने के लिये किसी न्यायालय की शरण लेनी पड़ती है और नामर्दी इत्यादि ऐसे कई-कई कारणों को दिखाना पड़ता है। इस सबको अब सरल कर दिया गया है। एक और विचार यह है कि एक स्त्री जो पति के साथ एक घर में गृहस्थ जीवन का पालन नहीं कर सकती है उसे कुछ परिस्थितियों में पृथक् होने का अधिकार है। इन पर न तो अब तक विचार ही किया गया है और न मुसलमानों के विवाह-विच्छेद अधिनियम में इनकी व्यवस्था ही है। विधान-मण्डन का सदस्य होने के नाते मैं उस समिति का सदस्य था जिसने इस प्रश्न पर विचार-विमर्श किया था। हमने इस विषय को पूर्णतया तत्सम्बन्धी मुसलमान सदस्यों के निश्चय के लिये छोड़ दिया। विधान-मण्डल में शरियत के कानून का पुर:स्थापन हुआ और भारत के प्रान्तों में विभिन्न भांति के कानूनों को शरियत के कानून के अनुरूप बनाने का एक अधिनियम पारित किया गया। यह चार वर्ष पूर्व किया गया था। वक्फ वैधकरण अधिनियम, 1930 में पारित किया गया था। ऐसा समय आ सकता है जब किसी विशेष सम्प्रदाय के सदस्य यह महसूस करें कि सम्प्रदाय के हितार्थ उन्नतशील कानून का निर्माण किया जाना आवश्यक हैं। परन्तु यदि हम यहां ऐसा प्रावधान रख दें कि वैयक्तिक कानून में हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा तो उस कानून में परिवर्तन करने का कोई अधिकार उस सम्प्रदाय के सदस्यों को नहीं रहेगा। इसलिये यह आवश्यक नहीं है कि हम मौलिक अधिकारों के रूप में इसका पुर:स्थापन करें। इस विधान में ऐसा कुछ भी नहीं है जो बहुसंख्यकों को अल्पसंख्यकों पर किसी प्रकार अत्याचार करने दें। यह तो केवल शक्ति प्रदान करने वाला प्रावधान है। जिस अल्पसंख्यक सम्प्रदाय पर प्रभाव पड़ता हो उसकी अनुमति के बिना ऐसा कोई कानून नहीं बनाया जायेगा। इसलिये मुझे यह लगता है कि इसे मौलिक अधिकारों में रखना आवश्यक है।

मेरे मित्र श्री कामत चाहते हैं कि हमें शस्त्र-धारण करने का अधिकार होना चाहिये और इस अधिकार को मौलिक अधिकारों में रखा जाये। यह सच है कि बहुत समय से कांग्रेस प्रति वर्ष प्रस्ताव पारित करती चली आई है कि हमें शस्त्र-धारण करने का अधिकार प्राप्त हो। पर अब परिस्थिति बदल गई है। उस समय हम गुलाम थे और अपने आप को खूब सुसज्जित करना चाहते थे जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर हम विदेशी शासन से मुक्त होने के लिये शस्त्रों का प्रयोग

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

कर सकें। परन्तु आज इस सुसभ्य संसार में, क्या मैं अपने माननीय मित्र से पूछ सकता हूं कि वे क्या यह सोचते हैं कि अपने को बचाने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को युद्ध करने का अधिकार दिया जाये। विकट परिस्थितियों के अतिरिक्त अन्यत्र शक्ति का प्रयोग नहीं होना चाहिये। यदि शक्ति को प्रयोग करना ही है तो उसको राज्य में केन्द्रीभूत करना चाहिये। राज्य को ही मनुष्यों अथवा नागरिकों का मध्यस्थ होना चाहिये जब कि वे लड़ना चाहते हों। व्यक्तिगत रूप में किसी भी नागरिक को दूसरे पर आक्रमण नहीं करने देना चाहिये। शस्त्र धारण करने के अधिकार का बहुधा दुरुपयोग किया जाता है।

***श्री एच.वी. कामतः** अपनी रक्षा के निमित्त भी नहीं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** जिन बलवान नवयुवकों के खून में जोश है उनके लिये आत्मरक्षा करना बहुधा आक्रमण के बराबर होता है, जैसी बात कि श्री कामत के बारे में कही जा सकती है। श्री कामत की आत्मरक्षा बहुधा आक्रमण के रूप में ही होती है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं इस बात पर घोर आपत्ति करता हूं, श्रीमान्।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** मुझे खेद है, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** उन्होंने अपना खेद प्रकट कर दिया है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** मैं अपने युवा मित्र और उनकी वीरता का महान आदर करता हूं।

जहां तक साम्प्रदायिक प्रश्न का सम्बन्ध है, एक ऐसा संशोधन यहां उपस्थित किया गया है जिसके द्वारा उसको मौलिक अधिकारों में रखने की अपेक्षा की गई है। ऐसा नहीं हो सकता है। इस आशय के लिये दण्ड-संहिता में 153 और 155-क धाराओं के अन्तर्गत प्रावधान हैं और वे ही पर्याप्त हैं।

विचार-स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि एक ऐसा संशोधन पेश किया गया है जिसमें कहा गया है विचार-स्वातन्त्र्य होना चाहिये। विचार-स्वातन्त्र्य को कोई नहीं रोक सकता। वह एक मौलिक अधिकार है। वह तो अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य है जो मिलना चाहिये। मुद्रण-स्वातन्त्र्य का अर्थ अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य है। तार और टेलीफोन के द्वारा भेजी गई सूचना को गुप्त

रखने के अधिकार के बारे में मत-विभिन्नता हो सकती है और वर्तमान प्रावधान में हमें काई परिवर्तन नहीं करने देना चाहिये।

इसलिये सिवाय उन संशोधनों के जो डॉक्टर अम्बेडकर को मान्य हैं औरों को स्वीकार नहीं करना चाहिये। वे आपत्तिजनक हैं और उनको विधान में स्थान नहीं मिलना चाहिये।

***श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): मैं प्रस्ताव करता हूं कि अब इस विषय पर मत लिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** मुझसे एक बात पूछी गई थी कि मैंने सभा की कार्यवाही का किस प्रकार से संचालन करने का प्रयत्न किया है। उस समय मैंने कोई सूचना देने के लिये मना कर दिया था क्योंकि मैंने सोचा था कि मैं जिस प्रकार कार्यवाही का संचालन करता हूं उसकी व्याख्या करना मेरे स्वविवेक पर छोड़ दिया जाये। इस समय मेरे पास 25 सज्जनों की अलग-अलग 25 सूचनायें हैं और वे सब बोलने के लिये इच्छुक हैं। इसमें कोई शक नहीं कि इनमें से प्रत्येक व्यक्ति वाद-विवाद द्वारा कुछ न कुछ सहायता देगा ही। परन्तु अनिश्चित काल तक के लिये वाद-विवाद नहीं बढ़ाया जा सकता हैं इसमें वे लोग शामिल नहीं हैं जो अपनी सम्मति प्रदान करने में समान रूप से योग्य हैं और जो खड़े हुये थे पर उन्होंने मेरे पास कोई सूचना नहीं भेजी। मैंने सभा का एक समूचे रूप में विचार प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। यदि माननीय सदस्य कृपा कर उन वक्ताओं की सूची का अनुशीलन करेंगे जो सभा में भाषण दे चुके हैं तो उनको विदित होगा कि प्रत्येक प्रान्त का प्रतिनिधान हो चुका है और प्रत्येक प्रान्त के तत्कथित अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधान हो चुका है। पण्डित लक्ष्मीकांत मैत्र चाहे जो कुछ कहें, मेरे विचार से बंगाली बहुसंख्यकों में हैं। मेरे विचार से तो विषय पर पूर्ण वाद-विवाद हो चुका है। पर, सदैव की भांति मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या सभा की यह इच्छा है कि हम वाद-विवाद समाप्त कर दें।

***माननीय सदस्यगण:** जी हां, जी हां।

***उपाध्यक्ष:** तो फिर मैं डॉक्टर अम्बेडकर को उत्तर देने के लिये आमन्त्रित करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद 13 पर जो अनेकों संशोधन पेश किये गये हैं उनमें से मैं संशोधन

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

संख्या 415, श्री मुन्शी के संशोधन सं. 86 द्वारा संशोधित संशोधन सं. 453 और श्री ठाकुरदास भार्गव के "युक्तियुक्त" शब्द को जोड़ देने वाले संशोधन द्वारा परिवर्तित सूची 1 का संशोधन सं. 49 को स्वीकार करने का विचार रखता हूं।

***उपाध्यक्षः** क्या आप कृपा करके हमें यह बतायेंगे कि संशोधन सं. 415 को स्वीकार करने का आप किस प्रकार विचार रखते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वह संशोधन जो "इस अनुच्छेद के अन्य प्रावधानों के अधीन" शब्दों को निकालने का प्रयास करता है।

***उपाध्यक्षः** और इसके पश्चात् क्या?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इसके पश्चात् मैं संशोधन सं. 86 द्वारा परिवर्तित रूप में सं. 453 और पण्डित ठाकुरदास के 'युक्तियुक्त' शब्द के पुर:स्थापन करने वाले संशोधन द्वारा परिवर्तित रूप में सूची 1 के संशोधन सं. 49 को स्वीकार करता हूं।

अन्य संशोधनों और इन संशोधनों को पेश करते हुये वक्ताओं के भाषणों में उठाये गये प्रश्नों के सम्बन्ध में मैं देखता हूं कि केवल थोड़े से ही प्रश्न हैं जिनके उत्तर देने की आवश्यकता है।

अनुच्छेद 13 पर सामान्य आक्रमण के सम्बन्ध में जिसको उपखण्डों से खण्ड (1) तक केन्द्रित किया गया है, मैं यह कह सकता हूं कि सभा अब यह प्रतीत करने लगी होगी कि पुर:स्थापित किये गये संशोधनों के सहित अनुच्छेद का जो स्वरूप हो गया है वह सामान्यतया संतोषजनक है। मेरे विचार में अनुच्छेद 8 की महत्ता पर मेरी व्याख्या से, "वर्तमान विधि" पद पर मेरे संशोधन से और "युक्ति-युक्त" शब्द के पुर:स्थापन से, उन दोषों का निराकरण हो जाता है जो माननीय सदस्यों ने भाषण देते समय प्रकट किये थे। और मैं समझता हूं कि मेरे मित्र प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना, श्री टी.टी. कृष्णमाचारी और श्री अलगूराय शास्त्री द्वारा दिये गये भाषणों से सभा को यह विश्वास हो गया होगा कि संशोधनों के सहित अनुच्छेद का जो वर्तमान स्वरूप है उसको ग्रहण करने में अब कोई कठिनाई नहीं होगी। इसलिये इस अनुच्छेद के समर्थन में जो कुछ मेरे मित्रों ने कहा है उससे अधिक मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता हूं। सच तो यह है कि इस

अनुच्छेद के समर्थन करने हेतु दिये गये भाषणों में जिन तर्कों का प्रयोग किया गया है उनको और सुन्दर बनाने में मुझे बहुत ही कठिनाई प्रतीत होती है।

मैं इसलिये अन्य विषयों को लूंगा। उनमें से भी बहुतों को मेरे मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर द्वारा निपटा दिया गया है और, श्रीमान्, यदि आप मुझे नहीं बुलाते तो मैं यही कह देता कि उनके भाषण को मेरा भाषण समझ लिया जाये, क्योंकि उन्होंने उन समस्त विषयों को निपटा दिया है जिन पर मैंने ध्यान दिया था।

मैंने तो केवल एक बात पर ध्यान दिया है और अपने उत्तर में उसका हवाला देने के लिये मैंने सोचा था। मेरे मित्र प्रो. के.टी. शाह ने कहा था कि मुद्रण-स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में मौलिक अधिकारों में कुछ नहीं कहा गया है। मेरे विचार में जो उत्तर मेरे मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने दिया है वह पूर्ण उत्तर है। किसी व्यक्ति या नागरिक की अभिव्यक्ति ही मुद्रण का दूसरा रूप है। मुद्रण के कोई विशेष अधिकार नहीं होते जो किसी नागरिक को उसके निजी रूप में न दिये जायें या जिनका वह प्रयोग न कर सके। मुद्रित प्रति के सम्पादक अथवा प्रबन्धक सब नागरिक ही होते हैं और इस कारण जब कि वे समाचार-पत्रों में कुछ लिखना चाहते हैं तो वे केवल अपने अभिव्यक्ति-अधिकार का प्रयोग करते हैं। इसलिये मेरे विचार से तो मुद्रण-स्वातन्त्र्य के खास ज़िक्र की कोई जरूरत नहीं है।

शस्त्र-धारण करने के सम्बन्ध में, जिस पर मेरे मित्र श्री कामत इतने अधिक उत्तेजित हो गये थे, मेरे विचार से जो स्थिति हमने ग्रहण की है वह बिल्कुल स्पष्ट है। यह सत्य है और सबको विदित है कि कांग्रेस इस बात का आन्दोलन करती रही कि शस्त्र-धारण करने का अधिकार होना चाहिये। इसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता है। वह तो इतिहास सम्बन्धी बात है। पर साथ ही साथ मेरे विचार से सभा को यह नहीं भूल जाना चाहिये कि जिन परिस्थितियों में कांग्रेस ने ऐसे प्रस्ताव स्वीकार किये थे वे परिस्थितियां अब इस समय वर्तमान नहीं हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** बड़ा ही चातुर्यपूर्ण तर्क है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जी हां, इसीलिये ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को शस्त्र-धारण करने की आज्ञा नहीं दी थी—और ऐसा उन्होंने शान्ति और आदेश के आधार पर नहीं किया था बल्कि इस आधार पर कि एक विदेशी सरकार के विरोध में अधीनस्थ प्रजा को शस्त्र-धारण करने का अधिकार नहीं होना चाहिये जिससे कि वह सरकार को उखाड़ फैंकने के लिये संगठित न हो सके।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

अतः मेरे विचार से वे आधारभूत विचार, जिनसे प्रेरित होकर ये संकल्प पारित किये गये थे, अब मिट गये हैं। वर्तमान परिस्थितियों में मैं स्वयं यह नहीं सोच सकता कि राज्य किस प्रकार शासन-कार्य का संचालन कर सकेगा; यदि प्रत्येक व्यक्ति को बाजार जाने और बेरोक-टोक तमाम तरह के आक्रमणकारी शस्त्र खरीदने का अधिकार प्राप्त हो।

***श्री एच.वी. कामतः** एक स्पष्टीकरण का प्रश्न है, श्रीमान् इस अधिकार को आयन्त्रित करने के लिये परादिक दिया हुआ है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वह परादिक क्या करता है? उस परादिक में क्या कहा गया है? परादिक केवल नियमन कर सकता है और "नियमन" शब्द की व्याख्या शर्तों के न्यायालयों ने यह की है कि उसका अर्थ है विनिधान करना, पर शर्तें कभी ऐसी नहीं हो सकतीं, जिनसे नागरिकों के शस्त्र-धारण करने का अधिकार निराकृत हो जाये। इसलिये नियमन स्वयं किसी नागरिक को, जो शस्त्र-धारण करने का अधिकार प्राप्त करना चाहता है, शस्त्र-धारण करने में बाधा नहीं डालेगा। समस्त नागरिकों को बिना किसी भेद-भाव के ऐसे किसी मौलिक अधिकार के देने की नीति पर मुझे बड़ी आपत्ति है। उदाहरण के रूप में यदि श्री कामत का प्रस्ताव, कि प्रत्येक व्यक्ति को शस्त्र-धारण का मौलिक अधिकार हो, स्वीकार कर लिया जाये तो हजारों लाखों व्यक्तियों को, जिनको आज जरायम पेशा लोगों में शामिल किया जाता है, शस्त्र-धारण करने का अधिकार होगा। सब तरह के लोगों को, चाहे वे स्वभाव से अपराधी ही हों, शस्त्र-धारण करने का अधिकार की मांग करने का हक हो जायेगा, आप यह तो कह ही नहीं सकते कि इस परादिक द्वारा किसी व्यक्ति को इस कारण शस्त्र-धारण करने का अधिकार नहीं होगा कि वह किसी विशेष वर्ग का है।

***श्री एच.वी. कामतः** यदि डॉ. अम्बेडकर इस परादिक को पूर्ण रूप से स्पष्टतया समझते हैं तो उनको यह अनुभव होगा कि मेरे संशोधन का यह प्रभाव नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इस समय मैं यह बात नहीं मान सकता हूं। मेरे पास अब अधिक समय नहीं है। मैं उस स्थिति को स्पष्ट कर रहा हूं जिसको मसौदा-समिति ने ग्रहण किया है। बात तो यह है कि इस भेदरहित

अधिकार को प्रदान करना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त मेरा निवेदन यह है कि जहां तक शस्त्र-धारण करने का सम्बन्ध है हमें इस बात पर आग्रह नहीं करना चाहिये कि व्यक्ति को शस्त्र-धारण करने का अधिकार हो, वरन् इस बात पर आग्रह करना चाहिये कि व्यक्ति का शस्त्र-धारण करने का कर्त्तव्य है। (**एक माननीय सदस्यः धन्य, धन्य**)। सत्य बात तो यह है कि जो कुछ अधिकार हमें प्राप्त करना चाहिये वह यह है कि जब सद्यस्कृत्यस्थिति उत्पन्न हो, जब युद्ध हो, जब विप्लव हो, जब राज्य की स्थिरता और सुरक्षा संकट में हो उस समय राज्य की रक्षा हेतु राज्य के प्रत्येक व्यक्ति को शस्त्र-धारण करने के लिये आमन्त्रित करने का अधिकार हो। इस बात को हमें मान लेना चाहिये और अनुच्छेद 17 के परादिक द्वारा हमने इस स्थिति को सुरक्षापूर्ण बना दिया है।

***श्री एच.वी. कामतः** (बीच में बोलने के लिये खड़े हुये।)

***उपाध्यक्षः** श्री कामत, आप बाधा न डालिये। आप यह नहीं कह सकते कि मैंने आपको यथेष्ट सुविधा नहीं दी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वैयक्तिक कानून के प्रश्न के सम्बन्ध में, मेरे विचार से इस विषय पर उस समय पूर्ण और यथेष्ट रूप से वाद-विवाद तथा विचार-विमर्श कर लिया गया था जब कि हमने इस विधान के एक निदेशक सिद्धान्त पर वादानुवाद किया था जो राज्य को एक रूप व्यवहार-संहिता के प्रचलन हेतु प्रयास करने का अधिकार प्रदान करता था। मैं समझता हूं कि इस बात का और आगे तक हवाला देना अनावश्यक है, पर मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि विधान में इस प्रकार का रक्षात्मक खण्ड रख दिया गया तो वह भारत के स्मृतिज्ञों को समाज सम्बन्धी किसी भी अधिनियम के बनाने के लिये निर्योग्य बना देगा। इस देश में धार्मिक प्रवृत्ति इतनी प्रबल है कि वह जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त जीवन के प्रत्येक अंग से सम्बन्धित है। ऐसी कोई बात नहीं है जिसका धर्म से सम्बन्ध न हो और यदि वैयक्तिक कानून की रक्षा करना ही है तो मुझे विश्वास है कि समाज सम्बन्धी विषयों में हम जहां हैं वहीं रहेंगे। मैं नहीं समझता हूं कि इस प्रकार की स्थिति को स्वीकार करना सम्भव है। इस कथन में कोई विलक्षणता नहीं है कि अब भविष्य में हमें धर्म की परिभाषा को इस प्रकार सीमित करना चाहिये कि हम विश्वासों तथा उत्सवों से सम्बन्धित कृत्यों से, जो प्रमुखतया धार्मिक हों, आगे न बढ़ें। यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रकार के कानून जैसे कि काश्तकारी कानून, उत्तराधिकार सम्बन्धी कानून धर्म द्वारा

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

प्रशासित हों। यूरोप में ईसाई मत है, पर ईसाई मत का यह अर्थ नहीं है कि समस्त संसार के ईसाइयों के लिये या यूरोप के किसी भाग के ईसाइयों के लिये, जिसमें वे रहते हैं, उत्तराधिकार कानून की समान पद्धति हो। ऐसी कोई बात नहीं है। मैं स्वयं यह नहीं समझ पाता कि धर्म का इतना महान् और वृहद् न्याय-क्षेत्र क्यों रखा जाये कि वह सम्स्त जीवन पर छा जाये और उस क्षेत्र में विधान-मण्डल के हस्तक्षेप करने तक में बाधा डाले। आखिरकार यह स्वतन्त्रता हम किसलिये प्राप्त कर रहे हैं? हम इस स्वतन्त्रता को अपनी सामाजिक पद्धति में सुधार करने के लिये प्राप्त कर रहे हैं। हमारी सामाजिक पद्धति बहुत पक्षपातपूर्ण है। बहुत वैषम्य, भेद-विभेद तथा अन्य बातों से पूर्ण है और ये बातें हमारे मौलिक अधिकारों की विरोधिनी हैं। अत: किसी व्यक्ति के लिये वह विचार करना बिल्कुल ही असम्भव है कि राज्य के न्याय-क्षेत्र से वैयक्तिक कानून निकाल दिये जायेंगे। यह कहने के पश्चात् मैं यह संकेत भी करना चाहूंगा कि इस विषय में राज्य की केवल कानून-निर्माण करने की मांग है। राज्य पर यह कर्त्वभार नहीं है कि वैयक्तिक कानूनों को समाप्त कर दिया जाये। यह अधिकार प्रदान करना मात्र है। अत: इस बात से किसी को संशकित नहीं होना चाहिये कि चूंकि राज्य को अधिकार है इसलिये राज्य तुरन्त ही इस प्रकार से इस अधिकार का प्रयोग अथवा प्रवर्त्तन करने लग जायगा जो भारत के मुसलमानों, ईसाइयों अथवा किसी अन्य सम्प्रदाय को आपत्तिजनक प्रतीत हों।

हम सबको याद रखना चाहिये—और मैं उन मुसलमान जाति के सदस्यों को भी इसमें शामिल कर लेता हूं जो इस विषय पर बोल चुके हैं और जिनकी भावनाओं का पर्याप्त आदर किया जा सकता है—कि चाहे प्रभुता को असीम ही क्यों न कहा जाये, वह सचमुच में होती है सर्वदा सीमित और वह इसलिये कि प्रभुता को अपनी शक्ति के प्रयोग में इस बात का विचार रखना पड़ता है कि वह प्रयोग विभिन्न समुदायों की भावनाओं के अनुकूल हो। कोई भी सरकार अपने अधिकार का इस तरह प्रयोग नहीं कर सकती कि मुसलमान सम्प्रदाय भड़क उठे और विद्रोह करने लगे। मेरे विचार से वह एक पागल सरकार ही होगी जो ऐसा करे। परन्तु यह एक ऐसा विषय है जिसका सम्बन्ध अधिकार के प्रयोग से है न कि स्वयं अधिकार से।

श्रीमान्, मेरे मित्र श्री जयपालसिंह ने आदिवासियों के सम्बन्ध में मुझ से कुछ प्रश्न किये हैं। मेरे विचार से जब हम पांचवीं और छठी अनुसूची पर वाद-विवाद करें उस समय इस प्रश्न का उठाया जाना उचित होगा, परन्तु चूंकि उन्होंने इन

प्रश्नों को उठा दिया है और चूंकि जो कठिनाइयां उन्होंने अनुभव की हैं, उनको सुलझाने के लिये उन्होंने विशेषकर मुझ से कहा है, मैं उस विषय पर इस समय विचार प्रस्तुत करता हूं। सभा ने यह जान लिया होगा कि आदिवासियों के सम्बन्ध में हमने विधान के मसौदे में किस स्थिति को ग्रहण किया है। हमने क्षेत्रों की दो श्रेणियां की हैं—अनुसूचित-क्षेत्र और वनजाति-क्षेत्र—वनजाति-क्षेत्र वे क्षेत्र हैं जो केवल आसाम प्रान्त में ही हैं, और अनुसूचित क्षेत्र वे क्षेत्र हैं जो आसाम के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में हैं। ये वास्तव में, भारतीय सरकार एक्ट में हम जिनको "अंशत: वर्जित क्षेत्र" के रूप में प्रयोग करते थे, उनके भिन्न नाम हैं। इससे अधिक और कुछ नहीं हैं। अनुसूचित वनजातियां दोनों में रहती हैं अनुसूचित क्षेत्रों में भी और वनजाति-क्षेत्रों में भी, और अनुसूचित क्षेत्रों की अनुसूचित वनजातियों तथा वनजाति-क्षेत्रों की अनुसूचित जातियों में परस्पर अन्तर यह है: अनुसूचित क्षेत्रों की अनुसूचित वनजातियों पर पांचवीं अनुसूची की कंडिका 5 के प्रावधान लागू होते हैं। इस अनुसूचित के अनुसार संसद् अथवा स्थानीय विधान-मण्डल द्वारा स्वीकृत सामान्य कानून अपने आप लागू हो जाते हैं, यदि गवर्नर इस प्रकार की घोषणा न करे कि अमुक कानून अथवा अमुक कानून का अमुक भाग लागू नहीं होगा। वनजाति क्षेत्र में अनुसूचित वनजाति की स्थिति कुछ भिन्न है। वहां संसद् अथवा स्थानीय विधान-मण्डल द्वारा निर्मित कानून तब तक लागू नहीं होगा जब तक गवर्नर उस कानून को वनजाति क्षेत्रों के लिये प्रसारित न करे। एक पर तो यदि कानून का अपवर्जन न किया जाये तो वह लागू हो जाता है और दूसरे पर यदि कानून का प्रसार न किया जाये तो वह लागू नहीं होता। स्थिति यह है।

अनुसूचित वनजातियों के प्रश्न पर यह पूछा जा सकता है कि मैंने "आदिवासी" के स्थान में "अनुसूचित" शब्द क्यों रखा। इस बात पर मेरा उत्तर यह है। जैसा कि मैंने कहा है "अनुसूचित वनजाति" शब्द का एक निश्चित अर्थ है क्योंकि वह वनजातियों को क्रमबद्ध करता है जैसा कि आप दोनों अनुच्छेदों में पायेंगे। "आदिवासी" शब्द वास्तव में एक सामान्य शब्द है जिसका कोई विशिष्ट कानूनी अर्थ नहीं है। यह कुछ-कुछ अछूत शब्द के समान है। इसका कोई निश्चित कानूनी अर्थ नहीं है। इसीलिये सन् 1935 ई. के भारतीय सरकार के अधिनियम में यह आवश्यक समझा गया कि "अछूत" शब्द का कुछ कानूनी अर्थ किया जाये और यही सुविधाजनक समझा गया कि उन जातियों को क्रमबद्ध कर दिया जाये, जो विभिन्न प्रान्तों तथा क्षेत्रों में वहां के रहने वालों द्वारा अछूत समझी जाती हैं। आदिवासियों के सम्बन्ध में भी यही प्रश्न उठ सकता है। आदिवासी कौन हैं? और यह प्रश्न संगत होगा क्योंकि इस विधान द्वारा हम

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

आदिवासियों को कुछ अधिकार, कुछ विशेषाधिकार प्रदान कर रहे हैं। यदि यह विषय न्यायालय में प्रस्तुत होगा तो उसके लिये आदिवासी कौन हैं, इसकी ठीक-ठीक परिभाषा होना आवश्यक है, इसलिये यह निश्चित किया गया कि एक और श्रेणी अथवा पदावली "अनुसूचित वनजाति" के नाम से निर्मित की जाये और उस शीर्षक के अन्तर्गत आदिवासियों को रखा जाये। अब यदि मेरे विचार से श्री जयपालसिंह उन अनेकों जातियों की तुलना, जिनका सामान्यतया आदिवासियों के रूप में वर्णन किया गया है, उन जातियों से करें जिनको अनुसूचित वनजातियों के शीर्षक के अन्तर्गत सूचीबद्ध किया गया है, तो उनको ऐसा उदाहरण कठिनाई से मिलेगा कि किसी जाति को, जिसको सामान्यतया आदिवासियों के रूप में स्वीकार कर लिया गया है, इस अनुसूची में सम्मिलित नहीं किया गया हो। मैं मानता हूं कि हो सकता है कि कहीं-कहीं ऐसी त्रुटि हो गई हो कि कोई जाति, जो आदिवासी न हो, उसको भी सम्मिलित कर लिया गया हो। ऐसा भी हो सकता है कि कोई जाति जो कि वास्तव में आदिवासी है उसको सम्मिलित न किया गया हो, परन्तु ऐसी दशा के लिये जब कि किसी जाति को, जिसको अब तक आदिवासी समझा गया है, अनुसूचित वनजातियों की सूची में न रखा गया हो, तो हमने एक संशोधन रख दिया है, जिसके द्वारा स्थानीय सरकार को यह अधिकार होगा कि वह अधिसूचना द्वारा किसी उस विशेष जाति को, जिसको अब तक सम्मिलित नहीं किया गया है अनुसूचित वनजातियों की सूची में सम्मिलित कर ले। मैं समझता हूं कि इस बात से मेरे मित्र श्री जयपालसिंह को संतोष हो जायेगा।

उन्होंने एक और प्रश्न मुझसे पूछा है और वह यह है। मान लीजिये कि अनुसूचित क्षेत्र निवासी कोई अनुसूचित वनजाति का सदस्य अथवा वनजाति क्षेत्र निवासी कोई अनुसूचित वनजाति का सदस्य भारत के किसी अन्य भाग में, जो कि अनुसूचित तथा वनजाति दोनों क्षेत्रों से बाहर है, निवास करने जाता है तो क्या वह उस स्थानीय सरकार से, जिसके अधिकार-क्षेत्र में वह निवास करता है, उन्हीं विशेष अधिकारों की मांग कर सकेगा जिनके प्राप्त करने का अधिकार उसे तब होता है जब वह अनुसूचित क्षेत्र अथवा वनजाति क्षेत्र में निवास करता है, इस प्रश्न का उत्तर देना मेरे लिये कठिन हैं। यदि इस विषय का आन्दोलन उन क्षेत्रों में किया जाये, जिनसे ऐसे विषयों का निर्णय सम्बद्ध है, तो हम अवश्य ही इस प्रश्न का कुछ उत्तर इस विधान में किसी खण्ड के रूप में दे सकेंगे। परन्तु जहां तक वर्तमान विधान का प्रश्न है, अनुसूचित वनजाति का कोई सदस्य यदि वह

अनुसूचित क्षेत्र अथवा वनजाति क्षेत्र से पृथक् हो जाता है तो उसे वे विशेषाधिकार नहीं मिलेंगे जिनका वह अनुसूचित क्षेत्र अथवा वनजाति क्षेत्र में रहते हुये अधिकारी हैं। जहां तक मैं सोच सकता हूं, यह असम्भव है कि वनजाति क्षेत्रों अथवा अनुसूचित क्षेत्रों में लागू होने वाले प्रावधानों का इन क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में प्रवर्त्तन किया जाये।

श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि वक्ताओं द्वारा उठाये गये समस्त प्रश्नों का, जब कि वे इस खण्ड के संशोधन पर बोले, मैंने उत्तर दे दिया है और मैं आशा करता हूं कि मेरे उत्तर से उनको संतोष हो गया होगा कि उनकी समस्त शंकाओं का निवारण हो गया। मैं आशा करता हूं कि संशोधित रूप में यह अनुच्छेद सभा द्वारा स्वीकार किया जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं उन संशोधनों पर, जो पेश हो चुके हैं और जिनकी संख्या 30 है, एक-एक करके मत लूंगा। संशोधन संख्या 412 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'13—लोक-व्यवस्था अथवा लोक-शील के अधीन नागरिकों को—

(क) भाषण और अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य;

(ख) मुद्रण स्वातन्त्र्य;

(ग) पार्षद् और संघ बनाने के स्वातन्त्र्य;

(घ) शांतिपूर्वक निरायुध सम्मेलन करने के स्वातन्त्र्य;

(ङ) डाक, तार और टेलीफोन की सूचना को गुप्त रखने की प्रत्याभूति दी जाती है।

13-क—इस गणराज्य के समस्त नागरिक इस सम्पूर्ण गणराज्य के अन्तर्गत पर्यटन-स्वातन्त्र्य का उपभोग करेंगे। प्रत्येक नागरिक को जहां वह चाहे प्रवास करने तथा बसने का अधिकार है। आदिवासी वनजातियों तथा पिछड़े हुये वर्गों की रक्षा हेतु तथा लोक-रक्षा और लोक-शांति के लिये संधानीय कानून के अन्तर्गत अथवा उसके द्वारा आयंत्रणों का आरोप किया जा सकता है।' "

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 415 । मेरे ख्याल से इसको डॉ. अम्बेडकर ने मान लिया है।

[उपाध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) में से 'इस अनुच्छेद के अन्य प्रावधानों के अधीन रहते हुये' शब्द निकाल दिये जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 416 का दूसरा भाग। इस संशोधन के प्रथम भाग को रोक दिया गया है चूंकि संशोधन संख्या 415 स्वीकार किया जा चुका है।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) में 'अधिकार होगा' शब्दों के पश्चात् 'और उनको इन अधिकारों की प्रत्याभूति दी जाती है' शब्द जोड़ दिये जायें।"

*प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 420 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) के पूर्व निम्न नवीन उपखण्ड जोड़ दिया जाये:

'(क-1) विचार स्वातंत्र्य का;'"

*प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 421 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में 'अभिव्यक्ति' शब्द के पश्चात् 'विचार और उपासना; मुद्रण और प्रकाशन' शब्द जोड़ दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 422 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) के आरम्भ में 'मुद्रण तथा मंच सम्बन्धी' शब्द जोड़ दिये जायें।"

*प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 428 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ग) के आरम्भ में 'किसी विध्यनुकूल प्रयोजनार्थ' शब्द बढ़ा दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 429 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (घ) में 'राज्यक्षेत्र में' शब्दों के पश्चात् 'विध्यनुकूल रीति से' शब्द जोड़ दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 430 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ङ) में 'किसी भाग में' शब्दों के पश्चात् 'विध्यनुकूल रीति से' शब्द जोड़ दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 432 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (छ) के आरम्भ में 'विध्यनुकूल रीति से' शब्द जोड़ दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** सूची 2 के संशोधन संख्या 79 द्वारा परिवर्तित रूप में संशोधन संख्या 438 ।

[उपाध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन सूची के संशोधन संख्या 438† के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये कि:

'अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (छ) के पश्चात् निम्न नवीन उपखण्ड जोड़ दिया जाये:

(ज) शस्त्र रखने और धारण करने का।'"

और खण्ड (6) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये :

"(7) उक्त खण्ड के उपखण्ड (ज) की किसी बात से लोक-व्यवस्था, लोक-शान्ति और लोक-अक्षोभ के हित में उक्त खण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रयोग पर आयन्त्रणों का आरोप करने वाली किसी वर्तमान विधि के प्रवर्त्तन पर प्रभाव अथवा किसी विधि के बनाने में राज्य के लिये अवरोध न होगा।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 440 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (छ) के पश्चात् निम्न नवीन उपखण्ड जोड़ दिये जायें :

(ज) जिस समुदाय अथवा सम्प्रदाय में वह है अथवा जिसमें होना वह मानता है उस समुदाय अथवा सम्प्रदाय की वैयक्तिक विधि के पालन करने का;

(झ) वैयक्तिक स्वातन्त्र्य का और यदि इस स्वतन्त्रता में कमी की जाती है तो किसी सक्षम न्यायालय द्वारा जांच करने का।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 502 ।

---

†अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) उपखण्ड (छ) के पश्चात् निम्न उपखण्ड जोड़ दिया जाये :

"(ज) संधानीय विधि के आधीन अथवा उसके द्वारा निर्मित आनियमों अथवा आरक्षणों के अनुसार शस्त्र रखने और धारण करने का।"

प्रस्ताव यह है कि :

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (6) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड जोड़ दिये जायें:

'(7) इस अनुच्छेद के (2) से (6) तक के खण्डों की किसी बात से इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (ज) के अन्तर्गत प्रत्याभूत किये गये अधिकारों पर प्रभाव नहीं पड़ेगा।

'(8) (2) से (6) तक के खण्डों की किसी बात से इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (झ) के अन्तर्गत प्रत्याभूत किये गये अधिकारों पर प्रभाव नहीं पड़ेगा।

'(9) इस विधान के लागू होने के पश्चात् किसी भी वर्तमान विधि का प्रवर्त्तन उस सीमा तक नहीं होगा जिस सीमा तक कि वह इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (झ) के अन्तर्गत प्रत्याभूत किये गये अधिकार के विरुद्ध प्रभाव डालती हो और संसद् अथवा किसी राज्य द्वारा कोई ऐसी विधि पारित नहीं की जायेगी जो इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (झ) के अन्तर्गत प्रत्याभूत किये गये अधिकार के विरोध में प्रभाव डाले।'"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 445 । मैं एक बात समझा दूं। माननीय सदस्यों ने ध्यान दिया होगा कि मैं संशोधनों को उस क्रम से ले रहा हूं जिस क्रम से वे पेश किये गये थे। इसी कारण संख्याक्रम विषम है। संशोधन संख्या 445 ।

प्रस्ताव यह है कि :

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये: 'व्यक्ति स्वातन्त्र्य की प्रत्याभूति की जाती है। कानून की उचित विधि के अतिरिक्त अन्य किसी विधि के अनुसार न तो किसी व्यक्ति को प्राणों से वंचित किया जायेगा और न उसे गिरफ्तार किया जायेगा या हिरासत में रखा जायेगा या कैद किया जायेगा और न किसी व्यक्ति को कानून-समता से अथवा भारत के राज्य-क्षेत्र में कानूनों के समरक्षण से वंचित किया जायेगा।'"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 447 ।

[उपाध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है कि :

"अनुच्छेद 13 के (2) से (6) तक के खण्डों को निकाल दिया जाये और खण्ड (1) के साथ निम्न परादिक जोड़ दिया जाये:

'यदि कोई नागरिक उपरोक्त अधिकार के प्रयोग करने में राज्य की प्रतिभूति को संकट में न डाले, साम्प्रदायिक वैमनस्य न बढ़ाये अथवा देश की शांति और अक्षोभ में विघ्न डालने के लिये कोई कार्य न करे।'"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** सूची 4 के संशोधन संख्या 86 द्वारा परिवर्तित रूप में संशोधन संख्या 453 । मेरे ख्याल से डॉ. अम्बेडकर ने इसको मान लिया है।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (2) के स्थान में निम्न खण्ड रखा जाये:

'इस अनुच्छेद के खण्ड (1) उपखण्ड (क) की किसी बात से अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि अथवा शिष्टता या शील पर आघात या राज्य की प्रतिभूति का जर्जर करने वाली अथवा उसकी जड़ उखाड़ने वाली किसी बात सम्बन्धी किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर, जहां तक उसका सम्बन्ध है, प्रभाव अथवा किसी विधि के बनाने में राज्य के लिये अवरोध, न होगा।'"

*प्रस्ताव स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 449 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(1-क) उपखण्ड (क) की किसी बात से राजद्रोह अथवा षड्यन्त्र सम्बन्धी विधि-निर्माण करने में किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा राज्य के लिये अवरोध, न होगा।' "

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष :** संशोधन संख्या 450 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (2), (3), (4), (5) और (6) को निकाल दिया जाये।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 451 का दूसरा विकल्प।

"खण्ड (2), (3), (4), (5) और (6) के आरम्भ में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें :

'अनुच्छेद 8 के प्रावधानों के आधीन तथा उनका विरोध न करते हुये'"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 452 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (2), (3), (4) और (5) को निकाल दिया जाये।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 458 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (2) में 'राजद्रोह' शब्द के पश्चात् 'साम्प्रदायिक उत्तेजना' शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 465 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के (3) और (4) खण्ड को निकाल दिया जाये।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 478 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 का खण्ड 5 निकाल दिया जाये।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** सूची 1 के संशोधन संख्या 49 द्वारा परिवर्तित किये गये रूप में संशोधन संख्या 454 । मेरे ख्याल से डॉ. अम्बेडकर ने इस संशोधन को मान लिया है।

प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन सं. 454† का उल्लेख देते हुये:—

(1) अनुच्छेद 13 के (3), (4), (5) और (6) खण्डों में 'प्रवर्त्तन पर' शब्दों के पश्चात् 'जहां तक उसका आरोप होता है' शब्द जोड़ दिये जायें।

(2) अनुच्छेद 13 के खण्ड (6) में 'विशेषतया' शब्द के पश्चात् 'उक्त खण्ड की किसी बात से विनिधान करने वाली अथवा किसी प्राधिकारी को विनिधान करने का अधिकार देने वाली किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव अथवा किसी विधि के बनाने में राज्य के लिये अवरोध न होगा' शब्द जोड़ दिये जायें।"

*प्रस्ताव स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के (3), (4), (5) और (6) खण्डों में 'आयन्त्रणों' शब्द के पूर्व 'युक्तियुक्त' शब्द जोड़ दिया जाये।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 485 ।

---

†अनुच्छेद 13 के (2), (3), (4), (5) और (6) खण्डों में से "किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा" शब्दों को निकाल दिया जाये।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में से 'किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा' शब्दों को निकाल दिया जाये।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 467 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"(1) अनुच्छेद 13 के खण्ड (3) में 'आयन्त्रणों' शब्द के पूर्व 'किसी नियत काल के लिये' शब्द जोड़ दिये जायें।"

मेरे विचार से स्वीकार करने वालों का पक्ष प्रबल है। परन्तु निर्णय सम्बन्धी अन्तिम घोषणा करने के पूर्व मैं यह बता दूं कि कुछ भ्रम-सा हो गया है। मैं संशोधन को पढ़ूं। इस संशोधन को श्री श्यामानन्दन सहाय ने पेश किया था।

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (3) में 'आयन्त्रणों' शब्द के पूर्व 'किसी नियत काल के लिये' शब्द जोड़ दिये जायें।"

प्रस्ताव यह है कि:

मुझे ठीक याद है कि अनेकों व्यक्ति इसके विरुद्ध बोले थे। मैं फिर इस संशोधन पर मत ले रहा हूं।

संशोधन संख्या 467 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (3) में 'आयन्त्रणों' शब्द के पूर्व 'किसी नियत काल के लिये' शब्द जोड़ दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** मैं विश्वास करता हूं कि भविष्य में माननीय सदस्य अपना निर्णय प्रकट करने में अधिक सावधान रहेंगे।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 474 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (4) में 'नियन्त्रणों' शब्द के पूर्व 'किसी नियत काल के लिये' शब्द जोड़ दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 476 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (4) में 'जन-सामान्य' शब्द के स्थान में लोक-व्यवस्था अथवा लोक-शील' शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 483 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में 'वर्तमान विधि के' शब्दों के पश्चात् 'जो अनुच्छेद 8 के प्रावधानों के मूल अर्थ के विरुद्ध न हो' शब्द जोड़ दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 485 के द्वितीय भाग पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में 'राज्य' शब्द के स्थान में 'संसद्' शब्द रखा जाये।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 489 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में 'जन-सामान्य के हित में' शब्दों के पश्चात् आये हुये 'अथवा किसी आदिवासी जाति के हित रक्षार्थ' शब्द निकाल दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 491 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में 'आदिवासी' शब्द के स्थान में 'अनुसूचित' शब्द रखा जाये।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 497 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (6) में 'लोक-व्यवस्था, लोक-शील और लोक-स्वास्थ्य' शब्दों के स्थान में 'जन-सामान्य' शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 500 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (6) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये:

'किसी भी व्यक्ति के लिये जो हृष्ट-पुष्ट और पूर्ण स्वस्थ है, चाहे वह प्राप्त वयस्क हो चाहे अवयस्क, भिक्षा-वृत्ति का पूर्णतया निषेध किया जाता है और इस प्रकार का कोई भी कर्म विधि-अनुसार दण्डनीय होगा। '"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि :

"विभिन्न स्वीकृत संशोधनों द्वारा अनुच्छेद 13 को जो रूप हो जाता है उस रूप में वह विधान का अंग बने।"

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 13 स्वीकार किया गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 13 विधान में जोड़ दिया गया।*

---

## अनुच्छेद 14

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 14 पर आते हैं।

(संशोधन संख्या 504 पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत:** 13-क अर्थात् सूची 5 के संशोधन 89, 90 और 92 का क्या हुआ?

***उपाध्यक्ष:** उसको रोक लिया गया है। मैं संशोधन संख्या 504 का उल्लेख कर रहा हूं।

[उपाध्यक्ष]

अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 14 विधान का अंग बने।"

माननीय सदस्यों को एक सूची दी गई है जिसमें उस विधि की ओर संकेत किया गया है जिसका मैं इस सभा की कार्यवाही संचालन करने के लिये विचार रखता हूं। शाब्दिक होने के कारण संशोधन संख्या 505 को रखने की आज्ञा नहीं दी गई। 506 पेश किया जा सकता है।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव:** क्या मैं यह संकेत करने की स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकता हूं कि मेरा संशोधन (संख्या 505) केवल शब्दिक ही नहीं है? वह वास्तविक रूप में संशोधन भी है।

***उपाध्यक्ष:** तो इसकी व्यवस्था मैं बाद में दूंगा। श्री नज़ीरुद्दीन अहमद अपना भाषण देंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 14 के खण्ड (1) में 'उससे अधिक' शब्दों के पश्चात् 'अथवा उससे अन्य प्रकार का' शब्द बढ़ा दिये जायें।"

श्रीमान्, खण्ड (1) में यह व्यवस्था है—मैं केवल प्रमुख भाग को उद्धृत कर रहा हूं–

"कोई व्यक्ति उससे अधिक दण्ड का पात्र न होगा जो उस अपराध के करने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन दिया जा सकता है।"

किसी व्यक्ति को जितना दण्ड मिलना चाहिये उससे अधिक दण्ड दिये जाने से यह खण्ड उसकी रक्षा करता है। मैंने 'उससे अधिक' शब्दों के पश्चात् 'अथवा उससे अन्य प्रकार का' दण्ड जो कि आरोपित किया जा सके शब्द बढ़ा देने का प्रयत्न किया है। बहुत से अभियोगों में केवल आर्थिक दण्ड प्रावहित है। मान लीजिये कि किसी व्यक्ति पर एक लाख रुपया दण्ड किया जाता है। पुनर्विचार-न्यायालय इस दण्ड को न्यायालय के उठने के समय तक के कारावास में परिणत कर सकता है। इससे यह प्रावधान भंग हो जायेगा क्योंकि जहां केवल आर्थिक दण्ड प्रावहित है वहां इस आधार पर कारावास का दण्ड दिया जा सकता है कि आर्थिक दण्ड से यह अधिक नहीं है। मेरा संशोधन न्यायालय के अधिकारों

को केवल दण्ड की अवधि को ही नहीं बल्कि दण्ड के प्रकार को भी सीमित करने का प्रयास करता हूं। दण्ड कई प्रकार के हैं—आर्थिक दण्ड, कारावास, कोड़े मारना, हरण और फांसी तथा अन्य दण्ड और जहां किसी एक विशेष प्रकार का दण्ड प्रावहित हैं वहां आप उसके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का दण्ड न दें। संक्षेप में इस संशोधन का यह प्रभाव है। जहां केवल कोड़े मारने का दण्ड प्रावहित है वहां आप आर्थिक दंड नहीं दे सकते। जहां केवल आर्थिक दंड की व्यवस्था है वहां आप कारावास नहीं दे सकते हैं अथवा कोड़े नहीं लगा सकते हैं अथवा जायदाद ज़ब्त नहीं कर सकते हैं। जहां केवल चल सम्पत्ति के ज़ब्त करने की व्यवस्था है वहां आप अचल सम्पत्ति को ज़ब्त कर सकते हैं। जहां किसी अपराध के लिये वस्तुओं के ज़ब्त करने की दण्ड-व्यवस्था है वहां आप उनके अतिरिक्त अन्य चीज़ों को ज़ब्त नहीं कर सकते हैं। अतः जिस प्रकार के अधिकार खण्ड में दिये गये हैं यदि हम उनको न्यायालय को सौंप दें तो इससे न्यायालय को उन सज़ाओं के देने का अधिकार मिल जाता है जो विधि द्वारा संमोदित नहीं हैं। यदि खण्ड (1) को रखा ही जाता है तो न्यायालय के अधिकारों को सीमित कर देना चाहिये कि वह उसी वर्ग के प्रावहित दण्ड की व्यवस्था करे। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस खण्ड में किसी प्रकार की कमी अथवा भूल रह गई है जिसकी पूर्ति कर देनी चाहिये।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 505 के दूसरे भाग को मैं पेश करने की आज्ञा दे सकता हूं। पण्डित ठाकुरदास भार्गव!

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान् मैं प्रस्ताव रखता हूं किः

> "अनुच्छेद 14 के खण्ड (1) में 'under the law at the time of the commission' शब्दों के स्थान में 'under the law in force at the time of the commission' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, यदि आप कृपया अनुच्छेद 307 में दी हुई व्याख्याओं में 'प्रवृत्त विधि' (law in force) की परिभाषा देखें तो यह विदित होगा कि 'विधि' और "प्रवृत्त विधि" के भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। साथ ही साथ चूंकि अनुच्छेद के पूर्वभाग में 'प्रवृत्त विधि' शब्द आते हैं तो इस सान्निध्य में यह आवश्यक अथवा उचित है कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाये। मैं केवल यही निवेदन करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 507, 508 और 511 समानार्थी हैं। सबसे अधिक व्यापक संशोधन 507 है, उसको पेश किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 507, 508 और 511 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 509 और 510 समानार्थी हैं और साथ-साथ पेश किये जा सकते हैं। वे श्री नज़ीरुद्दीन के नाम से हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 14 के खण्ड (2) के आरम्भ में 'सन् 1898 ई. की दण्ड कार्य-प्रणाली संहिता में दी हुई विधि के अतिरिक्त अन्य किसी विधि द्वारा' शब्द जोड़ दिये जायें।"

श्रीमान्, अपने मन में बहुत ही चिन्तित होकर मैं इन संशोधनों को पेश कर रहा हूं। प्रथम चिन्ता तो यह है कि मैं अपनी समय-सीमा का अतिक्रमण न कर जाऊं, दूसरी चिन्ता यह है कि मेरे पीछे अनेकों निरीक्षक और शक्तिशाली व्यक्ति लगे हुये हैं और मुझे भय है कि न मालूम किस समय औचित्य प्रश्न उठा दिया जाये और तीसरी चिन्ता यह है कि मेरे विरुद्ध माननीय सदस्यों द्वारा 'नहीं', 'नहीं' की पुकार मचाई जायेगी और यह पुकार तालियों की गड़गड़ाहट में गूंज उठेगी और उस गूंज में मेरी अशक्त 'हां' दब जायगी।

इसके बाद एक कठिनाई और है कि जो बातें मैं रख रहा हूं उनकी ओर मसौदा-समिति के माननीय सभापति को ध्यान देने के लिये मुझे निवेदन करना है। मैं अपनी बातों को पूर्णतया विषय-संगत रखने का प्रयत्न करूंगा।

श्रीमान्, जिन शब्दों के बढ़ाने का मैं प्रयास कर रहा हूं, वे दण्ड कार्य-प्रणाली के एक मुख्य सिद्धान्त से सम्बन्ध रखते हैं। खण्ड (2) जिसमें मैं संशोधन करने का प्रयास कर रहा हूं इस प्रकार है:

"(2) कोई व्यक्ति उसी अपराध के लिये एक बार से अधिक दण्डित न किया जायेगा।"

बड़ी पवित्र भावनावश इस खण्ड को रखा गया है; पर दण्ड विधि के दृष्टिकोण से विचारते हुये इसमें अनेकों त्रुटियां हैं।

खण्ड (2) जल्दबाजी में बनाया हुआ-सा प्रतीत होता है। ऐसे उदाहरण हैं जिनमें कि किसी व्यक्ति को उसी अपराध के लिये विधिपूर्वक दो बार दण्डित

किया जा सकता है और संगत विधि का उल्लेख करते हुये मैं उन परिस्थितियों का वर्णन करूंगा। इस विषय से सम्बन्धित सिद्धान्त दण्ड कार्य-प्रणाली संहिता की धारा 406 की उपधारा (1) में मिलता है। उसमें यह बात दी है। दो बार दण्डित करने की विधि बनाई जा चुकी है।

**श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। इस सभा के अधीनस्थ विधान-मण्डल द्वारा निर्मित अधिनियमों का उल्लेख करते हुये क्या इस सभा का कोई माननीय सदस्य संशोधन पेश कर सकता है? संशोधन स्वयं नियम-विरुद्ध है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अन्य कोई भी बात नियम-विरुद्ध हो सकती है पर यह संशोधन नियम-विरुद्ध नहीं हो सकता। अनुच्छेद 9 में तथा अन्य स्थलों पर हमने "वर्तमान विधियों" अर्थात् अधीनस्थ विधान-मण्डलों के अधिनियमों का उल्लेख किया है तथा उनकी रक्षा की है। केवल विचार-सान्निध्य हेतु मैं दण्ड-कार्य-प्रणाली संहिता का उल्लेख कर रहा था। मैं यह नहीं कह सकता कि धारा 403 अथवा उसमें निहित कोई सिद्धान्त, अथवा कोई अन्य सुपुष्ट सिद्धान्त ही नहीं वरन् कोई भी पुष्ट से पुष्ट बात इस सभा पर लागू हो सकती है और वह इसलिये कि यह सम्पूर्ण सत्ताधारी सभा है।

मैं तो दण्ड-कार्य-प्रणाली के कुछ सिद्धान्तों को विचार-विमर्श के लिये रख रहा था। मैंने यह सुझाव कभी नहीं रखा कि वे इस सभा पर लागू होंगे, केवल यही कहा कि वे विचारणीय हैं।

मैं सामान्य सिद्धान्तों के उदाहरण प्रस्तुत करूंगा क्योंकि मैं समझता हूं कि श्री कृष्णमाचारी को वे अधिक मान्य होंगे। ऐसा बहुधा होता है कि किसी व्यक्ति को उस न्यायालय द्वारा दण्डित किया जाता है, जिसके अधिकार क्षेत्र में उस दण्ड का देना नहीं होता। फौजदारी-अदालतों में यह एक सामान्य बात है कि पुनर्विचार में न्यायाधीश, अथवा उच्च न्यायालय, अथवा प्रीवी कोर्ट—और वर्तमान काल में संधानीय न्यायालय और भविष्य में भावी सर्वोच्च न्यायालय को ऐसा लगे तथा विश्वास हो कि अपराध-निर्णय क्षेत्राधिकार से बाहर किया गया है, परन्तु इस अरसे में उस व्यक्ति पर दोष प्रमाणित हो जाता है। यदि आप यह कहें कि उस पर दुबारा दोष प्रमाणित नहीं किया जा सकता तो पुनर्विचार न्यायालयों के दुबारा जांच करने के आदेश पूर्णतया असंगत हो जायेंगे। यदि किसी अधिकार-क्षेत्र-विहीन

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

मजिस्ट्रेट अथवा न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति की जांच हो जाती है और यदि उसको दण्ड दे दिया जाता है तो वह पहला दण्ड हुआ।

और फिर यदि यह विदित होता है कि उस न्यायालय को मुकद्दमा करने का अधिकार नहीं था तो बहुधा यह होता है कि मुकद्दमा फिर से होता है। परन्तु यदि आप खण्ड (2) के सिद्धान्त-अनुसार अधिनियम बना दें कि उसी अपराध के लिये किसी व्यक्ति को एक बार से अधिक दण्डित नहीं किया जायेगा तो इसका प्रभाव यह होगा कि यदि किसी अधिकार-क्षेत्र-युक्त न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति को दण्डित किया जाता है परन्तु जांच में कोई कमी रह गई है या अधिकार-क्षेत्र-युक्त न्यायालय की कोई त्रुटि है, तो फल यह होगा कि और आगे जांच करना बिल्कुल बन्द हो जायेगा। फौजदारी अदालतों में दोष प्रमाणित करने के पश्चात् दुबारा जांच होना प्रतिदिन की सामान्य सी बात है।

कभी कभी, श्रीमान्...।

(कुछ ठहर कर)

श्रीमान्, मैं माननीय सदस्य—मसौदा-समिति के सभापति—का ध्यान पूर्णतया अपनी ओर आकर्षित करना चाहता हूं, अन्यथा यह तर्क व्यर्थ होगा। यदि वे 'नहीं' कह देंगे तो सारा भवन उनके साथ गूंज उठेगा।

***उपाध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर, श्री नज़ीरुद्दीन चाहते हैं कि आप उनकी ओर अपना पूरा-पूरा ध्यान दें। वे कहते हैं कि यदि आप 'नहीं' कह देंगे तो सारी सभा 'नहीं' कह देगी। (*हंसी*)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जो बात मैं कह रहा था वह एक सामान्य महत्त्व की बात है। बात यह है कि यदि किसी न्यायालय द्वारा कोई व्यक्ति दोषी ठहराया जाता है तो वह प्रथम दोष-निर्णय है—चाहे जांच में कोई कमी ही हो। अपराधी सेशन कोर्ट में पुनर्विचार के लिये प्रार्थना करता है। वहां यह विदित होता है कि जांच में कोई कमी है अथवा वह उस न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र में नहीं आता था। वह दुबारा जांच करने का आदेश दे सकती है, परन्तु खण्ड (2) दुबारा जांच करने में बाधा डालेगा क्योंकि ऐसा करने से दुबारा दोष-निर्णय होगा। किसी न्यायालय द्वारा अपराधी का दोष-निर्णय प्रथम बार किया जा सकता है, पर यह

खण्ड किसी उच्च न्यायालय को दुबारा जांच करने के आदेश देने से रोकेगा। यह एक साधारण से साधारण उदाहरण है। 'केवल दोषी न ठहराया जायेगा' यह सिद्धान्त नहीं होना चाहिये, वरन् यह सिद्धान्त होना चाहिये कि यदि किसी क्षेत्राधिकार-युक्त न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति को दोष-मुक्त ठहराया जाये अथवा दोषी ठहराया जाये और यदि दोष-निर्णय या दोषमुक्ति प्रभावी है, तो उसकी दुबारा जांच नहीं हो सकती। वास्तव में प्रथम दोष-निर्णय महत्त्वपूर्ण नहीं है; महत्त्वपूर्ण तो दोष-निर्णय का अन्तिम रूप में वैध तथा लागू होना है जिसका सम्मान करना चाहिये और अन्तिम होना केवल दोष-निर्णय से ही संलग्न न हो, वरन् दोषमुक्ति से भी संलग्न हो। आप उस व्यक्ति के सम्बन्ध में क्या विचार करेंगे जो उचित जांच के पश्चात् अन्त में दोषमुक्त कर दिया जाता है और जब कि वह दोषमुक्ति टाली नहीं जा सकती, अतएव वह अन्तिम और बन्धनकारी हो जाती है। इसके सम्बन्ध में आप कुछ भी नहीं कहते हैं। आप केवल यही कहते हैं कि किसी व्यक्ति को उसी अपराध के लिये दुबारा दण्डित नहीं किया जाना चाहिये। दोषमुक्त व्यक्ति भी दुबारा जांच का पात्र नहीं होगा। इस सम्बन्ध में तो आप कुछ भी नहीं कहते हैं, केवल अपना ध्यान दुहरे दण्ड की ओर लगाये हुये हैं। मैं निवेदन करता हूं कि तत्कथित दुहरे दण्ड का सिद्धान्त ही पूरा नहीं है और न वह पूर्ण चित्र ही उपस्थित करता है। उस व्यक्ति का उदाहरण लीजिये, जिसे एक क्षेत्राधिकार-विहीन मजिस्ट्रेट द्वारा 50 रुपये का आर्थिक दण्ड किया जाता है और फिर वह पुनर्विचार-न्यायालय में प्रार्थना करता है। खण्ड (2) के कारण पुनर्विचार-न्यायालय किसी भी पारिभाषिक आधार पर, यहां तक कि इस आधार पर भी कि उक्त न्यायालय का क्षेत्राधिकार न था, उस अभियोग की दुबारा जांच नहीं करा सकता।

उस प्रसंगवर्त्ती धारा को, जिसके कारण सभा के एक गण्यमान्य सदस्य श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के मन में सन्देह हुआ है, मैं उनकी अनुमति, आपकी अनुमति तथा सभा की अनुमति से पढ़ कर सुनाऊंगा। यह बात नहीं कि वह बन्धनकारी हो परन्तु यह एक स्पष्ट और निश्चित विवेक है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ियों से अब तक चला आया है। धारा 403 की उप-धारा (1) में कहा गया है:

> "किसी व्यक्ति की किसी क्षेत्राधिकार-युक्त न्यायालय द्वारा किसी अपराध के सम्बन्ध में यदि एक बार जांच कर ली जाती है और उसको उस अपराध के लिये दोषी अथवा निर्दोष ठहराया जाता है, तो जब तक वह

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

दोष-निर्णय अथवा दोष-मुक्ति प्रवृत्त है तब तक उस व्यक्ति की उसी अपराध के लिये दुबारा जांच न होगी।"

श्रीमान्, मैं समझता हूं कि यही उचित रूप है। यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि दण्ड-कार्य-प्रणाली-संहिता अन्याय के विरुद्ध यथेष्ट रूप में अभिरक्षण करती है, पर यदि आप यहां इसको पुर:स्थापन करेंगे तो यह न्याय्य अधिकार है और हम यह व्यवस्था कर चुके हैं कि किसी भी मूलाधिकार के उल्लंघन के लिये न्यायालय में कार्यवाही की जा सकेगी और इसके विरुद्ध जितनी वर्तमान विधियां हैं वे सब रद्द हो जायेंगी, और इस कारण इसका प्रभाव यह होगा कि उस लाभदायक विधि का अन्त हो जायेगा जो धारा 403 की उपधारा (1) में निर्धारित है। मेरा निवेदन है कि इस खण्ड पर बड़ी सावधानी से विचार करना चाहिये और यदि आवश्यक हो तो इसका फिर से मसौदा बनाया जाये।

मैं निवेदन करता हूं कि ऐसी दशाओं में उसी अपराध के लिये दोहरी सजा वास्तव में अन्यायपूर्ण नहीं है। ऐसी दशाओं में होता यह है कि जितनी सज़ा काट ली जाती है या भुगत ली जाती है, उतनी सज़ा दुबारा जांच में दी गई अन्तिम सज़ा में लगा ली जाती है। इस संशोधन का यही प्रभाव है।

***उपाध्यक्ष:** क्या आप संशोधन 509 पेश करना चाहते हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** नहीं श्रीमान्, वह इसी सिद्धान्त से सम्बन्ध रखता है और मैं उसे पेश करना नहीं चाहता।

***उपाध्यक्ष:** पिछले दो दिनों के अनुभव से मुझे यह विदित हुआ कि अनेकों सदस्यों के लिये प्रात: साढ़े नौ बजे आना कठिन है। वे सोच लेते हैं कि अन्य सदस्य तो ठीक समय पर पहुंच ही जायेंगे, इसलिये उनके पहुंचने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसके कारण ठीक समय कार्य प्रारम्भ करना कठिन हो जाता है। मैंने इसलिये यह निश्चय किया है कि कल से हम प्रात: 10 बजे कार्यारम्भ करें और डेढ़ बजे दोपहर को अल्पावकाश हो।

*तत्पश्चात् परिषद् शुक्रवार, 3 दिसम्बर सन् 1948 के दस बजे तक स्थगित हुई।*

Con. 3.VII. 19. 48
350

अंक 7
संख्या 19

शुक्रवार
3 दिसम्बर,
सन् 1948 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

**पृष्ठ**

आयर अधिनियम के विषय में वक्तव्य..... 1239-1240

विधान का मसौदा-(जारी)..... 1240-1294

[अनुच्छेद 14, 15, 15-ए, 16, 17, 18 और नवीन अनुच्छेद 19 से 22 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

शुक्रवार, 3 दिसम्बर, 1948

---

*भारतीय विधान-परिषद् कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में 10 बजे प्रातः उपाध्यक्ष (डॉक्टर एच.सी. मुकर्जी) के सभापतित्व में समवेत् हुई।*

---

## आयर अधिनियम के विषय में वक्तव्य

***उपाध्यक्ष** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): जब हमारे प्रधान मन्त्री ने परिषद् के समक्ष वे शर्तें रखी थीं जो आयरलैण्ड के यूनाइटेड किंगडम में प्रवेश, बल्कि उससे सम्बन्ध-विच्छेद के सम्बन्ध में थीं, तब कुछ ऐसे सदस्य थे जिन्होंने... (*बाधा*)

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं इस सम्बन्ध में कुछ कह सकता हूं?

***उपाध्यक्ष:** हां।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू:** मैं केवल यही कहना चाहता हूं कि मुझे आयर के प्रधान मन्त्री का एक तार मिला था, जिसे मैंने परिषद् के सामने रख दिया है। मुझे स्मरण है कि किसी वाद-विवाद के समय किसी सदस्य ने—मैं भूल गया हूं कि वे कौन थे—उस नये विधेयक की एक प्रति मांगी थी जो आयरिश संसद में विचाराधीन है। मैंने कहा था कि मैं पता लगाऊंगा। मैंने वहां लिख दिया था कि तार द्वारा वह विधेयक भेज दिया जाये। वह हमारे पास अभी नहीं पहुंचा है। उन्होंने हमें सूचित किया है कि असली विधेयक हवाई डाक द्वारा भेजा जा रहा है, किन्तु तार द्वारा उन्होंने हमें इस विधेयक का मजमून भेज दिया है। यह विधेयक अत्यंत छोटा है। इसमें एक-एक पंक्ति की चार-पांच धारायें ही हैं। जो सदस्य उसे देखना चाहें उनके लिये यह मेज पर रख दिया गया है।

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव** (मैसूर): क्या आप कृपया साइक्लोस्टाइल मशीन द्वारा उसकी नकलें छपवा कर सारे सदस्यों को वितरित करा देंगे?

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू:** नहीं, श्रीमान्। मुझे आपत्ति है। तार मेज पर रख दिया गया है तथा सदस्य इसे देख सकते हैं।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***उपाध्यक्ष:** परिषद् की कार्यवाही आरम्भ करने से पूर्व, मैं माननीय सदस्यों को बताना चाहता हूं कि मेरे पास हमारे अध्यक्ष का एक पत्र आया है, जिसमें मुझे सूचित किया गया है कि वे शीघ्रता से स्वस्थ होते जा रहे हैं और बहुत सम्भव है कि वे 27 तारीख से अपना काम पुन: संभाल सकेंगे। उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि वे परिषद् का सभापतित्व नहीं कर सके, और मैंने उन्हें सूचित कर दिया है कि हमें उन परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान है जिनके कारण उन्हें अनुपस्थित रहना पड़ा है। मुझे समाचारपत्रों से पता चला है कि वे आज 64वें वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं। क्या मैं परिषद् की अनुमति से उन्हें अपनी बधाइयां भेज दूं तथा साथ ही उन्हें विश्वास दिला दूं कि हम उनकी अनुपस्थिति को कितना अनुभव कर रहे हैं? इस सम्बन्ध में उन्हें इस बात से भी अवगत कर दूंगा कि यद्यपि परिषदात्मक कार्यपद्धति के विषय में अपनी त्रुटियों से मैं पूर्णत: परिचित हूं, किन्तु मैं अब तक परिषद् की सदिच्छा से कार्य चलाता रहा हूं।

***माननीय सदस्यगण:** निस्संदेह।

---

## विधान का मसौदा ( जारी )

### अनुच्छेद 14-( जारी )

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 14 पर वाद-विवाद पुनरारम्भ करेंगे। संशोधन 510 पेश किया गया था। 509 पर मत लिये जायेंगे। अतएव हम अब 512 को लेंगे।

***काजी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त तथा बरार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं कि:

"अनुच्छेद 14 में निम्नलिखित अंश खण्ड (4) के रूप में जोड़ दिया जाये:

'(4) The right of the people to be secured in their persons, houses, papers and effects against unreasonable searches and seizures shall not be violated and no warrants shall issue but upon probable cause supported by oath or affirmation and particularly describing the place to be searched and the persons or things to be seized.'

[(4) अनुचित तलाशियों तथा अपहरण के विरुद्ध अपने शरीर, गृह, पत्रों, तथा सामान के विषय में सुरक्षित रहने का जो लोगों को अधिकार प्राप्त

है उसका उल्लंघन नहीं किया जायेगा और सिवाय सम्भावित कारण के जिसका आधार सौगन्ध अथवा घोषणा हो, वारण्ट (अधिपत्र) जारी नहीं किये जायंगे, और जिस स्थान की तलाशी लेनी हो और जिन व्यक्तियों अथवा वस्तुओं को कब्जे में करना हो, उनका विवरण विशेष रूप से दिया रहेगा।]"

यह अत्यन्त महत्वपूर्ण संशोधन है। आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि यह बात अमरीकी विधान के अनुच्छेद 4 में है, और आयर के विधान में खण्ड (2) तथा (5) हैं जो इसके सदृश हैं, और जर्मन विधान के अनुच्छेद 114 तथा 115 भी इसी के समान हैं। डॉक्टर अम्बेडकर की पुस्तक—'अल्पसंख्यक तथा राज्य'—के पृष्ठ 11 की मद 10 में एक ऐसा ही प्रावधान रखा गया है। अतएव यह ऐसा संशोधन है, जिसके औचित्य के सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं किया जा सकता। आज भारत में क्या स्थिति है? भारत के लगभग प्रत्येक प्रान्त में गुण्डा कानून तथा जन-सुरक्षा कानून हैं जिनमें अपील, आवेदन अथवा सफाई पेश करने के लिये कोई प्रावधान नहीं है। बिना अधिपत्र (वारण्ट) के गिरफ्तारियां होती हैं तथा बिना समुचित कारण के तलाशियां होती हैं। हम विधिहीन विधियों द्वारा शासित हो रहे हैं और अनधिकृत बन्दीकरणों तथा तलाशियों के कारण जो कठिनाइयां होती हैं उनके निवारण की कोई व्यवस्था नहीं है।

हम 1947 में देख चुके हैं कि केवल संदेह मात्र पर हजारों लोगों को बन्दी बनाया गया तथा मकानों की तलाशियां ली गईं। परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के सदस्यों का उत्साह नष्ट हो गया, तथा उनके साथ देश में अपराधियों का सा व्यवहार किया गया। मैं परिषद् के समक्ष एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उदाहरण दूंगा। जब भी हम देहली जाने के लिये हवाई अड्डे पर जाते, हमारे सामान की तलाशी होती। बिना किसी कारण, बिना किसी वजह, तथा बिना हमें सावधान किए, ऐसा होता था। मैं दूसरा उदाहरण दूंगा। जब हैदराबाद में पुलिस कार्यवाही की गई, तब निकटस्थ प्रान्तों में बिना किसी औचित्य के, प्रत्येक मुस्लिम को बन्दी बना लिया गया। यदि वे मुसलमान वास्तव में देशद्रोही थे तो उन पर मुकद्दमा चलाया जाना चाहिये था, उन्हें सजा दी जानी चाहिये थी तथा उन्हें फांसी पर लटका देना चाहिये था। किन्तु जिन लोगों का हैदराबाद से कुछ भी सम्बन्ध नहीं था, उन्हें इस बहाने पर बन्दी बनाया गया कि वे केवल रक्षात्मक संरक्षण में रखे जा रहे हैं। अच्छा, यदि उन्हें रक्षात्मक संरक्षण में रखा गया था, तो उनके बीबी-बच्चों को भी रक्षात्मक संरक्षण में क्यों नहीं रखा गया? वे क्यों बाहर ही रहे?

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

अतएव मेरा निवेदन है कि मैंने इस संशोधन में जिस मूलाधिकार की मांग की है, यदि उसकी प्रत्याभूति नहीं दी गई तो इन गिरफ्तारियों तथा औचित्यशून्य तलाशियों का अन्त नहीं होगा। मैंने यह संशोधन इसी सच्ची आशा से पेश किया है कि इसे स्वीकार कर लिया जायेगा।

***उपाध्यक्षः** सूची में अगला संशोधन श्री कक्कन के नाम से है।

***श्री पी. कक्कन** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं इसे पेश नहीं करना चाहता, किन्तु आपकी अनुमति से मैं इस पर बोलना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** इसकी तो मैं अनुमति नहीं दे सकता। अनुच्छेद 14 पर आम वाद-विवाद के समय मैं माननीय सदस्य को बोलने की अनुमति दे सकता हूं। मेरे ख्याल में इस अनुच्छेद पर कोई और संशोधन नहीं है। अब परिषद् इस अनुच्छेद पर वाद-विवाद आरम्भ कर सकती है। श्री कक्कन जो वक्तृता देना चाहते थे वे अब दे सकते हैं।

***श्री पी. कक्कनः** उपाध्यक्ष महोदय, मैंने इस अनुच्छेद पर बोलने के ही उद्देश्य से एक संशोधन की सूचना दी थी।

श्रीमान्, मुझे जो कुछ कहना है वह जेल के प्रशासन के विषय में कहना है। जेलों में कार्य देने के विषय में बन्दी-बन्दी में विभेद किया जाता है। यदि एक कैदी हरिजन जाति का होता है तो चाहे उसकी श्रेणी, सामाजिक-स्थिति अथवा शिक्षा कुछ भी हो उसे भंगी का काम दिया जाता है। इस अवसर पर मैं अपनी इस सम्मति तथा भावना को व्यक्त करना चाहता हूं कि आगे से काम देने के विषय में इस भेद को दूर कर देना चाहिये। श्रीमान्, मुझे अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि हरिजन जाति के लोगों के साथ जेल में बहुत क्रूर बर्ताव किया जाता है जैसे कि ईश्वर ने भंगी का काम करने के लिये ही उनकी सृष्टि की हो। मुझे हार्दिक आशा है कि अब से यह भेद-भाव दूर कर दिया जायेगा तथा हरिजनों के साथ सब स्थानों पर निष्पक्ष व्यवहार किया जायेगा। इसी उद्देश्य से मैंने अपने संशोधन में कहा था कि किसी भी अपराध के लिये दण्डित किसी व्यक्ति को जेल में धर्म, जाति, प्रजाति अथवा श्रेणी के अनुसार कार्य नहीं करना पड़ेगा। श्रीमान्, आपने मुझे बोलने का जो अवसर दिया उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं परिषद् के समक्ष जो बात रखना चाहता हूं वह अपेक्षाकृत एक संकीर्ण बात है। इस

अनुच्छेद 14 का खण्ड (2) इस प्रकार है: "कोई व्यक्ति उसी अपराध के लिये एक से अधिक बार दण्डित नहीं किया जायेगा।" मुझे परिषद् के कुछ माननीय सदस्यों ने बताया है कि सम्भवत: इससे उन मामलों पर प्रभाव पड़ेगा जहां कि सरकारी अधिकारियों के विषय में विभागीय कार्यवाही की जा चुकी है, तथा उन्हें दण्ड दिया जा चुका है, उन पर पुन: मुकद्दमा चला कर उन्हें दण्ड नहीं दिया जा सकता यदि उन्होंने कोई दण्डनीय अपराध किया हो। इसके विपरीत यदि किसी सरकारी अधिकारी को मुकद्दमा चला कर न्यायालय द्वारा कारावास का अथवा अर्थ दण्ड दिया जा चुका है तो सरकार को उसके विरुद्ध अनुशासन-भंग की कार्यवाही का अधिकार शायद न रहे। यद्यपि यह एक छोटी सी बात है तथा यह अर्थ निकाला जा सकता है कि मूलाधिकारों में इस खण्ड विशेष से नियमों के अधीन अपने अधिकारियों के आचरण तथा अनुशासन के सम्बन्ध में सरकार के अधिकारों पर प्रभाव पड़ेगा या नहीं, किन्तु मेरे विचार में जब हम एक विशेष प्रकार की कार्यवाही पर प्रतिन्ध लगा रहे हैं तो इस बात को अधिक स्पष्ट कर देना ही अभीष्ट है।

मैं जानता हूं कि अब संशोधन पेश करने का समय नहीं रहा है। मैं यह चाहता हूं कि इस खण्ड की भाषा को इस प्रकार रखा जाये: "किसी भी मनुष्य पर उसी अपराध के लिये एक से अधिक बार मुकद्दमा नहीं चलाया जायेगा तथा दण्ड नहीं दिया जायेगा।" यदि मेरे माननीय मित्र डॉक्टर अम्बेडकर 'दण्ड देने' शब्दों के साथ 'मुकद्दमा चलाना' इन शब्दों को स्वीकार कर लें और यदि, श्रीमान्, आप तथा परिषद् उन्हें ऐसा करने की अनुमति प्रदान कर दें, तो यह केवल बुद्धिमत्ता की बात ही नहीं होगी बल्कि इससे भावी सरकार की काफी कठिनाई दूर हो जायेगी। यही सुझाव मैं परिषद् के समक्ष रखने का साहस करता हूं। परिषद् इस पर जैसा उचित समझे कर सकती है।

***उपाध्यक्ष:** श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो अनुमति मांगी है, क्या परिषद् वह अनुमति देती है?

***माननीय सदस्यगण:** हां।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं डॉ. अम्बेडकर से अनुरोध करता हूं कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जिस संशोधन का सुझाव रखा है, वे उसे पेश करें।

**माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद पर जो संशोधन पेश किये गये हैं, उनके विषय में मैं यह कह

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

सकता हूं कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो संशोधन रखा है मैं उसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। वास्तव में यह संशोधन आवश्यक तो नहीं है, किन्तु क्योंकि यह संशय व्यक्त किया गया है कि 'दण्ड देना' इन शब्दों के अनेक अर्थ निकाले जा सकते हैं, अतः मेरे विचार में 'मुकद्दमा चलाना तथा दण्ड देना' इन शब्दों का रखना अधिक वांछनीय हो सकता है।

संशोधन संख्या 506 तथा 509 के विषय में, जिन्हें कि मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने उपस्थित किया है...

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): इसकी संख्या 510 है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** कुछ भी हो, मैंने कल दिन भर स्थिति पर विचार किया है और मुझे संतोष है कि इन संशोधनों को स्वीकार करने से कुछ लाभ नहीं होगा। किन्तु मैं मि. करीमुद्दीन के पेश किये हुये संशोधन सं. 512 को स्वीकार करने के लिये राज़ी हूं। मेरे विचार में यह एक लाभप्रद प्रावधान है तथा विधान में इसे स्थान दिया जा सकता है। इसमें कुछ भी नई बात नहीं है क्योंकि उन्होंने जो खण्ड सुझाया है वह समूचा ही दण्ड विधि संहिता (Criminal Procedure Code) में पाया जाता है, अतएव एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि यह पहले से ही देश में प्रचलित कानून है। यह नितांत सम्भव है कि भविष्य का विधान-मण्डल उनके संशोधन में निर्दिष्ट प्रावधानों का विखण्डन कर दे, किन्तु जहां तक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का सम्बन्ध है, वे प्रावधान इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि इन प्रावधानों को विधान-मण्डल की शक्ति से परे रखना अतीव वांछनीय है, और इसी कारण मैं उनके संशोधन को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं।

मेरे मित्र श्री कक्कन ने जो संशोधन नं. 513 रखा था, उसके विषय में...

***एक माननीय सदस्य:** यह पेश नहीं किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन सं. 505 तथा 506 के विषय में क्या बात है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं पहले ही कह चुका हूं कि मैं संशोधन संख्या 506 तथा 510 को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हूं।

***उपाध्यक्ष:** क्या आपको संशोधन सं. 505 के विषय में कुछ कहना है जिसके दूसरे भाग में पंचम सूची के संशोधन संख्या 92 द्वारा परिवर्तन किया गया है? शायद आप इसे भूल गये। यह पण्डित ठाकुरदास भार्गव के नाम से है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं उनके संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लेता हूं।

संशोधन संख्या 505 जैसे कि वह पंचम सूची के संशोधन संख्या 92 द्वारा संशोधित हुआ है। मुझे पता चला है कि डॉ. अम्बेडकर इसे स्वीकार करते हैं। प्रश्न यह है :

"अनुच्छेद 14 के खण्ड (1) में 'under the law at the time of the commission' (अपराध करने के समय के कानून के अधीन) इन शब्दों के स्थान पर 'under the law in force at the time of the commission' (अपराध करने के समय प्रवृत्त कानून के अधीन) ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन स्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 506 । प्रश्न यह है:

"अनुच्छेद 14 के खण्ड (1) में 'उससे अधिक' इन शब्दों के पश्चात् 'अथवा उससे भिन्न प्रकार के' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

*प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 510 । प्रश्न यह है कि:

"अनुच्छेद 14 के खण्ड (2) के अन्त में 'सिवाय उस स्थिति के जिसमें कि 1898 के दण्ड विधि संहिता द्वारा ऐसा करने की अनुमति दी गई हो ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 512 जिसे काज़ी सैयद करीमुद्दीन ने पेश किया है तथा डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है। प्रश्न यह है:

[उपाध्याक्ष]

"कि अनुच्छेद 14 में, निम्न खण्ड, खण्ड (4) के रूप में, जोड़ दिया जाये:

'(4) कि अनुचित तलाशियों तथा अपहरण के विरुद्ध अपने शरीर, गृह, पत्रों तथा सामान के विषय में सुरक्षित रहने के लोगों के अधिकार का उल्लंघन नहीं किया जायेगा, और सिवाय सम्भावित कारण के, जिसका आधार सौगन्ध अथवा घोषणा हो, वारण्ट जारी नहीं किये जायेंगे, और जिस स्थान की तलाशी लेनी हो और जिन व्यक्तियों अथवा वस्तुओं को कब्जे में करना हो, उनका विवरण विशेषरूपेण दिया जायेगा। '"

मेरे विचार में 'हां' विजयी रहे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** 'नहीं' वाले विजयी रहे।

***उपाध्यक्ष:** मैं इस पर पुन: मत लूंगा।

मेरे विचार में 'हां' वाले विजयी रहे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** नहीं, श्रीमान्, 'नहीं' वाले विजयी रहे।

***उपाध्यक्ष:** सबसे पहले मैं हाथ उठाने के लिये कहूंगा।

(विभाजन की घण्टी बजाई गई)

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या मैं यह सुझाव दूं कि इस प्रश्न को इस समय स्थगित रखा जाये और सदस्यों को आपस में विचार-विनिमय करके निर्णय पर पहुंचने का अवसर दिया जाये? कई बार ब्रिटिश लोक-सभा भी समिति का रूप धारण कर लेती है जिससे कि विभिन्न दलों को विचार-विमर्श करके किसी सर्वसम्मत निर्णय पर पहुंचने का अवसर मिल सके।

***उपाध्यक्ष:** मैं इस संशोधन पर मत गणना स्थगित करने के लिये तैयार हूं, पर शर्त यह है कि परिषद् इसके लिये आवश्यक अनुमति दे दे। मैं परिषद् से शान्त रहने की प्रार्थना करूंगा। निर्णय करने की यह प्रणाली नहीं है। पारस्परिक प्रयत्नों तथा सद्भावना के द्वारा ही हमें निर्णय पर पहुंचना चाहिये। क्या परिषद् इस प्रश्न पर मत गणना स्थगित करने के विषय में मुझे आवश्यक अधिकार देती है?

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू:** उपाध्यक्ष महोदय, क्योंकि इस विषय पर कई सदस्यों के मन में ज़रा भ्रम-सा उत्पन्न हो गया है, अत: मेरे विचार में, यह

जो सुझाव रखा गया है कि हम इस विषय पर बाद में विचार कर लें और अभी अन्य बातों पर विचार करें, वह अत्यंत वांछनीय है। हां, जो परिषद् की इच्छा होगी, वही होगा। श्रीमान्, मैं आपसे तथा परिषद् से यह कहूंगा कि आपका सुझाव स्वीकार कर लिया जाये।

***डॉक्टर बी.वी. केस्कर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या विभाजन की घण्टी बजने के पश्चात् भी ऐसा हो सकता है?

***उपाध्यक्ष:** मैं लाक्षणिक बातों (technicalities) पर कभी नहीं जाता। जब तक मैं यहां हूं मैं सामान्य विवेकानुसार चलता रहूंगा। मुझे लाक्षणिक बातों का कुछ ज्ञान नहीं है, किन्तु मुझे मानवीय स्वभाव का कुछ ज्ञान है। मैं जानता हूं कि अन्ततोगत्वा केवल सद्भावना, सामान्य विवेक तथा सदिच्छा ही किसी निर्णय पर पहुंचने में सहायक होंगी। मैं मत लेना स्थगित करने के लिये परिषद् की अनुमति चाहता हूं।

***माननीय सदस्यगण:** हां।

---

## अनुच्छेद 15

***उपाध्यक्ष:** अब हम अगले अनुच्छेद को लेंगे। अगला संशोधन नं. 514 का है, किन्तु श्री लारी अनुपस्थित हैं, अत: मैं उससे अगले संशोधन पर आता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि इस अनुच्छेद पर वाद-विवाद स्थगित कर दिया जाये, क्योंकि इसका परीक्षण हो रहा है तथा परिषद् के सदस्य इस अनुच्छेद पर विचारार्थ कुछ और समय चाहते हैं।

---

## अनुच्छेद 15-ए

***उपाध्यक्ष:** बहुत अच्छा। तब फिर मैं अनुच्छेद 15-ए (नये अनुच्छेद) को लेता हूं। संशोधन संख्या 534 का आशय मृत्यु दण्ड को बन्द करना है। एक ऐसे ही संशोधन पर पहले मत लिया गया था और वह गिर गया था, अत: मेरे विचार में यह पेश नहीं हो सकता।

(संशोधन सं. 535 तथा 536 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** परिषद् के समक्ष प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 16 को विधान का अंग माना जाये।

***एक माननीय सदस्य:** अनुच्छेद 15 के विषय में क्या हुआ?

***उपाध्यक्ष:** अनुच्छेद 15 को अभी स्थगित रखा गया है—माननीय सदस्य ध्यान नहीं दे रहे होंगे अत: उन्होंने श्री टी.टी. कृष्णमाचारी का सुझाव नहीं सुना जिसे कि सभापति ने स्वीकार कर लिया था। संशोधन संख्या 537 नकारात्मक संशोधन है, अत: मैं इसे अनियमित ठहराता हूं।

(संशोधन नं. 538, 539 और 540 पेश किये नहीं गये।)

संशोधन नं. 542, गो-वध-निवारण सम्बन्धी प्रावधान में आ जाता है जिसे कि परिषद् पहले ही पारित कर चुकी है।

**श्री सी. सुब्रह्मण्यम्** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस अनुच्छेद को मूलाधिकार में समाविष्ट अनुच्छेद के रूप में मानने में कुछ कठिनाई अनुभव करता हूं। अनुच्छेद इस प्रकार है:

> "इस संविधान के अनुच्छेद 244 के प्रावधानों के तथा संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन रहते हुये भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य और समागम अबाध होगा।"

मुझे जो कठिनाई अनुभव होती है उसकी चर्चा करने से पहले, मैं परिषद् का ध्यान विधान के मसौदे की उन धाराओं की ओर आकृष्ट करूंगा जो वाणिज्य तथा व्यापार के सम्बन्ध में हैं।

इस मसौदे में इस विषय के सम्बन्ध में अर्थात् अन्ताराज्य वाणिज्य तथा व्यापार के सम्बन्ध में तीन अनुच्छेद, 243, 244 तथा 245 हैं। इसके अतिरिक्त संघ-सूची की विधायिनी शक्तियों की सूची में 73वें अनुच्छेद में यह कहा गया है: "सूची 2 की प्रविष्टि 33 के प्रावधानों के अधीन रहते हुये अन्ताराज्य व्यापार तथा वाणिज्य"। इसके अलावा द्वितीय सूची की 32वीं मद में 'राज्य के भीतर वाणिज्य व्यापार, बाजार और मेलों' की, तथा 33वीं मद में "इस संविधान के अनुच्छेद 244 के प्रावधानों के प्रयोजनार्थ दूसरे राज्य के साथ वाणिज्य, व्यापार और यातायात के नियमन" ऐसा कहा गया है। अतएव आप देखेंगे कि अनुच्छेद 244 के अधीन अन्ताराज्य वाणिज्य तथा व्यापार एक संघीय विषय है। संसद् इसके सम्बन्ध में कार्यवाही करेगी। राज्यान्तर्गत वाणिज्य तथा व्यापार और अनुच्छेद 244 के अधीन अन्ताराज्य वाणिज्य-व्यापार, राज्यों के विधान-मण्डलों को सौंपा गया है। श्रीमान्, आप देखेंगे कि अनुच्छेद 244 में अन्ताराज्य व्यापार

तथा वाणिज्य के विषय में भी राज्यों के विधान-मण्डलों को कुछ कर तथा अनुबन्ध लगाने की कुछ शक्तियां दी गई हैं। यह ध्यान रख कर यदि हम अनुच्छेद 16 पर विचार करते हैं तो हम 'इस विधान के अनुच्छेद 244 के प्रावधानों के अधीन रहते हुये' यह शब्द कहां पाते हैं, अर्थात् अन्ताराज्य वाणिज्य तथा व्यापार के विषय में भी राज्यों के विधान-मण्डलों को जो कुछ शक्तियां दी गयी हैं उन पर इस अनुच्छेद का प्रभाव नहीं पड़ेगा। अतएव उसे छोड़ कर यह अनुच्छेद इस प्रकार हो जायगा: "संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन रहते हुये भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य और समागम अबाध होगा।" मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि यह मूलाधिकार कैसे हो सकता है तथा कोई अधिकार यहां सुरक्षित रखा भी गया है या नहीं। मूलाधिकार की कल्पना ही यह होती है कि कोई विशेष अधिकार संघ अथवा राज्य के विधान-मण्डलों से छीन लिया गया है। दूसरे शब्दों में यों कहिये कि सार्वभौमसत्ता जनता में निहित है, किन्तु वह सत्ता विधान-मण्डलों को प्रदान कर दी गई है अथवा कुछ विषयों के सम्बन्ध में वह सत्ता विधान-मण्डलों के द्वारा व्यक्त की जाती है।

किन्तु कुछ मूलाधिकारों के सम्बन्ध में हम कहते हैं कि संसद् अथवा सरकार को हस्तक्षेप करने का ज़रा सा भी अधिकार नहीं होगा। यहां तक कि उस सम्बन्ध में जनता की सत्ता सर्वोपरि है। यह सत्ता न किसी को दी जाती है और न किसी को उसे काम लेने का अधिकार दिया जाता है। यदि हम इस अनुच्छेद पर इस दृष्टिकोण से विचार करें तो इस अधिकार में से क्या अवशिष्ट बचता है जिसे संघ का विधान-मण्डल अथवा राज्य का विधान-मण्डल छू न सकता हो? आप देखेंगे कि यहां यह उल्लेख है कि "संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन रहते हुये भारत के राज्यक्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य और समागम अबाध होगा।" यहां संसद् की सत्ता सम्पूर्ण है। विधान-मण्डलों के क्षेत्र से कुछ भी अधिकार नहीं हटाया गया है। यहां जिस अधिकार को मूलाधिकार के रूप में आरक्षित किया जाये वह ऐसा होना चाहिये जिसमें कि न तो संघ का विधान-मण्डल और न राज्य का ही विधान-मण्डल हस्तक्षेप कर सके। यहां ऐसा कोई अधिकार शेष नहीं रहता। आप ध्यान रखें कि अनुच्छेद 16 में ये शब्द हैं कि "संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के आधीन रहते हुये" और इस पर कोई भी प्रतिबन्ध नहीं है। यहां तक कि इसका यह आशय निकलता है कि संसद् की शक्तियों के आधीन रहते हुये भारत के राज्यक्षेत्र के अन्तर्गत व्यापार की स्वतन्त्रता होगी। मैं सविनय निवेदन करता हूं कि यह मूलाधिकार नहीं है।

[श्री सी. सुब्रह्मण्यम्]

मैं जानता हूं मेरे कुछ मित्र ऐसा सोचते हैं कि राज्य के स्थान पर संसद् में शक्तियों को निहित कर देना ही मूलाधिकार के लिये पर्याप्त है। यही बात कुछ मित्रों ने कही है। यदि इस तर्क को इसके निष्कर्ष तक पहुंचाया जाये तो प्रथम सूची में जितने विषय हैं वे सब मूलाधिकार ही हैं। वास्तव में ऐसा नहीं है। मूलाधिकार की तो कल्पना ही यह है कि उसके सम्बन्ध में न तो संसद् के और न राज्यों के विधान-मण्डलों को हस्तक्षेप करने का अधिकार हो। यहां आप संसद् को सर्वोच्च सत्ता देते हैं; केवल संसद् की शक्तियों के अधीन रहते हुये ही भारत के राज्यक्षेत्र के अन्तर्गत स्वतंत्र व्यापार, वाणिज्य तथा समागम होगा। मेरे लिये यह समझना कठिन है कि यहां कौन-सा अधिकार संसद् अथवा राज्यों के विधान-मण्डलों के क्षेत्रों से हटाया गया है और मूलाधिक के रूप में सुरक्षित कर दिया है। यह कहना सर्वथा ठीक हो सकता है कि स्वतंत्र व्यापार के विषय में केवल संसद् को ही अधिकार होगा। यह तो संघीय विधान-मण्डल और राज्य के विधान-मण्डल के बीच प्रशासन की शक्तियों अथवा विधायिनी शक्तियों का वितरण है। निस्सन्देह यह कोई मूलाधिका नहीं है। जैसे कि मेरे एक मित्र ने बलपूर्वक कहा है कि यह संसद् के हेतु ही मूलाधिकार है। किसी नागरिक अथवा नागरिकों के वर्ग के हेतु कोई अधिकार नहीं है। इन परिस्थितियों में मैं चाहता हूं कि माननीय प्रस्तावक यह समझायें कि यह चीज़ मूलाधिकारों के अध्याय में कैसे आती है और कौन-सा अधिकार यहां दिया गया है, यद्यपि मैं देखता हूं कि वे दूसरी बातों में पहले से ही व्यस्त हैं और मुझे पता नहीं है कि इन्होंने मेरी वक्तृता को सुना भी है या नहीं।

***उपाध्यक्षः** श्रीमान् सुब्रह्मण्यम्, क्या मैं यह सुझाव दूं कि आप कोई सुनिश्चित सुझाव पेश करें जिससे कि डॉ. अम्बेडकर उत्तर दे सकें?

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्:** सुनिश्चित सुझाव यह है। डॉ. अम्बेडकर के हेतु मैं अपनी बात फिर कहता हूं। अनुच्छेद 16 के विषय में मेरी शिकायत यह है। संसद् अथवा राज्यों, किसी के विधान-मण्डल के क्षेत्र से भी कोई अधिकार कम नहीं किया गया है जिससे कि ऐसा कहा जा सके कि अनुच्छेद 16 में कोई अधिकार सुरक्षित किया गया है। क्योंकि आप देखेंगे कि यहां कहा गया है कि "संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के प्रावधानों के अधीन रहते हुये (अनुच्छेद 244 का प्रसंग ही छोड़िये) भारत के राज्यक्षेत्र के अन्तर्गत व्यापार तथा वाणिज्य तथा समागम अबाध होगा"। आप देखेंगे कि यह अधिकार संसद् द्वारा बनाई गई

किसी विधि के अधीन रहेगा और इस पर कोई भी प्रतिबन्ध नहीं होगा। आपने इस विषय में संसद् की सर्वोच्च सत्ता को सुरक्षित कर दिया है और संसद् सब कुछ कर सकती है। मूलाधिकार बनाने के लिये इसे संसद् अथवा राज्य के विधान मण्डलों के क्षेत्र से बाहर निकालना चाहिये। मैं देखता हूं कि किसी अधिकार का कोई भी अवशेष नहीं बचता है जिसे संसद् अथवा राज्य का विधान-मण्डल न छू सके, अतः यह उचितरूपेण मूलाधिकारों के अध्याय में नहीं आना चाहिये। यह कहना कि भारत के राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत अबाध व्यापार से सम्बन्धित विषयों पर संसद् ही कार्यवाही करेगी संसद् तथा राज्य के विधान-मण्डलों के बीच शक्तियों के वितरण की ही बात कही जा सकती है। हम प्रथम सूची की प्रविष्टि 73 को भी रख सकते हैं। आप द्वितीय सूची की 32 और 33वीं प्रविष्टियों में भी यह प्रतिबन्ध रख सकते हैं कि यह भारत में अबाध व्यापार से सम्बन्धित विषयों के अधीन रहेगा। मैं माननीय प्रस्तावक से प्रार्थना करूंगा कि वे मुझे समझायें कि क्या कोई ऐसा अधिकार यहां है जिसे विधान-मण्डलों और सरकार के क्षेत्र से निकाल दिया गया है और क्या अनुच्छेद 16 को यहां मूलाधिकारों के इस अध्याय में रखना उचित होगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, अनुच्छेद 16 आवश्यक है अथवा नहीं, यह जानने का एक यही तरीका है कि हम इस अनुच्छेद को हटा देने से जो परिणाम होंगे उन पर विचार करें। मान लीजिये कि अनुच्छेद 16 नहीं रहता, तो क्या होगा? अनुसूची की सूचियों के अनुसार केन्द्र को विभिन्न प्रान्तों के बीच व्यापार सम्बन्धी सारे विषयों पर कानून बनाने का अधिकार होगा, और अनुच्छेद 243 के अनुसार कोई भी प्रान्त किसी प्रान्त अथवा राज्य के विरुद्ध विभेद नहीं कर सकता। अनुच्छेद 244 के अनुसार विभेदात्मक कर नहीं लगाये जा सकते। अनुच्छेद 244 (बी) के अनुसार प्रत्येक राज्य (इसमें प्रत्येक प्रान्तीय विधान-मण्डल समाविष्ट है) को यह अधिकार होगा कि वह उस राज्य के साथ व्यापार, वाणिज्य अथवा समागम की स्वतन्त्रता पर कानून द्वारा ऐसे उचित प्रतिबन्ध लगा सके जो कि सार्वजनिक हितों के लिये अपेक्षित हों। अतएव प्रत्येक प्रान्तीय विधान-मण्डल तथा प्रत्येक राज्य के विधान-मण्डल को व्यापार, वाणिज्य अथवा समागम की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार हैं मान लीजिये कि सारे विधान-मण्डल विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगा देते हैं और उनका युक्तिपूर्वक नियमन करना तथा उनमें किसी प्रकार का समन्वय स्थापित करना आवश्यक प्रतीत होता है तो किसी में भी ऐसा करने की शक्ति निहित न होगी। अनुच्छेद 16 द्वारा वह शक्ति संसद् को दी जाती है। संसद् प्रान्त के

[माननीय श्री के. संतानम्]

अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सकती जहां तक कि उसी प्रान्त विशेष के भीतर व्यापार तथा वाणिज्य का सम्बन्ध है।

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्:** वह अधिकार अनुच्छेद 245 में दिया गया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** अनुच्छेद 245 में लिखा है कि: "इस संविधान के अनुच्छेद 243 और 244 के प्रावधानों को कार्यान्वित करने के लिये संसद् विधि द्वारा ऐसा प्राधिकारी नियुक्त करेगी जैसा वह उपयुक्त समझे और इस प्रकार नियुक्त प्राधिकारी को ऐसी शक्तियां और ऐसे कर्त्तव्य प्रदान करेगी, जैसे वह आवश्यक समझे"। यह केवल आनियमन के प्रयोजनार्थ है। विभिन्न विधान-मण्डलों द्वार आरोपित किये जाने वाले प्रतिबन्धों के आनियमन, अथवा एकीकरण अथवा उनमें परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने के लिये इसमें कोई विधायिनी शक्ति नहीं दी गई है, और इसीलिये वह शक्ति अनुच्छेद 16 द्वारा दी गई हैं। श्री सुब्रह्मण्यम् कहते हैं कि उस अवस्था में इसका यह अर्थ है कि प्रान्त के क्षेत्र से सारी शक्ति निकाल दी गई है। मैं कहता हूं कि ऐसी बात नहीं है।

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्:** मेरा तर्क यह है; मूलाधिकार में संसद् अथवा राज्य के विधान-मण्डल को शक्ति प्रदान करने का प्रश्न नहीं है; इसमें सदा संघीय संसद् तथा राज्य के विधान-मण्डल दोनों से शक्ति छीन लेने का प्रश्न होता है। केवल यही मूलाधिकार है। मूलाधिकारों का शक्तियों के वितरण से कदापि सम्बन्ध नहीं होता।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं नहीं समझता कि श्री सी. सुब्रह्मण्यम् की बात ठीक है। मूलाधिकार में ऐसा प्रावधान भी हो सकता है कि राज्य का विधान-मण्डल किसी विशेष मामले में हस्तक्षेप नहीं करेगा और उसमें केवल संसद् ही हस्तक्षेप कर सकती है; अथवा मूलाधिकार ऐसा भी हो सकता है कि संसद् किसी विषय में हस्तक्षेप नहीं करेगी और केवल राज्य का विधान-मण्डल ही उसमें हस्तक्षेप कर सकता है। शक्तियों का वितरण तथा उसके परिणामस्वरूप नागरिकों पर जो प्रभाव पड़ेगा वह भी व्यक्ति को प्राप्त होने वाले मूलाधिकारों का ही विषय है। यदि मूलाधिकारों के सारे खण्डों पर ध्यान से विचार किया जाये तो आप देखेंगे कि कई स्थान पर हमने ऐसा प्रावधान रखा है कि इस विषय में संसद् हस्तक्षेप कर सकती है किन्तु राज्य का विधान मण्डल हस्तक्षेप नहीं कर सकता, अतएव मेरे विचार में व्यापार के स्वातन्त्र्य के लिये अनुच्छेद 16 नितान्त

आवश्यक है और इसके बिना सारी रूपरेखा इतनी पेचीदी बन सकती है कि प्रांतीय विधान-मण्डल जैसा भी प्रतिबन्ध लगाना चाहे वैसा ही लगा सकेगा तथा मनमाना कानून बना सकेगा, और इससे भारत का आन्तरिक व्यापार कुण्ठित तथा बाधित हो सकता है। अतएव मेरा सुझाव है कि अनुच्छेद 16 रहना चाहिये।

***श्री एम. अनन्तशयमन आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं देखता हूं कि अनुच्छेद 16 में न कोई असंगति है और न यह अनावश्यक ही है। मैं अपने मित्र श्री सुबह्मण्यम् के साथ सहमत हूं कि यदि आंतरिक व्यापार के सारे क्षेत्र का आनियमन संबंधित राज्यों अथवा संसद् द्वारा किया जा सकता हो और कुछ भी अधिकार न बचता हो, तो फिर मूलाधिकार की कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि कोई अधिकार शेष नहीं बचता जैसा कि वह समझते हैं अथवा आशंका करते हैं। अभिव्यक्ति आदि की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में कुछ अधिकार अनुच्छेद 13 में प्रावहित है। अनुच्छेद 16 द्वारा भारत के राज्य-क्षेत्र के अन्तर्गत व्यापार, वाणिज्य तथा समागम के अबाध अधिकार की प्रतिभूति दी गई है। वही मूलाधिकार है। अनुच्छेद 244 में राज्यों के पक्ष में अपवाद रखे गये हैं तथा अन्य अनुच्छेदों में संसद् द्वारा बनाये गये किसी कानून के पक्ष में अपवाद रखे गये हैं। जहां तक संसद् द्वारा बनाये गये कानूनों का सम्बन्ध है, संसद् केवल उसी सीमा तक कार्य कर सकती है, जहां तक कि प्रथम सूची के अनुसार उसे कुछ शक्तियां प्रदान की गई हैं। जहां तक राज्यों का सम्बन्ध है, वे द्वितीय सूची के अन्तर्गत आ सकते हैं। राज्यों की सूची की प्रविष्टि संख्या 32 में राज्यों के भीतर के व्यापार तथा वाणिज्य की चर्चा है। उधर जहां तक राज्यों के भीतरी व्यापार तथा वाणिज्य का सम्बन्ध है, इस पर राज्यों का अनन्य क्षेत्राधिकार है। मैं केवल एक दृष्टान्त दे रहा हूं कि यह अनुच्छेद मूलाधिकारों के अध्याय में क्यों अपेक्षित है।

मेरे प्रदेश (प्रान्त) में दो जिले हैं—एक उत्तर में है और दूसरा दक्षिण में, उनमें कपास पैदा होती है, एक आन्ध्र में है और दूसरा तमिलनाडु में है। आज कल दक्षिण के प्रगतिशील जिले में अनेक रुई की मिलें हैं जिनमें सब कपास प्रयुक्त हो जाती है तथा वहां से प्रान्त के अन्य भागों को सूत तथा कपड़ा भेजा जाता है। कपास उगाने वाले उत्तरी जिले में सूत की मिलें स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। हम यह मान लेते हैं कि मद्रास सरकार कुछ प्रतिबन्ध लगाने का प्रयत्न करती है तथा कहती है कि कुड्डापह में जो नई सूत की मिल स्थापित की जाने वाली है उसका सूत अन्य जिलों में, जहां कि कोयम्बटूर की मिलों का

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

सूत जाता है, नहीं भेजा जायगा। यहां ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जो इसे रोक सके। यदि इस सम्बन्ध में कोई अनुबन्ध नहीं रखा जाता तो किसी राज्य को अथवा किसी राज्य विशेष को ज़िले-ज़िले के बीच विभेद करने से रोकने वाली कोई चीज़ नहीं है। अनुच्छेद 243 के अन्तर्गत हम राज्य-राज्य के बीच कोई भेदभाव नहीं कर सकते। किन्तु राज्य के भीतर ही किसी राज्य को विभेद करने के अधिकार का प्रयोग करने से रोकने वाली कोई चीज़ नहीं है। इसकी सम्भावना है। हम बम्बई प्रदेश को ही ले लें। अहमदाबाद में कपड़े की मिलें हैं। बम्बई में भी कुछ मिलें हैं। अब विधान-मण्डल को इसका अधिकार है कि वह बम्बई प्रदेश के दक्षिणी भाग को अपने साधनों का विकास करने से सर्वथा रोकने के लिये ऐसा प्रतिबन्ध लगा दे कि वह प्रदेश अपनी कोई भी सामग्री बम्बई प्रदेश के अन्य भागों को नहीं भेजेगा।

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्:** क्या मैं यह बता सकता हूं कि यह बात 13 (छ) में आ जाती है?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** 13(छ) में लिखा है:

"कोई व्यवसाय, वृत्ति, वाणिज्य तथा व्यापार करने का"

आपको किसी वस्तु का उत्पादन करके वृत्ति करने का अधिकार है किन्तु ऐसा नहीं है कि आप किसी भी शर्त के बिना कोई व्यापार कर सकते हैं।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): इसका सम्बन्ध व्यापार तथा समागम से है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** इसका सम्बन्ध व्यापार तथा वाणिज्य से है और तीसरा एक शब्द "समागम" भी है। मैं इसको भी लेता हूं। जहां तक व्यापार तथा वाणिज्य का सम्बन्ध है, मेरा सविनय निवेदन है कि वह अनुच्छेद 13 (छ) में नहीं आता। अब हम उपखण्ड (6) को लेते हैं, जिसमें लिखा है:

"(6) उक्त खण्ड के उपखण्ड (छ) की किसी बात से लोक-व्यवस्था, लोक-शील और लोक-स्वास्थ्य के हित में उक्त उपखण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रयोग पर आयंत्रणों का आरोप करने वाली और विशेषतया किसी व्यवसाय, वृत्ति, वाणिज्य अथवा व्यापार करने के लिये व्यावसायिक अथवा प्रौद्योगिक (टेक्निकल) योग्यताओं का

विनिधान अथवा किसी प्राधिकारी को विनिधान करने की शक्ति प्रदान करने वाली किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा विधि के बनाने में राज्य के लिये अवरोध न होगा।"

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि आप किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगा सकते हैं। यह बात खण्ड (छ) के अन्तर्गत है। यह अनुच्छेद 13 के खण्ड 6 के अन्तर्गत आता है। अतः अनुच्छेद 16 जैसे एक स्वतन्त्र खण्ड की आवश्यकता है जिसमें प्रत्येक मनुष्य को भारत के सारे भागों में व्यापार, वाणिज्य तथा समागम की स्वतंत्रता दी गई है।

जहां तक "समागम" शब्द का सम्बन्ध है, व्यापार तथा वाणिज्य को छोड़ कर अनेकों प्रयोजनों के लिये एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को समागम आवश्यक है। अनुच्छेद 13 में अथवा अन्य किसी स्थान पर मूलाधिकारों में इसका भी प्रावधान नहीं किया गया है।

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्:** यह तो पूर्णतया संसद् का ही क्षेत्र है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** राज्यों के सम्बन्ध में क्या स्थिति है?

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्:** आप इनमें अन्तर नहीं कर सकते।

***उपाध्यक्ष:** मुझे भय है कि जिन लोगों को मुझ से अधिक अनुभव है वे संसदात्मक कार्यप्रणाली को बहुत भंग करते हैं तथा अनियमितता से काम करते हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** अनुच्छेद 243 में लिखा है:

"जल, थल अथवा वायु द्वारा किये जाने वाले व्यापार अथवा वाणिज्य सम्बन्धी किसी विधि अथवा आनियम द्वारा एक राज्य की अपेक्षा दूसरे राज्य को कोई अधिमान न दिया जायेगा और न ही राज्यों के बीच कोई विभेद किया जायेगा।"

इससे राज्य-राज्य के बीच विभेद को रोका जायेगा। यहां ऐसा कोई अनुच्छेद नहीं है जिसमें कहा गया है कि आपको किसी राज्य के दो भागों के बीच विभेद नहीं करना चाहिये। अनुच्छेद 16 में यह भी आ जाता है। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि किसी राज्य के दो क्षेत्रों के बीच विभेद के विषय में कोई प्रावधान नहीं है। और कम से कम इसके लिये ही यह अनुच्छेद आवश्यक है।

***माननीय डॉक्टर बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, यदि मैं श्री सुब्रह्मण्यम् की बात को ठीक-ठीक समझा हूं तो मेरे विचार में उनको अनुच्छेद 16 पर आपत्ति नहीं है, किन्तु यह अनुच्छेद जिस स्थान पर रखा गया है उस पर उन्हें आपत्ति है। वे कहते हैं कि जहां तक इस अनुच्छेद का सम्बन्ध है, इसकी आवश्यकता हो सकती है तथा इससे लाभ हो सकता है, किन्तु इसे मूलाधिकारों में स्थान नहीं मिलना चाहिये। और यदि मैं उनकी बात को ठीक-ठीक समझा हूं तो उनका दूसरा तर्क यह है कि इस अनुच्छेद को अनुच्छेद 244 के अधीन रखा गया है। इससे अनुच्छेद 16 सर्वथा प्रभावशून्य बन सकता है, और उनका कहना है कि यदि अनुच्छेद 244 के अन्तर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया जाये तो इसमें से कुछ भी अधिकार अवशिष्ट नहीं बचता। मेरे विचार में उनकी वक्तृता का मैंने जो यह सारांश निकाला है वह ठीक है।

अब, मैं इस युक्ति को पूर्णतया समझता हूं कि अनुच्छेद 16 मूलाधिकारों की सूची में उपयुक्त नहीं है, और कुछ हद तक मैं श्री सुब्रह्मण्यम् से सहमत हूं। किन्तु मैं उनको यह बताऊंगा कि इस चीज़ को मूलाधिकारों में रखने की आवश्यकता क्यों पड़ी। मेरे मित्र श्री सुब्रह्मण्यम् को स्मरण होगा कि जब विधान-परिषद् आरम्भ हुई थी, तब हमने कुछ प्रतिबन्धों के अधीन कार्य आरम्भ किया था। एक प्रतिबन्ध यह था कि रियासतें केवल तीन विषयों के सम्बन्ध में ही संघ में समाविष्ट होंगी, वे विषय थे वैदेशिक मामले, सुरक्षा तथा यातायात। वे किसी अन्य विषय में संघीय संसद् को अपनी विधायिनी तथा अधिशासी शक्ति के विस्तार की अनुमति नहीं देते थे। अतएव वे समझ जायेंगे कि मसौदा-समिति तथा विधान-परिषद् को इस गम्भीर प्रतिबन्ध के अधीन काम करना था। एक ओर तो यह समझा जाता था कि यदि सारे भारत में व्यापार तथा वाणिज्य अबाध नहीं है तो कोई अखिल भारतीय संघ बनाने से कुछ लाभ नहीं होगा तथा कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। यही सामान्य दृष्टिकोण था। दूसरी ओर पता यह लगा कि जहां तक रियासतों की स्थिति का सम्बन्ध है, जिसकी कि मैंने पहले चर्चा की है, रियासतें सारे भारत के व्यापार तथा वाणिज्य को संघीय संसद् की विधायिनी शक्ति के अधीन रखने के लिये तैयार नहीं थीं। या दूसरे शब्दों में संक्षेप से कहा जाये तो वे व्यापार तथा वाणिज्य को प्रथम सूची में स्थान देने के लिये तैयार न थीं। यदि व्यापार तथा वाणिज्य को प्रथम सूची में समाविष्ट करना हमारे लिये सम्भव होता, जिसका अर्थ यह है कि संसद् को भारत के भीतर वाणिज्य के विषय में कानून बनाने की अधिशासी शक्ति होती, तो हमें व्यापार तथा वाणिज्य को मूलाधिकारों के अनुच्छेद 16 के अधीन लाना आवश्यक नहीं होता। किन्तु

विधान-परिषद् के आरम्भ होने के समय जो मूल सिद्धान्त थे उनके कारण वह मार्ग तो बन्द था, अतएव देश भर में व्यापार तथा वाणिज्य के विषय में समन्वय स्थापित करने के लिये हमें किसी स्थान पर यह बात रखनी थी। पर्याप्त विचार के पश्चात् हमें लोगों के बहुमत की इस इच्छा को पूरी करने के लिये कि भारत भर में व्यापार तथा वाणिज्य स्वतन्त्र होना चाहिये, केवल यही उपाय दिखाई दिया कि इसे मूलाधिकारों में रख दिया जाये। यही कारण है कि हमने सोचा कि व्यापार तथा वाणिज्य को मूलाधिकारों के अन्तर्गत रखने के अतिरिक्त हमारे पास कोई उपाय नहीं था, चाहे यह कैसा भी अद्‌भुत दिखाई पड़े। मेरे विचार में मेरे मित्र श्री सुब्रह्मण्यम् को इस बात से इस विषय में संतोष हो जायेगा कि हमने मूलाधिकारों की सूची में व्यापार तथा वाणिज्य को यह स्थान क्यों दिया, यद्यपि सिद्धान्त रूप से मैं मानता हूं कि इस विषय को मूलाधिकारों में रखना उपयुक्त नहीं है।

उनका दूसरा तर्क यह है कि व्यापार तथा वाणिज्य को अनुच्छेद 244 के अधीन रख दिया गया है इससे मूलाधिकार को ही प्रायः समाप्त कर दिया गया है। मेरे विचार में मैं न्यायपूर्वक कह सकता हूं कि मेरे मित्र श्री सुब्रह्मण्यम् ने या तो उस अनुच्छेद को पढ़ा ही नहीं है या उसका गलत अर्थ समझा है। अनुच्छेद 244 का तो बहुत सीमित क्षेत्र है। इसमें तो केवल इतना ही कहा गया है कि प्रान्तीय विधान-मण्डलों को अन्ताराज्य व्यापार तथा वाणिज्य के विषय में तथा अन्य किसी राज्य में निमित अथवा वहां से लाये गये सामान के प्रवेश पर कुछ प्रतिबन्ध लगाने की शक्ति दी गई है, पर शर्त यह है कि वह कानून ऐसा होगा कि उसके द्वारा उस राज्य में निर्मित सामान तथा उस राज्य के बाहर से आयात किये हुये सामान के बीच कोई अन्तर अथवा विभेद न किया जाये। अब मुझे विश्वास है कि वह सहमत होंगे कि यह एक अत्यन्त सीमित कानून है। इसके द्वारा भारत के भीतर व्यापार, वाणिज्य तथाा समागम का अधिकार नहीं छिन जाता, यह अधिकार तो अबाध रहेगा।

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्:** खण्ड में लिखा है कि किसी राज्य के लिये यह वैध होगा कि वह व्यापार, वाणिज्य अथवा यातायात स्वातंत्र्य पर कानून द्वारा ऐसे युक्तियुक्त आयंत्रण लगाये जो लोकहित के लिये अपेक्षित हों।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां, किन्तु युक्तियुक्त आयंत्रणों का यह अर्थ नहीं है कि वे ऐसे हो सकते हैं जिनसे वाणिज्य की स्वतंत्रता तथा समता सर्वथा नष्ट हो जाये। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

श्रीमान्, इस कारण मैं निवेदन करता हूं कि विद्यमान रूप में यह अनुच्छेद सर्वथा ठीक है और मैं इसका समर्थन करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** मैं अब इस अनुच्छेद पर मत लेता हूं।

हमारे सामने प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 16 विधान का अंग माना जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*अनुच्छेद 16 विधान में जोड़ दिया गया।*

---

## अनुच्छेद 17

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 17 को लेते हैं। परिषद् के समक्ष प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 17 को विधान का अंग समझा जाये। इस अनुच्छेद पर बहुत से संशोधन आये हैं और उन पर अब विचार किया जायेगा। मेरी सूची में प्रथम संशोधन संख्या 543 है। यह नकारात्मक है, अतएव इसे अभी स्थगित रखा जाता है।

इस संशोधन पर एक संशोधन है वह पंचम सूची में न. 93 का है और श्री रामचन्द्र उपाध्याय के नाम से है।

(श्री कामत द्वारा बाधा)

हां, श्री कामत, आप यह कह रहे हैं कि अन्य संशोधन भी हैं?

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): हां, श्रीमान् संख्या 544 है।

***उपाध्यक्ष:** किन्तु मैंने अभी उसकी पुकार तो नहीं की है। मैं संशोधन संख्या 543 और 543 पर जो संशोधन नं. 93 है, उसे ले रहा था।

***श्री एच.वी. कामत:** किन्तु, श्रीमान्, वह पेश ही नहीं हुआ है। फिर उस संशोधन पर कोई संशोधन कैसे पेश किया जा सकता है अथवा पुकारा जा सकता है?

***उपाध्यक्षः** क्या आप मेरी त्रुटि बता रहे हैं? क्या मैं पहले यह स्वीकार नहीं कर चुका कि मैं इन सब नियमों से अनभिज्ञ हूं? क्या हर बार इसकी चर्चा करना आवश्यक है?

अब हम संशोधन संख्या 544 को लेते हैं जो काजी सैयद करीमुद्दीन के नाम का है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं आपको परामर्श देने का ज़रा भी दम नहीं भरता।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 17 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'17. Neither slavery nor involuntary servitude such as *begar* except as a punishment for crime shall exist within the Union State.'

(17. संघ-राज्य में अपराध के लिये दण्ड के रूप में होने के सिवाय किसी अन्य रूप में दासता अथवा बेगार जैसी अनिच्छापूर्वक सेवा का अस्तित्व नहीं होगा।)"

श्रीमान्, मैं जो संशोधन पेश कर रहा हूं उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं है। किन्तु अनुच्छेद 17(1) में ऐसे मामले नहीं आते जिनमें कि बन्दियों से काम लिया जाता है, उनसे उनकी स्वतंत्र इच्छा के विरुद्ध काम लिया जाता है। यदि इस अनुच्छेद को उसी रूप में रहने दिया जाता है तो जेल के अधिकारी बन्दियों से काम नहीं ले सकेंगे। अतः मैंने "अपराध के लिये दण्ड के रूप में होने के सिवाय" ये शब्द रख दिये हैं। यहां मैं यह बता दूं कि ऐसा ही एक अनुच्छेद अमरीका के विधान में भी है।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 545 । श्री दामोदर स्वरूप सेठ!

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान् मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 17 के खण्ड 1 के आरम्भ में ये शब्द जोड़ दिये जायें:

'Servitude and serfdom in all forms as well as.'"

(सभी तरह की दासवृत्ति और दासत्व तथा)

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

मैं नहीं समझता कि यह ऐसी बात है जिस पर किसी को अधिक बोलने की आवश्यकता हो। अतएव मैं केवल यही निवेदन करना चाहता हूं कि कुछ रियासतों में किसी न किसी रूप में दासवृत्ति तथा दासत्व प्रचलित हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण में देवदासी के समान प्रथाओं ने भी घर कर लिया है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): Servitude (दासत्व) से भिन्न serfdom (दासवृत्ति) क्या है?

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य आपसे जानना चाहते हैं कि serfdom का क्या अर्थ है।

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ:** यह एक प्रकार का servitude ही है, अथवा मैं कह सकता हूं कि यह दासता है, जो रियासतों में प्रचलित है।

***उपाध्यक्ष:** शायद serfdom और servitude के बीच अन्तर के विषय में यह इन्हीं के विचार हैं।

अगले तीन संशोधन हैं संख्या 546, 547 तथा 548 के, जिनमें से सबसे अधिक व्यापकार्थ सूचक 546 है, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम में है।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> "कि अनुच्छेद 17 के खण्ड 1 में 'मानव-पणन और बेगार' इन शब्दों के स्थान पर 'मानव-पणन अथवा धर्म के नाम पर देवदासी बनाने या किसी अन्य प्रकार की दासता एवं अपमान के जीवन में डालने के लिये मानव का अर्पण तथा बेगार' ये शब्द रख दिये जायें।"

इस प्रस्ताव की सिफारिश करते हुये मैं यह बताना चाहता हूं कि 'मानव-पणन' इन शब्दों से मैं यह समझता हूं कि लोगों को वस्तु के समान बेचने और खरीदने की सम्भावना है अतएव इसका वर्जन करना चाहिये। साधारणत: इसका आशय गुलामी से लिया जाता है जैसा कि वह प्राचीन काल में प्रचलित थी और अर्वाचीन काल तक यूरोप तथा अमरीका के तथाकथित सभ्य देशों में भी प्रचलित थी। यह ठीक ही है कि ऐसा व्यापार बन्द कर देना चाहिये।

किन्तु मानव-पणन प्राचीन काल की गुलामी प्रथा तक ही सीमित नहीं है। यह अब भी होता है—शायद इस परिषद् के भोले सदस्यों को जितना पता है उससे

कहीं अधिक बड़े पैमाने पर होता है और श्वेत दासों के व्यापार के नाम से होता है। एक देश से दूसरे देश को आयात अथवा निर्यात करने के लिये नवयुवतियों का क्रय-विक्रय होता है, और उन्हें सदा के लिये पाप-व्यापार के अड्डे के मालिकों को सौंप दिया जाता है और स्थायी रूप में उनको दासियां अथवा बांदियां बना दिया जाता है जो कि सम्भवत: सारे जीवन के लिये होता है।

निस्संदेह यह व्यापार साधारण कानूनी कण्ट्राक्टों के आधार पर ही किया जाता है, जिसमें दोनों ही पक्ष अपनी मर्जी से ऐसा करते हैं। कानूनी रूप से यह कण्ट्राक्ट कहां तक जायज है यह तो मैं नहीं कह सकता, किन्तु इतना मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि ऐसे कण्ट्राक्ट समस्त सभ्य मानव जगत की दृष्टि में एक भयंकर अपराध प्रतीत होते हैं।

इसलिये मैं चाहता हूं कि इस संशोधन से यह स्पष्ट समझ लिया जाना चाहिये कि 'मानव-पणन' में केवल भूतकालीन गुलामों का क्रय-विक्रय ही शामिल नहीं है वरन् यह नई प्रकार की गुलामी भी शामिल है, जो वास्तव में बड़े पैमाने पर व्यापारिक रूप में होने वाला पाप-कृत्य है, जिसे तथाकथित सभ्य देशों ने सुप्रचलित कर दिया है या मैं कह सकता हूं कि इसे एक व्यवसाय बना लिया है।

यह चीज़ शायद इस खण्ड के प्रारूपकों के मस्तिष्क में नहीं रही होगी। किन्तु मेरे विचार में परिषद् के लिये इसे ध्यान में रखना तथा इस संशोधन को मान लेना अच्छा होगा, ताकि ऐसे व्यापार को पूर्णतया, स्पष्टतया तथा लिखितरूप में वर्जित कर दिया जाये।

निस्संदेह मैंने इस संशोधन को उस विशेष प्रकार की दासता को ही ध्यान में रख कर लिपिबद्ध किया है जो इस देश में व्यापक पैमाने पर प्रचलित है, जिसमें धर्म के नाम पर नवयुवतियों को मन्दिरों के अर्पण कर दिया जाता है और कच्ची उम्र से ही इन्हें दुराचारपूर्ण व्यापार के काम में लाया जाता है। मेरे विचार में इसे भी बन्द करना चाहिये। ऐसे व्यापार करने वालों को धर्म के नाम का आश्रय नहीं लेना चाहिये, और विधान को इसे रोकने के विषय में कुछ भी लिहाज नहीं करना चाहिये। यदि मैं इस अनुच्छेद की भावना को ठीक प्रकार से समझता हूं तो इसके द्वारा सब प्रकार का मानव-पणन वर्जित होगा।

बलात् श्रम निस्संदेह एक बुराई है; और इसका एक विशेष रूप जो बेगार कहलाता है जिसका अर्थ है कि बिना वेतन के ही आज्ञानुसार अनिवार्य कार्य करना, यह भी बन्द होना चाहिये। किन्तु और चीज़ों से भी अधिक इस अत्यन्त

[प्रो. के.टी. शाह]

दुराचारपूर्ण व्यापार पर इस संशोधन में ज़ोर देना चाहिये, मैं कहता हूं कि यह अमानवीय व्यापार है जो उससे कहीं अधिक बड़े पैमाने पर प्रचलित है, जितना कि शायद परिषद् समझती है और इसी कारण मैं यह संशोधन परिषद् में पेश करता हूं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 547 ।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान् मैं इसे पेश नहीं कर रहा हूं किन्तु बोलना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** मैं आपको बोलने की अनुमति नहीं दे सकता। क्या आप चाहते हैं, इस पर मत लिया जाये?

***श्री बी. दासः** नहीं, श्रीमान्, मैं इसे पेश नहीं करता। क्या आप मुझे एक शब्द कहने की अनुमति नहीं देंगे?

***उपाध्यक्षः** मैं यह नहीं कर सकता क्योंकि इससे सारा परिषद् में व्यग्रता फैलेगी। आपको अपनी बारी पर बोलना होगा

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 548 ।

***ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर** (पूर्वी पंजाब : सिख): श्रीमान् मेरा संशोधन इस प्रकार है:

"कि अनुच्छेद 17 के खण्ड 1 में 'मानव-पणन' इन शब्दों के आगे 'जिसमें वेश्यावृत्ति भी शामिल है' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

***उपाध्यक्षः** क्या आप इसे पेश करना चाहते हैं?

***ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिरः** मैं तो सिर्फ कुछ कहना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** मैं यह नहीं कह सकता कि जिन-जिन सदस्यों ने संशोधन भेजे हैं उनमें से प्रत्येक को बोलने का समय मिलेगा। मुझे स्पष्ट कह देना है, क्योंकि हमें अब शीघ्रता करनी है।

(संशोधन नं. 549, 550 और 552 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 551। यह केवल शब्दिक संशोधन है अतएव इसकी अनुमति नहीं दी जाती है।

(संशोधन संख्या 553 पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 554। यह केवल शाब्दिक संशोधन है अतएव इसकी अनुमति नहीं दी जाती।

संशोधन संख्या 555, 558 तथा 560 पर एक साथ विचार होगा। मैं संख्या 555 के पेश करने की अनुमति देता हूं।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं संशोधन संख्या 555 को पेश नहीं कर रहा हूं।

***सरदार भूपेन्द्रसिंह मान** (पूर्वी पंजाब : सिख): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 17 के खण्ड 2 के अन्त में 'और उसके लिये समुचित क्षति-पूर्ति देगा' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

श्रीमान्, मेरे संशोधन के जोड़ देने से खण्ड 2 इस प्रकार बन जायेगा:

"इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को लोक-प्रयोजनार्थ अनिवार्य सेवा का आरोप करने में अवरोध न होगा। ऐसी सेवा का आरोपण करने में प्रजाति, धर्म, जाति अथवा वर्ग के आधार पर राज्य कोई विभेद न करेगा और उसके लिये समुचित क्षतिपूर्ति देगा।"

बेगार मजदूरों से लिया गया एक प्रकार का बलात्श्रम है, और हम इसे देश में बन्द करना तथा रोकना चाहते हैं। हमारा आशय यह है कि श्रमिक से उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य नहीं कराना चाहिये, किन्तु इस सम्बन्ध में एक अपवाद रखा गया है कि राज्य लोक-प्रयोजनार्थ अनिवार्य सेवा लागू कर सकता है। अब यदि हम यह मान लें कि राज्य को किसी सम्पत्ति की आवश्यकता है तथा वह किसी नागरिक को उस सम्पत्ति से वंचित करता है तो यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि राज्य को इसके लिये क्षतिपूर्ति अर्थात् समुचित मूल्य देना चाहिये। इसी प्रकार जब राज्य किसी श्रमिक को उसके श्रम से वंचित करता है; (अब मेरा विश्वास है, श्रमिक के लिये श्रम उसकी सम्पत्ति है) तो मैं चाहता हूं कि राज्य को उसके लिये क्षतिपूर्ति देनी चाहिये।

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 17 के खण्ड 2 में 'लोक' शब्द के स्थान पर 'सामाजिक अथवा राष्ट्रीय' यह शब्द रख दिये जायें।"

आरम्भ में ही मैं यह कह देना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद में बेगार शब्द की, जो कि अंग्रेज़ी का शब्द नहीं है, कहीं परिभाषा नहीं दी गई है और अच्छा होगा यदि हम इसकी परिभाषा इस अनुच्छेद में नहीं तो विधान में कहीं अन्यत्र रख दें। अब संशोधन पर आता हूं। मेरे विचार में 'लोक' शब्द से इस अनुच्छेद के खण्ड 2 का आशय अथवा महत्त्व इतना स्पष्ट नहीं होता जितना कि "सामाजिक अथवा राष्ट्रीय" शब्द से हो जायेगा। हम सब जानते हैं कि राज्य की सेवाओं—सरकारी सेवाओं—का ही लोक सेवाओं के नाम से उल्लेख किया जाता है, किन्तु राष्ट्रीय सेवा अथवा सामाजिक सेवा का लोक सेवा शब्द से अधिक विस्तृत, अधिक उच्च, अधिक आशयपूर्ण अभिप्राय होता है। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि राष्ट्रीय योजना निर्माण समिति की कार्यवाही की रिपोर्ट में, जिसे कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने स्थापित किया था तथा जिसका सभापतित्व पं. जवाहरलाल नेहरू ने किया था और जिसमें 3, 4 वर्ष से अधिक समय तक मेरे मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह ने महत्त्वपूर्ण सेवा की थी, उस रिपोर्ट में यह सुझाव रखा गया था कि सामाजिक सेवा के लिये सब नागरिकों की अनिवार्य भर्ती होनी चाहिये; और पं. नेहरू तो इस विषय पर बोलते हुये इतना तक कह गये थे कि किसी छात्र को विद्यालय की उपाधियां तब तक नहीं मिलनी चाहिये जब तक कि वह छः मास तक किसी प्रकार की सामाजिक सेवा न कर ले। वहां "सामाजिक सेवा" शब्द प्रयुक्त हुआ था, "लोक सेवा" शब्द नहीं। "राष्ट्रीय" शब्द "सामाजिक" शब्द से भी अधिक आशयपूर्ण है। मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर ने कल इस प्रकार की राष्ट्रीय सेवा की चर्चा की थी। जब कोई युद्ध होगा, जब कोई संकट-काल आयेगा, जब राज्य के स्थायित्व पर संकट आयेगा, जब कोई विप्लव होगा, विशेषतया उसी समय राष्ट्रीय सेवा का प्रश्न उठेगा और उसी समय नागरिकों के शस्त्र ग्रहण करने के कर्त्तव्य का भी प्रश्न उठेगा, जिसकी कि कल चर्चा की गई है। मैं कहता हूं कि ऐसी अवस्थाओं में अनिवार्य भर्ती होनी चाहिये, मेरा ऐसा आशय नहीं है कि सैनिक सेवा के लिये ही ऐसा हो, किन्तु राष्ट्रहित में किसी प्रकार की सेवा के निमित्त भी ऐसा होना चाहिये। यहां तक कि जो लोग

अन्तर्विवेक से प्रेरित होकर इस सम्बन्ध में आपत्ति करते हैं उन्हें भी किसी प्रकार की सेवा के लिये कहा जाना चाहिये, चाहे उन्हें शस्त्र ग्रहण करने तथा लाम पर जाने के लिये भले ही न कहा जाये।

यहां मैं यह भी सुझाव रखना चाहता हूं कि यहां केवल धर्म, प्रजाति, जाति अथवा वर्ग का ही नहीं, अपितु लिंग का भी विभेद नहीं होना चाहिये। किन्तु इस सम्बन्ध में मैं एक चेतावनी देना चाहता हूं और वह यह है कि शस्त्र-धारण करने का कर्त्तव्य बिना किसी शर्त के नहीं होना चाहिये। मेरे विचार में अगर आप शस्त्र-धारण का अधिकार दिये बिना ही शस्त्र-धारण के कर्त्तव्य को आरोपित करते हैं तो यह तानाशाही (Totalitarian) राज्य, पुलिस राज्य अथवा किसी सैनिक-एकाधिपत्य का एक चिह्न होगा, न कि उस ऐसे जनतंत्रात्मक राज्य का जैसा कि अपनी प्रस्तावना के अनुसार हम अपने भारतीय राज्य को बनाना चाहते हैं। शस्त्र ग्रहण करने के कर्त्तव्य को पालन करवाना तो राज्य के लिये 'मरने' की भावना अथवा सिद्धान्त की बाह्य अभिव्यंजना है। हमें राज्य के लिये मरना चाहिये, इस सिद्धांत की ही अभिव्यक्ति है शस्त्र-धारण करने का कर्त्तव्य। किन्तु प्रत्येक नागरिक को इससे भी उच्चतर कर्त्तव्य का पालन करना होता है, और वह कर्त्तव्य है राज्य के लिये 'जीना'—राज्य के लिये जीना, केवल राज्य के लिये मरना ही नहीं—और राज्य के लिये जीने के इस सिद्धान्त का सम्बन्ध है शस्त्र-धारण करने के अधिकार से।

अन्त में मैं सुझाव रखता हूं कि इस अनुच्छेद के खण्ड (2) की भाषा में परिवर्तन कर दिया जाये तथा 'लोक सेवा' इस शब्द के स्थान पर 'सामाजिक अथवा राष्ट्रीय' यह शब्द रख दिये जायें। यदि 'लोक सेवा' ही होता तो मुझे कुछ आपत्ति न होती किन्तु 'लोक प्रयोजनार्थ सेवा' उचित नहीं है, और मेरे विचार में इस खण्ड का महत्त्व तथा आशय अधिक अच्छी प्रकार व्यक्त होगा यदि हम इस प्रकार कहें "इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को सामाजिक अथवा राष्ट्रीय प्रयोजनार्थ अनिवार्य सेवा का अरोप करने में अवरोध न होगा।" श्रीमान्, मैं इसे पेश करता हूं।

(संशोधन नं. 557 पेश नहीं किया गया।)

***प्रो. के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 17 के खण्ड (2) में, 'प्रजाति, धर्म, जाति अथवा वर्ग के आधार पर' इन शब्दों के पहले 'केवल' शब्द जोड़ दिया जाये।"

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान्, यह बहुत छोटा-सा संशोधन है किन्तु मेरे विचार में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि इसे स्वीकार कर लिया गया तो खण्ड इस प्रकार हो जायेगा:

"'...in imposing such service the State shall not make discrimination on the ground only of race, religion, caste or class.'

(...ऐसी सेवा का आरोपण करने में केवल प्रजाति, धर्म, जाति अथवा वर्ग के आधार पर राज्य कोई विभेद न करेगा।)"

मैंने इसे पेश तो कर दिया है फिर भी इसका महत्त्व इतना स्पष्ट है कि मुझे भरोसा है कि प्रारूपक इसे स्वीकार कर लेंगे।

***उपाध्यक्ष:** अब अनुच्छेद पर विस्तृत रूप से वाद-विवाद हो सकता है। ज्ञानी गुरुमुखसिंह अब बोलेंगे। मैं उन्हें पांच मिनट देता हूं।

**ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर:** सभापति जी, आर्टिकिल 18 विधान में एक अच्छी दफा है मगर उसमें यह जो दो एक कमियां हैं, वह जरूर दूर होनी चाहियें। इस सिलसिले में मैंने एक अमेण्डमेण्ट पेश किया था जिस पर मुझ को बोलने का मौका नहीं मिला। मैं यह कहना चाहूंगा कि यह प्रोस्टीट्यूशन हिन्दुस्तान की सभ्यता के बिल्कुल मुताबिक नहीं है। यह मगरब से आई थी और मगरबी हाकिमों के यहां से चले जाने के बाद यह ज़रूर खत्म हो जाना चाहिये। आर्टिकिल 17 क्लाज 1 में (Traffic in human beings) के बाद 'प्रोस्टीट्यूशन' का लफ्ज ज़रूर include होना चाहिये। तभी इस क्लाज की शान ज्यादा बढ़ती है और कमी दूर हो जाती हैं। दूसरी तजवीज़ जो सरदार भूपेन्द्रसिंह मान ने पेश की है यह बड़ी अच्छी बात है। हुकूमत पब्लिक की भलाई के पेशनजर अगर कोई जबरी काम ले भी तो काम करने वाले को मुनासिब एवजाना ज़रूर मिलना चाहिये। यह बहुत ही अच्छी बात है जो इस आर्टिकिल की क्लाज 2 में रखी गई है कि बेगार लेते वक्त किसी फिरका, मजहब, जात या तबका का लिहाज न रखा जायेगा। सरकार को बेगार लेने के जो अख्तियार इस क्लाज में दिये गये हैं, वह कमोबेश पहले भी मौजूद हैं और अब भी सरकारी ओहदेदार अपने रौब की वजह से बेगार लेते हैं। अगर इसमें यह बात आ जाये कि इसका मुआवजा दिया जायेगा तो यह कमी भी दूर जो जाती है और इस क्लाज की कद्रोकीमत बढ़ जाती है। इससे पहले बेगार का रिवाज गरीबों के लिये बवाल था। अब यह

क्लाज एवजाना देने के लफ्ज जाने के बगैर पास हो जाये तो ठीक नहीं बैठेगी। इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं कहना चाहता हूं क्योंकि प्रधान साहब ने हिदायत कर दी है। इसलिये ज्यादा वक्त न लेते हुये सिर्फ यह दो बातें ही कह सका हूं। अव्वल यह कि प्रोस्टीट्यूशन की लानत इस देश से दूर होनी चाहिये। दूसरी यह कि बेगार का मुआवज़ा ज़रूर दिया जाये।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि मैं परिषद् के मूल्यवान समय में से केवल एक दो मिनट ही लूंगी। मैं इस अनुच्छेद पर कुछ शब्द कहना चाहती हूं। प्रोफेसर शाह के संशोधन का आशय यह है कि 'मानव-पणन और बेगार' इन शब्दों के स्थान पर 'मानव-पणन अथवा धर्म के नाम पर देवदासी बनाने या किसी अन्य प्रकार की दासता एवं अपमान के जीवन में डालने के लिये मानव का अर्पण तथा बेगार' ये शब्द रख दिये जायें।

श्रीमान्, धर्म के नाम पर देवदासियों के अर्पण की कुप्रथा से यदि किसी प्रांत को दु:ख भोगना पड़ा है तो वह मद्रास प्रान्त है। मद्रास में बहुत समय तक यह प्रथा बहुत ही बुरे रूप में प्रचलित रही है। मैं नहीं जानती कि इस प्रकार की प्रथा किसी रूप में अन्य किसी प्रान्त में भी है अथवा नहीं। किन्तु हम जानते हैं कि यह कई रूपों में प्रचलित थी। किन्तु यद्यपि मैं इस संशोधन के पेश करने में उनके उद्देश्य की सराहना करती हूं और इस बुराई को दूर करने की आवश्यकता अनुभव करने के लिये उनको धन्यवाद देती हूं, किन्तु मेरे विचार में यह संशोधन आवश्यक नहीं है। मद्रास ने कुछ वर्ष पूर्व एक कानून पास करके इस प्रथा का वर्जन पहले ही कर दिया है। यह वहां अब प्रचलित नहीं है। यद्यपि उस प्रथा के कुछ चिह्न अभी भी शेष हैं, पर मुझे विश्वास है कि वे भी कालक्रम से दूर हो जायंगे। इस सम्बन्ध में मुझे श्रीमती मुतु लक्ष्मी रेड्डी जैसे सुधारकों के प्रयत्नों की प्रशंसा करनी चाहिये। यह मुख्यत: उनके प्रयत्नों का ही परिणाम है कि यह बुराई खत्म हो पाई है। उनके प्रयत्नों के लिये हम अत्यन्त आभारी हैं। जैसा कि मैं कह चुकी हूं, मद्रास ने इस प्रथा का वर्जन करने के लिये एक कानून पास कर दिया है। अतएव मैं इस प्रावधान को अनुच्छेद 13 में समाविष्ट करना आवश्यक नहीं समझती, यद्यपि प्रोफेसर शाह ने जिस भावना से प्रेरित होकर यह संशोधन रखा है, मैं उसकी बहुत सराहना करती हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं श्री बी. दास से बोलने के लिये कहूंगा। वे परिषद् के पिता के समान हैं और उन्हें संक्षिप्तता का उदाहरण पेश करना चाहिये।

***श्री बी. दास:** श्रीमान्, गत अवसर पर जब हम मूलाधिकारों के विषय में वाद-विवाद कर रहे थे, तब मैंने इस महान् बुराई—स्त्रियों के क्रय-विक्रय—को दूर करने के विषय में प्रारूपित विधान में व्यवस्था करने की आवश्यकता बताई थी। इस व्यापार का अर्थ है स्त्रियों को वेश्यावृत्ति धारण करने के लिये बलात् बाध्य करना। स्त्रियों के व्यापार की चर्चा करते हुये जो सारे संसार में प्रचलित एक महान् सामाजिक कुरीति है मैंने पिछली बार यह कहा था कि हमें पाखण्डी बन कर इस तथ्य को छिपाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये कि भारत में स्त्रियों का ऐसा व्यापार नहीं चलता है। श्रीमान्, अन्य स्थान पर जो निर्णय किया गया था कि मुझे अपने उस संशोधन को पेश नहीं करना चाहिये, जिसका आशय यह था कि 'मानव-पणन' शब्द के आगे 'विशेषतया स्त्रियों का पणन' ये शब्द जोड़ दिये जायें, मैं उस निर्णय को शिरोधार्य करता हूं।

श्रीमान्, हमें स्वीकार कर लेना चाहिये कि स्त्रियों का ऐसा व्यापार होता है, जिसके लिये सर्वत्र पुरुष ही उत्तरदायी हैं। उड़ीसा स्त्रियों को प्राय: भगाया जाता है। मैंने कहा था कि 1943-44 में बंगाल की महान् विपत्ति के समय लाखों नारियों को उड़ा कर पंजाब तथा पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त ले जाया गया था। श्रीमान्, विदेशी सरकार नवयुवतियों को सैनिक-शिविरों में ले जाया करती थी, और मानवता उन महिलाओं से वंचित हो जाती थी, परिवार से वे खो जाती थीं तथा देश उन्हें अच्छे नागरिक के रूप में पाने से वंचित हो जाता था। अतएव हम साधारण मनुष्यों को इस पर शर्म नहीं आनी चाहिये और ऐसा नहीं सोचना चाहिये कि इस प्रकार के संशोधन को रखना हमारे लिये यह स्वीकार करना होगा कि इस देश में नारियों का पणन होता है। इसी कारण मैंने इस संशोधन की सूचना दी थी। यदि परिषद् श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन को स्वीकार करने के लिये राजी हो अथवा प्रोफेसर शाह का ही संशोधन स्वीकार करने के लिये तैयार हो, जिन्होंने कि अपने संशोधन को देवदासी प्रथा तक ही सीमित रखा है और यह नहीं सोचा है कि मन्दिरों में नृत्य का क्या प्रभाव होता है, जिसके कारण चिरकाल से हमारी राष्ट्रीय कला तथा गान-विद्या जीवित रह सकी है...।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या श्रीमती दुर्गाबाई नें इस अनुच्छेद पर किसी संशोधन की सूचना दी है, श्रीमान्?

***उपाध्यक्ष:** नहीं।

***श्री बी. दास:** उन्होंने डॉ. अम्बेडकर को एक संशोधन भेजा है।

***उपाध्यक्ष:** मुझे उसका कुछ ज्ञान नहीं है।

***श्री बी. दास:** मुझे खेद है मैंने गलत समझा। किन्तु मेरे विचार में मूलाधिकारों के विषय में हमारा विधान न्यायोचित नहीं बनेगा, यदि हम 'नारी-पणन' यह शब्द जोड़कर अपने पापों को स्वीकार नहीं करते तथा अब एवं आगे के लिये स्थिति को सुधारने का प्रयत्न नहीं करते।

***श्री राजबहादुर** (संयुक्तराज्य मत्स्य): उपाध्यक्ष महोदय, दासता के समान बेगार का भी बड़ा ही काला तथा दु:खद इतिहास है। मैं एक रियासत से आया हूं अत: मैं जानता हूं कि रियासतों की दलित तथा मूक जनता के लिये यह बेगार, यह बलात् श्रम, कितना भयानक सिद्ध हुआ है। यदि इस बेगार की पूरी कथा लिखी जाये तो वह मानव के दु:खों, कष्टों, रक्त तथा अश्रुओं से परिपूर्ण होगी। मैं जानता हूं कि किस प्रकार कुछ नरेश साधारण जन को दु:ख देकर अपने भोग-विलास, अपने असंयमित जीवन में लिप्त रहे हैं, किस प्रकार उन्होंने अपने आनन्द के हेतु दलित श्रमिकों तथा मूक अज्ञानी जनता का उपयोग किया है। उदाहरणार्थ मुझे पता है कि बत्तख का शिकार करने के लिये, किस प्रकार बहुत से लोगों को ठंडे शीत सर्दी के दिनों में सारे-सारे दिन कीचड़ में बलात् बांध कर खड़ा रखा जाता है। मुझे पता है कि किस प्रकार आखेट क्रीड़ा के निमित्त बहुत संख्या में लोगों को सिंह का हांका करने के लिये बांध लिया जाता है ताकि नरेश उसे गोली मार सकें। मैंने यह भी देखा है कि दीन हीन लोगों को घरेलू तथा अन्य प्रकार के श्रम के लिये जोत लिया जाता है, चाहे वे व्याधिग्रस्त हों अथवा उनके परिवार में कोई बीमार हो। उस काम के लिये उन्हें कुछ नहीं दिया जाता अथवा बहुत कम पैसे दिये जाते हैं। केवल इतना ही नहीं है। जैसे कि आरम्भ में ही कह चुका हूं, यदि सारी कथा का वर्णन किया जाये तो यह बड़ी ही लोमहर्षक गाथा बन जायेगी। मुझे पता है कि बहुधा छोटे-छोटे अधिकारी निर्धन लोगों पर ऐसे अत्याचार करते हैं। यह छोटे-छोटे अधिकारी केवल ऐसे अत्याचार ही नहीं करते वरन् जो श्रमिक इस बेगार की विपत्ति से बचना चाहते हैं उनसे बलात् घूस भी लेते हैं। इस अनुच्छेद पर अपने विचार प्रकट करते हुये, मैं यह भी कहना चाहता हूं कि मैं सरदार भूपेन्द्रसिंह मान द्वारा पेश किये गये इस संशोधन के विरुद्ध हूं जिसमें कहा गया है कि लोक प्रयोजनार्थ कार्यों के लिये अनिवार्य श्रम लेने पर क्षतिपूर्ति दी जाये, क्योंकि मैं अनुभव करता हूं कि यदि यह संशोधन स्वीकार कर

[श्री राजबहादुर]

लिया जाये तो सम्भव है कि इसका दुरुपयोग हो तथा लोगों को अपनी इच्छा के विरुद्ध कार्य करने के लिये बाध्य किया जाये।

सार रूप में, मैं कह सकता हूं कि अनुच्छेद 13 जन-साधारण की स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र है, तथा यह अनुच्छेद उस घोषणा-पत्र का पूरक है। इससे रियासतों की दीन, दलित तथा मूक जनता को बेगार की बला से मुक्ति मिलती है—मैं अन्य प्रान्तों के विषय में कुछ नहीं कह सकता। यह बेगार मानवता पर कलंक है तथा मानवीय सभ्यता में जो कुछ अच्छाई तथा उच्चता है, यह उसके विपरीत है। शताब्दियों से दासता की प्रथा के समान यह कुप्रथा भी जन-साधारण के कंधों पर बोझ के समान रही है। मसौदा-समिति तथा यह विधान-परिषद्—दोनों ही—उन करोड़ों मूक दलित लोगों के धन्यवाद के पात्र हैं जो कि इस अनुच्छेद द्वारा बेगार की इस बला से मुक्ति पा जायेंगे।

***श्रीमती रेणुका राय** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यथासम्भव संक्षेप में बोलने का प्रयत्न करूंगी।

भारत तथा विश्व की चेतना सम्पन्न नारियां नारी-पणन की समस्या के प्रति पूर्ण रूपेण जागरूक हैं और इस बात को बरदाश्त नहीं कर सकतीं कि यह कुप्रथा जारी रहे। श्रीमान्, यदि हम श्री बी. दास के संशोधन को स्वीकार नहीं करते तो इसका यह कारण नहीं है कि हम उनके उद्देश्य के महत्त्व को नहीं समझते। हम जानते हैं कि वे नारी-पणन की समस्या पर विशेष ज़ोर देना चाहते हैं किन्तु मेरे विचार में अनुच्छेद की वर्तमान भाषा में भी यह चीज़ आ ही जाती हैं। मैं यह बात केवल इसलिये कह रही हूं ताकि यह न समझा जाये कि इस परिषद् की महिला सदस्य इस समस्या के विषय में जागरूक नहीं हैं। यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या है जिस पर इस देश की महिला संस्थाओं ने गत कुछ समय से अपना ध्यान केन्द्रित किया है।

मेरे माननीय मित्र श्री के.टी. शाह ने जो संशोधन पेश किया है, उसके विषय में मैं श्रीमती दुर्गाबाई के विचार से सहमत हूं कि मद्रास में इस विषय पर एक कानून बन चुका है, किन्तु मेरे विचार में यदि श्री शाह के संशोधन को यह परिषद् स्वीकार कर सके, जिससे कि मन्दिरों में स्त्रियों को अर्पण करने की देवदासी प्रथा को विधान के एक स्पष्ट प्रावधान द्वारा समाप्त किया जा सके, तो यह अधिक अच्छा रहेगा, क्योंकि यह प्रथा अभी भी कई क्षेत्रों में शेष है। अन्यथा यह आशा

की जानी चाहिये कि जिन अन्य भागों में यह प्रथा अब भी है वहां इसके उन्मूलन के लिये कानून बनाया जायेगा। मैं इस बात पर ज़ोर देना चाहती हूं कि नारियां इस बात को भली प्रकार समझती हैं कि नैतिकता के दो मापदण्ड होने के कारण ही नारी-पणन का जन्म हुआ है। जब समाज नैतिकता के दो मापदण्डों को हटा देने की आवश्यकता को पूर्णतया समझ जायेगा, तभी यह अनुच्छेद, जिसे यहां स्वीकार किया जा रहा है, वास्तव में कार्यान्वित हो सकेगा तथा विधान का एक कागज़ी प्रावधान न रह कर वास्तविकता बन सकेगा।

स्त्रियों के अनैतिक व्यापार को रोकने के विषय में इस देश में पहले से ही कानून मौजूद हैं, किन्तु उन पर प्रभावपूर्ण ढंग से अमल नहीं किया जाता और यदि उनकी कानूनी त्रुटियों का सुधार भी कर दिया जाये तो भी यह तभी प्रभावशील हो सकते हैं, जब कि इस समस्या के प्रति जिससे कि स्त्रियों का एक वर्ग शोषकों की दया पर निर्भर है, जिससे कि नारीत्व की प्रतिष्ठा ही गिर गई है, लोगों के हृदय बदल जायें।

***उपाध्यक्ष:** श्री नागप्पा, कृपया अपनी वक्तृता को पांच मिनट तक सीमित रख यह दिखा दीजिये कि परिषद् ने आप पर जो भरोसा किया है, आप उसके योग्य हैं।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं अधिक समय नहीं लूंगा।

बेगार की प्रथा मेरे अपने प्रदेश में भी प्रचलित है—विशेषतया हरिजनों में। मुझे प्रसन्नता है कि मसौदा-समिति ने बेगार का उन्मूलन करने के सम्बन्ध में यह खण्ड रखा है। श्रीमान्, जब भी पशुओं की मृत्यु हो जाती है; तब पशु का स्वामी इन गरीब हरिजनों को बुलाता है, मृत पशु को उठवाता है, उनका चर्म उतार कर, उसे रंग कर, चप्पल बनाकर उसे मुफ्त देने के लिये कहता है। इसके बदले में उन्हें क्या मिलता है? त्योहारों पर कुछ खाना। श्रीमान्, प्राय: सरकार भी बलात् श्रम लेती है। उदाहरणार्थ यदि कोई हत्या हो जाये तो शव-परीक्षण के पश्चात् इन लोगों को पुलिस बाध्य करती है कि वे शव को हटायें तथा अन्य अन्त्येष्टि क्रियायें करें। मुझे प्रसन्नता है कि भविष्य में इस प्रकार का बलात् श्रम नहीं लिया जा सकेगा। श्रीमान्, जमीदारियों में भी यह प्रचलित है। उदाहरणार्थ यदि जमींदार के परिवार में कोई विवाह होता है तो वह इन लोगों से, विशेषत: हरिजनों से अपने सारे मकान में सफेदी करवाता है तथा इसके बदले में उन्हें सिवाय उस दिन के

[श्री एस. नागप्पा]

भोजन के और कुछ नहीं मिलता। इस प्रकार का बलात् श्रम अभी प्रान्त के अधिकतर भागों में प्रचलित है।

मैं परिषद् का ध्यान एक और बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं; वह यह है कि जब भी बड़े जमींदार की भूमि जोती जानी होती है, तत्काल ही वह उन बेचारे हरिजनों को एक दिन पहले कहला भेजेगा कि "कल सारे दिन के लिये तुम्हें हमारी सेवा करनी है; तुमको रात दिन काम करना होगा। किसी को भी दूसरे काम पर नहीं जाना चाहिये।" इसके बदले में जमींदार उन बेचारों को एक टुकड़ा दे देता है। श्रीमान्, इस प्रकार का बलात् श्रम हमारे तथा-कथित सभ्य देश में बीसवीं शताब्दी में प्रचलित है। मैं मसौदा-समिति का अत्यन्त आभारी हूं। मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं अपने माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन का विरोध करने के ही लिये मुख्यत: खड़ा हुआ हूं। क्योंकि इससे इस अनुच्छेद के पर्यालोचन में ऐसे विषय आ जाते हैं, जिन पर कि विधान में समाविष्ट किये जाने वाले मूलाधिकारों पर विचार करते समय हमें नहीं विचार करना चाहिये।

श्रीमान्, यदि परिषद् मुझे उन व्यापक सिद्धान्तों पर जो कि इस भाग विशेष के आधार हैं कुछ समय के लिये बोलने दें, तो मैं कहूंगा कि वह यही है, हम व्यक्ति के लिये कुछ अधिकारों की प्रत्याभूति देना चाहते हैं जिससे कि वह उच्च बने। हम यह भी चाहते हैं कि कानून इन अधिकारों में हस्तक्षेप न कर सके क्योंकि यह नितान्त आवश्यक है कि यह अधिकार अक्षुण्ण रहें ताकि व्यक्ति की अवस्थिति की रक्षा हो। इस भाग विशेष में समाज की समस्त प्राचीन कुप्रथाओं के सुधारने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। यदि वे बुराइयां ऐसी हैं कि वे लोग, जिनका कि उसमें स्वार्थ निहित है, कदाचित् उन बुराइयों को चिरस्थायी बनाने का प्रयत्न करेंगे, तो अवश्य ही, मेरे विचार में हमें उनके विरुद्ध व्यवस्था करनी चाहिये। किन्तु यदि उन कुप्रथाओं के विरुद्ध जनमत पहले से ही सुसंगठित हो तो मेरे विचार में विधान में ऐसी प्रथाओं पर रोक लगा कर, हमें संभवत: भारत की शुभकीर्ति पर कलंक नहीं लगाना चाहिये। जो कुप्रथायें कालक्रम से लुप्त होने वाली हैं उन पर विधान में रोक लगा देने से वे सहसा ही लुप्त नहीं हो सकतीं। मैं इन विषयों पर इसी दृष्टिकोण से देखता हूं, और इस प्रकार उन पर विचार

करते हुये मैं चाहता हूं कि परिषद् के अधिकांश मित्र इन मूलाधिकारों में हमारी युगों से चली आ रही समस्त बातों को, जो अब तक प्रचलित हैं, नहीं आने दें। समाज के कुछ भागों में प्रचलित वे प्रथायें बुरी हैं, किन्तु वे उचित समय पर, कदाचित् दो, तीन अथवा चार वर्ष में, समुचित कानून-निर्माण द्वारा मिटाई जा सकती हैं। मेरी माननीय मित्र श्रीमती दुर्गाबाई ने बताया है कि भारत में प्रचलित इस देवदासी प्रथा का मद्रास में कानून द्वारा उन्मूलन कर दिया गया है। अन्य प्रान्तों को भी ऐसा ही करने से कोई भी नहीं रोक सकता, और मेरे विचार में जनमत काफी जागरूक है कि सारे प्रान्तों में ऐसा ही कानून बने। अतएव जो चीज़ कल समाप्त होने वाली है, उसे मूलाधिकारों में क्यों रखा जाये? मेरे विचार में इस भाग के शेष अनुच्छेदों में भी जो कि परिषद् के समक्ष पेश होंगे, हमें ऐसे ही सिद्धान्त पर चलना चाहिये कि समाज-सुधार के विषय में हम जो कार्य साधारण कानून-निर्माण द्वारा पूरा कर सकते हैं, उसे हमें मूलाधिकारों में नहीं रखना चाहिये। किन्तु समाज में प्रचलित किसी विशेष कुप्रथा को निहित-स्वार्थ वर्ग अर्थ-लाभ के प्रयोजनार्थ चिरस्थायी बनाना चाहता है, तो अवश्य ही मेरे विचार में उसे मूलाधिकारों में रखना पूर्णतया उचित है। मेरे विचार में किसी न किसी रूप में बलात् श्रम भारत के लगभग सभी भागों में प्रचलित है, उसे बेगार कहें अथवा कुछ और, मेरे प्रदेश में किसान बहुधा भूमि से बंधे हुये गुलाम के समान होता है, और उसके कुछ अधिकार होते हैं जो इसी शर्त पर प्राप्त होते हैं कि वह दास बना रहे।

हम इसका उन्मूलन करने का प्रयत्न कर रहे हैं और इसे मूलाधिकारों में रखने का यह परिणाम होगा कि इस प्रकार की कुरीतियों को मिटाने के लिये शीघ्र कानून बनाने होंगे क्योंकि मूलाधिकारों में होने के कारण यह सरकार का कर्त्तव्य होगा। मैं परिषद से केवल यही कहता हूं कि हमें इन अनुच्छेदों में ऐसी कुरीतियों की चर्चा करके, जो कि कानून-निर्माण द्वारा समाप्त हो सकती हैं और जिनके विषय में कि जनमत काफी प्रबल है, इन अनुच्छेदों का क्षेत्र अधिक विस्तृत न बनाना चाहिये। किन्तु इसमें हमें ऐसी ही बातों को आने देना चाहिये जिनके विरुद्ध निहित-स्वार्थ वर्ग कदाचित दृढ़ता से खड़ा हो। श्रीमान् परिषद् में जो अनुच्छेद् विचारार्थ पेश है, मैं उसका समर्थन करता हूं।

**श्री महावीर त्यागी:** उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के विषय में मेरे मन में जो कुछ संदेह उत्पन्न होते हैं, मैं उन्हें स्पष्ट करना चाहता हूं, क्या मैं उसके लिये आपकी अनुमति मांग सकता हूं?

**उपाध्यक्ष:** मुझे खेद है, अब इसके लिये समय नहीं रहा।

***श्री महावीर त्यागी:** आप मुझे यह बतायें कि मैं आपकी दृष्टि अथवा आपका ध्यान कैसे अपनी ओर आकृष्ट कर सकता हूं।

***माननीय सदस्यगण:** शान्ति, शान्ति।

***उपाध्यक्ष:** परिषद् ने अपना निर्णय सुना दिया है।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या कोई चिटें भेज कर अथवा हर बार खड़ा होकर आपका ध्यान आकृष्ट करें श्रीमान्?

***उपाध्यक्ष:** परिषद् ने अपना निर्णय सुना दिया है।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या निर्णय सुनाया है?

***उपाध्यक्ष:** आप परिषद् से पूछिये।

***श्री महावीर त्यागी:** मेरे विचार में यह तो अत्यन्त अनुचित है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, आरम्भ में ही मैं यह बता देना चाहता हूं कि मैं किन संशोधनों को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं और किन संशोधनों को मैं स्वीकार नहीं कर सकता। जितने संशोधन पेश किये गये हैं, उनमें से मैं केवल एक ही संशोधन को स्वीकार करने के लिये राज़ी हूं, वह है प्रोफेसर के.टी. शाह का संशोधन नं. 559 जिसके अनुसार अनुच्छेद 17 के खण्ड दो में 'केवल' शब्द जोड़ा जाना है। मुझे भय है कि शेष संशोधनों को मैं स्वीकार नहीं कर सकता। जिन संशोधनों के विषय में मैंने कहा है कि मैं उन्हें स्वीकार नहीं कर सकता, उनमें एक 'देवदासी' शब्द रख देने के विषय में प्रो. के.टी. शाह का संशोधन है। मैं समझता हूं कि 'देवदासी' शब्द को रखने के विषय में उनके तर्कों का उत्तर वाद-विवाद में भाग लेने वाले अन्य सदस्यों ने दे दिया है, और मैं नहीं समझता कि अब तक जो तर्क उपस्थित किये जा चुके हैं, उनके अतिरिक्त और कुछ कहने से कोई लाभप्रद प्रयोजन सिद्ध होगा।

मेरे माननीय मित्र श्री एच.वी. कामत अपने संशोधन द्वारा 'लोक' शब्द के स्थान पर 'सामाजिक तथा राष्ट्रीय' यह शब्द रखना चाहते हैं, उसके विषय में मेरा विचार है कि 'लोक' शब्द इतना व्यापक है कि उसमें 'सामाजिक तथा राष्ट्रीय' दोनों शब्द आ जाते हैं, और इस कारण जहां एक शब्द से कार्य हो सकता है वहां दो शब्द प्रयोग करना अनावश्यक है, और मैं समझता हूं कि वे इससे सहमत होंगे कि यही ठीक दृष्टिकोण है।

मेरे माननीय मित्र श्री दामोदर स्वरूप सेठ का संशोधन अनावश्यक दिखाई देता है अतः मैं इसे स्वीकार नहीं करता। सरदार भूपेन्द्रसिंह मान के संशोधन के विषय में यह बात है कि वे चाहते हैं कि ऐसी व्यवस्था कर दी जाये कि जब भी राज्य अनुच्छेद 17 के खण्ड (2) के प्रावधानों के अधीन अनिवार्य श्रम ले, राज्य को ऐसी अनिवार्य सेवा के लिये सदा मूल्य देना पड़े। मैं नहीं समझता कि राज्य द्वारा अनिवार्य सेवा लेने पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध लगाना वांछनीय है। यह सर्वथा सम्भव है कि राज्य जो भी अनिवार्य सेवा लेगा वह इतने ही समय के लिये लेगा कि जिसे इस खण्डानुसार वह सेवा करनी पड़े, उसे अपनी जीविका कमाने के लिये पर्याप्त समय मिल सके और यदि उदाहरणार्थ ऐसा अनिवार्य श्रम अवकाश के समय तक ही सीमित रहे या ऐसे समय पर लिया जाये जबकि वह मनुष्य अपनी जीविका कमाने में संलग्न न हो, तो राज्य के लिये यह कहना पूर्णतया उचित होगा कि वह कुछ भी क्षतिपूर्ति नहीं देगा।

इस खण्ड में यह बात देखी जा सकती है कि क्षतिपूर्ति के न देने पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती; क्योंकि उप-खण्ड (2) में यह मूल सिद्धान्त रखा गया है कि जब कभी भी अनिवार्य श्रम अथवा अनिवार्य सेवा मांगी जायेगी, वह सबसे ही मांगी जायेगी, और यदि राज्य सब लोगों से सेवा लेता है तथा कुछ नहीं देता, तो मैं नहीं समझता कि वह कोई बहुत बड़ा अन्याय करता है। श्रीमान्, मेरे विचार में, अनुच्छेद के वर्तमान रूप में स्थिति को जैसी अनिश्चित रहने दिया गया है वैसी ही रहने देना वांछनीय है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं एक बात जानना चाहता हूं। क्या डॉ. अम्बेडकर को मेरे संशोधन पर केवल इसी आधार पर आपत्ति है कि इसमें एक के स्थान पर दो शब्द हैं? यदि ऐसा है तो मुझे इस बात पर प्रसन्नता होगी, यदि 'लोक' शब्द के स्थान पर 'सामाजिक अथवा राष्ट्रीय' कोई शब्द रख दिया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अधिक व्यापक शब्द का प्रयोग करना अधिक अच्छा है, जिसमें कि दोनों समाविष्ट हों।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं यह जान सकता हूं कि क्या माननीय सदस्य संशोधन नं. 548 को स्वीकार करते हैं, जो वेश्यावृत्ति के विषय में है और ज्ञानी गुरुमुखसिंह द्वारा पेश किया गया था।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे पता चला है कि वह पेश नहीं किया गया था।

***उपाध्यक्ष:** वह पेश नहीं किया गया था।

अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा।

संशोधन संख्या 544 जो काजी सैयद करीमुद्दीन के नाम में है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 17 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'17. Neither slavery nor involuntary servitude such as *begar* except as a punishment for crime shall exist within the Union State.'

(17. संघ राज्य में अपराध के लिये दण्डरूप में होने के सिवाय किसी अन्य रूप में दासता अथवा बेगार के समान अनिच्छापूर्वक सेवा का अस्तित्व नहीं होगा।)"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 545 जो श्री दामोदर स्वरूप सेठ के नाम में है।

प्रश्न यह है:

"कि 17 के खण्ड 1 के आरम्भ में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें :

'servitude and serfdom in all forms as well as' "

(सभी तरह की दासवृत्ति और दासत्व तथा)"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 546 जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम पर है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 17 के खण्ड (1) में 'मानव-पणन और बेगार' इन शब्दों के स्थान पर 'मानव-पणन अथवा धर्म के नाम पर देवदासी बनाने या किसी अन्य प्रकार की दासता एवं अपमान के जीवन में डालने के लिये मानव का अर्पण तथा बेगार' ये शब्द रख दिये जायें।

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 560 जो सरदार भूपेन्द्रसिंह मान के नाम पर है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 17 के खण्ड (2) के अन्त में 'और उसके लिये समुचित क्षतिपूर्ति देगा' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

***सरदार भूपेन्द्रसिंह मानः** श्रीमान्, मैं इस संशोधन को वापस लेने के लिये परिषद् की अनुमति मांगता हूं।

(संशोधन परिषद् की अनुमति से वापस ले लिया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 556 जो श्री कामत के नाम में है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 17 के खण्ड (2) में 'लोक' शब्द के स्थान पर 'सामाजिक अथवा राष्ट्रीय' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 559 जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम में है तथा डॉ. अम्बेडकर द्वारा स्वीकार कर लिया गया है।

प्रश्न यह है:

"That in clause (2) of article 17, after the words 'discrimination on the ground' the word 'only' be added."

[कि अनुच्छेद 17 के खण्ड (2) में, 'प्रजाति, धर्म, जाति अथवा वर्ग के आधार पर' इन शब्दों के पहले केवल' यह शब्द जोड़ दिया जाये।]

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधन संख्या 559 द्वारा परिवर्तित रूप में समूचे अनुच्छेद पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन सख्या 559 द्वारा परिवर्तित रूप में अनुच्छेद 17 को विधान का अंग माना जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 17 को संविधान में जोड़ दिया गया।*

## अनुच्छेद 18

***उपाध्यक्ष:** अब हम अगले अनुच्छेद को लेते हैं।

प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 18 संविधान का अंग हो।

प्रथम संशोधन नं. 561 का है। यह नकारात्मक है, अत: यह अनियमित है।

संशोधन संख्या 562 तथा 564 : संख्या 562, जो कि प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के नाम में है और 564, जो कि श्री दामोदर स्वरूप सेठ के नाम में है, और अन्य संशोधन एक ही आशय के हैं। अत: उन पर साथ ही विचार करना होगा। संशोधन संख्या 562 को पेश करने की अनुमति दी जाती है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं संशोधन पेश नहीं करता, किन्तु मैं अनुच्छेद पर बोलना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** तो, फिर मैं संशोधन संख्या 564 के पेश करने की अनुमति देता हूं।

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ:** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 18 के अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें :

'nor shall any women be employed at night, in mines or in industries detrimental to their health.'"

(और न नारियों को रात्रि में, खानों में अथवा उनके स्वास्थ्य के लिये अहितकर उद्योगों में ही सेवायोजित किया जायेगा।)

श्रीमान्, यह संतोष की बात है कि अनुच्छेद 18 में अल्प-वयस्क बच्चों को संरक्षण दिया गया है। किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि इसमें सुन्दर तथा कोमल स्त्री जाति को कुछ भी संरक्षण नहीं दिया गया है, जिन्हें भूतकाल में रात के समय भी खानों में और उनके स्वास्थ्य की दृष्टि से अहितकर उद्योगों में सेवायोजित किया जाता था। ऐसा क्यों हुआ है इसका कारण मुझे नहीं मालूम है। अतएव श्रीमान्, मेरे विचार में यह न्याययुक्त और उचित है कि इस अनुच्छेद में यह सुझाव जोड़ दिया जाये, ताकि नारियों को भी उचित संरक्षण मिले और उन्हें रात्रि में, खानों में, तथा उनके कोमल स्वास्थ्य और उनकी सामाजिक अवस्थिति के अननुकूल उद्योगों में सेवायोजित न किया जा सके। अतएव मैं आशा करता हूं कि परिषद् मेरे इस संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

**उपाध्यक्ष:** तत्पश्चात् संशोधन संख्या 563 है।

(संशोधन नं. 563 तथा 565 पेश नहीं किये गये।)

अब अनुच्छेद पर सामान्य वाद-विवाद हो सकता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मुझे प्रसन्नता है कि इस अनुच्छेद को मूलाधिकारों में रखा गया है। वास्तव में इस स्वतंत्रता-पत्र के विरुद्ध एक यह भी शिकायत है कि इसमें पर्याप्त आर्थिक अधिकारों की व्यवस्था नहीं की गई है। यदि हम अन्य देशों के संविधानों के मूलाधिकारों का परीक्षण करें तो हम देखेंगे कि उनमें कई आर्थिक अधिकारों के सम्बन्ध में हैं। विशेषतया रूस में इस अधिकार की प्रत्याभूति दी गई है कि सभी नागरिकों को काम दिया जायेगा। अवकाश तथा विश्राम के अधिकार, जरावस्था तथा रुग्णावस्था आदि में भरण-पोषण के अधिकार की वहां प्रत्याभूति दी गई है। हमने इन बातों की अपने निदेशक सिद्धान्तों में व्यवस्था की है, किन्तु मेरे विचार में उनका उचित स्थान इसी अध्याय में है। फिर भी, अनुच्छेद 18 यह आर्थिक अधिकार देता है, कि 14 वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी फैक्टरी में सेवायोजित नहीं किया जायेगा। श्रीमान्, मेरे विचार में तो आयु को बढ़ा कर सोलह वर्ष कर दिया जाये। अन्य देशों में भी यह आयु इससे अधिक है; हम चाहते हैं कि हमारे देश में भी यह आयु बढ़ा दी जाये; विशेषतया हमारी जलवायु के कारण बालक इस आयु पर निर्बल होते हैं, और आयु बढ़ा देनी चाहिये।

इसी कारण मैं यह भी चाहता हूं कि स्त्रियों को रात्रि के समय, अर्थात् अंधेरा होने के समय से प्रकाश होने तक, फैक्ट्रियों में सेवायोजित नहीं किया जाना चाहिये। वास्तव में संसार के सारे प्रगतिशील देशों में शाम से सवेरे तक स्त्रियों को श्रमयोजित करना वर्जित है। संसद् में फैक्ट्री एक्ट पर वाद-विवाद के समय इस प्रश्न पर विस्तृत विचार हुआ था। मेरे विचार में यह बड़े ही मौलिक महत्त्व का प्रश्न है और मूलाधिकारों में यह व्यवस्था कर दी जानी चाहिये कि राज्य सायंकाल से प्रात:काल तक स्त्रियों को सेवायोजित नहीं करेंगे। श्रीमान्, यदि यह कर दिया जाता तो देश में असंख्य महिलायें इसका स्वागत करतीं—विशेषत: इस कारण कि यह खानों तथा कारखानों में महिलाओं को सेवायोजित करने का प्रश्न है। आपको ज्ञात होगा कि युद्ध-काल में जब कि स्त्रियों को खानों में कार्य करने दिया गया था तो देश में बहुत ही शोर मचा था। मेरे विचार में इसको बहुत महत्त्वपूर्ण समझना चाहिये और मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर इसे मूलाधिकारों में समाविष्ट करने के लिये राजी हो जायेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर अम्बेडकर:** श्री दामोदर स्वरूप ने जो संशोधन नं. 564 पेश किया है मैं उसे स्वीकार नहीं करता।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 564 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 18 के अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

"और न नारियों को रात्रि में, खानों में अथवा उनको स्वास्थ्य के लिये अहितकर उद्योगों में ही सेवायोजित किया जायेगा।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं प्रस्ताव पर मत लेता हूं:

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 18 को विधान का अंग माना जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।*

*अनुच्छेद 18 विधान में जोड़ दिया गया।*

---

## अनुच्छेद 18-ए

***उपाध्यक्ष:** अब हम संशोधन नं. 566 के रूप में एक नये अनुच्छेद को लेते हैं।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 18 के पश्चात् 'धर्म सम्बन्धी अधिकार' इस शीर्षक के अन्तर्गत निम्न नवीन अनुच्छेद रख दिया जाये:

'18-A. The State in India being secular shall have no concern with any religion, creed or profession of faith; and shall observe an attitude of absolute neutrality in all matters relating to the religion of any class of its citizens or other persons in the Union.' "

(18-ए. असाम्प्रदायिक राज्य होने के कारण भारतीय राज्य किसी धर्म, मत अथवा विश्वास से कोई सम्बन्ध नहीं रखेगा, और अपने नागरिकों के किसी भी वर्ग के या संघ के अन्य व्यक्तियों के धर्म से सम्बन्ध रखने वाले सभी विषयों में तटस्थता का रुख रखेगा।)

श्रीमान्, इस विषय पर किंचित् भी विवाद नहीं होना चाहिये। हम बार-बार घोषित कर चुके हैं कि भारतीय राज्य असाम्प्रदायिक होगा; और इस कारण इसे किसी धर्म के मामलों से, किसी श्रद्धा, मत अथवा विश्वास विशेष के आचरण से कोई सम्बन्ध नहीं होगा—मेरे विचार में यह तो तर्कसंगत निष्कर्ष होना चाहिये।

इसके द्वारा मैं यह नहीं कहता कि धर्म के विषय में राज्य की निष्पक्षता का आशय यह होना चाहिये कि किसी धर्म विशेष के मानने वाले लोगों द्वारा, धर्म अथवा विश्वास के नाम पर चलाई जाने वाली संस्थाओं अथवा सेवाओं के प्रति नितान्त उपेक्षा का भाव रखा जाये। मैं तो केवल यही कहना चाहता हूं कि किसी विश्वास अथवा धर्म के वास्तविक आचरण से राज्य का कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। न राज्य को अपने किसी कार्य द्वारा ऐसा कोई संकेत ही देना चाहिये कि वह किसी धर्म के प्रति पक्षपात करता है। नागरिकों के सब वर्गों को राज्य से सांसारिक विषयों में एक-सा बर्ताव मिलना चाहिये। और यहां तक कि उन लोगों के साथ भी वही बर्ताव होना चाहिये जो कि राज्य के नागरिक न हों किन्तु इसमें रहते हों।

स्पष्ट है कि इस संघ के नागरिकों में सभी देशों के लोग हैं, विभिन्न विश्वासों तथा धर्मों के मानने वाले लोग हैं। यदि राज्य किसी धर्म को अपना लेता है या अगर यह बात कही जाती है कि सांसारिक मामलों में वह किसी सम्प्रदाय विशेष के प्रति कृपा अथवा पक्षपात करता है तो, यह राज्य के हित में अच्छा नहीं होगा, क्योंकि इससे किसी अन्य धर्म के अनुयायियों में यह भावना उत्पन्न होगी कि राज्य अमुक सम्प्रदाय विशेष के प्रति पक्षपात का भाव रखता है।

यदि राज्य ऐसा कर सके—जो कि मेरे विचार में यह अत्यन्त सुगमता से कर सकता है—कि वह सारी सांसारिक सेवाओं, सारी लौकिक कार्यवाहियों तथा जनोपयोगी चीज़ों को, जो कि सामूहिक रूप से जनता के लाभ के लिये हों, सहायता दे, चाहे वे किसी भी वर्ग द्वारा संचालित हों, तो मेरे संशोधन के अनुसार इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। किन्तु यदि राज्य किसी धर्म अथवा मत विशेष को किसी भी रूप में प्रश्रय देता हो, तो मेरे विचार में किसी असाम्प्रदायिक राज्य के लिये ऐसा करना अत्यधिक आपत्तिजनक होगा।

तदनुसार मैं सुझाव रख रहा हूं कि "असाम्प्रदायिक राज्य होने के कारण भारतीय राज्य किसी धर्म, मत अथवा विश्वास से कोई सम्बन्ध नहीं रखेगा"। मैं बार-बार धर्म के इस पहलू पर ज़ोर डाल रहा हूं क्योंकि धर्म वस्तुतः पारलौकिक वस्तु है, और इसी कारण राज्य को—जिसे कि मैं बिना किसी अनादर-भाव के वस्तुतः एक सांसारिक प्रतिष्ठान कह सकता हूं—इससे कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये।

[प्रो. के.टी. शाह]

इस विषय पर कोई भी अनन्त समय तक बोल सकता है। मैं इस प्रकार के मौकों को अथवा इस प्रकार के वाद-विवाद को एक ऐसा अवसर नहीं समझता जब कि अनजाने में आत्म-प्रकाशन अथवा अपने दृष्टिकोण का जान-बूझ कर प्रकाशन किया जाये। अतएव इस विषय पर अधिक बोल कर परिषद् का समय नहीं लूंगा। मुझे विश्वास है कि इस विषय में सबको रुचि होगी, कम से कम मेरे अनुच्छेद पर अनुकूलता से विचार किया जायेगा।

(संशोधन संख्या 567 पेश नहीं किया गया।)

**उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 568 ।

***श्री टी.टी कृष्णमाचारी:** क्या मैं यह बता सकता हूं कि यह संशोधन लगभग ऐसे ही विषय से सम्बन्ध रखता है जो खण्ड 13-ए में आया है, जिसे आपने कृपा करके कुछ समय के लिये स्थगित कर रखा है?

***उपाध्यक्ष:** तो यह स्थगित रह सकता है।

(संशोधन संख्या 569 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन नं. 566 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 18 के पश्चात् 'धर्म सम्बन्धी अधिकार' इस शीर्षक के अन्तर्गत निम्न नवीन अनुच्छेद रख दिया जाये:

'18-A. The State in India being secular shall have no concern with any religion, creed or profession of faith; and shall observe an attitude of neutrality in all matters relating to the religion of any class of its citizens or other persons in the Union.'"

(18-ए. ऐहिक (असाम्प्रदायिक) राज्य होने के कारण भारतीय राज्य किसी धर्म, मत अथवा विश्वास से कोई सम्बन्ध नहीं रखेगा, और अपने नागरिकों के किसी भी वर्ग के, या संघ के अन्य व्यक्तियों के, धर्म से सम्बन्ध रखने वाले सभी विषयों में तटस्थता का रुख रखेगा।)

*संशोधन अस्वीकृत रहा।*

## नवीन अनुच्छेद 19 से 22

***उपाध्यक्ष:** अब हम संशोधन नं. 570 को लेते हैं।

स्वभावत: प्रथम भाग को पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** पहले अनुच्छेद पर मत तो ले लीजिये।

***उपाध्यक्ष:** अनुच्छेद पर मत लिया जा चुका है और वह पास हो चुका है। दूसरा विकल्प बिल्कुल संशोधन नं. 591 जैसा ही है और इस पर उसके साथ विचार किया जायेगा। तीसरा संशोधन अथवा विकल्प बिल्कुल 618 जैसा ही है और उसके साथ ही उस पर विचार किया जायेगा। अन्तिम संशोधन नकारात्मक है।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा: जनरल): श्रीमान्, मेरे विचार में ऐसा नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** मुझे भय है कि आप सभापति की क्षमता को चुनौती दे रहे हैं, और आपको नियमों के अधीन ऐसा करने का अधिकार नहीं है।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** मेरे विकल्प का प्रथम भाग बिल्कुल 591 जैसा नहीं है, क्योंकि मैं 'प्रचार' शब्द को निकाल देना चाहता था, जबकि 591 में कुछ और है।

---

## अनुच्छेद 19

***उपाध्यक्ष:** जब निश्चय किया गया था तब इस पर विचार कर लिया गया था। परिषद् के सामने प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 19 को विधान का अंग माना जाये।"

मैं संशोधनों को एक-एक कर के लूंगा।

(संशोधन नं. 571 पेश नहीं किया गया।)

संशोधन सं. 572—प्रथम विकल्प।

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार: मुस्लिम): मैं अपने संशोधन के प्रथम भाग को पेश नहीं करना चाहता। मैंने अपना संशोधन दो भागों में पेश किया है और, श्रीमान्, मैं आपकी अनुमति से दूसरा भाग पेश करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** आप ऐसा बाद में कर सकते हैं।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** किन्तु, श्रीमान्, बाद में संशोधन संख्या 573 है जो मेरे मित्र श्री हिम्मतसिंह के नाम में है, और यदि वह पेश नहीं किया जाता, तो मेरा संशोधन भी जो कि तत्सदृश है रह जायेगा।

***उपाध्यक्षः** यदि वे उसे पेश नहीं करेंगे तो आपको अवसर मिल जायेगा। और यदि संशोधन संख्या 572 पेश किया जायेगा, तब भी आप वाद-विवाद के समय अपनी बात कह सकते हैं। संशोधन नं. 573, 576, 577 और अंत में 582 पर एक साथ विचार किया जा सकता है। उनमें से मैं नं. 573 को लेता हूं जो श्री हिम्मतसिंह के नाम पर है। क्या वे परिषद् में हैं?

(सदस्य उपस्थित नहीं थे और संशोधन संख्या 573 पेश नहीं किया गया।)

अगला संशोधन संख्या 572 का दूसरा भाग होगा।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) में 'practise and propagate religion (धर्म को.... मानने प्रचार करने) शब्दों की जगह 'and practise religion privately' (धर्म को निजी तौर पर मानने) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के अधीन सब लोगों को विश्वास स्वातंत्र्य का तथा धर्म को अबाधरूपेण मानने और प्रचार करने का अधिकार होगा। श्रीमान्, मैं मानता हूं कि लोगों के अबाधरूपेण धर्म को मानने तथा उस पर आचरण करने का अधिकार होना चाहिये, किन्तु इस देश में लोगों को धर्म का प्रचार करने देना गलत होगा। श्रीमान्, मेरी वक्तृता संक्षिप्त होगी, क्योंकि मैं बहुत बीमार रह चुका हूं और बोलते समय मुझे ज़ोर पड़ता है।

श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि धर्म एक मनुष्य तथा उसके सृजनहार के मध्य निजी मामला है। इसका दूसरों से कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरा अपने धर्म पर विश्वास है और श्रीमान्, आपका अपने धर्म पर विश्वास है। आप मेरे धर्म में हस्तक्षेप क्यों करें, और मैं आपके धर्म में हस्तक्षेप क्यों करूं? धर्म केवल मोक्ष-प्राप्ति का साधन है। मान लीजिये मेरा सच्चा विश्वास है कि मैं अपनी ही विचारधारा और अपने धर्म द्वारा मुक्ति प्राप्त कर सकता हूं और श्रीमान, आपका सच्चा विश्वास है कि आप अपने तरीके से ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, तो मैं आपसे मेरे मार्ग द्वारा मुक्ति प्राप्त करने के लिये क्यों कहूं तथा आप मुझे अपने

मार्ग के अनुसार मुक्ति प्राप्त करने के लिये क्यों कहें? यदि आप इस सिद्धांत को मानते हैं तो धर्म का प्रचार क्यों किया जाये? जैसा कि मैं कह चुका हूं धर्म तो व्यक्ति और उसके परमेश्वर के मध्यवती सम्बन्ध की बात है। तो फिर सच्चाई से धर्म को मानिये तथा उस पर अपने घर में आचरण करिये। आप प्रचार के लिये धर्म का प्रदर्शन मत करिये। दिखावे के लिये लोगों को मत दिखाइये कि आपका धर्म क्या है। यदि आप इस देश में अपने धर्म का प्रचार करना आरम्भ करेंगे तो आप दूसरों के लिये एक सरदर्द बन जायेंगे। अब तक यह एक सरदर्द ही है।

श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि यह एक असाम्प्रदायिक राज्य है, और एक असाम्प्रदायिक राज्य को धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये। अतएव मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप मुझे निजी रूप से अपने धर्म को मानने तथा उस पर आचरण करने के लिये अकेला छोड़ दीजिये। मैं केवल यही कहना चाहता हूं, क्योंकि, श्रीमान्, मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। मैं अपने संशोधन को स्वीकार करने के लिये इस परिषद् से निवेदन करता हूं विशेषत: माननीय डॉ. अम्बेडकर से निवेदन करता हूं और आशा करता हूं कि वे इसे स्वीकार कर लेंगे। इन शब्दों के साथ, मैं अपनी जगह लेता हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 572 जो श्री मिश्र के नाम पर है। क्या आप चाहते हैं कि इस पर मत लिया जाये?

***श्री लोकनाथ मिश्र:** श्रीमान्, मैं इसे पेश करना चाहता था।

***उपाध्यक्ष:** मैं जानता हूं। किन्तु उसकी तो अनुमति नहीं दी गई है। मैं जानना चाहता हूं कि क्या आप चाहते हैं कि इस पर मत लिया जाये?

***श्री लोकनाथ मिश्र:** हां, श्रीमान्।

(संशोधन संख्या 576, 577, 582 का प्रथम भाग तथा 575 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** तत्पश्चात् अगला संशोधन है संख्या 578, जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम में है। शब्दिक संशोधन होने के कारण इसकी अनुमति नहीं दी जाती। अब मैं संशोधन संख्या 579 तथा 580 को लेता हूं। वे लगभग एक ही

[उपाध्यक्ष]

हैं, अतः मैं प्रस्तावक से 579 को पेश करने के लिये कहता हूं। वह भी मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम से है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) में 'विश्वास स्वातंत्र्य का तथा धर्म को अबाधरूपेण मानने और प्रचार करने का समान अधिकार होगा' इन शब्दों के स्थान पर 'धर्म को अबाधरूपेण मानने और प्रचार करने का अधिकार होगा' ये शब्द रख दिये जायें।"

यह लगभग शब्दिक संशोधन है।

***उपाध्यक्षः** क्या आप चाहते हैं कि मैं संशोधन नं. 580 पर मत लूं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** हां, श्रीमान।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 574, 581, 582 (दूसरा भाग), 587, 588 और 589 एक ही आशय के हैं और उन पर एक साथ विचार किया जायेगा। संशोधन नं. 581 के पेश करने की अनुमति दी जाती है।

**श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं इसे पेश नहीं करता।

[संशोधन नं. 574, 582 (दूसरा भाग) और 587 पेश नहीं किये गये।]

***श्री तजम्मुल हुसैनः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) को हटा दिया जाये, तथा उसके स्थान पर निम्नलिखित शब्द रख दिये जायें:

'No person shall have any visible sign or mark or name, and no person shall wear any dress whereby his religion may be recognised.' "

(कोई भी व्यक्ति ऐसा दृश्य चिह्न अथवा निशान अथवा नाम नहीं रखेगा, और न ही कोई व्यक्ति ऐसे वस्त्र ही पहनेगा जिससे कि उसके धर्म को पहचाना जा सके।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** एक औचित्य प्रश्न है। क्या माननीय सदस्य अदृश्य चिह्नों, निशानों अथवा नामों की चर्चा कर रहें हैं? क्या वे दृश्य चिह्नों को हटा कर अदृश्य चिह्नों अथवा निशानों को पसन्द करते है? अदृश्य नाम कैसे हो सकते हैं?

***उपाध्यक्षः** क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***श्री तजम्मुल हुसैनः** मेरे माननीय मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने जो कुछ कहा है मैं उसे समझ नहीं पाया हूं। वे इस विषय में स्पष्टीकरण चाहते हैं कि अदृश्य चिन्ह कैसे हो सकते हैं। मेरा आशय यह है कि ऐसा कोई दृष्ट चिह्न अथवा निशान अथवा नाम नहीं होना चाहिये जिससे कि कोई पहचाना जा सके। 'परशाद' नाम से आप जान सकते हैं कि वह पुरुष 'कायस्थ' होगा। 'सैयद' नाम से आप जान सकते हैं कि वह 'मुसलमान' होगा। मेरे संशोधन की भाषा खराब हो सकती है, किन्तु मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन को तो केवल अर्धविराम, विराम, पूर्णविराम का ही पता है।

***उपाध्यक्षः** आपको इस पर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** मैं यह बताना चाहता हूं धर्म मनुष्य और उसके परमात्मा के बीच की एक निजी बात है। इसका सम्बन्ध संसार में किसी और से नहीं होता। दूसरे का धर्म क्या है, इससे भी मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। तब ऐसे दृष्ट चिह्न क्यों रखे जायें जिससे किसी का धर्म पहचाना जा सके? श्रीमान्, आप देखेंगे कि समस्त सभ्य देशों में—और आजकल यूरोप तथा अमरीका के देश ही सभ्य देश हैं—कोई ऐसा दृश्य चिह्न अथवा निशान नहीं होता जिससे कि यह पहचाना जा सके कि कोई किस धर्म का मानने वाला है। मुझे इस पर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है, मैं केवल मोटी-मोटी बातें कहूंगा। सभ्य देशों में लोगों के केवल पारिवारिक नाम होते हैं, जैसे डिजरेली और बर्कनहैड। इन नामों को देख कर आप नहीं कह सकते कि डिजरेली यहूदी था तथा बर्कनहैड ईसाई था। यदि आप लार्ड रीडिंग का नाम सुनें तो आप नहीं बता सकते कि वह किस धर्म का अनुयायी था। इंगलिस्तान में एक आदमी था जिसका नाम लवग्रोव था। आप नहीं बता सकते कि वह किस धर्म का अनुयायी था, यद्यपि मैं जानता हूं कि वह मुसलमान था। इंगलिस्तान में कई ईसाई हैं जो मुसलमान हो गये हैं। अतः उन देशों में किसी आदमी के नाम से ही आप यह नहीं जान सकते कि वह किस धर्म का है। हां, श्रीमान्, मैं आपको बता चुका हूं कि इस देश में किसी मनुष्य के नाम से ही आप उसके धर्म का पता लगा सकते है। आप 'परशाद' का नाम सुनते हैं। मेरे प्रान्त में इसका अर्थ कायस्थ होता है। यदि आप ओझा अथवा झा

[श्री तजम्मुल हुसैन]

का नाम सुनें तो आपको पता लग जाता है कि वह ब्राह्मण हैं। बंगाल में आप जानते हैं कि मुखर्जी नाम के लोग ब्राह्मण होते हैं। अत: मैं इन चीजों को नहीं चाहता। मैं जानता हूं कि मैं समय से सौ वर्ष आगे की बात कह रहा हूं। किन्तु फिर भी मैं अपनी बात तो कहूंगा ही।

सभ्य देशों में, इंगलिस्तान में एक समय था जब कि वहां वस्त्रों में एकरूपता नहीं थी। इस देश में आपको सब प्रकार के वेष मिलते हैं।

यहां धोतियां हैं, पाजामे है, कुर्ते हैं, कमीज़ें हैं—और न पाजामें, न धोती, लोग नंगे भी रहते है, सब प्रकार की चीजें हैं। किसी समय इंगलिस्तान में भी वही बात थी।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): एक औचित्य प्रश्न है—मि. तजम्मुल हुसैन जो कुछ कह रहे हैं, उस पर पहले उन्हें स्वयं चलना चाहिये। उन्हें अपना नाम बदल लेना चाहिये क्योंकि उनका नाम देखने से पता लग जाता है कि वे मुस्लिम हैं।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** मुझे मौलाना के बाधा डालने पर खेद है। जब सारा देश मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगा तक मैं अपना नाम बदल लूंगा। तब वे यह नहीं जान सकेंगे कि मैं क्या हूं और कौन हूं।

हां, श्रीमान्, मैं वेष की बात कर रहा था। एक समय था जब कि इंगलिस्तान में कोई एकरूपता नहीं थी, किन्तु माननीय कानून-सदस्य मुझसे इस बात में सहमत होंगे कि पार्लियामेण्ट में एक कानून पास हुआ था जिससे कि वेष की एकरूपता उत्पन्न हो गई थी, और अब इंगलिस्तान में, और सारे यूरोप में और अमरीका में वेष की एकरूपता है। हम एक राष्ट्र हैं। हमारा एक ही प्रकार का वेष होना चाहिये; एक ही प्रकार के नाम होने चाहियें; और कोई दृश्य चिह्न नहीं होने चाहियें। अन्त में मैं कहता हूं कि हम एक असाम्प्रदायिक राज्य बनने जा रहे हैं। हमें असाम्प्रदायिक राज्य होने के नाते अपने वेष से नहीं पहचाना जाना चाहिये। यदि आपका एक विशेष प्रकार का वेष हो तो आप तत्काल जान जाते हैं कि आप हिन्दू हैं या मुसलमान हैं। यह चीज़ हट जानी चाहिये। इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

(संशोधन नं. 589 और 583 पेश नहीं किये गये।)

*__प्रोफेसर के.टी. शाहः__ उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के साथ निम्नलिखित शर्त जोड़ दी जाये:

'Provided that no propaganda in favour of any one religion, which is calculated to result in change of faith by the individual affected, shall be allowed in any school or college or other educational institution, in any hospital or asylum, or in any other place or institution where persons of a tender age, or of unsound mind or body are liable to be exposed to undue influence from their teachers, nurses or physicians, keepers or guardians or any other person set in authority above them, and which is maintained wholly or partially from public revenues, or is in any way aided or protected by the Government of the Union, or of any State or public authority therein.' "

(किन्तु शर्त यह है कि किसी विद्यालय अथवा महाविद्यालय अथवा अन्य शिक्षण-संस्था में, किसी हस्पताल अथवा आश्रम या संस्था में, प्रभावापन्न व्यक्तियों से धर्म परिवर्तन कराने के उद्देश्य से किसी धर्म के पक्ष में कोई प्रचार न किया जायेगा, जहां कि कोमल आयु अथवा निर्बल मस्तिष्क या स्वास्थ्य के लोगों पर उनके अध्यापकों, नर्सों अथवा चिकित्सकों, रक्षकों अथवा संरक्षकों अथवा उनके रक्षार्थ रखे हुये किसी व्यक्ति द्वारा अनुचित प्रभाव पड़ना सम्भव हो, और जो सार्वजनिक धन द्वारा पूर्णतः अथवा अंशतः संधृत हों, अथवा जिन्हें संघ अथवा किसी राज्य की सरकार द्वारा अथवा उनमें स्थित किसी लोक-प्राधिकारी द्वारा किसी प्रकार की सहायता या रक्षा मिलती हो।)

श्रीमान्, मुख्य अनुच्छेद में प्रचार की स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है। मुझे इस अधिकार पर कोई आपत्ति नहीं है, कि किसी धर्म विशेष के अनुयायी को, इस उदार राज्य में, इस बात की स्वतन्त्रता हो कि वह आराधना की अपनी पद्धति के लाभों अथवा सौन्दर्य को दूसरे के समक्ष रखे। मेरी केवल एक ही शर्त है जिसे कि इस संशोधन में रखने का प्रयत्न किया गया है। वह यह है कि इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग नहीं होना चाहिये जैसा कि भूतकाल में हुआ है। ऐसी संस्थाओं तथा स्थानों में जहां कि कोमल आयु के अथवा मानसिक या शारीरिक निर्बलता से पीड़ित लोग रहते हैं जिन पर अनुचित प्रभाव पड़ सकता है, वहां

[प्रो. के.टी. शाह]

सम्भव है कि उन पर वहां के प्राधिकारियों के व्यक्तित्व का अधिक प्रभाव पड़ेगा और किसी धर्म विशेष की आंतरिक अच्छाई का अथवा उसके पक्ष में अकाट्य युक्तियों का प्रभाव उतना न पड़ेगा और उसका परिणाम यह होगा कि वे लोग धर्म परिवर्तन कर लेंगे। इसे वास्तविक धर्म परिवर्तन नहीं कह सकते बल्कि ऐसा धर्म परिवर्तन तो अनुचित प्रभाव में पड़कर ही किया गया है जिसे रोकना चाहिये।

मेरा उन लोगों से कोई झगड़ा नहीं है जो कि अपने माता-पिता द्वारा प्राप्त धर्म के विषय में सभी उपलबध सामग्रियों पर पूर्ण तथा परिपक्व विचार करके अपनी राय बदलते हैं। यदि मेरी बात से कोई अप्रसन्न न हो तो मैं कह सकता हूं कि इस संसार में अधिकांश धर्म तर्कसंगत विश्वास की चीज़ें नहीं हैं; वे अवाप्त स्वभाव हैं, अथवा पूर्वजों से लिये हुये अविचारपूर्ण विश्वास हैं जो कि कदाचित् विपक्ष के दृढ़ विश्वास अथवा विरोधी तर्क के सामने न टिक सकें। इसलिये जो भी जनता के मस्तिष्क को अविचारपूर्ण विश्वास से स्वतंत्र तथा नये विचारों के लिये खुला रखना चाहता हो, वह इस पर आपत्ति नहीं करेगा कि प्रचार की ऐसी स्वतंत्रता होनी चाहिये जिससे कि धर्म परिवर्तन हो सके।

अतएव मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है कि कोई सार्वजनिक स्थान में, खुले मैदान में, उद्यानों में, बागों, रंगमंच पर अथवा किसी अन्य सार्वजनिक स्थान पर कोमल आयु अथवा निर्बल मस्तिष्क या शरीर के लोगों को भी भाषण दे, लिख कर कुछ कहे अथवा उपदेश दे; क्योंकि उन स्थानों पर तो वे लोग किसी अनुचित दबाव में न आयेंगे और न उन सार्वजनिक स्थानों पर शिक्षा अथवा उपदेश देने वाले ही किसी अधिकार-युक्त स्थान पर होते हैं, जहां वे अनुचित प्रभाव डाल सकें। अत: ऐसी जगहों के लिये तो यह माना जा सकता है कि उनके तर्क की शक्ति, उनकी युक्तियों के बल पर ही लोगों ने धर्म-परिवर्तन किया है, किसी अनुचित प्रभाव अथवा अनुचित अधिकार के कारण नहीं। किन्तु ऐसे स्थानों में जैसे कि किसी विद्यालय अथवा महाविद्यालय, चिकित्सालय अथवा आश्रम में, वे लोग, जो कि अध्यापक अथवा उपदेशक, चिकित्सक, संरक्षक अथवा नर्स के रूप में अधिकार के पद पर आरूढ़ हैं, अपनी उस विशेष स्थिति से लाभ उठाकर अपने अधीन लोगों पर प्रभाव डालते हैं, उन लोगों के समक्ष जीवन प्रयोजनों के प्रति उससे एक भिन्न दृष्टिकोण रखते हैं जो कि जन्म से ही उन्हें मिला हुआ है, तो मैं समझता हूं कि यह अनुचित प्रभाव डालना ही है, अत: यह आपत्तिजनक है।

इसकी भी अनुमति दी जा सकती है, अगर उस संस्था विशेष को सार्वजनिक धन से कोई लाभ प्राप्त न होता हो, अथवा संघ या उसके किसी भाग के किसी सार्वजनिक प्राधिकारी से उसे कोई सहायता, रक्षण अथवा प्रोत्साहन न मिलता हो। मुझे आशा है कि परिषद् इस बात को समझती है कि यह संशोधन कितना नरम है और इस प्रावधान में जो यह प्रतिबन्ध रखा गया है कि यह केवल उन्हीं लोगों पर लागू होगा जो ऐसे स्थानों या संस्थाओं में हैं जहां अवस्था अथवा विकृत मस्तिष्क या शरीर की अयोग्यता के कारण वे अनुचित दबाव के शिकार बन सकते हैं, आशा है, परिषद् उसके महत्त्व को भी समझती है।

एक कारण तो यह हुआ। इसके अतिरिक्त केवल उसी प्रचार पर आपत्ति हो सकती है जो कि बालकों, असहायों, अशक्त अथवा निर्बल मस्तिष्क वालों पर अधिकार-सम्पन्न लोगों अर्थात् अध्यापकों, नर्सों अथवा संरक्षकों द्वारा किया जाये। यह भी एक महत्त्वपूर्ण प्रतिबन्ध है।

तीसरे, धर्म-परिवर्तन के विषय में प्रचार करने वाली केवल उन्हीं संस्थाओं पर हमें आपत्ति है जो कि पूर्णतः अथवा अंशतः सार्वजनिक आय द्वारा संधृत हैं। हो सकता है उन्हें आर्थिक सहायता मिलती हो; अथवा उन्हें राज्य द्वारा मान्यता ही मिलती हो, जो कि कदाचित् प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता से अधिक मूल्यवान है, और वे जनता से शुल्क वसूल करती हों, जिससे कि उन्हें अधिक लाभ हो, और नाम के लिये सरकारी आगम में से वे कुछ अनुदान न लेती हों, अथवा उन्हें किसी अन्य सार्वजनिक प्राधिकारी द्वारा सहायता अथवा रक्षण प्राप्त होता हो।

इन तीन सारभूत प्रतिबन्धों के होते हुये, मुझे विश्वास है कि कोई भी मेरे संशोधन पर विवाद अथवा आपत्ति नहीं करेगा, विशेषतः जबकि उस प्रचार का आशय अपने पूर्वजों से प्राप्त धर्म, विश्वास अथवा आराधना के रूप को बदलना हो, और वह प्रचार उन लोगों द्वारा किया जाये जो उन संस्थाओं में अधिकारी हों और जिन लोगों का धर्म परिवर्तन किया जाये वे किसी ऐसी प्रकार की निर्योग्यता से पीड़ित न हों, जिनकी कि मैंने चर्चा की है।

श्रीमान्, मैं जानता हूं कि इससे बहुत तीव्र भावनायें उत्पन्न हो सकती हैं। कई ऐसे धर्म हैं जो खुले तौर पर धर्म-परिवर्तन ही अपना उद्देश्य बताते हैं। कई ऐसे धर्म हैं जो कि धर्म को लोगों की आत्मा पर छोड़ देते हैं, तथा धर्म-परिवर्तन का प्रयत्न नहीं करते। कुछ भी हो, अपने धर्म के प्रचार की स्वतंत्रता का विरोध नहीं करते हुये, मेरा विश्वास है कि जो धर्म-परिवर्तन का कार्य करना चाहते हैं, उनके

[प्रो. के.टी. शाह]

उपदेशकों तथा प्रचारकों से यह बहुत ही साधारण प्रार्थना है कि उन्हें कम से कम इतना आत्म-संयम रखना चाहिये; अर्थात् किसी प्रकार की सार्वजनिक सहायता से संधृत अथवा किसी का सार्वजनिक प्रोत्साहन प्राप्त संस्थाओं को प्रचार अथवा धर्म-परिवर्तन के लिये काम में न लेना चाहिये, ताकि जो लोग अन्य प्रभावों से पूर्णतया स्वतंत्र नहीं हैं, जिनकी बुद्धि परिपक्व नहीं है और जो किसी प्रकार की बाधाओं के अधीन हैं, उन पर अनुचित प्रभाव न पड़े।

श्रीमान्, मैंने यह प्रयत्न किया है कि मैंने जो थोड़ी-सी बातें कही हैं उनमें कोई भी ऐसा शब्द न हो, जिससे धर्म-प्रचार के अधिकार पर मेरे द्वारा सुझाये गये प्रतिबन्धों से किसी को किंचित् भी आशंका हो सके। मैंने ऐसा कोई भी उदाहरण नहीं दिया है, यद्यपि ऐसे उदाहरण बहुत हैं जहां कि अनुचित लाभ उठा कर ऐसे तरीके से धर्म-परिवर्तन कराये गये हैं जो कि अत्यन्त निन्दनीय कहा जा सकता है। जो प्रचारकों के धर्म पर अन्धविश्वास कर लेते हैं वे प्रसन्नता से उस धर्म में चले जायें। किन्तु मैं उनसे प्रार्थना करना चाहता हूं कि वे इस बात को समझें कि मैं यह सुझाव रख रहा हूं कि जो लोग किसी निर्योग्यता से पीड़ित हों उनके साथ इस प्रकार की कार्यवाही नहीं होनी चाहिये; वे मेरी बात का उलटा अर्थ न लगायें, मैं केवल यही कहता हूं कि उनके अपने धर्म को मानने या उसका प्रचार करने पर मुझे किंचित् भी आपत्ति नहीं है, किन्तु उन्हें अपनी धार्मिक कार्यवाहियों में इस प्रकार के गैर-कानूनी तरीकों का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

मैं स्वयं किसी धर्म विशेष का मानने वाला नहीं हूं, अतः मैं परिषद् को आश्वासन दे सकता हूं कि मैं किसी एक धर्म के प्रति पक्षपातपूर्ण अथवा दूसरे धर्म के विरुद्ध होने की भावना से प्रेरित नहीं हूं। मैं केवल यही चाहता हूं कि इसे पूर्णतः वैयक्तिक विषय रहने दिया जाये। जब आप किसी सामाजिक सभा अथवा सामूहिक संघ में एकत्र हों तो कम से कम इतने शिष्टाचार का तो ध्यान अवश्य ही रखें कि आप किसी अनुचित उपाय से अपना प्रभाव नहीं जमायेंगे वरन् अपनी युक्तियों की शक्ति पर भी निर्भर करेंगे। श्रीमान्, मैं परिषद् से अपने प्रस्ताव की सिफारिश करता हूं।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> "कि अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के साथ वाली व्याख्या में 'profession' (धर्म को...मानने) शब्दों के स्थान पर 'practice' (धर्म पर...आचरण करने) ये शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान्, अनुच्छेद 19 बहुत ही व्यापक है। इसमें कहा गया है कि "सब व्यक्तियों को विश्वास स्वातंत्र्य का तथा धर्म को अबाधरूपेण मानने और प्रचार करने का अधिकार होगा।" अब, जहां तक विश्वास स्वातंत्र्य का प्रश्न है, इसका यह अर्थ है कि किसी मनुष्य को किसी धर्म के मानने का अधिकार है अथवा किसी धर्म को न मानने का भी। यदि कोई मनुष्य किसी धर्म को मानता है तो वह अपनी इच्छानुसार किसी धर्म को मानने के लिये स्वतंत्र है चाहे वह हिन्दुत्व, इस्लाम, बौद्धमत अथवा सिख-मत अथवा किसी को माने। तत्पश्चात्, उस धर्म को मानते हुये उसे उस धर्म के सिद्धान्तों पर आचरण करने की स्वतंत्रता है। उदाहरणार्थ, यदि इस्लाम में नमाज अपेक्षित है तो मुसलमान उस पर आचरण करने तथा उसका प्रचार करने के लिये स्वतंत्र है। मैं नम्र निवेदन करना चाहता हूं कि कृपाण धारण करने को 'सिख धर्म को मानना' कहने के स्थान पर 'सिख धर्म पर आचरण करना' कहना अधिक उचित होगा। मुझे केवल यही कहना है।

***उपाध्यक्षः** ऐसा प्रतीत होता है कि इस संशोधन पर भी एक संशोधन है। जहां तक मुझे पता चला है यह पेश नहीं किया जायेगा। अगला संशोधन जोकि पेश किया जा सकता है, यह केवल 591वां है और श्री लोकनाथ मिश्र के नाम पर है।

***श्री लोकनाथ मिश्रः** उपाध्यक्ष महोदय, यदि आप मुझे इस अनुच्छेद के आम बहस मुबाहिसे में भाग लेने की अनुमति दे दें तो इस संशोधन को पेश ही नहीं करूंगा।

***उपाध्यक्षः** मैं इसकी प्रत्याभूति कैसे दे सकता हूं? मुझे कार्यक्रम के अनुसार कार्य करना होगा। आपको अवसर मिले या न मिले यह तो इस बात पर निर्भर होगा कि वाद-विवाद का क्या ढंग होता है। आप इस संशोधन को पेश करने के लिये स्वतंत्र हैं।

***श्री लोकनाथ मिश्रः** मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) की व्याख्या के अन्त में 'और तदनुसार अन्य धर्मों के आचरण का अंग माना जायेगा' शब्द जोड़ दिये जायें।"

यदि मुझे सामान्यतः समूचे अनुच्छेद 19 पर बोलने दिया जाता और इस संशोधन को पेश करने के लिये न कहा जाता तो मुझे प्रसन्नता होती। मेरे विचार में यदि विधान के मसौदे का अनुच्छेद 13 स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र है, तो अनुच्छेद 19 हिन्दुओं को गुलाम बनाने का घोषणा-पत्र है। मैं सचमुच यह अनुभव

[श्री लोकनाथ मिश्र]

करता हूं कि यह अत्यन्त अपमानजनक अनुच्छेद है, विधान के मसौदे का सबसे काला अंश हैं। मैं सविनय निवेदन करता हूं कि मैंने सारे संवैधानिक नज़ीरों का अध्ययन किया है और उन पर विचार किया है, किन्तु मैंने धर्म के विषय में, मूलाधिकार के रूप में 'प्रोपेगंडा' (प्रचार) शब्द का प्रयोग कहीं नहीं देखा।

श्रीमान्, हमने अपने राज्य को असाम्प्रदायिक राज्य घोषित कर दिया है। उचित तथा स्पष्ट कारणों से ही हमने ऐसा किया है। क्या इसका यह अर्थ है कि हमें धर्म से कोई प्रयोजन नहीं? आप जानते हैं कि धर्म के प्रचार के कारण ही भारत में ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई और भारत को पाकिस्तान और भारत में बांटना पड़ा। यदि इस्लाम इस देश पर अपनी इच्छा नहीं थोपता, तो भारत पूर्णतः एक असाम्प्रदायिक राज्य तथा एकरूप राज्य होता। विभाजन का प्रश्न ही नहीं उठता। अतएव हमने धर्म को हटा कर ठीक ही किया। और अब यह कहना, कि मूलाधिकार के रूप में प्रत्येक को अपने धर्म के प्रचार करने का अधिकार है, ठीक नहीं है। क्या हम यह कहना चाहते हैं कि हम हिन्दुत्व के अतिरिक्त कोई अन्य धर्म चाहते हैं जो कि भारत में अच्छी तरह जड़ नहीं जमा सका है, और अन्य धर्मों पर रोक लगाना चाहते हैं? हम इसे ऐहिक या असाम्प्रदायिक राज्य क्यों बनाते हैं? कारण यह हो सकता है कि धर्म आवश्यक नहीं है, अथवा यह भी कारण हो सकता है कि धर्म आवश्यक है, किन्तु बात यह है कि चूंकि भारत में हिन्दुत्व, ईसाई, इस्लाम और सिख-मत आदि कई धर्म हैं, हम यह निश्चय नहीं कर सकते कि किसे स्वीकार करें। इसीलिये आप कोई धर्म रखना नहीं चाहते। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यदि आप धर्म को स्वीकार करते हैं तो आपको हिन्दुत्व को ही स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि भारत की एक बहुत बड़ी आबादी इसी धर्म पर चलती है। इसी को मानती है।

***उपाध्यक्षः** हम सोमवार को वाद-विवाद पुनः आरम्भ करेंगे। मेरे मुस्लिम भाइयों ने मुझसे प्रार्थना की है कि आज शुक्रवार है अतः हमें अब बैठक स्थगित कर देनी चाहिये। मेरे विचार में हमें उनके प्रति सौहार्द दिखाना चाहिये और अब बैठक स्थगित कर देनी चाहिये, और हमें सोमवार को प्रातः दस बजे पुनः समवेत् होना चाहिये।

श्री मिश्र अपना शेष भाषण तभी देंगे।

*तत्पश्चात् परिषद् सोमवार, तारीख 6 दिसम्बर, 1948 के प्रातः दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।*

Con. 3. VII. 20. 48
350

अंक 7
संख्या 20

सोमवार
6 दिसम्बर
सन् 1948 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी)..... 1295-1373
[अनुच्छेद 19, 14 तथा 15 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

सोमवार, 6 दिसम्बर, सन् 1948 ई.

---

*भारतीय विधान-परिषद्, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे समवेत् हुई। उपाध्यक्ष महोदय (डॉक्टर एच.सी. मुकर्जी) अध्यक्ष पद पर आसीन थे।*

---

## प्रतिज्ञा-ग्रहण और रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्य ने प्रतिज्ञा ग्रहण की तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर किया :

श्री के. चेंगलाराया रेड्डी (मैसूर)

---

## विधान का मसौदा ( जारी )

## अनुच्छेद 19-( जारी )

***उपाध्यक्ष** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): अब अनुच्छेद 19 पर हम वादानुवाद जारी करेंगे।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): बार-बार यह बात यहां दुहराई हुई है कि हमारा राज्य एक असाम्प्रदायिक राज्य होगा, ऐहिक राज्य होगा। इस ऐहिकता को मैंने यही समझ कर स्वीकार किया था कि हमारा राज्य धर्म में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा और धार्मिक बातों में तटस्थ रहेगा। मेरा यह ख्याल था कि यहां की अहिन्दू जनता पर अपनी अधिकतम उदारता दिखाने के लिये ही हिन्दू प्रधान इस देश ने विभक्त भारत में अपने राज्य को असाम्प्रदायिक या ऐहिक बनाना स्वीकार किया है। ऐहिकता का ठीक-ठीक क्या मतलब है और हमारे देशवासियों के जीवन एवं व्यवहार-पद्धति पर राज्य कितनी दूर तक अपना नियंत्रण रखना चाहता है, इसे मैं अवश्य ही ठीक-ठीक नहीं जान पाया था। मेरा यही मत था कि जिन्दगी की इस तरह दर्जेबन्दी नहीं की जा सकती किन्तु फिर भी इस नये नारे को मानने पर मैं राजी हो गया।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या सभा में लिखित भाषण पढ़ने की अनुमति है?

***उपाध्यक्ष:** साधारणत: लिखित भाषण पढ़ने की अनुमति मैं नहीं देता, किन्तु अगर कोई सदस्य यह समझता है कि अन्यथा वह उपस्थित विषय पर पूर्णत: अपना मत नहीं व्यक्त कर सकता तो उस सूरत में मैं लिखित भाषण पढ़ने की उसे अनुमति दे देता हूं।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू :** क्या मैं जान सकता हूं कि उपस्थित विषय क्या है?

***उपाध्यक्ष:** अनुच्छेद 19 के सम्बन्ध में श्री लोकनाथ मिश्र एक संशोधन पेश कर रहे हैं। मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि वह इसकी स्वतंत्रता दे क्योंकि श्री लोकनाथ मिश्र एक विशेष दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं और मेरा मत है कि इस दृष्टिकोण को सभा में अभिव्यक्ति मिलनी चाहिये।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** धीरे-धीरे मुझे यह आभास मिलता जा रहा है कि 'असाम्प्रदायिक राज्य' का नारा धोखे में डालने वाली बात है और देश की प्राचीन संस्कृति को भुला देने के लिये ही यह कौशल काम में लाया जा रहा है।

19 से 22 तक के अनुच्छेदों से असाम्प्रदायिक राज्य का खोखलापन ज़ाहिर हो जाता हैं आखिर हम यह पूछते हैं कि क्या सचमुच हमारा यह विश्वास है कि जीवन से धर्म को बिलकुल पृथक् रखा जा सकता है? अथवा हम यह समझते हैं कि इतने विभिन्न धर्मों में से किसे स्वीकार किया जाये, यह निर्णय करना कठिन है? धर्म अगर हमारे राज्य की बुद्धि से परे की चीज़ है तो हमें साफ-साफ यह कह देना चाहिये और धर्म सम्बन्धी अधिकारों का विधान में जो उल्लेख किया गया है उसे हटा देना चाहिये। और अगर हम इसे ज़रूरी समझते हैं तो साहसपूर्वक हमें यह कह देना चाहिये कि धर्म का क्या रूप होना चाहिये।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): माननीय वक्ता इतनी तेज़ी से पढ़ रहे हैं कि उनकी बात हम लोग समझ नहीं पाते हैं।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** किन्तु व्यर्थ की उदारता दिखाकर धर्म पर रोक लगाना और साथ ही धर्म-प्रचार को मूलाधिकार का रूप देना कुछ विचित्र, बेतुकी और खतरनाक-सी बात है। न्याय का यह तकाज़ा है कि सहस्राब्दियों तक आक्रान्त रखे गये अपने प्राचीन धर्म एवं संस्कृति को अगर आप पूर्ववत् उसके महिमा मंडित स्थान पर आसीन नहीं करते हैं तो कम से कम उसके साथ न्याय का बर्ताव तो अवश्य ही कीजिए।

हजरत मुहम्मद से या ईसा मसीह से हमारा कोई झगड़ा नहीं है और न उनके विचारों और कथनों से हमारा कोई झगड़ा हैं। हमारे दिलों में उनके लिये पूर्णत: आदर का ही भाव है। मेरी समझ से वैदिक संस्कृति में कोई बात छोड़ी नहीं गई है। प्रत्येक विचारधारा और संस्कृति का अपना महत्त्व है किन्तु आज धर्म का नारा लगाना एक खतरनाक बात है। इससे मानव समाज में अनेकता पैदा होती है, वह सम्प्रदायों में विभक्त हो जाता है और लोग अपने-अपने दल बनाकर संघर्ष का मार्ग अपना लेते हैं। अनुच्छेद 19 में जो 'propagation' (धर्मप्रचार) शब्द रखा गया है उसका आज की स्थिति में आखिर क्या मतलब हो सकता है? इसका तो एकमात्र परिणाम यही होगा कि इससे हिन्दू संस्कृति के एवं हिन्दुओं की जीवन-पद्धति तथा आचार-पद्धति के पूर्ण विनाश का ही मार्ग प्रशस्त हो जायगा। इस्लाम ने हिन्दू विचारधारा के प्रति अपना शत्रुभाव घोषित कर रखा हैं। ईसाइयों की नीति यह है कि हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में दबे पांव प्रवेश किया जाये और इसी नीति पर वह अमल कर रहे हैं। यह इस कारण से सम्भव हो सका है कि हिन्दू मत ने अपने बचाव के लिए दीवारें नहीं खड़ी कीं। आखिर हिन्दुत्व क्या है? वह जीवन सम्बन्धी एक ऐक्य-मूलक विचारधारा है, संसार को एक मान कर चलने वाला एक दर्शन है जो एक सुसंगठित समाज (हिन्दू समाज) के रूप में मूर्तिमान् हो गया है ताकि शान्ति और सद्भावनापूर्वक यह समाज इस विचारधारा और दर्शन को कार्यान्वित कर सके। किन्तु हिन्दुओं की इस उदार विचारधारा का दुरुपयोग किया गया है और राजनीति ने हिन्दू संस्कृति को कुचल दिया है। आज भारतवर्ष में धर्म से कोई ऊंचा उद्देश्य नहीं सिद्ध होता है। हां, इसके नाम पर धर्मोन्माद को उत्तेजना प्रदान करने वाली एक पताका के नीचे जनता को इकट्ठा कर लोगों में अज्ञान की वृद्धि की जाती है, दारिद्रय का प्रसार किया जाता है और अपनी उच्चाभिलाषाओं की पूर्ति की जाती है आज तो धर्म के नाम पर राजनैतिक उद्देश्य सिद्ध किये जाते हैं क्योंकि आज की दुनिया में राजनैतिक शक्ति

[श्री लोकनाथ मिश्र]

का ही बोलबाला है और सच्चे मानव की कहीं कोई पूछ नहीं है। हर आदमी, जैसे भी ठीक समझे अपना जीवन-यापन करे किन्तु यह न होना चाहिए कि वह अपने दल की संख्या वृद्धि करे जिससे कि राजनैतिक युद्ध में लूट का हिस्सा उसे मिल सके। साम्प्रदायिक अल्पमत का प्रश्न हमें अब और न उठाना चाहिए क्योंकि बहुमत को कालान्तर में उदरस्थ कर लेने के उद्देश्य से ही यह युक्ति निकाली गई थी। इस प्रश्न का उठाया जाना असह्य और न्यायविहीन है।

वस्तुत: विश्व के किसी भी विधान में धर्म-प्रचार को मूलाधिकार का रूप नहीं दिया गया है और न इसे न्याय्य अधिकार ही माना गया है। आयरिश फ्री स्टेट के विधान में उस धर्म की विशिष्ट स्थिति को स्वीकार किया गया है जिसे वहां के बहुसंख्यक नागरिक मानते हैं। किन्तु भारतवर्ष में हम ऐसा करने में संकोच का अनुभव करते हैं। सोवियत रूस में धर्म सम्बन्धी पूजा-पाठ की स्वतंत्रता है और धर्म-विरोधी प्रचार की भी स्वतंत्रता है। किन्तु हमारे विधान में धर्म-प्रचार की स्वतंत्रता है पर किसी भी धर्म विरोधी प्रचार की स्वतंत्रता नहीं दी गई है।

अगर लोग अपने धर्म का प्रचार करना चाहते हैं, उन्हें इसकी स्वतंत्रता दीजिए। मैं तो केवल यही चाहता हूं कि विधान में इसे मूलाधिकार का रूप देकर आप इसके लिए प्रोत्साहन न दें। मूलाधिकार अपरिवर्तनीय हैं और धार्मिक प्रचार को जहां एक बार विधान में आपने मूलाधिकार का रूप दिया कि उसका परिणाम यह होगा कि इससे लोगों में शत्रुता की भावना उत्पन्न होने लगेगी। इसलिए मेरा कहना यह है कि धर्म-सम्बन्धी अधिकार का हमें उल्लेख ही नहीं करना चाहिए। धर्म अपनी चिन्ता आप करेगा। अनुच्छेद 19 से 'propagate' शब्द को तो आप अवश्य ही निकाल दीजिए। वर्तमान सभ्यता बड़ी शीघ्रता से अपना रूप बदलती जा रही है और उसमें ज़बर्दस्त उथल-पुथल होने जा रहा है। ऐसी हालत में हमें सावधान हो जाना चाहिए और जीवित रहने की चेष्टा करनी चाहिए।

***उपाध्यक्ष:** मेरी सूची में दो संशोधन हैं अर्थात् नं. 592 और 593 के, ये दोनों एक ही आशय के हैं और इन पर एक साथ विचार किया जा सकता है। इनमें से नं. 593, जो श्री कामत के नाम में है अधिक विस्तृत है। मैं इसी को उपस्थित करने की अनुमति देता हूं।

*श्री **एच. वी. कामत** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव रखता हूं:

"कि अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के बाद निम्नलिखित नया उपखण्ड जोड़ा जाये:

'(2) The State shall not establish, endow, or patronize any particular religion. Nothing shall however prevent the State from imparting spiritual training or instruction to the citizens of the Union.' "

(राज्य किसी भी धर्म विशेष को न स्थापित करेगा, न उसके पक्ष में कोई व्यवस्था करेगा और न उसको प्रश्रय देगा। किन्तु किसी भी बात से, संघ के नागरिकों को आध्यात्मिक शिक्षा या उपदेश प्रदान करने पर राज्य के लिये कोई रुकावट न होगी।)"

इस संशोधन के दो भाग हैं। पहले भाग में यह कहा गया है कि राज्य धर्म से अपने को पृथक् रखेगा और दूसरे भाग में धर्म के गूढ़ तत्त्व अर्थात् आत्मा के सनातन महत्त्व के सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है।

संशोधन के प्रथम भाग के सम्बन्ध में मेरे लिये केवल इतना ही कहना आवश्यक है कि यूरोप और इंग्लैण्ड का मध्यकालीन इतिहास—उस ज़माने का रक्त-रंजित इतिहास—इस बात का साक्षी है कि वहां चर्च और राज्य के गठबन्धन का कितना भयावह परिणाम निकला था। यह सच है कि यहां अशोक के शासन-काल में जब राज्य ने एक विशेष धर्म को अर्थात् बौद्ध धर्म को अपना लिया था तो कोई घरेलू झगड़ा नहीं उठा था। पर आपको इस प्रसंग में यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि उस समय यहां बौद्धमत के सामने एकमात्र दूसरा धर्म केवल वैदिकधर्म ही था। व्यक्तिगत रूप से मेरा यह विश्वास है कि चूंकि अशोक ने बौद्धमत को राज्य-धर्म बना लिया था इस कारण से हिन्दुओं और बौद्धों के बीच कुछ आपसी झगड़े हुए थे और इसका परिणाम यह हुआ कि अन्ततोगत्वा बौद्धमत यहां से लुप्त ही हो गया। इसलिए मुझे तो यह साफ दिखाई देता है कि अगर राज्य किसी खास धर्म के साथ अपने को मिला देगा तो उसमें मतभेद की दरारें पड़ जायेंगी। आखिर राज्य तो अपने उन सभी नागरिकों का प्रतिनिधान करता

[श्री एच.वी. कामत]

है जो उसकी सीमा के अन्दर निवास करते हैं। इसलिए, राज्य के लिए यह कभी सम्भव नहीं हो सकता है कि वह अपने नागरिकों के किसी विशेष वर्ग के धर्म के प्रति ही अपनी निष्ठा रखे। किन्तु, श्रीमान्, कहीं लोग मेरी बात को गलत न समझ बैठें इसलिए मैं एक बात को स्पष्ट किये देता हूं। जब मैं यह कहता हूं कि राज्य को किसी खास धर्म के साथ अपने को न मिला देना चाहिए तो इससे मेरा यह मतलब नहीं है कि राज्य अधार्मिक हो जाये अथवा धर्म-विरोधी बन जाये। अवश्य ही हम लोगों ने यह तो घोषित ही किया है कि भारतीय राज्य एक ऐहिक राज्य—असाम्प्रदायिक राज्य—होगा किन्तु मेरी समझ से ऐहिक राज्य से यह मतलब नहीं है; राज्य ईश्वरविहीन होगा अथवा वह अधार्मिक या धर्म-विरोधी होगा।

अब मैं 'धर्म' शब्द के वास्तविक अर्थ की ओर आता हूं। मैं यह दृढ़ता के साथ कहता हूं कि व्यापक अर्थ में 'धर्म' का यह अर्थ होना चाहिए कि लोग उसके वास्तविक माहात्म्य को, आत्मा के वास्तविक महत्त्व को समझें। मैं समझता हूं, श्रीमान्, कि हमें अपने नागरिकों को इस धर्म का बोध कराना चाहिए जिसे हमने अपनी विधान-परिषद् की मुहर में स्थान दिया है, जिसे हमने अपनी इस सभा की प्रकाशित कार्यवाही में 'धर्मचक्र प्रवर्त्तनाय' कह कर स्थान दिया है। यदि माननीय सदस्यवृन्द इस सभा-भवन से बाहर जाकर इसकी गुम्बद की छत की ओर दृष्टि डालें तो उन्हें वहां यह संस्कृत श्लोक अंकित मिलेगा:

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा:
वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।।

वस्तुत: यही धर्म हमारा धर्म होना चाहिये। एक कवि ने धर्म का यों निरूपण किया है कि: 'येनेदं धार्यते जगत्' अर्थात् धर्म वह वस्तु है जिसके आधार पर यह विश्व टिका हुआ है। हमें धर्म का वस्तुत: यही अर्थ लेना चाहिये। हमारे महान् सूत्रों में, संस्कृत-साहित्य के महाकाव्यों में "अहम् ब्रह्मास्मि" कह कर, सूफीमत में "अनल हक" कह कर तथा ईसाई धर्मग्रंथों में "परम पिता परमात्मा और मैं एक ही हूं" कह कर धर्म का तत्त्व समझाया गया है। यदि इन सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाये और लोग इन पर चलने का अभ्यास करें तो इससे विश्व के सभी संघर्षों का अन्त हो जायेगा। आज भारतवर्ष को धर्म के इन्हीं तत्त्वों को अपनाना है और

इनकी शिक्षा देनी है, न केवल अपने ही नागरिकों को बल्कि समस्त मानव-जगत को। इसी पथ को अपनाकर संसार अपनी उस व्याधि से छुटकारा पा सकता है जिससे वह आज प्रपीड़ित है। महायोगी श्री अरविन्दु ने अपनी एक प्रसिद्ध पुस्तक में एक स्थल पर यह कहा है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि सभा उनके कथन से पूर्णत: सहमत होगी। उन्होंने लिखा है:

> "वह सर्वोत्कृष्ट विचारा धारा जिसने भारतीयों के जीवन को, उनकी संस्कृति एवं उनके सामाजिक आदर्शों को सदा परिचालित किया है, वह यह है कि मनुष्य को सदा अपने सनातन एवं सुचेतन आत्मा के साक्षात्कार का प्रयास करना चाहिए और इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तथा अज्ञानावस्था से निकल कर परमज्ञान की अवस्था पाने के लिए ही उसे अपने पार्थिव शरीर को उपयोग करना चाहिए।"

आज इस सभा में अपने परम विद्वान् दार्शनिक आचार्य श्री राधाकृष्णन् को उपस्थित देख कर मैं बड़ा ही खुश हूं। गत दो-तीन वर्षों से विश्व को वह यही कहते आ रहे हैं कि उसकी व्याधि का मूल कारण भौतिक नहीं आध्यात्मिक है इसलिए भारतवर्ष का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह चिकित्सक का कार्य करे।

यदि हमें इस संयुक्त राष्ट्र-संघ को—जो कहने के लिए तो संयुक्त है पर वस्तुत: है असंयुक्त—सही अर्थ में संयुक्त बनाना है, यदि हमें इसकी अरक्षा-परिषद् को वस्तुत: सुरक्षा-परिषद् का रूप देना है, तो हमें पुन:आत्मा के महत्त्व पर ज़ोर देना होगा, सच्चाई और निष्ठा से भगवान को अपनाना होगा। हमारा भारतवर्ष चिरकाल से ही आत्मा के चिरंतन मार्हात्म्य का हामी रहा है।

अब मैं संशोधन के दूसरे हिस्से को लेता हूं जिसमें कहा गया है कि: "किसी भी बात से, संघ के नागरिकों को आध्यात्मिक शिक्षा या उपदेश प्रदान करने पर राज्य के लिए कोई रुकावट न होगी।" मैं इस हिस्से को बहुत महत्त्व देता हूं। भारतवर्ष आज युगों से आध्यात्मिक अनुशासन एवं आध्यात्मिक शिक्षा के लिए कए विशिष्ट पद्धति का हामी रहा है जो समस्त विश्व में 'योग' के नाम से ज्ञात है। महायोगी श्री अरविन्दु ने बार-बार यह बात कही है कि आज की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हम अपने ज्ञान या चेतना का स्वरूप बदल दें और योगानुशासन द्वारा मानवता को ऊपर उठायें।

[श्री एच.वी. कामत]

एक पाश्चात्य लेखक श्री आर्थर कोस्टलर ने अभी हाल में ही "योगी या भोगी" (Yogi or Commissar) नाम की एक पुस्तक लिखी है। योगी आध्यात्मिकता की कामना करता है और भोगी भौतिकता की। यदि आप की अनुमति हो, श्रीमान्, तो मैं बताऊं कि इस पुस्तक में लेखक ने एक स्थल पर कहा है:

"क्या मानव समाज किसी डॉक्टर को पाना चाहता है अथवा किसी डिक्टेटर को? वह योगी होगा या भोगी? योगी कार्य करता है इस उद्देश्य से कि वह अपना स्वरुप निरूपण कर सके और भोगी—पूंजीपति—के कार्यों का लक्ष्य होता है भौतिक सम्पत्ति की अधिकाधिक अवाप्ति। पाश्चात्य प्रजातंत्र को और योगियों की जरूरत है।" यह पाश्चात्य लेखक इसी निष्कर्ष पर पहुंचा है।

यहां सभा का ध्यान मैं इस बात की ओर आकृष्ट करूंगा, श्रीमान्, कि अनादि काल से उपनिषद् कालीन ऋषियों एवं द्रष्टाओं से लेकर महात्मा गांधी तथा नेताजी सुभाषचन्द्र बोस तक हमारे सभी शिक्षकों ने आध्यात्मिक शिक्षा एवं आध्यात्मिक उपदेश को बड़ा महत्त्व दिया है। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने तो यहां तक किया कि आज़ाद हिन्द फौज के सैनिकों के लिये आध्यात्मिक शिक्षा एवं उपदेश का पाठ्यक्रम निर्धारित कर दिया। आज़ाद हिन्द फौज़ की पाठ्य सूची में आध्यात्मिक उपदेश को भी उन्होंने शामिल कर रखा था। मैंने संशोधन के पहले हिस्से में यह कहा है कि 'राज्य किसी भी धर्म-विशेष को न स्थापित करेगा, न उसके पक्ष में कोई व्यवस्था करेगा और न उसको आश्रय देगा' किन्तु धर्म से यहां मेरा मतलब है विश्व के धर्मों के बाह्य स्वरूप से। यहां धर्म शब्द से मेरा मतलब धर्म के व्यापक एवं निगूढ़ अर्थ से नहीं है। यहां 'धर्म' से मेरा अभिप्राय उस 'धर्म' से नहीं है जिसका मैंने संशोधन के दूसरे भाग में उल्लेख किया है। दूसरे भाग में तो मैंने यही कहा है कि राज्य अपने नागरिकों को आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान करने के लिए जो कुछ भी कर सकता है करेगा।

अब अन्त में मैं केवल एक ही बात कहूंगा और वह यह है कि आज हम ऐसी दुनिया में रह रहे हैं जो युद्ध से जर्जरित क्लांत है, जिसमें आध्यात्मिक माहात्म्य का महत्त्व बिल्कुल गिर गया है। आज विश्व आध्यात्मिक महत्त्व को भुला बैठा है और सर्वत्र ही यही भाव व्याप्त है कि प्रतिशोध लेना ही न्याय है।

अगर यह दुनिया पुनः आत्मा के महत्त्व की ओर वापस नहीं जाती और सच्चाई और निष्ठा से भगवान को नहीं अपनाती तो इसका विनाश निश्चित है। इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि वह मेरे संशोधन को स्वीकार करे।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 594 और 595 एक ही तरह के हैं। संशोधन नं. 595 को उपस्थित करने की मैं अनुमति दे सकता हूं।

(संशोधन नं. 594 और 595 नहीं पेश किये गये।)

संशोधन नं. 596, डॉ. अम्बेडकर!

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) में 'preclude' शब्द की जगह 'prevent' शब्द रखा जाये।"

यह संशोधन केवल इसीलिए रखा जा रहा है कि यहां भी भाषा का वही रूप रहे जो अन्य अनुच्छेदों में रखा गया है।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन के सम्बन्ध में कई संशोधन आये हैं। इनमें से पहला है नं. 11 जो सूची नं. 1 में दिया हुआ है और पं. ठाकुर दास भार्गव के नाम में है।

(सूची 1 के संशोधन नं. 11 और 12 नहीं पेश किये गये।)

संशोधन नं. 18 मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम में है और मैं इसे उपस्थित करने की अनुमति नहीं दे सकता। इसमें प्रस्तावक ने यह मांग की कि "the State" शब्दों की जगह "any State" शब्द रखे जायें।

(संशोधन नं. 597, 598, 599 और 600 नहीं पेश किये गये।)

संशोधन नं. 601 प्रो. के.टी. शाह का है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) के उपखण्ड (ए) में 'regulating or restricting any economic, financial, political or other

[प्रो. के.टी. शाह]

secular activity' (किसी आर्थिक, वैत्तिक, राजनैतिक अथवा अन्य किसी प्रकार की ऐहिक क्रियाओं का आनियमन अथवा आयंत्रण करती हो) शब्दों की जगह 'regulating, restricting or prohibiting any economic, financial, political or other secular activity' (किसी आर्थिक, वैत्तिक, राजनैतिक अथवा अन्य किसी प्रकार की ऐहिक क्रियाओं का आनियमन, आयंत्रण अथवा अपवर्जन करती हो) शब्द रखे जायें।"

खण्ड का संशोधित रूप यह होगा :

"इस अनुच्छेद की किसी बात से किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा किसी विधि के बनाने में राज्य को अवरोध न होगा जो–

(क) धार्मिक आचरण से सम्बद्ध किसी आर्थिक, वैत्तिक, राजनैतिक अथवा अन्य किसी प्रकार की ऐहिक क्रियाओं का आनियमन, आयंत्रण अथवा अपवर्जन करती हो...।"

ये हैं वे शब्द जिनको जोड़ने का मैंने सुझाव दिया है और मेरी समझ से ये आवश्यक हैं। अगर राज्य को यह अभीष्ट है कि ऐसे किसी धर्म के विरुद्ध या सम्बन्ध में जो धर्म के नाम पर ऐहिक प्रकार के कार्य करता है, चाहे वह कार्य आर्थिक या वैत्तिक अथवा राजनैतिक हो, वह अपने सर्वोच्च अधिकारों का प्रयोग कर सके तो इसके लिये अनुच्छेद में इन शब्दों का रखना परमावश्यक है। इसके लिए यह जरूरी है कि विधान में ये शब्द रहें।

यहां केवल 'आनियमन या आयंत्रण' शब्दों के रखने से मैं सन्तुष्ट नहीं हो सकता। मैं चाहता हूं कि राज्य को इस बात का भी पूरा अधिकार हो कि वह ऐसी क्रियाओं का अपवर्जन कर सके। मेरी राय में ऐसी क्रियाओं के कारण धर्म का नाम बदनाम होता है। विश्व के कई सुप्रसिद्ध और दूर-दूर तक फैले हुए धर्मों के प्रति जनता की अवस्था उत्पन्न करने में और कोई कारण उतना सहायक नहीं हुआ है जितना कि यह कि इन धर्मों ने ऐहिक कार्यों के सम्पादन में हाथ बंटाया और इतना ही नहीं बल्कि बहुत ही उत्साह दिखाया जैसा कि प्रायः ऐसे कार्यों में

हुआ करता है। भौतिक सामग्रियों और सम्पत्तियों के संचय तथा भौतिक वैभव के कारण ही कई चिर-स्थापित चर्चों का विनाश हुआ। कई सुविख्यात धर्मों ने अपने प्रवत्तकों की शिक्षाओं और उनकी मौलिक भावनाओं पर चलना बन्द कर दिया है और आम जनता की निगाह में, इन्होंने बड़े ही निन्दनीय ढंग के व्यापार, वाणिज्य एवं राजनैतिक कार्यों को चला रखा है। अगर हमारे राज्य का यह दावा है कि वह एक ऐहिक या असाम्प्रदायिक राज्य है, अगर उसका यह दावा है कि वह हर प्रकार से पक्षपातशून्य है तो मेरी राय में उसे ऐसे कार्यों के न सिर्फ आनियमन और आयंत्रण का ही अधिकार प्राप्त होना चाहिए बल्कि उनके अपवर्जन का भी अधिकार उसे होना चाहिए।

बहुतेरे ऐसे व्यक्ति हैं जो धर्माध्यक्ष के आसन पर समासीन हैं या धर्म के नाम पर कार्य करने का दावा करते हैं, पर बड़े ही अवांछनीय ढंग के अनेकानेक सांसारिक कार्यों को चलाते हैं। ऐसे धर्माध्यक्षों का नामोल्लेख करके मैं किसी व्यक्ति की भावना को चोट नहीं पहुंचाना चाहता। इतनी ही बात नहीं है, ये काम उस विशेष सम्प्रदाय या वर्ग ही के लाभ या उन्नति के लिये किये जाते हैं जिनका कि उनसे सम्बन्ध है बल्कि प्राय: यही होता है ये सभी काम उस विशेष व्यक्ति से सम्बन्धित होते हैं जो उस समय उस सम्प्रदाय का धर्माध्यक्ष या प्रतिनिधि होने का दावा करता है। निजी सम्पत्ति का रखना, भौतिक सम्पत्ति का संचय करना तथा व्यापार द्वारा, सट्टे के द्वारा या अन्य ऐसे आर्थिक कामों के द्वारा, जिनको कि ये लोग धर्म के नाम पर या धार्मिक प्रमुख के नाते चलाते हैं, ऐसी सम्पत्ति का वर्धन करना—ये सब कुछ ऐसी बातें हैं जिनके कारण बहुत-सी बुराइयां पैदा होती हैं जिनकी इस सभा के भोले-भाले सदस्य कल्पना भी नहीं कर सकते। जिन लोगों ने इस मसले पर छानबीन की है वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि धर्माध्यक्ष लोग धर्म के नाम पर न केवल उसी आमदनी पर आय-कर से छूट मांगते हैं जो धर्मादे के मद में उन्हें प्राप्त होती है बल्कि वह यह भी अधिकार चाहते हैं कि जायज़ या नाजायज़ रोजगार के जरिये, फाटके के जरिये तथा और अनेक काम से पूंजी लगाकर जो भी आमदनी वह करते हैं वह सब उनकी होनी चाहिये। मेरा कहना है कि राज्य के हित के लिये और खास करके उस नीति और उन सिद्धान्तों के हित के लिए जिन पर कि इस राज्य की स्थापना की गई है, यह परमावश्यक है बल्कि यों कहिये कि यही उचित है कि धर्म के नाम पर चलाये जाने वाले ऐसे अधार्मिक एवं अनाध्यात्मिक कामों के अपवर्जन का

[प्रो. के.टी. शाह]

अधिकार विधान में लिपिबद्ध कर दिया जाये जिनसे कि समस्त राष्ट्र का अहित होता हो, और उस धर्म का भी अहित होता हो जिसका प्रमुख बनने का वे लोग दावा करते हैं।

जैसा कि मैं कह चुका हूं इस सम्बन्ध में मैं किसी धर्माध्यक्ष का उदाहरण यहां नहीं उपस्थित करना चाहता। मुझे पहले से ही यह मालूम है कि मेरे इस संशोधन की क्या गति होगी, अत: मेरे लिए यह अनावश्यक है कि ऐसे उदाहरण रखकर मैं सभा को और समझदार बनाऊं और उन वर्गों का आक्रोश मोल लूं जिन पर कि इस संशोधन का असर पड़ेगा।

***उपाध्यक्ष:** प्रोफेसर शाह, मैं आपको इसकी अनुमति नहीं दे सकता कि आप यहां ऐसी बातें कहें अर्थात् आप अपने संशोधन के भाग्य का उल्लेख करें और खास-खास वर्गों पर आक्षेप करें।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** मैं तो सिर्फ यह कह रहा था मेरे संशोधन की क्या गति होगी यह मैं जानता हूं। इस सम्बन्ध में उदाहरण उपस्थित करके मैं संशोधन की अवस्था को और जटिल नहीं बनाना चाहता क्योंकि इससे कई खास वर्गों पर असर पड़ेगा और मुझे उनकी नाराज़गी मोल लेनी होगी। अगर मैंने कोई अनुचित बात कही है तो उसके लिए मुझे खेद है और मैं आप से क्षमा चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** मैंने यह नहीं कहा कि आपने 'अनुचित बात' कही है। किन्तु इससे सभा की प्रशान्ति पर अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा और मैं आप से अनुरोध करूंगा कि...।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** आपकी सभी आज्ञाओं को मैं शिरोधार्य करूंगा। आप चाहे इसे अनुरोध ही क्यों न कहें पर मैं इसे आपका आदेश ही समझूंगा। मेरे अच्छे से अच्छे संशोधनों के सम्बन्ध में जो अनुभव मुझे मिला है उसके आधार पर मुझे इतना कहने का तो हक है ही। किन्तु यदि आप अन्यथा समझते है तो मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करूंगा और अपना आसन ग्रहण कर लूंगा।

(संशोधन 602 और 603 नहीं पेश हुए।)

***उपाध्यक्षः** नं. 604, 605, 607 तथा 608 के संशोधन एक से हैं और इनमें से नं. 604 और 607 को पेश करने की मैं अनुमति देता हूं।

***उपाध्यक्षः** नं. 607—प्रो. के.टी. शाह!

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) के उप-खण्ड (बी) में 'or throwing open Hindus' (हिन्दुओं...) शब्दों के बाद 'जैनों, बौद्धों या क्रिश्चियनों, शब्द जोड़े जायें।"

मेरा संशोधन स्वीकृत होने पर खण्ड का रूप यह होगा :

".....for social welfare and reform or for throwing open Hindu, Jain, Buddhist or Christian religious institutions of a public character to any class or section of Hindus."

(जो सामाजिक कल्याण अथवा सुधार के लिए हो अथवा हिन्दुओं, जैनों, बौद्धों और ईसाइयों की सार्वजनिक धर्म-संस्थाओं को हिन्दुओं के किसी वर्ग अथवा विभाग के लिए खोलती हो।)

मुझे कोई कारण नहीं दिखाई देता, श्रीमान्, कि यह अधिकार या दायित्व केवल हिन्दुओं की ही धार्मिक संस्थाओं के खोलने तक क्यों सीमित रखा जाये। मैं समझता हूं कि इस खंड का अभिप्राय अच्छी तरह सिद्ध होगा अगर इस खंड को और विस्तृत रूप दे दिया जाये और इसे देश के उन सभी प्रमुख मतों, धर्मों के लिए लागू कर दिया जाये जिनकी धार्मिक संस्थाएं जो कम या बेशी अपने ही मतानुयायियों तक सीमित हैं और इस कारण से जो यह नहीं चाहते हैं कि धार्मिक संस्थाओं को सभी नागरिकों के लिए खोलने का आदेश देने वाले इस खंड को विधान में स्थान देकर उनकी धार्मिक स्वतंत्रता या पार्थक्य को दूर किया जाये।

मैं ऐसा समझता हूं, श्रीमान्, कि जब विधान में धार्मिक स्वतंत्रता की प्रत्याभूति दी गई है और इसे एक मूलाधिकार माना गया है तो इससे इस बात की सम्भावना पैदा होती है कि सभी धार्मिक संस्थायें सभी सम्प्रदाय के अनुयायियों के लिए खुल जायेंगी और वहां सभी प्रवेश पा सकेंगे। यह सम्भावना हमारे लिए एक बहुत

[प्रो. के.टी. शाह]

ही शुभ लक्षण है और इससे इस देश के विभिन्न मतानुयायियों में परस्पर ऐक्य और भ्रातृ भाव बढ़ेगा। इसलिए मेरा ख्याल है, श्रीमान्, कि इस संशोधन को तो उन लोगों की स्वीकृति अवश्य ही प्राप्त हो जायेगी जिन्होंने इस खण्ड को विधान में रखा है।

(संशोधन नं. 606 और 608 नहीं पेश हुए)

*__श्रीमती जी. दुर्गाबाई__ (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं निम्नलिखित संशोधन को प्रस्तावित करती हूं:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) के उप-खण्ड (बी) में 'any class or section' (किसी वर्ग अथवा विभाग) शब्दों के स्थान पर 'all classes and sections' (सभी वर्ग या विभाग) शब्द रखे जायें।"

अगर मेरा संशोधन स्वीकृत हो जाता है तो खण्ड का रूप यह होगा:

"That nothing in this article shall affect the operation of any existing law or preclude the State from making any law for social welfare and reform or for throwing open Hindu religious institutions of a public character to all classes and sections of Hindus."

(इस अनुच्छेद की किसी बात से किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव अथवा किसी विधि के बनाने में राज्य को अवरोध न होगा जो सामाजिक कल्याण अथवा सुधार के लिए हो अथवा हिन्दुओं की सार्वजनिक धर्म-संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गों या विभागों के लिए खोलती हो।)

उपाध्यक्ष महोदय, मेरे संशोधन का उद्देश्य है इस खण्ड के दायरे को और बढ़ाना। खण्ड का अभी जो रूप है वह यह है:

"...for social welfare and reform or for throwing open Hindu religious institutions of a public character to any class or section of Hindus."

(जो सामाजिक कल्याण अथवा सुधार के लिए हो अथवा हिन्दुओं की सार्वजनिक धर्म-संस्थाओं को हिन्दुओं के किसी वर्ग या विभाग के लिए खोलती हो।)

मेरी राय में खण्ड का जो वर्तमान रूप है उसमें उसका दायरा बड़ा सीमित है। मेरे संशोधन का अभिप्राय यह है कि इस खण्ड से और अधिक लोगों को फायदा पहुंच सके और यह सभी वर्गों और विभागों के लिए लागू हो सके।

यद्यपि हममें यह सामर्थ्य नहीं है कि हम बड़े-बड़े सुधार कर सकें या इस दिशा में ही व्यापक सुधार कर सकें किन्तु मैं यह महसूस करती हूं कि हमें यहां हिन्दुओं के एक वर्ग या दूसरे वर्ग में कोई अन्तर न करना चाहिए।

हिन्दुओं की सार्वजनिक धर्म-संस्थाओं के सम्बन्ध में हम सभी को मालूम है कि ये संस्थाएं कई तरह की हैं। उदाहरण के लिए मन्दिर, धार्मिक मठ, शिक्षण-संस्थाएं या पाठशालाएं हैं जिनका कि संचालन इन्हीं संस्थाओं द्वारा होता है या जो इन्हीं संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। जहां तक मन्दिरों का सम्बंध है, हम सभी जानते हैं कि सभी प्रांतों ने और कई रियासतों ने मन्दिरों को सभी हिन्दुओं के लिए खोलने का कानून पास कर दिया है। किन्तु मुझे निश्चित रूप से यह भी मालूम है कि अन्य प्रकार की धार्मिक संस्थाओं के सम्बन्ध में जैसे कि पाठशालाएं तथा शिक्षण-संस्थायें या अन्य संस्थाएं हैं जिनका संचालन और प्रबंध इन्हीं धार्मिक संस्थाओं द्वारा होता है—अभी भी कुछ विभेद ज़रूर बरता जाता है। जैसा कि मैं बता चुकी हूं मेरा उद्देश्य यह है कि इस खण्ड का दायरा और विस्तृत हो जाये और हिन्दुओं के सभी वर्ग और विभाग इसके अन्दर आ जायें। इस संशोधन के स्वीकृत होने से यह उद्देश्य पूरा हो जायेगा। जैसा कि मैं बता चुकी हूं, हिन्दुओं के एक और दूसरे वर्ग में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए।

मेरा ख्याल है कि मेरे इन चन्द शब्दों से संशोधन का उद्देश्य अब स्पष्ट हो गया होगा। मैं सभा से सिफारिश करती हूं कि वह इसे स्वीकार करे। इन शब्दों के साथ मैं उसे उपस्थित करती हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 610 को उपस्थित करने की अनुमति नहीं दी जाती है क्योंकि निर्देशात्मक सिद्धान्तों में कुछ ऐसी ही बातों का समावेश है जिनके अन्दर यह आ जाता है।

(संशोधन नं. 611 नहीं पेश किया गया।)

नं. 612 मि. मुहम्मद इस्माइल तथा मि. पोकर साहब के संयुक्त नामों से आया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): एक नियम सम्बंधी आपत्ति है, श्रीमान्, यह संशोधन नं. 612 अनुच्छेद 19 के सिलसिले में अप्रासंगिक है।

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

संशोधन में वैयक्तिक कानून का उल्लेख किया गया है किन्तु यहां हम केवल धर्म-सम्बन्धी स्वतंत्रता के संबंध में विचार कर रहे हैं। इस संशोधन के अन्तर्गत आने वाला मसला पहले के एक अनुच्छेद में आ चुका है और निर्देशात्मक सिद्धान्तों में भी आया है।

***श्री मुहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि मेरा यह संशोधन इस अनुच्छेद के अधीन बिल्कुल नियमित है क्योंकि यह अनुच्छेद नागरिकों की धार्मिक स्वतंत्रता की चर्चा करता है और वैयक्तिक कानून धर्म पर आधृत है। मैं पहले एक अवसर पर यह स्पष्ट कर चुका हूं कि वैयक्तिक कानून (personal law) उन लोगों के धर्म का ही एक अंग है जो वैयक्तिक कानून को मानते हैं। मैं तो केवल इस बात को स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद से किसी के लिये वैयक्तिक कानून मानने पर रुकावट न होगी। मैं इसे निषेधात्मक रूप में रख रहा हूं, क्योंकि अनुच्छेद में कहा गया है कि:

> "इस अनुच्छेद की किसी बात से किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव अथवा किसी विधि के बनाने में राज्य को अवरोध न होगा जो–
>
> (क) धार्मिक आचरण से सम्बद्ध किसी आर्थिक, वैत्तिक, राजनैतिक या अन्य किसी प्रकार की ऐहिक क्रियाओं का आनियमन, अथवा आयन्त्रण करती हो।"

वैयक्तिक कानून का व्यवहार में लाना भी धार्मिक आचरण से सम्बन्ध रखने वाली ऐहिक क्रियाओं में शामिल किया जा सकता है। इसलिए मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जहां तक वैयक्तिक कानून का सम्बन्ध है, इस अनुच्छेद से उनके बरतने पर कोई प्रभाव न पड़ेगा। मेरा यही कहना है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** विधान में एक निर्देश रखा गया है जिसके द्वारा राज्य से यह कहा गया है कि वह एक-सी व्यवहार-विधि-संहिता बनाने का प्रयत्न करे और यह संशोधन इस निर्देश के बिल्कुल विरुद्ध है। इस कारण भी मैं समझता हूं कि इस प्रसंग में यह सर्वथा अनुपयुक्त है।

***उपाध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर, क्या आप इस सम्बन्ध में कुछ कहना पसन्द करेंगे? श्री सन्तानम् ने जो कारण पेश किए हैं उनको देखते हुए यह संशोधन नियमित है या नहीं इस सम्बन्ध में आपकी सम्मति मेरे लिए मूल्यवान होगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं अभी श्री रंगा से एक दूसरे संशोधन के सम्बन्ध में विचार-विमर्श कर रहा था और इसलिए...

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** वैयक्तिक कानून के सम्बन्ध में जो संशोधन नं. 612 है उसे पेश करने की अनुमति मांगी जा रही है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इस बात पर तो विचार किया जा चुका है। जब हम निर्देशात्मक सिद्धान्तों पर वादानुवाद कर रहे थे और फिर अभी उस दिन जब हम एक दूसरे संशोधन पर बहस कर रहे थे तो इस प्रश्न को हमने निपटा दिया था।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहबः** पहले अवसर पर मैंने इस संशोधन को अनिषेधात्मक रूप में उपस्थित किया था और आज मैं इसे निषेधात्मक रूप में रख रहा हूं। जहां तक निर्देशात्मक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, उनमें तो उन प्रयासों का उल्लेख किया गया है जिसे शासन को एक-सी व्यवहार-संहिता निर्माण करने में करना होगा। मान लीजिए उन्होंने वैयक्तिक कानून को नहीं रखा। पर इसका मतलब यह नहीं कि देश में एक-सी व्यवहार-संहिता बन ही नहीं सकती। खैर, व्यवहार-संहिता चाहे जैसी बने। यहां मैं यह कहता हूं कि इस अनुच्छेद के अधीन नागरिकों को धर्म के सम्बन्ध में कतिपय अधिकार प्राप्त हैं और वैयक्तिक कानून को इसमें नहीं लाया जायेगा। इस अनुच्छेद के प्रभाव में आने पर वैयक्तिक कानून के प्रश्न पर उसका कोई प्रभाव न पड़ेगा। मेरा यही कहना है।

***उपाध्यक्षः** वैधानिक दृष्टि से मैं सही हूं या गलत यह तो नहीं जानता किन्तु हमारे मुस्लिम बन्धु एक विचित्र परिस्थिति में पड़ गए हैं जिसे देखते हुए मैं मि. मुहम्मद इस्माइल को अनुमति देता हूं कि वह अपनी बात कहें और सभा के सामने अपना दृष्टिकोण पेश करें।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहबः** अनेकानेक धन्यवाद, श्रीमान्, कि इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर सभा के सामने अपना दृष्टिकोण उपस्थित करने का आपने मुझे पुनः अवसर प्रदान किया।

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 19 में खण्ड (2) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड रखा जाये:

'(3) Nothing in clause (2) of this article shall affect the right of any citizen to follow the personal law of the group or the community to which he belongs or professes to belong.' "

[(3) इस अनुच्छेद के खण्ड (2) की किसी बात से किसी नागरिक के अपने वर्ग या समुदाय के वैयक्तिक कानून को मानने के अधिकार पर कोई प्रभाव न पड़ेगा।]

मैंने जिस प्रावधान का सुझाव दिया है वह केवल इस बात को स्वीकार करता है कि अपने परिवारों या सम्प्रदायों के दायरे में लोगों के अपने कुल या जाति धर्म मानने का चिरकाल से अधिकार प्राप्त है। इससे दूसरे सम्प्रदाय के लोगों पर किसी भी तरह कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। दूसरे सम्प्रदायों के सदस्यों को अपने जाति अथवा कुल धर्म को मानने का जो अधिकार है उस पर इस प्रावधान से कोई आघात नहीं पड़ता है। इससे यह आशय नहीं निकलता है कि अन्य सम्प्रदाय के लोग अपने इस अधिकार के सम्बन्ध में कोई त्याग करें। इस प्रावधान का सम्बन्ध तो एक सम्प्रदाय के कतिपय परिवारों में प्रचलित प्रथा मात्र से है। यह तो केवल पारिवारिक प्रथा की बात है और कुल अथवा जाति धर्म तो केवल ऐसे मामलों में लागू होगा जैसे कि उत्तराधिकार, पैतृक-सम्पत्ति अथवा ट्रस्ट या वसीयतनामे के द्वारा सम्पत्ति की व्यवस्था। कुल या जाति धर्म के अधीन हमारा केवल ऐसी ही बातों से सरोकार है। दूसरे मामलों में जैसे साक्ष्य, सम्पत्ति का हस्तान्तरण, मुहायदा या अन्य इस प्रकार के असंख्य प्रश्न हैं, इनमें व्यवहार-संहिता के अनुसार ही चलना पड़ेगा और वही देश के प्रत्येक नागरिक के लिए लागू होगा चाहे वह किसी भी फिरके के क्यों न हों। अत: इस प्रावधान से, उस एकरूपता में कोई कमी न आयेगी जिसे राज्य व्यवहार-विधि सम्बन्धी मामलों में स्थापित करने की कोशिश करेगा।

कुल धर्म को मानने की प्रथा लोगों में चिरकाल से चली आ रही है। इस संशोधन के ज़रिये मैं इतना ही चाहता हूं कि इस चिरंतन प्रथा को अब कोई बाधा

न पहुंचाई जाये। मैं केवल यही चाहता हूं कि यह प्रथा जो लोगों में एक ज़माने से चलती आ रही है वह ज़ारी रहे, पहले एक मौके पर डा. अम्बेडकर ने कुछ ऐसे कानूनों का जिक्र किया था जिनका सम्बन्ध मुसलमानों के जाति धर्म, वक्फ, शरियत और उनके विवाह सम्बन्धी कानून से है। उस समय मुसलमानों के जाति धर्म के न्यूनन करने का कोई सवाल ही नहीं उठाया गया था। उसको नया रूप देने की बात भी नहीं हुई थी और जो कुछ किया गया था वह यही था कि मुसलमानों के जाति धर्म की व्याख्या की गई थी और यह स्पष्ट कर दिया गया था कि ये कानून केवल मुसलमानों के लिए लागू होंगे। उस समय इनमें कोई संशोधन नहीं किया गया था। अत: ऐसी कोई बात करने के लिए, जिससे लोगों के कुल या जाति धर्म का खण्डन होता हो, इन कानूनों को नज़ीर के रूप में यहां नहीं पेश किया जा सकता। इस संशोधन के ज़रिये मैं जो कुछ चाहता हूं, वह यही है कि सभा को यह बात मान लेनी चाहिए कि यह तो ठीक है कि राज्य धर्म सम्बन्धी ऐहिक क्रियाओं के बारे में जो चाहे कर सकता है पर इसमें कुल या जाति धर्म को नहीं शामिल किया जायेगा और इससे कुल या जाति धर्म पर कोई प्रभाव न पड़ेगा।

अपनी आम राय ज़ाहिर करते हुए इस अनुच्छेद के बारे में मैं चन्द शब्द कहना चाहता हूं। मेरे मित्र मि. तजम्मुल हुसैन ने कुछ संशोधन—नं. 572 और 588—यहां रखे थे। इन संशोधनों को उन्होंने गम्भीर होकर रखा था या यों ही केवल पेश भी कर दिया था, यह बात, सच तो यह है कि न मुझे उस समय मालूम थी और न अभी मालूम है। अपने प्रस्तावों के पक्ष में उन्होंने जो बातें कहीं उन्हें भी मैं समझ नहीं सका। मैंने उनकी बातों को कोई महत्त्व नहीं दिया और मैं कह सकता हूं कि सभा ने भी उनकी बातों को महत्त्व नहीं दिया। इसलिए उनकी बातों का जवाब देकर मैं सभा का समय बर्बाद नहीं करना चाहता।

अपने धर्म को मानने का, उस पर आचरण करने का और उसका प्रचार करने का अधिकार मानव समाज को प्रारम्भ से ही प्राप्त है और न सिर्फ इस देश में बल्कि संसार भर में यह एक ऐसा अधिकार माना गया है जिसमें कभी परिवर्तन नहीं किया जा सकता। मैं समझता हूं कि ऐसी कोई बात न होनी चाहिए जिससे मानव के इस अधिकार पर अहितकर प्रभाव पड़ता हो। अनुच्छेद का वह अंश समुचित शब्दों में लिपिबद्ध किया गया है और इसे यों ही रहने देना चाहिए। मेरा यही मत है।

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

एक अन्य माननीय सदस्य ने झगड़ों या उपद्रवों का उल्लेख किया है जो धर्म-प्रचार के फलस्वरूप उत्पन्न हुए हैं। मैं कहूंगा कि ये झगड़े धर्म का प्रचार करने के कारण अथवा कोई धर्म मानने और उस पर आचरण करने के कारण नहीं उत्पन्न हुए। ये झगड़े तो धर्म को ठीक-ठीक न समझने के कारण ही पैदा हुए। मेरा अपना मत तो यह है, और मैं कहूंगा कि यही सही मत है, कि अगर लोग अपने-अपने धर्मों को ठीक-ठीक समझें और उन पर ठीक-ठीक और उचित रूप से आचरण करें तो कोई झगड़ा ही कभी न खड़ा होगा। चूंकि कुछ कारणों से पहले झगड़े खड़े हुए थे इसलिए मानव के धर्माचरण या धर्म-प्रचार सम्बन्धी अधिकार को ही कम कर दिया जाये, यह तो कोई तर्क-संगत बात नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** अब इस खण्ड पर बहस की जा सकती है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि साधारणत: इस अनुच्छेद के क्या प्रभाव पड़ेंगे इसे बताने के लिए मुझे चन्द शब्द यहां कहने चाहियें ताकि मेरे कई माननीय मित्रों के दिमाग में जो गलतफहमी पैदा हो गई है वह दूर हो जाये।

मसौदे में रखे हुए इस अनुच्छेद 19 से सभी लोगों को यह अधिकार मिलता है कि वह जिस धर्म को पसन्द करें उसको मानें, उस पर आचरण करें और उसका प्रचार करें। किन्तु इस अधिकार को ऐसे कतिपय प्रतिबंधों द्वारा सीमित कर दिया गया जिन्हें लोक-व्यवस्था, लोकशील तथा लोक-स्वास्थ्य के हित में और विधान के अन्य प्रावधानों के अधीन रहते हुए आरोपित करने की राज्य को स्वतंत्रता होगी। मेरे कई मित्रों ने यह तर्क पेश किया है कि इस अधिकार को विधान में स्थान ही न देना चाहिए क्योंकि हम बार-बार यह घोषणा कर चुके हैं कि हमारा राज्य असाम्प्रदायिक राज्य होगा और इसलिए धर्म-सम्बन्धी आचरण को मूलाधिकार का रूप नहीं देना चाहिए। फिर आगे चल कर लोगों ने यह तर्क भी पेश किया है कि किसी विशेष धर्म या मत को मानने या उसका प्रचार करने का जो अधिकार दिया गया है इससे हर तरह के झगड़ों और बखेड़ों का रास्ता खुल जाता है और अन्ततोगत्वा इससे राज्य की अपनी स्वाभाविक गति ही रुक जायगी। बेहिचक, मैं यहां यह कहूंगा कि असाम्प्रदायिक राज्य के सम्बन्ध में जो लोगों ने

ऐसी धारणा बना रखी है वह बिल्कुल गलत है। जैसा कि मैं समझता हूं। असाम्प्रदायिक राज्य से यह मतलब है कि धर्म या सम्प्रदाय के आधार पर राज्य किसी के भी विरुद्ध, चाहे वह जिस धर्म को मानता हो, कोई भेदभाव न बरतेगा। इसका मूल मतलब यह है कि राज्य की ओर से किसी भी खास धर्म को कोई प्रश्रय न मिलेगा। अन्य धर्मों के मुकाबले में या उनकी उपेक्षा करके, राज्य किसी खास धर्म को न स्थापित करेगा, न प्रश्रय देगा, न सहायता देगा। राज्य में किसी भी नागरिक के पक्ष या विरोध में, इस आधार पर कि वह किसी विशेष धर्म को मानता है, न तो कोई रियायत की जायेगी और न कोई भेदभाव बरता जायेगा। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि राज्य सम्बंधी कामों में कभी इस बात पर कोई भी ध्यान नहीं दिया जायेगा कि नागरिक किसी धर्म विशेष को मानते हैं या नहीं। मेरी समझ से असाम्प्रदायिक राज्य का यही मूल मतलब है। पर साथ ही हमें सदा यही कोशिश करनी चाहिए कि इस देश में लोगों को न केवल अपने धर्म को मानने का ही बल्कि उसके प्रचार करने का भी पूरा अधिकार प्राप्त हो। उपाध्यक्ष महोदय, हमारा यह गौरवशाली देश व्यर्थ है अगर यह धर्म तथा आयात्म सम्बन्धी इन ऊंचे विचारों और आदर्शों को अपने सामने नहीं रखता। भारत को आज कोई भी सम्मानप्रद स्थान न मिलता यदि उसने यह आध्यात्मिक श्रेष्ठता न प्राप्त की होती जो कि उसने अपने वैभवपूर्ण अतीत में प्राप्त की थी। इसलिए, मेरे विचार से यह ठीक ही किया गया है कि विधान में यह बात न केवल अधिकार के रूप में बल्कि मूलाधिकार के रूप में रख दी गई है। इस मूलाधिकार पर अमल करने में इस देश के हर सम्प्रदाय को, चाहे वह जिस धर्म को भी मानता हो, इस बात का समान अधिकार होगा, समान सुविधा रहेगी कि इस सम्बंध में रखे हुए प्रतिबंधों के अधीन रहते हुए वह अपने धर्म के अनुसार जो चाहे करे।

स्वामी विवेकान्नद जी कहा करते थे कि भारतवर्ष को आध्यात्मरूपी जो पैतृक सम्पत्ति मिली है उसके कारण ही उसको समस्त विश्व में आदर और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। पाश्चात्य जगत को भौतिकतापरायण सभ्यता का समस्त बल प्राप्त है; विज्ञान निधि पाकर वह परम सम्पन्न है। आज विश्व में उसे सर्वप्रमुख स्थान मिला हुआ है, किन्तु फिर भी वह आज दरिद्र है क्योंकि उसका आध्यात्मिक कोष सर्वथा शून्य है और यहीं आकर भारतवर्ष की आवश्यकता पड़ती है। भारतवर्ष को अपनी इस अपूर्व आध्यात्मिक निधि को, अपने संदेश को

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

पश्चिमी दुनिया को भेजना होगा। अगर हमें यह काम करना है, अगर हमें विश्व को शिक्षित बनाना है, और अगर हमें उन संदेहों को, मिथ्या धारणाओं को और उस गहन तिमिर को दूर करना है जो भारतवर्ष की सभ्यता और उसकी परम्परा के सम्बंध में सर्वत्र फैले हुए हैं तो यह अधिकार—इस भारतीय धर्म को मानने और उसका प्रचार करने का अधिकार—हमें देना ही होगा।

इस अनुच्छेद के सम्बंध में दी हुई कई वक्तृताओं को मैंने बड़े ध्यान से सुना है। धर्म-प्रचार सम्बंधी अधिकार पर आपत्ति की गई है और कहा गया है कि इसे विधान से हटा देना चाहिए। एक माननीय सदस्य ने तो यहां तक कह डाला कि अगर हम यह अधिकार देते हैं तो इसका फल यह होगा कि अभी हाल में हम लोगों ने जो विशाल नरमेध देखा है उसकी पुनरावृत्ति निकट भविष्य में ही, और ज़ोरों के साथ हो जायेगी। अपने मित्र की इस निराशावादिता से मैं रंचमात्र भी सहमत नहीं हूं। स्पष्ट है कि माननीय मित्र ने उन प्रतिबंधों पर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया है जो इस अनुच्छेद में रखे गये हैं। कतिपय अवसरों पर राज्य को हस्तक्षेप करने का इसमें जो अधिकार दिया गया है उससे उस भयंकर रक्तपात की कोई सम्भावना नहीं रह जाती है जिसका दृश्य अभी हाल में हमें देखने को मिला था।

यह भी कहा गया है—और मुझे इसका बड़ा दु:ख है कि यह बात एक ऐसे सदस्य ने कही है जिसकी खासी प्रतिष्ठा है, खासा स्थान है—कि ईसाई सम्प्रदाय ने औरों को ईसाई बनाने के जोश में कभी-कभी सीमोल्लंघन कर दिया है और ऐसे काम किये हैं जिनका औचित्य कभी भी नहीं प्रमाणित किया जा सकता है। अपने मन्तव्य के समर्थन में आपने बम्बई की एक घटना का उल्लेख किया।

***उपाध्यक्ष:** शायद आप भूल रहे हैं। जहां तक मुझे याद है किसी खास घटना का यहां उल्लेख नहीं किया गया है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** जो भी हो, मेरा विश्वास है कि उनके दिमाग में यही बात थी। अगर मैंने सुनने में भूल की है तो इसके लिये मैं खेद प्रकट करता हूं। कहना मैं यह चाहता हूं कि अगर हम यही धारणा लेकर जायें तो महान् ईसाई

सम्प्रदाय के साथ बड़ा अन्याय होगा। भारतीय ईसाई-समाज सारे देश में सर्वाधिक शान्त और दु:ख न पहुंचाने वाला वर्ग है। मेरा अपना मत यही है और कभी किसी को मैंने इस मत का विरोध करते हुए नहीं पाया। जहां तक मुझे मालूम है, भारतीय ईसाई-समाज शिक्षा प्रदान करने में, चिकित्सा साहाय्य में, सफाई में, लोक-स्वास्थ्य को समुन्नत बनाने में, तथा अन्य ऐसे ही कामों में हर साल प्राय: दो करोड़ रुपये खर्च करता है। उनकी कितनी ही शिक्षण-संस्थाएं हैं। अनेक औषधालय और अस्पताल हैं जिनका वे ही कुशलता और सफलतापूर्वक संचालन कर रहे हैं। उनकी ये संस्थाए सभी सम्प्रदायों और वर्गों की सेवा कर रही हैं। अगर 2 करोड़ की यह लम्बी रकम वे लोग, लोगों को ईसाई बनाने के काम में लाते तो आज तो उनकी संख्या केवल 700 लाख है वह कहीं अधिक बढ़ गई होती।

***उपाध्यक्ष:** आप भूल रहे हैं। उनकी संख्या 170 लाख है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** भूल के लिए क्षमाप्रार्थी हूं। 170 लाख से उनकी संख्या 700 लाख पहुंच गई होती। किन्तु मैं जो बात कह रहा हूं, उपाध्यक्ष महोदय, वह संख्या के सम्बन्ध में नहीं है। मेरे कहने का मूल मतलब यह है कि भारतीय ईसाई-समाज ने ईसाई बनाने का काम उस तेजी और उत्साह से नहीं किया है जैसा कि यहां कुछ मित्रों ने कहा है। मुझे इस गलतफहमी को दूर करने की बड़ी चिन्ता है। मैं ऐसा अनुभव करता हूं, श्रीमान्, कि भारत के हर सम्प्रदाय को अपने धर्म-प्रचार का अधिकार होना चाहिए। ऐहिक या साम्प्रदायिक राज्य में भी धर्म की आवश्यकता है, ऐसा मेरा विश्वास है। हम एक भयंकर अधार्मिक युग से होकर गुजर रहे हैं। आखिर आज समाज के हर वर्ग में इतना पाप, इतना भ्रष्टाचार क्यों फैला हुआ है? इसका कारण यह है कि हम उन बातों के महत्त्व को भूल गये है जिनका उपदेश हमारे पूर्व पुरुषों ने हमको दिया था। आज हम अपनी इन गौरवशालिनी परम्पराओं की रंचमात्र भी चिन्ता नहीं करते और इसका परिणाम यह है कि हर आदमी अपनी ही मनचाही करता है जिससे न्याय, सद्बुद्धि और ईमानदारी को आज कहीं ठिकाना नहीं रह गया है। मूल्यांकन-ज्ञान को हमने सदा ही प्रिय समझा है और यदि इस ज्ञान को हम समाज में पुन: पूर्ववत् प्रतिष्ठित करना चाहते हैं तो इसके लिए यह परमावश्यक है कि हम जिस बात में विश्वास करते हैं, जिसको हम ठीक समझते हैं, उसका हम प्रचार कर सकें। धर्म-प्रचार

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

का यह मतलब नहीं है कि शक्ति के बल पर, तलवार के बल पर, धमकी देकर ही दूसरों को अपने धर्म में लाया जायेगा। अपने धर्म के महत्त्व को समझा कर, उसकी व्याख्या करके भी आप दूसरों को अपने धर्म के प्रति आस्थावान बना सकते हैं और इस पर कोई रुकावट क्यों लगाई जाये? यदि ऐसा करके अपने धर्म के प्रति किसी को आकृष्ट किया जाये तो इसमें क्या हानि है? मेरा अपना यही ख्याल है कि किसी धर्म को मानने का, उस पर आचरण करने का उसका प्रचार करने का जो अधिकार—मूलाधिकार—विधान में रखा गया है उसका मूलभूत सार यही है। इसलिए मेरी राय में इस अधिकार को विधान से हटाना नहीं चाहिए। यदि आज हमारे देश में लोग अपने-अपने धर्मों के सिद्धान्तों का, उनकी शिक्षाओं का जनता में ज्ञान करायें, उनको समझायें तो भिन्न-भिन्न धर्मों के सम्बन्ध में जो गलतफहमी आज लोगों में वर्तमान है वह बहुत कुछ दूर हो जायेगी और सम्भवत: हम एक ऐसी अवस्था में पहुंच जायेंगे जब कि हम परस्पर परामर्श द्वारा भविष्य में उन सब तरह के झगड़ों को उठने से रोक देंगे जो धर्म के नाम पर उठा करते हैं। इस दृष्टि से मेरा यह विश्वास है कि 'propogate' (प्रचार) शब्द यहां रहना चाहिये; इसे हटाना न चाहिए।

इस सम्बन्ध में मैं सभा को यह याद दिला दूं कि एडवाइज़री कौंसिल (परामर्शदात्र-समिति) में इन सभी मसलों पर विचार किया गया था और तब उसके बाद वहां यह शब्द रखना तय हुआ था। मुझे तो कोई कारण नहीं दिखाई देता, श्रीमान्, कि क्यों अब हम उस निर्णय से हट जायें। इसलिए इस खण्ड का मैं हृदय से समर्थन करता हूं और मेरा मत है कि माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर तथा श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधनों के साथ इस खण्ड को हमें विधान में स्थान देना चाहिए।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, आदरणीय मित्र पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र की ललित एवं विशद वक्तृता के पश्चात् मैंने यह सोचा कि इस बहस-मुबाहिसे में मेरा अब भाग लेना व्यर्थ है। मैं अपने मित्र के इस कथन से पूर्णत: सहमत हूं कि 'propogate' शब्द यहां रहना चाहिये। आखिर हमें इससे यह नहीं समझना चाहिए कि यह केवल किसी सम्प्रदाय विशेष

के धर्म के सम्बन्ध में रखा गया है। साधारणत: लोग यही समझते हैं 'propagate' शब्द केवल ईसाई सम्प्रदाय के लिए ही रखा गया है। किन्तु मैं समझता हूं कि वर्तमान परिस्थिति में यह बहुत ही ज़रूरी है कि हम अपने देशवासियों को धार्मिक सिद्धान्तों और उपदेशों की शिक्षा दें। मेरा अपना अनुभव तो यही है कि धार्मिक विचारों के प्रचार के लिए जो सीमा निर्धारित की गई है उसका अतिक्रमण ईसाई सम्प्रदाय ने कभी नहीं किया है। कुल मिलाकर यही कहना होगा कि ईसाइयों ने इस सम्बन्ध में अच्छी तरह ही काम किया है। दूसरे सम्प्रदायों को उनका अनुकरण करते हुए अपने मत का प्रचार करना चाहिए। आमतौर पर यही समझा जाता है कि यह शब्द केवल एक विशेष धर्म अर्थात् ईसाई धर्म के लिए आता है। इस खण्ड को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि यह अधिकार सभी सम्प्रदायों के मतों के लिए है। इस बात को सभी अच्छी तरह जानते हैं कि सभी धर्मों का एक ही उद्देश्य है और जनता अगर धर्म का सही अर्थ समझे तो उसकी समझ में यह बात आ जायेगी कि सभी धर्म एक समान हैं और सबों की एक-सी ही शिक्षाएं हैं। सभी धर्मों में ईश्वर की ही महिमा बताई गई है। हां, यह ज़रूरी है कि सबमें उसके अलग-अलग नाम दिये गये हैं। यह शब्द यहां होना ही चाहिए और धर्म-प्रचार का अधिकार सबको मिलना ही चाहिए। भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय अपना प्रचार कार्य कर सकते हैं। वह अपने धर्म का, उसके सिद्धान्तों का प्रचार कर सकते हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि अगर कोई व्यक्ति अपने धर्म का प्रचार करेगा तो उसे दूसरे धर्म की निन्दा करनी ही होगी। किसी भी धर्म का यह सिद्धान्त नहीं है कि दूसरे धर्म की निन्दा की जाये। अत: धर्म-प्रचार का अधिकार परमावश्यक है।

और फिर यह बात भी नहीं है कि हमारे राज्य का जो असाम्प्रदायिक या ऐहिक स्वरूप होगा उससे इस अधिकार का मेल नहीं खाता है। आखिर राज्य धर्म में तो दखल देगा नहीं। धर्म को तो लोग मानेंगे ही। धर्म तो एक वैयक्तिक विषय है। राज्य किसी एक या दूसरे धर्म के साथ पक्षपात नहीं करता। वह तो सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता बरतता है। अपने अतीतकालीन इतिहास को देखते हुए मुझे इसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं है कि धर्म के कारण यहां कोई झगड़ा न खड़ा होगा। अभी कल ही हमारे माननीय गवर्नर जनरल श्री राजाजी इस विषय पर बोले हैं। हमारे लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि हम सहिष्णुता दिखायें। सब धर्मों का यही सार है। यह कहना कि धर्मपरायण व्यक्ति अपने धर्म का, अपने मत का प्रचार न करें, एक ऐसी बात है जिससे हमारी असहिष्णुता प्रकट होती है।

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

इस सम्बन्ध में, सभा को मैं यह भी याद दिला दूं कि अल्पसंख्यक-समिति (Minority Committee) में जब इस विषय पर विचार किया गया था तो वह इसी निष्कर्ष पर पहुंची थी कि अन्य भारतीय सम्प्रदायों के साथ महान् ईसाई समाज को भी, जो अपने को यहां के आम समुदाय में मिला देने को तैयार है, जो अपने लिए आरक्षण अथवा विशेषाधिकार नहीं मांगता है, अपने धर्म के प्रचार का अधिकार मिलना चाहिए।

इस अवसर पर मैं यह उल्लेख कर दूं, उपाध्यक्ष महोदय, कि स्वयं आप भी मद्रास और बम्बई की असेम्बली या विधान-मण्डलों में स्थान-सम्बन्धी आरक्षण छोड़ने पर तैयार हैं और ईसाई सम्प्रदाय को आरक्षण देने वाले खण्ड को हटाने के लिए आपने एक संशोधन की सूचना भी दी है। यही रही है ईसाई समाज की गतिविधि उसका दृष्टिकोण भी पूर्णतः राष्ट्रीय रहा है। इसलिए बहुसंख्यक सम्प्रदाय को सौजन्यपूर्वक यह अधिकार अल्पसंख्यक सम्प्रदायों को देना चाहिए और अपने लिए भी रखना चाहिए। मैं समझता हूं कि इस सम्बन्ध में कुछ विश्वास के साथ मैं यह कह सकता हूं कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय यह अधिकार देने को पूर्णतः प्रस्तुत है। इसलिए शब्द 'propagate' (प्रचार) को यहां रखने के मैं पक्ष में हूं और इसका जोरदार समर्थन करता हूं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद का समर्थन करने के लिए मैं यहां खड़ा हुआ हूं। इस अनुच्छेद को हमें अनुच्छेद 13 के साथ पढ़ना चाहिये। अनुच्छेद 13 के द्वारा भाषण और अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य का तथा पार्षद् और संघ बनाने का अधिकार हमें मिल ही चुका है। इन अधिकारों में धर्म-सम्बन्धी भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा धर्म-सम्बन्धी पार्षद् या संघ बनाने के अधिकार भी शामिल हैं। इसलिये अनुच्छेद 19 का धर्म-सम्बन्धी स्वतन्त्रता से उतना सम्बन्ध नहीं है, जितना कि मैं कहूंगा, धर्म-सम्बन्धी सहिष्णुता से है। इन शब्दों का कि—"सब व्यक्तियों को विश्वास-स्वातन्त्र्य का तथा धर्म को अबाधरूपेण मानने और प्रचार करने का समान अधिकार होगा" कोई विशेष महत्त्व नहीं है। वस्तुतः महत्त्व है यहां इन प्रतिबन्धमूलक शब्दों का जिससे कि

खंड शुरू होता है अर्थात् इन शब्दों का "लोक-व्यवस्था, शील तथा स्वास्थ्य...के अधीन रहते हुए।"

अब तक इस देश में यही समझा जाता था कि धर्म के नाम से जो बात भी सम्बन्ध रखती हैं उस पर अमल करने का, उसका प्रचार करने का अबाध अधिकार होना चाहिये। किन्तु अब हम इस नये विधान में इस अधिकार पर यह प्रतिबन्ध लगा रहे हैं कि सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार तथा स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए ही हम इस पर अमल कर सकते हैं। इस प्रतिबन्ध के क्या-क्या प्रभाव पड़ेंगे इसे जानना आसान नहीं है। स्वाभाविक है कि लोगों में ज्यों-ज्यों सामाजिक और नैतिक चेतना बढ़ती जायेगी, इन प्रतिबन्धों की जटिलतायें भी बढ़ती जायेंगी। उदाहरण के लिए मैं बताऊं कि शायद अभी एक दीर्घकाल तक भारतवासियों की समझ में यह बात नहीं आयेगी कि पर्दा प्रथा स्वास्थ्य के लिए अहितकर है। इसी तरह हिन्दू धर्म में और भी कई प्रथायें हैं जिन्हें हमारे भावी समाज की चेतना नैतिकता के प्रतिकूल समझेगी।

यहां 'propagate' शब्द पर काफी बहस-मुबाहिसा हुआ है। आखिर प्रचार क्या है? अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य ही प्रचार है। मैं यह बात बताना चाहूंगा कि 'convert' शब्द यहां नहीं है। इस देश में ईसाई प्रचारकों के कार्यों का यह भी एक अंग था कि ये लोग सामूहिक रूप में लोगों को ईसाई बना लिया करते थे। जनता ने इस पर बड़ी ही आपत्ति की है। जिन लोगों ने विधान का यह मसौदा बनाया है उन्होंने इस बात की बहुत ही कोशिश की है कि किसी को भी धर्म परिवर्तन कराने का अबाध अधिकार न मिल जाये। लोगों को विचार की स्वतन्त्रता दी गई है और अगर कोई आदमी स्वेच्छा से अपने विचार के अनुसार अपना धर्म-परिवर्तन करता है तो ठीक है। इस पर कोई रुकावट नहीं डाली जायेगी। किन्तु अगर कोई सम्प्रदाय धन का अथवा अन्य किसी बात का अनुचित प्रभाव डालकर सामूहिक रूप में लोगों को अपने धर्म में लाता है तो ऐसे कार्य के आनियमन का राज्य को सब प्रकार से अधिकार है। इसलिये मैं आपसे यह कहूंगा कि यह खंड धर्म सम्बन्धी स्वतन्त्रता से उतना सम्बन्ध नहीं रखता जितना कि वस्तुतः सहिष्णुता से रखता है। इसका मूल आशय यह है कि हमें सब के प्रति, चाहे उसका धर्म कुछ भी हो, सहिष्णुता बरतनी चाहिये। हां, यह पाबन्दी ज़रूर

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

है कि सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार तथा स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए ही इस अधिकार का प्रयोग किया जा सकता है।

इसलिए यह कहना होगा कि इस अनुच्छेद को बड़ी सावधानी से भाषाबद्ध किया गया है और इसमें जो अपवाद या प्रतिबन्ध रखे गये हैं वे भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितना कि वह अधिकार जो इसके द्वारा दिया गया है। अत: मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद का हार्दिक समर्थन प्रदान करना हमारे लिये परमावश्यक है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): इस परम महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद पर चन्द बातें कहने का जो आपने मुझे अवसर प्रदान किया है इसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूं। यह बात मुझे बड़ी ही अद्‌भुत सी प्रतीत हुई कि धर्म के सम्बन्ध में चार अनुच्छेद रखे गये हैं पर किसी भी अध्याय में कहीं भी ईश्वर का उल्लेख नहीं किया गया है। पहले तो यह बात मुझे बड़ी ही आश्चर्यप्रद मालूम पड़ी किन्तु खूब सावधानी से विचार करने के पश्चात् मैंने यह देखा कि यह हर तरह उचित ही है। जिस तरह दुनिया तरक्की करती जा रही है उससे इस बात में ज़रा भी शक नहीं रह जाता कि एक समय आयेगा जब हम ऐसी स्थिति में आ जायेंगे कि ईश्वर की बिल्कुल ही हमें ज़रूरत न रह जायेगी। हमसे और समुन्नत देशों में यह हो चुका है और इसलिए मेरा विश्वास है कि उसी स्थिति की व्यवस्था के लिए हमने यहां धर्म की चर्चा में जानबूझ कर ईश्वर को स्थान नहीं दिया है।

इससे मुझे एक कहानी की याद आ गई, श्रीमान्, जिसे मैंने छात्र जीवन में सुना था। एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक था जिसने एक राजा को भूमण्डल की शक्ल की एक गोल वस्तु उदाहरणस्वरूप दी। उसमें सम्पूर्ण सौर-जगत दिखाया गया था। राजा को ईश्वर में कुछ विश्वास था और उसने वैज्ञानिक से पूछा कि इसमें ईश्वर कहां है। वैज्ञानिक ने जवाब दिया कि बिना ईश्वर के ही मैंने यह बनाया है। ठीक यही दशा आज हमारी है। हम विधान बना रहे हैं, जिसमें धर्म की चर्चा कर रहे हैं। पर इस समूचे अध्याय में ईश्वर का कहीं उल्लेख नहीं है। यही देख कर तो मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने अपने भाषण में ईश्वर का उल्लेख किया पर साथ ही उन्होंने आध्यात्मिक बातों की भी चर्चा की। "आध्यात्मिक शिक्षा" (spiritual

training) जैसे शब्द कुछ अस्पष्ट हैं और उनके कई अर्थ निकल सकते हैं। 'spirit' शब्द का अर्थ चेम्बर की डिक्शनरी में बताया गया है 'भूत' (ghost)। दुनिया में ऐसे लोग मौजूद हैं जो भगवान् से तो नहीं डरते पर भूत से डरते हैं। क्योंकि भूत विपत्तियां पैदा करते हैं पर ईश्वर ऐसा नहीं करता। 'spiritual training' का अर्थ समझना मेरे लिये कठिन है। मेरे माननीय मित्र श्री कामत का इन शब्दों से क्या अर्थ है? आखिर वह spiritual training (आध्यात्मिक शिक्षा) क्या है जिसका वह उल्लेख कर रहे हैं? क्या उनका मतलब है ऐसी शिक्षा से जिससे भूतों में विश्वास उत्पन्न हो? या वह उनसे बचने की शिक्षा दिलाना चाहते हैं या वह यह शिक्षा दिलाना चाहते हैं कि शाम के वक्त मस्ती पाने के लिये लोग स्प्रिट का सहारा लें? स्प्रिचुअल ट्रेनिंग से उनका क्या मतलब है इसे समझना कठिन है। क्या उनका यह मतलब है कि सभी संस्थाओं में बाइबिल, कुरान और गीता जैसे महान् धर्म ग्रन्थों की शिक्षा दी जाय और राज्य केवल इन ग्रन्थों की शिक्षा देने वाली संस्थाओं को ही सहायता प्रदान करे? मैं नहीं समझता कि उनका यह आशय हैं। इस बात को साफ-साफ बता देना चाहिये।

दूसरी बात है धर्म-सम्बन्धी प्रचार की। किसी भी धर्म के प्रचार के विरुद्ध मुझे कोई आपत्ति नहीं है। अगर कोई आदमी यह समझता है कि उसका धर्म बड़ा ही बुलन्द है तो उसका यह कर्त्तव्य है कि वह औरों से उस धर्म को मानने के लिए कहे। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है, वह खुशी से ऐसा कर सकता है। किन्तु यहां मुझे आपत्ति इस बात को लेकर है कि विधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो तथाकथित धर्म-प्रचारकों को अन्य धर्मों की निन्दा करने से रोकता हो। उदाहरण के लिए मैं कहूंगा, श्रीमान्, कि हम सभी को यह याद है कि अतीत काल में किस प्रकार धर्म प्रचारक लोग देश में घूम-घूम कर कृष्ण भगवान का चरित्र-चित्रण निन्दनीय शब्दों में किया करते थे। हमें यह बात भी याद है और इसे याद करके बड़ा दु:ख होता है कि किस प्रकार ये लोग मूर्ति पूजा की निन्दा किया करते थे और देवताओं को अपशब्द कहा करते थे। नये विधान में हमें यह साफ-साफ बता देना चाहिए कि ऐसी कोई बात नहीं बरदाश्त की जायेगी। धर्म-प्रचार के सिलसिले में यह ज़रूरी नहीं है कि दूसरे धर्मों की निन्दा की जाये और उनके उन पहलुओं को सामने रखा जाये जो किसी धर्म विशेष के खास-खास समर्थकों की राय में सन्तोषजनक न हों। हमारे कानून में या यह

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

कहिए कि खुद विधान में ही इस आशय का प्रावधान रहना चाहिए कि ऐसे आचरणों के लिए कठोर दण्ड दिया जायेगा। इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं इस संशोधन का, उन शाब्दिक परिवर्तनों के साथ जिनको कि श्रीमती दुर्गाबाई तथा माननीय डॉ. अम्बेडकर ने सुझाये हैं, मैं समर्थन करता हूं।

***श्री टी.टी कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं उस प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए खड़ा हुआ हूं जो सभा के सामने पेश है अर्थात् अनुच्छेद 19 का समर्थन करने के लिए मैं यहां खड़ा हुआ हूं। मेरे पहले कई वक्ताओं ने इस खण्ड विशेष के विभिन्न प्रावधानों पर तथा इस अनुच्छेद की रचना के पीछे जो कारण थे उन पर बहुत ज़ोर दिया है। मैं जिस बात पर ज़ोर देना चाहता हूं वह यह है। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के बीच जो समझौते हुए हैं उनसे हमारा यहां कोई मतलब नहीं है। वस्तुत: हमें इस बात से कोई मतलब नहीं है कि अनुच्छेद के शब्दों के द्वारा आगे चल कर कोई सम्प्रदाय अपने धार्मिक विश्वास एवं प्रथाओं के प्रसार के लिए कुछ फायदा उठायेगा। हमें ज़ोर इस बात पर देना है कि हमारे नये शासन को, नये विधान को, वर्तमान स्थिति को इसी रूप में ग्रहण कर लेना चाहिए और जब कि उसमें ऐसी कोई बात न हो जिससे हमारी मर्यादा, समता एवं न्याय सम्बन्धी भावनाओं को क्षति पहुंचती हो तो उनको जारी रखने के लिए विधान में जरूर प्रावधान होना चाहिए ताकि नये शासन में आकर जनता ऐसा न अनुभव करे कि यह परिवर्तन तो बुरा परिवर्तन रहा। मेरा ख्याल है कि इस उद्देश्य की प्राप्ति में यह अनुच्छेद बहुत ही सहायक है।

धर्म सम्बन्धी बातों के बारे में इस अनुच्छेद में यह कहा गया है कि : "अपने धर्म के मानने, आचरण और प्रचार करने का सबको एक समान अधिकार होगा"। यहां प्रचार सम्बन्धी अधिकार देने पर बहुत आपत्ति की गई है। आखिर यह अधिकार किसी खास सम्प्रदाय को, किसी खास धर्म के मानने वाले लोगों को ही तो दिया नहीं गया है। इससे हिन्दुओं को, आर्यसमाजियों को शुद्धि सम्बंधी प्रचार कार्य करने का वैसा ही अधिकार प्राप्त है जैसा कि ईसाइयों, मुसलमानों, जैनों, बौद्धों तथा अन्य मतावलम्बियों को अपने धर्म-प्रचार का अधिकार प्राप्त है। हां,

इस सम्बन्ध में यह प्रतिबंध अवश्य ही है, और वह प्रतिबंध सभी पर लागू है, कि सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार तथा अन्य ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जो कि सभी सभ्य शासनों में होता है, इस अधिकार का प्रयोग किया जा सकता है। सवाल यह नहीं है कि किसी के अधिकार का अपहरण किया जाये। बल्कि सामने विचारणीय प्रश्न यह है कि यह अधिकार सभी नागरिकों को प्रदत्त हों और कोशिश यह की जाये कि इन अधिकारों का प्रयोग लोग इस प्रकार से करें कि देश की अर्थव्यवस्था में कोई उथल-पुथल न हो, अव्यवस्था न उत्पन्न हो और लोगों के मन में अनुचित विरोध-भाव न उत्पन्न हो। मैं समझता हूं कि मूल बात यह है जिस पर इस अनुच्छेद के सम्बंध में हमें ज़ोर देना है। एक ऐसे व्यक्ति की हैसियत से जिसने कि ईसाई संस्थाओं में प्रायः 15 वर्षों तक शिक्षा प्राप्त की है, मैं यह जानता हूं कि मेरे साथ इस बात की कभी कोई कोशिश नहीं की गई कि मैं अपना धर्म बदल दूं और ईसाई मत पर चलने लगूं। हमारे आदर्शों पर, हमारे दृष्टिकोण पर ईसाई मत के जो प्रभाव पड़े हैं उन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूं। मैं यहां यह कहने के लिए कदापि तैयार नहीं हूं कि ईसाइयों को अपने धर्म का प्रचार करने से रोका जाये। जहां तक कि इस प्रकार के धर्म परिवर्तन के इतिहास का सम्बन्ध है, मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि वह इस सम्बन्ध में तथ्यों पर विचार करे। देखना यह है कि कतिपय धर्म-प्रचारकों और कई सम्प्रदायों ने अपने कम खुशकिस्मत भाइयों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करके उन्हें अपने धर्म में आने पर आमादा किया। तथ्य यह है कि इस देश के बहुत से लोगों ने जो ईसाई-मत को स्वीकार किया है वह बहुत कुछ तो इस कारण से किया कि ईसाई बन जाने पर उनको एक सम्मान का दर्जा मिल गया। इस तथ्य को हम क्यों भूल जाते हैं? एक अछूत ईसाई बन जाने पर हर बात में सवर्ण हिन्दुओं के समकक्ष पहुंच जाता है। ईसाई बनने में उसे यही विशेष लाभ है और इस विशेष लाभ को पाने की जो आज आवश्यकता है, अगर उसे ही दूर कर दें—और निश्चय ही यह एक बहुत बड़ा लाभ है बावजूद इसके कि कोई व्यक्ति उस मत में विश्वास रखने के कारण ही उसे स्वीकार करता है—तो ईसाई बनाने का कोई प्रलोभन किसी के लिए न रह जायेगा। मुझे इस बारे में कोई सन्देह नहीं रह गया है, श्रीमान्, कि हम एक ऐसी अवस्था में पहुंच गये हैं जिसमें इस बात का कोई

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

महत्त्व नहीं रह गया है, किसका क्या धर्म है, कौन व्यक्ति किस सम्प्रदाय या उप सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखता है। अब कानून की दृष्टि में, समाज की दृष्टि में, सभी अधिकारों के प्रयोग के सम्बन्ध में सबको समता प्राप्त रहेगी। इसलिए मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि धर्म परिवर्तन कराने के लिए लोगों पर जो भी अनुचित प्रभाव डाला जा सकता है वह या अन्य कारण जिनके आधार पर लोगों से धर्म परिवर्तन कराया जा सकता है अब न रह जायंगे। ऐसी हालत में, मैं समझता हूं कि उचित यही है कि वर्तमान स्थिति को हम धर्म के सम्बन्ध में ज्यों का त्यों स्वीकार कर लें। जैसा कि मैंने पहले कहा है कि हर व्यक्ति को धर्म-प्रचार करने का और लोगों को अपने धर्म में लाने का अधिकार मिलना चाहिए अगर वह यह समझता है कि वह इसी के लिए पैदा हुआ है और ऐसा करना ही ईश्वर और अपने सम्प्रदाय के प्रति उसका कर्त्तव्य है।

राज्य की अक्षुण्णता की रक्षा का तथा जन हित का—और इस अनुच्छेद द्वारा इन सभी बातों की पूर्ति हो जाती है—सर्वोपरि ध्यान रखते हुए अगर आवश्यक हो तो उन रियायतों में कमी की जा सकती है जो यहां दी गई हैं वरना किसी धर्म के अनुयायी अगर ऐसा करते हैं तो मैं समझता हूं कि निकट भविष्य में सभी सम्प्रदायों के एक हो जाने की जो सम्भावना है उसके प्रति ही नहीं बल्कि अपने धर्म और सम्प्रदाय के प्रति भी वह अन्याय करते हैं। मैं इस अनुच्छेद का, जिस रूप में यह है, समर्थन करता हूं।

**श्री के.एम. मुंशी** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, सभा के समक्ष मुझे चन्द ही बातें कहनी हैं। संशोधन नं. 607 के सम्बन्ध में, जिसे माननीय मित्र प्रो. के.टी. शाह ने पेश किया है, मैं उनसे पूर्णत: सहमत हूं कि यहां 'हिन्दू' शब्द का जो प्रयोग हुआ उसकी विस्तृत परिभाषा यहां दे देनी चाहिए। वस्तुत: 'हिन्दू बिल' में जिस पर कि विधान-परिषद् को विधान-मण्डल की हैसियत से विचार करना है, 'हिन्दू' शब्द की जो परिभाषा दी गई है उसमें सभी वर्ग, उपवर्ग आ जाते हैं किन्तु इस परिभाषा को इस खण्ड में रखने के बजाय भाष्य सम्बन्धी खण्ड में रखना अधिक उपयुक्त होगा।

'propagate' (प्रचार) शब्द के सम्बन्ध में जो आपत्तियां उठाई गई हैं उनके सम्बन्ध में मुझे कुछ ही शब्द कहने हैं। पूर्व के कई वक्ताओं ने यह विचार व्यक्त किया है कि इस खण्ड विशेष में जो 'प्रचार' शब्द रखा गया है उसके सम्बन्ध में हमें भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं है। पूर्ववर्त्ती शासन-व्यवस्था की कल्पना करके ही हम उस शब्द के सम्बन्ध में आपत्ति करते हैं। पूर्ववर्त्ती शासन में ईसाई धर्म-प्रचारकों को और विशेष करके जो अंग्रेज़ थे उनको विशेष सुविधाएं प्राप्त थीं। किन्तु 1938 के बाद से बम्बई के इलाके में तो मैं जानता हूं कि राजनैतिक सत्ता के कारण जो उनका प्रभाव था वह जाता रहा है। सन् 1937 में जब कांग्रेस-मंत्रिमंडल के हाथ में शक्ति आई तो बम्बई के इलाके में ईसाई धर्म-प्रचारकों का ज़िलाधीशों पर जो प्रभाव था और उसके ज़रिये जो लोगों को वे ईसाई बना लिया करते थे वह सब जाता रहा। उसके बाद से उस प्रदेश में धर्म-परिवर्तन की जितनी भी घटनायें हुई हैं उन सबमें यही हुआ है कि उपदेश के फलस्वरूप ही लोगों ने अपना धर्म बदला है और भौतिक लाभ के लोभ में नहीं। हम इस विधान के अधीन जिस राज्य का निर्माण करने जा रहे हैं वह एक असाम्प्रदायिक राज्य होगा। उसमें एक सम्प्रदाय को दूसरे सम्प्रदाय के मुकाबिले में कोई खास सहूलियत न मिलेगी और न अपने मतानुयायियों की संख्या बढ़ा कर ही कोई खास राजनैतिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। ऐसी अवस्था में 'प्रचार' शब्द के रहने से सम्भवत: ऐसे कोई संकटपूर्ण परिणाम न निकलेंगे जिसकी कि कई सदस्यों ने यहां आशंका प्रकट की है।

इसके अतिरिक्त, अल्पसंख्यकों के साथ जो समझौते हुए हैं उनमें मैं भी शुरू से ही शामिल था और इनके परिणामस्वरूप ही इन विभिन्न खण्डों को विधान में स्थान दिया गया है। मैं जानता हूं कि भारतीय ईसाई सम्प्रदाय ने इस शब्द के रखने पर बहुत ज़ोर दिया है पर इसलिए नहीं कि वह लोगों को ईसाई बनाने के लिए ही खूब ज़ोरों से प्रचार-कार्य करना चाहते हैं बल्कि इसलिए कि 'प्रचार' शब्द उनके धर्म का एक मूलभूत सिद्धान्त है। अगर यह 'प्रचार' शब्द यहां न होता तो भी मुझे निश्चय है कि विधान में जो भाषण-स्वातंत्र्य की गारण्टी दी गई है उसके अनुसार किसी भी सम्प्रदाय को अधिकार है कि वह लोगों को अपने धर्म में लाने के लिए समझावे। अगर धर्म को सच्चे अर्थ में धर्म माना जाये तो इस

[श्री के.एम. मुंशी]

बात को भी स्वीकार करना होगा कि अपने ज्ञान पर स्वतंत्रतापूर्वक अमल करते हुए लोग धर्म-परिवर्तन करेंगे ही। अतः इस खण्ड में जो 'प्रचार' शब्द रखा गया है वह न असंगत ही है और न उससे संकटपूर्ण परिणामों की ही आशंका है जैसा कि कुछ लोग यहां समझते है।

स्पष्ट बात तो यह है कि इसके परिणाम कुछ भी क्यों न हों, हमने जो समझौते किये हैं उनको हमें मानना ही चाहिए। गत वर्ष से पहले वाले वर्ष में अल्पसंख्यक समिति ने अपनी रिपोर्ट के सभी प्रावधानों पर सभी सदस्यों की सहमति प्राप्त करके एक बहुत ही बड़ी सफलता प्राप्त की थी। सर्व सम्मति से जो उसकी रिपोर्ट स्वीकृत हुई उससे बहुसंख्यक सम्प्रदाय के अन्दर ऐक्य और आत्मविश्वास का वातावरण पैदा हो गया। इसलिए 'प्रचार' शब्द को इस अनुच्छेद में रहने देना चाहिए ताकि जो प्रशंसनीय समझौता अल्पसंख्यक समिति ने किया है उस पर कोई आंच न आवे। इतना ही मेरा कहना है।

*__उपाध्यक्षः__ संशोधनों की जो सूची मेरे पास है उसमें 15 संशोधन हैं और उनमें प्रायः सभी पेश किये जा चुके हैं। मैं समझता हूं कि इन संशोधनों के द्वारा सभी विभिन्न दृष्टिकोणों पर प्रकाश पड़ चुका हैं। करीब सात या आठ वक्ता इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त कर चुके हैं। मेरा ख्याल है कि इस अनुच्छेद पर अब काफी बहस हो चुकी हैं। अब मैं डॉ. अम्बेडकर को उत्तर देने के लिये आमंत्रित करता हूं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के समर्थन में बहुत से वक्ताओं ने जो कुछ कहा है उससे अधिक मुझे नहीं कहना है। यहां केवल इतना ही मुझे कहना है कि संशोधन नं. 609 को मानने पर मैं राजी हूं।

*__श्री एच.वी. कामतः__ क्या मैं पूछ सकता हूं कि डॉ. अम्बेडकर के लिए इतना ही कहना पर्याप्त नहीं है कि "मैं इसका विरोध करता हूं, और मुझे कुछ नहीं कहना है"? मैं तो समझता हूं कि वादानुवाद के सिलसिले में और इन

संशोधनों में जो सवाल उठाये गये हैं उनका उत्तर देकर उन्हें सभा के प्रति न्याय करना चाहिए।

***उपाध्यक्ष:** मेरा ख्याल है कि संशोधनों को अस्वीकार करने का कारण बताने के लिए हम डॉ. अम्बेडकर को बाध्य नहीं कर सकते ।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, क्या मैं यह बता सकता हूं कि संशोधन नं. 609 जिसे माननीय डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार किया है वह केवल शाब्दिक संशोधन है?

***उपाध्यक्ष:** यह बात कार्यवाही में दर्ज कर ली जायेगी। अब हम संशोधनों पर एक-एक करके विचार करेंगे।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) में 'practise and propagate religion, (धर्म को मानने, प्रचार करने) शब्दों की जगह 'and practise religion privately' (धर्म को निजी तौर पर मानने) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) में 'practise and propagate religion' (धर्म को...मानने और प्रचार करने) शब्दों के स्थान पर 'and practise' (तथा धर्म को...मानने) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) 'are equally entitled to freedom of conscience and the right (विश्वास स्वातन्त्र्य का तथा...समान अधिकार होगा) शब्दों की जगह 'shall have the right' (अधिकार होगा) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) में 'freedom of conscience and' (विश्वास स्वातन्त्र्य तथा) शब्द हटा दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के सम्बन्ध में जो व्याख्या दी गई है वह हटा दी जाये और उसकी जगह निम्नलिखित नया खण्ड रखा जाये:

'No person shall have any visible sign or mark or name, and no person shall wear any dress whereby his religion may be recognised.' "

(कोई भी व्यक्ति ऐसा दृश्य चिह्न अथवा निशान अथवा नाम नहीं रखेगा और न कोई व्यक्ति ऐसे वस्त्र ही पहनेगा जिससे कि उसके धर्म को पहचाना जा सके।)

*संशोधन नामंजूर हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) में निम्नलिखित परादिक जोड़ा जाये:

'Provided that no propaganda in favour of any one religion which is calculated to result in change of faith by the individuals affected, shall be allowed in any school or college or other educational institution in any hospital asylum or in any other place or institution where persons of a tender age, or of unsound mind or body are liable to be exposed to undue influence from their teachers, nurses or physicians, keepers or guardians or any other person

set in authority above them, and which is maintained wholly or partially from public revenues, or is in any way aided or protected by the Government of the Union, or of any State or public authority therein.' "

(परन्तु किसी विद्यालय अथवा महाविद्यालय अथवा अन्य शिक्षण संस्था में, किसी हस्पताल अथवा आश्रम, अथवा किसी अन्य स्थान या संस्था में, प्रभावापन्न व्यक्तियों से धर्म परिवर्तन कराने के उद्देश्य से किसी धर्म के पक्ष में कोई प्रचार नहीं किया जायेगा, जहां कि कोमल आयु अथवा निर्बल मस्तिष्क या स्वास्थ्य के लोगों पर उनके अध्यापकों, नर्सों, अथवा चिकित्सकों, रक्षकों अथवा संरक्षकों, अथवा उनके रक्षार्थ रखे हुये किसी व्यक्ति द्वारा अनुचित प्रभाव पड़ना सम्भव हो, और जो सार्वजनिक धन द्वारा पूर्णत: अथवा अंशत: संधृत हों, अथवा जिन्हें संघ अथवा अन्य किसी राज्य की सरकार द्वारा अथवा उनमें स्थित किसी लोक-प्राधिकारी द्वारा किसी प्रकार की सहायता या रक्षा मिलती हो।)

*संशोधन अस्वीकृत रहा।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) की व्याख्या में 'profession' शब्द की जगह 'practice' शब्द रखा जाये।"

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मैं संशोधन को वापस लेना चाहता हूं, श्रीमान्।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस लिया गया।)

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) की व्याख्या के अन्त में 'और तदनुसार अन्य धर्मों के आचरण का अंग माना जायेगा' शब्द जोड़ दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।*

* **उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के बाद निम्नलिखित नया उपखण्ड जोड़ा जाये:

'(2) The State shall not establish, endow or patronize any particular religion. Nothing shall however prevent the State from imparting spiritual training or instruction to the citizens of the Union.'

(राज्य किसी भी धर्म विशेष को न स्थापित करेगा, न उसके पक्ष में कोई व्यवस्था करेगा और न उसको प्रश्रय देगा। किन्तु किसी भी बात से, संघ के नागरिकों को आध्यात्मिक शिक्षा या उपदेश प्रदान करने पर राज्य के लिए कोई रुकावट न होगी।)

*संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।*

**उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि :

"अनुच्छेद 19 में निम्नलिखित अंश खण्ड (1 क) के रूप में रखा जाये :

'(1a) The Indian Republic shall make no law respecting an establishment of religion or prohibiting the free exercise thereof.' "

[(1क) भारतीय गणतंत्र राज्य ऐसी कोई विधि न बनायेगा जो धर्म सम्बन्धी किसी प्रतिष्ठान को प्रतिष्ठा प्रदान करती हो या धर्म को अबाधरूपेण मानने पर रोक लगाती हो।]

*संशोधन नामंजूर हुआ।*

* **उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) में 'preclude' शब्द की जगह 'prevent' शब्द रखा जाये।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि :

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) के उपखण्ड (a) में 'regulating or restricting any economic, financial, political or other

secular activity' (किसी आर्थिक, वैत्तिक, राजनैतिक अथवा अन्य किसी प्रकार की ऐहिक क्रियाओं का आनियमन अथवा आयंत्रण करती हो) शब्दों की जगह 'regulating, restricting or prohibiting any...' (...आनियमन अथवा आयंत्रण अथवा अपवर्जन करती हो) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।*

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) के उपखण्ड में or throwing open Hindu' (हिन्दुओं...) शब्दों के बाद 'जैनों-बौद्धों या क्रिश्चियनों' शब्द जोड़े जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत ही गया।*

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) के उपखण्ड (b) में 'any class or section' (किसी वर्ग अथवा विभाग) शब्दों के स्थान पर 'all classes and sections' (सभी वर्ग या विभाग) शब्द रखे जायें।"

डॉ. अम्बेडकर, क्या आपने इसे मंजूर कर लिया है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** हां श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन को डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है।

*संशोधन मंजूर हुआ।*

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

*अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ा जाये:

'(3) Nothing in clause (2) of this article shall affect the right of any citizen to follow the personal law of the group or the community to which he belongs or professes to belong.' "

[उपाध्यक्ष]

[इस अनुच्छेद के खण्ड (2) की किसी बात से किसी नागरिक को अपने वर्ग या समूह के कुल या जाति धर्म के मानने पर कोई प्रभाव न पड़ेगा।]

*संशोधन नामंजूर हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 596 तथा 609 द्वारा संशोधित अनुच्छेद 19 पर अब मैं मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद रूप में, अनुच्छेद 19 को विधान का अंग माना जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।*

(अनुच्छेद 19 को संशोधित रूप में विधान में जोड़ा गया।)

---

## अनुच्छेद 14–(जारी)

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 14 को फिर लेते हैं। जहां तक मुझे याद है—मुझे अफसोस है कि मेरे कागज़ात यहां नहीं हैं—उस दिन दो संशोधन विचाराधीन थे जिन पर विचार करना हमने स्थगित रखा था जिसका कारण सभा को मालूम ही है। एक था संशोधन नं. 512 जिसे काज़ी सैयद करीमुद्दीन साहब ने पेश किया था और दूसरा शायद एक सुझाव था। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी, क्या मैं ठीक कह रहा हूं? कृपया आप इस सम्बन्ध में मुझे रोशनी दें। वह आपका सुझाव था या अल्पकालिक सूचना का संशोधन?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** वह अल्पकालिक सूचना का संशोधन था, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** अच्छा, वह अल्पकालिक सूचना का संशोधन था जिसे उपस्थित करने की मैंने अनुमति दी थी। इन्हीं दोनों पर मत लेना बाकी रह गया था।

**श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** उपाध्यक्ष महोदय, संशोधन नं. 512 के सम्बन्ध में मेरा एक औचित्य प्रश्न है।

आपको याद होगा, श्रीमान्, कि संशोधन नं. 512 सभा में पेश किया गया था। इसे डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया था और तब इस पर मत लिया गया था। मतदान के समय जो आवाज़ हुई थी वह आपके अन्दाज़े के मुताबिक यही जाहिर करती थी कि संशोधन को सभा मंजूर करती है। फिर इसको लेकर कुछ विवाद खड़ा हो गया और फिर इस पर 'हां' या 'न' के जरिये राय ली गई और फिर आपका अन्दाज़ा यही रहा कि 'हां' वालों का ही बहुमत है। इस सम्बन्ध में जो सब से महत्त्व की बात है वह यह है कि आपने संशोधन को स्वीकृत घोषित कर दिया था।

***उपाध्यक्षः** क्या मैंने इसे स्वीकृत घोषित कर दिया था?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** हां, श्रीमान्, मुझे याद है।

***उपाध्यक्षः** क्या कागज़ात यह ज़ाहिर करते हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** आशुलिपिक ने जो नोट किया हो उसे देखना चाहिए, किन्तु मुझे याद है कि यह स्वीकृत घोषित किया गया था। (*बाधा*)

***उपाध्यक्षः** कृपा कर सभा की मर्यादा कायम रखिये और मि. नज़ीरुद्दीन का विरोध केवल इसलिए न कीजिए कि वह ऐसा दृष्टिकोण उपस्थित कर रहे हैं जो सभा के किसी वर्ग को नापसन्द है।

(मि. नज़ीरुद्दीन अहमद को सम्बोधित करते हुए) जो बात सभा के सामने है उसी तक आप अपने कथन को सीमित रखें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** इस संशोधन के सम्बन्ध में बहुमत जैसा चाहे तय करे, मैं उसे कोई बाधा नहीं पहुंचाना चाहता। मैं केवल यही सुझाव देना चाहता हूं कि अगर यह संशोधन स्वीकृत हो चुका है तो उस पर पुनः मत नहीं लिया जा सकता। ऐसा करना नियम विरुद्ध है। किन्तु ऐसा करने का एक उपाय है और वह उपाय भी विधिसंगत है जिसे मैं आपके सामने रखता हूं। अपने नियमों में एक यह भी नियम है कि सभा के 25 प्रतिशत सदस्यों की स्वीकृति से किसी भी स्वीकृत प्रस्ताव पर पुनः विचार किया जा सकता है। मेरा कहना यह है, श्रीमान्, कि अगर मेरा यह कथन ठीक है कि यह संशोधन स्वीकृत घोषित हो चुका है तो इस पर विधिसंगत तरीके से ही पुनः विचार किया जाये।

***उपाध्यक्ष:** कार्यवाही के सम्बन्ध में जो सरकारी रिकॉर्ड (कागज़ात) हैं उसमें यह लिखा हुआ है :

"किन्तु मत लिये जाने के ठीक पहले श्री महावीर त्यागी ने एक सुझाव पेश किया जिस का बाद में प्रधान मंत्री ने समर्थन किया उनका सुझाव यह था कि इस संशोधन विशेष को स्थगित रखा जाये क्योंकि इस बात के सम्बन्ध में यह अस्पष्टता है कि इस प्रावधान का असर क्या होगा। सभा ने उनके सुझाव को मान लिया और तदनुसार इस संशोधन पर तथा समस्त अनुच्छेद पर मत लेना स्थगित रखा गया।"

इससे यही प्रकट होता है कि आपकी आपत्ति बिलकुल निराधार है।

(मि. नज़ीरुद्दीन अहमद बोलने के लिए खड़े हुए।)

कृपया बहस मत कीजिए। मैं सभा को और भी कई बातें स्पष्ट कर देना चाहता हूं। मैं जिस दृष्टिबिन्दु से इसको देखता हूं उसको यहां साफ समझा देना चाहता हूं। जैसा कि मैं कह चुका हूं, सभी मामलों में सभा को आखिरी अधिकार प्राप्त है। कार्य संचालन के लिए सभा ने कतिपय नियम बना रखे हैं। सभा का उद्देश्य यही है कि यहां का काम सुचारु रूप से चले और इसीलिए उसने ये नियम बना रखे हैं। मेरा यह मत है कि सभा के लिए महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसका काम सुचारु रूप से चले। नियम सम्बन्धी वितंडावाद उसके लिए उतना महत्त्व नहीं रखता। इन नियमों को सभा ने ही बनाया है और किसी वक्त भी वह इन्हें रद्द कर सकती है। जब इस बात को लेकर यहां अशान्ति उत्पन्न हुई थी, जैसा कि मि. नज़ीरुद्दीन अहमद कहते हैं, तो मैंने सभा के सामने इस मसले को रखा और उसने यह सहमति प्रकट की कि इस पर पुनर्विचार किया जाये। सभा को ऐसा करने का पूरा अधिकार है और अगर सभा का अभी भी वही मत है तो इस पर यहां अभी विचार किया जायेगा।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): क्या मैं जान सकता हूं, श्रीमान्, कि आया सभा ने पुनर्विचार करके ऐसा करना तय किया है अथवा कांग्रेस पार्टी ने फर्मान निकाल कर यह अदेश दिया है कि इसका विरोध किया जाये? इस पर पुनर्विचार करने के अनुमति देने का निर्णय आप कर रहे हैं या केवल कांग्रेस पार्टी के आदेश पर यह किया जा रहा है? इसका विरोध करने के लिए कांग्रेस पार्टी ने जो फर्मान निकाला है उसकी एक प्रति मेरे पास मौजूद है।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): माननीय सदस्य ने कांग्रेस पार्टी के आदेश का जो उल्लेख किया है और जिस भाषा का प्रयोग किया है, उसके बारे में मुझे आपत्ति है।

***उपाध्यक्ष:** एक कांग्रेसमैन की हैसियत से आपने अपने कर्त्तव्य का पालन कर लिया और अब सभापति की हैसियत से मैं यहां अपने कर्त्तव्य का पालन करूंगा।

***मौलाना हसरत मोहानी:** मैंने जो कुछ भी कहा है, श्रीमान्, उस पर मैं दृढ़ हूं।

***उपाध्यक्ष:** मुझे खेद है कि...

***श्री महावीर त्यागी:** क्या कृपा कर आप माननीय सदस्य को यह आदेश देंगे कि वह फर्मान की प्रति को लौटा दें। उसे इस्तेमाल करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** आप हमेशा ही अशान्ति पैदा करते रहते हैं। मैं तो यह कोशिश कर रहा हूं कि सभा में शान्ति आये, रसिकता का भाव उत्पन्न हो और आप बाधा डाल रहे हैं? मैं फिर कभी आपको ऐसा न करने दूंगा।

हां, मैं यह कह रहा था कि मुझे इस बात का सख्त अफसोस है कि मौलाना हसरत मोहानी जैसे अनुभवी लीडर ने यहां ऐसी बात का उल्लेख किया, जिसका सभा से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। जैसा कि मैं कई बार कह चुका हूं, एक खास राजनैतिक दल का आदमी तो मैं ज़रूर हूं किन्तु जब तक मैं सभापति के आसन पर आसीन रहता हूं मेरी दृष्टि में किसी भी दल का अस्तित्व नहीं रह जाता है। इसी भावना से सभा की कार्यवाही का मैं संचालन कर रहा हूं। जिस प्रकार सभा की कार्यवाही का संचालन किया गया है और किया जा रहा है, उसके सम्बन्ध में इस तरह की आलोचना की जाये इसका मुझे बड़ा ही खेद है।

मैं फिर सभा से यह जानना चाहता हूं कि इस मसले को पुन: पेश करने की वह मुझे अनुमति देती है या नहीं।

***माननीय सदस्यगण:** अवश्य ही, सभा की अनुमति आप को प्राप्त है।

***उपाध्यक्ष:** धन्यवाद! संशोधन नं. 512 पर मैं अब मत लेता हूं।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त:** उसे पुन: पेश करने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। यह संशोधन पास हुआ या नहीं इसके बारे में आपने अन्तिम रूप से तो कुछ कहा ही नहीं था। मैं सभा को यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि सभापति ने यह घोषणा कभी नहीं की थी कि संशोधन पास हुआ या नापास हुआ। इसलिए इसको पुन: पेश करने का तो यहां कोई सवाल ही नहीं है। अब यह मसला पूर्णत: सभापति के विवेक पर निर्भर करता है। इस सम्बन्ध में जो नियम हैं वह बिलकुल साफ हैं। प्रस्ताव पर मत लिया जाता है और अगर किसी ने निर्णय के सम्बन्ध में कोई आपत्ति की तो मत-विभाजन की घंटी बजती है। घंटी बजने पर सभापति पुन: प्रस्ताव पर मत लेता है और पक्ष तथा विपक्ष के सदस्य अलग-अलग लाबी में चले जाते हैं। मतगणना करने वाला व्यक्ति मतों को गिनता है और उसके बाद यह घोषित किया जाता है कि प्रस्ताव स्वीकृत हुआ या अस्वीकृत। यह तो उस दिन हुआ ही नहीं। असल में आप प्रस्ताव के स्वीकृत या अस्वीकृत होने की घोषणा ही करने जा रहे थे पर आपने इसी बीच में यह कह दिया कि प्रस्ताव स्थगित रखा जाता है। जो कोई भी व्यक्ति यह कहता है कि सभापति ने प्रस्ताव के स्वीकृत या अस्वीकृत होने की आखिरी तौर पर घोषणा कर दी थी वह गलत कहता है।

***उपाध्यक्ष:** इससे तो मेरी गहन अज्ञानता ही प्रकट होती है। मैंने यहां इस सम्बन्ध में एक ऐसे शब्द का प्रयोग किया जिसको नहीं प्रयुक्त करना चाहिए था। "पुन: पेश करने की" ऐसा मैंने कभी कहा था। खैर मुझे खुशी है कि सब बात ठीक हो गई। मैं यही चाहता हूं कि मुझ में इतनी—क्या शब्द रखूं—योग्यता हो कि मैं भी उसी तरह काम कर सकूं जैसा कि श्री घनश्याम सिंह गुप्त ने किया है। अब मैं संशोधन नं. 512 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 14 में, निम्नलिखित अंश खण्ड (4) के रूप में जोड़ा जाये:

'(4) The right of the people to be secure in their persons, houses, papers and effects against unreasonable searches and seizures shall not be violated and no warrants shall issue but upon probable cause supported by oath or affirmation and particularly describing the place to be searched and the persons or things to be seized.' "

(अनुचित तलाशियों तथा अपहरण के विरुद्ध अपने शरीर, गृह, पत्रों और सामान के विषय में सुरक्षित रहने का जो लोगों को अधिकार प्राप्त है उसका उल्लंघन नहीं किया जायेगा, और सिवाय किसी सम्भव कारण के जिसका आधार सौगंध अथवा घोषणा हो, वारंट (अधिपत्र) जारी नहीं किये जायेंगे और जिस स्थान की तलाशी लेनी हो अथवा जिन व्यक्तियों अथवा वस्तुओं को कब्ज़े में करना हो उनका विवरण उसमें विशेष रूप से दिया रहेगा।)"

*संशोधन अस्वीकृत हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** अब हम श्री कृष्णमाचारी के संशोधन पर आते हैं जिसे डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है।

***श्री एच.वी. कामत:** संशोधन को डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार किया या अस्वीकार, इसे क्या हर बार बताना ज़रूरी है?

***उपाध्यक्ष:** हमेशा नहीं, पर कभी-कभी यह बताना ज़रूरी होता है। अब मैं संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 14 के खण्ड (2) में 'shall be' शब्दों के बाद 'prosecuted and' शब्द रखा जाय।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 14 को, संशोधित रूप में, विधान का अंग माना जाये।

*प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।*

*अनुच्छेद 14 अपने संशोधित रूप में विधान में रखा गया।*

**अनुच्छेद 15**

---

***उपाध्यक्ष:** सभा के सामने अब यह प्रस्ताव है कि अनुच्छेद 15 को विधान का अंग माना जाये।

अब हम एक-एक करके सभी संशोधनों को लेंगे। नं. 515 को मैं अनियमित घोषित करता हूं। नं. 516, 517, 518 और 532 के संशोधनों का आशय एक

ही है। इनमें 516 तथा 517 को पेश करने की मैं अनुमति दे सकता हूं और ये दोनों ही ब्रजेश्वर प्रसाद के नाम में हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): मैं इन दोनों को नहीं पेश रहा हूं।

(संशोधन नं. 518, 532, 519 तथा 520 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 521 तो रुक गया। अब हैं संशोधन नं. 522, 523, 524, 525, 528 और 530। ये सब एक ही आशय के हैं। नं. 523 को मैं पेश करने की अनुमति देता हूं।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, यदि मसौदा-समिति द्वारा प्रस्तावित संशोधन स्वीकार किया जाता है और अनुच्छेद का रूप यह होगा:

'No person shall be deprived of his life or personal liberty except according to procedure established by law..."

(किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वातंत्र्य, से विधि द्वारा नियत प्रणाली को छोड़ कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा...)

तो मेरी राय में इससे विधान सम्बन्धी इतिहास में एक दु:खद अध्याय का ही समावेश होगा। विधान-परिषद् ने मूलाधिकारों के सम्बन्ध में जो परामर्शदात्र समिति नियुक्त की थी उसने यही सुझाव दिया था कि कोई व्यक्ति 'without due process of law) (बिना समुचित विधि-प्रक्रिया के)अपने स्वातंत्र्य से वंचित न किया जायेगा। मैं नहीं समझ पाता हूं कि मसौदा-समिति ने अनुच्छेद 15 में 'personal' (दैहिक) तथा 'according to procedure established by law' (विधि द्वारा नियत प्रणाली) ये शब्द कैसे रख दिये हैं।

***श्री लक्ष्मीकान्त मैत्र:** माननीय सदस्य अपने संशोधन को उपस्थित करेंगे या नहीं, श्रीमान्?

***उपाध्यक्ष:** नियम सम्बंधी पाबन्दी के अनुसार पहले आप अपना संशोधन पेश कर दें।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्, कि :

"अनुच्छेद 15 में 'No person shall be deprived of his life or personal liberty except according to procedure

established by law' (किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वातंत्र्य से, विधि द्वारा नियत प्रणाली को छोड़ कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा) शब्दों की जगह ये शब्द कि 'No person shall be deprived of his life or liberty without due process of law' (कोई व्यक्ति बिना समुचित विधि प्रक्रिया के अपने प्राण या स्वातंत्र्य से न वंचित जायेगा) रखे जायें।"

अगर "विधि द्वारा नियम प्रणाली को छोड़कर अन्य प्रकार" ये शब्द यहां रखे जाते हैं तो इससे देश के न्यायालयों के प्रति बड़ा अन्याय होगा क्योंकि उस हालत में यह होगा कि विधि द्वारा नियत प्रणाली का पालन न्यायालय जब कर लेगा और उसे इस बात का इत्मीनान हो जायेगा, विधि द्वारा नियम प्रणाली का पालन हो चुका है तो उसके बाद न्यायाधीश किसी भी कानून के सम्बंध में हस्तक्षेप नहीं कर सकता, भले ही वह कानून अनियमित, अन्यायपूर्ण या पक्षपातरहित हो। खण्ड का जो वर्तमान रूप है उससे हमारे देश को, जो राजनैतिक दलबन्दियों का एक अखाड़ा है और जहां लोग अनुशासन का नाम भी नहीं जानते, बहुत बड़ा नुकसान पहुंच सकता है। अपरिहार्य अधिकारों के सम्बंध में व्यक्ति को कुछ ऐसी गारंटी मिलनी चाहिए जिससे अधिकारारूढ़ होने वाले राजनैतिक दलों को विधान में रखे गये मूलाधिकारों के न्यूनन का अथवा उन पर आघात करने का अधिकार न रह जाये।

अमेरिका के विधान सम्बंधी कानून में एक ऐसा उदाहरण मौजूद है। वह चेम्बर्स बनाम फ्लोरिडा नामक मुकद्दमे में एक कानून के सम्बंध में किसी कानूनी अदालत में यह सवाल खड़ा हुआ था कि वह अनियमित एवं अन्यायपूर्ण है। इसलिए मेरा कहना है कि अगर "according to procedure established by law" ये शब्द यहां रखे जाते हैं तो इससे न्यायालयों को यह अधिकार न रह जायेगा कि वे किसी विधि की न्याय शून्यता के सम्बंध में या किसी विधि के किसी असंगत प्रावधान के सम्बंध में कोई निर्णय दे सके। विधि द्वारा नियत प्रणाली के पालित होते ही सब बात समाप्त हो जायेगी और न्यायाधीशों के हाथ में कुछ भी न रह जायेगा। इसलिए मेरा पहला कहना तो यह है कि "except according to procedure established by law" शब्द हटा दिये जायें और उनकी जगह "without due process of law" शब्द रखे जायें।

वस्तुत: मैंने दो संशोधन दिये थे, श्रीमान्। एक तो 'liberty' के पहले जो 'personal' शब्द रखा गया है उसके बारे में और दूसरा 'except according

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

to procedure established by law' की जगह 'without due process of law" शब्द रखने के बारे में। किन्तु न जाने कैसे इन दोनों संशोधनों को एक कर दिया गया और मुझे एक ही संशोधन पेश करना होगा। "personal liberty" शब्दों के सम्बंध में मेरा जो संशोधन है उसे अगर मसौदा-समिति नहीं स्वीकार करती है तो मत करे, मुझे उसकी चिन्ता नहीं है। किन्तु मेरे संशोधन का जो दूसरा अंश है वह तो ज़रूर ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

(संशोधन नं. 524 नहीं पेश किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 525 मि. नज़ीरुद्दीन अहमद का है। क्या इसे पेश करने पर आप ज़ोर देते हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** छपाई की एक भूल है जिसे मैं बता देना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** ठीक है। अब हम नं. 528 पर आते हैं जो श्री उपेन्द्रनाथ बर्मन, श्री दामोदर स्वरूप सेठ तथा श्री के. वी. कृष्णमूर्त्तिराव के नाम में है।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन:** मेरा एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान् । मैंने अपनी वक्तृता में बताया है कि मैंने दो संशोधन रखे थे। एक तो 'personal' शब्द के सम्बंध में और दूसरा 'due process of law' के सम्बंध में। किन्तु आफिस की गलती से दोनों एक कर दिये गये। इसलिए मुझे केवल अपने संशोधन का दूसरा ही अंश पेश करना पड़ा। किन्तु संशोधनों की जो सूची हमें दी गई है उसमें नं. 528 और 523 को साथ रखा गया है। 523 मेरा संशोधन है जिसे मैं पेश कर चुका हूं। अत: सभा की कार्य-पद्धति के अनुसार 528 अब पेश नहीं किया जा सकता उस पर केवल मत लिया जा सकता है।

***उपाध्यक्ष:** अच्छी बात है, 528 को पेश करने की ज़रूरत नहीं है।

***श्री एस.वी कृष्णमूर्त्तिराव** (मैसूर): किन्तु इन दोनों में एक अन्तर है, श्रीमान्। 528 में 'personal' शब्द का कोई उल्लेख नहीं है; 523 में इस शब्द को हटाने की बात कही गई है।

***उपाध्यक्ष:** किन्तु आशय दोनों का एक ही है और मैं अपना निर्णय दे चुका हूं। 528 पर केवल मत लिया जायेगा।

अब आता है नं. 530 जो मि. ज़ैड. एच. लारी के नाम से है। क्या आप चाहते हैं कि इस पर राय ली जाये?

***श्री ज़ैड. एच. लारी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): हां, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** हमारी सूची में अब आता है नं. 524 का दूसरा भाग, नं. 526 और नं. 527 । ये प्राय: एक ही तरह के हैं। नं. 526 को पेश किया जा सकता है।

***श्री महबूब अली बेग साहब** (मद्रास : मुस्लिम): मेरा प्रस्ताव है कि:

"अनुच्छेद 15 में 'except according to procedure established by law' शब्दों की जगह 'save in accordane with law' शब्द रखे जायें।"

मसौदा-समिति ने जो नोट दिया है उसमें बताया गया है कि अनुच्छेद 15 में, जिसे सभा ने 1947 में अगस्त, अप्रैल या मई के महीने में स्वीकार किया था, मसौदा-समिति ने दो परिवर्तन किये हैं। पहला परिवर्तन तो यह हुआ है कि 'liberty' (स्वातंत्र्य) शब्द के पहले 'personal' (दैहिक) शब्द रख दिया गया है। इसका कारण यह बताया गया है कि अगर यह 'personal' शब्द न रखा जायेगा तो इस खण्ड का क्षेत्र इतना व्यापक हो जायगा कि इसमें वह सभी स्वतंत्रताएं भी आ जायेंगी जिनका अनुच्छेद 13 में उल्लेख है।

'personal' शब्द बढ़ाने के लिए तो यह कारण बताया गया है और "without due process of law" शब्दों की जगह जो "except according to procedure established by law" शब्द रखे गये हैं; इसके सम्बन्ध में यह कहा गया है कि यह पदसंहति अधिक स्पष्ट एवं निश्चित है और यह भी कहा गया है कि सन् 1946 के जापानी विधान के अनुच्छेद 31 में ऐसा ही प्रावधान रखा गया है। मैं दूसरे परिवर्तन के सम्बन्ध में ही बोलूंगा।

इसमें शक नहीं कि जापान के विधान का अनुच्छेद 31 ऐसा ही है पर उसमें दिये गये अन्य कतिपय अनुच्छेदों को भी (अनुच्छेद 32-34 और 35) अगर आप अपने विधान में स्थान देते तो नागरिकों की वैयक्तिक स्वतंत्रता की पूर्णत: रक्षा हो जाती। किन्तु इस मसौदे में उन प्रावधानों को तो अपनी सुविधार्थ आपने रखा नहीं।

[श्री महबूब अली बेग साहब]

जापानी विधान के अनुच्छेद 32 में यह कहा गया है कि हर व्यक्ति को न्यायालय से अपील करने का अधिकार है और इस अधिकार से कोई भी व्यक्ति वंचित न किया जायेगा। यहां दी हुई पदसंहति के अनुसार तो यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि विधान-मण्डल इस आशय का कानून बना सकता है कि अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के लिए किसी को भी न्यायालय से अपील करने का अधिकार नहीं है। किन्तु जापानी विधान के अनुच्छेद 32 में यह साफ कहा गया है कि "no person shall be denied the right of access to the Court." (हर व्यक्ति को न्यायालय से अपील करने का अधिकार है और किसी को इस अधिकार से वंचित न किया जायेगा)। क्या हमारे विधान में भी कोई इस तरह का खण्ड है? मुख्य बात तो यही है। हमारे विधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है।

जापानी विधान के अनुच्छेद 34 में कहा गया है कि : "गिरफ्तार करते ही उसके विरुद्ध लगाये गये आरोपों की तत्काल उसे बिना सूचना दिये अथवा तुरन्त वकील नियुक्त करने की सुविधा दिये बिना किसी व्यक्ति को गिरफ्तार न किया जायेगा और न हिरासत में रखा जायेगा तथा न बिना पर्याप्त कारण के ही किसी को हिरासत में रखा जायेगा और उसके द्वारा ऐसे कारण की मांग करने पर तुरंत खुली अदालत में उसकी तथा उसके वकील की उपस्थिति में कारण को दिखाना होगा"। अपने मसौदे में ऐसा सुस्पष्ट अधिकार कहीं नहीं दिया गया है।

जापानी विधान के अनुच्छेद 35 में यह अधिकार दिया गया है कि किसी भी नागरिक के घर की तलाशी न ली जायेगी और न उसके घर में प्रवेश ही किया जायेगा जब तक कि सम्भावित कारण के आधार पर इसके लिए वारंट न निकला हो, इत्यादि-इत्यादि। प्रावधान को सुस्पष्ट बनाने के लिए तथा निश्चयात्मक रूप देने के लिए अगर आपने जापानी विधान के अनुच्छेद 31 को अपने मसौदे में स्थान दिया है तो उचित यही था कि आप जापानी विधान के अन्य उन प्रासंगिक अनुच्छेदों को भी रखते जो सच्चे नागरिकों की वैयक्तिक स्वतंत्रता की रक्षा के निमित्त ही बनाये गये हैं। मसौदा-समिति से उसके प्रधान की मार्फत मैं पूछना चाहता हूं कि क्या अपने विधान से यह स्पष्ट है कि गिरफ्तार या हिरासत में रखे गये व्यक्ति के अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने के लिए न्यायालय में जाने का

अधिकार है? यह कहा जा सकता है कि "except according to procedure established by law" (विधि द्वारा नियम प्रणाली को छोड़ कर अन्य प्रकार) इस पदसंहति के अन्दर यह बात आ जाती है। किन्तु उस पदसंहति का मतलब होता है विधान-मण्डल की विधि द्वारा नियत कार्यप्रणाली से और विधान-मण्डल को ऐसी विधि बनाने का अधिकार रहेगा कि राजनैतिक या अन्य कारणों से हिरासत में रखे गये नागरिकों के मामले न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र के बाहर हों। भारत के उच्च न्यायालयों के निर्णयों से हम परिचित हैं। विशेषत: मद्रास हाईकोर्ट तथा अन्य हाईकोर्टों का वह निर्णय हमें मालूम है जिसमें उन्होंने कहा है कि विधान-मण्डल ऐसा कानून बना सकता है कि कतिपय नागरिकों के सम्बन्ध में, जिनके निस्बत सरकार यह समझती हो कि वह अपराध करता है या करने वाला है या यह कि उसके अपराध करने की सम्भावना है, वह जो भी कार्रवाई करे उसके बारे में न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करेगा। न्यायालय को यह अधिकार नहीं होगा कि वह उन कारणों के गुण-दोष की समीक्षा करे जिनके आधार पर किसी व्यक्ति को हिरासत में रखा गया है। न्यायालय को केवल इतना ही देखने का अधिकार है कि सरकार ने जो कार्रवाई की है वह नेकनियती से की गई है या बदनियती से और यह साबित करने का भार कि उसके गिरफ्तार करने या हिरासत में रखने का वारंट जारी करके सरकार ने बदनियती से काम लिया है, अभियुक्त पर रहता है। इसलिए "except according to procedure established by law" शब्दों का यही मतलब होगा और मेरे मत से यही है कि भावी विधान-मण्डल ऐसा कानून बना सके, जिससे नागरिकों का यह अधिकार जाता रहे कि अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने के लिए वह मामले की सुनवाई न्यायालय में करवा सकते हैं। इससे मेरा यह मतलब नहीं है कि परिस्थिति विशेष में किसी व्यक्ति को अपराध करने से रोकने के लिए सतर्कतामूलक कार्रवाई के तौर पर उसे गिरफ्तार करना सरकार के लिए ज़रूरी ही नहीं होगा। किन्तु मैं यह ज़रूरी कहता हूं कि नागरिकों को न्यायालय में जाकर अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने का तथा जिन कारणों के आधार पर उसे हिरासत में रखा गया है उनको असत्य सिद्ध करने का मौका मिलना ही चाहिए। यह तो एक मूलाधिकार—प्रारम्भिक अधिकार है—जो अधिशासी वर्ग के मुकाबले में नागरिकों को मिलना ही चाहिए। हो सकता है कि अधिशासी वर्ग को विधान-मण्डल ने, जिसमें दल विशेष का प्राधान्य हो, बहुत से अधिकार दे रखे हों। हो सकता

[श्री महबूब अली बेग साहब]

है कि दलबंदी के आधार पर बना हुआ विधान-मण्डल ऐसा कानून पास कर दे कि परिस्थिति विशेष में अधिशासी वर्ग को नागरिकों के वैयक्तिक स्वातंत्र्य को छीन लेने का हक है और वैसी सूरत में नागरिक को यह अधिकार नहीं रह जायेगा कि अदालत में जाकर वह अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करे। अगर मसौदा बनाने वाले सज्जन यह कह सकें कि "except according to procedure established by law" इन शब्दों से किसी नागरिक का यह अधिकार नहीं जाता रहता है कि अदालत जाकर अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने का उसे मौका दिया जायेगा और उसे ऐसा करने से वंचित नहीं किया जायेगा तब तो बात दूसरी है। किन्तु हमें यह मालूम होना चाहिए कि इंग्लैंड तथा अन्य देशों के विधानों में "without due process of law" (बिना समुचित विधि प्रक्रिया के) ये शब्द यही व्यक्त करने के लिए रखे गये हैं कि जब भी किसी नागरिक के विरुद्ध ऐसी कार्रवाई की जाये जिससे वह अपने वैयक्तिक स्वातंत्र्य से वंचित होता हो तो उसे न्यायालय में जाकर अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने का मौका अधिकारत: मिलेगा ही। यह अधिकार देने में सभी जगह "without due process of law" अथवा "save in accordance with law" यही पदसंहति रखी गई है। इंग्लैंड का कानून इस प्रारम्भिक तथा मूलाधिकार से किसी नागरिक को वंचित नहीं करता। वहां जो कानून बनाये जाते हैं यह सब इस मूल सिद्धान्त के अधीन होते हैं कि कोई भी व्यक्ति तब तक न अपराधी घोषित किया जायेगा और न अपने स्वातंत्र्य से वंचित किया जायेगा जब तक कि उसे अदालत में अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने का मौका न दिया गया हो। इसलिए, जैसा कि मैंने निवेदन किया है, अगर कानून किसी व्यक्ति को दण्ड देता है तो ऐसा करने से पहले उसकी सुनवाई भी कानून को करनी ही चाहिए।

इस पदसंहति के पक्ष में एकमात्र कारण जो नोट में दिखाया गया है वह यह है; यह अधिक निश्चयात्मक है और जापानी विधान में भी इसे स्थान दिया गया है। जैसा कि मैं कह चुका हूं, नागरिकों को अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने का जो हक है उससे हमें उन्हें वंचित न करना चाहिए। अगर जापान के विधान का यह प्रावधान आप रखते हैं तो उसके तद्विषयक अन्य प्रावधानों को भी रखिये ताकि नागरिकों के इस मूलाधिकार पर कोई आंच न आ सके। अगर आप जापानी विधान के तत्सम्बन्धी अन्य सभी प्रावधान यहां रख दें तो मुझे सन्तोष हो जायेगा

क्योंकि अन्य प्रावधानों में साफ तौर पर यह कहा हुआ है कि किसी भी व्यक्ति को उसके स्वातंत्र्य से तब तक न वंचित किया जायेगा जब तक कि अदालत में अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने का उसे मौका न दिया जाये। इसलिए "except according to procedure established by law" इन शब्दों पर मैं आपत्ति करता हूं। अगर अन्य किसी रूप में आप इस प्रावधान को रखें जिससे यह निश्चयात्मक भी रहे और नागरिकों का यह अधिकार भी सुनिश्चित रहता हो कि अपराधी घोषित किये जाने के पहले उनको अदालत में अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने का अवसर ज़रूर दिया जायेगा, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। प्रस्तुत संशोधन को प्रस्तावित करने का यही कारण है।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 529 और 531 दोनों की अनुमति नहीं दी जाती है क्योंकि ये केवल शाब्दिक हैं।

(संशोधन नं. 533 पेश नहीं किया गया।)

अब हम अनुच्छेद 15 पर वादानुवाद प्रारम्भ कर सकते हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): मैं अपने संशोधन नं. 525 में, एक दूसरे संशोधन के ज़रिये जो सूची 1 में नवें नम्बर का है, कुछ सुधार करना चाहता था। यह संशोधन तथा नं. 528 का संशोधन—दोनों—एक ही आशय के हैं। काज़ी करीमुद्दीन ने जो संशोधन पेश किया है उसमें और इन दोनों में इतना ही अन्तर है कि करीमुद्दीन साहब के संशोधन में 'liberty' के पहले 'personal' शब्द नहीं है। मि. काज़ी करीमुद्दीन के संशोधन के मैं विरुद्ध हूं। हां, इस अनुच्छेद में अगर इतना संशोधन कर दिया जाये कि "except according to procedure established by law" शब्दों की जगह "without due process of law" शब्द रख दिये जायें तो मैं इसका समर्थन करूंगा।

इस सम्बंध में पहला सवाल जो उठता है यह है कि 'law' शब्द का अर्थ क्या है?

आम तौर पर इसका जो अर्थ लिया जाता है और खूब मान्य हो चुका है तथा विधि-विशारद श्री आस्टिन ने इसका जो अर्थ दिया है उसके मुताबिक 'law' शब्द

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

का अर्थ है वह कानून जिसे विधान-मण्डलों ने बनाया हो, किन्तु मेरा कहना है कि जहां श्री डिके ने 'law of the land' का प्रयोग किया है वहां उन्होंने 'law' शब्द को दूसरे ही अर्थ में प्रयुक्त किया है।

इसी प्रकार जापान के विधान में या अन्य किसी देश के विधान में जहां यह शब्द प्रयुक्त हुआ है वहां व्यापक अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है। वहां 'law' शब्द से न्याय, सत्य आदि विश्वव्यापक सिद्धान्तों को लिया गया है।

प्रस्तुत अनुच्छेद का जो वर्तमान रूप है उसके अनुसार "procedure' (कार्य प्रणाली) पर ही सारा ज़ोर दिया गया है किन्तु 'law' शब्द में दोनों ही बातें—ज़ाब्ता सम्बन्धी कानून तथा मूल कानून—आती हैं। मैंने 'law' शब्द को यहां व्यापक अर्थ में ही प्रयुक्त किया है। संशोधन द्वारा अनुच्छेद में "without due process of law" (बिना समुचित विधिप्रक्रिया के) ये शब्द लाने की कोशिश की गई है और यद्यपि इनका अर्थ कहीं नहीं बताया गया है किन्तु इनका अर्थ क्या है और इनका क्या असर पड़ेगा इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। "without due process of law" ये शब्द रखने से हमारा मतलब यह है कि न्यायालय को यह अधिकार होना चाहिए कि वह दोनों ही बातों को देखे। वह यह भी देखे कि कानून के ज़ाब्ते के मुताबिक काम हुआ है या नहीं और यह भी देखे कि मूल कानून ठीक है या नहीं। प्रस्तावित संशोधन के अनुसार यह होगा कि संसद् अगर कोई कानून बनाती है तो न्यायालय को इस बात की समीक्षा करने का, उस सम्बन्ध में निर्णय देने का अधिकार होगा कि आया वह कानून जिसे संसद् ने पास किया ठीक है या नहीं, अच्छा है या नहीं, और वस्तुतः उससे नागरिकों के स्वातंत्र्य की रक्षा होती है या नहीं। सर्वोच्च न्यायालय अगर इस नतीजे पर पहुंचता है कि कानून अवैधानिक है, अनुचित एवं न्यायशून्य है तो उस हालत में न्यायालय कानून को अवैधानिक ठहरा देगा और फिर वह अमल में नहीं लाया जा सकेगा।

ज़ाब्ते के सम्बन्ध में भी न्यायालय को ऐसा ही अधिकार होगा। अगर किसी विधान-मण्डल के दिमाग में यही आ जाये कि देश को ज़ाब्ता सम्बन्धी अच्छे कानून से भी वंचित कर दिया जाये तो न्यायालय को वहां भी यही अधिकार होगा कि वह उसकी समीक्षा करके निर्णय दे कि जो ज़ाब्ता रखा गया वह ठीक है या

नहीं। 'law' शब्द जिस माने में संशोधन में रखा गया है और जिसमें कि आम तौर पर रखा जाता है उसके मुताबिक न्यायालय को ऐसा अधिकार है। अनुच्छेद 8 के प्रयोजनार्थ ही 'law' शब्द की परिभाषा दी गई है। अन्यथा इसकी परिभाषा ही नहीं दी गई है। इसलिए मैं कहूंगा कि अनुच्छेद में रखे गये शब्द "procedure established by law" अगर यहां रहने दिये जाते हैं तो हमें 'law' शब्द का मतलब भी बता देना होगा। अन्यथा इन शब्दों के सम्बन्ध में अस्पष्टता बनी रहेगी और परिणाम यह होगा कि इनके गलत माने लगा दिये जायेंगे। इसलिए जब तक कि "due process of law" इन शब्दों का अर्थ हम नहीं समझ लेते, प्रस्तावित संशोधन के प्रति हम न्याय नहीं कर सकते। इनका अर्थ न समझ लेना संशोधन के प्रति अन्याय करना है। इसलिए मैं यह बताना चाहता हूं कि "due process of law" का अर्थ यद्यपि कहीं नहीं बताया गया है फिर भी इससे उसी अर्थ का बोध होता है जिसमें कि और देशों के कानून के मुकाबिले में अमेरिकन कानून में यह प्रयुक्त हुआ है। अब, इस संशोधन का असर क्या होगा? उदाहरण रख कर इस बात को समझाने के लिए सभा के सामने मैं 1908 के एक्ट 14 का हवाला दूंगा जो काला कानून के नाम से मशहूर है और जिसके अधीन अगर लाखों नहीं तो हजारों कांग्रेसजन जेलों में ठूंस दिये गये थे। इस एक्ट के मुताबिक सरकार को यह अधिकार था कि केवल इस आधार पर कि उसने इस आशय की अधिसूचना निकाल रखी है, वह किसी भी संगठन को गैर-कानूनी घोषित कर सकती है। जब यह एक्ट पास हुआ तो समूचे भारतवर्ष में इसकी निन्दा की गई, किन्तु तत्कालीन सरकार ने इसका इतना प्रबल विरोध होने पर भी इसे कानून का रूप दिया। जब असहयोग आन्दोलन चला तो इसी कानून के विरुद्ध सविनय अवज्ञा का अस्त्र उठाया गया था जिस अस्त्र के सहारे कि कांग्रेस ने अपनी लड़ाई लड़ी। न्यायालय यह निर्णय नहीं दे सके कि सरकार द्वारा निकाली हुई अधिसूचना गलत थी। न्यायालयों को यह अधिकार नहीं था कि वे यह निर्णय दे सकें कि संगठन बनाना या संघ बनाना वैध है, यद्यपि उनके उद्देश्य वैध थे। कांग्रेस के लक्ष्य तो शान्तिपूर्ण ही थे। वह शान्तिपूर्ण एवं वैध उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना चाहती थी। किन्तु चूंकि सरकार ने अधिसूचना निकाल रखी थी न्यायालय इस सम्बन्ध में बिलकुल असहाय हो गये थे। इस कानून से यह प्रकट है कि "due process" का अधिकार कितना ज़रूरी है।

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

इसी तरह मैं एक और उदाहरण दूंगा। वह है भारत-सुरक्षा कानून की धारा 26 (Section 26 of the Defence of India Act)। हम जानते हैं कि फेडरल-कोर्ट ने इस धारा को गैर-कानूनी ठहराया था और इसलिए सरकार को एक नया आर्डिनेंस निकालना पड़ा था। अत: जब तक कि आप न्यायालय को इस सम्बन्ध में अधिकार नहीं देते और अनुच्छेद 15 को न्याय्य नहीं बनाते तब तक हक हमें इस बात की गारण्टी नहीं हो सकती है कि हम उस स्वातंत्र्य का उपभोग कर सकेंगे जिसे विधान हमें देना चाहता है।

सभा ने अनुच्छेद 13 में 'reasonable' (समुचित) शब्द को स्वीकार कर लिया है। कम से कम 70 प्रतिशत कानून जिसमें वैयक्तिक स्वातंत्र्य का प्रश्न आ सकता है, अब न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र के अन्दर आ जाते हैं और न्यायालयों को इनके सम्बन्ध में निर्णय देने का अधिकार है कि आया वे समुचित हैं या नहीं। अब एक दूसरा सिद्धान्त अपनाने पर सभा को रोका जा रहा है। वैयक्तिक सम्पत्ति और ज़ीवन के सम्बंध में तो इस प्रश्न का महत्त्व और भी अधिक है। जहां तक कि प्राण एवं वैयक्तिक स्वातंत्र्य का सम्बन्ध है, ये दोनों ही बातें उन विषयों के अन्तर्गत होनी चाहिएं जो न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र के अधीन हैं।

इसलिए यह परमावश्यक है कि सभा इस संशोधन को स्वीकार करे। इसके दो रास्ते हैं जैसा कि पूर्व वक्ता ने सुझाया है। या तो जैसा कि जापानी विधान में है, आप अन्य बातों को भी विधान में स्थान दें या सर्वश्री लारी और करीमुद्दीन साहब के सभी संशोधनों को मंजूर कीजिए। इनमें से एक तो शुरू में आपने स्वीकृत घोषित करने की कृपा कर दी थी पर बाद में आपने उसे अस्वीकृत घोषित कर दिया। वे विधान में ऐसे सिद्धान्तों को लिपिबद्ध करना चाहते हैं जिनका उल्लंघन भावी विधान-मण्डल कर न सकेगा। अगर "due process" वाला एक संशोधन स्वीकार हो जाता है तो मूलाधिकार को लेकर अन्य जो भी संशोधन रखे गये हैं वह स्वत: स्वीकृत हो जायेंगे। एक दूसरी बात जो इस एक संशोधन के पास होने से होगी वह यह है कि इससे विधान में जनता की मनोवृत्ति को भावना का आप स्थान देंगे। प्राचीन काल में सात या आठ ऋषि हुआ करते थे जो बड़े ही साधु और विज्ञ होते थे और वास्तविक अधिकार उन्हीं के हाथ में होते थे। उन्हीं के पास शास्त्रज्ञ मंत्री एवं राजा सलाह के लिए जाते थे। वही ऋषि समूची

शासन-व्यवस्था का संचालन करते थे। हमारा यह प्राचीन आदर्श फिर पूर्णतः चालू हो जायेगा अगर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश-मण्डल को, जो कानून और ज़ाब्ते के पूरे पंडित होंगे और जिनमें बुद्धिमत्ता कूट-कूट कर भरी होगी, नागरिकों के अधिकार के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय देने का अधिकार हो।

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य का समय समाप्त हो चुका है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** मुझे अभी और कई बातें कहनी हैं, श्रीमान्। मैं जानता हूं कि इस संशोधन के विरुद्ध यह तर्क दिया जायेगा कि "due process of law" शब्द स्पष्ट नहीं हैं तथा निश्चयात्मक नहीं हैं। किन्तु क्या मैं पूछ सकता हूं कि विधान में जो "morality" (नैतिकता) शब्द रखा गया है उसका ठीक-ठीक मतलब क्या है?

***उपाध्यक्षः** मैं माननीय सदस्य से अनुरोध करूंगा कि वह मेरी आज्ञा पर ध्यान दें। मैं दो बार यह सूचित कर चुका हूं कि उनका समय समाप्त हो गया है। आधा दर्जन सदस्यों ने—और योग्य सदस्यों ने—इस पर बोलने की मुझसे अनुमति मांगी है। मुझे विश्वास है कि माननीय वक्ता यह कभी नहीं चाहते हैं कि जो समय इनको दे सकता हूं उस में मैं कमी कर दूं।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** मैं हर्गिज़ यह नहीं चाहता कि अन्य वक्ता का समय कम किया जाये।

***उपाध्यक्षः** तो मैं आपको 2 मिनट का समय और देता हूं।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** धन्यवाद, श्रीमान्।

***श्री उपेन्द्र नाथ बर्मन** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): क्या इस समय मुझे चन्द शब्द कहने की इजाज़त है, श्रीमान्?

***उपाध्यक्षः** मुझे खेद है; मैं माननीय सदस्य की बात नहीं रख सकता।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** जैसा कि मैं कह रहा था, श्रीमान्, विधान में कितने ऐसे अन्य शब्द हैं जिनका कोई निश्चित अर्थ नहीं है। 'decency' तथा 'morality' (शालीनता और नैतिकता) इन शब्दों के कोई निश्चित अर्थ नहीं हैं।

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

और फिर यह कहा जाता है, श्रीमान्, कि अगर इस संशोधन को स्वीकार किया गया तो इससे जो अनिश्चितता उत्पन्न होगी उसके कारण शासन में कमज़ोरी आने की सम्भावना है। पर इससे हमारी स्वतंत्रताएं तो निश्चित हो जायेंगी, भले ही न्यायालय इस कानून विशेष पर विचार करके इसके रूप को अनिश्चित बता दे। इससे शासन में कमज़ोरी नहीं आयेगी। यह मैं मान सकता हूं कि सम्भवत: इससे शासन अपनी मनमानी नहीं कर सकता। पर इससे क्या? हम तो ऐसी सरकार चाहते ही हैं जो हमारे नागरिकों की स्वतंत्रताओं का सम्यक् ध्यान रखे। वास्तविक बात तो यह है कि अगर यह संशोधन पास हो जाता है तो यही हमारी स्वतंत्रताओं की आधारशिला होगी। यह तथा अनुच्छेद 13 जिसमें 'reasonable' शब्द है—यही दोनों—हमारा मैग्ना कार्टा यानी महा स्वतंत्रता पत्र होंगे। इससे विधान-मण्डल की निरंकुशता पर न्यायाधीश-वर्ग की जीत होगी। हमें अपनी स्वतंत्रताओं की रक्षार्थ वस्तुत: दो गढ़ या आश्रयस्थल अपेक्षित हैं। उनमें एक तो विधान-मण्डल है और दूसरा न्यायाधीश-वर्ग। किन्तु अगर कदाचित् विधान-मण्डल भी दलबंदी के बहाव में बह जाये या पार्टी से डर जाये तो विधान-मण्डल तथा अधिशासी वर्ग की ज्यादतियों से न्यायाधीश-वर्ग हमारी रक्षा करेगा।

गणतंत्र में, नागरिकों को अन्त में न्यायालय में ही शरण मिलती है जहां वह अपने अधिकारों और स्वतंत्रताओं को मान्यता दिलवा सकते हैं। मैं चाहता हूं कि न्यायाधीश-वर्ग को उसका समुचित और समादृत स्थान प्राप्त हो, वह विक्रमादित्य के न्यायसिंहासन पर समासीन हो ताकि उसकी छत्रछाया में नागरिकों के अधिकार तथा स्वातंत्र्य पूर्णत: सुरक्षित रहें।

मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि वह मेरे संशोधन को स्वीकार करे।

***श्री चिम्मनलाल चक्कूभाई शाह** [संयुक्त राज्य काठियावाड़ (सौराष्ट्र)] उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 15 में जो अधिकार दिया जा रहा है वह इस अध्याय में रखे गये मूलाधिकारों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस अधिकार का सम्बन्ध है हमारे प्राण तथा दैहिक स्वातंत्र्य से और इसके अभाव में अन्य सभी अधिकार व्यर्थ हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि इस अधिकार की व्याख्या करते

हुए हम इस बात को स्पष्ट कर दें कि इसके द्वारा हम क्या अधिकार देना चाहते हैं। इस अधिकार के प्रयोग पर हमें ऐसे प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिए जिनसे कि यह अधिकार ही व्यर्थ और प्रभाव-शून्य हो जाये। इसलिए मैं उस संशोधन का समर्थन करता हूं जिसमें कहा गया है कि– "except in accordance with the procedure established by law" (विधि द्वारा नियत कार्यप्रणाली को छोड़ कर अन्य प्रकार) शब्दों की जगह "without due process of law" (बिना समुचित विधि प्रणाली के) शब्द रखे जायें। "due process of law" ये शब्द अमेरिकन विधान से लिये गये हैं और इनको एक खास अर्थ मिल गया है। वह अर्थ यह है कि कानून की समीक्षा करने में न्यायालय को सिर्फ इसी बात के सम्बन्ध में विचार करने का अधिकार नहीं होगा कि ज़ाब्ता के मुताबिक कार्रवाई की गई है या नहीं—यानी वारंट कानून के मुताबिक जारी किया गया है या नहीं, दस्तखत और मुहर उस पर हैं कि नहीं बल्कि उसे इस बात का भी विचार करने का अधिकार होगा कि कानून के जो मूल प्रावधान हैं वह ठीक हों, समुचित हों, वह अनुचित, कठोर और स्वेच्छाचारपूर्ण न हों। इसका मतलब यह हुआ कि न्यायाधीश-वर्ग को अधिकार होना चाहिए कि कानून के सम्बन्ध में वह विचार कर सके। अमेरिका में न्यायाधीश-वर्ग को जिस प्रकार का अधिकार दिया गया है उससे अवश्य ही उनका दृष्टिकोण कुछ प्राचीन-पंथी हो गया है और कानून की स्थिरता जाती रही है। किन्तु इस सम्बन्ध में हमारा जो अनुच्छेद है वह दो बातों में अमेरिकन विधान के अनुच्छेद से भिन्न है। अमेरिकन विधान में 'life, liberty and property' (जीवन, स्वतंत्रता तथा सम्पत्ति) ये शब्द रखे गये हैं किन्तु अपने विधान में 'सम्पत्ति' शब्द नहीं रखा गया है क्योंकि इस शब्द के प्रयोग के कारण अमेरिका में बहुत कानूनी झगड़े हुए और बड़ी अनिश्चितता पैदा हुई। किन्तु 'due process of law' इन शब्दों के भाष्य की आवश्यकता जहां "जीवन और सम्पत्ति" के सम्बन्ध में पड़ी है, वहां न कोई अनिश्चितता ही रही है और न कोई कानूनी विवाद ही खड़ा हुआ है।

दूसरी बात यह है, श्रीमान्, कि हमने 'liberty' (स्वातंत्र्य) शब्द के पहले 'personal' (दैहिक) शब्द जोड़ दिया है और 'दैहिक स्वातंत्र्य रख कर इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि इस अनुच्छेद का सम्बन्ध प्रसंविदा सम्बन्धी स्वातंत्र्य

[श्री चिम्मनलाल चक्कूभाई शाह]

(liberty of contract) या अन्य ऐसी बातों से नहीं है बल्कि इसका सम्बन्ध केवल प्राण तथा दैहिक स्वातंत्र्य से ही है। इसलिये यह कहना गलत होगा कि 'due process of law' शब्दों से कानून के सम्बन्ध में कोई अनिश्चितता उत्पन्न हो सकती है या कि इससे कानून पर विचार करने में न्यायाधीश-वर्ग अनावश्यक हस्तक्षेप करेगा।

सभी संघानीय (Federal) विधानों में न्यायाधीश-वर्ग को ऐसी शक्ति प्राप्त रहती है जिसके अनुसार वह कभी-कभी कानून की वैधानिकता पर निर्णय दे सकता है। सभी संघानीय विधानों में यह शक्ति न्यायाधीश-वर्ग में निहित रहती है। उदाहरणार्थ मैं बताऊं कि इंग्लैण्ड में न्यायाधीश-वर्ग कभी यह नहीं कह सकता है कि पार्लियामेंट द्वारा स्वीकृत कानून अवैधानिक है। वह केवल यही कर सकता है कि कानून का भाष्य बता दे। किन्तु संघानीय विधानों में न्यायाधीश-वर्ग को यह निर्णय देने की शक्ति प्राप्त है कि कानून वैधानिक है या नहीं। अपने कई अनुच्छेदों में, हमने ही न्यायाधीश-वर्ग को लिखित रूप में यह शक्ति दी है कि वह इस सम्बन्ध में निर्णय दे सकता है कि कानून वैधानिक है या नहीं और विधान-मण्डल को उसे पास करने का अधिकार है या नहीं। मेरे मन में रंचमात्र भी सन्देह नहीं है कि इससे अधिशासी-वर्ग अपने किसी अधिकार पर मनमाने ढंग से अमल न करेगा और यह नियंत्रण बड़ा ही हितकर होगा।

कभी-कभी ऐसा होता है कि असाधारण परिस्थिति का सामना करने के लिए अधिशासी-वर्ग को असाधारण अधिकारों की ज़रूरत पड़ जाती है और सद्यस्कृत्यता की दशा के लिए वह विशेष कानून पास कर सकता है। विधान-मण्डल, जो कि साधारणत: अधिशासी-वर्ग द्वारा ही नियंत्रित होता है—क्योंकि बहुमत वाला दल ही अधिशासी-मण्डल यानी कैबिनेट बनाता है—सद्यस्कृत्यता की स्थिति के लिए अधिशासी-वर्ग को यह अधिकार दे दिया करता है। इसलिए यह उचित ही है हम न्यायाधीश-वर्ग को यह अधिकार दें कि वह कानून की वैधानिकता पर निर्णय दे सके।

कहा जा सकता है कि संकट काल में न्यायाधीश-वर्ग, हो सकता है, उन आवश्यकताओं को पूर्णत: न समझ सके जिनके कारण इस तरह का कोई कानून

बनाया जाये। किन्तु मेरे मन में ऐसी आशंका नहीं है। मुझे इसमें कोई शक नहीं है कि न्यायाधीश-वर्ग परिस्थिति सम्बन्धी आवश्यकताओं पर पूर्णत: विचार करेगा जिनके कारण विधान-मण्डल को ऐसा कोई कानून पास करना पड़ा हो। कभी-कभी ऐसा हुआ है कि इतना व्यापक कानून पास कर दिया गया है कि व्यक्ति अपने प्राण तथा स्वातंत्र्य से वंचित हो गया है और उसे अपने बचाव का कोई मौका भी नहीं दिया गया। अगर इस अनुच्छेद में 'without due process of law' शब्द रख दिये जाते हैं तो इसका परिणाम उससे कुछ और बुरा तो होगा नहीं जो मैं अभी बता चुका हूं। इससे यही हो सकता है कि कुछ लोग मौत और कैद की सज़ा से बच जायेंगे अगर न्यायाधीश-वर्ग की राय में कानून सख्त साबित हो जाता है। एक निर्दोष व्यक्ति को दण्ड मिले इससे क्या यह अच्छा नहीं है कि 9 दोषी ही दण्ड से बच जायें? अगर न्यायाधीश-वर्ग गलत निर्णय कर भी दे तो उसका अधिक से अधिक कुपरिणाम यही तो निकलेगा।

किन्तु आजकल स्वभावत: अधिशासी-वर्ग अधिकाधिक शक्ति पाने के लिए चिन्तित रहता है और वह पाता भी है। आजकल ऐसे-ऐसे कानून बनने लगे हैं कि अधिशासी-वर्ग को कानून बनाने की शक्ति सौंप दी जाती है और उनके अनुसार अधीनस्थ पदाधिकारियों को वारंट या इसी तरह की आज्ञा निकालने की शक्ति मिल जाती है। उदाहरण के लिए आप 'पब्लिक सेफ्टी मेज़र एक्ट' को ही लीजिए। इसके अनुसार, अगर पुलिस कमिश्नर को यह निश्चय हो जाये कि कोई व्यक्ति विशेष राज्य-हित के विरुद्ध काम करता है या यह कि उससे आम जनता की नि:शंकता संकट में पड़ जाती है तो बिना मुकद्दमा चलाये वह उसे हिरासत में ले सकता है।

हम जानते हैं कि इससे हमको ही नुकसान पहुंचता है कि पुलिस कमिश्नर जैसा अधिकारी भी निजी तौर पर मामले की छानबीन नहीं करता है जैसा कि उससे आशा की जाती है और अपने अधीनस्थ अधिकारियों की रिपोर्ट के आधार पर वारंट जारी कर देता है या उस पर अपना हस्ताक्षर दे देता है। ऐसी हालत में यह अच्छा है कि ऐसे अधिकारों के प्रयोग पर, अगर मनमाने ढंग से इन पर अमल किया जाता है तो, कुछ नियंत्रण लगा दिया जाये। इसलिए मैं पूर्णत: उस संशोधन का समर्थन करता हूं जिसमें अनुच्छेद में दिये गये शब्दों के स्थान पर

[श्री चिम्मनलाल चक्कूभाई शाह]

'without due process of law' शब्द रखने की बात कही गई है। मि. महबूबअली बेग ने ठीक ही बताया है कि अनुच्छेद में रखे गये शब्द जापानी विधान से लिए गये हैं किन्तु मसौदा-समिति ने उन अन्य प्रावधानों को नहीं अपनाया जिनसे इन शब्दों का अर्थ स्पष्ट होता है। मुझे डर है कि मि. महबूबअली बेग ने जो संशोधन रखा है कि "save in accordance with law" शब्द रखे जायें उससे उनका ही उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा। अगर वे यह चाहते हैं कि मसौदा-समिति ने जो पदसंहति रखी है उसको जापानी विधान के अन्य प्रावधानों के साथ मिलाकर पढ़ने से जो आशय उसका निकलता है वही आशय व्यक्त करने वाले शब्द उसके स्थान पर रखे जायें तो अच्छा यह होगा कि वह "without due process of law" शब्दों को स्वीकार कर लें और अपने "save in accordance with law" इन शब्दों को न रखें जो कि आयरिश विधान से लिये गये हैं और जिनका भी शायद वही मतलब है जो मसौदा-समिति द्वारा अनुच्छेद में रखे गये शब्दों का है। इसलिये मैं संशोधन नं. 528 का पूर्णतः समर्थन करता हूं।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरे संशोधन में भी, जो कि 523 नं. का है, यही कहा गया था कि "except according to procedure established by law" शब्दों की जगह "without due process of law" ये शब्द रखे जायें। यह अनुच्छेद नागरिकों के दैहिक स्वातंत्र्य तथा प्राण के सम्बंध में प्रत्याभूति देता है। गणतंत्रीय राज्य में प्राण तथा स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति कानून द्वारा दी जाती है। गणतंत्र का अर्थ ही यह है कि बजाय एक व्यक्ति के शासन के, चाहे वह व्यक्ति राजा के रूप में हो, निरंकुश एकतंत्र के रूप में हो, या जनसमुदाय के रूप में हो, हम पर कानून का शासन हो। इसके सिवाय गणतंत्र का और कोई अर्थ नहीं है। 'without due process of law' इन शब्दों से राज्य की अधिशासी शक्ति तथा विधि निर्माण सबंधी शक्ति दोनों पर ही एक आवश्यक प्रतिबंध लग जाता है। इनके पीछे जो सिद्धान्त सन्निहित है उसका ऐंग्लो-अमेरिकी कानून में एक लम्बा इतिहास है। यह पदसंहति कानून सम्बन्धी किसी खास नियम का निर्देश नहीं करती है बल्कि इसमें यह आदेश सन्निहित है कि न्याय ही मूलभूत सिद्धान्त है जिसका पालन होना चाहिए। न तो अंग्रेजी विधान में और न अमेरिकन विधान में ही कहीं इन शब्दों की व्याख्या की गई है किन्तु इस पदसंहति के सम्बंध में पहले जो कई

विवाद खड़े हुए हैं उनसे ही इनका अर्थ स्पष्ट होता रहा है। वस्तुत: राजा जान के समय में इंग्लैंड के कागज़ात में यह पदसंहति वर्तमान थी। वहां बैरनों ने राजा जान को 'मैग्ना कार्टा' नामक इतिहास प्रसिद्ध अधिपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया था। उस अधिपत्र में *'Per Legum Terrea'* ये शब्द आये हैं और आगे चलकर इनका अर्थ लिया जाने लगा है "without due process of law"। चार्टर के 39वें अध्याय में कहा गया है कि:

"No free man shall be taken, or imprisoned, disseized, or outlawed, exiled or in any way destroyed; nor shall we go upon him, nor send upon him, but by the lawful judgment of his peers or by the law of the land."

(सिवाय इसके कि लार्डों के वैध निर्णय के आधार पर या देश के कानून के आधार पर ऐसा किया जाये, अन्य किसी प्रकार किसी स्वतंत्र व्यक्ति को गिरफ्तार या कैद नहीं किया जायेगा, न उसे अधिकृत सम्पत्ति से अन्यायत: वंचित या कानून की शरण से वंचित किया जायेगा तथा न उसे निर्वासित किया जायेगा और न किसी भी रूप में उसको बर्बाद किया जायेगा; न राजा के लोग जाकर उसे पकड़ेंगे और न पकड़ने की आज्ञा निकाली जायेगी।)"

फिर इन शब्दों का प्रयोग हुआ है सन् 1331, 1351 तथा 1355 ई. में। एडवर्ड तृतीय के राज्य काल में कानून नं. 28 में कहा गया है:

"No man of what state or condition so ever he be, shall be put out of his lands or tenements, nor taken, nor imprisoned, nor indicted, nor put to death, without he be brought to answer by due process of law."

(जब तक कि समुचित विधि-प्रणाली द्वारा उसे अपनी सफाई देने का मौका न दिया जाये, किसी भी व्यक्ति को, चाहे उसकी दशा कुछ भी हो, उसके ज़मीन या लगान वाली जायदाद से न वंचित किया जायेगा, तथा न उसे गिरफ्तार या कैद किया जायेगा, न उस पर अभियोग लगाया जायेगा और न उसे प्राण से वंचित किया जायेगा।)

[श्री कृष्णचन्द्र शर्मा]

अमेरिकन विधान में, यह पदसंहति पहली बार सन् 1721 में प्रयुक्त हुई थी :

"Nor shall any person...be deprived of life, liberty or property, without due process of law."

(बिना समुचित विधि-प्रणाली के कोई भी व्यक्ति...अपने प्राण, स्वातंत्र्य या सम्पत्ति से वंचित न किया जायेगा।)"

उस पदसंहति का वास्तविक अर्थ यह है कि उसके द्वारा नागरिक को इस बात की प्रत्याभूति मिलती है कि अदालत उसके साथ समुचित न्याय करेगी और दोनों ही बातों को देखेगी कि विधि-प्रणाली समुचित रूप से बरती गई है या नहीं और जिस कानून के अनुसार उसे दोषी ठहराया जा रहा है वह ठीक तो है। उस सम्बन्ध में जो ज़ाब्ता रखा गया हो वह कानून के मुताबिक हो जो सभ्य समाज के विवेक में ठीक जंचे। जो मूलभूत कानून हो वह भी समुचित तथा सभ्य समाज की चेतना को ग्राह्य होना चाहिए जिससे कि न्याय हो सके। कानूनों की वैधानिकता को लेकर अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने जो विभिन्न निर्णय दिये हैं उनकी जांच करने पर पता चलता है कि न्याय के लिए मूलभूत इन चार सिद्धान्तों का पालन होना ही चाहिए। पहली बात तो यह कि कायदे के मुताबिक मुकद्दमा चलाया जाये, दूसरी बात यह कि न्यायालय, जहां उस मुकद्दमे की सुनवाई होती हो उसे कानूनन इस बात का अधिकार होना चाहिए कि वह मुकद्दमे की सुनवाई कर सके। तीसरे, प्रतिवादी को इस बात का मौका मिलना चाहिए कि अपना पक्ष वह उपस्थित कर सके और चौथे उसे वकील की सहायता देनी होगी और उसके वकील को यह मौका मिलना चाहिए कि गवाह से पूरी तरह जिरह कर सके। इन चार मूलभूत बातों के होने से ही मुकद्दमे की ठीक तौर पर सुनवाई हो सकती है।

जहां तक सामाजिक प्रगति की बात है मेरे मित्र पं. ठाकुरदास भार्गव इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कह चुके हैं और उनकी बातों को यहां दुहराने की मुझे कोई ज़रूरत नहीं। किन्तु आपकी जानकारी के लिए मैं एक फैसला पढ़कर सुनाऊंगा जिससे स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ेगा। श्री विलोबाई की "Constitution

of the United States" नामक पुस्तक (पृष्ठ 1692) से यह फैसला उद्धृत किया जा रहा है। उसमें कहा गया है:

उदाहरण के लिए सन् 1875 ई. में लोन एसोशियेशन बनाम टोपेका के मुकद्दमे में न्यायालय ने कहा था:

"यह तो मानना ही होगा कि प्रत्येक स्वतंत्र शासन (Government) में लोगों को कुछ ऐसे अधिकार प्राप्त रहते हैं जो राज्य के नियंत्रण से परे होते हैं। वह सरकार जो इन अधिकारों को नहीं मानती, जो अपने नागरिकों के प्राण, स्वातंत्र्य तथा सम्पत्ति को भी सदा अपनी व्यवस्था और अपने अबाध नियंत्रण के अधीन रखती है, एक निरंकुश सरकार ही कही जायेगी चाहे प्रजातंत्रात्मक रूप से उसमें सभी शक्तियां ही क्यों न केन्द्रीभूत हों। हुकूमत, राज्य अथवा म्युनिसिपल संगठन के सम्बंध में हम लोगों का सिद्धान्त इसके बिल्कुल विरुद्ध है कि कहीं भी असीम शक्ति केन्द्रित की जाये। इन सभी सरकारों में जो अधिशासी-वर्ग है, कानून निर्माण करने वाला वर्ग है, तथा न्यायाधीश-वर्ग है, इन तीनों की ही शक्तियां सीमित हैं और लिपिबद्ध कर दी गई हैं। सरकार का शक्तियों पर कुछ प्रतिबंध रहते हैं क्योंकि प्रत्येक स्वतंत्र सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी शक्तियों को सीमाबद्ध रखे। व्यक्तियों को कुछ ऐसे अधिकार होते हैं जिनसे राज्य उन्हें वंचित नहीं कर सकता। इन अधिकारों के अभाव में समाज रह नहीं सकता और सभी सरकारें, जो सरकार कहलाने के लायक हैं, इन अधिकारों को मान्यता देती हैं। उदाहरणार्थ कोई भी न्यायालय ऐसे किसी कानून को अवैध बताने में जरा भी द्विधाबोध न करेगा जो यह कहता हो कि अमुक दम्पति अब दम्पति के रूप में साथ नहीं रह सकते। उनमें से स्त्री को तो अमुक पुरुष की पत्नी बनना होगा और पुरुष को अमुक स्त्री का पति बनना होगा; जो यह कहता हो कि अमुक व्यक्ति का घर-द्वार अब अमुक की सम्पत्ति समझा जायेगा।'"

इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री एच. वी. पातस्कर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, संशोधन नं. 528 का समर्थन करने के लिए मैं खड़ा हुआ। हूं जिसमें कहा गया है कि "except according to procedure established by law" शब्दों की

[श्री एच.वी. पातस्कर]

जगह 'without due process of law" शब्द रखे जायें। मैं सभा का थोड़ा ही समय लूंगा और चन्द मिनटों में ही अपनी बात कह दूंगा। इस प्रश्न के कानूनी पहलू पर यहां काफी बहस हुई है। किन्तु मैं एक दूसरे ही दृष्टिकोण से इस संशोधन को रखना चाहता हूं। हमारा राज्य श्रीमान्, एक गणतंत्रात्मक राज्य होने जा रहा है। गणतंत्र में पार्टी का शासन होता ही है और हमारे देश में अभी पार्टी-हुकूमत एक नई चीज़ है और हमारे सामने ऐसी घटनाएं हुई हैं जिनके कारण हम यह सोचने लग गये हैं कि पार्टी-हुकूमत सम्भव है ऐसी प्रणाली का विनिधान करें जो उन सब अधिकारों को व्यर्थ कर दे, जो मूलाधिकारों के अध्याय में हमने नागरिकों को दिये हैं। अपने अनुभव से हमें मालूम है कि कई प्रान्तों में ऐसे कानून बना दिये गये हैं जिसमें किसी को हिरासत में रखने के सम्बन्ध में कुछ जाब्ते की बातें कही गई हैं। इन कानूनों की जनता ने बड़ी ही तीव्र आलोचना की है। इसलिए मैं कहूंगा, श्रीमान्, कि दैहिक स्वातंत्र्य के अधिकार की दृष्टि से यह नितान्त आवश्यक है कि "without due process of law" शब्द यहां रखे जायें। इन शब्दों के साथ मैं संशोधन का समर्थन करता हूं और इसके पक्ष में जो कुछ और कहा गया है उसको दुहराना नहीं चाहता।

***श्री के.एम. मुंशी:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन नं. 528 का समर्थन करना चाहता हूं जिसमें कहा गया है कि "except according to procedure stablished by law" शब्दों की जगह "without due process of law" शब्द रखे जायें। मेरी तुच्छ राय में अगर इस खण्ड को इसी रूप में रहने दिया जाता है तो इसका कुछ अर्थ ही नहीं होगा क्योंकि, न्यायालय द्वारा विधि-विहित प्रणाली अगर नहीं बरती गई तो उसके लिए ऐसे न्यायालय होंगे जहां अपील करके गलती को सुधारा जा सकता है। इस खण्ड की सार्थकता तो तभी है जब न्यायालय न सिर्फ यह देखें कि सज़ा ज़ाब्ते के मुताबिक दी गई है बल्कि इस बात को भी देखे कि मूलभूत कानून भी सही है या नहीं। हम एक गणतंत्रात्मक राज्य की स्थापना करना चाहते हैं। सभा ने बार-बार यहां अपने इस उद्देश्य को दुहराया है। गणतंत्र की विशेषता ही इसमें है कि व्यक्तिगत स्वातंत्र्य तथा सामाजिक नियंत्रण—इन दोनों में संतुलन हो। हमें यह बात न भूलनी चाहिए कि

विधान-मण्डल में जिस दल का बहुमत होता है उसे व्यक्तियों की स्वतन्त्रता की उतनी चिन्ता नहीं रहती जितनी कि इस बात की कि समाज पर नियंत्रण बना रहे। इसलिए कुछ ऐसी योजना बनानी ही होगी जिससे व्यक्तिगत स्वातंत्र्य तथा सामाजिक नियंत्रण दोनों का पल्ला बराबर रहे अर्थात् इन दोनों की आवश्यकताओं में संतुलन स्थापित किया जा सके। अमेरिका के प्रसिद्ध विधान-विशारद इस बात पर एक मत हैं कि इस अपेक्षित संतुलन के लिये उससे अच्छा और कोई मार्ग नहीं निकाला जा सकता है जो कि अमेरिकन विधान में अपनाया गया है। अवश्य ही, जैसा कि सभा को मालूम है, कानून-विशारदों को मतभेद में बड़ा आनन्द मिलता है और अमेरिका में भी इस व्यवस्था के विरुद्ध कुछ जनमत है। किन्तु जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री सी. सी. शाह ने बताया है, हमने काफी परिवर्तन के साथ अमेरिकन विधान की इस व्यवस्था को अपनाया है। अमेरिकन विधान में कहा गया है कि समुचित विधि-प्रणाली के सिवाय अन्य किसी प्रकार कोई भी नागरिक अपने प्राण, स्वातंत्र्य या सम्पत्ति से वंचित न किया जायेगा। इस खण्ड के कारण सम्पत्ति सम्बन्धी कानूनों में वहां बड़ी दिक्कत पड़ी थी। वह शब्द हटा दिया गया है। 'स्वातंत्र्य' शब्द का इतना व्यापक अर्थ लिया गया था कि उसके अन्दर कन्ट्राक्ट की स्वतंत्रता भी शामिल थी। इसलिए इस शब्द के पूर्व एक विशेषण रख करके इसे सीमित कर दिया गया है। अब यह खण्ड व्यक्तियों की स्वतंत्रता तक ही सीमित है अर्थात् बिना समुचित विधि-प्रणाली के कोई भी न अपराधी बताया जायेगा, न कैद में रखा जायेगा अथवा न उसे मृत्यु-दण्ड ही दिया जायेगा। संशोधन नं. 528 के द्वारा खण्ड को जिस रूप में रखने की कोशिश की जा रही है उसमें उसका यही सीमित अर्थ होगा।

अब हमें जिस प्रश्न पर विचार करना है वह मेरे ख्याल से केवल यह है कि 'due process' शब्दों का क्या असर होता है? अब इन शब्दों के प्रभाव को केवल दैहिक स्वातंत्र्य तक ही सीमित कर दिया गया है। इस खण्ड से न्यायालय को यह अधिकार हो जाता है कि वह केवल ज़ाब्ते की बात को ही न देखे अर्थात् वह इतना ही न देखे कि न्यायालय की अधिकार-सीमा के अन्दर वह मामला है या नहीं, विधान-मण्डल की अधिकार-सीमा के अन्दर वह कानून आता है या नहीं, बल्कि वह यह देख सकेगा कि मूलभूत कानून सही है या नहीं। अगर कोई

[श्री के.एम. मुंशी]

ऐसा कानून पास होता है जिससे शासन को किसी व्यक्ति के दैहिक स्वातंत्र्य का अपहरण कर लेने का अधिकार मिल जाता है तो न्यायालय इस बात पर विचार करेगा कि जो कानून पास किया गया है वह वस्तुतः क्या ऐसा है कि उस परिस्थिति में वह आवश्यक है। इसलिए, जैसा कि मैं कह चुका हूं, इससे यह होगा कि व्यक्ति के स्वातंत्र्य, तथा समाज पर नियंत्रण, इन दोनों में संतुलन आ जायेगा। इसका परिणाम यह होगा कि शासन को न्यायालय को इस बात का औचित्य समझाना पड़ेगा कि नागरिकों के दैहिक स्वातंत्र्य पर आघात करने वाला कानून किसलिए लागू किया गया है। यह आशंका कि 'due process' वाले खण्ड से अमेरिका में कानूनी व्यवस्था में बड़ी गड़बड़ी हुई, वस्तुतः सही नहीं है। आंकड़े तो मेरे पास मौजूद नहीं हैं किन्तु मुझे याद है कि मैंने कहीं ऐसा पढ़ा है कि "due process" को लेकर जितने भी मामले हुए हैं उनमें करीब 90 प्रतिशत में अमेरिकन न्यायालयों ने विधान-मण्डलों की कार्रवाई को ही कायम रहने दिया है। ऐसे मामलों में जिनमें दैहिक स्वातंत्र्य का प्रश्न था शासन को न्यायालय के समक्ष जाकर इस बात का औचित्य दिखलाना पड़ा था कि क्यों उस कानून का पास करना जरूरी था जिसके अनुसार अपील करने वाले व्यक्ति को दण्ड दिया गया था। गणतंत्र में यह नितान्त आवश्यक है कि शासन को इस बात का मौका दिया जाये कि जो पथ वह अपनाये उसका औचित्य प्रमाणित करे। और बातों के अलावा यह एक हितकर बात है कि शासन को इस बात का मौका मिले कि वह अपनी कार्रवाई का औचित्य अदालत को सिद्ध करे।

मुझे मालूम है कि कतिपय सदस्यों का यह ख्याल है कि आज इस देश में सद्यस्कृत्यता की जो दशा वर्तमान है उसमें सम्भव है कि इस खण्ड के बड़े घातक परिणाम हों। मैं सम्मानपूर्वक कहूंगा कि इस दृष्टि से सहमत होने में मैं असमर्थ हूं। (*बाधा*) प्रान्तों में हमारे जो सुरक्षा-कानून (Safety Acts) हैं, उन्हीं को लीजिए। देश की जो आज अवस्था है उसमें न्यायालय निश्चय ही उनको कायम रहने देगा और कदाचित यदि ऐसे कानूनों में से एक-दो न्यायालय ना भी कायम रहने दें तो इससे कुछ भी आता-जाता नहीं है। प्रान्त के विधान-मण्डल का समर्थन पाकर तथा वहां के सुयोग्य कानून-विशारदों की सहायता पाकर मानव

बुद्धि अवश्य ही इस रूप में कोई कानून बना लेगी कि वहां शान्ति और व्यवस्था कायम रखी जा सकेगी।

इसलिए मेरा कहना यह है कि यह खण्ड आवश्यक है और इसके दुरुपयोग की सम्भावना नहीं है। दुर्भाग्य से हमारे देश में जो विधान-मण्डल हैं उनमें एक दल का प्रबल बहुमत है और उसको विकट-विकट समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। स्वभावत: उनमें एक ऐसी प्रवृत्ति आ गई है कि वे पुलिस तथा अधिशासी-वर्ग को व्यापक अधिकार देने वाले कानूनों को जल्दबाज़ी में पास कर देना चाहते हैं। यदि ऐसे कानूनों के औचित्य पर निर्णय देने का अधिकार न्यायालय को न रहा तो फिर इन पर कोई रोक न रह जायेगी। उदाहरण के लिये मैं आपको बताऊं मैंने अभी उस दिन पढ़ा है कि अपने एक प्रान्त में एक ऐसा कानून बनने जा रहा है या शायद बन चुका है जिसके अनुसार अपराधी को मामले की पैरवी के लिए वकील की मदद न दी जायेगी। आखिर इसको आप कैसे रोकेंगे? एक दूसरे प्रान्त के सम्बन्ध में मैंने पढ़ा है कि वहां किसी अधिशासी-प्राधिकारी की रिपोर्ट या उसका कहना ही किसी बात का यथेष्ट प्रमाण माना जायेगा। यह ध्यान रहे कि सरकार के किसी सेक्रेटरी की रिपोर्ट को नहीं बल्कि मामूली प्राधिकारी की रिपोर्ट को यह वज़न दिया गया है। इससे अपराधी के लिए बड़ी कठिनाइयां पैदा हो जाती हैं और मैं समझता हूं, जैसा कि मैं कह चुका हूं, कि गणतंत्र में एक-न-एक ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे व्यक्ति-स्वातंत्र्य और सामाजिक-नियंत्रण इन दोनों का पल्ला बराबर रहे। अपनी वर्तमान आकस्मिक आवश्यकता के कारण शायद हम इस बात को भूल गये हैं कि यदि व्यक्ति-स्वातंत्र्य को इतनी गुंजाइश नहीं दी जाती है और न्यायालय का रक्षण इसे नहीं दिया जाता है तो इससे एक ऐसी परम्परा पैदा होगी जिससे अन्ततोगत्वा, जो भी थोड़ा-बहुत दैहिक स्वातंत्र्य हमें प्राप्त है वह भी जाता रहेगा। इसलिए मेरा अपना कहना यह है, श्रीमान्, कि इस संशोधन को हमें स्वीकार करना चाहिए।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद पर होने वाले वाद-विवाद से यह प्रकट होता है कि सभा के अधिकांश सदस्य 'due process' की पदसंहति को रखने के पक्ष में है और 'procedure established by law' की पदसंहति को नहीं रखना चाहते हैं

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

जिसका कि मसौदा-समिति ने आखिर में चल कर सुझाव दिया है। मैं यहां "आखिर में चल कर" शब्दों का प्रयोग इसलिए कर रहा हूं कि माननीय मित्र श्री मुंशी ने इसके सम्बन्ध में प्रतिकूल मत व्यक्त किया है।

मसौदा-समिति के साथियों के प्रति, उसके आदरणीय सभापति के प्रति तथा अपने प्रति मेरा यह कर्त्तव्य है कि कम से कम समिति द्वारा सुझाये गये परिवर्तन के औचित्य को बताने के लिये मैं चन्द शब्द यहां कहूं क्योंकि सम्भवत: सभा इस पर अन्तिम समय तक अपना मत बदल सकती है।

अंग्रेज़ी न्यायाधीशों के भाष्यानुसार 'due process' (समुचित प्रणाली) शब्दों से यही अर्थ सूचित होता था कि अधिकारों की रक्षा के लिए बने हुए नियमों और जाब्तों के मुताबिक समुचित कानूनी कार्रवाई की जाये और सम्बन्धित मामले में जैसी कार्यविधि लागू होती हो उसके अनुसार न्यायालय में ठीक-ठीक मुकद्दमा चलाकर फैसला किया जाये। यदि इस पदसंहति का ठीक-ठीक अर्थ लोग समझते जैसा कि अंग्रेज़ी न्यायाधीशों के भाष्य के अनुसार शुरू में इसका अर्थ लिया गया था तो शायद यहां इसको लेकर कोई कठिनाई ही न होती। किन्तु अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय में ऐसे अनेक विवादों में, जो राजनैनिक फैसले हुए हैं उनसे इस पदसंहति को एक भिन्न अर्थ मिल गया है। आज प्रो. विलिस के अनुसार, इस पदसंहति का अर्थ वही है जो किसी खास मामले में सर्वोच्च न्यायालय इसका अर्थ बतावे। सम्भव है कि गणतंत्र के कुछ प्रबल समर्थकों को न्यायाधीश-वर्ग पर अधिक विश्वास हो और जनप्रिय विधान-मण्डल कानून के रूप में जनता की जो भावना व्यक्त करे, उस पर उनको उतना विश्वास न हो। किसी अदालत में तीन या पांच न्यायाधीश बैठकर दोनों तरफ के वकीलों की दलीलों को, उनके लम्बे भाषणों को सुनकर यह कहते हैं कि उनकी राय में इस मामले में 'due process' का ठीक-ठीक अर्थ अमुक है। हो सकता है कि कुछ गणतंत्रवादियों को इस सम्बन्ध में इस तरह का फैसला ही ज़्यादा पसन्द हो और विधान-मण्डल द्वारा व्यक्त की हुई भावना तथा दायित्वपूर्ण अधिशासी-वर्ग द्वारा की हुई कार्रवाई उन्हें कम जंचती हो। 'due process' वाले सिद्धान्त का जिस प्रकार वहां विकास हुआ है उसके सिलसिले में आप देखेंगे अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने कभी भी एक-सा रुख नहीं रखा है। उसके निर्णय प्राय: परस्पर विरोधी हैं। अक्सर यह

हुआ है कि एक फैसले ने दूसरे फैसले को उलट दिया है। कानूनी पेशे के किसी सदस्य को, जिसे अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत मामलों का गहन ज्ञान है, मैं यह चुनौती दूंगा कि वह यह कहे तो सही कि 'due process' के भाष्य के सम्बन्ध में वहां एकरूपता है। जो भी सज्जन मेरे इस कथन की पुष्टि चाहते हैं वह लॉ रिपोर्ट का सभाष्य एडीशन उठाकर 15 वर्षों की सूची ले लें और फैसलों का मिलान कर लें। वह देखेंगे कि एक फैसला दूसरे से भिन्न है और अन्ततोगत्वा वह इसी निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि इस पदसंहति का कोई निश्चित आशय नहीं है। मौके पर जो भी प्रधान न्यायाधीश के रूप में उपस्थित था उसने जो ठीक समझा वही इस पदसंहति का अर्थ हुआ। जस्टिस होम्स का मत सामाजिक नियंत्रण के पक्ष में था और अन्य कई न्यायाधीश जो अनुदारदलीय मनोवृत्ति के थे उन्होंने व्यक्ति के स्वातंत्र्य और सम्पत्ति के पक्ष में अपना प्रबल मत दिया। इस मामले में अमेरिकन सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में एकरूपता है ही नहीं।

कई मित्रों ने तो यही मान कर अपनी वक्तृताएं दी हैं कि मानो वह केवल उन्हीं मामलों में लागू होगा जहां कोई हिरासत या कैद में रहेगा। न्यूनतम पारिश्रमिक के सम्बन्ध में सेवायोजन के नियंत्रण के सम्बन्ध में जो कानून हैं (the Minimum Wage Law or a Restraint on Employment) उनको भी, अमेरिकन सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पहले के निर्णयों में व्यक्ति की स्वतंत्रता पर आघात ही बतलाया है। इसके लिए दलील यह दी गई है कि व्यक्ति-स्वातंत्र्य का यह एक आवश्यक अंग है कि हर व्यक्ति को, चाहे वह स्त्री हो, चौदह वर्ष के ऊपर का बालक हो या मज़दूर हो, किसी भी कन्ट्राक्ट (ठेके) पर, जिसे वह पसन्द करता हो, एक पक्ष की हैसियत से रज़ामन्दी देने का हक है। उसकी इस स्वतंत्रता में दखल देने का बाहरी व्यक्ति को अधिकार नहीं है। इस दलील के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पहले के निर्णयों में यह मत व्यक्त किया है कि न्यूनतम पारिश्रमिक कानून (Minimum Wage Laws) व्यक्ति की स्वतंत्रता पर आघात करते हैं और ये लागू नहीं हो सकते। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि नई स्थिति आने के बाद अब इधर पासा बिलकुल पलट गया है।

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

किन्तु फिर भी इस सम्बन्ध में एकरूपता नहीं रही है। आशा है, अगर यह संशोधन पास हो जाता है तो इस खण्ड का भाष्य करने में हमारा सर्वोच्च न्यायालय अमेरिका की नज़ीर का अनुकरण न करेगा और खासतौर पर शुरुआत में तो वह ऐसा कदापि न करेगा, बल्कि वह इस रूप में इसका भाष्य देगा कि वह भारत की अवस्था के लिए तथा देश की समुन्नति और भलाई के लिए अनुकूल सिद्ध होगा। सामाजिक कानून बनाने में, मालिक और मज़दूर के सम्बन्ध में, बालक-बालिकाओं और स्त्रियों की रक्षा में इस खण्ड के कारण बड़ी बाधा पहुंचेगी। यह खण्ड यथेष्ट रूप में समुचित भी सिद्ध हो सकता है यदि हमारे न्यायाधीश केवल इतना करें कि वह समय की गति के अनुसार चलें और जो मामले उनके सामने आयें उन पर बुद्धिमत्ता का पूर्ण प्रयोग करें। किन्तु अंग्रेज़ी राज्य के प्रारम्भिक काल से ही हम लोगों के अन्दर वकीलों के लिए कानूनी दलीलों के लिए, कानूनी राय-मशवरे और अदालत के लिए कुछ विश्वास पैदा हो गया है। कानूनी पेशे में रहकर मैंने काफी नाम कमाया है, पैसा कमाया है और इस कारण मुझे व्यक्तिगत रूप से उन लोगों से कोई झगड़ा नहीं जो वकीलों में आस्था रखते हैं। अमेरिकन इतिहास के आरम्भिक काल में वहां वकीलों ने कभी दैहिक स्वातन्त्र्य के नाम पर, कभी सम्पत्ति-रक्षा के नाम पर बड़े-बड़े ट्रस्टों, कारपोरेशनों और कम्पनियों का ही साथ दिया जो उन्हें फीस में लम्बी रकमें दे सकते थे। आखिर "दैहिक स्वातंत्र्य" शब्द का वही आशय या अर्थ नहीं है जो कि हमारे कई मित्र बतलाते हैं। बिना ठीक तौर पर मुकद्दमा चलाये लोगों को हिरासत में रखा जाये, इस ख्याल से इन लोगों के दिलों को स्वभावतः ठेस पहुंचती हैं। मेरे दिल को भी इससे ठेस पहुंचती है, किन्तु 'due process' की पदसंहति के प्रसंग में "दैहिक स्वातंत्र्य" शब्दों को अमेरिकन न्यायालयों ने यह अर्थ दिया ही नहीं है। मैं विश्वास करता हूं कि सभा इस प्रश्न के अन्य विभिन्न पहलुओं पर भी पूरा ध्यान देगी। भारत की भावी समुन्नति, राज्य की भलाई और सुरक्षा, व्यक्ति को एक-न-एक हद तक स्वातंत्र्य देने की आवश्यकता, तथा व्यक्ति-स्वातंत्र्य एवं सामाजिक नियंत्रण के बीच सामंजस्य रखने की आवश्यकता—

इन सबका विचार करके ही सभा इस सम्बन्ध में किसी अन्तिम निर्णय पर पहुंचेगी। हमें एक और बात का भी ख्याल रखना होगा और वह बात यह है कि हमारा राज्य उतना सुरक्षित नहीं है जितना कि आज हम समझ रहे हैं। उदाहरण के लिए आप आमतौर पर होने वाले उन मामलों को ही ले लीजिए जिसमें बिना मुकद्दमा चलाये लोगों को नज़रबन्द कर दिया जाता है। आपको बता दूं कि एक वकील की हैसियत से मैं इसके खिलाफ हूं कि बिना सफाई देने का मौका दिये ही किसी को नज़रबन्द कर दिया जाये। किन्तु सफाई के लिये यह ज़रूरी नहीं है कि अदालत में ही बहस-मुबाहिसे के ज़रिये, शहादत के ज़रिये, जिरह के ज़रिये अभियुक्त अपनी सफाई दे। मैं जानता हूं कि आज मद्रास में एक विशेष समिति नियुक्त की गई है, जिसमें वहां के हाईकोर्ट के एक जज, वहां के ऐडवोकेट जनरल तथा एक और सज्जन हैं। यह समिति इसलिए नियुक्त की गई है कि वह नज़रबन्दों के सभी मामलों की छानबीन करे और यह देखे कि उनको नज़रबन्द रखने का समुचित कारण है कि नहीं। समिति के अभाव में सभी मामले अदालत के सामने जाते और वकीलों के लिये शायद यह एक अच्छी ही बात होती। यद्यपि मैं बूढ़ा हो चला हूं फिर भी भविष्य में वकालती द्वंद्व में भाग लेने का अभी भी मुझमें बल है—मैं सर्वथा निराश नहीं हूं।

इस संशोधन को जो समर्थन प्राप्त हुआ है उससे व्यक्त है कि विधान-मण्डल के सदस्यों का, हमारे विधान निर्माताओं का देश के न्यायाधीश-वर्ग में प्रबल विश्वास है। मसौदा-समिति ने 'due process' की जगह 'procedure' शब्द रखने का जो सुझाव दिया उसमें संभवत: उसका दोष इतना ही था कि उसने यह आशंका की कि न्यायाधीश-वर्ग कानूनों का भाष्य करने में कहीं अपनी सनक से न काम ले और जो जी में आये निर्णय न दे दे। मसौदा-समिति ने तो अपना सुझाव दे दिया है, पर इस पर अन्तिम निर्णय तो सभा को ही करना है। राज्य की सुरक्षा, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की आवश्यकता तथा राज्य और व्यक्ति में परस्पर मेल, इन सब बातों पर विचार करते हुए इस सभा को ही अन्तिम रूप से निर्णय करना होगा कि यह पदसंहति रखना ठीक है या नहीं। मैं अभी भी अपना विचार बदल सकता हूं। इसके पक्ष में अगर कुछ तर्क पेश किए जाते हैं, तो सम्भव है उनसे प्रभावित होकर मैं अपना मत बदल दूं।

***मि. ज़ैड. एच. लारी:** उपाध्यक्ष महोदय, पूर्ववक्ता न सभा का ध्यान उन खतरों की ओर आकृष्ट किया है जो संशोधन नं. 528 तथा 530 के द्वारा इस अनुच्छेद के संशोधित होने पर राज्य के लिये आ सकते हैं। मुझे उतना अनुभव तो नहीं है जितना कि मेरे माननीय पूर्ववक्ता को प्राप्त है किन्तु विधान-मण्डल की कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में गत दस वर्षों से जो भी थोड़ा-बहुत अनुभव मुझे मिला है, उसके आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि न केवल व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के ही हित में बल्कि इसलिए भी इस संशोधन को विधान में स्थान देना आवश्यक है कि विधान-मंडल सुचारु रूप से काम कर सके। पूर्ववक्ता महोदय को अधिकार है कि अपनी वकालती जिन्दगी की आखिरी मंजिल पर पहुंच कर इस पेशे पर कटाक्ष करें, किन्तु मैं कह सकता हूं कि न्याय-प्राप्ति के लिये वकीलों की सहायता बहुत ही आवश्यक एवं अपेक्षित है।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्। कानूनी पेशे पर मैंने कोई कटाक्ष नहीं किया।

***श्री ज़ैड.एच. लारी:** मैं उनकी बात को स्वीकार कर लेता हूं।

मैं समझता हूं कि इस सम्बन्ध में दो बातें आवश्यक हैं। हम सभी जानते हैं कि आजकल राज्य सर्वेसर्वा होता है, उसके हाथ में सभी शक्तियां रहती हैं उसके बल-प्रयोग की कोई हद नहीं है। किन्तु फिर भी जीवन के कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें बल-प्रयोग का अधिकार अधिशासी-वर्ग को न होना चाहिए और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य ऐसा ही क्षेत्र है। अमेरिका में 'personal' (दैहिक) शब्द तो कभी था ही नहीं। वहां केवल 'liberty' (स्वातन्त्र्य) शब्द ही विधान में था और सम्भवत: वहां की जो स्थिति थी उसमें इसका भाष्य इस प्रकार से किया जा सकता था कि जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी 'due process of law' (समुचित विधि प्रणाली) शब्द लागू हो सकें। किन्तु जब खंड में 'personal liberty' (दैहिक-स्वातन्त्र्य) शब्द रख दिया गया है तो मैं नहीं समझता कि कोई भी न्यायालय जिसे राज्य की आवश्यकताओं का और साथ ही व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की आवश्यकता का भी ज्ञान है वह राज्य के हित के प्रति इतना उपेक्षा भाव रखेगा कि इसका ऐसा भाष्य करेगा कि राज्य के सुचारु रूप से काम करने पर कोई

आघात पड़े। मेरे मित्र ने यह स्वीकार किया है कि अपने बाद के निर्णयों में अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने ही राज्य की आवश्यकताओं को स्वीकार किया है और अनुच्छेद का भाष्य इस प्रकार से किया है कि राज्य के सुचारु रूप से कार्य करने में कोई बाधा न पहुंचे। मैं यह कहूंगा कि हमारे देश का सर्वोच्च न्यायालय इस बात को अच्छी तरह समझेगा कि व्यक्ति को कहां स्वातन्त्र्य मिलना चाहिये और वह यह भी अच्छी तरह समझेगा कि राज्य की आवश्यकतायें क्या हैं और तदनुसार इस रूप से इसका भाष्य देगा जिससे व्यक्ति की स्वतन्त्रता सुरक्षित रहेगी।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** मसौदा-समिति ने भी अपने नोट में यही कहा है।

***श्री ज़ैड. एच. लारीः** मेरे माननीय मित्र ठीक कह रहे हैं। मसौदा-समिति ने, जिसके एक सदस्य मेरे पूर्ववक्ता मित्र भी थे, अपने सुझाव का एकमात्र कारण यह बताया था कि "due process of law" का कोई निश्चित अर्थ नहीं है और जापानी विधान में प्रयुक्त पदसंहति का अर्थ अधिक निश्चित है। इसमें शक नहीं कि जापानी विधान में जो शब्द रखे गये हैं उनका एक निश्चित अर्थ है क्योंकि कार्य-पद्धति को वहां स्पष्ट कर दिया गया है और यह लिपिबद्ध कर दिया गया है कि यही ज़ाब्ता बरता जायेगा। आखिर 'due process of law' इन शब्दों का मूल अभिप्राय क्या है? मेरी समझ से इसके दो अभिप्राय हैं। पहला तो यह कि किसी व्यक्ति को अपराधी बताने के पहले उसकी पूरी जांच होनी चाहिए और दूसरा यह कि मुकद्दमा चलाकर तब उसे सज़ा दी जाये। यदि विधान-मण्डल कोई ऐसी विधि निर्धारित करता है जिसके अनुसार उस व्यक्ति को, जिसे अपराधी बताया गया हो या जिसके अपराधी होने का शक हो, अपनी सफाई देने का मौका मिलता हो और तब पूरी छानबीन के बाद न्यायालय का निर्णय उसे दिया जाये तो मैं कहूंगा कि 'due process' का अभिप्राय पूरा हो जाता है। मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि वह इस बात पर विचार करे कि किसी भी देश में, चाहे वहां की जो भी स्थिति हो, जैसी भी अस्थिर अवस्था हो, इस बात की जरूरत है कि नहीं कि वहां हर नागरिक यह समझे कि सज़ा पाने के पहले उसे अपनी सफाई देने का मौका मिलेगा और पूरी छानबीन के बाद न्यायालय द्वारा किये गये निर्णय के अनुसार ही उसके साथ व्यवहार किया जायेगा न कि जबरदस्ती उसे नज़रबन्द कर दिया जायेगा? सभा को याद होगा कि अभी हाल में मानव-अधिकारों का

[श्री ज़ैड. एच. लारी]

मसौदा लिपिबद्ध करने का प्रश्न खड़ा हुआ था और इसको लिपिबद्ध कर भी दिया गया है। उसमें एक खण्ड इस आशय का भी है कि किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढंग पर नज़रबंद न किया जायेगा। अब मैं पूछता हूं कि मनमानी नज़रबंदी को रोकने का आखिर उपाय क्या है? अगर आप इस खण्ड का रूप यही रहने देते हैं अर्थात् इसमें "procedure established by law" शब्दों को ही रखते हैं तो इसका मतलब यह होगा कि विधान-मण्डल ही सर्वेसर्वा होगा और परिस्थिति के अनुसार जो भी ज़ाब्ता ठीक समझा जायेगा उसे न्यायालय को मानना होगा। किन्तु कुछ ज़ाब्ते ऐसे हैं जो प्रकृत्या अधिकार रूप में मनुष्य को प्राप्त हैं और विधान-मण्डल को इन अधिकारों पर हाथ डालने का हक नहीं होना चाहिए। व्यक्ति हो या विधान-मण्डल की सभायें हों या कोई भी जनसमुदाय हो, सभी कभी-कभी आवेग और उत्तेजना के शिकार हो जाया करते हैं और आप खुद समझ सकते है, श्रीमान्, कि आज की अवस्था में, खास करके अपने विधान को ध्यान में रखते हुए जो कि संसदात्मक शासन-पद्धति के लिए निर्मित है, विधान-मण्डल पर कैबिनेट का ही नियंत्रण होगा अर्थात् अधिशासी-वर्ग का ही नियंत्रण होगा। हमने अध्यादेश यानी आर्डिनेन्स का भी प्रावधान कर दिया गया है। इसका मतलब यह हुआ कि मंत्रिमण्डल जिसमें 8-10 सदस्य होंगे, स्थिति विशेष का निर्णय करके आर्डिनेंस निकालेंगे और विधान-मण्डल को उसका समर्थन करना होगा क्योंकि वैसा न करना मंत्रिमण्डल पर अविश्वास करना है। इस तरह विवेचन करने पर हम देखेंगे कि मंत्रिमण्डल या अधिशासी-वर्ग ही विधान-मण्डल है। इसलिए हमारे सामने यह सवाल उठता है कि क्या अधिशासी-वर्ग को उतनी व्यापक शक्ति देना ठीक होगा जिससे वह दैहिक-स्वातंत्र्य का जो मूलभूत-प्राथमिक-अधिकार नागरिकों को प्राप्त है उस पर भी हाथ डाल सके या यह उचित होगा कि अधिशासी-वर्ग की शक्ति पर कुछ नियंत्रण रखा जाय? अगर आप कोई नियंत्रण रखना चाहते हैं तो इस संशोधन को स्वीकार करके ही आप अपना अभीष्ट सिद्ध कर सकते हैं जिसे कि एक कांग्रेस सदस्य ने ही रखा है यानी नं. 528 का संशोधन। मेरा संशोधन जिसका नं. 530 है वह भी इसी आशय का है।

मेरे मित्र ने, जिन्होंने दूसरे पक्ष का प्रतिपादन करते हुए अभी भाषण दिया है, उदाहरण के रूप में ब्रिटिश काल में बताये गये कानूनों का उल्लेख किया, जिन अधिकारों का तब न्यूनन किया गया था: उनकी चर्चा भी और निर्दोष नागरिकों को हिरासत में रखे जाने की चर्चा भी। किन्तु इस सम्बन्ध में विनम्रतापूर्वक मैं यह निवेदन करूंगा कि प्रत्येक विधान-मण्डल और प्रत्येक शासन से ऐसी भूलों की सम्भावना हो सकती है जैसी कि ब्रिटिश सरकार ने की थी। कानून जो भी ज़्यादती करे उसका परिमार्जन आप यह कहकर नहीं कर सकते कि ये ज़्यादतियां ऐसे विधान-मण्डलों ने की हैं जिनको स्वयं जनता ने ही चुना है। इसी कारण से तो पृथक्-पृथक् दो क्षेत्र रखे गये हैं। एक व्यक्ति-स्वातंत्र्य का और दूसरा वह जहां राज्य हमारे जीवन पर आयंत्रण करता है। आप यह प्रश्न कर सकते हैं कि फिर राज्य के लिए बच ही क्या जाता है? व्यक्ति के दैहिक-स्वातंत्र्य को छोड़ कर अन्य सभी बातें तो राज्य के लिए ही बच जाती हैं। यहां आप राज्य की स्थिरता का प्रश्न उठा सकते हैं पर मैं कहूंगा कि अगर कोई ऐसा वर्ग या सम्प्रदाय है जो हिंसा की ओर उन्मुख है तो ऐसों से निपटने के लिए हमारे विधान में यानी अनुच्छेद 13 में यथेष्ट व्यवस्था है। ऐसे मामलों में राज्य इन लोगों के स्वातंत्र्य का न्यूनन कर सकता है और उनकी कार्रवाइयों पर रोक लगा सकता है। पर एक व्यक्ति क्या करेगा? अगर ऐसे दल हैं जिनके उद्देश्य राज्य की स्थिरता के लिए घातक हो सकते हों तो विधान में इसके लिए पर्याप्त प्रावधान हैं और उनके द्वारा आप इन दलों को अवैध करार दे सकते हैं। किन्तु प्रस्तुत खण्ड का दायरा तो बहुत ही सीमित है अर्थात् वह केवल दैहिक-स्वातंत्र्य से ही सम्बन्ध रखता है। मेरा कहना है कि हमारा राज्य इतना कमज़ोर नहीं है कि किसी व्यक्ति विशेष की कार्रवाई के फलस्वरूप यह विनष्ट हो जायेगा और यह भी स्मरण रहे कि व्यक्ति को हर बात की स्वतंत्रता ही नहीं रहेगी। आप उसे न्यायालय के सामने पेश करते हैं; अदालत उसके कारनामों के सम्बन्ध में निर्णय दे सकती है। इसमें शक नहीं कि उसे सफाई के लिए वकील की सहायता देनी होगी और उसके विरुद्ध साक्ष्य उपस्थित करने की ज़िम्मेदारी सरकार पर होगी। किन्तु उस व्यवस्था से क्या राज्य की शक्ति का न्यूनन होता है? क्या इससे राज्य का विनाश होता है? या क्या आप यह कहना चाहते हैं कि इससे राज्य की हत्या होती है? अपने पूर्व-वक्ता महोदय से ससम्मान मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि मेरा ऐसा ख्याल है कि उन्होंने

[श्री ज़ैड. एच. लारी]

अपने राज्य के नागरिकों के सम्बन्ध में बड़ा ही अनुदार दृष्टिकोण अपना रखा है और उससे भी अधिक अनुदार दृष्टिकोण है उनका अपने उस राज्य की शक्ति के सम्बन्ध में जो कि विधान के प्रयोग में आने पर यहां स्थापित होगा। इसमें शक नहीं कि हमें वास्तविकताओं को ध्यान में रखना होगा; कठोर सत्यों को हमें ध्यान में रखना होगा, किन्तु सभा को मैं एक बात की याद दिलाना चाहता हूं। अमेरिका में इस खण्ड को विधान में रखा गया है और जापानी विधान में भी इसी को अपना लिया गया हैं। आप जानते हैं जापान के विधान-निर्माण का काम अमेरिकनों ने किया है। अमेरिकनों ने जापान के लिए जो विधान बनाया है वह एक तानाशाही देश के लिए बनाया है जहां व्यक्ति स्वभावत: हिन्सोन्मुख है। जापान के लोग विश्व-शान्ति को दूर कर देना चाहते थे। ऐसे देश के लिए, ऐसे लोगों के लिए विधान बनाते समय भी उन्होंने खण्ड 31, 32, 33, 34 जैसे खण्डों को उसमें स्थान दिया जिनमें यह कहा गया है कि हर व्यक्ति को इन्साफ के लिए अदालत के पास जाने का हक है, जिसमें यह कहा गया है, किसी व्यक्ति को गिरफ्तार न किया जायेगा जब तक कि उसकी गिरफ्तारी का कारण न दिखाया जाये और हर व्यक्ति को सफाई के लिए वकील की सहायता पाने का हक है। मैं यह कहूंगा कि जब इस नवीनतम विधान—जापानी विधान—के निर्माताओं ने अनुभव के आधार पर, जापानियों के स्वभाव को जानते हुए भी, जो शान्तिप्रिय नहीं है, जैसा कि गत महायुद्ध में प्रकट हो चुका है, इन प्रावधानों को उनके विधान में स्थान दिया है तो इससे स्पष्ट है कि ये प्रावधान समय की कसौटी पर खरे उतर चुके हैं और इन्होंने व्यक्तियों के स्वातंत्र्य की रक्षा की है, राज्य की महिमा को उसकी पूर्णता को भी सुरक्षित रखा है। हमें दो बातों को सामने रखकर चलना होगा। एक तो यह कि दूसरों के अनुभव क्या हैं। इसमें शक नहीं कि हम प्रत्येक खण्ड की, एक न एक बात को लेकर आलोचना कर सकते हैं किन्तु दूसरे के अनुभवों को सामने रख कर ही इस सम्बन्ध में हमें आगे बढ़ना होगा। हमारे सामने दूसरे देशों के अनुभव मौजूद हैं और उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि "without due process" शब्दों को हम अपना सकते हैं, और उनके कारण राज्य के अस्तित्व पर कोई संकट न आयेगा। दूसरी बात यह है कि हम यह बखूबी जानते

हैं कि यहां ही नहीं बल्कि दुनिया में सभी जगह हर सभा के लिए इस बात की सम्भावना रहती है कि यह अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर बैठे। यह अवश्यम्भावी है। शक्ति लोगों को भ्रष्ट कर देती है। दूसरे देशों के अनुभवों से तथा शताब्दियों से जो हम देखते आ रहे हैं उससे, हमें फायदा उठाना चाहिए। अथवा क्या हमारे लिए यह ठीक होगा कि हम ऐसे लल्लू, बुद्धू के कहने पर चलें जो यह कहते हैं कि इस खण्ड में तो कुछ ऐसी बुराइयां हैं जिनसे राज्य ही ध्वस्त हो सकता है? मैं यह कहता हूं कि ऐसा कहना तो निराधार एक हौआ खड़ा करना है। इस हौआ के डर से हमें यह खण्ड नहीं स्वीकार कर लेना चाहिए। अगर यह खण्ड स्वीकृत होता है तो हमारा समूचा विधान ही निष्प्राण हो जायेगा। यह अनुच्छेद अपने वर्तमान रूप में बिल्कुल व्यर्थ है और समूचे विधान को निर्जीव बना देता है। इस संशोधन को अगर आप नहीं स्वीकार करते हैं तो अपनी भावी सन्तानों की कृतज्ञता खोते हैं। इसलिए मैं यह प्रार्थना करता हूं, श्रीमान्, कि यह संशोधन जिसका कि बहुत से सदस्यों ने समर्थन किया है, अवश्य स्वीकृत होना चाहिए।

इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** सभा कल प्रात: 10 बजे तक के लिए स्थगित होती है।

*इसके बाद विधान-परिषद् मंगलवार, 7 दिसम्बर सन् 1948 ई. के प्रात: 10 बजे तक के लिए स्थगित हुई।*

Con. 3. VII. 21. 48
350

अंक 7
संख्या 21

मंगलवार
7 दिसम्बर
सन् 1948 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

**पृष्ठ**

विधान का मसौदा-(जारी)..... 1375-1450
[अनुच्छेद 15, अनुच्छेद 20, नये अनुच्छेद 20-क, अनुच्छेद 21, 22, नये अनुच्छेद 22-क और अनुच्छेद 23 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

मंगलवार, 7 दिसम्बर सन् 1948 ई.

---

*उपाध्यक्ष (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः काल दस बजे आरम्भ हुई।*

---

## विधान का मसौदा-( जारी )

### अनुच्छेद 15-( जारी )

***उपाध्यक्षः** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) अब हम अनुच्छेद 15 पर आगे विस्तुत वाद-विवाद कर सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं, श्रीमान्, कि आप इस विषय को कुछ समय के लिये स्थगित कर दें?

***उपाध्यक्षः** सभा की क्या यही इच्छा है?

***माननीय सदस्यगणः** जी हां।

---

### अनुच्छेद 20

***उपाध्यक्षः** तो हम आगे के अनुच्छेद को ले सकते हैं, अर्थात् अनुच्छेद 20 को।

सभा के समक्ष यह प्रस्ताव है कि:

"अनुच्छेद 20 को विधान का अंग माना जाये।"

मेरे पास अनेक संशोधन आये हैं। उनको मैं पढ़ कर सुनाऊंगा। संशोधन संख्या 614 को पेश करने की अनुमति नहीं दी जायेगी क्योंकि उसका निषेधात्मक प्रभाव है।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[उपाध्यक्ष]

संशोधन संख्या 614 और 616 एक ही से हैं; संशोधन संख्या 614 को पेश किया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 20 के आरम्भ में 'subject to public order, morality and health' (लोक-व्यवस्था, शील तथा स्वास्थ्य के अधीन रहते हुये) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

श्रीमान्, भूल से ये शब्द रह गये थे। माननीय सदस्यों ने इन शब्दों को अनुच्छेद 19 में भी देखा होगा और ठीक बात तो यह है कि इन शब्दों को अनुच्छेद 20 में भी रखना चाहिये, क्योंकि हमारा यह आशय नहीं है कि धर्म-सम्बन्धी विषयों में निरपेक्ष अधिकार प्रदान किया जाये। जब कभी लोक की व्यवस्था, शील और स्वास्थ्य के लिये आवश्यक हो तो राज्य, इन समस्त संस्थाओं और इनके सभी कार्यों के आनियमन का अधिकार स्वयं अपने हाथ में रख सकता है।

***उपाध्यक्ष:** यदि संशोधन संख्या 616 पर आग्रह किया जाता है तो मैं उस पर मत ले सकता हूं। क्या इस विषय पर किसी सदस्य को कुछ कहना है?

(संशोधन संख्या 616 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि सूची संख्या 6 के संशोधन संख्या 614 पर एक संशोधन है। क्या उस संशोधन को पेश किया जायेगा?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): जी, हां। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 614 के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये :

कि अनुच्छेद 20 को उसी अनुच्छेद के खण्ड (1) के रूप में रखा जाये और अन्त में निम्न नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये:

"(2) Nothing in clause (1) of this article shall affect the operation of any existing law or prevent the State

from making any law for ensuring public order, public morality and public health."

[(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) की किसी बात से किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव अथवा लोक-व्यवस्था, लोक-शील और लोक-स्वास्थ्य का सुनिश्चय करने के लिये किसी विधि के बनाने में राज्य को अवरोध न होगा।]

श्रीमान्, अभी जिस संशोधन को डॉ. अम्बेडकर ने पेश किया है वह भी इसी आशय का है। मेरे विचार से "लोक की व्यवस्था, शील तथा स्वास्थ्य के अधीन" इस पदसंहति से संशोधन में सुझाई गई पदसंहति अधिक अच्छी होगी। "लोक-व्यवस्था आदि का सुनिश्चय करने के लिये" यह पदसंहति कदाचित् "लोक की व्यवस्था इत्यादि के अधीन" पदसंहति से उत्तम है। विधान में अन्य स्थानों पर इस प्रकार के मसौदा बनाने के ढंग को अपनाया गया है।

(सूची 1 के संशोधन संख्या 15 और 16 को तथा संशोधन संख्या 615 और 616 को पेश नहीं किया गया।)

*__श्री लोकनाथ मिश्र__ (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 20 के खण्ड (क) में 'maintain'(संधारण) शब्द के पश्चात् 'manage and administer' (प्रबन्धन और प्रशासन) शब्द रखे जायें।"

जिस व्यक्ति को धार्मिक और परोपकारी प्रयोजनों के लिये संस्थाओं के स्थापन और संधारण करने का अधिकार है उसे यदि वे संस्थायें लोक-व्यवस्था और लोक-शील अथवा स्थापित विधि का उल्लंघन न करें, तो उनके प्रबन्धन और प्रशासन का भी अधिकार होना चाहिये; अन्यथा कठिनाई होगी।

*__सैयद अब्दुर रऊफ__ (आसाम : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 20 के खण्ड (क) में 'religious and charitable purposes' (धार्मिक और परोपकारी प्रयोजनों) शब्दों के स्थान में 'religious, charitable and educational purposes' (धार्मिक, परोपकारी और शैक्षिक प्रयोजनों) शब्द रखे जायें।"

[सैयद अब्दुर रऊफ]

हम यहां एक ऐसे विषय पर विचार कर रहे हैं जो धार्मिक सम्प्रदायों को केवल धार्मिक और परोपकारी प्रयोजनों के लिये संस्थाओं के स्थापन और संधारण करने का अधिकार प्रदान करता है। धार्मिक शिक्षा उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितना धर्म। धार्मिक शिक्षा के अभाव में परोपकारी प्रयोजनों अथवा धार्मिक प्रयोजनों का कोई अर्थ न रह जायेगा। अत: मैं आशा करता हूं कि सभा मेरा संशोधन स्वीकार कर लेगी।

(सूची 1 के संशोधन नं. 17 तथा 620 और 622 पेश नहीं किये गये।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 20 के खण्ड (ग) में 'and immovable property' (और अचल सम्पत्ति) शब्दों के स्थान में 'immovable and incorporeal property' (अचल और अदैहिक सम्पत्ति) शब्द रखे जायें।"

खण्ड (ग) चल और अचल सम्पत्ति के अवापन की व्यवस्था करता है। ग्रन्थ-मुद्रण अधिकार अदैहिक सम्पत्ति है। वह न तो चल सम्पत्ति है और न अचल। इस संशोधन से यह कमी कदाचित पूरी हो जायेगी।

(संशोधन संख्या 623 से 625 तक पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** अनुच्छेद 20 पर अब विस्तृत वाद-विवाद किया जा सकता है।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, यद्यपि मैं अनुच्छेद 20 का समर्थन करता हूं, तथापि मैं यह कहूंगा कि उसकी वाक्य-रचना अथवा उसके क्षेत्र से मुझे प्रसन्नता नहीं है। मेरी बड़ी इच्छा है कि उसके (क) खण्ड में से 'और परोपकारी' शब्द निकाल दिये जायें। उसके पश्चात् अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय अथवा उसके किसी विभाग को (क) धार्मिक प्रयोजनों के लिये संस्थाओं के स्थापन और संधारण करने का अधिकार होगा।" धर्म का प्रसार करने और धर्म को स्वतन्त्रतापूर्वक अंगीकार करने के अधिकार को स्वीकार कर लेने के पश्चात्, वास्तव में, यह आवश्यक हो जाता है कि धार्मिक संस्थाओं की स्थापना और संधारण करने के अधिकार को भी स्वीकार किया जाये।

परन्तु मूलाधिकार के रूप में यह स्वीकार करना कि कोई धार्मिक सम्प्रदाय और उसका विभाग अपने ही लाभ के लिये परोपकारी संस्थाओं का संधारण कर सकता है और समाज के किसी अन्य वर्ग को उसके लाभ से वंचित कर सकता है, बंधुता और एकराष्ट्रीयता की भावनाओं के सर्वथा विरुद्ध है।

हमें यह स्पष्ट रूप में समझ लेना चाहिये कि इस अनुच्छेद के क्या अर्थ हैं, बल्कि मैं तो यह कहूंगा कि क्या-क्या अनिष्टकर अर्थ हैं। इसका अर्थ यह है कि हिन्दू-सम्प्रदाय का सदस्य होने के नाते अथवा उस सम्प्रदाय के खत्री कहे जाने वाले एक वर्ग का सदस्य होने के नाते, इस अनुच्छेद 20 के अन्तर्गत मुझे एक प्याऊ खोलने का अधिकार है, जहां सबको पानी पिलाया जाता है। इस अनुच्छेद के अनुसार प्याऊ खोलने का अधिकार मुझे मूलाधिकार के समान प्राप्त होगा और उस प्याऊ में मैं खत्रियों अथवा अन्य सवर्ण हिन्दुओं को पानी पीने दूंगा तथा हिन्दू-सम्प्रदाय के अन्य वर्गों को नहीं पीने दूंगा, मुसलमान और ईसाइयों को तो बिल्कुल ही न पीने दूंगा। इसका यह अर्थ है कि ईसाइयों के हस्पताल में केवल ईसाइयों को ही भरती किया जायेगा और एक गैर-ईसाई को, चाहे उसे इलाज की कितनी ही आवश्यकता क्यों न हो, और चाहे वह ईसाइयों के हस्पताल के दरवाज़े पर पड़ा हुआ अन्तिम सांसें ही क्यों न ले रहा हो, वहां दाखिल न किया जायेगा। इसका अर्थ है कि सवर्ण हिन्दुओं को प्याऊ खोलने का मूलाधिकार होगा और साथ ही साथ अनुसूचित जातियों के सदस्यों को पानी न पिलाने का भी अधिकार होगा। श्रीमान्, इसका अर्थ यह है कि मुसलमान अपनी 'सबील' में गैर-मुसलमानों के पानी पीने पर रोक लगा सकता है। मुझसे तो हमेशा यह कहा गया है कि जाति और धर्म का भेदभाव किये बिना सबको मुफ्त पानी पिलाना इस्लाम धर्म के अनुसार एक बड़ा ही पुनीत कार्य है। यदि मेरे मुसलमान मित्र चाहते हैं कि मूलाधिकार के रूप में उनको यह अधिकार प्राप्त हो तो मुझे आश्चर्य होगा। मुझे इस बात पर आश्चर्य होगा यदि पिछड़ी हुई अथवा अनुसूचित जातियों के मेरे मित्र यह चाहें कि सवर्ण हिन्दुओं को यह मूलाधिकार हो कि वे ऐसी प्याऊ खोल सकें जिनमें अनुसूचित जाति के लोगों को पानी न पिलाया जाये। मुझे विश्वास है कि न तो मेरे मुसलमान मित्र और न अनुसूचित जाति के मित्र इस अधिकार को मूलाधिकार के रूप में प्राप्त करना चाहते हैं।

श्रीमान्, मेरे एक ईसाई मित्र ने जो शायद यह नहीं जानते कि उनके प्रति मेरे हृदय में बड़ा सम्मान है और मैं यह भी कहूंगा कि उनके प्रति मेरे हृदय में बड़ा

[श्री जसपतराय कपूर]

प्रेम है, मुझसे अभी एक दिन कहा कि ईसाइयों का एक विशेष वर्ग अपने लिये एक पृथक् हस्पताल चाहता है जिसमें मृत्यु-समय अथवा अपने अन्तिम समय वे ईसाई पादरियों से क्रिया-कर्म करा सकें। मेरी यह मन्शा नहीं है, श्रीमान्, कि उनको यह विशेष अधिकार और सुविधा न मिले। वे इस विशेष अधिकार और सुविधा को केवल अपने ही हस्पताल में नहीं, बल्कि देश के प्रत्येक हस्पताल में प्राप्त कर सकते हैं। प्रश्न यह नहीं है कि उनको यह सुवधिा अपने हस्पताल में मिले या अन्य हस्पतालों में, परन्तु प्रश्न यह है कि ईसाइयों के चिकित्सालयों को गैर-ईसाइयों को न भरती करने का अधिकार दिया जाये या नहीं। मैं ईसाई नहीं हूं, पर ईसाई-धर्म का मैं बहुत सम्मान करता हूं और मैं साहसपूर्वक यह कह सकता हूं कि किसी भी ईसाई-संस्था की ओर से अगर ऐसा किया जाता है तो यह काम वस्तुतः ईसाइयों के सिद्धान्तों के प्रतिकूल होगा। श्रीमान्, तो फिर ऐसे अधिकार को मूलाधिकार के रूप में क्यों स्वीकार किया जाये?

आज हमारा समाज असंगठित रूप में है। उसमें अनेक जातियां, मत और सम्प्रदाय हैं। हम इन साम्प्रदायिक संस्थाओं को अब तक सहन करते चले आये हैं और हमें कुछ और अधिक समय के लिये उनको सहन करना होगा। ऐसा कोई भ्रम न हो कि "और परोपकारी" शब्दों के हटाने से वर्तमान अधिकार अथवा वर्तमान रियायतें छिन जायेंगी। यह अधिकार नहीं हैं। यह रियायत तो समाज की कमज़ोरी के कारण हमें मिली है। इसलिये इस रियायत को तब तक रहने दिया जाय, जब तक कि समूचा राष्ट्र स्वयं ही यह अनुभव न करे कि यह एक ऐसी बात है जो कि समूचे देश के हितों के विरुद्ध है, जो राष्ट्र के ऐक्य के विरुद्ध है और जो भ्रातृत्व अथवा बंधुत्व की भावना के प्रतिकूल है। जब तक समाज स्वयं इन बातों का अनुभव न करे तब तक इस रियायत को रखा जाये। पर प्रश्न तो यह है कि क्या यह जरूरी है कि इस अधिकार या रियायत को विधान में लिपिबद्ध करके आगे के लिये स्वीकार किया जाये? आप तो न केवल इसे विधान में लिपिबद्ध कर रहे हैं, बल्कि इसको इतना महत्त्वपूर्ण बना रहे हैं कि मूलाधिकार के रूप में इसे रखने जा रहे हैं।

मैं माननीय सदस्यों से निवेदन करूंगा कि वे "और परोपकारी" शब्दों के रहने देने का जो गम्भीर अर्थ होगा, उसको समझें। मैं अपने यहां का एक उदाहरण दूंगा और उससे माननीय सदस्य समझ जायेंगे कि यदि हम इस अनुच्छेद को इसी वर्तमान रूप में स्वीकार कर लेंगे तो उससे क्या गम्भीर परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है। मेरे यहां कुछ वर्ष पूर्व एक उच्च वर्ण के हिन्दू ने किसी खास जगह

एक प्याऊ लगाया और उस प्याऊ पर अनुसूचित जाति के लोगों को पानी नहीं पिलाया जाता था। इससे हम लोगों को, विशेषकर कांग्रेसियों को बड़ा क्षोभ हुआ। हिन्दू-सम्प्रदाय के उस कट्टर धर्मपरायण वर्ग के पास कांग्रेसी गये और इस रोक को दूर करने की उससे प्रार्थना की। कट्टरपन्थियों ने इस बात को न माना। अन्त में फल यह हुआ कि साम्प्रदायिक दंगा हो गया। इसके बाद कुछ तो अपने आग्रह से और कुछ दबाव से हम उन आयंत्रणों को दूर करने में सफल हुये। पर यदि विधान-परिषद् इसी अयंत्रण अथवा वर्जनाधिकार को मूलाधिकार-सूची में मूलाधिकार के रूप में रखती है तो कट्टरपन्थी हमारे विधान की पवित्र पुस्तक को हमारे ही मुंह पर फैंकेंगे और कहेंगे कि "हमारे प्याऊ के सम्बन्ध में ऐसी रोक लगाने का हमें अधिकार देकर अब आप यह कैसी मूर्खतापूर्ण बातें कर रहे हैं।"

वे कहेंगे कि देश की सर्वोच्च संस्था ने, विधान-निर्मात्र पूर्ण-सत्ताधारी विधान-परिषद् ने जब इसे मूलाधिकार के रूप में स्वीकार कर लिया है, तो अब आप हमसे यह क्यों कहते हैं कि तुम गलती कर रहे हो, तुम्हें अपने प्याउओं को हिन्दू-सम्प्रदाय के समस्त वर्गों के लिये खोल देना चाहिये? इसलिये मैं सम्मान-पूर्वक सभा से प्रार्थना करूंगा कि वह इन शब्दों को निकालना स्वीकार कर ले।

श्रीमान्, मुझे यह बताया गया है कि इन शब्दों का रखना अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के हित में है। मैं यह नहीं समझ सकता कि यह किस प्रकार से किसी अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के हित में है। मैं यह भी नहीं समझ सकता कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय के हित में भी यह किस प्रकार से है। यदि समस्त अल्पसंख्यकों को एकत्रित कर दिया जाये तो भी वे इतने धनवान् नहीं होंगे जितने कि बहुसंख्यक हैं। अत: यदि बहुसंख्यक सम्प्रदाय चाहे तो अल्पसंख्यक सम्प्रदायों की अपेक्षा बहुत अधिक संख्या में परोपकारी संस्थायें स्थापित कर सकता है और यदि बहुसंख्यक की इन परोपकारी संस्थाओं से अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के सदस्यों को लाभ नहीं उठाने दिया जाता और उनका प्रयोग नहीं करने दिया जाता तो वास्तव में अल्पसंख्यक सम्प्रदायों को ही हानि होगी, न कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय को। हां, यह उसके लिये एक कलंक-कालिमा ही होगा, पर यह एक दूसरी बात है। इस कारण मैं यहां अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के उपस्थित सदस्यों से निवेदन करूंगा कि वे इन शब्दों के निकालने पर सहमत हो जायें। यदि वे इन शब्दों के निकालने पर राज़ी हो जाते हैं तो मुझे विश्वास है कि सभा एकमत हो कर इन शब्दों का निकालना स्वीकार कर लेगी और इस अनुच्छेद में सुधार करेगी। यदि वे इस बात से सहमत नहीं हैं तो जिस रूप में यह अनुच्छेद

[श्री जसपतराय कपूर]

है उसी रूप में हमें इसे स्वीकार कर लेना चाहिये, क्योंकि हमें कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये जो उनको मान्य और रुचिकर न हो। हर्षपूर्वक नहीं, वरन् कुछ खेद और निराशा के साथ-साथ इन शब्दों में मैं अनुच्छेद 20 का समर्थन करता हूं और सभा से अन्तिम निवेदन करता हूं कि इन शब्दों के निकालने में वह सहमत हो। यदि आवश्यक हो तो, श्रीमान्, मैं माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर से निवेदन करूंगा कि वे इस खण्ड पर अन्तिम निर्णय अभी स्थगित रखें और अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के सदस्यों से परामर्श करें कि वे इन शब्दों के निकालने से सहमत हैं या नहीं और उसके बाद तदनुसार इस अनुच्छेद में संशोधन करें।

श्रीमान्, इन शब्दों के निकालने का सुझाव रखने के लिये एक और कारण है, यद्यपि वह कारण कुछ अधिक ठोस नहीं है। श्रीमान्, अन्तिम क्षण में मैं इस निर्बल तर्क पर ज़ोर दे रहा हूं, क्योंकि कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि सबल तर्क काम नहीं आते और अशक्त तथा निर्बल तर्क काम दे जाते हैं। इस उप-अध्याय का शीर्षक "धर्म-सम्बन्धी अधिकार" है और, श्रीमान्, "और परोपकारी" शब्द सचमुच ही इस अध्याय में ठीक प्रकार से नहीं बैठते। यदि अन्य तर्क के बल पर नहीं तो कम से कम पारिभाषिक आधार पर ही मैं माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर से इन शब्दों के निकालने से सहमत होने के लिये निवदेन करूंगा। इन शब्दों के साथ मैं अनुच्छेद 20 का समर्थन करता हूं।

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष, मेरा विचार इस अनुच्छेद पर बोलने का नहीं था, पर मैंने यह देखा कि मेरे माननीय मित्र, जो कि अभी बोल चुके हैं, अल्पसंख्यकों से निवेदन करते ही रहे। श्रीमान्, मैं सभा से यह कहना चाहता हूं कि इस देश में कोई भी अल्पसंख्यक नहीं है। असाम्प्रदायिक राज्य में अल्पसंख्यक नाम की कोई वस्तु नहीं है। मुझे भी वही अधिकार है, मेरी भी वही स्थिति और कर्त्तव्य हैं, जो कि अन्य किसी व्यक्ति के। मैं चाहता हूं कि जो अपने आपको बहुसंख्यक सम्प्रदाय का समझते हैं, वे इस बात को भूल जायें कि आज इस देश में कोई अल्पसंख्यक हैं।

(**एक माननीय सदस्य:** धन्य, धन्य!)

***श्री तजम्मुल हुसैन:** श्रीमान्, अनुच्छेद 20 के सम्बन्ध में जहां तक मैं समझा हूं, मेरे माननीय पूर्व वक्ता मित्र, यह चाहते हैं कि खण्ड (क) को निकाल दिया जाये। मैं अभी अनुच्छेद 20 के खण्ड (क) को पढ़ कर सुनाता हूं। वह इस प्रकार है:

"प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय अथवा उसके किसी विभाग को:

(क) धार्मिक और परोपकारी प्रयोजनों के लिये संस्थाओं के स्थापन करने और संधारण करने का अधिकार होगा।"

श्रीमान्, यह अनुच्छेद प्रत्येक व्यक्ति को, यदि वह चाहे तो, अपनी निज़ी धार्मिक संस्थायें खोलने का अधिकार प्रदान करता है, चाहे फिर वह किसी धर्म का हो अथवा किसी धर्म को मानता हो। यदि किसी व्यक्ति के पास धन है और मृत्यु-समय वह वसीयत करना चाहता है और किसी निज़ी रूप के परोपकारी अथवा धार्मिक प्रयोजनों के लिये अपनी सम्पत्ति को अर्पण करना चाहता है तो, श्रीमान्, मैं नहीं समझता हूं कि लोग इसमें क्यों बाधा डालें। क्योंकि जैसा कि मैं कह चुका हूं, धर्म, व्यक्ति और सृष्टिकर्त्ता के मध्य का एक निज़ी विषय है और यदि मैं यह चाहूं कि मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरी सम्पत्ति का किसी विशेष प्रयोजन के लिये प्रयोग हो तो मुझे ऐसा कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि राज्य इसमें क्यों बाधा डालें। यह कोई ऐसा प्रश्न नहीं है, जिसमें सार्वजनिक हित की बात सन्निहित हो। यह तो केवल व्यक्ति की निजी इच्छा की बात है कि उसके धर्म का एक विशेष रीति से पालन हो।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): निजी अथवा सार्वजनिक संस्थाओं से माननीय सदस्य का क्या अर्थ है?

***श्री तजम्मुल हुसैन:**

"प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय अथवा उसके किसी विभाग को–

(क) धार्मिक और परोपकारी प्रयोजनों के लिये संस्थाओं के स्थापन और संधारण करने का अधिकार होगा।"

अनुच्छेद के ठीक यही शब्द हैं। मैं चाहता हूं कि ये शब्द जहां के तहां रहें। मैं इन शब्दों को निकालना नहीं चाहता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे कुछ नहीं कहना है।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं एक-एक करके संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 20 के आरम्भ में 'Subject to public order, morality and health' (लोक की व्यवस्था, शील तथा स्वास्थ्य के अधीन रहते हुये) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 20 को उसी अनुच्छेद के खण्ड (1) के रूप में रखा जाये और अन्त में निम्न नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(2) Nothing in clause (1) of this article shall affect the operation of any existing law or prevent the State from making any law for ensuring public order, public morality and public health.' "

[(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) की किसी बात से किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव अथवा लोक-व्यवस्था, लोक-शील और लोक-स्वास्थ्य का सुनिश्चय करने के लिये किसी विधि के बनाने में राज्य को अवरोध न होगा।]

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 20 के खण्ड (क) में 'maintain (संधारण) शब्द के पश्चात् 'manage and administer' (प्रबन्धन और प्रशासन) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 20 के खण्ड (क) में 'religious and charitable purposes' (धार्मिक और परोपकारी प्रयोजनों) शब्दों के स्थान में 'religious, charitable and educational purposes' (धार्मिक, परोपकारी और शैक्षिक प्रयोजनों) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 20 के खण्ड (ग) में 'and immovable property' (और अचल सम्पत्ति) के स्थान में 'immovable and incorporeal property' (अचल और अदैहिक सम्पत्ति) शब्द रखे जायें।"

*प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 20 को स्वीकार किया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार किया गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 20 विधान में जोड़ा गया।*

---

## नया अनुच्छेद 20-क

***उपाध्यक्ष:** अब हम मि. महबूब अली बेग के संशोधन संख्या 626 पर आते हैं। मैं इसे पेश करने की आज्ञा नहीं देता, क्योंकि सभा ने ऐसे ही दो संशोधनों को रद्द कर दिया है। वे दो संशोधन संख्या 612 और 440 हैं।

अब हम अनुच्छेद 21 पर आते हैं।

---

## अनुच्छेद 21

***उपाध्यक्ष:** हम एक-एक करके संशोधनों पर विचार करेंगे।

संशोधन संख्या 627 नियम-विरुद्ध है, क्योंकि उसका प्रभाव निषेधात्मक है।

(संशोधन संख्या 628, 629, 630, 634 और 631 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 632। इस संशोधन के प्रथम भाग को, जो सैयद अब्दुर रऊफ के नाम से है, पेश करने की आज्ञा नहीं दी जाती है, क्योंकि वह शाब्दिक संशोधन होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। दूसरे भाग को मैं पेश करने की आज्ञा दे सकता हूं।

***सैयद अब्दुर रऊफ:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 21 में 'which' (जिनकी) शब्द के पश्चात् 'wholly or partly' (पूर्ण अथवा आंशिक) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है, तो यह अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा–"कोई भी व्यक्ति ऐसे करों के देने के लिये संबाधित न किया जायेगा जिनकी पूर्ण अथवा आंशिक आय किसी विशेष धर्म अथवा धार्मिक सम्प्रदाय की उन्नति अथवा संधारण में व्यय करने के लिये विशिष्ट रूप से नियत कर दी गई हो।" यदि मेरा संशोधन स्वीकार नहीं किया जाता है, तो किसी व्यक्ति

[सैयद अब्दुर रऊफ]

को ऐसे करों के देने के लिये संबाधित किया जा सकता है जिनकी आय का कुछ भाग धार्मिक प्रयोजनों के लिये नियत कर दिया हो। निश्चय ही यह वांछनीय नहीं है और मेरे विचार से यदि मेरा संशोधन स्वीकार नहीं किया जाता है तो इस अनुच्छेद के उद्देश्य का ही खण्डन हो जायेगा। इसलिये मैं आशा करता हूं कि मेरा संशोधन सभा द्वारा स्वीकार कर लिया जायेगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** उपाध्यक्ष, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 21 में 'the proceeds of which are' शब्दों के स्थान में 'on any income which is' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, पहले वाले संशोधन का प्रयोजन मेरे संशोधन से सिद्ध हो जायेगा और इन दोनों पर साथ-साथ विचार किया जाना चाहिये। अनुच्छेद में यह कहा गया है कि "कोई भी व्यक्ति ऐसे करों के देने के लिये संबाधित न किया जायेगा जिनकी आय (proceeds), इत्यादि इत्यादि"। यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो फिर वह इस प्रकार होगा : "कोई भी व्यक्ति किसी आय (income) पर ऐसे करों के देने के लिये संबाधित न किया जायेगा, इत्यादि, इत्यादि।" श्रीमान्, कर, समूची आमदनी (proceeds) पर नहीं दिये जाते, वरन् आय (income) पर दिये जाते हैं। समूची आमदनी का अर्थ पूर्ण प्राप्ति से है। कर समूची आमदनी पर नहीं लगाये जाते, बल्कि आय पर लगाये जाते हैं। यह ठीक है कि आमदनी शब्द की व्यापकता में कर की सीमा "जो किसी विशेष धर्म अथवा धार्मिक या परोपकारी संस्था की स्थापना या उसे चलाने के लिये विशेषतया विनियुक्त न कर दी हो" शब्दों द्वारा बांध दी गई है। किन्तु मेरा कहना तो यह है कि किसी व्यवसाय अथवा किसी सम्पत्ति की पूरी आमदनी किसी धर्म अथवा परोपकारी सम्प्रदाय के लिये लगाई नहीं जाती। और इसका कारण यही है कि धर्म अथवा धार्मिक सम्प्रदायों के लिये जो कुछ आय लगाई जाती है वह इतनी ही आय होती है जो वसूल रकम में से वसूली में किये गये खर्चे को और अन्य खर्चे को काट देने से बचती है। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि आय (income) शब्द अधिक उपयुक्त है और यदि इस शब्द को स्वीकार कर लिया जाये तो जो कठिनाई अपने संशोधन संख्या 632 को पेश करते हुये मि. सैयद अब्दुर रऊफ ने उपस्थित की

है, उसका भी निराकरण हो जायेगा। मैंने और उन्होंने यह अनुभव किया कि इस प्रसंग में कुछ कठिनाई आती है और उसे दूर करने के उद्देश्य से ही ये संशोधन रखे गये हैं।

(संशोधन संख्या 635 और 636 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** इस अनुच्छेद पर अब विस्तृत वाद-विवाद हो सकता है।

**श्री गुप्तनाथ सिंह** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे आश्चर्य है कि भारतवर्ष में धर्म के नाम पर जो असंख्य अनाचार और अत्याचार हुए हैं, उन्हें आज हम दफा 21 द्वारा चिरस्थायी बनाने जा रहे हैं। जो 21 दफा है, उसमें कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति की धार्मिक संस्थाओं के नाम पर जो कुछ भी सम्पत्ति होगी उसे उसके ऊपर कर (टैक्स) देने से मुक्त कर दिया जायेगा। मैं समझता हूं कि भारतवर्ष में अब तक जितनी सम्पत्ति धर्म के नाम पर, धार्मिक संस्थाओं के नाम पर मंदिरों, मस्जिदों और गिर्जाघरों के नाम पर है, उससे देश का बहुत बड़ा अहित हो रहा है। कोई भी सामाजिक उपयोग नहीं है उस सम्पत्ति का। मैं यह चाहता हूं कि अपने असाम्प्रदायिक राज्य (सेकुलर स्टेट) में अब इस प्रकार की धांधली हमेशा के लिये रोक दी जाये। जो राज्य है, स्टेट है वह सब देवताओं से ऊपर है, वह देवताओं का देवता है। मैं कहता हूं कि जनता का प्रतिनिधित्व करने वाला राज्य यह भगवान ही है। इसलिए उसको प्रत्येक प्रकार की साम्पत्तिक स्त्रोत से अवश्य ही कर (टैक्स) मिलना चाहिये। इसलिये सम्पत्ति जो धर्म के नाम पर है, धार्मिक संस्थाओं के नाम पर है, उन पर अवश्य टैक्सेशन रखा जाना चाहिये। मुझे भय है कि यदि दफा 21 को इस विधान में से निकाला न गया तो कर-मुक्त होने के लिये अधिकांश पूंजीपति ज़मींदार अपनी सम्पत्ति को धर्म की उन्नति के लिये लिख देने की चेष्टा करेंगे और स्वयं धर्म-ध्वजा बन कर धर्म के नाम पर धांधली मचाते रहेंगे। इस प्रकार हमारा राज्य-कर स्रोतों के बन्द हो जाने से दिवालिया हो जायेगा। अतः दफा 21 को रख कर मुल्लों, पंडों और पादरियों का विधान न बनायें। बस, मुझे विशेष कुछ नहीं कहना है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं दोनों संशोधनों का विरोध करता हूं। अनुच्छेद में यह कहा गया है कि उन आयों पर कर नहीं लिया जायेगा जो किसी धार्मिक सम्प्रदाय को सहायता देने के लिये विशिष्ट रूप से नियत कर दी गई हों। सैयद अब्दुर रऊफ के संशोधन के अनुसार हमें

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

'समस्त अथवा आंशिक' शब्दों का प्रयोग करना चाहिये। मेरा विश्वास है कि समस्त में अंश निहित है, इस कारण यह संशोधन अनावश्यक है। मि. नज़ीरुद्दीन अहमद द्वारा पेश किया हुआ दूसरा संशोधन (संख्या 633) अनुच्छेद के उद्देश्य से पूर्णतया असंगत है। इस अनुच्छेद में कहा गया है कि अतीत काल की उस प्रथा के विरुद्ध, कि बादशाह जिस धर्म को मानते थे उस धर्म को महत्त्व देने के लिये एक प्रकार का कर लगाते थे, इस अनुच्छेद का यह आशय है कि ऐसे किसी नाम अथवा रूप का कर न लगे, जिसकी आय किसी विशिष्ट सम्प्रदाय अथवा वर्ग के प्रोत्साहन के लिये निश्चित कर दी गई हो।

इसके विपरीत मि. नज़ीरुद्दीन अहमद अपने संशोधन द्वारा यह चाहते हैं कि समस्त मन्दिरों और धार्मिक स्थानों की आय को कर से मुक्त किया जाये। इस बात का विचारान्तर्गत विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है। अनुच्छेद 21 में केवल यही बात है कि राज्य द्वारा कोई ऐसा कर नहीं लगाया जायेगा, जिसकी आय किसी विशिष्ट धार्मिक सम्प्रदाय की उन्नति के लिये नियत कर दी गई हो। मेरा निवेदन है कि इस अनुच्छेद को ज्यों का त्यों रखा जाये। अतीत काल में हमारे यहां ऐसे बहुत से बादशाह भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के हुये हैं, जिन्होंने अनेक प्रकार के कर लगाये। मस्जिदों की आर्थिक सहायता करने के लिये मुसलमान बादशाह एक विशेष कर लेते थे। ईसाइयों ने इस देश में ऐसा नहीं किया। प्राचीन हिन्दू राजा भी तिरुप्पनी नाम का कर मेरे प्रदेश के एक विशेष मन्दिर अथवा मन्दिरों के लिये लेते थे। एक असाम्प्रदायिक राज्य के लिये, जिससे यह आशा की जाती है कि वह सब सम्प्रदायों को समदृष्टि से देखेगा और अन्य सम्प्रदायों को हानि पहुंचा कर किसी विशिष्ट सम्प्रदाय को प्रोत्साहन न देगा, यह प्रावधान नितान्त आवश्यक है। स्वतंत्रता तथा धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार-पत्र का यह आवश्यक अंग है कि उसमें ऐसा प्रावधान हो कि किसी विशेष सम्प्रदाय को किसी अन्य सम्प्रदाय से अधिक लाभ न पहुंचे। यह अनुच्छेद बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है और यह समस्त अल्पसंख्यकों अथवा धार्मिक प्रवृत्ति के हितों का संरक्षण करता है। अतः उन सदस्यों से, जिन्होंने संशोधन पेश किये हैं, मेरा निवेदन है कि वे उन संशोधनों पर ज़ोर न दें और इस अनुच्छेद को, जैसा है वैसा ही स्वीकार करें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं संशोधन संख्या 632 अथवा 633 को स्वीकार नहीं करता हूं।

***श्री एच. जे. खांडेकर** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं बोलना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब तो बहुत विलम्ब हो गया है। अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 21 में 'which' (जिनके) शब्द के पश्चात् 'wholly or partly' (पूर्ण अथवा आंशिक) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 21 में 'the proceeds of which are' शब्दों के स्थान में 'on any income which is' शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 21 को विधान का अंग माना जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार किया गया।*

*अनुच्छेद 21 विधान में जोड़ा गया।*

---

## अनुच्छेद 22

***उपाध्यक्ष:** सभा के समक्ष यह प्रस्ताव है:

"कि अनुच्छेद 22 को विधान का अंग माना जाये।"

पहला संशोधन है नं. 637। यह नियम-विरुद्ध है, चूंकि इसका प्रभाव निषेधात्मक है। संशोधन संख्या 638 के प्रथम भाग को पेश करने की आज्ञा नहीं

[उपाध्यक्ष]

दी जाती है, क्योंकि उसका प्रभाव निषेधात्मक है। संशोधन संख्या 638 का दूसरा भाग पेश किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 638 और 639 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 640 । आप केवल एक विकल्प को पेश कर सकते हैं।

*__श्री मोहम्मद इस्माइल साहब__ (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रथम विकल्प को पेश करता हूं।

श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:–

'22. No person attending an educational institution maintained, aided or recognised by the State shall be required to take part in any religious instruction in such institution without the consent of such person if he or she is a major or without the consent of the respective parent or guardian if he or she is a minor.' "

(22. राज्य द्वारा संधारित, सहायता प्राप्त अथवा अभिज्ञात किसी शैक्षिक संस्था में जाने वाले किसी व्यक्ति को उस संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिये, यदि वह प्राप्त वयस्क है, तो उसकी सहमति के, और यदि वह अवयस्क है तो उसके माता-पिता अथवा संरक्षक की सहमति के बिना, संबोधित न किया जायेगा।)

श्रीमान्, वर्तमान रूप में विधान के मसौदे का अनुच्छेद 22, राज्य द्वारा सहायता-प्राप्त विद्यालयों में अथवा राज्य की शैक्षिक संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने में रुकावट डालता है। राज्य की संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा को रोकना एक असाम्प्रदायिक राज्य के लिये आवश्यक नहीं है। श्रीमान्, धार्मिक शिक्षा देना राज्य के असाम्प्रदायिक स्वरूप, अथवा तटस्थता के प्रतिकूल नहीं होगा। यदि राज्य विद्यार्थियों अथवा शिष्यों को उस धर्म का अध्ययन करने के लिये विवश करे, जिसको वे नहीं मानते हैं तो यह असाम्प्रदायिक राज्य की प्रवृत्ति के विरुद्ध होगा। परन्तु यदि शिष्य अथवा उनके माता-पिता यह चाहते हैं कि इन संस्थाओं में उनके धर्म की शिक्षा दी जाये तो यह न राज्य के असाम्प्रदायिक स्वरूप के

प्रतिकूल होगा और न राज्य द्वारा धार्मिक विषयों के सम्बन्ध में ग्रहण की हुई तटस्थता का ही इससे उल्लंघन होगा। यदि पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा देनी ही हो तो मेरा संशोधन उसके लिये मार्ग प्रशस्त करता है। वह विषय को निषेधात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। उसमें यह नहीं कहा गया है कि चाहे कुछ भी हो, शैक्षिक संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा दी ही जायेगी। सिर्फ यह कहा गया है कि किसी व्यक्ति को किसी पाठशाला में उस धर्म का अध्ययन करने के लिये जिसे वह नहीं मानता विवश नहीं किया जायेगा। इसलिये मेरा संशोधन बिल्कुल निर्दोष है और वह विधान के तत्त्वों का किसी प्रकार से भी विरोध नहीं करता है।

श्रीमान्, बहुत से देशों ने, जिनका स्वरूप किसी धर्म पर आश्रित नहीं है, धार्मिक शिक्षा देने की आवश्यकता को मान लिया है। उन देशों ने धार्मिक शिक्षा को अनिवार्य भी कर दिया है अर्थात् उन लोगों के लिये अनिवार्य जो अपने धर्म की शिक्षा अपने बच्चों को दिलाना चाहते हैं। उन्होंने यह ठीक नहीं समझा कि अपने असाम्प्रदायिक राज्य में धर्म का पूर्ण बहिष्कार कर दिया जाये। अतः मेरा यह विचार है कि धार्मिक शिक्षा का बहिष्कार न करने पर भी हम अपने राज्य के असाम्प्रदायिक स्वरूप का किसी प्रकार से भी खण्डन नहीं कर रहे हैं। जैसा कि मेरे संशोधन में विचार प्रस्तुत किया गया है हम इस विषय को भविष्य पर तथा संसद् पर छोड़ सकते हैं। मेरे संशोधन के अनुसार धार्मिक शिक्षा के बारे में हम निश्चित रूप से अभी कुछ भी नहीं कह रहे हैं। हम केवल यही कह रहे हैं कि किसी व्यक्ति को उस धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के लिये विवश नहीं किया जायेगा, जिस धर्म का वह मानने वाला नहीं है। धार्मिक शिक्षा दी जाये या नहीं, इस विषय को संसद पर छोड़ दिया जाये। श्रीमान्, अपने संशोधन के द्वारा मैंने यही मन्तव्य यहां रखा है।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, जो संशोधन मेरे नाम से है, उसमें सूची 1 के संशोधन संख्या 19 द्वारा आगे और संशोधन करने का मैंने प्रयास किया है। नियमानुसार यह संशोधन जिस प्रकार है, उसी प्रकार में मैं उसे पेश करूंगा। आरम्भ में मैंने जो संशोधन भेजा था वह इस प्रकार है:

"कि अनुच्छेद 22 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'22. The State shall not compel anyone to have religious instruction in a religion not his own in schools

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

against his wishes, but the State shall endeavour to develop religious tolerance and morality among its citizens by providing suitable courses in various religions in schools."

(22. राज्य किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध पाठशालाओं में उसके धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म की शिक्षा पाने के लिये विवश नहीं करेगा, पर पाठशालाओं में विभिन्न धर्म के उपयुक्त पाठ्यक्रम की व्यवस्था करके राज्य अपने नागरिकों में धार्मिक सदाचार और सहन-शीलता को उन्नत करने का प्रयास करेगा।)

इस संशोधन पर मैंने सूची 1 के संशोधन संख्या 19 की सूचना दी है जिसमें यह कहा गया है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) और (3) को निकाल दिया जाये।"

मुझे विदित होता है कि खण्ड (1) का निकालना डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार नहीं किया पर इस खण्ड पर जो कुछ मैं कहना चाहता हूं, वह मैं कहूंगा।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 20 का क्या हुआ ?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं उसे पेश नहीं कर रहा हूं। कुछ शैक्षिक संस्थाओं को अपने दैनिक कार्यकाल के अलावा अन्य समय में धार्मिक शिक्षा देने की स्वतंत्रता इसमें दी गई है। श्रीमान्, असल उद्देश्य यह है कि किसी अल्पसंख्यक सम्प्रदाय को उसके धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के लिये विवश नहीं किया जायेगा। यही वास्तविक प्रयोजन है। यद्यपि मैं इस प्रयोजन को भली-भांति समझता हूं, फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस खण्ड की रचना ऐसे व्यापक रूप में की गई है कि अल्पसंख्यकों के कारण बहुसंख्यक सम्प्रदाय को भी अपने बच्चों को किसी प्रकार की भी धार्मिक शिक्षा प्रदान कराने में यह बाधा होगी। जब कि यह उचित है कि अल्पसंख्यकों को अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिये बाध्य न किया जाना चाहिये वहीं यह भी ठीक है कि यदि उनके विद्यार्थियों की संख्या पर्याप्त हो तो उनको उनके धर्म की शिक्षा देने की सुविधा भी प्रदान की जानी चाहिये। राज्य द्वारा धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की मनाही नहीं होनी चाहिये। देश-विभाजन

के पश्चात् अब बहुसंख्यक सम्प्रदाय की संख्या 30, 33 करोड़ है और यदि ये लोग चाहते हैं कि उनके बच्चों को उनके धर्म की शिक्षा मिले, यदि इस अनुच्छेद को स्वीकार कर लिया जाता है, तो वे इस प्रकार की धार्मिक शिक्षा प्राप्त न कर सकेंगे। यह उचित नहीं है। मैं यह चाहता हूं कि उनको अपने धर्म की शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दिया जाये, बशर्ते कि वे अन्य सम्प्रदायों के बच्चों को, यदि वे पर्याप्त संख्या मैं हों तो, वही सुविधा प्रदान करने के लिये उद्यत हों। मि. मोहम्मद इस्माइल के संशोधन का यह दूसरा विकल्प है, पर उन्होंने तो प्रथम विकल्प ही प्रस्तुत किया है। दूसरा विकल्प सुन्दर है। वर्तमान रूप में बहुसंख्यक सम्प्रदाय को अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा प्राप्त कराने में यह खण्ड सचमुच बाधा डालेगा। उदाहरण के रूप में गोरखपुर में (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड) अपने स्कूलों में गीता की शिक्षा नहीं दे सकेगा। मेरे विचार से ऐसा नहीं होना चाहिये। संसार के इन महान् धर्मग्रन्थों द्वारा सदाचार और सहिष्णुता का विकास होता है, इनका अध्ययन कराना चाहिये और मैं नहीं चाहता हूं कि मूलाधिकारों की कोई बात ऐसा करने से मना करे। इस विषय पर डॉक्टर अम्बेडकर से विचार-विमर्श किया और मैंने कह दिया कि खण्ड (1) और (3) को निकाल दिया जाय, जिससे कि कोई भी व्यक्ति लोगों की इच्छा के विरुद्ध बरबस किसी प्रकार की शिक्षा न दे सके, परन्तु यदि विभिन्न सम्प्रदायों के बच्चों की संख्या पर्याप्त हो तो उनको, धार्मिक शिक्षा प्रदान करने में राज्य द्वारा बाधा नहीं होनी चाहिये। खण्ड (3) पूर्णतया निरर्थक है। उसमें केवल यह कहा गया है:

> "(3) इस अनुच्छेद की किसी बात से, किसी समुदाय अथवा सम्प्रदाय के लिये, अपने समुदाय अथवा सम्प्रदाय के विद्यार्थियों को शैक्षिक संस्थाओं के दैनिक कार्यकाल के अतिरिक्त अन्य समय में धार्मिक शिक्षा देने में रुकावट न होगी।"

परन्तु मैं तो चाहता हूं कि खण्ड (1) को भी निकाल दिया जाये, क्योंकि ऐसा करने से राज्य स्कूल के बच्चों को गीता, बाइबिल इत्यादि की शिक्षा दे सकेगा पर किसी की इच्छा के विरुद्ध बरबस राज्य ऐसी शिक्षा नहीं दे सकेगा। अत: मैं चाहता हूं कि केवल खण्ड (2) ही रहे और राज्य बच्चों की इच्छा अथवा रुचि के अनुकूल तथा उनके संरक्षकों की अनुमति से धार्मिक शिक्षा प्रदान कर सके। यही मैं चाहता हूं, पर यदि यह मान्य नहीं है तो मैं प्रथम भाग के हटाने का आग्रह नहीं करूंगा। परन्तु खण्ड (3) को तो निकाल ही देना चाहिये। मैं डॉ. अम्बेडकर से प्रार्थना करूंगा कि वे इस बात का ध्यान रखें कि यह खण्ड

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

राज्य की संस्थाओं को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने से न रोके। यह खण्ड बहुत व्यापक है और उपरोक्त विचार का समावेश करने के लिये इसका मसौदा फिर से बनना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 642 और 647 समानार्थी हैं और दोनों पर साथ-साथ विचार होना चाहिये। संशोधन संख्या 642 को पेश किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 642 पेश नहीं किया गया।)

***प्रोफेसर के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में 'in any educational institution wholly' (राज्य-प्रणीवि से पूर्णत:) शब्दों के पश्चात् 'or partly' (अथवा अंशत:) शब्द जोड़ दिये जायें।"

श्रीमान्, संशोधित रूप में खण्ड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"No religious instruction shall be provided by the State in any educational institution wholly or partly maintained out of State funds,"

(राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: अथवा अंशत: संधारित किसी शैक्षिक संस्था में, राज्य द्वारा कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी);

श्रीमान्, समस्त सद्भावनाओं के होते हुये भी मैं यह न समझ सका कि इस मूलखण्ड के निर्माताओं ने क्योंकर इस विशेष शब्दावली को ग्रहण किया है। मेरी दृष्टि में उनका "पूर्णत:" शब्द पर ज़ोर देना बड़ा कूटनीतिपूर्ण है। यदि वे "पूर्णत:" न कहते और केवल "राज्य-प्रणीवि से संधारित" ही कहते, तब तो बात समझ में आ सकती थी पर यदि वे यही कहते हैं कि 'राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: संधारित किसी संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी' तो मेरा प्रश्न होता है कि इन खास शब्दों को रखने में मसौदा बनाने वालों का क्या उद्देश्य हो सकता है। क्या मसौदा बनाने वालों का यह उद्देश्य है कि किसी संस्था में केवल तभी धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी, जब कि राज्य-प्रणीवि किसी संस्था के पाई-पाई खर्चे को स्वयं पूरा करे।

***एक माननीय सदस्यः** जी हां।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** यदि आपका उद्देश्य यही है, जैसा कि किसी को स्वीकार करते हुये मैं सुन रहा हूं तब तो उससे सहमत होना असम्भव है, और मैं यह कहने का साहस करता हूं कि आरम्भ के शब्दों में जिस सिद्धान्त की स्पष्ट घोषणा की गई है, उसी सिद्धान्त का उस शब्द द्वारा एक विलक्षण रूप में खण्डन कर दिया गया है। उदाहरणार्थ यदि किसी शैक्षिक संस्था को किसी गैर-सरकारी नीवि से कुछ आय होती है और उस संस्था के कुल खर्चे का 99 प्रतिशत खर्च राज्य-प्रणीवि द्वारा पूरा होता है और 1 प्रतिशत नीवि में पूरा होता है तो क्या यह कहा जायेगा कि वह संस्था राज्य द्वारा पूर्णतः संधारित नहीं है और नीवि अथवा अनुदान अथवा दान की 1 प्रतिशत सहायता के बल पर आपको धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था करने के मार्ग को खोल देना होगा। सार्वजनिक संस्थाओं में ऐसी धार्मिक शिक्षा का अर्थ सामान्यतया साम्प्रदायिक शिक्षा ही होता है।

इस प्रकार की धारा का यह अर्थ तथा व्याख्या न तो हो सकती है और न करने देनी चाहिये। केवल उन संस्थाओं के जो परादिक के अधीन आ जाती हैं—और इस परादिक को मैं बाद में अन्य संशोधन के साथ लूंगा—अन्य समस्त संस्थायें अथवा उनमें से अधिकांश लोक आगमों से पूर्णतः अथवा अंशतः संधारित हैं, चाहे लोक आगम राज्य द्वारा समस्त व्यय के रूप में हो अथवा किसी अनुदान के रूप में हो अथवा शुल्क इत्यादि के रूप में हो, जो जनता से नियमित रूप में प्राप्त की जाती है। अतः जैसा कि मैं समझता हूं, कोई भी सार्वजनिक संस्था किसी न किसी सम्प्रदाय की धार्मिक शिक्षा को—और मैं तो यहां तक कहूंगा कि विवादास्पद रूप की धार्मिक शिक्षा को बरबस लादे बिना न रहेगी।

यदि आप एक धर्म की शिक्षा देने की आज्ञा दे देंगे तो आपको अन्य धर्मों की शिक्षा प्रदान करने की आज्ञा न देना असम्भव हो जायेगा। उसका यह अर्थ है कि किसी सार्वजनिक संस्था में चाहे कितने ही विद्यार्थी अथवा उनके कितने ही वर्गों को शिक्षा दी जाती हो, यदि प्रत्येक वर्ग के लिये एक-एक विशेष छात्रवृत्ति देने वाला व्यक्ति अथवा खर्च के किसी खास मद के लिये—पुस्तकालय के लिये अथवा प्रयोगशाला के किसी साधन के लिये अथवा सामान्य प्रयोजन के हितार्थ कोई छोटी सी रकम दान करने वाला व्यक्ति मिल जाता है और उस दान के साथ यह शर्त लगा देता है कि उस संस्था में उसके धर्म की शिक्षा उसके वर्ग के छात्रों को दी जायेगी, तब तो मुझे इस बात का भय है कि आपकी शैक्षिक

[प्रो. के.टी. शाह]

संस्थायें विभिन्न मत मतान्तरों का अजायबघर बन जायेंगी। उनमें ऐसे झगड़े और विवाद होंगे, जिनकी आशा भी नहीं की जा सकती। प्रारम्भिक शब्दों द्वारा आप जिस बुराई को रोकने के लिये उतारू हुये हैं वह और भी अधिक बढ़ जायेगी और एक प्रकार से उस बुराई को जनता का सहयोग तथा समर्थन प्राप्त होगा।

वस्तुस्थिति यह है जिसके बारे में मैंने सोचा था कि मसौदा बनाने वालों के ये उद्देश्य कभी नहीं हो सकते। परन्तु एक मिनट पूर्व जो शब्द मुझे सुनाई दिया उससे यह प्रतीत होता है कि मसौदा बनाने वालों के उद्देश्यों से यह विचार ठीक उतना परे नहीं है, जितना परे अपनी अज्ञानता के कारण मैंने उसे समझा था। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी सुदूरवर्त्ती विचार के कारण अथवा किसी बात को अपने मन में रख कर मसौदा निर्माताओं ने इन शब्दों को ग्रहण किया है।

यदि सभा के किसी बड़े वर्ग की ओर से नहीं तो, अपनी ओर से बोलते हुये मैं यह चाहूंगा कि भारत में राज्य इस प्रकार की किसी भी व्याख्या से पूर्णतया पृथक् रहे।

यदि आप चाहते हैं, और मेरे विचार से यही ठीक भी है कि राज्य-प्रणीवि से संधारित किसी सार्वजनिक संस्था में धार्मिक शिक्षा न दी जाये चाहे राज्य-प्रणीवि द्वारा संस्था का पूरा खर्च चलता हो अथवा अनुदान, शुल्क, छात्रवृत्ति या किसी प्रकार की नीवि के रूप में राज्य के लोक-आगमों में से उसे कुछ सहायता मिलती हो; परन्तु राज्य-प्रणीवि के अतिरिक्त अन्य साधनों से संस्था का खर्च पूरा किये जाने के आधार पर धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की आज्ञा देना हास्यास्पद होगा और मेरे विचार से इस विधान के आधारभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध होगा।

मेरी दृष्टि में "राज्य-प्रणीवि" शब्द स्वयं बड़ा ही शंकास्पद है। राज्य-प्रणीवि का ठीक अर्थ क्या है? मैंने कई बार शिकायत की है कि इस मसौदे में यह एक बड़ा भारी दोष है कि इसमें परिभाषाओं का दु:खद अभाव है, इसके कारण अवसरानुकूल अथवा जिस प्रकार से भी व्याख्या करने वाला अपने कौशल-चातुर्य्य से सुझा सके, शब्दों का किसी भी अर्थ में प्रयोग किया जा सकता है। विशेषकर इस प्रसंग में किसी परिभाषा के अभाव में किसी व्यक्ति को, जो भी व्याख्या

युक्ति-युक्त प्रतीत हो उसके प्रति उसे यह कहने का अधिकार है कि कदाचित् मसौदा-निर्माताओं का भी यही उद्देश्य था। इस धारणा के कारण में अनुभव करता हूं कि इस खण्ड में "लोक-आगमों अथवा राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: अथवा अंशत: संधारित" शब्दों को जोड़ कर संशोधन करने की आवश्यकता है।

मैं 'राज्य-प्रणीवि' शब्दों पर इतनी आपत्ति नहीं करूंगा जितनी कि 'अशंत:' शब्द के रखने पर मेरी आपत्ति है। यदि हम अपने प्रशासन-आदर्श के इस आधारभूत सिद्धान्त का पूर्णतया पालन करना चाहते हैं कि राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: अथवा अंशत: संधारित किसी सार्वजनिक शैक्षिक संस्था में वह धार्मिक शिक्षा न दी जाये, जिसका स्वरूप अनिवार्यत: साम्प्रदायिक है तब तो मेरे विचार से 'अंशत:' शब्द को रखना चाहिये।

श्रीमान्, मेरे विचार से यह संशोधन यथार्थ व्यवहार ज्ञान, सत्यता और स्पष्टता से इतना परिपूर्ण है कि इस पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये और मैं विश्वास करता हूं कि इस सम्बन्ध में मुझे निराश नहीं किया जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 643 जो कि सरदार हुकम सिंह के नाम से है।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं:

> "कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में 'shall be provided' (दी जायेगी) शब्दों के पश्चात् 'or permitted' (अथवा न दिये जाने की अनुमति दी जायेगी) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

श्रीमान्, मुझे ज्ञात है कि अनुच्छेद 7 में 'राज्य' शब्द की जो व्याख्या की गई है, वह बहुत व्यापक है और उसमें समस्त प्राधिकारी आ जाते हैं, चाहे वे केन्द्र के हों अथवा राज्यों के हों, यहां तक कि उसमें स्थानीय संस्थाओं के भी प्राधिकारी आ जाते हैं। फिर भी मेरा विचार है कि यदि हम, जैसा कि मैंने प्रस्तावित किया है, "अथवा न दिये जाने की अनुमति दी जायेगी" शब्दों को प्रविष्ट न करेंगे तो उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी, हम एक असाम्प्रदायिक राज्य का

[सरदार हुकम सिंह]

निर्माण करने जा रहे हैं। जहां तक मैंने इस अनुच्छेद के उद्देश्य को समझा है, वह यह है कि राज्य से संधारित सब संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा न दी जाये। यदि यह अनुच्छेद अपने वर्तमान रूप में ही रहे तो इसका यह अर्थ होगा कि राज्य अथवा कोई भी प्राधिकारी इन संस्थाओं में कोई भी धार्मिक शिक्षा देने की व्यवस्था नहीं करेगा। मेरा अनुमान है कि इसमें आर्थिक उद्देश्य नहीं है। हम यह बंधन इसलिये नहीं लगा रहे हैं कि राज्य धार्मिक शिक्षा पर कुछ भी व्यय कर ही न सके, बल्कि हम इन संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के विरुद्ध व्यवस्था कर रहे हैं। और ऐसी दशा में हमारे उद्देश्य की तब तक पूर्ति नहीं होगी, जब तक कि हम धार्मिक शिक्षा का प्रदान करना निश्चित रूप से इन संस्थाओं में न रोक दें। यद्यपि इस प्रकार की धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में कोई प्रावधान नहीं बनाया गया है, फिर भी इस प्रकार की शिक्षा देने की अनुमति तक नहीं दी जानी चाहिये। मैं यह कहूंगा कि शिक्षकों के मस्तिष्क में यह विचार उत्पन्न हो सकता है कि राज्य ने इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करने के सम्बन्ध में कोई प्रावधान नहीं बनाया है, इसलिये धार्मिक शिक्षा का प्रदान करना आरम्भ करो और कोई अध्यापक अपनी कक्षा में ऐसी शिक्षा देना आरम्भ कर दे तो, जहां तक इस अनुच्छेद का सम्बन्ध है, अध्यापक अथवा शिक्षकों के इस कार्य से उसका विरोध तो होगा ही नहीं। उस उद्देश्य की पूर्ति तो तभी हो सकती है, जब कि हम ऐसी शिक्षा देना पूर्णतया बन्द कर दें विशेषकर जब कि हम एक असाम्प्रदायिक राज्य का निर्माण कर रहे हैं। इसलिये मैं प्रस्ताव करता हूं कि "shall be provided" (दी जायेगी) शब्दों के पश्चात् " or permitted"(अथवा न दिये जाने की अनुमति दी जायेगी) शब्द प्रविष्ट किये जायें। जिससे कि उन संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा देने का अवसर ही न हो, जिनको राज्य आर्थिक सहायता देता है या जिन पर राज्य का नियन्त्रण है।

*__उपाध्यक्षः__ संशोधन संख्या 644, जो सरदार भूपेन्द्रसिंह मान के नाम से है।

*__सरदार भूपेन्द्रसिंह मान__ (पूर्वी पंजाब : सिख): उपाध्यक्ष श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> "कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में से 'educational' (शैक्षिक) शब्द निकाल दिया जाये।"

और उस उपखण्ड को इस प्रकार रखा जाये :

'No religious instruction shall be provided by the State in any institution wholly maintained out of State funds;"

(राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: संधारित किसी संस्था में राज्य द्वारा कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी;)

जहां तक कि धार्मिक विषयों का सम्बन्ध है, राज्य पूर्ण तटस्थता का निर्वाह करे और अपने असाम्प्रदायिक स्वरूप को बनाये रखे। श्रीमान्, अल्पसंख्यक सम्प्रदाय का सदस्य होने की हैसियत से मैं इस अनुच्छेद का हार्दिक स्वागत करता हूं और आशा करता हूं कि इस अनुच्छेद में निहित सिद्धान्त के अनुसार राज्य कार्य करेगा और राज्य के समस्त कार्य-क्षेत्रों में अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के सदस्यों को शंका करने अथवा डरने का कोई अवसर उत्पन्न ही नहीं होगा और मुझे आशा है कि यह बहुत शीघ्र ही होगा। फिर भी, श्रीमान्, मुझे आश्चर्य है कि इस अनुच्छेद को इतना अपूर्ण क्यों रहने दिया गया है, क्योंकि इसमें केवल शैक्षिक संस्थाओं का ही ज़िक्र किया गया है? शैक्षिक संस्थाओं का कदाचित् इसलिये ज़िक्र किया गया है, क्योंकि जनमत के अनुसार ये ही ऐसे स्थान हैं जहां कि धार्मिक शिक्षा दी जाती है। पर मैं यह बता सकता हूं, ऐसे अन्य स्थान अथवा संस्थायें हैं, जो राज्य द्वारा पूर्णत: संधारित है और जिनका आधुनिक काल में धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक प्रचार के साधन के रूप में बड़ी प्रभावशाली रीति से प्रयोग हो सकता है। इस प्रकार के साधन का एक उदाहरण रेडियो है। हम सब यह जानते हैं कि प्रतिदिन धार्मिक प्रचार करने के हेतु मंच के रूप में इसका कितना प्रभाववर्त्ती प्रयोग किया जा सकता है। मैं चाहता हूं कि यह अनुच्छेद अपने तर्क की दृष्टि से पूर्ण हो और इस अनुच्छेद को पूर्ण बना दिया जाये और समस्त राज्य की संस्थाओं में धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक प्रचार बन्द किया जाये। अन्यथा मुझे तो यह व्यर्थ प्रतीत होता है कि आप एक संस्था में तो साम्प्रदायिक अथवा धार्मिक प्रचार को बन्द करें और अन्य कार्य-क्षेत्रों में उसे पूर्ण रूप में होने दें। उदाहरण के रूप में सेना को ही ले लीजिये। वहां धार्मिक तथा साम्प्रदायिक प्रचार आसानी से किया

[सरदार भूपेन्द्रसिंह मान]

जा सकता है। मैं चाहता हूं कि केवल शैक्षिक संस्थाओं में ही नहीं, वरन् राज्य द्वारा संधारित समस्त संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा शीघ्र ही बन्द कर दी जायें।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 645 जो डॉक्टर अम्बेडकर के नाम से है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में से 'by the State' (राज्य द्वारा) शब्द निकाल दिये जायें।"

इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि वह शंका, उत्पन्न होने की सम्भावना का निराकरण करे। मसौदे में जिस रूप में "राज्य द्वारा" शब्द रखे गये हैं, यदि उनको उसी रूप में रहने दिया गया तो यह अर्थ लगाया जा सकता है कि यह अनुच्छेद राज्य के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने का अधिकार देता है। इस अनुच्छेद में निहित सिद्धान्त यह है कि राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: संधारित किसी संस्था का उपयोग धार्मिक शिक्षा के प्रयोजन हेतु नहीं होगा, चाहे धार्मिक शिक्षा राज्य द्वारा दी जाये अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दी जाये।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** उपाध्यक्ष, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में से 'by the State' (राज्य द्वारा) शब्द और 'wholly maintained out of State funds' (राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: संधारित) शब्द निकाल दिये जायें।"

इस अनुच्छेद का खण्ड (1) इस प्रकार पढ़ा जाता है:

"No religious instruction shall be provided by the State in any educational institution wholly maintained out of State funds."

(राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: संधारित किसी शैक्षिक संस्था में राज्य द्वारा, कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी।)

इसका यह अर्थ हुआ कि किसी शैक्षिक संस्था में जो राज्य-प्रणीवि से अंशत: संधारित है अथवा उन संस्थाओं में जो राज्य-प्रणीवि से किसी रूप में भी संधारित नहीं हैं, धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है। फल यह होगा कि समस्त गैर-सरकारी तथा सहायता प्राप्त स्कूल, कालेज, पाठशालायें और मकतब लड़के-लड़कियों को धार्मिक शिक्षा देंगे। मैं निवेदन करता हूं कि असाम्प्रदायिक राज्य में ऐसा नहीं होने देना चाहिये। इस विषय पर पूर्व वक्ताओं द्वारा बहुत कुछ कहा जा चुका है और मैं उसका विवरण नहीं देना चाहता हूं। मैं केवल यह बात कहना चाहता हूं कि यदि आप नवयुवक तथा नवयुवतियों को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने देना चाहते हैं, तो भारत को असाम्प्रदायिक राज्य कहने से क्या लाभ? यदि माता-पिता अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा देना चाहते हैं, तो इस अनुच्छेद द्वारा आप उनको रोकते नहीं हैं। अपने घर पर इस प्रकार की शिक्षा देने के लिये वह स्वतन्त्र हैं और कोई व्यक्ति इसमें आपत्ति नहीं करेगा। वास्तव में प्रत्येक माता-पिता अपने बच्चे को स्कूल भेजने के पूर्व खूब शिक्षा देते हैं। सामान्यतया इस देश में यही होता है कि स्कूल भेजने के पूर्व बालक को समस्त धार्मिक शिक्षा दे दी जाती है और होना भी ऐसा ही चाहिये। माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि अपनी रीति के अनुसार अपने बच्चों को शिक्षा दें। पर सार्वजनिक संस्था द्वारा धार्मिक शिक्षा प्रदान करने का मैं विरोध करता हूं, चाहे वह राज्य-द्वारा पूर्णत: संधारित हो अथवा अंशत:।

इन शब्दों के साथ मैं अपने संशोधन को सभा के समक्ष रखता हूं।

***उपाध्यक्ष:** शाब्दिक होने के कारण संशोधन संख्या 648 को पेश करने की आज्ञा नहीं दी जाती है।

(संशोधन संख्या 649, 650 और 652 पेश नहीं किये गये।)

शाब्दिक होने के कारण संशोधन संख्या 653 को पेश करने की आज्ञा नहीं दी जाती है।

संशोधन संख्या 653 प्रो. के.टी. शाह के नाम से है।

*__प्रोफेसर के.टी. शाहः__ उपाध्यक्ष, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) के परादिक के अन्त में निम्नलिखित अंश जोड़ दिया जाये:

'and the income from which trust or endowment is sufficient to defray the entire expenditure of such institution."

(और उस प्रन्यास अथवा नीवि की आय इस संस्था के समस्त व्यय को पूरा करने के लिए पर्याप्त है।)

संशोधित रूप में परादिक इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"Provided that nothing in this clause shall apply to an educational institution which is administered by the State but has been established under an endowment or trust which requires that religious instruction shall be imparted in such institution *and the income from which trust or endowment is sufficient to defray the entire expenditure of such institution."*

(पर इस खंड की कोई बात ऐसी शैक्षिक संस्था पर लागू न होगी जो राज्य-द्वारा प्रशासित है, परन्तु जो किसी ऐसी नीवि अथवा प्रन्यास के अधीन स्थापित हुई है, जिसके अनुसार इस संस्था में धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है और उस प्रन्यास अथवा नीवि की आय इस संस्था के समस्त व्यय को पूरा करने के लिये पर्याप्त है।)

इस सम्बन्ध में मैं कुछ उन तर्कों का भी उल्लेख करूंगा जिनको अभी कुछ समय पूर्व मैंने पेश किया था और वे तर्क ये हैं कि इस परादिक का उद्देश्य अथवा अर्थ न तो यह हो सकता है और न यह होना ही चाहिये कि कोई भी व्यक्ति अध्यापन के विशेष पद के लिये, पुस्तकालय के लिये, प्रयोगशाला के लिये या कालेज या स्कूल के किसी विभाग के लिये यदि कुछ दान देता है तो उसको यह कहने का अधिकार हो कि उसकी ओर से अथवा जैसी वह चाहता है वैसी धार्मिक शिक्षा दी जाये, फिर चाहे वह प्रन्यास अथवा नीवि संस्था के सम्पूर्ण व्यय को पूरा करने के लिये पर्याप्त न हो।

इस खंड के वर्तमान परादिक से मैं समझता हूं कि किसी भी व्यक्ति के लिए यह एक साधारण बात होगी कि भवन अथवा मेज़-कुर्सियों के कुछ खर्चे को पूरा करने मात्र के लिए ही वह कोई प्रन्यास अथवा नीवि स्थापित कर दे और फिर उस संस्था के प्रबंध करने के उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाये और उसे राज्य को दे दे और इस प्रकार सरलता से महान् दानदाता की उपाधि और अमर यश प्राप्त कर ले और फिर राज्य से उस संस्था को चलाने के लिए कहे और साथ ही साथ उस सिद्धान्त का खंडन करते हुए, जिस पर इस परादिक की नींव रखी गई है, उस संस्था में धार्मिक शिक्षा देने के लिए भी निवेदन करे।

यदि यही फल हुआ तब तो जैसा कि मैंने समझा है, इस खंड के मूलभूत विचार का ही खंडन हो जायेगा और मेरे विचार से यह अनुच्छेद उपहासमय हो जायेगा। कदाचित् यह नहीं सोचा गया था कि उद्देश्य के विमुख इसका इस प्रकार अर्थ लगाया जा सकेगा। मेरा संशोधन इस खंड को स्पष्ट और साफ करने का प्रयास करता है।

ऐसा होने पर भी मुझे तो इस बात से पूर्ण संतोष नहीं होता है कि राज्य द्वारा संधारित किसी सार्वजनिक संस्था में किसी विशेष प्रकार की धार्मिक शिक्षा देने के लिए कोई गुंजायश रखी जाये, चाहे फिर उस संस्था के कुछ अथवा सम्पूर्ण व्यय की पूर्ति दानदाता के अनुदान, प्रन्यास-प्रणीवि अथवा नीवि द्वारा क्यों न होती हो।

मैं फिर कहता हूं कि इस प्रकार से तो जिस आधारभूत सिद्धान्त पर यह खण्ड आश्रित है, उसका ही खण्डन होगा। मसौदा-समिति के सभापति द्वारा अभी प्रस्तुत किये गये "राज्य-द्वारा" शब्दों के हटाने के संशोधन से तो, यदि वह स्वीकार कर लिया जाता है—और मैं समझता हूं कि वह अवश्य ही स्वीकार किया जायेगा—स्थिति और भी अधिक जटिल हो जायेगी, जब तक ऐसा न हो कि उसी समनुवर्त्ती संशोधन द्वारा प्राधिकारी स्वयं यहां से "राज्य-द्वारा" शब्द निकलवा न दें। मैं यह नहीं कह सकता कि इन शब्दों को निकाल ही दिया जायेगा। मैं तो केवल उस सम्भावना की ओर संकेत कर रहा हूं अथवा उस बात की सूचना दे रहा हूं जो, कुछ सीमा तक, मुख्य खंड और परादिक में समानता कर सकेगी।

[प्रो. के.टी. शाह]

चाहे इन शब्दों को मुख्य खण्ड से निकाला जाये या न निकाला जाये और चाहे इन शब्दों को मुख्य खण्ड में रहने दिया जाये या न रहने दिया जाये, जिस आपत्ति पर मैं ज़ोर दे रहा हूं वह तो रहेगी ही। मेरी यह धारणा है कि सर्वप्रथम तो किसी व्यक्ति को किसी शैक्षिक संस्था के लिये प्रन्यास स्थापित करने का अधिकार नहीं होना चाहिये और फिर ऐसा भी नहीं होना चाहिये कि वह उसके प्रबन्ध को राज्य को दे दे और केवल इस आधार पर कि वह उस संस्था को धन से सहायता कर रहा है या उसके आवर्त्तक व्यय को पूरा कर रहा है यह मांग करे कि उस संस्था में जैसी वह चाहे या जिसे वह माने वैसी ही धार्मिक शिक्षा दी जाये।

अब भी मेरा यह विश्वास है कि इस खण्ड के निर्माताओं का यह उद्देश्य तो हो ही नहीं सकता था। इस परादिक से इस प्रकार की अनियमितता पैदा हो सकती है अथवा ऐसा कोई अपवाद उत्पन्न हो सकता है, इसलिये जिस प्रकार अपने संशोधन द्वारा मैं इसे स्पष्ट बनाने का प्रयत्न कर रहा हूं, उसी प्रकार इसे स्पष्ट बना दिया जाये मुझे विश्वास है कि यदि कानूनी ज्ञान नहीं तो व्यावहारिक ज्ञान स्वयं इस बात को दृढ़तापूर्वक स्वीकार करेगा और यदि मेरे संशोधन के रूप को, नहीं, तो तत्त्व को तो अवश्य ही स्वीकार किया जायेगा।

(संशोधन संख्या 654, 655 और 657 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 656 को शाब्दिक होने के कारण पेश करने की आज्ञा नहीं मिली।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं :

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (2) में से 'recognised by the State or' (राज्याभिज्ञात अथवा) शब्दों को निकाल दिया जाये।"

अनुच्छेद 22 और 23 की कुछ अस्पष्ट बातों को स्पष्ट कराने के विचार से मैं इस संशोधन को पेश कर रहा हूं। मुझे आशा है कि मेरे विद्वान् मित्र

डॉ. अम्बेडकर अपने उत्तर में सर्वाधिक बाधा-शून्य प्रणाली को अपनाते हुए केवल यही नहीं कहेंगे कि "मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं", बल्कि तर्क प्रस्तुत करते हुये यह भी बतायेंगे कि क्यों वे मेरे संशोधन का विरोध करते हैं अथवा उसको अस्वीकार करते हैं। और मुझे यह भी आशा है कि इस अनुच्छेद की अस्पष्ट बातों पर कुछ प्रकाश डालने का वे भरसक प्रयत्न करेंगे। यदि हम सावधानीपूर्वक इस अनुच्छेद के विभिन्न खण्डों की जांच करें और आगे आने वाले अनुच्छेदों पर भी दृष्टि डालें तो हमें यह विदित होगा कि उनमें कुछ असंगत बातें हैं अथवा कम से कम एक बात तो असंगत है ही। अनुच्छेद 22 का खण्ड (1) राज्य-प्राणीवि से पूर्णत: संधारित संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाता है। और, परादिक से उन संस्थाओं के लिये बचत कर दी गई है, जो किसी नीवि अथवा प्रन्यास के अधीन स्थापित की गयी हैं और राज्य-द्वारा प्रशासित हैं—अर्थात् जिन संस्थाओं को नीवि अथवा प्रन्यास के अधीन स्थापित किया गया है और जिनमें प्रन्यास की शर्तों के अनुसार धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है, उन संस्थाओं में राज्य के प्रशासन करने पर भी इस परादिक के अनुसार धार्मिक शिक्षा देने पर कोई आपत्ति नहीं होगी। खण्ड (2) यह निर्धारित करता है कि राज्याभिज्ञात अथवा राज्य-प्रणीवि से सहायता पाने वाली शैक्षिक संस्था में जाने वाले किसी व्यक्ति के लिये धार्मिक शिक्षा में भाग लेना आवश्यक नहीं होगा। इसका यह अर्थ हुआ कि धार्मिक शिक्षा अनिवार्य नहीं होगी। मुझे खण्ड 23 के उप-खण्ड (3) (क) को लेना होगा, जिसमें यह कहा गया है कि धर्म, समुदाय, अथवा भाषा पर आधृत सब अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शैक्षिक संस्थाओं के स्थापन और प्रशासन का अधिकार होगा। तो क्या यह विचार है कि जिन संस्थाओं का अनुवर्त्ती खण्ड में उल्लेख किया गया है और जिनको अपनी रुचि के अनुसार अल्पसंख्यक वर्ग, संचालित और प्रशासित कर सकते हैं उन संस्थाओं में अल्पसंख्यक वर्गों को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की आज्ञा नहीं दी जायेगी? अल्पसंख्यक वर्गों द्वारा स्थापित ऐसी संस्थायें हो सकती हैं, जिनमें वे विद्यार्थियों से धार्मिक कक्षाओं में उपस्थित होने का आग्रह करें, तथा अन्य किसी

[श्री एच.वी. कामत]

रूप में वे संस्थायें आपत्तिजनक न हों। मेरे विचार में उनसे राज्य की स्वीकृति वापस लेना कोई ठीक या कारगर बात न होगी। मैं यह समझ सकता हूं कि उनको राज्य आर्थिक सहायता न दे, किन्तु मैं यह कभी नहीं समझ सकता कि अल्पसंख्यक वर्गों द्वारा स्थापित संस्थाओं का, जिनमें वे धार्मिक कक्षाओं में अनिवार्य उपस्थिति पर आग्रह करते हैं, राज्य स्वीकृति न दे। मैं अनुभव करता हूं कि राज्य द्वारा इस प्रकार का हस्तक्षेप अन्यायपूर्ण तथा अनावश्यक है। इसके अतिरिक्त इस बात से आगे के अनुच्छेद का किसी हद तक विरोध होता है। यदि अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शैक्षिक संस्थाओं के स्थापन और प्रशासन का अधिकार है तो क्या माननीय डॉ. अम्बेडकर का यह विचार है कि राज्य यह कहे कि "आप संस्थायें खोल सकते हैं, परन्तु यदि आप हमारी स्वीकृति चाहते हैं तो आप वहां धार्मिक शिक्षा न दें।" यह समझना सचमुच मेरी बुद्धि से परे है कि अनुच्छेद 22 और 23 की इन दो बातों में आप किस प्रकार साम्य उपस्थित कर सकते हैं? जैसा कि मैं कह चुका हूं अल्पसंख्यक वर्ग वाले बच्चों के लिये ऐसा स्कूल खोल सकते हैं और उस स्कूल में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य कर सकते हैं। यदि आप उस संस्था को स्वीकृति नहीं देते तो वह स्कूल कभी भी नहीं चल सकेगा और उसमें छात्र नहीं जायेंगे। इसके अतिरिक्त हमने अल्पसंख्यक वर्गों को कुछ अधिकारों की प्रत्याभूति दी है और यह हो सकता है कि ईसाइयों के स्कूल में वे बाइबिल पढ़ायें और मुसलमानों के स्कूल में कुरान पढ़ाये। यदि ईसाई और मुसलमान अल्पसंख्यक-वर्ग अपनी रुचि तथा रीति के अनुसार उन संस्थाओं का प्रशासन कर सकते हैं, तो सुझाव देने की आशा है कि राज्य उन संस्थाओं को स्वीकृति न दे? श्रीमान्, यदि आप ऐसे मार्ग का अनुसरण करेंगे तब तो मेरे विचार से अपने देश के अल्संख्यक-वर्गो को जो वचन हमने दिया है उसका यथार्थ रूप में पालन न होगा। इसलिये अल्पसंख्यक-वर्गों द्वारा संधारित, संचालित और प्रशासित संस्थाओं में अपने ही सम्प्रदाय के छात्रों के लिये यदि धार्मिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाये, तो मुझे ऐसा कोई कारण प्रतीत नहीं होता जिसके आधार पर राज्य उनको स्वीकृति न दे जब कि अपनी रुचि के अनुसार स्कूल स्थापित करने की आप उनको आज्ञा देते हैं, तो यह बात असंगत है कि आप केवल इस आधार पर उनको स्वीकृति न दें। मैं आशा करता हूं कि इस असंगत बात का निराकरण करने के लिये कुछ न कुछ किया जायेगा।

***श्री जसपतराय कपूरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के खंड (3) को निकाल दिया जाये।"

इसके पक्ष में मेरे पास चार कारण हैं। सर्वप्रथम कारण यह है कि इस खंड से अनुच्छेद 22 के खंड (1) का विरोध होता है, जो इस प्रकार पढ़ा जाता है–"राज्य-प्रणीवि से पूर्णतः संधारित किसी शैक्षिक संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी।" मैं खंड (1) को उस रूप में पढ़ रहा हूं जो रूप उसका डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन के किये जाने के पश्चात् हो जायेगा। अतः जब कि खंड (1) यह निर्धारित करता है कि राज्य-द्वारा पूर्णतः संधारित किसी शैक्षिक संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी, तो इसके साथ-साथ खंड (3) में यह दिया गया है कि धार्मिक शिक्षा दैनिक कार्यक्रम के अतिरिक्त अन्य समय में दी जा सकती है। अतः यह स्पष्ट है कि ये दोनों खण्ड परस्पर विरोधी हैं। यदि खण्ड (1) रखा जाता है तो खण्ड (3) को निकाल देना चाहिये। खण्ड (1) के समक्ष खण्ड (3) नहीं टिक सकता है।

दूसरा कारण यह है कि खण्ड (3) के रखने से संभव है कि विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में परस्पर विरोध हो जाये, क्योंकि विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय अपने छात्रों को किसी भी संस्था में, उसी समय और उसी के भवन में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के अधिकार की मांग रख सकते हैं। निःसन्देह इससे बहुत विरोध बढ़ जायेगा। धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के लिये दैनिक कार्यक्रम के बाहर सुविधाजनक समय बहुत ही समिति है और उसी समय तथा उसी भवन में अनेकों धार्मिक सम्प्रदाय अपने छात्रों को धार्मिक शिक्षा देना चाहेंगे। इससे शैक्षिक संस्था के मुख्याध्यापक की स्थिति बड़ी ही संकटमय हो जायेगी। वह इस दुविधा में पड़ जायेगा कि किसे आज्ञा दे और किसे न दे। यदि किसी विशेष सम्प्रदाय को आज्ञा नहीं दी जायेगी तो उसको इस बात से बहुत दुःख होगा और इस सम्प्रदाय को जो मूलाधिकार दिया गया है। सम्भव है कि उसे प्रयोग करने के लिये वह बलपूर्वक उस संस्था में घुस भी पड़े। इससे साम्प्रदायिक तथा धार्मिक विप्लव हो सकते हैं। इस खण्ड का रखना सांघातिक संभावनाओं से परिपूर्ण है, इसलिये इसे निकाल देना चाहिये।

[श्री जसपतराय कपूर]

तीसरा कारण यह है कि साम्प्रदायिक संस्था के प्रबन्धकर्त्ता इस बात को पसन्द न करें कि उस संस्था में स्वयं उनके धर्म की शिक्षा के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म की शिक्षा दी जाये। एक मुस्लिम स्कूल, जो किसी मस्जिद के हाते में हो, यह कभी नहीं चाहेगा कि उसमें हिन्दुओं को वैदिक धर्म की शिक्षा दी जाये। इसी प्रकार आर्य-समाजियों द्वारा संचालित कोई शैक्षिक संस्था अपने भवन में कुरान की धार्मिक शिक्षा देना कभी नहीं चाहेगी। इस आधार पर भी इस खण्ड को निकाल देना चाहिये।

चौथा कारण यह है कि खण्ड (2) को दृष्टिगत रखते हुये यह खण्ड पूर्णतया अनावश्यक है। खण्ड (2) इस बात की व्यवस्था करता ही है कि किसी शैक्षिक संस्था के प्रबन्धन द्वारा यदि छात्र सहमत हों तो और यदि वे अल्पवयस्क हैं, तो उनके संरक्षक सहमत हों तो धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है। ऐसी शिक्षा केवल कार्यकाल में ही नहीं, वरन कार्यकाल के बाहर भी दी जा सकती है। अतः खण्ड (2) को दृष्टि में रखते हुये यह अनावश्यक है। इन कारणों के आधार पर मैं निवेदन करता हूं कि खण्ड (3) निकाल दिया जाये।

*__श्री मोहम्मद इस्माइल साहबः__ उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (3) में 'providing' (देने) शब्द के स्थान में 'being permitted to provid' (देने के लिये अनुमति दिये जाने में) शब्द रखे जायें, और 'educational institution' (शैक्षिक संस्था के कार्यकाल), शब्दों के पश्चात् 'in, or' (में अथवा उस) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

अनुच्छेद 22 का खण्ड (3) मुख्यतया खण्ड (1) में विचारी हुई संस्थाओं का उल्लेख करता है। इसलिये मैं सोचता हूं कि 'देने' शब्द के स्थान में 'देने के लिये अनुमति दिये जाने में' शब्द रखना अधिक उपयुक्त होगा। मैं यह इस लिये कहता हूं कि राज्य की संस्थायें होने के कारण स्कूलों में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की कोई व्यवस्था करने के लिये अनुमति प्राप्त करनी चाहिये और देनी चाहिये। कोई धार्मिक सम्प्रदाय, अथवा समुदाय सीधे यह नहीं कह सकता कि "हम अमुक-अमुक स्कूलों में धार्मिक शिक्षा दे रहे हैं।" ऐसा नहीं हो सकता। अतः उसको अधिक बोधगम्य अथवा तर्क-सम्मत बनाने के लिये मैं चाहता हूं कि 'देने' के स्थान में 'देने के लिये अनुमति दिये जाने में' शब्द रखे जायें।

तत्पश्चात्, श्रीमान, मैं 'शैक्षिक संस्था के कार्यकाल' शब्दों के पश्चात् 'में अथवा उस' शब्दों को प्रविष्ट करना चाहता हूं। इन शब्दों के प्रविष्ट करने से यह खण्ड इस प्रकार पढ़ा जायगा:

"Nothing in this article shall prevent any community or denomination from being permitted to provide religious instruction for pupils of that community or denomination in an educational institution in or outside its working hours."

(इस अनुच्छेद की किसी बात से, किसी समुदाय अथवा सम्प्रदाय के लिये, अपने समुदाय अथवा सम्प्रदाय के विद्यार्थियों को शैक्षिक संस्था के कार्यकाल में अथवा उसके पश्चात् धार्मिक शिक्षा देने के लिये अनुमति लिये जाने में रुकावट न होगी।)

मैं चाहता हूं कि संस्था के कार्यकाल में अथवा कार्यकाल के पश्चात् भी किसी समुदाय को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की अनुमति होनी चाहिये। प्रत्यक्ष है कि केवल उस संस्था के अधिकारियों की अनुमति से ही इस प्रकार की व्यवस्था की जा सकेगी। अत: यदि वे अधिकारी कार्यकाल के अन्तर्गत धार्मिक शिक्षा देना व्यवहार्य समझते हैं, तो उन्हें उनके इस विचार को हानिकर न मानना चाहिये। समस्त छात्रों के हित में ऐसी व्यवस्था करनी ही चाहिये। जैसा कि मैं कह चुका हूं, इस खंड (3) का खंड (1) से सम्बन्ध है जो राज्य की संस्थाओं के सम्बन्ध में है। राज्य की संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा का देना यदि पूर्णतया तथा सदा के लिए निषिद्ध कर दिया जाये तो उसमें क्या आपत्ति की जा सकती है? स्थिति यह है : शीघ्र ही समस्त प्राथमिक पाठशालायें राज्य-संस्थायें हो जायेंगी और यदि राज्य-संस्थाओं में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी तो अवस्था यह होगी कि 14 अथवा 15 वर्ष की आयु तक लड़के तथा लड़कियों को धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर न मिलेगा। यह कहना कि घर पर अथवा स्कूल के कार्यकाल के पश्चात् धार्मिक शिक्षा दी जाये, एक अव्यावहारिक बात है। शिक्षा-विशेषज्ञ तुरन्त ही इस बात से सहमत हो जायेंगे कि स्कूल के कार्यकाल के पश्चात् धार्मिक शिक्षा देना विद्यार्थियों पर ऐसा भार डालना होगा, जिसे कोमल वय के विद्यार्थियों पर नहीं डालना चाहिये। इसके अतिरिक्त हम इस बात का भी अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि कार्यकाल के पश्चात् कैसी धार्मिक शिक्षा दी जायेगी। अत:, श्रीमान्,

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

धार्मिक शिक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण विषय के प्रति हमें विमाता का सा व्यवहार न करना चाहिये। यह आम कहावत है कि धर्म के कारण विप्लव होते हैं। जैसा कि मैं अनेकों बार कह चुका हूं धर्म तो झगड़े की जड़ है ही नहीं। झगड़े की जड़ तो धर्म का मिथ्या ज्ञान है। बात यह है कि विद्यार्थियों को यह समझाना चाहिये कि धर्म वास्तव में क्या वस्तु है और प्रत्यक्ष है कि इस ज्ञान के उपार्जन के लिये, यह जानने के लिये कि धर्म का सच्चा स्वरूप क्या है, हमें उनको नगर के बाज़ारों और ग्रामों की गलियों में न छोड़ देना चाहिये। यदि धार्मिक शिक्षा विद्यार्थी और राज्य दोनों के हित में है, तो आवश्यक है कि सार्वजनिक शैक्षिक संस्थाओं में वह प्रदान की जानी चाहिये, जिससे कि प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने धर्म के सर्वोत्तम स्वरूप को प्रस्तुत करने का भरसक प्रयत्न करें। श्रीमान्, यह तभी हो सकता है कि जब कि राज्य-द्वारा अपनाई हुई सार्वजनिक संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की आज्ञा हो, जिनमें लोग परस्पर प्रतियोगी के रूप में संसार को अपने-अपने धर्म का सर्वोत्तम स्वरूप प्रदर्शन कराने का प्रयत्न करें और इस प्रकार अवांछनीय ईर्ष्या स्पर्धा, कलह और विद्वेष को निर्मूल कर दें।

श्रीमान्, द्वितीय विश्व-युद्ध ने लोगों को पुनः धर्म की ओर उन्मुख कर दिया है। यूरोप के अनेकों लेखक कहते हैं कि चूंकि लोग धर्म से विमुख हो गये थे, धर्म से घृणा करते थे और अपने कोमल वयस्क बच्चों को धार्मिक शिक्षा प्राप्त नहीं करने देते थे, इसीलिये यह संकट आया। अतः बहुत से राजनैतिक लेखक इस बात पर जोर देते हैं कि राज्य के स्कूलों में अब धार्मिक शिक्षा दी जाये। इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि यूरोप के देशों के अनेकों विधानों ने अपने-अपने देशों में अनिवार्य रूप से धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की है। अतः मेरा निवेदन केवल यही नहीं है कि धार्मिक शिक्षा हानिकारक नहीं है, वरन् यह भी है कि वह इतनी आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यार्थी को, उचित आयु होने पर, वह दी जानी ही चाहिये। यह बात केवल तभी हो सकती है जब कि विद्यार्थी प्राथमिक पाठशाला में पढ़ता हो। अतः जब कि समस्त प्राथमिक पाठशालायें राज्य की पाठशालायें हो रही हैं, तो राज्य को पूर्णतया धार्मिक शिक्षा बन्द नहीं करनी चाहिये। जैसा कि मैंने किसी पूर्ववर्त्ती संशोधन में कहा है, इसे संसद् पर छोड़ दिया जाये। कुछ सम्प्रदायों के लिये कुछ व्यावहारिक कठिनाइयां हो सकती हैं, परन्तु इन कठिनाइयों को संसद् पर छोड़ देना चाहिये कि वह परिस्थितियों के अनुसार उनका निराकरण करे। क्योंकि कुछ लोगों को कठिनाइयां

होंगी, इस आधार पर अन्य सम्प्रदायों को अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा प्रदान कराने के अधिकार से वंचित नहीं रखना चाहिये। मैं फिर इस बात पर ज़ोर देना चाहता हूं कि बच्चों के चरित्र को धार्मिक आधार पर निर्माण करना राष्ट्र के लिये हितकारी है। समाज तथा राज्य की दृढ़ता के लिये इसी बात की आवश्यकता है कि उनका आधार शील हो और शील से वे पोषित हों और यह आधार धर्म द्वारा ही निर्माण किया जा सकता है। संसार अभी तक धर्म के स्थान में किसी अन्य वस्तु की खोज करने के प्रयोगों में असफल रहा है। कट्टर राजनीतिज्ञ भी अब धर्म की ओर झुक रहे हैं। जब कि समस्त विश्व धर्म की ओर झुक रहा है तब हम लोग, जो उस वर्ग के हैं जो धर्म को अपने जीवन का अविच्छेद्य अंग समझते हैं, धर्म का परित्याग कर रहे हैं। यदि हम उन समस्त कटु अनुभवों से बचना चाहते हैं जो पश्चिम को भोगने पड़े हैं, तो प्राथमिक पाठशालाओं में हमें बच्चों को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने की आज्ञा दे देनी चाहिये। यदि ऐसा किया जाता है तो सब बातें ठीक होंगी और सबके लिये सुख होगा। इसीलिये मैं कहता हूं कि कम से कम धार्मिक प्रवृत्ति के सम्प्रदायों को परिस्थितियों के अनुसार हर हालत में स्कूल के कार्यकाल में अथवा उसके बाहर धार्मिक शिक्षा देने का प्रबन्ध करने की अनुमति दी जाये। इसे भावी विधान-मंडलों पर छोड़ दिया जाये।

(संशोधन संख्या 663 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 664 । प्रोफेसर के.टी. शाह!

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (3) में 'outside its working hours' (शैक्षिक संस्था के कार्यकाल के पश्चात् धार्मिक शिक्षा देने में रुकावट न होगी) शब्दों के स्थान में निम्न शब्द रखे जायें:

'maintained by that community from its own funds provided that no educational institutions, nor any education or training imparted therein shall be recognised unless it provides instruction or training in courses laid down for public instruction in the regular system of education for the country and complies in all other respects with methods, standards, equipment and other requirements of the national system of education.'

[प्रो. के.टी. शाह]

(उस समुदाय द्वारा स्वयं अपनी ही प्रणीवि से संवारित शैक्षिक संस्था में शिक्षा देने में रुकावट न होगी, परन्तु कोई शैक्षिक संस्था अथवा उसमें दी हुई कोई शिक्षा अथवा प्रशिक्षा तब तक स्वीकृत नहीं की जायेगी, जब तक वह संस्था देश की नियमित शिक्षा-प्रणाली में लोक-शिक्षा के लिये निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा तथा प्रशिक्षा न दे और अन्य समस्त रूप में राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की विधि, स्तर, साधन तथा अन्य आवश्यकताओं के अनुकूल न हो।)"

श्रीमान्, इन खण्डों का समस्त समूह इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है कि-"सार्वजनिक शैक्षिक संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा न हो" और फिर जैसा कि इस समस्त अध्याय से प्रतीत होता है, उसमें ऐसे छिद्र तथा दरारें रखने का प्रयत्न किया गया है कि अंधकार में चोर के समान उसमें प्रवेश किया जा सकता है और जिस भवन के निर्माण करने का हम प्रयत्न कर रहे हैं उसके आधार तथा नींव को ढाया जा सकता है। अपवादों, छूटों और प्रतिबन्धों से जो कठिनाइयां पैदा होती हैं, यदि उन पर दृष्टि न भी डाली जाये तो भी इस अनुच्छेद की संदिग्ध वाक्य-रचना से तथा अस्पष्ट और अपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली से सारी कठिनाई पैदा होती है कि मैं निस्संकोच कह सकता हूं कि प्रायः यह असम्भव हो जाता है कि ऐसा कोई संशोधन तैयार किया जा सके, जो तत्त्वतः तथा रूपतः पूर्ण मात्रा में उद्देश्य की पूर्ति कर सके, तथा इस अनुच्छेद में निहित विचार को इतनी स्पष्टता और असंदिग्धता से व्यक्त कर सके, जितनी से कि प्रारूपक उस विचार को व्यक्त करने में समर्थ नहीं हुआ है।

पदों में संदिग्धता का मैं एक उदाहरण देता हूं, जो दुर्भाग्यवश मेरे संशोधन में भी, जिसे मैं प्रस्तुत कर रहा हूं, विद्यमान है, यद्यपि मेरे विचार से मेरे संशोधन में 'State funds' (राज्य-प्रणीवि) पद के प्रयोग में संदिग्धता नहीं है। जैसा कि मैंने समझा है, साधारण बोलचाल में और मैं तो यहां तक कहूंगा कि कानून की परिभाषा में भी 'funds' (प्रणीवि) शब्द का अर्थ आगम अथवा आवर्त्तक आय नहीं होता इस शब्द का अर्थ होता है कुछ-कुछ स्थायी राशि, संचित अथवा विद्यमान राशि, उस ऐसी राशि जिसे वकील लोग 'corpus' कहते हैं, चाहे वे इस लेटिन शब्द का लेटिन अर्थ समझते ही हों। 'आगम' इससे कुछ भिन्न है।

अब राज्यप्रणीवि से संधारित संस्थाओं से सम्बद्ध खण्ड को लीजिये। मेरे लिये यह समझना कठिन है कि किन प्रणीवियों के प्रति संकेत किया गया है, जिनसे कि संस्थाओं को संधारण करने की बात प्रारूपकों ने इस अनुच्छेद में कही है। सच तो यह है कि 'भैंस के आगे बीन बजाने' के लिये मैं उत्सुक नहीं हूं। पर मैं यह कहूंगा कि इस अनुच्छेद का अर्थ समझने के लिये मैं यह आवश्यक समझता हूं कि प्रयुक्त पद को ठीक-ठीक समझने में अपनी कठिनाइयों और कमियों को कम से कम प्रकट कर दूं और जिन लोगों ने इस विधान की रचना की है तथा इसका निर्माण किया है, उनसे अर्थ स्पष्ट करने के लिये कहूं।

मैं इस बात को गुप्त नहीं रखना चाहता हूं कि मैं इस बात के विरुद्ध हूं कि इस देश में अथवा किसी अन्य देश में सार्वजनिक शैक्षिक संस्थाओं का, धार्मिक शिक्षा देने के लिये उपयोग किया जाये, और विशेषकर इस देश में जिसमें अनेकों मत और अनेकों सम्प्रदाय हैं, ऐसी शिक्षा देना सर्वथा अनुचित है। यह सच है कि उनमें से प्रत्येक को धर्म कहा जाता है, परन्तु वे बहुधा व्यापक धर्म के मूलभूत सत्य को भूल जाते हैं और 'अपनी-अपनी ढपली तथा अपना-अपना राग' वाली कहावत चरितार्थ करते हैं जिस प्रकार से कि बाज़ार में कोई विज्ञापन करने वाला अपने माल की प्रशंसा करता है, उसी तरह से यह लोग करते हैं। यह मानते हुये भी कि कार्यकाल के पश्चात् अथवा स्कूल के सामान्य कार्यकाल के पश्चात् ऐसा हो सकता है, मेरा निवेदन है कि कम से कम इस बात का ध्यान रखा जाये कि सामान्य शिक्षा को और उस शिक्षा तथा प्रशिक्षा से सम्बन्धित भवन, शिक्षक वर्ग, स्तर, विधि इत्यादि के रूप में समस्त आवश्यकताओं को हानि पहुंचा कर ऐसा न किया जाये।

कम से कम इस खण्ड में, जिस रूप में कि यह वर्तमान है, यह किसी प्रकार स्पष्ट नहीं किया गया है कि यदि धार्मिक शिक्षा सामान्य कार्यकाल के पश्चात् दी जाती है, तो क्या वह सामान्य पाठ्यक्रम को हानि पहुंचा कर दी जायेगी या नहीं। मैं यह मानता हूं कि प्रत्येक स्कूल में धार्मिक शिक्षा दी जायेगी, चाहे वह राज्य-प्रणीवि से संधारित हो या न हो। अतः इस संशोधन में मैं इस बात पर आग्रह करता हूं कि जो कोई यह शिक्षा देना चाहता है, जो कोई भी समुदाय यह शिक्षा देना चाहता है वह, यदि आप उससे सहमत हों तो अपनी प्रणीवि से दें, परन्तु

[प्रो. के.टी. शाह]

ऐसा करने से पहले उसके लिये यह आवश्यक होगा कि वहां पूर्ण व्यय उठाने की क्षमता रखता हो और प्रयुक्त पद के पूर्ण अर्थ के अनुसार धार्मिक शिक्षा स्कूल के कार्यकाल के पश्चात् इस प्रकार से दी जाये कि उसका विनिहित सामान्य पाठ्यक्रम से, योग्यता के स्तर से, शिक्षा विधि इत्यादि से कोई विरोध न हो।

यदि आप कोई ऐसा अभिरक्षण नहीं रखते हैं, जैसा कि अपने संशोधन द्वारा रखने का मैं प्रयास कर रहा हूं, तो मेरी सम्पति से इस शिक्षा-सम्बन्धी उन सब बातों के बारे में जिनका जिक्र मैंने अभी किया है, हमको हानि उठानी पड़ेगी और संकट का सामना करना पड़ेगा। इस हानि और संकट से बचने का हमारे लिये यही उपाय है कि यदि कोई समुदाय इस बात का आग्रह करे कि यदि केवल धार्मिक शिक्षा न दी जा सके, तो कम से कम ऐसी शिक्षा को प्रधानता दी जाये तो उसे धार्मिक शिक्षा देने दीजिये। यदि वह ऐसी शिक्षा पर होने वाले व्यय को स्वयं ही बर्दाश्त करने को तैयार हों, पर राज्य ऐसी संस्था में दी गई किसी शिक्षा को तथा उस संस्था-द्वारा विद्यार्थियों के प्रयोग के लिये रखे जाने वाले शिक्षा-साधनों को तब तक ठीक न माने जब तक कि वे उस अच्छाई के योग्य नहीं हैं, जितनी कि निर्दिष्ट योग्यता प्राप्त करने के हेतु ऐसी शिक्षा के लिये सब शिक्षा-संस्थाओं के लिये निर्धारित की हुई हैं और जब तक कि वह उन सार्वजनिक प्रयोजनों की पूर्ति नहीं करती, जिनकी पूर्ति की ऐसी शिक्षा से अपेक्षा की जाती है।

मुझे उन शैक्षिक संस्थाओं का कुछ अनुभव है, जो किसी न किसी प्रकार से इन समस्त आवश्यक नियमों को अथवा उनमें से किसी एक के दायरे से निकलने की कोशिश में रहती हैं। जिन व्यक्तियों को इन संस्थाओं के निरीक्षण करने और सम्बन्ध में अधिकारियों को रिपोर्ट देने का अवसर प्राप्त हुआ है, उन्होंने यह अनुभव किया होगा कि मेरे इस कथन का क्या तात्पर्य है। और उनको यह भी याद आ जायेगा कि उन संस्थाओं से निर्धारित स्तर को कायम रखने तथा समय-समय पर यह देखने में, कि उस स्तर का निर्वाह किया जाता है, कितनी अधिक कठिनाइयां होती हैं।

जिन देशों में शिक्षा का स्तर सर्वत्र एक-सा है उनमें भी इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ कठिनाइयां होती रहती हैं। परन्तु जिन देशों में शिक्षा के आदर्शों के बारे में मत-विभेद है, अर्थात् एक तरफ तो वह विचार है कि शिक्षा असाम्प्रदायिक ढंग की हो और वृत्ति अथवा शिल्प की शिक्षा में मुख्य ध्येय केवल उसका आर्थिक लाभ ही हो और दूसरी तरफ इस बात की भी मांग है कि विशेष प्रकार की धार्मिक शिक्षा भी दी जावे तो वहां, मैं साफ शब्दों में कह देता हूं कि, एक न एक विचार—धारा दूसरी को पराजित करके खत्म कर देगी। अतः मैं यह बात अत्यन्त आवश्यक समझता हूं कि न केवल यह बन्धान हो कि वह सब रुपया जो ऐसी शिक्षा पर खर्च होता है, वही समाज देगा जो ऐसी शिक्षा दिलाना चाहता है, वरन् साथ ही यह भी इस समाज को साफ शब्दों में ज्ञात हो जाये कि यदि इस शिक्षा-संस्था में शिक्षा का स्तर, साधन, उसकी इमारत, उसका शिक्षक-वर्ग और अन्य बातें वैसी न हुईं जैसी कि राष्ट्रीय शिक्षा के लिये आवश्यक ठहराई हुई हैं और जब तक वह शिक्षा-संहिता के विनियमों का पूरा पालन नहीं करती तो उसको राज्य अपनी मान्यता प्रदान न करेगा और न उसकी उपाधियों, डिप्लोमाओं और प्रमाण-पत्रों को ऐसा न मानेगा कि जिनके आधार पर उसके विद्यार्थियों को किसी पद पर नियुक्ति के लिये योग्य माना जाये और साथ ही उस समाज को यह भी समझ लेना होगा कि इन सब बातों को पूरा करने का पूरा उत्तरदायित्व उसी पर है। यदि ऐसा हो जायेगा तो सम्भव है कि इस देश में धार्मिक शिक्षा देने में जो दोष मुझे दिखाई देते हैं उनका यदि पूर्ण निराकरण न हुआ तो उनमें कुछ कमी तो हो ही जायेगी।

(संशोधन संख्या 665 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** इस खण्ड पर अब सामान्य वाद-विवाद हो सकता है।

***श्रीमती रेणुका रे** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, यद्यपि मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करती हूं फिर भी एक या दो ऐसी बातें हैं, जिनका मैं स्पष्टीकरण कराना चाहती हूं। प्रोफेसर के. टी. शाह ने एक ऐसा प्रश्न प्रस्तुत किया है जिसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। इस अनुच्छेद के भाग (1) में

[श्रीमती रेणुका रे]

कहा गया है कि 'राज्य-प्रणीवि से पूर्णत:' संधारित किसी शैक्षिक संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी'। भविष्य में इस अनुच्छेद के इतने अशुद्ध अर्थ लगाये जाने की सम्भावना है कि जिससे इसके मूल सिद्धान्त का ही खण्डन हो जायेगा। जैसा कि उन्होंने संकेत किया है यदि किसी सार्वजनिक पाठशाला को थोड़ा-सा धनदान कर दिया जाता है, तो यह मान लिया जा सकता है कि यह पाठशाला राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: संधारित नहीं है, अत: उसमें उस सम्प्रदाय की धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है। मैं आशा करती हूं कि डॉ. अम्बेडकर अपने भाषण में इस बात को स्पष्ट कर देंगे, क्योंकि यह बड़ी ही महत्त्वपूर्ण बात है। यदि ऐसी व्याख्या की जा सकती है तो उससे बचना आवश्यक है।

इस देश में जिसे हम धर्म कहते हैं, उसका दुरुपयोग हमने यहां देखा है और साम्प्रदायिक धर्म के नाम पर जो कुछ होता है उसका हमें कटु अनुभव है। उसके कारण हमारे देश का विभाजन और अंग भंग ही नहीं हुआ है, वरन् जो भी भयानक विपत्तियां हो सकती हैं वे सब धर्म के नाम के कारण हमें सहनी पड़ी हैं। अब जब कि हम भविष्य के लिये विधान-निर्माण कर रहे हैं तो हमें उसका निर्माण इस रीति से करना चाहिये कि हम बीती हुई बातों में न फंसें। केवल एक मात्र सच्चा मार्ग, जिसके द्वारा यह उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है, यह है कि आगे आने वाली सन्तति को इस प्रकार की शिक्षा दी जाये कि वह उन प्रवृत्तियों से प्रोत्साहित न हो, जो मानव को मानव से पृथक् तथा अलग करती हैं। इसके विपरीत उनमें यह धारणा बैठाई जाये कि साम्प्रदायिकता पर आश्रित धार्मिक वैमनस्य से मानव-धर्म कहीं श्रेष्ठ है। यदि हम ऐसा करना है तो हमें इस समय इस बात में बहुत ही सतर्क रहना चाहिये कि भविष्य के लिये जो विधान हम बना रहे हैं, उसके मूलाधिकारों में इस सम्बन्ध में कोई संदिग्धता की आशंका न रहे कि राज्य-प्रणीवि से संधारित संस्थाओं में किस प्रकार की शिक्षा दी जाय। यदि हम 'पूर्णत:' शब्द का प्रयोग करते हैं तो इससे वह गड़बड़ी जो कि अभी बताई गई है, पैदा हो सकती हैं। मैं डॉक्टर अम्बेडकर से यह जानना चाहूंगी कि या तो वे इस संशोधन को स्वीकार करें अथवा कम से कम सभा को यह आश्वासन दें कि भविष्य में इस प्रकार की व्याख्या नहीं की जा सकेगी।

मैं उनसे पुनः आग्रह करूंगी कि वे उस संशोधन को तो स्वीकार कर ही लें, जो खण्ड (3) को निकाल देने के लिये है और जिसको कि श्री जसपतराय कपूर ने पेश किया है, क्योंकि जैसा कि उन्होंने संकेत किया है, इसमें सन्देह नहीं कि यदि यह खण्ड रहने दिया गया तो इस बात की सम्भावना है कि किसी क्षेत्र में पाठशालाओं की संख्या कम हो अथवा एक ही पाठशाला हो तो विभिन्न सम्प्रदायों में इस बात पर झगड़ा हो जाये कि स्कूल के कार्यकाल के पश्चात् किस प्रकार की धार्मिक शिक्षा दी जाये। अतः बहुत अच्छा होगा कि खण्ड (3) को इस अनुच्छेद से निकाल दिया जाये।

मुझे विश्वास है कि इस सभा में उपस्थित सदस्य तथा देश के अन्य व्यक्ति मुझसे इस बात में सहमत होंगे कि यह परमावश्यक है कि भावी नागरिकों को जो शिक्षा दी जाये वह इस प्रकार की हो कि जिससे उस असाम्प्रदायिक राज्य के विचार का प्रादुर्भाव हो, जिसमें कि प्रत्येक व्यक्ति से समान व्यवहार किया जाता है और इस सम्बन्ध का जो प्रावधान हमारे विधान में रखा गया है वह सार्थक हो जाये। यह तभी हो सकता है जब कि शिक्षा जो हमारे समाज-निर्माण का मूल आधार है, नवयुवकों को इस प्रकार दी जाये कि वे उन विभेदात्मक बातों को न सीखें जो मानव को मानव से पृथक् करती हैं और यह सीखें कि मनुष्य मात्र की अन्तरतम एकता अधिक सारभूत है तथा वही धर्म का अधिक दृढ़ आधार है और वे इसी पर अटल रहें।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, हम लोग इस देश में असाम्प्रदायिक राज्य की स्थापना करने के महत्त्वपूर्ण कार्य में रत हैं। इस कार्य के सम्पन्न करने के लिये अनुच्छेद 22 के खण्ड 2 का विशेष महत्त्व है, अतः मैं प्रसन्न हूं कि यह हमारी स्वीकृति के लिये हमारे सामने रखा गया है।

श्रीमान्, सम्भवतः इस सर्वसत्ताधारी परिषद् को यह बात ज्ञात है कि कुछ संस्थाओं ने इस बारे में दूसरे मार्ग को ही अपनाया था। उन्हें सरकार से सहायता मिलती थी और उसके बल पर वे जन-साधारण को शिक्षा देने के बहाने जनता के कुछ विभागों के मन पर अपना प्रभाव जमा लेती थीं। फल इसका यह होता था और हुआ कि कुछ अभागी जातियों के बहुत से लोगों ने इस प्रभाव के कारण

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

अपने पूर्वजों के धर्म को छोड़ कर दूसरा धर्म स्वीकार कर लिया। किन्तु इस अनुच्छेद से अब यह बात साफ हो जायेगी कि कोई भी संस्था, जिसे राज्य से सहायता मिलती है, धार्मिक शिक्षा न दे सकेगी। स्वभावत: इस अनुच्छेद से उन अभागी जातियों का भला होगा जो अब तक इस प्रकार के धार्मिक प्रचार का शिकार हुई हैं।

श्रीमान्, इस अनुच्छेद में यह और भी कहा गया है कि अवयस्कों को, जब तक कि उनके माता-पिता सहमति न दें, धार्मिक शिक्षा न दी जाये अथवा धार्मिक उपासना में उन्हें उपस्थित होने को न कहा जाये। श्रीमान्, मेरा विचार है कि हो सकता है कि माता-पिता के लिये सर्वदा यह सम्भव न हो कि वे इस बारे में अपनी स्वतंत्र सहमति दे सकें। देहाती क्षेत्रों और नगरों के आस-पास वाली संस्थायें इस विषय में माता-पिताओं की सच्ची सहमति प्राप्त नहीं कर सकेंगी। यह देखने का कर्त्तव्य-भार कि जो सहमति दी गई है, वह ठीक और सच्ची है या नहीं, स्थानीय अधिकारियों पर पड़ेगा। उन्हें इस बात का ठीक पता चलाना होगा कि सहमति सचमुच उन्होंने दी है या नहीं, साथ ही इन स्थानीय प्राधिकारियों को प्रबन्ध करना होगा कि विशिष्ट सम्प्रदाय की संस्था में पढ़ने वाले विद्यार्थियों अथवा छात्रों से धर्म परिवर्तन न कराया जाये। मेरा यह साग्रह निवेदन है कि स्थानीय सरकारें इस बात की पूरी देखभाल रखें कि सहमति के बारे में जो प्रावधान किया जा रहा है उसका किसी रूप में उल्लंघन न हो और मुझे आशा है कि वे ऐसा करेंगी। विधान के अनुच्छेद 22 के प्रावधानों का मैं हृदय से समर्थन करता हूं।

***श्री वी.एस. सरवते** [संयुक्त राज्य ग्वालियर-इन्दौर-मालवा (मध्य भारत)]: उपाध्यक्ष महोदय, खण्ड (3) को छोड़ कर, जिस रूप में यह अनुच्छेद है मैं इसका समर्थन करता हूं। जैसा कि मैं समझता हूं अनुच्छेद 20, 21 और 22 को साथ-साथ पढ़ा जाना चाहिये। उनसे कुछ बातें उत्पन्न होती हैं। पहली बात यह है कि राज्य असाम्प्रदायिक है और अपनी पाठशालाओं में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं देगा। अनुच्छेद 22 का खंड (1) यह भी निर्धारित करता है कि राज्य उन पाठशालाओं में भी कोई धार्मिक शिक्षा नहीं देगा जो राज्य-प्रणीवि

से पूर्णत: संधारित हैं और इन पाठशालाओं को धार्मिक शिक्षा देने की आज्ञा नहीं दी जायेगी, यह पहली बात है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि राज्य धर्म पर प्रतिबन्ध लगाता है या धर्म से घृणा करता है, उसकी नीति इस सम्बन्ध में पूर्णतया तटस्थ है। अनुच्छेद 20 किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय को अपने स्कूल खोलने की आज्ञा देता है। अनुच्छेद 21 के पढ़ने पर मैं उसका यह मतलब समझता हूं कि यदि कोई विशिष्ट सम्प्रदाय धार्मिक शिक्षा देने के हेतु अपने ऊपर कुछ कर लगाना चाहता है तो सरकार उस कर के वसूल करने में उसकी सहायता करेगी। अनुच्छेद 21 से यह होगा कि राज्य किसी व्यक्ति को इस प्रकार का कर देने के लिये बाध्य नहीं करेगा। परन्तु यदि वे सम्प्रदाय धार्मिक शिक्षा देने के हेतु किसी विशेष कर के देने के लिये सहमत हैं तो राज्य उस कर को वसूल करेगा और सम्प्रदाय को दे देगा। 'पूर्णत:' शब्द से मुझे यह प्रतीत होता है, यदि राज्य किसी ऐसी पाठशाला को अंशत: सहायता देना चाहता है जिसमें धार्मिक शिक्षा दी जा रही है तो वह ऐसा कर सकता है और मेरे विचार से यह ठीक है। यदि कोई सम्प्रदाय एक पाठशाला चलाता है और उसमें विशिष्ट धार्मिक शिक्षा दी जाती है और यदि वह राज्य से सहायता प्राप्त करने के योग्य है तो राज्य को स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वह उसकी सहायता कर सके। अत: 'पूर्णत:' शब्द आवश्यक है और मैं उस संशोधन का विरोध करता हूं जो अथवा 'अंशत:' शब्द प्रविष्ट करने के लिये पेश किया गया है। जो कुछ अतीत काल में हुआ उससे किसी को भयभीत नहीं होना चाहिये। मैं जानता हूं और मैं ऐसे स्कूल और कालेजों में पढ़ा हूं, जहां कोई न कोई धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। जो शिक्षायें मुझे वहां मिलीं मैं उनका कृतज्ञ हूं। हां, कुछ बातें आपत्तिजनक भी थीं। एक शैक्षिक संस्था में धार्मिक शिक्षा पहले घंटे में दी जाती थी और यदि हम उस घंटे में उपस्थित नहीं रहते थे तो शेष सभी घंटों के लिये हमें अनुपस्थित दर्ज कर दिया जाता था। एक दूसरे कालेज में जिसमें मैंने शिक्षा पाई, यह आवश्यक था कि हम धार्मिक उपासना में उपस्थित हों और यदि हम उपस्थित न हुये तो हम पर कुछ जुर्माना किया जाता था। ये आपत्तिजनक बातें हैं और इनको दूर करना है। ये खण्ड (2) से दूर हो जाती हैं। इसके आधार पर किसी व्यक्ति को धार्मिक उपासना में अथवा उन कक्षाओं में, जिनमें धार्मिक शिक्षा दी जाती है, उपस्थित होना आवश्यक न होगा, किन्तु साथ ही यह राज्य को ऐसी संस्थाओं की सहायता करने से नहीं रोकता है। अभिप्राय

[श्री वी.एस. सरवते]

केवल यही है कि किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध ऐसी शिक्षा प्राप्त करने अथवा ऐसी धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिये बाध्य तथा विवश नहीं किया जायेगा। मेरे विचार से यह बड़ा कल्याणकारी प्रावधान है और राज्य को ऐसी संस्थाओं की सहायता करने की जो अनुमति दी गई है वह भी आवश्यक है, अन्यथा मेरा विश्वास है कि देश की कुछ अच्छी संस्थाओं को हानि होगी।

*__काज़ी सैयद करीमुद्दीनः__ उपाध्यक्ष महोदय, मेरी सम्मति में खंड (3) को छोड़ कर अनुच्छेद 22 के अन्य प्रावधान बहुत कल्याणकारी हैं और मैं सचमुच यह नहीं समझ पाता हूं कि मद्रास के मि. मोहम्मद इस्माइल ने इन प्रावधानों का क्यों विरोध किया। मेरी सम्मति में वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार अल्पसंख्यक वर्गों के लिये यह बहुत अच्छा होगा कि वे पाठशालाओं में धार्मिक वाद-प्रतिवाद, धार्मिक विरोध और धर्म सम्बन्धी निश्चित मत सिखाना बन्द कर दें। हम यह जानते हैं और कुछ वक्ताओं ने उस दिन इस सत्य की ओर संकेत भी किया था कि स्कूलों में लोगों पर अनुचित प्रभाव डाल कर या धन का लोभ दिखा कर धर्म-परिवर्तन करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता था। असाम्प्रदायिक राज्य में धर्म प्रत्येक व्यक्ति का अपना निजी मामला होता है। मेरा विनम्र निवेदन है कि ऐसे राज्य में सरकार या राज्य द्वारा पूर्णतः प्रबन्धित अथवा पूर्णतया सहायता पाने वाली शैक्षिक संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जानी चाहिये। श्रीमान्, यह कहा जाता है कि जब तक राज्य से आर्थिक सहायता पाने वाली पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती है, तब तक अल्पसंख्यक वर्ग अपने धर्म की शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते। मेरा निवेदन यह है कि यदि कोई सम्प्रदाय यह चाहता है कि उसके बच्चों को धार्मिक शिक्षा दी जाये तो यह उसका ही कर्त्तव्य है कि वह अपने बच्चों को अपनी पाठशालाओं या स्कूलों में पढ़ाये। मेरी सम्मति में प्रो. शाह द्वारा पेश किया गया संशोधन अभी स्वीकार नहीं किया जा सकता। उनका संशोधन यह है कि राज्य-प्रणीवि से पूर्णतः अथवा अंशतः संधारित किसी शैक्षिक संस्था में, राज्य द्वारा कोई धार्मिक शिक्षा न दी जाये। वर्तमान परिस्थिति में अलीगढ़ विश्वविद्यालय है, बनारस विश्वविद्यालय है तथा और भी अनेकों ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित कालेज है, जिनको सरकार सहायता देती है। यदि आज उनका संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो तुरन्त ही अनेकों संस्थायें बन्द हो जायंगी।

हमें बड़ी सावधानी से आगे बढ़ना चाहिये। इस बात के लिये खण्ड (2) की व्यवस्था बड़ी कल्याणकर है। यह भी कहा गया है कि खण्ड (1) में से 'शैक्षिक' शब्द को निकाल दिया जाये। यह कहा गया है कि किसी विशेष धर्म के सिखाने या प्रचार करने के लिये रेडियो का उपयोग किया जा सकता है। हमारा एक असाम्प्रदायिक राज्य है और इस बात की घोषणा पूरी तरह से कर दी गई है। फिर भी यदि रेडियो द्वारा एक असाम्प्रदायिक राज्य किसी विशेष धर्म का प्रचार करना चाहता है, तो वह राज्य असाम्प्रदाायिक कहे जाने का मुस्तहक न होगा। मेरी सम्मति में यह प्रश्न प्रशासन-सम्बन्धी नीति से अधिक सम्बन्धित है और खण्ड (1) में से 'शैक्षिक' शब्द को निकालने की आवश्यकता नहीं है।

श्रीमान्, यह कहा गया है कि धार्मिक शिक्षा घर पर दी जाये। मैं इसका भी विरोध करता हूं। सम्प्रदायों द्वारा संचालित और सरकारी सहायता पाने वाली पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है और मि. तजम्मुल हुसैन का यह संशोधन स्वीकार नहीं किया जा सकता कि धार्मिक शिक्षा घर पर दी जाये। प्रत्यक्ष है कि उस स्थिति में जब कि माता-पिता नास्तिक हैं—उदाहरणार्थ मि. तजम्मुल हुसैन किसी अन्य संशोधन द्वारा यह मांग रखते हैं कि लोगों का कोई नाम न हो और उनकी कोई विशिष्ट पोशाक न हो—तो उन घरों पर कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। और यदि लोगों को नाम द्वारा नहीं जाना जाये, वरन् संख्या द्वारा जाना जाये तब तो उनको धार्मिक शिक्षा देना बड़ा ही कठिन हो जायेगा। अत: मेरा यह निवेदन है कि वर्तमान रूप में अनुच्छेद 22 अल्पसंख्यक वर्गों के लिए हानिकर अथवा घातक नहीं है।

किन्तु मेरी आपत्ति तो खंड (3) के बारे में है। जो कुछ खंड (1) और (2) द्वारा दिया गया है, वह खंड (3) द्वारा छीन लिया गया है। उसमें कहा गया है:

> "इस अनुच्छेद की किसी बात से, किसी समुदाय अथवा सम्प्रदाय के लिए, अपने समुदाय अथवा सम्प्रदाय के विद्यार्थियों को शैक्षिक संस्था के कार्यकाल के पश्चात् धार्मिक शिक्षा देने में रुकावट न होगी।"

[काज़ी सैयद करीमुद्दीन]

पर ऐसी संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा देने का उत्तरदायित्व किस पर होगा? यदि कोई बाहरी एजेन्सी लड़कों को धार्मिक शिक्षा देना चाहे तो सम्भवत: अधिकारियों को वे मान्य न हो। इसके अतिरिक्त यह भी हो सकता है कि शैक्षिक संस्थाओं के कार्यकाल के बाद में गैर-जिम्मेदार व्यक्तियों द्वारा या असंयत व्यक्तियों द्वारा दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा से बहुत खराबियां पैदा हों या राष्ट्र का अपहित हो। अत: खंड (3) को हटा देने के पश्चात् ज्यों के त्यों रूप में अनुच्छेद 22 का मैं समर्थन करता हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** श्रीमान्, खंड (3) को छोड़कर यह अनुच्छेद जिस रूप में है उस रूप में मैं उसका समर्थन करता हूं। मैं इस बात पर ज़ोर दूंगा कि प्रो. सक्सेना के संशोधन के स्थान में सभा संशोधन संख्या 661 को स्वीकार करे। मूल रूप में श्री सक्सेना का संशोधन यह है कि इस अनुच्छेद के दोनों (1) और (3) खंड निकाल दिये जायें, परन्तु संशोधन को पेश करते समय उन्होंने खंड (1) सम्बन्धी भाग को छोड़ दिया और खंड (3) से सम्बन्धित भाग पर ज़ोर दिया। इसके स्थान में केवल खंड (3) के ही हटाने के संशोधन संख्या 661 को कृपया स्वीकार किया जाये। श्रीमान्, इस अनुच्छेद के इस खंड का समर्थन करने में मुझे बड़ा दु:ख है कि हमारे इस धर्मप्रिय देश की किसी भी पाठशाला में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। अपनी पाठशालाओं में चाहे हम बच्चों को धार्मिक शिक्षा न दें, परन्तु पाठशालाओं के बाहर हम अपने सम्प्रदायों को नहीं भूल सकते हैं। मेरे मत के अनुसार धर्म समाज का मूल आधार है। समस्त सद्व्यवहार और सब अच्छे-अच्छे सिद्धांतों की कुंजी धर्म ही है। परन्तु जिन परिस्थितियों में हम हैं उनमें दुर्भाग्यवश अपने स्कूलों में अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा देने के विषय में हम कोई आग्रह नहीं कर सकते।

श्रीमान्, इस अनुच्छेद पर दो प्रकार के संशोधन पेश किये गये है। एक प्रकार के संशोधनों में यह कहा गया है कि स्कूल के सब बच्चों को धार्मिक शिक्षा देने के लिये प्रावधान किये जायें। दूसरे प्रकार के संशोधनों में यह कहा गया है कि धार्मिक शिक्षा देने के विरुद्ध वर्तमान समय के कठोर प्रावधानों को और भी कठोर

बना दिया जाये और उन शैक्षिक संस्थाओं में भी, जिनका संचालन अकेला राज्य ही नहीं करता है और न जिनका राज्य पूर्णत: संधारण करता है, धार्मिक शिक्षा न दी जाये और उन संस्थाओं में भी धार्मिक शिक्षा न दी जाये जिनकी राज्य कुछ सहायता करता है अथवा जिनको राज्य अभिस्वीकृत करता हैं। ये दूसरे प्रकार के संशोधन हैं। श्रीमान्, मेरा विचार है कि आज जिन परिस्थितियों में हम हैं, उनमें दोनों में से किसी भी एक प्रकार के संशोधन को मानना संभव नहीं है। हमने एक असाम्प्रदायिक राज्य-निर्माण करने की प्रतिज्ञा की है। असाम्प्रदायिक शब्द से मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि हम किसी भी धर्म में विश्वास नहीं करते हैं और दैनिक जीवन क्रम में हमारा धर्म से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इसका केवल यही अर्थ है कि राज्य अथवा सरकार किसी विशेष धर्म की सहायता नहीं कर सकती अथवा किसी विशेष धर्म की दूसरे धर्म की अपेक्षा में अधिक सुविधा प्रदान नहीं कर सकती। अत: पूर्णत: असाम्प्रदायिक रूप ग्रहण करने के लिये हमारा राज्य बाध्य है पर इसका अर्थ यह नहीं कि समस्त धर्मों के प्रति उसका विश्वास उठ गया है। उन सदस्यों का भी धर्म से विश्वास नहीं उठा है जिन पर इस सरकार का कार्यभार है। मुझे विश्वास है कि हम में से कोई भी इस सीमा तक मूर्ति-पूजा-विरोधी अथवा नास्तिक नहीं हैं। हम सब और वे भी, जिन्होंने विधान के इस अनुच्छेद पर भाषण दिये हैं और विचार-विमर्श में भाग लिया है, किसी न किसी धर्म में विश्वास करते ही है। पर यह खेद की बात है कि हम किसी ऐसे विश्व-व्यापी धर्म का विकास नहीं कर सके, जिसमें धार्मिक प्रथाओं का इतना प्राबल्य न हो कि वे धर्म के मूल सिद्धांतों पर ही परदा डाल दें। हम सब एक ईश्वर की सत्ता, प्रार्थना, मनन इत्यादि में विश्वास करते हैं। हम ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण करने में विश्वास करते हैं और यह विश्वास करते हैं कि केवल त्याग और सेवा द्वारा ही हम ईश्वरत्व प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं। ये बातें सभी धर्मों में समान रूप से पाई जाती हैं। भगवत्-गीता में यह दिया हुआ है कि त्याग और सेवा द्वारा ही मानव ईश्वरत्व प्राप्त कर लेता है और मनुष्यों की सेवा ही ईश्वर का मूलरूप है। मैं इस बारे में बारीकियों में न जाकर केवल इतना ही कह देना पर्याप्त समझता हूं कि इस बात का मुझे खेद है कि वर्तमान परिस्थितियों में हम अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा नहीं दे सकते। यदि हम एक धर्म की शिक्षा देने लगें तो चाहे उस स्कूल में किसी अन्य धर्म का एक ही

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

विद्यार्थी हो, हमें उसके धर्म की शिक्षा देने की भी व्यवस्था करनी पड़ेगी। हम इस बात से भी भली प्रकार परिचित हैं कि एक धर्म में भी अनेकों मत-मतान्तर हैं हिन्दुओं में अनेकों मत हैं और फिर जैनमत, बौद्धमत, ईसाई-मत भी हैं तथा मुसलमान, पारसी इत्यादि भी हैं। अत: राज्य के लिये यह बिल्कुल असम्भव है कि वह समस्त धर्मों की शिक्षा देने की व्यवस्था कर सके। इन परिस्थितियों में हम केवल यही कर सकते हैं कि राज्य से सहायता पाने वाले स्कूलों में धार्मिक शिक्षा देना बन्द करा दें। यदि कोई एजेन्सी किसी संस्था को थोड़ा-सा धन दान देती है और उसमें धार्मिक शिक्षा दी जाती है तो उसका स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा आयंत्रण किया जायेगा और यदि वह शिक्षा विषाक्त है और यदि उस स्कूल में विद्वेष का पाठ पढ़ाया जाता है तो नि:सन्देह सरकारी सहायता बन्द की जा सकेगी और इस प्रकार की बातों को रोकने के लिए अन्य साधन प्रयोग में लाये जा सकेंगे। राज्य के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह इस बात पर बिना विचारे कि शैक्षिक संस्था का किस प्रकार संचालन किया जाता है अपनी सहायता देता रहे। अत: हमें यह शंका नहीं करनी चाहिये कि उस संस्था में धार्मिक शिक्षा दी ही जायेगी जिसका अधिकांश व्यय राज्य द्वारा पूरा किया जाता है और कुछ थोड़ा-सा व्यय—चाहे वह एक पाई ही हो—अन्य एजेन्सी द्वारा पूरा किया जाता है। हमें इस बात को यहां विधान का अंग नहीं बनाना चाहिये। मुझे पूर्ण विश्वास है कि कोई भी सरकार 99 प्रतिशत रुपया देकर इस आधार पर धार्मिक शिक्षा नहीं देने देगी कि 1 प्रतिशत अन्य लोगों से मिलता है। अत: हमें किसी भी प्रकार के संशोधनों को स्वीकार नहीं करना चाहिये, बल्कि अपना ध्यान संशोधन संख्या 661 और संशोधन संख्या 645 की ओर लगाना चाहिए।

***उपाध्यक्ष:** यद्यपि मैं तो यही चाहूंगा कि उन अन्य सदस्यों को भी अवसर दूं, जिनके विचारों का मैं बहुत सम्मान करता हूं, परन्तु मैं देखता हूं कि हमारे समक्ष अनेकों वक्ता भाषण दे चुके हैं। बारह संशोधनों पर मत लेना है। नौ संशोधन पेश किये जा चुके हैं और मेरे ख्याल से 6 वक्ता बोल भी चुके हैं। मुझे प्रतीत होता है कि इस अनुच्छेद पर पर्याप्त वादानुवाद हो चुका है। अब मैं डॉ. अम्बेडकर को उत्तर देने के लिये आमन्त्रित करता हूं।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं एक या दो बातों को स्पष्ट कराना चाहता हूं। मैं भाषण नहीं दूंगा केवल एक या दो बातों की व्याख्या कराना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** मैं अपना निर्णय दे चुका हूं। मैं अब और अधिक भाषण देने की आज्ञा नहीं दे सकता, विशेषकर जब कि मैं और आप एक ही प्रान्त के हैं।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र:** एक प्रान्त के होने से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं केवल एक बात का स्पष्टीकरण चाहता था।

***उपाध्यक्ष:** पंडित जी, मेरा निर्णय अन्तिम है। डॉ. अम्बेडकर!

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष, श्रीमान्, जितने संशोधन पेश किये गये हैं उनमें से मैं केवल इस अनुच्छेद में से उपखण्ड (3) को हटा देने वाले श्री कपूर के संशोधन संख्या 661 को स्वीकार करता हूं। मुझे खेद है कि मैं अन्य संशोधनों को स्वीकार नहीं कर सकता।

सभा में जो अनेकों मत प्रकट किये गये है उनको दृष्टि में रखते हुये यह ठीक होगा कि इस अनुच्छेद से क्या अभिप्राय है इस विषय की कुछ ब्यौरेवार व्याख्या मैं कर दूं। अनेकों संशोधनों पर विचार करने से जो कि पेश किये गये हैं, यह प्रकट होता है कि इस सम्बन्ध में तीन भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हैं। एक विचारधारा मद्रास के सदस्य मेरे मित्र मि. इस्माइल ने पेश की है। उनके मत के अनुसार धार्मिक शिक्षा देने में कोई रुकावट नहीं होनी चाहिये। वे केवल इस प्रतिबन्ध के पक्ष में हैं कि किसी व्यक्ति को धार्मिक शिक्षा में उपस्थित होने के लिये बाध्य न किया जाये। यदि मैंने उनको ठीक-ठीक समझा है तो वे इसी विचार के समर्थक हैं। हमारे समक्ष एक और विचारधारा है, जिसका प्रतिपादन मेरे मित्र श्री भूपेन्द्रसिंह मान तथा मि. तजम्मुल हुसैन द्वारा किया गया है। उनके अनुसार धार्मिक शिक्षा बिल्कुल ही न दी जाये, यहां तक कि उन संस्थाओं में भी न दी जाय, जो शैक्षिक संस्थायें नहीं हैं। इनके अतिरिक्त एक तीसरी विचारधारा है, जिसको प्रो. के. टी. शाह ने यहां उपस्थित किया है। वे कहते हैं कि केवल उसी संस्था में ही कोई धार्मिक शिक्षा न दी जाये, जो राज्य प्रणीवि से पूर्णत:

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

संधारित है; वरन् उसमें भी न दी जाये जो राज्य-प्रणीवि से केवल अंशत: संधारित है। इन सब विचारधाराओं को ध्यान में रख कर मैं यह कह सकता हूं कि मसौदे का जो रूप है, उसमें मध्यमार्ग को ग्रहण किया गया है और मुझे आशा है कि सभा को यह मान्य होगा। मेरे मित्र मि. इस्माइल ने इन विचारों का समर्थन किया है कि धार्मिक शिक्षा देने में कोई रुकावट न हो और धार्मिक शिक्षा अबाधरूपेण दी जाये। जहां तक मैं समझता हूं, इस विचार को तीन कारणों से स्वीकार नहीं किया जा सकता और मैं संक्षेप में उनको यहां बता देता हूं।

पहला कारण यह है कि हमने अनुच्छेद 21 में निहित इस बात को स्वीकार कर लिया है कि कर-द्वारा एकत्रित लोक-प्रणीवि का उपयोग किसी विशिष्ट सम्प्रदाय के लाभ के लिये नहीं किया जायेगा। उदाहरण के रूप में, यदि हमने किसी विशिष्ट धार्मिक शिक्षा देने की अनुमति दे दी और यदि किसी ज़िला अथवा स्थानीय मंडल द्वारा एक स्कूल स्थापित किया गया और उस स्कूल में इस आधार पर कि उसमें पढ़ने वाले अधिकांश विद्यार्थी हिन्दू हैं, धार्मिक शिक्षा दी जाने लगी, तो इसका नतीजा यह होगा कि इस प्रकार के कार्य से अनुच्छेद 21 में निहित प्रावधानों का अतिक्रम होगा। ज़िला-मंडल अपने क्षेत्र में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर कर लगायेगा। वह सामान्य रूप से कर वसूल करेगा और यदि ज़िला अथवा स्थानीय मंडल द्वारा केवल बहुसंख्यक सम्प्रदाय के बच्चों को ही धार्मिक शिक्षा दी, जाये, तो इससे अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होगा और वह इसलिये कि मुसलमान तथा अन्य धर्मों के बालक भी ज़िला-मंडल के कोष में धन देने के लिये, ज़िला-मंडल के कार्य के कारण, बाध्य होंगे, हालांकि वे ऐसी धार्मिक शिक्षा से कोई वास्ता नहीं रखना चाहते।

दूसरी कठिनाई प्रथम कठिनाई से कहीं अधिक ठोस है और वह यह है कि हमारे देश में अनेकों धर्म हैं। उदाहरण के रूप में, बम्बई नगर को ही लीजिये, जिसमें सब प्रकार के मनुष्य हैं, जो भिन्न-भिन्न मतों को मानते हैं। मान लीजिये कि बम्बई नगर में म्युनिसिपल्टी से संधारित एक स्कूल है। यह स्पष्ट है कि ऐसे स्कूल में हिन्दू-धर्म में विश्वास करने वाले मनुष्यों के भी बच्चे होंगे, ईसाई-समुदाय, पारसी-समुदाय, अथवा यहूदी-समुदाय के भी बच्चे होंगे। यदि और आगे बढ़ा

जाये, और मेरे विचार से इससे आगे बढ़ना वांछनीय भी है, तो हिन्दुओं में और भी अनेकों उप-विभाग होंगे; सनातनी हिन्दू, वैदिक धर्म में विश्वास करने वाले वैदिक हिन्दू, बौद्ध और जैन होंगे; हिन्दुओं में शैव भी होंगे, वैष्णव भी होंगे। क्या उस शैक्षिक संस्था से यह आशा की जायेगी कि वह ऐसे सब बच्चों से समान रूप में व्यवहार करेगा और सब धर्मों की शिक्षा देगा? मुझे तो यह प्रतीत होता है कि राज्य को इस प्रकार का कार्य सौंपना एक असम्भव कार्य को करने के लिये कहना है।

इस सम्बन्ध में जो तीसरी बात मैं कहना चाहता हूं, वह यह है कि दुर्भाग्यवश इस देश में जितने धर्म प्रचलित हैं, वे केवल असामाजिक ही नहीं हैं, बल्कि जहां तक उनका परस्पर सम्बन्ध है, वे समाज-विरोधी हैं; प्रत्येक धर्म यह प्रतिपादित करता है कि केवल उसकी शिक्षायें ही मोक्ष-प्राप्ति के लिये ठीक पथ-प्रदर्शन करती हैं और अन्य सब धर्म गलत हैं। मुसलमान यह विश्वास करते हैं कि जो व्यक्ति इस्लाम धर्म में विश्वास नहीं करता हैं, वह काफिर है और मुसलमानों से भ्रातृवत् व्यवहार पाने का अधिकारी नहीं है। ऐसा ही विश्वास ईसाइयों का है। इस बात को दृष्टि में रखते हुये मुझे यह प्रतीत होता है कि किसी एक धर्म के सच्चे स्वरूप और किसी अन्य धर्म के भ्रमात्मक स्वरूप के विवाद-पूर्ण प्रश्न को यदि हम किसी भी स्कूल में आने देंगे तो उससे उस स्कूल के शान्तिमय वातावरण में हम बहुत ही विघ्न डालेंगे। इसलिये मैं कहता हूं कि अनुच्छेद 22 (1) में यह देकर कि राज्य-संस्थाओं में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी, मेरे मतानुसार हमने ऐसा मार्ग अपनाया है जिसमें सबको सुभीता है। मेरा विचार है कि दूसरे खण्ड को पूर्ण रीति से नहीं समझा गया है। हमने उन संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा देने की अनुमति देकर, चाहे उनको राज्य से कुछ सहायता मिलती हो, एक समुदाय की मांग से साम्य उपस्थित करने का प्रयत्न किया है, जिसने अपने बच्चों की उन्नति के लिये, चाहे वह उन्नति शिक्षा सम्बन्धी हो अथवा संस्कृति सम्बन्धी हो, शैक्षिक संस्थायें खोल रखी हैं। राज्य सहायता प्रदान करने में स्वतन्त्र है और न प्रदान करने में भी स्वतन्त्र है। हमने केवल यही प्रतिबन्ध रखा है कि केवल इस आधार पर कि वह संस्था किसी समुदाय द्वारा संधारित है, न कि किसी सार्वजनिक संस्था द्वारा राज्य अपने सहायता देने के नियमों के अन्तर्गत उस संस्था को सहायता की मांग करने से नहीं रोकेगा। हमने वहां एक और मर्यादा की भी

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

व्यवस्था की है और वह यह है कि यद्यपि वह संस्था धार्मिक शिक्षा देने में स्वतन्त्र है और राज्य द्वारा दिये गये अनुदान से इस प्रकार की शिक्षा में कोई रुकावट नहीं होगी, परन्तु जब तक कि अन्य समुदायों के बच्चों के माता-पिताओं की सहमति प्राप्त न कर ली जायेगी, तक उन बच्चों को यह शिक्षा नहीं दी जायेगी या उन बच्चों के लिये यह शिक्षा अनिवार्य नहीं की जायेगी। मेरे विचार से यह कल्याणकारी प्रावधान है। इसके द्वारा हम दो बात कर सकेंगे।

***श्री एच. वी. कामतः** मैं एक बात का स्पष्टीकरण चाहता हूं। उन संस्थाओं और स्कूलों का क्या होगा जिनको कोई अल्पसंख्यक वर्ग अथवा समुदाय अपने ही विद्यार्थियों के लिये संचालित करता है—वह स्कूल नहीं जिसमें सब समुदाय मिलकर पढ़ते हैं, बल्कि वह स्कूल जिसको कोई समुदाय अपने छात्रों के लिये संचालित करता है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यदि मेरे मित्र कामत दूसरे अनुच्छेद को पढ़ेंगे तो उनको यह विदित हो जायेगा कि यदि एक बार किसी संस्था को अनुदान मिल जाता है, चाहे वह समुदाय द्वारा संधारित हो अथवा न हो तो उस पर यह प्रतिबंध लग जाता है कि वह सब समुदायों के लिए खुला रहेगा। इस प्रावधान को उन्होंने नहीं पढ़ा।

अतः उप-खण्ड (2) के द्वारा हम वास्तव में दो प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं। एक अभिप्राय यह है कि हम किसी समुदाय को, जिसने अपने धार्मिक अथवा सांस्कृतिक जीवन में प्रगति प्राप्त करने के लिये अपनी संस्थायें स्थापित कर रखी हैं, उन संस्थाओं में ऐसी शिक्षा देने की हम अनुमति दे रहे हैं। हमने यह भी व्यवस्था की है कि अन्य समुदायों के बच्चों को, जो ऐसे स्कूल में उपस्थित होते हैं, ऐसी धार्मिक शिक्षा में उपस्थित होने के लिये तब तक विवश नहीं किया जायेगा, जब तक कि उनके माता-पिता इस बात से सहमत न हों, क्योंकि वह शिक्षा निःसन्देह तथा स्पष्टतया उस विशिष्ट समुदाय के धर्म की ही होगी। जैसा कि मैं कहता हूं, हमने इन दो प्रयोजनों को सिद्ध किया है और जो धार्मिक शिक्षा देना चाहते हैं, वे अपनी संस्थायें स्थापित करने में स्वतन्त्र हैं और राज्य से सहायता पाने की मांग कर सकते हैं और धार्मिक शिक्षा दे सकते हैं, पर वे इस स्थिति

को ग्रहण नहीं कर सकेंगे कि अन्य समुदायों पर उस धार्मिक शिक्षा को लादें। अत: यह कहना ठीक नहीं है कि इस अनुच्छेद से हमने धार्मिक शिक्षा बिल्कुल ही बन्द कर दी है। कुछ शर्तों के अधीन प्रत्येक समुदाय को अपने लक्ष्य तथा उद्देश्यों के अनुसार धार्मिक शिक्षा देने की स्वतन्त्रता दे दी गई है। केवल यह रोक लगा दी गई है कि राज्यप्रणीवि से पूर्णत: संधारित संस्थाओं में राज्य धार्मिक शिक्षा न दे सकेगा।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र:** क्या मैं माननीय सदस्य से एक प्रश्न पूछ सकता हूं? मान लीजिये, एक ऐसी शैक्षिक संस्था है, जिसका सारा प्रबन्ध सरकार करती है; जैसे कि संस्कृत-कालेज, कलकत्ता। वहां वेद की शिक्षा दी जाती है, स्मृत्तियां पढ़ाई जाती हैं, गीता का अध्ययन कराया जाता है और उपनिषदों का पाठ पढ़ाया जाता है। इसी प्रकार से बंगाल के कई भागों में संस्कृत-संस्थायें हैं जिनमें इन विषयों की शिक्षा दी जाती है। आप अनुच्छेद 22 (1) में यह व्यवस्था करते हैं कि राज्यप्रणीवि से पूर्णत: संधारित किसी संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती। मेरा प्रश्न यह है कि क्या इसकी यह व्यवस्था की जायेगी कि वेद, अथवा स्मृति अथवा शास्त्र अथवा उपनिषद् की शिक्षा धार्मिक शिक्षा के अर्थ के अन्तर्गत है? ऐसी दशा में तो इन समस्त संस्थाओं को बन्द करना पड़ेगा।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** जिन संस्थाओं का मेरे मित्र श्री मैत्र ने उल्लेख किया है, मैं उनके स्वरूप को ठीक-ठीक नहीं जानता हूं, अत: इसका उत्तर देना मेरे लिये बहुत कठिन है।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र:** उदाहरणार्थ सरकारी संस्कृत-कालेजों और स्कूलों में गीता, उपनिषद्, वेद तथा ऐसी अन्य पुस्तकों की शिक्षा के विषय को लीजिये।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** मेरा निजी विचार यह है कि धार्मिक शिक्षा को अनुसंधान अथवा अध्ययन से पृथक् रखना होगा। यह बिल्कुल भिन्न-भिन्न वस्तुएं हैं। धार्मिक शिक्षा का अर्थ यह है। उदाहरणार्थ, जहां तक इस्लाम धर्म का सम्बन्ध है। उसका आशय यह है कि आप एक ईश्वर में विश्वास करते हैं, आप यह विश्वास करते हैं कि रसूल पैगम्बर ही अन्तिम रसूल थे इत्यादि, इत्यादि। दूसरे शब्दों में हम इसे विश्वास कह सकते है, जिसमें तर्क की गुंजाइश नहीं। इस प्रकार का विश्वास अध्ययन से बिल्कुल पृथक् है।

***उपाध्यक्षः** क्या मैं एक मिनट के लिये दखल दे सकता हूं? कलकत्ता विश्वविद्यालय के कालेजों का निरीक्षक होने के नाते मैं संस्कृत-कालेजों का निरीक्षण किया करता था जिनमें, जैसा कि पंडित मैत्र को विदित है, विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम का ही अध्ययन नहीं करना होता, बल्कि पाठ्यक्रम से बाहर संस्कृत-साहित्य की पुस्तकों और यथार्थ में संस्कृत की पवित्र पुस्तकों का अध्ययन करना होता है। परन्तु इसको धार्मिक शिक्षा के रूप में कभी नहीं समझा गया। वह एक संस्कृत के पाठ्यक्रम के रूप में माना जाता था।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्रः** मेरा प्रश्न यह है। वह अनुसन्धान का विषय नहीं है। यह केवल धार्मिक शिक्षा अथवा धर्म के अंगों का अध्ययन है। मैं पूछता हूं कि क्या गीता और उपनिषदों पर भाषण देना, धार्मिक शिक्षा प्रदान करना समझा जायेगा? उपनिषदों का विवेचन अनुसंधान का विषय नहीं है।

***उपाध्यक्षः** यह विद्यार्थियों को शिक्षा देने का विषय है और मैं कम से कम एक ऐसा उदाहरण जानता हूं कि उस संस्कृत-कालेज में एक मुसलमान विद्यार्थी था।

***श्री एच.वी. कामतः** एक बात स्पष्ट कराना चाहता हूं। क्या मेरे वयोवृद्ध मित्र डॉ. अम्बेडकर का यह विचार है कि केवल अपने ही समुदाय के विद्यार्थियों को शिक्षा देने के लिये उस समुदाय द्वारा संचालित स्कूल में भी धार्मिक शिक्षा अनिवार्य नहीं होगी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यह उन्हीं पर छोड़ दिया गया है। यह उस समुदाय पर छोड़ दिया गया है कि वह धार्मिक शिक्षा को अनिवार्य करे अथवा न करे। हम तो केवल यही निर्धारित करते हैं कि उस समुदाय को, जो स्कूल का संचालन करता है, अन्य समुदायों के बालकों के लिये धार्मिक शिक्षा अनिवार्य करने का अधिकार नहीं होगा।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेनाः** जिस रूप में आपने "धार्मिक शिक्षा" की व्याख्या की है उस व्याख्या को विधान में कहीं रखना चाहिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे विचार से इसका निर्णय न्यायालय करेंगे, जब यह विषय उनके सन्मुख उपस्थित होगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** माननीय सदस्य ने खण्ड (3) का हटाना स्वीकार कर लिया है। यह एक व्याख्यात्मक टिप्पणी है। मैं यह पूछना चाहूंगा कि क्या उसके निकालने से उसमें निहित सिद्धान्त का प्रयोग नियम-विरुद्ध माना जायेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा विचार यह है कि खण्ड (3) वास्तव में अनावश्यक है। वह किसी समुदाय द्वारा संधारित स्कूल से सम्बन्ध रखता है। स्कूल के कार्यकाल के पश्चात् समुदाय को यह स्वतन्त्रता है कि वह उसका जैसा चाहे प्रयोग करे। विधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं होना चाहिये।

श्रीमान्, एक और भी प्रश्न है जिसका मैं उल्लेख करना चाहूंगा और जिसको प्रो. के.टी. शाह ने उठाया है। वह यह कि जिन संस्थाओं के प्रन्यासी पद (ट्रस्टीशिप) को राज्य ने स्वीकार कर लिया है, उन संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा जारी रखने की अनुमति यह परादिक राज्य को देता है। मैं नही समझता हूं कि प्रो. शाह द्वारा उठाये गये प्रश्न में कुछ सार है। मेरे विचार से उनको यह अनुभव होगा कि ऐसे उदाहरण हैं कि इस देश के इतिहास के प्रारम्भ में धार्मिक शिक्षा देने के उद्देश्य से संस्थायें स्थापित की गई थीं और किसी कारणवश उनके प्रबन्ध के लिये मनुष्य न मिल सके और उन संस्थाओं को उनके प्रन्यासी (ट्रस्टी) के रूप में राज्य ने ले लिया। यह स्पष्ट है कि जब आप किसी प्रन्यास को स्वीकार करते हैं तो आपको उस प्रन्यास की सब बातों की पूर्ति करनी चाहिये। यदि राज्य ने इन संस्थाओं को ले लिया है और अपने आपको प्रन्यासी के रूप में मान लिया है तब यह स्पष्ट है कि आप सरकार से यह नहीं कह सकते कि चाहे आप अब तक धार्मिक शिक्षा दे रहे थे पर अब से पश्चात् आप ऐसी शिक्षा नहीं दे सकेंगे। मेरे विचार से, ऐसा करने से प्रन्यास भंग करने के लिये केवल राज्य को अनुमति ही नहीं मिल जायेगी, वरन् उसे विवश होकर प्रन्यास की शर्त को भंग करना होगा। अत: इस परिस्थिति को स्पष्ट करने के लिये हमने इस परादिक का रखना वांछनीय तथा आवश्यक समझा, जो नि:सन्देह किसी सीमा तक अनुच्छेद 20 के उपखण्ड (1) में निहित मूल विचार के अनुकूल नहीं है। श्रीमान्, मैं आशा करता

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

हूं कि जिस रूप में अब अनुच्छेद है उसी रूप में सभा उसे संतोषजनक समझेगी और उसे स्वीकार कर लेगी।

***उपाध्यक्ष:** मैं अब एक-एक करके संशोधनों पर मत लूंगा। सर्वप्रथम मैं संशोधन संख्या 640 के प्रथम विकल्प पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:

'22. No person attending an educational institution maintained, aided or recognised by the State shall be required to take part in any religious instruction in such institution without the consent of such person if he or she is a major or without the consent of the respective parent or guardian if he or she is a minor."

(22. राज्य द्वारा संधारित, सहायता प्राप्त अथवा अभिज्ञात किसी शैक्षिक संस्था में जाने वाले किसी व्यक्ति को उस संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिये यदि वह प्राप्त-वयस्क है, तो उसकी सहमति के और यदि वह अवयस्क है तो उसके माता-पिता अथवा संरक्षक की सहमति के बिना मजबूर न किया जायेगा।)

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** इसके बाद हम सूची संख्या 1 के संशोधन संख्या 19 द्वारा संशोधित संशोधन संख्या 641 पर आते हैं। मैं पहले सूची संख्या-1 की संशोधन-संख्या 19 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 641 के स्थान में निम्न रखा जाये:

'कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) और (3) को निकाल दिया जाये।' "

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 641 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये :

'22. The State shall not compel anyone to have religious instruction in a religion not his own in schools against his wishes, but the State shall endeavour to develop religious tolerance and morality among its citizens by providing suitable courses in various religions in schools.'

(22. राज्य किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध पाठशालाओं में उसके धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म की शिक्षा पाने के लिये विवश नहीं करेगा, पर पाठशालाओं में विभिन्न धर्म के उपयुक्त पाठयक्रम की व्यवस्था करके राज्य अपने नागरिकों में धार्मिक सदाचार और सहनशीलता को उन्नत करने का प्रयास करेगा।)"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** इसके बाद संशोधन संख्या 647 है।

प्रस्ताव यह है :

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में 'in any educational institution wholly' (राज्यप्रणीवि से पूर्णत:) शब्दों के पश्चात् 'or partly' (अंशत:) शब्द जोड़ दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** इसके पश्चात् संशोधन संख्या 643 है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में 'shall be provided' (दी जायेगी) शब्दों के पश्चात् 'or permitted' अथवा न दिये जाने की (अनुमति दी जायेगी) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** इसके पश्चात् संशोधन संख्या 644 है।

[उपाध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में से 'educational' (शैक्षिक) शब्द निकाल दिया जाये।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** इसके पश्चात् संशोधन संख्या 645 है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में से 'by the State' (राज्य द्वारा) शब्द निकाल दिये जायें।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** इसके पश्चात् संशोधन संख्या 646 है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) में से 'by the State' (राज्य द्वारा) शब्द और 'wholly maintained out of State funds' (राज्य-प्रणीवि से पूर्णत: संधारित) शब्द निकाल दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** इसके पश्चात् संशोधन संख्या 653 है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) के परादिक के अन्त में निम्न जोड़ दिया जाये:

'and the income from which trust or endowment is sufficient to defray the entire expenditure of such institution.'

(और उस प्रन्यास अथवा नीवि की आय इस संस्था के समस्त व्यय को पूरा करने के लिये पर्याप्त हो।)"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** इसके पश्चात् संशोधन संख्या 658 है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (2) में से 'recognised by the State or' (राज्याभिज्ञात अथवा) शब्दों को निकाल दिया जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** इसके पश्चात् संशोधन संख्या 661 है। इसे स्वीकार कर लिया गया है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (3) को निकाल दिया जाये।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** इसके पश्चात् संशोधन संख्या 662 है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (3) में 'providing' (देने) शब्द के स्थान में 'being permitted to provide' (देने के लिये अनुमति दिये जाने में) शब्द रखे जायें और 'educational institution' (शैक्षिक संस्था के कार्यकाल) शब्दों के पश्चात् 'in or' (में अथवा उस) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अन्तिम संशोधन संख्या 664 है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (3) में 'outside its working hours' (शैक्षिक संस्था के कार्यकाल के पश्चात् धार्मिक शिक्षा देने में रुकावट न होगी) शब्दों के स्थान में निम्न रखा जाये:

'maintained by that community from its own funds provided that no educational institutions, nor any education or training imparted, therein shall be recognised unless it provides instruction or training in courses laid down for public instruction in the regular system of education for the country and complies in all other respects with methods, standards, equipment and other requirements of the national system of education.'

(उस समुदाय द्वारा स्वयं अपनी ही प्रणीवि से संधारित शैक्षिक संस्था में शिक्षा देने में रुकावट न होगी परन्तु कोई शैक्षिक संस्था अथवा उसमें दी हुई कोई शिक्षा अथवा प्रशिक्षा तब तक स्वीकृत नहीं की जायेगी जब तक

[उपाध्यक्ष]

वह संस्था देश की नियमित शिक्षा-प्रणाली में लोक-शिक्षा के लिये निर्धारित पाठ्यक्रम की शिक्षा तथा प्रशिक्षा न दे और अन्य समस्त रूप में राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की विधि, स्तर, साधन तथा अन्य आवश्यकताओं के अनुकूल न हो।)"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 22 विधान का अंग बने।"

*प्रस्ताव स्वीकार किया गया*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 22 विधान में प्रविष्ट किया गया।*

(संशोधन संख्या 666 पेश नहीं किया गया।)

---

## अनुच्छेद 22-क (नया अनुच्छेद)

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'22-A. All privileges, immunities or exemptions of heads of religious organisations shall be abolished.'"

(22क. धार्मिक संघों के अध्यक्षों के समस्त विशेष अधिकार, रियायतें और छूट समाप्त कर दी जायेंगी।)

कदाचित् यह सबको सामान्यतया विदित नहीं होगा कि धार्मिक संघों के अध्यक्ष कुछ अति प्रादेशिक अथवा अति नागरिक विशेषाधिकारों का उपभोग करते हैं। वे नागरिक विशेषाधिकारों, रियायतों और छूटों का उपभोग करते हैं और उनके कारण एक पृथक् वर्ग बन जाते हैं; पर अधिकतर उनके इन विशेषाधिकारों से लोक-प्रणीवि को बड़ी भारी क्षति होती है और जन-हित को भारी धक्का लगता है।

नाम सम्बन्धी अथवा प्रथा सम्बन्धी विशेषाधिकारों के उपभोग करने पर

उपाधियों, उच्च आसन, सम्मान पद तथा अन्य समान बातों पर मैं कोई आपत्ति नहीं करता कुछ धर्माध्यक्षों को तो राजाओं के समान समझा जाता है और उनके समान उनको ग्यारह तोपों की सलामी दी जाती है, यद्यपि यह सलामी उनके ही खर्च से दी जाती है; पर वे इस स्थिति में हैं कि वे इस सम्मान को प्राप्त करने की मांग कर सकते हैं। जैसा कि अभी मैं कह चुका हूं मैं इस बात का विरोध नहीं करता क्योंकि जब भी वे इस प्रकार का सम्मान प्राप्त करना चाहते हैं तभी उनको स्वयं उसका खर्चा देना होता है। पर इनको ऐसी रियायतें और छूटें दी जाती हैं कि जिनसे वे देश के शेष नागरिकों से पृथक् विशिष्टता प्राप्त कर लेते हैं और इस प्रकार इस सरल सिद्धान्त को तोड़ते हैं जो यह ठहराता है कि बिना किसी उपाधि, जन्म, मत अथवा लिंग के भेद-भाव के इस देश के समस्त नागरिक परस्पर समान हैं।

इसे मैं सैद्धान्तिक दृष्टि से आपत्तिजनक समझता हूं क्योंकि इसके द्वारा उत्पन्न असमानता इस विधान द्वारा नागरिकों को प्रत्याभूत अधिकारों पर सीधा तथा पूरा प्रभाव डालती है। धर्माध्यक्षता को यदि सचमुच उसी भाव और उसी रूप में समझा जाये जिस भाव और रूप में इसको सोचा गया था तब तो उस पद के धारण करने वालों की स्थिति पूर्णतः भिन्न हो...

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): माननीय सदस्य किसको इस प्रकार के अधिकारों के देने का विचार कर रहे हैं? यह मूलाधिकारों का अध्याय है। मूलाधिकारों से इस प्रस्ताव का कोई सम्बन्ध नहीं है।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** यह तो अध्यक्ष के कहने की बात है।

***उपाध्यक्षः** प्रोफेसर शाह अपना वक्तव्य जारी रख सकते हैं।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं यह कह रहा हूं कि यह स्वीकृत मूलाधिकारों की खिलाफवर्जी है। मैं किसी नये अधिकार पर ज़ोर नहीं दे रहा हूं। मैं इस प्रकार की छूटों के एक या दो उदाहरण दूंगा। ऐसी छूटें अब तक दी जाती थीं और मेरे विचार से अब भी दी जाती हैं। उदाहरण के लिये, धर्माध्यक्षों के उपयोग के लिये विदेशों से आने वाले माल पर चुंगी-कर की छूट और आय-कर की छूट को हम ले सकते हैं। जल-मार्ग से मंगाये जाने वाले माल पर भी अधिनियम और आय-कर अधिनियम से मुक्त होने की मांग उन परम्परागत विशेषाधिकारों के आधार पर की जाती है जो वर्ग-प्रधान समाज में सौजन्यता के नाते उनको प्रदान किये गये थे। मैं यह ठीक-ठीक नहीं बता सकता हूं कि इन

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

अनेकों समुदायों के अनेकों धर्माध्यक्षों को इन विशेषाधिकारों को प्रदान करने से राज्य को कितनी आर्थिक क्षति उठानी पड़ती है। ये लोग बाहर के माल अथवा विदेशी वस्तुओं से विशेष रुचि रखते हैं और विदेशों से बहुत अधिक माल लगातार मंगाते रहते हैं। यद्यपि ये विलास की सामग्री होती हैं और यद्यपि धर्माध्यक्षों की आय भी काफी होती है फिर भी वे चुंगी-कर से बच जाते हैं और आय-कर से मुक्त होने की मांग करते हैं।

***उपाध्यक्ष:** शान्ति, शान्ति; सभा में बहुत शोर हो रहा है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** श्रीमान्, इस सम्बन्ध में मैं यह ठीक-ठीक नहीं बता सकता हूं कि इन बातों से आज देश को कितनी आर्थिक हानि होती है। आज कल आय पर जो बहुत अधिक कर लिया जाता है उस पर विचार करते हुये तो इन कर-विमुक्त आयों पर कर लगाने से बहुत अधिक आमदनी हो सकती। अनेकों धर्माध्यक्षों की आय बहुधा लाखों और यहां तक कि करोड़ों रुपये है। अत: यदि उसी दर से इन पर कर लगाया जाये जिस दर से कि और लोगों पर लगता है और यदि उसी प्रकार से उनसे कर भी वसूल किया जाये और यदि इन लोगों से कर वसूल करने में उतनी ही कड़ी और सही नीति बरती जाये, तो मैं समझता हूं कि सरकारी खजाने को बहुत ही लाभ होगा। वर्तमान दर के अनुसार एक करोड़ रुपये की आय पर 92 1/2 लाख रुपया कर होगा, और यदि आगाखां जैसे 10 धर्माध्यक्ष हों, तो उनसे आय-कर न लेने के कारण सरकारी खजाने को 9.25 करोड़ रुपये या उससे भी अधिक रुपये का नुकसान उठाना पड़ता है।

धर्माध्यक्षों के इन विशेषाधिकारों और रियायतों के होने से राज्य को इतने अधिक धन की हानि होती है, कदाचित् इस बात की ओर ही हमारा ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है। ये विशेषाधिकार तत्त्वत: धर्म से सम्बन्ध नहीं रखते; इनका सम्बन्ध तो मुख्यतया सांसारिक जीवन और लौकिक सुविधाओं से है और यदि इस बात के कहने की मुझे स्वतंत्रता हो तो मैं कह सकता हूं कि इन सबसे तो धर्म का पत्तन ही होता है क्योंकि इन सबका प्रयोजन तो केवल आर्थिक और भौतिक सुख-साधन ही हैं। अत: उनके विरुद्ध हमें अपनी आवाज़ उठानी चाहिये।

इसलिये ये विमुक्तियां और विशेषाधिकार इस संविधान के पारण या उसके पश्चात् खत्म हो जाने चाहियें। मेरा विचार है कि यह बात इस सभा को उचित लगती है और स्वीकार कर ली जायेगी।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 668 और 669 भाषा तथा लिपि के सम्बन्ध के हैं। अतः उनको इस समय स्थगित किया जाता है। श्री दामोदरस्वरूप सेठ अब अपना संशोधन संख्या 670 पेश कर सकते हैं।

***श्री जैड.एच. लारी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्। जिस अनुच्छेद पर पहले संशोधन पेश किया गया था। वह इस अनुच्छेद से सर्वथा भिन्न है जिसको इस बाद के संशोधन द्वारा प्रविष्ट करने का प्रयास किया गया है।

***उपाध्यक्षः** मैंने सोचा कि यदि एक-एक करके सब संशोधन पेश कर दिये जायें तो समय की बचत होगी।

***श्री जैड.एच. लारीः** पर दो अनुच्छेदों पर साथ-साथ वादानुवाद नहीं हो सकता है। दूसरे अनुच्छेद पर विचार करने के पूर्व पहले अनुच्छेद पर विचार समाप्त कर देना होगा।

***उपाध्यक्षः** क्या माननीय सदस्य उस बात पर अभी वाद-विवाद करना चाहते हैं?

***श्री ज़ैड.एच. लारीः** जी हां।

***उपाध्यक्षः** वह बाद में हो सकता है।

***श्री जैड.एच. लारीः** पर ये दोनों अनुच्छेद भिन्न-भिन्न हैं और संशोधन भी भिन्न-भिन्न हैं।

***उपाध्यक्षः** जब सदस्य बोलने के लिये उपस्थित हों वे यह कह सकते हैं कि वे अमुक अनुच्छेद अथवा अमुक संशोधन पर बहस कर रहे हैं। अथवा यदि वे चाहते हैं तो मैं सेठ दामोदरस्वरूप से निवेदन कर सकता हूं कि वे बाद में भाषण दें।

**श्री ज़ैड.एच. लारी:** वह कार्य-प्रणाली ठीक होगी।

***उपाध्यक्ष:** पारिभाषिक रूप में वह ठीक है। पर जिस प्रणाली को मैंने ग्रहण किया है उससे मैं सभा के समय की बचत कर लूंगा। किन्तु इस बात में मेरा कोई आग्रह नहीं है; आप चाहे जिस प्रणाली को अपना सकते हैं।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): क्या मैं यह जान सकता हूं कि यह आपका निर्णय है अथवा मि. लारी का?

***उपाध्यक्ष:** मैं जानता हूं कि माननीय सदस्य मि. लारी मेरे निर्णय की स्वीकार करने के लिये राजी हैं। पर मैं सबको खुश करना चाहता हूं। यह मेरी दुर्बलता है। क्या मि. लारी मेरी बात को स्वीकार करते हैं?

***श्री ज़ैड.एच. लारी:** श्रीमान्, मैं आपके निर्णय को शिरोधार्य करता हूं।

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 22 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'22-A. The use of religious institutions for political purposes and the existence of political organisations on religious basis is forbidden.' "

(22-क. धार्मिक संस्थाओं का राजनैतिक प्रयोजनों के लिये उपयोग और धार्मिक आधार पर राजनैतिक संगठनों के अस्तित्व का निषेध किया जाता है।)

विधान का मसौदा ठीक और न्यायपूर्ण रूप से समस्त नागरिकों को प्रत्याभूति देता है...।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अनुच्छेद 19 (2) (क) में यह बात आ जाती है।

***उपाध्यक्ष:** मुझे यह बताया गया है कि अनुच्छेद 19 (2) (क) में आपकी बात आ जाती है।

***श्री एच.वी. कामत:** अनुच्छेद 19 (2) (क) धर्म से सम्बद्ध राजनैतिक अथवा अन्य ऐहिक कार्यों को नियमित अथवा आयंत्रित करता है, जब कि

सेठ दामोदरस्वरूप का संशोधन उनका पूर्णतया निषेध करता है। पूर्ण निषेध और नियमन में बहुत अन्तर है।

***पंडित ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): अनुच्छेद 19 (2) में 'prohibiting' (निषेध) जोड़ देने के लिये एक संशोधन रखा गया था और उस संशोधन को सभा ने स्वीकार नहीं किया।

***उपाध्यक्ष:** उसका लगभग वही अर्थ है जो कि सेठ दामोदरस्वरूप के संशोधन का है। यह बात ली जा चुकी है। मैं इसके पेश करने की आज्ञा नहीं दे सकता।

संशोधन संख्या 671 । यह गोवध के बारे में है। यह विषय भी लिया जा चुका है।

संशोधन संख्या 672 भाषा और लिपि के बारे में है। अत: हमारे पास केवल एक संशोधन संख्या 667 बाकी रहता है और मि. लारी की आपत्ति स्वत: दूर हो गई। प्रो. के.टी. शाह के संशोधन संख्या 667 पर अब सामान्य वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा:** उपाध्यक्ष श्रीमान्, मुझे प्रो. शाह के संशोधन का मूलाधिकारों से कोई सम्बन्ध नज़र नहीं आता। संशोधन इस प्रकार है:

> "धार्मिक संघों के अध्यक्षों के समस्त विशेषाधिकार, रियायतें और छूट समाप्त कर दी जाती है।"

यह कहकर कि अमुक-अमुक व्यक्तियों को अमुक-अमुक अधिकार नहीं होंगे, कोई अधिकार नहीं दिया जाता है। अत: मैं यह नहीं समझ पाता कि इस प्रस्ताव में मूलाधिकारों का प्रश्न किस प्रकार निहित है और मूलाधिकारों के अध्याय में इस प्रस्ताव को किस प्रकार स्थान मिल सकता है। मेरा निवेदन है कि इस प्रस्ताव के लिये यह उपयुक्त स्थान नहीं है अत: इसको विधान के इस अध्याय में नहीं रखना चाहिये।

दूसरी बात जिसको मैं कहना चाहता हूं यह है कि प्रो. शाह धर्म से बहुत ही भयभीत दिखाई देते हैं। धर्म में जो दोष हैं वे स्वयं धर्म में नहीं हैं वरन् उसे दोषपूर्ण प्रचार अथवा अयोग्य या अवांछनीय व्यक्तियों द्वारा उसके प्रचार में हैं।

[श्री कृष्णचन्द्र शर्मा]

धर्म स्वयं तो समस्त शील, समस्त सामाजिक और नैतिक आदर्शों और समस्त मानव संस्थाओं का आधार है। सच तो यह है कि मुझे यह दिखाई नहीं देता कि धर्म में क्या दोष है। यदि धर्म दोषपूर्ण व्यक्तियों द्वारा बरता जाय और यदि धर्म का अयोग्य व्यक्तियों द्वारा प्रचार किया जाय तो उससे स्वत: धर्म दोषपूर्ण नहीं हो जाता।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, माननीय मित्र प्रो. शाह द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव का मैं विरोध करता हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि वे धर्माध्यक्षों के इतने विरुद्ध क्यों हैं। मेरे विचार से मेरे माननीय मित्र यह जानते हैं कि व्यवहार कार्य-प्रणाली संहिता में ऐसे प्रावधान हैं, जिनके आधार पर भूतपूर्व मंत्री भी कुछ महीनों तक न्यायालय में उपस्थित होने से मुक्त हो जाते हैं। मेरे प्रान्त में शमाधिकार लोग हैं जिनको सामान्यतया किसी भी न्यायालय में उपस्थित होने से मुक्त कर दिया गया है। यदि दैवात् उनको किसी न्यायालय में उपस्थित होने और साक्षी देने के लिये विवश किया जाता है, तो इससे उनके शिष्यों में बड़ी बेचैनी होती है। मेरी समझ में नहीं आता कि प्रो. शाह धर्माध्यक्षों के विशेषाधिकारों को संविधान द्वारा खत्म करने के लिये इतने उत्सुक क्यों हैं, जबकि वे उन विशेषाधिकारों के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहते, जिनका उपयोग कुछ उच्च पदाधिकारी आज भी करते हैं और न यह बात समझ में आती है कि प्रोफेसर साहब इस बात को न्यायालयों पर क्यों नहीं छोड़ देना चाहते कि वे यह तय करें कि इस प्रकार की विमुक्तियां और विशेषाधिकार किन आवश्यक हालातों में बरती जा सकती है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, संभवत: इस संशोधन का उद्देश्य बड़ा ही प्रशंसनीय है, यह मैं समझता हूं कि यह संशोधन बिल्कुल ही आवश्यक नहीं है। सर्वप्रथम ये सब उपाधियां इत्यादि जो धर्माध्यक्षों को मिली हुई हैं, अब से पश्चात् राज्य द्वारा नहीं दी जायेंगी, क्योंकि हमने मूलाधिकारों में यह समावेश कर ही दिया हैं कि कोई उपाधि नहीं दी जायेगी; अत: यह स्पष्ट है कि ऐसी कोई उपाधि राज्य द्वारा नहीं दी जायेगी। दूसरी बात जिससे मेरे माननीय मित्र शायद परिचित हैं, यह है कि यदि कोई आदमी अपने नाम के साथ कोई उपाधि स्वयं ही लगा लेता है, तो उसे सरों से मनवाने के लिये वह कोई कानूनी कार्यवाही नहीं कर सकता। यदि कोई व्यक्ति अपने आपको शंकराचार्य

कहता है और यदि कोई अन्य व्यक्ति उसे शंकराचार्य कहना स्वीकार नहीं करता है, तो दूसरे व्यक्ति के विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। व्यवहार कार्य-प्रणाली-संहिता की धारा 9 में यह स्पष्ट कहा गया है कि जिसको आप गौरव कहते हैं, उसको मनवाने के लिये कोई दावा दायर नहीं किया जा सकता। हां, यदि उस गौरव से संयुक्त कुछ परिलाभ अथवा किसी प्रकार की सम्पत्ति है, तब तो बात दूसरी होती हैं; परन्तु एकमात्र गौरव ही दावा करने का आधार नहीं हो सकता। जो विशेष सुविधायें कुछ लोगों को प्राप्त हैं, उनका अंत:करण अधिशासी-मंडल और विधान-मंडल के हाथ की बात है। जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री चौधरी ने कहा है, यह बिल्कुल सच है कि कुछ लोगों को मजिस्ट्रेट द्वारा सम्मन भेजे जाते है। कुछ अन्य लोगों को, जो उच्च पद प्राप्त किये हुये हैं, सम्मन भेजने के स्थान में वह उनको पत्र भेजता है। कुछ लोग न्यायालयों में खड़े रखे जाते हैं और कुछ लोगों को कुर्सियां दी जाती हैं। ये सब गौरव सम्बन्धी विषय हैं, जो पूर्णतया विधान-मंडल और सरकार के हाथ में हैं। यदि इनके कारण नागरिकों में परस्पर कोई अनियमितता अथवा विरोध अथवा असमानता होती है, तो नि:सन्देह विधान-मंडल और सरकार—इन दोनों—को यह अधिकार है कि वे इन अनियमितताओं को हटा दे।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 22 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'22-A. All privileges, immunities or exemptions of heads of religious organisations shall be abolished.' "

(22-क. धार्मिक संघों के अध्यक्षों के समस्त विशेष अधिकारों, रियायतों का और छूटों का अन्त कर दिया जायेगा।)

*प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।*

---

## अनुच्छेद 23

***उपाध्यक्ष:** अब हम आगे के अनुच्छेद को लेंगे। पहला संशोधन संख्या 673 पर है जिसको इस स्पष्ट आधार पर पेश नहीं करने दिया जा सकता है कि वह निषेधात्मक है। इसके बाद हम संशोधन संख्या 674 पर आते हैं।

*श्री लोकनाथ मिश्र (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 23 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'23. Without detriment to the spiritual heritage and the cultural unity of the country, which the State shall recognise, protect and nourish, any section of the citizens residing in the territory of India or any part thereof, claiming to have a distinct language, script and culture shall be free to conserve the same.' "

(23. देश की आध्यात्मिक परम्परा और सांस्कृतिक एकता को, जिनको राज्य स्वीकार करेगा और उनकी रक्षा और पोषण करेगा, हानि पहुंचाये बिना भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके भाग के निवासी नागरिकों के किसी वर्ग को, जिनकी विशेष भाषा, लिपि और संस्कृति है, इनके संरक्षण का अधिकार होगा।)

श्रीमान्, वर्तमान अनुच्छेद सं. 23 के स्थान में इस अनुच्छेद को रखने के प्रस्ताव को पेश करते हुये, जो कुछ अनुच्छेद 23 में कहा गया है, न तो मैं उसके अलावा कोई नई बात रख रहा हूं, और न उसकी किसी बात का विरोध ही कर रहा हूं। यह सत्य है और अनुच्छेद 23 में इस बात को सत्य मान लिया गया है कि भारत के राज्य-क्षेत्र में हमारी भिन्न-भिन्न लिपियां हैं, हमारी भिन्न-भिन्न भाषायें हैं और यहां तक कि हमारी संस्कृतियां भी भिन्न-भिन्न हैं और यह मान लिया गया है कि इन सबको स्वीकार करना है, तथा उनकी रक्षा करनी है और इस बात की सुविधा देनी है कि वे फलें-फूलें। परन्तु मैं यह कहूंगा कि जिस प्रकार एक अंग्रेज़ी कहावत के अनुसार समस्त सड़कें रोम तक जाती हैं और उनको रोम तक जाना भी चाहिये, उसी प्रकार इन समस्त संस्कृतियों को, इन समस्त भाषाओं को और इन समस्त लिपियों को एक ही उद्देश्य प्राप्त करने के साधन के रूप में मानना चाहिये, और उस उद्देश्य को राज्य को स्वीकार करना चाहिये और उसकी उन्नति तथा रक्षा करनी चाहिये। वास्तव में हमारी यही इच्छा रही है और हमारी स्वतन्त्रता तथा हमारे अभ्युदाय की उत्पत्ति का यही मूल कारण रहा है कि उन समस्त अनेकताओं के होते हुये भी, जिनमें कि हम विभाजित हैं,

हम एकता की ओर बढ़ते गये हैं। अतः सभा से मेरा निवेदन है कि यद्यपि हमारे यहां अनेकों भाषायें, अनेकों संस्कृतियां, अनेकों लिपियां और अनेकों धर्म हैं, फिर भी हमारे लिये किसी ऐसे आदर्श को स्थापित कर लेना असम्भव नहीं है, जो सारे भारत के लिये समानरूपेण मान्य हो और जो हमारी प्राचीन परम्परा से मिला हो, जो अब तक वर्तमान है और हमें शक्ति दे रही है तथा प्रोत्साहित कर रही है। जिस प्रकार समुद्र में सारी नदियां मिलती हैं, उसी प्रकार इस भारतवर्ष रूपी सांस्कृतिक समुद्र में, इस भारतवर्ष रूपी आध्यात्मिक समुद्र में, हमारी परम्परा के अनुसार हमारी विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं, लिपियों, आशाओं तथा महत्त्वाकांक्षाओं की सारी धारायें मिलें और अपार विशाल समुद्र का निर्माण करें। श्रीमान्, अनुच्छेद 23 में जहां हमारी विभिन्नताओं को स्थान मिला है, वहीं साथ-साथ हमारी एकता के आदर्श को भी स्थान मिलना चाहिये, क्योंकि जब तक हम में ऐसी एकता नहीं होती, तब तक प्रशासन-तंत्र द्वारा, राज्य के वाहन द्वारा, बाह्य विधियों की आज्ञा द्वारा में एकता स्थापित नहीं की जा सकती। बाह्य कानून के नियममात्र हैं, हम एकता प्राप्त नहीं कर सकते है। अतः वास्तविक एकता के लिये, आन्तरिक एकता के लिये तथा प्राकृतिक एकता के लिये हमें किसी ऐसे आत्मज्ञान, किसी ऐसी संस्कृति तथा किसी ऐसी भाषा का विकास करना चाहिये, जिसमें सब बातें हों और जो सब बातों को वहन करे और फिर भी वह सब बातों से अधिक महत्त्वपूर्ण हो और साथ ही साथ अनन्त अतीत से अनन्त भविष्य तक प्रवाहित रहे। अतः श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि जिस संशोधन को मैं पेश कर रहा हूं, उसे सभा स्वीकार करे। सभा समझ गई होगी कि उस एकता का विकास किये बिना कोई वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती, जो एकता कि केवल एक महान् आदर्श पर पहुंच कर ही प्राप्त की जा सकती है—उस आदर्श के अधीन जो हमें बताता है कि हम सब एक हैं, यद्यपि हम लगते अनेक हैं। मन के उस कोठे में, जहां आत्मा का निवास है, पहुंच कर और संस्कृति के उस वातावरण में, जिसका हम सब पोषण करते चले आये हैं। और बिना ऐसे आदर्श को अपनाये हम संसार की सभ्यता को कोई मूल्यवान भेंट न दे सकेंगे और न संसार की एकता तथा मानवों में शांति और सभ्यता का विस्तार कर सकेंगे।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): क्या मैं सुझाव दे सकता हूं कि हम इस संशोधन पर बाद में निर्णय करें अथवा तब तक विचार न करें जब तक कि यह निर्णय न कर लिया जाये कि कौन-सी भाषा राष्ट्र-भाषा मानी जायेगी और लिपि कौन-सी होगी? क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि यह संशोधन स्थगित कर दिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** मौलाना साहब, जो बात आपने कही उसे मैं न समझ सका। आपका मतलब संशोधन संख्या 674 से है अथवा समस्त अनुच्छेद से।

***मौलान हसरत मोहानी:** इस अनुच्छेद से, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** श्री लोकनाथ मिश्र कहते हैं "देश की आध्यात्मिक परम्परा और सांस्कृतिक एकता को, जिनका राज्य अभिस्वीकरण इत्यादि, इत्यादि।" अत: भाषा और लिपि का प्रश्न कहीं भी उपस्थित नहीं होता है। चाहे भारत के विभिन्न भागों में प्रयोग की जाने वाली भाषायें पृथक्-पृथक् हों फिर भी सांस्कृतिक एकता के सम्बन्ध में सोचा जा सकता है। अत: मैं आपकी आपत्ति को उचित नहीं समझता हूं।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** मैंने तो अपनी आशाओं और महत्त्वाकांक्षाओं का उल्लेख किया था जिनके आधार पर हम भविष्य में अपनी यात्रा करेंगे। मैं यह नहीं कहता हूं कि हम यहां अभी कुछ करें।

***मौलाना हसरत मोहानी:** मैं समझता हूं कि जिस प्रकार आपने अनेकों संशोधनों के सम्बन्ध में निर्णय किया है इस संशोधन को भी स्थगित किया जाये। हम तब तक इस पर निर्णय नहीं कर सकते जब तक हम यह निर्णय नहीं कर लेते कि हमारे समस्त देश की कौन-सी भाषा होगी और क्या लिपि होगी। अभी हम यह कैसे कह सकते हैं।

***उपाध्यक्ष:** इस संशोधन का राष्ट्रीय भाषा और लिपि से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह यहां नियमानुकूल है।

(संशोधन संख्या 675 पेश नहीं किया गया।)

*श्री ज़ैड.एच. लारी: उपाध्यक्ष, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखता हूं:

"कि अनुच्छेद 23 के खण्ड (1) के स्थान में निम्न रखा जाये:

'(1) Minorities in every unit shall be protected in respect of their language, script and culture, and no laws or regulations may be enacted that may operate oppressively or prejudicially in this respect.' "

[(1) प्रत्येक प्रदेश में भाषा, लिपि और संस्कृति के सम्बन्ध में अल्पसंख्यकों की रक्षा की जायेगी और कोई ऐसे कानून अथवा आनियम न बनाये जायेंगे जिनसे इस सम्बन्ध में उत्पीड़न हो अथवा विपरीत प्रभाव पड़े।]

यह संशोधन जो मैंने पेश किया है कोई नया संशोधन नहीं है। यह वास्तव में अप्रैल 1947 ई. में इस सभा द्वारा किये गये मूल निर्णय को यहां रखने का प्रस्ताव है। श्रीमान्, आपको स्मरण होगा, उस समय मैं तो सदस्य नहीं था, पर मुझे कमेटी की रिपोर्ट प्रथम ग्रन्थमाला 1947 ई. से विदित हुआ है कि मूलाधिकार समिति ने यह रिपोर्ट की थी कि यह खण्ड जिस रूप में मैंने रखा है उस रूप में रखा जाये। रिपोर्ट के पृष्ठ 30 पर यह खण्ड इस प्रकार है:

"Minorities in every unit shall be protected in respect of their language, script and culture, and no laws or regulations may be enacted that may operate oppressively or prejudicially in this respect."

(प्रत्येक प्रदेश में भाषा, लिपि और संस्कृति के सम्बन्ध में अल्पसंख्यकों की रक्षा की जायेगी और कोई ऐसे कानून अथवा आनियम न बनाये जायेंगे जिनसे इस सम्बन्ध में उत्पीड़न हो अथवा विपरीत प्रभाव पड़े।)

मूलाधिकार समिति की इस सिफारिश को अप्रैल सन् 1947 में इस विशिष्ट सभा ने स्वीकार कर लिया था। पर आश्चर्य की बात है कि मसौदा-समिति ने...।

***उपाध्यक्षः** क्या वह मूलाधिकार समिति की उप-समिति है ?

***श्री ज़ैड.एच. लारीः** जी हां, वह एक उपसमिति थी और उसकी रिपोर्ट इस सभा द्वारा स्वीकार भी कर ली गई थी, पर मसौदा-समिति ने, जिसको इस सभा द्वारा पास किये गये प्रस्तावों के आधार पर विधान का मसौदा बनाने का कार्य सौंपा गया था, पदों को बदल दिया है और अब वर्तमान उप-खण्ड इस प्रकार है:

"Any section of the citizens residing in the territory of India or any part thereof having a distinct language, script and culture of its own shall have the right to conserve the same."

(भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी वर्ग को, जिनकी अपनी विशेष भाषा, लिपि और संस्कृति है, उनके संरक्षण का अधिकार होगा।)

जिन कारणों से इस संशोधन को पेश करने के लिये मैं प्रेरित हुआ हूं और इस खण्ड को अपने मूलरूप में रखना चाहता हूं वे संक्षेप में ये हैं।

श्रीमान्, मेरा विश्वास है कि यह सबने मान लिया है कि सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों की रक्षा की जाये और अनुच्छेद 23 का यही उद्देश्य है। इस बात का कोई विरोध नहीं हो सकता है। अपने मूल रूप में तथा सभा द्वारा स्वीकृत रूप में यह अनुच्छेद निर्धारण करता था कि ऐसे कोई कानून अथवा नियम स्वीकार नहीं किये जायें, जो अल्पसंख्यक-वर्गों की निजी संस्कृति और भाषा के संधारण और पोषण करने में उनको कठिनाई में डालें। अर्थात् ऐसे कोई कानून स्वीकार नहीं किये जाने चाहियें, जो उस अधिकार को भी समाप्त करते हों, जिसे किसी एक भाषा-भाषी अल्पसंख्यक-वर्ग को दिया गया हो। परन्तु यदि आप विधान के मसौदे की भाषा पर ध्यान दें, तो उसका केवल यही अर्थ होता है कि अल्पसंख्यक-वर्ग अथवा नागरिकों के किसी वर्ग को अपनी भाषा के संरक्षण का अधिकार होगा। इसका क्या मतलब है? इसका क्या प्रभाव है? इसका केवल यह

मतलब है कि नागरिकों के किसी समुदाय को अपनी निजी बातचीतों में अपनी भाषा के प्रयोग करने का अधिकार होगा। परन्तु प्रश्न तो यह है कि राज्य के खर्च से दी जाने वाली प्राथमिक शिक्षा में अपनी भाषा के प्रयोग करने का उनको अधिकार होगा या नहीं। इसमें संदेह नहीं कि इस अनुच्छेद के एक दूसरे खंड के अन्तर्गत कोई अल्पसंख्यक-वर्ग अपनी संस्थायें स्थापित कर सकता है और इस खंड (1) के आधार पर उस अल्पसंख्यक-वर्ग को अपनी मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा देने का अधिकार है। परन्तु प्रश्न तो दूसरा है। यह प्रत्यक्ष है कि राज्य शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना करेगा और उसे ऐसा करना ही चाहिये। यह भी सब समझते हैं कि बहुत से अल्पसंख्यक-वर्ग अपनी शिक्षा-संस्थायें स्थापित करने की शक्ति नहीं रखते और इस कारण अपनी संस्था स्थापित न कर सकेंगे। ऐसी अवस्था में सवाल पैदा होता है कि क्या ऐसी राज्य से चलायी जाने वाली संस्थाओं में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के बारे में, जो किसी म्युनिसिपल्टी के या प्रान्त के कानून द्वारा सबके लिए अनिवार्य कर दी गई है, क्या ऐसी शिक्षा के पाने के लिये अल्पसंख्यक-वर्ग के लोग यह मांग कर सकेंगे कि वह उनकी भाषा में ही उनको दी जाये।

***एक माननीय सदस्य :** असम्भव!

***श्री ज़ैड.एच. लारी:** एक आवाज़ आई है कि यह असम्भव है, यदि यह असम्भव है और यदि सभा की मर्ज़ी यही है कि प्राथमिक शिक्षा देते समय भी राज्य के लिये यह आवश्यक न हो कि वह पर्याप्त प्रबन्ध करे तो मेरा निवेदन यह है कि यह पूरा का पूरा खंड कोरी कागज़ी कार्यवाही के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। चाहे जो कुछ हो, इस समय मैं सभा का ध्यान स्वयं उसके ही निर्णय की ओर आकर्षित कर रहा हूं और प्रार्थना करता हूं कि वह इस बात पर विचार करे कि उचित विचार-विमर्श के पश्चात् तय किये गये अपने निर्णय को क्यों रद्द किया जाये। क्या ऐसा करने के लिये कोई कारण है? यदि मूल खंड की भाषा से इसकी भाषा में अधिक सुधार है तो मैं यह अवश्य निवेदन करूंगा कि वह सुधार किया जा सकता है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या इस खंड की परिवर्तित पदावली इस सभा के उद्देश्य को बढ़ाती है, क्या वह सभा के उद्देश्य पर प्रभाव डालती है या उसका खंडन करती है? इस समय मैं सदस्यों से यह निवेदन करूंगा कि वे इस प्रश्न का मनन करें। यदि डॉ. अम्बेडकर का यह मत है कि

[श्री ज़ैड.एच. लारी]

परिवर्तित अथवा भिन्न पदावली से इस अनुच्छेद के उद्देश्य और अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, वे वैसे के वैसे ही हैं, तब तो मुझे आपत्ति नहीं है। परन्तु मेरा निवेदन यह है कि वर्तमान रूप में खंड प्रभावशून्य है; उसका कुछ भी प्रभाव नहीं है। वह एक प्रत्यक्ष सत्य का वर्णन करता है; वह किसी रूप में भी मूलाधिकार नहीं है। उस कानून अथवा आनियमन के होते हुए भी, जो राज्य द्वारा बाद में निर्माण हो, मैं पूछता हूं कि किसी अल्पसंख्यक नागरिकों के किसी वर्ग को, जिस सीमा तक वे अपनी संस्कृति का पालन और अपनी भाषा का प्रयोग कर सकते हैं, उस सीमा तक संस्कृति का पालन और भाषा का प्रयोग करने से कौन रोक सकता है? सभा इस बात पर ध्यान दे कि राज्य ही सारी शिक्षा देने का कार्य संभाल लेगा; अत: जब तक पहला खंड नहीं रखा जाता, तब तक मेरे विचार से बड़ी कठिनाई होगी। केवल एक यही स्थान नहीं है, जहां कि इस प्रकार के खंड को कानून की पुस्तक में रखने का प्रयास किया गया है। मैं जर्मनी विधान के अनुच्छेद 13 का उल्लेख करूंगा, जो इस प्रकार है:

> "विधान या प्रशासन द्वारा राष्ट्र के उन विभाग की जातीय उन्नति में कोई बाधा न डाली जायेगी, जो अन्य भाषाभाषी हैं। विशेषतया यह बात उनको अपनी भाषा के माध्यम द्वारा शिक्षा पाने में तथा अपने आन्तरिक प्रशासन में और न्याय-विभाग तक पहुंचने के बारे में लागू होगी।"

अत: यह कोई नई बात नहीं है, हो सभा ने की है अथवा मूलाधिकार समिति ने प्रस्तावित की है। इस अनुच्छेद के अर्थ पर विचार करते हुए मेरा निवेदन यह है कि मूलखंड को ही रखा जाये और इस परिवर्तित पदावली को सभा स्वीकार न करे।

इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्ताव को पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** सभा कल प्रात:काल के दस बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

*तत्पश्चात् बुधवार, 8 दिसम्बर सन् 1948 ई. के प्रात:काल 10 बजे तक के लिए सभा स्थगित की गई।*

Con. 3. VII. 22. 48
350

अंक 7
संख्या 22

बुधवार,
8 दिसम्बर
सन् 1948 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

विधान का मसौदा-(जारी)..... 1451-1517

[अनुच्छेद 23 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

बुधवार, 8 दिसम्बर, सन् 1948 ई.

---

*भारतीय विधान-परिषद् कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः दस बजे समवेत् हुई। उपाध्यक्ष महोदय (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) अध्यक्ष पद पर आसीन थे।*

---

## प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्यों ने प्रतिज्ञा-ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

श्री माणिक्य लाल वर्मा (संयुक्त-राज्य, राजस्थान)

श्री गोकुल लाल असावा (संयुक्त-राज्य, राजस्थान)

---

## विधान का मसौदा-( जारी )

### अनुच्छेद 23-( जारी )

***उपाध्यक्ष** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): अब हम अनुच्छेद 23 पर आगे विचार आरम्भ करते हैं। उस पर दो संशोधन उपस्थित किये गये हैं। संशोधन संख्या 677 राष्ट्र-भाषा तथा राष्ट्र-लिपि के सम्बन्ध में है और इसलिये उसे स्थगित किया जाता है। संशोधन संख्या 678, 679, 680 और 681 (पहला भाग) का आशय समान है। इसलिये उन पर एक साथ विचार किया जायेगा। मैं संशोधन संख्या 678 को उपस्थित करने की आज्ञा दे सकता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि :

"अनुच्छेद 23 के खण्ड (1) में 'script and culture' (लिपि और

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

संस्कृति) शब्दों के स्थान में 'script or culture' (लिपि अथवा संस्कृति) शब्द रखे जायें।"

केवल इस परिवर्तन का सुझाव रखा गया है कि 'और' के स्थान में 'अथवा' शब्द रख दिया जाये। इस परिवर्तन की आवश्यकता इतनी स्पष्ट है कि मेरे विचार से मुझे इस सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** इस संशोधन पर एक संशोधन है—सूची एक का संशोधन संख्या 25—जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम से है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल: मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 678 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 23 के खण्ड (1) में 'residing in the territory of India or any part thereof' (भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी) शब्दों के स्थान में 'residing in any part of the territory of India' (भारत के राज्य-क्षेत्र के किसी भाग के निवासी) शब्द रखे जायें।"

यदि 'अथवा उसके किसी भाग' वाक्यांश को पूरे वाक्य में स्थान दिया जाये तो वह इस प्रकार हो जाता है—'भारत के पूरे राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी वर्ग...'। मेरा यह निवेदन है कि नागरिकों को कोई वर्ग भारत के पूरे राज्य-क्षेत्र में निवास नहीं कर सकता। वह अवश्य ही भारत के किसी भाग में निवास करेगा। इसलिये ये शब्द अर्थात् 'भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी' अनुपयुक्त होंगे और उनसे मिथ्या अर्थ-बोध होगा। मेरा यह निवेदन है कि यदि हम 'भारत के राज्य-क्षेत्र के किसी भाग के निवासी' शब्द रखें तो ये पर्याप्त होंगे। सम्भवत: इस प्रसंग में यह शब्दावली अनजाने में प्रयुक्त हो गई है। इससे यह तर्कहीन अथवा मिथ्याबोध होता है कि कुछ लोग अथवा नागरिकों का कोई समूह सम्भवत: सारे भारत में निवास कर सकता है। इसके अतिरिक्त भारत के किसी भाग के सम्बन्ध में इस अनुच्छेद

में जो प्रतिबन्ध रखे गये हैं अर्थात् 'जिनकी अपनी विशेष भाषा, लिपि और संस्कृति है' से भी इसका उद्देश्य भारत के किसी भाग तक ही सीमित हो जाता है।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 679 ।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): डॉ. अम्बेडकर ने मुझसे पहले ही बाजी मार ली है। इसलिये मैं संशोधन संख्या 679 को उपस्थित नहीं करता।

***उपाध्यक्षः** क्या आप संशोधन संख्या 680 को उपस्थित करना चाहते हैं?

***मोहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): जी हां।

***उपाध्यक्षः** क्या आप यह चाहते हैं कि संशोधन संख्या 681 के पहले भाग पर मत लिया जाये?

***प्रोफेसर के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): पहला भाग डा. अम्बेडकर के संशोधन में आ जाता है। परन्तु मैं दूसरे भाग को उपस्थित करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 681 का दूसरा भाग अब उपस्थित किया जा सकता है।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं अपने संशोधन का भाग (2) उपस्थित करता हूं जो इस प्रकार है:

"अनुच्छेद 23 के खण्ड (1) में 'conserve' (समारक्षण) शब्द के बाद 'develop' (समुन्नत करने) शब्द रखे जायें।"

संशोधित खण्ड इस प्रकार हो जायेगा :

"भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी वर्ग को, जिनकी अपनी विशेष भाषा, लिपि और संस्कृति है, इनके समारक्षण तथा इनको समुन्नत करने का अधिकार होगा।"

[प्रो के.टी. शाह]

श्रीमान्, मैं मनुष्यों की संस्कृति तथा मनुष्यों के किसी वर्ग की संस्कृति को गतिशून्य नहीं मानता किन्तु उसे गतिशील तथा उन्नतिशील समझता हूं। इसलिये मेरे विचार से किसी अवसर पर भी उसके समारक्षण से अधिक उसकी समुन्नति का महत्त्व है। इसके अतिरिक्त किसी देश अथवा सम्प्रदाय की संस्कृति उसकी लिपि अथवा भाषा से कहीं अधिक विस्तृत तथा गहन होती है। मैं इसे बताऊंगा। इसी कारण मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है।

देश के लोगों के विभिन्न वर्गों की भाषाओं के सम्बन्ध में मुझे यह कहना है कि कुछ वर्षों में विशेषतया पिछली दो या तीन पीढ़ियों में वे इतनी समुन्नत और परिमार्जित हो गई हैं कि मेरे विचार से उनमें से कई भाषाएं किसी भी श्रेणी की शिक्षा की माध्यम हो सकती हैं, यहां तक कि विश्वविद्यालय में भी उनके द्वारा शिक्षा दी जा सकती है। किन्तु उन्हें और भी समुन्नत बनाया जा सकता है। उनका अधिक अध्ययन होगा चाहिये तथा उन्हें अधिक समुन्नत तथा विस्तृत बनाया जाना चाहिये ताकि वे अभिव्यक्ति और परस्पर व्यवहार तथा शिक्षा के लिये आज से कहीं अधिक प्रभावशाली माध्यम हो सकें। इसलिये मेरे मतानुसार यदि आप समारक्षण का अधिकार देते हैं तो आपको उसकी समुन्नति, उसकी प्रगतिशील उन्नति तथा प्रसार का भी अधिकार प्रदान करना चाहिये।

संस्कृति के सम्बन्ध में मेरा यह विचार है कि वह किसी विशेष प्रदेश, भाषा अथवा लिपि की समस्या नहीं है। वह एक वृहत् सागर है जिसके गर्भ में किसी सम्प्रदाय की भौतिक तथा आध्यात्मिक सभी निधियां स्थित रहती हैं। चाहे हम कला-कौशल पर दृष्टिपात करें अथवा ज्ञान, विज्ञान, धर्म और दर्शन पर, संस्कृति में ये सब सन्निहित हैं और इनके अतिरिक्त भी बहुत कुछ सन्निहित है। इस प्रकार वह प्रगतिशील है। उसे उन्नतिशील तथा सजीव समझना चाहिये। इसलिये यदि आप मूलाधिकारों में इस प्रावधान को अर्थात् समारक्षण के प्रावधान को स्थान देते हैं, चाहे उस पर किसी प्रकार के आघात का अथवा उसके संकट में पड़ने का भय उपस्थित हो अथवा नहीं, तो मुझे इसके लिये कोई कारण नहीं दिखाई देता कि उसके साथ आप समुन्नति का भी अधिकार क्यों न दें। इसीलिये मैंने यह सुझाव रखा है कि समुन्नति के अधिकार को भी स्थान दिया जाना चाहिये।

किसी सम्प्रदाय के समारक्षण के अधिकार के साथ ही उसकी समुन्नति का अधिकार भी होना चाहिये।

यदि आप इस संशोधन पर आघात करते हैं और इसे गिरा देते हैं तो इससे खण्ड के शेष भाग का भी अर्थात् गतिशून्य स्थिति के समारक्षण का भी निराकरण हो जाता है। परन्तु समुन्नति गतिशील तथा प्रगतिशील होती है और इसलिये उसे इस विधान के मसौदाकारों तथा संचालकों को स्वीकार करना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** अब हम संशोधन संख्या 682 पर आते हैं जो सेठ गोविन्द दास के नाम से है, परन्तु मेरे विचार से इसे स्थगित किया जाना चाहिये क्योंकि इसका सम्बन्ध राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि से है।

अब हम संशोधन संख्या 683 पर आते हैं।

(संशोधन संख्या 683 उपस्थित नहीं किया गया।)

चूंकि संशोधन संख्या 683 उपस्थित नहीं किया गया है इसलिए सूची 3 के संशोधन संख्या 52 के उपस्थित किये जाने की आज्ञा नहीं दी जाती। इसके बाद संशोधन संख्या 684 आता है जो पार्लकीमेडी के महाराजा के नाम से है। वे अनुपस्थित हैं।

(संशोधन संख्या 684 उपस्थित नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 685, जो श्री अलगूराय शास्त्री के नाम से है।

***श्री अलगू राय शास्त्री** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मेरा संशोधन अनुच्छेद 24 के सम्पत्ति-सम्बन्धी खण्ड के बारे में है। मैं उसे उस समय उपस्थित करूंगा जब उस अनुच्छेद पर विचार होगा। उसका इस अनुच्छेद से कोई सम्बन्ध नहीं है। छापे की गलती से वह यहां पर आ गया है।

***उपाध्यक्ष:** तो क्या मैं यह समझूं कि आप उसे स्थगित रखना चाहते हैं?

***श्री अलगू राय शास्त्री:** उस पर यथा-स्थान विचार हो सकता है।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 686 भी श्री अलगूराय शास्त्री के नाम से है।

***श्री अलगू राय शास्त्री:** मैं उसे नहीं उपस्थित कर रहा हूं, परन्तु मैं उस पर कुछ विचार प्रकट करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** आप यह सामान्य वादानुवाद के समय कर सकते हैं। अब मेरे सामने संशोधन संख्या 687 है जो प्रोफेसर एन.जी. रंगा और श्री अनन्तशयनम् आयंगर के नाम से है। इसके अतिरिक्त संशोधन संख्या 688 का पहला भाग है जो श्री जसपतराय कपूर के नाम से है और संशोधन संख्या 705 भी श्री जसपतराय कपूर के नाम से है। इन पर एक साथ विचार होगा क्योंकि इनका आशय समान है। मैं संशोधन संख्या 687 के उपस्थित किये जाने की आज्ञा दे सकता हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करना चाहता हूं कि:

> "अनुच्छेद 23 के खण्ड (2) में 'No minority' (किसी भी अल्पसंख्यक वर्ग) के स्थान में 'No citizen or minority' (किसी भी नागरिक अथवा अल्पसंख्यक वर्ग) शब्द रखे जायें।"

मैं यह चाहता हूं कि किसी भी सार्वजनिक शिक्षा-संस्था में सभी नागरिकों को समान रूप से अधिकार हो। यह अधिकार केवल अल्पसंख्यक वर्गों तक ही समिति न रहना चाहिये। इसी उद्देश्य से मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 687 के पहले भाग के सम्बन्ध में मैं जानना चाहता हूं कि क्या श्री कपूर यह चाहते हैं कि उस पर मत लिया जाये।

***पंडित ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): परन्तु, श्रीमान्, संशोधन संख्या 687 पर मेरा एक संशोधन है जिसकी संख्या 26 है।

***उपाध्यक्ष:** जी हां। मैंने गलती की है। इन संशोधनों पर कुछ संशोधन हैं जिन्हें मैं एक-एक करके उठाऊंगा। एक संशोधन सूची 1 का संशोधन संख्या 26 है जो श्री टी. टी. कृष्णमाचारी और पं. ठाकुरदास भार्गव के नाम से है। श्री भार्गव, क्या आप उसे उपस्थित कर रहे हैं?

***पंडित ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि :

"अनुच्छेद 23 के खण्ड (2) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(2) No citizen shall be denied admission into any educational institution maintained by the State or receiving aid out of State funds on grounds only of religion, race, caste, language or any of them."

[(2) किसी नागरिक का, राज्य द्वारा संधृत अथवा राज्य-प्रणीवि से सहायता पाने वाले किसी शैक्षिक संस्था में प्रवेश केवल धर्म, प्रजाति, जाति और भाषा के कारणों से अथवा इनमें से किसी कारण से वर्जित न किया जायेगा।]

और अनुच्छेद 23 के उपखण्ड (क) और (ख) की अनुच्छेद 23-क के रूप में पुनर्गणना की जाये।

श्रीमान्, जिस खण्ड में संशोधन करने का प्रस्ताव किया गया है उसमें और इस संशोधन में तीन बातों के सम्बन्ध में अन्तर है। पहली बात तो यह है कि 'किसी भी अल्पसंख्यक-वर्ग' के स्थान में 'किसी नागरिक' शब्दों को रखने का प्रस्ताव है। दूसरी बात यह है कि इसमें केवल राज्य द्वारा संधृत संस्थाएं ही सम्मिलित नहीं हैं बल्कि राज्य-प्रणीवि से सहायता पाने वाली संस्थाएं भी सम्मिलित हैं। तीसरी बात यह है कि हमने 'धर्म, सम्प्रदाय अथवा भाषा' के स्थान में 'धर्म, प्रजाति, जाति और भाषा के कारणों से अथवा इनमें से किसी कारण से' शब्द रखे हैं।

श्रीमान्, 'किसी भी अल्पसंख्यक-वर्ग, शब्द रखने से अल्पसंख्यक-वर्ग और बहुसंख्यक-वर्ग में अन्तर किया गया है, परन्तु आप देखेंगे कि इस अध्याय का शीर्षक है 'सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार'। इसलिये अल्पसंख्यकों के अधिकारों का इस खण्ड में उल्लेख न होना चाहिये। यदि हम खण्ड (2) को पढ़ें तो यह ज्ञात हो जायेगा कि इस खण्ड में अल्पसंख्यक-वर्ग को कुछ निश्चित अधिकार दिये गये हैं परन्तु राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से इस सम्बन्ध में किसी बहुसंख्यक-वर्ग के प्रति भी विभेद न बरता जाना चाहिये। दुर्भाग्यवश कुछ बातों

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

के सम्बन्ध में यह प्रवत्ति दिखाई देती है कि अल्पसंख्यकों के कुछ विशेष अधिकार हैं और वे अधिकार उनको दिये जाते हैं किन्तु ये अधिकार बहुसंख्यकों को नहीं दिये जाते। हमारे अंग्रेज़ प्रभुओं की यह आदत थी कि वे अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों में इस प्रकार के विभेद उत्पन्न करना चाहते थे। कभी अल्पसंख्यक कहते थे कि यह विभेद उनके विरुद्ध है और अन्य अवसरों पर बहुसंख्यक भी यही अनुभव करते थे। इस संशोधन द्वारा बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक दोनों समान स्तर पर आ जाते हैं।

शिक्षा सम्बन्धी बातों के बारे में मेरी समझ में नहीं आता कि राष्ट्रीय दृष्टि से किसी भी विभेद का, चाहे उससे अल्पसंख्यकों को लाभ होता हो अथवा बहुसंख्यकों को, कैसे समर्थन किया जा सकता है। इसलिये इस संशोधन का उद्देश्य यही है कि अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों को समान स्तर पर लाया जाये। जहां तक शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश का सम्बन्ध है किसी अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक समुदाय के व्यक्तियों के बीच विभेद न बरता जायगा। इसलिये मेरा यह कहना है कि यह अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक दोनों समुदायों के विद्यार्थियों के लिये एक स्वातन्त्र्य-पत्र है।

दूसरा परिवर्तन जो संशोधन द्वारा होगा वह उन संस्थाओं के सम्बन्ध में है, जिनका नियमन इस प्रावधान द्वारा होगा। जैसा कि यह प्रावधान है उसमें केवल राज्य द्वारा संधृत संस्थाएं सम्मिलित की गई हैं। इस संशोधन द्वारा ऐसी संस्थाओं को भी सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है कि जिनको राज्य-प्रणीवि से सहायता प्राप्त होती है। इस प्रकार की बहुत-सी संस्थाएं हैं और इस संशोधन द्वारा भविष्य के लिये अल्पसंख्यकों के अधिकारों को अधिक विस्तृत बना दिया गया है और बहुसंख्यकों को भी अधिकार प्रदान किये गये हैं। इस प्रकार यह संशोधन बहुत ही शक्ति सम्पन्न है और इस प्रकार से इससे राष्ट्र-निर्माण ही होगा।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, इस प्रावधान से 'सम्प्रदाय' शब्द को निकालने का प्रयास किया गया है क्योंकि 'सम्प्रदाय' का कोई अर्थ ही नहीं है। यदि वास्तव में कुछ समान गुणों से किसी सम्प्रदाय का अस्तित्व निश्चित किया जाता है और सभी सम्प्रदाय 'धर्म अथवा भाषा' शब्दों में सन्निहित हैं तो सम्प्रदाय का कोई

आधार ही नहीं रह जाता। इस प्रकार 'सम्प्रदाय' शब्द निरर्थक हो जाता है। इसके स्थान में 'प्रजाति अथवा जाति' शब्द रखने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार यह प्रावधान इतना विस्तृत बना दिया गया है कि जाति, प्रजाति, भाषा अथवा धर्म के आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद की आज्ञा नहीं है।

मेरा यह निवेदन है कि इन सभी दृष्टिकोणों से विचार करने पर इस संशोधन की सार्थकता देखकर इसे सभा को एकमत से स्वीकार कर लेना चाहिये।

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य महोदय के नाम से दो संशोधन और हैं अर्थात् संशोधन संख्या 27 और 28।

***पंडित ठाकुरदास भार्गवः** मैं उनमें से किसी को उपस्थित नहीं करना चाहता परन्तु मैं संशोधन संख्या 31 को प्रस्तुत करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** वह दूसरे वर्ग में आता है। तो माननीय सदस्य महोदय संशोधन संख्या 27 और 28 को उपस्थित नहीं कर रहे हैं।

[संशोधन संख्या 705, 691 और 688 (दूसरा भाग) उपस्थित नहीं किये गये।]

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के संशोधन पर मेरा एक संशोधन था। मेरा यह विचार था कि वे अवश्य ही उसे उपस्थित करेंगे। परन्तु चूंकि उन्होंने उसे वापस ले लिया है इसलिये अब मैं कहां जाऊं?

***उपाध्यक्षः** आप केवल अपनी जगह पर बैठ जायें। राजनैतिक जीवन में ऐसी बातें हुआ ही करती हैं।

इस प्रकार संशोधन संख्या 691 पर सभी संशोधन गिर जाते हैं। अब हम संशोधन संख्या 692 पर आते हैं।

***पंडित ठाकुरदास भार्गवः** संशोधन संख्या 690 का क्या होगा?

***उपाध्यक्षः** उसे बाद को उठाया जायेगा। चूंकि इनका आशय समान है इसलिये इन पर एक साथ विचार होगा। मैं यह जानने का प्रयास कर रहा हूं कि इन पर मत लिया जायेगा अथवा नहीं।

[उपाध्यक्ष]

मैं संशोधन संख्या 692 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दे सकता क्योंकि यह संशोधन संख्या 687 पर उपस्थित किये हुए संशोधन में आ जाता है।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 689 । यह एक शाब्दिक संशोधन है, इसलिये इसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती।

[संशोधन संख्या 693, 694, 696, 697 (पहला भाग) और 698 उपस्थित नहीं किये गये।]

अब हम संशोधन संख्या 690 पर आते हैं जो पंडित ठाकुरदास भार्गव के नाम से है।

***पंडित ठाकुरदास भार्गव:** मैं इस पर एक संशोधन उपस्थित करना चाहता हूं। श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि :

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 690 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

अनुच्छेद 23 के खण्ड (3) में जहां कहीं 'community' (सम्प्रदाय) शब्द आया है उसे निकाल दिया जाये।"

यह संशोधन संख्या 690 पर एक संशोधन है। इस सम्बन्ध में कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। मैं यह कह चुका हूं कि 'सम्प्रदाय' शब्द से कुछ भी अर्थबोध नहीं होता। किसी सम्प्रदाय को अन्य सम्प्रदाय की तुलना में विशिष्ट बनाने के लिये कोई ऐसा गुण नहीं है जो 'धर्म अथवा भाषा, शब्दों में सन्निहित नहीं है। इन शब्दों से पर्याप्त रूप से वह आशय व्यक्त हो जाता है जो 'सम्प्रदाय' शब्द से व्यक्त होता है। इसलिये उस प्रावधान में 'सम्प्रदाय' शब्द निरर्थक है और उसे निकाल दिया जाना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 695 । यह एक शब्दिक संशोधन है और इसलिए इसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती।

[संशोधन संख्या 697 (दूसरा भाग) और 699 उपस्थित नहीं किये गये।]

संशोधन संख्या 700 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती क्योंकि निदेशक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में जिस अन्य संशोधन का सुझाव रखा गया है उसमें वह आ जाता है।

संशोधन संख्या 701 और 702 का आशय समान है और इसलिये उन पर एक साथ विचार किया जायेगा।

(संशोधन संख्या 701, 702 और 703 उपस्थित नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 704 अधिक विस्तृत है और उसे उपस्थित किया जा सकता है।

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि :

"अनुच्छेद 23 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(a) Linguistic minorities shall have the right to establish, manage and control educational institutions for the promotion of the study and knowledge of their language and literature, as well as for imparting general education to their children at primary and pre-primary stage through the medium of their own languages.' "

[(क) एक-भाषा-भाषी अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा तथा साहित्य की उन्नति तथा अध्ययन के लिये तथा अपनी भाषाओं के माध्यम द्वारा अपने बच्चों को प्राथमिक तथा पूर्व-प्राथमिक स्तरों पर सामान्य शिक्षा देने के लिये शिक्षा-संस्थाओं को स्थापित करने, उनका प्रबन्ध करने तथा उन पर नियंत्रण रखने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 23 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में स्पष्टत: धर्म और सम्प्रदाय पर आधृत अल्पसंख्यकों को स्वीकार किया गया है, किन्तु मेरे संशोधन में केवल भाषा पर आधृत अल्पसंख्यकों को स्वीकार किया गया है। श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि असाम्प्रदायिक राज्य में धर्म और सम्प्रदाय पर आधृत अल्पसंख्यकों को स्वीकार न करना चाहिये। यदि उन्हें स्वीकार किया गया तो मेरा यह निवेदन है कि हम अपने राज्य को असाम्प्रदायिक राज्य नहीं कह सकते हैं। धर्म अथवा सम्प्रदाय पर आधृत अल्पसंख्यकों की स्वीकृति असाम्प्रदायिकता का शून्यन है। इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, यदि इन अल्पसंख्यकों को स्वीकार किया

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

गया और इन्हें अपनी शिक्षा-संस्थाओं को स्थापित करने तथा उनका प्रबन्ध करने का अधिकार दिया गया तो इससे राष्ट्रीय एकता के मार्ग में तो बाधा पड़ेगी ही यद्यपि वह भारत ऐसे विभिन्न धर्मों के देश में अत्यंत आवश्यक है परन्तु साथ ही इससे साम्प्रदायिकता को तथा संकुचित विचारधाराओं को प्रोत्साहन मिलेगा। यही हमारा पिछला अनुभव रहा है जिसका भयंकर परिणाम हमें भोगना पड़ा है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि केवल भाषा के आधार पर अल्पसंख्यकों को स्वीकार करना चाहिये और उन्हें अपनी शिक्षा-संस्थाएं स्थापित करने तथा उनका प्रबन्ध करने का अधिकार दिया जाना चाहिये और वह भी केवल इसलिये कि वे अपनी भाषा तथा अपने साहित्य की उन्नति कर सकें और अपनी ही भाषा में प्राथमिक शिक्षा और पूर्व-प्राथमिक शिक्षा दे सकें। उच्च शिक्षा राष्ट्र-भाषा के माध्यम द्वारा ही दी जानी चाहिये। इसलिये, श्रीमान, मेरा यह निवेदन है कि यह संशोधन निर्दोष है और किंचित्मात्र भी हानिकार नहीं है और मुझे आशा है कि यह सभा इसे बिना किसी प्रकार के संकोच के स्वीकार कर लेगी।

(संशोधन संख्या 706 उपस्थित नहीं किया गया।)

**प्रोफेसर के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं किः

"अनुच्छेद 23 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के साथ निम्नलिखित परादिक जोड़ दिया जायेः

'Provided that no part of the expenditure in connection with such institutions shall fall upon or be defrayed from the public purse; and provided further that no such institution, nor the education and training given therein shall be recognised, unless it complies with the courses of instruction, standards of attainment, methods of education and training, equipment and other condition laid down in the national system of education.'"

(पर इस प्रकार की संस्थाओं के व्यय के किसी भाग को सार्वजनिक कोष वहन न करेगा और न उससे वह पूरा ही किया जायेगा और यह भी कि इस प्रकार की कोई संस्था और उसमें दी जाने वाली शिक्षा तथा प्रशिक्षा को उस समय तक स्वीकार न किया जायेगा जब तक कि वह

राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली में निर्धारित शिक्षा के पाठ्यक्रम, शिक्षा के आदर्शों और शिक्षा तथा प्रशिक्षा की प्रणाली, सामग्री तथा अन्य प्रतिबन्धों के अनुरूप न हो।)

इस संशोधन का सार वही है या उसी के समान है, जो कि मेरे कल अथवा परसों उपस्थित किये हुये संशोधन का था अथवा जो सार संशोधन संख्या 664 का था। केवल उसका स्वरूप समर्थन का था और इसका निराकरण का है, जिससे यह अधिक स्पष्ट हो जाता है कि चाहे आरम्भ में इस प्रकार की राष्ट्रीय संस्थाओं का आधार तथा इसकी नीवि कुछ भी रही हो, उसके व्यय का कोई भाग अंशत: अथवा पूर्णत: सार्वजनिक कोष से पूरा नहीं किया जायेगा। मेरे विचार से यह व्यवस्था आवश्यक है। विशेषतया इस दृष्टि से कि कुछ लोग उपरोक्त समर्थन के स्वरूप से लाभ उठा सकते हैं। मैं इस सभा का समय यह बताने में नष्ट नहीं करना चाहता कि वास्तव में यह संशोधन पहले संशोधन के समान नहीं है किन्तु केवल यह कहना चाहता हूं कि इसका सार वही है। मेरी यह धारणा है कि केवल 48 घंटे के अन्दर मैं इस सभा को अपने दृष्टिकोण को बदलने के लिए राज़ी नहीं कर सकता और इसलिये इस संशोधन पर अधिक बोलकर मैं सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता।

(संशोधन संख्या 713 उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री ज़ैड.एच. लारी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 23 के खण्ड (3) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड प्रविष्ट किया जाये :

'(4) Any section of the citizens residing in the territory of India or any part thereof having a distinct language and script shall be entitled to have primary education imparted to its children through the medium of that language and script.'

[(4) भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी वर्ग को, जिसकी विशेष भाषा और लिपि हो, अपने बच्चों को उस भाषा और लिपि के माध्यम द्वारा प्राथमिक शिक्षा दिलाने का अधिकार होगा।]

[श्री ज़ैड.एच. लारी]

मि. करीमुद्दीन ने इस संशोधन पर एक संशोधन की सूचना दी है। उसके उपस्थित होने पर मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूंगा। वह संशोधन इस सम्बन्ध में है कि ये शब्द अर्थात् 'यदि इस प्रकार के विद्यार्थी पर्याप्त संख्या में हों तो' जोड़ दिये जायें।

इस सम्बन्ध में पहला प्रश्न यह उठता है कि क्या समाज के अथवा किसी अल्पसंख्यक-वर्ग के हितों की दृष्टि से यह आवश्यक है कि किसी व्यक्ति को उसकी मातृभाषा के माध्यम द्वारा प्राथमिक शिक्षा दी जाये? यह बहुत ही सार्थक प्रश्न है और मैं इसका उत्तर दूंगा। हाल में ही भारत सरकार ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया और उसे 14 अगस्त सन् 1948 ई. के गजट में प्रकाशित किया। उस प्रस्ताव में यह कहा गया है कि:

"सरकार ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है कि बच्चों को प्राथमिक शिक्षा उनकी मातृभाषा के माध्यम द्वारा दी जानी चाहिये। सभी शिक्षाविद् इससे सहमत हैं कि इस सिद्धान्त का किसी प्रकार भी खण्डन बच्चों के लिये और इसलिये समाज के हितों के लिये हानिकारक होगा।"

उस प्रस्ताव में आगे यह भी कहा गया है कि—"इस प्रकार के प्रतिबन्धों के होते हुए किसी राज्य अथवा प्रान्त के लिये किसी एक भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार करना असम्भव हो जाता है। जिस प्रान्त में ऐसे लोगों के समुदाय निवास करते हैं, जो विभिन्न भाषाएं बोलते हैं, किसी एक भाषा को स्वीकार करने के प्रयास से तथा सभी को उसे सीखने के लिये बाध्य करने से अवश्य ही असंतोष और कटुता उत्पन्न होगी। इसका अन्तर्प्रान्तीय सम्बन्धों पर प्रभाव पड़ेगा और प्रत्याघात का कुचक्र चल पड़ेगा।"

अन्त में उसमें यह कहा गया है कि:

"भारत सरकार की यह सम्मति है कि देश के उच्च हितों को ध्यान में रखते हुए यह वांछनीय है कि सभी प्रान्तों तथा राज्यों की सरकारें उपरोक्त नीति का अनुसरण करें।"

इस प्रकार इस प्रस्ताव में भी यह स्वीकार किया गया है कि समाज के तथा अल्पसंख्यकों के हितों की दृष्टि से यह आवश्यक है कि अल्पसंख्यकों के बच्चों को उनकी मातृभाषा के माध्यम द्वारा प्राथमिक शिक्षा दी जाये।

इस अवसर पर मैं सभा का ध्यान शिक्षा-मंत्री माननीय मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के उस उत्तर की ओर दिलाऊंगा जो उन्होंने अधिराज्य की संसद् के पिछले सितम्बर के सत्र में दिया था।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): क्या मैं माननीय सदस्य महोदय को यह बता सकता हूं कि उनके संशोधन का आशय यह है कि प्रत्येक बच्चे को तुरंत ही प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है? बिना उस अधिकार के यह अधिकार नहीं मांगा जा सकता। इसलिये हमने यह निदेशक सिद्धान्त निश्चित किया है कि...

***श्री ज़ैड.एच. लारी:** वह एक दूसरा प्रश्न हैं। मैं उसे बाद को उठाऊंगा। मैं इस अवसर पर सभा का ध्यान शिक्षा-मंत्री के उस उत्तर की ओर आकृष्ट कर रहा हूं जो उन्होंने अधिराज्य की संसद् में एक प्रश्न पूछे जाने पर दिया था।

***उपाध्यक्ष:** मेरा यह सुझाव है कि मि. लारी श्री सन्तानम् के दृष्टिकोण को ध्यान में रखें।

***श्री ज़ैड.एच. लारी:** मैं उसे ध्यान में रखूंगा। परन्तु प्रश्नोत्तर यह था। श्री एस.वी. कृष्णमूर्त्ति राव को उत्तर देते हुए शिक्षा-मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने कहा था कि प्राथमिक पाठशालाओं में अर्थात् मौलिक शिक्षा की नीचे की श्रेणी में 6 से 11 वर्ष की आयु तक बच्चों की मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम होगी। इस सम्बन्ध में सरकार के प्रस्ताव में भी यह कहा गया है कि—"शिक्षा के केन्द्रीय परामर्शदातृ बोर्ड ने भारत में युद्धोत्तर शिक्षा की उन्नति के सम्बन्ध में सन् 1944 ई. में जो प्रतिवेदन प्रकाशित किया है उसमें यह सिफारिश की गई है कि माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम विद्यार्थियों की मातृभाषा होनी चाहिये।"

इसलिये यह नहीं कहा जा सकता है कि इस प्रकार के प्रावधान की आवश्यकता नहीं है।

दूसरा प्रश्न यह है कि क्या यह अधिकार इतना आधारभूत है कि इसे इस अध्याय में स्थान दिया जाये। स्वतंत्र भारत का जो सर्वप्रथम विधान बनाया गया था वह था नेहरू प्रतिवेदन, जो देशभक्तों के सम्राट् पंडित मोतीलाल नेहरू के

[श्री ज़ैड.एच. लारी]

पथ-प्रदर्शन से तैयार किया गया था। उसमें जिन मूलाधिकारों का सुझाव रखा गया है उनमें से एक यह है:

"राज्य अल्पसंख्यक लोगों के बच्चों को प्राथमिक पाठशालाओं में उनकी ही भाषा तथा उनमें प्रचलित लिपि द्वारा शिक्षा देने के लिये पर्याप्त व्यवस्था करेगा।" भारत सरकार के जिस प्रस्ताव की ओर मैंने अभी संकेत किया था उसमें भी इस अधिकार के आधारभूत स्वरूप को स्वीकार किया गया है। उसमें यह कहा गया है:

> "सभी प्रान्तीय भाषाएं भारतीय भाषाएं हैं और इसका कोई कारण नहीं है कि भारत का कोई प्रान्त अपने यहां निवास करने वाले बच्चों को अपनी मातृभाषा द्वारा शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित करे।"

इस प्रकार वर्तमान भारत सरकार ने भी और नेहरू प्रतिवेदन के निर्माता सात नेताओं ने इस अधिकार के स्वरूप को पूर्णतया स्वीकार किया है।

एक तीसरा प्रश्न भी उठता है और वह बहुत ही प्रासंगिक है। क्या भारत सरकार के इस प्रकार की नीति को कम से कम कुछ समय के लिये स्पष्टतया स्वीकार करने के पश्चात् भी इस अध्याय में इस प्रकार के प्रावधान की आवश्यकता है? मुझे अपने प्रांत का अनुभव है और उसके आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि यह अत्यंत आवश्यक है। इस सम्बन्ध में मैं एक उदाहरण दूंगा। सभा इसकी ओर ध्यान देगी कि संयुक्त-प्रान्त एक द्विभाषा-भाषी प्रान्त है। वहां दो भाषाएं अर्थात् हिन्दी और उर्दू प्रयुक्त रही हैं और विभिन्न सम्प्रदायों के बहुत से लोग उनका अध्ययन करते रहे हैं। यदि मैं आपके सामने हाईस्कूल और मिडिल स्कूल की परीक्षाओं में बैठने वाले विद्यार्थियों के आंकड़े रखूं तो देखेंगे कि कम से कम एक तिहाई विद्यार्थी उर्दू लेकर परीक्षा में बैठे थे। सन् 1944 ई. में 11,617 विद्यार्थियों ने हिन्दी ली थी और 7,167 विद्यार्थियों ने उर्दू ली थी। सन् 1945 ई. में 12,423 हिन्दी लेकर बैठे थे और 7,426 उर्दू लेकर; सन 1946 ई. में 14,222 हिन्दी लेकर बैठे थे और 8,244 उर्दू लेकर; सन् 1947 ई. में 18,302 हिन्दी लेकर बैठे थे तो 13,080 उर्दू लेकर। इस प्रकार आप देखेंगे कि यदि दो तिहाई विद्यार्थी हाई स्कूल में हिन्दी लेकर बैठे थे तो एक तिहाई उर्दू लेकर।

परन्तु होता क्या है? पिछली मई में एकाएक एक पाठ्यक्रम प्रकाशित किया गया जिसको पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि उर्दू बिल्कुल मिटा दी गई है। मुझे यह आश्वासन दिया गया कि मेरा भय निराधार है। परन्तु जब जुलाई, 1948 ई. में स्कूल खुले तो मुझे पता चला कि मैंने उस पाठ्यक्रम का आशय ठीक ही समझा था। मेरा 6 वर्ष का बच्चा मेरे पास आया और उसने कहा "आज मेरे मास्टर साहब ने मुझसे कहा कि मैं सब जोड़ हिन्दी में करूं और सिर्फ हिन्दी ही में करूं।" उससे यह भी कहा गया कि वह उर्दू की किताब न लाये। मुझे आश्चर्य हुआ। पूछताछ करने पर यह पता लगा कि सभी स्कूलों में यही दशा हैं। मैंने सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को पत्र लिखे और मुझे फिर यह आश्वासन दिया गया कि इस आशय की एक सरकारी आज्ञा दी जा रही है कि जहां कहीं विद्यार्थी उर्दू में शिक्षा पाने की मांग करें उनके लिये इस प्रकार की व्यवस्था की जाये। इसके पश्चात् मैंने उस कालेज के प्रिंसिपल को यह लिखा कि वे उर्दू पढ़ाने का प्रबन्ध करें। मुझे यह उत्तर मिला कि यह नहीं किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं किया जा सकता है। अन्त में जब मैंने उस पत्र को शिक्षा-मंत्री के पास भेजा तो अक्टूबर में यह उत्तर मिला कि इस प्रकार का प्रबन्ध उसी दशा में किया जा सकता है, जब विद्यार्थियों के अधिकांश संरक्षकों की यह इच्छा हो कि उर्दू में भी शिक्षा दी जाये। भारत सरकार के प्रस्ताव का और सभी उत्तरों का उद्देश्य यह था कि अल्पसंख्यकों को, जो 50 प्रतिशत से भी कम हैं, सुविधा दी जाये; परन्तु वह सुविधा नहीं दी गई और उसे बहुसंख्यकों की इच्छा पर निर्भर कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ है कि एक ऐसे प्रान्त में जहां, हमारे प्रधान-मंत्री से नेक आत्मा के ही शब्दों में–"उत्तर भारत की मिश्रित संस्कृति का विकास आरम्भ हुआ और वह शताब्दियों तक होता रहा और इस आर्य संस्कृति के केन्द्र बने दिल्ली और संयुक्तप्रान्त और वे अब भी उसके केन्द्र हैं और वे आज भी प्राचीन हिन्दू संस्कृति और फारसी संस्कृति के केन्द्र है" आज उर्दू की शिक्षा को, जो मुस्लिम संस्कृति का प्रधान श्रोत है, समाप्त कर दिया गया है। लखनऊ और इलाहाबाद में और वास्तव में कई जगहों में, जहां उर्दू जानने वाले लोग पर्याप्त संख्या में हैं, कम से कम इन दो स्थानों में प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया हैं। इलाहाबाद और लखनऊ के बारे में भी जो उर्दू के केन्द्र समझे जाते हैं, मुझे

[श्री ज़ैड.एच. लारी]

अच्छी प्रकार ज्ञात है कि जहां तक प्राथमिक शिक्षा का सम्बन्ध है इन स्थानों में अल्पसंख्यक-वर्गों के बच्चों के लिये कोई प्रबन्ध नहीं किया गया है। इसलिये मुझे अपने ही प्रान्त के अनुभव से यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि इस प्रकार के प्रावधान की आवश्यकता है और इस प्रकार के प्रावधान को विधान में स्थान मिलना चाहिये। परन्तु मैं एक कठिनाई को या यों कहिये कि दो कठिनाइयों को अनुभव करता हूं। एक यह है कि यह हो सकता है कि किसी विशेष भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की मांग करने वाले विद्यार्थी बहुत थोड़े हों। काज़ी सय्यद करीमुद्दीन ने जिस संशोधन की सूचना दी है उससे यह कठिनाई दूर हो जाती है।

एक कठिनाई और है और वह बताई जा चुकी है। मैने "नागरिकों के किसी वर्ग को" शब्द रखे हैं। यह हो सकता है कि किसी प्रान्त के ऐसे थोड़े से लोग जो दूसरे प्रान्त में बस गये हों यह मांग कर सकते हैं कि उनके बच्चों को उनकी ही भाषा के माध्यम द्वारा शिक्षा दी जाये। परन्तु 'नागरिकों के वर्ग' के स्थान में 'किसी अल्पसंख्यक-वर्ग' शब्द रखने से इस आपत्ति का निराकरण हो सकता है। मेरे विचार से बेगम ऐजाज़ रसूल ने इस संशोधन की सूचना दी है। इन दो संशोधनों के पश्चात् यह खण्ड इस प्रकार हो जायेगा:

"Any minority residing in the territory of India or any part thereof having a distinct language and script shall be entitled to have primary education imparted to its children through the medium of that language and script in case of substantial number of such students being available."

(भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी किसी अल्पसंख्यक-वर्ग को, जिसकी विशेष भाषा और लिपि हो, अपने बच्चों को, यदि इस प्रकार के विद्यार्थी पर्याप्त संख्या में हों तो, उस भाषा और लिपि के माध्यम द्वारा प्राथमिक शिक्षा दिलाने का अधिकार होगा।)

अब जहां श्री सन्तानम् की आपत्ति का सम्बन्ध है, निदेशक सिद्धान्तों में हमने यह कहा है कि राज्य चौदह वर्ष की आयु तक शिक्षा देने का प्रबन्ध करेगा, इत्यादि। श्रीमान्, आपको स्मरण होगा कि उस खण्ड का मूलरूप इस प्रकार था:

"प्रत्येक नागरिक को नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होगा और राज्य इसका प्रयास करेगा कि...इत्यादि"

"प्रत्येक नागरिक को नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होगा" शब्द निकाल दिये गये थे और इस प्रकार का प्रस्ताव करते समय प्रस्तावक महोदय ने कहा था कि यह एक मूलाधिकार है और इसलिये यह खण्ड इस अध्याय में नहीं रखा जा सकता है। इसलिये मैंने इस आशय के एक अन्य संशोधन की सूचना दी है कि मूलाधिकारों में एक अनुच्छेद इस प्रकार का होना चाहिये कि प्रत्येक नागरिक को प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। जहां तक निदेशक सिद्धान्तों के उस खण्ड का सम्बन्ध है उसका केवल प्राथमिक शिक्षा से ही नहीं बल्कि माध्यमिक शिक्षा से भी सम्बन्ध है। जो भी हो, हम इस खण्ड में अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक तथा शैक्षिक अधिकारों पर विचार कर रहे हैं। मैं यहां इस शैक्षिक अधिकार केा प्रविष्ट कराना चाहता हूं कि प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा के माध्यम द्वारा दी जायेगी। इसमें यह नहीं कहा गया है कि प्राथमिक शिक्षा दी जाये, परन्तु यदि प्राथमिक शिक्षा के लिये प्रबन्ध किया जाये तो वह मातृभाषा के माध्यम द्वारा ही दी जाय। इस सम्बन्ध में कोई कानूनी अड़ंगा नहीं दिखाई देता है। इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं अपने संशोधन को उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** सूची 3 का संशोधन संख्या 53, जो काज़ी सय्यद करीमुद्दीन के नाम से है।

***काज़ी सय्यद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं इसे आवश्यक नहीं समझता कि मैं मि. लारी द्वारा प्रस्तुत संशोधन के आशय की व्याख्या करूं। मैंने मि. लारी के संशोधन पर एक संशोधन उपस्थित करना है वह इस प्रकार है :

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 714 में अनुच्छेद 23 के प्रस्तावित खण्ड (4) में अन्त में (अंग्रेज़ी में) निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:

'in case of substantial number of such students being available."

[काजी सय्यद करीमुद्दीन]

(यदि इस प्रकार के विद्यार्थी पर्याप्त संख्या में हों तो)"

श्रीमान्, मूलाधिकारों द्वारा पर्यटन की तथा व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। इसलिये यह सम्भव है कि लोग देश के एक भाग से दूसरे भाग में स्वतंत्रता से पर्यटन करेंगे और अन्य प्रान्तों में बस जायेंगे। इसके अतिरिक्त सरकारी नौकरों की भी एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में बदली हो सकती है। उदाहरण के लिये दिल्ली के नगर को ही लीजिये। दिल्ली में मद्रासी हैं, बंगाली हैं, मुसलमान हैं और तेलगू हैं। यदि प्राथमिक स्कूलों में उनके लिये कोई व्यवस्था नहीं की गई तो कम से कम शिक्षा की प्राथमिक अवस्था में उन्हें अपने बच्चों को अपनी मातृभाषा के माध्यम द्वारा पढ़ाना कठिन हो जायेगा। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि मि. लारी का संशोधन केवल मुसलमानों की, अल्पसंख्यकों की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है परन्तु बंगाल, मद्रास और अन्य प्रान्तों के लोगों की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। इसलिये मि. लारी का संशोधन मेरे संशोधन के साथ स्वीकार कर लिया जाना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** एक अल्पकालिक सूचना द्वारा उपस्थित संशोधन है जो बेगम ऐज़ाज रसूल के नाम से है।

***बेगम ऐज़ाज रसूल** (संयुक्त प्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करती हूं कि:

"मि. लारी द्वारा उपस्थित संशोधन में 'section of the citizens' (नागरिकों के किसी वर्ग) शब्दों के स्थान में 'minority' (किसी अल्पसंख्यक-वर्ग शब्द रखे जायें।"

यह खण्ड फिर इस प्रकार हो जायेगा:

"Any minority residing in the territory of India or any part thereof having a distinct language and script shall be entitled to have primary education imparted to its children through the medium of that language and script."

(भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी किसी अल्पसंख्यक-वर्ग को, जिसकी विशेष भाषा और लिपि हो, अपने बच्चों को उस भाषा और लिपि के माध्यम द्वारा प्राथमिक शिक्षा दिलाने का अधिकार होगा।)

श्रीमान्, मेरा संशोधन स्वव्याख्यात्मक है और मि. लारी का भाषण सुनने के पश्चात् मैं यह अनुभव करती हूं कि मुझे अब विस्तारपूर्वक व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। विधान के मसौदे में 'अल्पसंख्यक-वर्ग' की परिभाषा की गई है। मेरे विचार से जिन अल्पसंख्यकों की विशेष भाषा और लिपि हो उन्हें ही राज्य को इस अधिकार की प्रत्याभूति देना चाहिये कि उनके बच्चों को अपनी मातृभाषा में शिक्षा पाने के लिये सभी प्रकार की सुविधाएं दी जायेगी। मेरे विचार से इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का भी मतभेद नहीं हो सकता है। यदि कोई बच्चा किसी ऐसे वर्ग का हो जिसकी भाषा और लिपि राज्य की भाषा और लिपि से भिन्न हो तो उसके लिये अन्य भाषा में शिक्षा पाना असम्भव है क्योंकि इससे शिक्षा के सिद्धान्त का ही हनन होता है। आपको बच्चों को दूसरों की भाषा और लिपि द्वारा शिक्षा ग्रहण करने के लिये बाध्य न करना चाहिये क्योंकि इससे उनके मस्तिष्क पर भार पड़ेगा। श्रीमान्, इस संशोधन का उद्देश्य यह नहीं है कि अल्पसंख्यकों के बच्चे राज्य की भाषा को न सीखें। राज्य की भाषा को सीख कर, चाहे वह भाषा कोई भी क्यों न हो, अल्पसंख्यकों के बच्चों को ही लाभ होगा क्योंकि राज्य की भाषा को सीख कर ही वे भविष्य में अपनी आर्थिक अवस्था सुधार सकते हैं और नौकरी इत्यादि प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये यह न समझा जाना चाहिये कि मैं किसी प्रकार भी अल्पसंख्यकों के बच्चों के राज्य की भाषा सीखने के विरोध में हूं। मैं केवल एक आधारभूत बात कर रही हूं, क्योंकि अच्छी नीवि पर ही शिक्षा को खड़ी करके वह प्रभावपूर्ण हो सकती है। श्रीमान्, मेरा तो यह विचार था कि इस अवसर पर इस संशोधन को उपस्थित करना आवश्यक नहीं था परन्तु व्यवहार में हमने कुछ कठिनाइयों का अनुभव किया है और इसीलिये यह आवश्यक है कि मूलाधिकारों में कोई ऐसा प्रावधान रखा जाये जिससे स्थिति स्पष्ट हो जाये और भारत के राज्य-क्षेत्र में निवास करने वाले अल्पसंख्यकों के बच्चों को इसकी प्रत्याभूति मिल जाये कि उन्हें प्राथमिक स्तर

[बेगम ऐजाज रसूल]

पर अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार हैं। इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं इस संशोधन को उपस्थित करती हूं और मुझे आशा है कि वह स्वीकार कर लिया जायेगा।

(संशोधन संख्या 715 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** अब इस अनुच्छेद पर सामान्य बहस हो सकती है।

***श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, विधान के मसौदे के इस विशेष अनुच्छेद 23 में अल्पसंख्यकों को निश्चित रूप से यह प्रत्याभूति दी गई है कि उनकी भाषा, संस्कृति और लिपि की हर प्रकार से रक्षा की जायेगी। इस देश में विभिन्न प्रकार के अल्पसंख्यक हैं परन्तु भाषा, लिपि और संस्कृति पर आधृत सभी अल्पसंख्यकों को इस अनुच्छेद द्वारा वास्तव में बहुत रक्षण प्राप्त हो जायेगा। यह सच है कि इस देश के विभिन्न प्रान्तों में ऐसे अल्पसंख्यक निवास करते हैं जिनकी भाषा बहुसंख्यकों की भाषा से भिन्न है और यह भी सच है कि भारत के कई प्रान्तों में भाषा पर आधृत अल्पसंख्यकों को कई प्रकार की अयोग्यताओं को सहन करना पड़ता है। इसका यह परिणाम हुआ है कि कुछ समय से भाषा की तानाशाही तथा उसके साम्राज्यवाद का दबी हुई ज़बान से विरोध किया जा रहा है। श्री टी. टी. कृष्णमाचारी ने भी भाषा के साम्राज्यवाद की ओर इस सभा में संकेत किया था। इस सम्बन्ध में मैं उनका विरोध नहीं करता, परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि इस देश के नागरिकों को अपनी राष्ट्रभाषा अपनी देश भाषा को सहर्ष स्वीकार करने में कितनी देर लगेगी। इसके साथ ही इसे भी स्वीकार करना चाहिये कि यदि किसी अल्पसंख्यक-वर्ग की अपनी विशेष भाषा हो और वह एक ऐसे प्रान्त में हो जहां की भाषा उसकी भाषा से भिन्न हो तो वह अवश्य ही यह चाहेगा कि उसकी भाषा और संस्कृति में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न हो और उनका संधारण हो। यह सच है कि यह देश विभिन्न प्रान्तों में विभाजित है और प्रत्येक प्रान्त की अपनी प्रान्तीय भाषा है किन्तु दुर्भाग्य से इन प्रान्तों की सीमाएं निश्चित करने में ब्रिटिश सरकार ने इसकी चिन्ता न की कि उन्हें भाषा के आधार पर निश्चित किया जाये। इसी कारण प्रत्येक प्रान्त में अल्पसंख्यक हैं और वास्तव में कुछ

अंश में यह संकट उपस्थित हो गया है कि विभिन्न प्रान्तों में अल्पसंख्यकों की भाषा और संस्कृति को अनेक प्रकार की अयोग्यताओं को सहन करना पड़े।

इस अनुच्छेद 23 द्वारा अल्पसंख्यकों का यह आश्वासन दिया गया है कि उनकी भाषाओं की रक्षा की जायेगी। वे अपनी भाषाओं की सुरक्षा ही न कर सकेंगे बल्कि उनका निश्चित रूप से विकास भी कर सकेंगे। अपनी भाषाओं के रक्षण तथा विकास के लिये सरकार से सहायता प्राप्त करने के सम्बन्ध में भी अल्पसंख्यकों के प्रति कोई विभेद नहीं बरता जायेगा। इसलिये भारत के विभिन्न प्रान्तों में निवास करने वाले एक-भाषा-भाषी अल्पसंख्यकों के लिये यह अनुच्छेद 23 एक महान् अधिकार-पत्र है। किन्तु यह आवश्यक है कि किसी प्रान्त के अल्पसंख्यक नागरिक जीवन में अपने को हमेशा अकेला तथा उस प्रान्त के निवासियों से विशिष्ट न समझते रहें। अल्पसंख्यकों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे जिस प्रान्त में निवास करते हों उसकी भाषा और संस्कृति को बहुत अंश तक स्वीकार करें। किन्ही भी अल्पसंख्यकों को किसी प्रान्त में विदेशियों के समान न रहना चाहिये अथवा उस प्रकार न रहना चाहिये—जैसे अंग्रेज़ और उनके सौतेले भाई कई वर्षों तक भारत में रहे हैं। साथ ही जहां तक अल्पसंख्यकों की भाषा और संस्कृति का सम्बन्ध है बहुसंख्यकों को उनके प्रति अधिक से अधिक सहिष्णुता दिखानी चाहिये। वास्तव में कुछ दिन पहले प्रान्तीय कांग्रेस समितियों को यह निर्देश करके कि किसी प्रान्त के ऐसे अल्पसंख्यक, जिनकी भाषा प्रान्त की भाषा से भिन्न हो, प्रान्तीय कांग्रेस समितियों से अपनी भाषा में पत्र व्यवहार कर सकते हैं; कांग्रेस ने एक नया आदर्श रखा है।

कई क्षेत्रों से भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुनर्निर्माण करने की जो मांग की जा रही है वह बहुत कुछ विधान के मसौदे के इस अनुच्छेद के प्रावधानों से पूरी हो जायेगी। अल्पसंख्यकों को इसका अत्यंत भय है कि बहुसंख्यकों के उनकी भाषाओं के प्रति अत्यंत असहिष्णु होने से उनका अस्तित्व ही कहीं न मिट जाये। अल्पसंख्यक अपनी भाषाओं को सुरक्षित रखने के सम्बन्ध में सतर्क तथा सचेष्ट हैं और यह स्वाभाविक भी है। बहुसंख्यकों को अल्पसंख्यकों की भावनाओं तथा उनके दृष्टिकोण के प्रति सहानुभूति दिखाकर उन्हें समझने का प्रयास करना चाहिये। केवल इसी से विभिन्न प्रान्तों में भाषा के आधार पर प्रान्तों के पुनर्निर्माण

[श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय]

के सम्बन्ध में जो आवाज़ उठ रही है वह बहुत कुछ बन्द हो जायेगी। हम सभी जानते हैं कि भारत के दो भागों में विभाजित होने के पश्चात् भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुनर्निर्माण करने का मार्ग कंटकाकीर्ण हो गया है। इस समस्या को हल करने में बहुत समय लगेगा। परन्तु इसे स्मरण रखना चाहिये कि यदि भाषा और संस्कृति के सम्बन्ध में अल्पसंख्यकों पर अत्याचार अथवा आघात किया गया तो इस देश में संकटापन्न स्थिति उत्पन्न हो जायेगी जिससे प्रान्तीय सरकारें कठिनाई में पड़ जायेंगी। इसलिये इस अनुच्छेद 23 में विभिन्न प्रान्तों के बहुसंख्यकों को स्पष्टत: यह निर्देश किया गया है कि जहां तक भाषा और संस्कृति का सम्बन्ध है उन्हें अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करनी चाहिये। यदि अल्पसंख्यकों के साथ व्यवहार करते समय उनके दृष्टिकोण को समझने तथा उनके हितों की रक्षा करने का वे प्रयास करें तो मेरे विचार से भाषा के आधार पर तुरंत ही प्रान्तों का पुनर्निर्माण करने के लिये भारत में जो आवाज़ उठाई गई है, वह बहुत कुछ बन्द हो जायेगी।

मैं इस अनुच्छेद का हृदय से समर्थन करता हूं।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, धर्म अथवा अन्य बातों पर आधृत शिक्षा-सम्बन्धी इस अनुच्छेद के बारे में मेरा यह विचार है कि अच्छा तो यह होता कि एक बहुत ही स्पष्ट और भ्रमशून्य प्रावधान रखा जाता। श्रीमान्, इस अनुच्छेद के कुछ प्रावधान परस्पर विरोधी हैं। यद्यपि विधान में यह स्वीकार किया गया है कि सभी सम्प्रदायों को धर्म के आधार पर शिक्षा देने का अधिकार है परन्तु अनुच्छेद 22 में यह कहा गया है कि जहां कहीं राज्य सहायता देता हो वहां किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था न होगी। इसके अतिरिक्त एक परादिक इस आशय का भी है कि जिन सम्प्रदायों को राज्य की सहायता अपेक्षित न हो वह अपनी इच्छानुसार तथा रीत्यनुसार धार्मिक शिक्षा दे सकते हैं। श्रीमान्, मेरा अपना यह विचार है कि जहां तक धार्मिक शिक्षा का सम्बन्ध है, इसका स्पष्ट शब्दों में उल्लेख होना चाहिये था कि यदि कोई शैक्षिक संस्था राज्य से सहायता ग्रहण करती हो तो उसमें किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा न दी जायेगी। मैं यह आपत्ति इसलिये नहीं कर रहा हूं कि मैं धर्म के विरुद्ध हूं।

श्रीमान्, मेरा धर्म पर तथा ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास है। परन्तु मैं अवश्य यह अनुभव करता हूं कि आजकल विभिन्न सम्प्रदायों की धार्मिक पुस्तकों का अनेक लेखक ऐसा अनुवाद करते हैं कि उससे कई धर्म अपमानित हो जाते हैं। कुछ लेखकों ने अपने राजनैतिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिये कुछ अत्यंत सुन्दर मौलिक वाक्यांशों का अपनी भाषा में अपने ढंग से अनुवाद किया है जिसका परिणाम यह हुआ है कि धार्मिक कारणों से आज देश के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं। इसलिये श्रीमान्, मेरी यह इच्छा है कि शिक्षा के सम्बन्ध में, जो हमारे भविष्य की आधारशिला होगी, स्पष्ट शब्दों में यह कह देना चाहिये कि वर्तमान परिस्थिति में किसी ऐसी संस्था में, जो राज्य से सहायता पाती हो, धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था न होगी।

श्रीमान्, मैं यह कह चुका हूं कि यद्यपि राज्य ने किसी धर्म को स्वीकृति नहीं दी है, परन्तु उसने ऐसी संस्थाओं को, जो राज्य से सहायता नहीं पाती हैं, अपने यहां धार्मिक शिक्षा देने की आज्ञा दी है। मैं उन धार्मिक ग्रन्थों का विवरण नहीं देना चाहता जो विभिन्न शिक्षालयों में पढ़ाये जाते हैं। मैं ऐसे शिक्षालयों को जानता हूं जहां धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक विद्वेष ही फैलाया गया हैं। मैं कह नहीं सकता कि इस विधान के प्रभाव में आने पर जिस नव-युग का प्रादुर्भाव होगा उसमें भी इसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा दी जायेगी अथवा नहीं। विभिन्न शिक्षालयों में जो धार्मिक शिक्षा दी जा रही है उस पर कोई आयंत्रण नहीं लगाया गया है। मैं इसके उदाहरण दे सकता हूं परन्तु मैं विभिन्न सम्प्रदायों के बीच विद्वेष नहीं फैलाना चाहता। मेरी केवल यह इच्छा है कि अच्छा तो यह होता कि विधान में यह स्पष्ट कर दिया जाता कि धार्मिक शिक्षा के प्रसंग में शिक्षा का क्या अर्थ है। इस सम्बन्ध में यह अध्याय मौन है। उसके मौन होने के अतिरिक्त मुझे तो इसका भय है कि धर्म के नाम पर शिक्षालयों में फिर उसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा दी जाती रहेगी। मैंने इन दो अध्यायों को कई बार पढ़ा और यह अनुभव किया कि इस प्रकार के स्कूलों और कालेजों पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रखा गया है। इसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि विधान द्वारा उन्हें अपनी इच्छानुसार धार्मिक शिक्षा देने की स्वतंत्रता दी गई है। हम यह जानते हैं कि इस देश में विभिन्न सम्प्रदाय धर्म से क्या समझते हैं और इसलिये, श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि इस अध्याय के प्रावधान अधिक स्पष्ट होने चाहिये थे।

[श्री आर. के. सिधवा]

जहां तक उन सुझावों और संशोधनों का सम्बन्ध है जिनका उद्देश्य यह है कि जहां विभिन्न सम्प्रदाय और अल्पसंख्यक निवास करें वहां उन्हीं की भाषाओं के माध्यम द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिये, मैं यह देखता हूं कि खण्ड (ख) स्पष्ट है। परन्तु मैं श्री दामोदरस्वरूप सेठ के संशोधन को स्वीकार्य समझता हूं क्योंकि वह बहुत स्पष्ट है। मेरे विचार से राज्य इस विधान द्वारा भी किसी को इससे वंचित नहीं करता। यहां अल्पसंख्यकों को भ्रमवश धार्मिक अल्पसंख्यक न समझना चाहिये। अल्पसंख्यकों का अर्थ लोगों के विभिन्न वर्गों ही से है। उदाहरणार्थ बम्बई में लोगों के अठारह वर्ग हैं। इस समय चार लाख सिंधी वहां रहते हैं। कार्पोरेशन ने सिंधी भाषा को स्वीकार किया है। यद्यपि सरकार ने सिंधी भाषा को स्वीकार नहीं किया है परन्तु उसने उनके लिये स्कूल खोल दिये हैं। मेरे विचार से इस विधान में यह प्रावहित है कि जहां कहीं इस प्रकार के वर्ग अथवा एक-भाषा-भाषी सम्प्रदाय अथवा उपसम्प्रदाय हों तो राज्य उनको सभी प्रकार की सुविधाएं प्रदान करेगा। यदि राज्य यह न करे तो वह अपने कर्त्तव्य का पालन न करेगा। मुझे इस सम्बंध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि विधान में इस आशय का प्रावधान है। हमने निदेशक सिद्धान्तों में भी यह कहा है कि प्रत्येक बच्चे को, चाहे वह किसी भी वर्ग का क्यों न हो, राज्य अनिवार्य रूप से शिक्षा देगा। इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि सभी बच्चों को, भले ही वे किसी छोटे अल्पसंख्यक-वर्ग अथवा एक-भाषा-भाषी अल्पसंख्यक-वर्ग के हो, उनकी मातृ-भाषा में शिक्षा दी जायगी। इसलिये मि. लारी का संशोधन अप्रासंगिक है। मुझे इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है कि विधान में यह प्रावहित है और यदि इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था न हो तो राज्य तथा प्रान्त और प्रान्तीय सरकारें, जिस प्रकार की शिक्षा की उन्हें व्यवस्था करनी चाहिये, उस प्रकार की व्यवस्था न करके अपने कर्त्तव्य से च्युत होंगे।

***श्री जयपाल सिंह** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं बड़े हर्ष से इस अनुच्छेद का स्वागत करता हूं, विशेषतया इसलिये कि उसमें डॉ. अम्बेडकर ने यथोचित संशोधन कर दिया है। मुझे आशा है कि उस संशोधन को यह सभा स्वीकार कर लेगी। श्रीमान्, मेरी दृष्टि से इस अनुच्छेद से भारत के लिये एक नये युग का प्रादुर्भाव होता है। हाल में एक-भाषा-भाषी प्रान्तों के बारे में

बहुत-कुछ कहा गया है और पश्चिमी बंगाल के मेरे मित्र अभी संकेत कर चुके हैं कि इस अनुच्छेद द्वारा प्रान्तों की सीमाओं के पुनर्निर्धारण और नये प्रान्तों के निर्माण के लिये मार्ग खुल जाता है। श्रीमान्, मैं इस अनुच्छेद पर इस दृष्टि से विचार नहीं कर सकता। मैं इससे सहमत नहीं हूं कि केवल भाषा के आधार पर ही प्रान्तों का निर्माण होना चाहिये। अन्य बातों पर भी विचार किया जाना चाहिये। शासन प्रबन्ध की सुविधा, भौगोलिक स्थिति तथा आर्थिक अवस्था आदि पर भी विचार किया जाना चाहिये और तभी भाषा-सम्बन्धी तर्क को उतना महत्त्व दिया जा सकता है, जितना कि उसे वे लोग देना चाहते हैं, जिनको इसका खेद है कि वे किसी प्रान्त-विशेष में भाषा की दृष्टि से अल्पसंख्यक हैं मुझे आशा है कि इस सभा द्वारा इस अनुच्छेद के स्वीकार किये जाने पर सभी प्रान्तीय सरकारें इसकी भावना को तुरन्त ही व्यवहार में लायेंगी। उन्हें उस समय तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है जब कि यह पूरा विधान अस्तित्व में आ जाये। मेरे प्रदेश में इस समय भी बहुत ही अहितकर भाषा-सम्बन्धी संघर्ष हो रहा है। मेरे निवासस्थान छोटा नागपुर में वह विकरालरूप ग्रहण कर रहा है और भाषा के आधार पर एक टुकड़े को पूर्व की ओर तो एक टुकड़े को दक्षिण की ओर और एक टुकड़े को पश्चिम की ओर ले भागने का प्रयास हो रहा है। इसे बिल्कुल भी ध्यान में नहीं रखा जाता कि इसके अतिरिक्त अन्य कारणों पर भी विचार करना आवश्यक है जैसे कि एक प्रश्न यह है कि शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से अमुक-अमुक भाग को उस प्रदेश से अलग करना चाहिये या नहीं। मेरा यह अनुरोध है, और मैं पहले भी अन्यत्र यह अनुरोध कर चुका हूं कि नये प्रान्तों के निर्माण और सीमाओं के पुनर्निर्धारण के लिये केवल भाषा का ही तर्क कोई महत्त्व नहीं रखता। मुझे आशा है कि मेरा प्रदेश—विशेषतया बिहार, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल के प्रदेश—अब इस भाषा के प्रश्न को नई दृष्टि से हल करेंगे। उदाहरणार्थ, बिहार में बंगाली भाषी लोगों की हमेशा से यह शिकायत रही है कि उनके साथ प्रान्त के हिन्दी भाषी लोग दुर्व्यवहार करते रहे हैं। श्रीमान्, पहले बहुत कुछ हुआ है और वह एक दुःखद अध्याय है, परन्तु अब मुझे आशा है कि इस विशेष अनुच्छेद के विधान में स्थान पा जाने से एक-भाषा-भाषी अल्पसंख्यकों को भी यह विश्वास हो सकता है कि उनका भविष्य उज्जवल है और उन्हें अपनी भाषाओं के संरक्षण तथा विकास के लिये पर्याप्त अवसर मिलेगा। श्रीमान् जब हम

[श्री जयपाल सिंह]

भाषाओं की चर्चा करते हैं तो हमें उन भाषाओं का ध्यान आता है जो उन्नत हैं और जिनकी अपनी लिपि आदि हैं। मेरा यह अनुरोध है कि जिन भाषाओं की अपनी लिपि नहीं है उनके भी संरक्षण की आवश्यकता है और प्रोफेसर शाह के संशोधन के शब्दों में उन्हें भी समुन्नत बनाने की आवश्यकता है। भाषा-सम्बन्धी गणना के सम्बन्ध में हमें जो आंकड़े दिये गये हैं उन्हें देखने से मुझे यह पता लगता है कि इस देश की भाषाओं को पांच मुख्य विभागों में विभाजित किया गया है और आदिवासी भाषाओं को एक पृथक् विभाग में रखा गया हैं मुंडारी समूह की भाषाओं को ही लीजिये। आंकड़ों से मुझे यह ज्ञात होता है कि पचास लाख लोग मुंडारी भाषा बोलते हैं। इस सभा में कितने ऐसे सदस्य हैं जो यह जानते हैं कि मुंडारी एक परिपक्व भाषा है और उसमें एक विश्व-कोष है जिसके 14 अंक हैं? फिर भी क्या यह कहा जा सकता है कि मुंडारी-भाषी क्षेत्रों में उस भाषा को प्रोत्साहित किया जा रहा है? क्या यह सच नहीं है कि प्रत्येक शासक-वर्ग देश की भाषा को गिराने का प्रयास करता रहा है? हमने देखा है कि यदि कोई राजा उड़िया था तो उसने अपने राज्य के लोगों पर उड़िया भाषा को ही लादा। अंग्रेज़ आये और उन्होंने अंग्रेज़ी को हमारे गलों के नीचे उतारने का प्रयास किया। यह भी हो सकता है कि बंगाली-भाषी प्रदेशों में बंगाली पर ही ज़ोर दिया जाता हो। श्रीमान्, मैं इसे स्वीकार करता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्रान्त की भाषा सीखनी चाहिये। हमें अभी इसका निर्णय करना है कि हमारी राष्ट्र-भाषा क्या होगी। हममें से प्रत्येक व्यक्ति को उस भाषा को सीखना चाहिये। मैं यह अनुरोध करना चाहता हूं कि भाषाओं का संरक्षण तथा उनकी समुन्नति होनी चाहिये। मैं यह अनुभव करता हूं कि इस व्यवस्था से कई लोगों को विशेषतया आदिवासियों को तीन भाषाएं सीखनी पड़ेंगी अर्थात् उन्हें अपनी भाषा सीखनी होगी, प्रान्तीय भाषा सीखनी होगी, और राष्ट्र-भाषा सीखनी होगी। परन्तु मेरे विचार से इससे अधिक भार न पड़ेगा। आखिर मातृभाषा को बोलने में तो अधिक प्रयास नहीं करना पड़ता परन्तु मुख्य बात यह है कि जिन प्रान्तों में एक भाषा-भाषी अल्पसंख्यक हैं, यद्यपि मुझे इन शब्दों से घृणा है, उनको ऐसी भाषाओं के संरक्षण तथा समुन्नति के लिये, जो इस योग्य हैं, कोई ठोस कार्य करना चाहिये। इसमें

संदेह नहीं है कि कुछ भाषाएं मिट जायेंगी। मेरे विचार से किसी ऐसी भाषा को जीवित रखना निरर्थक है जो स्वयं सजीव न हो और जो अन्य भाषाओं की तुलना में अपने पैरों खड़ी न हो सकती हो। मैं उन भाषाओं के पक्ष में नहीं बोल रहा हूं जो किसी काल में प्रयुक्त रहीं और फिर मिट गई, परन्तु मेरे मस्तिष्क में वे भाषाएं हैं जो सहस्त्रों वर्षों के बाद भी सजीव हैं और यदि उन्हें उन्नत बनाया जाये तो उनके द्वारा भूतकाल के कई विषयों के सम्बन्ध में शिक्षा दी जा सकती है। मैं एक उदाहरण दूंगा। हम प्राचीन भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में बहुत कम जानते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इस देश के प्राचीन निवासियों की भाषाओं का नये आने वाले लोगों ने अध्ययन नहीं किया। यह एक दु:ख की बात है कि आदिवासियों की भाषाओं का अध्ययन विदेशियों ही ने किया है। आज शायद ही किसी प्रान्त का प्रधान मंत्री अपने प्रान्त के अधिकांश आदिवासियों की भाषा बोल सकता है। शायद ही इस देश में कोई मन्त्री ऐसा हो जो आदिवासियों की किसी भाषा को बोल सकता हो। यदि हम आर्यों से पहले की इन भाषाओं को उन्नत बनाएं तो हमें 'असुर' जैसे कई ग्रन्थों से आर्य भाषा-भाषी लोगों के आदिकाल के बारे में कई बातें ज्ञात हो जायेंगी। हमें प्राचीन काल में अपने देश तथा देशवासियों की अवस्था के बारे में अब भी बहुत कुछ जानना है। अनुच्छेद 23 को कई दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। श्रीमान्, मैं इस अनुच्छेद का बड़े हर्ष से स्वागत करता हूं और मुझे आशा है कि विधान के प्रभाव में आने के पहले ही प्रान्तीय सरकारें इस अनुच्छेद की भावना के अनुसार कार्य करेंगी ताकि भाषा-सम्बन्धी संघर्ष के कारण प्रान्तों में जो कटुता उत्पन्न हो गई है वह धीरे-धीरे समाप्त हो जाये और सभी एक-भाषा-भाषी अल्पसंख्यक यह समझने लगेंगे कि उनकी भाषाओं पर आघात न होगा और वे अपनी इच्छानुसार अपनी भाषाओं को उन्नत बना सकते हैं और यह कि उनकी भाषा का देश में समुचित स्थान है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद का सम्बन्ध एक ऐसी कठिन समस्या से है जिसे स्वतंत्र भारत ने हल करना है। धार्मिक

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

अल्पसंख्यकों और अनुसूचित जातियों के प्रश्न भूतकाल की देन हैं और मुझे यह आशा है कि निकट भविष्य में ही वे काल तथा परिस्थिति के प्रभाव से विलुप्त हो जायेंगे। परन्तु एक-भाषा-भाषी अल्पसंख्यकों का प्रश्न कई दशाब्दियों तक एक प्रश्न के ही रूप में रहने वाला है और मेरे विचार से इसके कारण देश को बहुत कष्ट झेलना पड़ेगा।

श्रीमान्, मि. लारी और अन्य लोगों से, जो यह कहते हैं कि विधान में एक-भाषा-भाषी अल्पसंख्यकों को निश्चित आश्वासन दिये जाने चाहियें, मुझे बहुत सहानुभूति है परन्तु मेरे विचार से इस अनुच्छेद में जो प्रयास किया गया है उससे आगे बढ़ना सम्भव नहीं है। वह उनकी तीन प्रकार से रक्षा करता है। अनुच्छेद 23 के खण्ड (1) में प्रत्येक अल्पसंख्यक-वर्ग को अपनी संस्कृति के संरक्षण का अधिकार दिया गया है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** यह कोई अधिकार नहीं है। यह कैसा अधिकार है?

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** श्रीमान्, आपको स्मरण होगा कि प्रथम विश्व-युद्ध के उपरान्त सारे यूरोप में अल्पसंख्यक-वर्ग केवल यह चाहते थे कि उन्हें अपने शिक्षालय स्थापित करने और अपनी संस्कृतियों के संरक्षण का अधिकार दिया जाये परन्तु फासिस्टों और नाज़ियों ने उन्हें यह अधिकार नहीं दिया। वास्तव में वे राज्य के शिक्षालय भी नहीं चाहते थे। वे राज्य से किसी प्रकार की सहायता भी नहीं चाहते थे। वे केवल यह चाहते थे कि उन्हें अपने रीति-रिवाज़ों तथा अपनी संस्कृतियों का अनुसरण करने दिया जाये तथा अपने शिक्षालयों को स्थापित करने तथा उनका संचालन करने की स्वतंत्रता दी जाये। इसलिये मेरे विचार से किसी अल्पसंख्यक-वर्ग के लिये यह उचित नहीं है कि वह अनुच्छेद 23 (1) में दिये हुए अधिकारों को निम्न दृष्टि से देखे।

श्रीमान्, अनुच्छेद 23 के खण्ड (2) में उनकी विभेद से रक्षा की गई है। यह सम्भव है कि भाषा के आधार पर कई प्रान्तों का निर्माण हो और इसलिये स्वभावत: सरकार में, मंत्रिमण्डल में और विधान-मण्डल में बहुसंख्यकों की भाषा बोलने वाले लोगों का प्रभुत्व हो। उस समय यह विभेद-विरुद्ध अधिकार मूलभूत तथ मूल्यवान प्रतीत होगा।

इसके अतिरिक्त इस अनुच्छेद के खण्ड (3) में यह प्रावहित है कि जब शिक्षा के लिये राज्य सहायता दे तो यह किसी शिक्षा-संस्था के प्रति इस कारण विभेद न बरतेगा कि, वह किसी अल्पसंख्यक-वर्ग के प्रबन्ध में है, चाहे उसका आधार साम्प्रदायिक हो अथवा भाषा का, और यह विशेषतया एक-भाषा-भाषी अल्पसंख्यक-वर्गों के सम्बन्ध में प्रयुक्त होगा। प्रत्येक प्रान्त में इन एक-भाषा-भाषी अल्पसंख्यकों के समूह हैं। उदाहरणार्थ, मेरे अपने प्रान्त तामिलनाडु में प्रत्येक जिले में ऐसे गांवों के समूह हैं जहां बहुत से तेलगू भाषी लोग बसते हैं। इस सम्बन्ध में हमें दो प्रकार की स्थिति के बीच ठीक-ठीक संतुलन करना होता है। प्रथम तो हमें एक-भाषा-भाषी अल्पसंख्यकों के विशाल समूहों को अपनी भाषा के माध्यम द्वारा ही शिक्षा का अधिकार, विशेषतया प्राथमिक शिक्षा का अधिकार, देना होता है। साथ ही ऐतिहासिक कारणों से जो एकीकरण हो रहा है उसमें हमें हस्तक्षेप नहीं करना होता है। हमें यह न सोचना चाहिये कि सैकड़ों-हज़ारों वर्षों तक ये एक-भाषा-भाषी अल्पसंख्यक-वर्ग इसी प्रकार बने रहेंगे जैसे वे इस समय हैं। ऐतिहासिक विकास को अवरुद्ध न करना चाहिये। इन अल्पसंख्यक-वर्गों को अपने यहां के बहुसंख्यकों के साथ मिल जाने में सहायता करनी चाहिये। उन्हें धीरे-धीरे स्थानीय भाषा सीख लेनी चाहिये और वहां के लोगों में समाविष्ट हो जाना चाहिये। अन्यथा वे उन प्रान्तों में एक प्रकार से विदेशी ही बने रहेंगे। इसलिये हमें कोई ऐसे कठोर प्रावधान न रखने चाहियें जिनसे प्रत्येक बच्चे की मातृभाषा की स्वतः रक्षा होती रहे। साथ ही यह विकास एकाएक न होने चाहिये और न किसी को उसे स्वीकार करने के लिये बाध्य ही करना चाहिये। जहां कहीं अल्पसंख्यकों के बहुत से बच्चे हों उन्हें शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा, उनकी मातृभाषा में ही दी जानी चाहियें। परन्तु साथ ही उन्हें प्रान्तों के साधारण शिक्षालयों में जाने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये और उनकी सहायता भी करनी चाहिये, ताकि वे स्थानीय भाषा को सीख सकें और लोगों में घुलमिल जायें। मेरे विचार से इस खण्ड में इस प्रकार की परिस्थितियों के लिये बहुत ही व्यावहारिक व्यवस्था की गई है।

श्रीमान्, मि. लारी एक संशोधन करना चाहते हैं जिसका उद्देश्य यह है कि प्रत्येक बच्चे को, अथवा नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को यह अधिकार होगा कि वह अपनी भाषा के माध्यम द्वारा प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करे। मेरे विचार से उनका

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

आशय यह है कि जहां कहीं राज्य के धन से प्राथमिक शिक्षा दी जाती हो वहां इस प्रकार की व्यवस्था हो। परन्तु मेरे विचार से इससे अल्पसंख्यकों को अथवा किसी विशेष भाषा-भाषी लोगों को प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करने का परमाधिकार प्राप्त हो जायेगा, यद्यपि इस समय इस देश के लोगों को यह अधिकार प्राप्त नहीं है। निदेशक सिद्धान्तों में हमने यह प्रावहित किया है कि पन्द्रह वर्ष में सारे देश में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था हो जानी चाहिये। परन्तु यह कोई भी नहीं कह सकता कि उस समय भी देश की आर्थिक तथा अन्य प्रकार की स्थिति ऐसी होगी कि प्राथमिक शिक्षा सभी लोगों को दी जा सकेगी। आज भारत में कोई भी व्यक्ति प्राथमिक शिक्षा के अधिकार की मांग नहीं कर सकता, क्योंकि केवल दस प्रतिशत लोग प्राथमिक शिक्षा पाते है। इसलिये मि. लारी का संशोधन स्वीकार करना सम्भव नहीं है, क्योंकि उससे कई प्रकार की कठिनाइयां उत्पन्न हो जायेंगी। यदि उसे स्वीकार कर लिया गया तो कोई भी व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख जाकर कह सकता है कि उसके बच्चे को किसी विशेष भाषा में ही शिक्षा दी जानी चाहिये। यह व्यावहारिक नहीं है और मेरे विचार से उनका उद्देश्य भी यह नहीं है।

साथ ही, मेरे विचार से उन्होंने अपना तर्क उपस्थित करते समय जो कुछ कहा है, उसे सामान्य नीति निर्धारित करते समय ध्यान में रखना चाहिये। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों को यह निर्देश करना चाहिये कि जहां कहीं ऐसे लड़के-लड़कियों के समूह हों, जिनकी अपनी विशिष्ट भाषा हो, उनके लिये शिक्षालयों में उसी भाषा के माध्यम द्वारा शिक्षा देने का प्रबन्ध होना चाहिये। मुझे आशा है कि सारे देश में इसी नीति का अनुसरण किया जायेगा विशेषतया इसलिये कि यदि भाषा के आधार पर सीमाओं का पुनर्निर्धारण होगा तो सीमावर्त्ती सभी प्रदेशों में यह समस्या विकट रूप धारण करेगी। मुझे आशा हे कि एक-भाषा-भाषी प्रान्तों के आयोग के प्रतिवेदन में इस प्रकार का बुद्धिमत्तापूर्ण कोई प्रावधान होगा। जब प्रान्तों का भाषा के आधार पर पुनर्निर्माण हो तो उनके सम्मुख इस प्रकार की कोई कठिनाई उपस्थित न रहनी चाहिये। उदाहरण के लिये, यदि कोई तेलगू कहीं जाकर बसे तो उसके लिये कोई कठिनाई न होनी चाहिये। मैं कह चुका हूं कि यह एक बहुत ही कठिन और जटिल समस्या है और इसके सम्बन्ध में

मूलाधिकारों में विस्तृत रूप से उल्लेख नहीं हो सकता है। विधान में जितनी भी सुरक्षा की व्यवस्था की जा सकती है वह इस अनुच्छेद 23 में व्यवस्थित है। अन्य प्रकार के संरक्षणों का प्रबन्ध संसद् और प्रान्तों को कानून बनाकर करना होगा और मुझे आशा है कि यथासमय इस प्रकार की व्यवस्था की जायेगी।

***मि. ज़ैड. एच. लारी:** क्या मैं जान सकता हूं कि जिन सामान्य सिद्धान्तों की आपने चर्चा की है उन्हें व्यवहार मे लाने के लिये आप किन उपायों का सुझाव करते हैं?

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मेरे अपने विचार हैं, परन्तु वे विधान में समाविष्ट नहीं किये जा सकते। जब हम ससद् में समवेत् होंगे तो मैं इस सम्बन्ध में अपने प्रस्तावों को सहर्ष उपस्थित करूंगा। उदाहरणार्थ, इन एक-भाषा-भाषी अल्पसंख्यक-वर्गों के हितों की रक्षा के लिये संसद् एक भाषा सम्बन्धी आयोग नियुक्त कर सकती है और वह आयोग देश में भ्रमण करके जहां कहीं शिकायतें हों उनको सुनकर अपने सुझाव उपस्थित कर सकता है।

***श्री ज़ैड. एच. लारी:** परन्तु क्या मैं आपको यह स्मरण करा सकता हूं कि संयुक्तप्रांत के शिक्षा-मंत्री के अनुसार यह एक प्रान्तीय विषय है और भारत सरकार के किसी संकल्प से उनका पथप्रदर्शन नहीं हो सकता है?

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** क्या मैं मि. लारी को स्मरण करा सकता हूं कि जहां कहीं लोग स्वायत्तशासी होते हैं तो यदि वे गलती भी करते हैं तेा उन्हें राज़ी करना होता है? अन्यथा किसी प्रान्तीय मंत्रिमण्डल पर अथवा केन्द्रीय मंत्रि-मण्डल को बाहर की किसी व्यवस्था अथवा आयोग को स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता।

***उपाध्यक्ष:** मैं इस सभा में तर्क-वितर्क की आज्ञा नहीं दे सकता। श्री सन्तानम् अच्छा तो यह होगा कि आप अपनी जगह पर चले जायें। श्री विश्वनाथ दास।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मेरी इच्छा तो यह थी कि मैं अपने माननीय सहकारियों को, मसौदा-समिति के सदस्यों को बधाई दे सकता, परन्तु मुझे खेद है कि मुझे यह कहना पड़ रहा है कि मैं इस अनुच्छेद के कुछ अंशों से सहमत नहीं हूं।

[श्री विश्वनाथ दास]

श्रीमान्, हमारी हमेशा से यह धारणा रही है कि दो प्रकार की संस्कृतियां है, प्राच्य और पाश्चात्य। किन्तु मसौदा-समिति के हमारे माननीय मित्रों ने केवल अनेक संस्कृतियों का ही नहीं बल्कि चिरस्थायी सांस्कृतिक क्षेत्रों का भी विचार उपस्थित किया है। उन्होंने इन सांस्कृतिक क्षेत्रों को चिरस्थायी बनाने की ही व्यवस्था नहीं की है किन्तु भारत के लिये, विभिन्न प्रान्तों के लिये भाषा-सम्बन्धी तथा लिपि-सम्बन्धी अनेक कठिनाइयों की सम्भावना उपस्थित कर दी है। पाकिस्तान के कारण भारत को शरणार्थियों की जटिल समस्या को हल करना है और हज़ारों-लाखों मित्रों को सारे भारत में बसाना है। मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप उन प्रान्तों तथा रियासतों की कठिनाइयों की कल्पना करें जहां सिन्ध, सीमान्त प्रदेश, पूर्वी बंगाल ऐसे विभिन्न भाषा-भाषी लोगों को बसाना है। क्या थोड़ी संख्या में होने पर भी आप उन्हें अपनी भाषा और लिपि बनाये रखने का अधिकार देने जा रहे हैं?

मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप इस प्रश्न पर शांतिपूर्वक तथा गम्भीरतापूर्वक विचार करें। क्या आपके पास इतना धन है कि थोड़े से लोगों के लिये भी जो कोई मांग की जाये, उसे पूरा करने के लिये आप व्यवस्था करें? जहां तक मेरा सम्बन्ध है मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि भारत में एक-भाषा-भाषी अल्पसंख्यकों तथा समूहों को सभी आवश्यक सुविधाएं प्रदान करने के लिये मैं किसी से कम चिन्तित नहीं हूं। परन्तु क्या आप ऐसी छूट देने जा रहे हैं जिसकी यहां मांग की गई है?

वह सम्भवत: सन् 1938 ई. का वर्ष था जब कि मद्रास के माननीय प्रधान मंत्री महोदय ने, जो इस समय इंद्रप्रस्थ की हमारे महान् पूर्वजों की गद्दी को सुशोभित करते हैं, मेरा मतलब हिज इक्सलेंसी श्री राजगोपालाचारी से है, वरहामपुर के रेल के स्टेशन पर उड़िया के सज्जनों के एक प्रतिनिधिमंडल से यह कहा था, "एक समय वह आयेगा जबकि आपको और मद्रास में रहने वाले आपके लोगों को प्रांत की भाषा सीखनी होगी। किसी भी प्रान्त के अल्पसंख्यक समुदाय को वहां की भाषा सीखनी ही है।"

किन्तु इस अनुच्छेद में एक भिन्न ही सिद्धान्त निर्धारित किया गया है। जिनको इस सम्बन्ध में जानकारी है वे यह कहेंगे कि आंध्र में ऐसे उड़िया हैं और उड़ीसा

में ऐसे आंध्र हैं, जो उस प्रान्त की भाषाओं को जानते हैं। यही दशा उन लोगों की है जो गुजरात, संयुक्तप्रान्त, बंगाल आदि प्रदेशों में निवास करते हैं। सज्जनों, क्या आप फिर उस समस्या को उग्र रूप देने जा रहे हैं? यह एक गम्भीर प्रश्न है और मैं चाहता हूं कि आप इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें।

मैं अपने मित्र श्री जयपाल सिंह को इसके लिये धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने अच्छी प्रकार बता दिया कि उनकी मांग का स्वरूप क्या होगा। मैं आपसे भी अनुरोध करता हूं कि आप प्रश्न के इस अंग पर विचार करें। ये आसान बातें नहीं हैं और दो-चार शब्द कह कर इनका समाधान नहीं हो सकता है। इसलिये मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप इस सम्पूर्ण प्रश्न पर और भावी भारत में इसकी प्रक्रिया पर विचार करें।

***श्री टी. टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): मैं यह औचित्य प्रश्न करना चाहता हूं कि क्या माननीय सदस्य महोदय अध्यक्ष-पद को सम्बोधित कर रहे हैं या एक सार्वजनिक सभा को?

***श्री विश्वनाथ दास:** मैं इस सम्बन्ध में अपने माननीय मित्र से अधिक जानता हूं क्योंकि मुझे विधान-मंडलों का उनसे अधिक अनुभव है। मेरा दुर्भाग्य यह है कि मैं इच्छा होते हुए भी आपकी ओर नहीं देख सकता। इसलिये स्थित्यनुसार मैं अपने मित्रों को सम्बोधित करने लगता हूं, चाहे नियमों में यह निर्धारित है कि मैं आपको सम्बोधित करूं। इसलिये इस सम्बन्ध में सीख देने का प्रयास न करना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** क्या आप कृपा करके अपने वक्तृता जारी करेंगे?

***श्री विश्वनाथ दास:** अनेक धन्यवाद, उन्हें सीख न दे कर अपने पर तथा मुझ पर कृपा करनी चाहिये। धार्मिक अल्पसंख्यक ब्रिटिश सरकार की देन हैं। ये धार्मिक अल्पसंख्यक हैं कौन? मेरा यह दावा है कि मेरे मुसलमान भाइयों का रक्त और मांस वैसा ही है जैसा मेरा। मैं उनका हूं और वे मेरे हैं। जहां तक उनकी संस्कृति का सम्बन्ध है हममें कोई अन्तर नहीं है। संस्कृति हमारी है। वह प्राच्य संस्कृति है। मेरी समझ में यह भी नहीं आता है कि भाषा के कारण किसी प्रकार की कठिनाई ही क्यों हो। जहां तक मुसलमान भाइयों का सम्बन्ध है, बंगाल के भूतपूर्व प्रधान-मंत्री जैसे व्यक्ति ने उड़ीसा आने पर मुझसे कहा था कि उड़ीसा

[श्री विश्वनाथ दास]

में कुछ मुसलमान उनसे भी अच्छी हिन्दी बोलते हैं। हमारे देश के हमारे मुसलमान मित्र ऐसे है। दक्षिण में आंध्र, तमिलनाडु और अन्य प्रदेशों में रहने वाले मुसलमान तेलगू और तामिल बोलते हैं न कि उर्दू। इस प्रकार उनकी भाषा और संस्कृति एक है। इसलिये मैं इस सभा के माननीय सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि वे इस समस्या पर इस दृष्टि से भी विचार करें।

खण्ड (1) और (2) पर इतना कहने के पश्चात् अब मैं खण्ड (3) (ख) को उठाता हूं, जिसमें कहा गया है कि शैक्षिक संस्थाओं को सहायता के अनुदान करने में राज्य किसी विद्यालय के विरुद्ध विभेद इसी कारण से न करेगा कि वह धर्म, समुदाय अथवा भाषा पर आधृत किसी अल्पसंख्यक-वर्ग के प्रबन्ध में है। इसलिये इसे स्पष्ट रूप में समझ लेना चाहिये कि किसी सुदूर गांव में भी निवास करने वाला कोई अल्पसंख्यक-वर्ग अब अपनी भाषा में शिक्षा देने वाले विद्यालय के लिये विशेष अनुदान की मांग करेगा और वह उसे देना होगा, अन्यथा वह उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय की शरण में जा सकता है। यह एक गंभीर बात है और मैं यह चाहता हूं कि आप इस प्रश्न पर बहुत गंभीरता से विचार करें।

इस सम्बन्ध में इतना कह कर मैं अब एक-भाषा-भाषी प्रान्तों के प्रश्न पर आता हूं, जिसकी ओर मेरे मित्र ने संकेत किया है। श्री जयपाल सिंह ने भाषा के आधार पर प्रान्तों के पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में जो बातें कहीं उन्हें सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। सर्वप्रथम एक-भाषा-भाषी प्रान्तों के लिये यह आन्दोलन उड़ीसा में छेड़ा गया था।

***उपाध्यक्ष:** मैं इसकी आज्ञा नहीं दे सकता कि आप एक-भाषा-भाषी प्रान्तों के प्रश्न की चर्चा करके सभा का समय लें।

***श्री विश्वनाथ दास:** मैं सभा का समय न लूंगा। परन्तु यह प्रश्न उठाया गया था और मैं उसका उत्तर दे रहा हूं। उड़ीसा में सर्वप्रथम एक-भाषा-भाषी प्रान्तों के लिये आन्दोलन छेड़ा गया। अन्य लोगों ने हमारा अनुसरण किया। इसलिये लोगों ने तथा भारत सरकार ने इस प्रश्न पर प्रश्न पर विचार किया और इसका फल यह हुआ कि भारत सरकार ने सन् 1911 ई. में अपने पत्रों में इस सिद्धान्त को स्वीकार किया कि भाषा के आधार पर प्रान्त निश्चित किये जायेंगे

और उनके ऊपर एक भारतीय संघ होगा और सन् 1921 ई. में कांग्रेस ने भी इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया था। यद्यपि विदेशी सरकार की हमारी आकांक्षाओं के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी परन्तु उसने भी इस सिद्धान्त को स्वीकार किया था और भारत के सभी विचारकों ने, चाहे वे मुसलमान थे अथवा ईसाई अथवा किसी अन्य सम्प्रदाय के थे और चाहे उनकी विचारधारा कुछ भी थी, इस सिद्धान्त को स्वीकार किया था। इसलिये अब मेरे मित्र श्री जयपाल सिंह के लिये इस स्थिति की निन्दा करने का समय नहीं रह गया है। यदि आप आदिवासिस्तान चाहते हैं तो आप अवश्य उसकी मांग करें और जो उसे देना चाहते हैं वे स्पष्ट शब्दों में ऐसा कहें। मैं यहां विषयान्तर करने के लिये नहीं उपस्थित हूं। जो कठिनाइयां बताई गई हैं उन्हें केवल ध्यान में रखा जाये। मैं अपने मित्रों से अनुरोध करता हूं कि जो कठिनाइयां मैंने उनके सामने रखी हैं और इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 23 को प्रवर्तन में लाने के लिये जो खर्च उठाना पड़ेगा उस पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाये। यद्यपि मैं इस सभा तथा अपने दल के बुद्धिमत्तापूर्ण मत को शिरोधार्य करूंगा परन्तु मैं यह स्पष्ट शब्दों मे कहना चाहता हूं कि मैं इन प्रावधानों में से कुछ के प्रति अपना विरोध प्रकट करता हूं। इस सम्बन्ध में मैं अपना तर्क उपस्थित कर चुका हूं।

*__श्री ओ.वी. अलगेसन__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, इस खण्ड में नागरिकों की भाषाओं तथा उनकी लिपियों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया है। यदि मुझे आज्ञा हो तो मैं यह कहूंगा कि कई प्रान्तीय लिपियों के मिट जाने की आशंका है और इसलिये यह आवश्यक है।

एक दृष्टिकोण यह भी उपस्थित किया गया है कि सभी प्रान्तीय लिपियों के स्थान में देवनागरी लिपि को रखा जाये। विश्वविद्यालयों के अध्यापकों के अखिल भारतीय सम्मेलन में, जिसका अधिवेशन हाल में दिल्ली में एक प्रख्यात राजनैतिक नेता के सभापतित्व में हुआ है, यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया है कि सभी भारतीय भाषाओं के लिये एक ही लिपि हो। जब यह स्वीकार किया जायेगा कि जनसाधारण की भाषा हिन्दी से भारत की विभिन्न प्रान्तीय भाषाएं अधिक प्राचीन, अधिक उन्नत तथा साहित्य और भावव्यंजना की दृष्टि से अधिक धनी हैं, तो यह अनुभव किया जायेगा कि इस प्रकार की कार्यवाही से बहुत असंतोष और कटुता

[श्री ओ.वी. अलगेसन]

उत्पन्न होगी। यह कहा जाता है कि भाषा और लिपि सुसम्बद्ध नहीं हैं। मैं कह नहीं सकता। इस सम्बन्ध में प्रख्यात शिक्षाविद् ही सम्मति दे सकते हैं। मैं केवल यह कह सकता हूं कि प्रत्येक भाषा में कुछ ऐसी ध्वनियां होती हैं जो केवल उस प्राचीन लिपि द्वारा व्यक्त की जा सकती हैं जिससे उस भाषा का सम्बन्ध रहा हो। अन्य प्रकार यह सम्भव नहीं है।

महात्मा गांधी की भी किसी समय यही धारणा थी परन्तु उन्होंने तुरंत ही यह देख लिया कि देश की स्थिति इसके विपरीत है। हमारे देश में एक ही भाषा के लिये दो-दो लिपियां हैं। हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी के लिये दो लिपियां हैं अर्थात् अर्बी अथवा फारसी और देवनागरी लिपियां, इसलिये उन्होंने यह विचार त्याग दिया और विभिन्न प्रान्तीय लिपियों को सीखने लगे।

इन लिपियों और भाषाओं के सम्बन्ध में मैं तो यह कहूंगा कि भारतीय संघ की सरकार को सोवियत रूस के समान उदार नीति का अनुसरण करना चाहिये। रूस में उन्होंने एक-भाषा-भाषी अल्पसंख्यकों पर रूसी भाषा अथवा लिपि को आरोपित करने के विचार को नहीं अपनाया। इस प्रकार के आरोपण को वे रूसी अंध-निष्ठा के नाम से कहते हैं। मैं यह नहीं चाहता कि इस देश में देवनागरी अंध-निष्ठा को अपनाया जाये। सोवियत रूस में ऐसी भाषाएं थीं जिनकी अपनी लिपियां न थीं। उन्होंने बहुत आगे बढ़ के उनको लिपियां भी प्रदान कीं। उन्होंने रूसी लिपि नहीं दी, बल्कि लैटिन लिपि दी। इसी प्रकार भारत में भी ऐसी भाषाएं हैं जिनकी लिपियां नहीं हैं। इस सभा के एक प्रमुख सदस्य माननीय फादर डी' सौज़ा जिस कोंकानी भाषा को बोलते हैं उसकी कोई लिपि नहीं है। तूलू बोली की भी कोई लिपि नहीं है और मेरे विचार से कई आदिवासी भाषाओं की लिपियां नहीं हैं। इनमें से प्रत्येक भाषा के लिये सरकार को लिपि की व्यवस्था करनी चाहिये। इस खण्ड की व्याख्या उदारता से की जानी चाहिये और हमें ऐसी भाषाओं के लिये लिपि की व्यवस्था करनी चाहिये जिनकी अपनी लिपियां नहीं हैं। यदि इन भाषाओं के लिये देवनागरी लिपि निश्चित की गई तो मुझे इसमें कोई आपत्ति न होगी। परन्तु यह समझ में आने वाली बात नहीं हैं कि तामिल देवनागरी लिपि में लिखी जाये। आखिर इस प्रकार के प्रस्ताव का उद्देश्य क्या है? उद्देश्य तो यह है कि प्रान्तों के बीच एकता स्थापित की जाये। प्रान्तों के बीच एकता स्थापित करने के बजाय इससे इस प्रकार के प्रयास में बाधा पड़ेगी। इसलिये जब

हम शासन-कार्य के लिये सारे भारत के लिये एक भाषा निश्चित करने जा रहे हैं तो हमें लिपि के सम्बन्ध में अपनी इच्छानुसार बातें कह के अथवा विभिन्न प्रान्तीय लिपियों को मिटा देने की बात कह के स्थिति को अधिक संकटापन्न न बनाना चाहिये। मेरे विचार से प्रान्तीय लिपियों तथा भाषाओं को सुरक्षित करने तथा समुन्नत करने का प्रयास करके हम राष्ट्रीय एकता को अधिक अंश में स्थापित कर सकते हैं, तथा उसे सुदृढ़ बना सकते हैं। श्रीमान्, मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि इस खण्ड को स्वीकार कर लिया जाये।

***माननीय पंडित गोविन्दबल्लभ पंत** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मुझे इसका खेद है कि मुझे इस वादानुवाद में हस्तक्षेप करना पड़ा है। मेरा यह इरादा नहीं था। मैंने अपने ऊपर आत्म निरोध के नियम को लागू कर रखा है और जहाँ तक हो सका है मैंने सभा का समय नहीं लिया है। मैं यह चाहता हूं कि जो समय हमारे पास है उसमें अधिक से अधिक काम किया जाये और विधान को यथाशीघ्र स्वीकार कर लिया जाये। यदि एक वक्ता महोदय ने जिस प्रकार की बातें कहीं हैं उन्हें वे न कहते तो मैं आज इस मंच पर न आता। मि. लारी ने जो मत प्रकट किया है उसके कारण मैं कुछ बातें कहने के लिये बाध्य हूं और मेरा यह विचार है कि उनके भाषण से जो भ्रम उत्पन्न हो सकता है वह उनसे मिट जायेगा।

जहां तक इस खण्ड का सम्बन्ध है मैं इसका पूर्णत: समर्थन करता हूं। सौभाग्य से मि. लारी ने यह नहीं कहा है कि मेरे प्रान्त में कोई ऐसी बात की गई जो इस खण्ड के शब्दों अथवा इसकी भावना के विरुद्ध हो। इस सम्बन्ध में उन्होंने न कोई बात कही है और न कोई आरोप लगाया है...।

***श्री ज़ैड. एच. लारी:** मैं संशोधन पर बोल रहा था और मुझे अपने को उसी तक सीमित रखना था।

***माननीय पंडित गोविन्दबल्लभ पंत:** तो आप इसे स्वीकार करते हैं कि जहां तक संघीय शक्ति-समिति और मसौदा-समिति द्वारा स्वीकृत इस विशेष खण्ड का सम्बन्ध है, कोई ऐसी बात नहीं की जा रही है जो आपके मतानुसार भी इसकी शब्दावली अथवा भावना के विरोध में हो। उनका यह विचार है कि यह उनके उद्देश्य की पूर्ति के लिये पर्याप्त नहीं है और इसलिये वे इसमें संशोधन करना चाहते हैं।

***श्री ज़ैड. एच. लारी:** जी नहीं। मैं बहुत कुछ कह सकता था परन्तु मुझे अवसर नहीं मिला।

***माननीय पंडित गोविन्दबल्लभ पंत:** जहां तक उनके संशोधन का सम्बन्ध है, मेरे विचार से कई वक्ता उसकी आलोचना कर चुके हैं और उनके तर्क का खण्डन कर चुके हैं। मैं इसे आवश्यक नहीं समझता कि उन्होंने जो तर्क उपस्थित किये हैं उन्हें अधिक वज़नी बनाया जाये। परन्तु मैं कुछ वास्तविक बातों और कुछ सिद्धान्तों की ओर संकेत करूंगा जिनको ध्यान में रखना आवश्यक है। इस भारतीय संघ में हम सबका इस देश में निवास करने सभी नागरिकों के प्रति कुछ कर्त्तव्य है और हमने सभी कार्य इस प्रकार करने हैं कि हम, आज जो साधन उपलब्ध हैं, अथवा कल जो होंगे, उन सभी का अधिक से अधिक उपयोग कर सकें। मि. लारी का हमसे यह आशा करना उचित नहीं है कि हम करदाता के हितों को हानि पहुंचा कर किसी की सनक के अनुसार काम करें। हमारे देश में बहुत से लोग निरक्षर हैं और उन्हें कम से कम प्राथमिक शिक्षा की सुविधा प्रदान करनी है। सारे देश में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करने के लिये करोड़ों रुपयों की आवश्यकता होगी। आखिर हमारे विद्यालय किस प्रकार स्थापित हों और किस प्रकार वे चलाये जायें? यदि प्रत्येक विद्यालय में नागरी जानने वाले और उर्दू जानने वाले दो प्रकार के अध्यापकों को रखना आवश्यक हो, चाहे इन भाषाओं में दिलचस्पी रखने वाले विद्यार्थियों की संख्या कुछ भी हो, तो क्या आर्थिक दृष्टि से हमारे लिये इस प्रकार की व्यवस्था करना सम्भव है? यदि इस प्रकार की नीति का अनुसरण किया जाये तो अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की बात तो दूर रही, हम सारे देश में प्राथमिक शिक्षा की भी व्यवस्था अनन्त काल तक न कर सकेंगे। यह स्पष्ट है कि आपको प्रत्येक प्रदेश की स्थिति की परीक्षा करनी होगी और फिर ऐसी व्यवस्था करनी होगी जिससे अधिक से अधिक लाभ हो सके।

श्रीमान्, जहां तक मेरे प्रान्त का सम्बन्ध है मेरे विचार से धर्म के आधार पर कहीं भी भाषा-सम्बन्धी विभेद नहीं है। (**माननीय सदस्य:** कहीं नहीं)। चाहे हिन्दी को लीजिये अथवा हिन्दुस्तानी को अथवा उर्दू को, कई हिन्दू ऐसे हैं जो तथाकथित उर्दू बोल सकते है और उर्दू लिख सकते हैं और उनमें से कुछ तो ऐसे हैं जो केवल उर्दू ही लिख सकते हैं। बहुत से मुसलमान ऐसे हैं, विशेषतया गांवों में, जो केवल देवनागरी में लिखते हैं और केवल हिन्दी बोलते हैं और अन्य किसी भाषा को नहीं जानते।

***मौलाना हसरत मोहानी:** गांवों में हिन्दी कोई नहीं बोलता।

***उपाध्यक्ष:** यह एक विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति का विघ्न है। आप उसकी ओर ध्यान न दीजिये।

***माननीय पंडित गोविन्दबल्लभ पंत:** आप इस सम्बन्ध में निश्चित रहें कि अध्यक्ष पद से मुझे आश्वासन मिलने के उपरान्त मैं आपकी बातों की ओर ध्यान देने नहीं जा रहा हूं। (*हंसी*) मैं यह कह रहा था कि यदि आप इसे ध्यान में रखें कि किसी विशेष धर्म के अनुयायियों की कोई विशेष भाषा नहीं है तो किसी अल्पसंख्यक-वर्ग के होते हुए, अथवा उसके सम्बन्ध में, भाषा का प्रश्न ही नहीं उठता। हिन्दुओं की अपनी कोई भाषा नहीं है और मुसलमानों की अपनी कोई भाषा नहीं है। (**माननीय सदस्य:** वाह वाह)। विशेषतया जहां तक प्राथमिक शिक्षा और उन प्राथमिक कक्षाओं का सम्बन्ध है जहां केवल प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है। मैंने जिस सिद्धान्त को सभा के सम्मुख रखा है उसके बारे में किसी प्रकार का मतभेद हो ही नहीं सकता। उन विद्यालयों में केवल प्रारम्भिक विचार प्रतिपादित किये जाते हैं और वे इस प्रकार प्रतिपादित किये जाते हैं कि उन्हें साधारणतया सभी लोग समझ सकें। इसलिये किसी अल्पसंख्यक-वर्ग के लिये हानिकर किसी बात के करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

ऐसे लोग हैं जो हिन्दी जानते हैं परन्तु उनके बच्चे उर्दू सीखते हैं। ऐसे हिन्दू हैं जो उर्दू जानते हैं और जैसा कि मैं कह चुका हूं ऐसे मुसलमान हैं जो हिन्दी और नागरी लिपि जानते हैं और केवल नागरी लिपि और हिन्दी ही जानते है। इसलिये मूलाधिकारों पर विचार-विमर्श होते समय इस प्रश्न को साम्प्रदायिक प्रश्न अथवा अल्पसंख्यकों के प्रश्न के रूप में उपस्थित करना इसे गलत ढंग से उपस्थित करना है। मेरा यह निवेदन है कि इस प्रसंग में यह प्रश्न उठता ही नहीं।

इसके अतिरिक्त मि. लारी ने कुछ बेढब बातें कही हैं। उन्होंने यह कहा है कि लखनऊ और इलाहाबाद में कोई जगह ऐसी नहीं है जहां मुसलमान उर्दू में प्राथमिक शिक्षा पा सकते हैं। इन दोनों स्थानों में इस्लामिया स्कूल हैं, मदरसे हैं, सरकारी स्कूल हैं और मुस्लिम स्कूल तथा मुस्लिम कालेज हैं और वहां मुसलमानों के सैकड़ों लड़के शिक्षा पा रहे है। मेरी समझ में नहीं आता कि मि. लारी ने इतने गलत बयान की जिम्मेदारी अपने ऊपर कैसे ले ली।

***श्री ज़ैड. एच. लारी:** यहां मेरे पास बुनियादी कालेज के प्रिंसिपल की ही चिट्ठी है। किसी सरकारी अथवा नगर-समिति के स्कूल में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है।

***माननीय पंडित गोविन्दबल्लभ पंत:** मैं इस विषय पर आ रहा हूं। थोड़ा धैर्य रखिये। जहां तक मुझे ज्ञात है इस वर्ष हमारे प्रान्त के स्कूलों और कालेजों में मुसलमान लड़कों की संख्या में कोई कमी नहीं हुई है। मैं यह भी कहूंगा कि इस समय जो प्रणाली प्रयुक्त है उससे किसी वर्ग के विद्यार्थियों को किसी प्रकार की असुविधा होने के बारे में साधारणतया कोई शिकायत नहीं आई है। मि. लारी का हमारे शिक्षा-मंत्री से कुछ वाद-विवाद हुआ और कुछ पत्र समाचार-पत्रों में प्रकाशित किये गये। मि. लारी के मत का मेरे प्रान्त के कुछ सम्मानित मुसलमानों ने खण्डन किया और विधान-मंडल के कुछ सदस्यों का भी उनसे मतभेद रहा और उन्होंने अपने विचार समाचार-पत्रों के स्तम्भों में व्यक्त किये। सम्भवत: वे यह जानते हैं। सम्भवत: उन्होंने मि. इस्माइल अहमद के लेख को पढ़ा था। वे यह बात नहीं कहते हैं। यह उचित नहीं है कि केवल उन्हीं बातों को देखा जाये जो आपने पसंद की हों। (*हंसी*) इससे यह ज्ञात होता है कि सार्वजनिक प्रश्नों की वे किस प्रकार परीक्षा करते हैं और किस प्रकार उन पर अपना मत निश्चित करते हैं।

प्राथमिक विद्यालयों में लड़कों को मातृभाषा में शिक्षा दी जाती है। हिन्दू, मुसलमान और सभी लड़कों की हमारे प्रान्त में बहुत कुछ एक ही मातृभाषा है। किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। पिछले दिनों में जिनके माथे पर प्रथक्करण का भूत सवार रहा है, उसे वे अब भी नहीं उतार सके हैं। (**माननीय सदस्य:** वाह वाह)। यह दिखाई देता है कि 'दो राष्ट्रों' का भूत अब भी कहीं छिपा हुआ है और वह इस सम्मानित सभा के भवन के भी किसी कोने में वर्तमान है। अन्यथा यहां इस प्रकार का भय उपस्थित नहीं किया जाता।

इस सम्बन्ध में मुझे मि. लारी का एक पत्र मिला और मैंने अपने डिप्टी सेक्रेटरी और डिप्टी डायरेक्टर मि. इबादुर रहमान खां से बातचीत की। डिप्टी डायरेक्टर से मुझे ज्ञात हुआ कि जो प्रबन्ध किया गया है वह पूर्णतया संतोषजनक है। इस स्थिति में मेरे विचार से मुझे उन लोगों के परामर्श तथा सूचना पर विश्वास

करना चाहिये, जिनको प्रान्त के प्रत्येक स्कूल के बारे में मि. लारी से अधिक जानकारी है।

मैं माननीय सदस्यों को यह भी सूचित करना चाहता हूं कि हम इस समय भी ऐसे इस्लामिया स्कूलों और मदरसों को अनुदान के रूप में बहुत-सा रुपया दे रहे हैं जिनमें केवल मुसलमान विद्यार्थियों का प्रवेश हो सकता है। इसलिये यहां यह आरोप लगाना कि मुसलमान विद्यार्थियों के साथ विभेद बरता जा रहा है, उचित नहीं है और इसे किसी प्रकार उदार मत तो कहा ही नहीं जा सकता।

अब जहां तक मि. लारी के लड़के का सम्बन्ध है, मैंने वास्तविक बातों का पता लगाने का प्रयास किया और मुझे यह बताया गया कि उस कक्षा में बहुत कम लड़के उर्दू लिपि को चाहते थे। उनमें से सब लड़के कुछ को छोड़ कर—सम्भवत: केवल मि. लारी के लड़के को छोड़कर—वहां के प्रबन्ध से संतुष्ट थे। मि. लारी बता सकते हैं कि उस कक्षा में कितने लड़के ऐसे थे जो उनसे सहमत थे अथवा जिनके संरक्षक उनसे सहमत थे और जो यह चाहते थे कि...

***श्री ज़ैड. एच. लारी:** सभी मुझ से सहमत थे परन्तु प्रिंसिपल ने कहा "इस प्रकार की कोई बात नहीं हो सकती।" "किसी प्रकार की छूट देना सम्भव नहीं है।

***माननीय पंडित गोविन्दबल्लभ पंत:** जहां तक मुझे ज्ञात है उस कक्षा में केवल उन्हीं का लड़का पृथक् प्रबन्ध चाहता था। (*हंसी*) इसमें सन्देह नहीं कि इलाहाबाद में ऐसे स्कूल हैं जहां नागरी लिपि, जो प्रान्त की राष्ट्रीय-लिपि स्वीकार की गई है, प्रयोग में है।

वे अपने लड़के को किसी अन्य इस्लामिया स्कूल अथवा किसी ऐसे स्कूल में भेज सकते थे जहां उर्दू लिपि प्रयोग में है और जहां उसी प्रकार की शिक्षा दी जाती है, जिसे मि. लारी पंसद करते है। क्या वे इस सभा से इस प्रकार की व्यवस्था स्वीकार करने की आशा करते हैं कि जहां ऐसा एक विद्यार्थी या दस विद्यार्थी हों, तो वहां दो अध्यापक-वर्ग हों; एक नौ सौ अथवा एक हजार विद्यार्थियों के लिये और एक उन दस लड़कों के लिये? यदि यह बात है ते इसका खर्च कहां से पूरा किया जायेगा? हम करदाता को इसे इस बात को मानने के लिये कैसे समझायेंगे? इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि

[माननीय पंडित गोविन्दबल्लभ पंत]

केवल ऐसे लोग नहीं हैं जो विद्यालयों में इस लिपि को अथवा क्लिष्ट उर्दू को चाहते हैं किन्तु बड़े शहरों में महाराष्ट्री, गुजराती और अन्य लोग भी पर्याप्त संख्या में होते हैं। यदि पांच या दस बंगाली लड़के हों या पांच या दस गुजराती लड़के हों तो क्या हम ऐसे पृथक् अध्यापक-वर्ग की व्यवस्था करें जो उन लड़कों को बंगाली, अथवा मराठी अथवा गुजराती अथवा तेलगू में शिक्षा दे सकें? इसे कोई भी स्वीकार नहीं कर सकता है और वास्तव में उन लोगों ने कभी इस प्रकार की मांग भी नहीं की है। उन्होंने जैसी स्थिति है उसे स्वीकार किया है और वे हमेशा जो भी प्रबन्ध किया गया है उससे संतुष्ट रहे हैं। अब यदि कोई व्यक्ति यहां इस पर ज़ोर दे कि यदि कोई विद्यार्थी उर्दू को श्रेष्ठ समझता है तो उसके लिये प्रत्येक स्कूल में उस लिपि में तथा उस भाषा में शिक्षा देने के लिये पृथक् अध्यापकों का प्रबन्ध किया जाये तो मेरे विचार से सरकार उसकी इच्छा को पूरा न कर सकेगी। किसी भी सरकार के लिये ऐसी व्यवस्था करना सम्भव नहीं है और जहां तक मुझे ज्ञात है मि. लारी ने भी यह संशोधन स्वीकार किया है कि यह प्रबन्ध तभी किया जाये जब कहीं ऐसे विद्यार्थी पर्याप्त संख्या में हों। मेरे विचार से उस संशोधन को काज़ी सय्यद करीमुद्दीन ने उपस्थित किया था और उसमें यह कहा गया था कि:

"यदि इस प्रकार के विद्यार्थी पर्याप्त संख्या में उपस्थित हों तो"।

हमने भी यही निर्देश किया है कि जहां कहीं इस प्रकार के विद्यार्थी पर्याप्त संख्या में हों तो उनके लिये प्रबन्ध किया जाये। परन्तु जहां वे पर्याप्त संख्या में नहीं हैं वहां हम इस प्रबन्ध के खर्च को नहीं उठा सकते। क्या इससे भी न्यायपूर्ण अथवा उदार और कोई बात हो सकती है? यहां जिस मूलभूत अनुच्छेद को हम स्वीकार करने जा रहे हैं उसके अनुसार हमारे लिये यह आवश्यक नहीं है कि हम इस प्रकार की कोई व्यवस्था करें। उसके अनुसार किसी ऐसी भाषा बोलने वाले लोगों को, जो राष्ट्रभाषा अथवा राजभाषा से भिन्न हो, अपनी भाषा को सुरक्षित रखने की स्वतन्त्रता दी गई है। इससे सरकार के लिये यह आवश्यक नहीं हो जाता कि उनके लिये विशेष व्यवस्था की जाये। परन्तु हमने इससे कहीं आगे बढ़कर उन्हें विशेषाधिकार दिये हैं। हमने उनके लिये आवश्यक प्रबन्ध किया है। आज हज़ारों ऐसे लड़के शिक्षा पा रहे हैं और हम उनकी शिक्षा पर बहुत बड़ी धन-राशि व्यय कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि उनकी शिक्षा को प्रोत्साहन मिले और

हम आज से भी अधिक संख्या में विद्यार्थियों को आकर्षित करना चाहते हैं और यह भी चाहते हैं कि उनके लिये यथासम्भव सुविधा हो, परन्तु कोई भी सरकार एक सीमा के आगे नहीं बढ़ सकती है। जब प्रान्त में प्रत्येक व्यक्ति को यथासम्भव सुविधा प्रदान करने के लिये और लोगों के प्रत्येक वर्ग को उचित स्थान देने के लिये सच्चे हृदय से जो प्रयास किया गया है उसकी उपेक्षा करके बिना समझे बूझे दोषारोप किये जाते हैं तो मैं कभी बड़ी कठिनाई में, आपत्ति में और बहुत कुछ खिन्नावस्था में पड़ जाता हूं। हमें आशा है कि इस प्रकार के अनुत्तरदायी वक्तव्य अब न दिये जायेंगे और इससे भी अधिक आशा इसकी है कि यहां कोई व्यक्ति ऐसी बातों से भ्रम में न पड़ेगा जिनकी पुष्टि वस्तुस्थिति से नहीं होती है और जो गलत भी होती हैं तथा जो राज्य के संरक्षण में नागरिकों के विशाल समुदाय के प्रति राज्य के कर्त्तव्य की उपेक्षा करती है। यह एक बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इस प्रसंग में भाषा के प्रश्न को इस ढंग से उपस्थित किया जाये कि वह जैसे कोई साम्प्रदायिक प्रश्न हो। इससे उस उद्देश्य का साधन न होगा जिसकी प्राप्ति के लिये मैं यथाशक्ति सहायता देना चाहता हूं, परन्तु इससे हमारे मार्ग में बाधा ही पड़ेंगी। मुझे आशा है कि भविष्य में ऐसे प्रश्नों पर अधिक सावधानी से विचार किया जायेगा।

***एक माननीय सदस्यः** अब प्रस्ताव पर मत लिया जाये।

***उपाध्यक्षः** बहस समाप्त करने का प्रस्ताव उपस्थित हो चुका है और मैं अब डॉ. अम्बेडकर से बोलने के लिये कहता हूं। किन्तु क्या आप अधिक बहस करना चाहते हैं?

***माननीय सदस्यः** जी नहीं।

***मौलाना हसरत मोहानीः** श्रीमान्, मेरे लिये अपवाद किया जाये। यदि आप मुझे बोलने के लिये कुछ समय दें तो मुझे हर्ष होगा। मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी परन्तु डॉ. अम्बेडकर ने मुझे ठग लिया। कृपा करके मुझे अपनी बात कहने दीजिये।

***उपाध्यक्षः** अच्छी बात है। कृपया माइक्रोफोन पर आइये।

**मौलाना हसरत मोहानी:** जनाब आली, मेरा इरादा यहां पर सिर्फ एक तरमीम पेश करने का था। वह नम्बर 691 की तरमीम थी। अम्बेडकर साहब ने जो रखा था उसमें तरमीम करने के लिए थी। लेकिन इसके बाद जब और अमेंडमेंट पेश हुए तो उसमें सबसे पहला जो अमेंडमेंट पेश किया मिस्टर लारी ने, वह अमेंडमेंट नं. 676 में। उसकी भी मैं तहेदिल से ताईद करता हूं इसकी वजह यह है कि जैसा कि लारी साहब ने अपने बयान में कह दिया था कि जो यहां पर सब-कमेटी बनी थी, इस हाउस में फंडामेण्टल राइट्स के लिए, उसने इस बात को मुत्तफिका तौर पर तय कर लिया था और यह उसूल करार दिया था कि:

"Minorities in every Unit shall be protected in respect of their script and culture and no laws regulating them may be enacted." इसमें यह बात पूरी तौर पर आ गई। मेरी समझ में नहीं आता कि अम्बेडकर साहब की कमेटी ने इसके खिलाफ एक नया उसूल क्योंकर जारी करके अपने ड्राफ्ट में बिलकुल एक नई चीज़ पेश कर दी। इसके ऊपर लारी साहब ने बहुत ऐतराज किया था। मैं तो सीरियस प्रोटेस्ट करता हू कि ऐसा उनको नहीं करना चाहिए था। वह कमेटी में पास हुआ मई सन् 1947 में और इस हाउस ने भी उसको मंजूर किया।

अब आप देखिए कि इसके मुतल्लिक जो तरमीम मैंने पेश की थी। उसके बारे में मैं कुछ कहूंगा। इस सिलसिले में जो चन्द बातें पेश आ गईं और मेरे सूबे के वज़ीरेआज़म पंत साहब ने और मिस्टर सन्तानम् ने जो चन्द बातें इसके मुतल्लिक कही हैं, मैं उसका जवाब मुख्तसर तौर पर देना चाहता हूं और वह यह है कि मिस्टर सन्तानम् साहब ने यह कहा था कि लारी साहब की जो तरमीम थी, 676 वाली, उसमें लाज़िमी तौर पर हमारी प्रोटेक्शन होनी चाहिए। लैंग्वेज और स्क्रिप्ट को भी उन्होंने कहा इसमें मौजूद है कि हम 15 बरस के बाद जो कुछ तय होगा तब हम इसका ख्याल करेंगे। फिर जब लारी साहब ने यह ऐतराज़ किया था कि हमारे सूबे के लिए क्या होगा; वहां पर उन्होंने कह दिया है हम सेण्ट्रल गवर्नमैंट के फैसले को मानते ही नहीं कि एजुकेशन प्रोविन्सियल सब्जैक्ट है। इसलिए आपकी एडवाइज़री कमेटी ने उसको नहीं माना और नहीं मानती है। तो

इसका भी जवाब उन्होंने दिया कि फिर आपको अपने सूबे की मैजोरिटी की खुशामद करनी होगी। वह ख्याल करेंगे, मैं यह कहता हूं कि पन्द्रह बरस जो उन्होंने कहा है वह किस ख्याल से। मैं बताना चाहता हूं कि इस वक्त तक कि स्टेटस को हमारे यू.पी. में क्या रहा है। अंग्रेज़ जहां रहते थे उन्होंने अंग्रेज़ी को रखा, लेकिन सिर्फ हायर एजुकेशन अंग्रेज़ी में होती थी। इन्साफ की बात तो यह थी कि 'Give the devil its due' । इतनी मैं उनकी तारीफ करूंगा कि उन्होंने अंग्रेज़ी को सिर्फ हायर एजुकेशन के लिए बनाया था। जहां तक सेकेंडरी और प्राइमरी का ताल्लुक था उन्होनें यह सिस्टम जारी कर दिया था जो हमारे सूबे में अब तक जारी था। वह क्या था? एक वर्नाक्यूलर ऑफ एजुकेशन वर्नाक्यूलर मिडिल की अलग थी जो अंग्रेज़ी के ज़रिये से मीडियम ऑफ इंसट्रक्शन होता था। इसके लिए हाई स्कूल होते थे। यानी जो लोग मीडियम ऑफ इंसट्रक्शन हायर एजुकेशन में अंग्रेजी लेना चाहते थे यह हाई स्कूल मीडियम ऑफ इंसट्रक्शन अंग्रेज़ी में लेते थे। जो लोग यह नहीं चाहते थे उनके लिए हर जिले में, हर मुकाम पर वर्नाक्यूलर स्कूल्स मौजूद थे। पन्त साहब ने जो कहा कि हम डबल और तीन गुना खर्च कहां से करेंगे। अब तक कहां से करते थे? आपके यहां वर्नाक्यूलर अब तक जारी था या नहीं? हर कस्बे में, हर गांव में, हर जिले में और वहां यह था या नहीं कि जो लोग जिनकी मदरटंग उर्दू थी और वह उर्दू स्क्रिप्ट के साथ सेकेंडरी एजुकेशन लेना चाहते थे, मिडिल तक वह उर्दू पढ़ते थे। जो कहते थे कि हिन्दी हमारी मदरटंग है। अगरचे यह फैक्ट है कि वह हिन्दी में बोलते थे। जिसको आगे चल कर के अपना इंटरमीडियेट और बी.ए. और अंग्रेज़ी पढ़नी होती थी वह जाकर हाई स्कूल के दर्जे में पढ़ते थे। मेरा कम से कम मुतालबा अपने सूबे की हुकूमत से यह है कि अलावा इस सवाल के कि आप यूनियन लैंग्वेज़ क्या मुकर्रर करेंगे मुझको इससे कोई वास्ता नहीं है। चाहे आप इसको इन्टरप्रोविन्सियल लैंग्वेज़ हिन्दुस्तानी रखें या हिन्दी रखिये या संस्कृत रखिये। चाहे जो जी चाहे कीजिये। यह सवाल मीडियम ऑफ इंसट्रक्शन का और लैंग्वेज़ का कि किस प्रोविंस की क्या लैंग्वेज़ हों, बिलकुल डिस्टिंक्ट बनाइये। आप यू.पी. के अन्दर अगर हिन्दी बनाते हैं तो मुझे ऐतराज़ नहीं, लेकिन जहां तक मीडियम ऑफ इंसट्रक्शन का ताल्लुक है वह जब तक कि हमारी उर्दू मदरटंग है हमारा यह हक है और फन्डामैंटल राइट्स में से है। आज वह स्टेट से तकाज़ा करेंगे कि हम मादरी ज़बान में और मादरी स्क्रिप्ट में तालीम हासिल करेंगे। तो आपको गवर्नमैंट स्कूल्स में इसका बन्दोबस्त करना पड़ेगा और अगर आप यह नहीं करेंगे तो...

**एक माननीय सदस्यः** पाकिस्तान चले जाइये।

**मौलाना हसरत मोहानीः** आप जाइये। जो हिन्दुकुश से आये हैं वहां जाकर बसें। पंजाब से आप आये हैं। हम क्यों जाये। हम सेंट्रल एशिया से आये हैं।

***उपाध्यक्षः** एक वृद्ध सज्जन को चिढ़ा कर माननीय सदस्य क्रूरता का ही परिचय दे रहे हैं।

**मौलाना हसरत मोहानीः** यह बात है तो मैं सन्तानम् साहब और पन्त साहब दोनों को यह जवाब देता हूं कि उन्होंने भी यही कहा है कि फंड कहां से आयेगा। हम दो इन्तज़ाम कहां से करेंगे। एक लड़का ही हो तो वह कैसे होगा और अभी उन्होंने जो यह कहा कि गांव-गांव के मुसलमान हैं वह भी हिन्दी बोलते हैं, वह बिलकुल गलत है। मैं चैलेंज करता हूं पन्त साहब को, और किसी उस शख्स को, यू.पी. के जिस कोने में जाकर देख लें, मैं चैलेंज करता हूं कि वहीं जाकर देख लें कि किसी गांव के मुसलमान से बात करें, हिन्दी में किसी सब्जैक्ट पर उससे लिखा लें तो मैं कहता हूं कि वह सेंट परसेंट उर्दू बोलेंगे। यह दूसरी बात है कि हम 'खुशी' कहेंगे और वह 'खुसी' कहेंगे, हम 'हाफ़िज' कहेंगे वह 'हाफिज़' कहेंगे हम 'ग़रीब' कहेंगे और वह 'गरीब' कहेंगे, हम 'नक़द' कहेंगे और वह 'नगद' कहेंगे। इसके सिवाय 'कुछ नहीं'। हम तो जब मानें कि आपके गांव वाले जिनको आप कहते हैं कि उनकी मदरटंग हिन्दी है, आप और हम गांव में जाकर पूछें, आप कहेंगे कि बरसात शुरू हो गई है वह कहेंगे कि बरखा शुरू हो गई है। यह हो सकता है, लेकिन यह तो उर्दू ही है। हम तो जब मानें कि वह इसका जवाब दें कि बरखा आरम्भ हो गई है। अगर वह आरम्भ हो गई है कहते हैं तब हिन्दी हो सकती है। शुरू कहें तब तो यह उर्दू ही है। मेरा यह क्लेम है कि यू.पी. के सेंट परसेंट लोग उर्दू बोलते हैं और जो कहते हैं कि वहां के मुसलमानों की ज़बान हिन्दी है, बिल्कुल गलत है। मैं चैलेंज करता हूं, इसके लिए आप रेफरेंडम कर लीजिये और अगर आप यह नहीं कर सकते हैं तो आपका देहाती प्रोग्राम जो आल इंडिया रेडियो से ब्राडकास्ट होता है, उसकी लैंग्वेंज़ से पता चल जायेगा कि वह 'खुशी' कहते है या 'खुसी' कहते हैं। अगर इन देहातियों की जबान में कोई संस्कृत का लफ़्ज आ जाये तो आप कह सकते हैं कि देहात

की जबान हिन्दी है। लिहाज़ा मैं आपको चैलेंज करता हूं और आपको कोई हक नहीं है यह कहने का कि हमारे यू. पी. के गांवों की ज़बान हिन्दी है। यह मैंने लारी साहब के अमेंडमेंट के मुताल्लिक कहा है। मैं डॉक्टर अम्बेडकर साहब से अपील करूंगा कि वह अपने उस फैसले का लिहाज़ करें जो इस हाउस ने किया था और जो हमारी फंडामैंटल राइट्स की कमेटी ने किया है और वह उसको मंजूर करें यानी 676 नम्बर का जो अमेंडमेंट लारी साहब ने पेश किया है, उसको यह मंजूर करें। यह आपकी खुशी है कि आप उसको मंजूर करें या न करें, इसलिए कि आपकी मैजोरिटी आपके साथ है और एक पार्टी की जमात है।

*[मैं इस तरमीम की मुखालिफत करता हूं। वोट ले लीजिये। इस कांस्टिट्यूएंट असेम्बली का ढकोसला खड़ा करने की क्या ज़रूरत है?]

***उपाध्यक्षः** मैं आपको यह शब्द प्रयोग करने की आज्ञा नहीं दे सकता। (*विघ्न*) कृपया अपनी जगह पर बैठ जाइये। मैं बिना आपकी सहायता के भी सभा में व्यवस्था बनाये रख सकता हूं। मौलाना साहब, आप दस मिनट ले चुके है। मैं आपको केवल दो मिनट और देता हूं।

***मौलाना हसरत मोहानीः** में सिर्फ पांच मिनट और चाहता हूं। मैं पांच मिनट में खत्म कर दूंगा।

***उपाध्यक्षः** अच्छी बात है।

**मौलाना हसरत मोहानीः** अब मैं उस तरमीम के मुतल्लिक कहना चाहता हूं जो मैंने पेश की थी और वह तरमीम मैंने डॉक्टर अम्बेडकर की तरमीम पर दी थी। उसको अम्बेडकर साहब ने पेश नहीं किया और नल एन्ड वाइड कर दिया। मैं सिर्फ इसके मुतल्लिक बताना चाहता हूं।

डॉक्टर अम्बेडकर साहब ने जो 691 नम्बर का अमेंडमेंट पेश किया था, मैंने बहुत समझबूझ कर अपनी तरमीम उस तरमीम के साथ रखी थी कि आम तौर पर यही होता है कि उनकी तरमीम या कोई चीज़ हमेशा मंजूर हो जाती है। उसके साथ मेरी भी तरमीम मंजूर हो जायेगी। हमारे सदर साहब ने, जिनको यह अख्तियार दे दिया गया है कि जो कुछ वह चाहें पेश होने दें, और जो न चाहें वह पेश नहीं हो सकता है। लिहाज़ा यह अमेंडमेंट यानी 691, 692, 693, 694,

[मौलाना हसरत मोहानी]

696, 697, 698 सब एक ही तरह के हैं। इसमें से उन्होंने सिर्फ 691 को सेलेक्ट करके यह हक दे दिया कि सिर्फ यही पेश हो सकता है। यह कौन से इन्साफ की बात है? आप क्यों नहीं पेश करने देंगे? और वह क्यों नहीं पेश करते? तो मैं समझता हूं कि इसमें बात यह थी कि इसमें माइनोरिटीज़ को पूरा हक मिल रहा था, इसलिए इसे पेश नहीं किया।

*[यह बात साफ कर दी गई है कि हरेक अहम अकलियत को अपनी मादरी ज़बान और रस्मुलखत में तालीम पाने का हक हासिल होगा।]

**पंडित ठाकुरदास भार्गवः** मौलाना साहब, क्या मैं अर्ज करूं कि दफा 23 (2) में कोई जिक्र लैंग्वेज़ और स्क्रिप्ट का नहीं है, बल्कि यह तालीमी इदारों के दाखिले के मुताल्लिक है।

***उपाध्यक्षः** पंडित ठाकुरदास भार्गव, आपको अध्यक्ष पद को सम्बोधित करना चाहिये। मुझे खेद है कि मुझे आपको यह बताना पड़ रहा है। मौलाना साहब, मैं आपको पांच मिनट और दे चुका हूं।

**मौलाना हसरत मोहानीः** *[जनाब, दो-तीन जुमले बोल कर मैं खत्म कर रहा हूं।] लिहाज़ा मैं यह कहना चाहता हूं कि एडवाइज़री बोर्ड में भी यह फैसला किया था कि हर शख्स को अपनी मादरी ज़बान पढ़ने का हक है और यूनिवर्सिटी एजुकेशन में भी यह चीज़ तय पा गई है कि मादरी ज़बान रहेगी। लिहाजा आपको कोई हक नहीं है कि आप इसको अवाइड कर दीजिये।

ज़बान और रस्मुलखत का बहुत ही अहम मामला है। टर्की की तबाही का बायस महज़ उनकी वह जबरदस्ती हुई जिसकी वजह से उन्होंने अपनी ज़बान ठूंसना चाही थी। जिस तरह उनकी हुकूमत खत्म हो गई, आप भी हुकूमत नहीं कर सकेंगे।

***श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, अब प्रस्ताव पर मत लिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** दो प्रार्थनाएं और की जा चुकी हैं। मेरे विचार से अब मुझे अधिक बहस की आज्ञा न देनी चाहिये। डॉ. अम्बेडकर।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, यह एक महत्त्वपूर्ण विषय है। क्या आप रियायत करके मुझे बोलने की आज्ञा दे सकते हैं?

***उपाध्यक्ष:** हम हमेशा आपका भाषण सुनने के लिये तैयार रहते हैं। हमें तो खेद इसी का है कि आप प्राय: नहीं बोलते हैं।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** उपाध्यक्ष महोदय, हम आज जिस विषय पर विचार-विमर्श कर रहे हैं वह एक आधारभूत विषय है तथा उसका महत्त्व बहुत है। हम मूलाधिकारों पर विचार कर रहे हैं। हमने इस विषय पर इस प्रकार विचार किया है कि साधारणतया भारत के सभी लोगों को तथा विशेषतया विभिन्न वर्गों और सम्प्रदायों के लोगों को यह आश्वासन मिले कि राज्य उनके मूलभूत अधिकारों की पूर्णतया रक्षा करेगा। किसी सम्प्रदाय के सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकारों में एक अधिकार भाषा और संस्कृति का अधिकार भी है। इसलिये मुझे यह देखकर कोई आश्चर्य नहीं हुआ कि अनुच्छेद 23 पर बहुत समय तक विचार-विमर्श होता रहा। इस अनुच्छेद में यह प्रावहित है कि जिन अल्पसंख्यक-वर्गों की अपनी विशेष भाषा, लिपि और संस्कृति है उन्हें इनको सुरक्षित रखने का अधिकार है। परन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि यदि अल्पसंख्यक-वर्गों के पर्याप्त विद्यार्थियों के माता-पिता यह मांग करें कि उनके बच्चों को उन्हीं की भाषा में शिक्षा दी जाये तो क्या सरकार द्वारा चलाये हुए प्राथमिक स्कूलों में अल्पसंख्यकों की भाषा तथा लिपि को सिखाया जायेगा?

श्रीमान्, यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। पूर्वी यूरोप के इतिहास से जो लोग परिचित हैं वे जानते हैं कि अल्पसंख्यकों की इस विषय-सम्बन्धी मांगों को ठुकराने से वहां कैसा संघर्ष हुआ। राष्ट्र-संघ को भी जिन महत्त्वपूर्ण समस्याओं की ओर ध्यान देना पड़ा उनमें एक यह भी थी कि अल्पसंख्यकों के सामान्य अधिकारों की ही रक्षा न की जाये, परन्तु जिन क्षेत्रों में वे वहां की जनसंख्या को देखते हुए पर्याप्त संख्या में हैं वहां उन्हें अपनी ही भाषा को प्रयोग करने का अधिकार दिया जाये। मि. लारी द्वारा उपस्थित तथा मि. करीमुद्दीन द्वारा संशोधन-प्रस्ताव

[पंडित हृदयनाथ कुंजरू]

वास्तव में सभा द्वारा सहानुभूतिपूर्वक तथा गंभीरतापूर्वक विचार करने योग्य है। यद्यपि यह मुस्लिम सम्प्रदाय के हितों की रक्षा के लिए उपस्थित किया गया है परन्तु इससे सभी अल्पसंख्यक सम्प्रदायों की रक्षा होगी। केवल भारत ही एक ऐसा देश नहीं है जहां विभिन्न भाषाएं बोली जाती हैं; अन्य देशों में भी अनेक भाषाएं बोली जाती हैं। इस सम्बन्ध में रूस का उदाहरण उल्लेखनीय है। जिन प्रदेशों पर रूसी सरकार का शासन है उनके लिये एक राष्ट्रभाषा है और वह है रूसी भाषा। परन्तु साथ ही स्थानीय भाषाओं के विकास के लिये प्रोत्साहन दिया जाता है और स्थानीय संप्रदायों की संस्कृति को उत्कृष्ट बनाने के लिए यथा-सम्भव प्रयत्न किया जाता हैं। रूस इस दिशा में बहुत आगे बढ़ा है और उसने अपने शासन के अधीन जिन सम्प्रदायों की अपनी लिपियां भी न थीं उनको लिपियां प्रदान की हैं। इस प्रकार अपने अधीन सभी सम्प्रदायों को उसने वह आश्वासन दिया है कि यह उन्हें उन सब विशिष्ट बातों के सम्बन्ध में पूर्ण संरक्षण देने के लिये तैयार है जिनको वे मूल्यवान समझते हैं, जिन पर वे अपने इतिहास तथा अपनी समुन्नति की दृष्टि से गर्व करते हैं और जिनके कारण वे यह अनुभव करते हैं कि वे अन्य सम्प्रदायों से ही सुविधाएं प्राप्त नहीं करते रहे हैं बल्कि उनके सम्मुख भी कोई मूल्यवान बातें रखते रहे हैं। यदि आज हमारे मुसलमान मित्र इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर यह मांग करते हैं कि उनके बच्चों को ऐसे प्राथमिक विद्यालयों में, जहां वे पर्याप्त संख्या में हों, उनकी ही भाषा और लिपि में शिक्षा दी जाये तो यह कोई अनर्गल मांग नहीं कही जा सकती। यह एक ऐसी मांग है कि यदि हम न्याय करना चाहें तो हमें इसे पूरा करना चाहिये।

***पंडित ठाकुरदास भार्गवः** इस मांग का विरोध कौन कर रहा है?

***पंडित हृदयनाथ कुंजरूः** जो उत्तेजनापूर्ण वाद-विवाद हुआ है उसे ध्यान में रखते हुये तथा यह न समझ सकने के कारण कि संशोधन स्वीकार किया जायेगा अथवा नहीं, मैंने यह आवश्यक समझा कि मैं इस सभा के सम्मुख अपने विचार रख दूं। यदि मेरे मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव सभा की भावना ठीक-ठीक समझ पाये हैं तो इससे सबसे अधिक प्रसन्नता मुझ ही को होगी।

***पंडित ठाकुरदास भार्गव:** माननीय पंडित गोविन्दबल्लभ पंत ने अपने भाषण में इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** पंडित गोविन्दबल्लभ पंत जिस समय बोल रहे थे उस समय मैं सभा में उपस्थित न था परन्तु मुझे यह सूचना मिली है कि मि. लारी द्वारा उपस्थित तथा काज़ी करीमुद्दीन द्वारा संशोधित संशोधन को पंडित पंत अथवा डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार नहीं किया है।

***पंडित ठाकुरदास भार्गव:** उसे इस कारण स्वीकार नहीं किया गया है कि वह न्याय्य नहीं है, क्योंकि प्राथमिक शिक्षा का अधिकार ही इस समय न्याय्य नहीं है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** श्रीमान्, अब मेरे माननीय मित्र पं. ठाकुरदास भार्गव ने अपना तर्क बदल दिया है। वे यह कहते हैं कि संशोधन इस कारण स्वीकार नहीं किया गया है कि यह अधिकार न्याय्य नहीं है। क्या इसका अर्थ यह है कि अनुच्छेद 23 पर मि. लारी ने जिस प्रकार का संशोधन उपस्थित किया है उसका वे भी विरोध करेंगे? यदि यह बात है तो उन्होंने प्रश्न ही क्यों किया? उन्होंने खड़े होकर यह क्यों कहा कि इस संशोधन का विरोध कौन कर रहा है?

***उपाध्यक्ष:** मुझे खेद है कि मैंने पहली बार विघ्न पड़ने दिया। उससे कठिनाई उत्पन्न होती जा रही है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** श्रीमान्, मैं इसके लिये कृतज्ञ हूं कि आपने उसे पड़ने दिया क्योंकि उससे मैं अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण कर सका हूं और यह समझ सका हूं कि मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव के विचार क्या हैं। यदि अनुच्छेद 23 में सभा मि. लारी के संशोधन को केवल इस कारण प्रविष्ट नहीं करना चाहती है कि वह न्याय्य नहीं है तो क्या सरकार यह आश्वासन देगी कि यह संशोधन राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों के अध्याय का अंग बना लिया जायेगा?

***एक माननीय सदस्य:** यहां कोई सरकार नहीं है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** आखिर मसौदा-समिति के सभापति डॉक्टर अम्बेडकर भारत सरकार के कानून मंत्री तो हैं ही।

***उपाध्यक्ष:** यह एक आकस्मिक बात है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** यदि वे यह कहने के लिये तैयार हैं कि इस संशोधन के सिद्धान्त को भाग 4 में समाविष्ट कर लिया जायेगा तो कम से कम मुझे संतोष हो जायेगा। अब मेरे मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव को यह स्पष्ट हो गया होगा कि जो व्यक्ति भाषा, लिपि और संस्कृति के सम्बन्ध में पूर्ण सहिष्णुता दिखाने के पक्ष में है उसके लिये यह आवश्यक है कि वह सभा के सम्मुख आये और अपना मत प्रकट करे। मुझे खेद है कि अपने कई मित्रों के विघ्न डालने से मुझे यह अनुभव होता है कि सभा की भावना मि. लारी के संशोधन के प्रतिकूल है। सच पूछिये तो, श्रीमान्, मेरी समझ में नहीं आता कि जो सदस्य अल्पसंख्यक-वर्गों के सभी अधिकारों का समर्थन करते हैं वे मुस्लिम संप्रदाय की ओर से मि. लारी द्वारा उपस्थित मांग का कैसे विरोध कर रहे हैं। उनके संशोधन को बहुत विस्तृत समझा जा सकता था क्योंकि उसे स्वीकार करने पर यदि किसी स्कूल में एक विद्यार्थी भी उर्दू सीखना चाहता तो मुस्लिम सम्प्रदाय यह मांग कर सकता था कि वहां उर्दू पढ़ाई जाये। परन्तु मि. करीमुद्दीन के संशोधन से इस भय का निराकरण हो गया है और मेरी समझ से मि. लारी ने उसे स्वीकार कर लिया है।

***श्री ज़ैड. एच. लारी:** जी हां।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** इसलिये यह स्पष्ट है कि मि. लारी ने जिस अधिकार की मांग की है उसे मुस्लिम सम्प्रदाय केवल उसी जगह प्रयोग में ला सकेगा जहां पर्याप्त संख्या में मुसलमान विद्यार्थियों को उर्दू की शिक्षा से लाभ हो सकता हो। मैं सभा से पूछता हूं कि क्या वह न्याय और सहिष्णुता की दृष्टि से किसी कारण भी इस तर्कपूर्ण मांग को ठुकरा सकती है? इससे सारे भारत के लिये एक राष्ट्रभाषा निश्चित करने में कोई बाधा नहीं पड़ती है। (**माननीय**

**सदस्यः** पड़ती है, पड़ती है।) बिल्कुल नहीं पड़ती है। यदि मेरे माननीय मित्र निरुद्विग्न होकर पूर्वी यूरोप और रूस के इतिहास को पढ़ें (**माननीय सदस्यः** भारत का इतिहास क्यों न पढ़े?) तो उनको ज्ञात होगा कि उनका भय निराधार है केवल उन देशों में अल्पसंख्यकों के असंतोष से संकट उपस्थित हुआ है जहां उनकी संस्कृति के संरक्षण तथा समुन्नति के सम्बन्ध में उनकी न्यायपूर्ण मांगें ठुकरा दी गई हैं। साथ ही उन देशों में, यहां इस सम्बन्ध में उनके साथ न्यायोचित व्यवहार किया गया है, राजनैतिक क्षेत्र में भी उनका पूर्ण सहयोग उपलब्ध रहा है। मैं अपने देशवासियों से यह कहता हूं कि वे इन उदाहरणों से लाभ उठायें और पूर्वी यूरोप के इतिहास से चेतावनी ग्रहण करें। पूर्वी यूरोप में पहले की अपेक्षा कुछ अधिक शान्ति तभी स्थापित हो सकी जब अल्पसंख्यकों की संस्कृति तथा भाषा की रक्षा के लिये परिस्थिति के अनुसार राष्ट्र-संघ ने यथासम्भव हस्तक्षेप किया। क्या हम इस इतिहास की अपेक्षा करके राष्ट्रान्ध होकर उसी संकटापन्न मार्ग का अवलम्बन करना चाहते हैं जिसका अवलम्बन पूर्वी यूरोप के बहुसंख्यक कई वर्षों तक करते रहे? एक माननीय सदस्य मुझसे पूछते हैं कि दूसरा विश्वयुद्ध क्यों हुआ। मैंने यह कभी नहीं कहा है कि संसार में संघर्ष का केवल एक ही कारण रहा है। पहले कई कारणों से युद्ध हुए हैं और उनसे इस समय भी संसार के राष्ट्र एक-दूसरे से विमुख हैं। परन्तु क्या इसका अर्थ यह है कि हम बिना विचार इन कारणों को बढ़ाते जायें और अल्पसंख्यकों को केवल इस कारण साधारण न्याय से वंचित रखे कि हम जैसा भी कानून चाहे उसे बनाने के लिये शक्तिसम्पन्न हैं? इस कारण भी कि हम शक्तिसम्पन्न हैं हमें विचार करना चाहिये और आगे बढ़कर अल्पसंख्यकों के प्रति उदारता दिखानी चाहिये। मेरे मित्रों, में सच्चे हृदय से आपसे प्रार्थना करता हूं, भारत माता के एक विनम्र सेवक के नाते तथा आपके एक सच्चे हितचिंतक के नाते भी आपसे प्रार्थना करता हूं कि मि. लारी के तर्कपूर्ण संशोधन को अस्वीकार करने के पहले आप उस पर गंभीरतापूर्वक विचार करें। उसमें आवश्यकता से अधिक और कुछ नहीं कहा गया है और यदि हम बहुसंख्यक होने के कारण उसे बलपूर्वक ठुकरा देंगें तो हम बहुत बड़ी गलती करेंगे। मुझे आशा है कि यह सभा विचार-विमर्श से उद्‌भुत-उत्तेजना की उपेक्षा करके इस विषय पर अनुद्विग्न होकर विचार करेगी और न्याय, सहिष्णुता तथा उदारता के विचार से मि. लारी के संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

***उपाध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्तः जनरल): श्रीमान्, मुझे कुछ कहना है और...

***उपाध्यक्षः** मैं बहस को अब अधिक बढ़ाने की आज्ञा नहीं दे सकता और इस सम्बन्ध में मेरा निर्णय अन्तिम है।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेनाः** कुछ लोगों को बोलने देना और कुछ लोगों को न बोलने देना उचित नहीं है।

***उपाध्यक्षः** मैं यह जानता हूं कि यह अनुचित समझा जाता है। डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉक्टर बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, अनुच्छेद 23 के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनमें से मैं पंडित ठाकुरदास भार्गव द्वारा संशोधन संख्या 687 पर संशोधन संख्या 26 को स्वीकार कर सकता हूं। मैं संशोधन संख्या 690 पर संशोधन संख्या 31 को भी, जिसे भी पंडित ठाकुरदास भार्गव ने उपस्थित किया है, स्वीकार कर सकता हूं। अन्य जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनमें से मुझे केवल दो के सम्बन्ध में, अर्थात् मि. लारी द्वारा उपस्थित संशोधन संख्या 676 और मि. लारी ही द्वारा उपस्थित संशोधन संख्या 714 के सम्बन्ध में उत्तर देने की आवश्यकता है। मेरे विचार से यह उचित होगा कि इन संशोधनों के सम्बन्ध में जो प्रश्न उठाये गये हैं उनका मैं पृथक्-पृथक् रूप से उत्तर दूं।

संशोधन संख्या 676 अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक अधिकारों के सम्बन्ध में है और संशोधन संख्या 714 से यह प्रश्न उठता है कि क्या विधान में मूलाधिकार के रूप में यह प्रावधान भी समाविष्ट न कर दिया जाये कि अल्पसंख्यकों को प्राथमिक अवस्था में मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार है।

प्रथम संशोधन के सम्बन्ध में मेरे मित्र मि. लारी ने तथा मेरे मित्र मौलाना हसरत मोहानी ने भी मसौदा-समिति पर यह आरोप लगाया है कि उसने

मूलाधिकारों के सम्बन्ध में इस सभा द्वारा स्वीकृत पहले के प्रावधान को बदल दिया है। यह सच है कि मसौदा-समिति ने मूलाधिकार सम्बन्धी समिति द्वारा प्रस्तुत पैरा 18 की भाषा को बदल दिया है, परन्तु मुझे यह कहते हुए कुछ संकोच नहीं होता कि मसौदा-समिति ने पर्याप्त कारणों से ही उसकी भाषा में बदलाव किया है।

सभा से मैं पहले यह निवेदन करना चाहता हूं कि मसौदा-समिति ने मूलाधिकारों के पैरा 18 की भाषा को बदलना क्यों आवश्यक समझा। प्रारम्भिक मूलाधिकारों के पैरा को पढ़ने से यह ज्ञात होगा कि उसमें 'अल्पसंख्यक' शब्द उस विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त नहीं है जैसे कि हम उसका राजनैतिक संरक्षणों के अर्थ में प्रयोग करते हैं, जैसे विधान-मंडल में प्रतिनिधित्व, नौकरियों में प्रतिनिधित्व आदि के सम्बन्ध में। यह शब्द केवल विशिष्ट अर्थ में अल्पसंख्यकों का बोध कराने के लिये प्रयोग में नहीं आता, परन्तु उससे ऐसे अल्पसंख्यकों का भी बोध होता है तो विशिष्ट अर्थ में वास्तव में अल्पसंख्यक नहीं हैं परन्तु संस्कृति तथा भाषा की दृष्टि से अवश्य अल्पसंख्यक हैं। उदाहरणार्थ, अनुच्छेद 23 के प्रसंग में, यदि मद्रास से कुछ लोग जाकर कुछ काम के लिये बम्बई में बस जायें तो वे यद्यपि विशिष्ट अर्थ में अल्पसंख्यक नहीं हैं परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से वे अल्पसंख्यक समझे जायेंगे। इसी प्रकार यदि कुछ महाराष्ट्री महाराष्ट्र से जाकर बंगाल में बस जायें तो यद्यपि वे विशिष्ट अर्थ में अल्पसंख्यक नहीं हैं परन्तु संस्कृति और भाषा की दृष्टि से वे बंगाल में अल्पसंख्यक समझे जायेंगे। संस्कृति, भाषा और लिपि के सम्बन्ध में यह अनुच्छेद अल्पसंख्यकों को केवल विशिष्ट अर्थ में ही संरक्षण प्रदान नहीं करता पर उस विस्तृत अर्थ में भी प्रदान करता है जिसकी ओर मैंने अभी संकेत किया है। इसी कारण हमने 'अल्पसंख्यक' शब्द को निकाल दिया, क्योंकि हमने यह विचार किया कि इस शब्द की संकुचित व्याख्या हो सकती है, यद्यपि इस सभा ने 'अल्पसंख्यक' शब्द को अनुच्छेद 18 को स्वीकार करते समय उसके विस्तृत अर्थ में उसे स्वीकार किया है ताकि संस्कृति के सम्बन्ध में उन लोगों को जो विशिष्ट अर्थ में तो अल्पसंख्यक नहीं हैं पर वास्तव में अल्पसंख्यक हैं, संरक्षण प्राप्त हो सकें। यह अनुभव किया गया कि यह संरक्षण इस सामान्य कारण से आवश्यक है कि जो लोग एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जाते हैं और वहां बस जाते हैं वे वहां स्थायी रूप से नहीं बसते। वे जिस प्रान्त से जाते हैं उससे सम्बन्ध-विच्छेद नहीं करते बल्कि अपने सम्बन्धों

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

को बनाये रखते हैं। विवाह के लिये वे अपने ही प्रान्त जाते हैं। अन्य कई बातों के लिये भी वे अपने प्रान्त जाते हैं और यदि स्थानीय विधान-मंडल के अधीन रहते हुए उन्हें यह संरक्षण प्राप्त न हुआ और यदि स्थानीय विधान-मंडल ने उन्हें अपनी संस्कृति के संरक्षण के अवसर से वंचित कर दिया तो इन विशिष्ट संस्कृति वाले लोगों के लिये अपने प्रान्त में जाकर अपने लोगों से मिलना-जुलना कठिन हो जायेगा। एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में प्रवास की समस्या को हल करने के लिये हमने यह उचित समझा कि विधान में इस प्रकार का प्रावधान समाविष्ट किया जाये।

मेरे विचार से अनुच्छेद 23 को पढ़ते समय यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि इससे राज्य पर कोई कर्त्तत्व अथवा भार नहीं पड़ता है। उदाहरणार्थ, उसमें यह नहीं कहा गया है कि यदि मद्रास के लोग बंबई आयें तो बंबई की सरकार कानून के अनुसार तामिल भाषा में अथवा आंध्र भाषा में अथवा अन्य किसी भाषा में शिक्षा देने की योजना का खर्च पूरा करेगी। राज्य पर इसका कोई भार नहीं है। अनुच्छेद 23 में केवल यह प्रतिबन्ध है कि यदि विशिष्ट संस्कृति वाला कोई अल्पसंख्यक-वर्ग अपनी भाषा, लिपि तथा संस्कृति को सुरक्षित रखना चाहता है तो राज्य कानून द्वारा किसी स्थानीय अथवा अन्य संस्कृति को स्वीकार करने के लिये उसे बाध्य न करेगा। इसलिये इस अनुच्छेद का विस्तृत अर्थ लगाना चाहिये और यह न समझना चाहिये कि यह केवल उन अल्पसंख्यकों पर लागू होता है जिन्हें मैंने विशिष्ट अल्पसंख्यक कहा है और जिनका इस विधान में उल्लेख है। इसी कारण हमने 'अल्पसंख्यक' शब्द को मूल खण्ड से निकाल दिया है।

हमने 'अल्पसंख्यक' शब्द को तो निकाल दिया है परन्तु मेरे विचार से मि. लारी यह देखना भूल गये कि मूलाधिकारों के मूल अनुच्छेद में संरक्षण की जैसी व्यवस्था थी उससे अच्छी व्यवस्था हमने कर दी है। मूलाधिकारों के मूल अनुच्छेद में राज्य का केवल एक प्रकार का यह कर्त्तव्य बताया गया था कि वह उनकी संस्कृति, उनकी लिपि और भाषा की रक्षा करेगा। मूल अनुच्छेद में इन विभिन्न सम्प्रदायों को कोई मूलाधिकार नहीं दिया गया था। उसमें केवल एक कर्त्तव्य का निर्देश था और इस आशय का एक खण्ड था कि यद्यपि राज्य को इन भाषा, संस्कृति और लिपि-सम्बन्धी अधिकारों को सीमित करने का अधिकार

है परन्तु राज्य कोई ऐसा कानून नहीं बनायेगा जिसे उत्पीड़नशील कहा जा सके। इसका यह अर्थ नहीं था कि राज्य को इन विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार ही नहीं है परन्तु केवल यह अर्थ था कि यह कानून उत्पीड़नशील न होगा। मुझे इसका विश्वास है कि मूल अनुच्छेद में जिस संरक्षण की व्यवस्था थी वह बिल्कुल अपर्याप्त थी। सब कुछ राज्य की सद्भावना पर छोड़ दिया गया था। अब अनुच्छेद 23 को पढ़ने से आपको ज्ञात होगा कि हमने इसे मूलाधिकार का रूप दे दिया है जिससे यदि राज्य इस अनुच्छेद के प्रावधानों के प्रतिकूल कोई कानून बनाये तो प्रतिकूलता की सीमा तक वह कानून इस सभा द्वारा स्वीकृत अनुच्छेद 8 के अनुसार शून्य हो जायेगा।

इसलिये मेरे मित्र मि. लारी और मौलाना साहब को यह ज्ञात होना चाहिये कि उनकी दृष्टि से भी अब यह अनुच्छेद मूल अनुच्छेद से अच्छा हो गया है। मसौदा-समिति ने जो परिवर्तन किया है उससे निश्चय ही स्थिति किसी प्रकार नहीं बिगड़ी है।

अब मैं दूसरे प्रश्न को उठाता हूं, अर्थात् इस प्रश्न को कि विधान में स्पष्ट शब्दों में यह समाविष्ट करना चाहिये अथवा नहीं कि मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार एक मूलाधिकार है। इस प्रसंग में मैं यह कहूंगा, और मेरे विचार से तर्कप्रिय लोगों का इस सम्बन्ध में कोई मतभेद न होगा, कि यदि प्राथमिक शिक्षा को लाभप्रद तथा प्रभावपूर्ण बनाना है तो उसे बच्चों की मातृभाषा में ही देना होगा। अन्यथा प्राथमिक शिक्षा का कोई मूल्य नहीं रह जायेगा और वह निरर्थक हो जायेगी। इस सम्बन्ध में मुझें विश्वास है कि कोई मत-वैषम्य नहीं है और इस मत-प्रकाश के लिये मेरे लिये यह आवश्यक नहीं है कि मैं अपनी सरकार की आज्ञा लूं। इसे सभी ने स्वीकार किया है और यह इतना तर्कपूर्ण है कि इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में किसी प्रकार का मत-वैषम्य हो ही नहीं सकता। अब प्रश्न यह है कि हम इसे कानून में अथवा विधान में समाविष्ट करें अथवा नहीं। सच पूछिये तो विधान के किसी भी अनुच्छेद में इसे समाविष्ट करने में मुझे कुछ कठिनाई का अनुभव हो रहा है। जैसा कि मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू ने कहा है, यह सच है कि इस प्रकार के मूलाधिकार को प्रभाव में लाने में जो कठिनाई होती, वह मि. करीमुद्दीन के इस संशोधन से कम हो गई है कि इस सिद्धान्त को तभी प्रभाव में लाया जाय जब इस प्रकार के विद्यार्थी पर्याप्त संख्या

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

में उपलब्ध हों। मैं अपने मित्र मि. करीमुद्दीन को यह बताना चाहता हूं कि उनके संशोधन से इस सिद्धान्त को प्रभाव में लाने में जो कठिनाई होगी वह दूर नहीं होती है। पहले इसका निश्चय कौन करेगा कि विद्यार्थियों की पर्याप्त संख्या है या नहीं? मैं एक उदाहरण दूंगा। यदि हम यह मानें कि यह प्रश्न अधिशासी-वर्ग पर छोड़ दिया जायेगा, जैसा कि किया ही जायेगा, और यदि अधिशासी-वर्ग यह नियम निर्धारित करें कि किसी स्कूल में प्राथमिक शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या पर्याप्त तभी समझी जायेगी जब 49 प्रतिशत ऐसे विद्यार्थी उपस्थित हों, तो क्या अधिशासी-वर्ग को इस प्रकार का अधिकार देने से प्रस्तावक महोदय को संतोष होगा? इसके अतिरिक्त यदि आप इस विषय को न्याय्य बना दें, जैसा कि वह मूलाधिकारों में रखने से हो ही जायेगा, क्योंकि कोई भी मूलाधिकार जब तक वह न्याय्य नहीं है, मूलाधिकार ही नहीं है, तो क्या यह उचित होगा कि यह प्रश्न कि किसी स्कूल में विद्यार्थियों की पर्याप्त संख्या है अथवा नहीं, किसी न्यायालय के सम्मुख उपस्थित किया जाये और न्यायालय इस सम्बन्ध में निर्णय करे? यह कठिनाई मेरे विचार से अन्य प्रकार दूर नहीं हो सकती है। आपको 'पर्याप्त' शब्द के निर्वचन का अधिकार या तो अधिशासी-वर्ग को देना होगा या न्यायाधीश-वर्ग को, परन्तु मेरे विचार से अल्पसंख्यक इनमें से किसी उपाय से भी अपने उद्देश्य की पूर्ति आसानी से न कर सकेंगे। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि हमें इससे संतोष कर लेना चाहिये कि यह एक सर्वस्वीकृत सिद्धान्त है और कोई भी प्रान्तीय सरकार अपने बहुत से लोगों के शिक्षा-सम्बन्धी अधिकारों को बिना हानि पहुंचाये हुए इसका तर्कपूर्ण ढंग से शून्यन नहीं कर सकती है। इसलिये मेरा सभा से यह निवेदन है कि यह अनुच्छेद संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया जाये।

*__उपाध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 23 के स्थान में निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'23. Without detriment to the spiritual heritage and the cultural unity of the country, which the State shall recognise, protect and nourish, any section of the citizens residing in the territory of India or any part thereof, claiming to have a distinct language, script and culture shall be free to conserve the same."

(23. देश की आध्यात्मिक परम्परा तथा सांस्कृतिक एकता का उल्लंघन न करते हुए, जिन्हें राज्य स्वीकार करेगा और जिनका रक्षण तथा पोषण करेगा। भारत के राज्य-क्षेत्र में अथवा उसके किसी भाग में निवास करने वाले नागरिकों के किसी वर्ग को, जिसका यह दावा हो कि उसकी विशेष भाषा, लिपि और संस्कृति है, इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह उनका संरक्षण करे।)

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 23 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(1) Minorities in every Unit shall be protected in respect of their language, script and culture, and no laws or regulations may be enacted that may operate oppressively or prejudicially in this respect.' "

[(1) प्रत्येक प्रदेश में भाषा, लिपि और संस्कृति के सम्बन्ध में अल्पसंख्यकों की रक्षा की जायेगी और कोई ऐसे कानून अथवा आनियम न बनाये जायेंगे जिनसे इस सम्बन्ध में उत्पीड़न हो अथवा जिनसे विपरीत प्रभाव पड़े।]

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 23 के खण्ड (1) में 'script and culture' (लिपि और संस्कृति) शब्दों के स्थान में 'script or culture' (लिपि अथवा संस्कृति) शब्द रखे जायें।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 678 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 23 के खण्ड (1) में 'residing in the territory of India or any part thereof' (भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी) शब्दों के स्थान में 'residing in any part of the territory of India' (भारत के राज्य-क्षेत्र के किसी भाग के निवासी) शब्द रखे जायें।"

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 23 के खण्ड (1) में 'conserve' (समारक्षण) शब्द के बाद 'develop' (समुन्नत करने) शब्द रखे जायें।"

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 23 के खण्ड (3) में जहां कहीं 'community' (सम्प्रदाय) शब्द आया है उसे निकाल दिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 23 के खण्ड (2) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(2) No citizen shall be denied admission into any educational institution maintained by the State or receiving aid out of State funds on grounds only of religion, race, caste, language or any of them."

[(2) किसी नागरिक का, राज्य द्वारा संधृत अथवा राज्य-प्रणीवि से सहायता पाने वाले किसी शैक्षिक संस्था में प्रवेश, केवल धर्म, प्रजाति, जाति और भाषा के कारणों से अथवा इनमें से किसी कारण से वर्जित न किया जायेगा।]

और अनुच्छेद 23 के उपखण्ड (क) और (ख) की अनुच्छेद 23-क के रूप में पुनर्गणना की जाये।

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 23 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(a) Linguistic minorities shall have the right to establish, manage and control educational institutions for the promotion of the study and knowledge of their language and literature, as well as for imparting

general education to their children at primary and pre-primary stage through the medium of their own languages.'"

[(क) एक-भाषा-भाषी अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा तथा साहित्य की उन्नति तथा अध्ययन के लिये तथा अपनी भाषाओं के माध्यम द्वारा अपने बच्चों को प्राथमिक तथा पूर्व-प्राथमिक स्तरों पर सामान्य शिक्षा देने के लिये शिक्षा-संस्थाओं को स्थापित करने, उनका प्रबन्ध करने तथा उन पर नियंत्रण रखने का अधिकार होगा।]"

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 23 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के साथ निम्नलिखित परादिक जोड़ दिया जाये:

'Provided that no part of the expenditure in connection with such institutions shall fall upon or be defrayed from the public purse; and provided further that no such institution, nor the education and training given therein shall be recognised, unless it complies with the courses of instruction standards of attainment, methods of education and training, equipment and other conditions laid down in the national system of education.'"

(पर प्रतिबन्ध यह है कि इस प्रकार की संस्थाओं के व्यय के किसी भाग को सार्वजनिक कोष वहन न करेगा और न उससे वह पूरा ही किया जायेगा और यह भी प्रतिबन्ध है कि इस प्रकार की कोई संस्था और उसमें दी जाने वाली शिक्षा तथा प्रशिक्षा को उस समय तक स्वीकार न किया जायेगा जब तक कि वह राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली में निर्धारित शिक्षा के पाठ्यक्रम, शिक्षा के आदर्शों और शिक्षा तथा प्रशिक्षा की प्रणाली, सामग्री तथा अन्य प्रतिबन्धों के अनुरूप न हो)"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्षः** क्या माननीय सदस्य, मि. लारी, काज़ी करीमुद्दीन द्वारा उपस्थित सूची 3 के संशोधन संख्या 53 को स्वीकार करते हैं?

***श्री ज़ैड. एच. लारीः** जी हां, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** क्या वे बेगम ऐज़ाज रसूल के संशोधन को भी स्वीकार करते हैं?

***श्री ज़ैड. एच. लारीः** मैं उसे स्वीकार नहीं करता।

***उपाध्यक्षः** अब मैं सभा के सम्मुख काज़ी करीमुद्दीन के संशोधन संख्या 714 को सूची 3 के संशोधन संख्या 53 द्वारा संशोधित रूप में रखूंगा।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, मुझे यह औचित्य-प्रश्न करना है कि क्या किसी संशोधन के प्रस्तावक के अनुपस्थित रहने पर उनके संशोधन पर मत लिया जा सकता है?

***उपाध्यक्षः** क्या श्री चौधरी निश्चित रूप से जानते हैं कि काज़ी करीमुद्दीन के सभा में अनुपस्थित रहने से उनके संशोधन पर मत लिया ही नहीं जा सकता?

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** जी नहीं, चूंकि मि. लारी ने उसे स्वीकार किया है और वे सभा में उपस्थित हैं तथा उनके संशोधन पर मत लिया जा रहा है।

***उपाध्यक्षः** अब मैं प्रस्ताव पर मत लूंगा।

***पंडित ठाकुरदास भार्गवः** इसके पूर्व कि आप मत लें, मैं एक औचित्य प्रश्न करना चाहता हूं। मेरी तुच्छ सम्मति में इस संशोधन संख्या 714 का विषय न्याय्य नहीं हो सकता क्योंकि हमने प्राथमिक शिक्षा के अधिकार को ही न्याय्य नहीं बनाया है। इसलिये यह संशोधन व्यवस्था के विरुद्ध है। जब प्राथमिक शिक्षा का अधिकार ही न्याय्य नहीं है और वह किसी न्यायालय के सम्मुख जाकर प्रयोग में नहीं लाया जा सकता तो इस आनुषंगिक अधिकार को न्याय्य नहीं बनाया जा सकता और इसलिये इस संशोधन को सभा के सम्मुख नहीं रखा जा सकता। यह व्यवस्था के विरुद्ध है और कोई भी मूलाधिकार इस पर आधृत नहीं किया जा सकता।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): अब इस औचित्य प्रश्न को उठाने का समय नहीं रह गया है।

***उपाध्यक्ष:** मैं भी यही कहने जा रहा था कि अब इस प्रकार की आपत्ति करने का समय नहीं रह गया है।

***पंडित ठाकुरदास भार्गव:** मैंने पहले, जब पंडित कुंजरू बोल रहे थे, तो उस समय भी यह आपत्ति की थी।

***उपाध्यक्ष:** मैं अब इस संशोधन पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 23 के खण्ड (3) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड प्रविष्ट किया जाये:

'(4) Any section of the citizens residing in the territory of India or any part thereof having a distinct language and script shall be entitled to have primary education imparted to its children through the medium of that language and script in case of substantial number of such students being available.' "

[(4) भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी किसी अल्पसंख्यक-वर्ग को, जिसकी विशेष भाषा और लिपि हो, अपने बच्चों को, यदि इस प्रकार के विद्यार्थी पर्याप्त संख्या में हों तो, उस भाषा और लिपि के माध्यम द्वारा प्राथमिक शिक्षा दिलाने का अधिकार होगा।]

*प्रस्ताव गिर गया।*

***मौलाना हसरत मोहानी:** मैं मत-विभाजन की मांग करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** मैं मत-विभाजन की आज्ञा नहीं दे सकता क्योंकि ध्वनियां स्पष्ट और निर्णायक हैं। मैं चाहता हूं कि माननीय सदस्य कोई ऐसी बात न करें जिससे कि सभा का समय नष्ट हो। मुझे खेद है कि मेरी न्यायोचित प्रार्थना स्वीकार नहीं की गई है।

***श्री महबूब अली बेग साहब** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, क्या मैं इस अवसर पर बोल सकता हूं?

***उपाध्यक्ष:** अब उसके लिये समय नहीं रह गया है।

अब बेगम ऐज़ाज़ रसूल के संशोधन पर मत लेने के पहले मैं उसे पढ़ूंगा क्योंकि वह सदस्यों के पास नहीं भेजा गया था। वह इस प्रकार है, मि. लारी द्वारा उपस्थित संशोधन संख्या 714 में 'section of the citizens' (नागरिकों के किसी वर्ग) शब्दों के स्थान में 'minority' (किसी अल्पसंख्यक-वर्ग) शब्द रखे जायें।

"प्रस्ताव यह है कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।"

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधित रूप में अनुच्छेद पर मत लूंगा।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** मुझे खेद है कि मैं कार्यवाही में विघ्न डाल रहा हूं। यदि सभा के कुछ सदस्य यह जानने के लिये कि कितने लोग मि. लारी के संशोधन के पक्ष में हैं और कितने उसके विरोध में हैं; इस प्रस्ताव पर मतविभाजन चाहते हैं तो मेरे विचार से यदि आप इस प्रार्थना को स्वीकार कर लें तो इससे सभा का समय नष्ट न होगा। केवल हाथ उठाने से ही यह पता लग सकता है कि कितने लोग किस पक्ष में है।

***उपाध्यक्ष:** यदि सदस्य पर्याप्त संख्या में यह मांग करें तो यह किया जा सकता है। परन्तु मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि सभा में सद्भाव बनाये रखना अच्छा ही होता है। परन्तु वह इस प्रकार नहीं बना रह सकता। मैं आपसे फिर कहता हूं कि आप मेरे सुझाव पर विचार करें। जहां तक हो सका है मैंने प्रत्येक अल्पसंख्यक-वर्ग को यथासम्भव प्रत्येक सुविधा दी है और वास्तव में इतना समय दिया है कि मैंने कभी बहुसंख्यक-वर्ग को जानबूझ कर अल्पसंख्यक-वर्ग में परिणत कर दिया है। मैं हृदय से यह चाहता हूं कि मैं जो कुछ कह रहा हूं उसे अल्पसंख्यक-वर्ग स्वीकार करें। मैं उनसे प्रार्थना करता हूं कि वे मेरे साथ

इस प्रकार भी सहयोग करें। यदि वे नहीं करना चाहते तो मैं उनकी प्रार्थना स्वीकार करने के लिये तैयार हूं आपका निर्णय क्या है?

***माननीय सदस्यः** जी हां।

***उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधित रूप में इस अनुच्छेद पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 23 संशोधित रूप में, विधान का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*अनुच्छेद 23, संशोधित रूप में, विधान का अंग बना लिया गया।*

***उपाध्यक्षः** सज्जनों, धन्यवाद। अब सभा बृहस्पतिवार, 9 दिसम्बर सन् 1948 ई. के प्रातः दस बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

*इसके पश्चात् सभा बृहस्पतिवार, 9 दिसम्बर सन् 1948 ई. के प्रातः दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।*

Con. 3. VII. 23. 48
350

अंक 7
संख्या 23

बृहस्पतिवार,
9 दिसम्बर
सन् 1948 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी) 1519-1579
[नये अनुच्छेद 23-ए और अनुच्छेदों 25, 25-ए, 23 तथा 27 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

बृहस्पतिवार, 9 दिसम्बर, सन् 1948 ई.

---

*भारतीय विधान परिषद् कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में 10 बजे प्रातः उपाध्यक्ष (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) के सभापतित्व में समवेत् हुई।*

---

## विधान का मसौदा–( जारी )

### नया अनुच्छेद 23-ए

***उपाध्यक्षः** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): आज हम संशोधन संख्या 716 पर विचार से कार्यारम्भ करेंगे। यह प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम में है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं :

"कि 'साम्पत्तिक अधिकार' शीर्षक के अन्तर्गत निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये :

'23-A. All forms of natural wealth, such as land, forests, mines and minerals, waters of rivers, lakes or seas surrounding the coasts of the Union shall belong to the people of India. No private property shall be allowed in any of these forms of the country's wealth; nor shall they be owned, worked, managed or developed except by public enterprise exclusively.' "

(23-ए. सब प्रकार की प्राकृतिक सम्पत्ति, जैसे कि भूमि, जंगल, खानों और खनिज और नदियों, झीलों अथवा संघ के तट के चारों ओर के समुद्रों के जल, भारत की जनता के स्वामित्व में होंगे। देश की इन सम्पत्तियों

---

*इस चिन्ह का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[प्रो के.टी. शाह]

पर किसी का निजी स्वामित्व नहीं होगा; तथा किसी के स्वमित्व में अथवा न किसी के द्वारा प्रबन्धित, संचालित अथवा विकसित होंगे।"

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। हमने अब तक साम्पत्तिक अधिकार सम्बन्धी अनुच्छेद 24 पर विचार नहीं किया है, फिर सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण के विषय में अनुच्छेद 23-ए कैसे पेश हो सकता है? मैं सादर सुझाव रखना चाहता हूं कि, यदि आप प्रोफेसर के.टी. शाह को अनुच्छेद 23-ए पेश करने की अनुमति दें तो, अनुच्छेद 24 पर हमारे विचार कर चुकने के पश्चात् ही वह पेश किया जाना चाहिये।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं बताना चाहता हूं...

(श्री बी. दास बोलने के लिये खड़े हुये।)

***उपाध्यक्ष:** प्रोफेसर शाह को जो कुछ कहना है मैं उसे सुनना चाहता हूं।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** श्री दास को कुछ गलत-फहमी है। इसमें सब वर्तमान निजी सम्पत्तियों के राष्ट्रीयकरण की बात नहीं कही गई है। मैं तो केवल एक सिद्धान्त का उल्लेख कर रहा हूं जिसे कानूनी भाषा में राज्य के सर्वोपरि स्वामित्व का अधिकार कहा जा सकता है। अतएव यह तो केवल इस बात की घोषणा है कि प्राकृतिक सम्पत्ति जनता की होती है, राज्य की होती है। इसका यह आशय नहीं है कि इस समय जो सम्पत्ति गैर-सरकारी कब्ज़े में है उसका राष्ट्रीयकरण होना है। न इससे इस बात की ही सम्भावना नष्ट हो जाती है कि वर्तमान मालिक अथवा भावी मालिक भूमि, वनों आदि पर राज्य के सर्वोपरि स्वामित्व के अधीन, उसके प्रतिनिधि के रूप में अधिकार रख सकेंगे। इसमें मुझे कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती।

***श्री बी. दास:** मेरे विचार में अनुच्छेद 24 में साम्पत्तिक अधिकार की चर्चा है, चाहे वह सम्पत्ति राज्य की हो अथवा किसी व्यक्ति की। इस संशोधन पर तभी वाद-विवाद हो सकता है, जबकि हम अनुच्छेद 24 का विचार करें, और प्रोफेसर शाह अपना संशोधन बाद में पेश कर सकते हैं।

***श्री आर. के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरा ख्याल है कि मेरे माननीय मित्र श्री बी. दास जो कुछ कह रहे हैं वह सर्वथा ठीक है। हम अनुच्छेद 23 पर विचार कर रहे हैं जो कि सांस्कृतिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी अधिकारों के विषय में है—और यदि यह अनुच्छेद पारित हो जाता है...

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य को उन बातों को दुहराने की आवश्यकता नहीं है जो श्री दास पहले ही कह चुके हैं।

***श्री आर. के. सिधवा:** श्रीमान्, मैं आपका ध्यान आकृष्ट करने के लिये ही इस पर ज़ोर दे रहा हूं।

***सैयद मोहम्मद सादुल्ला** (आसाम : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, क्या मैं आपका ध्यान प्रस्ताव की ही ओर आकृष्ट कर सकता हूं जो कि संशोधनों की सूचना के पृष्ठ 75 पर है? प्रोफेसर शाह का संशोधन इस प्रकार है–"कि 'साम्पत्तिक अधिकार' शीर्षक के अन्तर्गत निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये" और 'साम्पत्तिक अधिकार' अनुच्छेद 24 का शीर्षक है, 23 का नहीं।

***उपाध्यक्ष:** मैं व्यवस्था देता हूं कि प्रोफेसर शाह को अपना संशोधन 24-ए के अन्तर्गत रखने दिया जाये। जहां तक संशोधन संख्या 717 और 718 का सम्बन्ध है, वे निदेशक सिद्धान्तों के विषय में परिषद् के पूर्ववर्ती निर्णयों में आ जाते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): जो अधिकार न्याय्य नहीं हैं वे उनमें आ जाते हैं किन्तु मूलाधिकारों के विषय में जो अधिकार हैं वे उनमें ज़रा भी नहीं आते। उस समय यही तय हुआ था कि मूलाधिकारों के साथ इन पर विचार किया जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** क्या आप यह कहते हैं कि यह दोनों संशोधन निदेशक सिद्धान्तों के भी अन्तर्गत आने चाहियें तथा यहां भी? यह सम्भव नहीं है। मैं इसे अनियमित ठहराता हूं।

---

## अनुच्छेद 24

***श्री टी. टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): परिषद् के बहुत से माननीय सदस्यों की इच्छा है कि इस अनुच्छेद पर अभी विचार नहीं किया जाना चाहिये,

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

वरन् बाद में किया जाना चाहिये, क्योंकि हम वास्तव में इसमें बहुत से संशोधनों पर विचार कर रहे हैं, जिससे कि मध्यवर्ती उपाय निकल आये, और इस विषय में डॉ. अम्बेडकर मेरी बात का समर्थन करेंगे।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): हां, श्रीमान्, मेरी प्रार्थना है कि अनुच्छेद संख्या 24 को स्थगित कर दिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** क्या यही परिषद् की इच्छा है?

***माननीय सदस्यगण:** हां।

***श्री ज़ैड. एच. लारी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): तो फिर, श्रीमान्, अनुच्छेद 15 के विषय में क्या स्थिति है?

***उपाध्यक्ष:** उस अनुच्छेद पर विचार अभी स्थगित रखा गया है।

(श्री कामत से) आप अनुच्छेद 24 के सैनिक शिक्षा-सम्बन्धी संशोधन के विषय में कुछ कहना चाहते हैं?

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): ऐसे संशोधन भी हैं जो कि 'साम्पत्तिक अधिकार' के सम्बन्ध में नहीं है, और उन्हें अनुच्छेद 24 के पश्चात् रखने की सूचना दी गई है। उनके विषय में क्या होगा?

***उपाध्यक्ष:** उन पर अनुच्छेद 24 के पश्चात् विचार किया जायेगा।

---

## अनुच्छेद 25

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) में लिखा है कि "इस संविधान में अन्यथा प्रावहित अवस्था को छोड़ कर इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकार स्थगित न किये जायेंगे।" अब, मैं अपना संशोधन पेश करता हूं:

"कि जब तक प्रारूपित विधान के ग्यारहवें भाग पर विचार न हो, तब तक के लिये अनुच्छेद 25 पर विचार स्थगित कर दिया जाये।"

अनुच्छेद 280 में लिखा है कि:

"जहां सद्यस्कृत्यस्थिति की उद्घोषणा प्रवर्तन में हैं, वहां प्रधान, आदेश द्वारा घोषणा कर सकेगा कि इस संविधान के अनुच्छेद 25 के द्वारा प्रत्याभूत अधिकार ऐसे आदेश में उल्लिखित ऐसी अवधि के लिये निलम्बित रहेंगे, जो उस उद्घोषणा के प्रवतनशून्य होने के पश्चात् छः मास की अवधि से परे विस्तृत न हो सकेगी।"

यदि आज अनुच्छेद 25 पारित हो जाता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि हम अनुच्छेद 280 के प्रावधानों को मानते हैं, क्योंकि अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) में उल्लिखित है कि "इस संविधान में अन्यथा प्रावहित अवस्था को छोड़ कर इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत-अधिकार स्थगित न किये जायेंगे।" हमें अनुच्छेद 280 के पारित होने पर अत्यन्त गम्भीर आपत्ति है। अनुच्छेद 275 से 280 में जो सद्यस्कृत्यस्थिति-सम्बन्धी प्रावधान हैं वे असाधारण हैं तथा उनमें से कोई तो संघ-व्यवस्था के मूल सिद्धान्तों के ही विपरीत हैं तथा संसार के किसी संविधान में इनका कोई उदाहरण नहीं है और 275 से 280वें अनुच्छेदों पर अनेक संशोधन हैं। अतएव इस अनुच्छेद को मानने का अर्थ 275 से 280वें अनुच्छेदों को मानना हो गया। इसके अतिरिक्त इस अनुच्छेद में कहा गया है कि "इस संविधान में अन्यथा प्रावहित अवस्था को छोड़ कर"। जब तक 275 से 280वें अनुच्छेदों पर विचार न हो जाये, इस अनुच्छेद पर विचार किया ही नहीं जा सकता। अतएव मेरा निवेदन है कि जब तक 275 से 280वें अनुच्छेद पारित न हो जायें, तब तक हम अनुच्छेद 25 पर विचार करने के लिये अक्षम हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मेरे विचार में वह बात नहीं है कि चूंकि यह अनुच्छेद दूसरे अनुच्छेदों के प्रावधानों के अधीन है, जिनकी कि मेरे माननीय मित्र मि. करीमुद्दीन ने चर्चा की है, इस कारण हमारे लिये इस अनुच्छेद पर अभी विचार करना सम्भव नहीं है, क्योंकि आप देखेंगे कि यदि हम यह मान लें कि हम अनुच्छेद 285 में अथवा इससे सम्बन्धित अन्य अनुच्छेदों में परिवर्तन कर ही देते हैं तो हम अनुच्छेद 25 में भी तदनुसार परिवर्तन कर सकते हैं। इससे कोई रुकावट नहीं आयेगी। अतएव हमारे लिये इसी समय अनुच्छेद 25 पर विचार करना नितांत सम्भव है और बाद में इसमें कोई परिवर्तन करने में इससे कोई बाधा नहीं होगी। मान लीजिये बाद के अनुच्छेदों में कोई परिवर्तन किये जायें।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन:** तो फिर इसे स्थगित ही क्यों न कर दिया जाये?

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** नहीं।

***उपाध्यक्ष:** मैं इस संशोधन पर मत लेता हूं, क्योंकि यदि यह पारित हो जाता है तो सारे संशोधन पर विचार स्थगित हो जायेगा।

**उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि जब तक प्रारूपित विधान के ग्यारहवें भाग पर विचार न हो, तब तक के लिये अनुच्छेद 25 पर विचार स्थगित कर दिया जाये।"

*प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 782 की अनुमति नहीं दी जाती। अब आता है संशोधन नं. 783 जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम में है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। यह संशोधन अस्पष्ट है। इसका कुछ विशेष अर्थ नहीं निकलता।

***उपाध्यक्ष:** मि. नज़ीरुद्दीन अहमद को जो कुछ कहना है, वह हम सुन लें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (1) के स्थान पर निम्न खण्ड रखा जाये:

'(1) Every person shall have the right by appropriate proceedings to enforce the rights conferred by this Part."

[(1) प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार होगा कि वह उचित कार्यवाही द्वारा इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को क्रियान्वित कराये।]"

श्रीमान्, श्री सन्तानम्, का कहना है कि मेरा संशोधन अस्पष्ट है। मेरा निवेदन है कि यह अस्पष्ट नहीं है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** उचित कार्यवाही क्या की जायेगी? न्याय-सम्बन्धी, प्रशासन-सम्बन्धी अथवा अधिशासी?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** न्यायालय में कार्यवाही।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** 'न्यायालय' कहां है?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): संशोधन में न कार्य-प्रणाली की ही चर्चा है और न अदालत की।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** शायद कुछ मुद्रण की त्रुटि हो, मैं नहीं कह सकता। यदि मुद्रण की कोई त्रुटि नहीं है, तो इस पर नि:संदेह यह आलोचना की जा सकती है कि यह अस्पष्ट है। मेरे दिमाग में तो केवल यही बात थी कि उचित कार्यवाही द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में जाने के अधिकार की प्रत्याभूति होनी चाहिये। मैं चाहता था कि लोग अन्य न्यायालयों में भी जा सकें। यदि यहां मूलाधिकार स्वीकार किया जाता है और यदि गरीब आदमी को सर्वोच्च न्यायालय में जाने के लिये बाध्य किया जाता है...

***माननीय डॉ. बी.आर अम्बेडकर:** उपखण्ड (3) को तो देखिये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** उस उपखण्ड द्वारा कुछ अन्य निर्देशित न्यायालयों को इस विषय का निर्णय करने का अधिकार दिया गया है; किन्तु मैं इसे और भी अधिक व्यापक बनाना चाहता था, कि किसी भी न्यायालय में दावा करके मूलाधिकारों पर अमल कराया जा सके। वास्तव में लोगों के लिये सब न्यायालय खुले होने चाहियें। यदि किसी मूलाधिकार को भंग किया जाये तथा जिसके अधिकार को भंग किया जाये वह निर्धन है, तो उसे सर्वोच्च न्यायालय भेजना अथवा किसी ऐसे न्यायालय को भेजना जो इस विषय में उचितरूपेण अधिकार-सम्पन्न हो, अनुचित होगा, क्योंकि वह भी कोई बड़ा न्यायालय ही होगा। मैं चाहता हूं कि सब न्यायालयों को मूलाधिकारों अथवा उनको तोड़ने के विषय में निर्णय करने का अधिकार होना चाहिये, और यह अधिकार सब न्यायालयों को मिलना चाहिये—चाहे वे आपराधिक हों अथवा व्यावहारिक। यदि किसी आपराधिक अथवा व्यावहारिक न्यायालय में किसी छोटे मुकद्दमें में सांविधानिक अधिकार का कोई कठिन प्रश्न उठ खड़ा हो तो उस न्यायालय को अधिकार होना चाहिये कि उस पर तत्काल निर्णय कर दे। इसके स्थान में इस खण्ड (1) के द्वारा लोगों को सर्वोच्च न्यायालय अथवा इस विषय में उचितरूपेण अधिकार-सम्पन्न अन्य किसी चुने हुये न्यायालय में जाकर दावा करना होगा।

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

मैं पूरी तरह मानता हूं कि इस संशोधन की भाषा पर निस्संदेह यह आलोचना हो सकती है कि यह कुछ-कुछ अस्पष्ट है; किन्तु मैं तो सिद्धान्त का सुझाव रख रहा हूं। यदि सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाये, तो तदनुसार संशोधन में परिवर्तन किया जा सकता। है। यह बात मेरे दिमाग में है; शायद जल्दी में मैं गलती कर गया; 'किसी न्यायालय में उचित कार्यवाही द्वारा' ऐसा होना चाहिये। वास्तव में संशोधन के असली शब्दों का अधिक महत्त्व नहीं है।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर एक संशोधन है। यह संख्या 43 का है और श्री वी.एस. सरवटे के नाम पर है।

***श्री वी. एस. सरवटे** (संयुक्त राज्य ग्वालियर-इंदौर-मालवा मध्यभारत): श्रीमान्, जब डॉक्टर अम्बेडकर अपना संशोधन रख चुकेंगे तब मैं अपना संशोधन पेश करूंगा।

***उपाध्यक्षः** आपका संशोधन तो संशोधन नं. 783 के सम्बन्ध में है?

**श्री वी.एस. सरवटेः** और विकल्प में संशोधन नं. 794 पर भी है।

**उपाध्यक्षः** जब हम संशोधन संख्या 794 पर आ जायें तब आप इसे पेश करना चाहते हैं। क्या आपकी यही इच्छा है?

***श्री वी.एस. सरवटेः** हां, श्रीमान्।

(संशोधन संख्या 784 पेश नहीं किया गया।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (1) में 'सर्वोच्च न्यायालय' इन शब्दों के स्थान पर 'सर्वोच्च न्यायालय अथवा अन्य न्यायालय जिसे खण्ड (3) के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों के प्रयोग का अधिकार दिया गया हो' ये शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान्, हमने पहले ही खण्ड (3) में सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त अन्य न्यायालयों को इन अधिकारों के प्रयोग का प्राधिकार प्रावहित करने का प्रयत्न किया है। यह खण्ड (3) के फलस्वरूप ही है।

(संशोधन सं. 786 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 787, 788 और 793 का एक-सा ही आशय है और उन पर एक साथ विचार किया जायेगा। संशोधन संख्या 788 सर्वाधिक व्यापक दिखाई देता है।

(संशोधन संख्या 788 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** तत्पश्चात् हम संशोधन संख्या 787 को ले सकते हैं जो श्री कामत के नाम पर है।

***श्री एच. वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 787 को उस रूप में पेश करता हूं जिस रूप में कि वह चौथी सूची (तीसरे सप्ताह) के संशोधन संख्या 64 द्वारा संशोधित हुआ है। मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (2) के स्थान पर, निम्न नया खण्ड रख दिया जाये:

'(2) The Supreme Court shall have power to issue such directions or orders for writs as it may consider necessary or appropriate for the enforcement of any of the rights conferred by this part.' "

[(2) सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे निदेश अथवा आदेश अथवा लेख निकालने की शक्ति होगी जो कि वह इस भाग में प्रदत्त अधिकारों में से किसी की पूर्ति कराने के लिये आवश्यक अथवा उचित समझे।]

आरम्भ में ही मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैं केवल एक साधारण ज्ञान का मनुष्य हूं और कोई पेशेवर वकील अथवा कानूनी या सांविधानिक विशेषज्ञ नहीं हूं जैसे कि मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर है; किन्तु मैं थोड़ा-सा कानून जानता हूं यद्यपि बहुत अधिक नहीं जानता, और मुझे कानून का जो थोड़ा-सा ज्ञान है उसी के आधार पर मैं कुछ कहूंगा। अनुच्छेद 25 के इस खण्ड का सम्बन्ध इस बात से है कि सर्वोच्च न्यायालय को भाग 3 में उल्लिखित मूलाधिकारों की पूर्ति कराने के लिये आदेश निकालने का अधिकार है। मेरे विचार में जहां तक सर्वोच्च न्यायालय का सम्बन्ध है यह निश्चित करना आवश्यक नहीं है कि उसे क्या-क्या लेख विशेष निकालने चाहियें। श्रीमान्, अन्ततः यह हो सकता है कि

[श्री एच.वी. कामत]

कानूनी तथा सांविधानिक उपक्रम के विकास के फलस्वरूप अन्य प्रकार के लेख चालू हो जायें जिनका कि इसमें उल्लेख नहीं किया गया है, और जब भी एक खास मुकद्दमा सर्वोच्च न्यायालय के सामने आये, तब यह हो सकता है कि न्यायालय उसके सब पहलुओं पर विचार करके कोई लेख निकाले, जो इनमें से कोई हो अन्यथा नया बनाया गया है। मेरे विचार में यह 'प्रसंग से कानून बनाने का, अत्यन्त दु:खद उदाहरण है। जब हम सर्वोच्च न्यायालय के विषय में व्यवस्था कर रहे हैं जिसमें कि प्रख्यात न्यायाधीश तथा विधान-वेत्ता होंगे, तब यह उल्लेख करना बुद्धिमानी अथवा वांछनीय नहीं होगा कि सर्वोच्च न्यायालय को किसी मामले में कौन-से लेख निकालने चाहियें। अतएव सब बातों पर विचार करने के पश्चात्, मेरा ख्याल है कि जहां तक संविधान का सम्बन्ध है, हमें केवल इतना ही कहना चाहिये कि सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे आदेश, निदेश अथवा लेख निकालने चाहिये जैसे कि न्यायालय किसी विशेष मामले में आवश्यक अथवा उचित समझे। अतएव, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि खण्ड (2) के स्थान पर निम्न खण्ड रख दिया जाये:

'सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे निदेश अथवा आदेश अथवा लेख निकालने की शक्ति होगी जो कि वह इस भाग में प्रदत्त अधिकारों में से किसी की पूर्ति कराने के लिये आवश्यक अथवा उचित समझे।' "

मुझे आशा है कि डॉक्टर अम्बेडकर मुझे बतायेंगे कि वे यहां इन विशेष लेखों का उल्लेख करना क्यों आवश्यक समझते हैं, वे यह बात सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयार्थ ही क्यों नहीं छोड़ देना चाहते कि इसे किसी मुकद्दमें विशेष में कौन-से आदेश, निदेश अथवा लेख निकालने चाहियें। मुझे आशा है कि वह केवल प्रतिष्ठा अथवा ऐसे किसी विचार पर ही नहीं अड़े रहेंगे, बल्कि कोई संतोषजनक तथा वैध कारण बतायेंगे कि हमें इस अनुच्छेद के इस खण्ड में इन लेखों के उल्लेख करने पर क्यों अड़ना चाहिये।

(संशोधन संख्या 788 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** संख्या 789 तथा 790 सदृश हैं। मैं 790 के पेश करने की अनुमति देता हूं।

(संशोधन संख्या 790 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं समझता हूं कि मि. एम.ए. बेग सभा में नहीं हैं। क्या आप मुझे 789 के पेश करने की अनुमति देंगे। मैं इस संशोधन को स्वीकार कर लूंगा। इसे नियमित रूप से पेश करना होगा।

***मि. नज़ीरुद्दीन अहमद:** यदि परिषद् को स्वीकार्य हो तो मैं इस संशोधन को पेश करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** क्या परिषद् मि. नज़ीरुद्दीन अहमद को इसे पेश करने की अनुमति देती है?

***माननीय सदस्यगण:** हां।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (2) में अंग्रेजी के 'in the nature of the writs of' इन शब्दों के स्थान पर 'or writs, including writs in the nature of' ये शब्द रख दिये जायें।"†

श्रीमान्, इस परिषद् में मेरे जीवन का यह एक महत्त्वपूर्ण दिवस है कि यह एक ही संशोधन है जोकि स्वीकृत होने वाला है। यह संशोधन मेरा सौतेला पुत्र है और शायद इसीलिये माननीय सदस्य इसे स्वीकार करने जा रहे हैं। इस पर व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

***श्री एच.वी. कामत:** एक औचित्य प्रश्न है। क्या संशोधन के पेश होते ही मेरे मित्र के लिये यह कहना ठीक है कि यह स्वीकृत होने जा रहा है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैंने अफवाह सुनी है कि यह स्वीकृत होने जा रहा है।

---

†(हिन्दी में उपर्युक्त संशोधन के पश्चात् खंड इस प्रकार बन जायेगा:

"सर्वोच्च न्यायालय को इस भाग में प्रदत्त अधिकारों में से किसी की भी पूर्ति कराने के लिए निदेश अथवा आदेश अथवा लेख, जिनमें वन्द्युपस्थापन, परमादेश, प्रतिबंध, अधिकार पृच्छालेख, उत्प्रेषण लेख के प्रकार के लेख भी सम्मिलित हैं, जो भी समुचित हो, निकालने की शक्ति होगी।")

***उपाध्यक्षः** संख्या 791 तथा 792 की अनुमति नहीं दी जाती, क्योंकि वे शाब्दिक संशोधन हैं

(संशोधन संख्या 793 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संख्या 794, 795 तथा 799 सदृश हैं तथा उन पर साथ ही विचार होगा। 794 के पेश करने की अनुमति दी जाती है।

***माननीय डॉक्टर बी. आर. अम्बेडकरः** आपकी अनुमति से मैं कुछ शब्दों में जोकि गलती से मसौदे में आ गये हैं, एक-दो सुधार करूंगा। मेरा संशोधन है:-

"कि अनुच्छेद 25 के वर्तमान उपखण्ड (3) के स्थान पर निम्न खण्ड रख दिया जाये :

श्रीमान्, उन सुधारों के पश्चात् मेरा संशोधन इस प्रकार बन जायेगा:

'Without prejudice to the powers conferred on the Supreme Court by clauses (1) and (2) of this article, Parliament may by law empower any other Court to exercise within the local limits of its jurisdiction all or any of the powers exercisable by the Supreme Court under clause (2) of this article.' "

[इस अनुच्छेद के खण्ड (1) तथा (2) द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों पर बिना किसी विपरीत प्रभाव के, संसद् विधि द्वारा, किसी दूसरे न्यायालय को उसके अधिकार-क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर इस अनुच्छेद के खण्ड (2) के अधीन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य सब अथवा किसी शक्ति का प्रयोग करने की शक्ति दे सकेगी।] "

खण्ड (1) तथा (2) की चर्चा करने का कारण यह है कि उनका सम्बन्ध सर्वोच्च न्यायालय से है।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर दो संशोधन हैं। एक संख्या 44 है और दूसरा प्रथम सूची (तीसरा सप्ताह) का 45वां है और श्री सरवटे का संशोधन संख्या 43 है। श्री सरवटे!

**श्री वी.एस. सरवटेः** श्रीमान्, मैं जो संशोधन रख रहा हूं वह इस प्रकार है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 794 के अन्त में, निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'*Explanation.*—The Supreme Court, in deciding matters arising out of this article, shall have the power to go into questions of fact.'

(व्याख्या—इस अनुच्छेद से उत्पन्न होने वाले मामलों का निर्णय करने में सर्वोच्च न्यायालय को तथ्य-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने की शक्ति होगी।)

श्रीमान्, हमने मूलाधिकारों के इस अध्याय में जो योजना स्वीकार की है उसमें सर्वप्रथम तो यह बात है कि अधिकारों की मूल बातें रख दी गई हैं, तत्पश्चात् अनुवर्त्ती खण्डों में विधान-मण्डलों को कुछ विशेष अवस्थाओं में, जो कि उन खण्डों में उल्लिखित हैं, उन अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार दिया गया है। वर्तमान अनुच्छेद में आरक्षण रखा गया है जिससे कि विधान-मण्डल अपनी शक्तियों से बाहर न चला जाये तथा स्थिति की आवश्यकता से अधिक कानून न बना दे। अब यह तर्क करना सम्भव है कि न्यायालय केवल यही देख सकता है कि विधान-मण्डल ने उस विषय में कोई अधिनियम पारित किया है या नहीं, और बारीकियों पर विचार नहीं कर सकता। अथवा यह तर्क किया जा सकता है कि न्यायालय को बारीकियों पर विचार करने की शक्ति नहीं है तथा इस प्रश्न पर निर्णय करने की शक्ति नहीं है कि किसी विशेष मामले को ध्यान में रखते हुये, उन कानून विशेष का बनाना अपेक्षित अथवा आवश्यक अथवा न्यायोचित था या नहीं। ऐसी विशेष अवस्था के लिये प्रावधान करना आवश्यक है क्योंकि अनुच्छेद 13 द्वारा विधान-मण्डल को 'किसी विधि' के बनाने की शक्ति दे दी गई है। ये शब्द उन शब्दों से अधिक विस्तृत हैं, यदि यह कहा जाता कि विधान-मण्डल के अमुक-अमुक मामलों में दण्ड-व्यवस्था करने की शक्ति है। यहां 'किसी विधि' इन शब्दों का प्रयोग किया गया है जो दण्ड की व्यवस्था करने की शक्ति प्रदान करने से अधिक विस्तृत शब्दावली है। अत: प्रत्येक मामले में न्यायालय के लिये यह देखना आवश्यक है कि कोई विशेष कानून स्थिति की आवश्यकताओं के ठीक अनुसार है या नहीं, वह आवश्यकता से अधिक तो नहीं है। विधान-मण्डल भयभीत होकर ऐसा कानून बना सकता है जबकि उस कानून

[श्री वी.एस. सरवटे]

की आवश्यकता ही न हो। अतएव मैंने यह व्याख्या रखी है। व्याख्या की भाषा से ही पता लग जायेगा, कि इसके द्वारा मूल खण्ड में कुछ घटाया-बढ़ाया नहीं गया है, किन्तु कुछ व्याख्या कर दी गई है। यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि खण्ड के वर्तमान रूप में ही यह आशय सन्निहित है। किन्तु जैसा कि मैं आरम्भ में ही कह चुका हूं, इस विषय में कुछ सन्देह हो सकता है और ऐसे संदेहों को दूर करने के लिये और इसे अधिक सुनिश्चित करने तथा संशय के क्षेत्र से अधिक बाहर निकालने के लिये, मैंने यह व्याख्या जोड़ देने का प्रयत्न किया है। मैं इसे परिषद् तथा प्रस्तावक द्वारा स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** तत्पश्चात् संशोधन संख्या 44 तथा संख्या 45 आते हैं जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम में हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं संख्या 45 को पेश नहीं करना चाहता, क्योंकि इस पर कुछ आपत्ति हो सकती है। मैं केवल संख्या 44 पेश करूंगा।

श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 794 में, अनुच्छेद 25 के प्रस्तावित खण्ड (3) में से 'इस अनुच्छेद के खण्ड (2) द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों पर बिना किसी विपरीत प्रभाव के' ये शब्द निकाल दिये जायें।"

श्रीमान्, मूल खण्ड में किसी दूसरे न्यायालय को ऐसी शक्तियां प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है, जो कि खण्ड (1) के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय के पास हैं। जैसा कि हम इस खण्ड में पहले ही कह चुके हैं, संसद् विधि द्वारा किसी अन्य न्यायालय को शक्ति प्रदान कर सकती है। 'किसी दूसरे न्यायालय को' इन शब्दों से ही पता चलता है कि यह दूसरे न्यायालय को प्रदत्त शक्ति पूरक शक्ति है, और इससे सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा। सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों की तो बहुत सुनिश्चित परिभाषा की गई है कि वह अन्य समस्त न्यायालयों पर सर्वथा सर्वोच्च है। अत: 'सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों पर बिना किसी विपरीत प्रभाव के' ये शब्द अनावश्यक हैं। वास्तव में संशय की कोई सम्भावना ही नहीं है कि सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति सर्वोपरि है। इन परिस्थितियों में ये शब्द मुझे अनावश्यक प्रतीत होते हैं,

अतः उन्हें हटा देना चाहिये। वास्तव में, इस विषय में सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियां बहुत सुनिश्चित हैं। 'सर्वोच्च न्यायालय' इस शब्द से ही प्रतीत होता है कि यह सब विषयों में सर्वोच्च है। यदि हम इन शब्दों को रखते हैं तो इसका आशय यह हो जाता है कि सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार सर्वोच्च नहीं हैं। इससे वास्तव में कुछ सन्देह हो जाता है कि शायद सर्वोच्च न्यायालय कानूनी मामलों में सर्वोच्च नहीं हैं। यही कारण है कि मैं इन शब्दों को निकाल देने के लिये कह रहा हूं।

(संशोधन संख्या 795 तथा 799 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 796 के पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती, क्योंकि यह केवल रूप-सम्बन्धी संशोधन है।

(संशोधन संख्या 797, 798, 800 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 801 जो कि श्री कामत तथा मि. तजम्मुल हुसैन दोनों के संयुक्त नामों से है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं मि. तजम्मुल हुसैन को इसको प्रस्तावित करने के लिये अपना अधिकार छोड़ देता हूं।

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) को हटा दिया जाये।"

श्रीमान्, अनुच्छेद 9 के अधीन धर्म, जाति आदि के आधार पर राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध विभेद नहीं करेगा। इसका अर्थ यह है कि नागरिक को किसी दुकान, भोजनालय, होटल आदि में प्रवेश करने की अनुमति है। उसे कुओं, तालाबों, सड़कों और अन्य चीज़ों के प्रयोग करने की अनुमति है। अनुच्छेद 13 के अन्तर्गत नागरिक को, जैसे वह चाहे, अपना व्यवसाय करने तथा व्यापार करने की अनुमति है। अनुच्छेद 25 के अन्तर्गत, नागरिक अपने उपरोक्त अधिकारों को पूरा कराने के उद्देश्य से सर्वोच्च न्यायालय में जा सकता है, और सर्वोच्च न्यायालय वन्द्युपस्थापन, परमादेश आदि लेख निकाल सकता है। किन्तु, श्रीमान्, अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) में उपरोक्त अधिकारों के स्थगन की चर्चा है। अनुच्छेद 280 में लिखा है कि जब सद्यस्कृत्यस्थिति की घोषणा प्रवर्तन में हो, तब नागरिकों के प्रत्याभूत मूलाधिकारों को प्रधान निलम्बित कर सकता है। मेरा निवेदन

[श्री तजम्मुल हुसैन]

है कि इसकी अनुमति नहीं होनी चाहिये। यदि प्रधान को विधान में ऐसा अधिकार दिया जायेगा तो अनुच्छेद 9 में उल्लिखित समता के अधिकार का उस समय के लिये अस्तित्व नहीं रहेगा, और नागरिकों को कुओं, तालाबों तथा सड़कों आदि का प्रयोग नहीं करने दिया जायेगा। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को भी निलम्बित करना होगा, अपने व्यवसाय के करने का अधिकार भी जाता रहेगा, अनुच्छेद 15 के अधीन प्रत्याभूत जीवन की सुरक्षा भी नहीं रहेगी, विश्वास-स्वातन्त्र्य भी नहीं रहेगा, सर्वोच्च न्यायालय में जाने का अधिकार भी नहीं रहेगा। मेरे विचार में प्रधान को यह सब अधिकार देना अत्यन्त भयावह है। आखिर हम क्या हैं? हम जनता के प्रतिनिधि ही तो हैं—हम जनता हैं। जब हम विधान बना चुकेंगे तो हम चले जायेंगे और अन्य लोग आ जायेंगे। वे भी जनता के प्रतिनिधि होंगे। वे भी वही होंगे जो हम हैं—हममें कोई अन्तर नहीं हो सकता। क्या हमें उन लोगों पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार है? क्या हम उनसे यह कह सकते हैं कि 'आप यह काम नहीं करेंगे, आप वह काम करेंगे'? यह स्वतंत्र देश है। यदि लोग क्रान्ति चाहते हैं तो उन्हें क्रान्ति करने दीजिये। हमें क्या अधिकार है कि उसे रोकें? अतः मैं कहता हूं कि किसी व्यक्ति को—चाहे वह कितना ही बड़ा हो,—गणतन्त्र के प्रधान को अथवा किसी और को ऐसी शक्ति नहीं दी जानी चाहिये कि वह इस विधान द्वारा प्रत्याभूत किसी मूलाधिकार को निलम्बित कर सके। इन शब्दों के साथ मैं यह संशोधन परिषद् में सविनय पेश करता हूं।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीनः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) में 'इस संविधान में अन्यथा प्रावहित अवस्था' इन शब्दों के स्थान पर 'विद्रोह अथवा आक्रमण की अवस्था तथा जब इस संविधान के भाग 9 के अधीन सद्यस्कृत्यस्थिति घोषित की जाये उस अवस्था' ये शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान्, मैं मि. तजम्मुल हुसैन द्वारा प्रस्तावित संशोधन से सहमत नहीं हो सकता, जिसमें कहा गया है कि खण्ड (4) को हटा देना चाहिये। देश में ऐसे अवसर आते हैं जब कि आक्रमण हो गया हो अथवा आन्तरिक विद्रोह हो जाये, पर कोई प्रधान इतना मूर्ख नहीं होगा कि ऐसे कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाये, जैसे कि मनुष्य-मनुष्य में विभेद का अथवा अस्पृश्यता का प्रश्न है, जिनका कि आक्रमण अथवा विद्रोह से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतएव देश में शान्ति और व्यवस्था बनाये

रखने के लिये 13वें और 25वें अनुच्छेदों के कुछ प्रावधानों को निलम्बित करना अपेक्षित होगा, किन्तु यह कहना कि ज्यों ही आक्रमण अथवा युद्ध होगा, त्यों ही 13वें तथा 25वें अनुच्छेदों के अन्तर्गत प्रत्येक खण्ड तथा उपखण्ड को स्थगित कर दिया जायेगा, मेरे विचार में ऐसी बात है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। मेरे संशोधन में लिखा है कि इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकारों को तभी स्थगित किया जायेगा जब कि आक्रमण हो, क्योंकि 275 से 280वें अनुच्छेदों में कहा गया है कि जब युद्ध की तात्कालिक आशंका हो तब भी, 13वें और 25वें अनुच्छेदों को स्थगित किया जा सकता है, केवल सद्यस्कृत्यस्थिति के समय के लिये ही नहीं, अपितु उस समय के पश्चात् भी छः मास तक। अनुच्छेद 280 में कहा गया है कि "जहां सद्यस्कृत्यस्थिति की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो, वहां प्रधान आदेश द्वारा घोषणा कर सकेगा कि इस संविधान के अनुच्छेद 25 के द्वारा प्रत्याभूत अधिकार, ऐसे आदेश में उल्लिखित ऐसी अवधि के लिये निलम्बित रहेंगे, जो उस उद्घोषणा के प्रवर्तनशून्य होने के पश्चात् छः मास की अवधि से परे विस्तृत न हो सकेगी।" मैं सच्चे हृदय से यह युक्ति पेश कर रहा था कि अनुच्छेद 25 के प्रावधानों को स्थगित रखा जाये तथा 275 से 280 तक के अनुच्छेद के प्रावधानों को पारित करने के पश्चात् उन पर विचार किया जाये। अब हम अनुच्छेदों 25 तथा 13 के प्रावधानों को निलम्बित करने के प्रश्न पर विचार कर रहे हैं जबकि हम यह नहीं जानते कि 275 से 280वें अनुच्छेदों के प्रावधानों के अन्तर्गत क्या स्थिति उत्पन्न होगी। इन अधिकारों को उन प्रावधानों के आधार पर स्थगित किया जायेगा, जिन्हें अभी बनाना है और जिन्हें परिषद् ने अभी तक स्वीकार नहीं किया है। मेरा ख्याल था कि डॉक्टर अम्बेडकर इस सुझाव का विरोध करेंगे। किन्तु मैं परिषद् के निर्णय को शिरोधार्य करता हूं। अब हमारे सामने यह स्थिति है कि हम उन विचारों और प्रावधानों के हेतु खण्ड (4) को स्वीकार करने जा रहे हैं जो अभी तक पारित नहीं हुये हैं, और शायद परिषद् उन्हें रद्द कर दे। इसके उत्तर में कहा गया है कि आवश्यक परिवर्तन कर दिये जायेंगे। अस्तु, मैंने आवश्यक परिवर्तन कर दिये हैं और अब यह परिषद् का काम है कि उन्हें स्वीकार करे अथवा ठुकरा दे। और वे ये हैं कि विद्रोह अथवा आक्रमण की अवस्था तथा जब इस संविधान के भाग 9 के अधीन—अर्थात् 275 से 280वें अनुच्छेदों के अधीन—सद्यस्कृत्यस्थिति की घोषणा की जाये उस अवस्था में इन अधिकारों को निलम्बित किया जा सकता है। मेरा निवेदन है कि जब तक सद्यस्कृत्यस्थिति की घोषणा न हो और जब तक वास्तव में आक्रमण अथवा

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

आंतरिक विद्रोह न हो तब तक 13 से 25वें अनुच्छेदों के अधीन प्रदत्त अधिकारों को निलम्बित नहीं करना चाहिये। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि प्रान्त में ऐसे दल को शक्ति प्राप्त हो जाती है जोकि केन्द्र से सत्तारूढ़ दल के विरुद्ध है। प्रधान तत्काल यह सोच कर कि प्रान्त में आन्तरिक गड़बड़ है, सद्यस्कृत्यस्थिति के नियम के अनुसार विधान के उस भाग को निलम्बित कर सकता है। परिणाम यह होगा कि अनुच्छेद 13 के अधीन नागरिकों के सब अधिकार निलम्बित हो जायेंगे। अतएव मैंने अपने संशोधन में यह दो शर्तें रखी हैं कि आक्रमण तथा विद्रोह की अवस्थाओं में यह अधिकार निलम्बित किये जाने चाहियें। मैं ऐसा नहीं कहता कि इन अधिकारों को कभी स्थगित करना ही नहीं चाहिये, यद्यपि इंग्लिस्तान एवं अमरीका में ऐसे अधिकारों को निलम्बित करने का ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। किन्तु हमारा देश परिवर्तन तथा संकट के काल से गुज़र रहा है; और यदि ऐसे समय में इन अधिकारों को स्थगित नहीं किया जायेगा तो देश में बड़ी उथल-पुथल मच जायेगी। अतएव मैं अनुरोध करता हूं कि मैंने जो संशोधन पेश किया है वह स्वीकृत किया जाये।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 803 शाब्दिक संशोधन है और उसकी अनुमति नहीं दी जाती।

(संशोधन संख्या 804 पेश नहीं किया गया।)

**श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं संशोधन संख्या 805 पेश करूंगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** यह भी शाब्दिक संशोधन है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) में 'प्रत्याभूत' (guaranteed) शब्द के स्थान पर 'प्रदत्त' (conferred) शब्द रख दिया जाये।"

श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने कहा है कि यह एक शाब्दिक संशोधन है, अत: मैं अभी बतलाता हूं कि मैंने इसे किस कारण से पेश किया है। मैं मानता हूं कि यह लगभग शाब्दिक संशोधन ही है। किन्तु मेरे इसे पेश करने का केवल यही कारण है कि स्वयं श्री अम्बेडकर के नाम पर संशोधन संख्या 811 भी इसी आशय का है और उसके बल पर मैंने इसे पेश किया है। वास्तव में उन्होंने 'प्रत्याभूत' शब्द को बदल कर 'प्रदत्त' शब्द रखने का प्रयत्न किया है। मेरा

संशोधन बिल्कुल 811 जैसा ही है। यदि परिषद् को संख्या 811 स्वीकार्य है तो संख्या 805 भी समानरूपेण स्वीकार्य होनी चाहिये। क्या मैं निवेदन कर सकता हूं कि मेरा संशोधन संख्या 791 भी केवल शाब्दिक संशोधन नहीं है। इससे आशय पूर्णतः बदल जाता है, क्या मुझे एक ही मिनट में इसे पेश करने की अनुमति मिल सकती है?

**उपाध्यक्षः** नहीं।

**श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** इससे आशय बदल जाता है। मैं आपसे इस पर विचार करने का अनुरोध करता हूं। मैं आपके सुविचारपूर्ण निश्चय को शिरोधार्य करूंगा।

***उपाध्यक्षः** ऐसा है तो आप उसे पेश नहीं करेंगे।

(संशोधन संख्या 806 पेश नहीं किया गया।)

क्योंकि संशोधन संख्या 806 पेश नहीं किया गया है, अतः उस पर पण्डित भार्गव का संशोधन (सूची में संख्या 46) गिर जाता है।

(संशोधन संख्या 807 पेश नहीं किया गया।)

अब अनुच्छेद पर व्यापक वाद-विवाद हो सकता है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): मुझे इस संशोधन का समर्थन करने में बहुत प्रसन्नता है। ऐसा करते समय मैं परिषद् के समक्ष कुछ बातें विचारार्थ उपस्थित करती हूं।

श्रीमान्, इस विधान में किसी व्यक्ति के अधिकारों को पूरा कराने के लिये समुचित कार्य-प्रणाली द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में जाने का जो अधिकार दिया गया है वह अत्यन्त बहुमूल्य अधिकार है। मेरे विचार में यह ऐसा अधिकार है जो कि इस विधान द्वारा प्रत्याभूत समस्त मूलाधिकारों का मूल है। इस अनुच्छेद का मूल सिद्धान्त यह है कि इस विधान में प्रत्याभूत मूलाधिकारों की प्रभावशील तरीके से पूर्ति कराई जाये। हम सबको ज्ञात है कि जिस अधिकार की द्रुतगति तथा प्रभावशील प्रणाली से पूर्ति नहीं हो सकती, वह अधिकार प्रयोजनहीन होता है तथा उसका उस पत्र के बराबर भी मूल्य नहीं होता जिस पर कि वह अंकित हो। अतएव जैसे कि मैं कह चुकी हूं, इस अनुच्छेद से यह लाभ है कि किसी व्यक्ति को प्रत्याभूत मूलाधिकारों की सार्थक पूर्ति का आश्वासन इसी अनुच्छेद से मिलता है।

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

श्रीमान् हम सबको ज्ञात है, तथा मसौदा-समिति को इसका पूरा ध्यान है, कि इंग्लिस्तान में अर्वाचीन काल में ही प्राचीन लेखों की कार्य-प्रणाली में महान् परिवर्तन हुआ है, और वहां एक नये कानून द्वारा लेखों के स्थान पर केवल आवेदन-पत्र प्रस्तुत करने की सादी प्रणाली रख दी गई है। कदाचित यही कारण है कि मसौदा-समिति ने इस अनुच्छेद में 'वन्द्युपस्थापन आदि लेखों के प्रकार के निदेश अथवा आदेश' ये शब्द रखे हैं।

एक और बात है कि सर्वोच्च न्यायालय मे जो अधिकार निहित किया गया है, उससे भारत के किसी भाग में स्थित उच्च न्यायालयों द्वारा ऐसे लेख निकालने के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, और न इससे संसद् के इस अधिकार पर ही प्रभाव पड़ता है कि वह किसी अन्य न्यायालय को उसके अधिकार-क्षेत्र में ऐसी शक्ति प्रयोग करने का अधिकार देने के लिये कानून बना सकती है। इस सम्बन्ध में एक प्रश्न उठ सकता है कि यदि उच्च न्यायालय लेख निकालने से इन्कार कर दे तो क्या स्थिति होगी, और इस विषय में कोई स्पष्ट प्रावधान न होने के कारण ऐसी स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय को लेख निकालने के लिये आवदेन-पत्र देने का क्या निषेध है? मेरा उत्तर है 'नहीं', क्योंकि मेरे विचार में इन मामलों में 'रेस ज्यूडीकेटा'† का कोई प्रश्न नहीं है। कोई व्यक्ति कितने ही न्यायालयों में जा सकता है, और किसी न्यायाधीश के समक्ष लेख निकालने के लिये आवेदन-पत्र पेश कर सकता है, यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय स्वभावत: इस बात को ध्यान में रखेगा कि उच्च न्यायालय अथवा अन्य किसी न्यायालय ने लेख निकालने के विषय में नकारात्मक अथवा स्वीकारात्मक क्या आदेश दिया है। अत: आवदेन-पत्र पेश करने का निषेध नहीं है।

इस विषय में कई अन्य बातें भी कहनी हैं, किन्तु मेरे विचार में यही दो मुख्य प्रश्न हैं जो इस सम्बन्ध में उठ सकते हैं। एक तो यह कि सर्वोच्च न्यायालय को जो अधिकार दिया गया है आया कि उससे अन्य उच्च न्यायालयों को यह अधिकार नहीं रहता कि वे भी ऐसे लेख निकाल सके; मेरे विचार में मैं इस प्रश्न का उत्तर दे चुकी हूं। दूसरा प्रश्न यह है कि समवर्त्ती क्षेत्राधिकार की अवस्था में, अर्थात् जब उच्च न्यायालय यह लेख निकालने से इन्कार कर दे तब

†'रेस ज्यूडीकेटा' एक कानूनी सिद्धान्त है जिसका आशय यह है कि एक न्यायालय में किसी प्रश्न पर अंतिम निर्णय होने के पश्चात् वही प्रश्न अन्य किसी न्यायालय में पुन: पेश नहीं किया जा सकता।

क्या सर्वोच्च न्यायालय को आवेदन-पत्र भेजने का निषेध है? मैंने इसके उत्तर में भी कह दिया है कि कोई मनुष्य कितने ही न्यायालयों में जाकर आवेदन-पत्र दे सकता है।

श्रीमान्, इन थोड़े से शब्दों के साथ मुझे इस अनुच्छेद का समर्थन करने में बहुत प्रसन्नता है। मैं परिषद् की स्वीकृति के लिये इसका समर्थन करती हूं।

***रेवरेण्ड जेरोम डीसूजा** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं भी इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद के पारित होने पर संतोष प्रकट करने में अपनी विदुषी मित्र श्रीमती दुर्गाबाई का साथ देना चाहता हूं। इस अनुच्छेद को न्याय-पूर्वक अत्यधिक गम्भीर प्रकार का तथा अत्यन्त दूरगामी महत्त्व का कहा जा सकता है। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि इस परिषद् के सदस्यों को स्मरण हो जायेगा कि आज इस महान् परिषद् के उद्घाटन की द्वितीय वार्षिक जयन्ती है, और निस्सन्देह यह महत्त्वशून्य बात नहीं है कि मूलाधिकारों पर होने वाले वाद-विवाद की समाप्ति पर पहुंच कर इन अधिकारों के भवन की शिखर-शिला आज रखी जा रही है।

श्रीमान्, मैं परिषद् का ध्यान इस अनुच्छेद के आशय की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं—उस आशय की ओर जो कि सम्भवत: प्रथम बार पढ़ने से स्पष्ट नहीं होता यह परिषद्, और इसके द्वारा वे विधान-मण्डल जिन्हें कि भविष्य में इस देश पर राज्य करना है, आत्मत्याग तथा स्वार्थहीनता के सराहनीय एवं महत्त्वपूर्ण कृत्य द्वारा कतिपय कानूनों तथा सिद्धान्तों की पूर्ति के कार्य को सर्वोच्च न्यायालय की वक्त के अन्तर्गत कर देते हैं और उन्हें भविष्य में चुनी जाने वाली संसदों के क्षेत्राधिकार तथा नियन्त्रण से बाहर रख देते हैं। वे उन्हें इस संविधान में प्रावहित प्रणाली से नियुक्त न्यायाधीशों के क्षेत्राधिकार में रख कर, इन अधिकारों को उन आक्रमणों तथा परिवर्तन से बचना चाहते हैं जो कि राजनीतिक दलबन्दी तथा परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होते हैं। श्रीमान्, इसका यह कारण है कि हम सबका यह विश्वास है—और यही मूलाधिकारों के इस अध्याय का आशय है—कि मनुष्य के कुछ ऐसे अधिकार हैं जो अखण्ड हैं, जिनके विषय में मानव-द्वारा निर्मित कोई विधान-मण्डल उंगली नहीं उठा सकता, इसी कारण इन मूलाधिकारों का इस प्रकार निर्माण हुआ है और सर्वोच्च न्यायालय को अपील करने के इस प्रावधान द्वारा उनकी रक्षा तथा प्रमाण की व्यवस्था की गई है।

श्रीमान्, जैसा कि मैं कह चुका हूं इसका आशय यह है कि एक व्यक्ति की ऐसे लोगों द्वारा की गई सामूहिक कार्यवाही से भी रक्षा की जानी चाहिये, जो कि कदाचित् उसकी आवश्यकताओं, उसके अधिकारों तथा उसके दावों को पूर्णतया

[श्री रेवरेण्ड जेरोम डीसूजा]

न समझ सकते हों। मैं तो विश्वासपूर्वक यह भी कह सकता हूं कि व्यक्तित्व की पूजा तथा अन्त:करण की प्रेरणाओं के प्रति श्रद्धा तभी हो सकती है जब मानव-जीवन के प्रति ऐसा दृष्टिकोण हो, मानव-जीवन की ऐसी परख हो जो पूर्णतया आध्यात्मिक है। श्रीमान्, यदि हमारी समस्त जनता तथा उनका दृष्टिकोण पूर्णतया भौतिकवाद का ही होता, यदि उचित अनुचित का निर्णय बहुमत से ही होना होता, तो मूलाधिकारों का तथा उन्हें उच्च न्यायालय के रक्षण में रखने का कोई महत्त्व नहीं होता। क्योंकि हमें यह विश्वास है कि लोकतंत्र की पूर्ण तथा सबसे ठीक परिभाषा में यह बात निहित है कि प्रत्येक मानव आदरणीय है, व्यक्तित्व पूजनीय है तथा व्यक्ति के अन्त:करण की प्रेरणाएं अनुसरणीय हैं। सच तो यह है कि इस परिभाषा के ये ही आधारभूत तत्व हैं। और अपने इसी विश्वास से प्रेरित होकर हमने इन अधिकारों को कानूनी स्वरूप दिया है।

श्रीमान्, मैं तो यह भी समझता हूं कि यदि इन अधिकारों को सर्वमान्य बनाना है, उनको इतना बल देना है कि वे स्वयं ही चिरस्थायी रह सकें तो अन्ततोगत्त्वा हमें नैतिक धर्म का सहारा लेना होगा, नहीं, हमें उस धर्म के पीछे स्थित सर्वशक्तिमान परमेश्वर का सहारा लेना होगा। श्रीमान्, महात्मा गांधी ने अपने एक चिरस्मरणीय वाक्य में, ऐहिक संविधान बनाने तथा उसमें सर्वशक्तिमान् का नाम न रखने की इच्छा की चर्चा करते हुये कहा था—"आप उसके नाम को विधान से बाहर रख सकते हैं, किन्तु आप उसे संविधान से अलग न कर पायेंगे।" श्रीमान्, मेरा यह विश्वास है कि इन मूलाधिकारों को तथा इनमें सन्निहित तत्वों को मान्यता देने का अर्थ ही यह है कि हम यह मानते हैं कि सब मानवीय प्रतिष्ठानों के परे, मानवीय विधान-मण्डलों के ऊपर एक ऐसी महान् शक्ति जिसके समक्ष आत्मसमर्पण करना पड़ता है और इन सबके ऊपर ऐसे अधिकार हैं जिनका सम्मान करना ही पड़ता है।

श्रीमान्, हमने इन मूलाधिकारों में कुछ इस आशय के प्रावधान रखे हैं—और शायद वर्तमान अवस्थाओं में ये आवश्यक हैं भी—कि सरकारी संस्थाओं में विभिन्न धर्मों की शिक्षा न दी जा सकेगी, जिससे कि संस्थाओं के शान्त वातावरण में वादविवादों से विघ्न न पड़े। किन्तु मुझे आशा है और मैं प्रार्थना करता हूं कि इन प्रावधानों के द्वारा, यद्यपि ये बुद्धिमत्तापूर्ण हैं फिर भी, ऐसे नैतिक सिद्धान्तों की शिक्षा पर रोक न रहें जो सर्वमान्य सत्यों के आधार पर, परमात्मा के अस्तित्व

के आधार पर तथा ईश्वरीय प्रेरणा से उदित वैयक्तिक अन्तर्विवेक के आधार पर स्थापित हुये हैं। मुझे विश्वास है कि उन विश्वमान्य तथ्यों पर चलने से धार्मिक विवादों से बचा जा सकता है। यह असंदिग्ध है कि हमारी राष्ट्रीय संस्कृति तथा सभ्यता इसी विश्वास तथा श्रद्धा पर आधारित तथा स्थिर है; अन्यथा इन मूलाधिकारों का कोई अर्थ नहीं होता। एक पूर्ववक्ता ने पूछा था कि "इस संविधान में परिवर्तन करने का प्रावधान क्यों रखा गया है? इन अधिकारों को ऐसा क्यों न रखा जाये कि उनके खण्डन की सम्भावना भी न हो सके?" मैं उन्हें उत्तर दूंगा— "यदि हम लोगों की श्रद्धा तथा निष्ठा ही समाप्त हो जाती है तो इन अधिकारों की शक्ति द्वारा रक्षा करने से कोई लाभ न होगा। उस हालत में अधिकार और उसकी मूल शक्ति दोनों माया-मृग सम ही रहेंगे। किन्तु यदि निष्ठा रहेगी तो कोई भी उनका उल्लंघन न करेगा।"

इस अनुच्छेद द्वारा हम सर्वोच्च न्यायालय को एक शक्ति प्रदान करते हैं, एक प्रतिष्ठा तथा एक सम्मान प्रदान करते हैं, और इन सबको पाने के कारण उसके न्यायाधीश पूरी ईमानदारी तथा सच्चाई से अपने कर्त्तव्यों को पूरा कर सकेंगे। जब हम अनुच्छेद 103 से आरम्भ होने वाले भाग पर आवें, तब हमें इस अनुच्छेद के पूर्ण आशय को स्मरण रखना चाहिये, क्योंकि उस भाग में हमें उन उपायों पर विचार करना होगा जिनके द्वारा इस देश में एक ईमानदार तथा पूर्णतः न्यायप्रिय न्याय-विभाग की स्थापना की जा सकती है। जब हम उस भाग पर विचार करें तब हमें इस भाग का स्मरण रखना चाहिये और इस बात की ठीक व्यवस्था करनी चाहिये कि इन विभिन्न प्रावधानों की न्यायपूर्वक तथा निर्भयतापूर्वक पूर्ति हो।

अब मैं अगली बात को लेता हूं और मैं परिषद् से प्रार्थना करता हूं कि कृपा करके मुझे इस विषय पर कुछ शब्द कहने की अनुमति दे कि विधान के इस भाग में अल्पसंख्यकों के अधिकारों तथा मूलाधिकारों को इस प्रकार मिश्रित कर दिया गया है कि वे अलग भी नहीं हो सकते। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि यह मिश्रण उचित तथा आवश्यक है। आखिर, अल्पसंख्यक यही चाहते हैं कि व्यक्तियों के अधिकारों का पक्का संरक्षण होना चाहिये। यदि ऐसा किया जाये तो 'अल्पसंख्यकों के अधिकारों' की आवश्यकता ही न रह जायेगी और न इनकी मांग ही रह जायेगी। पर शासन की जनतंत्रात्मक प्रणाली में, जहां कि बहुसंख्यकों के मत से अल्पसंख्यकों के साथ अन्याय हो सकता है, अल्पसंख्यकों के अधिकारों का उल्लेख होना ही चाहिये। किन्तु अपने धार्मिक विश्वासों को मानने

[रेवरेण्ड जेरोम डीसूजा]

का, अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं को अपनाये रखने का व्यक्ति को अधिकार है; स्वतन्त्र इच्छाशक्ति और स्वतन्त्र विचार रखने वाले मानव को—उस मानव को जिस पर यह कार्य करने का कर्त्तव्यभार है—एक मनुष्य के नाते कुछ अधिकार प्राप्त हैं। और अगर इन अधिकारों को अन्ततः सुरक्षित रखा जाता है तो 'अल्पसंख्यकाधिकारों' की जो मांग है वह अपने आप ही लुप्त हो जायेगी। इसी कारण इन सामान्य अधिकारों के साथ अल्पसंख्यकों के अधिकार की चर्चा की गई है। अपनी जाति की ओर से, जिसका यहां प्रतिनिधित्व करने का मुझे सम्मान प्राप्त है, मैं कहना चाहता हूं—और मुझे विश्वास है कि मैं कई अन्य लोगों की भावनाओं को व्यक्त कर रहा हूं—कि यदि इन अधिकारों का वास्तव में उसी प्रकार आरक्षण किया जाये किस प्रकार कि इस विधान में करने का प्रयत्न किया गया हैं, यदि मूलाधिकारों का, जिनमें कि अल्पसंख्यकों के अधिकार भी शामिल है; पूर्णतया असंदिग्ध तरीके से संरक्षण किया जाये, तो हमारे लिये किसी प्रकार के राजनैतिक आरक्षणों की आवश्यकता न होगी और हम उनकी मांग भी तब तक न करेंगे जब तक कि संविधान के इस भाग को कार्यान्वित करने में इसके प्रावधानों का गलत अर्थ नहीं निकाला जाता और इसके द्वारा किसी के अधिकारों को पददलित नहीं किया जाता।

श्रीमान्, हमारे देश की तथा हमारे नेताओं की इच्छा यह है कि इस विस्तृत देश में राजनैतिक एकरूपता लाने के लिये कदम बढ़ाया जाये। दुर्भाग्यवश अल्पसंख्यकों को राजनैतिक आरक्षण देने की आवश्यकता से उस राजनैतिक एकरूपता के टूटने का खतरा पैदा हुआ और कुछ मात्रा में तो वह टूट भी गयी। किन्तु स्मरण रहे कि यह आरक्षण धार्मिक और सांस्कृतिक और वैयक्तिक अधिकारों के कारण आवश्यक समझे गये थे, और केवल राजनैतिक विशेषाधिकारों अथवा उनसे प्राप्त हो सकने वाले परिलाभों के कारण आवश्यक नहीं समझे गये। और जब तक इन सांस्कृतिक तथा वैयक्तिक अधिकारों का आरक्षण होता है, तब तक हमें किसी अन्य राजनैतिक आरक्षण की आवश्यकता नहीं है। अतएव मुझे भरोसा है और मेरी प्रार्थना है कि हम सब लोग यह सर्वदा स्मरण रखें कि राजनैतिक बंटवारे तथा प्रादेशिक स्वतंत्रता के नारे तब तक और उस हद तक न उठाये जा सकेंगे जिस समय तथा हद तक सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अन्ततोगत्त्वा सुरक्षित ये अधिकार, अपने से संलग्न सब परिणामों सहित, ईमानदारी से लागू किये जाते हैं और पूरी तरह कार्यान्वित किये जाते हैं। हम ऐसा कुछ नहीं करेंगे

जिससे कि वह नारा पुनः उठे। जहां तक इस छोटी-सी ईसाई जाति का सम्बन्ध है, हमने काफी हद तक इन राजनैतिक आरक्षणों का परित्याग कर दिया है और हम और भी आगे बढ़ कर स्थानों के उस आरक्षण को भी छोड़ने के लिये तैयार हैं जो कि कुछ प्रान्तों में रखे गए हैं और यदि हम ऐसा करते हैं तो वह इसी आधार पर कि जिस धारणा से प्रेरित होकर हमें इन मूलाधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है वह ऐसी है कि उसके होने पर हमें अपनी सुरक्षा का पूरा आश्वासन मिल जाता है और उस आश्वासन को और भी सुदृढ़ करने के लिये अतिरिक्त राजनैतिक आरक्षणों तथा विशेषाधिकारों की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

श्रीमान्, मैं जानता हूं कि इस विधान में कई अन्य संरक्षण अब भी हैं, जैसे कि पिछड़ी हुई जातियों के लिये आर्थिक संरक्षण आदि हैं। मुझे विश्वास है कि परिवर्तन काल के लिये इस प्रकार की व्यवस्था अपेक्षित है, हमारी जनता के बहुत से वर्गों को इस प्रकार से आश्वासन देना बुद्धिमत्ता तथा अक्लमन्दी की बात है। किन्तु, श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि हम इस समय जो कुछ कर रहे हैं, उसका पूर्ण तथा तर्कसंगत आशय यह है कि एक समय आना चाहिये जब कि जो कुछ आर्थिक अथवा अन्य सहायता दी जाये वह किसी वर्ग विशेष की मांगों के आधार पर न दी जाये, अपितु व्यक्ति की मांग के आधार पर दी जाये। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि ऐसा समय आयेगा जबकि जो लोग विशेष सहायता मांगेंगे अथवा जिन्हें उसकी आवश्यकता होगी, उन्हें वह प्राप्त हो जायेगी और इसके लिये जातीयता के आधार पर आरक्षणों अथवा अभिरक्षणों की आवश्यकता न होगी; जबकि हमारे कानून निर्माता तथा नेता वैयक्तिक मामलों पर विचार कर सकेंगे, जिसमें साम्प्रदायिक अथवा सामाजिक पृष्ठभूमि का अवश्य ध्यान चाहे रखा गया हो, किन्तु वह सहायता अथवा वह रियायत सब व्यक्तियों को दी जायेगी, किसी जाति अथवा वर्ग-विशेष तक सीमित न होगी। ऐसा होने पर ही और ऐसी भावना के आने पर ही हमारे वर्ग-भेद—जहां तक कि वह राजनैतिक दृष्टि से भयावह हैं और राजनैतिक पार्थक्य पैदा करते हैं—दूर होंगे। दूसरी ओर यदि सांस्कृतिक, धार्मिक तथा इस प्रकार के अन्य अधिकारों का अभिरक्षण कर दिया जाये तो मैं कोई कारण नहीं देखता कि इस देश की विभिन्न तथा इसका विरंगापन, जो गत वर्षों में राजनैतिक निर्बलता का कारण रहा है, अब देश के लिये शक्ति तथा शान का कारण क्यों न बन जाय। हम सच्चे हृदय से भरोसा करते हैं कि जिस भावना से हमारे न्यायाधीश भविष्य में इन अधिकारों की व्याख्या करेंगे, उनका अर्थ निकालेंगे, तथा उन पर अमल करेंगे, जिस भावना से बहुसंख्यक जाति उनको क्रियान्वित करेगी, उससे अल्पसंख्यकों की सारी आशंकायें दूर हो जायेंगी तथा

[रेवरेण्ड जेरोम डीसूजा]

उन्होंने राजनैतिक अधिकारों के परित्याग कर देने का जो मार्ग अब जानबूझ कर चुना है उसमें उन्हें प्रोत्साहन मिलेगा। तभी चल कर निकट भविष्य में ही—मैं दूर भविष्य की प्रतीक्षा नहीं करता—इन 33 करोड़ लोगों की राजनैतिक एकता एक तरफ हो जायेगी, और समस्त जातियों के लोग नागरिक समानता के आधार पर, किन्तु अपने-अपने धर्म को मानते हुये, अपने विश्वासों तथा अपने आदर्शों पर चलते हुये, और उन विश्वासों तथा निष्ठा से अपनी वैयक्तिक शक्ति प्राप्त करते हुये, हमारी मातृभूति की महानता तथा समृद्धि के लिये कंधे से कंधे मिला कर एक साथ कार्य करेंगे। (*प्रशंसा-ध्वनि*)

**श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** उपाध्यक्ष महोदय, मेरे मतानुसार लोकतंत्र में सर्वोच्च न्यायालय नागरिकों के अधिकारों का सर्वोच्च संरक्षक होता है। मैं तो और भी आगे बढ़ कर यह भी कहने के लिये तैयार हूं कि वह लोकतंत्र की आत्मा होता है। जो कार्यकारिणी कुछ समय के लिये अधिकारारूढ़ होती है वह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग कर सकती है, अतः ऐसा सर्वोच्च न्यायालय अवश्य होना चाहिये, जो शक्तिशाली हो तथा दिन प्रति दिन के उन आवेशों से प्रभावित न हो जिनके कारण एक विशेष प्रकार के लोग अधिकारारूढ़ हो जाते हैं और फिर थोड़े ही समय के पश्चात् अधिकारच्युत भी हो जाते हैं। संसद् तीन-चार वर्ष रहेगी, तो हो सकता है उस समय में बहुत-सी सरकारे बनें और बिगड़े, और यदि व्यक्ति के मूलाधिकारों को उस समय की सरकार की कृपा पर छोड़ दिया जाये, तो वे मूलाधिकार कहला ही नहीं सकते। दूसरी ओर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों पर भरोसा किया जा सकता है कि वे नागरिकों के अधिकारों तथा विशेषाधिकारों के समानरूप से संरक्षक रहेंगे, चाहे वे नागरिक अल्पसंख्यक हों अथवा बहुसंख्यक। जहां तक मूलाधिकारों का सम्बन्ध है, मेरा विनीत मत यह है कि व्यक्तिगत तौर पर नागरिकों के अधिकारों और विशेषाधिकारों में कोई अन्तर नहीं है, चाहे वे अल्पसंख्यक जाति के हों अथवा बहुसंख्यक जाति के हों। दोनों को अपने विश्वास और धर्म की स्वतंत्रता होनी चाहिये, अपनी भाषा तथा स्वाभाविक लिपि के प्रयोग की स्वतंत्रता होनी चाहिये। इन और अन्य अधिकारों पर ध्यान से निगरानी रखनी चाहिये और इसी अभिप्राय से सर्वोच्च न्यायालय को अन्तिम सर्वोपरि क्षेत्राधिकार दिया गया है।

जहां तक अल्पसंख्यकों के अधिकारों का सम्बन्ध है, इस विधान के अनुच्छेद 299 में कुछ और भी प्रावधान रखे गये हैं, जिनके अनुसार उन हितों का ध्यान रखने के लिये और संघ के प्रधान को तथा गवर्नर को भी इस बात की रिपोर्ट देने के लिये, एक अथवा अनेक विशेष प्राधिकारी नियुक्त किये जायेंगे कि इस विधान के इस भाग में तथा अन्य भागों में उल्लिखित अल्पसंख्यक-सम्बन्धी अधिकारों की किस हद तक रक्षा की गई है, और प्रधान तथा गवर्नर का कर्त्तव्य होगा कि वह उस रिपोर्ट को व्यवस्थापक-मण्डल के समक्ष रखे। किन्तु इस प्रावधान से ही काम न चलेगा, यह भी आवश्यक है कि इसके साथ ही सर्वोच्च न्यायालय भी सर्वदा देखभाल करता रहे कि इन अधिकारों का हनन तो नहीं किया जा रहा और उसको यह शक्ति भी हो कि वह किसी शासन की इस बारे में की गई गलती को ठीक कर सकें।

श्रीमान्, मैं पूर्ववक्ताओं से सहमत हूं, जिन्होंने कहा था कि समस्त विधान में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यही अनुच्छेद है, क्योंकि यह जनता के अधिकारों का संरक्षक है। जहां तक मुझे पता है, इन्हीं वर्षों में कुछ प्रान्तीय विधान-मण्डलों ने कानून बनाये हैं जिससे कि वन्ध्युपस्थापन का अन्त कर दिया गया है। जनता के अधिकारों के बारे में ऐसी मनमानी करने की छूट कभी नहीं दी जानी चाहिये।

खण्ड (4) के विषय में मेरे मित्र ने सुझाव रखा था कि यह खण्ड निकाल देना चाहिये। मैं उनके साथ सहमत नहीं हूं, यद्यपि मैं मानता हूं कि यहां भाषा कुछ व्यापक है और उसके दुरुपयोग की सम्भावना है। मुझे विश्वास है कि सरकार को इतना तो अधिकार देना ही चाहिये। यदि कोई सद्यस्कृत्यस्थिति घोषित की जाती है तो मुझे विश्वास है कि इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकारों को केवल सद्यस्कृत्यस्थिति के समय के लिये ही निलम्बित किया जायेगा और तत्पश्चात् भी छः मास के लिये नहीं, यद्यपि प्रधान को यह अधिकार है कि वैसी स्थिति के समाप्त होने के पश्चात् भी छः मास तक वह उसे जारी रख सकता है। प्रधान यह भी कह सकता है कि यह खण्ड केवल सद्यस्कृत्यस्थिति के समय के लिये ही स्थगित किया जाये, और उस स्थिति के समाप्ति के पश्चात् अधिक छः मास के लिये नहीं।

***श्री एच.वी. कामतः** एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्। मैं अपने माननीय मित्र का ध्यान इस अनुच्छेद के खण्ड (4) तथा अनुच्छेद 280 की ओर आकृष्ट करूंगा और उनसे अनुरोध करूंगा कि वह इन दोनों को मिलाकर पढ़ें। अनुच्छेद 280 में :

[श्री एच.वी. कामत]

"प्रधान आदेश द्वारा घोषणा कर सकेगा कि इस संविधान के अनुच्छेद 25 के द्वारा प्रत्याभूत अधिकार ऐसे आदेश में उल्लिखित ऐसी अवधि के लिये निलम्बित रहेंगे, जो उस उद्घोषणा के प्रवर्तनशून्य होने के पश्चात् छः मास की अवधि से परे विस्तृत न हो सकेगी।"

क्या अनुच्छेद 280 के साथ पढ़ने पर खण्ड (4) के अशुद्ध अर्थ निकलने की सम्भावना नहीं है? क्या अनुच्छेद 280 सब मूलाधिकारों पर लागू होता है? क्या, श्रीमान्, इसका यह आशय है कि अस्पृश्यता निवारण, धार्मिक तथा सांस्कृतिक अधिकार भी निलम्बित हो जायेंगे?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं इसका उत्तर दे दूंगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** अनुच्छेद 280 का यह आशय नहीं है कि प्रधान को उन अधिकारों को निलम्बित करना ही होगा। वह इनको अथवा इन सबको निलम्बित करने के लिये बाध्य नहीं है। प्रधान इस भाग में उल्लिखित सब अधिकारों को स्थगित करने के लिये बाध्य नहीं है। अतएव अनुच्छेद 280 से कोई आशंका उत्पन्न नहीं होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त जिस व्यक्ति को यह शक्ति दी गई है वह संघ का प्रधान है जो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के बराबर है। प्रधान प्रशासन चलाने वाला नहीं है। प्रशासन चलाने वाले तो उसके मन्त्री होते हैं। वह तो आवश्यकता पड़ने पर ही हस्तक्षेप करता है। इन परिस्थितियों में मुझे विश्वास है कि इस भाग में वर्णित अधिकार सर्वोच्च न्यायालय तथा प्रधान के भी हाथ में सुरक्षित हैं। अतएव जहां तक मि. नज़ीरुद्दीन के संशोधनों का सम्बन्ध है, मैं उनसे सहमत नहीं हूं। खण्ड (1) के अन्तर्गत अन्य न्यायालयों को सम्मिलित करना भी आवश्यक नहीं है। उप-खण्ड (3) में यह प्रावधान रख दिया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय को जो शक्तियां दी गई हैं, वैसी ही अन्य न्यायालयों को भी दी जा सकती हैं। खण्ड (4) में केवल उन्हीं अधिकारों की प्रत्याभूति नहीं दी गई है जो कि खण्ड (1) में प्रत्याभूत हैं, वरन् उनकी भी प्रत्याभूति है जो कि खण्ड (3) में प्रत्याभूत हैं। मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद खण्ड (4) में समाविष्ट बातों को खण्ड (1) में रख देना चाहते है। वर्तमान भाषा पर्याप्त दिखाई देती है और उसमें संशोधन आवश्यक नहीं है। संशोधन सुनिश्चित भी नहीं है। वह तो कुछ बेडौल है। इन परिस्थितियों में मैं मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधनों का तथा खण्ड (4) को निकाल देने के लिये जो संशोधन है, इसका विरोध करता हूं। अनुच्छेद को विद्यमान रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये।

***श्री बी. पोकर साहब** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस अनुच्छेद पर कुछ शब्द कहना चाहता हूं। जैसा कि श्री अनन्तशयनम् आयंगर कह चुके हैं मैं भी कहना चाहता हूं कि सारे विधान में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है और हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि इस अनुच्छेद द्वारा दत्त अधिकार अन्य अनुच्छेदों से या इसी अनुच्छेद के किसी और खण्ड से नष्ट न जो जायें अथवा किसी प्रकार उनमें परिवर्तन न हो जाये। श्रीमान्, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् के हमारे अनुभवों ने हमें बताया है कि हमें नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकारों की रक्षा के विषय में अब तो अंग्रेज़ों के राज्यकाल से भी कहीं अधिक सावधान रहना होगा। मेरा तो यह कहना है कि अनेक प्रान्तीय सरकारों के इन्हीं दिनों के व्यवहार ने हमें यह सिखा दिया है कि इस बात के लिये सावधानी से ऐसी कार्यवाही करने की आवश्यकता है कि उन्होंने जिस प्रकार का व्यवहार किया है वैसा वे आगे न कर पाये। कुछ प्रान्तीय सरकारों ने, उन शक्तियों की आड़ में, जो कि कहते हैं उनको मिली हुई हैं, लोगों के पवित्र अधिकारों तथा स्वातन्त्र्य के विषय में जो कार्यवाही की है, मैं उसी की चर्चा कर रहा हूं। श्रीमान्, प्राय: प्रान्तीय सरकारों के लिये ऐसा कहना तो नियम-सा हो गया है कि—"देखो, सद्यस्कृत्यता की स्थिति उत्पन्न हो गई है, अत: जनता के हितार्थ हमें जन-सुरक्षा-कानून द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करके इतने व्यक्तियों की स्वतन्त्रता को कम करना होगा तथा उन्हें कारागृह में बन्द करना होगा।" ऐसा किया जाता है और वे लोग जान भी नहीं पाते कि उन्हें किस आधार पर पकड़ा गया है, उन्होंने राज्य अथवा देश की शान्ति के विरुद्ध कौन-सा ऐसा पाप किया है जिससे कि इस अनुत्तरदायी तरीके से उनकी स्वतन्त्रता को कम कर दिया गया है और उन्हें इसी प्रकार की मानसिक स्थिति में सप्ताहों और महीनों रखा जाता है, और उन्हें बताया भी नहीं जाता कि उन्हें किसलिये पकड़ा गया है तथा बन्दी बनाकर रखा गया है, यद्यपि जिस कानून के अधीन सरकार ने उन्हें पकड़ा है उसके प्रावधानों के अनुसार सरकार बाध्य है कि वह उन्हें उनकी गिरफ्तारी तथा बन्दी बनाये रखने के कारणों से अवगत कराये।

श्रीमान्, अर्वाचीन काल में ही जिस अनुत्तरदायी ढंग से काम किये गये हैं उन पर यदि हम गौर करें तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन सरकारों को जो शक्तियां प्रदान की जायें उनके दुरुपयोग तथा अनुचित उपयोग के विरुद्ध अतीव प्रबल अभिरक्षण रखे जायें। श्रीमान्, मैं एक बात कहना चाहता हूं कि हमें एक सिद्धान्त सदा याद रखना चाहिये और विधान-निर्माण करते समय ध्यान में रखना

[श्री बी. पोकर साहब]

चाहिये कि मन्त्रिमण्डल बनें या बिगड़े किन्तु न्याय-प्रशासन चलता रहना चाहिये तथा उस पर इन मन्त्रिमण्डलों के जीवन की उथल-पुथल का तथा सरकार में परिवर्तनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये। किसी सार्वजनिक प्रयोजनार्थ इन व्यवस्थाओं का प्रयोग नहीं किया जाता, वरन् अपनी शक्ति को बनाये रखने के लिये, अपने दल अथवा गिरोह को अधिकारारूढ़ बनाये रखने के लिये ही, उनका प्राय: करके प्रयोग किया जाता है। ऐसी वस्तुस्थिति को कभी नहीं रहने देना चाहिये। श्रीमान्, मैं एक उदाहरण दूंगा।

मद्रास में विधान-मण्डल का अधिवेशन हो रहा था, और अकस्मात् एक दिन सायंकाल एक विज्ञप्ति जारी की गई विधान-मण्डल का अधिवेशन अनिश्चित अवधि के लिये स्थगित किया जाता है। ऐसा क्यों किया गया, यह किसी को पता नहीं था, और अगले दिन सवेरे एक अध्यादेश (आर्डिनेंस) जारी किया गया। आप जानते हैं उसका क्या आशय था? अन्य कई बातों के अतिरिक्त जन-सुरक्षा अधिनियम के अनुसार उस समय बहुत से लोगों को गिरफ्तार करके नज़रबन्द कर दिया गया था, और उन्हें यह भी नहीं बताया जाता था कि उन्हें क्यों पकड़ा गया है और क्यों नज़रबन्द रखा गया है। अस्तु, नज़रबन्दों ने उन उपायों से काम लिया जो कि उस समय के कानून के अधीन उपलब्ध थे। उच्च न्यायालय में वन्द्युपस्थापन के लिये आवेदन-पत्र गये हुये थे, और उच्च न्यायालय ने उचित मामलों में वन्द्युपस्थापन-लेख जारी कर दिया। अब होने यह लगा कि ज्यों ही उच्च न्यायालय की आज्ञा से कोई व्यक्ति मुक्त होता, त्यों ही उसे पुन: बन्दी बना कर कारागृह में रख दिया जाता। सरकार इन सब बातों से असन्तुष्ट थी। और उच्च न्यायालय, आपराधिक कार्य-प्रणाली संहिता की धारा 491 द्वारा प्रदत्त वैध शक्तियों का जिस प्रकार स्वतंत्रता से प्रयोग कर रहा था उससे सरकार चिढ़ी हुई थी। ऐसा हुआ कि एक दिन सायंकाल विधान-मण्डल को भंग कर दिया गया तथा और अगले दिन प्रात:काल एक अध्यादेश (आर्डिनेंस) जारी कर दिया गया जिससे आपराधिक कार्य-प्रणाली संहिता की धारा 491 के अन्तर्गत लेख निकालने का अधिकार उच्च न्यायालय से छीन लिया गया। श्रीमान्, इसमें क्या नेकनीयती हो सकती थी? क्या कोई मनुष्य कह सकता है कि यह कार्यवाही नेकनीयती से की जा सकती थी? यह तो सरकार को दी हुई शक्तियों का अत्यन्त कलंकपूर्ण

प्रयोग था। प्रदत्त शक्तियों की आड़ लेकर उन्होंने अत्यन्त अनुत्तरदायी तरीके से काम किया। अतएव, श्रीमान्, मैं यही कहता हूं कि न्यायालयों की शक्तियों को सरकार की इच्छा तथा प्रसन्नता पर नहीं छोड़ना चाहिये, और उन्हें किसी अवस्था में भी न्यायालयों में निहित शक्तियों में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं होनी चाहिये। यदि वैयक्तिक-स्वातन्त्र्य की प्रत्याभूति में तथा इसकी पूर्ति करने के लिये न्यायालयों को प्रदत्त शक्ति में ही हस्तक्षेप करने की अनुमति दे दी जाये, तो कोई भी सुरक्षित नहीं है, क्योंकि उस प्रत्याभूति के आधार पर ही लोक-तन्त्रात्मक सरकार स्थित होती है। न यहां बहुसंख्यक जाति का प्रश्न है, और न अल्पसंख्यक जाति का ही प्रश्न है। बात तो यह है कि जिस समय जो भी लोग अधिकारारूढ़ होते हैं वे ऐसे व्यक्तियों को अथवा व्यक्तियों के वर्गों को जेल में ठूंस देते है जिन्हें वे पसन्द नहीं करते अथवा जिनका स्वतन्त्र रहना वे पसन्द नहीं करते और शायद वे ये सब बातें इस आशंका से करते हैं कि उनके विपक्षी उस शक्ति को समाप्त कर देंगे जिसका वे उपभोग कर रहे हैं। यह और बात है कि ऐसे अवसरों के लिये अभिरक्षण किये जायें जब देश में व्यापक रूप से शान्ति भंग हो गई हो, किन्तु यह बिल्कुल दूसरी बात है कि सरकार को इस सद्यस्कृत्यस्थिति की शक्तियों के अन्तर्गत मनमानी करने का अधिकार दे दिया जाये, और यह भी अधिकार दे दिया जाये कि नागरिकों को वैयक्तिक स्वतन्त्रता की रक्षा करने की जो शक्ति न्यायालयों में सन्निहित है उसे भी सरकार छीन सके।

अब, श्रीमान्, मैं केवल यही कहना चाहता हूं कि यह निस्संदेह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अधिकार है जो कि इस विधान के आधीन दिया गया है, किन्तु मुझे भय है कि एक हाथ से जो कुछ दिया गया है, खण्ड (4) के द्वारा दूसरे हाथ से उसे छीन लिया जा रहा है, अतः इस खण्ड को निकाल देने के संशोधन का मैं हार्दिक समर्थन करता हूं। इस खण्ड की कोई आवश्यकता ही नहीं है। हां, सद्यस्कृस्यस्थिति के समय काम आने वाली शक्तियों के विषय में धारा 280 में प्रावधान है, और उसमें भी परिवर्तन की आवश्यकता हैं, और उस अनुच्छेद तक पहुंचने पर हमें उस पर विचार करना होगा, किन्तु इस खण्ड के प्रावधानों द्वारा उन शक्तियों में भी हस्तक्षेप होता है जो पिछले खण्डों द्वारा प्रदत्त हैं, और मैं उस खण्ड के निकाल देने के संशोधन का पूरे जोर से समर्थन करता हूं। इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, और जैसा कि एक माननीय सदस्य ने कहा था, अनुच्छेद 280 के साथ इसका मेल नहीं खायेगा, और इससे उलझनें पैदा होंगी। इन थोड़े से शब्दों के साथ, मैं इस खण्ड को हटा देने के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अब हम इस अध्याय के अन्तिम भाग पर आ गये हैं। इस अनुच्छेद 25 द्वारा देश के प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार प्राप्त होता है कि इस अनुच्छेद में प्रत्याभूत सभी स्वतन्त्रताओं को वह उपलब्ध कर सके। वह सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है और वहां यह मांग कर सकता है कि इन कानूनों को कार्यान्वित किया जाये। श्रीमान्, यह इस अध्याय का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है। बिना इसके उन सब अनुच्छेदों का कोई अर्थ नहीं रहेगा जिन्हें हमने स्वीकार किया है। जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री आयंगर ने कहा है, ठीक ही यह संविधान का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है। वास्तव में यह ऐसा अनुच्छेद है जो समस्त मूलाधिकारों को प्रभावी बनाता है। यदि किसी के साथ अन्याय हो तो इस अनुच्छेद के अधीन कोई भी उसका उपाय कर सकता है।

श्रीमान्, मेरे विचार में इस अनुच्छेद की वर्तमान भाषा अत्यन्त उपयुक्त है, और खण्ड (4) को निकाल देने की मांग हमारे राष्ट्रीय विकास की वर्तमान अवस्था में उपयुक्त नहीं है, यद्यपि सिद्धान्त रूप में यह ठीक कही जा सकती है। अमरीका और इंग्लिस्तान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके अधीन मूलाधिकारों को स्थगित किया जा सके। पर हमारे विकास की वर्तमान स्थिति में, जब कि राज्य का वास्तव में निर्माण हो रहा है, मेरे विचार में संविधान में प्रावहित सद्यस्कृत्यस्थिति में इन अधिकारों को निलम्बित करने का यह प्रावधान अपेक्षित है। जिन अनुच्छेदों के अधीन इन अनुच्छेदों को निलम्बित किया जा सकता है, उन पर विचार करने का अवसर भी हमें मिलेगा, और हम उस समय यह देखेंगे कि वे प्रावधान न्यायसंगत है अथवा नहीं। किन्तु मेरे विचार में यह कहना तो बहुत आगे बढ़ना होगा, विशेषत: हमारे राष्ट्रीय विकास की इस अवस्था में, कि सद्यस्कृत्यस्थिति, विद्रोह अथवा ऐसे ही अवसरों पर भी राज्य के पास विधान के इस भाग को निलम्बित करने की शक्ति न होनी चाहिये। मेरे विचार में बहुत शीघ्र ही, जब कि हमारा राज्य स्थिर हो जायेगा, हम खण्ड (4) को हटा सकेंगे।

खण्ड (3) संसद् को यह शक्ति देता है कि वह कानून बनाकर स्थानीय न्यायालयों को इस प्रश्न पर निर्णय करने की शक्ति दे सकती है। मेरे विचार में इससे भी, किसी हद तक, यहां प्रदान किये हुये अधिकारों का न्यूनन होता है। श्रीमान्, सर्वोच्च न्यायालय अन्तिम प्राधिकारी होता है। वास्तव में सर्वोच्च न्यायालय का मेरे हृदय में बहुत सम्मान है। मैं चाहता हूं कि सर्वोच्च न्यायालय ऐसा निकाय हो जो संसद् से सर्वथा स्वतन्त्र हो। अमरीका के समान हमारे सर्वोच्च न्यायालय में संसद् का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये। अतएव मेरे विचार में खण्ड

(3) यहां नहीं होना चाहिये था, जिसमें लिखा है कि संसद् को कानून बना अन्य किसी न्यायालय को भी इस सम्बन्ध मे निश्चय करने की शक्ति देने का अधिकार होगा। यदि संसद् नहीं चाहती हो कि अधिकार की पूर्णतः पूर्ति होनी चाहिये, तो वह इस विषय पर निर्णय करने का अधिकार अन्य किसी न्यायालय को भी दे सकती है। मुझे आशा है कि प्रथम दस-पन्द्रह वर्षों में, जब कि हम इस विधान का परीक्षण करेंगे, हमें यह पता लग जायेगा कि आया कोई संसद् ऐसी दृढ़संकल्प है कि इन अधिकारों को निराकृत तथा प्रभावशून्य बना दे।

श्रीमान्, खण्ड (2) में विश्वविख्यात अधिकार, वन्द्युपस्थापन लेख आदि के अधिकार, दिये गये है। मेरे विचार में सब सहमत होंगे कि यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथा अतीत अभीष्ट है। अतः मेरा ख्याल है कि विद्यमान रुप में ही इस अनुच्छेद को स्वीकार किया जा सकता है, यद्यपि, मेरे विचार में, बाद के वर्षों में खण्ड (3) को, यदि वह मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध हो तो, हटा दिया जा सकता है। जब हमारा राज्य स्थिर हो जाये, तब खण्ड (4) को भी हटाया जा सकता है। मेरे विचार में कुछ समय पश्चात् इस अनुच्छेद का वही रूप उपयुक्त होगा जब कि हमारा जनतंत्र स्थिर हो जाये।

जब हम इस अनुच्छेद पर इस अध्याय के प्रभावी भाग के रूप में विचार करते हैं तो हमने अब तक जो कुछ किया है, हम उस पर सिंहावलोकन कर सकते हैं। वास्तव में यह मूलाधिकारों का अध्याय है। हमने सब प्रकार के भेदभावों के विरुद्ध प्रत्याभूति दी है, हमने यह भी प्रत्याभूति दी है कि अस्पृश्यता का अन्त कर दिया जायेगा; अब तक परिषद् ने जितने कार्य किये हैं, यह उनमें सबसे ऐतिहासिक कार्य है; हमने अनुच्छेद 13 में स्वतन्त्रता का घोषणा-पत्र स्वीकार किया है। मुझे आशा है कि हम अनुच्छेद 15 को भी पारित कर देंगे जिसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा कानून के समक्ष स्वतन्त्रता की प्रतिभूति दी गई है। तत्पश्चात्, हमने अल्पसंख्यकों के लिए सांस्कृतिक तथा धार्मिक दोनों प्रकार के अभिरक्षण रखे हैं। सम्पत्ति विषयक अधिकार अभी अन्तिमरूपेण स्वीकृत होना है। मेरे विचार में ये सब अधिकार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, किसी नागरिक के लिये यह अत्यन्त मूल्यवान अधिकार हैं। मैं अपने मित्रों से, जोकि कल यह समझते थे कि वे प्रावधान अल्पसंख्यकों के अधिकारों के लिये पर्याप्त अभिरक्षण नहीं हैं, कहता हूं कि अल्पसंख्यकों का अन्तिम अधिकार बहुसंख्यकों की सद्भावना है। व्यक्तिगत रूप में मेरा ख्याल है कि बहुसंख्यक इस विषय में चिर सीमा तक पहुंच गये हैं। मैं एक बात और भी बता दूं कि मूलाधिकार-समिति विभाजन से पूर्व बनी थी। वास्तव में विभाजन से पूर्व ही इस रूप में इन अधिकारों को तैयार

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

किया गया था। अल्पसंख्यकों के अधिकार इस आधार पर रखे गये थे कि विभाजन नहीं होगा। फिर भी हमने उनमें कोई परिवर्तन नहीं किया है। मैं एक गुप्त भेद नहीं बता रहा हूं जब कि मैं कहता हूं कि हमारे महान् नेता सरदार पटेल ने हमें कहा था—"कृपया इन धार्मिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों में हस्तक्षेप मत करिये, क्योंकि वे विभाजन से पूर्व के एक समझौते का भाग हैं।" यदि कोई कहता है कि यह अधिकार अपर्याप्त हैं तो यह कृतघ्नता की पराकाष्ठा है। मेरे विचार में हमने ऐसे अधिकार प्रत्याभूत किये हैं, जिनके लिये सम्भवत: हमारे लोग भविष्य में कहेंगे कि हमने इन अधिकारों के विषय में सौदा किया है। हमने अभी घोषणा की है कि शिक्षालयों में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। हमारे 30 करोड़ लोग हिन्दू हैं, किन्तु उन्हें शिक्षालयों में विश्व-मान्य धार्मिक पुस्तक गीता के भी पढ़ने का अधिकार नहीं होगा। हमने ऐसा क्यों किया है? क्योंकि उस समय विभाजन से पहले यह सोचा गया कि यहां विभिन्न धर्म होने के कारण धर्म शिक्षा नहीं होनी चाहिये। अब जबकि 33 करोड़ में से केवल तीन करोड़ ही अल्पसंख्यक हैं, तब भी बहुसंख्यक अपने बच्चों को अपनी जाति के धार्मिक सिद्धान्त पढ़ाने के अवसर का परित्याग कर रहे हैं। फिर भी हमने इन अधिकारों को नहीं बदला है क्योंकि हमारे नेता ने इनमें हस्तक्षेप करने के लिये हमें मनाही कर दी है। मेरे विचार में बहुसंख्यकों ने अल्पसंख्यकों को कितना आश्रय देने का प्रयत्न किया है, इस बात का ध्यान रखा जायेगा और यह ठीक नहीं होगा कि कोई आगे बढ़ कर जोर-जोर से बहुसंख्यकों को गालियां दे कि उन्होंने पर्याप्त अभिरक्षण नहीं रखे हैं। मेरे विचार में अल्पसंख्यकों की असली प्रत्याभूति बहुसंख्यकों की सद्भावना हैं। मुझे आशा है कि इन मूलाधिकारों के आधार पर हम इस देश में ऐसा राज्य स्थापित कर सकेंगे जो कि हमारे महान् नेता राष्ट्रपिता के आदर्शों पर आधारित होगा तथा उनसे प्रेरणा प्राप्त करेगा, जिससे कि हम इस देश में सचमुच एक लौकिक राज्य बना सकेंगे, ऐसा राज्य जो महात्मा गांधी के आदर्शों पर आधारित हो।

श्रीमान्, इन शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***प्रोफेसर एन.जी. रंगा** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं उन मित्रों की युक्तियों को समझने में असमर्थ हूं जो कि खण्ड (4) को हटवाना चाहते हैं और जो सद्यस्कृत्यस्थिति में अनुच्छेद 280 के अधीन इन मूलाधिकारों को निलम्बित करने की शक्ति गणराज्य के प्रधान को नहीं देना चाहते। श्रीमान्, अनेक वक्ताओं ने कहा है कि यह अनुच्छेद हमारे देश में वैयक्तिक स्वतन्त्रता की

महान्तम प्रत्याभूति है और जो सर्वोच्च न्यायालय स्थापित किया जा रहा है वह हमारे लोगों की आज़ादी का सबसे बड़ा समर्थक होगा। किन्तु क्या उन लोगों ने इस बात पर विचार किया है कि जैसे व्यक्तियों तथा वर्गों के अधिकार होते हैं उसी प्रकार सामूहिक रूप से समाज को भी, उन लोगों तथा वर्गों के विरुद्ध जो कि हिंसात्मक उपायों से उस समाज को नष्ट करने तथा सामाजिक व्यवस्था को बिगाड़ने तथा सामाजिक संगठन को खण्डित करने पर तुले हुये हैं, कुछ अधिकार होते हैं? श्रीमान्, क्या यह सत्य नहीं है कि इस शताब्दि की हाल की दशाब्दियों में भिन्न-भिन्न देशों में संगठित वर्गों ने और अल्पसंख्यकों ने सामाजिक व्यवस्था को बिगाड़ने के तथा बहुसंख्यक जनता के ही सामाजिक जीवन को नष्ट करने के ऐसे ही प्रयत्न किये हैं? तब फिर विभिन्न देशों में बहुसंख्यक जनता की सामाजिक व्यवस्था तथा सामाजिक अधिकारों के बने रहने की ही क्या प्रत्याभूति है, यदि थोड़े से अल्पसंख्यक संगठित रूप से हिंसात्मक प्रयास करें? इस संविधान में और इस अनुच्छेद में ऐसे समाज के अभिरक्षण के लिये कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया है। यह कहा जा सकता है कि राज्य के लिये संरक्षण की व्यवस्था की गई है; किन्तु क्या यह सत्य नहीं है कि जर्मनी और इटली में हिंसात्मक कार्यों के निमित्त संघटित लोगों का एक गिरोह राज्य पर अधिकार करने में समर्थ हो गया था और उसने बाद में सारे समाज को ध्वंस कर दिया और बहुसंख्यक लोगों के मूलाधिकारों को नष्ट कर दिया? क्या यह सत्य नहीं है कि सोवियत रूस में आज भी संगठित अल्पसंख्यक-वर्ग ही अधिकारारूढ़ है और राज्य पर अधिकार किये हुये है, और वहां समस्त बहुसंख्यक लोगों को ही नहीं बल्कि उन व्यक्तियों को भी इन मूलाधिकारों से वंचित करने में समर्थ है जिनकी कि आपने अपने विधान में व्यवस्था कर रखी है। अतएव, श्रीमान्, हमारे लिये इस गम्भीर आवश्यकता को ध्यान में रखना उचित होगा कि समाज को भी उन संगठित अल्पसंख्यकों द्वारा की जाने वाली हिंसा के विरुद्ध अपना बचाव करना है जो कि हिंसा के प्रयोग पर तुले हुये हैं तथा हिंसा का प्रयोग करना चाहते हैं। मेरे मित्र श्री पोकर ने मद्रास की घटनाओं से एक प्रकार का हौवा बनाने का प्रयत्न किया है। ऐसी ही बातें अन्य प्रान्तों में भी आसानी से हो सकती थीं। क्या, श्रीमान्, हम इस बात से इन्कार कर सकते हैं या कोई और इन्कार कर सकता है कि उस समय मद्रास प्रदेश में ऐसे लोग थे, जिन्होंने कि दक्षिण में हमारे अपने ही समाज का ध्वंस करने के लिये सारे हिंसात्मक साधनों का प्रयोग करना अपना काम बना लिया था, जिससे कि वे ऐसे लोगों के एक गिरोह की सहायता कर सकें जो कि भारत तथा राज्य के शत्रु बन गये थे, भारतीय राज्य के भी और प्रान्तीय राज्यों के भी? श्रीमान्, मद्रास सरकार ने इन लोगों को पकड़ लिया, अस्थायी समय के

[प्रो. एन.जी. रंगा]

लिये उनकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया, जिससे कि वे रज़ाकारों की सहायता न कर सकें और रज़ाकारों ने हमारे देश के एक भाग विशेष में जो हिंसात्मक उपाय तथा तरीके अपनाये थे, उनमें सहयोग न दे सकें। इसके अतिरिक्त मद्रास सरकार कर भी क्या सकती थी? यह मित्र इस बात से इंकार नहीं कर सकते कि इन मित्रों में बहुत से लोगों का, जिनकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ा था, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूपेण उन व्यक्तियों से गठबन्धन था, जो कि रज़ाकार संगठन से सम्बन्धित थे; और ऐसी परिस्थिति में किसी भी समाज के लिये अपनी रक्षा करने का और क्या उपाय था, सिवाय इसके कि वह इन मित्रों से कहता कि उन्हें सीमा में रहना चाहिये और यदि वे स्वयं ऐसा नहीं कर सकते हैं तो यह समाज का, राज्य का कर्त्तव्य होगा कि कुछ समय के लिये इन लोगों की स्वतन्त्रता को सीमित कर दे।

श्रीमान्, दूसरी बात यह है कि हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि आज दो विचार—धाराओं के बीच विश्वव्यापी संघर्ष चल रहा है। एक ओर सर्वतन्त्रवाद है और दूसरी ओर जनतंत्रवाद है। इस संघर्ष में हमें निर्णय करना है कि हमें क्या करना चाहिये। वही समाज और वे ही व्यक्ति इन मूलाधिकारों की रक्षा कर सकते हैं, जो कानून का उचित सम्मान करते हों, जो अपने साथ-साथ दूसरे लोगों के मूलाधिकारों का उचित सम्मान करते हों, और इस कारण जो उत्तरदायित्व तथा संयम की उचित भावना से आचरण करने के लिये उद्यत हों। जहां भी ऐसी स्थितियां नहीं हैं और जहां भी ऐसे वर्ग और दल हैं जो कि संगठन करके राज्य को नष्ट करना तथा उस पर अधिकार करना अपना काम बना लेते है, वहां निस्संदेह किसी राज्य अथवा समाज के लिये सम्भव नहीं होगा कि वह इन मूलाधिकारों का सम्मान करे। इन मूलाधिकारों की पूर्ति के लिये यह प्रथम आवश्यकता है। श्रीमान्, यह एक सुविख्यात तथ्य है कि इन मूलाधिकारों की कल्पना उन कठोर विपत्तियों से उत्पन्न हुई है जो कि लोगों को समस्त संसार के विभिन्न देशों में गत दो शताब्दियों में सहनी पड़ी हैं। यह सब पवित्र अधिकार हैं, ऐसे अधिकार हैं जो विभिन्न देशों के लोगों के अनुभव के आधार पर रखे गये हैं। यह सब ठीक है, किन्तु इन अधिकारों को क्यों स्वीकार किया जा रहा है और क्यों मांगा जा रहा है? क्योंकि व्यक्ति का व्यक्तित्व अखण्ड है। व्यक्ति ऐसा ही अखण्ड है जैसा कि समाज होता है। समाज को तथा राज्य को हर कीमत पर प्रत्येक सम्भावित उपाय से व्यक्ति की स्वतंत्रता का अभिरक्षण करना है। यदि उस समाज का जीवन ही जोखिम में पड़ जाये, तो...

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्त प्रान्त : मुस्लिम): हड़ताल करने के अधिकार के विषय में क्या है?

***उपाध्यक्षः** मौलाना साहब, कृपया हस्तक्षेप मत करिये।

***प्रोफेसर एन.जी. रंगाः** हड़तालों के विषय में स्वयं महात्मा गांधी ने पहले ही इसका उत्तर दे दिया है। किसी के लिये भी हड़ताल करना सम्भव है, अथवा लोगों के वर्गों द्वारा हड़ताल करना सम्भव है, पर शर्त यह है कि वे अंहिसात्मक रहें। ज्यों ही वे अहिंसा की सीमा को पार करें और दूसरों के विरुद्ध, जोकि हड़तालों के विषय में उनकी कार्य-प्रणाली में विश्वास नहीं करते, हिंसा का प्रयोग करें, चाहे उन्हें आप हड़ताल कहें चाहे काम बन्द करना कहें, उन पर रोक लगा देनी पड़ेगी और इन हड़तालों में भाग लेने वाले लोगों के साथ केवल वैसा ही व्यवहार करना होगा, जैसा कि समाज अपने अभिरक्षण के लिये सम्भवतः कर सकता है। श्रीमान्, हमें याद रखना चाहिये कि व्यक्ति आकाश में नहीं रह सकता है, उसे समाज में ही रहना है। अतः किसी व्यक्ति द्वारा मूलाधिकारों की पूर्ति के लिये सर्वप्रथम शर्त समाज का अस्तित्व है, जिसके लिये मूल बात, जिसकी शक्ति का आधार उसका अपना संगठन है। अतः जो व्यक्ति सामाजिक जीवन में विश्वास नहीं करते, जो समाज-विरोधी हैं, जो समाज को नष्ट-भ्रष्ट करने पर ही तुले हुये हैं, उन्हें इन मूलाधिकारों की प्राप्ति तथा उपभोग की आशा नहीं करनी चाहिये। यह एक अत्यन्त उचित शर्त है जो प्रत्येक व्यक्ति को पूरी करनी होती है।

दूसरी बात यह है कि किसी व्यक्ति अथवा वर्ग के मूलाधिकारों की पूर्ति सर्वोच्च न्यायालय भी उतनी नहीं कर सकता, जितनी कि उन मूलाधिकारों की रक्षा करने तथा आवश्यक त्याग करने की उस व्यक्ति अथवा वर्ग की क्षमता कर सकती है। वह दो प्रकार से उनकी रक्षा कर सकता है। एक पाश्चात्य जगत् की प्रणाली है जिसमें हिंसा का आश्रय लेना पड़ता हैं। दूसरा महात्मा गांधी का मार्ग है, यानी सत्याग्रह का। कोई सत्याग्रही अपने विचारों को व्यक्त करने में, अपनी कार्यवाहियों में, दूसरों को भड़काने में, और समाज को पलटने के लिये वह और जो विभिन्न उपाय प्रयोग करता है उनमें, एक ही समय अहिंसात्मक तथा हिंसात्मक दोनों नहीं हो सकता। सत्याग्रही को एक विशेष प्रकार का व्यक्ति बनना पड़ता है, वह अन्य व्यक्तियों से उसी मात्रा में भिन्न होता है जिस मात्रा में कि वह संयमपूर्वक कार्य कर सकता है तथा अपने शिष्यों से भी कह सकता है कि वे संयम रखें और मनसा, वाचा, कर्मणा अहिंसा का पालन करें। ऐसा सत्याग्रही तो सदा ही अपने मूलाधिकारों की रक्षा कर सकता है। किन्तु यह सोच कर कि प्रत्येक मनुष्य सत्याग्रही नहीं बन सकता और साधारण लोगों का अभिरक्षण करना अपेक्षित है, यह मूलाधिकार इस अध्याय में रखे जा रहे हैं। अतः जो इन

[प्रो. एन.जी. रंगा]

मूलाधिकारों का उपभोग करना चाहते हैं, और अपने उपभोग का अभिरक्षण करना चाहते हैं, उन्हें समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का विशेषत: पालन करना होगा। ऐसे वर्ग हो सकते हैं और इस देश में हैं भी, ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं और वे इस देश से पर्याप्त संख्या में हैं जोकि समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों में विश्वास नहीं करते, किन्तु जो इन मूलाधिकारों से यथासम्भव अधिकाधिक लाभ उठाना चाहते हैं। श्रीमान्, हम जानते हैं कि कुछ ऐसे इश्तिहारबाज़ हैं, हम जानते हैं कि कुछ ऐसी संस्थायें हैं, हम यह भी जानते हैं कि कुछ ऐसे साम्प्रदायिक समर्थक हैं जो इन स्वतन्त्रताओं से अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं ऐसी अवस्था में समाज को क्या करना होगा? यदि वे केवल उपेक्षणीय महत्त्व के हैं तो उन्हें रोकना साधारण कानून का कार्य है। किन्तु दूसरी ओर यदि वे अत्यन्त शक्तिशाली और वाचाल हो जायें तो उन्हें राज्य को ही ठीक करना होगा, और यदि वे प्रान्तव्यापी अथवा देशव्यापी हो जाते हैं तो गणतन्त्र के प्रधान का कर्त्तव्य होगा कि अनुच्छेद 280 का प्रयोग करे तथा सद्यस्कृत्यस्थिति घोषित कर दे और मूलाधिकारों को निलम्बित कर दे और इन सज्जनों के साथ यथायोग्य बर्ताव करे।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर रंगा वाचाल अल्पसंख्यकों के साथ भी ऐसा बर्ताव करना चाहते हैं?

***प्रोफेसर एन.जी. रंगा:** हां, किन्तु केवल उन्हीं लोगों के साथ, जोकि बिना किसी जिम्मेवारी की भावना के, बिना किसी संयम के और बिना किसी सदाचार की भावना के दूसरों को गालियां देने में वाचाल हैं, और हम जानते हैं कि हमारे यहां ऐसे पर्याप्त लोग थे जिनके कारण काफी उपद्रव हुये और...

***उपाध्यक्ष:** आप जो उत्तर दे चुके हैं वह काफी है।

***प्रोफेसर एन.जी. रंगा:** धन्यवाद, श्रीमान्! तो फिर, श्रीमान्, यह सच है कि बहुसंख्यक भी पागल बन सकते हैं, और इस कारण लोगों को उनके अन्याय से बचाना होता है। बहुसंख्यक संगठित ढंग से भी और बिना संगठित हुए भी पागल बन सकते हैं। यदि वे बिना संगठित तरीके के, बिना राज्य के अथवा समाज के अथवा किसी के नेतृत्व के ही पागल बन जाते हैं तो राज्य का यह कर्त्तव्य है कि बीच में पड़कर इन लोगों को यथासम्भव ठीक करे, चाहे उससे राज्य का अस्तित्व ही जोखिम में क्यों न पड़ जाये। जो राज्य अपने संगठित अथवा

असंगठित बहुसंख्यकों को, विभिन्न लोगों को, चाहे फिर यह लोग संगठित हों अथवा असंगठित, मनमाने ढंग से दण्ड देने से नहीं रोक सकता, उस राज्य को जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है। किन्तु दूसरी ओर, यदि बहुसंख्यक संगठित हों तथा वे राज्य के ही द्वारा प्रकार्य करना आरम्भ करते हों तो इन मूलाधिकारों को कौन प्रत्याभूत करेगा और कौन इनकी रक्षा करेगा? यह कहा जा सकता है कि सर्वोच्च न्यायालय से ऐसा करने की प्रत्याशा की जायेगी। यह भी सर्वथा सम्भव है कि जब कोई संगठित अल्पसंख्यक राज्य के द्वारा प्रकार्य कर रहे हों और इस प्रकार दुर्व्यवहार करना आरम्भ कर दें तो सर्वोच्च न्यायालय व्यर्थ हो सकता है जैसा कि नात्सी जर्मनी और फैसिस्ट इटली में हुआ था। तब इन व्यक्तियों अथवा वर्गों के लिये क्या प्रत्याभूति है? प्रोफेसर लास्की की एक पुस्तक है जिसका नाम है 'आधुनिक राज्य में स्वातन्त्र्य' जिसमें...

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): किन्तु इसमें युक्ति क्या है? इस समय आप जो कुछ कह रहे हैं, उसका इस बात से क्या सम्बन्ध है, जिस पर वाद-विवाद हो रहा है?

***प्रोफेसर एन.जी. रंगा:** वहां उन्होंने इस बात को स्पष्ट किया है कि....

***उपाध्यक्ष:** श्री शर्मा यह जानना चाहते हैं कि इस समय आप जो कुछ कह रहे हैं वह किस हद तक विवादाधीन अनुच्छेद से सम्बन्धित है।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, यह तो आपको निश्चय करना है।

***उपाध्यक्ष:** किन्तु मैं प्रोफेसर रंगा की बात सुनना चाहता हूं, मेरे विचार में कुछ सम्बन्ध अवश्य है चाहे कितना ही कम हो।

***प्रोफेसर एन.जी. रंगा:** सर्वोच्च न्यायालय से आशा की जाती है कि वह वन्ध्युपस्थापन, परमादेश और अन्य प्रकार के लेख निकाले। यदि कोई संगठित दल हो जो सर्वोच्च न्यायालय के इन लेखों को मानने से इन्कार कर दे तो इन मूलाधिकारों की क्या प्रत्याभूति है? यह सम्बन्ध है। मेरा उत्तर है कि ऐसी अवस्था में प्रत्येक वर्ग का कर्त्तव्य सत्याग्रह करना है, पर शर्त यह है कि सत्याग्रह गांधीजी की पद्धति से, अहिंसात्मक प्रणाली से और आत्मत्याग की प्रणाली से चलाया जाये तथा किया जाये। इन शर्तों के अनुसार सत्याग्रह किया जा सकता है। यही शस्त्र है जो कि महात्मा गांधी ने इस देश के लिये तैयार किया था।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, क्या सत्याग्रह करने का अधिकार भी मूलाधिकार है?

***प्रोफेसर एन.जी. रंगाः** श्रीमान्, मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि यह आप के सारे मूलाधिकारों का आधार है। किन्तु सत्याग्रह को किसी संविधान में सन्निहित करने की आवश्यकता नहीं है। यह तो लोगों की त्याग करने की तथा स्वयं भी बलिदान हो जाने की क्षमता में ही सन्निहित होता है। संसार में इन मूलाधिकारों की कल्पना इसी कारण उत्पन्न हुई कि संसार के इतिहास में ऐसे लोग थे जो कि स्वयं-बलिदान होने के लिये उद्यत थे जिससे कि यह मूलाधिकार स्थापित हो सकें, जिससे कि समस्त सभ्य संसार में और सारे जनतंत्रात्मक जगत् में इस कल्पना को मूलाधिकारों के रूप में स्वीकार कर लिया जाये।

अन्त में, श्रीमान्, मैं एक चेतावनी भी देना चाहता हूं। हमें स्मरण रखना चाहिये कि हम इन अधिकारों का प्रयोग जनतंत्र की परिधि में ही कर सकते हैं, और जब भी जनतंत्र की भावना को ही गम्भीर जोखिम हो, जनतंत्र के प्रकार्यों की पूर्ति में तथा जनतंत्र की संस्थाओं को ही भय हो, तब राज्य का तथा हमारे गणराज्य के प्रधान का यह कर्त्तव्य होगा कि वह लोगों की रक्षार्थ इन मूलाधिकारों को ताक में रख दें। हां, हमारे मित्र, जिनका दावा है कि वे किसी प्रकार के अल्पसंख्यक हैं, इससे घबरा रहे हैं। किन्तु मैं उन्हें इस प्रकार की चेतावनी देना चाहता हूं। हो सकता है कि उनका धर्म सर्वाधिकारों की प्राप्ति की ओर उन्मुख हो, हो सकता है कि उनका मत सर्वाधिकारों की प्राप्ति का हो, किन्तु इस देश में सर्वाधिकारवाद के लिये कोई स्थान नहीं है; और यदि कभी कोई वर्ग अथवा व्यक्ति इस देश में सर्वाधिकारवाद की स्थापना करना चाहे, विशेषतः सर्वाधिकारी राज्य की स्थापना करना चाहे तो सर्वोच्च न्यायालय का तथा इस देश के गणराज्य के प्रधान का यह पवित्र कर्त्तव्य होगा कि वह देखे कि हर स्थिति में संविधान बना रहता है तथा उन लोगों अथवा वर्गों को इन मूलाधिकारों का ऐसा प्रयोग नहीं करने दिया जाता है जिससे कि हमारे समाज की हानि हो।

***उपाध्यक्षः** श्री रोहिणी कुमार चौधरी! आप कृपया संक्षेप में बोलें।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, यह प्रथम अवसर है कि मैं इन पुस्तकों को अपनी मेज पर लाया हूं, और मेरे इन पुस्तकों को लाने के कारण परिषद् को भयभीत नहीं होना चाहिये, कि मैं अनावश्यक ही लम्बी अथवा अप्रसंगानुकूल वक्तृता दूंगा। श्रीमान्, मैं आपको एक

बार और बताना चाहता हूं कि जहां तक घण्टी की ध्वनि का सम्बन्ध है मुझे कुछ कम सुनाई देता है, किन्तु जब कानाफूसी के द्वारा दोषारोपण किया जाता है, तो उसे मैं सर्वथा ठीक सुन सकता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अच्छा होता यदि यह बात मुझे पहले विदित होती, तो मैं आपको ध्वनि-यन्त्र पर ज़रा सोच समझ कर बुलाता।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** श्रीमान्, मैं इस अनुच्छेद का स्वागत करता हूं क्योंकि यदि इस अनुच्छेद द्वारा हमें सर्वोच्च न्यायालय से न्याय प्राप्त करने का अधिकार नहीं दिया जाता, तो इन मूलाधिकारों का उल्लेख व्यर्थ होता। मि. नज़ीरुद्दीन अपना संशोधन पेश करते समय क्यों शर्मीले से थे, यह मैं खूब समझता हूं। जो मनुष्य सदा मसौदे की भाषा सम्बन्धी साधारण त्रुटियों को ही ढूंढता रहता था, अन्ततोगत्वा वही भाषा-सम्बन्धी भूल करते हुये पकड़ा गया। उनकी गलती का सबको पता लग गया, और उन्होंने इसे मान भी लिया कि उनका सारा संशोधन स्पष्ट नहीं हैं। किन्तु मैं निवेदन करूंगा कि वे जो अर्थ चाहते थे वह अनुच्छेद द्वारा ही व्यक्त हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को सर्वोच्च न्यायालय में जाने का अधिकार होगा, जब भी वह यह देखें कि किसी मूलाधिकार का उल्लंघन हुआ है। फर्ज़ किया, हम यह कहना चाहते हैं कि क्वीन्सवे यातायात के लिये खुला है तो इसके लिये किसी को यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रत्येक मनुष्य को क्वीन्सवे में से होकर जाने का अधिकार है। इसी प्रकार यह अनुच्छेद अपने वर्तमान रूप में ही पूर्णत: स्पष्ट है, और मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन की आवश्यकता नहीं है।

मैं इस प्रावधान का भी स्वागत करता हूं, जो कि यहां रखा गया है, कि कुछ अवस्थाओं में सर्वोच्च न्यायालय अपनी शक्तियां कुछ अन्य न्यायालयों को दे सकता है। यह आसाम और कुर्ग जैसे दूरस्थ स्थानों के लिये विशेषत: एक अच्छी बात होगी, क्योंकि ऐसी दूर वाली जगहों के लोगों के लिये सर्वोच्च न्यायालय में आकर न्याय मांगना अत्यन्त कठिन होगा, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय अवश्य ही युक्तप्रान्त अथवा दिल्ली में कहीं स्थित होगा। किन्तु साथ ही मैं यहां यह कहना चाहता हूं कि इस प्रकार शक्ति प्रदान करने के अधिकार का बहुत ही कम प्रयोग होना चाहिये, क्योंकि आखिर सर्वोच्च न्यायालय के व्यक्ति उच्च न्यायालय के व्यक्तियों से निस्संदेह अधिक योग्य होंगे। अत: किन्तु प्रान्त के लिये सर्वोच्च

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

न्यायालय में आने की सम्भावना को हटा देना तथा उच्च न्यायालय को सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार दे देना कुछ-कुछ परस्पर विरोधी बात होगी।

अब मैं अनुच्छेद 25 के चतुर्थ खण्ड को लेता हूं। मैं चाहता था कि मैं अपने माननीय मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर से पहले बोल लेता, क्योंकि मुझे इस खण्ड के विषय में जो कठिनाइयां मालूम होतीं वे उनमें से कुछ को समझा देते। इसके अतिरिक्त मैं और परिषद् के अधिकांश सदस्य हमारे माननीय मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर को प्राचीन गुरु द्रोणाचार्य के समान समझते हैं जो अपने व्यक्तिगत विचारों अथवा अनुभवों की चिंता न करते हुये मसौदे के लेखकों के मन्तव्यानुसार इन प्रावधानों का उचित अर्थ समझा सकते हैं। मैं गलती पर हो सकता हूं किन्तु मेरा विचार है कि खण्ड (4) नहीं रखना चाहिये था, अथवा इस खण्ड में मूल परिवर्तन होने चाहियें। मूलाधिकार तो स्वभावत: ही ऐसे अधिकार हैं जिन्हें लोगों से कभी नहीं छीनना चाहिये। इस खण्ड के अनुसार इन अधिकारों को सद्यस्कृत्यस्थिति में छीना जा सकता हैं। अनुच्छेद 280 में लिखा है कि सद्यस्कृत्यस्थिति में प्रधान समूचे अनुच्छेद 25 को निलम्बित रख सकता है। हमें यह देखना चाहिये कि इस निलम्बन का क्या परिणाम होगा, इसका क्या बुरा प्रभाव होगा और क्या सम्भावित अच्छा परिणाम हो सकता है। इस निलम्बन का बुरा परिणाम यह होगा कि सद्यस्कृत्यस्थिति में आप अनुच्छेद 11 की उपेक्षा कर सकते हैं जो कि अस्पृश्यता के विषय में है। इसका यह अर्थ हुआ कि ऐसी बहुत-सी परिस्थितियों की कल्पना की जा सकती है जब कि राज्य अथवा कोई व्यक्ति अनुच्छेद 11 का उल्लंघन कर सकता है और दण्ड से बच सकता है। सद्यस्कृत्यस्थिति में कोई राज्य, कोई मन्दिर अथवा कोई प्राधिकारी अनुच्छेद 11 के विपरीत आचरण कर सकता है। क्या यह परिषद् इस विचार का समर्थन करती है? क्या परिषद् किसी भी अवस्था में अनुच्छेद 25 के सम्बन्ध में विधान के निलम्बन के लिये तैयार है और जो लोग इसके विरुद्ध आचरण करें, उन्हें बिना दण्ड दिये छोड़ने के लिये तैयार है?

अब हम अनुच्छेद 17 को लेते हैं जिसमें मानव-पणन का वर्जन किया गया है। क्या परिषद् इस बात से सहमत है कि विधान के निलम्बन का यह प्रभाव होना चाहिये कि लोग दण्ड से अभय होकर मानव-पणन कर सकें? मैं कहता हूं कि ऐसी स्थिति वास्तव में उत्पन्न हो सकती है। गत युद्ध को याद रखिये, जब कि युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये वास्तव में मानव-पणन

किया गया था। आखिर महिला सेविकायें (Women's Volunteer Service) क्या थीं? डब्ल्यू.ए.सी. क्या थी? सबको पता है कि किस लिये महिला सहायक-सेना का संगठन किया गया था और वे क्या प्रकार्य करती थीं। वहां मानव-पणन वास्तव में होता था और युद्ध में भिन्न-भिन्न नगरों में होता था, जहां कि सेनाओं का साहस बनाये रखने के लिये महिलाओं को नृत्य तथा अन्य कार्यों के लिये वास्तव में रखा गया था। क्या अनुच्छेद 25 का निलम्बन करके आप सद्यस्कृत्यस्थिति में, जिसकी कि युद्धकाल में अधिक चर्चा होती है, इस प्रकार के मानव-पणन की सम्भावना की ओर उन्मुख हैं? अतएव मैं चाहता हूं कि इस अन्तिम खण्ड को—इस अनुच्छेद के चौथे खण्ड को—या तो हटा देना चाहिये या इसमें ऐसा संशोधन कर देना चाहिये कि किसी भी समय पूरे अनुच्छेद का स्थगन करना सम्भव न हो, किन्तु इसे कुछ अत्यन्त अनिवार्य परिस्थितियों में स्थगित किया जा सके। किन्तु वास्तव में मुझे ऐसी कोई भी परिस्थिति ही दिखाई नहीं देती जब कि आपके लिये इस अनुच्छेद को किसी प्रकार स्थगित करना आवश्यक हो जाये। सद्यस्कृत्यस्थिति में आप केवल अनुच्छेद 13 को ही स्थगित करना चाहेंगे जिसमें कि वक्तृता की स्वतन्त्रता, समागम की स्वतन्त्रता और इन सब बातों की चर्चा है। सद्यस्कृत्यस्थिति में अथवा जब वास्तव में युद्ध हो रहा हो, तब वक्तृता की स्वतन्त्रता, और समागम की स्वतन्त्रता और उस अनुच्छेद में उल्लिखित अन्य अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक हो सकता है। किन्तु उस अनुच्छेद के भी प्रत्येक भाग में ऐसे प्रावधान हैं जो राज्य को इन अधिकारों को कम करने की शक्ति देते हैं। जहां तक कि उस अनुच्छेद का सम्बन्ध है, उसमें स्वयं ही ऐसी सीमाओं और प्रतिबन्धों का उल्लेख है, जो कि सद्यस्कृत्यस्थिति में अत्यन्त आवश्यक होते हैं। उस प्रयोजन से तो अनुच्छेद 25 को निलम्बित करना आवश्यक नहीं है। अतएव मेरी तुच्छ सम्मति के अनुसार तो मैं यही निवेदन करना चाहता हूं कि सब दृष्टिकोणों से इस खण्ड (4) को हटा देना अथवा इसमें समुचित संशोधन करना ही अच्छा होगा, किन्तु मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर अथवा परिषद् के कोई और सदस्य जो व्याख्या करें, उससे मेरा विचार बदल भी सकता है।

***पण्डित लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): क्या आपका यह सुझाव है कि अनुच्छेद 280 को हटा देना चाहिये?

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं अपनी वक्तृता में अनुच्छेद 280 की चर्चा कर रहा था।

***उपाध्यक्षः** आपको इसका उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद पर जितने संशोधन रखे गये हैं, उनमें से मैं केवल संशोधन संख्या 789 को स्वीकार करता हूं कि मि. बेग के नाम से था किन्तु वास्तव में मि. नज़ीरुद्दीन अहमद द्वारा पेश किया गया था। मैं इसे इस कारण स्वीकार करता हूं कि इससे मसौदे की भाषा में निस्संदेह सुधार हो जाता है। अन्य संशोधनों में से मैं सर्वप्रथम मि. तजम्मुल हुसैन के संशोधन (संख्या 801) तथा मि. करीमुद्दीन के संशोधन (संख्या 802) को लेता हूं। दोनों एक से ही प्रकार के हैं। मि. तजम्मुल हुसैन द्वारा प्रस्तुत संशोधन का उद्देश्य इस अनुच्छेद के उपखण्ड (4) को बिल्कुल ही निकाल देना है और मि. करीमुद्दीन का संशोधन है कि उपखण्ड (4) में 'विद्रोह अथवा आक्रमण की अवस्था में' इन शब्दों को प्रविष्ट करके उसकी भाषा को सीमित कर दिया जाये।

अब, श्रीमान्, यह जो तर्क दिया गया है कि खण्ड (4) को हटा देना चाहिये, इसके विषय में, मुझे भय है, यदि मैं बिना किसी को बुरा लगे ऐसा कह सकूं तो यह बहुत बड़ी मांग है, बहुत बड़ी आज्ञा है। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि ऐसे कुछ मूलाधिकार हैं जिनकी राज्य को व्यक्ति के लिये प्रत्याभूति देनी चाहिये, जिससे कि व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास की कुछ सुरक्षा और स्वतन्त्रता हो, किन्तु यह भी समान रूप से स्पष्ट है कि कुछ अवस्थाओं में, जहां कि उदाहरणार्थ, राज्य का जीवन ही जोखिम में हो, उन अधिकारों पर कुछ न कुछ प्रतिबन्ध होना चाहिये। साधारण, शान्तिपूर्ण समय सद्यस्कृत्यस्थिति से सर्वथा भिन्न होते हैं। सद्यस्कृत्यस्थिति के समय में राज्य का जीवन ही जोखिम में होता है और यदि राज्य उस समय अपनी रक्षा करने में समर्थ न हो सके, तो स्वयं व्यक्ति अपने अस्तित्व को ही खो देगा। परिणामतः व्यक्ति के अधिकार के समान ही राज्य को भी सद्यस्कृत्यस्थिति में अपनी रक्षा करने का महान् अधिकार प्राप्त होना चाहिये और इसकी प्रत्याभूति देनी होगी, जिससे कि राज्य उस संकटकाल को पार कर जाये और अपने प्रकार्यों की पूर्ति करने के लिये जीवित रहे, जिससे कि राज्य की छत्रछाया में व्यक्ति का विकास हो सके। मैंने ऐसा कोई विधान नहीं देखा जो मूलाधिकार देता हो किन्तु ऐसे रूप में देता हो कि सद्यस्कृत्यस्थिति में व्यक्ति के अधिकारों को कम करके अपनी रक्षा करने का अधिकार राज्य को न देता हो। आप जो चाहें वही विधान ले लीजिये, जिसमें मूलाधिकारों की प्रत्याभूति दी गई हो; आप उसमें यह भी देखेंगे राज्य के लिये ऐसा प्रावधान रखा गया है कि वह

इनको सद्यस्कृत्यस्थिति में स्थगित कर सके। अतः जहां तक खण्ड (4) को हटा देने का सम्बन्ध है, यह एक सिद्धान्त का प्रश्न है और मुझे भय है कि मैं उस संशोधन के प्रस्तावक से सहमत नहीं हो सकता और मुझे उसका विरोध करना ही होगा।

अब, श्रीमान्, मैं विस्तारपूर्वक कहता हूं। मेरे मित्र मि. तजम्मुल हुसैन ने मूलाधिकारों के अध्यय में समाविष्ट बहुत से अनुच्छेदों की चर्चा करके बहुत निराशाजनक चित्र खींचा था। उन्होंने कहा था कि देखो, पानी भरने का अधिकार है, दुकान में प्रवेश करने का अधिकार है, स्नानघाट पर जाने की स्वतन्त्रता है। यह सब बताते हुये उन्होंने यह सुझाव रखा था कि जब खण्ड (4) लागू होगा तब मूलाधिकारों में प्रत्याभूत समस्त साधारण मानवीय अधिकार भी समाप्त हो जायेंगे जिनमें कि किसी मनुष्य का कुएं पर जाकर पानी पीने, सड़क पर चलने, किसी चलचित्र अथवा नाटक में अबाधरूपेण जाने के अधिकार सम्मिलित हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि मेरे मित्र मि. तजम्मुल हुसैन के मन में यह विचार कैसे उत्पन्न हो गया। यदि वे अनुच्छेद 279 को देखें, जिसमें कि सद्यस्कृत्यस्थिति की घोषणा करने के सम्बन्ध में प्रधान के अधिकार का प्रावधान है, तो उन्हें पता लगेगा। खण्ड (4) में इन अधिकारों के निलम्बन की जो चर्चा है वह केवल अनुच्छेद 13 के ही सम्बन्ध में है, अन्य किसी अनुच्छेद के विषय में नहीं है। प्रधान द्वारा सद्यस्कृत्यस्थिति की घोषणा होने पर केवल अनुच्छेद 13 में उल्लिखित अधिकारों का ही निलम्बन होगा; और अन्य समस्त अनुच्छेद तथा उनमें प्रत्याभूत अधिकार ज्यों के त्यों रहेंगे, उनमें से किसी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अतएव उन्होंने परिषद् में जो तर्क उपस्थित किये हैं वह अनुच्छेद 273 में सन्निहित प्रावधानों के बिल्कुल बाहर की चीज़ हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** अनुच्छेद 280 के विषय में आप क्या कहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इसमें तो केवल इतना ही किया गया है कि उपचार का निलम्बन कर दिया गया है। मैं सोचता था कि मैं उस विषय में तब कुछ कहूंगा जब कि मैं इन उपचारों के व्यापक प्रश्न को लूंगा, अतः मैंने इसकी यहां चर्चा नहीं की थी।

अब मैं मि. करीमुद्दीन के तर्क को लेता हूं। वे ऐसा करना चाहते हैं कि खण्ड (4) केवल विद्रोह अथवा आक्रमण के विषय तक ही सीमित रहे। मेरे विचार में

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

यदि वे अनुच्छेद 275 को ध्यान से पढ़ते तो देखते कि अनुच्छेद 275 के प्रावधानों में और उनके सुझाये गये संशोधन में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है। सद्यस्कृत्यस्थिति घोषित करने की शक्ति, जो अनुच्छेद 275 द्वारा प्रधान में निहित की गई है, केवल उन अवस्थाओं तक ही सीमित है जब कि युद्ध अथवा आन्तरिक हिंसा हो।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीनः** युद्ध की आशंका हो तब भी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** निस्संदेह। सद्यस्कृत्यस्थिति केवल तभी उत्पन्न नहीं होती जबकि युद्ध आरम्भ हो चुका हो—जब युद्ध की आशंका हो तब भी स्थिति को सद्यस्कृत्यस्थिति माना जा सकता है। अतएव, यदि अनुच्छेद 275 की भाषा को मि. करीमुद्दीन के संशोधन से मिलाया जाये, तो वे देखेंगे कि अनुच्छेद 275 के अनुसार प्रधान को जो कुछ करने का अधिकार दिया गया है, उसमें और मि. करीमुद्दीन का संशोधन स्वीकृत हो जाने पर उन्हें जो कुछ करने का अधिकार होगा, उसमें क्रियात्मक रूप से कोई अन्तर नहीं है। अतः श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि संशोधन 801 और 802 की कोई आवश्यकता नहीं है। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, संशोधन 801 उस सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है जो कि मैंने बताया है।

मैं अपने मित्र श्री कामत के संशोधन संख्या 787 को, जिस रूप में वह सूची तीन के संख्या 34 के साथ पढ़ा जायेगा, लेता हूं और संख्या 43 द्वारा संशोधित रूप में संशोधन संख्या 783 को लेता हूं जो कि मेरे मित्र श्री सरवटे द्वारा पेश किया गया था। यदि मैं ठीक समझा हूं तो मेरे मित्र श्री कामत ने यह सुझाव रखा था कि इस समय इस अनुच्छेद में विभिन्न लेखों का जो विशेष उल्लेख है वह नहीं होना चाहिये और यह विषय पूर्णतः सर्वोच्च न्यायालय पर छोड़ देना चाहिये कि वह ऐसे लेख निकाले जो कि वह उस मामले की स्थिति के अनुसार उचित समझे। मैं नहीं समझता कि श्री कामत ने इस अनुच्छेद को ठीक प्रकार पढ़ा है। यदि वे अनुच्छेद को ध्यान से पढ़ते तो वे देख लेते कि इस अनुच्छेद में ऐसा किया गया है कि व्यापक शक्ति भी दे दी गई है तथा विशेष उपचार भी सुझाये गये हैं। अनुच्छेद की भाषा अत्यन्त स्पष्ट है:

> "इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों की पूर्ति कराने के लिये सर्वोच्च न्यायालय को समुचित कार्यवाहियों द्वारा प्रेरित करने का अधिकार प्रत्याभूत किया जाता है।

सर्वोच्च न्यायालय को...लेख के प्रकार के निदेश अथवा आदेश...निकालने की शक्ति होगी..."

यह सर्वथा व्यापक और सामान्य भाषा है।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं एक बात का स्पष्टीकरण चाहता हूं, श्रीमान् मेरे मित्र मि. बेग के स्वीकृत संशोधन के पश्चात् खण्ड इस प्रकार हो जायेगा:

"सर्वोच्च न्यायालय को...निदेश अथवा आदेश अथवा लेख, जिनमें वन्द्युपस्थापन. ..लेख के प्रकार के लेख भी सम्मिलित हैं...निकालने की शक्ति होगी।"

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां, निदेश तथा आदेश शब्द भी इसमें है।

***श्री एच.वी. कामत:** और "लेख"?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां। सर्वोच्च न्यायालय को निदेश तथा आदेश देने के अधिकार तो हैं ही, विधान के मसौदे में इन विशेष लेखों की भी चर्चा करना वांछनीय समझा गया है। इन विशेष लेखों की चर्चा और उल्लेख करने की आवश्यकता भी सर्वथा स्पष्ट है। यह लेख कई वर्षों से ग्रेट ब्रिटेन में लागू हैं। उनकी विशेषतायें और उनसे जो लाभ हैं उन्हें प्रत्येक वकील जानता है, अत: हमने सोचा कि अत्यन्त कल्पनाशील लोगों के लिये भी कोई नई चीज़ का आविष्कार करना असम्भव है, इन लेखों में सुधार करना भी बहुत ही कम है; इन लेखों का अस्तित्व कदाचित् हज़ारों वर्षों से है, और अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के विषय में प्रत्येक अंग्रेज़ को इनसे पूर्ण सन्तोष है। अतएव हमने सोचा था कि इन लेखों का, हमारे विधान में उनके नाम से उल्लेख होना चाहिये, जो कि अंग्रेज़ी कानून-व्यवस्था में है, और यदि मैं ऐसा कह सकता हूं तो, उनके सामने धोखे अथवा चालाकी की दाल नहीं गल सकी है, पर इससे सर्वोच्च न्यायालय के इस अधिकार पर प्रभाव नहीं पड़ेगा कि वह यदि वांछनीय समझे तो अन्य प्रकार से भी न्याय कर सकता है। इसलिये मैं कहता हूं कि श्री कामत को उस विषय पर शिकायत करने का कोई आधार नहीं होना चाहिये।

मेरे मित्र श्री सरवटे ने कहा था कि इस अनुच्छेद के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते समय न्यायालय को मामले के तथ्यों की जांच करने की भी

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

स्वतन्त्रता होनी चाहिये। मुझे इस विषय में कोई सन्देह नहीं है कि श्री सरवटे ने इन लेखों की विशेषताओं तथा क्षेत्र को गलत समझा है। जिसे अंग्रेज़ी कानून का ज़रा भी ज्ञान है वह इस बात को समझ जायेगा तथा मान लेगा कि इस अनुच्छेद में उल्लिखित लेख दो श्रेणी के हैं। एक तो विशिष्ट अधिकार के लेख (prerogative writs) होते हैं और दूसरे दावे वाले लेख (writs in action) होते हैं। परमादेश का लेख, प्रतिबन्ध का लेख, उत्प्रेषण लेख दोनों प्रकार से काम में आ सकते हैं अथवा मांगे जा सकते हैं; वे विशिष्ट अधिकार के लेख के रूप में प्रयोग किये जा सकते हैं तथा किसी मुकद्दमें के दौरान में मुकद्दमें वाला उनके लिये आवेदन-पत्र दे सकता है। इस अनुच्छेद में जिन लेखों की चर्चा है उनका महत्त्व यह है कि वे विशिष्ट अधिकारों के लेख हैं; कोई उत्पीड़ित बिना मुकद्दमा अथवा दावा दायर किये ही इन लेखों के लिये प्रार्थना कर सकता है। साधारणत: आपको दावा करना पड़ता है तभी आपको न्यायालय से किसी प्रकार की आज्ञा मिल सकती है चाहे वह परमादेश, प्रतिबन्ध, उत्प्रेषण अथवा किसी अन्य प्रकार का लेख हो। किन्तु जहां तक इस अनुच्छेद का प्रश्न है, आपको कोई दावा करने की आवश्यकता नहीं है, वरन् आप सीधे न्यायालय जाकर लेख के लिये आवेदन-पत्र दे सकते है। वास्तव में लेख का उद्देश्य अन्तरिम सहायता देना है। उदाहरणार्थ, यदि कोई मनुष्य पकड़ा जाये, तो पकड़ने वाले अधिकारी के विरुद्ध कोई दावा अथवा कार्यवाही किये बिना ही, वह न्यायालय में प्रार्थना-पत्र दे सकता है कि उसे स्वतन्त्र किया जाये। पर उसके लिये उस अधिकारी के विरुद्ध दावा अथवा कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसी कार्यवाही में जब कि विशिष्ट अधिकार के लेख के लिये ही आवेदन-पत्र दिया जाये, तो न्यायालय केवल इतना ही कर सकता है कि वह यह पता लगाये कि गिरफ्तारी कानून के अनुसार हुई है अथवा नहीं। उस समय न्यायालय इस प्रश्न पर विचार नहीं करेगा कि वह कानून, जिसके अधीन वह मनुष्य बन्दी बनाया गया है, अच्छा है अथवा बुरा, आया वह विधान के किसी प्रावधान के विपरीत जाता है अथवा नहीं। वन्द्युपस्थापन की कार्यवाही में न्यायालय केवल इतना ही मालूम कर सकता है कि आया वह गिरफ्तारी वैद्य है, और उस समय कानून के गुणावगुण पर विचार नहीं करेगा—कम से कम न्यायालय की प्रणाली तो यही है। जब एक मनुष्य वास्तव में गिरफ्तार किया जाये तथा उसका मुकद्दमा आरम्भ हो जाये, तब उस

कार्यवाही के मध्य न्यायालय को तथ्य-सम्बन्धी खोज करने का अधिकार होगा और यह भी निश्चित करने का अधिकार होगा कि जिस कानून-विशेष के अधीन उस व्यक्ति को बन्दी बनाया गया है वह कानून ठीक है अथवा नहीं है। तब न्यायालय इस प्रश्न पर विचार करेगा कि यह विधान के प्रावधानों के विपरीत तो नहीं है। अत: मेरे मित्र श्री वी. एस. सरवटे ने जो संशोधन रखा था, यदि मैं ऐसा कह सकता हूं, तो वह यहां सर्वथा असंगत है। ऐसा प्रावधान यहां नहीं रखा जा सकता। यदि वे अनुच्छेद 115 को पढ़ेंगे तो वे देखेंगे कि ऐसे लेखों के लिये वहां प्रावधान रखा गया है। पर वे ऐसे लेख हैं जो कि तथ्य तथा कानून के प्रश्नों के सम्बन्ध में निकाले जा सकते हैं। निस्संदेह न्यायालय उनके विषय में जांच कर सकते हैं।

श्रीमान्, मुझे हर्ष है कि इस अनुच्छेद पर जितने लोग बोले हैं उनमें से अधिकांश ने इस अनुच्छेद के महत्त्व तथा मूल्य को समझा है। यदि मुझे ऐसे एक अनुच्छेद का नाम लेने के लिये कहा जाय, जो कि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसके बिना समस्त विधान प्रभावहीन है, तो मैं इस अनुच्छेद के अतिरिक्त और किसी का नाम नहीं ले सकता। यह विधान की आत्मा है, हृदय है और मुझे प्रसन्नता है कि परिषद् ने इसकी महत्ता को समझा है।

किन्तु एक बात मैं देखता हूं कि इस अनुच्छेद पर बोलने वाले सदस्यों ने इसे पर्याप्त रूप में नहीं समझा है। मैं अपना स्थान लेने से पहले इसी की चर्चा करूंगा। इस अनुच्छेद में जिन लेखों का उल्लेख है वे एक प्रकार से नये नहीं हैं। वन्द्युपस्थापन हमारी आपराधिक प्रणाली संहिता में है। परमादेश हमारे विशिष्ट उपचार (स्पेसेफिक रिलीफ) के कानून में है और यहां उल्लिखित कई अन्य लेखों का भी हमारे विभिन्न कानूनों में उल्लेख है। किन्तु इन लेखों के सम्बन्ध में वर्तमान स्थिति में और इस विधान के पारित होने के पश्चात् उत्पन्न होने वाली स्थिति में यह अन्तर है कि हमारे विभिन्न कानूनों में उल्लिखित सारे लेख विधान-मण्डल की कृपा पर अवलम्बित हैं। हमारी आपराधिक प्रणाली संहिता जिसमें कि वन्द्युपस्थापन के विषय में एक प्रावधान है जिसे कि विद्यमान विधान-मण्डल बदल सकता है। विशिष्ट-उपचार कानून भी संशोधित हो सकता है और जिस विधान-मण्डल में कोई बहुमत हो और वह बहुमत एक ही विचार का हो तो वन्द्युपस्थापन तथा परमादेश के लेख भी बिना किसी कठिनाई के छीने जा सकते हैं। आगे से किसी विधान-मण्डल के लिये यह सम्भव नहीं होगा कि वह इस अनुच्छेद में वर्णित लेखों को मिटा सके। ऐसा नहीं है कि विधान-मण्डल

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

पर छोड़ दिया गया हो कि वह अपनी इच्छा से कानून बना कर सर्वोच्च न्यायालय को इन लेखों के निकालने की शक्ति प्रदान करे। विधान द्वारा ही यह अधिकार सर्वोच्च न्यायालय में निहित कर दिये गये हैं और इन अधिकारों को तब तक छीना नहीं जा सकता जब तक कि विधान को ही संशोधित न किया जाये, जिसके लिये कि विधान-मण्डल को साधन दिये गये हैं। मेरे विचार में यह एक अत्यन्त महान् अभिरक्षण है जो कि व्यक्ति की सुरक्षा और रक्षा के लिये रखा जा सकता है। अतएव हमें ऐसी अधिक आशंका नहीं होनी चाहिये कि इस विधान में प्रावहित स्वतंत्रताओं को कोई भी विधान-मण्डल, जिसमें कि बहुमत दल विद्यमान हो, छीन सकता है।

श्रीमान्, मैं एक बात और कहना चाहता हूं। इस परिषद् में निदेशक सिद्धांतों और मूलाधिकारों पर जो वाद-विवाद हुआ है उसमें मैंने उन सदस्यों की वक्तृताओं को सुना है जिन्होंने कि इस बात की शिकायत की है हमने किसी अधिकार विशेष अथवा नीति विशेष को अपने मूलाधिकारों में अथवा अपने निदेशक सिद्धान्तों में नहीं रखा है। रूस के विधान तथा अन्य देशों के विधानों का प्रसंग रखा गया है जिनमें कि ऐसी घोषणाओं का समावेश है जो कि सदस्यों ने अपने संशोधनों द्वारा हमारे विधान में रखने का प्रयत्न किया है। श्रीमान्, मेरे विचार में उनमें से किसी संशोधन के पेश करने वाले किसी सदस्य को मेरी इस बात से बुरा नहीं मानना चाहिये कि मैं अधिकारों के विषय में ब्रिटिश प्रणाली को अधिक अच्छा समझता हूं। ब्रिटिश प्रणाली एक विशेष प्रणाली है। वह अत्यन्त वास्तविक तथा अत्यन्त समुचित प्रणाली है। ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि ऐसा अधिकार व्यर्थ है जिसके लिये विधान में उपचार न हो। वास्तव में उपचार से ही अधिकार का अस्तित्व होता है। यदि कोई उपचार न हो तो अधिकार का भी अस्तित्व नहीं होता, और इसीलिये मैं विधान में ऐसी अनेक सुन्दर घोषणाओं को भरना नहीं चाहता जो कि व्यापक और सुन्दर हों, पर जिनके लिये विधान में कोई उपचार न हो। इससे तो यह अधिक अच्छा है कि अपने अधिकारों के क्षेत्र को हम सीमित ही रखें और उनके लिये उपचार रखकर हम उन्हें वास्तविक बना दें, इसके बजाय कि हम विधान में सुन्दर इच्छाओं का समावेश करें। मुझे बहुत प्रसन्नता है कि इस परिषद् ने इस बात को समझा है कि हमने जो उपचार रखे हैं वे इस विधान का मूल भाग हैं। श्रीमान्, इन शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं एक बात स्पष्ट करवाना चाहता हूं, श्रीमान्, क्योंकि हम न्याय्य मूलाधिकारों और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इनकी प्रत्याभूति देने के विषय में वाद-विवाद कर रहे हैं, और अनुच्छेद 280 की भी चर्चा आ गई है, अतः क्या ऐसा कहना ठीक नहीं होगा कि "इस अनुच्छेद में प्रत्याभूत अधिकारों को पूर्णतः अथवा अंशतः निलम्बित नहीं किया जायेगा..." अथवा कुछ ऐसे शब्द रखे जा सकते हैं जो कानूनी विशेषज्ञ पसंद करें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** 'निलम्बित नहीं किये जायेंगे' इसमें दोनों आ गये। इसका विशेष उल्लेख करना अनावश्यक है।

***उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (1) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड रख दिया जाये, अर्थात्–

'(1) प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह उचित कार्यवाही द्वारा इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को क्रियान्वित कराये।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (1) में 'सर्वोच्च न्यायालय' इन शब्दों के स्थान पर 'सर्वोच्च न्यायालय अथवा अन्य न्यायालय जिसे खण्ड (3) के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों का प्रयोग करने का अधिकार दिया गया हो' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 787 जो कि श्री कामत के नाम से है।

***श्री एच.वी. कामतः** इस विषय में डॉक्टर अम्बेडकर ने जो कुछ बातें कही हैं, उनको ध्यान में रखते हुये, मैं इस पर ज़ोर नहीं देना चाहता।

(संशोधन परिषद् की अनुमति से वापस ले लिया गया।)

***उपाध्यक्षः** तत्पश्चात् हम संशोधन संख्या 789 पर आते हैं जो कि मि. महबूबअली बेग के नाम में था पर उसे मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने पेश किया था। प्रश्न यह है:

[उपाध्यक्ष]

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (2) में अंग्रेज़ी के 'in the nature of the writs of' इन शब्दों के स्थान पर 'or writs, including writs in the nature of' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 794 जो डॉक्टर अम्बेडकर, श्री माधव राव तथा मि. सादूल्ला के नामों से हैं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 25 के वर्तमान उपखण्ड (3) के स्थान पर निम्न खण्ड रख दिया जाये:

'इस अनुच्छेद के खण्ड (1) तथा (2) द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों पर बिना किसी विपरीत प्रभाव के, संसद्, विधि द्वारा किसी दूसरे न्यायालय को उसके अधिकार-क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर, इस अनुच्छेद के खण्ड (2) के अधीन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य सब अथवा किसी शक्ति का प्रयोग करने की शक्ति दे सकेगी।'"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** सूची एक का संशोधन संख्या 43, जो श्री सरवटे के नाम से है।

***श्री वी.एस. सरवटे:** मैं इस पर बल देना नहीं चाहता।

(संशोधन परिषद् की अनुमति से वापस ले लिया गया।)

***उपाध्यक्ष:** सूची एक का संशोधन संख्या 44 ।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 794 में, अनुच्छेद 25 के प्रस्तावित खण्ड (3) में से 'इस अनुच्छेद के खण्ड के (2) द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों पर बिना किसी विपरीत प्रभाव के' ये शब्द निकाल दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 801 ।

प्रश्न यह है :

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) को हटा दिया जाये।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 802, जो मि. करीमुद्दीन के नाम से है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) में 'इस संविधान में अन्यथा प्रावहित अवस्था' इन शब्दों के स्थान पर 'विद्रोह अथवा आक्रमण की अवस्था तथा जब इस संविधान के भाग 9 के अधीन सद्यस्कृत्यस्थिति घोषित की जाये उस अवस्था' ये शब्द रख दिये जायें।"

*प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।*

**उपाध्यक्ष:** मि. नज़ीरुद्दीन अहमद का संशोधन संख्या 805 ।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) में 'प्रत्याभूत' शब्द के स्थान पर 'प्रदत्त' शब्द रख दिया जाये।"

*प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 789 तथा 794 द्वारा संशोधित रूप में अनुच्छेद 25 पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 25 विधान का भाग हो।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 25 विधान में जोड़ दिया गया।*

---

## अनुच्छेद 25-ए

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 25-ए पर आते हैं। मि. लारी का संशोधन संख्या 808 ।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

---

## अनुच्छेद 26

***उपाध्यक्ष:** इसके बाद हम अनुच्छेद 26 पर आते हैं। परिषद् के समक्ष प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 26 विधान का भाग हो।"

संशोधन संख्या 809 नकारात्मक आशय का है, अत: इसके पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती।

[उपाध्यक्ष]

(संशोधन संख्या 810 पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 811 और 812 एक से आशय के हैं। मुझे कहना चाहिये कि वे लगभग एक ही हैं। मैं संशोधन संख्या 811 के पेश करने की अनुमति देता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 26 में 'में प्रत्याभूत' इन शब्दों के स्थान पर 'द्वारा प्रदत्त' ये शब्द रख दिये जायें।"

इस भाग द्वारा यह अधिकार प्रदान ही किये गये हैं, प्रत्याभूत नहीं होते। अतएव भाषा में एकरूपता लाने के लिये, मैं इस संशोधन का सुझाव रखता हूं।

***उपाध्यक्ष:** इस संशोधन पर एक संशोधन है जो प्रथम सूची में संख्या 48 है।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

(संशोधन संख्या 813 पेश नहीं हुआ।)

अब मैं अनुच्छेद 26 पर मत लूंगा।

***श्री टी. टी. कृष्णमाचारी:** संशोधन पर मत लेने से पहले अनुच्छेद पर मत कैसे लिया जा सकता है?

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 26 में 'में प्रत्याभूत' इन शब्दों के स्थान पर 'द्वारा प्रदत्त' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 26 विधान का भाग हो।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 26 विधान में जोड़ दिया गया।*

---

## अनुच्छेद 27

*(संशोधन संख्या 814, 815 और 816 पेश नहीं किये गये।)*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 817 और 818 पर एक साथ विचार होगा। 817 पेश होगा, यह डॉ. अम्बेडकर के नाम में है।

**माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 27 के खण्ड (क) के स्थान पर निम्न खण्ड रख दिया जाये:

'(a) with respect to any of the matters which, under clause (2a) of article 10, article 16, clause (3) of article 25 and article 26 may be provided for by legislation by Parliament, and,' "

[(क) किसी ऐसे विषयों के लिये, जिनका, अनुच्छेद 10 के खण्ड (2क), अनुच्छेद 16, अनुच्छेद 25 के खण्ड (3) तथा अनुच्छेद 26 के अधीन, संसद् विधान द्वारा प्रावधान करे, और]

अनुच्छेद 10 के खण्ड (2क) को जोड़ देने की चर्चा करने का यह कारण है कि वह नया खण्ड है जो इस परिषद् में स्वीकृत हुआ था। अतः इस अनुच्छेद में उसका जिक्र करना अपेक्षित है।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर एक संशोधन है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैंने इसे संशोधित रूप में ही पेश किया है।

***उपाध्यक्षः** अच्छा।

(संशोधन संख्या 818 पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 819 शाब्दिक संशोधन है। संशोधन संख्या 820 पेश हो सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि 'ऐसे विषयों के प्रावधानार्थ तथा ऐसे कार्यों के लिये दण्ड विनिधानार्थ' इन शब्दों के स्थान पर 'इस अनुच्छेद के खण्ड (ख) में निर्दिष्ट कार्यों के लिये दण्ड विनिधानार्थ' ये शब्द रख दिये जायें।"

***उपाध्यक्षः** सूची 1 का संशोधन संख्या 48 जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम में है। क्या वे इसे पेश करना चाहते हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 820 और 822 में अनुच्छेद 27 और उसके परादिक में, जहां भी 'इस अनुच्छेद में' (in this

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

article) ये शब्द हों, उन्हें तथा व्याख्या में 'इस संविधान का' (of this Constitution) ये शब्द हटा दिये जायें।"

***उपाध्यक्ष:** यह भी शाब्दिक संशोधन जैसा ही है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** हां, श्रीमान्, क्योंकि मेरा नाम पुकारा गया था, अत: मुझे सभापति की आज्ञा का पालन करना था और इसी कारण मैं इसे पेश करने के लिये ध्वनि-यंत्र पर आया हूं, किन्तु यह संशोधन शाब्दिक ही है।

***उपाध्यक्ष:** मैं बहुत कृतज्ञ हूं। मैं इसका यह अर्थ लगाता हूं कि आप इसे पेश नहीं कर रहे हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** नहीं, श्रीमान्, मैं इसे पेश तो कर चुका ही हूं, किन्तु मैं इस पर ज़ोर देना नहीं चाहता।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 822 और 823 सदृश आशय के हैं। संख्या 822 पेश किया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 27 के परादिक तथा व्याख्या के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:

'Provided that any law in force immediately before the commencement of this Constitution in the territory of India or any part thereof with respect to any of the matters referred to in clause (a) of this article or providing for punishment for any act referred to in clause (b) of this article shall, subject to the terms thereof, continue in force therein, until altered or repealed or amended by Parliament.

*Explanation.*—In this article the expression 'law in force' has the same meaning as in article 307 of this Constitution.'

[पर इस अनुच्छेद के खण्ड (क) में निर्दिष्ट किसी विषय-सम्बन्धी अथवा इस अनुच्छेद के खण्ड (ख) में निर्दिष्ट किसी कार्य के लिये दण्ड-विनिधानकारी, भारत के राज्यक्षेत्र में अथवा उसके किसी भाग

में इस संविधान के आरम्भ होने के सद्यपूर्व प्रवृत्त, कोई विधि, उसकी शर्तों के अधीन रहते हुये, तब तक प्रभावी रहेगी जब तक कि संसद् द्वारा वह परिवर्तित अथवा विखण्डित अथवा संशोधित न की जाये।

*व्याख्या*–इस अनुच्छेद में 'प्रवृत्त विधि' इन शब्दों का वही अर्थ है जो कि इस संविधान के अनुच्छेद 307 में है।]"

(सूची एक का संशोधन संख्या 50, सूची संख्या चार का 65 तथा 823 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** अब इस अनुच्छेद पर व्यापक वाद-विवाद हो सकता है।

(इस समय श्री कामत बोलने खड़े हुये।)

***उपाध्यक्षः** मुझे आशा है कि आज की बैठक समाप्त होने के पहले आप मुझे काम पूरा निपटा लेने देंगे। इस हालत में मैं परिषद् को एक बजे से स्थगित कर सकूंगा।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं भी आपके समान ही आतुर हूं उपाध्यक्ष महोदय, मैं तो डॉक्टर अम्बेडकर से, उनके संशोधन संख्या 820 के विषय में, कुछ थोड़ा-सा प्रकाश प्राप्त करने के लिये ही उठा हूं। मैं यह स्पष्टतया समझने में असमर्थ हूं कि इस समय अनुच्छेद में जो शब्द हैं उनके स्थान पर वे प्रस्तावित शब्द क्यों रखना चाहते हैं। यदि उनका संशोधन स्वीकार कर लिया जाये तो इसका यह अर्थ होगा कि संसद् को केवल खण्ड (ख) में उल्लिखित कार्यों के लिये दण्ड का विनिधान करने की शक्ति होगी। तो फिर, खण्ड (क) में कानून द्वारा प्रावहित शक्तियों के विषय में संसद् को कानून बनाने की क्या शक्ति होगी? क्या उनके संशोधन का अभिप्राय यह है कि इस अनुच्छेद के खण्ड (क) द्वारा प्रदत्त शक्तियों को छीन लिया जाये? यह कल्पना की जा सकती है कि कुछ ऐसे मामले भी हैं जिनके विषय में इस समय कोई कानून नहीं है। अतः यदि कोई मामले हों, जिनके विषय में कोई कानून प्रवृत्त नहीं हो, तो क्या वे अपने संशोधन द्वारा इस अनुच्छेद के खण्ड (क) द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनना चाहते हैं, जिसमें लिखा है कि "किसी ऐसे विषय के लिये जिसका इस भाग के अनुसार संसद् के लिये विधान द्वारा प्रावधान करना आवश्यक है?" संशोधन में केवल दण्ड के विनिधान के लिये ही शक्ति दी गई है और ऐसे विषयों के लिये कानून बनाने की शक्ति नहीं दी गई है जिनका इस भाग के अनुसार कानून द्वारा प्रावधान करना

[श्री एच.वी. कामत]

आवश्यक है। मैं जानना चाहता हूं कि इस संशोधन का ठीक आशय क्या है और खण्ड (क) में इस प्रकार संशोधन क्यों किया जा रहा है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे खेद है कि श्री कामत अनुच्छेद 27 में निहित योजना को नहीं समझ पाये हैं। इस अनुच्छेद में तीन सिद्धान्त हैं। प्रथम सिद्धान्त यह है कि जहां भी संविधान में निर्दिष्ट हो कि मूलाधिकार को क्रियान्वित करने के लिये कानून बनाया जायेगा, अथवा जहां किसी ऐसे कार्य को दण्डनीय बनाने के लिये कानून बनाना हो जिससे कि मूलाधिकार में हस्तक्षेप होता हो, तो वह अधिकार केवल संसद् को ही होगा, चाहे विषय-वितरण सम्बन्धी सूची के अनुसार ऐसा कानून राज्य के विधान-मण्डल के क्षेत्राधिकार में ही क्यों न हो। इसका उद्देश्य यह है कि मूलाधिकार तथा उनके उल्लंघन पर नियत दण्ड भारत-भर में एकरूप हों। यदि यह उद्देश्य पूरा करना है कि मूलाधिकार एकरूप होंगे तथा उनके उल्लंघन के लिये दण्ड भी एकरूप होंगे तो वह शक्ति संसद द्वारा ही प्रयुक्त होनी चाहिये, जिससे कि एकरूपता आ जाये।

दूसरी बात यह है। यदि इस समय ऐसे कानून हैं जो मूलाधिकारों के उल्लंघन के विषय में दण्ड की व्यवस्था करते हैं, तो जब तक संसद् दूसरा अथवा अधिक अच्छा और प्रावधान न कर दे तब तक वे ही कानून लागू रहेंगे। यह सारी योजना है। मैं नहीं समझता कि अनुच्छेद 27 के प्रावधानों को समझने में कोई कठिनाई क्यों होनी चाहिये।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे खेद है, श्रीमान्, कि डॉक्टर अम्बेडकर मेरी बात को स्पष्टतः समझ नहीं सके हैं। (*हंसी*)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यह सर्वथा सम्भव है।

***उपाध्यक्षः** श्री कामत, ऐसा भी हो सकता है कि आप ही न समझे हों।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैंने जो प्रश्न उठाया था, उन्होंने उसके स्थान पर दूसरे का उत्तर दे दिया है। मेरा प्रश्न दूसरा था। कदाचित् वे मेरी बात को ध्यान से नहीं सुन रहे थे। वे किसी और से बातचीत कर रहे थे। यदि आप मुझे अनुमति दें, तो श्रीमान्, मैं अपनी बात समझाने का प्रयत्न करूंगा।

***उपाध्यक्षः** किन्तु परिषद् को सम्बोधन मत कीजिये, आपको सभापति को सम्बोधन करना चाहिये।

**श्री एच.वी. कामतः** मैं आपको ही सम्बोधित कर रहा हूं, श्रीमान्, जैसा कि मैं सदा करता हूं। जो कठिनाई उत्पन्न हो रही है वह यह है। अनुच्छेद की वर्तमान भाषा के अनुसार, खण्ड (क) से केवल संसद् को ही शक्ति दी जाती है। मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है; मैं मानता हूं कि संसद् को और एकमात्र संसद् को ही अधिकार होना चाहिये। आप यहां कहते हैं कि किसी विषय के सम्बन्ध में संसद् को कानून बनाने का अधिकार होगा। बाद में आप कहते हैं कि इस संविधान के आरम्भ होने पर यथासम्भव शीघ्र ही संसद् अमुक-अमुक विषय पर कानून बनायेगी। अब, इस बाद के भाग के स्थान पर संशोधन संख्या 820 रखना चाहते हैं। आप 'ऐसे विषयों के प्रावधानार्थ' इन शब्दों को हटाना चाहते हैं और केवल दण्ड सम्बन्धी प्रावधान रखना चाहते हैं। ऐसे विषयों के विषय में कानून बनाने के बारे में क्या होगा? आप उस भाग को क्यों हटाना चाहते हैं? आप केवल दण्ड-विषयक भाग को ही क्यों रखना चाहते हैं? मैंने तो यह बात कही थी, किन्तु डा. अम्बेडकर ने एक दूसरी बात का उत्तर दे दिया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैंने खण्ड (क) में जो संशोधन रखा है, उसका कारण यह है कि केवल कुछ विशिष्ट मामलों में संसद् को दण्ड-अधिकार दिया गया है और इन अनुच्छेदों का मेरे संशोधन में उल्लेख है। मेरे मित्र श्री कामत देखेंगे कि खण्ड (क) में किसी ऐसे अनुच्छेदों का उल्लेख नहीं है जो संसद् को स्पष्टरूपेण कानून बनाने का अधिकार देते हों। इस बात को स्पष्ट करने के लिये ही मैंने यह वांछनीय समझा कि अनुच्छेद 10 के खण्ड (2क), अनुच्छेद 16, अनुच्छेद 25 के खण्ड (3) तथा अनुच्छेद 26 की चर्चा कर दी जाये, यह विशिष्ट अनुच्छेद हैं जिनके विषय में केवल संसद् को ही अधिकार है।

***उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। वे सब डॉक्टर अम्बेडकर के नाम पर ही हैं।

संशोधन संख्या 817, जिस रूप में कि वह सूची 3 के संशोधन संख्या 56 द्वारा संशोधित हुआ है।

[उपाध्यक्ष]

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 27 के खंड (क) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:

'(क) किसी ऐसे विषयों के लिये जिनका, अनुच्छेद 10 के खंड (2क) अनुच्छेद 16, अनुच्छेद 25 के खंड 3 तथा अनुच्छेद 26 के अधीन, संसद् विधान द्वारा प्रावधान करे, और' "

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 820 ।

प्रश्न यह है:

"कि 'ऐसे विषयों के प्रावधानार्थ तथा ऐसे कार्यों के लिये ढ़ंड विनिधानार्थ' इन शब्दों के स्थान पर 'इस अनुच्छेद के खंड (ख) में निर्दिष्ट कार्यों के लिये दंड-विनिधानार्थ' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 822 ।

प्रश्न यह है :

"कि अनुच्छेद 27 के परादिक तथा व्याख्या के स्थान पर, निम्न शब्द रख दिये जायें:

'पर इस अनुच्छेद के खण्ड (क) मे निर्दिष्ट किसी विषय-सम्बन्धी अथवा इस अनुच्छेद के खण्ड (ख) में निर्दिष्ट किसी कार्य के लिये दण्ड-विनिधानकारी, भारत के राज्यक्षेत्र में अथवा उसके किसी भाग में इस संविधान के आरम्भ होने से सद्य:पूर्व प्रवृत्त कोई विधि, उसकी शर्तों के अधीन रहते हुये, तब तक प्रभावी रहेगी जब तक कि संसद् द्वारा वह परिवर्तित अथवा विखण्डित अथवा संशोधित न की जाये।

*व्याख्या*–इस अनुच्छेद में 'प्रवृत्त विधि' इन शब्दों का वही अर्थ है जो कि इस संविधान के अनुच्छेद 307 में है।'"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्षः** परिषद् के समक्ष प्रश्न यह है।

"कि अनुच्छेद 27 संशोधित रूप में विधान का भाग हो।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*अनुच्छेद 27 को संशोधित रूप में विधान में जोड़ दिया गया।*

***उपाध्यक्षः** परिषद् कल सवेरे दस बजे तक के लिये स्थगित होती है।

*तत्पश्चात् परिषद् शुक्रवार, 10 दिसम्बर सन् 1948 ई. के प्रातः दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।*

Con. 3. VII. 24. 48
350

अंक 7
संख्या 24

शुक्रवार,
10 दिसम्बर
सन् 1948 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी)..... 1581
[अनुच्छेद 27-क, नवीन अनुच्छेद 40-क तथा..... 1642
अनुच्छेद 41, 42 और 43 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

शुक्रवार, 10 दिसम्बर, सन् 1948 ई.

---

*भारतीय विधान-परिषद् कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः दस बजे समवेत् हुई। उपाध्यक्ष महोदय (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) अध्यक्ष पद पर आसीन थे।*

---

***बी. पोकर साहब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, क्या मैं आपकी अनुमति से यह प्रस्ताव कर सकता हूं कि सभा आज एक बजे स्थगित की जाये, चूंकि आज शुक्रवार है और मुसलमान सदस्यों को जुम्मे की नमाज में भाग लेना है?

***उपाध्यक्षः** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): हम एक बजे सभा स्थगित कर देंगे। अपने मुसलमान भाइयों के प्रति यह सहृदयता दिखाने में मुझे विश्वास है कि सभा मुझसे सहमत है।

***माननीय सदस्य :** जी हां।

***बी. पोकर साहब बहादुरः** धन्यवाद, श्रीमान्!

---

## विधान का मसौदा–( जारी )

### अनुच्छेद 27-क

***उपाध्यक्षः** हम अनुच्छेद 27-क के सम्बन्ध में संशोधन संख्या 824 पर विचार करेंगे।

(संशोधन उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 825 भी डॉ. रघुवीर के नाम से है। वे सभा में उपस्थित नहीं हैं।

(संशोधन संख्या 825 उपस्थित नहीं किया गया।)

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***उपाध्यक्षः** अब हम भाग 5 पर आते हैं। संशोधनों की छपी हुई सूची के पृष्ठ 106 में अनुच्छेद 41 से 44 तक के नये अनुच्छेदों पर संशोधन संख्या 1032 है, जो श्री गोपाल नारायण के नाम से है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं आपको यह स्मरण करा सकता हूं कि मेरा एक संशोधन जिसमें एक महान् सिद्धान्त सन्निहित है अर्थात् संशोधन संख्या 1032 स्थगित कर दिया गया था। सभा की सहमति से वह अनुच्छेद 40-क के साथ स्थगित कर दिया गया था। वह पृष्ठ 105 में दिया हुआ है।

***उपाध्यक्षः** जी हां, संशोधन संख्या 1030, प्रोफेसर के.टी. शाह।

---

## नवीन अनुच्छेद 40-क

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 40 के बाद निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'40-A. There shall be complete separation of powers as between the principal organs of he State, *viz.*, the Legislative, the Executive and the Judicial.' "

(40-क. राज्य के मुख्य अंगों की अर्थात् विधान-मण्डल की, अधिशासी-वर्ग की और न्यायाधीश-वर्ग की शक्तियां बिल्कुल पृथक् होंगी।)

श्रीमान्, मेरे विचार से यह प्रावधान एक उदार विधान के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है। श्रीमान्, मुझे यह ज्ञात है कि विधान के मसौदे में प्रधानमूलक शासन और संसदात्मक शासन के मध्य के मार्ग का अनुसरण किया गया है। संसदात्मक शासन में अधिशासी-वर्ग, विधान-मण्डल और न्यायाधीश-वर्ग के बीच एक प्रकार का सम्बन्ध रहता है। प्रधानमूलक शासन में इस प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं रहता और राज्य के तीन प्रमुख अंगों की बिल्कुल पृथक् शक्तियां होती हैं और प्रत्येक में राज्य के विभिन्न कार्यों के सम्बन्ध में लोगों की सर्वसत्ता सन्निहित रहती है।

पिछले दिनों के कटु अनुभव के आधार पर ही यह आदर्श सामने रखा गया है और इसी कारण कई आधुनिक राज्यों ने अपने विधानों को बनाने में इन अंगों

के पूर्णत: पृथक्करण के सिद्धान्त का ही अनुसरण किया है। शताब्दियों पूर्व इंग्लैण्ड के जैसे विधान में सम्पूर्ण प्राधिकार का अन्तिम रूप से सम्राट में ही संकेंद्रण होने से कई दोष उत्पन्न हो गये थे जिसके कारण गृह-युद्ध छिड़ा और सम्राट की हत्या कर दी गई और एक रक्तपातरहित क्रान्ति भी हुई जिसके फलस्वरूप एक अन्य सम्राट् को पदत्याग करना पड़ा और उसे देश से निष्कासित भी कर दिया गया। उसके उपरान्त जो व्यवस्था की गई वह अंग्रेज़ों की संस्कृति के अनुरूप थी और वह लिखित विधान के रूप में नहीं बल्कि शताब्दियों से प्रचलित प्रथाओं के रूप में प्रकट हुई। ये प्रथायें अब लिखित विधान से भी अधिक पवित्र हो गई हैं।

परन्तु मेरे विचार से हम इस समय अपने देश में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं स्थापित कर सकते हैं। मेरे विचार से ऐसे देश में जहां एक बड़े पैमाने में स्वायत्त-शासन के प्रयोग किये जा रहे हैं, एक नये आधार पर निर्माण करना सम्भव न होगा। इस दशा में मैं यह अनुभव करता हूं कि जब हम अपने विधान को प्रभाव में लायें और जनतन्त्रात्मक प्रणाली को आरम्भ करें तो सबसे अच्छी बात तो यह होगी कि हम राज्य के प्रमुख अंगों की शक्तियों को बिल्कुल पृथक् कर दें।

श्रीमान्, यदि तीनों अंगों को पूर्णतया स्वतंत्र कर दिया जायगा तो न्यायाधीश-वर्ग और अधिशासी-वर्ग तथा न्यायाधीश-वर्ग और विधान-मण्डल के सम्बन्ध एक प्रकार से स्वतंत्र हो जायेंगे। यह मेरे विचार से जनसाधारण की स्वतंत्रता, नागरिक स्वतंत्रता और कानून द्वारा शासन करने की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। यदि उदाहरणार्थ न्यायाधीश-वर्ग और विधान-मण्डल के बीच सम्पर्क बना रहा और यदि सर्वोच्च न्यायाधिकारियों के लिये यह सम्भव हुआ कि वे विधान-मण्डल के सदस्य हो सकते हैं और विधान-मण्डल के सदस्यों के लिये यह सम्भव हुआ कि वे सर्वोच्च न्यायाधिकारी हो सकते हैं तो मेरे विचार से इसका भय बना रहेगा कि किसी मामले के गुणदोषों पर स्वतंत्र रूप से विचार न किया जायेगा किन्तु किसी दल-विशेष के प्रभावानुसार कानून का निर्वचन होगा। जनतंत्रात्मक व्यवस्था में विधान-मण्डल सिद्धान्तों से उतना प्रभावित नहीं हो सकता है जितना कि किसी दल-विशेष से।

मैं दलबन्दी की निन्दा नहीं कर रहा हूं। कृपा करके इस सम्बन्ध में मिथ्या धारणा न बनाइयेगा। मैं केवल यह बता रहा हूं कि दल आखिर ऐहिक तो हैं और ऐहिक बातों से ही उनका सम्बन्ध रहता है और इसलिये वे उस समय की बातों,

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

अस्थायी विचारों और लोगों के प्रभाव को अधिक महत्त्व देंगे किन्तु न्यायाधीश-वर्ग पर इन बातों का प्रभाव न पड़ेगा। यह सर्वाधिक महत्त्व की बात है कि न्यायाधीश-वर्ग किसी प्रकार भी सन्देह का भाजन न बने और इसलिये ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि उस पर किसी प्रकार का कलंक भी न लगाया जा सके। मुझे आशा है कि इन शब्दों से कोई सज्जन रुष्ट न होंगे। राजनैतिक दलों में जिस प्रकार का विद्वेष फैला रहता है उससे न्यायालय पर किसी प्रकार का कलंक न आना चाहिये।

यदि राज्य के न्यायाधीश-वर्ग और अधिशसी-वर्ग के बीच सम्पर्क अथवा सम्बन्ध बना रहा तो यह सम्भव है कि जिन लोगों को विधान का निर्वचन करने तथा नागरिक स्वतंत्रताओं को संरक्षण करने और न्याय करने के लिये नियुक्त किया जायेगा, उन पर अनुचित रूप से प्रभाव डाला जायगा तथा उन्हें पथभ्रष्ट किया जायेगा।

वर्तमान वातावरण तथा उस परम्परा के कारण जिसको लेकर हमारी न्याय-प्रणाली विकसित हुई है मेरी यह धारणा है कि न्याय बहुत व्यय-साध्य हो गया है। एक गरीब आदमी उसे आसानी से प्राप्त नहीं कर सकता है। यद्यपि आपने कई प्रकार की अपीलों और कई प्रकार की शक्तियों की व्यवस्था की है परन्तु साथ ही बहुत खर्च उठाने पर ही व्यवसायी वकीलों से कानून-सम्बन्धी परामर्श तथा कानून-सम्बन्धी सहायता मिल सकती है। इसका अनुभव उन लोगों को है जिनके मुकदमे बहुत काल तक चलते रहे हैं और वे यह भी जानते हैं कि साधारण लोग इससे कितने भ्रम में पड़ जाते हैं और कितने डरते हैं।

यदि हम यह भी स्वीकार करें कि न्याय अल्प व्यय-साध्य न होना चाहिये और उन लोगों को ही प्राप्त होना चाहिये जो खर्च उठाने के लिये तैयार हों तो कम से कम वह दूषित तो न होना चाहिये और उसे प्रदान करने में मुकदमे के गुण-दोषों के अतिरिक्त अन्य बातों का तो प्रभाव न पड़ना चाहिये।

जब इस सभा के सम्मुख न्यायाधीश-वर्ग विषयक अध्याय उपस्थित किया जायेगा तो मुझे कुछ संशोधनों को उपस्थित करके यह बताने का अवसर मिलेगा कि वर्तमान प्रणाली के क्या दोष हैं। किन्तु हमें न्याय की पवित्रता का आदर्श अपने सम्मुख रखना चाहिये। चाहे वह वर्गीय न्याय ही क्यों न हो परन्तु कम से कम उसमें अन्य बातों का प्रभाव पड़ने का दोष तो न आना चाहिये। न्यायाधीश

अपनी चेतना तथा उत्तर-चेतना से और अपने पूर्वजों से अथवा वर्गीय लोगों से प्राप्त विद्वेष की भावनाओं से प्रभावित रहते हैं। इस दोष को तुरन्त ही दूर नहीं किया जा सकता है। परन्तु यदि हम इसकी ओर ध्यान न दें, और कल सभा में सर्वोच्च न्यायालय से अपील करने के बारे में जो कुछ कहा गया था उसकी ओर ध्यान न दें, तो मैं यह कहूंगा कि जब तक आपके न्यायाधीश-वर्ग और अधिशासी-वर्ग सम्बद्ध रहेंगे और उच्च न्यायपद से उसी प्रकार के उच्च अधिशासी-पद में जाने की सम्भावना बनी रहेगी तब तक न्यायाधीश-वर्ग को सन्देह की दृष्टि से देखा जायेगा और तब तक व्यक्तिगत अधिकारों और व्यक्तिगत आकांक्षाओं से न्याय के प्रशासन को हानि पहुंचती रहेगी ओर तब तक आप अपनी नागरिक स्वतन्त्रताओं की उस सीमा तक और उस पवित्रता से रक्षा न कर सकेंगे जो कि इस देश के लिये आवश्यक है।

इसलिये मेरा पहला सुझाव यह है कि न्यायाधीश-वर्ग को पूर्णतया पृथक् कर दिया जाये और वह केवल कानून की शब्दावली को महत्त्व दे, चाहे विधान निर्माण होते समय सभा में किसी प्रकार की बहस क्यों न हुई हो और चाहे किसी व्यक्ति-विशेष अथवा दल-विशेष की किसी प्रकार के विचार क्यों न हों और चाहे मानवी और पार्थिव बातों के सम्बन्ध में लोगों के किसी प्रकार के उद्देश्य क्यों न हों।

विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग के सम्बन्ध में भी भिन्न प्रकार से यही तर्क उपस्थित किया जा सकता है। मैं यह निवेदन करने का साहस करता हूं कि इन दोनों के बीच में जितना कम सम्पर्क हो उतना ही दोनों के लिये हितकर होगा। अधिशासी-वर्ग सभा को दूषित कर सकता है, और पदों के सम्बन्ध में मन्त्रिपदों, राजदूतों के पदों और अन्य ऐसे पदों के सम्बन्ध में, जो उसके अधिकार में हों, पक्षपात करके अथवा उन्हें उपहार के रूप में देकर वह सदस्यों के मतों पर प्रभाव डाल सकता है। अब हम राजनैतिक विकास के उस स्तर पर पहुंच गये हैं जब कि किसी देश में भी तथाकथित प्राचीन 'लूट की प्रणाली' का अनुसरण नहीं किया जाता है। परन्तु फिर भी यह होता है कि पचास, साठ, सत्तर अथवा सौ लोगों पर ऐसे लोगों का प्रभाव पड़ता है जिनके हाथ में राज्य के सर्वोच्च पदों को प्रदान करने की शक्ति होती है। उदाहरणार्थ इंग्लैण्ड में पार्लीमेंट के 615 सदस्यों में से लगभग 70 मन्त्रिमण्डल के मन्त्री अथवा पार्लामेण्टरी सेक्रेटरी अथवा अन्य प्रकार के मन्त्री आदि होते हैं। सभा मुझे यह कहने के लिये क्षमा करेगी कि यहां भी मन्त्रियों, राज-मन्त्रियों, उपमन्त्रियों और सम्भवतः आगे चल कर पार्लामेण्टरी सेक्रेटरियों के पदों को स्थापित करके यहां भी हम छोटे पैमाने

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

पर यही सब करने का प्रयास कर रहे हैं। यह हो सकता है और मुझे विश्वास है कि यही होता भी है कि सम्मानित लोग देश की सेवा के लिये अपने को समर्पित करने की इच्छा से ही प्रेरित होते हैं। परन्तु फिर भी दलबन्दी की प्रणाली को और अपने ही लोगों के प्रति अथवा उन लोगों के प्रति, जो अनुयायी होने के लिये तैयार हों, पक्षपात करने के विचार को महत्त्व दिया जाता है और केवल इसकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता कि किसी पद के लिये किसी व्यक्ति में कितनी योग्यता है और कितनी पात्रता है।

संसदात्मक शासन-प्रणाली में, जैसी कि वह पाश्चात्य देशों में प्रचलित है और जिसका अनुकरण करने का हम प्रयास कर रहे है, नियुक्तियों में महत्त्व इसको दिया जाता है कि यदि अमुक व्यक्ति किसी सरकारी जगह पर रखा जायेगा तो वह कितने लोगों के मतों को प्राप्त कर सकेगा और इसकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता कि वह देश की वास्तविक सेवा करने में समर्थ है अथवा नहीं। इस कारण संसदात्मक शासन-प्रणाली की, जिस पर यह विधान आधृत है और जिसमें विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग सम्बद्ध रहते हैं, मैं निःसंकोच होकर निन्दा करता हूं।

मैं यह जानता हूं कि मेरी ध्वनि केवल अरण्य-रुदन मात्र है। परन्तु मैं इसे अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि इसका इस सभा की कार्यवाही के प्रतिवेदन में उल्लेख हो जाये कि अन्य देशों के विधानों के प्रभाव का सावधानी से अध्ययन करने और लगभग तीस वर्ष तक इस देश की राजनैतिक संस्थाओं के विकास तथा लोक-जीवन, लोकाचार तथा व्यक्तिगत व्यवहार पर भी उनके प्रभाव का सावधानी से अध्ययन करने के उपरान्त मैं यह सुझाव उपस्थित करने का साहस करता हूं कि हम किसी अच्छे उदाहरण का अनुकरण नहीं कर रहे हैं और जितनी ही जल्दी हम अधिशासी-वर्ग न्यायाधीश-वर्ग और विधान-मण्डल के परस्पर सम्बन्ध को किसी सर्वोच्च मन्त्रिमण्डल अथवा सर्वोच्च प्राधिकारी को स्थापित करके समाप्त कर देंगे उतना ही हमारे लिये यह श्रेयस्कर होगा।

अन्त में, श्रीमान्, मैं अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल के पृथक्करण के सम्बन्ध में कुछ कहूंगा। अमेरिका में इनको बिल्कुल पृथक् रखा गया है और वहां के पिछले डेढ़ सौ वर्षों के अनुभव से यह कहा जा सकता है कि यह व्यवस्था पर्याप्त रूप से संतोषप्रद रही है। उनके सामने भी अंग्रेज़ी विधान का आदर्श था और उससे उनको हमसे कहीं अधिक प्रेरणा मिल सकती थी क्योंकि उसमें विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग का इतना उत्कृष्ट सम्मिलन हो गया था कि बर्क और फाक्स ऐसे विचारक भी इस सम्मिलन को नागरिक स्वतंत्रताओं और अंग्रेज़ी विधान की उदारता का आधार मानते थे।

किन्तु जेफरसन प्रभृति विचारकों ने आखिर ऐसा विधान बनाया जिसमें विधान-मण्डल, अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग को पृथक् ही रखा गया। एक सौ साठ वर्ष से वह विधान अमेरिका में प्रयोग में है और वहां के लोगों को उसके कारण किसी गम्भीर कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा हैं। युद्धकाल और गृहयुद्धकाल में भी वे अपनी स्वतंत्रता और अपने उदार विधान की रक्षा कर सके है। यदि वे उस मार्ग पर चलते जिस पर लगभग एक शताब्दी तक व्हिग लोग चलते रहे और उसी प्रकार अपनी दलबन्दी करते तो सम्भवत: वे इस प्रकार उनकी रक्षा न कर सकते।

बिना पुनरोक्ति के दोष के मैं इस विषय पर और भी बहुत कुछ कह सकता हूं परन्तु मुझे ज्ञात है कि अध्यक्ष महोदय का धैर्य असीम नहीं है और मैं इससे भी परिचित हूं कि सभा की भावना सहानुभूतिपूर्ण नहीं है। इसलिये इतनी बातें कह कर मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि इस प्रस्ताव को उस स्वरूप में स्वीकार कर लिया जाये तो स्वरूप उसका इस समय है।

***श्री के. हनुमन्थय्या** (मैसूर): श्रीमान्, इस संशोधन के सम्बन्ध में प्रोफेसर के. टी. शाह ने जो तर्क उपस्थित किया उसे मैंने बहुत आदरपूर्वक सुना। मेरा यह विचार है कि उन्होंने जिस खण्ड को उपस्थित किया है वह इस सभा तथा मसौदा-समिति द्वारा प्रस्तावित विधान के ढांचे से बिल्कुल असंगत है। इस सभा में हमने संसदात्मक शासन-प्रणाली स्वीकार की है और प्रोफेसर शाह ने अपने संशोधन द्वारा प्रधान-मूलक अधिशासी-वर्ग का प्रस्ताव उपस्थित किया है। हम इन दो प्रणालियों के गुण-दोषों पर विचार कर सकते हैं परन्तु हमने यह स्वीकार किया है कि इस देश के लिये संसदात्मक शासन-प्रणाली ही उपयुक्त है और कई कारणों से यह प्रणाली प्रधान-मूलक अधिशासी-वर्ग को प्रणाली से इस देश की दशाओं के लिये अधिक अनुकूल है। मेरे विचार से इस स्वविरोधात्मक वर्गत्रयी को स्थापित करने से शासन के किसी सामंजस्य-युक्त ढांचे का निर्माण करना अधिक लाभप्रद होगा। यदि हम प्रोफेसर शाह के मतानुसार अधिशासी-वर्ग न्यायाधीश-वर्ग और विधान-मण्डल को बिल्कुल पृथक् कर दें तो इन सरकारी विभागों के बीच अवश्य ही कलह उत्पन्न होगा। किसी भी देश अथवा शासन में कलह से शान्ति तथा समुन्नति का हनन ही होता है। कोई भी सरकार अथवा समाज केवल शान्ति होने पर ही सुचारु रूप से कार्य कर सकते हैं और यदि इन सरकारी विभागों को पृथक् अथवा प्रोफेसर शाह के शब्दों में सर्वथा पृथक् किया

[श्री के. हनुमन्थय्या]

गया तो उनके बीच अवश्य ही कलह उत्पन्न होगा। इसलिये मेरा यह कहना है कि किसी भी सरकारी ढांचे में सामंजस्य का होना आवश्यक है और यह त्रिमुखी कलह तो किसी प्रकार भी कल्याणकर नहीं हो सकती है।

इसके अतिरिक्त आजकल कुछ लोगों में यह प्रथा चल पड़ी है कि वे अधिशासी-वर्ग की तो निन्दा करते हैं और न्यायाधीश-वर्ग का ऐसा चित्र उपस्थित करते हैं जैसे वे सदाचार की सजीव मूर्तियां हों। मैं प्रोफेसर शाह और उनकी विचारधारा के लोगों के सम्मुख यह दृष्टिकोण रखना चाहता है कि इसमें सन्देह नहीं कि न्यायाधीश पक्षपातरहित होते है और उनको किसी का पक्ष लेने की आवश्यकता नहीं रहती, परन्तु हमें स्मरण रखना चाहिये कि भारत में तथा संसार के अन्य देशों में अधिशासी-वर्ग को बहुत ही कठिन परिस्थितियों में काम करना होता है। शासन चलाना और साथ ही लोगों को प्रसन्न रखना कोई आसान काम नहीं है। कई बार तो उनके सम्मुख ऐसी कठिन परिस्थितियां उपस्थित रहती हैं कि उनका जीवन ही संकट में रहता है। इस कारण वे लोगों को प्रसन्न नहीं रख सकते हैं। कुछ लोग इन परिस्थितियों से और लोगों की अप्रसन्नता से लाभ उठाने और अधिशासी-वर्ग को निन्दित करने के लिये उत्सुक रहते हैं। अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल की हमेशा निन्दा करने से और न्यायाधीश-वर्ग की प्रशंसा करने से न न्यायाधीश-वर्ग को लाभ होता है और न सरकार को। यदि मैं इसका आशय ठीक समझ सका हूं तो न्यायाधीश-वर्ग की स्वतंत्रता का अर्थ यह है कि अधिशासन के अधिकारी न्याय के प्रतिदिन के प्रशासन में हस्तक्षेप न करें। जैसी कि कुछ लोगों ने व्याख्या की है। इसका यह अर्थ नहीं है कि न्यायाधीश अधिशासन के अधिकारियों के प्रभु हैं अथवा उन्हीं के समान हैं। किसी भी देश की सरकार को शासन ही करना होता है। शासन की शक्ति कुछ लोगों के हाथ में होनी चाहिये और उसे तीन बराबर भागों में विभाजित करना विशेषतया उस प्रकार जैसे प्रोफेसर के.टी. शाह चाहते हैं, संकट से खाली न होगा। अमेरिका में भी यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से इन विभागों की शक्तियां बिल्कुल पृथक् हैं किन्तु यह सभी जानते हैं कि जो दल पदारूढ़ रहता है वह इस व्यवस्था से उत्पन्न होने वाली कठोरता को बहुत कम कर देता है। अमेरिका में दो सुसंगठित दल हैं और ये दल अपनी बैठकों में अपने कार्यक्रमों को निश्चित करते हैं। इन बैठकों में इस व्यवस्था से इन तीन सरकारी विभागों के बीच उत्पन्न होने वाली कठोरता को कम करने और मतभेद को मिटाने का प्रयास किया जाता है जिससे इस प्रणाली के दोषों का निराकरण हो जाता है। कभी-कभी जब किसी दल का विधान-मण्डल में बहुमत होता है और दूसरे दल का अधिशासी-वर्ग में बहुमत होता है तो अवश्य

ही कलह उठ खड़ा होता है। न्यायाधीश-वर्ग को पक्षपातरहित बनाने के लिये हमारे लिये यह आवश्यक नहीं है कि हम उसका पद उतना ही ऊंचा बनायें जितना कि सरकार का अथवा विधान-मण्डल का। यह तर्क ठीक नहीं है कि सर्वोच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीश विधान-मण्डल के चार सौ सदस्यों से कहीं अच्छे होते है, जो यथोचित निर्वाचन द्वारा चुने हुये लोक-प्रतिनिधि होते हैं और राष्ट्र के विश्वास प्राप्त नेता होते है। यह एक उल्टा तर्क है। राजनैतिक विवाद से उत्पन्न इस मनोवृत्ति को जितनी जल्दी हम छोड़ दें उतना अच्छा। इसलिये मैं इस नवीन खण्ड का विरोध करता हूं। इसका मुख्य कारण यह है कि इस सभा ने जनतंत्र की संसदात्मक शासन-प्रणाली को स्वीकार किया है और इस वैधानिक ढांचे में यह नवीन खण्ड बेमेल लगता है।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, मैं अपने मित्र श्री हनुमन्थय्या के इस विचार से सहमत हूं कि इस संशोधन में यह खण्ड जिस रूप में रखा गया है उस रूप में वह विधान में समुचित स्थान नहीं पा सकता है। परन्तु मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि मैं अपने विद्वान् मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह के तर्क से बहुत कुछ सहमत हूं। हमने कई वर्षों से संसदात्मक जनतंत्र का प्रयोग किया है। डॉ. अम्बेडकर ने अपने मूल भाषण में हमसे स्पष्ट शब्दों में यह कहा था कि हमने ब्रिटेन की प्रणाली और अमेरिका की प्रणाली में से किसी एक को चुनना है और यह भी कहा था कि जहां अमेरिका की प्रणाली से अधिक सुरक्षा प्राप्त हो सकती है तो ब्रिटेन की प्रणाली से अधिक जिम्मेदारी प्राप्त हो सकती है और हमने यहां अधिक जिम्मेदारी को स्वीकार करने का निश्चय किया था परन्तु मेरे विचार से यदि उन्हें इन दो प्रणालियों में से किसी एक को चुनने की स्वतंत्रता दी जाती तो वे अमेरिका की प्रणाली को पसन्द करते। वर्तमान संसदात्मक प्रणाली के जो दोष हैं उनको मैं बहुत अंश में स्वीकार करता हूं। हमने सिंध, बंगाल और अन्य प्रान्तों में संसदात्मक दलबन्दी को देखा है, जहां मंत्रिमण्डल बहुसंख्यक दल को बनाये रखने के लिये उन लोगों को भी घूस देते रहे हैं जिनके हाथ में केवल चार या पांच मत भी थे। मेरी यह धारणा है कि इस प्रणाली का, जिसके अधीन लोगों को केवल बहुसंख्यक दल को बनाये रखना होता है, दुरुपयोग किया जा रहा है। मैं यह जानता हूं कि इंग्लैण्ड में इस प्रणाली को बहुत ही उपयुक्त ढंग से प्रयोग में लाया जा रहा है। किन्तु उनकी 700 वर्ष प्राचीन परम्परा है। उन्होंने अपनी कार्यप्रणाली का विकास किया है किन्तु हमने अभी-अभी जनतंत्रात्मक स्वातंत्र्य प्राप्त किया है और इसलिये हम उनकी पूर्ण रूप से नकल नहीं कर सकते हैं। यह हम तभी कर सकते है जब हमारे सारे राष्ट्र का स्वरूप बदल जाये।

[प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना]

इस समय हमारे लिये इंग्लैण्ड की नकल करना सम्भव नहीं है। सम्भवत: अपने दासत्व के कारण ही हमने ब्रिटिश प्रणाली की नकल की है। यदि हमें इस सम्बन्ध में स्वतंत्रता होती तो हम अमेरिका की प्रणाली की नकल करते। उस प्रणाली के अन्तर्गत न्यायाधीश-वर्ग और विधान-मण्डल बिल्कुल पृथक् हैं और विधान-मण्डल तथा अधिशासी-वर्ग भी बिल्कुल पृथक् हैं। वहां विधान-मण्डल देश के लिये जिन कानूनों को भी लाभप्रद समझता है, बनाता है, और प्रधान को उसकी बात माननी होती है। यहां बहुसंख्यक दल के नेता को सभा का सहयोग प्राप्त होना चाहिये। सभा उन्हीं कानूनों को स्वीकार करती है जिन्हें दल आवश्यक समझता है। विधान-मण्डल अधिशासी-वर्ग के अधीन होता है और वह स्वाधीन नहीं होता है। अधिकतर सभी जगहों में जहां नेता ख्यातनामा होते हैं दल उनकी हां में हां मिलाते हैं और बहुसंख्यकों की वास्तविक इच्छा व्यक्त नहीं हो पाती। इसलिये मेरे विचार से सारा शासन केवल एक-व्यक्ति शासन का रूप धारण कर लेता है। अमेरिका में लोग स्वतंत्र हैं। वे ऐसे कानून भी बना सकते हैं जो प्रधान के विरुद्ध हों। कई बार विधान-मण्डल अथवा कांग्रेस के कुछ कानूनों को स्वीकार करने पर भी वहां सर्वोच्च न्यायालय में उनका शून्यन कर दिया। साथ ही प्रधान को भी बराबर यह देखते रहना होता है कि उसका कोई कार्य आधारभूत न्याय-सम्बन्धी कानूनों के विरुद्ध तो नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय वहां सबसे अधिक शक्तिसम्पन्न है। किन्तु मेरे विचार से हम बहुत आगे बढ़ गये हैं और अब विधान के आधार को बदलना सम्भव नहीं है क्योंकि पिछले दो वर्षों में हमने सभी बातें ब्रिटिश-विधान के अनुसार ही रखी हैं और अब सारी प्रणाली को बदलने का समय नहीं रह गया है। परन्तु मेरी यह धारणा है कि प्रोफेसर शाह के तर्क में बहुत बल है। निस्संदेह यह संशोधन इस स्थान पर उपयुक्त नहीं है किन्तु इस सभा को यह ध्यान में रखना चाहिये कि यद्यपि हम पूर्णतया उस प्रणाली के पक्ष में हैं जिसका प्रयोग इंग्लैण्ड में किया गया है और जो वहां संतोषजनक रूप से व्यवहार में है किन्तु फिर भी हमें अपने देश में ऐसी बातों का विकास करना है जिससे उस प्रकार का विधान सुचारु रूप से व्यवहार में आ सकता है। इंग्लैण्ड में यद्यपि चर्चिल ने अपने देश की तथा उसकी स्वतंत्रता की रक्षा की थी परन्तु नये निर्वाचन में उसे अलग कर दिया गया। क्या हमारे देश में ऐसी व्यवस्था है कि हम जिस किसी व्यक्ति को अच्छा न समझें उसे अलग कर सकते हैं? हमारे देश के लिये जो कुछ आवश्यक हो उसे हमें करना ही चाहिये, भले ही वह बड़े से बड़े आदमी की इच्छा के विरुद्ध क्यों न हो। जब तक यह स्थिति न उत्पन्न

हो जाये हम संसदात्मक जनतंत्र को व्यवहार में नहीं ला सकते हैं। इसलिये मेरे विचार से इस संशोधन द्वारा इस सभा को यह संदेह प्रकट करने का अवसर मिला है कि हमने वर्तमान प्रणाली को स्वीकार करके बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है अथवा नहीं। परन्तु मेरे विचार से अब सारी प्रणाली को बदलने का समय नहीं रह गया है और इसलिये अब यह संशोधन समयानुकूल नहीं है। इसका उद्देश्य तो वास्तव में यह होना चाहिये था कि सारी प्रणाली को ही बदला जाये। फिर भी मेरे विचार से जहां तक सर्वोच्च न्यायालय का सम्बन्ध है, मेरी यह इच्छा है कि वह किसी एक व्यक्ति द्वारा नियुक्त न किया जाये बल्कि विधान-मण्डल के बहुमत द्वारा नियुक्त किया जाये। सभी क्षेत्रों में उसकी स्वाधीनता की प्रत्याभूति होनी चाहिये। मैंने इस आशय के संशोधनों की सूचना दी है कि सर्वोच्च न्यायालय किसी प्रकार भी न्यायाधीश-वर्ग और विधान-मण्डल के अधीन न होना चाहिये। इसी संस्था को यह निर्णय करने का अधिकार होना चाहिये कि हमारी स्वतंत्रता आदि के सम्बन्ध में किन बातों की प्रत्याभूति दी गई है। मुझे आशा है कि इस संशोधन द्वारा हम कम से कम यह समझने में समर्थ होंगे कि सर्वोच्च न्यायालय की स्वतंत्रता किसी प्रकार भी सीमित न की जानी चाहिये। इस सम्बन्ध में मैंने इस सभा में एक उच्च अधिकारी को यह कहते हुये सुना कि इस समय उच्च न्यायालय स्वाधीन नहीं है। और अपने कार्यों के राजनैतिक परिणाम से वे प्रभावित होते हैं।

मुझे आशा है कि भविष्य में हमारा सर्वोच्च न्यायालय इन प्रभावों से मुक्त होगा और वह वही कार्य करेगा जो आवश्यक हो तथा इस विधान में सन्निहित सिद्धांतों का अनुसरण करेगा।

***काज़ी सय्यद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रो. के. टी. शाह के संशोधन से पूर्णतया सहमत हूं। मैं यह जानता हूं कि विधान-परिषद् ने संसदात्मक शासन-प्रणाली को स्वीकार किया है, परन्तु जिस समय यह किया गया था उस समय भी मैंने भारत के लिये असंसदात्मक शासन-प्रणाली को अपनाने के लिये अनुरोध किया था। हम सन् 1920 ई. से देखते आ रहे है कि संसदात्मक शासन-प्रणाली के आधार पर भारत सरकार के कानून और प्रान्तीय सरकारों के कानूनों के प्रयोग में आने पर केवल असफलता का ही सामना करना पड़ा है। यह स्पष्ट है कि संसदात्मक शासन-प्रणाली के अधीन राजनैतिक क्षेत्र में विरोधियों को या तो कुचल दिया जाता है या उनकी उपेक्षा की जाती है। हमारे यहां न पहले से प्रचलित प्रथायें हैं और न अनुशासन

[काजी सय्यद करीमुद्दीन]

ही और हमारे लोगों को संसदात्मक प्रणाली के कार्य का अभ्यास न होने के कारण वे विरोध को सहन नहीं कर सकते हैं। हमने भारत में यह देखा है कि मंत्री विधान-मण्डलों के दास होते हैं और उन्हें अपने अस्तित्व को तथा अपने पदों को बनाये रखने के लिये देशवासियों के विचारों पर निर्भर रहना पड़ता है। उनको अपनी बुद्धि तथा विवेक से काम लेने की स्वतंत्रता नहीं होती और इसका परिणाम यह होता है कि जो लोग उन्हें पदारूढ़ रखते हैं वे उनकी बुद्धि और विवेक को भी प्रभावित करते हैं और इससे उनके विरोधियों का बहुत अहित होता है। इस देश में विभिन्न प्रकार के लोग हैं। उनके विभिन्न सिद्धान्त हैं और विभिन्न कार्यक्रम। हमने देखा है कि देश में विशेषतया नोआखाली, बिहार और दोनों पंजाबों में किस प्रकार लूटमार हुई। यह इसी कारण हुआ कि वहां की सरकारें संसदात्मक प्रणाली पर आधृत थीं। दोनों पंजाबों, नोआखाली और बिहार में मन्त्री सख्त कार्यवाही बहुत कुछ इसलिये नहीं कर सके कि वे इन प्रदेशों के लोगों की उत्तेजनापूर्ण भावना का विरोध नहीं कर सकते थे। इसलिये यदि आप देश में शान्ति चाहते हैं और विरोधी राजनैतिक दलों को मिटा ही देना नहीं चाहते हैं तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि किसी असंसदात्मक शासन-प्रणाली का अनुसरण किया जाये।

इस सभा में यह बहुत अंश में स्वीकार कर लिया गया है कि संसदात्मक शासन-प्रणाली के अधीन न्यायाधीश-वर्ग यहां कभी भी स्वतंत्र न होगा। यदि उसे स्वतंत्र न बनाया गया तो वैयक्तिक स्वातंत्र्य तथा वैयक्तिक सम्पत्ति सम्बन्धी मूलाधिकार की प्रत्याभूति उपहासास्पद ही सिद्ध होगी। जब तक न्यायाधीश-वर्ग स्वतंत्र न हो और अधिशासी-वर्ग तथा विधान-मण्डल से पृथक् न हो तब तक मूलाधिकारों के आधार पर रक्षा प्राप्त करना और स्वतंत्र विचार के आधार पर निर्णय करना सम्भव न हो सकेगा।

मद्रास के मेरे मित्र ने इस संशोधन का विरोध करते हुये तीन कारण बताये। उन्होंने यह कहा कि असंसदात्मक शासन-प्रणाली के अन्तर्गत कोई ऐसी सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था नहीं की जा सकती जिसके अधीन राजनैतिक दल एक साथ काम कर सकते हैं। मेरा यह निवेदन है कि संसदात्मक शासन-प्रणाली के अधीन कोई सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था नहीं स्थापित होती है किन्तु एक ऐसी व्यवस्था स्थापित होती है जिसमें राजनैतिक विरोधी कुचल दिये जाते हैं। सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था वह है जिसमें सभी दल एक साथ सामंजस्य से काम कर सकते हैं और विरोधी दल को भी यथोचित स्थान दिया जाता है। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता है कि संसदात्मक शासन-प्रणाली के अधीन, जब कि न अनुशासन रहता है और न सहिष्णुता, कोई व्यक्ति सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था की आशा कर सकता है।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, यह भी कहा गया था कि यदि असंसदात्मक शासन प्रणाली का अनुसरण किया गया तो विधान-मण्डल, अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग के बीच बहुत कलह होगी। मेरा यह निवेदन है कि यदि न्यायाधीश-वर्ग को अधिशासी-वर्ग से पृथक् किया गया और वह विधान-मण्डल की ज्यादतियों से सहमत न हो तो इससे भलाई ही होगी। यह किसी भी जनतंत्रात्मक राज्य में एक अच्छा लक्षण समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह कहा गया था कि मन्त्रिमण्डल और अधिशासी-वर्ग को लोगों को प्रसन्न रखना होता है। वास्तव में इसी कारण हम असंसदात्मक शासन-प्रणाली को चाहते हैं। हम विधान-मण्डल, अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग को पृथक् इसीलिये करना चाहते हैं कि लोगों को प्रसन्न करने में वे ऐसी ज्यादतियां कर बैठते हैं कि उनके विरोधियों के या तो प्राण ही ले लिये जाते हैं या उनको कुचल दिया जाता है अथवा उनकी उपेक्षा की जाती है। इसलिये मेरा यह कहना है कि मद्रास के मेरे माननीय मित्र ने संसदात्मक शासन-प्रणाली के पक्ष में जो तर्क उपस्थित किया है वह उनके विरुद्ध ही जाता हैं। हम एक ऐसी शासन-प्रणाली चाहते हैं जिसमें समर्थकों को प्रसन्न करने की कम से कम आवश्यकता हो। यह एक मिथ्या कथन है कि केवल इंग्लैण्ड की ही शासन-प्रणाली जनतंत्र पर आधृत है। अमेरिका की शासन-प्रणाली के समान अन्य शासन प्रणालियां भी जनतंत्र पर आ यह नहीं कहा जा सकता कि अमेरिका की प्रणाली जनतंत्र पर आधृत नहीं है। यदि आप चाहते हैं कि शासन स्थिर और शक्तिशाली हो और यदि आप वास्तव में चाहते हैं कि साम्प्रदायिकता विनष्ट हो जाये तो आपको ऐसा वातावरण उत्पन्न करना चाहिये जिसमें लोगों की उत्तेजना के लिये कोई स्थान न हो और जिसमें राजनैतिक विरोध सहिष्णुता की दृष्टि से देखा जाये। हम ऐसी सरकारें और मन्त्रिमण्डल नहीं चाहते जो अस्थिर हो और जिन्हें पदारूढ़ रहने के लिये सदैव समर्थकों को प्रसन्न रखने की आवश्यकता हो। इसलिये मैं प्रोफेसर के. टी. शाह द्वारा उपस्थित संशोधन का पूरी शक्ति से समर्थन करता हूं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि प्रोफेसर शाह ने एक ऐसा प्रश्न उठाया है जिसका बहुत वैधानिक महत्त्व है। दुर्भाग्य से उन्होंने कुछ देर कर दी है। यह सभा इस प्रश्न पर विचार कर चुकी है और वह संसदात्मक शासन-प्रणाली के पक्ष में निर्णय कर चुकी है। उसी निर्णय के आधार पर मसौदा-समिति ने सारे विधान का मसौदा बनाया है। इसलिये यदि अधिकांश सदस्यों के मत में क्रान्तिपूर्ण परिवर्तन नहीं हो गया है तो प्रोफेसर शाह के प्रस्ताव को इस समय व्यावहारिक नहीं कहा जा

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

सकता है। इसलिये मैं प्रधानमूलक तथा संसदात्मक अधिशासी-वर्ग के प्रश्न की विस्तृत व्याख्या नहीं करना चाहता। श्रीमान्, यह बहुत अंश में एक मिथ्या बात है कि अमेरिका के विधान में भी विधान-मण्डल, अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग पूर्णतया अलग-अलग हैं। यद्यपि यह कहा जाता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय अधिशासी-वर्ग से पूर्णतया पृथक् है परन्तु हमने देखा है कि एक प्रधान के बाद दूसरे प्रधान ने किस प्रकार अपनी विचारधारा के न्यायाधीशों को नियुक्त करके सर्वोच्च न्यायालय को अपने ढंग का बनाने का प्रयास किया है। जब कभी सर्वोच्च न्यायालय और प्रधान के बीच कलह हुआ है तो प्रधान को केवल उस समय की प्रतीक्षा करनी पड़ी है जब किसी न्यायाधीश ने अवकाश ग्रहण किया है। ऐसा होने पर वह अपने किसी आदमी को मनोनीत करता रहा है और फिर सभी निर्णय उसी के पक्ष में होते रहे हैं। इसलिये जब तक नियुक्ति के सम्बन्ध में सर्वोच्च अधिकारी प्रधान ही है उस समय तक न्यायाधीश-वर्ग का अधिकार कुछ सीमा तक अधिशासी-वर्ग पर निर्भर रहता है। परन्तु जहां तक हमारे विधान का सम्बन्ध है, उसमें यह प्रावहित है कि हमारा सर्वोच्च न्यायालय, अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल से उसी प्रकार पृथक् होगा जैसे कि संयुक्त राज्य अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय। विधान में इस सीमा तक प्रोफेसर शाह की इच्छा पूर्ण हो गई है।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** वहां न्यायाधीश कांग्रेस और सीनेट द्वारा नियुक्त होते हैं।

**माननीय श्री के. सन्तानम्:** कहां?

**प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** संयुक्त राज्य अमेरिका में।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** परन्तु प्रधान ही को उन्हें मनोनीत करना होता है।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** परन्तु उन्हें सीनेट की सहमति प्राप्त करनी होती है।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** जी हां, चाहे सीनेट की सहमति ली जाये अथवा नहीं नियुक्ति करने वाला अधिकारी प्रधान ही है। इसलिये प्रधान अपने मनोनीत किये हुये व्यक्ति को ही पसन्द करेगा और चाहे कितने ही उम्मीदवार हों वह केवल उन व्यक्तियों को मनोनीत करेगा जो उसकी विचारधारा का,

विशेषतया महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के सम्बन्ध में, समर्थन करेंगे। यदि नियुक्त करने वाले अधिकारी को छोड़ दिया जाये तो जहां तक न्यायाधीश-वर्ग के स्वतंत्र होने का सम्बन्ध है, हमने अपने विधान में जिस स्वतंत्रता की व्यवस्था की है, वह किसी अन्य विधान में प्रावहित स्वतंत्रता से कम नहीं है। इसलिये वास्तविक प्रश्न यह है कि प्रधानमूलक और संसदात्मक अधिशासी-वर्गों में से कौन अधिक श्रेयस्कर है। श्रीमान्, दो-तीन वर्ष पूर्व मेरी भी यह प्रबल धारणा थी कि भारत की केन्द्रीय सरकार के लिये प्रधान-मूलक अधिशासी-वर्ग ही सबसे अधिक उपयुक्त है, परन्तु इस सभा के विचार-विमर्श को सुन कर तथा स्वयं भी अधिक विचार करने पर मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि वह प्रणाली देश के लिये सम्भवत: उतनी हितकर नहीं है जितनी मैं उसे पहले समझता था क्योंकि, श्रीमान्, भविष्य में इस देश में राज्य आर्थिक क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग लेने वाला है। यदि यहां राज्य का काम केवल शांति की व्यवस्था करना ही रहता तो अधिशासी-वर्ग और विधान-मंडल का अलग किया जाना बहुत महत्त्व रखता। यदि विधान का निर्माण करते समय केवल शक्ति और स्थैर्य को ही अथवा मुख्यत: इन्हीं को ध्यान में रखना है तो मेरे विचार से प्रधानमूलक अधिशासी-वर्ग का महत्त्व बहुत बढ़ जाता है परन्तु आज तो शक्ति और स्थैर्य से अधिक महत्त्व दिनोंदिन आगे बढ़ने वाली आर्थिक उन्नति का है। हमारा स्थैर्य और हमारी शक्ति भी उस दशा के अधीन रहेगी जिसमें भारत का आर्थिक पुनर्निर्माण किया जा सकता है। मुझे विश्वास है कि प्रोफेसर के. टी. शाह को इसकी बहुत चिंता है कि भारत का समाजवाद के आधार पर शीघ्रातिशीघ्र पुनर्निर्माण किया जाये। परन्तु यदि प्रधानमूलक अधिशासी-वर्ग रहेगा तो मेरे विचार से इस सम्बन्ध में उनकी इच्छाओं की पूर्ति के मार्ग में बहुत बाधा पड़ेगी। प्रधानमूलक-प्रणाली का एक दोष यह है कि अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल का प्राय: कलह होता रहता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में यह होता आया है। उनके बीच यह कलह तीन या चार वर्ष तक अथवा उस समय तक चलता रहता है जब तक कि नया विधान-मण्डल न बन जाये अथवा प्रधान का नया चुनाव न हो जाये। श्रीमान्, मेरे विचार से हम इस देश में तीन या चार वर्ष का समय इस प्रकार के कलहों में नष्ट नहीं कर सकते। यदि थोड़े समय के लिये भी इस प्रकार का कलह हुआ तो वे सब लाभ मिट्टी में मिल जायेंगे जो प्रधान को स्वतंत्र सत्ता देने तथा अधिशासी-वर्ग की स्थिरता से होते। श्रीमान्, हमने बहुत से उद्योगों का समाजीकरण करना है, नये नियमों को स्थापित करना है और रुपया उधार देने या लेने के नये तरीके अपनाने हैं। इन सब बातों के लिये

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल का प्रतिदिन का सहयोग बहुत महत्त्व रखता है। जब तक और कम से कम भारतीय स्वातंत्र्य के उदय-काल में, इस प्रकार का सहयोग न होगा तो हमारी उन्नति, जो विदेशी शासन के कारण अभी तक अवरुद्ध रही है, और भी अधिक विलम्बित हो जायेगी और आर्थिक पुनर्निर्माण में जो विलम्ब होगा उससे लोगों का अधैर्य सभी सीमाओं का उल्लंघन कर जायेगा और सुव्यवस्थित जनतंत्र की स्थापना असम्भव हो जायेगी। इसलिये, श्रीमान्, चूंकि केन्द्रीय सरकार को इतनी शक्तियां दी जा रही है जिनकी मैंने आशा भी न की थी और चूंकि हमारे शासन का स्वरूप संघीय से अधिक एकात्मक है इसलिये यह और भी आवश्यक है कि केन्द्र में संसद् और अधिशासी-वर्ग एक ही शरीर के अंग हों और एक ही इकाई के रूप में काम करें। जब तक वे ऐसा न करेंगे देश की सारी उन्नति अवरुद्ध हो जायेगी। यदि हमने प्रान्तीय स्वायत्त-शासन पर अधिक विश्वास किया होता और सभी रचनात्मक कार्यक्रमों और आर्थिक पुनर्निर्माण को प्रदेशों पर छोड़ दिया होता तो मैं प्रान्तों में उत्तरदायी शासन और केन्द्र में प्रधान-मूलक अधिशासी-वर्ग का पक्ष लेता, क्योंकि इस दशा में केन्द्र का कर्त्तव्य केवल यह रह जाता कि वह देश की रक्षा करे और देश की एकता को अक्षुण्ण बनाये रखे और प्रदेशों को आर्थिक क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से कार्य करने दे। परन्तु कई प्रबल कारणों से श्रेयस्कर यह समझा गया है कि देश के आर्थिक पुनर्निर्माण को उत्तरोत्तर समुन्नत करने के लिये भारत की केन्द्रीय सरकार सक्रिय भाग ले। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल अथवा संसदात्मक अधिशासी-वर्ग पर्याप्त होगा। इसलिये मुझे आशा है कि प्रोफेसर के. टी. शाह अपने दृष्टिकोण पर फिर विचार करेंगे और अपने संशोधन को वापस ले लेंगे। पर हर हालत में, मैं तो इस संशोधन के विरोध में हूं।

*__उपाध्यक्षः__ मैं जानता हूं कि अब भी कई ऐसे सदस्य बोलना चाहते हैं जिनका इस विषय पर अधिकार है परन्तु मेरे विचार से इस पर अब पर्याप्त विचार-विमर्श हो चुका है। इसलिये अब मैं डॉ. अम्बेडकर से बोलने के लिये कहता हूं। मुझे खेद है कि मैं माननीय सदस्यों को इस अवसर से वंचित कर रहा हूं, परन्तु मेरे विचार से वे इसे स्वीकार करेंगे कि आखिर हमने प्रतिदिन कुछ काम आगे बढ़ाना है।

*__श्री लोकनाथ मिश्र__ (उड़ीसा : जनरल): किन्तु कई बातों पर प्रकाश नहीं डाला गया है।

*__उपाध्यक्षः__ डॉ. अम्बेडकर!

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, माननीय सदस्यों को स्मरण होगा कि जिस समय हमने निदेशक सिद्धान्त-सम्बन्धी अनुच्छेदों पर विचार-विमर्श करके स्वीकार किया था उस समय इस विषय पर लम्बी बहस हुई थी। मेरे ही प्रस्ताव पर निदेशक सिद्धान्तों में अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग के अलग करने के सम्बन्ध में एक प्रावधान को समाविष्ट करने का प्रयास किया गया था। आरम्भ में इस सम्बन्ध में तीन वर्ष की काल-सीमा रखी गई थी। बाद को विचार-विमर्श होने पर और इस सिद्धान्त को व्यवहार में लाने में जो कठिनाइयां होंगी उन्हें समझ कर सभा ने यह निर्णय किया था कि यह काल-सीमा हटा दी जाये और प्रान्तीय सरकारों को निर्देश करने के लिये यह प्रावधान रखा था कि वे अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग के अलग करने के लिये आवश्यक कार्यवाही करें। उस अवसर पर इस पूरे विषय पर विचार-विमर्श हुआ था और मुझे इसकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि उस समय मैंने जो कुछ कहा था उसे मैं फिर दुहराऊं। इस सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है कि अधिशासी-वर्ग को न्यायाधीश-वर्ग से पृथक् रखा जाये।

जहां तक अधिशासी-वर्ग को विधान-मण्डल से पृथक् करने का प्रश्न है यह सच है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के विधान में इस प्रकार के पृथक्करण की व्यवस्था है। परन्तु यदि मेरे मित्र प्रोफेसर शाह ने अमेरिका के विधान के इस विशेष प्रावधान की हाल में की हुई आलोचना को पढ़ा होता तो उनको विदित होता कि बहुत से अमेरिकन ही अमेरिका के विधान में अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग के पूरे पृथक्करण से बहुत असंतुष्ट हैं। अमेरिका के विधान के बहुत से अध्येताओं ने एक प्रस्ताव यह भी किया है कि अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग के पृथक्करण का बिल्कुल ही निराकरण कर दिया जाये ताकि अमेरिका में उसी प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो जाये जैसे कि उदाहरणार्थ इंग्लैण्ड में है। इंग्लैण्ड में अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल के बीच कोई अन्तर अथवा पृथक्करण नहीं है। यह मत प्रतिपादित किया गया है कि अमेरिका के विधान में कोई ऐसा प्रावधान रखा जाये जिसके अधीन अधिशासी-वर्ग के सदस्य प्रति-निधि-सभा अथवा सीनेट में बैठ सकें। चाहे वे विधान-मण्डल के सभी कार्यों में, जैसे मतदान इत्यादि में, भाग न लें परन्तु वे वहां बैठें, प्रश्नों का उत्तर दें और जिस किसी विषय पर कानूनी बहस हो रही हो उसमें भाग लें। इसे ध्यान में रखते हुये यह कहा जा सकता है कि अमेरिकन लोगों को ही इस सम्बन्ध में बहुत सन्देह है कि अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल के पूर्णतया पृथक्करण से लाभ हो सकता है अथवा नहीं। मुझे तथा राजनीति-विज्ञान के अध्येताओं को इस सम्बन्ध

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

में बिल्कुल भी सन्देह नहीं है कि संसद् का कार्य बहुत जटिल तथा बहुत अधिक होगा और जब तक अधिशासी-वर्ग के लोग संसद् में बैठ कर सदस्यों का पथ-प्रदर्शन न करेंगे तब तक सदस्यों के लिये उसका काम चलाना कठिन हो जायेगा। किसी कानूनी विषय पर विचार-विमर्श में संसद् के सदस्यों के साथ अधिशासी-वर्ग के सदस्यों के भी भाग लेने से निस्संदेह यह लाभ होता है कि जटिल विषयों के सम्बन्ध में संसद् के सदस्यों का पथप्रदर्शन होता है। इसलिये मेरा अपना यह विचार है कि यदि हम अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल को पृथक् करने की अमेरिका की प्रणाली का अनुसरण न करें तो इससे किसी प्रकार के अहित होने की सम्भावना नहीं है।

अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग के पृथक्करण के प्रश्न के सम्बन्ध में मैं कह चुका हूं कि इस सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है और मेरी समझ से यह प्रश्न प्रधानमूलक प्रणाली अथवा संसदात्मक प्रणाली पर निर्भर नहीं है, क्योंकि इसे सभी स्वीकार करते हैं कि संसदात्मक प्रणाली में भी अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग का प्रथक्करण हो सकता है। निदेशक सिद्धान्त सम्बन्धी जिस अनुच्छेद को हमने स्वीकार किया है उसमें भी हमने इस व्यवस्था को स्वीकार किया है। इसलिये मेरे विचार से मेरे लिये यह सम्भव नहीं है कि मैं इस संशोधन को स्वीकार करूं।

***उपाध्यक्षः** अब मैं प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन पर मत लूंगा।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** श्रीमान्, क्या मैं उत्तर के रूप में कुछ शब्द कह सकता हूं। यह एक नया अनुच्छेद है और कोई संशोधन नहीं है।

***उपाध्यक्षः** यह एक अनुच्छेद हो सकता है, परन्तु है तो यह विधान के मसौदे में संशोधन ही। इससे बहुत कठिन स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। हमने बहुत कठिनाई तय करके एक प्रणाली स्वीकार की है और मुझे विश्वास है कि प्रोफेसर शाह अध्यक्ष की कठिनाइयों पर विचार करेंगे।

(प्रोफेसर शाह अपनी जगह पर बैठ गये।)

***उपाध्यक्षः** धन्यवाद। आप बहुत ही तर्कप्रिय और सहयोगप्रिय हैं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 40 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'40-A. There shall be complete separation of powers as between the principal organs of the State, *viz.,* the Legislative, the Executive and the Judicial.'"

(40-क. राज्य के मुख्य अंगों की अर्थात् विधान-मण्डल की, अधिशासी-वर्ग की और न्यायाधीश-वर्ग की शक्तियां बिल्कुल पृथक् होंगी।)

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** जहां तक मुझे स्मरण है हमारा कार्य संशोधन संख्या 1033 से आरम्भ होता है। यह रस्मी होने के कारण उपस्थित नहीं किया जा सकता है।

मेरे विचार से संशोधन संख्या 1034 इस कारण उपस्थित नहीं किया जा सकता है कि सभा एक नये अनुच्छेद 39-क को स्वीकार कर चुकी है।

अब हम अनुच्छेद 41 पर आते हैं।

---

## अनुच्छेद 41

***उपाध्यक्ष:** प्रत्येक संशोधन को पढ़ने से मुझे यह ज्ञात होता है कि संशोधन संख्या 1037, 1038 और 1039 मुख्यत: हमारी मातृभूति के नाम के सम्बन्ध में हैं। मेरे विचार से उन्हें इस समय स्थगित रखना चाहिये। इनका सम्बन्ध अनुच्छेद 1 से है जिस पर हमने बाद को विचार-विमर्श करने का निश्चय किया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या आपका यह निर्णय है कि इन संशोधनों का इन अनुच्छेदों से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि आप इन्हें स्थगित रखने का निश्चय करते हैं तो हम सम्बन्धित अनुच्छेद को स्वीकार नहीं कर सकते हैं।

***उपाध्यक्ष:** आप इन कानूनी बातों के पण्डित हैं। क्या हम किसी प्रकार इनका सम्बन्ध अनुच्छेद 1 से नहीं जोड़ सकते हैं ताकि हम इस अनुच्छेद को स्वीकार कर सकें?

***माननीय श्री के. सन्तानमः** यदि अनुच्छेद 1 में नाम बदला जायेगा तो समनुवर्त्ती परिवर्तन किये जा सकते हैं। इस समय इन संशोधनों को उपस्थित करने की आज्ञा न दी जाये और उन्हें अनुच्छेद 1 पर विचार करते समय उठाया जाये।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): माननीय सदस्य महोदय ने जो कुछ कहा उसका एक शब्द भी मैं नहीं सुन पाया।

***उपाध्यक्षः** श्री सन्तानम्, कृपया माइक पर आकर स्थिति का स्पष्टीकरण कर दीजिये। श्री कामत, कृपया अधीर न होइये।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, हम उन्हें सुनने के लिये अधीर हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** जब हम नामों के सम्बन्ध में निर्णय करें, चाहे हम प्रस्तावना पर विचार करते समय अथवा अनुच्छेद 1 पर विचार करते समय ऐसा करें, तो सारे विधान में समनुवर्त्ती परिवर्तन किये जा सकते हैं। इसलिये मेरे विचार से इस प्रश्न को हर समय उठाने की आवश्यकता नहीं है। यदि आप इस अनुच्छेद को स्वीकार करना चाहें तो ये सब बातें इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में अप्रासंगिक समझी जानी चाहियें। अन्यथा प्रत्येक अनुच्छेद को इसलिये स्थगित करना होगा कि इन संशोधनों को स्थगित करना है क्योंकि बिना इन पर विचार किये हुए हम अनुच्छेद को स्वीकार नहीं कर सकते हैं। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इस प्रकार के सभी संशोधनों को किसी विशेष अनुच्छेद से सम्बन्धित न समझना चाहिये बल्कि सामान्यतः विधान से सम्बन्धित समझना चाहिये।

***उपाध्यक्षः** मेरे विचार से व्यावहारिक कारणों से हमें श्री सन्तानम् द्वारा प्रस्तावित कार्यप्रणाली को स्वीकार कर लेना चाहिये।

अब हम संशोधन संख्या 1035 को उठाते हैं। इसमें केवल इसका ही उल्लेख नहीं है कि भविष्य में हमारी मातृभूमि का क्या नाम होगा बल्कि इसका भी उल्लेख है कि प्रधान का वेतन क्या होगा। इसलिये इसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 41 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'41. The Chief Executive and Head of the State in the Union of India shall be called the President of India.'"

41. भारतीय संघ में मुख्य अधिशासक और राज्य का प्रमुख भारत का प्रधान कहा जायेगा।)"

मैं इसके विकल्प को नहीं पढ़ूंगा और अपने को केवल मुख्य प्रस्ताव तक ही सीमित रखूंगा।

प्रधान की उपाधि के सम्बन्ध में इस खण्ड को उसके वर्तमान रूप ही में रखने के बजाय मैं यह चाहता हूं कि प्रधान के पद तथा उसकी शक्ति का भी कुछ उल्लेख हो। भारत के प्रधान के पद और उपाधि का जिस प्रकार वर्तमान खण्ड में वर्णन किया गया है उससे अधिक स्पष्ट शब्दों में उनका उल्लेख होना चाहिये। इसीलिये मैंने 'मुख्य अधिशासक और राज्य का प्रमुख' शब्द रखे हैं।

मैं समझता हूं कि राज्य के प्रमुख के रूप में प्रधान के पद और स्थान के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है। उसका स्थान शासन के प्रमुख से भिन्न है। मेरे विचार से शासन का प्रमुख प्रधान-मन्त्री अथवा प्रधान भी हो सकता है। चाहे जो भी हो, शासन के प्रमुख का स्थान भिन्न है। परन्तु उत्सवों पर अथवा ऐसे अवसरों पर जब रस्मों को पूरा करना होता है अथवा गम्भीरता का परिचय देना होता है, लोगों के एक ऐसे प्रतिनिधि की आवश्यकता होती है, जिसमे सारे राष्ट्र की और सारे राज्य की सर्वसत्ता सन्निहित हो। इसलिये मेरे विचार से अच्छा तो यह होगा कि मूल अनुच्छेद के स्थान पर मेरे संशोधन को प्रविष्ट किया जाये और भारत के प्रधान को मुख्य अधिशासक और राज्य का प्रमुख कहा जाये। मैं इसकी विस्तृत व्याख्या करके सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता, क्योंकि इस संशोधन में संक्षेप में जो कुछ कहा गया है उसी को मैं विस्तार से कहूंगा। इसलिये अधिक समय न लेकर मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***उपाध्यक्षः** क्या आप दूसरा भाग नहीं उपस्थित कर रहे हैं?

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** मैं दूसरा भाग उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 1037 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी गई है। इसका कारण सभा को विदित है। संशोधन संख्या 1038 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती है।

(संशोधन संख्या 1039 उपस्थित नहीं किया गया।)

[उपाध्यक्ष]

अब इस अनुच्छेद पर सामान्य विचार-विमर्श हो सकता है, यद्यपि मेरे विचार से इसकी आवश्यकता नहीं है।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं इस सभा का बहुत समय नहीं लेना चाहता, परन्तु चूंकि पिछले एक सप्ताह या इससे अधिक समय से मैंने कुछ भी समय नहीं लिया है, इसलिये मेरे विचार से मुझे एक-आध मिनट दिया जा सकता है।

मैं केवल प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन पर ज़ोर देना चाहता हूं जिसमें एक निर्देश सन्निहित है जो इस सभा के विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुये बहुत महत्त्वपूर्ण है। विधान में एक कमी रह गई है। मैं नहीं जानता कि इस अवसर पर यह विचार व्यक्त किया जाना चाहिये अथवा नहीं परन्तु उन्होंने ठीक ही कहा है कि हमें इसे परिभाषित कर देना चाहिये कि जहां तक सर्वसत्ता का सम्बन्ध है लोगों का प्रतिनिधि कौन समझा जायेगा। वे यह कहते हैं कि भारत में राज्य का प्रमुख लोगों की सर्वसत्ता का प्रतिनिधित्व करेगा। हमने अभी इस प्रश्न को हल नहीं किया है कि सर्वसत्ता कहां स्थित होगी। मैंने इस सम्बन्ध में एक संशोधन उपस्थित किया था और उस समय यह वचन दिया गया था कि प्रस्तावना पर विचार-विमर्श करते समय उसे उठाया जा सकता है। श्रीमान्, मैं उस अवसर की प्रतीक्षा कर रहा हूं। परन्तु मेरी यह धारणा है कि राज्य के प्रमुख को लोगों की सर्वसत्ता का प्रतिनिधित्व भी करना चाहिये। अन्यथा लोगों के लिये अभिव्यक्ति का कौन-सा साधन रह जायेगा? जनतंत्रात्मक देशों में किसी भी सरकार का यह दावा नहीं हो सकता कि वह सभी लोगों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। यहां की सरकार यद्यपि लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करती है और वर्तमान शासनाधिकारी देश में सबसे अधिक लोकप्रिय हैं परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि वे भारत के सभी लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे सभी लोगों के प्रतिनिधि इसलिये नहीं हैं कि उनकी एक दल के प्रति निष्ठा है और उस दल के कार्यक्रम के आधार पर वे निर्वाचित हुये हैं। साधारणतया कोई भी सरकार देश के बहुसंख्यक दल का प्रतिनिधित्व करेगी। इसलिये कोई भी सरकार सभी लोगों की ओर से नहीं बोल सकती। कोई इकाई, कोई अधिकारी अथवा कोई व्यक्ति ऐसा होना चाहिये जिसमें सर्वसत्ता सन्निहित हो और जिसमें लोगों के

परमाधिकार समाविष्ट हों। इसलिये, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि अच्छा तो यह होता कि हमने इसका उल्लेख किया होता कि प्रधान केवल राज्य का अधिशासी प्रमुख ही नहीं है बल्कि वह लोगों की सर्वसत्ता का भी प्रतीक है।

श्रीमान्, मैं लोगों और राज्य में विभेद करता हूं। राज्य हमेशा शासन करता है। जहां तक शासित और शासक का प्रश्न है, चाहे जनतंत्र हो अथवा अन्य कोई तंत्र, राज्य शासन करता है और लोग शासित होते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि जनतंत्रात्मक राज्य में अल्पसंख्यकों को अथवा विपक्षियों को अभिव्यक्ति का पूरा अवसर दिया जाये। क्योंकि विधान-मण्डल की किसी सभा में अथवा संसद् में यदि अल्पसंख्यक बोलते हैं तो वे केवल लोगों की ओर से बोलते हैं। यदि यह सभा विधान निर्मातृ-परिषद् के रूप में नहीं बल्कि विधान-सभा के रूप में समवेत् होती तो डॉ. अम्बेडकर और उनके सहकारी शासन का प्रतिनिधित्व करते। वे शासन की कठिनाइयों को जानते हैं परन्तु चाहे ये कठिनाइयों कैसी ही क्यों न हों, लोग यह चाहते हैं कि उनके विचार व्यक्त किये जायें। विपक्षी दल ही उनके विचारों को व्यक्त कर सकता है और उनकी मांगों को उपस्थित कर सकता है और इसलिये यह आवश्यक है कि बहुसंख्यकों के शासन में उसकी रक्षा की जाये।

***उपाध्यक्ष:** क्या आप कृपा करके बतायेंगे कि इससे प्रधान के प्रश्न का क्या सम्बन्ध है?

***श्री महावीर त्यागी:** मैं इस पर ज़ोर देना चाहता हूं कि विधान में यह अवश्य ही प्रावहित होना चाहिये कि लोगों की सर्वसत्ता सरकार से भिन्न किसी अन्य व्यक्ति में भी सन्निहित होनी चाहिये। मैं केवल यह तर्क उपस्थित करना चाहता हूं कि कोई भी सरकार, चाहे वह कितनी ही लोकप्रिय क्यों न हो, सर्वसत्ताधारी होने का दावा नहीं कर सकती है। अच्छा तो यह होता कि प्रधान लोगों की इच्छा का प्रतीक बनाया जाता ताकि वह सभी की भक्ति तथा आदर का पात्र होता। वह उस दशा में सरकार और लोगों के बीच मध्यस्थता कर सकता। उस दशा में वह न केवल अधिशासन का प्रमुख होता बल्कि लोगों की सर्वसत्ता का भी प्रतिनिधित्व करता और अल्पसंख्यक भी उसे अपना प्रतिनिधि तथा रक्षक समझते। सर्वसत्ता लोगों में सन्निहित तो है परन्तु उसकी अभिव्यक्ति किस प्रकार होगी? सरकार उसकी अभिव्यंजना नहीं कर सकती क्योंकि सरकार सभी लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। कभी यह हो सकता है कि बहुसंख्यक दल केवल

[श्री महावीर त्यागी]

इक्यावन प्रतिशत लोगों का हो। उस दशा में उनचास प्रतिशत लोगों का प्रतिनिधित्व ही न होगा। यदि सभा इससे सहमत है कि परमाधिकार और सर्वसत्ता लोगों में सन्निहित है तो कोई ऐसा अभिकारी होना चाहिये जो सर्वसत्ता का स्रोत हो और जो उसकी अभिव्यंजना कर सके।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** श्रीमान्, मैं यह सूचित करना चाहता हूं कि इस विधान में लोगों की सर्वसत्ता का समावेश संसद् में है। जिन देशों में संसदात्मक अधिशासी-वर्ग है उनके विधानों में इसी प्रकार की व्यवस्था है।

***श्री महावीर त्यागी:** अपने मित्र की इस बात में मैं निस्तब्ध हो गया हूं। मैं तुरन्त ही उनके तर्क का उत्तर नहीं दे सकता हूं। परन्तु मेरी यह धारणा है कि संसद् में सर्वसत्ता सन्निहित नहीं होगी क्योंकि संसद् में राज-परिषद् भी होगी। मेरा यह निवेदन है कि राज-परिषद् लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं करेगी क्योंकि यह प्रावहित किया गया है कि राज-परिषद् केवल प्रान्तों के बहुसंख्यक दलों का प्रतिनिधित्व करेगी। वह सभा एकक संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व से नहीं निर्मित होगी। वह राज्यों की सभा होगी और उसके सदस्य विभिन्न राज्यों का प्रतिनिधित्व करेंगे। परन्तु वे भी बहुसंख्यक दल के प्रतिनिधि होंगे। इस प्रकार उत्तर-सभा के सदस्य अपनी सरकारों के प्रतिनिधि होंगे और लोगों के प्रतिनिधि नहीं होंगे। यह कहा गया है कि राज-परिषद् में 250 सदस्य होंगे। उनके मस्तिष्क में सदा विभिन्न राज्यों की सरकारों की कठिनाइयां रहेंगी। वे यहां अपनी सरकारों की कठिनाइयां बताने तथा उनकी ओर से उनकी मांगों को उपस्थित करने आयेंगे। मेरा यह निवेदन है...

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): उन्हें भी बहुसंख्यक दल निर्वाचित करेगा।

***उपाध्यक्ष:** स्तब्ध होने के बजाय...

***श्री महावीर त्यागी:** मैं स्तब्ध नहीं हो सकता।

***उपाध्यक्ष:** स्तब्ध होने के बजाय...

***श्री महावीर त्यागी:** सभा मेरे अधिकार में है।

***उपाध्यक्ष:** स्तब्ध होने के बजाय क्या यह अच्छा न होगा कि इन बातों को आप उचित समय में कहें।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं यह जानता हूं कि आपको वादानुवाद को शीघ्र समाप्त करने की चिन्ता है। श्रीमान्, मेरे मित्र श्री टी. टी. कृष्णमाचारी कहते हैं कि चूंकि राज-परिषद् के सदस्य लोगों के प्रतिनिधियों द्वारा चुने जायेंगे इसलिये वे भी लोगों का प्रतिनिधित्व करेंगे। मेरा यह दावा है कि वे उनका प्रतिनिधित्व नहीं करेंगे। उदाहरणार्थ मेरे प्रान्त के लोगों ने मुझे विधान-परिषद् का सदस्य चुना है परन्तु यदि मैं पब्लिक सर्विस कमीशन में काम करने के लिये भेजा जाता हूं तो मैं केवल कमीशन का सदस्य होऊंगा और लोगों के प्रतिनिधि के रूप में काम नहीं करूंगा। इसी प्रकार जब आप राज-परिषद् के लिये सदस्य चुनेंगे तो वे लोगों के प्रतिनिधि की हैसियत से काम नहीं कर सकते बल्कि वे केवल अपने-अपने राज्यों का प्रतिनिधित्व करेंगे। वे सरकारों का प्रतिनिधित्व करने के लिये भेजे जायेंगे। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि संसद् लोगों की सर्वसत्ता का उत्कृष्ट रूप से प्रतिनिधित्व नहीं करेगी क्योंकि उसका संचालन बहुसंख्यक दल द्वारा ही होगा। यदि जो लोग शासित हैं वे सीधे-सीधे अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं कर सकते हैं तो उनका वक्ता अर्थात् प्रधान उनकी ओर से बोलेगा और वह अल्पसंख्यकों के ही नहीं बल्कि सभी लोगों के हितों की रक्षा करेगा। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यह प्रश्न गम्भीर विचार के योग्य है। इसलिये मुझे आशा है कि यह सभा मेरे सुझाव पर यथोचित विचार करेगी।

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 41 को अनुच्छेद 1 के समान विधान का सबसे छोटा अनुच्छेद होने का श्रेय प्राप्त है। यह केवल सात शब्दों का अनुच्छेद है। और इस छोटे से अनुच्छेद पर अधिक वादानुवाद की आवश्यकता नहीं है। इसलिये मेरे मित्र प्रोफेसर शाह ने सर्वसत्ता के जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है और जिसकी ओर मेरे मित्र श्री त्यागी ने भी संकेत किया है उसकी मैं विस्तृत व्याख्या नहीं करना चाहता। श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं सभा का ध्यान केवल इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद को सभा ने अगस्त सन् 1947 ई. में किस रूप में स्वीकार किया था और उसे विधान के मसौदे में किस प्रकार परिवर्तित कर दिया गया है। श्रीमान्, मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर इस ओर ध्यान दे रहे हैं। मैं उनका ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि सभा में पिछले वर्ष स्वीकृत होने के उपरान्त इस अनुच्छेद में क्या परिवर्तन किया गया है। मैं नहीं जानता कि मसौदा-समिति के विद्वान लोगों ने किन कारणों से इस अनुच्छेद में इस प्रकार के परिवर्तन किये। मेरे पास समिति के प्रतिवेदन—पहली माला और दूसरी माला—हैं और दोनों में जहां मेरे पास अनुच्छेद की

[श्री एच.वी. कामत]

शब्दावली का सम्बन्ध है, कोई मतभेद प्रकट नहीं किया गया है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने जिस समिति की अध्यक्षता की थी और जिसके सदस्य मेरे विचार से डॉ. अम्बेडकर भी थे, अर्थात् संघीय विधान-समिति के प्रतिवेदन को पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने 4 जुलाई सन् 1947 ई. को उपस्थित किया था और इस सभा ने उस पर अगस्त सन् 1947 ई. में किसी समय विचार किया था और उसे अंशत: स्वीकार किया था। यदि इस सभा द्वारा स्वीकृत इस प्रतिवेदन की ओर डॉ. अम्बेडकर ध्यान दें तो वे देखेंगे कि अनुच्छेद 41 के अनुरूप उसमें जो अनुच्छेद हैं उसमें कहा गया है कि:

"संघ का प्रमुख प्रेसीडेण्ट (राष्ट्रपति) होगा।"

अब मसौदे में यह अनुच्छेद परिवर्तित रूप में इस प्रकार रखा गया है:

"भारत का एक प्रेसीडेण्ट होगा।"

पिछले वर्ष इस प्रतिवेदन को जिस समिति ने सभा में उपस्थित किया था उसमें न केवल डॉ. अम्बेडकर थे परन्तु मसौदा-समिति के कुछ बुद्धिमान सदस्य—नहीं अधिकांश बुद्धिमान सदस्य भी—थे। मेरे विचार से केवल श्री माधव राव और श्री खेतान संघीय विधान-समिति में नहीं थे। अन्य सभी सदस्य उस समिति में थे और सभा में विधान-समिति का जो प्रतिवेदन उपस्थित किया गया है उसमें मतभेद का कोई लेख सम्बद्ध नहीं है। मैं डॉ. अम्बेडकर से यह जानना चाहता हूं कि आज विधान के मसौदे में यह अनुच्छेद जिस रूप में है उसमें 'राष्ट्रपति' शब्द क्यों नहीं है? श्रीमान्, क्या इसका कारण यह है कि हाल ही से हमें कुछ भारतीय शब्दों से, अथवा हिन्दी शब्दों से घृणा होने लगी है और हम जहां तक हो सकता है उन्हें अंग्रेजी के विधान से निकालने का प्रयास करने लगे हैं? मेरे मस्तिष्क में "प्रदेश" शब्द नहीं है परन्तु हमने 'बेगार' और 'पंचायत' जैसे शब्दों को स्वीकार किया है। मैं कह नहीं सकता कि उन अंग्रेजों के अतिरिक्त जो भारत में नौकरी कर चुके हैं अन्य कितने अंग्रेज़ "बेगार" और "पंचायत" शब्दों को समझते हैं। इसलिये मैं जानना चाहता हूं कि डॉ. अम्बेडकर ने और मसौदा-समिति के बुद्धिमान लोगों ने इस सभा में जिस रूप में यह अनुच्छेद उपस्थित किया गया था उसमें से "राष्ट्रपति" शब्द को किस कारण निकाल दिया है? क्या इसका कारण यह है कि यह नाम अथवा उपाधि केवल कांग्रेस के प्रेसीडेण्ट के लिये सुरक्षित रखी जायेगी? जो कांग्रेस संगठन आज है और जो विधान के प्रयोग में आने के बाद भी रहेगा उसके प्रधान का नाम प्रेसीडेण्ट

प्रचलित हो गया है। यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि राष्ट्रपति शब्द प्रचलित नहीं है और कई वर्षों से भारत में प्रचलित नहीं रहा है। मैं नहीं जानता कि पिछले पच्चीस वर्षों में डॉ. अम्बेडकर इस राष्ट्रपति शब्द से परिचित थे अथवा नहीं। परन्तु पिछली दो पीढ़ियों से राष्ट्रपति शब्द चलन में रहा है और कांग्रेस संगठन के प्रधान के लिये प्रयुक्त रहा है और उससे यह समझा जाता रहा है कि वह राष्ट्र का प्रधान है। अथवा क्या इसका कारण यह है कि जब मसौदा-समिति के बुद्धिमान लोग कुछ बन्धनों से मुक्त हो गये तो—क्योंकि जब वे विधान-समिति के सदस्य थे तो पण्डित नेहरू भी उसमें थे और वे राष्ट्रपति रहे थे—जब वे नेहरू प्रभृति अन्य सदस्यों के बन्धनों से मुक्त हो गये तो वे केवल मसौदा-समिति के सात सदस्यों के रूप में समवेत् हुये और उन्होंने यह सोचा कि यह राष्ट्रपति शब्द सुन्दर अथवा कर्णप्रिय नहीं है? अथवा क्या इसका कारण यह है कि वास्तव में उनके हृदय में भले ही उस व्यक्ति के लिये आदर हो जो पहले राष्ट्रपति था परन्तु इस शब्द के प्रति अधिक आदरभाव नहीं था?

**उपाध्यक्ष:** आपको यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि डॉ. अम्बेडकर ने यह क्यों किया।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं केवल उन कारणों को बताना चाहता था जिनसे सम्भवत: प्रेरित होकर डॉ. अम्बेडकर ने ऐसा किया हो और इस सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करना चाहता था। इसलिये मैं डॉ. अम्बेडकर से यह जानना चाहता हूं कि उस अनुच्छेद को ध्यान में रखते हुये जिसे इस सभा ने पिछले वर्ष एकमत से स्वीकार किया था उन्होंने तथा मसौदा-समिति के उनके सहकारियों ने इस "राष्ट्रपति" शब्द को इस अनुच्छेद से निकालने का क्यों प्रयास किया है और उसे उस रूप में क्यों रखा है, जैसा कि वह विधान के मसौदे में है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, अपने संशोधन को उपस्थित करते हुये प्रोफेसर शाह ने जिन प्रश्नों को उठाया है उनका उत्तर देने के पूर्व मैं श्री कामत द्वारा की हुई एक साधारण आलोचना का उत्तर देना चाहता हूं। श्री कामत ने मसौदा-समिति पर यह आरोप लगाया है कि उसने अनधिकृत रूप से संघीय विधान-समिति के प्रतिवेदन की भाषा बदल डाली है। यदि मैं उन्हें ठीक समझ पाया हूं तो उन्होंने मसौदा-समिति पर यह दोष लगाया है कि उसने उस समिति के प्रतिवेदन के पैरा 1 में 'प्रेसीडेण्ट' के बाद कोष्टक में दिये हुये 'राष्ट्रपति' शब्द को निकाल दिया है। श्रीमान्, मसौदा-समिति ने यह इसलिये नहीं किया कि उसे 'राष्ट्रपति' शब्द से द्वेष है अथवा वह विधान में हिन्दी शब्द रखने के विरुद्ध हैं। उसे निकालने का कारण यह है। हमें यह बताया गया था कि

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

मसौदा-समिति के साथ ही विधान-परिषद् के अध्यक्ष ने एक दूसरी समिति अथवा दो समितियां नियुक्त की हैं जो हिन्दी में और हिन्दुस्तानी में विधान का मसौदा तैयार करने वाली हैं। इसलिये हमने यह सोचा कि चूंकि विधान का मसौदा हिन्दी में और हिन्दुस्तानी में तैयार होने वाला है, इसलिये हमें इस 'राष्ट्रपति' शब्द को उन समितियों के सदस्यों के विचारार्थ छोड़ देना चाहिये क्योंकि 'राष्ट्रपति' शब्द अंग्रेज़ी का नहीं है और हम तो अंग्रेज़ी में मसौदा तैयार कर रहे थे। इसके अतिरिक्त मेरे मित्र ने मुझसे पूछा है कि क्या मैं इससे परिचित नहीं था कि यह शब्द कांग्रेस की शब्दावली में कई वर्षों से प्रयुक्त है। मैं जानता हूं कि यह सच है और मैंने भी उसे कई स्थानों में पढ़ा है। इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है; परन्तु मैं यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि यह शब्द कानूनी शब्द हो गया है अथवा नहीं। इसलिये उत्तर देने के लिये उठने के पूर्व मैंने हिन्दी और हिन्दुस्तानी के विधान के मसौदों को देख लेना उचित समझा। मैं अपने मित्र श्री कामत का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूं कि इन दो समितियों ने किस प्रकार की भाषा प्रयोग की है। मैं हिन्दुस्तानी के मसौदे में से पढ़ रहा हूं। उसमें कहा गया है कि:

"हिन्द का एक प्रेसीडेण्ट होगा..." उसमें 'राष्ट्रपति' शब्द प्रयुक्त नहीं है।

हिन्दी समिति ने जो मसौदा तैयार किया है उसके अनुच्छेद 41 में 'प्रधान' शब्द प्रयोग किया गया है। उसमें भी 'राष्ट्रपति' शब्द नहीं है।

***श्री एच.वी. कामत:** परन्तु, श्रीमान्, मैंने यह कहा था कि इस सभा ने इस अनुच्छेद को जिस रूप में स्वीकार किया था उसमें 'राष्ट्रपति' शब्द था। हिन्दी और हिन्दुस्तानी समितियों के प्रतिवेदन सभा के सम्मुख नहीं हैं। मैं केवल यह चाहता था कि इस समय जिस मसौदे पर विचार हो रहा है उसमें इस शब्द को स्थान दिया जाना चाहिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे अभी सूचना मिली है कि उर्दू के मसौदे में "सदर" शब्द का प्रयोग किया गया है। (*हंसी*)

अब मैं श्रीमान्, उस प्रश्न पर आता हूं जो इस अनुच्छेद के सार के सम्बन्ध में है और जो प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन से उठता है। यदि मैं ठीक समझ पाया हूं तो उनका संशोधन विधान के मसौदे की सारी योजना से ही भिन्न है। प्रोफेसर के.टी. शाह ने "मुख्य अधिशासक और राज्य का प्रमुख" शब्दों का प्रयोग किया है। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि इन शब्दों को प्रविष्ट

करके वे अमेरिका के प्रधानमूलक अधिशासी-वर्ग की प्रणाली का न कि विधान के मसौदे की संसदात्मक अधिशासी-वर्ग की प्रणाली का सन्निवेश चाहते हैं। यदि मेरे मित्र प्रोफेसर शाह संघीय विधान-समिति के प्रतिवेदन को देखेंगे तो उन्हें पता लगेगा कि मसौदा-समिति ने उस समिति के प्रतिवेदन में दिये हुये प्रस्तावों का ही अनुसरण किया है। उस समिति के प्रतिवेदन में यह कहा गया है कि यद्यपि प्रधान अधिशासी-वर्ग का प्रमुख होगा किन्तु उसका पथ-प्रदर्शन एक मंत्रिपरिषद् करेगा और विधान के अनुसार उसे जो अधिकार दिया गया है उसके अधीन वह जो भी कार्य करे उनके सम्बन्ध में उसे उस परिषद् की सलाह माननी होगी। वह कोई ऐसा प्रमुख न होगा जो सर्वत्र स्वतंत्र हो और जिसे किसी की भी सलाह मान्य न होगी। यही संसदात्मक शासन-प्रणाली है। संयुक्त राज्य अमेरिका के शासन में विभिन्न विभागों के अध्यक्ष सेक्रेटरी ऑफ स्टेट होते हैं और वे शासन को चलाते हैं और मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि वे शासन-कार्य के सम्बन्ध में प्रेसीडेण्ट को भी परामर्श देते है। किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से प्रेसीडेण्ट सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के परामर्श को मानने के लिये बाध्य नहीं है। इसी कारण संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रेसीडेण्ट अधिशासी-वर्ग का मुख्य प्रमुख कहा जाता है। हमने उस प्रणाली को स्वीकार नहीं किया है। हमने संसदात्मक प्रणाली को स्वीकार किया है और इसलिये इस अवसर पर मेरा यह निवेदन है कि हम प्रोफेसर के.टी. शाह के प्रश्न पर उस समय तक विचार नहीं कर सकते हैं जब तक हम विधान के मसौदे के अनुच्छेद 61 पर विचार न कर ले जिसमें यह कहा गया है कि प्रधान का यह कर्त्तव्य है कि वह मन्त्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार कार्य करे। क्या हम यह कहना चाहते हैं अथवा नहीं कि मन्त्रियों का परामर्श प्रधान को मान्य होगा? यही वास्तविक प्रश्न है। यदि हम यह निर्णय कर लें कि प्रधान को मंत्रिपरिषद् का परामर्श मान्य न होगा तो सभा प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन को स्वीकार कर सकती है। परन्तु मेरा यह निवेदन है कि अभी इस प्रश्न पर विचार नहीं किया जा सकता है यदि हम अनुच्छेद 61 को निकाल देने का निश्चय करें तो हम ऐसे समनुवर्त्ती परिवर्तन कर सकते हैं कि प्रोफेसर शाह के सुझाव का भी समावेश हो जायेगा। परन्तु मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि अभी इस पर विचार करने का समय नहीं आया है। इसलिये इस पर विचार नहीं किया जाना चाहिये।

**उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधन संख्या 1036 पर, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है, मत लूंगा। प्रस्ताव यह है किः

[उपाध्यक्ष]

"अनुच्छेद 41 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'41. The Chief Executive and Head of the State in the Union of India shall be called the President of India.' "

(41. भारतीय संघ में मुख्य अधिशासक और राज्य का प्रमुख भारत का प्रधान कहा जायेगा।)"

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब अनुच्छेद पर मत लिया जायेगा। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 41 विधान का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*अनुच्छेद 41 विधान का अंग हो गया।*

---

## अनुच्छेद 42

***उपाध्यक्ष:** सभा के सम्मुख यह प्रस्ताव है कि:

"अनुच्छेद 42 विधान का अंग बना लिया जाये।"

***श्री एच.वी. कामत:** मुझे यह व्यवस्था-सम्बन्धी आपत्ति करनी है कि अनुच्छेद 42 यथास्थापन नहीं रखा गया है। क्रम यह होना चाहिये था कि 'प्रधान के निर्वाचन' सम्बन्धी अनुच्छेदों को पहले आना चाहिये था और प्रधान की शक्ति-सम्बन्धी अनुच्छेद को बाद को आना चाहिये था। मैं यह संघ-विधान-समिति के उस प्रतिवेदन के आधार पर कह रहा हूं जिसे सभा ने पिछले वर्ष स्वीकार किया था। इसलिये मेरा यह मत है कि अनुच्छेद 42 पर अनुच्छेद 43 के बाद विचार होना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** यह प्रश्न उस समय उठाया जा सकता है जब हम विधान का तीसरा पाठ करें।

***श्री एच. वी. कामत:** परन्तु मसौदा-समिति को इसे लिख लेना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** मैं यह देख रहा हूं कि डॉ. अम्बेडकर की पेंसिल तेजी से चल रही है।

अब संशोधनों के सम्बन्ध में संशोधन संख्या 1043 और 1049 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती क्योंकि ये शाब्दिक हैं। संशोधन संख्या 1040, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (1) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(1) The sovereign executive power and authority of the Union shall be vested in the President, and shall be exercised by him in accordance with the Constitution and in accordance with the laws made thereunder and in force for the time being.' "

[(1) संघ की सार्वभौम अधिशासी शक्ति तथा प्राधिकार प्रधान में सन्निहित होंगे और वह उन्हें विधान के अनुसार और उसके अधीन बनाये हुये तथा उस समय प्रयुक्त कानूनों के अनुसार प्रयोग में लायेगा। अथवा विकल्प से,]

"(2) The executive authority, power and functions of Government shall be vested in the President and shall be exercised by him in accordance with the Constitution and the law with the advice and help of such ministers, officers or servants of the State as may be deemed necessary by him."

[(2) सरकार का अधिशासी, प्राधिकार, शक्ति और प्रकार्य प्रधान में सन्निहित होंगे और वह उन्हें विधान तथा कानून के अनुसार ऐसे मन्त्रियों, राज्य के अधिकारियों अथवा कर्मचारियों के परामर्श से प्रयोग में लायेगा जिन्हें वह आवश्यक समझे।]

इसकी व्याख्या करने के पूर्व कि एक ही विचार के दो विकल्पों में क्या अन्तर है मैं, आपकी अनुमति से, यह बताना चाहता हूं कि मसौदा-समिति के सभापति ने किसी संशोधन के यथास्थान न होने अथवा उसे परिवर्तित करने के सम्बन्ध में इस सभा में जो तर्क उपस्थित किया है वह स्वयं यथास्थान नहीं है। यह इसलिये कि आखिर मसौदा-समिति ने यह क्रम निश्चित किया है और हम तो केवल इसी क्रम के अनुसार संशोधन उपस्थित कर सकते है।

एक तर्क, जिससे मैं सहमत हूं यह भी उपस्थित किया गया था कि यदि हम संशोधनों और अनुच्छेदों को स्थगित करते जायेंगे तो उनके पारस्परिक सम्बन्ध को भूला जा सकता है अथवा उसकी उपेक्षा की जा सकती है और इसलिये पूर्ण

[प्रो. के.टी. शाह]

विचार-विमर्श के हित में तो यह है कि कोई निश्चित क्रम रखा जाये। हमें इस विचार-विमर्श के आरम्भ होते समय एक अनुच्छेद के सम्बन्ध में आपके इस सुझाव से हर्ष हुआ कि उल्लिखित संशोधनों पर उल्लिखित क्रम से विचार होगा।

यह बहुत ही तर्कपूर्ण और उचित बात है। परन्तु जब कोई संशोधन अथवा अनुच्छेद सभा के सम्मुख रखा जाता है तो सदस्यों को यह कहकर चकित कर दिया जाता है कि वह यथास्थान अथवा यथासमय उपस्थित नहीं किया गया है। मेरे विचार से यह अनुचित है। जिन लोगों पर मसौदा बनाने का दायित्व है उन्हें इसका निश्चय कर लेना चाहिये कि वे किस क्रम से विधान के अध्यायों को उठायेंगे। यह हमारी समझ में आ सकता है और हम अपना सहयोग प्रदान कर सकते हैं। मैं नम्रतापूर्वक यह निवेदन करना चाहता हूं कि एक अनुच्छेद के बीच ही में दूसरे अनुच्छेद को उठा लेने से अथवा एक धारा के बीच में दूसरी धारा को उठाने से उन लोगों को साथ चलने में तथा तर्क उपस्थित करने में कुछ कठिनाई का अनुभव होता है जिनके नाम से कई संशोधन हैं। प्रत्येक व्यक्ति कुछ विशेष अनुच्छेदों के लिये तैयार हो के आता है परन्तु एकाएक यह कह दिया जाता है कि उन पर विचार नहीं होगा अथवा वे यथास्थान नहीं हैं, इत्यादि। कितना ही किसी को अपना तर्क स्मरण क्यों न हो परन्तु जब उसे एकाएक यह निश्चय करना होता है कि उसे अपना प्रस्ताव उपस्थित करना चाहिये अथवा नहीं तो वह भ्रम में पड़ जाता है।

इसके अतिरिक्त इस तर्क अथवा सुझाव को उपथित करने से कि कोई संशोधन यथास्थान नहीं है और उसे किसी अन्य अनुच्छेद के बाद उठाया जाये, सदस्य कुछ कठिनाई में पड़ सकते हैं क्योंकि इससे मुख्य प्रश्न पर पहले से ही निर्णय हो सकता है। यदि आप इसे स्थगित कर दें और बाद के अनुच्छेद को उठायें तो...

***उपाध्यक्षः** प्रोफेसर शाह, क्या आप संशोधन उपस्थित नहीं कर रहे है?

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** मैं अपनी कठिनाई बता रहा हूं क्योंकि इसके सम्बन्ध में भी यह कहा जा सकता है कि यह यथास्थान नहीं है। इसी कारण मैं इस सम्बन्ध में बोल रहा हूं। मैं यह नहीं कहता कि यह तर्क गलत हैं किन्तु मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि इससे हमें अपने संशोधनों को उस क्रम से भी उपस्थित करने में कठिनाई होती है जो निर्धारित किया जाता है अथवा पुस्तक में छपा रहता है।

इस सम्बन्ध में इतना कहने के पश्चात् मैं स्पष्ट शब्दों में यह कहना चाहता हूं कि मेरे सभी संशोधन एक ही श्रेणी के हैं और वे विधान-सम्बन्धी तथा शक्ति तथा अर्थ-विभाजन सम्बन्धी एक सिद्धान्त से समुद्र समुद्भूत होते हैं जिसे भले ही स्वीकार न किया जाये परन्तु वह एक सुसम्भाव्य, सुपरिचित कार्यप्रणाली तो है ही।

इसी कारण मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है। मुझे आशा है कि उसके गुण-दोषों के आधार पर ही उसकी परीक्षा की जायेगी और केवल इस दृष्टि से उस पर विचार न किया जायेगा कि वह यथास्थान नहीं है और इसलिये उस पर विचार नहीं किया जा सकता है। मेरा यह निवेदन है कि यदि आधारभूत सिद्धान्त उस सिद्धान्त से भिन्न भी है जो मेरे विचार से सभा को स्वीकार्य होना चाहिये था तो भी यह विषय, अर्थात् प्रधान की शक्तियों और स्थान के विषय पर आधारभूत सिद्धान्त से पृथक् विचार किया जा सकता है और यदि इसे स्वीकार कर लिया गया तो इसे विधान की उस योजना में भी प्रविष्ट किया जा सकता है जिसे आप स्वीकार कर चुके हैं।

इसलिये मेरा सुझाव यह है कि प्रधान की शक्तियां तथा उसके प्रकार्य वही होने चाहियें जो सर्वसत्ताधारी लोग राज्य के मुख्य अधिशासक द्वारा प्रयोग में लाते। मेरे विचार से जितने समय के लिये वे पदारूढ़ रहें उस समय तक वे मुख्य अधिशासक रहेंगे जैसे कि इंग्लैण्ड में सम्राट् मुख्य अधिशासक है, यद्यपि ब्रिटेन के विधान में शक्तियों का उतना पृथक्करण नहीं है जितना कि अमेरिका के विधान में।

इसलिये मैं पहली बात यह कहना चाहता हूं कि मेरे संशोधन को इस तर्क से खण्डित नहीं किया जा सकता है कि उसका इस विधान के आधारभूत सिद्धान्त अथवा प्रधान-मूलक शासन-प्रणाली के सिद्धान्त से नहीं बल्कि संसदात्मक शासन-प्रणाली के सिद्धान्त से सामंजस्य नहीं है और इसलिये इस पर विचार-विमर्श करने की आवश्यकता नहीं है। मेरा यह निवेदन है कि जो विचारधारा आपने अपनाई है उसके अनुसार भी इस संशोधन को मेरी ही शब्दावली में विधान में प्रविष्ट किया जा सकता है, यद्यपि मैं इसे स्वीकार करता हूं कि इसे उपस्थित करते समय मेरी विचारधारा कुछ भिन्न थी।

श्रीमान्, मैं यह चाहता हूं कि प्रधान की शक्तियों की स्पष्ट शब्दों में परिभाषा की जाये और वे विधान के अनुसार ही प्रयोग में आयें। मेरे विचार से इस सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है। कोई भी यह नहीं कहेगा कि प्रधान विधान से परे है।

[प्रो. के.टी. शाह]

प्रधान का सृजन विधान द्वारा ही हुआ है और उसे विधान के अनुसार ही कार्य करना चाहिये। इसलिये मुख्य खण्ड 2 में जिन बातों पर ज़ोर दिया गया है उनकी अधिक व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है।

दूसरी बात यह है कि उसे अपनी शक्तियों का प्रयोग विधान के अधीन बनाये हुये कानूनों के अनुसार ही करना चाहिये। आपने विभिन्न अनुच्छेदों द्वारा संसद् को कानून बनाने का अधिकार दिया है। यदि विधान के अधीन कोई ऐसे कानून बनाये जायें जो सरकार के विभिन्न अंगों की शक्तियों को प्रदान करें अथवा उनका स्पष्टीकरण करें अथवा उन्हें विस्तृत बनायें तो यह सुझाव करना उचित ही होगा कि उन्हें विधान के अधीन बनाये हुये कानूनों के अनुरूप ही होना चाहिये।

अन्त में मंत्रियों, अधिकारियों और संघ के कर्मचारियों के परामर्श का विषय आता है। मेरे विचार में प्रधान को जो स्थान दिया गया है उसको दृष्टि में रखते हुये इसे भी अवश्य प्रविष्ट करना चाहिये। एक अन्य संशोधन में मैंने इस विषय को अधिक विस्तारपूर्वक रखा है। जब वह उठाया जायेगा तो मैं उस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करूंगा।

जहां तक इस संशोधन का सम्बन्ध है, चूंकि मैं यह चाहता हूं कि मेरा संशोधन केवल इस कारण अस्वीकार न कर दिया जाये कि वह इस विधान के मसौदे को बनाने में जिस आधारभूत सिद्धान्त का अनुसरण किया गया है उससे असंगत है। मैंने मन्त्रिमण्डल के उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का राज्य के प्रमुख और मुख्य अधिशासक के रूप में प्रधान के पद से सामंजस्य करने का प्रयास किया है। मैं एक बार फिर इंग्लैण्ड के सम्राट् का उदाहरण दूंगा जिसे मन्त्रियों के परामर्श से कार्य करना होता है। कम से कम वैधानिक व्यवस्था तो यही है। प्रत्येक अधिनियम इस प्रकार आरम्भ होता है : "यह अधिनियम राजाधिराज श्रीमान्, सम्राट् द्वारा धार्मिक तथा ऐहिक लार्डों तथा साधारणजनों के परामर्श से बनाया जाता है।" किसी भी विषय के सम्बन्ध में कोई भी कार्य तत्सम्बन्धी मंत्री के परामर्श से सम्राट् का किया हुआ कार्य होता है। यदि मन्त्रियों के परामर्श और मन्त्रियों के उत्तरदायित्व का सिद्धान्त स्वीकार न किया जाये तो इस कथन का कि "सम्राट् कोई गलत काम नहीं कर सकता" कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता। इसलिये मैंने इस संशोधन में इसका उल्लेख किया है कि प्रधान को विधान के अनुसार तथा उसके अधीन बनाये हुये कानूनों के अनुसार तथा अपने मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य करना चाहिये।

मैंने इसकी भी आवश्यकता समझी है कि विधान में "राज्य के अधिकारी और कर्मचारी' शब्दों को भी स्पष्ट रूप से प्रविष्ट किया जाये। प्रधान को केवल जो कुछ मन्त्री कहें उसी को सुनने का अधिकार न होना चाहिये। किन्तु उसे किसी अन्य विशेषज्ञ अथवा भारत के राज्य के अधिकारी अथवा कर्मचारी से भी परामर्श लेने का अधिकार होना चाहिये। इसके पहले जो सरकार थी वह इस प्रथा का अनुसरण करती थी कि किसी भी सरकारी विभाग का सचिव अपने मन्त्री के साथ अथवा स्वतंत्र रूप से भी शासन के प्रमुख के पास जा सकता था। यद्यपि मैं इस पर ज़ोर नहीं देता कि इसी सिद्धान्त का फिर अनुसरण किया जाये और सचिवों को यह अधिकार हो कि वे शासन के प्रमुख को अपना स्वतंत्र परामर्श अथवा अपने मन्त्री से विरुद्ध परामर्श दें, किन्तु मेरा यह विश्वास है कि यदि प्रधान को यह अधिकार हो कि उसे अपने मन्त्रियों की तुलना में अपनी स्थिति के सम्बन्ध में कोई कानून सम्बन्धी सन्देह होने पर महाप्राभिकर्त्ता और महाधिवक्ता जैसे किसी विशेषज्ञ अधिकारी को परामर्श के लिये बुला सके तो इससे वैधानिक तंत्र के प्रयोग में आने में कोई कठिनाई न होगी।

मेरा यह निवेदन है कि राज्य के प्रमुख और सर्वोच्च उत्तरदायी व्यक्ति होने के नाते उसे यह जानने का अधिकार होना चाहिये कि सम्बन्धित विभाग के विशेषज्ञ का क्या परामर्श है। संसदात्मक प्रणाली के अधीन उसे खण्डन का अधिकार न होगा और उसे अपने मन्त्री के परामर्श को अस्वीकार करने का कोई अधिकार न होगा। अन्त में मन्त्री का ही परामर्श माना जायेगा। परन्तु वह तभी माना जायेगा जब मेरे विचारानुसार प्रधान उस विषय के सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातों की ओर ध्यान आकर्षित कर चुकेगा जिनकी कि मन्त्री ने उपेक्षा की हो।

एक महान् विधानवेत्ता ने इंग्लैण्ड के विधान का विश्लेषण करते हुये एक शताब्दी पूर्व यह कहा था कि ब्रिटेन के स्थायी अधिशासक, सम्राट् का कर्त्तव्य यह है कि वह चेतावनी दे, परामर्श दे और अन्त में आत्मसमर्पण कर दे। मेरी विचार-धारा के अनुसार, जिसका मैं यहां प्रतिपादन कर रहा हूं, प्रधान को अपनी व्यक्तिगत धारणा से नहीं परन्तु पहले से प्राप्त किये हुये विशेषज्ञों के परामर्श के अनुसार उसके सम्मुख उपस्थित किये हुये किसी विषय पर प्रकाश डालने का अधिकार होगा और तब वह सम्बन्धित मन्त्री अथवा उसके सारे विभाग से यह कह सकेगा कि अमुक-अमुक उचित दृष्टिकोण है। यदि शासनारूढ़ दल उसे उचित न समझे तो वह उसे अस्वीकार कर सकता है क्योंकि अन्ततोगत्वा उत्तरदायित्व तो उसी का होगा। किन्तु विधान में यह प्रावहित होना चाहिये कि प्रधान को सम्राट् के कर्मचारियों से परामर्श लेने का अधिकार होना चाहिये।

[प्रो. के.टी. शाह]

मैं यह सुझाव उपस्थित नहीं कर रहा हूं कि उसे देश के बाहर से इस प्रकार का परामर्श प्राप्त करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। मैं यह सुझाव नहीं रख रहा हूं कि उसे परामर्श लेने के लिये विदेशी विशेषज्ञों को आमन्त्रित करना चाहिये। पहले तो उसे अपने मन्त्रियों से ही परामर्श लेने का अधिकार होना चाहिये और फिर राज्य के अधिकारियों और कर्मचारियों से भी परामर्श लेने का अधिकार होना चाहिये। मेरे विचार से यदि आप इस विधान को मन्त्रियों के उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर भी आधृत समझें तो फिर भी यह व्यवस्था उससे असंगत नहीं है और इसलिये सर्वथा स्वीकार्य है। इसलिये मैं इस सभा से सिफारिश करता हूं कि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाये।

(संशोधन संख्या 1041 उपस्थित नहीं किया गया।)

*__श्री मोहम्मद ताहिर__ (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (1) में 'and may' (हिन्दी में 'और वह') शब्दों के बाद 'on behalf of the people of India' (भारत के लोगों की ओर से) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

"The Executive power of the Union shall be vested in the President and may on behalf of the people of India be exercised by him in accordance with the Constitution and the law."

(संघ की अधिशासी शक्ति प्रधान में निहित होगी और वह भारत के लोगों की ओर से इसका प्रयोग विधान तथा कानून के अनुसार कर सकेगा।)

अनुच्छेद 41 से, जिसे हमने अभी स्वीकार किया है, हम यह समझते हैं कि प्रधान राज्य का प्रमुख होगा। श्रीमान्, कानून की दृष्टि से कोई व्यक्ति अपनी शक्ति को दो प्रकार से प्रयोग कर सकता है : अपनी ओर से अथवा किसी अन्य व्यक्ति की ओर से। इसलिये हमने यह देखना है कि प्रधान इन शक्तियों को कैसे प्रयोग करेगा। क्या वह अपनी ओर से प्रयोग करेगा अथवा किसी अन्य व्यक्ति की ओर से? इस सम्बन्ध में मैं सभा का ध्यान भारत शासन अधिनियम,

सन् 1935 ई., के पृष्ठ 3 की ओर आकृष्ट करता हूं जिसमें हम देखते हैं कि गवर्नर-जनरल भारत के सम्राट् की ओर से अधिशासी शक्ति का प्रयोग करता था। परन्तु अब इस देश का स्वामित्व भारत के लोगों को और केवल उन्हीं को प्रदान किया गया है। इसलिये यह आवश्यक है कि इस देश में जिस किसी शक्ति का प्रयोग किया जाये वह भारत के लोगों की ओर से ही किया जाये।

इस सम्बन्ध में मैं इस विधान के अनुच्छेद 49 की ओर भी संकेत करता हूं जिसमें प्रधान के लिये शपथ निर्धारित की गई है और उसमें यह कहा गया है कि:

"मैं, अमुक, गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता हूं कि मैं सच्चे हृदय से भारत के प्रधान-पद का निष्पादन करूंगा तथा अपनी उत्कृष्टतम योग्यता से विधान और कानून का रक्षण, परिरक्षण और प्रतिरक्षण करूंगा और मैं अपने को भारत की जनता की सेवा और कल्याण में तन-मन से लगाऊंगा।"

श्रीमान्, यदि मेरे संशोधन को स्वीकार न किया गया तो इस शपथ के साथ अनुच्छेद 42 (1) को पढ़ने से यह अर्थ निकलेगा कि प्रधान का व्यक्तित्व भारत के लोगों से ऊंचा होगा, परन्तु यह अर्थ कदापि नहीं है। मेरा यह निवेदन है कि चूंकि भारत के लोग ही देश के स्वामी हैं इसलिये प्रधान को अपनी सभी शक्तियों को केवल भारत के लोगों की ओर से, न अन्य किसी की ओर से प्रयोग करना चाहिये। इस कारण मुझे आशा है कि यह सभा मेरे संशोधन को स्वीकार करेगी।

(संशोधन संख्या 1044 उपस्थित नहीं किया गया।)

**प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (2) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(2) Without prejudice to the generality of the foregoing provision and in accordance with this Constitution and the laws made thereunder for the time being in force, the President shall—

(a) convene or dissolve the Legislature of the Union, and place before it any proposal for legislation or for sums of money needed for the good government and efficient administration of the

[प्रो. के.टी. शाह]

country, or for its defence, or to provide for any sudden calamity in any part of the Union or any other emergency;

(b) have the power to assent to the laws duly passed by the Union Legislature;

(c) conduct and supervise any Referendum that may be decided upon to make to the Sovereign People in accordance with this Constitution;

(d) have the power to declare war, and make peace;

(e) be the supreme commander of all the armed forces of the Union;

(f) appoint all other executive and judicial officers, including the ministers, representatives of the Union in foreign countries as ambassadors, ministers, consuls, trade commissioners and the like; as well as the commanding officers in the armed forces of the Union;

(g) do all acts, exercise all powers and discharge all authority necessary or incidental to the power and authority vested in him by and under this Constitution;

(h) have power to refuse assent to any legislative proposal passed by both Houses of Parliament; or to recommend to Parliament that any legislative proposal passed by Parliament be reconsidered for reasons stated by the President, provided that any legislative proposal duly passed by Parliament, if refused assent by the President only once; and that the same proposal if passed in an identical form by Parliament in the next following sessions of that body, shall be deemed to have been duly passed

and become an Act of the Legislature, notwithstanding that the President has refused or continues to refuse to assent thereto;

(i) in every case in which the President refuses to assent to any legislative proposal duly passed by Parliament, the President shall record his reasons for refusing to assent and shall forward the reasons thus recorded to Parliament;

(j) in any case where the President, having duly submitted to Parliament, or to the People's House thereof, a legislative proposal he deems necessary for the safety of the State, its integrity or defence or to safeguard the nation's interests in a national emergeny, finds that Parliament is unwilling to consider or pass that proposal, may refer such a proposal to the people of the country; and if the proposal is approved, on such reference, by a majority of not less than two-thirds of the citizens voting, it shall forthwith become a law of the land. If on such reference the proposal is not approved by the requisite majority, it shall be deemed to have been negatived, and shall be treated as void and have no effect.' "

[(2) पूर्वगामी प्रावधान की व्यापकता पर बिना विपरीत प्रभाव डाले हुये और इस विधान और उसके अधीन बनाये हुये तथा इस समय प्रयुक्त कानूनों के अनुसार प्रधान को–

(क) संघ के विधान-मण्डल को आरम्भ करने अथवा समाप्त करने और उसके सम्मुख कानून बनाने के लिये अथवा देश के सुशासन तथा सुयोग्य प्रशासन के लिये आवश्यक धन-राशि के लिये अथवा देश की रक्षा के लिये अथवा संघ के किसी भाग में आकस्मिक विपत्ति के पड़ने पर प्रबन्ध के लिये अथवा किसी अन्य सद्यस्कृत्यस्थिति के लिये कोई भी प्रस्ताव रखने का अधिकार होगा;

(ख) संघीय विधान-मण्डल द्वारा यथाविधि पारित कानूनों के लिये अपनी स्वीकृति प्रदान करने की शक्ति होगी;

[प्रो. के.टी. शाह]

(ग) यदि इस विधान के अनुसार सर्वसत्ताधारी लोगों का मत लेने का निश्चय किया गया तो उसका संचालन तथा निरीक्षण करने का अधिकार होगा;

(घ) युद्ध अथवा शान्ति घोषित करने का अधिकार होगा;

(ङ) संघ की सभी सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च सेनानायक होने का अधिकार होगा;

(च) अन्य सभी अधिशासी अधिकारियों और न्यायाधिकारियों को, जिनमें मन्त्री और विदेशों में संघ के प्रतिनिधि, जैसे अम्बेसेडर, मिनिस्टर, कांसल, व्यापारिक कमिश्नर आदि भी सम्मिलित हैं, तथा संघ की सशस्त्र सेना के सेनानायकों को नियुक्त करने का भी अधिकार होगा;

(छ) इस विधान द्वारा तथा इसके अधीन उसमें निहित शक्ति और प्राधिकार के अनुरूप तथा आनुषंगिक सभी शक्तियों और प्राधिकार को प्रयोग करने और सभी कार्य करने का अधिकार होगा;

(ज) संसद् की दोनों सभाओं द्वारा पारित किसी कानूनी प्रस्ताव को अस्वीकार करने की शक्ति होगी अथवा संसद् से यह सिफारिश करने की शक्ति होगी कि इसके पार किये हुये किसी कानूनी प्रस्ताव पर प्रधान के बताये हुये कारणों से पुनर्विचार किया जाये परन्तु संसद् द्वारा यथाविधि पार किये हुये किसी कानूनी प्रस्ताव को यदि प्रधान अस्वीकार करे तो केवल एक बार करेगा और यदि अगले अधिवेशन में संसद् उसी प्रस्ताव को उसी रूप में पार कर दे तो वह यथाविधि पार किया हुआ समझा जायेगा और विधान-मण्डल का अधिनियम हो जायेगा चाहे प्रधान उसे अपनी स्वीकृति देने से इन्कार क्यों न कर दें;

(झ) संसद् द्वारा यथाविधि पारित वैधानिक प्रस्थापना को यदि प्रधान स्वीकृति प्रदान करने के लिये सहमत न हो तो प्रधान उसके कारणों का उल्लेख करेगा और इस प्रकार उल्लिखित कारणों को संसद् के पास भेजेगा;

(ञ) यदि प्रधान संसद् के सम्मुख अथवा उसकी लोक सभा के सम्मुख कोई ऐसी वैधानिक प्रस्थापना यथानियम रखे जो वह देश के क्षेम, सुव्यवस्था अथवा रक्षा के हित में अथवा किसी राष्ट्रव्यापी सद्यस्कृत्यस्थिति के उपस्थित होने पर राष्ट्र के हितों के रक्षार्थ आवश्यक समझे और यह देखे कि संसद् उस प्रस्ताव को पार करने अथवा उस पर विचार करने के लिये सहमत नहीं है तो वह उस प्रस्थापना को देश के लोगों के सम्मुख रख सकता है और यदि ऐसा करने पर वह प्रस्थापना मत देने वाले कम से कम दो-तिहाई नागरिकों के बहुमत से स्वीकार कर ली जाये तो वह तत्काल ही देश का कानून हो जायेगा। किन्तु इस प्रकार लोगों के सम्मुख रखने पर यदि वह प्रस्थापना निश्चित बहुमत से स्वीकार न हुई तो यह समझा जायेगा कि वह अस्वीकार हो गयी है और यह भी समझा जायेगा कि उसका शून्यन हो गया है और उसका कोई प्रभाव न होगा।]

श्रीमान्, मैं यह स्वीकार करता हूं कि यह लम्बा संशोधन है। इसका उद्देश्य यह है कि प्रधान के अधिकारों को स्पष्ट और निश्चित कर दिया जाये।

मैंने जिन शक्तियों का प्रस्ताव किया है उनमें सन्निहित नये विचारों की चर्चा करने के पूर्व क्या मैं इस विषय की ओर संकेत कर सकता हूं, क्योंकि मुझे आशा है कि सम्भवत: मसौदाकार इससे सहमत हों, कि अनुच्छेद के प्रथम खण्ड में यह कहा गया है कि संघ की अधिशासी शक्ति प्रधान में निहित होगी और वह इसका 'प्रयोग' विधान तथा कानून के अनुसार कर सकेगा? मेरा पेशा वकालत का नहीं है और इसलिये मैं यह नहीं समझ पाया हूं कि इस प्रसंग में 'सकेगा' शब्द का क्या अर्थ है। परन्तु एक साधारण मनुष्य के नाते मेरी यह धारणा है कि इस शब्द से बहुत दुष्टता हो सकती है। यदि 'सकेगा' शब्द से प्रधान की स्वेच्छा का बोध होता है और वैधानिक कानून द्वारा उस पर विधान के अनुसार अथवा उसके अधीन बनाये हुये कानून के अनुसार अथवा अपने मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार शक्तियों को प्रयोग करने का कोई दायित्व नहीं है तो मुझे भय है कि वह कई ऐसी शक्तियों को प्रयोग कर सकेगा जो विधान की शब्दावली के विरोध में न हों और उसके मतानुसार आवश्यक हों। इसलिये इस 'सकेगा' शब्द की शरण लेकर वह यह सब कुछ कर सकेगा। इसी दोष को दूर करने के लिये मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है।

[प्रो. के.टी. शाह]

जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं किसी प्रकार के सन्देह को स्थान नहीं देना चाहता और इसलिये पहले संशोधन में मैंने 'सकेगा' शब्द के स्थान में 'करेगा' शब्द रखा है। अब संदेह के लिये कोई भी स्थान न रहने देने के लिये और कोई भी ऐसी स्थिति उत्पन्न न होने देने के लिये जो संदेहात्मक हो और जिसमें दोनों ओर से समान अधिकार का दावा किया जा सके मैंने अनुच्छेद 42(1) की साधारण शब्दावली के स्थान में सभी आठ अथवा दस विषयों की व्याख्या करने तथा उन्हें स्पष्ट करने का प्रयास किया है। मैंने उनकी स्पष्ट रूप से गणना कर दी है।

उनमें से अधिकांश के सम्बन्ध में तो जैसे संसद् को आरम्भ करने और समाप्त करने के सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है। निस्संदेह, यह सब कुछ मन्त्रियों के परामर्श से किया जायेगा। यही युद्ध अथवा शान्ति घोषित करने के अधिकार के सम्बन्ध में कहा जा सकता है। यह केवल नाममात्र की शक्ति है और यह भी मन्त्रियों के परामर्श से प्रयोग की जायेगी। जहां तक संसद् द्वारा पारित कानून को स्वीकृति प्रदान करने का सम्बन्ध है, मेरे विचार से मुझे रस्मी तौर पर स्वीकार किये हुये अनुच्छेदों की व्याख्या करके सभा का समय लेने की आवश्यकता नहीं है। चूंकि आप उनका संक्षेप से तथा अर्थपूर्ण और स्पष्ट रूप से उल्लेख कर रहे हैं इसलिये मेरे विचार से उनके उल्लेख की तो आवश्यकता है ही परन्तु अच्छा यह होगा कि उनकी परिभाषा कर दी जाये और उनका विस्तारपूर्वक उल्लेख किया जाये।

अब मैं स्वीकृति प्रदान न करने के अधिकार को लेता हूं। यह विचार किया जा सकता है कि यह मेरे ही मस्तिष्क की उपज है। मेरे विचार से इसमें कोई नई बात नहीं है क्योंकि कम से कम वैधानिक दृष्टि से जिस ढांचे पर यह विधान आधृत है अथवा आधृत-सा प्रतीत होता है, अर्थात् इंग्लैण्ड के विधान में सम्राट् के स्वीकृति प्रदान न करने के अधिकार को समाप्त नहीं किया गया है, यद्यपि लार्डस् सभा के सम्मति प्रदान न करने के अधिकार में परिवर्तन कर दिया गया है। वहां शताब्दियों से कई ऐसी प्रथायें चली आ रही हैं जिनसें सम्राट् के परमाधिकार से अथवा अन्य किसी प्रकार उस प्राधिकार के प्रयोग करने के सम्बन्ध में जो विधान की भावना तथा शब्दावली के प्रतिकूल न हो मन्त्रियों तथा लोगों का पथप्रदर्शन होता रहा है।

परन्तु यहां हम एक नया विधान बना रहे हैं और यहां एक राष्ट्रव्यापी जनतंत्र के युग का आरम्भ होने जा रहा है। आखिर आपको यह स्मरण रखना चाहिये कि

इंग्लैण्ड भारत का दसवां अथवा बारहवां हिस्सा भी नहीं है और जनसंख्या की दृष्टि से तो उसे पांचवां अथवा छटा हिस्सा कहा जा सकता है। इसलिये उस देश को अथवा वहां की प्रथाओं को देखते हुये जो कुछ उपयुक्त है वह हमारे लिये उपयुक्त नहीं हो सकता। कुछ भी हो उनकी प्रथाओं और रूढ़ियों का तो एक लम्बा इतिहास है। हमने उन प्रथाओं और रूढ़ियों को स्थापित करना है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि हम सन्देह के लिये कोई स्थान न छोड़े और प्रधान को हम जो अधिकार दे रहे हैं उन्हें निश्चित और स्पष्ट कर दें।

जब तक आप निश्चित रूप से इसका उल्लेख न कर दें कि प्रधान को स्वीकृति प्रदान न करने का अधिकार नहीं है, स्वीकृति प्रदान करने के अधिकार के साथ स्वीकृति प्रदान न करने का अधिकार संलग्न है। किन्तु मैंने अपने संशोधन में इसका उल्लेख किया है कि किन दशाओं में स्वीकृति प्रदान न करने के अधिकार का अभिरक्षण हो सकता है। केवल एक ही बार स्वीकृति प्रदान न करने का अधिकार है। स्वीकृति प्रदान न करने पर भी यदि संसद् किसी कानून को उसी रूप में स्वीकार कर ले तो, चाहे प्रधान सहमत हो अथवा नहीं, वह कानून का रुप धारण कर लेगा। मेरे संशोधन के अनुसार प्रधान को केवल यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह स्वीकृति प्रदान न करने के कारण बतायेगा। मेरे मतानुसार लोक-निर्वाचित होने के कारण वह लोगों के प्रति अपने उत्तरदायित्व की भावना से प्रेरित होकर उनके प्रतिनिधियों के सम्मुख अवश्य ही उन कारणों को रखेगा जिनके आधार पर उसने स्वीकृति प्रदान न की हो। मेरे विचार से यह सुझाव किसी प्रकार भी क्रान्तिपूर्ण नहीं कहा जा सकता है।

दूसरी नवीन बात लोकमत के सम्बन्ध में है। इस विधान में लोकमत के सम्बन्ध में कोई प्रावधान नहीं है, यद्यपि हम बार-बार लोगों की सर्वसत्ता की चर्चा करते हैं और यह कहते रहते हैं कि अन्ततोगत्वा लोग ही इस देश के सर्वोच्च प्रभु है। हमारे हृदय में लोकमत के लिये जो कुछ भी आदर हो उसे हम यदि कभी व्यक्त करते हैं तो वह पंचवर्षीय निर्वाचन के समय, संसद् के लिये आम चुनाव के समय ही व्यक्त करते हैं। किन्तु आम चुनाव के समय इतनी गुत्थियां उलझी रहती हैं और इतनी परस्पर विरोधी धारायें बहती रहती हैं और इतने प्रयत्न तथा प्रतिप्रयत्न होते रहते हैं कि इतने विभिन्न प्रश्नों पर लोगों की सम्मति अथवा उनका निर्णय केवल नाममात्र का ही होता है। मैं आशा करता हूं कि यह कह कर मैं किसी की भावनाओं का निरादर नहीं कर रहा हूं।

यदि आप सच्चे हृदय से और वास्तव में यह चाहते हैं कि लोग सर्वसत्ताधारी हों और यदि आप यह चाहते हैं कि प्रत्येक सद्यस्कृत्यस्थिति में, जब विधान-मण्डल

[प्रो. के.टी. शाह]

और अधिशासी-वर्ग के बीच मतैक्य न हो सके, लोगों से परामर्श लिया जाये तो इसकी कसौटी यह है कि आप लोगों से कितने शीघ्र परामर्श लेने के लिये तैयार हैं। यह हो सकता है कि सद्यस्कृत्यस्थिति इतनी गम्भीर हो कि आप संसद् को समाप्त नहीं कर सकते हैं। यह हो सकता है कि सद्यस्कृत्यस्थिति इस प्रकार की हो कि प्रधान अवकाश ग्रहण नहीं कर सकता है और त्यागपत्र नहीं देता है। अथवा यह भी हो सकता है कि मतभेद इतना कटु हो कि कोई भी पक्ष झुकने के लिये तैयार न हो। ऐसे अवसर पर उचित तो यही है कि केवल उस प्रश्न-विशेष पर लोगों का मत इस प्रकार लिया जाये कि वे निश्चित रूप से 'हां' या 'नहीं' कह सकें।

निश्चय ही विधान में लोगों की सर्वसत्ता सन्निहित होने की कसौटी यह नहीं है कि केवल मौखिक देशभक्ति प्रकट की जाये, जैसा कि इस मसौदे के शब्दों से प्रायः प्रतीत होता है। यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है और वास्तव में जो लोग लोगों की सर्वसत्ता की यथार्थता अथवा नाममात्र के भी विरोध में थे उन्होंने यह तर्क उपस्थित भी किया है कि लोग तैयार नहीं रहते हैं अथवा यह कि वैदेशिक अथवा स्थानीय नीति सम्बन्धी जटिल प्रश्नों के सम्बन्ध में कोई निर्णायक सम्मति प्रदान करने के लिये वे पर्याप्त रूप से शिक्षित नहीं होते हैं। मुझे विश्वास है कि इस सभा में यह तर्क उपस्थित नहीं किया जायेगा। चाहे हम कितने ही पिछड़े हुये क्यों न हों, भले ही हममें से केवल दस अथवा बारह प्रतिशत लोग साक्षर हों और चाहे हमारी कमज़ोरियां और कठिनाइयां कितनी ही क्यों न हों, हमारा यह सच्चे हृदय से विश्वास है कि अन्ततोगत्वा सर्वसत्ता लोगों की ही है। जहां जन-समूह में बुद्धिमत्ता होती है तो वह वास्तविक मुक्ति का साधन बन जाती है। लोक-ध्वनि वास्तव में देव-ध्वनि ही है।

यह केवल कहावत-मात्र नहीं है और केवल बच्चों को लुभाने के लिये काम में नहीं लाई जाती है किन्तु गम्भीर विधान-निर्माताओं के लिये भी एक आदर्श है और उनको उसी के अनुरूप करना चाहिये। इसलिये मैं आपसे इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के लिये सच्चे हृदय से अनुरोध करता हूं। यदि आप यह निश्चय करें कि इस संशोधन के सम्बन्ध में अन्तिम रूप से निर्णय करने के पहले आप आपस में परामर्श करेंगे तो मैं इसे स्थगित करने के लिये तैयार हूं। परन्तु मेरा आपसे सच्चे हृदय से यह निवेदन है कि यदि आप लोगों को वास्तव में सर्वसत्ताधारी बनाना चाहते हैं और यदि आप उन्हें व्यावहारिक जनतंत्र की कला

को सिखाना चाहते हैं और यदि आप यह चाहते हैं कि सभी प्रश्नों के सम्बन्ध में अन्तिम रूप से वही निर्णय करें तो कृपा करके अपने दल के मत के अनुसार, चाहे वह ठीक हो या गलत, इस संशोधन का विरोध न कीजिये।

मैं इस सभा में प्रत्येक कारण से अथवा किसी भी कारण से विरोध करके एक निन्दित विरोधी का अभिनय करने के लिये इस सभा में उपस्थित नहीं हुआ हूं। मैं तो अपने को एक आलोचक मित्र समझता हूं और अपनी बुद्धि तथा योग्यता के अनुसार अपना रचनात्मक दृष्टिकोण उपस्थित करने के लिये हमेशा तैयार रहता हूं। यह हो सकता है कि वह किसी कारण से आपको स्वीकार्य प्रतीत न हो। परन्तु इस विषय के सम्बन्ध में मैं यह निवेदन करने का साहस करता हूं कि यदि वास्तव में आपका लोगों की सर्वसत्ता पर विश्वास है और यदि आप सच्चे हृदय से यह समझते हैं कि जनसाधारण ही हमारे वास्तविक भाग्यविधाता हैं तो आप इस संशोधन को ठुकरा नहीं सकते हैं। इसे केवल इस कारण से कि यह यथास्थान अथवा यथासमय उपस्थित नहीं किया गया है अथवा इसी प्रकार की कोई धोखे की टट्टी खड़ी करके अस्वीकार न कीजिये। मैं यह भी बता देना चाहता हूं कि इस संशोधन में यथोचित दशाओं और अभिरक्षणों का अभाव नहीं है ताकि यदि सर्वसत्ताधारी लोगों का परामर्श लिया गया और जब कभी भी वह लिया जाये तो वह केवल आकस्मिक निर्णय न हो बल्कि मतदाताओं के वास्तविक बहुमत का विचारपूर्ण निर्णय हो। इस दशा में यदि निर्णय गलत भी हुआ तो हम सब एक ही नाव में होंगे। अपने प्रभुओं के साथ तैर कर पार उतरने से अपने साथियों के साथ डूब जाना कहीं अच्छा है।

(संशोधन संख्या 1046 और 1047 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1048, जो मि. नज़ीरुद्दीन के नाम से है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

'(a) be deemed to authorise or empower the President to exercise any power or perform any function which by any existing law is exercisable or performable by the Government of any State or by any other authority; or"

[(क) यह न समझा जायेगा कि प्रधान को किसी ऐसी शक्ति का प्रयोग करने अथवा किसी ऐसे प्रकार्य को करने की शक्ति अथवा प्राधिकार

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

है जो किसी वर्तमान कानून से किसी राज्य की सरकार द्वारा अथवा अन्य किसी प्राधिकारी द्वारा प्रयोग की जाती हो अथवा किया जाता हो; अथवा]

श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इस संशोधन का प्रोफेसर के. टी. शाह द्वारा उपस्थित संशोधनों से बिल्कुल विपरीत प्रभाव पड़ेगा। इसका उद्देश्य प्रधान की शक्ति को इस अर्थ में सीमित करने का है कि यदि किसी शक्ति को कोई राज्य अथवा स्थानीय प्राधिकारी स्पष्टतया प्रयोग करता हो तो प्रधान को उस शक्ति को प्रयोग करने का अधिकार नहीं होगा। वास्तव में मैं यह चाहता हूं कि प्रधान सर्वथा वैधानिक प्रधान हो। यह बताया गया है कि इंग्लैण्ड में संसद में जो कानून बनाया जाता है वह इन शब्दों से आरम्भ होता है, "यह अधिनियम राजाधिराज श्रीमान् सम्राट् द्वारा इस संसद् में समवेत् धार्मिक तथा ऐहिक सामन्तों तथा साधारणजनों के परामर्श से बनाया जाता है" इत्यादि। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इससे सम्राट् को कोई शक्ति नहीं प्राप्त होती हैं। अंग्रेज़ बहुत ही कट्टर लोग हैं। वे पुरानी ही रीति-रिवाज के अनुसार चलते है। यद्यपि सम्राट् की शक्ति व्यवहार में बिल्कुल ही समाप्त हो गई है परन्तु पुरानी रीति का अनुसरण किया जाता है। इस रूढ़ि को यहां रखने का अर्थ यह होगा कि प्रधान को इसका पूर्ण अधिकार होगा कि वह अधिशासी-वर्ग पर छा जाये और बहुत अंश में विधान-मण्डल के निर्णय का तिरस्कार करे। इसलिये मेरे विचार से प्रधान की शक्तियां इतनी सीमित कर दी जानी चाहिये कि वह सच्चे अर्थ में केवल वैधानिक प्रधान ही हो। इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि प्रधान उन शक्तियों का प्रयोग न करे जिन्हें प्रान्त अथवा स्थानीय तथा अन्य प्राधिकारी प्रयोग करते हों। इस संशोधन पर इसी दृष्टि से विचार होना चाहिये। मैं इस प्रस्ताव के गुण-दोषों पर अधिक विस्तार से नहीं बोलना चाहता हूं। यह एक दृष्टिकोण है और मेरा यह निवेदन है कि इस पर इस सभा में विचार किया जाये।

(संशोधन संख्या 1050 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर अब सामान्य वादानुवाद हो सकता है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह ने जो संशोधन उपस्थित किया था उसका मैंने बड़ी सावधानी से अवलोकन किया तथा उनके भाषण को भी बहुत ध्यानपूर्वक सुना। इस सभा में विभिन्न प्रकार से अपना दृष्टिकोण उपस्थित करने

और समय-समय पर इस विधान के आधारभूत सिद्धान्तों को ही बदल कर उनको प्रविष्ट कराने के लिये जो प्रयास वे करते हैं उसकी मैं प्रशंसा करता हूं। श्रीमान्, उनके वर्तमान संशोधन को देखने से ज्ञात होगा कि बहुत से खण्डों का सम्बन्ध आधारभूत परिवर्तन से है और उनमें से कुछ तो वास्तव में विधान के प्रयोग में आने के बाद नियमों तथा आनियमों में प्रावहित किये जा सकते थे। श्रीमान्, इसके अतिरिक्त मैं अभी इस सभा को यह बताऊंगा कि यदि हम एक भिन्न प्रकार का विधान निर्माण करते तो उन्होंने इस संशोधन द्वारा जो सुझाव किये हैं वे किस प्रकार प्रशंसनीय तथा स्वीकार्य होते। परन्तु स्थिति यह है कि हमने जनतंत्रीय संसदात्मक शासन-प्रणाली को स्वीकार करने का निर्णय कर लिया है और यदि उनका प्रस्ताव स्वीकार किया गया तो उसे इस विधान के प्रावधानों में समुचित स्थान नहीं दिया जा सकता है।

उदाहरणार्थ प्रोफेसर शाह अपने संशोधन में यह कहते हैं कि प्रधान संघ के विधान-मण्डल के सम्मुख "कानून बनाने के लिये अथवा देश के सुशासन तथा सुयोग्य प्रशासन के लिये आवश्यक धन-राशि के लिये" कोई भी प्रस्ताव रख सकेगा। वे यह चाहते हैं कि प्रधान को ये शक्तियां प्राप्त हों। श्रीमान्, मैं यह जानना चाहता हूं कि यदि धन-व्यय करने की शक्ति प्रधान को दी गई तो यह किस प्रकार उस व्यवस्था के अनुरूप होगी जिसमें अधिशासी-वर्ग विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होता है। इस विधान-परिषद् के प्रारम्भिक अधिवेशन में पांच दिन के दीर्घकालीन वादानुवाद के उपरान्त हमने जिस आधारभूत सिद्धान्त को स्वीकार किया था उसका इससे निराकरण हो जाता है।

आगे वे कहते है, "अथवा देश की रक्षा के लिए अथवा संघ के किसी भाग में आकस्मिक विपत्ति के पड़ने पर प्रबन्ध के लिए अथवा किसी अन्य सद्यस्कृत्यस्थिति स्थिति के लिये।" हमारे विधान में सद्यस्कृत्यस्थिति के लिये प्रधान के लिये शक्तियां प्रावहित की गई हैं, परन्तु श्रीमान्, क्या मैं यह जान सकता हूं कि उत्तरदायी विधान-मण्डल के होते हुये क्या प्रोफेसर शाह यह चाहते हैं कि केवल प्रधान को ही युद्ध अथवा शांति घोषित करने का अधिकार प्राप्त हो? किसी भी उत्तरदायी संसदात्मक शासन-प्रणाली में यह व्यवस्था अवश्य ही आपत्तिजनक सिद्ध होगी। यदि युद्ध घोषित करना हो तो प्रधान को अवश्य ही इसकी शक्ति होगी क्योंकि हमारे विधान के अधीन वह रक्षा का सर्वोच्च अधिकारी है परन्तु उसे सभा को अपने साथ लेना होगा। सरकार को इस विषय पर विचार करना होता है। यदि यह खण्ड स्वीकार कर लिया गया और कोई स्वेच्छाचारी प्रधान यह कहता है कि देश की अथवा उसके पड़ोस की स्थिति को

[श्री आर.के. सिधवा]

दृष्टि में रखते हुए वह युद्ध घोषित करना चाहता है तो क्या यह उत्तरदायी सरकार कही जायेगी? श्रीमान्, कदापि नहीं।

इसके अतिरिक्त अपने संशोधन के खण्ड (ज) में वे कहते हैं कि जब संसद् की दोनों सभायें विधेयकों को स्वीकार कर लें तो वे प्रधान के पास भेजे जायेंगे। यह तो समझ में आने वाली बात है। फिर वे सभा के सम्मुख उपस्थित किये जायेंगे और वे यह चाहते हैं कि वे निश्चित बहुमत से स्वीकार किये जायें। इस सम्बन्ध में कोई विशेष आपत्ति नहीं हो सकती है परन्तु, श्रीमान्, यदि उनका खण्ड (1) स्वीकार कर लिया गया तो प्रधान और संसद् के बीच हमेशा जिच हो जायेगी और यदि इन सभी खण्डों को स्वीकार कर लिया गया तो इससे सरकार और प्रधान के बीच केवल कलह ही होगा। इस दशा में, श्रीमान् कौन यह चाहेगा कि प्रधान को अधिशासी शक्ति दी जाये। कम से कम हम तो यह नहीं चाहते हैं।

श्रीमान्, जहां तक शासन-प्रणाली का सम्बन्ध है, अमेरिका की शासन-प्रणाली के कुछ प्रावधान अच्छे हो सकते हैं परन्तु, श्रीमान्, मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि मैंने इस विषय पर मनन किया है कि हमारे देश के लिए कौन-सी शासन-प्रणाली उपयुक्त होगी और मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि रूस की शासन-प्रणाली को छोड़ कर, इंग्लैण्ड की संसदात्मक शासन-प्रणाली ही, जो वास्तव में जनतंत्रात्मक है, हमारे देश के लिये सबसे अधिक उपयुक्त होगी। इसके अतिरिक्त मैं यह पूछता हूं कि वैधानिक जनतंत्रात्मक शासन-प्रणाली में दोष ही क्या है? जिस प्रकार दलबन्दी के आधार पर हम निर्वाचन करते हैं उसी प्रकार इंग्लैण्ड में भी निर्वाचन होते हैं। प्रोफेसर शिब्बनलाल ने यह कहा था कि यद्यपि युद्धकाल में मि. चर्चिल सबसे अच्छे आदमी समझे जाते थे परन्तु निर्वाचकों ने उन्हें निकाल बाहर कर दिया। यह बिल्कुल ठीक है। मि. चर्चिल एक दल की ओर से खड़े हुये थे और युद्धकाल में वे सबसे अच्छे आदमी समझे गए परन्तु बहुमत ने उन्हें शांतिकाल के लिये स्वीकार नहीं किया। हमारे देश में भी यही हो सकता है। हमारे यहां भी दलबन्दी, निर्वाचन इत्यादि की व्यवस्था है। इसलिये श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर शाह ने जो संशोधन उपस्थित किये हैं वे बहुत अच्छे हो सकते हैं और इस सभा के सदस्यों को अपनी विचारधारा समझाने तथा स्वीकार करने के लिए उन्होंने जो प्रयास किया है वह प्रसंशनीय है—इस सम्बन्ध में उनकी सच्चाई के बारे में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं

है—परन्तु मैं यह कहूंगा कि इस सभा ने यह निर्णय किया है कि एक विशेष प्रकार की शासन-प्रणाली ही उपयुक्त होगी और इसलिये, श्रीमान्, ये संशोधन इस विधान की रूपरेखा में बेमेल लगेंगे और इस कारण प्रविष्ट नहीं किये जा सकते हैं। मैं यह अनुभव करता हूं कि उनमें से कुछ अच्छे हो सकते हैं किन्तु सभा ने एक प्रकार की शासन-प्रणाली के सम्बन्ध में निर्णय कर लिया है। इस कारण मैं प्रोफेसर के. टी. शाह द्वारा प्रस्तावित संशोधनों का विरोध करता हूं।

***श्री जगत नारायण लाल** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं अवश्य ही प्रोफेसर के.टी. शाह द्वारा उपस्थित संशोधन के पक्ष में मत देना चाहता, परन्तु मैं यह अनुभव करता हूं कि जहां तक हमारे देश में जनतंत्रात्मक शासन-प्रणाली को स्थापित करने का सम्बन्ध है वह उस विचारधारा के विपरीत है जिसे इस सभा ने स्वीकार किया है। यह स्पष्ट है कि प्रोफेसर शाह की यह अटल धारणा है कि भारतीय संघ के प्रधान की वही शक्तियां और प्राधिकार हों जो अमेरिका के गणराज्य के प्रधान के हैं। यदि मैं उनके उद्देश्य को ठीक समझा हूं और यही उनका उद्देश्य है तो इससे हम सभी सहमत होंगे कि यह विचारधारा हमको मान्य नहीं है। जहां तक हमारे विधान का सम्बन्ध है, उसमें हम अपने प्रधान को जो शक्तियां देने जा रहे हैं वे बहुत कुछ आयरलैण्ड के गणराज्य के प्रधान की शक्तियों के समान हैं। इस सम्बन्ध में हमारे सामने कई उदाहरण हैं। सबसे हाल का उदाहरण आयरलैण्ड के प्रधान और उसकी शक्तियों का हैं। जहां तक इंग्लैण्ड का सम्बन्ध है हम सभी जानते हैं कि वहां का सम्राट् वहां का वैधानिक प्रमुख है और वहां प्रधान की कोई व्यवस्था नहीं है। उसकी कुछ शक्तियां तथा अधिकार हैं और वहां कुछ प्रथायें भी हैं। फ्रांस के प्रधान की जो शक्तियां हैं वे केवल नाममात्र की हैं। वह बहुत कुछ नाममात्र की ही प्रमुख है। वैमार के विधान के अधीन सभापति प्रधान की बहुत सी शक्तियां थीं परन्तु हम यह देखते हैं कि सभा-पति-प्रधान को भी अर्थात् राइख के प्रधान को भी युद्ध की घोषणा करने के लिये मन्त्रियों की ओर राइख की भी स्वीकृति लेनी होती थी। सन्धियां करने और सम्बन्ध स्थापित करने में भी उसको उनकी स्वीकृति लेनी होती थी। परन्तु प्रोफेसर शाह के प्रस्ताव में इससे भी अधिक शक्तियां प्रदान की गई हैं। वे कहते हैं कि वह युद्ध तथा सन्धि की घोषणा भी कर सकता है। वे इसे बिल्कुल ही स्पष्ट कर देना चाहते हैं और यह भी चाहते हैं कि यह किसी प्रथा पर निर्भर न रहे बल्कि विधान ही में प्रावहित किया जाये। यदि यह युद्ध अथवा संधि घोषित करेगा तो वह परामर्श ले सकता है और वास्तव में वह परामर्श लेगा ही, परन्तु वे इसे विधान में प्रावहित करना नहीं चाहते हैं। इसलिये, श्रीमान्, मैं यह अनुभव करता हूं कि प्रोफेसर शाह से सहमत होना सम्भव नहीं है। भारतीय संघ के प्रधान

[श्री जगत नारायण लाल]

को जो शक्तियां दी जाने वाली हैं उनके सम्बन्ध में उनके दृष्टिकोण तथा हमारे दृष्टिकोण में आधारभूत अन्तर है। मेरी यह धारणा है कि वे अमेरिका की प्रणाली का अनुसरण करना चाहते हैं परन्तु हमारा यह विचार है कि हम प्रधान को उस प्रणाली के आधार पर नहीं बल्कि आयरलैण्ड के गणराज्य की प्रणाली के आधार पर शक्तियां प्रदान करना चाहते हैं।

श्रीमान्, मैं वादानुवाद को बढ़ाना नहीं चाहता। मैं समाप्त कर चुका हूं।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझसे पहले बोलने वाले वक्ता इस ओर ध्यान दिला चुके हैं कि मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर के. टी. शाह ने इस अनुच्छेद तथा समनुवर्त्ती अनुच्छेदों के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किये हैं उनसे उस सारे वैधानिक ढांचे में ही आधारभूत परिवर्तन हो जायेगा जिसे हमने पिछले सवा वर्ष के वादानुवाद के उपरान्त स्वीकार किया है। जब संघीय विधान-समिति अपना कार्यारम्भ कर रही थी तो यह निर्णय किया गया था और मेरे विचार से इस सम्बन्ध में सम्भवत: एक या दो सदस्यों ने मतभेद भी प्रकट किया था कि हमारी केन्द्रीय सरकार इंग्लैण्ड की प्रणाली पर आधृत होनी चाहिये और दो मुख्य कारणों से अमेरिका की अथवा संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रणाली का परित्याग किया जाना चाहिये। जो दो प्रश्न इस सभा के सम्मुख अथवा विभिन्न समितियों के सम्मुख उपस्थित किये गये थे वे ये हैं : जनतंत्रात्मक वैधानिक ढांचे का बिना उल्लंघन किये हुये किस प्रकार एक शक्तिशाली अधिशासी-वर्ग का निर्माण किया जा सकता है और यह कि किस प्रकार का अधिशासी-वर्ग इस देश के लिये उपयुक्त होगा? मेरी समझ में नहीं आता कि इन दृष्टिकोणें को सामने रखते हुये यह सभा मेरे मित्र के संशोधनों से कैसे सहमत हो सकती है।

मेरे माननीय मित्र का शक्तियों के पृथक्करण के सम्बन्ध में एक संशोधन इस सभा के सम्मुख रखा जा चुका है और वह अस्वीकार भी हो चुका है। जिसका विस्मरण न होना चाहिये कि अमेरिका का विधान बहुत पहले 18वीं शताब्दी में बनाया गया था। उसके निर्माताओं का पथप्रदर्शन मान्टेन के इंग्लैण्ड के विधान के निर्वचन से हुआ था जिसमें इंग्लैण्ड की शक्तियों की पृथक्करण की प्रणाली का उल्लेख है। उनका यही विचार रहा कि वे मान्टेन के विश्लेषण को एक वैधानिक ढांचे का स्वरूप दे रहे हैं। अमेरिका के विधान में प्रधान को जो शक्तियां दी गई थीं उनका आधार, जैसा कि इस समय समझा जाता है 18वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड के विधान का भ्रमपूर्ण पाठ ही था।

जैसा कि मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर बता चुके हैं, अमेरिका में भी शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त का अनुसरण करना असम्भव हो गया है। हम जानते हैं कि अमेरिका का विधान उतनी अच्छी प्रकार व्यवहार में नहीं है जैसे इंग्लैण्ड का विधान और इसका यही कारण है कि उस देश में मुख्य अधिशासक विधान-मण्डल से पृथक् है। सबसे शक्तिशाली सरकार और सबसे लचीला अधिशासी-वर्ग इंग्लैण्ड का ही देखा गया है और इसका कारण यह है कि अधिशासी शक्तियां मंत्रिमण्डल में निहित होती हैं और उसे अवर-सभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है जिसे विधान के अधीन अर्थ-सम्बन्धी शक्तियां प्राप्त होती हैं। इसके फलस्वरूप विधान-मण्डल में बहुमत का प्रभुत्व होता है और इसका कारण यह है कि वह मन्त्रिमण्डल के नेताओं का समर्थन करता है जो राज्य के प्रमुख अर्थात् सम्राट् या प्रधान को परामर्श देते हैं। इस प्रकार सम्राट् अथवा प्रधान का किसी दल से कोई सम्बन्ध नहीं रहता है। वह वास्तव में विधान की निरपेक्ष महानता का प्रतीक बना दिया जाता है। इसका यह परिणाम हुआ है कि इंग्लैण्ड की सरकार सभी परिस्थितियों में शक्तिशाली और लचीली सिद्ध हुई है। इस समय इंग्लैण्ड में मन्त्रिमण्डल की शक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रधान की शक्ति से किसी प्रकार कम नहीं है। प्रधान-मंत्री तथा मन्त्रिमण्डल के सभी मन्त्रियों के विधान-मण्डल के सदस्य होने के कारण अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल के बीच कलह की इतनी कम सम्भावना है कि वह नगण्य ही है क्योंकि मन्त्रिमण्डल तभी पदारूढ़ रह सकता है जब उसे संसद् में बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। इंग्लैण्ड के विधान की इस विशेषता के कारण ही पिछले 150 वर्षों में बहुत-सी कठिन परिस्थितियां उपस्थित होने पर थी ब्रिटिश सरकार अपना रथ आगे बढ़ाती रही है। इसलिये अमेरिका के ढंग के अधिशासी-वर्ग और इंग्लैण्ड के ढंग के अधिशासी-वर्ग के बीच किसी प्रकार की तुलना ही नहीं हो सकती। सभी लोगों ने और अमेरिका के प्रमुख वैधानिक विशेषज्ञों ने भी यह स्वीकार किया है कि आधुनिक काल के लिये इंग्लैण्ड के ढंग का अधिशासी-वर्ग ही उत्तम है।

इसके अतिरिक्त सभा ने इस प्रश्न पर भी विचार करना है कि कौन-सी प्रणाली भारत के लिये सबसे उपयुक्त होगी। हमें उस बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात को न भूलना चाहिये कि पिछले सौ वर्षों में भारतीय सार्वजनिक जीवन में अधिकतर इंग्लैण्ड के वैधानिक कानून का अनुसरण किया जाता रहा है। हममें से अधिकांश लोग और भारत के सार्वजनिक नेता कई पीढ़ियों से इंग्लैण्ड की प्रणाली को ही सबसे अच्छा समझते आये हैं। पिछले तीस या चालीस वर्षों से इस देश के शासन में एक प्रकार के उत्तरदायित्व का समावेश हुआ है। हमारी

[श्री के.एम. मुन्शी]

वैधानिक परम्परा संसदात्मक हो चली है और इस समय हमारे सभी प्रान्त बहुत कुछ इंग्लैण्ड की प्रणाली का ही अनुसरण कर रहे हैं। वास्तव में आज भारत की औपनिवेशिक सरकार पूर्णतया संसदात्मक सरकार के रूप में काम कर रही है। इतना अनुभव प्राप्त करने के उपरान्त हम एक सौ वर्षों के प्रयास के फलस्वरूप निर्माण की हुई परम्परा को ही उलट कर एक ऐसे नये प्रयोग को क्यों करना चाहते हैं जो, जैसा कि मैं कह चुका हूं, 150 वर्ष पूर्व आरम्भ किया गया था और जिसकी त्रुटियों का अनुभव अमेरिका में ही हो चुका है? इसलिये मेरा यह निवेदन है कि प्रोफेसर शाह ने अपने संशोधनों द्वारा जिस योजना का प्रस्ताव किया है उसे इस सभा ने अभी तक स्वीकार नहीं किया है और उससे अन्य देशों में भी सर्वोत्कृष्ट फल प्राप्त नहीं हुये हैं और वास्तव में वह उस परम्परा के विरुद्ध है जिसका निर्माण भारत में हुआ है। इसलिये श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इस संशोधन को अस्वीकार कर देना चाहिये।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, यदि यह सभा प्रोफेसर शाह के संशोधन को स्वीकार कर ले तो इसका अर्थ यह होगा कि प्रोफेसर शाह के बताये हुये कारणों के अनुसार यह सभा उस निर्णय को ही उलट देगी जिसे विभिन्न समितियों ने और विधान-परिषद् ने बहुत वादानुवाद के उपरान्त पहले कई अवसरों पर किया था।

इस प्रश्न के अतिरिक्त, कि गम्भीरतापूर्वक जो निर्णय किया गया है उसका निराकरण हो जायेगा, कई ऐसे महत्त्वपूर्ण कारण हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस देश के लिये साधारणतया तथाकथित प्रधानमूलक शासन-प्रणाली से मंत्रिमडल-मूलक शासन-प्रणाली अधिक श्रेयस्कर होगी। प्रथम तो विचार यह है कि विभिन्न प्रदेशों, प्रान्तों और राज्यों को संधान में समाविष्ट किया जाये। इस समय विभिन्न राज्यों में नरेशों का अस्तित्व मिटा देने का कोई विचार नहीं है। यदि आप केन्द्र में प्रधान-मूलक शासन-व्यवस्था स्थापित कर दे तो हम राज्यों के सम्बन्ध में क्या करेंगे? क्या इसका अर्थ यह है कि राज्यों में नरेशों को फिर वास्तविक अधिशासी शक्ति प्रदान की जायेगी और विधान-मण्डलों को केवल कानून बनाने का काम सौंपा जायेगा? यह समय की गति के विरुद्ध होगा। इससे भारतीय राज्यों में बड़ी दुर्गम स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। यह एक विचारणीय प्रश्न है।

दूसरा प्रश्न यह है कि जहां तक भारत के प्रान्तों का सम्बन्ध है हम कई वर्षों से बहुत कुछ मन्त्रिमण्डल-मूलक शासन-प्रणाली का अनुसरण करते रहे हैं। हम

उसी ढांचे के अन्दर काम करते हैं। उसके पूर्व कुछ समय तक द्विविध शासन-प्रणाली प्रयुक्त थी। कुछ समय से भारत के विभिन्न प्रदेशों में हम उत्तरदायी शासन को प्रयोग में लाये हैं। अमेरिका की प्रधान-मूलक शासन-प्रणाली पर विचार करते समय यह स्मरण रखना चाहिये कि वहां प्रधान-मूलक शासन-प्रणाली केवल केन्द्र में ही प्रयुक्त नहीं है बल्कि विभिन्न राज्यों में भी प्रयुक्त है। इस पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि किस ऐतिहासिक परिस्थिति के वश अमेरिका में प्रधान-मूलक शासन-प्रणाली अपनायी गई थी और प्रयोग में लाई गई थी। जार्ज तृतीय का अविश्वास, विद्रोह को घटित करने वाली परिस्थितियां, संसद् तथा अधिशासी-वर्ग के बीच निरन्तर कलह और अधिकारों के लिये प्रार्थना-पत्र तथा अधिकार-पत्र का पूर्व इतिहास, मुख्यत: इन सब बातों के कारण ही अमेरिका में प्रधान-मूलक शासन-प्रणाली स्थापित हुई। इनके अतिरिक्त विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग के प्रकार्यों के पृथक्करण के सम्बन्ध में मान्टेस्को तथा अन्य अग्रगण्य राजनैतिक विचारकों ने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये थे उनका भी इस निश्चय में योग रहा। साथ ही प्रधान-मूलक शासन-प्रणाली को व्यवहार में लाने में स्पष्टत: कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। जब तक विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग के घनिष्ट न होंगे तो अवश्य ही लूट की एक प्रथा स्थापित हो जायेगी। आयव्ययक को कौन स्वीकृति प्रदान करेगा? विशेष नीतियों को कौन स्वीकृति प्रदान करेगा? संसद् एक प्रकार की कार्य-शैली का अनुसरण कर सकती है और अधिशासी-वर्ग एक दूसरी प्रकार की कार्यशैली का अनुसरण कर सकता है। वर्तमान परिस्थिति में कोई ऐसा जनतंत्र, जो अपनी शैशवावस्था में हो, विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग के बीच निरन्तर मतभेद, वैमनस्य तथा कलह अथवा कलह के आतंक को सहन नहीं कर सकता है। विधान की वर्तमान रूपरेखा इस उद्देश्य से निश्चित की गई है कि विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग के बीच कलह न हो और शासन के विभिन्न अंगों के बीच सामंजस्य उत्पन्न हो। विधान का यही मुख्य उद्देश्य होता है। इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर इस सभा ने तथा विभिन्न समितियों ने प्रधान-मूलक शासन-प्रणाली से मन्त्रिमण्डल-मूलक शासन-प्रणाली को अधिक श्रेयस्कर समझा और उसे अपनाया। मन्त्रिमण्डल-मूलक शासन-प्रणाली का गुणगान करने की आवश्यकता नहीं है। बेजहाट के शब्दों में मन्त्रिमण्डल, विधान मण्डल तथा अधिशासी-वर्ग का गठबन्धन करता है। वर्तमान परिस्थिति में हमारे देश के लिये, जब कि हमारा जनतंत्र अभी शैशवावस्था ही में है, यह आवश्यक है कि विधान-मण्डल तथा अधिशासी-वर्ग के बीच घनिष्ट सम्बन्ध हों। इन कारणों से

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

ही संघीय विधान समिति तथा इस सभा ने मन्त्रिमण्डल-मूलक शासन-प्रणाली को अंगीकार किया। ऐतिहासिक कारणों से ही अमेरिका में प्रधान- मूलक शासन-प्रणाली बहुत सफल रही है। निस्सन्देह वहां प्रधान बहुत ही सम्मान का पात्र है परन्तु इसका कारण केवल प्रधान-मूलक शासन-प्रणाली ही नहीं है बल्कि अमेरिका का धन-संचय भी है। इन्हीं कारणों से मैं विधान का उसके वर्तमान रूप में समर्थन करता हूं और प्रोफेसर शाह के संशोधन का विरोध करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे खेद है कि जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनमें से मैं किसी को भी स्वीकार नहीं कर सकता हूं। जहां तक इस खण्ड पर सामान्य विचार-विमर्श का सम्बन्ध है मेरे विचार से मेरे मित्र श्री मुन्शी और श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने जो कुछ कहा है उससे अधिक व्याख्या करने से कुछ लाभ न होगा।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा। संशोधन संख्या 1040 का प्रथम भाग। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (1) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(1) The sovereign executive power and authority of the Union shall be vested in the President, and shall be exercised by him in accordance with the Constitution and in accordance with the laws made thereunder and in force for the time being.' "

[(1) संघ की सार्वभौम अधिशासी शक्ति तथा प्राधिकार प्रधान में सन्निहित होंगे और वह उन्हें विधान के अनुसार और उसके अधीन बनाये हुये तथा समय प्रयुक्त कानूनों के अनुसार प्रयोग में लायेगा।]

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 1040 के दूसरे भाग पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (1) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(1) The executive authority, power and functions of Government shall be vested in the President, and shall be exercised by him in accordance with the

Constitution and the law with the advice and help of such ministers, officers or servants of the State as may be deemed necessary for him.' "

[(1) सरकार का अधिशासी-प्राधिकार, शक्ति और प्रकार्य प्रधान में सन्निहित होंगे और वह उन्हें विधान तथा कानून के अनुसार ऐसे मन्त्रियों, राज्य के अधिकारियों अथवा कर्मचारियों के परामर्श से प्रयोग में लायेगा जिन्हें वह आवश्यक समझे।]

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 1042 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि :

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (1) में 'and may' (हिन्दी में 'और वह') शब्दों के बाद 'on behalf of the people of India' (भारत के लोगों की ओर से) शब्द रखे जायें।"

प्रस्ताव गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 1042 पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (2) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(2) Without prejudice to the generality of the foregoing provision and in accordance with this Constitution and the laws made thereunder for the time being in force, the President shall—

(a) convene or dissolve the Legislature of the Union' and place before it any proposal for legislation or for sums of money needed for the good government and efficient administration of the country, or for its defence, or to provide for any sudden calamity in any part of the Union or any other emergency;

(b) have the power to assent to the laws duly passed by the Union Legislature;

(c) conduct and supervise any Referendum that may be decided upon to make to the Sovereign People in accordance with this Constitution;

[उपाध्यक्ष]

(d) have the power to declare war, and make peace;

(e) be the supreme commander of all the armed forces of the Union;

(f) appoint all other executive and judicial officers, including the ministers, representatives of the Union in foreign countries as ambassadors, ministers, consuls, trade commissioners and the like; as well as the commanding officers in the armed forces of the Union;

(g) do all acts exercise all powers and discharge all authority necessary or incidental to the power and authority vested in him by and under this Constitution;

(h) have power to refuse assent to any legislative proposal passed by both Houses of Parliament; or to recommend to Parliament that any legislative proposal passed by Parliament be reconsidered for reasons stated by the President, provided that any legislative proposal duly passed by Parliament, if refused assent by the President only once; and that the same proposal if passed in an identical form by Parliament in the next following sessions of that body, shall be deemed to have been duly passed and become an Act of the Legislature, notwithstanding that the President has refused or continues to refuse to assent thereto;

(i) in every case in which the President refuses to assent to any legislative proposal duly passed by Parliament, the President shall record his reasons for refusing to assent and shall forward the reasons thus recorded to Parliament;

(j) in any case where the President, having duly submitted to Parliament, or to the People's House thereof, a legislative proposal he deems necessary

for the safety of the State, its integrity or defence or to safeguard the nation's interests in a national emergency, finds that Parliament is unwilling to consider or pass that proposal, may refer such a proposal to the people of the country; and if the proposal is approved, on such reference, by a majority of not less than two-thirds of the citizens voting, it shall forthwith become a law of the land. If on such reference the proposal is not approved by the requisite majority, it shall be deemed to have been negatived, and shall be treated as void and have no effect."

[(2) पूर्वगामी प्रावधान की व्यापकता पर बिना विपरीत प्रभाव डाले हुये और इस विधान और उसके अधीन बनाये हुये तथा इस समय प्रयुक्त कानूनों के अनुसार प्रधान को–

(क) संघ के विधान-मण्डल को आरम्भ करने अथवा समाप्त करने और उसके सम्मुख कानून बनाने के लिये अथवा देश के सुशासन तथा सुयोग्य प्रशासन के लिये आवश्यक धन-राशि के लिये अथवा देश की रक्षा के लिये अथवा संघ के किसी भाग में आकस्मिक विपत्ति के पड़ने पर प्रबन्ध के लिये अथवा किसी अन्य सद्यस्कृत्यस्थिति के लिये कोई भी प्रस्ताव रखने का अधिकार होगा;

(ख) संघीय विधान-मण्डल द्वारा यथाविधि पारित कानूनों के लिये अपनी स्वीकृति प्रदान करने की शक्ति होगी;

(ग) यदि इस विधान के अनुसार सर्वसत्ताधारी लोगों का मत लेने का निश्चय किया गया तो उसका संचालन तथा निरीक्षण करने का अधिकार होगा;

(घ) युद्ध अथवा शान्ति घोषित करने का अधिकार होगा;

(ङ) संघ की सभी सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च सेनानायक होने का अधिकार होगा;

(च) अन्य सभी अधिशासी अधिकारियों और न्यायाधिकारियों को, जिनमें मन्त्री और विदेशों में संघ के प्रतिनिधि, जैसे अम्बेसेडर, मिनिस्टर,

कांसल, व्यापारिक कमिश्नर आदि भी सम्मिलित हैं, तथा संघ की सशस्त्र सेना के सेनानायकों को नियुक्त करने का भी अधिकार होगा;

(छ) इस विधान द्वारा तथा इसके अधीन उसमें निहित शक्ति और प्राधिकार के अनुरूप तथा आनुषंगिक सभी शक्तियों और प्राधिकार को प्रयोग करने और सभी कार्य करने का अधिकार होगा;

(ज) संसद् की दोनों सभाओं द्वारा पारित किसी वैधानिक प्रस्थापना को अस्वीकार करने की शक्ति होगी अथवा संसद् से यह सिफारिश करने की शक्ति होगी कि उसके पार की हुई किसी वैधानिक प्रस्थापना पर प्रधान के बताये हुये कारणों से पुनर्विचार किया जाये परन्तु संसद् द्वारा यथाविधि पार की हुई किसी वैधानिक प्रस्थापना को यदि प्रधान अस्वीकार करे तो केवल एक बार करेगा और यदि अगले अधिवेशन में संसद् उसी प्रस्थापना को उसी रूप में पार कर दे तो वह यथाविधि पार किया हुआ समझा जायेगा और विधान-मण्डल का अधिनियम हो जायेगा चाहे प्रधान ने उसे स्वीकृति प्रदान न की हो और न प्रदान करने के लिये सहमत हो;

(झ) संसद् द्वारा यथाविधि पारित वैधानिक प्रस्थापना को यदि प्रधान स्वीकृति प्रदान करने के लिये सहमत न हो तो प्रधान उसके कारणों का उल्लेख करेगा और इस प्रकार उल्लिखित कारणों को संसद् के पास भेजेगा;

(ञ) यदि प्रधान संसद् के सम्मुख अथवा उसकी लोक-सभा के सम्मुख कोई ऐसी वैधानिक प्रस्थापना यथाविधि रखे जो वह देश के क्षेम, सुव्यवस्था अथवा रक्षा के हित में अथवा किसी राष्ट्रव्यापी सद्यस्कृत्यस्थिति के उपस्थित होने पर राष्ट्र के हितों के रक्षार्थ आवश्यक समझे और यह देखे कि संसद् उस प्रस्थापना को पार करने अथवा उस पर विचार करने के लिये सहमत नहीं है तो वह उस प्रस्थापना को देश के लोगों के सम्मुख रख सकता है और यदि ऐसा करने पर वह प्रस्थापना मत देने वाले कम से कम दो तिहाई नागरिकों के बहुमत से स्वीकार कर ली जाये तो वह तत्काल ही देश का कानून हो जायेगा। किन्तु इस प्रकार लोगों के सम्मुख रखने पर यदि वह प्रस्थापना निश्चित बहुमत से स्वीकार न हुई तो यह समझा

जायेगा कि वह अस्वीकार हो गई है और यह भी समझा जायेगा कि उसका शून्यन हो गया है और उसका कोई प्रभाव न होगा।]

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 1048 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि :

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

'(a) be deemed to authorise or empower the President to exercise any power or perform any function which by any existing law is exercisable or performable by the Government of any State or by any other authority; or' "

[(क) यह न समझा जायेगा कि प्रधान को किसी ऐसी शक्ति का प्रयोग करने अथवा किसी ऐसे प्रकार्य को करने की शक्ति अथवा प्राधिकार है जो किसी वर्तमान कानून से किसी राज्य की सरकार द्वारा अथवा अन्य किसी प्राधिकारी द्वारा प्रयोग की जाती हो अथवा किया जाता हो; अथवा]

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 42 विधान का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*अनुच्छेद 42 विधान का अंग बना लिया गया।*

---

**अनुच्छेद 43**

***उपाध्यक्ष:** हमारे पास अब भी बारह मिनट से कुछ अधिक समय है और मेरा यह विचार है कि आगे का अनुच्छेद उठा लिया जाये।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 43 विधान का अंग बना लिया जाये।"

संशोधन संख्या 1051, श्री दामोदरस्वरुप!

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

"अनुच्छेद 43 और 44 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'The President shall be elected by means of the single transferable vote by an electoral college composed of the members of Parliament and an equal number of persons elected by the Legislatures of the States on population basis under the system of single transferable vote.' "

(प्रधान का निर्वाचन एकल संक्राम्य मत से एक निर्वाचक-निकाय करेगा जिसमें संसद् के सदस्य होंगे और उतनी ही संख्या में राज्यों के विधान-मण्डलों द्वारा जनसंख्या के आधार पर एकल संक्राम्य मत-प्रणाली के अनुसार निर्वाचित लोग होंगे।)

श्रीमान्, अनुच्छेद 43 भारतीय संघ के प्रधान के निर्वाचन तथा संसद् की दोनों सभाओं के सदस्यों और राज्यों के विधान-मण्डलों के निर्वाचित सदस्यों के निर्वाचक-निकाय के सम्बन्ध में है और अनुच्छेद 44 में राज्यों के प्रतिनिधियों के निर्वाचन की प्रणाली का ब्यौरा दिया हुआ है। जहां तक एकल-संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली का सम्बन्ध है, मेरे विचार से इस सभा का प्रत्येक सदस्य उसका स्वागत करेगा। परन्तु जहां तक राज-परिषद् के सदस्यों और राज्यों की विधान-परिषदों के सदस्यों को सम्मिलित करने का प्रश्न है मैं प्रधान के निर्वाचन में इनको सम्मिलित करने के विरोध में हूं। श्रीमान्, यही नहीं मैं इस विधान में इन सभाओं की ही व्यवस्था करने के विरोध में हूं। श्रीमान्, संधानीय राज-व्यवस्था में अथवा किसी उत्कृष्ट जनतंत्रात्मक विधान में द्विवेश्म विधान-मण्डलों का निर्माण करना अब आवश्यक नहीं समझा जाता है। यदि इसके सम्बन्ध में और अधिक कुछ न कहा जाये तो इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह उन्नति को अवरुद्ध करने के लिये कट्टरपन्थी का एक साधन है। श्रीमान्, प्रोफेसर लास्की ने ठीक ही कहा है कि संधान के किसी प्रदेश के रक्षार्थ एक दूसरी सभा के कवच की आवश्यकता नहीं है। विधान में शक्ति-विभाजन की जो व्यवस्था होती है और न्यायालयों द्वारा न्याय-सम्बन्धी पुनर्विचार का जो अधिकार प्रावहित होता है उससे संधान के सभी प्रदेशों को पर्याप्त संरक्षण प्राप्त हो जाता है। श्रीमान्, सभी संधानीय राज्यों में विधान-मण्डलों की दोनों सभाओं में दलबन्दी की प्रणाली का अनुसरण किया जाता है और दूसरी सभा के सदस्य भी दलों के आधार पर निर्वाचित होते हैं। यही नहीं वे अवर सभा के सदस्यों के समान अपने दल के

निर्देशानुसार कार्य करते हैं और मत देते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि दो सभाओं में राष्ट्रीय दलों की सदस्य-संख्या भिन्न होती है किन्तु सदस्य-संख्या के इस अन्तर के कारण केवल गड़बड़ और गतिरोध ही होता है। संधानीय विधान-मण्डल की दो विभिन्न सभाओं को भी प्रादेशिक अथवा राष्ट्रीय हितों के संरक्षण का काम सौंपना भी बुद्धिमानी नहीं है और न इन हितों का संरक्षण करके दूसरी सभाओं ने अपनी सार्थकता सिद्ध की है। राष्ट्रीय और प्रादेशिक हितों के सम्बन्ध में दोनों सभाओं के सदस्यों की लगभग एक ही प्रकार की भावनायें रहती हैं। संधान में सम्मिलित होने वाले प्रदेशों का राजनैतिक इकाइयों के रूप में, स्थानीय अधिशासी-वर्ग के मनोनीतकरण से अथवा प्रदेशों के विधान-मण्डलों द्वारा निर्वाचन से प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को भी आधुनिक विचारकों ने समीचीन नहीं ठहराया है। व्यवस्था यह है कि यद्यपि राज-परिषद् के अधिकांश सदस्य व्यवहित निर्वाचन द्वारा चुने जायेंगे किन्तु कुछ का मनोनीतकरण भी होगा। श्रीमान्, मनोनीतकरण की प्रणाली जनतंत्र के विरुद्ध है और प्रोफेसर लास्की के शब्दों में व्यवहित निर्वाचन की प्रणाली सबसे अधिक दूषित है और उससे भ्रष्टाचार अपनी पराकाष्ठा को पहुंच जाता है। श्रीमान्, जहां तक अनुच्छेद 44 में और उसके नीचे दी हुई व्याख्या में वर्णित निर्वाचन-प्रणाली के ब्यौरे का सम्बन्ध है, मेरा यह निवेदन है कि वह केवल भ्रामक ही नहीं है बल्कि जटिल भी है और उससे राज्य के प्रतिनिधित्व में एकरूपता नहीं आती है। इसके विपरीत, श्रीमान्, मेरे संशोधन में बहुत ही सरल प्रणाली का सुझाव रखा गया है जो न केवल बिना किसी कठिनाई के प्रयोग में लाई जा सकती है बल्कि जिससे राज्य के प्रतिनिधित्व में एकरूपता भी आ सकती है। इसलिये मुझे आशा है कि यह सभा मेरे संशोधन को स्वीकार करने में किसी प्रकार के संकोच का अनुभव नहीं करेगी।

(संशोधन संख्या 1052 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** दो या तीन संशोधन एक ही समान हैं। मैं जानना चाहता हूं कि उनमें से कौन-सा संशोधन उपस्थित किया जायेगा। वे संशोधन संख्या 1053, 1055, 1057, 1059 और 1062 हैं।

(संशोधन संख्या 1055, 1059 और 1062 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** इस प्रकार अब दो संशोधन रह जाते हैं जो एक समान हैं, अर्थात् संशोधन संख्या 1053 और 1057 । मैं संशोधन संख्या 1053 को उपस्थित करने की आज्ञा दे सकता हूं जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है।

***प्रोफेसर के. टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 43 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'43. The President shall be elected by the adult citizens of India, voting by secret ballot, in each constituent part of the Union.' "

(43. प्रधान का निर्वाचन भारत के प्रौढ़ नागरिक करेंगे और वे संघ के प्रत्येक भाग में गूढ़शलाका द्वारा मत देंगे।)

***उपाध्यक्ष:** आप अपना भाषण सोमवार को जारी रख सकते हैं।

सभा सोमवार के दिन प्रात: दस बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

*इसके पश्चात् विधान-परिषद् सोमवार, 13 दिसम्बर सन् 1948 ई. के दिन प्रात: दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।*

Con. 3. VII. 25. 48
350

अंक 7
संख्या 25

सोमवार,
13 दिसम्बर
सन् 1948 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी)..... 1643-1713
[अनुच्छेद 43, 15, 44, 45 और 46 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

सोमवार, 13 दिसम्बर, सन् 1948 ई.

---

*उपाध्यक्ष महोदय (डॉ. एच. सी. मुखर्जी) की अध्यक्षता में भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे समवेत् हुई।*

---

## विधान का मसौदा–( जारी )

### अनुच्छेद 43–( जारी )

*__प्रोफेसर के.टी. शाह__ (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं पेश कर चुका हूं..

.

*__श्री टी.टी. कृष्णामाचारी__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। क्या मैं यह जान सकता हूं कि प्रो. शाह फिर उस योजना को रख सकते हैं या नहीं जिसकी रूपरेखा उन्होंने पहले एक अथवा दो संशोधनों में प्रस्तुत की थी और जिन सब संशोधनों को इस सभा ने अस्वीकार कर दिया था? वे वास्तव में अपने इन सब संशोधनों में एक विशिष्ट योजना पर अड़े हुये हैं। क्या ये माननीय सदस्य इस संशोधन को नियमानुसार पेश कर रहे हैं?

*__प्रोफेसर के.टी. शाहः__ इस औचित्य प्रश्न पर मेरा उत्तर स्पष्ट है। मैं जानता था कि यह आपत्ति होगी और इसलिये मैंने अपने संशोधन का शब्द-विन्यास इस प्रकार का रखा है कि यह विशिष्ट आपत्ति लागू न हो सके। सरकार के विभिन्न अंगों में परस्पर शक्तियों के पूर्ण पार्थक्य का सिद्धान्त अस्वीकार किया जा चुका है। चाहे इन शक्तियों का पार्थक्य न हो और चाहे प्रधान की कुछ भी शक्तियां क्यों न हों तो भी उनसे प्रधान के जनमत द्वारा चुने जाने में कोई बाधा नहीं पड़ती। जब तक यह इच्छा न हो कि मुझे कोई संशोधन पेश करने की आज्ञा न दी जाये तब तक मैं नही समझता कि ऐसी आपत्ति क्यों उठाई जाती है। मैं इसका निर्णय अध्यक्ष पर छोड़ता हूं। श्रीमान्, मैं पूर्णतया आपके अधिकार में हूं। मैं समझता हूं कि माननीय सदस्य की आपत्ति लागू हो ही नहीं सकती। इस आपत्ति के कारण

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

ही तो मैंने अपने प्रत्येक संशोधन के शब्द-विन्यास को इस प्रकार से रखा है कि...

***उपाध्यक्ष** (डॉ. एच. सी. मुखर्जी): प्रो. शाह इस संशोधन को नियमानुसार पेश कर रहे हैं।

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं पहले ही पेश कर चुका हूं:

"कि अनुच्छेद 43 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये :

'43. The President shall be elected by the adult citizens of India, voting by secret ballot, in each constituent part of the Union.' "

(43. प्रधान भारत के प्रौढ़ नागरिकों द्वारा चुना जायेगा और वे संघ के मूलभूत अंगों में गूढ़शलाका के द्वारा मतदान करेंगे।)

मूल अनुच्छेद निर्वाचन निकाय द्वारा प्रधान के निर्वाचन की व्यवस्था करता है। उस निर्वाचक निकाय में केन्द्रीय विधान-मंडल तथा प्रान्तीय अथवा रियासतों के विधान-मंडलों के सदस्य होंगे। मेरे विचार में इस रीति से लोक-इच्छा का यथेष्ट प्रतिनिधान नहीं होगा। अत: कम से कम मैं तो इस आग्रह पर अड़ा हुआ हूं कि लोकेच्छा को सर्वोपरि माना जाये।

मुझे यह आवश्यकता प्रतीत हुई है कि जहां भी मैं ऐसा करा सकूं वहीं अन्य बातों के अतिरिक्त यह भी कराने का प्रयत्न करूं कि प्रभुतासम्पन्न जनसाधारण को इस विधान में स्थान मिले, चाहे फिर आप ऐसा होना पसंद करते हों या नापसंद और मैंने यह भी चाहा है कि जनसाधारण को यह अवसर प्राप्त हो कि वह अपनी बात को मनवा सके चाहे फिर यह बात आपको पसन्द हो या नापसंद। इसलिए मैं यह सुझाव रखता हूं कि राज्य के प्रधान का निर्वाचन में भाग लेने का प्रत्येक प्रौढ़ नागरिक को अधिकार हो, और इसके अनुसार उन विधान-मंडलों के सदस्यों द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन के स्थान में जिनका दो, तीन या चार वर्ष के पश्चात् निर्वाचन हुआ करेगा, मैं यह सुझाव रखता हूं कि प्रत्येक बार प्रधान का निर्वाचन हो और वह निर्वाचन स्वयं लोकमत द्वारा हो।

मैं इस संशोधन के दोनों पक्ष तथा विपक्ष के तर्कों को आपके समक्ष प्रस्तुत करूंगा। मैं इस प्रकार की बातों के सुनने का आदी हो गया हूं कि मेरा संशोधन ठीक समय पर नहीं रखा गया, या यह स्थान उसके लिए ठीक नहीं है या एक और तीसरा तर्क यह कि "मैं इसका विरोध करता हूं"। मेरे तर्कों के ये तीन उत्तर हैं। इनके प्रत्युत्तर में मेरी यह धारणा है कि इस संशोधन को प्रस्तुत करने के लिए यही समय है और यही स्थान है और तर्करहित विरोध पर तो मैं ध्यान ही नहीं देता हूं।

जिस बात को मैं रखना चाहता हूं वह यह है। एक बार पहले यह कहा गया था कि सिद्धान्त के निश्चित कर लेने के पश्चात् यह संशोधन आज एक अन्य रूप में प्रस्तुत किया गया है इसलिये इस पर विचार न किया जाये। श्रीमान्, मैं आपसे यह पूछता हूं और आपके द्वारा सभा से यह पूछता हूं कि यदि कोई इस विचार को उस समय रखता जब कि विधान के सामान्य सिद्धान्तों पर विचार किया गया था तो क्या वह अनुचित होता? मैं सभा से यह निवेदन करूंगा कि मैं जिस बात को इस समय रख रहा हूं उसके बारे में शान्त चित्त से विचार करते समय यह ध्यान में रखें कि 14 या 15 मास पूर्व जब हमने उन सिद्धान्तों पर विचार किया था, जो मूल सिद्धान्त कहे जाते हैं और जो मूल सिद्धान्तों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं, उस समय हम परेशानी में थे और कठिन परिस्थितियों में से गुज़र रहे थे और ऐसे प्रभावों के वशवर्त्ती थे जिनके प्रति मैं यह कहने का साहस करता हूं कि उनसे हमारे विचार दूषित हो गये थे और हमारा दृष्टिकोण विषम हो गया था; अत: हमने उन विचारों का समर्थन किया था और उनको स्वीकार किया था जो मेरी सम्मति में जीवन के प्रत्येक पहलू के लिये सच्चे, वास्तविक और क्रियान्वित किये जाने योग्य प्रजातन्त्र की विचारधारा से न तो तब संगत थे और न अब हैं। यदि आप उससे पीछे हटना चाहते हैं तब तो मुझे कुछ भी नहीं कहना हैं। 15 माह के पश्चात् हम अब ऐसी स्थिति में हैं कि उस परिस्थिति पर अधिक गम्भीर, स्थिर तथा निष्पक्ष विचार कर सकें। अत: यदि हम अपने आदर्शों पर दृढ़ हैं, यदि हम उन सिद्धान्तों पर अटल हैं जिनकी हमने उच्च स्वर में घोषणा की है, यदि हम उन नारों में विश्वास करते हैं जिनके ज़रिये हमने प्राचीन साम्राज्यवादी शासन-अधिकारियों से चले जाने के लिये देश की सन्तानों के लिये स्थान रिक्त करने के लिये कहा था तो, श्रीमान्, मेरा आपसे

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

निवेदन है कि इस संशोधन को सभा के समक्ष प्रस्तुत करने में कोई बात अनुचित नहीं की जा रही है तथा यह नियम-विरुद्ध ही है। फिर भी यह सभा के निर्णय करने की बात है। मैं केवल सभा के समक्ष उन विचारों को प्रस्तुत करना चाहता हूं जिनके बल पर वह मेरे दृष्टिकोण को स्वीकार कर सकती है।

यदि इस मसौदे को इस रूप में समझा जाता है कि यह सभा में रखे जाने वाले किसी विधेयक पर सिलेक्ट कमेटी की रिपोर्ट के समान है तो भी मेरा यही कहना है कि इस दशा में मसौदे के इस रूप पर भी किसी सदस्य को अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है। मैंने नियमों का अध्ययन किया है। उनके अनुसार सभा के समक्ष सिलेक्ट-कमेटी की रिपोर्ट आने पर भी कोई सदस्य विधेयक के सिद्धान्त पर प्रश्न किये बिना, रिपोर्ट द्वारा उद्भूत कारणों के आधार पर यह कह सकता है कि पूरी रिपोर्ट को वापस कर दिया जाये और इस सूरत में मसौदे के लिए भी यही कहा जा सकता है।

तीसरी बात यह है कि जहां तक मैं इन सिद्धान्तों को समझता हूं जो आपने स्वीकार किये हैं, लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव में दिये हुए हैं और जो कुछ मैं यहां कह रहा हूं उसमें कोई ऐसी बात नहीं है जिसके लिये यह कहा जा सके कि हम उस प्रस्ताव से पीछे हट रहे हैं। लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव हमें इस बात का आश्वासन देता है कि हमारा राज्य प्रजातंत्रात्मक, असाम्प्रदायिक, प्रभुतासम्पन्न गणतंत्र है। मेरे संशोधन से इन बातों के बारे में कोई कठिनाई पैदा नहीं होगी। शेष अन्य बातें विवरण सम्बन्धी होने के कारण गौण हैं।

इन तीन कारणों से यह आपत्ति कि इस संशोधन के लिए न तो यह उपयुक्त समय है और न यह उपयुक्त स्थान पर हो जानी चाहिये। यह निश्चित बात है कि प्रधान, चाहे आप उनकी पद-अवधि तीन वर्ष की रखें, चार वर्ष की रखें या पांच की, जब तक कि वह किसी ऐसे अपराध के दोषी नहीं हैं जिसके कारण उन पर अभियोग चलाया जा सकता है और उनको हटाया जा सकता है तब तक वह इस अवधि के लिये केवल योजना के अन्तर्गत सरकार के ही मुखिया नहीं होंगे परन्तु जैसा कि श्री त्यागी ने उस दिन संकेत किया था, उनमें लोक की प्रभुता भी निहित होगी।

सामूहिक रूप में लोक-प्रभुता का घर और बाहर प्रतिनिधान करते हुये उनकी स्थिति ऐसी होनी चाहिये कि वे लोगों को, चाहे वे बहुमत में हों चाहे अल्पमत में, विश्वासपात्र हों। मेरा विचार तो यह है कि एक बार निर्वाचित होने पर प्रधान किसी दल का भी सदस्य नहीं रह सकता है जिस प्रकार से इस सभा का प्रधान किसी दल का सदस्य नहीं है। इसलिये मैंने केवल यह सुझाव रखा है कि प्रधान समस्त भारतीय संघ का प्रधान होगा और प्रत्येक नागरिक उसका समान रूप से आदर तथा सम्मान करेगा और उसकी आज्ञा का पालन करेगा, फिर चाहे निर्वाचन के समय उस व्यक्ति ने उसके पक्ष में मत दिया हो अथवा नहीं।

इस दृष्टि से विचार करते हुये मेरी यह धारणा है कि हमें प्रधान को उस प्राधिकार से सम्पन्न कर देना चाहिये कि वे यह कह सकें कि मैं लोगों का प्रतिनिधान करता हूं। उनके सम्बन्ध में यह कहने से कोई लाभ नहीं है कि प्रधान-मंत्री अथवा सभा में बहुमत के दल और जनता द्वारा चुने गये प्रधान में परस्पर विरोध उत्पन्न हो जायेगा। ऐसे विरोध का उत्पन्न होना आवश्यक नहीं है। प्रधान केवल सद्यस्कृत्यस्थिति में ही प्रकार्य करेगा। उसका पद केवल शोभा के लिए ही नहीं है वरन् वह दूसरे देशों के प्रतिनिधियों की आंखों में देश का प्रतीक तथा प्रतिनिधि भी है। अत: यह बात सारहीन होगी। यदि आप यह कहें कि प्रधान तो प्रधान-मंत्री की प्रतिध्वनिमात्र ही होना चाहिये। अत: मैं चाहता हूं कि प्रधान राज्य का मुखिया हो और जनता के सामूहिक रूप का तथा उसकी प्रभुता का प्रतीक हो। अत: मेरी यह मान्यता है कि प्रधान केन्द्र में के अथवा स्थानीय विधान-मंडलों में के बहुमत के दल की कठपुतली नहीं है वरन् वह जनता का सच्चा प्रतिनिधि है और वह राज्य के मुखिया के रूप में कार्य करने तथा उसका प्रतिनिधान करने के लिए चुना गया हैं। यह तथ्य अकाट्य रूप से व्यक्त कर देता है कि उपरोक्त मतविभेद की कोई संभावना नहीं है। इस सच्चाई को ध्यान में रख कर मैं यह कह सकता हूं कि राज्य के मुखिया में तथा मंत्रिमंडल में पारस्परिक विरोध की सम्भावनाएं सैद्धान्तिक न होकर केवल मामूली कठिनाइयां हैं। जो कि ज़रा सी सद्बुद्धि तथा इस संविधान के सिद्धान्तों के प्रति सच्ची निष्ठा रख कर काम करने से तथा इस संविधान के रचयिताओं के ईमानदारी से कार्य करने से

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

आसानी से सुलझाई जा सकती है। मैं तो यही ठीक समझता हूं कि किसी अप्रत्यक्ष चक्करदार विधि द्वारा प्रधान का निर्वाचन होने के स्थान में यदि प्रौढ़ मत द्वारा प्रधान का निर्वाचन हो तो बहुत अच्छी बात होगी। आपकी संसद् तो किसी समय भी भंग हो सकती है। यह ठीक है कि लोक-सभा की अधिकतम् अवधि चार उस पांच वर्ष की है परन्तु साथ ही यह भी प्रावधान है कि उसको उस अवधि की समाप्ति से पूर्व किसी समय भी विलीन किया जा सकता है। इसके विपरीत प्रधान का चुनाव एक नियत काल के लिये होता है। अत: वह दलबन्दी के झगड़े से बाहर रहेगा, क्षणिक उतार-चढ़ाव अर्थात्, संसद् के भाग्य के उलट-फेर से स्वयं अप्रभावित रहेगा और इस बात की पूरी आशा की जा सकती है कि वह संतुलन रख सकेगा और शासन को इसी मात्रा में स्थायी तथा दृढ़ बना सकेगा जितनी कि दलबन्दी के पारस्परिक विद्वेष के कारण उसमें अन्यथा होगी। अत: मैं इस संशोधन को प्रस्तुत करता हूं और विश्वास करता हूं कि इसके औचित्य पर विचार किया जायेगा न कि केवल औचित्य सम्बन्धी प्रश्न की वक्रोक्तियों पर।

(संशोधन संख्या 1054, 1061 और 1067 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1056, 1058, 1060 और 1068 समानार्थी हैं, और उनको एक साथ लिया जा सकता है।

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार: मुस्लिम): उपाध्यक्ष, श्रीमान मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 43 के खंड (ख) में से 'elected' (निर्वाचित) शब्द निकाल दिया जाये।"

इस अनुच्छेद द्वारा प्रधान के निर्वाचन के लिए हम एक निर्वाचक निकाय बना रहे हैं। यह कहा गया है कि प्रधान का निर्वाचन एक ऐसे निर्वाचन निकाय के सदस्य करेंगे जिसमें (क) संसद् के दोनों आगारों के सदस्य तथा (ख) राज्य के विधान-मण्डलों के निर्वाचित सदस्य होंगे। मैं चाहता हूं कि (ख) में से 'निर्वाचित' शब्द को निकाल दिया जाये। इस शब्द को निकालने के लिये मेरे ये तर्क हैं।

प्रधान के निर्वाचन में क्या हम पूरी तरह से प्रजातन्त्रात्मक विधि का पालन करने का विचार रखते हैं अथवा हम किसी प्रकार की साम्राज्यवादी विचारधारा से प्रेरित हो रहे हैं? यदि हम 'निर्वाचित' शब्द को निकाल दें तो मैं सभा को यह आश्वासन देता हूं कि इस सम्बन्ध में हम और भी अधिक प्रजातन्त्रात्मक विधि का पालन करेंगे क्योंकि दोनों आगारों के सदस्य या तो चुने जाते हैं या नामजद किये जाते हैं, परन्तु जहां तक विधान-मंडल के कार्य का सम्बन्ध है, इन सदस्यों को समान अधिकार तथा विशेषाधिकार होने चाहियें। अत: यह बड़ा अनुचित-सा प्रतीत होता है कि सदस्यों में परस्पर कोई भेद-विभेद किया जाये। चाहे सदस्य निर्वाचित हो या नामज़द जहां तक प्रधान के निर्वाचन के लिये मत देने का सम्बन्ध है, उसे समान अधिकार तथा विशेषाधिकार होना चाहिये। इस प्रकार मेरे विचार से हम अपने कार्यों में प्रजातन्त्रात्मक विधि के अधिक निकट पहुंच जायेंगे। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि जो संशोधन मैंने पेश किया है उस पर यह सभा तथा माननीय प्रस्तावक उचित विचार करेंगे और उसे स्वीकार करेंगे। इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

*__श्री तजम्मुल हुसैन__ (बिहार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखता हूं:

> "कि अनुच्छेद 43 के खण्ड (क) में 'the members' (सदस्य) शब्द के स्थान में 'the elected members' (निर्वाचित सदस्य) शब्द रखे जायें।"

मैं अनुच्छेद 43 को आपको पढ़ कर सुनाता हूं। उसमें दिया हुआ है "प्रधान का निर्वाचन एक ऐसे निर्वाचक निकाय के सदस्य करेंगे जिसमें (क) संसद् के दोनों आगारों के सदस्य तथा (ख) राज्यों के विधान-मण्डलों के निर्वाचित सदस्य होगें।" खण्ड (क) में कहा गया है कि प्रधान का निर्वाचन संसद् के दोनों आगारों के सदस्य करेंगे। उत्तर-आगार में नामज़द सदस्य हैं और अवर-आगार अर्थात् लोक-आगार में केवल निर्वाचित सदस्य होंगे। अत: इस अनुच्छेद से ऐसा प्रतीत होता है कि संसद् के दोनों प्रकार के निर्वाचित और नामज़द सदस्य प्रधान का निर्वाचन करेंगे। खण्ड (ख) में कहा गया है कि प्रधान का निर्वाचन प्रान्तीय

[श्री तजम्मुल हुसैन]

विधान-मण्डलों के निर्वाचित सदस्य करेंगे। मैं नहीं समझ सकता हूं कि प्रान्तीय विधान-मण्डलों के केवल निर्वाचित सदस्य ही प्रधान के निर्वाचन में क्यों भाग लेंगे जब कि केन्द्रीय विधान-मण्डल के दोनों निर्वाचित तथा नामज़द सदस्य प्रधान के निर्वाचन में भाग लेंगे। मुझे तो यह नीति-विरुद्ध लगता है। अनुच्छेद 44 में यह बताया गया है कि सदस्य किस प्रकार मत देंगे। इस अनुच्छेद में अथवा विधान में कहीं और जगह भी ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गई है कि नामज़द सदस्य किस प्रकार से मत देंगे। केवल निर्वाचित सदस्यों के मतदान की ही व्यवस्था की गई है। अत: मैं समझता हूं कि मसौदा-सम्बन्धी कोई त्रुटि है। इसी कारण मैंने यह संशोधन पेश किया है कि अनुच्छेद 43 के खण्ड (क) में 'निर्वाचित' शब्द जोड़ दिया जाये जिससे कि दोनों केन्द्रीय विधान-मण्डल के निर्वाचित सदस्य तथा प्रान्तीय विधान-मण्डलों के निर्वाचित सदस्य प्रधान का निर्वाचन करें, नामज़द सदस्यों का मत नहीं लिया जायेगा और न कोई ऐसी व्यवस्था है कि नामज़द सदस्य किस प्रकार मत देंगे। मेरा संशोधन बहुत साधारण है। मुझे अधिक नहीं कहना है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सभा इसे स्वीकार करेगी और माननीय डॉक्टर अम्बेडकर भी इस संशोधन को स्वीकार करेंगे।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 1063 पर, जो डॉक्टर अम्बेडकर तथा अन्य व्यक्तियों के नाम से है, मत नहीं ले रहा हूं क्योंकि वह संशोधन संख्या 1064 के समान है जिसको अभी पेश किया जा चुका है।

डॉ. अम्बेडकर, क्या आप इसे स्वीकार करते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): जी हां।

***उपाध्यक्ष:** तो मैं उस पर मत नहीं लूंगा।

संशोधन संख्या 1064 पर एक संशोधन, जो श्री गोकुल भाई भट्ट के नाम से है, पेश नहीं किया गया है क्योंकि माननीय सदस्य सभा में उपस्थित नहीं हैं। संशोधन संख्या 1065 और 1066 को पेश करने की मैं आज्ञा नहीं देता हूं क्योंकि वे केवल शाब्दिक हैं।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): मैं संशोधन संख्या 1069 को पेश नहीं करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 43 में निम्न व्याख्या प्रविष्ट की जाये:

'*Explanation.*—In this and the next succeeding article, the expression "the Legislature of a State" means, where the Legislature is bi-cameral, the lower House of the Legislature.' "

(व्याख्या—इस अनुच्छेद में तथा इससे आगे के अनुच्छेद में "राज्य के विधान-मण्डल" पद का अर्थ, जहां कि विधान-मण्डल द्विआगारिक है, वहां विधान-मण्डल के अवर-आगार से है।)

यह वांछनीय है कि यह संशोधन किया जाये, क्योंकि किसी राज्य में दो विधान-मण्डल हो सकते हैं और यदि यह संशोधन नहीं किया जाता है, तो प्रधान के निर्वाचन में उत्तर-आगार के सदस्यों को भी भाग लेने का अधिकार होगा। हमारा यह उद्देश्य नहीं है। हम चाहते हैं कि केवल जनमत द्वारा निर्वाचित सदस्य ही प्रधान के निर्वाचन में भाग लेने के अधिकारी हों। इस आशय से यह संशोधन रखा जाता है।

***उपाध्यक्ष:** मि. मोहम्मद ताहिर इस संशोधन पर अपने संशोधन संख्या 23 को पेश कर सकते हैं।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 1070 द्वारा प्रस्तावित व्याख्या में 'the Lower House of the Legislature' (विधान-मण्डल के अवर-आगार) शब्दों के स्थान में 'the Legislative Assembly of the State' (राज्य की विधान-सभा) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, अपने मित्र डॉ. अम्बेडकर के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित करते हुये मैं इस संशोधन को पेश कर रहा हूं। मेरी सम्मति में 'विधान-मण्डल के

[श्री मोहम्मद ताहिर]

अवर-आगार' शब्दों की अपनी कोई सत्ता नहीं हैं। राज्य के "विधान-मण्डलों" की हमने केवल विधान के इस मसौदे में ही परिभाषा नहीं की है वरन् वह भारतीय सरकार के अधिनियम में भी पाई जाती है। उसमें राज्य के विधान-मण्डलों की व्याख्या या तो विधान-परिषद् के रूप में की गई है या विधानसभा के रूप में की गई है। हमने राज्य के आगारों की एक विशेष रूप में व्याख्या की है अर्थात् विधान के मसौदे के अनुच्छेद 148 में एक को विधान-परिषद् कहा गया है और दूसरी को विधानसभा। अत: मेरा विनम्र निवेदन यह है कि जहां कहीं हमें इन आगारों में से किसी आगार-सम्बन्धी पद का प्रयोग करना हो तो हमें अपने विधान में परिभाषित पदों का ही प्रयोग करना चाहिये अन्य पदों का नहीं।

श्रीमान्, अब हम यह विचार करेंगे कि 'अवर-आगार' पद किस प्रकार प्रचलित हुआ। मेरा विश्वास है कि यह इस आधार पर प्रचलित हुआ कि अब तक विधान-सभा के सदस्यों का चुनाव साधारण जनता द्वारा अर्थात् देश के उस सामान्य जनसमुदाय द्वारा किया जाता था जो 6 आने या 12 आने चौकीदारी तथा अन्य इसी प्रकार के कर देते थे और विधान-परिषद् के सदस्य इससे अधिक योग्य व्यक्तियों द्वारा चुने जाते थे। इस अन्तर से लोगों के मनों में स्वभावत: यह विचार उत्पन्न हो गया कि विधान-सभा अवर-आगार है और विधान-परिषद् उत्तर-आगार है। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने के पश्चात् मैं निवेदन करता हूं कि हमारे मनों में यह अन्तर नहीं बना रहना चाहिये। अत: मेरे विचार से विचारन सभा को अवर-आगार कहना उचित नहीं प्रतीत होता। किसी रूप में भी यह सभा अवर-आगार नहीं कही जा सकती। सदस्यों की संख्या के रूप में सभा-परिषद् से बड़ी हैं। विधान-सभा को राज्यों की विधान-परिषदों से अधिकार भी अधिक हैं। अन्त में मैं यह निवेदन करता हूं कि मैं सर्वप्रथम बात को अपने तर्कों का आधार बनाता हूं कि जब हमने राज्य के आगारों की एक विशेष रूप में परिभाषा कर दी है तो यह उचित रूप से वांछनीय है कि हम उन्हीं पदों का अर्थात् विधान-परिषद् और विधान-सभा का प्रयोग करें अन्य पदों का नहीं।

***उपाध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर अब सामान्य वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री के. हनुमन्थैया** (मैसूर): उपाध्यक्ष, हमने बड़े ध्यान से आदरपूर्वक प्रो. शाह के तर्कों को सुना। वे चाहते हैं कि प्रधान का निर्वाचन प्रौढ़ नागरिकों द्वारा हो। प्रारम्भ में ही एक पारिभाषिक कठिनाई है। यदि प्रधान प्रौढ़ नागरिकों द्वारा निर्वाचित किया जाता है तो प्रत्येक नागरिक को मत देने का अधिकार हो जाता है। निर्वाचक-प्रणाली के अन्तर्गत मतदाताओं की सूची कुछ नियमों के अनुसार बनाई जाती है और कुछ लोग जो पागल हैं, जो दोष-प्रमाणित हैं और जिन लोगों ने अपनी सनदें खो दी हैं उनको मत देने का अधिकार नहीं है। पर इस 'प्रौढ़ नागरिक' पद में उन नागरिकों का भी समावेश हो जाता है जिनको सामान्य निर्वाचन में मत देने का अधिकार नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि प्रो. शाह के संशोधन में दिये गये शब्दों को स्वीकार कर लिया जाता है तो प्रधान के निर्वाचन में वे लोग भी मत दे सकेंगे जो सामान्य निर्वाचनों में मत देने के लिये निर्योग्य कर दिये गये हैं।

दूसरी बात यह है कि सभा के समक्ष जो यह विधान है उसमें शासन-व्यवस्था की परिषदात्मक प्रणाली को स्वीकार कर लिया है। परिषदात्मक प्रणाली में उत्तरदायी शासन की कल्पना पहले से ही विद्यमान है। शासन का संचालन प्रत्यक्ष रूप में लोक द्वारा नहीं किया जाता है परन्तु उचित रूप से निर्वाचित लोक-सदस्यों द्वारा किया जाता है, और इस सिद्धान्त के अनुरूप विधान-निर्माताओं ने प्रधान के निर्वाचन को प्रत्यक्ष निर्वाचन न बनाकर, जैसा कि प्रोफेसर के. टी. शाह कहते हैं, बल्कि उसे अप्रत्यक्ष निर्वाचन बना कर बुद्धिमानी की है।

तीसरी बात यह है कि प्रो. शाह चाहते हैं कि प्रधान किसी पार्टी में न हो। जिस कार्य-प्रणाली को प्रो. शाह ने रखा है यदि उसे मान लिया जाये तो वह अवश्य ही किसी दल का अभ्यर्थी हो जायेगा। प्रधान पद के लिये अभ्यर्थी को जब कि देश के इस सिरे से उस सिरे तक निर्वाचन-प्रचार के लिये जाना होगा तो वह किसी न किसी दल द्वारा मनोनीत किया जायेगा और निर्वाचन-प्रचार से स्वभावत: दलों में परस्पर वैमनस्य उत्पन्न होगा और इस प्रकार प्रधान पद के

[श्री के. हनुमन्थैया]

लिये जिस व्यक्ति का निर्वाचन होगा वह अपने दल को कभी न भूल सकेगा और उस प्रयोजन की पूर्ति नहीं करेगा जो कि प्रो. शाह की दृष्टि में है। इसके विपरीत यदि प्रधान विधान-मण्डलों तथा संसद् के सदस्यों द्वारा चुना जाता है तो यह सम्भव है कि वह किसी दल का आदमी न बने जिस प्रकार से कि सभा अथवा संसद् का अध्यक्ष किसी दल का आदमी नहीं होता है। अत: इस प्रयोजन की पूर्ति, कि प्रधान किसी दल का व्यक्ति न हो जो प्रोफेसर शाह के मन में है अच्छे प्रकार से तभी हो सकती है, जब कि विधान-मण्डल द्वारा उसका निर्वाचन हो न कि तब जब कि लोक-द्वारा उसका प्रत्यक्ष निर्वाचन हो।

तत्पश्चात्, श्रीमान्, प्रो. शाह चाहते हैं कि प्रधान वास्तविक रूप में सम्पूर्ण सत्ताधारी हो। विधान-निर्माताओं का यह उद्देश्य नहीं है। इस विधान में प्रधान को राज्याधिकार दिये गये हैं न कि शासनाधिकार। यहां प्रधान न्यूनाधिक रूप में इंग्लैण्ड के राजा के समान है। यदि हम प्रधान को वास्तविक अधिकार दे दें और उसको वास्तविक अधिशासी-अध्यक्ष बना दें तो मसौदा-समिति द्वारा जो ढांचा खड़ा किया गया है उसका पूरा रूप ही बदल जायेगा। यह संशोधन इस विधान के मसौदे में ठीक नहीं बैठता है अत: इसको अस्वीकार कर दिया जाये।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र प्रो. के. टी. शाह ने एक बड़ा महत्त्वपूर्ण वादहेतु प्रस्तुत किया है अर्थात् संयुक्त राज्य अमरीका की वर्तमान प्रचलित प्रणाली को यहां पर जारी करना। श्रीमान्, आजकल देशों में प्रजातन्त्र की दो विभिन्न प्रणालियां काम में लाई जा रही हैं। एक प्रणाली इस समय संयुक्त राष्ट्र अमरीका में प्रचलित है और दूसरी उत्तरदायी मंत्रिमंडल की शासन प्रणाली है। हमने एक संघ-समिति नियुक्त की थी। उचित विचार-विमर्श के पश्चात् ऊंच-नीच सोचकर, विभिन्न देशों में विधानों के अनुसार काम करने से जिन कठिनाइयों, लाभों का पता चला है, उनको ध्यान में रख कर इस समिति ने एक उत्तरदायित्वपूर्ण प्रणाली की योजना बनाई है जो उत्तरदायित्वपूर्ण मंत्रिमंडल प्रणाली के नाम से विख्यात हैं। श्रीमान्, कमेटी की उस रिपोर्ट को इस

सभा के माननीय सदस्यों ने स्वीकार कर लिया था। यह प्रो. शाह की इच्छा पर निर्भर था कि वे उस समय अपना प्रस्ताव पेश करते और इस विषय पर कुछ निर्णय कराते। इस सभा के माननीय सदस्यों ने जो निर्णय किये थे उन्हीं को ठीक रूप में कर देने भर का काम मसौदा समिति ने किया है। अब इस बात के लिए समय नहीं रहा है कि हम अपने विधान के स्वरूप में कोई मौलिक परिवर्तन करें। यदि हम इसके आधारभूत सिद्धान्तों में कोई परिवर्तन इस समय करेंगे तो विधान के अनेकों अनुच्छेदों में परिवर्तन करना आवश्यक हो जायेगा। परिणाम यह होगा कि संविधान का सारा आधार ही परिवर्तित हो जायेगा। अत: अपने माननीय मित्र से मेरा निवेदन है कि वे अपने संशोधन पर ज़ोर न दें। श्रीमान्, अपने तर्क की पुष्टि में उन्होंने हमसे इस बात का आग्रह किया है कि हम यह आदर्श रखें कि प्रधान का पद ऐसा हो कि वह किसी दल का सदस्य न रहे। मैं उनसे यही बात कहना चाहता हूं कि उन्होंने एक असम्भव कार्य को हाथ में लिया है। श्रीमान्, दलबन्दी तो प्रजातंत्र का प्राण है। अत: आप इस संसार में कोई ऐसा प्रधान किस प्रकार बना सकेंगे जो किसी दल से सम्बन्धित न हो? संयुक्त राष्ट्र अमरीका का प्रधान भी किसी दल का व्यक्ति होता है। जिन्होंने अमरीका के विधान के काम करने के ढंग पर दृष्टि डाली है और विशेषकर गत प्रधान के निर्वाचन पर विशेष ध्यान दिया है वे इस निर्णय पर अवश्य पहुंचे होंगे कि अमरीका में दलबन्दी ही का बोलबाला है। यदि प्रो. शाह यह विचार रखते हैं कि प्रधान किसी दल का व्यक्ति न हो तब तो उनको प्रजातन्त्र के अतिरिक्त किसी अन्य प्रणाली की बात सोचनी होगी। श्रीमान्, तुर्की में एक प्रकार की दल-प्रभाव-शून्य सरकार है परन्तु दलबन्दी पर आश्रित सरकार को श्रेय देकर उसने अब उस प्रणाली का परित्याग कर दिया है और निर्वाचनों की प्रथा अपने यहां चला दी है। यदि आप किसी दल से असम्बन्धित प्रधान के बारे में सोचते हैं तब तो आपको एक तानाशाही राज्य की कल्पना करनी होगी। ऐसा हो नहीं सकता। अत: उनके इस तर्क का, कि प्रधान किसी दल का व्यक्ति नहीं होना चाहिये और न है, मुझ पर किंचित्-मात्र भी प्रभाव नहीं होता।

श्रीमान्, यह पूरा प्रश्न एक ही बात पर निर्भर है और वह बात यह है कि प्रशासन-कार्य में जनता के प्रति उत्तरदायी कौन हो। जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन

[श्री विश्वनाथ दास]

में प्रधान के चुने जाने से संसद् के क्षेत्र से बाहर प्रधान की स्वतन्त्र सत्ता हो जाती है। ऐसा कभी-कभी हो जाता है और माननीय सदस्यों ने देखा भी होगा कि संसद् और प्रधान में विरोध पैदा हो जाता है और राजतन्त्र का शान्तिपूर्वक कार्य करना कठिन हो जाता है। इन अन्तरों से यह भी हो सकता है कि महत्त्वपूर्ण योजनायें भी इस कारण उलट-पुलट हो जाती हैं। संसदात्मक प्रणाली में भी अपनी कुछ कठिनाइयां हैं। अनेकों देशों में संसदात्मक प्रणाली प्रचलित है। फ्रांस में मंत्रिमण्डल प्रणाली की शासन-व्यवस्था में कुछ कठिनाई अनुभव की गई इसके फलस्वरूप उनके विधान में कुछ परिवर्तन हुये और अब वे आशा करते हैं कि अब से उपरान्त फ्रांस में अधिशासी-मण्डल पहले की अपेक्षा अधिक स्थायी होगा। अत: मेरे माननीय मित्र प्रो. शाह का यह कर्त्तव्य है कि वे उन तरीकों की खोज करें जिनके द्वारा संसदात्मक प्रणाली की शासन-व्यवस्था, मंत्रिमंडल प्रणाली की शासन व्यवस्था उचित रूप में भली प्रकार स्थायी होकर कार्य कर सके। मेरा उनसे यह विनम्र निवेदन है कि अब विधान के बुनियादी ढांचे में किसी प्रकार का परिवर्तन करना सम्भव नहीं है। हम बहुत दिनों से विधान बना रहे हैं और देश उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। मैं उनसे तथा इस सभा के अन्य माननीय सदस्यों से निवेदन करूंगा कि वे इस बात का ध्यान रखें कि हम इस विधान पर वाद-विवाद शीघ्र समाप्त करें और उसे जितना शीघ्र हो सके उतना शीघ्र स्वीकार करें। संघ-समिति ने इस विषय पर उचित ध्यान दिया है। अत: मेरा निवेदन है कि इस अनुच्छेद को स्वीकार किया जाय और संशोधन को अस्वीकार किया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर :** श्री उपाध्यक्ष, श्रीमान्, जो संशोधन पेश किये गये हैं उनमें से मैं केवल संशोधन संख्या 1064 को स्वीकार करता हूं। मुझे खेद है कि मैं अन्य संशोधनों को स्वीकार नहीं कर सकता हूं।

श्रीमान्, इस अनुच्छेद पर सामान्य वाद-विवाद की ओर ध्यान देने पर सबसे महत्त्वपूर्ण संशोधन प्रो. शाह का है जिसमें यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि प्रधान का निर्वाचन वयस्क-मताधिकार द्वारा हो। मेरे मत से इस विषय पर तीन

दृष्टिकोणों से विचार करने की आवश्यकता है। सर्वप्रथम इस पर निर्वाचक-समूह के परिमाण के दृष्टिकोण से विचार करना चाहिये। यदि हम प्रो. शाह के सुझाव को मान लें तो प्रधान के निर्वाचन में जितने मतदाता भाग लेंगे उनकी संख्या का अनुमान मैं सभा के समक्ष रख दूं तो ठीक होगा।

अब तक जो अंक प्राप्त हुये हैं उनके अनुसार गवर्नर के प्रान्तों की कुल जनसंख्या 22,81,63,637 है। देशी राज्यों की जनसंख्या 8,88,08,434 है। दोनों को मिला कर भारत राज्य-क्षेत्र की जनसंख्या 3170 लाख हुई। मान लीजिये कि वयस्क-मताधिकार के आधार पर जो जनसंख्या प्रधान के निर्वाचन में भाग लेगी वह कुल जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत होगी तो निर्वाचक-समूह 158.5 लाख का होगा। अमरीका के प्रधान के निर्वाचन में जितने लोग मत देते हैं उनकी संख्या भी मैं आपके सामने रख देता हूं जैसा कि मैं समझता हूं अमरीका का समस्त निर्वाचक-समूह 750 लाख का है—सम्भव है इसमें कुछ त्रुटि हो, उसको ठीक किया जा सकता है। मैं समझता हूं कि यदि माननीय सदस्य उस संख्या को याद रखेंगे जो मैंने अभी बताई है अर्थात् 158.5 लाख, तो वे एक ऐसे निर्वाचन की असम्भावना को समझ जायेंगे जिसमें 158.5 लाख लोग भाग लेंगे। अत: मेरे विचार से निर्वाचक-समूह का परिमाण हमें बाध्य करता है कि प्रधान के निर्वाचन के विषय में हम प्रौढ़-मताधिकार को ग्रहण न करें।

प्रौढ़-मताधिकार के इस प्रश्न पर दूसरी बात, जिसे ध्यान में रखना है, वह प्रशासन-तन्त्र है। क्या इस देश के लिये यह सम्भव है कि वह इतने कार्यकर्त्ता दे सके जिनकी आवश्यकता विभिन्न निर्वाचक स्थानों पर होगी जहां 158.5 लाख लोग आकर मत देंगे? मुझे यह विश्वास है कि निर्वाचन के लिये बहुत से उम्मीदवार खड़े नहीं होंगे और वे ग़ैर सरकारी लोगों को चुनाव में काम नहीं करने देना चाहेंगे क्योंकि गैर-सरकारी लोग राज्य के आयन्त्रण में नहीं होंगे और वे भ्रष्टाचार, उत्कोच, चालाकियों तथा अन्य अवांछनीय बातों से प्रभावित हो सकते हैं। अत: इसके प्रबन्ध के लिये सरकारी शासन व्यवस्था से आदमी लेने पड़ेंगे। क्या भारतीय सरकार अथवा देशी राज्यों की सरकार इतने कार्यकर्त्ताओं को देने में समर्थ हो सकेगी, जो भाग लेने वाले 158.5 लाख मतदाताओं का निर्वाचन में प्रबन्ध कर सकें? यह भी मुझे सर्वथा असम्भव-सा प्रतीत होता है। इन दो विचारों के अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण विचार जो वयस्क-मताधिकार के विरोध में निर्णय

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

करने के लिये मसौदा-समिति तथा संघ-समिति को गंभीर जंचा, वह प्रधान की विधान में स्थिति थी। यदि प्रधान की वही स्थिति होती जो कि संयुक्त राज्य अमरीका के प्रधान की है, जिसे संयुक्त राज्य के समस्त अधिशासी कार्यभार सौंपे जाते हैं, तब तो मैं प्रत्यक्ष निर्वाचन के तर्क को इस सिद्धान्त के आधार पर समझ सकता था कि जहां किसी व्यक्ति पर अधिकारों का उतना ही गुरुतर भार सौंपा जाता है जितना कि संयुक्त राज्य के प्रधान पर है, तो यह स्वाभाविक ही है कि उस व्यक्ति का निर्वाचन प्रत्यक्ष लोकमत द्वारा हो। पर भारतीय संघ के प्रधान की क्या स्थिति है? यदि प्रो. शाह विधान के अन्य प्रावधानों का परीक्षण करें तो उन्हें पता चलेगा कि वह केवल एक नाममात्र का मुखिया है। उसकी स्थिति संयुक्त राष्ट्र के प्रधान जैसी नहीं है। हमारे भारतीय विधान के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र के प्रधान की तुलना यदि किसी उच्च प्राधिकारी से की जा सकती है तो वह प्रधान-मंत्री से की जा सकती है न कि संघ के प्रधान से। जहां तक प्रधान-मंत्री के निर्वाचन का सम्बन्ध है, विधान में निश्चित रूप से दिया गया है कि उसका निर्वाचन जनता द्वारा वयस्क-मताधिकार के आधार पर होगा। अतः इस बात का ध्यान रखते हुये, जिसका कि मैंने उल्लेख किया है कि वास्तव में प्रधान को कोई अधिशासी अधिकार नहीं है, इस बात के पक्ष में कि प्रधान का निर्वाचन वयस्क-मताधिकार के आधार पर हो, जो कुछ भी अन्तिम तर्क उपस्थित किया जा सकता है, वह मेरी सम्मति से सारहीन सिद्ध हो जाता है। अतः मैं निवेदन करता हूं कि निर्वाचक-समूह के परिमाण पर विचार करते हुये, उस व्यवस्था-सम्बन्धी कमी पर विचार करते हुये जिसकी आवश्यकता इतने बड़े निर्वाचन के लिये होगी और इस बात पर विचार करते हुये कि प्रधान को अधिशासन सम्बन्धी ऐसा कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं है जो कि संयुक्त राष्ट्र के प्रधान को है, वयस्क-मताधिकार के विषय को लेना तथा उसके आधार पर प्रधान के निर्वाचन की व्यवस्था करना अनावश्यक है।

मेरे विचार से विधान के मसौदे में हमने जो सुझाव रखे हैं, इस विषय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये यथेष्ट हैं। हमने यह व्यवस्था की है कि प्रधान का निर्वाचन राज्य के विधान-मण्डलों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा होगा जिनका स्वयं वयस्क-मताधिकार द्वारा निर्वाचन किया जाता है। संसद् के दोनों आगारों द्वारा भी उसका निर्वाचन होगा। संसद के अवर-आगार का भी प्रत्यक्ष निर्वाचन वयस्क-मताधिकार के आधार पर जनता द्वारा किया जाता है उत्तर-आगार का

निर्वाचन राज्य के विधान-मण्डलों के अवर-आगारों द्वारा किया जाता है जिनका निर्वाचन भी वयस्क मताधिकार द्वारा होता है। अत: इन प्रावधानों पर विचार करते हुये मैं समझता हूं कि प्रो. शाह के संशोधन के लिये स्थान नहीं है अत: मैं संशोधन का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं एक-एक करके संशाधनों पर मत लूंगा। संशोधन संख्या 1051, जो श्री दामोदरस्वरूप सेठ के नाम से है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 43 और 44 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'The President shall be elected by means of the single transferable vote by an electoral college composed of the members of Parliament and an equal number of persons elected by the legislatures of the States on population basis under the system of single transferable vote.' "

(प्रधान का निर्वाचन एकल संक्राम्य मत के आधार पर एक निर्वाचन-निकाय द्वारा होगा जिसमें संसद् के सदस्य और उनके बराबर संख्या में एकल संक्राम्य मत-पद्धति के अनुसार जनसंख्या के आधार पर राज्यों के विधान-मण्डलों द्वारा चुने गये सदस्य होंगे।)

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1053, जो प्रो. के. टी. शाह के नाम से है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 43 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'43. The President shall be elected by the adult citizen of India, voting by secret ballot, in each constituent part of the Union.'

(43. संघ के प्रत्येक अंगभूत भाग में भारत के प्रौढ़ नागरिकों द्वारा गूढ़-शलाका मतप्रणाली के अनुसार प्रधान का निर्वाचन होगा।)"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1057, जो मि. करीमुद्दीन के नाम से है।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 43 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

[उपाध्यक्ष]

'43. The President shall be elected on the basis of adult sufferage.'

(प्रधान का निर्वाचन प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर होगा।)

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1068, जो मि. मोहम्मद ताहिर के नाम से है। प्रस्ताव यह है:

"कि 43 अनुच्छेद के खण्ड (ख) में से 'elected' (निर्वाचित) शब्द निकाल दिया जाये।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1064, जो मि. तजम्मुल हुसैन के नाम से है। प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 43 के खण्ड (क) 'the members' (सदस्य) शब्द के स्थान में 'the elected members' (निर्वाचित सदस्य) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1070, जो डॉ. अम्बेडकर के नाम से है। प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 43 में निम्न व्याख्या प्रविष्ट की जाये:

'*Explanation*.—In this and the next succeeding article, the expression "the Legislature of a State" means where the Legislature is bi-cameral, the Lower House of the Legislature.' "

(*व्याख्या*–इस अनुच्छेद में तथा इससे आगे के अनुच्छेद में "राज्य के विधान-मण्डल" पद का अर्थ, जहां कि विधान-मण्डल द्वि-आगारिक है वहां विधान-मण्डल के अवर-आगार से है।)

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) का संशोधन 23 जो मि. मोहम्मद ताहिर के नाम से है।

प्रस्ताव यह है:

" कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 1070 द्वारा प्रस्तावित व्याख्या में 'the Lower House of the Legislature' (विधान-मण्डल के अवर-आगार) शब्दों के स्थान में 'the Legislative Assembly of the State' (राज्य की विधान-सभा) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 43 विधान का अंग बने।"

*प्रस्ताव स्वीकार किया गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 43 विधान में प्रविष्ट किया गया।*

---

## अनुच्छेद 15

***उपाध्यक्ष:** सभा की अनुमति से मैं एक स्थगित अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 15 को लेना चाहता हूं। इस अनुच्छेद पर गत 6 दिसम्बर को विचार किया गया था और सभा की कार्यवाहियों की प्रतियों से, जो मेरे समक्ष हैं, यह विदित होता है कि सामान्य वाद-विवाद समाप्त हो चुका था और मैंने डॉ. अम्बेडकर को उत्तर देने के लिये आमन्त्रित किया था। उस समय यह विचार रखा गया था कि किसी समझौते पर पहुंचने का प्रयत्न किया जाये जिससे कि जिन लोगों ने कुछ संशोधन पेश किये हैं उनको सन्तोष हो। वर्तमान परिस्थिति से मैं परिचित नहीं हूं परन्तु अब हम और अधिक नहीं ठहर सकते। डॉ. अम्बेडकर, क्या आप इस स्थिति को स्पष्ट करेंगे? यदि कोई समझौता नहीं हुआ है तो मैं आपसे उत्तर देने के लिये निवेदन करूंगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष, मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि अनुच्छेद 15 के सम्बन्ध में और मेरे मित्र भार्गव द्वारा "विधि-अनुसार-प्रणाली" के स्थान में "उचित रीति" शब्द रखने वाले संशोधन के सम्बन्ध में मैं कुछ कठिन स्थिति में हूं।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

जिस व्यक्ति ने पिछले वाद-विवाद को सुना है उसके लिये यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि इस विषय पर प्रत्यक्षत: दो दृष्टिकोण हैं। एक दृष्टिकोण यह है कि इस अनुच्छेद में "विधि की उचित रीति" पदावली होनी चाहिए, अन्यथा अनुच्छेद निषेधात्मक हो जायेगा। दूसरा दृष्टिकोण यह है कि वर्तमान पदावली इस प्रयोजन हेतु पर्याप्त है। मैं इस बात को स्पष्ट किये देता हूं कि "उचित रीति" पदावली का ठीक अर्थ क्या है।

'समुचित रीति' पद को रखने के प्रश्न का सम्बन्ध इस प्रश्न से है कि विधान-मण्डल और न्यायाधीश में पारस्परिक सम्बन्ध क्या हो। संघीय संविधान में न्यायाधीश-वर्ग को इस बात का निर्णय करने का सदैव अधिकार होता है कि विधान-मंडल द्वारा पारित कोई विशेष कानून उसके उन अधिकारों के अन्तर्गत है अथवा परे जो संविधान द्वारा किसी विशेष विधान-मंडल को कानून बनाने के लिये दिए गये हैं यदि किसी विशेष विधान-मण्डल द्वारा निर्मित कानून उन शक्ति प्राधिकारों का उल्लंघन करता है जो संविधान द्वारा किसी विशेष विधान-मंडल को कानून बनाने के लिए दिये गए हैं तो वह कानून अधिकारों से परे हो जायेगा और अमान्य हो जायेगा। यह एक सामान्य बात है जो सब संघीय विधानों में पाई जाती है। संघीय विधान का प्रत्येक कानून चाहे वह केन्द्रीय संसद् द्वारा बनाया गया हो अथवा राज्य विधान-मण्डल द्वारा, कानून बनाने वाले विधान-मंडल के प्राधिकारों के दृष्टिकोण से सदैव न्यायाधीश-वर्ग के परीक्षण के आधीन है। मेरे मत से "उचित रीति" वाला खंड न्यायाधीश-वर्ग को विधान-मण्डल द्वारा निर्मित कानून में एक अन्य आधार पर आपत्ति उठाने का अधिकार प्रदान करता है। वह आधार यह होगा कि वह कानून व्यक्ति के अधिकारों से सम्बन्धित कतिपय मूल सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है। दूसरे शब्दों में केवल इसी आधार पर ही कि वह कानून विधान-मण्डल के प्राधिकार का उल्लंघन करता है, न्यायाधीश-वर्ग को उस पर आपत्ति करने का अधिकार न होगा वरन् कानून बनाने वाले विधान-मण्डल के अधिकारों से सम्बद्ध आपत्ति के अतिरिक्त इस आधार पर भी आपत्ति करने का अधिकार होगा कि कानून अच्छा है या नहीं। जहां तक उसका विधान-मंडल के प्राधिकार से सम्बन्ध है, वह कानून पूर्णतया कल्याणकर तथा मान्य भले ही हो, पर यह हो सकता है कि वह अच्छा कानून न हो अर्थात् वह कुछ मूल सिद्धान्तों का उल्लंघन करता हो। ऐसी अवस्था में न्यायाधीश-वर्ग को उस कानून के अमान्य घोषित करने का अतिरिक्त

अधिकार होगा। अत: इस सम्बन्ध में हमारे विचार के लिए जो प्रश्न पैदा होता है वह यह है। हमने पहले ही निश्चयरूपेण यह अधिकार न्यायाधीश-वर्ग को दे दिया है कि वह इस बात की परीक्षा करे कि विभिन्न विधान-मण्डलों द्वारा निर्मित विधान उनको दी गई शक्तियों के अनुकूल है या नहीं। "उचित रीति" पद के रखने से यह प्रश्न और उठेगा कि आया न्यायाधीश-वर्ग को यह और भी अधिकार दिया जाये कि वह इस आधार पर भी आपत्ति कर सके कि राज्य द्वारा निर्मित कानून कतिपय मूल सिद्धान्तों का उल्लंघन करता है।

इस विषय पर दो मत हैं। एक मत यह है कि विधान-मण्डल पर यह विश्वास किया जाये कि वह ऐसा कोई कानून नहीं बनायेगा जो उन मूलाधिकारों का उल्लंघन करता हो और जो प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होता हो। अत: 'उचित रीति' पद के रखने से कोई संकट उत्पन्न नहीं हो सकता। दूसरा मत यह है कि विधान-मंडल पर विश्वास नहीं किया जा सकता। विधान-मण्डल गलती कर सकता है; उस पर उत्तेजना, दलबन्दी और दल के विचारों का प्रभाव पड़ सकता है और विधान-मण्डल ऐसा कानून बना सकता है जो उन मूल सिद्धान्तों का खंडन करता हो, जो किसी नागरिक के व्यक्तिगत अधिकारों के कवच सम होते हैं। अत: हम दो कठिन स्थितियों के बीच में आ गये हैं। एक यह है कि विधान-मंडल के निर्णय पर विचार करने का अधिकार न्यायाधीश-वर्ग को हो और वह इस आधार पर विधान-मंडल द्वारा निर्मित कानून पर आपत्ति कर सके कि मूल सिद्धान्तों के अनुकूल न होने से यह कल्याणकारी कानून नहीं है।

क्या यह वांछनीय सिद्धान्त है? दूसरी स्थिति यह है कि विधान-मंडल पर यह विश्वास किया जाये कि वह खराब कानून नहीं बनायेगा। किसी भी निश्चित परिणाम पर पहुंचना बहुत कठिन है। दोनों ओर संकट है। मैं स्वयं दलबन्दी से परिपूर्ण विधान-मंडल द्वारा इस प्रकार के कानून बनाने की सम्भावना को पूर्णतया अस्वीकार नहीं कर सकता हूं जो उन सिद्धान्तों का खण्डन तथा उल्लंघन करे, जिनको हम उन कतिपय मूल सिद्धान्तों के रूप में समझते हैं, जो व्यक्ति के जीवन और उसकी स्वतन्त्रता पर प्रभाव डालने वाले हैं। इसके साथ ही साथ मैं यह भी नहीं समझ पाता हूं कि किस प्रकार पांच या छ: सज्जनगणों पर यह विश्वास किया जाये कि वे संघीय अथवा सर्वोच्च न्यायालय में बैठ कर विधान-मंडल द्वारा निर्मित कानूनों की परीक्षा पर अपने-अपने अन्त:करण से

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

अथवा ईर्ष्या से अथवा पक्षपात से यह निर्णय करें कि कौन कानून भला है और कौन बुरा। कदाचित यह एक ऐसी स्थिति है कि इधर गिरो तो खाई और उधर गिरो तो कुआं; अत: मैं कुछ भी नहीं कहूंगा। इसे मैं सभा पर छोड़ता हूं और वह जैसा चाहे वैसा निर्णय करे।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा। संशोधन संख्या 523 ।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 15 में 'No person shall be deprived of his life or personal liberty except according to procedure established by law' (किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वातंत्र्य से विधि द्वारा नियत कार्य-प्रणाली को छोड़ कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा) शब्दों के स्थान में 'No person shall be deprived of his life or liberty without due process of law' (विधि की उचित रीति के बिना किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा स्वतन्त्रता से वंचित न किया जायेगा) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 15 में 'except according to procedure established by law' (विधि द्वारा नियत कार्य-प्रणाली को छोड़ कर अन्य प्रकार) शब्दों के स्थान में 'due process of law' (विधि की उचित रीति) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 528 ।

***श्री एस.वी. कृष्णामूर्ति राव** (मैसूर): मैं उस पर आग्रह नहीं करता हूं।

(परिषद् की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 530 ।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 15 में 'procedure established by law'(विधि द्वारा नियत कार्यप्रणाली) शब्दों के स्थान में 'due process of law' (विधि की उचित रीति) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 526 ।

"कि अनुच्छेद 15 में 'except according to procedure established by law' (विधि द्वारा नियत कार्यप्रणाली को छोड़कर अन्य प्रकार) शब्दों के स्थान में 'save in accordance with law' (सिवाय विधि अनुसार) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 527 ।

"कि अनुच्छेद 15 में 'except according to procedure established by law' (विधि द्वारा नियत कार्यप्रणाली को छोड़ कर) शब्दों के स्थान में 'excpet in accordance with law' (विधि-अनुकूल प्रणाली को छोड़ कर) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** मैं अनुच्छेद पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 15 विधान का अंग बने।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

*अनुच्छेद 15 विधान में प्रविष्ट किया गया।*

---

## अनुच्छेद 44

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 44 को लेंगे।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 44 विधान का अंग बने।"

[उपाध्यक्ष]

मैं एक-एक करके संशोधनों को उठाऊंगा।

संशोधन संख्या 1071 निषेधात्मक रूप का है, इस कारण उसे पेश करने की आज्ञा नहीं दी जाती है।

(संशोधन संख्या 1072 और 1073 पेश नहीं किये गये।)

शाब्दिक होने के कारण संशोधन संख्या 1074 को पेश करने की आज्ञा नहीं दी जाती है।

संशोधन संख्या 1075—डॉ. अम्बेडकर!

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 44 के खण्ड (2) के उपखण्ड (ग) में 'such members' (इन सदस्यों) शब्दों के स्थान में 'the elected members of both Houses of Parliament' (संसद् के दोनों आगारों के निर्वाचित सदस्यों) शब्द रखे जायें।"

इस संशोधन के पक्ष में तर्क उपस्थित करने के पूर्व मैं आपकी अनुमति से इस अनुच्छेद के खण्ड (2) को एक मिनट के लिये फिर से लेना और इस खण्ड के उपखण्ड (क) और (ख) में जो योजना नियत की गई है उसकी व्याख्या करना चाहता हूं। माननीय सदस्यों ने यह देखा होगा कि प्रधान प्रत्येक राज्य-विधान-मण्डल के निर्वाचित सदस्यों तथा संसद् के दोनों आगारों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा निर्वाचित किया जायेगा। प्रधान के निर्वाचन के लिये ये दोनों मिलकर एक निर्वाचक-निकाय बनायेंगे। अनुच्छेद 44 के उपखण्ड (1) में कहा गया है कि जहां तक व्यवहार्य हो, प्रधान के निर्वाचन में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधान की मापश्रेणी में एकरूपता होगी। निर्वाचक-निकाय के प्रत्येक सदस्य को एक मतदान का अधिकार सौंप कर यह एकरूपता सरल विधि से की जा सकती थी। परन्तु विधान-मण्डल के सदस्यों और उनके तथा जनसंख्या के अनुपात में असमानता होने के कारण, जो कि विभिन्न राज्यों में वर्तमान है, ऐसा नहीं हो सकता। प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 149 (3) एक लाख जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि की मापश्रेणी नियत

करता है। भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के लिये ऐसी कोई मापश्रेणी निर्धारित नहीं की गई है। एक राज्य में प्रत्येक 10,000 की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि हो सकता है। दूसरे राज्य में प्रत्येक 20,000 की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि हो सकता है। इस स्थिति में राज्य-विधान-मण्डलों के सदस्यों द्वारा प्रधान के निर्वाचन में दिये हुए मतों का मूल्य एक व्यक्ति को एक मत का अधिकार देने वाले साधारण नियम द्वारा नहीं मापा जा सकता है। अत: समस्या यह है कि उन सदस्यों द्वारा दिये हुये मतों के मूल्य में एकरूपता किस प्रकार लाई जाये जो समान निर्वाचक इकाई का प्रतिनिधान नहीं करते हैं। राज्य-विधान-मण्डलों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा दिये गये मत का मूल्यांकन करने के लिये जो रीति स्वीकार की गई है वह यह है कि राज्य की जनसंख्या में उस राज्य के विधान-मण्डल के निर्वाचित सदस्यों की समस्त संख्या का भाग दिया जाये और जो भागफल आये उसमें 1000 का भाग दिया जाये और यदि शेष 500 से कम नहीं है तो भागफल में 1 बढ़ा दिया जाये। खण्ड (2) के (ख) और (ग) उपखण्डों में यही दिया गया है।

अब मैं उप-खण्ड (ग) पर आता हूं जिसको मैंने पेश किया है। संसद् के सदस्यों द्वारा दिये गये मत के सम्बन्ध में भी हमारे सामने वही समस्या आ जाती है अर्थात् निर्वाचक इकाइयों में असमानता और इसके फलस्वरूप उन सदस्यों द्वारा दिये गये मत की मान में असमानता। यह असमानता उन्हीं कारणों द्वारा उत्पन्न होती है। सर्वप्रथम राज्य-परिषद् में जिसका निर्वाचन राज्य-विधान-मण्डल द्वारा होता है वही असमानता है जो भाग 1 के राज्यों और भाग 3 के राज्यों में वर्तमान है। दूसरी बात यह है कि संसद् के सदस्यों के निर्वाचन में भी स्थानों और जनसंख्या के अनुपात में वही असमानता है जो भाग 1 और 3 के राज्यों में है

संसद् के सदस्यों दिये गये मत में एकरूपता लाने की दो रीतियां हैं। एक यह है कि समस्त राज्य-विधान-मण्डलों के सदस्यों द्वारा जितने भी मत दिये जा सकते हैं उनकी समस्त संख्या में सब राज्य-विधान-मण्डलों के सदस्यों की संख्या का भाग दिया जाये और जितना भागफल आये उतने मत देने का अधिकार प्रत्येक सदस्य को हो। दूसरी यह है कि समस्त राज्य के विधान-मण्डलों के

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

सदस्यों द्वारा जितने भी मत दिये जा सकते हैं उनकी समस्त संख्या में संसद् के दोनों आगारों के निर्वाचित सदस्यों की समस्त संख्या का भाग दिया जाये। पहली रीति उपखण्ड (ग) में, जिस रूप में कि वह अब है, निर्धारित की गई है। दूसरी रीति उपखण्ड (ग) पर जो मैंने संशोधन पेश किया है उसमें निहित है। दोनों रीतियों में अन्तर यह है। पहली रीति में प्रधान के निर्वाचन में भाग लेने वाले निर्वाचक निकाय के समस्त सदस्यों के मतों का मूल्यांकन समान रूप में किया गया है। दूसरी रीति में मतदान के विषय में संसद् के सदस्यों को उतनी ही समशक्ति दी गई है जितनी कि राज्य-विधान-मण्डल के सदस्यों को होगी। यह अनुभव किया गया। है कि वर्तमान रूप में उपखण्ड (ग) संसद् के सदस्यों को जितनी शक्ति प्रदान करता है उससे अधिक उनको होनी चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** शाब्दिक होने के कारण संशोधन सं. 1076 को पेश करने की आज्ञा नहीं दी जाती है।

संशोधन संख्या 1077—श्री महावीर त्यागी!

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, 1077 के बजाय मुझे 1078 पेश करने की अनुमति दी जाये।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1077 पर मत नहीं लिया जायेगा। मैं संशोधन संख्या 1078 को पेश करने की आज्ञा देता हूं।

* **श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 44 के खण्ड (3) के स्थान में निम्न खण्ड रखा जाये:

'(3) The election of the President shall be held by secret ballot and in accordance with the system of majority preferential voting by the single alternative vote.' "

[(3) प्रधान का निर्वाचन एकल वैकल्पिक मत के आधार पर बहुमत श्रेयदायक मतदान की पद्धति के अनुसार गूढ़-शलाका द्वारा होगा।]

श्रीमान्, एकल वैकल्पिक मत के आधार पर बहुमत श्रेयदायक मतदान की पद्धति उस रीति का नाम है जिसका इस अनुच्छेद में विचार प्रस्तुत किया गया है। यह नियम है कि एकल संक्राम्य मत के आधार पर अनुपाती प्रतिनिधान का प्रयोग उन निर्वाचनों में होता है जिनमें निर्वाचन-क्षेत्रों द्वारा कई सदस्यों का निर्वाचन होता है और निर्वाचकों में से अपनी संख्या के अनुपातानुसार अल्पसंख्यक-वर्गों को अपने प्रतिनिधि भेजने का विशेषाधिकार होता है। यह कहा गया है कि आयरलैंड में प्रधान का निर्वाचन एकल संक्राम्य मत द्वारा होता है। मेरा निवेदन है कि अन्यत्र जो कुछ होता है उसको वेदवाक्य के प्रमाण के समान नहीं मानना चाहिये। इस संशोधन से ही सभा यह समझ गई होगी कि जब कि एक पद के लिये एक व्यक्ति का निर्वाचन होता है और केवल एक ही रिक्त पद है जिसकी पूर्ति की जायेगी तो अल्पसंख्यक-वर्गों का कोई प्रतिनिधान नहीं हो सकता। यही अनुपाती प्रतिनिधान है। एक व्यक्ति में उनका क्या अनुपात हो सकता है—वह व्यक्ति तो किसी का एक दल का होगा। अनुपाती प्रतिनिधान द्वारा चुने गये एक प्रधान में अल्पसंख्यक-वर्गों का कोई प्रतिनिधान नहीं होगा। जब तक कि निर्वाचन-क्षेत्रों में कई सदस्य न चुने जायें तब तक अनुपात का प्रश्न ही नहीं आता। अत: वह अनुपाती प्रतिनिधान तो नहीं है क्योंकि वह (प्रधान) 'representative' (प्रतिनिधि) है; संभव है कोई आलोचक कोष देखे—परन्तु साधारण वार्तालाप में एक प्रतिनिधि को 'representative' (प्रतिनिधि) कहा जाता है। यदि एक व्यक्ति से अधिक व्यक्ति हैं तब उनको 'representation' (प्रतिनिधान करने वाले) कहा जा सकता है। एक को 'representation' (प्रतिनिधान करने वाले) नहीं कहा जा सकता।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिम बंगाल : जनरल): बहुमत श्रेयदायक पद्धति क्या है?

***श्री महावीर त्यागी:** मैं उस पर आ रहा हूं। एक व्यक्ति का निर्वाचन करने वाला निर्वाचन-क्षेत्र न अनुपाती है क्योंकि अल्पसंख्यक-वर्ग को एक स्थान में से कोई अनुपात नहीं मिल सकता और न वह प्रतिनिध्यात्मक है क्योंकि प्रतिनिध्यात्मक से सदैव कुछ व्यक्तियों के एक समूह से आशय है न कि अकेले एक व्यक्ति

[श्री महावीर त्यागी]

से। अत: न तो वह अनुपाती ही है और न है प्रतिनिध्यात्मक और न यह संक्राम्य मत-पद्धति ही है। संक्राम्य मत से उस मत का अर्थ है जिसका संक्रामण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को उस रीति से किया जा सके जिसका वर्णन एकल संक्राम्य मत-पद्धति में किया गया है। एक उम्मीदवार के मतों का शेष भाग उसके निर्वाचन के पश्चात् दूसरे उम्मीदवार को दे दिया जाता है। यहां शेष मतों के संक्रामण करने का प्रश्न ही नहीं है। केवल एक ही उम्मीदवार है। समस्त मतदान वैकल्पिक होगा अत: यदि एक उम्मीदवार हार जाता है और उसका नाम हटा दिया जाता है तो हारे हुये उम्मीदवार के नाम से आये हुये मत का परिवर्तन हो जाता है; मतदाता के प्रथम विकल्प के स्थान में उसका मत द्वितीय विकल्प के लिये हो जाता है। अत: यह पद्धति यद्यपि अनुपाती कही जाती है पर वास्तव में अनुपाती है नहीं। न यह प्रतिनिध्यात्मक है जैसा कि मैं अभी बता चुका हूं। न यह "single vote" (एक मत-पद्धति है)। जिस रूप में यह है राज्य के विधान-मण्डलों के प्रत्येक मतदाताओं को 99.8 या 99.7 मत देने का अधिकार होगा। यहां इस दशा में एक व्यक्ति को मत देने का अधिकार नहीं है जैसा कि एकल संक्राम्य मत-पद्धति में होता है। सर्वप्रथम राज्य की समस्त जनसंख्या में 1000 का भाग दिया जायेगा और भागफल में पुन: प्रान्त के निर्वाचन निकाय के मतदाताओं की संख्या से भाग दिया जायेगा। इसका यह आशय हुआ कि सभा का एक सदस्य 100 मत दे सकता है 100 से अधिक नहीं—चाहे वह 99 दशमलव कुछ हो। मुझे यह भी बताना चाहिये कि उपखण्ड (ख) में यह कहा गया है:

> "एक सहस्र के उक्त गुणितों को लेने के पश्चात् यदि शेष पांच सौ से कम न हो तो इस खण्ड के उपखण्ड (क) में निर्दिष्ट प्रत्येक सदस्य के मतों की संख्या में एक और जोड़ दिया जायेगा।"

यहां कदाचित कार्यालय की त्रुटि से वे यह बताना भूल गये कि यदि शेष आधे से कम है तो उसका क्या होगा। जब तक आप यह न कहें कि आधे से कम पर ग़ौर नहीं किया जायेगा या उसकी उपेक्षा की जायेगी तब तक प्राधिकारी उसकी उपेक्षा नहीं करेंगे। जैसा कि उपखण्ड (ग) में आपने कहा है कि आधे से अधिक भिन्न को बढ़ाकर एक गिना जायेगा और अन्य भिन्नों की उपेक्षा की

जायेगी, ऐसा ही कुछ आपको उपखण्ड (ख) में भी कहना चाहिये। अन्यथा इस उपखण्ड (ख) के शब्दों के यथार्थ पालन किया जायेगा और राज्यों और प्रान्तों की विधान-सभाओं के प्रत्येक सदस्य के केवल 99 दशमलव कुछ अंक अथवा 98 दशमलव कुछ अंक तक ही मत नहीं होंगे वरन् 98.0032 इत्यादि तक हिसाब बढ़ाया जा सकता है। अत: एकल संक्राम्य मत की जटिल पद्धति के क्रियाकरण में एक और बड़ा दोष आ जायेगा। औसतन राज्य-विधान-मण्डलों के 3300 प्रतिनिधि होंगे और उनमें से प्रत्येक का केवल एक ही मत नहीं होगा उसके बहुत से मत होंगे। मत समान संख्या में नहीं होंगे; किसी सदस्य के 98 दशमलव कुछ मत होंगे, किसी दूसरे राज्य में केवल 80 ही हो सकते हैं। अत: प्रत्येक सदस्य के जितने मत होंगे और जितने वह देगा उनकी संख्या भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न होगी।

यहां यह भी नहीं बताया गया है कि मतदाता के जितने मत हैं वे सब केवल एक उम्मीदवार को ही दिये जायेंगे। श्रीमान्, इस खण्ड के वर्तमान रूप के प्रभाव पर मैं माननीय डॉ. अम्बेडकर का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। विधान-सभा के प्रत्येक सदस्य के कुछ मत होंगे जो भिन्न-भिन्न विधान-मण्डलों में भिन्न-भिन्न होंगे। मुझे बहुत दु:ख है कि माननीय डॉ. अम्बेडकर ध्यान नहीं दे रहे हैं।

***उपाध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर, श्री त्यागी कुछ बातों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं एक बात की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। प्रान्त और राज्यों के विधान-मण्डलों के सदस्यों की संख्या लगभग 3300 होगी और·····।

***श्री एस. नागप्पा:** श्रीमान्, क्या एक माननीय सदस्य दूसरे माननीय सदस्य को सम्बोधन कर सकता है? उन्हें अध्यक्ष को सम्बोधन करना चाहिये।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं अध्यक्ष को सम्बोधन कर रहा हूं। मैं माननीय सदस्य का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं कि·····।

***उपाध्यक्ष:** श्री नागप्पा, कृपाकर अपना स्थान ग्रहण करें।

***श्री महावीर त्यागी:** इस हिसाब के अनुसार प्रान्तों और राज्यों के विधान-मण्डलों में लगभग 3300 सदस्य होंगे। हर-एक को एक ही मत का अधिकार नहीं होगा। प्रत्येक को इतनी संख्या में मत देने का अधिकार होगा जितनी संख्या राज्य की जनसंख्या में 1000 का भाग देने के पश्चात्, भागफल में पुन: राज्य के विधान-मण्डलों के सदस्यों का भाग देने से आती है। इसका यह अर्थ है कि प्रत्येक सदस्य का एक मत नहीं होगा वरन् यहां तक कि 98 या 97 या 80 तक मत होंगे। ऐसी पद्धति को आप किस प्रकार एकल संक्राम्य मत-पद्धति कह सकते हैं?

मैं एक और दोष से बचना चाहता हूं जिस पर शायद कोई ध्यान नहीं दिया गया है। आपने यह नहीं कहा है कि ये सब मत एक ही उम्मीदवार को दिये जायेंगे। मान लीजिये मैं संयुक्तप्रान्त के विधान-मण्डल का सदस्य हूं और मुझे 98.5 मत देने का अधिकार है और एक स्थान के लिये चार उम्मीदवार हैं। आपने यह नहीं कहा है कि मैं अपने सब मत एक ही उम्मीदवार को दूं। मैं अपने 90 मत एक उम्मीदवार को दे सकता हूं, 4 दूसरे को और 5 तीसरे को। इस प्रकार मैं अपनी इच्छा के अनुसार अपने मतों को बांट सकता हूं। आपने यह तो कहा है कि प्रत्येक सदस्य के 98 मत होंगे पर आपने यह नहीं कहा है कि इन सब मतों को एक ही उम्मीदवार को दिया जायेगा। ऐसा होते हुये आपका एकल संक्राम्य मत किस प्रकार टिक सकता है? मैं आपसे निवेदन करूंगा कि आप इस बात पर ध्यान दें और इस कार्यालय की त्रुटि को कृपा कर सही करें। आपने यह नहीं कहा कि सब मत एक साथ एक ही उम्मीदवार को दिये जायेंगे और उनको अनेकों उम्मीदवारों में नहीं बांटा जा सकता।

दूसरी बात यह है कि एकल संक्राम्य मत-पद्धति यहां लागू नहीं होती है क्योंकि किसी व्यक्ति को भी एक मत देने का अधिकार नहीं है, प्रत्येक को अनेकों मत देने का अधिकार है। राज्य के विधान-मण्डलों में मतदाताओं की संख्या 3300 होगी और समस्त मतों की संख्या 3,30,000 होगी। और फिर यहां संसद् में 735 मतदाताओं द्वारा उतनी ही संख्या में मत दिये जायेंगे। आयरलैंड में एकल संक्राम्य मत-पद्धति उपयुक्त हो सकती है क्योंकि वहां प्रत्येक मतदाता को एक मत देने का अधिकार है। पर यहां वह उपयुक्त नहीं हो सकती है क्योंकि वहां प्रत्येक व्यक्ति को एक मत देने का अधिकार नहीं है वरन् अनेक

मत देने का अधिकार है और विधान-मण्डल के सदस्यों को जितने मत देने का अधिकार है वह भिन्न-भिन्न प्रान्तों अथवा भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न है।

अब मैं उस प्रस्ताव पर आता हूं जो मैंने रखा है। मेरा प्रस्ताव यह है:

"The election of the President shall be held by secret ballot and in accordance with the system of majority preferential voting by the single alternative vote."

(प्रधान का निर्वाचन एकल वैकल्पिक मत के आधार पर बहुमत श्रेयदायक मतदान की पद्धति के अनुसार गूढ़-शलाका द्वारा होगा।)

इस पद्धति के अनुसार मतों का संक्रामण एक उम्मीदवार से दूसरे उम्मीदवार को हो सकता है और जिस उम्मीदवार को सबसे कम मत प्राप्त होंगे उसको चुनाव में से अलग कर दिया जायेगा और उसके मतों का परिवर्तन कर दिया जायेगा तथा उसकी इच्छा के अनुसार उन मतों की गणना उससे अधिक मत पाने वाले उम्मीदवार के पक्ष में की जायेगी। और इस प्रकार उम्मीदवारों को अलग करते चल जायेंगे तब तक कि केवल एक ही उम्मीदवार न रह जाये। उसको निर्वाचित घोषित कर दिया जायेगा। अत: मैं निवेदन करता हूं कि मेरी पदावली अधिक उपयुक्त है, यद्यपि रीति लगभग वही ही रहेगी। केवल पारिभाषिक कठिनाई है जिसको मैं बता चुका हूं।

***बेगम ऐज़ाज़ रसूल** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करती हूं:

"कि अनुच्छेद 44 के खण्ड (3) में से 'accordance with the system of proportional representation' (अनुपाती प्रतिनिधान रीति के अनुसार) शब्दों को निकाल दिया जाये।"

मेरे तर्क न्यूनाधिक रूप से पूर्ववक्ता के भाषण में आ गये हैं। जिस उद्देश्य से मैं यह संशोधन पेश करती हूं वह यह है कि अनुपाती प्रतिनिधान की पहली शर्त यह है कि निर्वाचक क्षेत्र बहुसदस्य निर्वाचक हों। यदि केवल एक ही व्यक्ति का निर्वाचन किया जाता है तो अनुपाती प्रतिनिधान का प्रश्न ही नहीं उठता और इस विषय को श्री त्यागी ने अच्छी तरह से स्पष्ट कर दिया है। अत: उनके तर्कों को दुहरा कर मैं सभा का समय नहीं खोना चाहती हूं। शायद यह

[बेगम ऐज़ाज़ रसूल]

समझा गया है कि इस निर्वाचन में एकल संक्राम्य मत-पद्धति-लाभदायक होगी क्योंकि उससे आशय यह लिया होगा कि जिस उम्मीदवार को सब से कम मत मिलेंगे उसको अलग कर दिया जायेगा। मैं उस निर्वाचक-क्षेत्र में अनुपाती प्रतिनिधान का उदाहरण दूंगी जो बहुसदस्य निर्वाचक-क्षेत्र है। मान लीजिये 100 मतदाता हैं और 5 सदस्यों का निर्वाचन करना है और दल 'क' को 50, दल 'ख' को 25 और दल 'ग' को 25 मत मिलते हैं, तो साधारण निर्वाचन में तो समस्त उम्मीदवार दल 'क' के चुने जायेंगे और अनुपाती प्रतिनिधान में दल 'क' के 3, दल 'ख' का 1 और दल 'ग' का 1 चुना जायेगा। विचार यह है कि मतदाताओं का अनुपात निर्वाचित व्यक्तियों की संख्याओं में विम्बित होता है। इसके लिये यह आवश्यक है कि एक स्थान से अधिक स्थान हो, परन्तु जब स्थान केवल एक ही है तो उस स्थान में निर्वाचक-मण्डल के अनुपात का किस प्रकार निर्वाह किया जा सकता है क्योंकि एक स्थान के 3 या 2 भाग नहीं हो सकते हैं? अत: मेरा विश्वास है कि अनुपाती प्रतिनिधान की यह पद्धति प्रधान के निर्वाचन के लिये वास्तव में सही नहीं होगी और अल्पसंख्यक-वर्ग जिस प्रकार से बहुसदस्य निर्वाचक-क्षेत्र में अपना उम्मीदवार भेज सकता था उस प्रकार से इस निर्वाचक-क्षेत्र में, जिसमें केवल एक ही सदस्य चुना जायेगा, नहीं भेज सकेगा। इस कारण मैंने यह संशोधन पेश किया है।

(संशोधन संख्या 1080, 1081 और 1082 पेश नहीं किये गये।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, संशोधन संख्या 1083 के स्थान में मैं सूची 1 (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 25 को पेश करने का प्रस्ताव करता हूं क्योंकि वह संशोधन माननीय सदस्य डॉ. अम्बेडकर को मान्य है।

मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधन की सूची में संशोधन संख्या 1083 के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये:

कि अनुच्छेद 44 की व्याख्या के स्थान में निम्न व्याख्या रखी जाये:

*'Explanation*—In this article, the expression "population" means the population as ascertained at the last preceding

census of which the relevant figures have been published."

(*व्याख्या*—इस अनुच्छेद में 'जनसंख्या' से अन्तिम पूर्ववर्ती जनगणना में निश्चित की गई जनसंख्या अभिप्रेत है जिसके अंक प्रकाशित हो चुके हैं।)

इस संशोधन में संशोधन संख्या 1081 और 1083 के आशय आ जाते हैं। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत संशोधन संख्या 1081 में व्याख्या के प्रथम भाग को हटाने का विचार रखा गया है। संशोधन संख्या 1083, जो मेरे नाम से था, उसके द्वारा व्याख्या के अन्तिम भाग में कुछ महत्वपूर्ण शाब्दिक परिवर्तन करने का विचार रखा गया है और जिस संशोधन को मैंने अभी पेश किया है उसमें इन दोनों संशोधनों के प्रयोजनों को मिला दिया गया है।

व्याख्या के प्रथम भाग के हटाने से सम्बन्धित विषय पर, जो डॉ. अम्बेडकर के संशोधन के अनुकूल है, मैं कुछ नहीं कहना चाहता हूं। मैं विचार संशोधन के केवल उसी भाग पर प्रकट करूंगा जिससे मेरा सम्बन्ध है। सभा कृपया इस बात पर ध्यान दे कि अनुच्छेद 44 प्रधान के निर्वाचन से सम्बन्ध रखता है। अनुच्छेद 43 द्वारा यह प्रयास किया गया है कि केन्द्र के संसदागारों के सदस्यों को तथा राज्य-विधान-मंडलों के निर्वाचित सदस्यों को प्रधान के निर्वाचन में मत देने का अधिकार हो। परन्तु व्याख्या के मूलरूप में यह दिया गया है कि इस जनसंख्या से "अन्तिम पूर्ववर्ती जनगणना" में निश्चित हुई जनसंख्या अभिप्रेत है। मेरा निवेदन है कि मूल व्याख्या से कुछ कठिनाई पैदा हो जायेगी; उदाहरण के रूप में हो सकता है कि निर्वाचन करते समय 'अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना' के अंक ही प्राप्त न हो सकें। उदाहरणार्थ, यदि जनगणना पहली जनवरी सन् 1951 ई. को हो, जैसी कि साधारणतया आशा की जाती है और यदि फरवरी या मार्च 1951 में अर्थात् जनगणना के दो या तीन माह के भीतर प्रधान का निर्वाचन हो तो अंतिम पूर्ववर्त्ती 'जनगणना' के अंक प्राप्त नहीं हो सकेंगे। जनगणना के अंकों को तैयार करने और प्रकाशित करने में एक वर्ष लग जाता है। अतः यदि हम व्याख्या की पदावली को इसी रूप में रहने दें, जिस रूप में वह है, तब तो हम अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना द्वारा निश्चित जनसंख्या के अनुपात में राज्य-विधान-मण्डलों के सदस्यों के मत नियत करने के लिये बाध्य होंगे। परन्तु

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

इस प्रयोजन के लिये हमें अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना के अंक प्राप्त नहीं होंगे। इसका फल यह होगा कि प्रधान का निर्वाचन नहीं हो सकेगा। इन परिस्थितियों के कारण मैंने इस संशोधन को प्रस्तुत किया है कि हम उस अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना के अंकों का प्रयोग करें 'जिसके अंक प्रतिशत हो चुके हैं'। इन शब्दों के रखने से वह कठिन स्थिति उत्पन्न नहीं होगी। यदि उस जनगणना के अल्पकाल के भीतर निर्वाचन किया जाता है जिसके अंक प्राप्त नहीं हुये हैं तब इस संशोधित व्याख्या द्वारा सन् 1941 की जनगणना के अंकों का प्रयोग किया जा सकेगा। इस प्रकार वह कठिन स्थिति दूर हो जायेगी जिसको हम अन्य किसी प्रकार से दूर नहीं कर सकते थे क्योंकि निर्वाचन के लिये हमें निश्चित अंकों की आवश्यकता होगी। इन परिस्थितियों में मैं निवेदन करता हूं कि इस संशोधन को स्वीकार किया जाये।

***उपाध्यक्षः** इस अनुच्छेद पर अब सामान्य वाद-विवाद हो सकता है।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष, श्रीमान्, इस खण्ड को पूर्णतया निकालने के लिये मैंने एक संशोधन भेजा था जो स्पष्टतया नियम विरुद्ध था अतः उसको नियम-विरुद्ध घोषित कर दिया गया। उस संशोधन को पेश करने से मेरा इस बात की ओर संकेत करने का उद्देश्य था कि यह पूरा अनुच्छेद केवल एक बड़ी जटिल तथा किसी राज्य को ठीक-ठीक कितने मतों का अधिकार होगा, इस सम्बन्ध में भयंकर झगड़ों की सम्भावना उत्पन्न करने वाले एकतन्त्र की ही स्थापना नहीं करता है, वरन् इस अनुच्छेद से उस मूल प्रयोजन का भी खण्डन हो जायेगा जिसके लिये एकल संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधान का विचार रखा गया था। एकल संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधान इस उद्देश्य से रखा गया है कि विधान-मण्डल में राजनैतिक विचारधारा के समस्त रूपों, समस्त भिन्न-भिन्न हितों और देश के समस्त विभिन्न मतों का बिम्ब हो, पर शर्त यह है कि वे एक नियत संख्या में अपना समुदाय बना सकें, चाहे वह संख्या 50,000 हो अथवा 1,00,000 अथवा उतनी हो जितनी विधान सभा अथवा ऐसी ही बड़ी संस्थाओं में अपनी आवाज़ पहुंचाने के लिये पर्याप्त समझी जाये। अतः मैं निवेदन करता हूं कि अनुपाती प्रतिनिधान वहां उपयुक्त नहीं होता है जहां कि निर्वाचन प्रशासन मुखिया का हो और जहां कि केवल एक ही व्यक्ति का निर्वाचन हो। मैं इस बात से सहमत हूं कि बहुत से उम्मीदवारों को लाकर आप

इसको अनुपाती आधार पर क्रियान्वित कर सकते हैं और श्रेय-क्रम के अनुसार एक उम्मीदवार के मतों का दूसरे उम्मीदवार के लिये संक्रमण हो जाता है। इसका कुछ ऐसा प्रभाव होगा कि आपका अन्तिम रूप में निर्वाचित प्रधान वह हो सकता है जो, मान लीजिये कि, प्रथम स्थिति में एक तिहाई सदस्यों द्वारा चुना हुआ प्रतिनिधि था, द्वितीय स्थिति में दशांश सदस्यों द्वारा और यदि तीन ही उम्मीदवार हैं तो तृतीय स्थिति में द्वादशांश सदस्यों द्वारा चुना गया था। इस प्रकार से वह अल्पसंख्यक-वर्ग का प्रतिनिधि हुआ न कि बहुसंख्यक-वर्ग का।

बम्बई विश्वविद्यालय में अनुपाती प्रतिनिधान का मुझे कुछ अनुभव हुआ है और मुझे यह विदित हुआ है कि यहां तक कि नौ, दस, बारह और पन्द्रह तक के निम्न श्रेयों को गिना गया। क्या आप अपने प्रधान को संक्रामण द्वारा निर्वाचित करना चाहते हैं जिससे कि किसी दल के पन्द्रहवें विकल्प तक को अन्त में सफलता मिल सके और प्रधान का अन्ततः निर्वाचन हो जाये? वह प्रथम स्थिति में बहुमत का भी प्रतिनिधि नहीं होगा। अनेकों संक्रामणों द्वारा वह बहुमत का प्रतिनिधि होगा, चाहे प्रथम स्थिति में वह वास्तव में अल्पमत का ही प्रतिनिधि हो। राष्ट्रीय दृढ़ता के हित के लिये यह अवांछनीय है।

कोई सुसंगठित अल्पसंख्यक-वर्ग किसी विशेष व्यक्ति अथवा उम्मीदवार को क्रम में बनाये रखने के लिये पर्याप्त मात्रा में मत प्राप्त कर सकता है और अनेकों संक्रामणों के पश्चात् वह (उम्मीदवार) अन्त में पूर्ण बहुमत प्राप्त कर लेता है। यह भ्रमात्मिक तथा बहुत ही संदिग्ध बहुमत होगा जिसमें देश के एक बड़े भाग का प्रतिबिम्ब नहीं होगा। मुझे ऐसा भी लगता है कि उम्मीदवारों की सूची में अन्तिम स्थान में किसी व्यक्ति के होने पर उससे ऊपर वाले उम्मीदवारों के पक्ष में मतों का संक्रामण तथा पुनः संक्रामण करने के लिये जिस तंत्र की आवश्यकता है उसमें स्वयं जो कठिनाइयां उत्पन्न होंगी उनके मुकाबले में वे कठिनाइयां मुझे कहीं अधिक प्रतीत हैं जो कि मतदाताओं की अधिक संख्या के कारण हो सकती हैं और जिनका जिक्र पिछली बार किया गया था। मुझे ऐसा लगता है कि उन कठिनाइयों को व्यर्थ ही अतिरंजित करके कहा गया है कि 20 करोड़ मतदाताओं के मत लेने से निर्वाचन असम्भव हो जायेगा। 20 करोड़ मतदाता एक ही स्थान पर एक ही समय मत नहीं देंगे। यह असम्भव है। परन्तु 20,000 केन्द्रों में बंटे हुए 20 करोड़ मतदाताओं से प्रत्येक केन्द्र में अपने-अपने हिस्से के मतदाताओं का मत लेना कोई ऐसा कठिन कार्य नहीं है जो असम्भव

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

हो। अत: हमें यह बात कि राज्य के प्रधान का निर्वाचन करने में वास्तविक लोकप्रिय प्रतिनिधान असम्भव है, पूर्णतया अस्वीकार कर देना चाहिये। और न मेरे विचार से इस कार्य के लिये प्रशासी तंत्र की व्यवस्था करनी ही कठिन है। यदि आप इस देश में केन्द्र की अथवा प्रान्तों की प्रतिनिधात्मक संस्थाओं के प्राचीन इतिहास पर दृष्टि डालें तो केवल चालीस या पचास वर्ष पूर्व से ही आपको यह विदित होगा कि प्रत्येक परिवर्तन में निर्वाचक-गण आठ गुने या दस गुने या बीस गुने हो गये और जिनके यह विचार थे कि निर्वाचक-गणों के केवल बृहद् आकार-प्रकार के कारण ही निर्वाचन करना असम्भव हो जायेगा, वे झूठे भविष्यवक्ता सिद्ध हुये।

गत बार निर्वाचक-गण कुछ लाखों से साढ़े तीन करोड़ हो गये अर्थात् लगभग 100 गुने बढ़े। और यदि ऐसे किसी सुझाव को, जिसे सभा के समक्ष प्रस्तुत करने का मुझे सम्मान प्राप्त हुआ है, स्वीकार किया गया तो आप उसको केवल सतगुना या अठगुना और बढ़ा देंगे। वह कोई ऐसी कठिनाई नहीं होगी जिसे पार न किया जा सके।

हर हालत में अनुपाती प्रतिनिधान की प्रणाली से जो कठिनाई उत्पन्न होगी उसके कारण और इस विचार के कारण कि वास्तव में बहुमत के प्रथम चुनाव का सदस्य प्रधान न हो सके, राज्य के प्रधान को जो आदर और सम्मान प्राप्त होना चाहिये, उसमें कमी हो जायेगी।

अत: उन अन्य कठिनाइयों के अलावा, जिनको संशोधन पेश करने वालों ने सभा के सामने रखा है, मैं निवेदन करता हूं कि अनुपाती प्रतिनिधान की प्रणाली स्वयं सभा को यह प्रतीति करा देगी कि यदि वह दुष्टतापूर्ण नहीं है तो बहुत संकटास्पद तो है ही और इस कारण उसकी उपेक्षा की जानी चाहिये।

यदि आप चाहते हैं तो अपने विधान-मण्डलों के निर्माण में उसे अवश्य रखें। यदि आप चाहते हैं तो अन्य समान संस्थाओं के निर्माण में उसे अवश्य रखें। परन्तु जब आप राज्य के अथवा संघ के अन्तर्गत किसी प्रदेश के मुखिया को चुनते हैं तब आपको अनुपाती प्रतिनिधान की प्रणाली का बहिष्कार करना चाहिये क्योंकि वह ऐसी दुधारी तलवार है, जो दोनों ओर काट करती है। वह समस्त मतों का प्रतिनिधान भी कर सकती है और साथ ही साथ वह किसी ऐसे व्यक्ति को भी मुखिया के पद पर बिठा सकती है जो प्रथम स्थिति में केवल अल्पमत का ही प्रतिनिधि हो।

इन आधारों पर मैं अनुपाती प्रतिनिधान के सिद्धान्त को हटाने वाले संशोधन का समर्थन करता हूं और इस बात का समर्थन करता हूं कि इस अनुच्छेद में तदनुकूल संशोधन किया जाये।

***श्री ए.वी. ठक्कर** (काठियावाड़ का संयुक्त राज्य सौराष्ट्र): उपाध्यक्ष, श्रीमान्, मैं अनुपाती प्रतिनिधान के प्रश्न पर बोलना नहीं चाहता हूं पर 'अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना' के विषय पर बोलना चाहता हूं। यह विख्यात है कि 1941 की जनगणना के पश्चात् देश की जनसंख्या में विशेषकर कुछ प्रान्तों की जनगणना में भारी परिवर्तन हो गये हैं। मैं इस सम्बन्ध में पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल का उल्लेख कर सकता हूं। मैं संयुक्तप्रान्त और बम्बई में जो थोड़े-बहुत परिवर्तन हुये हैं उनका भी उल्लेख करना चाहता हूं। इन प्रान्तों में हिन्दू, सिख तथा अन्य लोग बड़ी-बड़ी संख्याओं में आ गये हैं और इन चार प्रान्तों की सामान्य जनसंख्या बहुत कुछ बढ़ गई है। साथ ही साथ मुसलमानों की एक बड़ी संख्या इन चारों प्रान्तों को छोड़कर पाकिस्तान चली गई है। अत: 1941 की जनगणना इन चारों प्रान्तों में रहने वाले लोगों की संख्या का ठीक-ठीक प्रतिनिधान नहीं करती है। मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि यदि विवेकपूर्ण देखा जाये तो अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना अर्थात् 1941 की जनगणना का बहुत कम मूल्य है। अत: सरकार को या तो विशिष्ट रूप से इस विधान के प्रयोजनार्थ समस्त देश की जनगणना कराने का प्रबन्ध करना चाहिये या इन चार प्रान्तों की नवीन जनगणना कराने का शीघ्र प्रबन्ध करना चाहिये। यह भी सुझाव रखा जा सकता है कि 1951 की जनगणना एक वर्ष पूर्व कर ली जाये अर्थात् 1951 के अलावा 1950 में कर ली जाये। या उन चार प्रान्तों की विशेष रूप से जनगणना की जाये जिनका मैंने जिक्र किया है और इस जनगणना के आधार पर इन प्रान्तों में स्थानों की संख्या नियत की जाये। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो कुछ समुदायों के साथ बहुत अन्याय होगा।

मैं पंजाब की अनुसूचित जातियों का उदाहरण देना चाहता हूं। पश्चिमी पंजाब में बसने वाली इन लोगों की एक बड़ी संख्या पूर्वी पंजाब में आ गई है और इसके फलस्वरूप वहां उनकी संख्या बहुत बढ़ गई है। वर्तमान जनसंख्या के आधार पर इन जातियों को जितने स्थान मिलने चाहियें, जो कि उनके लिये विशेष

[श्री ए.वी. ठक्कर]

रूप से संरक्षित कर दिये गये थे, उनसे उनको बहुत कम अर्थात् लगभग आधे स्थान ही मिलेंगे। यही बात, परन्तु इससे कुछ कम मात्रा में, पश्चिमी बंगाल की अनुसूचित जातियों पर भी लागू होती है। पूर्वी पंजाब में बड़ी विकट कठिनाई है। यदि पूर्ववर्त्ती जनगणना के अंक मान लिये गये तो इस अल्पसंख्यक वर्ग को अपने आधे स्थान भी नहीं मिलेंगे।

**श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** उप-सभापति जी, आज इस विधान-परिषद् की चौथी बैठक के अन्तिम दिन में अन्तिम काल में नहीं अन्तिम दिन में मैं अपना बयान हिन्दी में करना चाहता हूं। इसका कारण यह है कि में तीन-चार रोज आगे सेठ गोविन्द दास के हिन्दी सम्मेलन में गया था और उस जलसे में मेरे माननीय मित्र मिस्टर प्रकाशम् जी ने हिन्दी में एक ऐसा बयान किया कि सारे भारत के कोने-कोने में उनकी बहादुरी का प्रचार हो गया। वह हिन्दी का बयान ऐसा मीठा था और मधुर और अच्छा था कि सारी दुनिया में आज उनकी बहादुरी और वाहवाही हो गई है। मेरे ख्याल में यह हुआ कि जो दक्खिन में रहने वाले मिस्टर प्रकाशम् जी ऐसा बयान कर सकते हैं तो मैं क्यों नहीं कर सकूंगा·····।

***उपाध्यक्ष:** क्या आप अनुच्छेद 44 पर बोल रहे हैं अथवा अन्य किसी अनुच्छेद पर?

**श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** तो आसाम का होते हुए भी मैं ऐसा क्या हो गया कि नहीं कर सकता? मैं हिन्दी भी नहीं बोल सकूंगा?

***उपाध्यक्ष:** कृपा कर आप अपने समय का इससे अच्छा सदुपयोग करें।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मेरे माननीय मित्र श्री ठक्कर बापा ने अपने भाषण संयुक्तप्रान्त और पंजाब का उल्लेख किया था। वे आसाम को भूल गये। सन् 1941 में लड़ाई बिल्कुल आसाम के निकट आ गई थी और जनगणना बड़ी ही अव्यवस्थित रीति से की गई थी। अत: यह परम आवश्यक है कि आसाम प्रान्त पर भी यह संशोधन लागू हो जिससे कि निर्वाचन के पूर्व हम ठीक-ठीक

अंकों को प्राप्त कर उन पर विचार कर सकें। यदि हम निर्वाचक-गणों की सूचियां तैयार करने के लिये विभिन्न प्रान्तों के वर्तमान अंकों को प्रकट करने वाली जनगणना कर सकें तो उससे बड़ा लाभ होगा। आसाम का उदाहरण लीजिये। आसाम में पूर्वी बंगाल से शरणार्थियों के रूप में जो लोग आये हैं उनकी ठीक-ठीक गणना अब तक नहीं की गई है। हमारा अनुमान है कि इस प्रकार अब तक आसाम में 3 या 4 लाख लोग तो आ चुके हैं। अत: यह आवश्यक है कि प्रान्त के लिये सदस्यों की कुल संख्या नियत करने में इन अंकों पर भी विचार किया जाये। इस समय सिलहट इलाके को छोड़कर आसाम की जनगणना की गई है। परन्तु पूर्वी बंगाल और सिलहट से आसाम में बहुत से लोग आ गये हैं और प्रान्त के स्थानों की कुल संख्या नियत करने में इन लोगों की संख्या पर भी विचार करना चाहिये। निर्वाचक-क्षेत्रों में स्थानों की संख्या नियत करने में भी इस बात पर विचार करना चाहिये। अत: मैं सभा से निवेदन करता हूं कि वह इस सुझाव को स्वीकार करे कि निर्वाचक-क्षेत्रों को परिसीमित करते समय अन्तिम जनगणना के अंकों पर विचार किया जाये।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र:** उपाध्यक्ष, श्रीमान्, अनुच्छेद 44, जिस पर हम इस समय विचार कर रहे हैं, इस बात की व्यवस्था करता है कि जहां तक व्यवहार्य हो, प्रधान के निर्वाचन में जनसंख्या के आधार पर विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधान की मापश्रेणी में एकरूपता होगी। अत: यह अनुच्छेद हितकारी-सा प्रतीत होता है और इस विधान को क्रियान्वित करने के लिये एक दृढ़ आधार का निर्माण करता है। यह अनुच्छेद आनुषंगिक रूप में भारतीय संघ के प्रदेशों के विधान-मंडलों के प्रतिनिधान के लिये व्यवस्था करता है। इस विधान के निर्माता इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि विभिन्न राज्यों को जो प्रतिनिधान दिया जायेगा, उसमें वे जहां तक हो सके एकरूपता लाने का प्रयत्न करें। इस अनुच्छेद की व्याख्या में यह कहा गया है कि इस अनुच्छेद में 'जनसंख्या' से अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना में निश्चित की गई जनसंख्या अभिप्रेत है। इस पर मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने एक संशोधन पेश किया है जो इस प्रकार है: "अन्तिम जनगणना जिसके अंक प्रकाशित हो चुके हैं।" इन शब्दों को "अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना" शब्दों के स्थान में रखना है। मैं समझता हूं कि यह संशोधन मसौदा-समिति के माननीय अध्यक्ष द्वारा स्वीकार किया जायेगा, जिसका सब

[पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र]

व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये यह अर्थ होगा कि वह सभा द्वारा भी स्वीकार किया जायेगा। व्यक्तिगत रूप से मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि यह संशोधन किस प्रकार स्थिति में सुधार करता है। मेरे विचार से तो यह स्थिति को और भी बिगाड़ता है। श्रीमान्, साधारण ज्ञान वाला कोई भी व्यक्ति यह समझ सकता है कि "पूर्ववर्त्ती जनगणना" का क्या अर्थ है, परन्तु बिरले ही समझ सकते हैं कि "अन्तिम जनगणना जिसके अंक प्रतिशत हो चुके हैं" इसका क्या अर्थ है।

श्रीमान्, जनगणना के समाप्त हो जाने के पश्चात् यह कोई नहीं कह सकता है कि उसके अंक कब तक प्रकाशित किये जायेंगे। एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष अथवा चार वर्ष तक लग सकते हैं। जब निर्वाचन किया जायेगा तो यह सम्भव है बल्कि मैं तो यह कहूंगा कि यह सम्भाव्य है कि उस विशेष अवसर पर पूर्ववर्त्ती जनगणना आपको ठीक अंक नहीं दे सकेगी क्योंकि उसके प्रकाशन में काफी देर लगती है। अत: मैं नहीं समझ पाता हूं कि इस संशोधन द्वारा स्थिति में किस प्रकार सुधार हो जायेगा। चूंकि जनगणना अधिशासी सरकार का प्रकार्य है और अधिशासी सरकार की आज्ञा से ही जनगणना की जाती है अत: अधिशासी सरकार जब तक इस बात पर गौर करने का ठीक कदम नहीं उठाती है कि गणना के पश्चात् तुरन्त ही उसका प्रकाशन हो जाये, तब तक मेरा विश्वास है कि प्रतिनिधान को एकरूपता देने के लिये जिस संरक्षण की व्यवस्था करने का प्रयत्न किया गया है, वह अधिकांश निष्फल होगा। मैं चाहता हूं कि इस बात पर सावधानी से विचार किया जाये। यह उतनी सरल नहीं है जितनी सरल हम उसे सोचते हैं।

इस प्रश्न के अलावा कि गणना और प्रकाशन साथ-साथ नहीं हो सकेंगे और इन दोनों कार्यों में काफी लम्बे समय का अन्तर होना अवश्यम्भावी है, हमको यह भी देखना चाहिये कि यह किस प्रकार में प्रान्तों के लिये हानिकर होगा। श्रीमान्, हमारी पिछली जनगणना सन् 1941 ई. में हुई थी। मेरे विचार से आसाम के मेरे माननीय मित्र श्री रोहिणीकुमार चौधरी, जिन्होंने हिन्दी में भाषण देना शुरू किया था, परन्तु बीच में बन्द कर फिर अंग्रेजी में बोलने लगे, अपने विषय को आरम्भ से ही अंग्रेजी में बोल कर स्पष्ट कर सकते थे। उन्हें जो बात रखनी थी

दुर्भाग्यवश वे उसे न रख सके। इसमें एक बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न निहित है। आसाम, अविभाजित पंजाब, अविभाजित बंगाल, सिन्ध और उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त जैसे प्रान्तों में, जिनमें मुसलमान जनसंख्या का प्राधान्य था, सन् 1941 की जनसंख्या के अवसर पर अपनी संख्या बढ़ाने की होड़ थी, और सिवाय आसाम के—क्योंकि आसाम के बाबत मुझे पूर्ण विश्वास नहीं है यद्यपि वहां भी मुस्लिम लीग सरकार शक्ति प्राप्त किये हुये थी—अन्य प्रान्तों में जिनका मैंने जिक्र किया है यह सच है कि सम्प्रदायों में अपनी संख्या बढ़ाने का एक रोग लग गया था जिससे कि अनुवर्ती वैधानिक सुधारों में उनको अधिक से अधिक लाभ हो। अन्य प्रान्तों के बाबत मैं नहीं कह सकता हूं क्योंकि उन प्रान्तों में मुसलमान अल्प संख्या में थे और मुस्लिम लीग को शक्ति प्राप्त नहीं थी। जहां तक उन प्रान्तों का सम्बन्ध है जिनका मैंने जिक्र किया है, मैं अपने व्यक्तिगत ज्ञान और अनुभव के आधार पर कह सकता हूं और मेरा ख्याल है कि इन प्रान्तों के सदस्य भी इस बात को प्रमाणित करेंगे कि उन प्रान्तों में ऐसी ही स्थिति थी। जनगणना के कमिश्नर ने भी ऐसी ही बात प्रकट की थी। अत: यदि आज हम सन् 1941 ई. की जनगणना को इन उपरोक्त विशेष प्रान्तों में स्थानों की संख्या नियत करने के लिये प्रमाणस्वरूप मान लेते हैं, तो हमें सचमुच इन प्रान्तों की जनगणना का बड़ा ही भ्रामक चित्र प्राप्त होगा। याद रखिये, अविभाजित बंगाल में विभाजन के पूर्व दस वर्ष से भी अधिक समय तक हिन्दू सम्प्रदाय की कोई भी आवाज नहीं थी, सरकार से अथवा उसके किसी भी महकमे से उसका कोई भी सरोकार न था। किसी भी दशा में उनकी स्थिति महत्त्वपूर्ण नहीं थी और स्थिति उनके सर्वथा विरुद्ध थी। हमने उस समय भी शिकायत की थी और अब भी मैं यह मानता हूं कि सन् 1941 के अंक इन प्रान्तों की वास्तविक जनगणना के प्रतीक किसी प्रकार से भी नहीं है। 15 अगस्त 1947 के पश्चात् इनमें से कुछ प्रान्तों का विभाजन हो गया। बंगाल का विभाजन हुआ और पश्चिमी बंगाल भारतीय संघ में आ गया। पूर्वी पंजाब भारतीय संघ में आ गया। आसाम का विभाजन हुआ और उसका एक भाग आसाम में रहा और एक भाग पाकिस्तान में चला गया। इसके बाद वे भयानक कांड हुये जिनसे सब लोग परिचित हैं और जिनके फलस्वरूप पूर्वी पंजाब में एक भी मुसलमान न रहा और पश्चिमी पंजाब में एक भी हिन्दू न रहा। इन घटनाओं ने हमें इस वर्तमान विधान-परिषद् में पूर्वी

[पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र]

पंजाब और पश्चिमी बंगाल के प्रतिनिधान की मापश्रेणी में परिवर्तन करने के लिये विवश किया। आज की स्थिति यह है कि आप यह नहीं जानते कि पूर्वी पंजाब में एक भी मुसलमान है या नहीं और पश्चिमी पंजाब में एक भी हिन्दू है या नहीं। सिन्ध से, मैं समझता हूं कि 75 फ़ीसदी से अधिक हिन्दू भारतीय संघ में आ ही गये हैं। जहां तक बंगाल का सम्बन्ध है, पूर्वी बंगाल से पश्चिमी बंगाल में लाखों आदमी आ गये हैं। संख्याओं के प्रति आपका मतभेद हो सकता है। कोई बीस लाख बतायेगा, कोई तीस लाख या इससे भी अधिक परन्तु इस विभाजन के कारण पूर्वी पाकिस्तान से आने वालों की संख्या कम से कम 20 लाख होगी और यह संख्या प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है; क्योंकि आने वालों का तांता अब भी लगा हुआ है। नये विधान के अनुसार जिस समय सामान्य निर्वाचन किया जायेगा, उस समय तक और भी आदमी आ जायेंगे और उनकी संख्या 40 लाख तक हो जायेगी। पूर्वी पाकिस्तान से लोगों का आना सन् 1941 में आरम्भ हुआ। जब जापानियों ने अंग्रेजों से युद्ध छेड़ा उस समय बहुत से लोग पूर्वी बंगाल को छोड़कर नौकरी तलाशने, युद्ध सम्बन्धी नौकरी करने, ठेका लेने तथा ऐसे ही अन्य कार्यों के लिये पश्चिमी बंगाल में आये। उसके पश्चात् 1943 में बंगाल में भयानक अकाल पड़ा और फिर बहुत से लोग पूर्वी पाकिस्तान से कलकत्ता आये जहां पूर्वी बंगाल की अपेक्षाकृत अन्न के दाने प्राप्त करने के अधिक अवसर थे। इस प्रकार 1943 में सबसे अधिक लोग आये और जापानी युद्ध के उपद्रवों से भयभीत होकर जितने लोग पहले आये थे उनसे बहुत अधिक संख्या में ये लोग आये। अत: मैं मसौदा-समिति के अध्यक्ष से निवेदन करता हूं कि वे इन बातों पर सावधानी से विचार करें कि आज पश्चिमी बंगाल की जनगणना सन् 1941 की जनगणना में प्रकाशित तथा निश्चित अंकों के आधार पर निर्धारित न की जाये और यह कि वास्तविक जनसंख्या में इससे बहुत अधिक वृद्धि हो गई है और वह वृद्धि उन कारणों से हुई है जिनका में जिक्र कर चुका हूं। सर्वप्रथम लोगों का आना जापानियों के आक्रमण के कारण हुआ। दुबारा 1943 के अकाल से इसमें वृद्धि हुई। तीसरी बात यह है कि पूर्वी पाकिस्तान के हमारे मित्रों के मित्रवत् व्यवहार से वह समस्त सीमाओं को पार कर गया। अन्तर-अधिराज्य सम्मेलनों में हम चाहे जो कुछ भी निश्चय करें, पर मुझे विश्वास है कि ऐसा हो रहा है और होगा। अत:, श्रीमान्, फल यह होगा कि यदि

समानता के सिद्धान्त पर इस अनुच्छेद में दी हुई रीति के अनुसार सन् 1941 की जनसंख्या के अंकों के अनुसार पश्चिमी बंगाल में स्थान नियत किये जाते हैं, तो इन प्रान्तों के साथ घोर अन्याय होगा और दोनों केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान-मण्डलों में इन प्रान्तों का बहुत ही कम प्रतिनिधान होगा।

यदि आप इससे बचना चाहते हैं और यदि आप चाहते हैं कि पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब प्रान्तों के साथ तथा बम्बई और देहली नगरों के साथ उचित तथा न्यायपूर्ण व्यवहार किया जाये जिनमें कि पाकिस्तान से बहुत से शरणार्थी आ गये हैं और बस गये हैं तथा सन् 1941 की जनगणना के अंकों द्वारा सूचित सामान्य जनसंख्या में बहुत वृद्धि कर चुके हैं, तो सबसे पहला काम सरकार को यह करना चाहिये कि विधान-मण्डलों के निर्माण से सम्बन्धित विधान को लागू करने से पूर्व वह इन प्रान्तों तथा नगरों की एकदर्थ जनगणना कराने की आज्ञा दे दे। मैं समझता हूं कि सामान्य जनगणना सन् 1951 में होगी और मैं यह भी समझता हूं कि वर्तमान सरकार नये विधान के अनुसार सामान्य निर्वाचन को तब तक रोकने के लिये उद्यत नहीं है। वह स्वीकृत विधान के अनुसार निर्वाचन शीघ्र करना चाहती है। यदि सरकार का यह निर्णय बना रहता है कि विधान लागू किया जाय और उसके अनुसार सन् 1951 के पूर्व सामान्य निर्वाचन किया जाये तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि इसके पूर्व नई जनगणना हो और पश्चिमी बंगाल, पूर्वी पंजाब, दिल्ली और बम्बई की जनगणना कराने के लिये अभी से आज्ञा दे दी जानी चाहिये। इन प्रान्तों पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ेगा और मुझे आशा है कि इस विषय पर सर्वप्रथम मसौदा-समिति के अध्यक्ष गंभीर विचार करेंगे। मुझे विश्वास है कि यदि ऐसा न किया जाये तो जो अन्याय होगा उसे वे समझेंगे। मैं विश्वास करता हूं कि जिस सरकार के वे एक महत्वपूर्ण अंग हैं उसको वे यह सलाह देंगे कि विधान के लागू करने के पूर्व इस प्रस्ताव पर अमल किया जाये।

श्रीमान्, कई अवसरों पर मैंने यहां तथा अन्यत्र इस विषय की प्राधिकारियों को सूचना दी है। इस विषय में मैंने उनसे दया करने और न्याय करने के लिये निवेदन किया है। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो जो परिणाम होंगे उनको सभा ध्यान में रखे। यदि सन् 1941 की जनगणना के अंकों के अनुसार कार्य किया गया है तो एक ओर विधान-मण्डलों में हिन्दू समुदाय का बहुत कम प्रतिनिधान होगा और दूसरी ओर मुसलमान समुदाय का बहुत अधिक प्रतिनिधान होगा। यह एक भीषण राजनैतिक अन्याय होगा और मैं सरकार को यह चेतावनी देता हूं कि वह इस बात का ध्यान रखे।

[पण्डित लक्ष्मीकान्त मैत्र]

श्रीमान, मैं यह नहीं कह सकता कि मैं इस संशोधन का अपने पूरे मन से समर्थन करता हूं। मुझे यह विश्वास नहीं कि जिस रूप में यह संशोधन है उस रूप में वह किसी प्रकार से भी स्थिति का सुधार करता है। खैर, सारा मामला सभा पर छोड़ा जाता है और यदि सभा यह समझती है कि मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन से इन बातों में सुधार हो जायेगा तो मुझे कुछ भी नहीं कहना है। मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि इससे कोई सुधार नहीं होगा।

***उपाध्यक्ष:** मेरे पास यहां सभा के चार गण्यमान्य सदस्यों की पर्चियां हैं। जहां तक मैं अनुमान कर सका हूं, प्रसंग एक विशेष संशोधन से ही सम्बन्धित है और मेरा यह भी विश्वास है कि इस संशोधन पर यथेष्ट प्रकाश डाला जा चुका है। यदि माननीय सदस्य भाषण देने के अधिकार पर आग्रह करेंगे तो मैं उनको एक-एक करके बुलाने के लिये तैयार हूं। और यदि वे मेरे सुझाव को स्वीकार करने की कृपा करेंगे तो सभा का कार्य शीघ्रतापूर्वक किया जा सकता है। मैं उनके अधिकार में हूं।

***माननीय सदस्यगण:** कुछ देर के लिये और वाद-विवाद करने की आज्ञा दे दी जाये।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं केवल दो मिनट चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** कृपया माइक पर आइये।

***मौलाना हसरत मोहानी:** उपाध्यक्ष, मैं आज यहां इस अनुच्छेद में तथा निर्वाचन प्रणाली से सम्बद्ध जिन अन्य धाराओं को हमने स्वीकार कर लिया है उनमें जो एक बड़ा भारी दोष है उसे बताने के लिये खड़ा हुआ हूं और वह यह है : भारत में तथा अन्य देशों में जो सामान्य प्रणाली बरती जाती है वह यह है कि यदि एक ही उम्मीदवार है और एक ही स्थान है तो उस उम्मीदवार का स्वत: ही निर्वाचन हो जाता है। मैं समझता हूं कि हमारी निर्वाचन-पद्धति में यह एक बड़ा भारी दोष है। रूस में यदि उम्मीदवार एक है तो भी निर्वाचन होता है

क्योंकि ऐसा हो सकता है कि एक व्यक्ति अन्य प्रतिद्वन्द्वी उम्मीदवारों के नाम कपट से निकलवा दे पर निर्वाचन में निर्वाचक-गण बहुमत से उसका विरोध करें। फिर वह निर्वाचन इस आधार पर नहीं होगा कि एक उम्मीदवार है या एक ही स्थान है। मैं यह कहूंगा कि मैंने इस विधान में एक भी संशोधन नहीं रखा है क्योंकि आरंभ से ही मेरे यह विचार रहे हैं कि सारा का सारा विधान मूर्खतापूर्ण है। मैं उसके प्राधिकार को स्वीकार नहीं करता हूं। मैं इस विधान-परिषद् को सूक्ष्म नहीं समझता हूं और इसी कारण मैंने कोई भी संशोधन नहीं रखा है। मैं केवल एक सुझाव रखता हूं कि इस दोष का निवारण करने के लिये माननीय डॉ. बी. बार. अम्बेडकर तथा उसकी समिति को कुछ न कुछ करना चाहिये और उसी मार्ग को ग्रहण करना चाहिये जो रूस में ग्रहण किया गया है। वहां एक अभ्यर्थी के होने पर भी यह मालूम करने के लिये निर्वाचन किया जाता है कि कहीं बहुमत उसका विरोध तो नहीं करता। यह मानते हुये भी कि उस व्यक्ति का विरोध यथेष्ट सदस्यों द्वारा नहीं होगा, मैं समझता हूं कि उसको स्वतः ही निर्वाचित मान लेने में हम ठीक काम नहीं करते।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, क्या आपकी अनुमति से मैं कुछ शब्द कह सकता हूं?

***उपाध्यक्षः** मैं उस पद्धति को नहीं तोड़ सकता हूं जिसको बड़ी कठिनाई से स्थापित किया गया है। प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना!

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष श्रीमान्, मैं सभा का ध्यान एक बात की ओर आकर्षित करना चाहता हूं, जिसका उल्लेख मेरे माननीय मित्र श्री त्यागी ने किया था। यहां हमने प्रधान के निर्वाचन के लिये अनुपाती प्रतिनिधान की व्यवस्था की है। मैं समझता हूं कि इस खंड में कुछ त्रुटि है। एकल-संक्राम्य मत द्वारा ही अनुपाती प्रतिनिधान हो सकता है, पर यहां प्रत्येक सदस्य को एक से अधिक मत मिलेंगे और उनकी गणना एक पूर्ण तथा जटिल विधि के अनुसार होगी और मैं नहीं समझता कि ऐसी दशा में अनुपाती प्रतिनिधान हो सकता है। मैं समझता हूं कि श्री त्यागी ने ठीक ही कहा है कि प्रथम दशा में प्रधान को निर्वाचित केवल कम मत पाने वाले अभ्यार्थियों को गिनती से छोड़ते चले जाने से ही हो सकेगा। मतदान होना चाहिए और जिस व्यक्ति को

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

सबसे कम मिलें उसकी उपेक्षा करनी चाहिए। तत्पश्चात् शेष उम्मीदवारों के लिए फिर मतदान लिया जाये और सबसे कम मत पाने वाले उम्मीदवार की उपेक्षा की जाये। इस प्रकार बचे हुए दो उम्मीदवारों में से जिस व्यक्ति को अधिक मत मिलें, उसका निर्वाचन किया जाये। यही एक रीति है जिसके द्वारा बहुमत से एक व्यक्ति का निर्वाचन किया जा सकता है। अनुपाती प्रतिनिधान प्रणाली कोई सीधी-सादी प्रणाली नहीं है। खासतौर से उस अवस्था में तो है ही नहीं जब कि केन्द्रीय संसद् के मतदाताओं को प्रान्तीय विधान-मंडल के सदस्यों से अधिक संख्या में मत देने का अधिकार है। इसमें यह होगा कि केन्द्रीय विधान-मंडल के मतदाता अपना प्रथम वैकल्पिक मत एक व्यक्ति को देंगे और इसी प्रकार प्रान्तीय विधान-मंडलों के सदस्य किसी अन्य व्यक्ति को, और उस वैकल्पिक मतों का अन्य सदस्यों को जब संक्रामण किया जायेगा, तो उसकी गणना करना बड़ा कठिन होगा क्योंकि उसकी रीति विभिन्न है। अतः मैं समझता हूं कि मसौदा-समिति इस विषय पर फिर विचार करेगी और जिस प्रणाली को मैंने बताया है उसको उसके स्थान में ग्रहण करेगी। इस प्रकार हमें इस बात का विश्वास हो सकता है कि जिस व्यक्ति का निर्वाचन होगा, उसे वास्तव में बहुमत प्राप्त हुआ है न कि केवल 50 प्रतिशत से कम मत संख्या मिली है। मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद में एक यह परिवर्तन होना चाहिए।

श्रीमान्, जनगणना के बारे में भी मुझे ऐसा लगता है कि गत 10 वर्ष में जनसंख्या के अंकों में बहुत परिवर्तन हो गये हैं, विशेषकर बड़े-बड़े शहरों में। मैं जानता हूं कि कानपुर में सन् 1941 में जनसंख्या चार लाख थी और अब लगभग 10 लाख है। मैं नहीं जानता कि कानपुर के लिये और अन्य ऐसे ही बड़े नगरों के लिए कितने स्थान नियत किये जायेंगे। मैं यह भी जानता हूं कि शरणार्थी, जो अन्य प्रान्तों से लगभग एक करोड़ की संख्या में आये हैं, वे सभी प्रान्तों में बंट गये हैं। अतः मैं आदरणीय ठक्कर बापा से सहमत हूं कि निर्वाचन के पूर्व जनगणना होनी चाहिये। हम निर्वाचन में वयस्क-मताधिकार के सिद्धान्त का अनुसरण करने के लिये तैयार हैं। विभिन्न समुदायों की संख्या के आधार

पर प्रथम अवधि के लिये हम स्थान नियत कर सकते हैं। 33 करोड़ की जनसंख्या में से आपके पास 15 करोड़ मतदाता होंगे और विभिन्न समुदायों के मतदाताओं के अनुपात के अनुसार स्थानों को बांट दिया जायेगा। मैं समझता हूं कि यह रीति अच्छी है। यह भी हो सकता है कि हम अनुपाती प्रतिनिधान को पूर्णतया समाप्त कर दें। यह भी कठिनाइयों से मुक्त होने की एक रीति है; परन्तु फिर भी विभिन्न प्रान्तों में स्थान बांटने में कठिनाई होगी। मैं समझता हूं कि यह एक सामान्य कठिनाई है और इसके निराकरण के लिये कुछ करना चाहिये।

मि. नजीरुद्दीन अहमद द्वारा जिस संशोधन की सूचना दी गई है वही इन बातों में सुधार करेगा अर्थात् निर्वाचन के पूर्व जनगणना की जाये। यदि उस संशोधन से यही प्रयोजन है तब तो मैं समझता हूं कि वह संशोधन स्वीकार करने योग्य है।

जब हमने अव्यवहित निर्वाचन की प्रणाली को अस्वीकार कर दिया है, तो मैं समझता हूं कि विभिन्न प्रान्तों द्वारा प्रधान के निर्वाचन की यह प्रणाली ठीक होगी। मैं अव्यवहित निर्वाचन को श्रेय देता, जिसमें प्रत्येक मतदाता प्रधान के निर्वाचन हेतु प्रत्यक्ष मत द्वारा मतदान करता। यद्यपि प्रधान को कोई अधिकार नहीं है, फिर भी उसकी महान् प्रतिष्ठा होगी। यह सच है कि हमारा प्रधान इंग्लैंड के राजा का प्रतिरूप होगा। यदि इंग्लैंड में राजा की प्रतिष्ठा प्रधान-मंत्री से बहुत अधिक है तो मेरे विचार से हमारे प्रधान की भी वही प्रतिष्ठा होनी चाहिये। मैं समझता हूं कि यही एक रीति है जिसके अनुसार आप ऐसा निर्वाचन कर सकते हैं, जिसमें प्रत्येक प्रान्त के मतदाता भाग ले सकें। मैं समझता हूं कि कम से कम इस धारा पर तो विद्वान् डॉक्टर (अम्बेडकर) द्वारा पुनर्विचार किया जायेगा, और जिस प्रणाली की मैंने सिफ़ारिश की है, उसको अनुपाती प्रतिनिधान की प्रणाली के स्थान में रखा जायेगा।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष, श्रीमान्, इस अनुच्छेद का दो महत्वपूर्ण बातों से सम्बन्ध है। पहली बात एकल-संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधान की प्रणाली के अनुसार प्रधान के निर्वाचन से सम्बन्धित है और दूसरी बात जनसंख्या के अंकों से सम्बन्धित जनगणना के बारे में है, जिसके अनुसार विभिन्न राज्यों का प्रतिनिधान नियत किया जाना है।

[श्री आर.के. सिधवा]

श्रीमान्, मेरा विचार है कि एकल-संक्राम्य मत-प्रणाली, जिसका प्रचलन किया गया है, सर्वोत्तम प्रणालियों में से है। किसी उम्मीदवार के निर्वाचन के लिये यह प्रणाली मतदाता को प्रथम, द्वितीय और तृतीय विकल्प का अधिकार देती है। परन्तु एक बात है कि एकल-संक्राम्य मत-प्रणाली वहीं संतोषजनक रूप में क्रियान्वित होगी जहां कि एक स्थान से अधिक स्थान हों। यहां एक ही प्रधान के निर्वाचन का विषय है। अत: यद्यपि मैं समझता हूं कि यह प्रणाली बड़ी अच्छी है फिर भी यदि हम एकल-संक्राम्य मत-प्रणाली को स्वीकार कर लें जिसका कि हमें अनुभव भी यथेष्ट है तो उससे अनेकों कठिनाइयां तथा जटिल समस्यायें खड़ी हो जायेंगी। प्रधान के निर्वाचन के लिये मैं परित्यजन रीति को श्रेय देता। उसके द्वारा भी प्रत्येक मतदाता को मत देने का अधिकार होगा और जिस उम्मीदवार को सबसे अधिक मत मिलेंगे उसका निर्वाचन किया जायेगा। उदाहरणार्थ, यदि पांच उम्मीदवार हैं तो जिस उम्मीदवार को सब से कम मत मिलते हैं उसको सूची से निकाल दिया जाता है। तत्पश्चात् समस्त मतदाता शेष चार उम्मीदवारों के लिये फिर मतदान करते हैं और जिसको भी सब से कम मत प्राप्त होते हैं उसको निकाल दिया जाता है। और फिर शेष तीन उम्मीदवारों के लिये समस्त मतदाता मतदान करते हैं। अन्त में समस्त मतदाता शेष दो उम्मीदवारों के लिये अपना-अपना मत देते हैं। इसका यह अभिप्राय है कि प्रत्येक मतदाता प्रत्येक उम्मीदवार के लिये अपने अधिकार का प्रयोग करता है। प्रधान के निर्वाचन में मैं स्वयं इस परित्यजन की प्रणाली को श्रेय देता हूं जिसको काम में लाना वास्तव में लाभदायक तथा दक्षतापूर्ण है। मेरा विचार है कि एकल-संक्राम्य मत-प्रणाली संतोषजनक रूप से नहीं क्रियान्वित की जा सकेगी जब तक कि एक से अधिक स्थान न हों और जब तक कि छोटे अल्पसंख्यक-वर्ग के उम्मीदवार के निर्वाचन की संभावना न हो।

श्रीमान्, जनगणना का विषय बड़ा ही महत्वपूर्ण विषय है और मैं समझता हूं कि जिस प्रश्न को मेरे माननीय मित्र श्री ठक्कर बापा ने उठाया है उसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये। इस विषय पर अनेकों माननीय सदस्य बोल चुके हैं और हम सब यह जानते हैं कि विभाजन के पश्चात् कुछ प्रान्तों में सन् 1941 की जनगणना के अंकों का प्रयोग वास्तव में संतोषजनक नहीं होगा। मैं आपको एक उदाहरण दूंगा। सिंध में तेरह लाख आदमी थे। दो लाख आदमियों को छोड़

कर, जो वहां हैं और जो परिवहन के अभाव के कारण नहीं लाये जा सके, 13 लाख सिन्धी देश के विभिन्न भागों में फैले हुये हैं। इनमें से चार लाख बम्बई में हैं और लगभग ढाई लाख संयुक्तप्रान्त में हैं। मैं आपको यह बता दूं कि उनमें से बहुत से अजमेर तथा अन्य विभिन्न राज्यों में हैं। मैं आपको यह भी बता दूं कि अजमेर की जनसंख्या में 45 प्रतिशत सिन्धी हैं। राजपूताना के राज्यों में, जयपुर और जोधपुर में लगभग दो लाख सिन्धी हैं। फिर हम सन् 1941 की जनसंख्या पर किस प्रकार विश्वास कर सकते हैं? और फिर सन् 1941 की जनसंख्या के अंक दोषपूर्ण हैं? युद्ध के कारण तत्सम्बन्धी सरकार द्वारा यह आज्ञा निकाली गई थी कि बहुत ही साधारण रूप में जनगणना की जाये। यदि आप सन् 1931 और उससे पूर्ववर्ती जनगणना को देखें, तो आपको विदित होगा कि सब खानों को पूरा-पूरा भरा जाता था, जिससे यह अनुमान हो जाता था कि हमारी जनगणना में कौन-कौन हैं। सन् 1941 की जनसंख्या में आधे खाने तो उड़ा दिये गये। इसका प्रभाव विभिन्न प्रान्तों की जनसंख्या पर पड़ा। अतः मैं समझता हूं कि यदि सन् 1941 की जनसंख्या को मान लिया गया तो विशेषकर उन चार या पांच प्रान्तों के लिये, जिनमें शरणार्थी पहुंचे हैं, वह बड़ी ही घातक नीति सिद्ध होगी। मैं मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन का वास्तविक अर्थ नहीं जानता हूं। संशोधन में कहा गया है "कि अन्तिम जनगणना जिसके अंक प्रकाशित हो चुके हैं"। यदि यह मान लिया जाय कि निर्वाचन सन् 1950 में होगा तो अन्तिम अंक सन् 1941 की जनसंख्या के होंगे। मैं इस बात को स्पष्ट कराना चाहूंगा कि "अन्तिम जनगणना जिसके अंक प्रकाशित हो चुके हैं" पद का क्या अर्थ है। सन् 1941 की जनसंख्या के अन्तिम अंक वर्तमान हैं। मेरा विचार है कि निर्वाचन के पूर्व जनगणना होनी चाहिये, विशेषकर उन प्रान्तों की जिनमें शरणार्थी पहुंचे हैं। अन्यथा, मैं समझता हूं कि यदि उनके निर्दोष होने पर भी सन् 1941 की जनगणना को मान कर उन्हें मत देने के अधिकार से वंचित किया गया तो उनके साथ बड़ा अन्याय होगा। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि यह बड़ा ही महत्वपूर्ण विषय है। मि. नज़ीरुद्दीन अहमद का संशोधन जटिल समस्यायें उत्पन्न करता है और उसको स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष, हमारे

[श्री एच.वी. कामत]

मान्यवर सहयोगी श्री ठक्कर बापा ने जिस तर्क को प्रस्तुत किया है तथा हमारे मित्र पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र ने उसका योग्यतापूर्ण समर्थन किया है उसी तर्क को पुष्ट करने के लिये मैं खड़ा हुआ हूं। यह साधारण ज्ञान का विषय है कि सन् 1941 की जनगणना विचित्र परिस्थितियों के अन्तर्गत की गई थी। एक बड़ा भयंकर विश्वयुद्ध हो रहा था, लाखों व्यक्ति बेघर हो गये थे और केवल हमारे ही देश में नहीं वरन् समस्त संसार में तितर-बितर हो गये थे। यह एक बात थी जिसके कारण सन् 1941 की जनगणना गलत हुई। उसके पश्चात् जल्दी-जल्दी एक के पश्चात् दूसरे दु:ख और आपत्तियां हम पर पड़ीं। चार वर्ष तक वह युद्ध रहा और युद्ध के मध्यकाल में दुर्भिक्ष पड़ा और युद्ध के पश्चात् ही देश का विभाजन हुआ। इन आपत्तियों के कारण लाखों की तादाद में लोग अपनी जगह से उखाड़ दिये गये, बहुत से लोगों का नाश हुआ और देश के एक भाग से दूसरे भाग को अनेकों व्यक्ति चले गये। यदि हम आगामी निर्वाचन में लोगों के साथ न्यायोचित व्यवहार करना चाहते हैं और उनको ठीक-ठीक प्रतिनिधान देना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि निर्वाचन के पूर्व ठीक-ठीक जनगणना की जाये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** आप विशेष जनगणना कर सकते हैं। बिना अंकों के आप किस प्रकार आगे बढ़ सकते हैं। मेरा ध्यान अंकों की ओर आकृष्ट किया गया था, न कि सन् 1941 की जनगणना की ओर।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं इस बात की ज़िद नहीं करता हूं कि निर्वाचन के पूर्व नियमित जनगणना की जाये, परन्तु हमारे पास केवल इसी अनुच्छेद के लिये ही अंक नहीं होने चाहियें वरन् वे अंक भी होने चाहियें जो उन समुदायों से सम्बद्ध हैं, जिनके लिये कि संविधान व्यवस्था करता है और जिनके लिए कि आरक्षण रखे जाने के लिये हम भी चिन्तित हैं। उदाहरणार्थ अनुसूचित समुदाय और मुसलमानों के लिये संरक्षण करने वाले आरक्षणों के लिये अंक होने चाहियें। जब तक हमें इन समुदायों की जनसंख्या न मालूम हो जिनके लिए विधान-मंडल में संरक्षण किया जायेगा, तब तक हम इन समुदायों के लिये किस प्रकार स्थानों की संख्या नियत कर सकते हैं। कुछ क्षेत्रों में यह आशा की जाती है कि कदाचित् शीघ्र ही जो लोग पाकिस्तान से भारत आये हैं और भारत से पाकिस्तान गये हैं वे फिर अपने-अपने निवास-स्थानों को चले जा सकेंगे। मेरे विचार से

ऐसी आशा करना व्यर्थ है और मैं नहीं समझता हूं कि निकट भविष्य में स्थिति पूर्ववत् हो सकेगी। श्रीमान्, मुझे याद है कि इस सम्बन्ध में गतवर्ष जब कि इस सभा में प्रान्तीय विधान पर वाद-विवाद हो रहा था, मेरे मित्र श्री खांडेकर ने अनुसूचित जातियों के बारे में यही प्रश्न उठाया था। उन्होंने कहा कि सन् 1941 ई. में हरिजनों की गणना दोषयुक्त थी और कम की गई थी और इस कारण वे चाहते थे कि आगामी निर्वाचन के पूर्व समस्त भारत की पुनः जनगणना की जाये। मेरी समझ में यह बात केवल हरिजनों के लिए ही लागू नहीं होती वरन् सब समुदायों के लिये लागू होती है और वह इसलिये कि नये विधान के अन्तर्गत विधान-मंडल में उनका ठीक-ठीक प्रतिनिधान होना चाहिए। श्री खांडेकर को उत्तर देते हुए, यदि मुझे ठीक-ठीक याद है तो, सरदार पटेल ने वचन तो नहीं दिया था परन्तु उन्होंने श्री खांडेकर तथा अन्य लोगों को अपने विचारों द्वारा यह आश्वासन दिया था कि इस विषय पर उचित ध्यान रखा जायेगा और ठीक विचार किया जायेगा। और यह भी कहा था कि निर्वाचन के पूर्व हम देश के विभिन्न समुदायों की ठीक-ठीक जनसंख्या निश्चित करने का पूरा प्रयत्न करेंगे। मेरे मित्र श्री अलगूराय शास्त्री ने अभी उस दिन इसी परिषद् में सिन्धी हिन्दुओं का कोई भी प्रतिनिधि न होने का उल्लेख किया था। यह एक बड़ी ही अव्यवस्था है कि विभाजन के पश्चात् पूर्वी पंजाब के गैर-मुसलमान अर्थात् हिन्दुओं और पश्चिमी बंगाल के हिन्दुओं के प्रतिनिधान पर फिर से विचार किया गया—इन लोगों के पश्चिमी पंजाब से पूर्वी पंजाब और पूर्वी बंगाल से पश्चिमी बंगाल में आने पर उनके प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ाई गई—पर सिन्ध बेचारा रह गया। सिन्ध का इस समय न तो इस परिषद् में ही कोई प्रतिनिधि है और न पाकिस्तान विधान-परिषद् में ही। उनके लिये जो एक स्थान नियत किया गया था वह भी नहीं रहा क्योंकि सिन्ध से जो हिन्दू भारत में आये, वे सब तितर-बितर हो गये। कुछ बम्बई में हैं और कुछ मध्यप्रान्त में और बाकी के सम्बन्ध में मैं नहीं जानता हूं कि वे कहां गये। अतः किसी भी प्रान्तीय परिषद् के लिये अपने प्रान्त से किसी सिन्धी का निर्वाचन करना कठिन है क्योंकि हमारी प्रतिनिधान की प्रणाली के अनुसार इस परिषद् में एक प्रतिनिधि भेजने के लिये कम से कम दस लाख व्यक्ति होने चाहियें। चाहे जो कुछ भी हो परन्तु आगामी निर्वाचन के पूर्व हमें इन सब लोगों की गणना कर लेनी चाहिये जो सिन्ध या पश्चिमी पंजाब या पूर्वी बंगाल या सीमा प्रान्त से भारत में आये हैं। जब तक हमारे पास इन बड़े-बड़े

[श्री एच.वी. कामत]

समूहों में आने वाले लोगों का, जिसका उदाहरण हमारे वर्तमान इतिहास में नहीं है, सही हिसाब नहीं होगा, तब तक ठीक-ठीक जनगणना के पूर्व निर्वाचन करने से अपने देश के लोगों के साथ अन्याय तथा अनुचित व्यवहार होगा। यदि नियमित जनगणना न हो सके तो जैसा कि मेरे मित्र ने सुझाया है एतदर्थ जनगणना तो कर ही ली जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष, श्रीमान्, मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने जो संशोधन पेश किया है उस संशोधन संख्या 1083 पर सूची 1 के संशोधन 25 को मैं स्वीकार करता हूं। मुझे खेद है कि अन्य संशोधनों को मैं स्वीकार नहीं कर सकता। श्रीमान्, सामान्य वाद-विवाद के अन्तर्गत दो प्रश्न उठाये गये हैं। एक प्रश्न मि. नज़ीरुद्दीन अहमद का संशोधन है। अनेकों वक्ताओं द्वारा यह बताया गया है कि गत जनगणना अर्थात् सन् 1941 की जनगणना के आधार पर किसी निर्वाचन का करना बहुत ही गलत होगा। मुझे विश्वास है कि इस विषय पर अनेकों वक्ताओं ने जो कुछ कहा है उसमें बहुत सार है। यह सच है कि कुछ क्षेत्रों में सन् 1941 की जनगणना किसी न किसी प्रकार से गलत जनगणना थी। कुछ समुदायों के पक्ष में और कुछ अन्य समुदायों के विरोध में तत्कालीन स्थानीय सरकार ने जनगणना को गलत रूप दिया था। इसके अतिरिक्त यह भी उतना ही सत्य है कि भारत के विभाजन के पश्चात् उसके कुछ प्रान्तों में उदाहरणार्थ पूर्वी पंजाब, बम्बई, पश्चिमी बंगाल और कुछ हद तक संयुक्तप्रान्त में भी जनसंख्या और साम्प्रदायिक अनुपात में बहुत परिवर्तन हो गया है। इस बात को विचार में रखते हुये कि विधान विभिन्न सम्प्रदायों का अपनी-अपनी जनसंख्या और सामान्य जनसंख्या के अनुपात के अनुसार प्रतिनिधान करने की व्यवस्था करता है, यह आवश्यक है कि केवल प्रत्येक विशिष्ट प्रान्त की समस्त जनसंख्या को ही सुनिश्चित नहीं किया जाये, वरन् विधान में निर्वाचन के विषय को निश्चित करने के पूर्व जिन विभिन्न सम्प्रदायों को प्रतिनिधान देने की हमने प्रत्याभूति दी है, उनके अनुपात का भी उनकी जनसंख्या के अनुसार सुनिश्चय किया जाये।

मुझे इस बात में सन्देह नहीं है कि निर्वाचन के पूर्व ठीक-ठीक जनगणना करने के पक्ष में जो अनेकों तर्क प्रस्तुत किये गये हैं, सरकार उन पर ध्यान देगी। यदि मुझे आज्ञा हो तो मैं यह कहूंगा कि मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के

संशोधन को स्वीकार करने के लिये प्रेरित करने वाले कारणों में से एक यह है कि उन्होंने 'last' (गत) शब्द को श्रेय न देकर 'latest' (अन्तिम) शब्द का प्रयोग किया है। मैंने सोचा कि 'last' (गत) शब्द में एक प्रकार की स्थानीयता का बोध होता है कि गत जनगणना से उस नियत काल के पश्चात् की गई जनगणना का आशय है, जो प्रत्येक दस वर्ष बाद होती है और अन्तिम गत जनगणना से उस जनगणना का बोध होता है जो निर्वाचन आरम्भ करने के पूर्व की गई हो।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैंने उन शब्दों का प्रयोग नहीं किया। मैंने "last preceding census" (अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना) कहा था।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** खैर, जो कुछ उन्होंने कहा उस पर मैंने अधिक ध्यान नहीं दिया। पर मेरा यह विचार अवश्य है कि नये विधान-मण्डल के लिये निर्वाचन आरम्भ करने के पूर्व सरकार के नई जनगणना करने में यह खण्ड कोई रुकावट नहीं डालता है। मैं समझता हूं कि इस बात से उन अनेकों सदस्यों को संतोष हो जायेगा जिनको इस विषय पर शंका है।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या मैं यह मान लूं कि आप यह आश्वासन देते हैं कि इस प्रकार की जनगणना की जायेगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं आश्वासन तो नहीं दे सकता, परन्तु विभिन्न प्रान्तों की समस्त जनसंख्या और उसके स्वरूप में जो महान् परिवर्तन हुये हैं, उनकी कोई भी सरकार उपेक्षा नहीं कर सकती। हमने जनसंख्या के एक बड़े भाग के प्रतिनिधान की प्रत्याभूति की है जिसमें अनेकों अल्पसंख्यक-वर्ग हैं। जैसा कि माननीय सदस्यों को विदित है पासंग के विषय पर बहुत वाद-विवाद हो चुका है और हम जानते हैं कि पासंग नहीं दिया गया है। यदि हम अब निर्वाचन करें और वर्तमान जनसंख्या के आधार पर स्थान नियत करें, जब कि स्थानान्तरण के कारण वह आधार रहा ही नहीं है, तो उसका फल यह होगा कि अनेकों समुदायों को पासंग मिल जायेगा और कुछ समुदायों को कोई प्रतिनिधान न मिलेगा। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की बातों से बचने के लिये और यह देखने के लिये कि किसी भी समुदाय को कैसा भी पासंग नहीं मिले, नि:सन्देह सरकार को यह देखना होगा कि जनगणना सही जनगणना है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या माननीय सदस्य का यह आशय है कि नये विधान के अनुसार तब तक निर्वाचन न किया जायेगा जब तक कि जनगणना न कर ली जाये।

**माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे तो यह केवल एक स्वाभाविक-सा परिणाम प्रतीत होता है क्योंकि निर्वाचन के लिये तब तक स्थान नियत नहीं किये जा सकते जब तक कि विभिन्न समुदायों की जनसंख्या को निश्चित न कर लिया जाय। अत: मुझे तो यह तर्कयुक्त परिणाम प्रतीत होता है और लगता है कि नई जनगणना करना अनिवार्य होगा।

दूसरा प्रश्न जिस पर श्री त्यागी, बेगम ऐज़ाज रसूल और कुछ अन्य सदस्यों ने जोर दिया है वह प्रधान के निर्वाचन के सम्बन्ध में है। प्रधान के निर्वाचन की दो रीतियां हैं। एक यह है कि उसका निर्वाचन उस रीति से किया जाय जिसे सभा के कोरे बहुमत के नाम से कहा जाता है। यदि किसी व्यक्ति को 51 प्रतिशत मत मिल जाते हैं तो उसका निर्वाचन हो जाये। प्रधान के निर्वाचन की यह एक रीति है और वह सीधी-सादी रीति है। इस रीति में यह हो सकता है कि बहुसंख्यक दल को यह शक्ति प्राप्त होगी कि वह प्रधान निर्वाचित करे और प्रधान के निर्वाचन में अल्पसंख्यक दल की कोई भी आवाज़ नहीं होगी। यह स्पष्ट है कि इस सभा का कोई भी सदस्य यह नहीं चाहेगा कि कोरे बहुमत से प्रधान का निर्वाचन किया जाये अथवा किसी ऐसी प्रणाली द्वारा उसका निर्वाचन किया जाये जिसमें अल्पसंख्यक-वर्ग कोई भाग न ले सके। इस कारण कोरे बहुमत द्वारा प्रधान के निर्वाचन का परित्याग करना पड़ा और हमें प्रधान के निर्वाचन की एक ऐसी व्यवस्था करनी पड़ी जिसमें अल्पसंख्यक-वर्गों की भी कुछ आवाज हो। प्रधान के निर्वाचन में अल्पसंख्यक-वर्गों को कुछ अधिकार देने की केवल रीति यही है कि निर्वाचक समूह पृथक् हों और यह व्यवस्था की जाय कि प्रधान को केवल बहुमत ही प्राप्त न हो परन्तु प्रत्येक अल्पसंख्यक-वर्ग से भी उसे कुछ मतों की संख्या प्राप्त हो। परन्तु फिर इसमें एक ऐसी बात आती है जिसे हम स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि हमने विधान में यह निर्धारित किया है कि पृथक् निर्वाचक समूह नहीं होंगे। अत: केवल यही रीति शेष रही कि निर्वाचन की कोई ऐसी प्रणाली रखी जाये। जिसमें अल्पसंख्यक-वर्गों का कुछ हाथ हो और वे भी भाग ले सकें और वह नि:सन्देह अनुपाती प्रतिनिधान की ही प्रणाली है जिसको विधान में निर्धारित किया गया है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** संक्राम्यता तो होगी ही। जब केवल एक ही व्यक्ति का निर्वाचन किया जाता है तो अनुपाती प्रतिनिधान किस प्रकार हो सकता है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इस प्रश्न के विवरण को मैं नहीं ले सकता हूं। ऐसा करने के लिये मुझे एक कक्षा खोलनी पड़ेगी और इस विषय पर भाषण देना होगा। इस कार्य का भार मैं इस समय नहीं ले सकता हूं। यह प्रणाली विख्यात है और प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि यह किस प्रकार क्रियान्वित की जाती है।

***उपाध्यक्षः** इन बाधाओं से यह विदित होता है कि कुछ सदस्य अनुपाती प्रतिनिधान के वास्तविक स्वरूप को ही नहीं जानते हैं। आप इन बाधाओं की ओर ध्यान न दें।

***मौलाना हसरत मोहानीः** यदि केवल एक ही सदस्य हो तो आप क्या करेंगे?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यदि एक ही सदस्य है तो उसका सर्वसम्मति से निर्वाचन हो जायेगा, (*हंसी*) और बहुसंख्यक-वर्ग तथा अल्पसंख्यक-वर्ग का प्रश्न ही नहीं उठेगा।

दूसरा प्रश्न जो श्री त्यागी ने पूछा था वह यह था कि उम्मीदवारों को हटा देने की कोई कार्यप्रणाली है या नहीं।

***श्री महावीर त्यागीः** श्रीमान्, एक सूचना-सम्बन्धी प्रश्न है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं, मैं नहीं मान सकता हूं। मैं आपके प्रश्न का उत्तर दे रहा हूं। आपका प्रश्न यह था कि जिस निर्वाचन की व्यवस्था की गई है क्या उसमें कोई परित्यजन की भी विधि है या नहीं। मेरा उत्तर यह है कि जी हां है, अनुपाती प्रतिनिधान में परित्यजन निहित है। अन्यथा उसमें कोई सार नहीं। हमने केवल यही किया है कि अनेकों अनुपाती प्रतिनिधान के स्थान में केवल एक अनुपाती प्रतिनिधान की व्यवस्था की है जिसमें नीचे से प्रत्येक उम्मीदवार को हटाया जाता रहेगा, जब तक कि केवल एक ही व्यक्ति न रह जाय जिसको कि निर्धारित भाग मिला है।

***श्री महावीर त्यागीः** परन्तु संसद् में वैकल्पिक मत की प्रणाली को अंगीकार किया जाता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वैकल्पिक अनुपाती का दूसरा नाम मात्र है।

श्रीमान्, इस विषय पर मुझे और अधिक कुछ नहीं कहना है।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, मैं जानना चाहता हूं.....।

***उपाध्यक्ष:** श्री त्यागी, मेरी कठिनाई यह है कि मैं मसौदा-समिति के अध्यक्ष को आपके प्रश्नों का उत्तर देने के लिये बाध्य नहीं कर सकता। और न मैं आपकी शंकाओं का समाधान करने के लिये उन्हें बाध्य कर सकता हूं।

मैं एक-एक करके इन संशोधनों पर मत ले रहा हूं। प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 44 के खण्ड (2) के उपखण्ड (ग) में 'such members' (इन सदस्यों) शब्दों के स्थान में 'the elected members of both Houses of Parliament' (संसद् के दोनों आगारों के निर्वाचित सदस्यों) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1078। प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 44 के खण्ड (3) के स्थान में निम्न खण्ड रखा जाये:

'(3) The election of the President shall be held by secret ballot and in accordance with the system of majority preferential voting by the single alternative vote.'"

[(3) प्रधान का निर्वाचन एकल वैकल्पिक मत के आधार पर बहुमत श्रेयदायक मतदान की पद्धति के अनुसार गूढ़-शलाका द्वारा होगा।]"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1079। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 44 के खण्ड (3) में से 'in accordance with the system of proportional representation' (अनुपाती प्रतिनिधान

रीति के अनुसार) शब्दों को निकाल दिया जाये।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 44 की व्याख्या के स्थान में निम्न व्याख्या रखी जाये:

*'Explanation*—In this article, the expression "population" means the population as ascertained at the last preceding census of which the relevant figures have been published.'"

(*व्याख्या*—इस अनुच्छेद में "जनसंख्या" से अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना में निश्चित की गई जनसंख्या अभिप्रेत है जिसके अंक प्रकाशित हो चुके हैं।)

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:**-प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 44 विधान का अंग बने।"

*प्रस्ताव स्वीकार किया गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 44 विधान में प्रविष्ट किया गया।*

---

## अनुच्छेद 45

***उपाध्यक्ष:** सम्बन्धित माननीय सदस्य संशोधन संख्या 1084 पेश कर सकते हैं। मैं माननीय सदस्यों से यह आशा करता हूं कि जितना संक्षेप में वे बोल सकें उतना संक्षेप में बोलें जिससे कि आज के वादानुवाद को समाप्त करने के पूर्व हम इस अनुच्छेद को समाप्त कर सकें। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि मैं किसी व्यक्ति से न बोलने या जिन महत्त्वपूर्ण बातों को वे रखना चाहते हैं, उनको न रखने के लिये कह रहा हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, माननीय सदस्य के संशोधन का सार वही है जो कि इस अनुच्छेद का है और खण्ड के एक विशेष भाग से सम्बन्ध

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

रखता है न कि उसके परादिकों से। क्या इस संशोधन को पेश करने में माननीय सदस्य का कोई उद्देश्य है?

***श्री मोहम्मद ताहिर:** संशोधन के अर्थ और अनुच्छेद में अन्तर है और मैं बताऊंगा कि क्या है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वह किसी रूप में भी संशोधन नहीं है: उसमें केवल शब्दों को इधर-उधर कर दिया गया है। अर्थ में कोई भी अन्तर नहीं है।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** कुछ अन्तर है·····।

***उपाध्यक्ष:** मैं किसी भी माननीय सदस्य के मार्ग में बाधा नहीं डालना चाहता हूं परन्तु इस संशोधन में कुछ अधिक सार नहीं प्रतीत होता है। फिर भी माननीय सदस्य उसे पेश कर सकते हैं।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं कि अनुच्छेद 45 के विशिष्ट भाग के स्थान में निम्न रखा जाये:

"The term of office of the President shall be five years from the date the President enters upon the Office."

(प्रधान के पद-प्रवेश की तिथि से प्रधान की पद-अवधि पांच वर्ष की होगी)

अभी यह प्रश्न उठाया गया था कि जिस रूप में यह अनुच्छेद है उसमें और इस संशोधन में कोई अन्तर नहीं है। पहले मैं अनुच्छेद के सम्बन्ध में कहूंगा। उसमें कहा गया है कि 'The President shall hold office for a term of five years from the date on which he enters upon his Office' (प्रधान अपनी पद-प्रवेश तिथि से पांच वर्ष की अवधि तक पद धारण करेगा।) मान लीजिये कि प्रधान का निर्वाचन सामान्य निर्वाचन के और संसद् के निर्माण के पश्चात् सन् 1950 में होता है, यदि 1951 या 1952 में प्रधान के पद में आकस्मिक रिक्त, स्थान हो जाता है, तो उस दशा में प्रधान पांच वर्ष तक पद धारण करेगा अर्थात् वह सन् 1951 से 1955 तक पद धारण करेगा और संसद् जिसका कि निर्माण सन् 1950 में होता है, उसकी समाप्ति सन् 1954 में हो जायेगी। मेरे संशोधन का अर्थ है कि प्रधान पांच वर्ष की अवधि तक पद धारण

करेगा, जिससे यह आशय है कि यदि किसी प्रकार से आकस्मिक रिक्त-स्थान होता है अथवा प्रधान का निर्वाचन सन् 1950 में होता है और फिर सन् 1951 में आकस्मिक रिक्त-स्थान होता है, तो रिक्त-स्थान में जिस प्रधान का निर्वाचन होगा उसके पद की अवधि सन् 1954 में समाप्त हो जायेगी अर्थात् पांच वर्ष की वह अवधि जब कि संसद् समाप्त होती है। यह अन्तर मैंने इस अनुच्छेद और उसके इस संशोधन में रखा है।

अब प्रश्न यह उठता है कि मैंने इस संशोधन को क्यों पेश किया है। मेरे समक्ष केवल यही प्रश्न है। मैं चाहता हूं कि प्रधान के निर्वाचन अथवा सामान्य निर्वाचन पर किसी अधिकार-सम्पन्न प्राधिकारी का प्रभाव न होने पाये। निर्वाचन सदैव स्वतन्त्र तथा प्रजातन्त्रात्मक रूप में हो। उदाहरण के रूप में यदि आकस्मिक रिक्त-स्थान में किसी व्यक्ति को प्रधान चुन लिया जाता है और केन्द्र में संसद् की अवधि के समाप्त होने के पश्चात् भी वह पद धारण किये रहता है, तो इसका अर्थ यह होगा कि वह व्यक्ति जो प्रधान के पद पर होगा, सामान्य निर्वाचन और यहां तक कि प्रधान के निर्वाचन में भी सरलता से प्रभाव डाल सकेगा। श्रीमान्, मैं यह चाहता हूं कि सामान्य निर्वाचन अथवा प्रधान के निर्वाचन में किसी प्रकार से भी कोई प्रभाव न पड़े। अतः जिस रूप में यह अनुच्छेद है यदि उसका अभिप्राय यह है कि आकस्मिक रिक्त-स्थान में जिस प्रधान का निर्वाचन किया जाता है वह पांच वर्ष में से शेष अवधि तक के लिये ही पद धारण करे, तब तो मैं अपने संशोधन पर जोर नहीं दूंगा। परन्तु यदि इसका अभिप्राय यह है कि संसद् की पद-अवधि समाप्त हो जायेगी और प्रधान अपने पद को धारण करता रहेगा, तब मेरा संशोधन अवश्य रहेगा और मैं उस पर जोर दूंगा। इन शब्दों के साथ मैं संशोधन पेश करता हूं और आशा करता हूं कि स्थिति स्पष्ट की जायेगी।

(संशोधन संख्या 1085 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन 1086 को पेश करने की आज्ञा नहीं दी जाती है क्योंकि वह शाब्दिक संशोधन है।

संशोधन संख्या 1087 और 1088 समानार्थी हैं। डॉ. अम्बेडकर संशोधन संख्या 1087 पेश कर सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं: "कि अनुच्छेद 45 के परादिक (क) में 'resignation' शब्द के स्थान में 'writing' शब्द रखा जाये।"

***श्री मोहम्मद ताहिर:** उपाध्यक्ष, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 45 के परादिकों के खण्ड (क) में 'Chairman of the Council of States and the Speaker of the House of the Poeple' (राज्य-परिषद् के सभापति और लोक-सभा के अध्यक्ष) शब्दों के स्थान में 'members of the Parliament' (संसद् के सदस्यों) शब्द रखे जायें।"

मैं बहुत लम्बा भाषण नहीं दूंगा। मैं केवल यही निवेदन करना चाहता हूं कि संसद् के सदस्यों द्वारा निर्वाचित प्रधान यदि त्यागपत्र द्वारा अपना पद त्याग करना चाहता है तो उचित रूप से यही वांछनीय है कि वह अपना त्यागपत्र संसद् के सदस्यों को सम्बोधित करे न कि किसी अन्य व्यक्ति को। त्यागपत्र कार्यालय में दिया जाये अध्यक्ष को अथवा राज्य-परिषद् के सभापति को, परन्तु अपने त्याग-पत्र में वह संसद् के सदस्यों को सम्बोधित करे जिन्होंने उसका प्रधान के रूप में निर्वाचन किया है न कि किसी अन्य व्यक्ति को।

***उपाध्यक्ष:** इसके पश्चात् संशोधन संख्या 1090 श्री बी. एम. गुप्ते के नाम से है। उस पर उनका संशोधन भी साथ है (चौथा सप्ताह, सूची 1 संख्या 26)।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई : जनरल): मैं कुछ थोड़े परिवर्तित रूप में इस संशोधन को पेश करना चाहता हूं। परिवर्तन केवल रस्मी है। इस खण्ड की पुनर्व्यवस्था के सम्बन्ध में है। मैं उसको परिवर्तित रूप में पेश करने की आपसे तथा इस महान् सभा से अनुमति चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** क्या सभा श्री गुप्ते को अपना संशोधन कुछ परिवर्तित रूप में पेश करने की अनुमति देती है? यद्यपि इस समय इसकी प्रतियां सदस्यों को नहीं दी जा सकती हैं इसलिये श्री गुप्ते मूल संशोधन तथा उसके परिवर्तित स्वरूप को पढ़ें।

***माननीय सदस्य:** ठीक है।

***श्री बी.एम. गुप्ते:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधन संख्या 1090 के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये:

(1) अनुच्छेद 45 को उसी अनुच्छेद के खण्ड (1) के रूप में पुन: अंकित किया जाये।

(2) इस प्रकार उपरोक्त खण्ड के पुनः अंकित परादिकों के खण्ड (क) में 'Chairman of the Council of States and the Speaker of the House of the People' (राज्य-परिषद् के सभापति और लोक-सभा के अध्यक्ष) शब्दों के स्थान में 'Vice-President' (उपप्रधान) शब्द रखा जाये।

(3) इस प्रकार पुनः अंकित अनुच्छेद में निम्न खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(2) Any resignation addressed to the Vice-President under clause (a) of the proviso to clause (1) of this article shall forthwith be communicated by him to the Speaker of the House of the Poeple.'

[(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के परादिकों के खण्ड (क) के अन्तर्गत उप-प्रधान को सम्बोधित किसी भी त्यागपत्र की संसूचना उप-प्रधान द्वारा तत्काल लोक-सभा के अध्यक्ष को दी जायेगी।]"

श्रीमान्, विधान के मसोदे में वर्तमान रूप में यह खण्ड यह व्यवस्था करता है कि त्यागपत्र दो व्यक्तियों को सम्बोधित किया जायेगा, राज्य-परिषद् के सभापति को और लोक-सभा के अध्यक्ष को। यह स्पष्टतया असुविधाजनक है। अतः यह अच्छा होगा कि इस प्रकार का प्रावधान बनाया जाये कि त्यागपत्र एक ही व्यक्ति को भेजा जाये और रिक्त-स्थान की पूर्ति हेतु कार्यारम्भ करने के लिये वही उत्तरदायी हो। और इस कार्य के लिये सबसे उपयुक्त व्यक्ति उप-प्रधान ही है। अतः मैंने यह व्यवस्था की है कि उप-प्रधान ही त्यागपत्र ले। पर इसके साथ-साथ यह वांछनीय है, लोक-सभा का अध्यक्ष भी उससे परिचित हो जाये। इस कारण अनुवर्ती खण्ड द्वारा मैंने यह व्यवस्था की है कि उप-प्रधान तुरन्त ही त्यागपत्र की संसूचना लोक-सभा के अध्यक्ष को दे। अतः मैं आशा करता हूं कि यह संशोधन डॉ. अम्बेडकर तथा सभा को मान्य होगा।

***उपाध्यक्षः** क्या श्री कामत इस पर (चौथा सप्ताह, सूची 1 संख्या 27) संशोधन पेश करना चाहते हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** नहीं, वह गुप्ते द्वारा अभी प्रेषित संशोधित संशोधन के अन्तर्गत आ जाता है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 45 के परादिकों के पैरा (क) में तथा अन्य स्थानों में जहां 'House of the People' (लोक-सभा) शब्द आये हों इन शब्दों के स्थान में 'National Congress' (राष्ट्रीय कांग्रेस) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, भावी विधान में केन्द्र में दो आगार होंगे, लोकप्रिय आगार को लोक-सभा और उत्तर आगार को राज्य-परिषद् कहा जायेगा। मेरी प्रस्थापना यह है कि लोकप्रिय आगार का नाम राष्ट्रीय कांग्रेस रखा जाये जिसने देश को स्वतन्त्रता प्राप्त कराने में महान् कार्य किये हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** परन्तु कांग्रेस तो वास्तव में अब भी वर्तमान है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं राष्ट्रीय कांग्रेस के नाम को अमर रखना चाहता हूं और यह चाहता हूं कि स्वयं विधान में उसका नाम रख दिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** मेरे विचार से आप सभा का समय न लें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं बहुत ही संक्षेप में बोलूंगा। गत साठ अथवा इससे भी अधिक वर्षों से स्वतन्त्रता का युद्ध हो रहा है और जयपुर अधिवेशन में डॉ. पट्टाभि सीतारमैया की अध्यक्षता में वह उच्च शिखर पर पहुंचने को है। मैं निवेदन करता हूं कि राष्ट्रीय कांग्रेस के संघर्षों और सेवाओं को सरकारी रूप से स्वीकार किया जाये और लोकप्रिय आगार का नाम उसके नाम पर रखा जाये।

मेरे पास अमरीका का उदाहरण है जहां विधान-मण्डल को कांग्रेस कहा जाता है। मैंने लोकप्रिय आगार का यह नाम रखना पसन्द किया है क्योंकि वह वास्तव में लोक-इच्छा का प्रतीक है। मैं विश्वास करता हूं कि यह एक ऐसा संशोधन है जो भावना पर आश्रित है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** क्या आप कांग्रेस के सदस्य हैं?

***श्री एस. नागप्पा:** वे अब बनना चाहते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** किसी व्यक्ति के लिये यह आवश्यक नहीं है कि सत्य को मानने अथवा स्वीकार करने के लिये वह कांग्रेस का सदस्य हो।

***उपाध्यक्ष:** मैं आपसे यह चाहता हूं कि आप इस बात का ध्यान रखें कि हमारे पास केवल 20 मिनट ही रहे हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि केवल भावना-सम्बन्धी आधार पर इसको स्वीकार किया जाये। वास्तव में वर्तमान स्वतंत्रता की उच्चकोटि राष्ट्रीय कांग्रेस के खून, परिश्रम, आंसुओं और पसीने का प्रतीक है।

***उपाध्यक्ष:** क्या श्री कामत संशोधन संख्या 1092 को पेश करना चाहते हैं?

***श्री एच.वी. कामत:** इस पर गुप्ते द्वारा मेरे विचार पहले से ही प्रकट कर दिये गये हैं अत: उसके पेश करने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

(संशोधन संख्या 1093 और 1094 पेश नहीं किये गये।)

**ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर** (पूर्वी पंजाब : सिख): मेरा अमेंडमेंट यह है:

" 'That in clause 45 (b) of the proviso to article 45 after the words 'violation of the Constitution' the words 'or of law' be inserted.' "

(कि अनुच्छेद 45 के परादिक (ख) में 'संविधान' के पश्चात् 'अथवा विधि' शब्द प्रविष्ट किये जायें।)"

क्लॉज़ बी में प्रेज़िडेण्ट के मुतल्लिक यह कहा गया है:

"The President may for violation of the Constitution be removed from office by impeachment in the manner provided in artcile 50 of this Constitution."

(संविधान का अतिक्रमण करने पर प्रधान, इस संविधान के अनुच्छेद 50 में प्रावहित रीति से किये गये प्राभियोग द्वारा पद से निष्कासित किया जा सकेगा।)

[ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर]

लफ़्ज़ कान्स्टीट्यूशन के साथ लफ़्ज़ 'ला' (law) का आना भी बहुत जरूरी है। सिर्फ कान्स्टीट्यूशन के खिलाफ़ चलने पर ही नहीं बल्कि 'ला' (law) की खिलाफवर्ज़ी करने पर भी प्रेज़िडेण्ट के साथ इसी किस्म का बर्ताव होना चाहिए।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 45 के परादिक (ग) में 'term' (पद अवधि समाप्त हो जाने पर) शब्दों के पश्चात् 'or resignation as the case may be' (अथवा त्यागपत्र देने पर जैसी भी दशा हो) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

इस परादिक से प्रधान, अपनी पदावधि समाप्त हो जाने पर भी अपने उत्तराधिकारी के पद-प्रवेशन तक पदारूढ़ रहेगा। मैं इस परादिक को उस स्थिति में भी लागू करना चाहता हूं जब कि वह अपनी सामान्य पदावधि के समाप्त होने के पूर्व पद-त्याग करता है। यह संशोधन करीब-करीब एक मसौदा-सम्बन्धी विचारणीय संशोधन है।

***उपाध्यक्ष:** चूंकि इस अनुच्छेद के सामान्य वाद-विवाद पर किसी भी सदस्य ने बोलने की इच्छा प्रकट नहीं की है मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर से वादानुवाद का उत्तर देने के लिये निवेदन किया जाये। अभी मुझे एक परची मिली है जिसमें भाषण करने की प्रार्थना की गई है। वह बहुत देर बाद आई है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं जिस संशोधन को स्वीकार कर सकता हूं वह श्री गुप्ते के संशोधन द्वारा संशोधित संशोधन संख्या 1090 है। औरों के लिये मुझे खेद है कि मैं उन्हें स्वीकार नहीं कर सकता हूं। ऐसा कोई प्रश्न किसी सदस्य ने नहीं उठाया है जिसके लिये किसी व्याख्या की आवश्यकता हो।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधनों पर मत ले रहा हूं।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 45 के विशिष्ट भाग के स्थान में निम्न रखा जाये:

'The term of office of the President shall be five years from the date the President enter upon the Office.'"

(प्रधान के पद-प्रवेश की तिथि से प्रधान की पद-अवधि पांच वर्ष की होगी।)

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 45 के परादिक (क) में 'resignation' शब्द के स्थान में 'writing' शब्द रखा जाये।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 45 के परादिकों के खण्ड (क) में 'Chairman of the Council of States and the Speaker of the House of the People' (राज्य-परिषद् के सभापति और लोक-सभा के अध्यक्ष) शब्दों के स्थान में 'members of the Parliament' (संसद् के सदस्यों) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 26 (क) द्वारा परिवर्तित रूप में संशोधन संख्या 1090 जो श्री बी.एम. गुप्ते के नाम से है उस पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन संख्या 1090 के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये:

(1) अनुच्छेद 45 को उसी अनुच्छेद के खण्ड (1) के रूप में पुन: अंकित किया जाये।

(2) इस प्रकार उपरोक्त खण्ड के पुन: अंकित परादिकों के खण्ड (क) में 'Chairman of the Council of States and the Speaker of the House of the People' (राज्य-परिषद् के सभापति और लोक-सभा के अध्यक्ष) शब्दों के स्थान में 'Vice-President' (उप-प्रधान) शब्द रखा जाये।

(3) इस प्रकार पुनरांकित अनुच्छेद में निम्न खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(2) Any resignation addressed to the Vice-President under clause (a) of the proviso to clause (1) of this

[उपाध्यक्ष]

article shall forthwith the communicated by him to the Speaker of the House of the People.' "

[इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के परादिकों के खण्ड (क) के अन्तर्गत उप-प्रधान को सम्बोधित किसी भी त्याग-पत्र की संसूचना उप-प्रधान द्वारा तत्काल लोक-सभा के अध्यक्ष को दी जायेगी।]"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

**उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 45 के परादिकों के पैरा (क) में तथा अन्य स्थानों में जहां 'House of the People' (लोक-सभा) शब्द आये हों इन शब्दों के स्थान में 'National Congress' (राष्ट्रीय कांग्रेस) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 45 के परादिक (ख) में 'violation of the Constitution (संविधान) के पश्चात् 'or of law' (अथवा विधि) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 45 के परादिक (ग) में 'term' (पद-अवधि समाप्त हो जाने पर) शब्दों के पश्चात् 'or resignation as the case may be' (अथवा त्यागपत्र देने पर जैसी भी दशा हो) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

**उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 45 विधान का अंग बने।"

*प्रस्ताव स्वीकार किया गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 45 विधान में प्रविष्ट किया गया।*

***श्री टी. टी. कृष्णमाचारी:** आगे के अनुच्छेद पर केवल एक छोटा-सा संशोधन है।

---

## अनुच्छेद 46

***उपाध्यक्ष:** अब हम इसके आगे के अनुच्छेद पर विचार करेंगे। सभा के विचारार्थ अनुच्छेद 46 प्रस्तुत है।

चूंकि संशोधन संख्या 1097 अनुच्छेद के निकालने के सम्बन्ध में है अत: मैं उसे पेश करने की आज्ञा नहीं देता हूं। चूंकि इस मूल संशोधन को नियमविरुद्ध कर दिया गया है, अत: प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना का इस संशोधन पर जो संशोधन है वह भी गिर जाता है।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 46 में से 'once but only once' (एक बार, पर एक बार ही) शब्द निकाल दिये जायें।"

मेरा संशोधन बहुत सादा है। यह इस प्रभाव का है कि यदि कोई योग्य तथा दक्ष व्यक्ति मिलता है तो पुनर्निर्वाचन द्वारा और जब तक उसमें सेवा करने की योग्यता तथा दक्षता है, तब तक जनता को उसकी सेवाओं का लाभ उठाने के लिये दूसरी पदावधि के लिये क्यों न रखा जाये।

(संशोधन संख्या 1099 पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 46 में 'only once' (का पात्र होगा) शब्दों के पश्चात् 'but he shall not be so eligible if he has been removed from office by impeachment in the manner provided in article 50' (परन्तु यदि अनुच्छेद 50 में प्रावहित रीति से किये गये प्राभियोग द्वारा उसे पद से निष्कासित किया जाता है तो वह उसका पात्र न होगा) जोड़ दिये जायें।"

[श्री एच.वी. कामत]

यह अनुच्छेद जिस रूप में है उसी रूप में उस पर विचार करते हुये भी मैं समझता हूं कि किसी सीमा तक इस अनुच्छेद के विषय को स्पष्ट करने के प्रयोजन मात्र के लिये यह संशोधन आवश्यक है। परन्तु अब श्री कृष्णचन्द्र शर्मा द्वारा प्रस्तुत संशोधन को दृष्टि में रखते हुये हमारे लिये आवश्यक है कि हम इसे पूर्णतया स्पष्ट कर दें। यदि श्री शर्मा का संशोधन स्वीकार किया जाता है तो पहली या दूसरी पदावधि के कुछ वर्षों के पश्चात् कोई व्यक्ति प्रधान पद के लिये फिर चुनाव लड़ सकता है। इस संशोधन के विरूद्ध यह कहा जा सकता है कि जो कोई दल उम्मीदवार को नामज़द करेगा वह किसी ऐसे व्यक्ति को नामज़द नहीं करेगा जिसे प्राभियोग द्वारा पद से निष्कासित किया गया हो। परन्तु इन बातों को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार का प्रावधान आवश्यक हो जाता है कि जनता बहुत ही अल्पकाल तक किसी बात को स्मरण रखती है और दल भी थोड़े समय तक ही स्मरण रखता है तथा संसार के अनेक देशों में ऐसे उदाहरण पाये जाते हैं कि जब लोग पहले की बातों को भूल जाते हैं तो वे लोग, जिन पर भ्रष्टाचार तथा अन्य नीच कार्यों का अभियोग चलाया गया है और जिनको इस सम्बन्ध में दोषी ठहराया गया है, कुछ समय पश्चात् किसी न किसी पद पर प्रतिष्ठित हो गये हैं। ऐसी बातें अनेकों देशों में हुई हैं और हमारे देश में भी ऐसी बातों के होने की कम सम्भावना नहीं है। ईश्वर क्षमा करें, जब कि दल की स्मरण शक्ति अल्पकालीन होती है तो वह इस बात को पूर्णतया नहीं रोक सकता कि अनेकों वर्षों के पश्चात् उसी व्यक्ति को फिर चुनाव लड़ने के लिये खड़ा न किया जाये जो भ्रष्टाचार तथा अन्य अपकार्यों का दोषी ठहराया गया था। अत: इस अनुच्छेद के समस्त प्रसंग को स्पष्ट करने के लिये ही मैंने यह संशोधन पेश किया है कि जिस व्यक्ति पर प्राभियोग किया गया हो वह किसी समय भी 5, 10 अथवा 20 वर्ष पश्चात् निर्वाचन के लिये खड़ा न हो सके। यह निर्धारण करना आवश्यक है, जिस व्यक्ति को प्राभियोग द्वारा पद से निष्कासित किया गया हो उसे भारतीय संघ के प्रधान पद के लिये चुनाव लड़ने का अधिकार नहीं होना चाहिये। फिर चाहे लोग इस बात को भूल ही क्यों न गये हों या उसकी उपेक्षा करना ही क्यों न चाहते हों।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, जिस संशोधन को मैं पेश कर रहा हूं यह बहुत साधारण है। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 46 में निम्न परादिक लगा दिया जाये:

'Provided that it will not apply in the case of a Vice-President who holds or who has held such office only temporarily in an acting capacity.' "

(पर यह उस उप-प्रधान पर लागू नहीं होगा जिसने अस्थायी रूप में स्थानापन्न होकर पद-धारण किया हो अथवा कर रहा हो।)

यह अनुच्छेद इस बात की अनुमति देता है कि प्रधान द्वितीय बार पद-धारण कर सकता है। मेरा प्रश्न यह है कि जिस उप-प्रधान ने अस्थायी रूप में स्थानापन्न होकर पद-धारण किया हो अथवा जो उस समय कर रहा हो उसे प्रधान पद के निर्वाचन के लिये दुबारा खड़े होने से न रोका जाये। यदि उप-प्रधान के स्थानापन्न रूप में कार्य करने को पद-धारण करना नहीं समझा जाता है या उसका कुछ और अर्थ लिया जाता है तब तो मेरा संशोधन आवश्यक नहीं होगा। या तो डॉक्टर अम्बेडकर मेरे संशोधन को स्वीकार करें और या अपने भाषण में वे कृपा कर इस बात को स्पष्ट करें।

***उपाध्यक्ष:** यद्यपि यह अनुच्छेद बहुत ही छोटा और साधारण-सा है फिर भी अनेकों सदस्य इस पर बोलना चाहते हैं। मैं उनको बोलने से नहीं रोकना चाहता हूं पर मैं उनसे निवेदन करूंगा कि वे अपनी पर्चियां वापस ले लें। यदि वे एक थकी-थकाई सभा के समक्ष भाषण देने का आग्रह करते हैं तो मुझे विश्वास है कि जिस बात पर वे जोर देंगे उस पर समुचित विचार नहीं होगा। मेरे विचार गलत हो सकते हैं पर मेरे विचार हैं यही।

***एक माननीय सदस्य:** अपनी भाषण देने की प्रार्थना को हम वापस लेते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष, श्रीमान्, "एक बार, पर एक बार ही" शब्दों के हटाने के लिये जो श्री शर्मा का संशोधन संख्या 1098 है उसे स्वीकार करने के लिये मैं तैयार हूं।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

श्री कामत के संशोधन के सम्बन्ध में मैं समझता हूं कि इस विषय पर वाद-विवाद करने के लिये वह समय उपयुक्त होगा जब कि प्रधान पद के लिये खड़े होने वाले व्यक्ति की योग्यताओं का प्रश्न प्रस्तुत किया जायेगा।

श्री त्यागी से मैं यह कहूंगा कि "एक बार, पर एक बार ही" शब्दों के हटा देने से उपाध्यक्ष के सम्बन्ध में जो उनका भय है वह निराधार हो जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं एक-एक करके संशोधनों पर मत लूंगा।

संशोधन संख्या 1098। प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 46 में से 'once but only once' (एक बार, पर एक बार ही) शब्द निकाल दिये जायें।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1100।

***श्री एच.वी. कामत:** डॉ. अम्बेडकर के कथन पर विचार करते हुये मैं इस संशोधन पर जोर नहीं देना चाहता हूं।

(परिषद् की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** इसके पश्चात् श्री त्यागी का संशोधन है। डॉ. अम्बेडकर के भाषण के पश्चात् यह प्रश्न ही नहीं उठता है, परन्तु शायद कोई विधान-पंडित यह कहे कि मैंने उस पर मत नहीं लिया था। अत: मैं जानना चाहता हूं कि श्री त्यागी उसे वापस करना चाहते हैं या नहीं।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, मैं उसे वापस करना चाहता हूं।

(परिषद् की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधन रूप में अनुच्छेद 46 विधान का अंग बने।"

*प्रस्ताव स्वीकार किया गया।*

संशोधित रूप में अनुच्छेद 46 विधान में जोड़ दिया गया।

***उपाध्यक्ष:** एक सुझाव है कि कुछ दिनों के लिये सभा स्थगित की जाये और इसका कारण आप सबको विदित ही है। वर्तमान नियमों के अनुसार अध्यक्ष को तीन दिन से अधिक काल के लिये सभा विसर्जन करने का अधिकार नहीं है। अत: मैं सभा से निवेदन करता हूं कि वह मुझ 14 दिनों के लिये सभा स्थगित करने की अनुमति दे अर्थात् सोमवार 27 दिसम्बर के 10 बजे प्रात:काल तक के लिये।

***श्री टी. टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, एक प्रस्ताव पेश किया जाये कि सभा 14 दिनों के लिये स्थगित की जाये।

***उपाध्यक्ष:** मैं इस बात की चिन्ता नहीं करता हूं कि आप उसे किस प्रकार से स्वीकार करेंगे। यदि जो कुछ आप कहते हैं वही कार्यप्रणाली है तो मैं उसके लिये बिल्कुल तैयार हूं और उस रूप का एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाये।

***श्री सत्यानारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): आप सभा से यह पूछ सकते हैं कि क्या यह उसे मान्य है।

***उपाध्यक्ष:** क्या सभा 14 दिनों के लिये स्थगित होने के पक्ष में है?

***माननीय सदस्य:** जी हां।

***उपाध्यक्ष:** सोमवार, 27 दिसम्बर के प्रात: 10 बजे तक के लिये सभा स्थगित की जाती है।

*तत्पश्चात् सोमवर, 27 दिसम्बर सन् 1948 के प्रात: 10 बजे तक के लिये सभा स्थगित की गई।*

---

Con. 3. VII. 26. 48
350

अंक 7
संख्या 26

सोमवार,
27 दिसम्बर
सन् 1948 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

# के

# वाद-विवाद

# की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी) 1715-1788

[अनुच्छेद 47, नया अनुच्छेद 47-ए, अनुच्छेद 48, नया अनुच्छेद 48-ए और अनुच्छेद 49 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

सोमवार, 27 दिसम्बर 1948 ई.

---

*भारतीय विधान-परिषद् कान्स्टीट्यूशन हाल नई दिल्ली में प्रातः दस बजे उपाध्यक्ष महोदय (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) के सभापतित्व में समवेत् हुई।*

---

***उपाध्यक्ष (डॉक्टर एच.सी. मुकर्जी):** मुझे अभी हमारे अध्यक्ष का एक पत्र मिला है, जिसमें उन्होंने मुझे सूचित किया है कि उनका स्वास्थ्य काफी सुधरा है, किन्तु तबीयत थोड़ी-सी फिर खराब हो जाने से उन्हें कुछ दिन आराम करना पड़ा है। किन्तु उन्हें आशा है कि वे अगले वर्ष के आरम्भ तक यहां आ जायेंगे और 3 जनवरी से परिषद् की कार्यवाही स्वयं चलाना आरम्भ कर देंगे। मुझे विश्वास है कि परिषद् मुझे अनुमति देगी कि मैं उन्हें अभिवादन भेजूं तथा उन्हें विश्वास दिलाऊं कि हम उनका कार्य हल्का करने के लिये यथासम्भव प्रगति करने का प्रयत्न करेंगे। क्या परिषद् की ऐसी इच्छा है?

***सदस्यगण:** हां, हां।

---

## विधान का मसौदा-(जारी)

### अनुच्छेद 47

***उपाध्यक्ष:** अब हम वाद-विवाद पुनरारम्भ करेंगे और अनुच्छेद 47 से शुरू करेंगे।

(संशोधन संख्या 1102 और 1103 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 1104, 1105 और 1106 सदृश आशय के हैं; संशोधन संख्या 1104 पेश नहीं किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 1104, 1105, 1106 और 1107 पेश नहीं किये गये।)

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[उपाध्यक्ष]

संशोधन संख्या 1108 प्रोफेसर के.टी. शाह का है। मैं उनका ध्यान नये उप-खण्ड अर्थात् उप-खण्ड (घ) की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जिसे इस संशोधन द्वारा जोड़ने का प्रस्ताव किया जा रहा है। वे कृपया इसकी अनुच्छेद 47 के खण्ड (1) से तुलना करें। यह उन्हें निश्चय करना है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): अनुच्छेद 47 के खण्ड (1) में कुछ योग्यतायें दी हुई हैं। मैं जो प्रस्ताव करना चाहता हूं वह नकारात्मक ढंग का है, अत: मेरे विचार में दोनों साथ-साथ चल सकते हैं।

***उपाध्यक्ष:** अच्छा।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** श्रीमान्, क्या मैं पेश कर सकता हूं?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): क्या मैं यह बता सकता हूं कि इस संशोधन के दूसरे भाग के पेश होने में पहले ही रुकावट है। हमने अनुच्छेद 46 को पहले ही संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया है, जिसके अनुसार प्रधान कितनी ही बार चुना जा सकता है। अत: इस संशोधन के उत्तरांश में रुकावट हो जाती है और वह पेश नहीं किया जा सकता।

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य ने जो कुछ कहा वह आपने सुन लिया है?

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** श्रीमान्, वह मैं सुन चुका हूं। मैं फिर निवेदन कर सकता हूं तो उससे भी उसी बात की पुष्टि होती है। मेरी समझ में नहीं आता कि यह अन्तिम रूपेण कैसे पारित हो गया।

***उपाध्यक्ष:** आप जो कुछ कहना चाहते हैं मैं उसे किसी तरह रोकना नहीं चाहता, किन्तु मुझे यह अवश्य दिखाई देता है कि उसकी आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैं अपनी मर्जी आप पर लादना नहीं चाहता।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं अच्छी तरह समझता हूं कि अनुच्छेद 46 में इस नये परिवर्तन का प्रभाव उत्तरांश पर पड़ता है, अत: मैं उस अंश को पेश नहीं करूंगा। दूसरा भाग अभी शेष है और यदि आप मुझे अनुमति देंगे तो दूसरे भाग को पेश करूंगा।

***उपाध्यक्षः** हां।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ग) के पश्चात् निम्न नया उपखण्ड रख दिया जाये:

'(d) and is not disqualified by reason of any conviction for treason, or any offence against the State, or any violation of the Constitution.' "

[(घ) और देश-द्रोह, राज्य के विरुद्ध किसी अपराध अथवा संविधान के उल्लंघन के अपराध पर दण्डित होने के कारण अयोग्य न ठहराया गया हो।]

संशोधित खण्ड इस प्रकार बन जायेगा:

"कोई व्यक्ति प्रधान निर्वाचित होने का पात्र न होगा जब तक कि वह:

(क) भारत का जनपद न हो,

(ख) पैंतीस वर्ष की आयु पूरी न कर चुका हो,

(ग) लोक-सभा के लिये सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता न रखता हो, और

(घ) देश-द्रोह, राज्य के विरुद्ध किसी अपराध अथवा संविधान के उल्लंघन के अपराध पर दण्डित होने के कारण अयोग्य न ठहराया गया हो।"

जैसा कि मैं अभी कह चुका हूं, मैं संशोधन रखना चाहता हूं उसमें नकारात्मक पहलू पर अर्थात् निर्योग्यताओं पर बल दिया गया है, जब कि खण्ड (क), (ख) और (ग) में योग्यताओं पर बल दिया है। हां, परिषद् ने अनुच्छेद 46 के मौलिक मसौदे में सन्निहित बाधाओं को हटा दिया है, जिसके अनुसार कोई भी दुबारा प्रधान के पद पर आसीन नहीं हो सकता था। मैं इस निर्णय को शिरोधार्य करता हूं। हां, मुझे खेद है कि परिषद् को यह बात पसंद आ गई, क्योंकि मुझे आशंका है कि प्रधान के पद पर असीमित समय के लिये रहने की सम्भावना से अवांछनीय परिणाम हो सकते हैं, जिन पर अब किसी को अधिक बोलने की आवश्यकता नहीं है। श्रीमान्, आपको स्मरण है कि रोम जनतंत्र की नींव, अथवा उसका नाश कहिये, सीज़र को आजीवन कांसल बनाकर रखी गई थी, जो बाद में वंशगत साम्राज्य बन गया। किन्तु जैसा कि मैं आरम्भ में ही कह

[प्रो. के.टी. शाह]

चुका हूं, अब परिषद् ने बुद्धिमतानुसार इस बाधा को प्रविष्ट करना अवांछनीय पाया है, अत: मैं परिषद् की शुभभावना को स्वीकार करता हूं और अपने संशोधन के उत्तरांश पर ज़ोर नहीं देता।

फिर भी मैंने अपने संशोधन में जो योग्यतायें सुझाई है, मेरे विचार में उन्हें स्पष्टत: तथा विशिष्ट रूप से रखना चाहिये। ऐसा कहना व्यर्थ है कि यह सब कुछ तो स्पष्ट है ही; और कोई मनुष्य, जिसमें जरा भी अक्ल हो, ऐसे मनुष्य को प्रधान नहीं बनाना चाहेगा, जो देश-द्रोह का अपराधी हो अथवा जिसने विधान का उल्लंघन किया हो। श्रीमान्, कई बातें ऐसी होती हैं जिन्हें साधारणतया लोग समझते ही हैं, पर हो सकता है कि भविष्य की अज्ञात परिस्थितियों में अथवा दलों के मोह में, और निर्वाचन के जोश में उनकी पूर्णत: उपेक्षा कर दी जाये और फल यह हो कि वे सब निर्योग्यतायें ध्यान में ही न रखी जायें।

अत: इस स्पष्ट निर्योग्यता का समावेश ऐसा अभिरक्षण है जिससे विधान स्वतंत्र रूप से तथा ईमानदारी से कार्यान्वित किया जा सके और जो, मेरे विचार में, परिषद् को स्वीकार्य होना चाहिये।

देश-द्रोह विषयक निर्योग्यता विशेषत: महत्वपूर्ण है, क्योंकि अब इस बारे में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जैसे कि तथाकथित युद्ध-अपराधों के लिये पराजित शत्रुओं पर मुकद्दमा चलाया जाना है। देश-द्रोह विषयक निर्योग्यता का विशेष महत्व है और विशेषतया वह इसलिये और भी है क्योंकि ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जिनसे कि किसी भी व्यक्ति के मन में यह विचार पैदा हो सकता है कि तथाकथित युद्ध-अपराधों के लिये पराजित शत्रुओं पर चलाये गये मुकद्दमों के समान ही उस पर ईमानदारी से किये गये उसके काम को भी उसकी हार के कारण तथा दलजनित उत्तेजनाओं के कारण दण्डनीय समझा गया है और उस काम के लिये उस पर दोष या अभियोग लगाया गया है और उस समय वर्तमान परिस्थितियों में न तो उसको अपनी सफाई पेश करने की सुविधा है और न उससे बचाव का अन्य कोई प्रभावी मार्ग है।

इस आशंका से मैं इस विषय में कोई संदेह की सम्भावना शेष नहीं रहने देना चाहता। विधान में यह बात शुरू से ही स्पष्ट कर देनी चाहिए कि देश-द्रोह के अपराध पर दण्डित कोई भी व्यक्ति प्रधान पद के लिये चुने जाने के अयोग्य होगा। मुझे यह दिखाई देता है कि इस संशोधन को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती; यद्यपि मेरा संशोधन तो मुलायम शब्दों में है गो कि मैं विधान के उल्लंघन को बड़ा भारी पाप मानता हूं, और मेरा पक्का विश्वास है कि यह

भी ऐसी निर्योग्यता ठहरा देनी चाहिये जिसके कारण कोई भावी उम्मीदवार प्रधान पद के लिये खड़ा न हो सके।

बाद के खण्डों को देखने से पता चलता है कि किसी व्यक्ति को संविधान के अतिक्रमण के अपराध में दण्डित किये जाने के बारे में ऐसे प्रावधान रखे हैं कि वह झूठे रूप से बच सके। यदि उन अभिरक्षणों के रहने पर भी, कानून के समुचित उपक्रम के अनुसार तथा न्याय के उचित प्रशासन के अनुसार, कोई मनुष्य किसी गम्भीर बात पर विधान के उल्लंघन के बारे में उचितरूपेण दण्डित हुआ है, तो मैं समझता हूं कि इस दण्ड का एक फल यह भी होना चाहिये कि वह उम्मीदवार होने के निर्योग्य हो जाये। मेरा विचार है कि इन युक्तियों के कारण विधान के प्रारूपकों को यह संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये और इसे मसौदे में समाविष्ट कर देना चाहिये, जिससे कि जो भी देश-द्रोह का अपराधी हो, अथवा विधान के उल्लंघन करने का अपराधी हो, उसे निर्योग्य घोषित किया जा सके।

मैं इसे परिषद् की स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1109 शाब्दिक है और पेश नहीं हो सकता। संशोधन संख्या 1110 से 1112 सदृश आशय के हैं। इनमें से प्रथम पेश हो सकता है। यह डॉ. अम्बेडकर के नाम में है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> "कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (2) में और खण्ड 2 की व्याख्या में, 'परिलाभ के पद अथवा स्थिति' इन शब्दों के स्थान पर, जहां भी वे हों, 'लाभ के पद' ये शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान्, इस संशोधन का अभिप्राय केवल मसौदे की भाषा को सुधारना है।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1111 । क्या इस पर मत लिये जाने चाहियें?

***श्री एच.वी. कामत:** डॉ. अम्बेडकर रास्ता काट कर निकल गये हैं। अब इस संशोधन का प्रश्न नहीं उठता।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1112 ।

***श्री मिहिर लाल चट्टोपाध्याय** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): वह तो पहले ही हो चुका, श्रीमान्!

(संशोधन संख्या 1113 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1114, 1115 और 1116 शाब्दिक है, अत: वे पेश नहीं किये जा सकते।

संशोधन संख्या 1117, डॉ. अम्बेडकर!

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (2) की व्याख्या के उपखण्ड (क) के स्थान पर निम्न पदावली रख दी जाये:

'(a) he is the governor of any State for the time being specified in Part I of the first schedule or is a Minister either for India or for any such State; or' "

[(क) वह प्रथम सूची के भाग 1 में उस समय उल्लिखित किसी राज्य का शासक है अथवा भारत का या ऐसे किसी राज्य का मन्त्री है; अथवा]

इस संशोधन का उद्देश्य उस निर्योग्यता को दूर करना है, जो इस कारण उत्पन्न हो सकती है कि राज्य का गवर्नर (शासक) अथवा कोई मन्त्री ताज के अधीन लाभ के पद पर आसीन है। यह वांछनीय है कि राज्य के गवर्नर तथा केन्द्र एवं राज्यों के मन्त्री को निर्वाचन के लिये खड़ा होने की अनुमति होनी चाहिये और लाभ के पद पर आसीन होने का नियम उनके मार्ग में बाधा नहीं बनना चाहिये।

(संशोधन संख्या 1118 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1119 से 1122 तक शाब्दिक है और पेश नहीं किये जा सकते।

(संशोधन संख्या 1123 पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 1124 ।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (2) की व्याख्या के खण्ड (ख) के आगे निम्न परादिक जोड़ दिया जाये:

'पर ऐसा कोई मन्त्री, ऐसे निर्वाचन के लिये उम्मीदवार खड़ा होने से पहले, अपना पद त्याग कर देगा।'"

श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि प्रारूपकों का यह अभिप्राय नहीं हो सकता कि मन्त्री के पद पर आसीन व्यक्ति मन्त्री भी बना रहे और उम्मीदवार भी हो सके। यह एक ऐसी बात है जो मुझे साधारण बुद्धि की बात लगती है और इस कारण स्वीकार हो जानी चाहिये; किन्तु हां, जहां असाधारण बुद्धि का साम्राज्य होता है, वहां साधारण बुद्धि की पूछ नहीं होती। अत: मैं कहना चाहता हूं कि यह बहुत भयावह बात है कि एक मंत्री मन्त्रित्व पद पर भी आसीन रहे और उम्मीदवार भी हो जायें, और वह या उसके कार्यकर्त्ता और प्रचारक ऐसे उपायों का आश्रय लें जो किसी भी वैधानिक शासन की प्रणाली में निन्दनीय होते हैं। अत: मूल विधान द्वारा उसका निषेध हो जाना चाहिये।

इस जोखिम से बचने के लिये मैं विधान में ही यह प्रावधान रखना चाहता हूं कि किसी मन्त्री को, जो ऐसे किसी पद के लिये उम्मीदवार खड़ा होना चाहता हो, पहले अपना पद त्याग करना चाहिये और इस सम्मान-लाभ के लिये अन्य किसी साधारण नागरिक के समान ही खड़ा होना चाहिये। उसने जो कुछ प्रभाव जमा लिया है, जो कुछ प्रतिष्ठा तथा सम्बन्ध आदि पहले ही स्थापित कर लिये हैं, वे तो रहेंगे ही, वह उनसे वंचित नहीं होगा। वे उसके लिये पूंजी के समान होंगे। किन्तु उस पर किंचित् भी ऐसा सन्देह नहीं होना चाहिये कि वह पदासीन होने के कारण निर्वाचित होने के लिये तथा बहुमत प्राप्त करने के लिये अपने पद का तथा अपनी प्रभावयुक्त स्थिति से लाभ उठा सकता है चाहे वास्तव में वह ऐसा करे ही नहीं। मैं फिर कहता हूं कि यह वैधानिक स्वतन्त्रता तथा देश के सुशासन की दृष्टि से बहुत गम्भीर बात है, अत: यह संशोधन बिना किसी विरोध के स्वीकृत हो जाना चाहिये। मैं इसे परिषद् में सविनय पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** इस संशोधन पर एक संशोधन है। वह पांचवें सप्ताह की प्रथम सूची में 27वां है और पण्डित ठाकुरदास भार्गव के नाम से है।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 1125 ।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (2) की व्याख्या में निम्न नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(c) Any person elected President shall, before he enters upon the functions and responsibilities of his office, declare

[प्रो. के.टी. शाह]

and divest himself of all his right, title, share, property and interest in any enterprise, business or trade which is in any way aided or supported by the Union Government; and all such right, title, share or interest of the President shall be bought up by the Government of India.' "

[(ग) जो व्यक्ति प्रधान चुना जायेगा, वह अपने पद के प्रकार्यों तथा दायित्व को ग्रहण करने से पूर्व, किसी ऐसे व्यवसाय, व्यापार अथवा वाणिज्य में अपने सारे अधिकार, उपाधि, अंश सम्पत्ति अथवा हित की घोषणा कर देगा तथा उनसे अपने को अलग कर लेगा जो जिन्हें संघ-सरकार की सहायता या समर्थन प्राप्त है और प्रधान के ऐसे समस्त अधिकार, उपाधि, अंश, सम्पत्ति अथवा हित को भारत-सरकार खरीद लेगी।]

श्रीमान्, मुझे इस परिषद् के सम्मुख जितने संशोधन पेश करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, मैं इस संशोधन को उनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझता हूं। अब के बाद विभिन्न अनुच्छेदों पर विभिन्न संशोधनों के रूप में इस विषय की पुनरावृत्ति होगी। पर मैं इस बात को स्पष्ट करना चाहता हूं कि मैंने भिन्न-भिन्न अनुच्छेदों में एक ही बात को भिन्न-भिन्न तरीकों से रखा है, केवल इसीलिये नहीं कि उस पर यह मौखिक आपत्ति की जा सकती है कि यह तो पहले ही हो चुका है, किन्तु इसका यह भी कारण है कि विभिन्न अनुच्छेदों में मेरा दृष्टिकोण तनिक भिन्न है। तदनुसार एक के अस्वीकृत होने पर भी, दूसरे का स्वीकृत होना आवश्यक तौर पर असम्भव नहीं हो जाता।

किन्तु, उन पर आपको तब विचार करना है जबकि अन्य संशोधन पेश किये जायें। किन्तु मैं यह कहना चाहता हूं कि इन संशोधनों में निहित सिद्धांत किसी राज्य की माननीय तथा आदर्श सरकार के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

श्रीमान्, आदर्शों की कोई कद्र मालूम नहीं होती। हां, उन्हें केवल सार्वजनिक मंचों से घोषित किया जाता है। सार्वजनिक मंचों से हम प्रतिदिन उन उच्च आदर्शों की दुहाई देते हैं जिनका अनुसरण करने का हम दावा करते हैं, और अपने मित्रों तथा प्रशंसकों को उनके अनुसरण के लिये कहते हैं, किन्तु हमारा सदा यही विचार होता है कि वह अन्य लोगों पर लागू होते हैं हम पर नहीं, और हमारी सदा यही भावना रहती है कि हमारा आचरण आलोचना से परे है। किन्तु मेरा

ख्याल है कि पूर्णतया संतों के राज्य में भी, ऐसा सुझाव रखना व्यर्थ नहीं है कि कम से कम राज्य का प्रमुख तो, सीज़र (Caesar) की पत्नी से भी अधिक मात्रा में, किसी भी संशय से परे होना चाहिये।

यदि उसकी कोई जायदाद है, यदि उसका कोई स्वार्थ है, यदि उसकी कोई सम्पत्ति है जिसके लिये वह अपनी नीति अथवा अपनी सरकार की नीति द्वारा, जिस पर कि वह कम से कम प्रभाव तो डाल ही सकता है, कोई लाभ प्राप्त कर सकता है, अथवा चाह सकता है, तो मेरा परिषद् से निवेदन है कि राज्य के प्रमुख के नाते वह तथा समस्त सरकार संदेह और निन्दा की पात्र बन सकती है, और ऐसा नहीं होने देना चाहिये।

श्रीमान्, इस परिषद् के बहुत से सदस्यों को, जिन्हें कि संसार के आधुनिक इतिहास में रुचि है, यह पता है कि नात्सी लोगों के शक्ति प्राप्त करने से पूर्व जर्मन रायक (Reich) के अत्यन्त प्रतिष्ठित प्रधान पर इस बात का भी प्रभाव पड़ा था कि प्रधान हिंडनबर्ग पूर्वी प्रसिया के जमींदारों को तथाकथित सहायता देने के लिये राजी हो गया, जिससे उसकी बदनामी हो गई, और जिससे कम से कम मेरे विचार में, नात्सी शक्ति की स्थापना हुई।

मुझे आशा है कि सब इस बात से सहमत होंगे कि जर्मनी के लिये यह अवांछनीय बात थी, और इसके परिणामों को लोग देख ही चुके हैं। अतः यह एक समुचित सम्मति है, कम से कम चेतावनी है, जिस पर चलना और अपने विधान में इसे कार्यान्वित करना हमारे लिये अच्छा होगा।

प्रधान को समस्त झंझटों से स्वतन्त्र होना चाहिये, सम्पूर्ण राज्य के हितों के अतिरिक्त उसका कोई हित नहीं होना चाहिये, उसे विधान में आभूषण के समान ही जो पद मिले उसके द्वारा अपने देश की यथाशक्ति सेवा करने की ही इच्छा होनी चाहिये और कोई अन्य प्रलोभन नहीं होना चाहिये। यह बात इतने उच्च महत्व की है कि मेरे विचार में हम उसके मार्ग में से प्रत्येक सम्भावित, प्रत्येक कल्पना में आने वाले प्रलोभन को हटाने में जितनी सख्ती करें और जितने निश्चयात्मक ढंग से काम लें उतना ही थोड़ा है। तदनुसार यह एक रचनात्मक, तथा सुनिश्चित आवश्यकता है कि प्रधान के अपने पद के प्रकार्यों को सम्भालने से पहले, उसके अपने पद पर आसीन होने से पहले उसे किसी सम्पत्ति, व्यवसाय अथवा व्यापार में अपने उपाधि, अधिकार अथवा हित की स्पष्ट घोषणा कर देनी चाहिये, जो कि प्रधान बनने से पहले उसके अधीन थे। इसके अतिरिक्त

[प्रो. के.टी. शाह]

उसे इनका परित्याग करना चाहिये, और सरकार को वह अधिकार ले लेना चाहिये अथवा उसे खरीद लेना चाहिये।

इसका अर्थ यह हुआ कि इस प्रावधान के होते हुये भी प्रधान पद पर आसीन व्यक्ति को प्रधान होने के कारण ही कोई दण्ड नहीं मिलता, कोई जुर्माना नहीं होता, वह निर्धन नहीं बनता। आर्थिक दृष्टिकोण से उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता, कोई कमी नहीं पड़ती। पर नैतिक दृष्टि से उसकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ जायेगी; यदि आपको नैतिकता का जरा भी विचार है, यदि आपका जरा भी यह आदर्श है कि आपके राज्य का प्रमुख सब प्रलोभनों से स्वतंत्र हो, आपके राज्य का प्रमुख सन्देह से भी परे हो, तो मैं आपसे कहता हूं कि आप सम्भवत: शिष्टाचार के नाते ही, मेरे इस संशोधन को अस्वीकार नहीं कर सकते।

इसके द्वारा मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप उन आदर्शों पर सच्चे रहे जिन्हें आप प्रतिदिन घोषित करते हैं और फिर भी आप में से कम से कम कई तो अपने जीवन में प्रतिदिन उन्हें तोड़ते भी हैं। ऐसी अवस्था में मुझे इस परिषद् से अनुरोध करने में कुछ भी संकोच नहीं है कि मेरे बताये हुये कारणों से यह सिद्धांत स्वीकार कर लेना चाहिये, जिससे कोई ऐसा न कह सके कि हम दूसरों को बहकाने के लिये ही आदर्शों का उपदेश करते हैं, ऐसे सिद्धान्तों की चर्चा करते हैं, जिनमें हमें स्वयं विश्वास नहीं है। इस संशोधन के पेश करने पर मुझे कोई खेद नहीं है, और मुझे विश्वास है कि इस संशोधन को बिना विरोध के स्वीकार कर लिया जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** अब हम संशोधनों पर मत लेना आरम्भ करेंगे।

***श्री एच.वी. कामत:** हम बहस करना चाहते हैं, श्रीमान्!

***उपाध्यक्ष:** यदि आप इस पर जोर देते हैं तो मैं इसकी अनुमति देने के लिये तैयार हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन संख्या 1108 के प्रथम भाग का समर्थन करने के लिये खड़ा हुआ हूं, जो उन्होंने अभी कुछ देर पूर्व पेश किया था। संशोधन संख्या 1108 के प्रथम भाग में भारतीय जनतंत्र के प्रधान के पद के लिये कुछ योग्यताओं का उल्लेख है। अन्तिम अधिवेशन के अन्तिम दिन हमारे विश्राम के

लिये स्थगित होने से पहले जब मैंने संशोधन 1100 पेश किया था, जिसमें प्रधान के पद के लिये कुछ निर्योग्यताओं का उल्लेख था, जैसे कि यदि उस पर विधान के उल्लंघन का आरोप लगाया गया हो तो पुनः प्रधान चुने जाने के लिये यह बात बाधास्वरूप बन जायेगी। जब मैंने वह संशोधन पेश किया था, तब डॉक्टर अम्बेडकर ने परिषद् को बताया था कि वह संशोधन समुचित स्थान पर नहीं रखा गया है, बल्कि बाद में कभी पेश होना चाहिये, अर्थात् अनुच्छेद 47 के समय पेश होना चाहिये जिसमें कि प्रधान-पद के लिये कुछ योग्यताओं और निर्योग्यताओं का वर्णन है। मुझे हर्ष है कि मेरे मित्र और विद्वान् प्रोफेसर के.टी. शाह ने अपने संशोधन में विधान के उल्लंघन और पारिणामिक दोषारोपण के विषय में यह विशेष प्रावधान रखा है। मैं समझता हूं कि विधान के अनुच्छेद 83 में यह प्रावधान है—अनुच्छेद 83 इस प्रकार है:

"कोई व्यक्ति संसद् के किसी आगार का सदस्य चुने जाने के लिये और सदस्य रहने के लिये निर्योग्य होगा.....

(ङ) यदि वह संसद् निर्मित किसी विधि के द्वारा अथवा अधीन इस प्रकार निर्योग्य कर दिया गया है।"

यह कल्पना की जा सकती है कि स्वतन्त्र भारत की भावी संसद् इस आशय के कुछ प्रावधान बनायेगी कि कौन योग्य होगा और कौन निर्योग्य होगा। किन्तु यह तो इतना अधिक महत्वपूर्ण विषय है कि इसे संसद् के निर्णय पर नहीं छोड़ा जा सकता। यह तो मामले के मूल तक जाता है, देश-द्रोह के कारण अथवा राज्य के विरुद्ध अपराध करने पर अथवा विधान के उल्लंघन के फलस्वरूप प्राभियोग के कारण निर्योग्यता—यह सम्भव है कि जब हम अनुच्छेद 83 को लें तब हम इनमें से कुछ अथवा इन सब निर्योग्यताओं को संसद् का सदस्य बनने के लिये निर्योग्यताओं में सम्मिलित कर सकते हैं, किन्तु इस विषय में हमें स्पष्ट होना चाहिये कि हम इन बातों को भावी संसद् के निर्णय पर छोड़ना चाहते हैं अथवा विधान में रखना चाहते हैं। अतः मैं डॉ. अम्बेडकर से प्रार्थना करता हूं कि जब वे इसका उत्तर देने उठें तब कृपया हमें बतायें कि वे इन निर्योग्यताओं को स्पष्टतः तथा प्रत्यक्ष—कर—कंगन के समान प्रत्यक्ष—निस्संदेह अनुच्छेद 83 में रखेंगे अथवा भावी भारत की संसद् पर छोड़ देंगे। श्रीमान्, प्रोफेसर शाह के संशोधन संख्या 1108 के विषय में इतना ही कहना है।

उनके द्वारा पेश किये हुये संशोधन संख्या 1125 के विषय में मेरा ऐसा विचार है कि इस संशोधन में सन्निहित सिद्धान्त बहुत अच्छा है। मैं इस सिद्धान्त

[श्री एच.वी. कामत]

का निस्संदेह स्वागत करता हूं कि भारतीय संघ का प्रधान निर्वाचित होने पर किसी व्यक्ति को संसद् के सामने, अथवा जनता और राष्ट्र के समक्ष तो घोषित कर देना चाहिये कि देश के व्यापार, वाणिज्य अथवा व्यवसाय में उसका कितना हित है अथवा अंश है। यदि मुझे ठीक स्मरण है तो विधान-मण्डल के गत बजट-अधिवेशन में इस सभा ने फैक्ट्री-एक्ट स्वीकार किया था, और उस कानून में एक खण्ड अथवा धारा इस आशय की भी थी कि किसी निर्मात्री (फैक्ट्री) के चिकित्साधिकारी को भी, अपने पद पर नियुक्त होने पर, संचालक-मण्डल अथवा प्रबन्धकों अथवा सरकार के समक्ष यह घोषित करना होगा कि उस निर्माणी में अथवा उस व्यवसाय से सम्बद्ध किसी प्रतिष्ठान में उसका क्या हित, अंश अथवा सदृश हित हैं। यदि हम किसी निर्माणी के छोटे से अधिकारी के विषय में ऐसी शर्त लगाना चाहते हैं तो यह तर्कसंगत दिखाई देता है कि भारतीय संघ के प्रधान को राष्ट्र और संसद् के समक्ष घोषणा करनी चाहिये कि देश के व्यापार, वाणिज्य अथवा व्यवसाय में उनका क्या हित है। मैं यह समझता हूं और स्वीकार करता हूं कि प्रधान को बहुत अधिक शक्ति नहीं दी गई है। किन्तु कोई इन्कार नहीं कर सकता कि प्रधान को बहुत प्रभाव का पद दिया गया है और यदि वह उचित अथवा ठीक प्रकार का व्यक्ति नहीं है तो वह इस प्रभाव का दुरुपयोग कर सकता है। हम अभी-अभी कांग्रेस के जयपुर-अधिवेशन से आये हैं—कम से कम कुछ तो आये ही हैं—जहां कि कुछ दिन पहले ही कांग्रेस ने सार्वजनिक व्यवहार के विषय में प्रस्ताव पारित किया था। क्या श्रीमान् हम गम्भीरतापूर्वक उस प्रस्ताव को कार्यान्वित करना चाहते हैं अथवा नहीं? चाहे जयपुर-अधिवेशन में पण्डित नेहरू के कहने पर कुछ शब्द हटा दिये गये थे, किन्तु फिर भी वह ऊपर से नीचे तक सब कांग्रेसजनों पर लागू होता है। और यदि वह सब कांग्रेसजनों पर लागू होता है तो हम जो सार्वजनिक व्यवहार की संहिता बना रहे हैं वह सब पर लागू होनी चाहिये चाहे वे कांग्रेस-जन हों अथवा नहीं, वह सब पर लागू होनी चाहिये जो कि इस देश में किसी पद पर आसीन हो, चाहे वह पद छोटा हो चाहे बड़ा। श्रीमान्, प्रधान का पद, प्रधान की स्थिति निस्संदेह अत्यन्त महत्वपूर्ण है और यदि सार्वजनिक व्यवहार के विषय में उस प्रस्ताव पर हम सच्चे हैं तो मैं इस परिषद् के समक्ष अवश्य अनुरोध करूंगा कि भारतीय संघ के प्रधान को अपने पद पर प्रतिष्ठित होने से पहले हमें संसद् को यह अवश्य बताना चाहिये कि देश के किसी व्यापार अथवा अन्य व्यवसाय में उसका कितना हित अथवा अंश है, अन्यथा यह हो सकता है कि किसी अवसर

पर, किसी प्रलोभन-युक्त मौके पर, वह अपनी स्थिति का दुरुपयोग कर ले और किसी व्यापार में सहायता दे दे जिसमें कि उसका अधिक हित हो।

श्रीमान्, मैं प्रोफेसर के.टी. शाह जितना आगे बढ़कर यह नहीं करना चाहता कि वे सब अधिकार तथा हित भारत-सरकार द्वारा खरीद लिये जाने चाहियें। मैं यह सुझाव रखना चाहता हूं कि एक बार जब वह यह घोषित कर दे कि किसी व्यापार अथवा व्यवसाय विशेष में उसका कितना हित अथवा अंश है, तब वह मामला संसद् के निर्णयार्थ छोड़ दिया जाना चाहिये कि उन अधिकारों अथवा हितों का क्या करना चाहिये, उनका क्या प्रबन्ध होना चाहिये अथवा अन्त होना चाहिये। यदि इतना ही मान लिया जाये तो प्रधान को अपने हितों की घोषणा करनी होगी तथा उनकी स्थिति बतानी होगी, और तब हम यह बात भारत की संसद् पर छोड़ सकते हैं कि इस मामले को संभाले और निश्चय करे कि उस विषय में वह क्या करेगी।

***उपाध्यक्षः** डॉक्टर अम्बेडकर!

***श्री श्यामानन्दन सहाय** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मुझे.....

***उपाध्यक्षः** मैं डॉक्टर अम्बेडकर का नाम बोल चुका हूं, मुझे खेद है। पर क्या आपका कोई संशोधन है?

**श्री श्यामानन्दन सहायः** नहीं, मेरा कोई संशोधन नहीं है, किन्तु....

***उपाध्यक्षः** यदि आप मेरे सामने आ जाते तो आप मुझे दिखाई दे जाते, क्योंकि उस दिशा में बुरा चौंधा पड़ता है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): किन्तु श्रीमान्, हमने अभी तक इस अनुच्छेद पर पर्याप्त वाद-विवाद नहीं किया है। केवल एक सदस्य बोले हैं।

***माननीय डॉक्टर बी. आर. अम्बेडकरः** यदि वे और वाद-विवाद चाहते हैं, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

***उपाध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर ने कृपा करके कह दिया है कि वे इस बात का ख्याल नहीं करते यदि अन्य सदस्य भी बोलें। क्या श्री श्यामानन्दन सहाय कृपया ध्वनि-यंत्र पर आयेंगे?

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्.....

***उपाध्यक्ष:** श्री सिधवा सदा अन्त में ही बोलेंगे। मैं उन्हें अन्त में बोलने का अवसर दूंगा।

***श्री श्यामानन्दन सहाय:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रोफेसर के.टी. शाह द्वारा प्रस्तुत संशोधन का समर्थन करने के लिये खड़ा हुआ हूं।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** प्रोफेसर शाह का कौन-सा संशोधन?

***श्री श्यामानन्दन सहाय:** संशोधन संख्या 1124, जो इस प्रकार है:

"पर ऐसा कोई मन्त्री, ऐसे निर्वाचन के लिये उम्मीदवार खड़ा होने से पहले अपना पद-त्याग कर देगा।"

श्रीमान्, ऐसा सदा नहीं होता कि मुझे प्रोफेसर के.टी. शाह के साथ सहमत होने का सौभाग्य प्राप्त हो, किन्तु मैं अनुभव करता हूं कि इस संशोधन विशेष में, जो कि उन्होंने पेश किया है, उन्होंने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया है और मैं नहीं समझता कि ऐसे मामले में, चाहे और कहीं और कुछ निर्णय हो चुका हो, पर इस परिषद् को दृढ़ होना चाहिये क्योंकि प्रोफेसर के. टी. शाह अपने संशोधन में ऐसा सिद्धान्त रखना चाहते हैं जो समस्त संसार में स्वीकृत हो चुका है (नहीं, नहीं, का शोर)। हां, हां। प्रत्येक को अपनी सूचना तथा ज्ञान यहां पेश करने का अधिकार है। विद्यमान कांग्रेस समितियों में भी जो व्यक्ति प्रान्तीय अथवा जिला कांग्रेस समिति के प्रधान-पद के लिये खड़ा होना चाहता है, उसे केवल मन्त्री-पद से ही नहीं वरन् विधान-मण्डल के सदस्य के पद से भी त्यागपत्र देना होता है।

***पण्डित बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): नहीं, नहीं, आप नहीं जानते। इस प्रकार बातों को व्यापक रूप मत दीजिये।

***श्री श्यामानन्दन सहाय:** मैं ऐसे प्रांत से आया हूं जहां यह नियम लागू है; यह बहुत अच्छा नियम है। यदि अन्य प्रान्त इसका अनुसरण नहीं कर रहे हैं तो इससे उन पर ही विपत्ति पड़ेगी।

***उपाध्यक्ष:** आपको इन बाधाओं का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री श्यामानन्दन सहाय:** मैं आपकी सम्मति मान लूंगा, श्रीमान्! यह बहुत अच्छी सम्पति है।

अब स्थिति यह है कि हमारे विधान में प्रधान की जो स्थिति होगी, वह बहुत उच्च तथा महत्त्वपूर्ण है। और यदि एक व्यक्ति, जो पहले से ही मन्त्री है तथा उस पद पर कार्य कर रहा है। प्रधान पद के लिये खड़ा हो, तो यह अत्यन्त निर्बुद्धि की तथा भयंकर बात होगी। चाहे वह मनुष्य स्वयं ऐसा नहीं चाहता हो, पर यह बात तो होती ही है कि शक्ति-प्राप्त मन्त्री को अन्य व्यक्ति की उपेक्षा सम्भवतया, प्रत्यक्ष रूपेण तथा अप्रत्यक्ष रूपेण, अधिक समर्थन प्राप्त होगा। अतएव यह तो केवल उचित तथा न्यायसंगत ही होगा कि प्रधान का निर्वाचन इस प्रकार किया जाये कि किसी व्यक्ति को अपने विरोधी की अपेक्षा जरा भी अधिक अच्छी स्थिति प्राप्त नहीं हो।

इस समय देश में जो स्थिति विद्यमान है उस पर विचार करते हुये यह आशा की जाती है कि इस उच्च स्थिति पर आसीन जो व्यक्ति हैं उनके विषय में कुछ कठिनाई सम्भवत: नहीं होगी। उनका नैतिकता का स्तर भी बहुत उच्च है, और मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि प्रधान-पद के लिये खड़े होने से पूर्व वे स्वयं त्याग-पत्र दे देंगे। किन्तु हम इस विधान में ऐसा नियम रख रहे हैं कि यदि कोई मन्त्री निर्वाचन में उम्मीदवार खड़ा होना चाहता है तो वह ऐसा कर सकता है और मन्त्री के पद पर सारे समय आसीन रहते हुये ही सारा चुनाव लड़ सकता है। श्रीमान्, मेरे विचार में ऐसा करना तो ठीक नहीं होगा, और जिन कठिनाइयों की कल्पना की जा सकती है, उन पर विचार करते हुये, यह तो उचित ही होगा कि ऐसा प्रावधान रख दिया जाये कि मन्त्री-पद पर आसीन कोई भी व्यक्ति तब तक उम्मीदवार खड़ा नहीं हो सकता जब तक कि वह उस पद पर रहे। उसे सबसे पहले त्याग-पत्र देने के लिये कहा जाना चाहिये और तब वह दूसरों की तरह ही प्रधान-पद के लिये खड़ा हो सकता है तथा चुनाव लड़ सकता है।

**श्री अलगूराय शास्त्री** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, जो संशोधन मेरे मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह ने पेश किये हैं और खासकर अन्तिम संशोधन उनका जो 1125 है, मैं उसका विरोध करने के लिये खड़ा हुआ हूं। जैसे अब से कई बार पहले कहा जा चुका है प्रोफेसर के.टी. शाह महोदय की धारणा जिस प्रकार के विधान की है, वह या तो पूरी तौर पर स्वीकार किया जा सकता है या नहीं स्वीकार किया जा सकता। जो मौजूदा विधान है और जिस दृष्टि से लिखा गया है, उसमें समय-समय पर प्रोफेसर के.टी. शाह के ऐसे संशोधन आ

[श्री अलगूराय शास्त्री]

जाया करते हैं। वह संशोधन यदि किसी एक जगह पर भी स्वीकार हो जायें, तो पूरा ढांचा एक दूसरे तरह का हो जाता है। इस संशोधन में उनका ख्याल यह है कि हमारा प्रेज़ीडेण्ट, रिपब्लिक का प्रेज़ीडेण्ट, ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जिसका कोई आर्थिक स्वार्थ कहीं न हो। आर्थिक स्वार्थ कहीं न हो, जहां वह यह कहते हैं, वहां उन्होंने अपने व्याख्यान में यह कहा है कि अगर उसके किसी प्रोपर्टी में शेयर्स हों, हिस्से हों तो सरकार उनको खरीद ले, ताकि वह गरीब न हो जाये। तो व्यक्तिगत सम्पत्ति का आइडिया उनके दिमाग में है, और सम्पत्ति तो वह रखने दे सकते हैं। वह यह नहीं कहते हैं कि प्रेज़ीडेण्ट एक ऐसा व्यक्ति हो जिसकी सारी व्यक्तिगत सम्पत्ति मिट जाये, इस प्रकार व्यक्तिगत सम्पत्तिवाद को तो वह मिटाना नहीं चाहते। लेकिन प्रेज़ीडेण्ट हो जाने के बाद उसके लिये वह इस बात की आवश्यकता समझते हैं कि वह अपने सारे आर्थिक स्वार्थों को बेच डाले, अथवा सरकार उसको खरीद ले और वह साफ तौर से एलान कर दे कि उसका कोई स्वार्थ आर्थिक कहीं नहीं है। यह दोनों विचार स्वयं कन्टरेडिक्टरी हैं (विरोधी हैं)। एक तरफ तो व्यक्तिगत सम्पत्तिवाद आ जाता है जब हम उसको अपनी जायदाद बेच कर मनीड वेल्थ (रुपये) की सम्पत्ति रखने की इजाजत देते हैं, क्योंकि उसके पापर (दरिद्र) हो जाने का खतरा शाह महोदय के दिमाग में है। मैं समझता हूं कि प्लेटो का आइडियलिस्टक यूटोपियन कम्युनिज्म उनके सामने है जिसमें शासक ऐसे हों, जिनकी अपनी कोई सम्पत्ति न हो, स्वार्थरहित हों, धनहीन हों। उनका एक कौमन किचन हो, वह एक आइडियल लाइफ लीड करते हों, एक साधु-संन्यासी की तरह से हों, उनका कोई आर्थिक स्वार्थ न हो, तब तो हम कान्स्टीट्यूशन में ही यह कह सकते हैं कि वह आदमी एलीजिबल नहीं होगा, प्रेज़ीडेण्टशिप के लिये, जिसके पास कोई सम्पत्ति हो, जिसके कहीं शेयर्स हों, या जिसकी कोई जायदाद हो। जो शर्तें हमने प्रेजीडेण्टशिप के लिये खड़े होने पर लगाई हैं, उन्हीं शर्तों के साथ एक ऐसी शर्त लगा दें जिससे ऐसा व्यक्ति प्रेज़ीडेण्टशिप के लिये खड़ा न होने पाये जिसके नाम कोई जायदाद हो, या जिसका बैंकिंग कम्पनी में कोई किसी जगह हिस्सा हो। हम कह सकते हैं कि ऐसा आदमी प्रेज़ीडेण्टशिप के लिये एलेजिबल नहीं होगा। प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन का अभिप्राय यह है कि जब प्रेज़ीडेण्ट हो जाय तो उसका कहीं शेयर न रहे, लेकिन इससे पहले वह शेयर रख सकता है। मैं समझता हूं कि आईडिया तो उनका यह होना चाहिये कि व्यक्तिगत सम्पत्तिवाद को हम मिटा दें और सारी सम्पत्ति सोस्लाइज्ड कर दी जाये, किसी तरह की कोई सम्पत्ति किसी इन्डिवीजुएल की न रहे। लेकिन इस कान्स्टीट्यूशन में जो प्रोविजन्स हम पहले

पास कर चुके हैं। उसमें हमने व्यक्तिगत सम्पत्तिवाद को स्थान दिया है और उन चीजों को मानते हैं। यहां एक व्यक्ति को इस तरह से विवश किया जाये कि वह एक तरह का डिक्लेरेशन दे दे और अपने तमाम टाइटिल्स को छोड़ दे और इस तरह वह औनेस्ट हो जायेगा, यह मुझे आवश्यक नहीं प्रतीत होता। हां, मैं उस समाज की कल्पना करता हूं जिसमें व्यक्तिगत सम्पत्तिवाद घटता जाये और चीजें सोस्लाइज्ड ओनरशिप में आ जायें, वह समाज मुझको अच्छा लगता है। हम प्लेटो के आइडियल की तरफ नहीं जा सकते, एक ऐसे कम्युनिज़्म की तरफ नहीं जा सकते हैं जिसमें एक होटल की जिन्दगी हमारी बन जाती है, ऐसा समाज टिकाऊ नहीं होता, वह नन्हें-नन्हें कम्यूनों में सम्भव है चल सकता हो परन्तु एक छोटे से म्युनिसिपल बोर्ड का चलाना भी उस तरह दुष्कर है। मैंने देखा है कि छोटी-छोटी जगहों में भी आर्थिक प्रश्न आ जाता है। साधुओं के मठों में भी गद्दी के प्रश्न पर झगड़े उठ खड़े होते हैं। तो जो रिएल्टी है, (वस्तुस्थिति और वास्तविकता है) उसको हमें सामने रखना चाहिये और इस निगाह से यह प्रतिबन्ध लगाना गैरजरूरी है इस कारण मैं शाह महोदय के इस संशोधन का विरोध करता हूं। शाह महोदय का दूसरा संशोधन भी स्वीकार नहीं किया जा सकता जिसमें उन्होंने कहा है कि यदि कोई मिनिस्टर प्रेज़ीडेण्ट के लिये खड़ा हो तो वह मिनिस्टर पद से पहले त्याग-पत्र दे दे। मैं समझता हूं कि अगर कोई शख्स जो कि मिनिस्टर है प्रेज़ीडेण्टशिप के लिये खड़ा होता है तो वह अपने अधिकारों से इतने लोगों को खरीद नहीं सकता, दबा नहीं सकता। लोग जनता अथवा प्रेज़ीडेण्ट का वोट देने वाले ऐसी भूल में आने वाले नहीं हैं कि कोई उन लोगों को कोहर्स करके वोट खरीद लें। यह संशोधन भी गैरज़रूरी मालूम होता है, इस वास्ते मैं यह मुनासिब समझता हूं कि यह रिजेक्ट हो जाना चाहिये और जिस रूप में यह कान्स्टीट्यूशन आया है, उसी रूप में इसको स्वीकार कर लेना चाहिये। (*बाधा*)

***उपाध्यक्षः** अनुभवी संसद्-विशारदों के लिये किसी वक्ता की वक्तृता में इस प्रकार बाधा डालना उचित नहीं है।

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं और वास्तव में समस्त परिषद् आपकी तथा, मैं कहना चाहता हूं, माननीय डॉक्टर अम्बेडकर की बहुत कृतज्ञ है कि हमें बोलने की अनुमति दी जाती है। हम आपकी शक्तियों को जानते हैं। आप जब भी चाहें हमें रोक सकते हैं। किन्तु मैं आपसे सदा निवेदन करूंगा कि आप इस अवस्था पर ही बोलने दें क्योंकि हम अब प्रथम बार और अन्तिम बार समस्त भारत के लिये विधान बना रहे हैं।

[श्री तजम्मुल हुसैन]

सरकारी तौर पर 'मुंह बन्द करना' इन शब्दों का प्रयोग करने पर आप मुझे क्षमा करेंगे। किन्तु हमारा मुंह बन्द मत करिये। हमें बोलने दीजिये। विधान एक वर्ष में नहीं बनेगा, जैसे कि भारत सरकार आशा करती है। वह गलती पर है। कोई बात नहीं यदि वह दो-तीन वर्ष में समाप्त हो, किन्तु हमें बोलने का समय दीजिये।

संशोधन के बारे में मैं कहना चाहता हूं कि जहां तक मैं समझा हूं, मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन का यह आशय है कि किसी व्यक्ति को, जो कि भारतीय गणराज्य के प्रधान-पद के लिये खड़ा होना चाहे, यदि वह मन्त्री है तो अपना पद त्यागना चाहिये और यदि वह विधान-मण्डल का सदस्य है तो अपना स्थान त्यागना चाहिये। मेरे बिहार प्रान्त के माननीय एक सदस्य अभी बोल चुके हैं और उन्होंने कहा है कि उनके प्रान्त में यह कानून है कि यदि विधान-मण्डल का कोई सदस्य प्रान्तीय कांग्रेस समिति का प्रधान बनना चाहे तो उसे अपना पद त्यागना होता है। इस पर बलपूर्वक विरोध हुआ है। मैं विरोधियों से पूर्णतः सहमत हूं कि ऐसा कानून कोई नहीं है। हम यहां देखते हैं कि कांग्रेस के गत प्रधान श्री कृपलानी इस परिषद् के सदस्य भी थे और औपनिवेशिक संसद् के भी सदस्य थे। यहां हम देखते हैं कि युक्तप्रान्तीय धारा सभा के माननीय अध्यक्ष इस परिषद् के सदस्य हैं। बिहार में ऐसी बात नहीं है। गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने कार्य आरम्भ किया तभी से इस परिषद् के अध्यक्ष डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद कई वर्षों तक प्रान्तीय कांग्रेस समिति के प्रधान थे। यह दुर्भाग्य है कि उन्हें हमारा प्रान्त छोड़ कर दिल्ली आना पड़ गया। जब वे दिल्ली आ गये, और बिहार छोड़ दिया, तब किसी ऐसे व्यक्ति को प्रधान चुन लिया गया जो कि विधान-मण्डल के सदस्य नहीं थे और उनका देहान्त हो गया। तब हमने प्रान्तीय विधान-मण्डल के सदस्य को प्रधान चुन लिया और उसे विधान-मण्डल की सदस्यता से त्यागपत्र देना पड़ा। हम चाहते थे कि वे त्यागपत्र दें और उन्होंने दे दिया। बाद में प्रान्तीय विधान-मण्डल का दूसरा सदस्य प्रधान चुना गया और उसे भी सदस्यता से त्यागपत्र देना पड़ा। अतः बिहार में हमारे यहां सब परिपाटी है, यद्यपि कानून अथवा नियम नहीं है, कि जब विधान-मण्डल का कोई सदस्य प्रधान बनना चाहे, तब उसे चुनाव के लिये खड़ा होने से पहले त्याग-पत्र देना होगा। यह बहुत अच्छी और स्वस्थ परिपाटी है। आखिर भारतीय गण-राज्य का प्रथम प्रधान इस देश का अग्रणी सज्जन होगा और संसार के किसी भी नरेश से उसकी तुलना की जा सकती है। हम चाहते हैं कि प्रधान बनने से

पहले उसे किसी विधान-मण्डल से सब सम्बन्ध तोड़ देना चाहिये। प्रधान चुने जाने से पहले किसी मन्त्री को—चाहे वह केन्द्र का अथवा प्रान्त का मन्त्री हो—मन्त्री नहीं रहना चाहिये; उसे साधारण मनुष्य की तरह किसी विधान-मण्डल का सदस्य न रहते हुये, चुनाव में खड़ा होना चाहिये और चुना जाना चाहिये। लोग यही चाहते हैं। यह बहुत साधारण संशोधन है और परिषद् को तथा डॉक्टर अम्बेडकर को इसे स्वीकार कर लेना चाहिये। मैं परिषद् से केवल यही निवेदन करना चाहता हूं और श्रीमान्, मैं आपको धन्यवाद देता हूं कि आपने मुझे बोलने की अनुमति दी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह द्वारा पेश किये गये संशोधनों में से मैं किसी को स्वीकार नहीं कर सकता। प्रोफेसर के.टी. शाह ने तीन संशोधन पेश किये हैं। एक तो प्रधान-पद के लिये मन्त्री के उम्मीदवार खड़ा होने के विषय में है और शेष दो प्रधान के विषय में हैं। तीनों संशोधनों पर उनकी वक्तृताओं के उत्तर में अपने कथन को भी मैं दो भागों में विभाजित करना चाहता हूं। प्रथम भाग में मैं उनके मन्त्री-सम्बन्धी संशोधन को लूंगा।

प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन के अनुसार यदि कोई व्यक्ति मन्त्री-पद पर हो और चुनाव लड़ना चाहता हो तो पहली शर्त यह होनी चाहिये कि वह मन्त्री-पद से त्यागपत्र दे दे। दूसरे शब्दों में मन्त्री-पद निर्वाचन के लिये निर्योग्यतास्वरूप होगा। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रोफेसर के.टी. शाह ने अपने संशोधन पर काफी ध्यान नहीं दिया है। पहली बात यह है कि यदि एक मन्त्री त्यागपत्र दे देता है तो यह संशोधन अनावश्यक है। दूसरी बात, जिस पर प्रोफेसर शाह ने विचार नहीं किया है और जो मुझे बहुत गम्भीर दिखती है वह यह है, फर्ज किया हम उनका संशोधन मान लेते हैं कि एक मन्त्री को प्रधान-पद के लिये खड़ा होने से पहले त्यागपत्र दे देना चाहिये, तो यह सर्वथा स्पष्ट है कि संसद् के भंग होने तथा नई संसद् के समवेत् होने के मध्यवर्ती समय में प्रशासन का कार्य चलाने के लिये कोई मन्त्री नहीं होंगे। और हमें जिस प्रश्न पर विचार करना है वह यह है। पुरानी संसद के भंग होने और नई संसद् के समवेत् होने के मध्यवर्ती काल में प्रशासन का क्या होगा? क्या हम सारा प्रशासन नौकरशाही को अथवा प्रशासकीय विभागों के अधिकारियों को सौंप देंगे जिससे कि नई संसद् के निर्वाचन तक वे काम चलायें? अथवा क्या किसी प्रकार का ऐसा प्रबन्ध किया जा सकता है, जिससे हम अस्थायी मन्त्रियों का एक दल खोज लें

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

जो कि इन दो-तीन मासों के अल्पकाल के लिये शासन-भार संभाल लें और इस प्रकार स्वयं चुनाव में खड़े होने तथा पूरे समय के लिये मन्त्री बनने का अवसर खो दें? मुझे दिखाई देता है कि यदि प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन को स्वीकार कर लिया जायेगा, तो इससे देश के शासन में पूर्णतः प्रशासनिक अराजकता उत्पन्न हो जायेगी, इस कारण मैं निवेदन करता हूं.....

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): इसमें सब मन्त्रियों का प्रसंग नहीं है इसमें उप-मन्त्री का प्रसंग है।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): और उप-मन्त्री का भी है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** फर्ज किया प्रत्येक मन्त्री चुनाव करना चाहता है, अतः प्रत्येक मन्त्री को त्यागपत्र देना होगा।

प्रोफेसर के.टी. शाह ने इस बात की चर्चा की है कि मन्त्री-गण प्रायः निर्वाचन में गड़बड़ करते हैं, अथवा प्रशासन पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं अथवा उलट-पुलट कर सकते हैं। हां, किसी हद तक यह ठीक है। किन्तु मन्त्री-गण निर्वाचन पर जो प्रभाव डालते हैं अथवा डाल सकते हैं उसे हटाने के लिये ही विधान के मसौदे में कुछ अनुच्छेदों के अन्तर्गत (अनुच्छेद 289 से 292 के अधीन) एक विशेष व्यवस्था प्रावहित की है जो केन्द्र तथा प्रान्तों में निर्वाचन-आयोगों के अधीन होगी। वे आयोग संसद् तथा राज्य के विधान-मण्डलों के निर्वाचनों को संभालेंगे। वे निर्वाचनों का पूर्णतः अधीक्षण, संचालन तथा नियंत्रण करेंगे, जिससे कि निर्वाचनों पर मन्त्रियों के प्रभाव को दूर करने का प्रयत्न किया गया है, अतः प्रोफेसर के.टी. शाह को जो आशंका है वह व्यर्थ है। इन कारणों से मैं उनके संशोधन को स्वीकार करने में असमर्थ हूं।

प्रधान के सम्बन्ध में उन्होंने जो संशोधन रखे हैं, अब मैं उन्हें लेता हूं। उनके पहले संशोधन संख्या 1108 में कुछ निर्योग्यताओं का आयोजन है जैसे कि देशद्रोह के लिये दण्डित होना, राज्य के विरुद्ध अपराध अथवा विधान का उल्लंघन आदि। हमने इन निर्योग्यताओं को इस अनुच्छेद विशेष में स्पष्टतः क्यों नहीं रखा है, इसका कारण इससे स्पष्ट हो जायेगा; यदि सदस्य ध्यान दें कि हमने अन्य प्रावधान रखे हैं जिनका कि वही उद्देश्य है जो कि प्रोफेसर के.टी. शाह के दिमाग में है। इस सम्बन्ध में मैं परिषद् का ध्यान अनुच्छेद 48 के उप-खण्ड (ग) की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जिसके अनुसार "प्रधान ऐसा व्यक्ति होगा

जो लोक-सभा के लिये सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो"। इधर लोक-सभा के सदस्य चुने जाने की योग्यताओं का अनुच्छेद 83 में उल्लेख है। अनुच्छेद 83 के खण्ड (ङ) में यह बात संसद् पर छोड़ दी गई है कि वह कोई और निर्योग्यतायें भी जोड़ सकती है, जिन्हें जोड़ना संसद् आवश्यक अथवा वांछनीय समझे। अतः यह सम्भव है कि संसद् अनुच्छेद 83 के उपखण्ड (ङ) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते समय यह अभीष्ट समझे कि निर्योग्यताओं की सूची में कुछ ऐसी बातें भी रख दे, जिन्हें प्रोफेसर के.टी. शाह ने अपने संशोधन में बताया है, (उसे अनुच्छेद 83 में पहले से ही उल्लिखित निर्योग्यताओं में और निर्योग्यताएं जोड़ देने की शक्ति है?) अतः मेरा निवेदन है कि यद्यपि इस खण्ड-विशेष में प्रोफेसर शाह द्वार कथित निर्योग्यताओं का प्रसंग नहीं है, तदपि संसद् के लिये यह सर्वथा सम्भव है और उसे अधिकार है कि वह अनुच्छेद 83 के उप-खण्ड (ङ) में कोई कानून बना कर उन्हें जोड़ दें।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं एक बात स्पष्ट कराना चाहता हूं। उपाध्यक्ष महोदय, यदि 'विकृत मस्तिष्क' तथा 'अनुन्मुक्त दिवालिया' जैसी बातों को अनुच्छेद में रखने के योग्य महत्व की समझा जाता है, तो इसमें क्या तर्क है कि इस अधिक मूलभूत और आधारभूत बात को संसद् पर छोड़ दिया जाये तथा इसे विधान में नहीं रखा जाये?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं नहीं जानता। यह तो केवल तर्क का विषय है। यह कहना सर्वथा सम्भव है कि किसी निर्योग्यता को यहां रखा जाना चाहिये। यह कहना सर्वथा सम्भव है कि समस्त आवश्यक बातें यहां रखी जानी चाहियें तथा शेष संसद् पर छोड़ दी जानी चाहियें। मुझे इसमें कोई वैपरीत्य दिखाई नहीं देता।

अब मैं प्रोफेसर के.टी. शाह के अन्तिम संशोधन संख्या 1125 को लेता हूं। उन्होंने जो भाषा प्रयोग की है, मेरे विचार में उस पर ध्यान से विचार करना अपेक्षित है। प्रोफेसर तो यह चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को जिसे प्रधान बनना हो, अपना पद संभालने से पहले, किसी व्यापार अथवा व्यवसाय में, जिसका कि सरकार संचालन कर रही हो अथवा जिसे सरकार स्वयं अथवा किसी के द्वारा चल रही हो, अपने हित, अधिकार, स्वामित्व आदि के परित्याग कर देना चाहिये, और दूसरी बात सरकार को वह हित प्रधान से खरीद लेना चाहिये। इस सम्बन्ध में मेरे मन में सबसे पहले तो यही बात आती है कि अब तक मैंने जितनी चीजें

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

देखी हैं उनमें यह बहुत ही नई बात है। मुझे स्मरण नहीं है कि संसार भर में कहीं कोई भी ऐसा विधान हो जिसमें कि ऐसी शर्त हो। मेरे विचार में यदि ऐसी कोई शर्त अपेक्षित थी तो वह संयुक्त राज्य (अमरीका) के विधान में थी जहां कि प्रधान की प्रशासनात्मक निर्देशन तथा नियंत्रण का अवसर प्राप्त है, और इस कारण वहां वैयक्तिक लाभ उठाने के अत्यधिक अवसर हैं। और फिर भी संयुक्त राज्य का विधान ऐसी शर्त के विषय में सर्वथा चुप है। निस्संदेह प्रोफेसर के.टी. शाह ने अपना संशोधन इसलिये दिया है कि वे इसे अपने पहले सिद्धान्त के परिणामस्वरूप संशोधन समझते हैं, जो कि उन्होंने इस संशोधन के रूप में पेश किया था कि प्रधान की वही स्थिति होनी चाहिये जो कि संयुक्त राज्य के प्रधान की है। किन्तु हमारा विधान संयुक्त राज्य के प्रधान को दी हुई स्थिति से पूर्णतः भिन्न बन गया है। जैसा कि हमने बार-बार कहा है, हमारा प्रधान तो केवल नाममात्र का प्रतीक ही होगा। उसे स्वविवेक के अधिकार नहीं होंगे; उसे प्रशासन की कोई शक्तियां नहीं होंगी। अतः जहां तक हमारे प्रधान का सम्बन्ध है, यह प्रावधान सर्वथा अनावश्यक है। यदि यह अपेक्षित हो भी तो प्रधानमन्त्री तथा राज्य के अन्य मन्त्रियों के विषय में होना चाहिये, क्योंकि राज्य के प्रशासन का पूर्ण नियंत्रण उन्हीं के हाथ में होता है। यदि भारत-सरकार के अधीन किसी व्यक्ति को स्वलाभ करने का अवसर है तो प्रधानमन्त्री को है अथवा राज्य के मन्त्रियों को है और ऐसा प्रावधान उन पर उनकी पदावधि में लगाया जाना चाहिये था, प्रधान पर नहीं।

तीसरा प्रश्न यह उठता है—मेरे विचार में यह एक ठोस प्रश्न है। फर्ज किया हम ऐसी कोई शर्त लगा देते हैं; तो क्या वर्तमान स्थिति में ऐसा उम्मीदवार मिलना संभव है जो प्रधान पद के लिये खड़ा होगा और प्रोफेसर शाह द्वारा रखी गई शर्तों को मानेगा। मुझे बहुत संदेह है कि यदि ऐसी शर्तें रख दी जायें तो प्रोफेसर शाह भी प्रधान पद के लिये खड़े होंगे या नहीं।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** वक्ताओं के बीच में बाधा डालने का मेरा जरा भी स्वभाव नहीं है। किन्तु क्या मैं उन्हें पूर्ण आश्वासन दे सकता हूं कि जहां तक मेरा सम्बन्ध है, उन्हें विश्वास रखना चाहिये कि इन शर्तों की सर्वथा पूर्ति होगी। (*हंसी*)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे प्रसन्नता है। किन्तु यह देश इस कल्पना पर ही काम नहीं चला सकता कि प्रधान पद के लिये केवल प्रोफेसर

शाह ही एक उम्मीदवार होंगे। (*हंसी*) बहुत से उम्मीदवार होने में ही भलाई है। अत: हमें विचार करना है कि आया व्यावहारिक दृष्टिकोण से इस पद-विशेष के लिये खड़े होने वाले हमारे पास काफी उम्मीदवार होने चाहियें। और मुझे किंचित् भी संदेह नहीं है कि यह संशोधन बहुत सुन्दर होने पर भी इस संशोधन को स्वीकार कर लेने से विधान का यह प्रावधान विशेषतया व्यवहार रूप में स्थगित हो जायेगा।

इन कारणों से मैं किसी संशोधन को भी स्वीकार नहीं करता।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या डॉक्टर अम्बेडकर उम्मीदवार के हित अथवा अंश के बता देने के भी विरुद्ध हैं? क्या वे इस प्रकार की घोषणा के भी विरुद्ध हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** किन्तु संशोधन यह नहीं है

***श्री एच.वी. कामत:** वह संशोधन का भाग है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** किन्तु वह संशोधन नहीं है

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (1) के उप-खण्ड (ग) के पश्चात् निम्न नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

"(घ) और देश-द्रोह, राज्य के विरुद्ध किसी अपराध अथव संविधान के उल्लंघन के अपराध पर दण्डित होने के कारण अयोग्य ठहराया गया हो।'"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (2) में और खण्ड (2) की व्याख्या में, 'परिलाभ के पद अथवा स्थिति' इन शब्दों के स्थान पर, जहां भी वे हों, 'लाभ के पद' ये शब्द रख दिये जायें।

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (2) की व्याख्या के उप-खण्ड (क) के स्थान पर निम्न पदावली रख दी जाये:

'(क) वह प्रथम सूची के भाग 1 के उस समय उल्लिखित किसी राज्य का शासक है अथवा भारत का या ऐसे किसी राज्य का मन्त्री है; अथवा।'"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (2) की व्याख्या के खण्ड (ख) के आगे निम्न परादिक जोड़ दिया जाये:

'पर ऐसा कोई मन्त्री, ऐसे निर्वाचन के लिये उम्मीदवार खड़ा होने से पहले, अपना पद-त्याग कर देगा।'"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 47 के खण्ड (2) की व्याख्या में निम्न नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(ग) जो व्यक्ति प्रधान चुना जायेगा वह अपने पद के प्रकार्यों तथा दायित्व को ग्रहण करने से पूर्व किसी ऐसे व्यवसाय, व्यापार अथवा वाणिज्य में अपने सारे अधिकार, उपाधि, अंश, संपत्ति अथवा हित की घोषणा कर देगा जिन्हें संघ-सरकार की सहायता या समर्थन प्राप्त है तथा उनसे अलग हो जायेगा; और प्रधान के ऐसे समस्त अधिकार उपाधि, अंश, संपत्ति अथवा हित को भारत सरकार खरीद लेगी।'"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधित रूप में इस संशोधन पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 47 विधान का भाग हो।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 47 विधान में जोड़ दिया गया।*

## नया अनुच्छेद 47-ए

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 1126 लगभग वैसा ही है जैसा कि संशोधन संख्या 1125 है, यद्यपि बिल्कुल वैसा नहीं है। प्रोफेसर शाह इसे पेश कर सकते हैं।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 47 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'47-A. Any person elected President shall, before he enters upon the functions and responsibilities of his office declare and divest himself of all his right, title, share, property and interest in any enterprise, business or trade, which is in any way aided or supported by the Union Government; and shall make over all such right, title, share, or interest to Government of India, to be held, during his term of office, in trust for him.' "

(47-क. कोई व्यक्ति जो कि प्रधान चुना जाये, वह अपने पद के प्रकार्यों तथा उत्तरदायित्व को संभालने से पहले किसी ऐसे व्यवसाय, व्यापार अथवा वाणिज्य में अपने समस्त अधिकार, उपाधि, अंश, सम्पत्ति अथवा हित की घोषणा कर देगा तथा उनसे अलग हो जायेगा जिन्हें संघ-सरकार की सहायता या समर्थन प्राप्त है; और वह उन सब अधिकारों, उपाधियों, अंशों, संपत्ति अथवा हितों को भारत सरकार को सौंप देगा, जिससे कि भारत सरकार उन्हें उसके पद-काल में उसकी ओर से प्रन्यास-रूप में रखेगी।)

जैसे कि आपने कृपा करके बताया है, यह पूर्णतः पिछले संशोधन जैसा नहीं है, जिसे कि इस परिषद् में पेश करने का मुझे सम्मान प्राप्त हुआ था। पिछले संशोधन में मैंने यह सुझाव रखा था कि प्रधान के हित को राज्य खरीद लेगा, किन्तु यहां उस हित को प्रन्यास के रूप में रखा जायेगा। वह स्वामी रहेगा, केवल उसे किसी प्रकार का प्रलोभन नहीं हो सकेगा, राज्य द्वारा किसी प्रकार समर्थन अथवा सहायता प्राप्त किसी व्यापार, वाणिज्य अथवा हित में किसी प्रकार की गड़बड़ की सम्भावना नहीं रहती। श्रीमान्, पिछले संशोधन का विरोध जिस तर्कहीनता से किया गया था, उस पर मुझे आश्चर्य हुआ। यदि किसी की गम्भीर

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

युक्तियों के उत्तर में उसके समक्ष ऐसी बातें रखी जायें कि जैसे हो सकता है सारे मन्त्री एक ही साथ प्रधान पद के लिये खड़ा होना चाहें, और यदि उसकी अनुमति दे दी जायें, तो अराजकता हो जायेगी; तो मेरे विचार में ऐसा कहना भी ठीक हो सकता है कि सारे मन्त्री एक साथ बीमार हो सकते हैं जिससे कि वे अपने पद के प्रकार्यों को न कर सकें, और सारा प्रशासन नौकरशाही पर छोड़ना पड़े। यह उचित अथवा लौकिक तर्क नहीं है। और ऐसी विपत्तिपूर्ण घटना भी हो सकती है, किन्तु ऐसे मामले में, केवल मानवीय बुद्धि इसे संभालने में शक्तिहीन होगी। किन्तु यदि आप मेरे संशोधनों पर औचित्य के धरातल से ही आपत्ति करना चाहें और असत्य कल्पना में उड़ना न चाहें तो मेरा निवेदन है कि इस मामले में मैं आपसे किसी परस्पर विरोधी अथवा असंभव चीज को मानने के लिये नहीं कह रहा हूं।

राज्य द्वारा सहायता प्राप्त अथवा समर्थन प्राप्त किसी व्यवसाय, व्यापार अथवा वाणिज्य में अपने अधिकार, उपाधि, अंश, सम्पत्ति अथवा हित की घोषणा तथा परित्याग करने के लिये किसी उम्मीदवार से कहने का परिणाम यह होगा कि प्रधान-पद के लिये कोई उम्मीदवार नहीं होगा, ऐसा सोचना तो मामले को बेहूदापन तक पहुंचाना है। आखिर, माननीय डॉक्टर अम्बेडकर के प्रति समस्त यथायोग्य आदर सहित, मैं ख्याल करता हूं कि इस देश में बहुमत ऐसे लोगों का है जिनके पास कोई अधिकार, उपाधि अथवा सम्पत्ति नहीं है। इस देश में अत्यधिक बहुमत किसी ऐसे हितों से रहित है। अतः इन क्षेत्रों में अपना कोई स्वार्थ न रखने वाले उम्मीदवारों को चिराग लेकर ढूंढने की वैसी आवश्यकता न होगी जैसी कि डॉक्टर अम्बेडकर अपनी विरोध भावना के कारण समझते हैं।

यदि डॉक्टर अम्बेडकर सोच रहे हैं कि वही वर्ग प्रधान-पद के लिये योग्य होगा जिनके ऐसे हित अथवा अंश हैं, तो मैं कहना चाहता हूं कि यह बात अनुचित है। मुझे आशा है कि उनकी समझ में आ जायेगा कि उनकी ऐसे प्रलोभनों से रक्षा करना वांछनीय है, जिनसे कि रक्षा करने का इस संशोधन में प्रयत्न किया गया है।

इसके अतिरिक्त ऐसा कोई प्रावधान किसी अन्य विधान में नहीं है, यह तो कोई कारण नहीं है कि हम डॉक्टर अम्बेडकर जैसे बुद्धिमान के पथ-प्रदर्शन में नई परम्परा क्यों न स्थापित करें। हम स्वयं अपने उदाहरण उत्पन्न कर सकते हैं, जिनका कि शायद अमरीकी लोग वैसे ही अनुकरण करें जैसे कि हमने अंग्रेजों

अथवा ऐंग्लो-सेक्शन जातियों से यह बातें ली हैं। यदि कोई नई बात ठीक है तो डॉक्टर अम्बेडकर और उनके साथी उसको अपनाने में क्यों डरते हैं? उनके सारे तर्कों में मुझे ऐसी कोई बात दिखाई नहीं दी जिससे यह पता लगे कि मैं जो चीज़ रख रहा हूं वह स्वयं गलत है।

***उपाध्यक्ष:** प्रोफेसर शाह, क्या मैं प्रार्थना करूं कि आप डॉक्टर अम्बेडकर का उत्तर न दें।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** डॉक्टर अम्बेडकर अपने पथ से दूर चले गये थे। यह मेरे व्यवहार के विरुद्ध है.....

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं सुझाव रखूं कि हम दोनों एक ही व्यवसाय के हैं अत: हमें उनकी कमजोरी से अधिक उच्च सिद्ध होना चाहिये।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** मैं आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करता हूं; किन्तु मैं यह अनुभव अवश्य करता हूं, श्रीमान्, कि इस प्रकार के वादविवाद में तर्क अनुपस्थित होता है तथा पक्षपात का ही बाहुल्य होता है। यदि ऐसा है तो मैं भी दृढ़ संकल्प होकर अपने प्रत्येक संशोधन को पेश करता रहूंगा, चाहे परिणाम कुछ भी हो। मुझे यह भी स्पष्ट दिखाई देता है कि संसार के समक्ष, उन लोगों के समक्ष जो कि पक्षपातहीन हैं, हम आदर्श विधि-निर्माता नहीं कहला सकते यदि हम भावी सन्तति के निमित्त इन सब संशोधनों को रद्द करने पर ही तुले रहते हैं। मुझे तो केवल यही कहना है, श्रीमान्!

अब इस संशोधन को लेता हूं, मैं यह बता देता हूं कि इसमें मैंने शब्द बदल कर जानबूझ कर यह प्रयत्न किया है कि एक ही बात को दोहराने के दोष पर मुझे अनियमित नहीं ठहराया जा सके। यह कहा गया था, और बिल्कुल अनुचित रूप में कहा गया था, कि इसमें वह भी व्यवसाय शामिल हो जायेंगे जो राज्य द्वारा संचालित हों। ऐसी कोई बात नहीं है। यहां मैं केवल उस व्यापार, उद्योग अथवा वाणिज्य की चर्चा कर रहा हूं जिसे राज्य द्वारा समर्थन अथवा सहायता प्राप्त हो। राज्य द्वारा संचालित उद्योग अथवा व्यवसाय से यह सर्वथा भिन्न है। मेरा यह ख्याल था कि इस विधान के मसौदे को बनाने वालों को 'राज्य द्वारा संचालित' तथा 'राज्य द्वारा समर्थन अथवा सहायता प्राप्त' इन शब्दों में अन्तर तो पता ही होगा। यदि वे इस अन्तर को नहीं समझते, तो मुझे खेद है कि यह मसौदा ऐसे लोगों द्वारा तैयार किया गया है जो इस प्रकार की साधारण बातों में अन्तर नहीं समझते।

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

फिर तो ऐसा भी हो सकता है कि वे 'खरीदने' और 'न्यासधारी बनने' के अन्तर को भी गलत समझ जायेंगे, अथवा गलत पढ़ जायेंगे, मेरे विचार में तो यह दोनों बातें भी सर्वथा भिन्न हैं। श्रीमान्, अंग्रेजी विधान का आधार परिपाटियां हैं, कोई लिखित आधार नहीं है। मुझे विश्वास है कि इस बात को तो डॉक्टर अम्बेडकर भी मानेंगे। ऐसा तो है ही, अब मैं एक उदाहरण देना चाहता हूं कि राज्य के उच्चाधिकारियों से कैसी ईमानदारी की आशा की जाती है। श्रीमान्, कोई चालीस वर्ष पहले की बात है जब कि अंग्रेजी जल-सेना कोयले के स्थान पर तेल जलाना आरम्भ करने के प्रश्न पर विचार कर रही थी। तेल का उत्पादन कुछ कम्पनियां करती थीं जिनका विदेशों में हित था, पर कोयला वहीं उत्पन्न होता था। कोयले और तेल के प्रश्नों पर जांच करने के लिये जो समिति नियुक्त हुई थी उसका सभापतित्व एडमिरल फिशर द्वारा किया जाना था। समिति के तीन सदस्य थे जिनके विचार एक से थे। अतः यह पहले ही निश्चित था कि समिति का क्या निर्णय होगा। एडमिरल फिशर के पास आंग्ल-परशियन तथा इरानियन आयल कम्पनी के कुछ अंश थे, और वे जानते थे कि सिफारिशों के क्या परिणाम होंगे, अतः वे, उस समय के बादशाह एडवर्ड सप्तम के पास गये और उनकी सम्मति मांगी। वे जानते थे कि रिपोर्ट प्रकाशित होते ही उन अंशों का कितना मूल्य बढ़ेगा। बादशाह ने अपनी सम्मति दे दी और एडमिरल ने उनका परामर्श मान लिया, कि यदि वे सम्माननीय व्यक्ति हैं तो उन्हें वे सब अंश बेच देने चाहियें, क्योंकि कोयले के स्थान पर तेल के प्रयोग से उन्हें काफी लाभ होगा। हो सकता है कि यहां एडमिरल फिशर के जोड़ का कोई नहीं है; किन्तु मुझे तो आशा है कि इस देश में, जो कि गांधीजी के नेतृत्व में इतना आगे बढ़ा है, ऐसे व्यक्ति अवश्य हैं, जो कि इस बात के लिये तैयार होंगे, बहुत ज्यादा तैयार होंगे, कि यदि राज्य के प्रधान जैसे उच्च पद के लिये उन्हें चुन लिया जाये, तो वे अपने ऐसे अधिकारों तथा हितों को छोड़ दें जिनसे कि उन पर जरा भी संदेह हो सके। बम्बई की नगरपालिका में भी ऐसी परिपाटी है कि यदि कोई व्यक्ति कारपोरेशन द्वारा संचालित किसी व्यवसाय से सम्बन्धित हो तो उसके विषय में कारपोरेशन में प्रश्न उठ जाने पर वह मत नहीं दे सकता। यदि वह आदर्श आपके लिये अनुकरणीय नहीं है, यदि वह सिद्धान्त आपको स्वीकार्य नहीं है, तो मुझे खेद है कि यह परिषद् व्यर्थ ही गांधीजी जैसे लोगों के नाम का प्रयोग करती है जब कि हम इस विधान में उनके आदर्शों पर नहीं चल रहे हैं।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** क्या मैं बोल सकता हूं, श्रीमान्!

***उपाध्यक्ष:** यदि आप जिद करें।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं आपका फिर कृतज्ञ हूं क्योंकि आप अपनी शक्तियों का मेरे पक्ष में प्रयोग कर रहे हैं। मैं अपने माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन का पूर्णत: समर्थन करने के लिये खड़ा हुआ हूं। उनका संशोधन बहुत उचित है। वे चाहते हैं कि जो व्यक्ति प्रधान-पद पर चुना जाये, उसे किसी भी प्रकार संघ-सरकार द्वारा सहायता अथवा समर्थन प्राप्त किसी भी व्यापार, वाणिज्य अथवा व्यवसाय में अपने अधिकारों, अंशों, सम्पत्ति आदि की घोषणा कर देनी चाहिये और उन्हें छोड़ देना चाहिये तथा इन सब अधिकारों आदि को सरकार के सुपुर्द कर देना चाहिये जिससे कि वे उस अवधि के लिये न्यास रूप में रहें जिस अवधि में वह भारतीय गणराज्य के उच्च पद पर आसीन रहे। अब, श्रीमान्, मेरे विचार में यह एक उचित संशोधन है किन्तु मुझे भय है कि माननीय डॉ. अम्बेडकर इसे स्वीकार नहीं करेंगे। प्रोफेसर शाह सुन्दर संशोधन पेश किया करते हैं किन्तु वे सब अस्वीकृत हो जाते हैं क्योंकि विधान के मसौदे के प्रस्तावक माननीय सदस्य उनके पक्ष में नहीं होते। अत: आपकी अनुमति से मैं इसमें एक शाब्दिक संशोधन पेश करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** मैं आपको ऐसा करने की अनुमति नहीं दे सकता। उस अवस्था में अन्य लोग भी शाब्दिक संशोधन रखना चाहेंगे। आप डॉक्टर अम्बेडकर की स्वीकृति के लिये सुझाव रख सकते हैं।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** मेरा सुझाव यह है: श्री शाह के संशोधन में यह नहीं कहा गया है कि जब एक व्यक्ति प्रधान चुना जाये तब उसे अपनी समस्त वैयक्तिक सम्पत्ति की घोषणा और परित्याग कर देना चाहिये। वे केवल इतना ही कहते हैं कि उन्हें राज्य द्वारा सहायता अथवा समर्थन प्राप्त किसी प्रतिष्ठान में अपने अधिकारों, अंशों अथवा हितों को छोड़ देना चाहिये, और भारत सरकार को ऐसे हितों को न्यासधारी के रूप में उसके लिये रखना चाहिये। मेरा कहना है कि यह भारत सरकार को मिलेगी अत: मेरा ख्याल था कि डॉक्टर अम्बेडकर इसे स्वीकार कर लेंगे। यदि भारत सरकार के कानून-मन्त्री के रूप में डॉक्टर अम्बेडकर उसे स्वीकार करने नहीं जा रहे हैं तो भारत सरकार की जगह वह प्रधान की पत्नी तथा उसके बालकों को मिलना चाहिये। वह बहुत सीधी-सी बात है। संशोधित रूप में अनुच्छेद इस प्रकार होगा:

"Any person elected President shall, before he enters upon the functions and responsibilities of his office, declare and divest himself of all his right, title, share,

[श्री तजम्मुल हुसैन]

property and interest in any enterprise, business or trade, which is in any way aided or supported by the Union Government; and all such right, title, share or interest of the President shall be bought up by the President's wife and children, if he has none then to Dr. Ambedkar himself, the Law Minister."

(कोई व्यक्ति जो कि प्रधान चुना जाये, वह अपने पद के प्रकार्यों तथा उत्तरदायित्व को संभालने से पहले, संघ-सरकार द्वारा सहायता अथवा समर्थन-प्राप्त किसी व्यवसाय, व्यापार अथवा वाणिज्य में अपने समस्त अधिकार उपाधि, अंश, सम्पत्ति अथवा हित की घोषणा कर देगा तथा उनसे वंचित हो जायेगा; और प्रधान के वे समस्त अधिकार, उपाधि, अंश अथवा हित प्रधान की पत्नी तथा बच्चों द्वारा खरीद लिये जायेंगे, यदि उसके कोई पत्नी-बालक नहीं हों तो वे सब कानून-मन्त्री डॉक्टर अम्बेडकर को मिल जायेंगे।)

इन शब्दों के साथ मैं संशोधन का समर्थन करता हूं और मैं अपना मौखिक संशोधन पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** इस पर कोई संशोधन पेश होने वाला नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मुझे कुछ नहीं कहना है।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 47 के बाद निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'47-A. Any person elected President shall, before he enters upon the functions and responsibilities of his office, declare and divest himself of all his right, title, share, property and interest in any enterprise, business or trade, which is in any way aided or supported by the Union Government; and shall make over all such right, title, share, or interest to Government of India, to be held, during his term of office, in trust, for him.' "

(47-ए. कोई व्यक्ति जो कि प्रधान चुना जाये, वह अपने पद के प्रकार्यों तथा उत्तरदायित्व को संभालने से पहले संघ-सरकार द्वारा सहायता अथवा

समर्थन प्रदत्त किसी व्यवसाय, व्यापार अथवा वाणिज्य में अपने समस्त अधिकार, उपाधि, अंश, सम्पत्ति अथवा हित की घोषणा कर देगा तथा उनसे वंचित हो जायेगा और वह उन सब अधिकारों, उपाधियों, अंशों अथवा हितों को भारत-सरकार को सौंप देगा, जिससे कि भारत सरकार उन्हें उसके पद-काल में उसकी ओर से प्रन्यासरूप में रखेगी।)

*प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।*

---

## अनुच्छेद 48

***उपाध्यक्ष:** संशोधनों को एक-एक करके देखने पर, मैं देखता हूं कि संशोधन संख्या 1127, 1128 और 1130 सदृश आशय के हैं। संशोधन संख्या 1130 सर्वाधिक व्यापक है और उसे पेश किया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (1) में

'(क) "न तो संसद् का और न किसी राज्य के विधान-मण्डल का" इन शब्दों के स्थान पर "न तो संसद् के किसी आगार का और न किसी राज्य के विधान-मण्डल के किसी आगार का" ये शब्द रख दिये जायें;

(ख) "संसद् का अथवा किसी राज्य के विधान-मण्डल का सदस्य" इन शब्दों के स्थान पर "संसद के किसी आगार का अथवा किसी राज्य के विधान-मण्डल के किसी आगार का सदस्य" ये शब्द रख दिये जायें;

(ग) "संसद का अथवा उस विधान-मण्डल का, जैसी कि स्थिति हो" शब्दों के स्थान पर "उस आगार का" ये शब्द रख दिये जायें।'"

मौलिक भाषा में कुछ दोष थे और हमने उसे सुधारने का प्रयत्न किया है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिम बंगाल : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, हमने कतिपय नियमों को स्वीकार करके यह पहले ही निश्चय कर दिया है कि जिन संशोधनों का उद्देश्य किसी अनुच्छेद की भाषा को अधिक सुन्दर बनाना ही हो उनके पेश करने की अनुमति नहीं दी जायेगी। भाषा में सुधार करना अब

[मि. नजीरुद्दीन अहमद]

किसी संशोधन का उद्देश्य नहीं होता। यह संशोधन पेश होने से पहले आशयपूर्ण दिखाई देता था, किन्तु डॉक्टर अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है कि इसका अभिप्राय केवल अनुच्छेद की भाषा को सुधारना है। इस कारण, यद्यपि इसे पेश किया जा चुका है, किन्तु इस पर मत नहीं लिये जाने चाहियें।

***उपाध्यक्ष:** सभापति को कुछ अधिकार दिये गये हैं जिनका वह ऐसे तरीके से प्रयोग करेगा, जो उसे सर्वोत्तम दिखाई पड़े।

मुझे पता लगा है कि इस संशोधन पर एक संशोधन है—पांचवें सप्ताह की सूची एक का संशोधन संख्या 28 जो कि श्री वी.एस. सरवटे के नाम में है।

***श्री वी.एस. सरवटे** [संयुक्त राज्य—ग्वालियर-इन्दौर-मालवा (मध्य-भारत)]: श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> "कि अनुच्छेद 48 में संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1130 में, अंग्रेज़ी के शब्दों 'House of Parliament' के पहले 'of the ruling family of Indian States and is in receipt of political pension or of an allowance on account of privy purse' ये शब्द रख दिये जायें।"

इस संशोधन का यह अभिप्राय है कि यदि किसी देशी राज्य के राज्यपरिवार का कोई सदस्य प्रधान चुन लिया जाये तो उसे जो भत्ते अथवा निजी-कोष मिलता हो उसे वह छोड़ना होगा।

मेरा उद्देश्य यह है कि इस गणराज्य का प्रधान ऐसे विश्वासों का होना चाहिये और ऐसे आदर्श पर दृढ़ होना चाहिये जो कि गणराज्यात्मक तथा प्रजातंत्रात्मक हों। स्पष्ट है कि जो व्यक्ति पहले किसी देशी राज्य का नरेश था और अब जो निजी-कोष अथवा भत्ते पा रहा हो उससे आशा नहीं की जा सकती कि वह इस शर्त को पूरा करे। यह भी कहा गया है कि प्रधान तो लगभग नाममात्र का प्रतीक ही होगा। पर इसके साथ ही मैं यह कहना चाहता हूं कि संकटकाल में प्रधान से आशा की जाती है कि वह कतिपय अत्यन्त गम्भीर और महत्त्वपूर्ण प्रकार्यों तथा कर्त्तव्यों को करे। इसके अतिरिक्त अपनी स्थिति और अवस्था के अनुसार उससे आशा की जाती है कि वह जनतन्त्रात्मक गणराज्य के हित में, जो कि हम

भारत में स्थापित करना चाहते हैं, कुछ प्रेरणा तथा निर्देश दे। अब उस व्यक्ति से इन शर्तों के पूरी होने की आशा नहीं की जा सकती जो कि जो ऐसे परिवार का है और उसमें पला है, जिसकी परम्परायें ऐसी थीं और हैं कि वे उन विचारों से सर्वथा भिन्न हैं जिन्हें कि हम गणराज्यात्मक अथवा लोकतन्त्रात्मक कहते हैं। अत: इस संशोधन का यह उद्देश्य है कि देशी राज्य के भूतपूर्व नरेश को प्रधान नहीं बनने देना चाहिये। किन्तु उससे उसके प्रधान पद के लिये खड़ा होने में कोई रुकावट नहीं होती, किन्तु इस हद तक बाधा होती है कि यदि वह चुन लिया जाये तो वह भत्ते नहीं ले सकता। यदि इस संशोधन को और अधिक ध्यान से पढ़ा जायें तो पता लगेगा कि राज्य-परिवार के अन्य सदस्यों के लिये प्रधान पद के लिये खड़ा होने या प्रधान बनने का निषेध नहीं किया गया है, क्योंकि उन सदस्यों को निजी-कोष के रूप में कोई भत्ते नहीं मिलते। मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि गवर्नरों, गवर्नर-जनरल और विशेषत: नये प्रधान से यह आशा की जाती है कि वह अपने विश्वासों, अपने पालन-पोषण तथा अपनी समस्त मनोवृत्ति के कारण ऐसा व्यक्ति हो कि वह जनतंत्र और गणराज्य के प्रति इतना निष्ठावान हो कि उसके विचारों, उसके जनतंत्रात्मक तथा गणराज्य सम्बन्धी विचारों के विषय में संदेह का लेशमात्र भी न हो सके; किन्तु भूतपूर्व नरेश के विषय में इसकी आशा करना सम्भव नहीं है। अत: मेरा निवेदन है कि मौलिक संशोधन के प्रस्तावक इस संशोधन को स्वीकार कर लें।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1127 ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर के नाम में है। क्या वे चाहते हैं कि इस पर मत लिये जायें?

***ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर** (पूर्वी पंजाब : सिख): नहीं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1128 क्या आप चाहते हैं कि इस पर मत लिये जायें?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** हां, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1129 । शाब्दिक, इसकी अनुमति नहीं दी जाती।

संशोधन संख्या 1131 । शाब्दिक, इसकी अनुमति नहीं दी जाती।

संशोधन संख्या 1132 । यह पेश हो सकता है।

*(संशोधन पेश नहीं किया गया।)*

**उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 1133 और 1134 लगभग एक ही हैं संशोधन संख्या 1133 पेश हो सकता है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्! यह तो केवल शाब्दिक संशोधन है।

***माननीय डॉक्टर बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (2) में 'परिलाभ का अन्य कोई पद अथवा स्थिति' इन शब्दों के स्थान पर 'लाभ का पद' ये शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान्, यह संशोधन केवल एकरूपता के निमित्त ही है।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 1134 । क्या आप चाहते हैं कि मैं इस पर मत लूं?

***श्री एच.वी. कामतः** डॉक्टर अम्बेडकर ने मेरी बात पहले ही ठीक कर दी है; किन्तु मैं संशोधन संख्या 1135 पेश करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** अभी हम संशोधन संख्या 1134 तक ही पहुंचे हैं। संशोधन संख्या 1135 । आप इसे पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं प्रस्ताव करता हूं, श्रीमान्।'

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (3) में 'प्रधान के लिये पदावास रहेगा और' ये शब्द निकाल दिये जायें।"

अर्थात्, खण्ड इस प्रकार बन जायेगा, यदि संशोधन स्वीकार कर लिया जाये: "प्रधान को वे परिलाभ और अधिदेय दिये जायेंगे...आदि।"

इस संशोधन को पेश करते हुए, श्रीमान्, मैं डॉक्टर अम्बेडकर से कुछ प्रकाश चाहता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** कौन-सा संशोधन?

***श्री एच.वी. कामतः** संशोधन संख्या 1135 । परिषद् के समक्ष इस संशोधन को पेश करने का मेरा अभिप्राय यह है कि मैं डॉक्टर अम्बेडकर से

प्रार्थना करूं कि वे विधान में ऐसी महत्त्वहीन, ऐसी तुच्छ बात को रखने की आवश्यकता पर प्रकाश डालें। मैं जानता हूं और मैं अबाधरूपेण स्वीकार करता हूं, शायद हमें इस बात पर गर्व भी हो, कि यह विधान सारे संसार में सबसे भारी है। हमने अपनी परिषद् के लिये हाथी का ही राजचिह्न तथा प्रतीक चुना है। कदाचित् यह उसके अनुरूप ही है कि हमारा विधान भी ऐसा भारी है जैसा कि संसार में कोई नहीं बना। श्रीमान्, क्या मैं अत्यंत नम्रता से पूछ सकता हूं कि विधान में प्रधान के निवासस्थान जैसी चीज़ें रख कर उसे भारी बनाने में क्या बुद्धिमत्ता है? यदि यह स्वीकार कर लिया जाता है, तो क्या ऐसा कहना भी समानरूपेण उचित नहीं होगा कि प्रधान को इतने नौकर मिलेंगे, उसे इतने चपरासी मिलेंगे, एक ए.डी.सी. मिलेगा, प्रधान को एक अन्तरंग मन्त्री मिलेगा तथा और भी क्या-क्या होगा। यह भी तर्क उपस्थित किया जा सकता है। मैं जानता हूं, श्रीमान्, कि प्रधान का निवासस्थान एक प्रतीक है अतः विधान में इसकी चर्चा होनी चाहिये। मैं नहीं जानता कि ऐसी चीजें विधान में रखने के कितने उदाहरण हैं।

***एक माननीय सदस्यः** आयर का विधान।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं उसे भी लेता हूं। अमरीकी विधान में, मुझे पता नहीं है कि व्हाइट हाउस की चर्चा विधान में है या नहीं। सब जानते हैं कि व्हाइट हाउस प्रधान का निवासस्थान है। इंग्लिस्तान को लीजिये, मेरे विचार में राजनीति तथा आधुनिक विषयों के जानकार विद्यार्थी बकिंघम प्रासाद से अधिक 10, डाउनिंग स्ट्रीट को जानते हैं। 10, डाउनिंग स्ट्रीट, जो कि प्रधान-मन्त्री का निवासस्थान है, बकिंघम प्रासाद से अधिक विख्यात है। हमारे विधान में प्रधान-मन्त्री के निवासस्थान की कोई चर्चा नहीं है, हमने केवल प्रधान के निवास का उल्लेख किया है। जैसा कि अभी-अभी डॉक्टर अम्बेडकर ने कहा है प्रधान तो लगभग प्रतीक ही होगा और उससे कहीं अधिक शक्तिशाली व्यक्ति प्रधान-मन्त्री होगा। अतः मेरी व्यक्तिगत राय में तो यह अधिक संगत होगा कि प्रधान के निवासस्थान के स्थान पर प्रधान-मन्त्री के निवासस्थान का उल्लेख किया जाये।

एक और छोटी-सी बात यह है। फर्ज किया, प्रधान के दो निवासस्थान हों—मेरे ख्याल में पहले अधिकांश प्रान्तों के गवर्नरों और केन्द्र में भी गवर्नर जनरल के पास दो-दो मकान होते थे, एक गर्मी के लिये और दूसरा-दूसरी ऋतु के लिये—फर्ज किया दो मकान हों, तो क्या इस अनुच्छेद के कारण राज्य को यह अधिकार नहीं रहेगा कि प्रधान को दो निवासस्थान दे सके, एक गर्मियों के लिये

[श्री एच.वी. कामत]

और दूसरा अन्य ऋतुओं के लिये? क्या इससे इसमें बाधा पड़ेगी? अत:, बात यह है कि प्रधान के निवासस्थान जैसी छोटी-सी चीज़ के लिये क्यों चिंता की जाये? आखिर, प्रधान किसी वृक्ष के तले अथवा मैदान में तो नहीं रहेगा; उसके सर छिपाने के लिये जगह तो होगी ही, उसको मकान तो मिलेगा ही; इसके कहने की क्या आवश्यकता है। आखिर हम यह प्रयत्न कर रहे हैं कि हमारे देश में प्रत्येक को सर छिपाने के लिये स्थान मिले। क्या परिषद् का यह अभिप्राय है, क्या डॉ. अम्बेडकर का यह ख्याल है कि प्रधान के रहने के लिये छत भी नहीं होगी? उसके लिये एक, दो, तीन मकान हो सकते हैं। क्या पता, कितने होंगे? इस अनुच्छेद द्वारा सरकार अथवा राष्ट्र को इस अधिकार से क्यों वंचित करते हो कि वह प्रधान के लिये अनेक निवासस्थानों का प्रबन्ध कर सके? अत: मेरा ख्याल है कि, श्रीमान्, यह बात, पता नहीं यह विधान में कैसे आ गई, इतनी तुच्छ, छोटी-सी बात है कि यह विधान में रखने योग्य नहीं है और इससे हमारे विधान में अनावश्यक, अप्रसंगानुकूल तथा व्यर्थ बातों का भार हो जायेगा।

अत: मैं प्रस्ताव करता हूं कि प्रधान के निवासस्थान विषयक अनुच्छेद के इस भाग को निकाल दिया जाये।

(संशोधन संख्या 1136 और 1137 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1138, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम में है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (3) में 'प्रधान के लिये पदावास रहेगा' के आगे निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'and such secretarial, clerical, or expert consultative asistance at public expense as he may consider necessary for the due discharge of his duties and responsibilities under the Constitution, or the laws made thereunder for the time being in force.' "

(और लोक-व्यय पर ऐसी सचिवालयात्मक, क्लर्कों की अथवा विशेषज्ञों की परामर्श-सम्बन्धी सहायता प्राप्त होगी जो कि वह, विधान के अधीन

अथवा उसके अन्तर्गत निर्मित किसी विधि के अधीन जो कि उस समय प्रवृत्त हो, अपने कर्त्तव्यों तथा दायित्वों की उचित पूर्ति के लिये आवश्यक समझे।)

श्रीमान्, मैंने कुछ ही अनाक्रमणक संशोधन रखने का साहस किया है जिनमें से यह भी एक है। मुझे यह इतना सुस्पष्ट दिखाई देता है कि कल्पना, विचार तथा असम्भावना की असाधारण उड़ान की बात छोड़ कर, किसी को इस पर आपत्ति नहीं होनी चाहिये। तदनुसार मैं इसके समर्थन में विशिष्ट तर्क पेश करके परिषद् का समय नष्ट नहीं करूंगा। मुझे विश्वास है कि परिषद् की सद्भावना उसे इस संशोधन को स्वीकार करने के लिये प्रेरित करेगी।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 1139 । शाब्दिक, इसकी अनुमति नहीं दी जाती।

संशोधन संख्या 1140, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि निम्न नया खण्ड अनुच्छेद 48 में जोड़ दिया जाये:

'(5) Every President on completion of his term of office and retirement, shall be given such pension or allowance during the rest of his life as Parliament may determine, provided that during the lifetime of any such President in retirement, the pension or allowance granted to him shall not be varied to his prejudice.' "

[(5) प्रत्येक प्रधान को अपने पद की अवधि पूर्ण करने पर, तथा पद-निवृत्त होने पर, उसके शेष जीवन के लिये ऐसी पेंशन अथवा भत्ते मिलेंगे, जो कि संसद् निश्चित करे, पर किसी ऐसे प्रधान के जीवनकाल में, जो कि पद-निवृत्त हो, उसके लिये स्वीकृत पैन्शन अथवा भत्तों को उस पर विपरीत प्रभाव डालते हुये बदला न जायेगा।]

श्रीमान्, यह एक और नवीन बात है जो कि अमरीकी विधान में नहीं पाई जाती, अतः यह भी नई प्रथा चलाने का प्रयत्न होगा। पर मुझे भरोसा है कि केवल यही बात मेरे प्रस्ताव के विरुद्ध युक्ति-रूप में स्वीकार नहीं की जायेगी, कि ऐसी बात बुद्धिमान अमरीकियों ने नहीं रखी है अतः हमें भारत में ऐसा करना अपेक्षित नहीं है।

[प्रो. के.टी. शाह]

यदि वह युक्ति पेश की जाये तो क्या मैं यह बता सकता हूं कि संसद् अधिनियम अथवा मन्त्री-गण वेतन अधिनियम में बाद के एक संशोधन द्वारा अत्यन्त पुरानी संसद्-माता ने पद-निवृत्ति पर प्रधान-मन्त्री को पैंशन देने का प्रावधान कर दिया है और, यदि मैं गलती पर नहीं हूं तो विरोधी नेता के लिये भी ऐसा ही किया गया है। इस बात पर कोई मेरी बात को गलत न समझ ले, अत: मैं चाहता हूं इस बाद के कथन के सम्बन्ध में किसी को मुझ पर यह दोष नहीं लगाना चाहिये कि मैं अपने वैयक्तिक आशय से यह बात कह रहा हूं। मैं तो ब्रिटिश संसद् द्वारा प्रावहित कानून का उद्धरण मात्र दे रहा हूं, जिसमें यह प्रावधान है कि पद-मुक्त प्रधान-मन्त्री को समुचित योग्यता प्रदान कर दी जाये जिससे कि संयुक्त राज्य (ब्रिटेन) के प्रधान-मन्त्री की प्रतिष्ठा कर एक बार आसीन व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियों में से न गुजरना पड़े, जिनमें कि, श्री एस्क्विथ के समान, उसके मित्रों को उसकी सहायता करनी पड़े तथा उसे अपने जीवन के अवशिष्ट वर्षों को शान्ति से गुजारने के लिये किसी प्रकार के प्रन्यास का प्रावधान करना पड़े।

श्रीमान्, हम सबके लिये यह कम चिंता की बात नहीं है कि जो व्यक्ति भारत के प्रधान के पद पर रह चुका हो, उसे परिस्थितियों के वश, आर्थिक आवश्यकता के वश, किसी सेवा, व्यापार, वाणिज्य अथवा किसी प्रकार के कार्य अथवा राजनीतिक उपायों का आश्रय न लेना पड़े, जिससे कि उसकी आजीविका चल सके। हमारा यह सर्वोच्च सार्वजनिक आदर्श होना चाहिये, सबसे बड़ी ध्यान रखने योग्य बात होनी चाहिये कि जो भी राज्य का प्रमुख चुना जा चुका हो, उसे पद-निवृत्ति पर ऐसी आजीविका मिलनी चाहिये जो उस समय भारत के भूतपूर्व प्रधान के योग्य समझी जाये।

इसका उदाहरण भी है जैसा कि अभी मैंने बताया है और यह बात सिद्धान्त के अनुसार भी है। उदाहरण के लिये उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिये बनाये गये प्रावधानों को ही लीजिये। वे भी राज्य की सार्वभौम शक्ति के एक अंश के स्वामी होते हैं, और संसार में सब स्थानों पर असंदिग्ध रूप में उन्हें पद-निवृत्ति पर पैन्शन दी जाती है। आपको इसके बहुत से उदाहरण मिलेंगे, कि प्रधान को पद-निवृत्ति पर कुछ न कुछ पैन्शन दी जाती है। यदि आप उच्च न्यायाधिकारियों को पद-निवृत्ति पर पैन्शन दे सकते हैं और देते हैं तो आप राज्य के प्रमुख को, जो कि जनता की सार्वभौमिकता का प्रतीक होता है, चाहे ऐसा

थोड़े ही समय के लिये हो, किसी प्रकार का भत्ता अथवा पैन्शन, नाम चाहे कुछ भी हो, क्यों नहीं देना चाहते, जिससे कि उसे आवश्यकता के वश होकर ऐसे साधनों का आश्रय न लेना पड़े, जिन्हें माननीय न समझा जाये, अथवा ऐसे व्यक्ति की प्रतिष्ठा के योग्य न समझा जाये, जो कि राज्य का प्रमुख रह चुका हो?

श्रीमान्, जिन विधानों के उदाहरण प्रायः पेश किये जाते हैं वे ऐसे समय पर बनाये गये थे जहां ऐसे लोगों के लिए बनाये गये थे जहां ऐसे पद के लिये खड़ा होने वाले के लिये यह मान लिया जाता था कि वह ऐसा सम्पन्न होगा, सांसारिक सम्पत्ति के विषय में ऐसा अच्छी प्रकार समृद्ध होगा कि यह प्रावधान व्यर्थ तथा अनावश्यक रहेगा।

वास्तव में अमरीका के प्रधान तथा इंग्लिस्तान के प्रधान-मन्त्री के विषय में यह कहा गया है कि पद-ग्रहण करने पर वे जितने धनी थे, पद छोड़ने पर वे हजारों मुद्राओं से दरिद्र हो गये। फिर भी पद-निवृत्ति के पश्चात् उनकी समुचित आजीविका के लिये कोई मुआवजा आवश्यक नहीं समझा गया। उससे क्या प्रगट होता है? इस विषय में, श्रीमान्, यदि इस देश में प्रचारित आदर्श वास्तव में क्रियान्वित होते हैं, यदि किसी दिन निर्धन से निर्धन को भी प्रधान चुने जाने के अधिकार का दावा तो करने की योग्यता होनी ही है, यदि किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसका कि राज्य द्वारा संचालित ही नहीं—उसके द्वारा सहायता, समर्थन अथवा रक्षण प्राप्त उद्योग में अधिकार अथवा हित न हो, प्रधान बनना है, तो ऐसे मामले में मुझे आशा है कि इस पद पर मान और प्रतिष्ठा के साथ रहने के पश्चात् की आर्थिक कठिनाइयों के विचार से ही ऐसे व्यक्ति को, जो अन्यथा अत्यन्त योग्य हो, इस पद के लिये उम्मीदवार अथवा पदाधिकारी चुने जाने के लिये अयोग्य न समझा जायेगा।

श्रीमान्, मेरे विचार में संसदीय कानून-निर्माण द्वारा ऐसा कोई प्रावधान करने के पक्ष में कारणों का ऐसा बाहुल्य है कि जिन शब्दों में मुझे यह पेश करने का सम्मान प्राप्त हुआ है, उन शब्दों में नहीं, तो किसी अन्य तरीके से और अन्य किसी रूप में, इस संशोधन में निहित सिद्धान्त मसौदे बनाने वालों और उनके समर्थकों को पसन्द आयेगा; और इस प्रकार अधिनियम का भाग बन जायेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि जो संशोधन पेश किये गये हैं मैं उन्हें स्वीकार नहीं कर सकता। प्रोफेसर शाह का संशोधन संख्या 1138 कुछ अनावश्यक-सा दीखता है। इसमें कहा गया है कि प्रधान को सचिवालय सम्बन्धी सहायता मिलेगी। निस्संदेह ऐसा होगा ही, चाहे विधान में कोई प्रावधान हो या न हो।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

दूसरे संशोधन संख्या 1140 के विषय में, जिसमें कि यह आयोजन है कि प्रधान को पद-निवृत्ति पर पैन्शन दी जायेगी, मैं देखता हूं, कि मैं उनके द्वारा व्यक्त भावना से सहमत तो हूं कि जो लोग संसद् के सदस्य बन कर जनता की सेवा करना चाहते हैं उन्हें बहुत वैयक्तिक त्याग करना पड़ता है, उन्हें उनके जीवन के अन्त के लगभग बिना किसी साधन के छोड़ नहीं देना चाहिये, फिर भी इस संशोधन विशेष को भी स्वीकार करना कुछ कठिन ही दिखाई देता है। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति, जो प्रधान बन जाता है और अपने पद की अवधि को, जो कि पांच वर्ष है, पूरा कर लेता है उन पांच वर्षों के अन्त में पैंशन का अधिकारी होगा। दूसरी कठिनाई यह है कि उनके संशोधन के अनुसार उसकी पैन्शन को उसके जीवन काल में बदला नहीं जायेगा। अब उदाहरण के लिये मान लीजिये कि एक व्यक्ति प्रधान बन चुका है और अपनी पूरी अवधि तक उस पद पर रह चुका है, और प्रोफेसर शाह के संशोधन के अनुसार स्थिति प्राप्त कर चुका है, तो मान लीजिये वह पुनः प्रधान चुन लिया जाये, तब उसकी स्थिति क्या होगी? स्थिति यह है कि वह प्रधान पद का वेतन लेता रहेगा और साथ ही पैन्शन का अधिकारी भी होगा। हमें यह भी अधिकार नहीं होगा कि उसकी पैन्शन को कम करके वेतन के बराबर कर सकें। अतः जिस रूप में संशोधन पेश किया गया है, मैं नहीं समझता कि यह किसी के द्वारा स्वीकार्य क्रियात्मक बात है। किन्तु इस सामान्य विचार के विषय में जो कि व्यक्त किया गया है, कोई संदेह नहीं है कि संसद में कुछ वर्षों की सेवा के पश्चात् सदस्यों को, जिनमें प्रधान भी सम्मिलित है, किसी प्रकार की पैन्शन मिलनी चाहिये, और मेरे विचार में यह अच्छी बात है जिसे कि ब्रिटिश संसद् ने कार्यान्वित किया है, और मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भावी संसद् इस बात का ध्यान रखेगी।

तत्पश्चात्, निवासस्थान के सम्बन्ध में प्रोफेसर कामत द्वारा उठाये गये प्रश्न के विषय में.....

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं प्रोफेसर कामत नहीं हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** किन्तु वे प्रोफेसर कहलाने के पूर्ण अधिकारी हैं क्योंकि वे इतना अधिक बोलते हैं। (*हंसी*)

***श्री एच.वी. कामतः** ईश्वर न करे मैं कभी प्रोफेसर बनूं। (*हंसी*)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अस्तु, मेरे मित्र श्री कामत ने मुझ से यह समझाने के लिये कहा था कि हमने प्रधान के पदावास के लिये यह प्रावधान क्यों रखा है, और उन्होंने मुझे इस बात पर डांटा भी है कि मैं विधान में ऐसी और अन्य छोटी बातें रख कर उसको भारी बना रहा हूं। यह सोचा जा सकता है कि यह छोटी-सी बात है और इसे विधान में रखना अपेक्षित नहीं था। किन्तु मैं श्री कामत से यह प्रश्न पूछना चाहता हूं। क्या उनकी यह इच्छा है अथवा नहीं कि प्रधान को सरकारी निवासस्थान मिलना चाहिये और संसद् को इसके लिये प्रावधान करना चाहिये? क्या यह बहुत बड़ी त्रुटि हो गई कि इस बात को विधान में ही रख दिया गया है? यदि इच्छा यह है कि.....

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, क्या मैं जान सकता हूं कि प्रधान-मन्त्री के लिये निवास स्थान होगा, अथवा नहीं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** हां, यह तो एक युक्तिमात्र है। मैं तो यह जानना चाहता हूं कि वे इस बात का समर्थन करते हैं या नहीं कि प्रधान को सरकारी निवासस्थान मिलना चाहिये। यदि इस सिद्धान्त को मानते हैं तो मुझे यह साधारण आशय की बात दिखाई देती है कि इसके लिये विधान में प्रावधान रखा जाता है अथवा यह बात भावी संसद् के निर्णयार्थ छोड़ दी जाती है। हमने इस बात को विधान में रखा है इसका कारण यह है कि भारत सरकार अधिनियम में, बहुत-सी परिषदीय आज्ञाओं में, जो कि भारत सरकार अधिनियम की द्वितीय अनुसूची द्वारा प्रदत्त प्राधिकार के अन्तर्गत भारत-मन्त्री ने निकाली थीं, गवर्नरों तथा गवर्नर-जनरल के लिये निवासस्थानों का उल्लेख हैं; और हमने विधान में इस प्रावधानविशेष को रख कर विद्यमान परम्परा का ही अनुसरण किया है; और मैं नहीं समझता कि हमने सुरुचि के विपरीत कोई कार्य किया है अथवा कोई ऐसी बात की है जो कि हम करना नहीं चाहते थे।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, एक बात स्पष्ट करवाना चाहता हूं। क्या मैं जान सकता हूं कि क्या अनुच्छेद 48 के इस खण्ड विशेष के कारण प्रधान को एक से अधिक सरकारी निवास-स्थान देने में रुकावट होगी? इसमें लिखा है कि प्रधान के लिये 'एक पदावास' होगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** बिल्कुल नहीं। दो सरकारी निवास-स्थान भी हो सकते हैं।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

फिर, श्री सरवटे के संशोधन संख्या 28 के विषय में मैं कहना चाहता हूं कि इस विषय पर तब विचार हो सकता है जब कि हम उन रियासतों के विधान पर विचार करें जो कि भारतीय संघ में प्रवेश करेगी। आज तो स्थिति इतनी अनिश्चित है कि ऐसा कोई प्रावधान करना बहुत कठिन है जैसा कि श्री सरवटे ने सुझाया है।

***उपाध्यक्ष:** अब संशोधनों पर एक-एक करके मत लिये जायेंगे।

संशोधन संख्या 1130 जो कि डॉ. अम्बेडकर के नाम से है;

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (1) में:

'(क) "न तो संसद् का और न किसी राज्य के विधान-मण्डल का" इन शब्दों के स्थान पर "न तो संसद् के किसी आगार का और न किसी राज्य के विधान-मण्डल के किसी आगार का" ये शब्द रख दिये जायें;

(ख) "संसद् का अथवा किसी राज्य के विधान-मण्डल का सदस्य" इन शब्दों के स्थान पर "संसद् के किसी आगार का अथवा किसी राज्य के विधान-मण्डल के किसी आगार का सदस्य" ये शब्द रख दिये जायें;

(ग) "संसद् का अथवा उस विधान-मण्डल का, जैसी कि स्थिति हो" इन शब्दों के स्थान पर "उस आगार का" ये शब्द रख दिये जायें।'"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 28, जो श्री सरवटे के नाम में है:

"कि अनुच्छेद 48 में संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1130 में, अंग्रेजी के शब्दों 'House of Parliament' के पहले 'of the ruling family of Indian States and is in receipt of political pension of an allowance on account of privy purse' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1128, जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम से है:

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (1) के स्थान पर निम्न नया खण्ड रख दिया जाये:

'(1) If the President is a member of any Legislature of the Union or of any State, he shall be deemed, on his making and subscribing the oath under article 49, to have resigned such membership.'

[(1) यदि प्रधान संघ अथवा किसी राज्य के किसी विधान-मण्डल का सदस्य हो, तो अनुच्छेद 49 के अन्तर्गत शपथ लेने पर यह समझा जायेगा कि उसने उस सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया है।]

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1133, जो डॉक्टर अम्बेडकर के नाम में है:

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (2) में 'परिलाभ का अन्य कोई पद अथवा स्थिति' इन शब्दों के स्थान पर 'लाभ का पद' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1135, जो श्री कामत के नाम में है:

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (3) में 'प्रधान के लिये पदावास रहेगा' ये शब्द निकाल दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1138, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम में है:

"कि अनुच्छेद 48 के खण्ड (3) में 'प्रधान के लिये पदावास रहेगा' के आगे निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'and such secretarial, clerical, or expert consultative assistance at public expense as he may consider necessary for the due discharge of his duties and responsibilities under the Constitution, or the laws made thereunder for the time being in force.' "

(और लोक-व्यय पर ऐसी सचिवालयात्मक, क्लर्कों की अथवा विशेषज्ञों की परामर्श-सम्बन्धी सहायता प्राप्त होगी जो कि वह विधान के अधीन

[उपाध्यक्ष]

अथवा उसके अन्तर्गत निर्मित किसी विधि के अधीन जो कि उस समय प्रवृत्त हो, अपने कर्त्तव्यों तथा दायित्वों की उचित पूर्ति के लिये आवश्यक समझे।)

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1140, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम में है:

"कि निम्न नया खण्ड अनुच्छेद 48 में जोड़ दिया जाये:

'(5) Every President on completion of his term of office, and retirement, shall be given such pension or allowance during the rest of his life as Parliament may determine, provided that during the life time of any such President in retirement, the pension or allowance granted to him shall not be varied to his prejudice.' "

[(5) प्रत्येक प्रधान को अपने पद की अवधि पूर्ण करने पर तथा पद-निवृत्त होने पर उसके शेष जीवन के लिये ऐसी पैन्शन अथवा भत्ते मिलेंगे, जो कि संसद् निश्चित करे, पर किसी ऐसे प्रधान के जीवन-काल में, जो कि पद-निवृत्त हो, उसके लिये स्वीकृत पैन्शन अथवा भत्तों को उस पर विपरीत प्रभाव डालते हुये बदला न जायेगा]"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** परिषद् के समक्ष प्रश्न यह है कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 48 विधान का भाग हो।

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 48 को विधान में जोड़ दिया गया।*

---

## नया अनुच्छेद 48-ए

***उपाध्यक्ष:** अब हम नये अनुच्छेद 48-ए और प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन संख्या 1141 पर आते हैं। आप देखेंगे कि यह संशोधन, संशोधन संख्या 1125 और 1126 के सदृश है जो कि अस्वीकृत हो चुके हैं। अत: इसकी अनुमति नहीं दी जाती।

## अनुच्छेद 49

***उपाध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 49 पर आते हैं।

परिषद् के समक्ष प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 49 विधान का भाग हो।"

हम संशोधनों को एक-एक करके लेंगे।

पहला संशोधनों संख्या 1142 है, जो माननीय श्री जी.एस. गुप्त के नाम में है, यह शाब्दिक संशोधन है और इसकी अनुमति नहीं दी जाती।

संशोधन संख्या 1143, 1144 और 1145 एक से आशय के हैं। संशोधन संख्या 1144 पेश हो सकता है जो श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के नाम में है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 49 में 'भारत के मुख्य न्यायाधीश' इन शब्दों के पश्चात् 'अथवा उसकी अनुपस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के सबसे उच्च (सीनियरमोस्ट) न्यायाधीश, जो कि उपलब्ध हो' ये शब्द जोड़ दिये जायें।"

श्रीमान्, यह केवल इतना ही प्रावधान करने के लिये है कि यदि भारत का सर्वोच्च न्यायाधीश उपस्थित न हो तो कोई और न्यायाधीश उसके प्रकार्य को कर सके, और यह उचित ही है कि सर्वोच्च न्यायालय का सबसे उच्च न्यायाधीश इस प्रकार्य को करे। श्रीमान्, मुझे भरोसा है कि परिषद् इस संशोधन को स्वीकार कर लेगी क्योंकि इस पर और अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है।

***उपाध्यक्षः** डॉक्टर अम्बेडकर, क्या आप संशोधन को स्वीकार करते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** हां, करता हूं।

***उपाध्यक्षः** तब मुझे संख्या 1143 पर मत लेना अपेक्षित नहीं है।

तब संशोधन संख्या 1145 आता है, जो श्री जसपतराय कपूर के नाम में है।

(संशोधन संख्या 1145 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** फिर संशोधन संख्या 1146 आता है जो श्री कामत के नाम में है।

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं इस संशोधन संख्या 1146 को कुछ संशोधित रूप में, निम्न प्रकार पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 49 में निश्चयोक्ति अथवा शपथ में 'मैं, अमुक, गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता (शपथ लेता) हूं, इन शब्दों के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:

'ईश्वर के नाम में, मैं, अमुक, शपथ लेता हूं।'

अथवा विकल्प में

'मैं, अमुक, गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता हूं।'"

श्रीमान्, जैसे मैंने विधान को ध्यानपूर्वक पढ़ा, तो मेरे मन में एक दु:खद बैचेनीपूर्ण भावना रही कि विधान में एक कमी है, विधान में एक शून्यता है।

***उपाध्यक्षः** श्री कामत, क्या आप 'ईश्वर के नाम में' ये शब्द रखने का संशोधन पेश नहीं कर रहे हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** मैंने अपने संशोधन को ही संशोधित कर दिया है।

***उपाध्यक्षः** अच्छा, आप अपने ही संशोधन को संशोधित कर रहे हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** हां, श्रीमान्! जब मैंने विधान को देखा, तो मेरे मन में यह भावना रही कि इसमें कुछ कमी है। हम ईश्वर की कृपा और आशीर्वाद मांगना भूल गये थे, मैं नहीं जानता कि ऐसा क्यों हुआ। मुझे यह विचित्र सी बात लगती है कि एक भारतीय परिषद् के समक्ष, भारतीय-विधान पर बोलते हुये, मुझे आगे बढ़कर आपके सामने इस संशोधन के लिये अनुरोध करना पड़ता है, मुझे यह अनुरोध करना पड़ता है कि ईश्वर को हमारे विधान में स्थान मिलना चाहिये। श्रीमान्, मेरी तो यह धारणा थी कि प्रस्तावना का ही आरम्भ ईश्वर की स्तुति से होना चाहिये था। अस्तु, वह बाद में आ रही है और हम देखते हैं कि उसका क्या होता है। कदाचित् यह ईश्वर की इच्छा थी कि विधान उसके नाम से वंचित होना चाहिये और बाद में विधान पर वाद-विवाद के समय भगवान् के नाम की स्तुति की जानी चाहिये। क्या मैं पूछ सकता हूं, श्रीमान्, क्या मेरे मित्र ऐसा समझते हैं—वे मित्र जो कि इस प्रार्थना का कोई महत्त्व अथवा मूल्य नहीं

समझते—कि भगवान् को हटा देने से, अपने मस्तिष्कों और विचारों से अथवा विधान से 'भगवान्' शब्द को हटा देने से, वे विधान से ईश्वर को ही हटा रहे हैं? ईश्वर न करे, उनके ऐसा कोई विचार हो। क्या वे समझते हैं कि वे कानून बना कर ईश्वर के अस्तित्व को मिटा सकते हैं? श्रीमान्, हम भगवान् को जितना दूर हटाते हैं, हम जितना उससे भागते हैं, उतना ही वह हमारा पीछा करता है। फैंसिस थॉम्पसन की एक सुन्दर कविता है—जिसका नाम 'The Bound of Heaven' है, जिसमें ऐसे व्यक्ति के मन की अवस्था का वर्णन है जो परमेश्वर से भागना चाहता था।

"I fled Him down the nights
And down the days,
I fled Him down the arches of the years, etc."

(मैं उससे भागा रातों में,
मैं उससे भागा दिवसों में,
मैं उससे भागा था, चाहे,
वर्षों के कितने द्वारों में; इत्यादि)

इसी प्रकार वह लिखता है, फिर वह कहता है:

"But with unhurrying chase, unperturbed pace
The feet of God pursued him,
And a voice beat more instant than the feet,
All things betray thee, who betrayest me."

(किन्तु सहज पीछा करके
निर्विघ्न चाल से दौड़ रहे।
भगवान् के पद उसके पीछे,
आते थे, साथ-साथ बढ़ते;
चरणों से भी द्रुत गति वाला,
इक शब्द ध्वनित सा होता था;
सब वस्तु तुझे ठुकरा देंगी,
जो तू है मुझको ठुकराता।)

भारत में, श्रीमान्, जहां कि हमारी प्राचीन संस्कृति है, आध्यात्मिक विवेक है, और हम सबको पूर्वजों से प्राप्त एक बपौती है—हम सबके लिये ही है वह मेरे

[श्री एच.वी. कामत]

लिये यह कहना अनावश्यक है कि किस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमारे सब कार्य भगवान् को अर्पण करने की गम्भीरतम आध्यात्मिक भावना से ओतप्रोत रहते हैं। हिन्दू परिपाटी तथा परम्परा के अनुसार हमारे संस्कार के आरम्भ में 'हरि ओम् तत्सत्' कहा जाता है। हमारे मुस्लिम मित्रों के कुरान शरीफ़ में प्रत्येक पद के आरम्भ में यह स्तुति होती है 'बिसमिल्ला अल रहमान अल रहीम'। हमारे सिख मित्रों के गुरु ग्रन्थ साहब का आरम्भ 'एकोंकार सत्नाम कर्त्ता' आदि शब्दों से होता है। हमारे ईसाई मित्रों को उनके मसीहा ने आज्ञा दी है कि 'जो भी तुम्हारे पास है उसे छोड़ दो और मेरा अनुसरण करो'। यह आशय हमारे अपने धर्म अर्थात् गीता में भी है:

सर्वधर्मान् परित्यज, मामेकं शरणं ब्रज!

सबका परित्याग कर दो, यहां तक कि सर्वधर्मों का भी, और केवल मेरी अर्थात् 'भगवान्' की शरण लो। अत: मुझे इस संशोधन पर अधिक बोलने की आवश्यकता नहीं है। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, खाने-पीने से लेकर सर्वोच्च पूजन तक हमारे सारे कार्य भगवान् के प्रति अर्पण, बलिदान होते हैं; अर्थात्

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौंतेय! तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

और, श्रीमान्, यहां हम बहुत गम्भीर कार्य कर रहे हैं और यदि खाना-पीना भी भगवान् के प्रति अर्पण का कार्य होता है तो यह विधान भी, जो कि पवित्र कार्य है, ईश्वर के अर्पण अवश्य होना चाहिये। हमारे सारे गुरु—समस्त प्राचीन संत, साधू और ऋषि—महात्मा जी और नेता जी के दिनों तक एक सर्वोच्च भावना से प्रभावित रहे हैं, कि हमारे समस्त कार्य ईश्वर के प्रति अर्पित होने चाहियें। मैं परिषद् को यह बताना नहीं चाहता कि किस प्रकार महात्मा जी और नेता जी सुभाषचन्द्र बोस के हृदय और आत्मायें ईश्वर की भक्ति और प्रेम से ओतप्रोत थे और वे किस प्रकार उस अनन्त के जीवनदायी जल में सदा स्नान करते रहते थे। श्रीमान्, आज के नेताओं की बात लेता हूं, जैसे कि सरदार पटेल, हमारे अध्यक्ष राजेन्द्र बाबू और हमारे गवर्नर-जनरल श्री राजगोपालाचारी हैं, तो आप मुझे उनके कुछ अर्वाचीन भाषणों में से उद्धरण देने की अनुमति देंगे, जिनमें कि उन्होंने हमसे अनुरोध किया है कि हमें अपने नित्यप्रति के कार्यों में ईश्वर को नहीं भूलना चाहिये।

श्रीमान्, गवर्नर-जनरल ने हैदराबाद की कार्यवाही के पश्चात् धन्यवाद-दिवस को अपनी वक्तृता में कहा था:

"मन्त्रीगण, सेनानायक, सैनिक, पुलिस और नागरिक सब धन्यवाद के पात्र हैं। किन्तु भगवान् के हिलाये बिना संसार में पत्ता भी नहीं हिलता। हम समझ लेते हैं कि हमने महान् कार्य किये हैं।"

हमारे लिये ऐसा समझना धोखा है कि हमने महान् कार्य किये हैं। आगे चल कर गवर्नर-जनरल ने कहा था:

"सच तो यह है कि वे समस्त कार्य ईश्वर ने किये हैं। हमें विनीत होना चाहिये और उसने अपनी जिस कृपा की हम पर अपार वर्षा की है उसके योग्य बनना चाहिये। हमें गर्व नहीं करना चाहिये। हमें प्रतिदिन अपने हृदयों में पारस्परिक प्रेम और विश्वास का संचार करना चाहिये।"

गत वर्ष स्वतन्त्रता-दिवस पर अपना संदेश ब्राडकास्ट करते हुये हमारे अध्यक्ष डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था:

"परमेश्वर की सहायता से और गांधी जी के नेतृत्व में हमने स्वतंत्रता-संग्राम को जीत लिया है और अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लिया है।"

कुछ दिन हुये सरदार पटेल ने बम्बई में कहा था:

"हम भगवान् के कृतार्थ हैं कि हम कुछ हद तक अपने देश में स्थिर अवस्था स्थापित करने में सफल हो गये हैं।"

अत: मैं अनुभव करता हूं कि विधान में, प्रस्तावना में भगवान् की कृपा और आशीर्वाद के लिये प्रार्थना करने के अतिरिक्त, यदि हम गम्भीरतापूर्वक शपथ लेने का कार्य हम ईश्वर के नाम में नहीं करते तो यह केवल एक शून्य संस्कार ही बन जायेगा। जब नेताजी सुभाषचन्द्र बोस सिंगापुर में आरज़ी हकूमते-हिन्द के प्रधान सेनाध्यक्ष तथा प्रान्तीय प्रधान बने थे, तब उन्होंने इस प्रकार शपथ ली थी:

"ईश्वर के नाम पर मैं प्रतिज्ञा करता हूं।"

अत: श्रीमान्, अन्त में मैं परिषद् से अनुरोध करता हूं कि हमने एक अनन्त तथा आध्यात्मिक बपौती प्राप्त की है, एक ऐसी बपौती प्राप्त की है जो न शारीरिक है, न भौतिक है और न लौकिक ही है: वह ऐसी बपौती है जो

[श्री एच.वी. कामत]

आत्मा-सम्बन्धी है—वह आत्मा अब भी है, सदा से चली आई है तथा सदा रहेगी, वह बपौती भी अनादि अनन्त है। हमें उस अमूल्य बपौती को खोना नहीं चाहिये। हमें इस बपौती को नष्ट नहीं करना चाहिये; हमें अपनी प्राचीन परम्परा के अनुरूप होना चाहिये, अपने आध्यात्मिक विवेक के अनुरूप होना चाहिये। हमें अनन्त काल से जो ज्योति प्राप्त हुई है उसे यों ही गवां नहीं देना चाहिये। हमें स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में संसार को आत्मा से जीतने का प्रयत्न करना चाहिये। हमें ऐसा प्रकाश करना चाहिये जो यावत चन्द्रदिवाकरौ संसार को प्रकाशित करता रहे। मैं अपनी वक्तृता उन शब्दों के साथ समाप्त करूंगा जो सदा गांधी जी के मुंह पर रहते थे:

"ईश्वर अल्लाह तेरे नाम,
सबको सन्मति दे भगवान्।"

मैंने आज इस परिषद् के समक्ष अपने इस संशोधन को संशोधित रूप में पेश किया है, जिससे कि इस विषय में, जिसे कि मैं आधारभूत तथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझता हूं, परिषद् एकमत रहे। अत: मैंने आपकी अनुमति से इसे संशोधित कर दिया है। श्रीमान्, मैं मौलिक संशोधन संख्या 1146 को, संशोधित रूप में, परिषद् में पेश करता हूं और परिषद् से निवेदन करता हूं कि इसे स्वीकार कर लिया जाये।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं कि संशोधन संख्या 1146 के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:

"कि अनुच्छेद 49 में 'गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता (शपथ लेता) हूं' इन शब्दों के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:

'ईश्वर के नाम में शपथ लेता हूं।'"
गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता

इसका अर्थ यह होगा कि जो भगवान् में विश्वास करते हैं वे उसके नाम में शपथ लेंगे और जो इस मत के हैं कि ईश्वर के विषय में न कुछ जाना जा सका है और न जाना जा सकता है उन नास्तिकों को केवल गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करने की स्वतन्त्रता होगी, जिससे प्रत्येक को अपने धर्म की स्वतन्त्रता होगी। व्यवहार रूप में मेरा संशोधन वही है जो श्री कामत का है:

केवल इतना ही अन्तर है कि ईश्वर पर विश्वास न करने वालों के लिये शब्द परिवर्तन कर दिया गया है, जिससे कि वे गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति कर सकें तथा अन्य लोग 'भगवान् के नाम पर शपथ ले सकते हैं'।

इस संशोधन को पेश करते समय मैं ईश्वर के नाम के विषय में अपने विचारों को व्यक्त करना चाहता हूं। वास्तव में मेरे मित्र श्री कामत के संशोधन पर मुझे प्रसन्नता है तथा गर्व है। आज पहली बार विधान-परिषद् इस प्रश्न पर विचार कर रही है कि विधान में भगवान् का नाम रखा जायेगा अथवा नहीं। वास्तव में हमें उसके नाम को आरम्भ में ही रखना चाहिये था, किन्तु क्योंकि प्रस्तावना पर विचार नहीं किया गया, अतः जब हम विधान पर आरम्भ से विचार करेंगे तब ईश्वर की स्तुति का समावेश करने का फिर प्रयत्न करेंगे।

विधान-परिषद् के यह प्रस्ताव पारित करने से, कि भारत एक असाम्प्रदायिक राज्य होगा, उस प्रस्ताव के फलस्वरूप बहुत-सी भ्रान्त धारणायें बन गई हैं। हमें ही उनको मिटाना है। मेरे विचार में, भगवान् के नाम से राज्य की असाम्प्रदायिकता में कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि प्रधान चुने जाने पर कोई व्यक्ति शपथ लेने जाता है, यद्यपि वह प्रधान होता है, फिर भी वास्तव में वह शपथ लेने के पहले प्रधान नहीं बनता; वह कोई व्यक्ति ही होता है। जब वह शपथ लेने के लिये वेदी पर जाता है उस समय उसकी कोई सरकारी हैसियत नहीं होती। वह अपनी वैयक्तिक हैसियत में केवल एक व्यक्ति ही होता है और उसी हैसियत से वह शपथ लेता है। यदि ईश्वर के नाम से राज्य के असाम्प्रदायिक गुण पर प्रभाव पड़ता हो तब भी केवल किसी अधिकारी के कारण ही पड़ सकता है। शपथ ले लेने के पहले प्रधान केवल एक व्यक्ति ही रहता है। और जब एक व्यक्ति शपथ लेता है वह अपने वैयक्तिक विश्वास के अनुसार ही लेता है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** क्या अन्तर है?

**श्री महावीर त्यागी:** जो इस अन्तर को देख सकते हैं, वे उसे ढूंढ सकते हैं। शपथ एक व्यक्तिगत मामला है और इसे अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक लेना चाहिये और जिस अवसर पर शपथ ली जाती है वह अत्यन्त गम्भीर होता है, विशेषतया जबकि राज्य का प्रमुख शपथ ले रहा हो। वैयक्तिक धर्म में कोई मन्दिर, वेदी अथवा संस्कार नहीं हुआ करते। वह परम परमेश्वर और सदाचार-सम्बन्धी अनन्त कर्त्तव्यों के विषय में व्यक्ति के आन्तरिक सिद्धान्तों तक सीमित होता है। यह प्रत्येक व्यक्ति का निजी धर्म है। वह उसका अपना दृष्टिकोण है। मेरे मित्र जानना चाहते हैं कि क्या अन्तर है। अन्तर यह है कि वैयक्तिक धर्म ईश्वर में

[श्री महावीर त्यागी]

शुद्ध निष्ठा ही है; इसमें किसी रीति, विश्वास अथवा संस्कार को स्थान नहीं है। भगवान् न ही शारीरिक कल्पना है और न मानसिक कल्पना ही है। यह तो केवल शुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान है। इसमें कोई रीति-रिवाज नहीं होता। न मन्दिरों की ही आवश्यकता है और न वेदियों की ही जरूरत है। मैं राज्य के असाम्प्रदायिक होने के सिद्धान्त तथा तर्क को खूब समझता हूं। क्योंकि प्रत्येक देश में, जहां कि कई धर्म तथा कई जातियां हैं, कोई राज्य को एक रंग में नहीं रंग सकता। ऐसी अवस्था में राज्य को असाम्प्रदायिक होना चाहिये जिससे कि राष्ट्र का संगठन हो सके। हमारे यहां भारत में अनेक धर्म तथा जातियां हैं। किन्तु उन सब में ईश्वर का नाम तो है ही। प्रत्येक जाति भगवान् पर विश्वास करती है, प्रत्येक वर्ग भगवान् पर विश्वास करता है तथा प्रत्येक सम्प्रदाय भगवान् पर विश्वास करता है। अत: यदि हम अपने राज्य के विधान में भगवान् का नाम रख दें तो इसमें हमें राज्य को एकरूप बनाने में सहायता मिलेगी, और यह बात राज्य को व्यवहार रूप में असाम्प्रदायिक बना देगी, इसकी असाम्प्रदायिकता को भंग नहीं करेगी। यह केवल तर्क की बात है। सत्य तो यह है कि जब से हमने इस परिषद् में यह घोषणा की कि हमारा राज्य असाम्प्रदायिक होगा तभी से इस घोषणा के भिन्न-भिन्न अर्थ निकाले जा रहे हैं तथा भ्रान्तियां उत्पन्न हो रही हैं। लोग सोचने लग गये कि जहां तक सरकार का सम्बन्ध है उसने तो ईश्वर को सर्वथा मिटा ही दिया है। मुझे आशा है कि विधान-परिषद् यहां ईश्वर का नाम रख कर कुछ हद तक उन भ्रान्तियों को निर्मूल कर देगी। कुछ मानी राजनीतिज्ञ पश्चिम के चालू नारों की नकल करने के प्रयत्न में इस भ्रम में ग्रसित हो गये कि असाम्प्रदायिक राज्य में भगवान् का नाम लेना निषिद्ध होना चाहिये। असाम्प्रदायिक राज्य का अर्थ है सत्य और भगवान् और अनन्त का राज्य जिसमें किसी धर्म-विशेष के विषय में पक्षपात न हो। भारत में हमारी संस्कृति, हमारी नीति और हमारी सभ्यता का भवन एक ही आधार, भगवान् पर खड़ी की गई है, और यदि भगवान् को मिटा दिया जाये तो मैं नहीं जानता कि भारत के लिये स्वराज्य का क्या अर्थ होगा। व्यक्तिगत रूप में मैं कई अन्य लोगों, बड़ों तथा छोटों, और करोड़ों लोगों के साथ तीस वर्ष स्वराज्य के लिये लड़ा था। स्वराज्य के विषय में हमारी कल्पना रामराज्य की थी। केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता ही सब कुछ नहीं थी। यदि मुझे यह कहने दिया जाये तो मैं राजनीतिक स्वतन्त्रता की धेला भर भी परवाह नहीं करता। भारत को केवल अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता के खो जाने पर ही दु:ख नहीं भोगना पड़ा पर उसका वास्तविक दु:ख उसकी आत्मा की स्वतन्त्रता का खो जाना है। हमारी आध्यात्मिक स्वतन्त्रता पर

पहला प्रहार तब हुआ था जब कि सोमनाथ पर आक्रमण हुआ था। उसी समय से, इस सैंकड़ों वर्षों में, भारत ने कभी स्वयं को स्वतन्त्र अनुभव नहीं किया। वास्तविक स्वराज्य का अर्थ है 'रामराज्य'। इस असाम्प्रदायिकता की भावना का कैसा गलत अर्थ लगाया गया है, इस विषय पर प्रसंगान्तर नहीं होगा। यदि मैं परिषद् पर विश्वास करके उन्हें यह बता दूं कि अभी हाल ही में आल इण्डिया रेडियो के अधिकारियों के एक सम्मेलन में एकमत से यह निर्णय किया गया था कि अब गीता, रामायण, कुरान और बाइबिल का पाठ बन्द कर देना चाहिये। यदि असाम्प्रदायिक राज्य का अर्थ यह है कि हमारे बालकों को रामायण का ज्ञान नहीं कराया जायेगा अथवा वे गीता, कुरान अथवा ग्रन्थ को सुन न सकेंगे तो राजनीतिक स्वतन्त्रता से क्या लाभ है? यह तो खींचातानी करके अर्थ निकालना हुआ। यदि इस रामराज्य में से भगवान् को मिटा दिया गया तो भारत राम के बिना अयोध्या के समान हो जायेगा। मेरा निवेदन है, श्रीमान्, कि राम से मेरा आशय हिन्दू ईश्वर से है और ईसाई ईश्वर से भी है। (*हंसी*) मेरा निवेदन है कि ईश्वर की तो सभी मानते हैं अतः हमें उसकी स्तुति करनी चाहिये तथा जब अवसर आये तब प्रस्तावना में भी ऐसा ही किया जाये। ब्रिटिश संसद् भी जब समवेत् होती है तब प्रार्थना के पश्चात् ही होती है। वे प्रार्थना करते हैं। वादविवाद में आप देखेंगे कि संसद् इतने बजे समवेत हुई और प्रार्थना के पश्चात् कार्यवाही आरम्भ की। उनका भी साम्प्रदायिक राज्य नहीं है। आयरलैण्ड में, तथा अन्य देशों में भी, भगवान् को नहीं भुलाया गया है। मैं अपने मित्र श्री कामत के प्रति अनुगृहीत हूं, जिन्होंने इस शब्द 'भगवान्' को यहां रखा है। हम ईश्वर की पूजा करते हैं और हमारी निष्ठा का यहां उल्लेख होना चाहिये। भारत ईश्वर में विश्वास करता है अतः भारतीय राज्य को भगवान् का राज्य रहना चाहिये। इसे ईश्वरीय राज्य होना चाहिये, ईश्वरहीन राज्य नहीं। हमारा असाम्प्रदायिकता का यही अर्थ है। इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं संशोधन संख्या 1147 को पेश करता हूं।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> "कि अनुच्छेद 49 में शपथ के प्रपत्र में 'और मैं अपने आपको भारत की जनता की सेवा और कल्याण में तनमन से लगाऊंगा' ये शब्द हटा दिये जायें।"

इन शब्दों को निकालने के लिये मेरी युक्ति यह है कि शपथ लेने अथवा निश्चयोक्ति करने का अभिप्राय ही यह होता है कि कुछ कानूनी कर्त्तव्य उत्पन्न

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

हो जाते हैं। यदि यह शपथ भंग हो जाये, तो प्रधान अथवा उप-प्रधान का प्राभियोग किया जाता है। भारत के एक नागरिक होने के नाते एक व्यक्ति जनता की सेवा में रत रहेगा ही। अत: यह आवश्यक नहीं है कि शपथ में यह पवित्र घोषणा भी रखी जाये। आप देखेंगे कि अमरीकी विधान में उल्लिखित शपथ-प्रपत्र में इस शपथ के बाद का भाग सम्मिलित नहीं है। अत: मेरा निवेदन है कि बाद के भाग को निकाल देना चाहिये क्योंकि यह केवल पवित्र घोषणा है।

श्री कामत द्वारा पेश किये हुये संशोधन के सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मैं बहुत प्रसन्न हूं कि उन्होंने ईश्वर के पक्ष में तर्क उपस्थित किये हैं तथा ये युक्तियां पेश की हैं कि ईश्वर को हमारे विधान से नहीं मिटाना चाहिये। मेरा निवेदन है कि यदि उनका संशोधन स्वीकार कर लिया जाये तो हम उन लोगों को अलग कर रहे होंगे जिन्हें ईश्वर में विश्वास नहीं है। इस देश में और अन्यत्र ऐसे बहुत से लोग हैं जिन्हें ईश्वर में विश्वास नहीं होता। मैं जैनियों का उदाहरण दे सकता हूं। वे ईश्वर में विश्वास नहीं करते और बहुत से नास्तिक भी होते हैं। यदि श्री कामत का संशोधन स्वीकार कर लिया जाये तो आप उन लोगों को प्रधान बनने से रोक रहे होंगे। यदि यह संशोधन स्वीकार हो जाये तो आप एक मजबूरी पैदा कर रहे होंगे कि सबका भगवान् पर विश्वास होना चाहिये।

***श्री एच.वी. कामत:** मि. करीमुद्दीन ने मेरे संशोधन को देखा नहीं है। अगर देखा है तो समझा नहीं है।

***काजी सैयद करीमुद्दीन:** समझने का ठेका तो आपका ही है। (*हंसी*)

***श्री एच.वी. कामत:** कभी-कभी।

**उपाध्यक्ष:** क्या आप समझाना चाहते हैं? आपका संशोधन तो मि. करीमुद्दीन के संशोधन पर ही है।

***काजी सैयद करीमुद्दीन:** मेरा निवेदन यह है कि असाम्प्रदायिक राज्य में, जब आप विधान बना रहे हैं तो शपथ लेने के समय लोगों का श्रेणी-विभाजन क्यों हो? इस बात का संकेत नहीं होना चाहिये कि वे ईश्वर में विश्वास करते हैं अथवा नहीं। विधान में शपथ में ईश्वर को रखना जनतंत्र की भावना के प्रतिकूल है। मेरा निवेदन है कि ईश्वर का उल्लेख न करना उसे मिटाना नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** क्या मैं बता सकता हूं, श्रीमान्, केवल स्पष्ट करने के लिये कि श्री कामत के संशोधन के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि प्रधान को भगवान् में सच्चा विश्वास होना चाहिये। इसके अनुसार तो उसे भगवान् के नाम पर केवल आरम्भ करना होता है।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूंः

"कि अनुच्छेद 49 में 'जनता की सेवा और कल्याण में तनमन से लगाऊंगा' इन शब्दों के पश्चात् निम्न शब्द जोड़ दिये जायेंः

'and will throughout the term of my office as such President so conduct myself as to leave no ground for any charge of seeking to promote my own interest or my family's aggrandisement, and that in any act I may have to do or appointment I may have to make, I shall consider only the interest of the public service and of the country collectively.' "

(और मैं प्रधान के रूप में अपने पद की अवधि में ऐसा आचरण करूंगा कि अपने स्वार्थ अथवा अपने परिवार के लाभ की वृद्धि का प्रयत्न करने के किसी अभियोग के लिये कोई आधार न रहे, और मुझे जो भी कार्य करना पड़े अथवा नियुक्ति करनी पड़े, उसमें मैं केवल लोकसेवा और सामूहिक रूप से देश के हित का ही विचार करूंगा।)

मुझे भय है कि यह कुछ नाजुक-सा मामला है। किन्तु एक प्राचीन उक्ति है कि 'जहां देवता प्रवेश करने में डरते हैं वहां मूर्ख सहसा प्रवेश कर जाते हैं।' क्योंकि मैं अपने को दूसरी उपाधि के लिये अत्यधिक रूप से तथा बारम्बार योग्य सिद्ध कर रहा हूं, अतः मुझे भय है कि मुझे इस नाजुक मामले में भी वही कार्य पूर्ण करना होगा।

मेरे मतानुसार, प्रधान की शपथ में, अन्य बातों के अतिरिक्त, एक आश्वासन तथा निश्चयोक्ति सन्निहित होनी चाहिये कि वह केवल देश के हितों का, जनता की सेवा का ही ध्यान रखेगा; और उसे जो भी कुछ कार्य अथवा नियुक्ति करनी पड़े उसमें अपने हितों का अथवा अपने परिवार के लाभ का विचार नहीं करेगा।

यह दयनीय स्थिति है, श्रीमान्, कि इस परिषद् में, जहां तक मैं समझ सकता हूं, बहुत कम लोग हैं जो सरकारी व्यवस्था की उस शुद्धता के समर्थन में आवाज़ उठायें, जो कि, हमें बताया गया है कि, इस देश में रामराज्य की स्थापना का अनिवार्य परिणाम होना चाहिये। श्रीमान्, चाहे पुनरावृत्ति के कारण मेरी बात सुनना

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

भार-सा लगे, किन्तु फिर भी मैं इस बात पर बल देना चाहता हूं कि विदेशी साम्राज्यवादियों के विरुद्ध हमारे संघर्ष में जिन आदर्शों की दुहाई दी गई थी वे केवल पुस्तकीय सिद्धान्त ही नहीं रहने चाहिये; वे जीवित तथ्य होने चाहियें, उन्हें कार्यान्वित किया जाना चाहिये और वे दैनिक जीवन के वास्तविक अंग बन जाने चाहियें, जिन्हें देश में छोटे-बड़े सब स्वीकार करें।

मेरा यह भी निवेदन है कि उसके प्रतीकस्वरूप कोई बात इतनी स्पष्टता से कहीं नहीं रखी जा सकती जितनी प्रधान की शपथ सम्बन्धी इस भाग में रखी जा सकती है कि वह अपनी पदावधि में इस प्रकार आचरण करेगा कि अपने स्वार्थ अथवा अपने परिवार के लाभ की वृद्धि का प्रयत्न करने के किसी सन्देह का आधार ही न रहे, और उसे जो कार्य करने पड़ें अथवा नियुक्तियां करनी पड़ें, उनमें वह सर्वदा सामूहिक रूप से देश के हितों का ही ध्यान रखेगा और किसी व्यक्ति के हितों का नहीं।

यह भी दयनीय बात है, श्रीमान्, कि ऐसी बात पर बल देना आवश्यक हो गया है जो कि देखने में एक स्पष्ट सिद्धान्त दीखता है। इसे रखना आवश्यक नहीं होता, यदि हमें इस बात का कटु अनुभव नहीं होता कि लोग अपने कथनों को स्वयं भूल जाते हैं, लोग उन महान् सिद्धान्तों को भूल जाते हैं जिन्हें उन्होंने स्वयं व्यक्त किया था। क्योंकि, एक बार शक्ति प्राप्त होने पर वे शक्ति और स्थिति के मद से उन्मत्त हो जाते हैं और उस मद को अपने सिर पर इतनी स्वतन्त्रता से चढ़ जाने देते हैं कि वे भूल जाते हैं कि जीवनभर उन्होंने किन सिद्धान्तों का समर्थन किया है और वे प्रतिदिन अपने कार्यों से वास्तव में उन सिद्धान्तों का उल्लंघन करने लगते हैं जिनका कि उन्होंने स्वयं प्रचार किया था।

श्रीमान्, शक्ति एक भयानक औषधि है। यह इस देश में नई वस्तु है और मैंने लोगों से सुना है—मुझे स्वयं अनुभव नहीं है—कि नई मदिरा में पुरानी से अधिक नशा होता है। मेरी धारणा है कि भूतकाल में चाहे कुछ भी हुआ हो, किन्तु नये विधान में हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि राज्य का प्रमुख और देश-हितार्थ उसके अधीन कार्य करने वाले मुख्य अधिकारी ऐसे किसी संशय, किसी अभियोग अथवा विश्वसनीय कारण से स्वतन्त्र होने चाहियें कि अपने अनेकों कार्यों में, अपने अनेकों पदों तथा नियुक्तियों पर, उन्होंने अपने मतानुसार देश के हित के अतिरिक्त किसी अन्य बात की ओर ध्यान भी दिया है।

श्रीमान्, मैं जानता हूं कि मानवीय मामलों में ऐसी आशंकाओं के लिये कुछ न कुछ आधार सदा मिल सकता है और जहां ठीक आधार नहीं मिलते वहां किंवदन्तियां फैल सकती हैं जिनमें ऐसी बातों की कल्पना की गई हो अथवा ऐसी बातें गढ़ी गई हों जो कि वास्तव में हैं ही नहीं, अथवा तुच्छ बातों की अतिशयोक्ति हो गई हो। मैं यह भी जानता हूं, श्रीमान्, कि सर्वोच्च सद्भावना के होते हुये भी मनुष्य गलती कर सकता है। मैं इस संशोधन द्वारा जो प्रावधान रखना चाहता हूं उसका आशय ऐसी त्रुटियां के लिये दण्ड देना नहीं है जो सद्भावना से अथवा अज्ञान में अथवा उचित प्रकाश न मिलने पर की गई हों। इन संशोधन द्वारा मैं केवल पद अथवा शक्ति के जान बूझ कर दुरुपयोग को रोकने का प्रयत्न कर रहा हूं, जिससे कि सामूहिक रूप से देश के हित की वृद्धि करने के स्थान पर शक्ति तथा प्राधिकार-आरूढ़ लोगों द्वारा व्यक्ति के अथवा परिवार के हितों की ही वृद्धि होती है।

अन्य देशों में ऐसा हुआ है; और हमारी बपौती के बावजूद ऐसे विषयों में भी ईश्वर का नाम रखने की हमारी प्रबल इच्छा के बावजूद भी मैं समझता हूं, हम अन्य लोगों की मूर्खताओं को दोहरा सकते हैं। मुझे भय है कि ईश्वर के नाम की केवल उपस्थिति ही मनुष्य की निर्बलता के विरुद्ध प्रतिभूति नहीं होगी अत: मैं इसकी स्पष्टरूपेण निश्चयोक्ति करवाना चाहता हूं, मैं चाहता हूं कि यह बात बलपूर्वक कही जाये कि जो लोग न्यासधारी हों, जो जनता के अधीन सर्वोच्च पद पर आसीन हों, और जिनके हाथों में दो, तीन अथवा चार वर्षों के लिये देश के भाग्य के निर्माण की शक्ति हो, वे कम से कम अपने विवेकानुसार तथा अपनी बुद्धि अनुसार तो उन दोषों से मुक्त रहेंगे, जिनकी मैंने इस संशोधन में कल्पना की है।

विशिष्ट उदाहरणों का उल्लेख करने से तो, श्रीमान्, द्वेष उत्पन्न होता है। श्रीमान्, इस प्रकार से दृष्टान्त देना व्यर्थ है जिन्हें हममें से अधिकांश जानते होंगे। कहावत प्रसिद्ध है, कम से कम मेरे प्रदेश में तो है ही, कि चाहे प्रत्येक पुरुष अपनी पत्नी का नाम जानता है पर कोई उसे बोलता नहीं। इस कारण मैं उस सिद्धान्त का उल्लंघन करके नामादि बताना कदापि नहीं चाहता जो कि ठीक भी हो सकते हैं तथा गलत भी। किन्तु मेरे विचार में इस विषय पर कोई मतभेद नहीं होना चाहिये कि राज्य का प्रमुख ऐसे किसी अभियोग से स्वतन्त्र होना चाहिये। अत: चाहे हम सर्वथा दरिद्र व्यक्ति को प्रधान न रखें, अथवा ऐसे मनुष्य को न रखें जिसके पारिवारिक बन्धन न हों, तथा कोई सम्बन्धी अथवा आश्रित न हो

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

तदपि हमें ऐसे अभिरक्षण पर बल देना चाहिये, जिसकी मानवीय दुर्बलता को वैयक्तिक प्रलोभन अथवा वैधानिक ढील पुष्ट न कर दे तथा ऐसी बातें न होने दे जो कि होनी ही नहीं चाहियें। मानवीय मस्तिष्क में बहुत-सी बातें उपजती हैं और ऐसे वकील हैं जो कि उस उपज के कार्य में सहायक होंगे। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जबकि लोगों ने अपनी शपथ की भावना का जानबूझ कर उल्लंघन किया है अथवा उसका गलत अर्थ निकाला है, चाहे उन्होंने शपथ के शब्दों का उल्लंघन न किया हो। मुझे इंग्लिस्तान के एक भूतपूर्व लार्ड चांसलर का मामला याद है, जिसके हाथ में बहुत-सी नियुक्तियां थीं जिन पर उसने अपने सम्बन्धियों को ही नियुक्त किया था। जब उसके कारनामें इतने बढ़ गये कि केवल उसके पुत्रों, भतीजों, भांजों और पोतों, धेवतों को ही नौकरियां मिल सकती थीं, तब लाड्र्स-परिषद् ने यह जांच करने के लिये एक समिति नियुक्त की कि यह अभियोग ठीक है अथवा नहीं। समिति के सम्मुख बोलते हुये लार्ड चांसलर ने—मेरे विचार में वह लार्ड ऐल्डन था—इतना कहने का साहस किया कि, और गम्भीरतापूर्वक कहा कि 'मैंने शपथ ली है कि मैं केवल उन्हीं को नियुक्त करूंगा जिन्हें मैं जानता हूं कि वे अमुक प्रकार के हैं। और अपने पुत्रों, भतीजों आदि को मैं जितनी अच्छी प्रकार जानता हूं किसी अन्य को कैसे जान सकता हूं?' वह कहना भूल गया कि वह जिन्हें जानता है कि वे योग्य हैं उन्हीं को उसे नियुक्त करना चाहिये और केवल उन्हीं को नहीं जिन्हें कि वह केवल जानता हो। यही अन्तर तथा भेद था जिसे उस योग्य लार्ड ने उस समय याद रखने की चिन्ता नहीं की।

महारानी विक्टोरिया का मामला भी प्रसिद्ध है, कि 1869 में आयरलैण्ड में ऐंग्लीकन चर्च के समाप्त करने के समय, महारानी ने राजतिलक के समय की एक शपथ निकाली थी जिससे पता चलता था कि उन्होंने केवल इंग्लिस्तान के चर्च के रक्षण तथा परिरक्षण की शपथ ली थी। वे भूल गई थीं कि उन्होंने केवल इंग्लिस्तान में ही इंग्लिस्तान के चर्च के रक्षण की शपथ ली थी, तथा समस्त संसार में वरन् समस्त युक्त राज्य (यूनाइटेड किंगडम) में भी, उसका रक्षण करना आवश्यक नहीं था। इस प्रकार महारानी के विरोध का अन्त कर दिया गया।

मेरा अभिप्राय यह है कि यद्यपि शपथ के शब्दों का दुरुपयोग करना अथवा जानबूझ कर गलत अर्थ निकालना, अथवा उसको अनुचित प्रकार से क्रियान्वित करना सम्भव है, किन्तु शपथ भी किसी प्रकार से प्रत्याभूत होती ही है। मैं जानता हूं कि यह सर्वथा ऐसी प्रत्याभूति नहीं है कि कोई चालाकी करना सम्भव न हो

किन्तु किसी न किसी प्रकार से यह प्रत्याभूति अवश्य है कि जो ऐसे पदों पर प्रतिष्ठित हैं उन्हें सदा अपने कर्त्तव्यों का, अपनी प्रतिज्ञाओं का स्मरण कराती रहेगी, और जिसके कारण वे ऐसे प्रकार से आचरण करेंगे कि उन पर कोई ऐसा सन्देह न किया जा सके जो कि उन लोगों के कार्यों अथवा बातों से किया जा सकता है जिन्होंने कि पारितोषिक के समान उच्च पदों की शक्ति को प्राप्त कर लिया है। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, यह मामला ऐसा सुस्पष्ट तथा महत्वपूर्ण है कि इस प्रकार की किसी बात पर विरोध होना ही नहीं चाहिये। मुझे आशा है यह परिषद्, अपनी उस परम्परा के अनुरूप जिसकी कि यह रक्षा करती रही है, मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

***श्री आर.के. सिधवा:** उपाध्यक्ष महोदय, यह एक साधारण-सा खण्ड है जो प्रधान की शपथ से सम्बद्ध है। श्रीमान्, मुझे ईश्वर के अस्तित्व में तथा धर्म में भी दृढ़ विश्वास है किन्तु, श्रीमान्, मुझे यह कहना पड़ेगा कि हम ईश्वर का आशीर्वाद मांगते हैं, केवल इसीलिये परमात्मा का नाम विधान में रखना उचित नहीं होगा। यदि आपको ईश्वर पर सच्चा विश्वास है तो वह सर्वत्र व्यापक है। भगवान् यहां इस परिषद् में भी है। वह सर्वव्यापी है। आपको ईश्वर के अस्तित्व पर सच्चा विश्वास है तो उसे विधान में रखने मात्र से तथा इस प्रकार सन्तोष अनुभव करने से कोई लाभ नहीं है। इससे कोई लाभ नहीं है कि प्रधान ईश्वर के नाम पर शपथ ले तथा बाद में ईश्वर के उपदेशों के सर्वथा विरुद्ध कोई कार्य करे। एक और बात पर भी मुझे आपत्ति है; मैं अपने मित्र मि. करीमुद्दीन के विचारों से सहमत नहीं हूं कि असाम्प्रदायिक राज्य में 'ईश्वर' शब्द आ ही नहीं सकता। असाम्प्रदायिक राज्य का यह अर्थ नहीं है कि कोई व्यक्ति भगवान् में विश्वास ही नहीं कर सकता। निस्सन्देह वह सिद्धान्त किसी युक्तिपूर्ण मनुष्य के सामने नहीं टिक सकता, किन्तु मेरा विश्वास है, श्रीमान्, कि रात-दिन हम कहते हैं कि धर्म का हमारे विधान से कोई सम्बन्ध नहीं होगा और धर्म हमारा व्यक्तिगत मामला है। मैं निस्सन्देह भगवान पर विश्वास करता हूं और मैं धर्म को अपना निजी मामला समझता हूं। किसी को मुझे यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि आप भगवान पर किस रूप में और किस प्रकार विश्वास करते हैं और धर्म के विषय में आपके क्या विचार हैं। भारत में हमारी यह भावना है कि ईश्वर धर्म का प्रतीक है; और श्रीमान्, हम जानते ही हैं कि धर्म के नाम पर इस देश में कैसी नाशकारी बातें होती रही हैं; प्रत्येक जाति ईश्वर पर अपने ही तरीके से

[श्री आर.के. सिधवा]

विश्वास करती है। हिन्दुओं का विश्वास बिल्कुल अलग है, मुसलमानों का सर्वथा भिन्न है, और पारसियों और ईसाइयों की यही बात है। अतः मैं नहीं चाहता कि हमारे विधान में 'धर्म' शब्द की बाधा होनी चाहिये, किन्तु यदि मित्रों को भगवान् शब्द के रखने से तसल्ली प्राप्त होती है, और उनको इससे संतोष होता है तो उन्हें रख लेने दो। मैं तो यही कहना चाहता हूं, श्रीमान्, कि यह अधिक अच्छा होता यदि 'ईश्वर' शब्द तथा धार्मिक दृष्टिकोण को रखा ही न जाता। मैं तो वास्तव में इसको अधिक समझता कि प्रधान को शपथ लेते समय जनता का स्मरण करना चाहिये था। उसे कहना चाहिये था कि जनता की उपस्थिति में.....

***उपाध्यक्षः** क्या आप इस संशोधन का सुझाव दे रहे हैं?

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं तो केवल आयर के विधान से यह बात उद्धृत कर रहा हूं। वहां प्रधान समस्त देश की जनता के नाम पर शपथ लेता है। वह कहता है कि "मैं समस्त देश की जनता के समक्ष शपथ लेता हूं" और शपथ के अन्त में कहता है: "यदि मैं शपथ को तोड़ूं तो राज्य मुझे कठोरतम दण्ड दे सकता है"। मैंने आज प्रातः इस विषय पर उपदेश सुने हैं कि प्रधान को सच्चा, ईमानदार तथा विश्वसनीय व्यक्ति होना चाहिये, और जयपुर-अधिवेशन की चर्चा भी की गई थी। पर प्रधान यह नहीं कहता कि "यदि मेरे ऊपर प्रवृत्त कर्त्तव्यों को मैं पूरा नहीं करूंगा तो मुझे कठोरतम दण्ड मिल सकता है और यह निश्चयोक्ति मैं देश की जनता के समक्ष करता हूं।"

***उपाध्यक्षः** मैं वास्तव में देखता हूं कि आप संशोधन संख्या 1147 को पेश कर रहे हैं और उसके शब्दों को दोहरा रहे हैं।

***श्री आर.के. सिधवाः** यह तो आयर के विधान के शब्द हैं, श्रीमान्!

***उपाध्यक्षः** मैं इससे इन्कार नहीं करता पर आप उस संशोधन में से उद्धरण दे रहे हैं जो कि आप पेश नहीं करना चाहते थे।

***श्री आर.के. सिधवाः** यह मेरा संशोधन नहीं है और यदि है भी तो मैं कहना चाहता हूं कि मैंने इसे अन्य विधान से लिया है जैसे कि इस परिषद् के कई विख्यात व्यक्तियों ने दूसरों से चीज़ें ली हैं।

***उपाध्यक्षः** बिल्कुल नहीं; मैं तो केवल यह कह रहा हूं कि आप उस संशोधन अर्थात् संख्या 1147 में से उद्धरण दे रहे हैं जो कि आपने पेश नहीं किया।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं आपके निर्णय को शिरोधार्य करता हूं। आप जो कुछ कह रहे हैं मैं उसे चुनौती नहीं दे सकता। मैंने तो केवल यही कहा था कि यह आयर के विधान की पुनरावृत्ति मात्र हूं।

***उपाध्यक्ष:** यह निस्संदेह वह संशोधन है जो आपके नाम में है।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि शपथ ऐसी होनी चाहिये जो कि देश के लोगों के प्रति अधिक अनुरोध करती हो, जिनके हित और भलाई के लिये हम इस विधान का निर्माण कर रहे हैं।

***श्री एम. थिरूमाला राव** (मद्रास : जनरल): मैं नहीं जान पाता कि ज्यों ही मैं ध्वनियंत्र के निकट आता हूं, प्रकाश (बिजली) क्यों लुप्त हो जाता है। हम सबको अधिकाधिक प्रकाश की आवश्यकता है, विशेषतया मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा की वक्तृता के पश्चात् जिन्होंने भगवान् का बहुत विरोध किया है तथा जो विधान से ईश्वर को हटाना चाहते हैं। श्रीमान्, यह अद्भुत बात है कि जिन ईमानदार और भगवान् से डरने वाले ने इस विधान का मसौदा बनाया है वे भगवान से कितने डरते हैं कि उन्होंने उसे विधान से पूर्णत: निकाल ही दिया है! श्रीमान्, मैं परिषद् को बताना चाहता हूं कि गत 30 वर्षों में, कांग्रेस का संघर्ष संसार के एक महानतम व्यक्ति के नेतृत्व में आदर्शवाद के निश्चित पथ पर चलाया गया था। सत्य तथा अहिंसा हमारे शस्त्र थे और अत्यधिक संख्या में जनसाधारण ने उनका प्रयोग किया है और इन वर्षों में, जिन लोगों ने देश की स्वतन्त्रता के लिये युद्ध किया था उनके हृदय में एक कल्पना है कि स्वतन्त्रता किस प्रकार की होनी चाहिये। महात्मा गांधी की इस देश में केवल राजनीतिक नेता होने के कारण ही पूजा नहीं होती है किन्तु इस कारण होती है कि वे एक सज्जन थे, वे ऐसे व्यक्ति थे जो राष्ट्र की भावना के प्रतीक थे और दूर देशों से बहुत से आक्रमणों को परास्त कर जीवित रहे थे। संसार की सभ्यतायें हमारे समक्ष आईं और चली गईं; मिस्र और बेबीलोन की सभ्यतायें नष्ट हो गईं, किन्तु इन सब शताब्दियों के पश्चात् भी भारत की सभ्यता अब तक जीवित है, क्योंकि इस राष्ट्र की रूपरेखा में कुछ ऐसी बात है जिसकी जड़ आध्यात्मिक भावनाओं में जमी हुई है। यदि आप उस आध्यात्मिक भावना को मिटा देंगे, तो भारत को जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है और बहुत पहले ही इसका अस्तित्व मिट जाना चाहिये था। हम सब महात्मा गांधी के योग्य पथ-प्रदर्शन के अन्तर्गत लड़े रहे हैं और महात्मा गांधी ने हमें अपने देश के शासन के सम्बन्ध में कुछ सुनिश्चित आदर्शों की प्रेरणा दी। यह दुर्भाग्य है, अथवा व्यंग है, कि इस विधान

[श्री एम. थिरूमाला राव]

के मसौदा लिखने का कार्य उन लोगों के हाथों में पड़ गया, जिनके जीवन के किसी अंग पर गांधी जी के आदर्शों की छाप नहीं पड़ी है, कदाचित् एक ही अपवाद मेरे माननीय मित्र श्री मुन्शी का है।

***श्री के. एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): धन्यवाद, श्रीमान्!

***श्री एम. थिरूमाला राव:** अत: यह निराशास्पद बात है कि हम सब अपने लोगों की विचारधारा को नहीं समझ पाये हैं। जहां भी हम गये, हमने सदा यही कहा कि हमारे जीवन का आधार ही धर्मपरायणता है। पश्चिमी देशों में जाइये। वहां बादशाह देश और ईश्वर का प्रतीक होता है। बादशाह जाति के धर्म का रक्षक होता है और आपने पश्चिमी विश्वविद्यालयों को भी देखा है। आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज—और समस्त प्राचीन विश्वविद्यालय प्राचीनतम गिरजों में, जो कि विश्वविद्यालयों के साथ-साथ बने हुये हैं, परम्परा का पाठ पढ़ाती हैं—इन प्राचीन विद्यानगरों ने धर्म अथवा राष्ट्र के आध्यात्मिक शिक्षण को प्रथम स्थान दिया है। अत: मेरा यह सुझाव है कि यह विधान इस देश की सच्ची भावनाओं, सच्ची सभ्यता का अभिरक्षण करे। इसका अभिरक्षण कैसे किया जाये? नास्तिकों के लिये प्रावधान कर दिया गया है। मसौदा-समिति के प्रधान को, जिसके हृदय में नास्तिकों के लिये, जो कि देश में अगण्य हैं, ऐसा स्थान है, देश के बहुसंख्यक लोगों की आध्यात्मिक बपौती के रक्षार्थ अधिक आतुरता दिखानी चाहिये थी! जो जयपुर गये थे, उन्होंने देखा होगा कि देश का वास्तविक जीवन अब भी जीवित है। सहस्त्रों लोग हृदयों में सच्चा आवेश लिये तथा अश्रुओं से पूर्ण नेत्रों से सरदार पटेल अथवा पण्डित नेहरू की ओर देख रहे थे, वे ही राष्ट्र के सच्चे प्रतीक हैं। मुझे कुछ सिखों को देखने का अवसर प्राप्त हुआ; लगभग 15-20 हमें कह रहे थे।

"हमको दर्शन पूरा हो गया।"

'दर्शन' शब्द कहां से आया? यह धर्म का शब्द है। यदि वे हमारे नेताओं को देख रहे थे तो इसका यह कारण नहीं है कि उनके पीछे सुनियन्त्रित प्रकाशन-संस्थायें अथवा सुनियन्त्रित सेना है। महात्मा गांधी इसलिये महान् नहीं थे कि उनका समर्थन करने के लिये पश्चिम के अधिनायकों हिटलर, स्टालिन और मुसोलिनी के समान ही, सुनियन्त्रित प्रकाशन-संस्था, राज्य अथवा सेनायें थीं। ज्यों ही तुम अपने दैनिक जीवन में से, जो कि विधान में प्रतिबिम्बित होगा, भगवान् को निकाल दोगे, त्यों ही आपको अपने अस्तित्व रखने का भी अधिकार नहीं रहेगा।

पश्चिम के लोगों ने रूस के नियन्त्रित राज्य में से भगवान् को निकाल दिया है, जर्मनी और इटली के नियन्त्रित राज्य में वे लोग भूल गये, और उन पर जो दुर्भाग्य पड़ा है वह आप देख ही चुके हैं। अतः मेरा यही कहना है कि यदि लोगों की वास्तविक भावना को आप व्यक्त करना चाहते हैं तो ईश्वर का समर्थन करिये; ईश्वर तो वास्तव में ऐसा व्यापक शब्द है; ईश्वर सर्वव्यापक शब्द है। यह तो जातिवाचक संज्ञा है जिसे प्रत्येक धर्म ने व्यक्तिवाचक नाम दे दिया है।

मैंने अपने माननीय मित्रों, प्रोफेसर के.टी. शाह और श्री आर.के. सिधवा के संशोधनों को देखा है। आप चाहते हैं कि एक व्यक्ति को शपथ लेनी चाहिये और यह निश्चयोक्ति करनी चाहिये कि वह समुचित रूप से व्यवहार करेगा, वह ईमानदार होगा और वह सब कुछ होगा। यह सब बातें परमात्मा में निहित हैं; उस एक शब्द परमात्मा में और भी अधिक बातें सन्निहित हैं जिसके नाम पर आपसे शपथ लेने के लिये कहा जाता है और आप कहते हैं कि आप अपने सार्वजनिक कर्त्तव्यों को पूरा करने में ईश्वर के नाम को परिभाषित नहीं करेंगे। अतः श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने योग्यतापूर्वक जो संशोधन पेश किया है वह हमारे देश की सच्ची भावनाओं का परिचायक है। मुझे विश्वास है कि यह विधान इस राष्ट्र को पूर्व के महानतम राष्ट्र के रूप में उन्नत करने तथा संसार के नेता के रूप में इस देश की सच्ची संस्कृति को समुन्नत करने के लिये अन्तिमरूपेण स्थापित हो, उससे पहले इसका पूरा कायाकल्प ही अपेक्षित होगा। अतः श्रीमान्, यह संशोधन समय निकल जाने पर पेश नहीं हुआ है और मुझे प्रसन्नता है कि पार्टी ने इसे मान लिया।

***एक माननीय सदस्यः** किस पार्टी ने मान लिया है?

***श्री एम. थिरूमाला रावः** मेरे विचार में सब समझ गये होंगे कि मेरा 'पार्टी' से क्या प्रयोजन है। मुझे आशा है कि परिषद् इस संशोधन को एकमत से स्वीकार कर लेगी।

***श्री के.एम. मुन्शीः** उपाध्यक्ष महोदय, मेरे विचार में जो माननीय सदस्य मेरे माननीय मित्र श्री कामत के संशोधन के विरुद्ध बोले थे वे यह समझ गये कि मेरे माननीय मित्र श्री महावीर त्यागी का एक संशोधन था जो ईश्वर पर विश्वास न करने वालों को स्वतन्त्रता देता था कि वे शपथ के शब्दों की गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करें। परिषद् के समक्ष केवल यही प्रश्न है कि जब कोई व्यक्ति ईश्वर पर विश्वास करता हो तो उसे ईश्वर की शपथ लेनी होगी अथवा किसी अन्य की! मेरे माननीय मित्र श्री महावीर त्यागी के संशोधन द्वारा

[श्री के.एम. मुन्शी]

संशोधित रूप में मेरे माननीय मित्र श्री कामत का संशोधन सच्ची कसौटी निश्चित करता है कि जब कोई व्यक्ति वास्तव में ईश्वर पर विश्वास करता हो तो उसे ईश्वर की ही शपथ लेनी होगी और वह उसके नाम के बिना शपथ नहीं लेगा अथवा किसी और के नाम में शपथ नहीं लेगा। हम जानते हैं कि पुराने दिनों में लोग गोपुच्छ की अथवा पीपल-वृक्ष की शपथ लेते थे। आशय यही है कि शपथ ईश्वर के नाम पर ली जानी चाहिये, जिस पर मनुष्य को गम्भीरतम विश्वास होता है।

मेरे मित्र गत वक्ता ने कृपा करके मेरी चर्चा की थी कि विधान-परिषद् के समस्त सदस्यों में से मैं महात्मा गांधी से अधिक निकट-सम्पर्क में रहा हूं। मैं नहीं जानता कि यह सत्य है अथवा नहीं। किन्तु मुझे भी यह विचार उत्पन्न हुआ है—मैं अबाधरूपेण कह सकता हूं—कि हम इस विधान में ईश्वर के नास्तित्व पर बल दे रहे हैं। मेरी सम्मति तो यह थी कि हमें परमात्मा का नाम प्रस्तावना में ही रखना चाहिये: किन्तु व्यापक विचारधारा भिन्न थी। किन्तु जब शपथ का प्रश्न आता है तो मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि किसी को ईश्वर के नाम से शर्म क्यों आनी चाहिये। मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि यह बात असाम्प्रदायिक राज्य की कल्पना के विरुद्ध कैसे जाती है। असाम्प्रदायिक राज्य शब्द का तो प्रयोग साम्प्रदायिक अथवा धार्मिक राज्य के विपरीत होता है। इसका आशय यह है कि नागरिकता धार्मिक विश्वासों पर आधारित नहीं होगी, प्रत्येक नागरिक चाहे वह किसी धर्म का मानने वाला हो, कानून के समक्ष समान है, उसके व्यावहारिक अधिकार समान हैं, उसे राज्य से लाभ उठाने का और अपना जीवन बिताने का समान अवसर है; इसके अतिरिक्त उसका और कुछ आशय नहीं है। असाम्प्रदायिक राज्य का अर्थ ईश्वरविहीन राज्य नहीं है। यह ऐसा राज्य नहीं है जो धर्म को मिटाने अथवा उसकी उपेक्षा करने के लिये दृढ़-प्रतिज्ञ हो। यह ऐसा राज्य नहीं है जो इस देश में धार्मिक विश्वासों की उपस्थिति को ही न माने। वास्तव में प्रत्येक राज्य उसे मानता है। हमने धर्म के विषय में मूलाधिकारों को पारित करके इसे मान लिया है। धर्म मनुष्य की सर्वोपरि सम्पत्ति है और धर्म पर विश्वास करने वाला, इस असाम्प्रदायिक राज्य के अन्तर्गत भी, उस सम्पत्ति का अपनी इच्छानुसार अधिकारी होगा। कोई राज्य जो ईश्वर को मिटाने का प्रयत्न करेगा, शीघ्र ही समाप्त हो जायेगा।

हमें इस बात को मानना होगा ही कि भारत एक धर्मपरायण देश है। जब हम असाम्प्रदायिक राज्य के विषय में बातें करते हैं, तब भी हमारी विचारधारा और

जीवनधारा धार्मिक दृष्टिकोण से ओतप्रोत होती है। जब महात्मा गांधी की मृत्यु हुई थी, तब उन्हें श्मशान घाट तक राजकीय जलूस में ले जाया गया था और अन्त में धार्मिक संस्कार हुये थे। उनकी भस्म को भारत की सौ नदियों में प्रवाहित किया गया था। मैं आपको अपना अनुभव बताता हूं। जब गांधी जी की भस्म को हैदराबाद में संगम पर प्रवाहित किया गया था, तब हैदराबाद रियासत ने, जैसे भी वह उस समय थी, सरकारी तौर पर उसमें भाग लिया था। 2,00,000 से भी अधिक मुसलमानों ने उसमें भाग लिया था। वहां संगम पर सारे संस्कार हिन्दू रीत्यनुसार किये गये, और भीड़ में हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई और अन्य जातियों के लोग भी थे। इससे पता चलता है कि भारत का आन्तरिक मन अत्यन्त धर्म-परिपूर्ण है। हमें इस पर शर्मिन्दा नहीं होना चाहिये। भारत के लिये वह दुर्भाग्य का दिन होगा, यदि किसी कानूनी कुचाल द्वारा हमारा राज्य अधार्मिक, नास्तिक राज्य बन जाये। हमें यह भय नहीं होना चाहिये कि असाम्प्रदायिक राज्य का जनता की धार्मिक भावनाओं से सामंजस्य नहीं होता।

जैसे कि एक माननीय सदस्य पहले ही कह चुके हैं, यदि भारत संसार को कुछ दे सकता है तो केवल जीवन का दर्शन ही दे सकता है जो आध्यात्मिकता तथा हमारे मध्य भगवान् की व्यापकता से परिपूर्ण है। यदि भारतीय संस्कृति का कुछ भी आशय है तो यही है कि ईश्वर है और यदि मनुष्य उस परमात्मा का साधन बन जाये तो वह इसी जीवन में देवत्व की महत्ता को प्राप्त कर सकता है। जिस साधन द्वारा महात्मा गांधी ने विद्यमान राष्ट्रीयता की उत्पत्ति की तथा हमारे लिये स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की है, वह साधन भारत की धर्मपरायणता ही है। भारत धर्मपरायण ही रहेगा और भारत का राज्य धर्म-विरोधी होने के अर्थ में कभी असाम्प्रदायिक नहीं बन सकता। इसका यह अर्थ नहीं कि ईश्वर पर विश्वास करने वाला देशसेवा की प्रतिज्ञा करते समय ईश्वर की शपथ नहीं ले सकता। इस विषय पर मेरा यही निवेदन है।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** उपाध्यक्ष महोदय, समस्त धर्म कहते हैं कि ईश्वर की इच्छा अथवा आज्ञा के बिना कुछ नहीं होता। अत: यह तर्कसंगत परिणाम हुआ कि मेरे माननीय मित्र श्री कामत ईश्वर की इच्छा से ही ईश्वर के नाम को रखने का प्रस्ताव रखने के लिये खड़े हुये थे। और मैं भी यहां ईश्वर की इच्छा और आज्ञा से ही यह कहने आया हूं कि वह अपना नाम यहां बिल्कुल नहीं चाहता। मैं यहां श्री कामत के संशोधन का विरोध करने आया हूं। मैं इस विषय में युक्तियां बाद में पेश करूंगा।

[श्री तजम्मुल हुसैन]

सर्वप्रथम, मैं चाहता हूं कि अनुच्छेद 49 को विधान से निकाल ही दिया जाये। ऐसे अनुच्छेद को रखने से क्या लाभ है जिसमें कहा गया हो कि सर्वोच्च अधिकारी प्रधान को प्रधान बनने के समय शपथ लेनी होगी अथवा निश्चयोक्ति करनी होगी? क्या आवश्यकता है? मेरे माननीय मित्र डॉक्टर अम्बेडकर, जोकि विख्यात वकील हैं, जानते हैं कि 99 प्रतिशत गवाह, जो कि न्यायालय में जाकर सर्वशक्तिमान प्रभु के नाम पर शपथ लेते हैं अथवा निश्चयोक्ति करते हैं, वहां असत्य ही बोलने जाते हैं। (*बाधा*)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जब तक गवाह सहमत न हो वह कभी भगवान् के नाम पर शपथ नहीं लेता। (*बाधा*)

***उपाध्यक्ष:** अच्छा हो यदि माननीय सदस्य बाधा न डालें।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** मैं समझाता था कि माननीय मि. नजीरुद्दीन अहमद को, जो बर्दमान के वकील हैं—मुझे पता लगा है कि वे फौजदारी के बहुत अच्छे वकील हैं—पता होगा कि जब कोई गवाह गवाही देने जाता है, तब वह कहता है:

"अल्लाह या भगवान को नाजिर होकर बोलते हैं।"

वह कहता है 'ईश्वर के नाम पर मैं कहता हूं.....।

मैं कह रहा हूं कि अनुच्छेद 49 को हटा देना चाहिये। मैं लिखित सूचना दिये बिना ही यह प्रस्ताव कर सकता हूं क्योंकि मैं तो सारी चीज़ के ही विरुद्ध हूं। मैं कहता हूं, श्रीमान्, कि इस विधान को हमने, मानवों ने बनाया है। हम इसे सम्पूर्ण विधान नहीं कह सकते। कोई भी ऐसा नहीं कह सकता। सर्वशक्तिमान् का नाम तो पूर्ण है, अत: एक अपूर्ण विधान में उसका नाम क्यों रखा जाये? उसका इतना मूल्य क्यों घटाया जाये तथा उसे यहां क्यों रखा जाये? श्रीमान्, इस विधान का अनुवाद किया जायेगा और वह अनुवाद परिषद् के समक्ष आयेगा और पारित होगा। आप क्या अनुवाद रखेंगे? आप क्या नाम रखेंगे? हम सब जानते हैं कि भगवान एक है किन्तु हमने हजारों ईश्वरों की उत्पत्ति कर दी है और आपका भगवान मेरे भगवान से भिन्न है और श्री सिधवा का भगवान किसी और के भगवान से पृथक् है। आप किसके भगवान को रखेंगे? श्री सिधवा किसी ऐसे भगवान के नाम पर शपथ क्यों लेंगे जो उनके ईश्वर का नाम नहीं हो? फ़र्ज किया इसका अनुवाद करके 'भगवान' शब्द रखा जाता है, तो क्या आप पारसी

अथवा ईसाई अथवा किसी अहिन्दू को प्रधान बनने पर यह शब्द कहने के लिये बाध्य कर सकते हैं? या तो आप उसे प्रधान बनाना ही नहीं चाहते अथवा यदि वह बन जाये तो ऐसी शपथ नहीं ले सकता। उसका नाम क्यों रखते हैं? उसका हम अपने घरों पर जैसा चाहें पूजन करें। मैं श्री सिधवा के तर्कों को दोहराना नहीं चाहता। इस विषय पर उन्होंने बहुत योग्यता से भाषण दिया है। ऐसे भी भारतीय हैं जो भगवान पर बिल्कुल विश्वास करते ही नहीं। वे इस शपथ को कैसे लेंगे? इन शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

"अनुच्छेद 49 हटा दिया जाये।"

***रेवरैण्ड जैरोम डीसूजा** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं श्री कामत के इस संशोधन पर कुछ शब्द बोलने के लिये बिना आवेग के खड़ा नहीं हुआ हूं। मुझे विश्वास है कि इस परिषद् में मेरे माननीय सहयोगियों को कुछ सन्देह नहीं होगा कि मैं जो कुछ कहने वाला हूं उसका क्या आशय होगा। इस परिषद् में मैंने अनेक बार इस गम्भीर विषय की चर्चा छेड़ी है, अत: मैं संतोष के साथ श्री कामत के सुझाव अथवा संशोधन को देखता हूं और उसका हार्दिक समर्थन करता हूं। तदपि, श्रीमान्, इस संशोधन को स्वीकार करते हुये और इसका स्वागत करते हुये, मेरे मन में यह भावना उत्पन्न हो ही जाती है कि इस अत्यन्त नम्र सुझाव के 'सरकारी' अथवा 'वैधानिक' पहलू को मेरे कुछ पूर्व वक्ताओं ने आवश्यकता से अधिक महत्व दे दिया है। यदि मुझे ऐसा कहने की अनुमति दी जाये, तो हमारे माननीय मित्र श्री मुन्शी ने ठीक बात की है, सब बातों का ठीक मूल्य आंका है। इस संशोधन का क्या आशय है? क्या इसके द्वारा विधान अथवा विधान-निर्माता निकाय, ईश्वर में तथा सुपरिभाषित एवं एकमत से मान्य ईश्वर की कल्पना में गम्भीर तथा पूर्ण विश्वास प्रकट कर देता है? यदि ऐसा होता तो इस पर आपत्ति की जा सकती थी, किन्तु यहां कोई ऐसा आशय नहीं है। यहां तो केवल यही कहा गया है कि जब हमारे देश में सर्वाधिक सम्मान का पद देश की इच्छानुसार एक उच्च व्यक्तित्व, सदाचार तथा योग्यता के मनुष्य को दिया जा रहा है, तब हम चाहते हैं कि वह उस पद पर प्रतिष्ठित होते समय देश-सेवा का संकल्प ऐसी विधि से करे जो कि हमारी कल्पनानुसार अत्यधिक बन्धनकारी तथा गम्भीर हो; हम चाहते हैं कि वह अपनी शक्ति देश-सेवा की अपनी आन्तरिक कार्येच्छा के गम्भीरतम श्रोतों से प्राप्त करे। और यह जानते हुये कि हमारे देशवासियों का अत्यधिक बहुमत, हिन्दू अथवा मुसलमान अथवा ईसाई

[रेवरैण्ड जैरोम डीसूजा]

अथवा पारसी अथवा सिख सर्वशक्तिमान् परमात्मा में विश्वास के कारण ही अपना नैतिक बल प्राप्त करते हैं, यह संशोधन उस निर्वाचित, उस असाधारण व्यक्ति को यह अधिकार देता है कि यदि वह चाहे तो उस पवित्र नाम पर ही देश-सेवा का व्रत ले। हम उसे अवसर देना चाहते हैं कि वह अपनी मति-अनुसार अत्यन्त गम्भीर तथा अत्यन्त बन्धनकारी संकल्प करे। हम उस पर यह लादतें नहीं हैं। यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो जो किसी न किसी कारण से उस विशेष तरीके से शपथ न लेना चाहता हो तो उसके लिये वैकल्पिक शपथ का सुझाव रखा गया हैं। इस संशोधन द्वारा विधान-निर्माताओं का तथा हमारा केवल यही आशय है कि हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि हमारे देश में अधिकांश जनता आस्तिक है और निस्सन्देह कोई भी व्यक्ति जो कि इस उच्च पद पर आसीन होगा, वह यदि सर्वशक्तिमान् प्रभु के नाम पर शपथ लेगा तो उसमें पद के प्रकार्यों को बहुत निष्ठापूर्वक पूरा करने का उत्साह होगा। इस बात को सत्य मान कर, हम केवल उस तथ्य का उल्लेख कर देते हैं, किन्तु किसी धर्म को अंगीकार नहीं करते। अत: मैं नहीं समझता कि इसका अर्थ असाम्प्रदायिक विधान की भावना के विपरीत क्यों समझा जाये। दूसरी बात एक असाम्प्रदायिक विधान भी, जैसे कि श्री मुन्शी ने कहा है, ईश्वरहीन विधान नहीं होता। यह ईश्वर की भावना के विरुद्ध नहीं है। केवल यह बात है कि यह किसी मत, धर्म अथवा वर्ग में भेदभाव नहीं करता, किन्तु समस्त जनता के विश्वासों, भावनाओं, इच्छाओं, आशाओं तथा आकांक्षाओं के साथ सहानुभूति रखता है। यदि यह इस गम्भीर सत्य की, ईश्वर में हमारे सब लोगों के विश्वास की, अवहेलना कर देता है तो यह उन लोगों की भावना के अनुकूल नहीं होगा। मेरे जो माननीय मित्र पूछते हैं कि 'विधान में भगवान् को रखने से पहले क्या हमारे सम्मुख भगवान् की कोई एकविध तथा स्पष्ट कल्पना है?' उनसे मैं कह सकता हूं 'क्या ऐसा कोई है जिसे सामान्यरूपेण तथा व्यापक तरीके से यह ज्ञात न हो कि इस शब्द से हमारा क्या आशय है?' इस भौतिक तथा अनित्य संसार के परे जो सर्वोच्च आध्यात्मिक सत्य है, उसके लिये प्रयुक्त इस शब्द को स्वीकार करने से पहले क्या यह अपेक्षित है कि हम दार्शनिकों तथा अध्यात्मवादियों के वाद-विवाद में पड़ें और उनके सूक्ष्म अन्तरों को समझें? हम यहां पर इस अनित्य, भौतिक संसार के पीछे जो सर्व सत्य है उसके अनन्त मूल का आधार ले रहे हैं। और इस विषय में हम सब एक हैं, ईसाई, हिन्दू, मुस्लिम, पारसी तथा सब जानते हैं कि समय और आकाश में हम जो कुछ देखते हैं, उसके परे कुछ है जो अपरिवर्तनीय है, जो अनादि अनन्त है—जो न्याय और शान्ति और अच्छाई और

एकरूपता के लिये प्रयत्नशील है। भ्रातृत्व, शान्ति, न्याय, कानून, प्रगति की हमारी गम्भीरतम भावना उसी विश्वास और उसी सत्य पर आधारित है, उसके द्वारा प्रेरित है तथा उस पर ही निर्भर है। अत: मेरे माननीय साथी, इस संशोधन की स्वीकृति के लिये इस व्यापक तथा सामान्य धारणा को काफी मान लेंगे और हमें इस बात की अनुमति देंगे कि इसे प्रधान के पदासीन होने के तरीकों में शामिल कर दिया जाये। ऐसा करके हम ईश्वर की कल्पना का मूल्य नहीं घटा रहे हैं। हम इसे सब पर, सब समयों के लिये तथा सब स्थानों पर नहीं लाद रहे हैं। किन्तु यहां अत्यन्त पवित्र तथा गम्भीर कर्त्तव्य पर आसीन होते समय हमारे देश के निर्वाचित नेता से, जिसके विषय में लगभग सदा ईश्वर-परायण होने की धारणा है, कहा जाता है कि, यदि वह आस्तिक है तो वह उसके पवित्र नाम पर तथा अपनी आत्मा की सारी शक्ति एवं अपने विश्वासों के बल पर यह संकल्प करे कि उसे जो कर्तव्य सौंपे जाते हैं उन्हें वह पूर्ण करेगा। क्या हमें इस विषय में किंचित् भी सन्देह हो सकता है कि यदि हम निश्चयोक्ति की यह भाषा रखें तो उसके अन्तर की गम्भीरता पर इसका प्रभाव पड़ेगा तथा वह अवश्य ही अपने कर्त्तव्य को ऐसे प्रकार से पूरा करेगा जिससे कि यदि कम बन्धनकारी शब्द रखे गये तो कदाचित् वह न कर सके।

अत: मैं परिषद् से प्रार्थना करता हूं कि वह अन्य धारणाओं तथा विचारों पर आधारित समस्त आपत्तियों को छोड़ दे तथा इस संशोधन को स्वीकार कर ले। यदि इसको ठीक समझा जाये तो मैं कह सकता हूं कि इससे राज्य के आधारभूत असाम्प्रदायिक गुण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, और मेरी प्रार्थना है कि वह इस संशोधन को व्यापक स्वीकृति देने की कृपा करें। इससे, निस्संदेह इस देश के लोग ऐसा नहीं समझेंगे अथवा समझने के लिये बाध्य होंगे कि हम किसी मत विशेष को गम्भीरतापूर्वक स्वीकार कर रहे हैं, किन्तु वे कम से कम यह समझ जायेंगे कि कानून-निर्माता तथा विधान-निर्माता इस बात को समझते हैं कि इस देश के लोगों को धर्म पर दृढ़ विश्वास है और इस बात को पूरी तरह समझ कर हम कार्य-साधन के लिये ऐसे सिद्धान्त को अपना रहे हैं और ऐसी आदर्श भावना का सहारा ले रहे हैं जो कि हमें लोगों की पूरी सहानुभूति तथा सहयोग प्राप्त करा देगी और जिनसे हमारे देश को अवश्य लाभ होगा। अत: श्रीमान्, मैं अपने मित्र श्री विष्णु कामत के संशोधन का पूरे हृदय से समर्थन करता हूं और परिषद् से प्रार्थना करता हूं कि इसे एकमत से स्वीकार कर ले। (*हर्ष ध्वनि*)

***उपाध्यक्ष:** डॉक्टर अम्बेडकर!

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन को अर्थात् संशोधन संख्या 1144 को तथा श्री त्यागी के संशोधन द्वारा संशोधित रूप में श्री कामत के संशोधन संख्या 1146 को भी स्वीकार करने के लिये उद्यत हूं।

पहले संशोधन के सम्बन्ध में, जो कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने रखा था, अधिक तर्क की आवश्यकता नहीं है। मेरे नाम में जो संशोधन था उससे यह निस्संदेह अच्छा है।

दूसरे संशोधन संख्या 1146 के विषय में, मैं समझता हूं कि मुझे इस प्रश्न के गुणावगुण पर बोलने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मैं इसे श्री त्यागी द्वारा संशोधित रूप में स्वीकार कर रहा हूं। किन्तु कदाचित् यह अच्छा होगा कि मैं इस बारे में कुछ शब्द कह दूं कि मसौदा-समिति ने ही मौलिक मसौदे में 'ईश्वर के नाम पर' यह शब्द क्यों नहीं रखे थे। श्रीमान्, मेरे विचार में मसौदा-समिति ने इस विषय पर पूर्णत: विचार ही नहीं किया था अत: मैं समुचित कारण नहीं बता सकता कि उन्होंने इन शब्दों को पहले क्यों नहीं रखा।

जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं समझता हूं कि यह ऐसा विषय था जिस पर कुछ विचार करना अपेक्षित था। यदि परिषद् अनुमति दे तो मैं इस विषय पर अपने निजी विचार प्रकट करना चाहता हूं। इस विषय में मेरे यह विचार थे। जहां तक मेरा अध्ययन है, 'ईश्वर' शब्द का विभिन्न धर्मों में विभिन्न महत्व है। ईसाई और मुसलमान ईश्वर को एक कल्पना के समान ही नहीं मानते बल्कि ऐसी शक्ति मानते हैं जो संसार पर राज्य करती है और इस कारण आस्तिकों के नैतिक और आध्यात्मिक कार्यों पर शासन करती है। जहां तक हिन्दू धर्म का सम्बन्ध है, मेरे विचार से—और मैं पूर्णत: गलती पर हो सकता हूं, मैं इस विषय का ज्ञानी होने का दावा नहीं करता—मेरा ख्याल था कि 'ईश्वर' शब्द और बड़ा शब्द प्रयोग करे तो 'परमेश्वर' एक आशय का, एक कल्पना का निचोड़ ही है। जैसे कि मैंने कहा है, गणित की भाषानुसार आप संख्याओं को साथ रख कर कोई समान संख्या ढूंढ सकते हैं जिसे आप 'स' कह सकते हैं जो कि केवल निचोड़ होगा। इसके पीछे कोई ठोस वस्तु नहीं है। हिन्दू दर्शन में यदि कोई ठोस कल्पना है तो वह 'ब्रह्मा', 'विष्णु', 'महेश', 'शिव', 'शक्ति' है। हिन्दू इन्हें ही संसार का शासन करने वाली शक्तियां मानते हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मसौदा-समिति के लिये इस आधार पर चलकर बहुत से शब्द रखना कठिन हो जाता अर्थात् परमेश्वर, उसके नीचे रेखा खींच कर शिव, फिर विष्णु, फिर ब्रह्मा, फिर शक्ति

आदि आदि रखने पड़ते। इस झगड़े के कारण ही हमने इस मामले को अनिश्चित छोड़ दिया जैसा कि आप मसौदा-समिति के कार्य में देखते हैं।

***श्री ए.वी. ठक्कर** [संयुक्त राज्य काठियाड़ (सौराष्ट्र)]: किन्तु सबके ऊपर भी एक है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** किन्तु मुझे पूर्ण प्रसन्नता है कि यह संशोधन पेश किया गया है। अब, कुछ सदस्यों ने इस संशोधन पर आपत्ति की है। उन्हें भय है कि 'ईश्वर' शब्द के रखने से असाम्प्रदायिक घोषित किये हुये राज्य के इस गुण में अन्तर पड़ जायेगा। मेरे विवेकानुसार तो 'ईश्वर' शब्द के रख देने से वह प्रश्न तो उठता नहीं। 'ईश्वर' शब्द रखने का कार्य तो सीधा-सा है। विधान प्रधान के लिये कुछ कर्त्तव्य निर्धारित करता है। यह कर्त्तव्य दो प्रकार के हैं, कुछ तो ऐसे कर्त्तव्य हैं जिनके लिये कानूनी आधार हैं और कानूनी दण्ड की व्यवस्था की गई है, और कुछ ऐसे हैं जिनके लिये कानूनी नियम नहीं है और कोई दण्ड भी प्रावहित नहीं है। परिणामत:, प्रत्येक विधान में यह प्रश्न सदा उठता है। ऐसे कर्त्तव्यों के लिये, ऐसे कार्यों के लिये जो किसी अधिकारी के लिये निश्चित किये गये हैं किन्तु जिनके लिये कानून द्वारा कोई आधार अथवा दण्ड निश्चित करना सम्भव नहीं है, क्या आधार हो? यह स्पष्ट है कि यदि हमारा ऐसा विश्वास और निश्चय नहीं है, कि यह नैतिक कर्त्तव्य, जिनके लिये कि दण्ड का अथवा कानूनी आधार नहीं है, केवल पवित्र घोषणामात्र है, तो हमें कोई न कोई आधार अवश्य रखना चाहिये। कुछ लोगों के लिये ईश्वर ही आधार है। वे समझते हैं कि यदि वे ईश्वर के नाम पर शपथ लेंगे तो वह ऐसे कर्त्तव्यों का आवश्यक आधार होगा जो कि पूर्णत: नैतिक है और जिनके लिये कोई आधार नहीं रखा गया है, क्योंकि ईश्वर ब्रह्माण्ड की संचालक-शक्ति है और उनके व्यक्तिगत जीवन की भी संचालक-शक्ति है।

ऐसे भी लोग हैं जो विश्वास करते हैं कि उनकी आत्मा ही पर्याप्त आधार है। उन्हें किसी बाह्यशक्ति ईश्वर की आवश्यकता नहीं है जो कि प्रहरी के समान उनके कार्यों का ख्याल रखे। वे समझते हैं कि उनकी आत्मा से निकली हुई गम्भीर निश्चयोक्ति ही पर्याप्त आधार है। यदि माननीय सदस्यों ने इस विषय का इतिहास पढ़ा हो, जो कि श्री ब्रैडलो तथा हाउस ऑफ़ कामन्स के संघर्ष में निहित है, तो वे समझ जायेंगे कि बहुत पहले 1880 के लगभग श्री ब्रैडलो ने हठ किया था कि वह सर्वथा सदाचारपूर्ण व्यक्ति है, उसकी आत्मा पूर्ण चेतन है, और यदि

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

वह शपथ ले तो उसकी आत्मा उसे सुपथ पर रखने के लिये मानो पर्याप्त आधार है। हाउस ऑफ़ कामन्स में बहुत समय तक संघर्ष हुआ, जिसमें एक अवसर पर तो श्री ब्रैडलो को सारजैण्ट एट आर्म्स (प्रहरी) ने लगभग जान से ही मार दिया था क्योंकि वे बिना शपथ लिये सभा में बैठते थे जिस पर उसने आपत्ति की थी, अन्त में श्री ग्लैडस्टन को झुकना पड़ा तथा एक अतिरिक्त अथवा वैकल्पिक शपथ की व्यवस्था करनी पड़ी जिसे गम्भीर निश्चयोक्ति कहते हैं। अतः इस संशोधन में जो प्रश्न उठा है उसका इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं है कि राज्य किस प्रकार का है। राज्य धार्मिक है अथवा असाम्प्रदायिक, यह विषय तो विचाराधीन प्रश्न से सर्वथा भिन्न है। केवल यही प्रश्न उठा हुआ है कि प्रधान पर हम जो कर्त्तव्य लाद रहे हैं उसके लिये कुछ आधार रखा जाये या नहीं। यदि प्रधान यह सोचता हो कि ईश्वर एक विश्वसनीय मन्त्री है और यदि उसके नाम से शपथ नहीं लेगा तो वह अपने कर्त्तव्य के प्रति सच्चा नहीं रहेगा, तो मेरे विचार में हमें चाहिये कि उसे ईश्वर के नाम पर शपथ लेने की स्वतन्त्रता दें। यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो जो ईश्वर को विश्वसनीय मन्त्री नहीं समझता हो तो हमें उसे निश्चयोक्ति करने और उस निश्चयोक्ति के आधार पर अपने कर्त्तव्य करने की स्वतन्त्रता देनी चाहिये।

अतः मैं निवेदन करता हूं कि यह संशोधन ठीक है और मैं इसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूं।

***उपाध्यक्षः** आपको मि. करीमुद्दीन और प्रोफेसर शाह के संशोधन पर कुछ नहीं कहना?

***माननीय डॉक्टर बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह हैः

"कि अनुच्छेद 49 में 'भारत के मुख्य न्यायाधीश' इन शब्दों क पश्चात् 'अथवा उसकी अनुपस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के सब से उच्च (सीनियर मोस्ट) न्यायाधीश जो कि उपलब्ध हो' ये शब्द जोड़ दिये जायं।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्षः** अगला संशोधन जिस पर कि मत लिये जाने हैं संख्या 1146 है। किन्तु वह श्री महावीर त्यागी के संशोधन के जैसा ही है और यदि श्री कामत सहमत हों तो मैं इस पर मत ले सकता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे श्री त्यागी के संशोधन पर कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि उनके और मेरे संशोधन में केवल शाब्दिक अन्तर ही है।

***उपाध्यक्षः** तो फिर मैं श्री त्यागी के संशोधन पर मत लेता हूं जो कि संशोधन संख्या 1146 पर संशोधन है।

***श्री एच.वी. कामतः** नहीं, श्रीमान्, श्री त्यागी द्वारा संशोधित रूप में मेरे संशोधन पर मत लिये जाने चाहिये।

***उपाध्यक्षः** हां, हां, वह तो है ही। मुझे यह पता नहीं था कि आप शब्दावली पर इतने दृढ़ हैं; आप इतनी बार उन्हें तोड़ते रहते हैं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 49 में 'गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता (शपथ लेता) हूं' इन शब्दों के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:

'ईश्वर के नाम में शपथ लेता
'गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता हूं'"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 49 में शपथ के प्रपत्र में 'और मैं अपने आपको भारत की जनता की सेवा और कल्याण में तनमन से लगाऊंगा' ये शब्द हटा दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार हो गया।*

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 49 में 'जनता की सेवा और कल्याण में तनमन से लगाऊंगा' इन शब्दों के पश्चात्, निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'and will throughout the term of my office as such President so conduct myself as to leave no ground for any charge of seeking to promote my own interest or my family's aggrandisement, and that in any act,

[उपाध्यक्ष]

I may have to do or appointment I may have to make, I shall consider only the interest of the public service and of the country collectively.' "

(और मैं प्रधान के रूप में अपने पद की अवधि में ऐसा आचरण करूंगा कि अपने स्वार्थ अथवा अपने परिवार के लाभ की वृद्धि का प्रयत्न करने के किसी अभियोग के लिये कोई आधार न रहे, और मुझे जो भी कार्य करना पड़े अथवा नियुक्ति करनी पड़े, उसमें मैं केवल लोकसेवा और सामूहिक रूप से देश के हित का ही विचार करूंगा।)

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 49 को स्वीकार कर लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 49 को विधान में जोड़ दिया गया।*

*तत्पश्चात् परिषद् मंगलवार, 28 दिसम्बर सन् 1948 ई. के दिन के दस बजे तक के लिये स्थगित हुई।*

---

Con. 3. VII. 27. 48
350

अंक 7
संख्या 27

मंगलवार,
28 दिसम्बर
सन् 1948 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

# के

# वाद-विवाद

# की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी) 1789-1869
[अनुच्छेद 50, 51, नवीन अनुच्छेद 51-क, अनुच्छेद 52, 53, 54 तथा 55 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

मंगलवार, 28 दिसम्बर, सन् 1948 ई.

---

*भारतीय विधान-परिषद् कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में 10 बजे प्रातः उपाध्यक्ष (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) के सभापतित्व में समवेत् हुई।*

---

## विधान का मसौदा–(जारी)

### अनुच्छेद 50

***उपाध्यक्ष** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): विधान के मसौदे पर हम पुनः वादानुवाद प्रारम्भ कर सकते हैं। सभा के सामने प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 50 को विधान का अंग माना जाये।"

***श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय** [संयुक्त-राज्य इन्दौर-ग्वालियर-मालवा (मध्य भारत)]: क्या हम लोग यह जान सकते हैं कि सभा की बैठक किस तारीख तक जारी रहेगी? अगर यह तय किया जा सके तो हमें इसकी सूचना मिल जानी चाहिये ताकि हम लोग तदनुसार अपना कार्यक्रम बनावें।

***उपाध्यक्ष:** आगे चलकर किसी दिन–इस सप्ताह के समाप्त होते-होते या दूसरे सप्ताह के प्रारम्भ में–मैं इस स्थिति में होऊंगा कि माननीय सदस्य को यह जानकारी दे सकूं।

(संशोधन नं० 1150 नहीं पेश किया गया।)

संशोधनों को देखने पर मुझे यह पता चलता है कि संशोधन नं० 1151 का प्रथमांश तथा संशोधन नं० 1152–ये दोनों–एक ही आशय के हैं। संशोधन नं० 1152 मि. करीमुद्दीन के नाम में है और वह इसे पेश कर सकते हैं।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***काजी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"कि अनुच्छेद 50 के खण्ड (1) में 'for violation of the Constitution' (संविधान के अतिक्रमण के लिये) शब्दों के बाद 'treason, bribery or other high crimes and misdemeanours' (राजद्रोह, घूस या अन्य गम्भीर अपराधों और दुराचारों के लिये) शब्द रखे जायें।"

इस संशोधन के लिये कोई विस्तृत वक्तृता आवश्यक नहीं है। अनुच्छेद 50 में कहा गया है कि संविधान के अतिक्रमण के लिये प्रधान पर प्राभियोग लगाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में, अमेरिकन विधान में वह बातें भी रखी गई हैं जिनका सुझाव मैंने इस संशोधन में दिया है। मेरी राय में यह बहुत जरूरी है कि प्रधान पर प्राभियोग लगाने के लिये इन कारणों को भी अनुच्छेद 50 में लिपिबद्ध कर दिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** क्या प्रो. के.टी. शाह यह चाहते हैं कि उनके संशोधन नं० 1151 के प्रथमांश पर राय ली जाये?

***प्रोफेसर के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): मैं इसे उपस्थित करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** यह पेश नहीं किया जा सकता। हां, मैं इस पर मत ले सकता हूं।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** ठीक है।

***उपाध्यक्ष:** अपने संशोधन नं० 1151 के दूसरे अंश को प्रो. शाह पेश कर सकते हैं।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (1) में 'either House' (कोई एक आगार) शब्दों के स्थान पर 'the People's House' (लोक सभा) शब्द रखे जायें।"

यही तो वह अंश है, श्रीमान् जिसे पेश करने की मुझे अनुमति मिली है?

***उपाध्यक्ष:** हां।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** प्रथा तो सर्वत्र यही है कि प्रधान पर प्राभियोग लोक-सभा ही लगाती है न कि राज्य-परिषद्। अपने संशोधन के जरिये मैं यह चाहता हूं कि हमारे यहां भी यही प्रथा बरती जाय। राज्य-परिषद् (Council of States) के सदस्य सीधे जनता द्वारा निर्वाचित न होंगे। उस सभा में तो, हो सकता है कि कुछ सदस्य मनोनीत भी हों। उस सभा में विशेषत: प्रादेशिक घटकों के तथा विभिन्न हितों के प्रतिनिधान करने वाले सदस्य ही होंगे और उसमें जनता के प्रतिनिधि न होंगे।

यहां उन अपराधों का उल्लेख किया गया है जिनके लिये प्रधान पर प्राभियोग लगाया जा सकता है और मेरी राय में यह प्राभियोग केवल लोक-सभा द्वारा ही लगाया जा सकता है। इस मसौदे में जो विधान-सम्बन्धी योजना है उसके अनुसार वास्तविक सत्ता तो जनता को ही प्राप्त है। इस योजना के अनुसार जनता को ही, जिसमें कि वास्तविक सत्ता सन्निहित है, यह अधिकार होना चाहिए कि वही राज्य के प्रमुख पर लगाये गये ऐसे अभियोगों की सुनवाई, अपने प्रतिनिधियों के द्वारा करे।

मैं समझता हूं कि इस सम्बन्ध में मुझे और तर्क रखने की जरूरत नहीं है। जो लोग दूसरों की नकल करने का शौक रखते हैं और यहां यह कहा करते हैं कि अमुक संशोधन तो उसी पद्धति का समर्थन करता है, जो आज अमेरिका में या पश्चिम के देशों में चालू है, उनको समझाने के लिए भी मैंने जो कुछ कहा है वह यथेष्ट है। जो भी हो, इस संशोधन का विरोध अब इस आधार पर तो नहीं किया जा सकता कि पश्चिम में ऐसा नहीं होता है।

***उपाध्यक्ष:** इस संशोधन के बारे में कई संशोधन आये हैं। पहला तो है, संशोधन नं० 30 जो पंचम सप्ताह की पहली सूची में है। कि इसके प्रस्तावक (पं. ठाकुर दास भार्गव) अनुपस्थित हैं, यह पेश नहीं हो रहा है। बाद के दो

[उपाध्यक्ष]

संशोधन यानी नं० 31 और 32 के संशोधन भी उन्हीं के नाम में हैं। वह भी पेश नहीं हो रहे हैं क्योंकि प्रस्तावक महोदय अनुपस्थित हैं।

(संशोधन नं० 1153 नहीं पेश किया गया।)

संशोधन नं० 1154 तथा 1155 को पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती है, क्योंकि ये केवल शाब्दिक हैं।

संशोधन नं० 1156, 1160 और 1165 एक ही आशय के हैं। इनमें संशोधन नं० 1156 काफ़ी व्यापक है और इसलिए यह पेश किया जा सकता हैं। यह है श्री ब्रजेश्वरप्रसाद के नाम में। प्रस्तावकर्त्ता सदस्य अनुपस्थित हैं अतः यह संशोधन नहीं पेश हो रहा है।

आगे चलकर सर्वाधिक व्यापक संशोधन है नं० 1163 का और यह पेश हो सकता है। पर चूंकि इसके प्रस्तावकर्त्ता सदस्य भी अनुपस्थित हैं, इसलिए यह भी नहीं पेश हो रहा है।

अब मैं श्री शंकरराव देव को अनुमति देता हूं कि वह अपना संशोधन नं० 1160 उपस्थित करें।

**श्री शंकरराव देव** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं निम्नलिखित संशोधन उपस्थित कर रहा हूं जो कि मेरे नाम में है:

> "कि अनुच्छेद 50 के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में 'thirty members' (तीस से अन्यून सदस्यों) शब्दों की जगह 'one fourth of the total membership of the House' (कुल सदस्यों की एक चौथाई) शब्द रखे जायें।"

इस संशोधन की आवश्यकता उतनी स्पष्ट है कि इसके समर्थन में तर्क पेश करके सभा का समय लेना मेरे लिए जरूरी नहीं है। प्राभियोग लगाने का सवाल एक बड़ा ही गम्भीर सवाल है और अगर प्राभियोग सिद्ध हो जाता है तो प्रधान को, जो कि हमारे राजकीय प्रतिष्ठा तथा राष्ट्र के सार्वजनिक जीवन का प्रतिनिधान करने वाला सर्वश्रेष्ठ नागरिक समझा जायेगा, बड़ी ही क्षति उठानी पड़ेगी। इसलिए अगर कोई व्यक्ति प्रधान पर प्राभियोग लगाने की बात सोचता है

तो उसे इस काम की गम्भीरता को पूर्णरूपेण सोच समझ कर ही ऐसा करना चाहिए और प्राभियोग के समर्थन के लिए सदस्यों की एक पर्याप्त संख्या होनी चाहिये। प्रस्तावित कार्यवाही की गम्भीरता को देखते हुए 30 की संख्या बहुत थोड़ी है। इसलिए मेरा सुझाव है कि सभा के कुल सदस्यों की एक चौथाई संख्या द्वारा समर्थित होने पर ही प्रधान पर ऐसा गम्भीर आरोप लगाया जाना चाहिए क्योंकि प्रधान राज्य की प्रतिष्ठा का प्रतिमूर्ति होता है। आशा है, सभा इस संशोधन को स्वीकार करेगी।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1161 के प्रस्तावक क्या यह चाहते हैं कि उनके संशोधन पर मत लिया जाये?

***एक माननीय सदस्य:** नहीं, श्रीमान्।

**उपाध्यक्ष:** क्या मि. काजी सैयद करीमुद्दीन यह चाहते हैं कि उनके संशोधन (नं० 1162) पर मत लिया जाय?

***काजी सैयद करीमुद्दीन:** हां, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना अपना संशोधन नं० 1164 पेश कर सकते हैं।

सदस्य महोदय सभा में नहीं हैं इसलिए यह संशोधन पेश नहीं हो रहा है।

संशोधन 1157, 1158, और 1159 एक ही आशय के हैं। श्री जसपतराय कपूर अपना संशोधन नं० 1157 पेश कर सकते हैं।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

**श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 50 के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में 'after a notice' (एक ... सूचना के बाद) शब्दों की जगह 'at least after 14 days notice' (कम से कम सूचना के 14 दिन बाद) शब्द रखे जायें।"

[श्री बी.एम. गुप्ते]

प्रावधान का जो वर्तमान रूप है उसमें केवल सूचना का ही उल्लेख है पर इसके लिए कोई अवधि नहीं रखी गई है। अगर आप अनुच्छेद 74, 77 और 156 को पढ़ें जिसमें संसद् के सभापति (चेयरमैन), अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को तथा राज्य के विधान-मण्डल के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को हटाने का प्रावधान किया गया है, तो देखेंगे कि वहां सब जगह 14 दिनों की सूचना की बात कही हुई है। कोई कारण नहीं है, वही व्यवस्था यहां भी क्यों न रखी जाये। इसलिए मैंने अपने संशोधन में 14 दिनों की सूचना की बात रखी है। आशा है सभा इसे स्वीकार करेगी।

**उपाध्यक्षः** क्या माननीय सदस्य (मि. मोहम्मद ताहिर) जिन्होंने संशोधन नं० 1159 की सूचना दी है, यह चाहते हैं कि उनके संशोधन पर मत लिया जाये?

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): हां, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं० 1166, 1167, 1168 तथा 1169 समान आशय के हैं। इनमें से नं० 1167 को पेश किया जा सकता है। यह डॉ. अम्बेडकर के नाम में है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

> "अनुच्छेद 50 के खण्ड (2) के उपखण्ड (ख) में 'supported by' (समर्थन ····· किया हो) शब्दों के स्थान पर 'passed by a majority of' (का पारण ····· बहुमत ने ·····) शब्द रखे जायें।"

***उपाध्यक्षः** अब संशोधन नं० 1166 आता है, जो मि. मोहम्मद ताहिर और मि. सैयद जाफ़र इमाम के नाम में है।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** मैं इस पर विचार या बहस करना चाहता हूं। मेरा संशोधन डॉ. अम्बेडकर के संशोधन से सर्वथा भिन्न है। ये दोनों एक आशय के नहीं हैं।

***उपाध्यक्षः** इस पर मत नहीं लिया जा सकता है। जब विस्तारपूर्वक वादानुवाद होने लगे तो उस समय आप भी अपनी बात कह सकते हैं। मेरी समझ से यही ज्यादा अच्छा होगा।

संशोधन नं० 1168 मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम में है। क्या आप चाहते हैं कि इस पर मत लिया जाये?

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): हां, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** यह संशोधन तो डॉ. अम्बेडकर के संशोधन से मिलता हुआ दिखाई देता है। इसके बाद आता है संशोधन नं० 1169, जो मि. काजी सैयद करीमुद्दीन के नाम में है। क्या आप चाहते हैं इस पर मत लिया जाये?

***काजी सैयद करीमुद्दीन:** नहीं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** इसके बाद मेरी सूची में दूसरा संशोधन है नं० 1170 का, जो कि काज़ी सैयद करीमुद्दीन के नाम में है।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन:** उपाध्यक्ष महोदय, मेरा प्रस्ताव है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (2) के उपखण्ड (ख) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ा जाये:

'(c) the meeting shall be presided by the Chief Justice of the Supreme Court whose decision on the admissibility of evidence shall be final.' "

[(ग) बैठक का सभापतित्व सर्वोच्च न्यायालय का प्रधान न्यायाधीश करेगा और इस सम्बन्ध में कि साक्ष्य स्वीकार्य है या नहीं, उसका निर्णय अन्तिम होगा।]

अनुच्छेद 50 में इस बात का उल्लेख नहीं किया गया है कि प्रधान पर प्राभियोग के लिए जो बैठक होगी, उसका सभापतित्व कौन करेगा। इसलिए मैंने एक उपखण्ड और जोड़ने का यहां प्रयास किया है, जिसमें कहा गया है कि ऐसी बैठक का सभापतित्व सर्वोच्च न्यायालय का प्रधान न्यायाधीश करेगा। अगर यह संशोधन न स्वीकार हुआ तो उस हालत में, मैं समझता हूं कि ऐसी बैठकों का सभापतित्व संसद् के अध्यक्ष या उप-प्रधान को करना होगा। स्पष्ट है कि उप-प्रधान के सम्बन्ध में आपत्ति की जा सकती है क्योंकि प्रधान के हटाये जाने पर सम्भवत: वही उस पद पर आसीन होंगे। और ऐसी बैठकों के सभापतित्व के लिए अध्यक्ष को भी अनुमति नहीं दी जा सकती है क्योंकि वह साधारणत:

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

बहुमत वाले दल से ही चुना जाता है। और जब प्रधान पर प्राभियोग चलेगा तो स्वभावत: देश में इतनी राजनैतिक उत्तेजना फैल जायेगी कि अध्यक्ष अथवा उप-प्रधान में लाज़मी तौर पर एक परिवर्तन आ जायेगा जो ऊपर से न दिखाई देगा। इसमें शक नहीं कि भारतवर्ष और इंग्लैण्ड में ऐसे उदाहरण आपको मिलेंगे जब कि अध्यक्ष और उप-प्रधान ने सभा की परम्परागत उच्च मर्यादा का ही पालन किया है, किन्तु ऐसे समय पर जरूरत सिर्फ इसी बात की न होगी कि न्याय किया जाये, बल्कि यह भी आवश्यक होगा कि जनता को भी यह प्रत्यक्ष भास हो कि आप न्याय कर रहे हैं। ऐसे गम्भीर काल में, जब कि देश के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति पर प्राभियोग चल रहा हो, यह नितांत आवश्यक है कि न्याय करने वाली सभा का सभापतित्व सर्वोच्च न्यायालय का प्रधान न्यायाधीश ही करे।

इस सुझाव का एक और भी कारण है और वह महत्व रखता है। वह कारण यह है कि प्रधान पर लगाये गये प्राभियोग के सिलसिले में बहुत से कानूनी सवाल खड़े होंगे, बहुत से तथ्य के प्रश्न उठेंगे। साक्ष्य के स्वीकार किये जाने के सम्बन्ध में भी अनेक सवाल खड़े होंगे। शासन की संसदात्मक प्रणाली में यह कोई जरूरी नहीं है कि हर सभासद कानूनवेत्ता ही हो या न्यायाधीश ही हो और इसमें शक नहीं कि ऐसे मामलों में कानून सम्बन्धी तथा तथ्य सम्बन्धी गूढ़ प्रश्न उपस्थित होंगे, साक्ष्य की स्वीकृति का प्रश्न खड़ा होगा और ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के सम्बन्ध में निर्णय देना मामूली आदमी के लिए बड़ा ही मुश्किल होगा। अफवाह के आधार पर या केवल सुनी हुई बात के आधार पर ही अनाड़ी आदमी प्रधान पर प्राभियोग लगा सकता है। इस बात का निर्णय देने के लिये कि अमुक साक्ष्य स्वीकार किया जाये या नहीं, यह बहुत ही आवश्यक है कि ऐसी बैठकों का सभापतित्व ऐसा व्यक्ति करे जो कानूनी बुद्धि रखता हो और जिसे कानून संबंधी विविध बातों का अनुभव हो। इसलिए मेरा कहना यह है कि ऐसी बैठकों के सभापतित्व के लिए हमें सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश से ही अनुरोध करना चाहिए जो साधारणत: सार्वजनिक जीवन से सदा तटस्थ रहा करता है। अमेरिका के विधान में इसी आशय का एक प्रावधान रखा गया है। दूसरे विधानों से हम केवल ऐसे ही प्रावधानों को ले रहे हैं जो हमारे प्रयोजन के लिए उपयुक्त हैं और ऐसे प्रावधान जो अनुकूल हैं, उन्हें हम नहीं रख रहे हैं यद्यपि वह हमारे लिए बड़े ही हितकर हैं। मैं डॉ. अम्बेडकर से आग्रह करूंगा कि वह इस संशोधन को अवश्य ही विधान में स्थान दें, विशेषत: इस बात को

दृष्टि में रख कर कि जब देश में राजनैतिक आवेश अपनी उग्रता पर रहेगा, उस हालत में अध्यक्ष या उप-प्रधान के लिए यह बहुत ही कठिन हो जायेगा कि वे अपनी तटस्थता स्थिर रख सकेंगे।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं० 1171, 1173 और 1176 प्रो. के.टी. शाह के नाम में हैं। इन्हें एक-एक करके आप पेश कर सकते हैं।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** इनमें से क्या मैं केवल एक को ही पेश कर सकता हूं?

***उपाध्यक्षः** आप तीनों को ही पेश कर सकते हैं।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान् कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (3) में 'either House' (किसी आगार) शब्दों के स्थान पर 'the People's House' (लोक-सभा), शब्द रखे जायें तथा 'or cause the charge to be investigated and the President shall have the right to appear and to be represented at such investigation' (दोषारोप का अनुसंधान करायेगा और उस अनुसंधान में उपस्थित होने का तथा अपना प्रतिनिधान कराने का प्रधान को अधिकार होगा) शब्द हटा दिये जायें।"

इस संशोधन से खण्ड का क्या रूप हो जायेगा यह मैं पढ़कर सुना देता हूं, ताकि सारी बात स्पष्ट हो जाये। खण्ड का संशोधित रूप यह होगा:

"When a charge has been so preferred by the House of the People, the other House shall investigate the charge.'"

(जब दोषारोप का पुरोधान लोक-सभा द्वारा किया जा चुके, तब दूसरा आगार दोषारोप का अनुसंधान करेगा।)

अब मैं दूसरे संशोधन को उपस्थित करता हूं जो मेरे नाम में है। मेरा प्रस्ताव है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (3) में 'investigated' शब्द के बाद पूर्णविराम का चिह्न रखा जाये।"

फिर मेरा प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (3) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ा जाये:

'(3A) The President shall have the right to appear and to be represented at such investigation.'"

[प्रो. के.टी. शाह]

(ऐसे अनुसंधान में उपस्थित होने का तथा अपना प्रतिनिधान कराने का प्रधान को अधिकार होगा।)

मैं पहले एक संशोधन रख चुका हूं, जिसमें कहा गया है कि दोषारोप के अनुसंधान का तथा मामले की सुनवाई का अधिकार क्रमशः लोक-सभा तथा राज्य-परिषद् को होना चाहिए और यह न होना चाहिए कि दोनों ही आगारों को यह अधिकार रहें। इसी संशोधन के अनुरूप मेरा प्रथम संशोधन है, जिसे मैं अभी पेश कर रहा हूं। दोषारोप का अनुसंधान दूसरे आगार को करना चाहिए जिसने कि दोषारोप का पुरोधान नहीं किया है और अनुसंधान के समय उपस्थित हो कर अपनी बात कहने का तथा अपना प्रतिनिधान कराने का प्रधान को अधिकार होना चाहिए। कानून-शास्त्र का यह एक प्राथमिक मूलभूत सिद्धांत है कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध दोषारोप किया गया है, उसे यह अधिकार प्राप्त है, कि विचारक के समक्ष अपनी बात कहे। उसे यह भी अधिकार है, अनुसंधान के समय अथवा मामले की सुनवाई के समय योग्य एवं समुचित कानूनी सलाहकारों के ज़रिये वह अपना बचाव कर सके। इसीलिए तो इस संशोधन के द्वारा प्रधान को अपनी बात कहने का अधिकार दिया गया है और एक अतिरिक्त खण्ड रखकर निर्दिष्ट रूप से यह अधिकार दिया गया है, न कि इसे पहले के खण्ड में शामिल किया गया है जिसमें इस अधिकार के अलावा और भी कई बातों का उल्लेख है। सत्ता प्राप्त जनता को प्रधान पर दोषारोप करने का अधिकार है और मेरी राय में इस अधिकार पर कोई आंच न आनी चाहिए। इसी तरह प्रधान को भी दोषारोप के अनुसंधान के समय उपस्थित होकर अपनी बात कहने का तथा अपना प्रतिनिधान कराने का अधिकार प्राप्त है और इसका यहां स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। इन दोनों ही बातों को एक साथ मिलाकर न रखना चाहिए बल्कि इन्हें अलग-अलग खण्ड में रखना चाहिए, ताकि जाप्ते के सम्बन्ध में किसी भी शक की गुंजाइश न रहे। अतः इस संशोधन को उपस्थित करने में मेरा अभिप्राय यही है कि जांच के सम्बन्ध में कोई अस्पष्टता न रह जाये और किसी भी अगर मगर की गुंजाइश न रह जाये, जिसे वकीलों की चातुरी पेश कर सके या जिसका कि दलबंदी के आवेश में सहारा लिया जा सके। इसलिए सभा का और समय न लेकर मैं इन संशोधनों को स्वीकार करने की सभा से सिफारिश करता हूं।

***उपाध्यक्षः** बाद के तीन संशोधन, जो एक सिलसिले में रखे गये हैं, वह हैं नं० 1172, 1174 तथा 1175 ।

(ये संशोधन नहीं पेश किये गये।)

संशोधन नं० 1177, 1178 तथा 1179 एक ही आशय के हैं। इनमें से संशोधन नं० 1177 को उपस्थित किया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (4) में 'passed, supported by' शब्दों के स्थान पर 'passed by a majority of' शब्द रखे जायें।"

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं० 1178 मि. मोहम्मद ताहिर तथा सैयद जाफ़र इमाम के नाम में है।

(मि. मोहम्मद ताहिर बोलने के लिए उठे।)

क्या आप चाहते हैं कि इस पर मत लिया जाय? विस्तृत रूप से जब इस पर वाद-विवाद हो, उस समय आप जो कुछ भी कहना चाहते हों, कह सकते हैं। उस समय मैं आपको इसका अवसर दूंगा।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** मेरे संशोधन का आशय ही बिल्कुल भिन्न है। यह तो पेश होना चाहिए और इस पर बहस होनी चाहिए।

***उपाध्यक्षः** 'दो तिहाई' के सम्बन्ध में आप कोई खास सुझाव दे रहे हैं। अच्छी बात है, आप माइक पर आइये।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (4) में 'not less than two-thirds of the total membership of the House' (आगार के समस्त सदस्यों की दो तिहाई से अन्यून संख्या द्वारा) शब्दों के स्थान पर 'a majority of the members present and voting' (उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से) शब्द रखे जायें।"

मैंने अपना संशोधन इसलिये रखा है कि प्रावधान का जो वर्तमान रूप है अर्थात् जहां दो तिहाई के बहुमत की बात कही गई है, वह गणतंत्रीय भावना से

[श्री मोहम्मद ताहिर]

बिल्कुल प्रतिकूल है और इसके कारण बहुत-सी कठिनाइयां, अनेक उलझनें पैदा हो जायेंगी। मैं सभा के सामने एक बिल्कुल सरल उदाहरण उपस्थित करता हूं। मैं समझता हूं कि जिला-बोर्ड के चेयरमैन के सम्बन्ध में यहां प्रत्येक सदस्य को यही अनुभव मिला होगा। जिला-बोर्ड का चेयरमैन अपने कुकृत्यों के लिए अपने पद से तब तक नहीं हटाया जा सकता, जब तक कि दो तिहाई सदस्य उसके विरुद्ध मत न दें। इस व्यवस्था का परिणाम यह है कि चाहे कितना ही अयोग्य या बेइमान चेयरमैन क्यों न हो, उसे पद से हटाना बहुत मुश्किल होता है क्यों कि उसके हाथ में शक्ति होती है और उसका उपयोग करके वह ऐसा प्रबन्ध कर लेता है कि दो-तिहाई सदस्य उसके विरुद्ध जायें ही नहीं और एक तिहाई से कुछ अधिक को वह सदा अपने पक्ष में बनाये रखता है। इसका परिणाम यह होता है कि यद्यपि सदस्यों का बहुमत उसके कारनामों के विरुद्ध है, फिर भी उसे पदच्युत करना उनके लिये असम्भव हो जाता है। प्रधान के सम्बन्ध में भी यही बात हो सकती है क्योंकि वह अधिकारारूढ़ रहेगा और उसके विरुद्ध प्राभियोग का कोई प्रस्ताव आता है, तो उसे पदच्युत करना सदस्यों के लिए बड़ा कठिन होगा। मैं कहता हूं, श्रीमान्, कि हम जो अपना यह विधान बना रहे हैं उसमें सबसे महत्त्वपूर्ण बात यही है कि हम इसके प्रत्येक अनुच्छेद को यहां केवल बहुमत से ही स्वीकार कर रहे हैं। यह बहुत ही महत्त्व की बात है। तो फिर एक प्राधिकारी के सम्बन्ध में, जिसके विरुद्ध प्राभियोग का प्रस्ताव आता है, क्यों न सभा में उपस्थित सदस्यों के बहुमत से ही उस पर निर्णय किया जाये? इसीलिए, श्रीमान्, मैंने यह संशोधन रखा है ताकि यह सब कठिनाइयां दूर हो जायं। आशा है सभा इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेगी और संशोधन को स्वीकार करना ही वह तय करेगी। इन शब्दों के साथ मैं अपना प्रस्ताव सभा के समक्ष उपस्थित करता हूं।

(संशोधन नं. 1179 नहीं पेश किया गया।)

***उपाध्यक्षः** बाद के संशोधन हैं नं. 1180, 1181 और 1182 के, जो कि मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम में हैं। इनको पेश करने की अनुमति मैं नहीं दे रहा हूं। अब संशोधन नं. 1183 पेश किया जा सकता है। यह है प्रो. के.टी. शाह के नाम में है।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (4) में 'such resolution shall शब्दों की जगह 'be placed before the People's House, and if adopted by the latter, shall' शब्द रखे जायें।"

खण्ड का संशोधित रूप यह होगा:

"If as a result of the investigation a resolution is passed, supported by not less than two-thirds of the total membership of the House by which the charge was investigated or caused to be investigated, declaring that the charge preferred against the President has been sustained, such resolution shall be placed before the People's House, and if adopted by the latter, shall have the effect of removing the President from his office as from the date on which the resolution is so passed."

(यदि अनुसंधान के परिणामस्वरूप, प्रधान के विरुद्ध पुरोधान किये गये दोषारोप की सिद्धि को घोषित करने वाला संकल्प, दोषारोप का अनुसंधान करने या कराने वाले आगार के समस्त सदस्यों की दो-तिहाई से अन्यून संख्या द्वारा पास हो जाता है, तो वह संकल्प लोक-सभा के सामने रखा जायेगा और यदि वह सभा उसे स्वीकार कर ले तो उसका प्रभाव यह होगा कि उसके पास होने की तिथि से प्रधान अपने पद से निष्कासित समझा जायेगा।)

श्रीमान्, मैंने अपने संशोधन के द्वारा एक त्रुटि को दूर करने का प्रयास किया है। वह त्रुटि यह है कि दोषारोप का अनुसंधान करने वाला आगार ज्यों ही अपना निर्णय दे देगा या ज्यों ही वह प्रस्ताव पास कर देगा, विधानान्तर्गत दी हुई योजना के अनुसार, उस प्रस्ताव के पास होते ही प्रधान स्वतः अपने पद से च्युत हो जायेगा। अपराधी के प्रति समुचित न्याय हो, यह हम लोगों की भावना है और उससे, मेरा ख्याल है कि, यह व्यवस्था मेल नहीं खाती है और खास कर के उस हालत में जब कि अपराधी एक सर्वोच्च पदस्थ व्यक्ति हो अथवा अपराध ऐसे हों जिनके सम्बन्ध में कि इस तरह का अनुसंधान अपेक्षित हो।

[प्रो. के.टी. शाह]

आखिर पूरी सम्भावना तो इसी बात की है कि ये सभी मामले ऐसे होंगे जिनमें राजनीति का ही प्रबल हाथ होगा। ये मामले ऐसे नहीं होंगे जिनमें केवल कानून सम्बन्धी प्रश्न या तथ्य सम्बन्धी प्रश्न ही सन्निहित होंगे। बल्कि ये मामले ऐसे होंगे जिनमें विशेष रूप से दृष्टिकोण का, अपनी-अपनी राय का ही सवाल सन्निहित रहेगा। इसलिए मेरा कहना यह है कि केवल एक आगार के निर्णय के आधार पर ही ऐसा न होना चाहिये कि ऐसे उच्च पदस्थ व्यक्ति को तुरन्त निष्कासित कर दिया जाये।

सभा के समक्ष कतिपय संशोधनों को उपस्थित करने का मुझे मौका मिला है और उन सभी में मैंने इसी बात पर ज़ोर दिया है कि एक आगार दोषारोप का अनुसंधान करे और दूसरा आगार मामले की सुनवाई करे; एक आगार अगर दोषारोप करता है तो दूसरे आगार को उन आरोपों के सत्यासत्य का विवेचन करना चाहिए। इस बात को देखते हुए मेरी समझ से यह नितान्त आवश्यक है बल्कि यों कहिए कि यही उचित और सही है कि प्रधान के निष्कासन के लिए केवल इतना ही अपेक्षित न हो कि वह दोषी पाया जाय और मामले की सुनवाई करने वाला आगार इस आशय का प्रस्ताव पास कर दे। बल्कि उसके निष्कासन के लिए यह भी अपेक्षित होना चाहिए कि दूसरा आगार भी जब उस प्रस्ताव का समर्थन कर दे तभी वह अपने पद से च्युत समझा जाये।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** दूसरा आगार जिसने कि दोषारोप किया है?

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** हां, जिसने दोषारोप किया है। इस तरह आप देखेंगे, संशोधन में मूल अनुच्छेद वाली ही व्यवस्था रखी गई, पर ज़रा परिवर्तित रूप में। यानी इस कार्रवाई के सम्बन्ध में दोनों आगारों का, या यों कहिए कि संसद् का एक मत होना ज़रूरी रखा गया है। यह कार्रवाई समूचे विधान-मण्डल की कार्रवाई समझी जाये और अन्ततोगत्वा यह कहना होगा कि यह कार्रवाई सत्ता प्राप्त जनता ने की है और अपने प्रतिनिधियों के द्वारा।

मैं नहीं समझता कि इस व्यवस्था से कोई ऐसी बाधा पहुंचती है जिससे समुचित रूप से न्याय न किया जा सके या उसमें देर हो। निश्चय ही, विलम्ब

करने के लिए या वक्त टालने के लिए यह व्यवस्था नहीं अपनाई जा रही है। इसके पक्ष में जो बात बहुत दृढ़तापूर्वक कही जा सकती है, वह यह है कि इससे इस बात का एक और मौका मिल जाता है कि लोगों के राजनैतिक आवेश शान्त हो जायें और सम्बन्धित व्यक्ति को समुचित निर्णय मिल सके या कम से कम अपने पक्ष का प्रतिपादन करने का ही उसे मौका मिल सके, जो कि अन्यथा उसे नहीं उपलब्ध हो सकता है।

मैं विशेष करके चिन्तित इस बात के लिए हूं कि मामले की सुनवाई का अधिकार—और कम से कम मेरी योजना के अनुसार—ऊपर वाले आगार को प्राप्त है जो कि अपेक्षाकृत एक छोटी सभा होगी और जिसमें विशेष हितों के तथा विभिन्न प्रादेशिक घटकों यानी इकाइयों के ही प्रतिनिधि होंगे और इसलिए उस आगार में तो लोक-मत का सीधा प्रतिनिधान नहीं रहेगा। इसलिए, इस सम्बन्ध में उस सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव तुरन्त अमल में नहीं लाया जाना चाहिए, बल्कि जनता के प्रतिनिधियों को एक और मौका मिलना चाहिए कि इस सम्बन्ध में वही अपना अन्तिम निर्णय दें।

चाहे आप इसे प्रविलम्ब के रूप में समझें, या राज्य से प्राप्त क्षमा के रूप में समझें—इसके लिए ठीक-ठीक क्या कहूं यह नहीं सोच पाता हूं—पर मेरी राय में ऐसा करके आप इस बात के लिए एक और मौका देंगे कि वास्तविक न्याय हो और यह न होने पाये कि क्षणिक आवेश या राजनीतिक तनातनी के कारण यही न्याय न हो सके। इसलिए मैं तो सभा से कहूंगा कि ऐसा करने में अगर हम भूल भी कदाचित् कर रहे हैं तो वह भूल न्याय तथा बन्धुता के पक्ष में होगी और इसलिए मैं कहूंगा कि यह संशोधन स्वीकृत होना चाहिए।

(संशोधन नं० 1184 नहीं पेश किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1185 मि. नज़ीरुद्दीन अहमद!

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (4) में 'date on which' शब्दों की जगह 'time when' शब्द रखे जायें।

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

यह एक आवश्यक संशोधन है, श्रीमान्। इसके स्वीकार होने से गतिरोध की अवस्था न उत्पन्न होने पायेगी। आशा है, माननीय सदस्यगण मेरी बात को ध्यान से सुनने की कृपा करेंगे। डॉ. अम्बेडकर मेरी बात नहीं सुन रहे हैं।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** समूची सभा आपकी बात सुन रही है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** समूची सभा भले इसे माने, पर जब तक डॉ. अम्बेडकर इसे नहीं मानते, समूची सभा का मान लेना भी कोई माने नहीं रखता। (*बाधा*)

***उपाध्यक्ष:** यह कहना तो, मेरी समझ से, प्रकारान्तर से उनकी निन्दा करना है। (*बाधा*)

***श्री तजम्मुल हुसैन:** हम आपकी बात सुनना चाहते हैं। (*बाधा*)

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): यह कहना क्या नियमानुकूल है, श्रीमान्?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं इसे वापस लेता हूं। अब संशोधन नं० 1185 को मैं पेश करता हूं। मैं इस संशोधन को बहुत ही महत्त्वपूर्ण समझता हूं और चाहता हूं कि सभा मेरी बात ध्यान से सुने। इसका सम्बन्ध है प्रधान पर चलाये गये प्राभियोग से। यह कहा गया है कि प्रधान के विरुद्ध लगाये गये दोषारोप की सिद्धि को घोषित करने वाले प्रस्ताव को ज्यों ही सम्बन्धित आगार पास कर देता है—यहां मेरा संकेत है अनुच्छेद 50 के खण्ड (4) की ओर—तो इसका प्रभाव यह होगा कि उसी तिथि से जब कि प्रस्ताव पास हुआ, प्रधान अपने पद से निष्कासित समझा जायेगा। मेरा कहना है, श्रीमान्, कि इससे तो गतिरोध की दशा उत्पन्न हो जायेगी। एक दूसरे अनुच्छेद में यानी अनुच्छेद 54 के खण्ड (1) में यह कहा गया है कि प्रस्ताव द्वारा ज्यों ही प्रधान निष्कासित होगा उसी दिन से उसके स्थान पर उप-प्रधान आसीन हो जायेगा। यहां अर्थात् अनुच्छेद 54 (1) में यह भी कहा गया है कि उप-प्रधान प्रधान के स्थान पर तब तक कार्य करेगा, जब तक कि नया प्रधान अपने पद पर आसीन न हो जाये। इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में भी एक संशोधन आया है, जिसकी संख्या है 1207 । मेरा कहना है, श्रीमान्, कि प्रधान को अगर हटाया जाता है तो वह उस समय से पदच्युत समझा

जायेगा, जब कि तत्सम्बन्धी प्रस्ताव पास हुआ है न कि उस दिन से जिस दिन कि प्रस्ताव पास हुआ है। मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि वह इस सम्बन्ध में इस परिस्थिति पर विचार करे। मान लीजिए, अनुच्छेद के खण्ड (4) के अधीन अधिकृत आगार ने इस सम्बन्ध में 1 बजे प्रस्ताव पास किया और फिर इसी अनुच्छेद के अनुसार प्रधान उसी दिन से अपने पद से च्युत कर दिया जाता है, जिस दिन कि प्रस्ताव पास हुआ। अब मैं पूछता हूं कि उस दिन प्रस्ताव के पास होने के पहले यानी 1 बजे से पहले प्रधान ने जो काम किये होंगे उनके सम्बन्ध में क्या होगा? हो सकता है कि प्रधान ने उसी दिन प्रात:काल, विधान के अधीन, सद्यस्कृत्यस्थिति की घोषणा कर दी हो, हो सकता है कि किसी विधेयक पर उसने उस दिन सवेरे अपनी स्वीकृति दी हो; हो सकता है कि उस दिन 1 बजे से पहले उसने संघ-न्यायालय के लिये किसी को न्यायाधीश नियुक्त किया हो, हो सकता है उसने अपनी पदच्युति से पहले किसी मन्त्रिमण्डल को बरखास्त या नियुक्त किया हो। अगर हम इस खण्ड (4) को इसी रूप में रहने देते हैं, तो इससे यह होगा कि इसके अनुसार प्रधान उसी दिन से पदच्युत समझा जायेगा जिस दिन कि प्रस्ताव पास हुआ है अर्थात् व्यतीत मध्य रात्रि से ही वह पदच्युत समझा जायेगा। ऐसी दशा में, मैं पूछता हूं कि उन कार्यों के सम्बन्ध में क्या होगा जिन्हें कि प्रधान ने उस महत्वपूर्ण दिवस पर, अपने निष्कासन से पहले सम्पादित किया हो? इसलिये मेरा कहना है, श्रीमान्, कि प्रधान की पदच्युति या उसके निष्कासन, का सम्बन्ध उस समय से होना चाहिए जब कि तत्सम्बन्धी प्रस्ताव पास हुआ है। अन्यथा यह होगा कि उसी दिन से उप-प्रधान उसके स्थान पर आ जायेगा। उस अनुच्छेद में यह कहा गया है कि जिस दिन प्रधान निष्कासित होगा उसी दिन से उसका स्थान रिक्त हो जायगा। इसका मतलब यह हुआ कि निष्कासन के पहले ही वह निष्कासित समझा जायेगा। इस अवस्था में मान लीजिये उप-प्रधान यह कहता है कि मैं तो उस दिन के प्रात:काल से ही प्रधान हूं जिस दिन कि प्रधान निष्कासित किया गया है। अगर वह उस दिन के प्रात:काल से ही अपने को प्रधान मान बैठता है तो इसका क्या नतीजा होगा? वह यह कहता है कि प्रधान के स्थान पर मैं प्रात:काल से ही आसीन हूं और प्रधान यह कहता है कि 1 बजे से पहले तो मैं ही नियमानुसार प्रधान के रूप में कार्य

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

कर रहा था। ऐसी सूरत में क्या होगा? इसलिये मेरा यह कहना है, श्रीमान्, कि इस अनुच्छेद में यह रखना "कि प्रधान प्रस्ताव पास होने के दिन से ही पदच्युत समझा जायेगा" बड़ा दु:खद होगा। इससे बड़ी जटिलता उत्पन्न हो जायेगी। इससे वैधानिक गतिरोध उत्पन्न हो जायेगा; फिर शायद संधान-न्यायालय को इस सम्बन्ध में निर्णय देना पड़ेगा और उसके सामने कोई प्रामाणिक कागज़ात न होंगे; न समय, तिथि आदि का विवरण होगा। ऐसी हालत में, सहज बुद्धि तो यही कहती है कि प्रधान उस वक्त तक अपने पद पर आसीन समझा जायेगा जब तक कि प्रस्ताव पास होते ही वह निष्कासित न हो जाये। ज्यों ही प्रस्ताव पास होगा प्रधान अपने पद पर न रह जायेगा; किन्तु प्रस्ताव पास होने तक तो उसके सभी कार्य वैध समझे जायेंगे। इस प्रयोजन के लिए यह संशोधन आवश्यक है। मूल अनुच्छेद में कहा गया है कि जिस दिन कि वह निष्कासित होगा, उस दिन से ही वह पदच्युत समझा जायेगा किन्तु संशोधन में यह कहा गया है कि वह उस समय से अपदस्थ समझा जायेगा जब कि प्रस्ताव पास हुआ है। इसी आशय का संशोधन अनुच्छेद 54 के सम्बन्ध में भी रखा गया है। अनुच्छेद 54 में कहा गया है कि उप-प्रधान उस तिथि तक प्रधान के रूप में कार्य करेगा जब तक कि नया प्रधान न नियुक्त हो जाये। वस्तुत: यहां भी समय का ही उल्लेख होना चाहिए, तिथि का नहीं। यहां भी यही होना चाहिए कि उप-प्रधान उस समय तक प्रधान के रूप में कार्य करेगा जब तक कि नया प्रधान न प्रधान न निर्वाचित हो जाये। अगर हम समय की बात छोड़ कर समूचे दिन का उल्लेख करते हैं तो इससे जटिलताएं पैदा होंगी। सभा को इस पर ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए और इसे स्वीकार करना चाहिये। उस दिन अपने निष्कासन के समय से पहले प्रधान ने जो काम किये होंगे, उनकी वैधानिकता का प्रश्न बड़ी अड़चनें पैदा कर देगा।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** एक औचित्य प्रश्न की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए मैं खड़ा हो रहा हूं, श्रीमान्। जब मि. नज़ीरुद्दीन अहमद अपना संशोधन पेश

कर रहे थे तो उन्होंने खुद कहा कि वह सभा या सभाध्यक्ष को सम्बोधित करके नहीं बोल रहे हैं बल्कि डॉ. अम्बेडकर से कह रहे हैं कि वह अन्य काम में व्यस्त हैं। अब सवाल यह है कि सदस्य जब यहां अपना वक्तव्य देता है तो वह सभाध्यक्ष को, सभा को ही सम्बोधित करके बोलता है न कि किसी सदस्य विशेष को, जो विधेयक का कर्त्ताधर्त्ता रहता है। इसलिए मेरा कथन है कि आपको चाहिए कि आप मि. नज़ीरुद्दीन अहमद को इस बात का दोषी करार दें कि उन्होंने सभा का तथा सभाध्यक्ष का अपमान किया है। अगर आप उनको दोषी पाते हैं तो उन पर सभा को दोषारोप करना चाहिये जैसा कि इस अनुच्छेद 50 के अधीन प्रधान पर किया जा सकता है। चूंकि अभी दूसरी सभा निर्मित नहीं हुई जो कि उनके विरुद्ध दोषारोप का पुरोधान करे। यही सभा उनके विरुद्ध लगाये गये दोषारोप की सुनवाई कर सकती है, क्योंकि यह सर्वसत्ता सम्पन्न है। हम ही लोग उनके विरुद्ध लगाये गये दोषारोप की सुनवाई करेंगे और आपकी ही अध्यक्षता में यह सुनवाई होगी। माननीय सदस्य ने जानबूझ कर यह कहा है कि वह सभा या सभाध्यक्ष से नहीं बोल रहे हैं, इसलिये सभाध्यक्ष का तथा सभा का अपमान करने के वह दोषी हैं। मैं, इस सम्बन्ध में आपका निर्णय चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** समुचित रूप से विचार कर लेने के बाद मैं इस पर निर्णय दूंगा। आवेश में आकर मैं कुछ नहीं करना चाहता।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं किसी सदस्य विशेष को सम्बोधित करके नहीं बोल रहा था। मैं तो केवल इस बात पर जोर दे रहा था कि सभा का जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण सदस्य है उसे ध्यानपूर्वक सारी बातों को सुनना चाहिए।

***उपाध्यक्षः** अब हम दूसरे संशोधन को लेते हैं जिसकी संख्या है 1186 ।

***प्रोफेसर के. टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, सविनय मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि

> "अनुच्छेद 50 के खण्ड (4) के अन्त में 'by both Houses of Parliament' शब्द जोड़ दिये जायें।"

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

इन शब्दों के रखने पर संशोधन का रूप यह होगा—मैं आरम्भ की चार पंक्तियां नहीं पढ़ रहा हूं क्योंकि उन्हें पहले ही पढ़ चुका हूं—अन्तिम दो पंक्तियां इस तरह होंगी:

"which resolution shall have the effect of removing the President from his office as from the date on which the resolution is passed by both Houses of Parliament."

(उस संकल्प का प्रभाव यह होगा कि दोनों आगारों द्वारा उसके पास किये जाने की तिथि से प्रधान अपने पद से निष्कासित समझा जायेगा।)"

इस समय मैं आपको यहां का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सदस्य समझता हूं न कि मसौदा-समिति के अध्यक्ष को। इसलिए आपकी मार्फत ही मैं सभा से अपनी बात कहूंगा और आशा है सभा उन तर्कों को, जिन्हें मैं यहां उपस्थित करने जा रहा हूं, सहानुभूतिपूर्वक सुनेगी। सभा के अन्य सभी सदस्यों को मैं समान महत्त्व देता हूं।

जो बात मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि वह संकल्प जिसके द्वारा दोषारोप सिद्ध घोषित किया जाता है, वह दोनों ही आगारों द्वारा स्वीकृत होना चाहिए न कि केवल एक आगार द्वारा ही। मैंने अपने संशोधनों में यह कहा है कि एक आगार को दोषारोप का पुरोधान करना चाहिए और दूसरे आगार को उसकी सुनवाई करनी चाहिए और एक संकल्प (प्रस्ताव) पास करके अपना फैसला देना चाहिए। वह संकल्प, फिर अन्त में दूसरी सभा द्वारा भी समर्थित होना चाहिए।

मैं यह कहता आ रहा हूं कि जब तक ऐसा नहीं किया जाएगा, समुचित रूप से न्याय न हो सकेगा। इसलिए न्याय तथा औचित्य के हित में, संशोधनों के परिणामस्वरूप जिन्हें मैं यहां पहले पेश कर चुका हूं, यह संशोधन आना ही चाहिए। सम्बन्धित संकल्प दोनों ही आगारों द्वारा पास होना चाहिए और यह उसी दिन प्रभाव में आना चाहिए जब कि दूसरे आगार ने, यानी जिसने कि प्राभियुक्त प्रधान के मामले की सुनवाई न की हो, वह भी सुनवाई करने वाले अन्य आगार के साथ-साथ इसे पास कर दे।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1187 ।

***काजी सैयद करीमुद्दीन:** उपाध्यक्ष महोदय, जो संशोधन मेरे नाम में है उसे मैं उपस्थित करता हूं। संशोधन यह है:

"कि अनुच्छेद 50 के खण्ड (4) के अन्त में निम्नलिखित अंश जोड़ दिया जाये:

'and it shall operate as a disqualification to hold and enjoy any office of honour, trust or profit under the Indian Union.'

(और इसका प्रभाव यह होगा कि भारतीय संघ के अधीनवर्ती किसी भी सम्मान, विश्वास या लाभ के पद के लिए वह निर्योग्य समझा जायगा।)"

अनुच्छेद 50 के खण्ड (4) में यह तो कहा गया है कि अनुसंधान के फलस्वरूप अगर दोषारोप सिद्ध हो जाता है और इस सिद्धि को घोषित करने वाला प्रस्ताव पास हो जाता है, तो प्रधान अपने पद से निष्कासित हो जायेगा। किन्तु खण्ड (4) इसके लिए कोई निर्योग्यता नहीं लागू करता है। इसलिए मैंने यह संशोधन रखा है कि अनुसंधान के फलस्वरूप दोषारोप यदि सिद्ध घोषित होता है तो प्रधान अपने पद से हटा दिया जायगा और इसके फलस्वरूप उस पर यह निर्योग्यता लागू होगी कि वह सम्मान, विश्वास या लाभ का कोई भी पद जो कि भारतीय संघ के अधीन होगा उसे न धारण कर सकेगा। आशा है सभा इसे स्वीकार करेगी

(संशोधन नं० 1188 और 1189 नहीं पेश किए गये।)

***उपाध्यक्ष:** अब इस अनुच्छेद पर विस्तारपूर्वक बहस की जा सकती है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): इसके पहले कि इस अनुच्छेद पर विस्तारपूर्वक वादानुवाद की आप अनुमति दें, मैं श्री शंकरराव देव के संशोधन नं० 1160 के सम्बन्ध में एक छोटा-सा संशोधन रखना चाहता हूं ताकि उनके संशोधन का स्वरूप ठीक हो जाये। उस संशोधन में यह कहा गया है कि "one-fourth of the total membership of the House" शब्द बदले में रखे जायें। किन्तु सही रूप में यह यों होगा कि "one-fourth of the total number of members" श्री शंकरराव देव के संशोधन को अगर सभा

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

स्वीकार कर लेती है, तो उस हालत में यह छोटा-सा संशोधन जिसका मैं सुझाव दे रहा हूं वह बहुत आवश्यक हो जायगा। यदि आप यह समझते हों कि अनुच्छेद पर विस्तृत बहस की अनुमति देने से पहले यह संशोधन पेश हो जाना चाहिए तो इसे अभी पेश किया जा सकता है।

***उपाध्यक्ष:** क्या सभा इस बात की अनुमति देती है कि अर्थ को और स्पष्ट करने के लिए यह संशोधन पेश किया जाये?

***माननीय सदस्यगण:** हां।

***उपाध्यक्ष:** तब, श्री कृष्णमाचारी, जाप्ते के तौर पर आप इसे उपस्थित कर सकते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मेरा प्रस्ताव यह है कि:

"श्री शंकरराव देव द्वारा उपस्थित संशोधन नं० 1160 में 'one-fourth of the total membership of the House' शब्दों के स्थान पर 'one-fourth of the total number of members' शब्द रखे जायें।"

***उपाध्यक्ष:** अब इस अनुच्छेद पर श्री कामत अपनी राय जाहिर कर सकते हैं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): उस हालत में अनुच्छेद 50 के खण्ड (2) के उपखण्ड (ख) में थोड़ा परिवर्तन करना आवश्यक है। इस उपखण्ड में कहा गया है कि "unless such resolution has been supported by not less than two-thirds of the total membership of the House' (इस संकल्प का समर्थन उस आगार के समस्त सदस्यों की दो तिहाई से अन्यून संख्या ने न किया हो) यहां भी यही बात आती है और इस उपखण्ड में भी आवश्यक परिवर्तन होना चाहिए।

***उपाध्यक्ष:** श्री कामत!

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है, क्योंकि इसमें भारतीय संघ के प्रधान के विरुद्ध प्राभियोग लगाने और उसे

निष्कासित करने के सम्बन्ध में प्रावधान किया गया है। किसी मामूली मुकद्दमे में, किसी फौजदारी के मुकद्दमे में न्यायाधिकरण की अध्यक्षता करने वाला प्राधिकारी एक ऐसा व्यक्ति होता है जो बड़े ही शुद्ध हृदय का होता है और जिससे यह आशा की जाती है कि वह पक्षपात-शून्य रहेगा। आशा है कि भारतवर्ष में हम लोगों को इस अनुच्छेद का सहारा लेने की कभी आवश्यकता ही न पड़ेगी और हमारे सभी प्रधान सदा वैज्ञानिक मार्गों पर ही चलेंगे और प्राभियोग से वह सदा ऊपर ही रहेंगे। किन्तु फिर भी, श्रीमान्, हमें मानवी दुर्बलताओं के विरुद्ध कुछ न कुछ व्यवस्था तो करनी ही पड़ेगी और यही कारण है कि अपने विधान में हमें ऐसा अनुच्छेद रखना पड़ रहा है। किन्तु जब भारतीय गणतंत्र के प्रधान पर विधान के उल्लंघन का दोषारोप किया जाये और उस मामले की सुनवाई हो तो उस स्थिति के लिए यह नितान्त आवश्यक है, परम वांछनीय है कि इस सम्बन्ध में अनुसंधान करने वाली सभा का अध्यक्ष एक ऐसा व्यक्ति बनाया जाये तो परम शुद्ध हो, जो पूर्णत: पक्षपात-शून्य हो और राजनैतिक दलबंदी से ऊपर हो। इस दृष्टि से मि. काजी करीमुद्दीन का संशोधन महत्त्व रखता है। अनुच्छेद में कहा गया है—मेरा संकेत है इस अनुच्छेद के खण्ड (3) की ओर—कि जब दोषारोप का पुरोधान संसद् के किसी आगार द्वारा इस प्रकार किया जा चुके तब दूसरा आगार उस दोषारोप का अनुसंधान करेगा या करायेगा। सम्भव है दूसरा आगार दोषारोप का स्वयं अनुसंधान करे या हो सकता है वह उसके लिए एक न्यायाधिकरण (tribunal) नियुक्त कर दे जिसमें कुछ तो उस आगार के ही सदस्य हों और कुछ बाहर के लोग हों। किन्तु इन दोनों ही सूरतों में यह बहुत ज़रूरी है कि दोषारोप का अनुसंधान करने वाले आगार को अध्यक्ष की अध्यक्षता में प्राभियोग सम्बन्धी कार्यवाही न की जाये। मान लीजिए कि उत्तर आगार (Upper House) ने दोषारोप का पुरोधान किया और अवर आगार (Lower House) दोषारोप का अनुसंधान करता है। अब स्थिति क्या होगी? अवर आगार की अध्यक्षता उसका अध्यक्ष करता है तो क्या लोक-सभा अर्थात् अवर आगार का अध्यक्ष ही प्राभियोग सम्बन्धी कार्यवाही के समय अध्यक्षता करेगा? अध्यक्ष प्राय: पार्टी का ही आदमी होता है और प्रधान पर अतिक्रमण के लिए प्राभियोग लगाया जाता है प्राय: उसी सूरत में जब कि प्रधान और अधिकारारूढ़ दल के बीच किसी बात को लेकर संघर्ष पैदा हो जाता है। ऐसी अवस्था में स्वाभाविक है कि अध्यक्ष से, जो कि उस दल का ही सदस्य होगा, आप यह आशा नहीं कर सकते कि वह उस मामले में पक्षपात-शून्य रहेगा और अपना हृदय पूर्णत:

[श्री एच.वी. कामत]

शुद्ध रखेगा। अब मान लीजिए कि अवर आगार ने दोषारोप का पुरोधान किया है और उत्तर आगार उसका अनुसंधान करता है। अनुच्छेद का जो वर्तमान स्वरूप है उसके अनुसार उप-प्रधान कार्यवाही की अध्यक्षता करेगा। किन्तु हमें यह ख्याल रखना होगा, श्रीमान्, कि मानव एक ऐसी प्राणी है जिसमें कमजोरियां रहती ही हैं। हो सकता है कि उप-प्रधान के मन में यह विचार उत्पन्न हो कि प्रधान के प्राभियुक्त होने और हटाये जाने पर वही उस पद पर आसीन होगा। इसलिए उप-प्रधान तटस्थ न रह सकेगा, उसको अपना स्वार्थ दिखाई देगा क्योंकि अगर दोषारोप सिद्ध होता है और प्रधान हटा दिया जाता है तो राज्य-परिषद् का सभापति ही अर्थात् उप-प्रधान ही उसकी जगह पर आयेगा। इसलिए हो सकता है कि स्वार्थ से प्रेरित होकर वह यह चाहे कि दोषारोप सिद्ध होना ही चाहिए। इसलिए दोनों ही सूरतों में, चाहे लोक-सभा में दोषारोप की सुनवाई हो या उत्तर आगार में, उस आगार के अध्यक्ष या सभापति से आप यह आशा नहीं कर सकते कि वह सर्वथा तटस्थ रहेगा, दलगत राजनीति से अथवा दल सम्बन्धी आवेश से ऊपर रहेगा और उस मामले में अपने को सर्वथा शुद्ध रखेगा। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि भारत का प्रधान न्यायाधीश ही, दोषारोप के अनुसंधान की कार्यवाही की अध्यक्षता करे। न केवल मुकद्दमे के संचालन के सम्बन्ध में ही बल्कि सभी मामलों में; जैसे कि साक्ष्य की स्वीकृति का सवाल या तद्विषयक अन्य सभी बातों में प्रधान न्यायाधीश का निर्णय ही आखिरी होना चाहिए। आपकी अनुमति से, श्रीमान्, श्री ए.सी. लाफलिन द्वारा लिखी हुई पुस्तक "दी कान्स्टीट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ दी युनाइटेड स्टेट्स" से मैं एक उद्धरण देता हूं। उन्होंने लिखा है:

> "जब प्रेसीडेंट एंड्रयू जानसन के विरुद्ध प्रधान न्यायाधीश की अध्यक्षता में सिनेट के सामने मुकद्दमा चल रहा था तो साक्ष्य की स्वीकृति के सम्बन्ध में एक ऐसा ही प्रश्न उठा था और सिनेट ने यह फैसला किया था कि इस संबंध में अध्यक्ष ही निर्णय देगा और वह निर्णय मान्य होगा। किन्तु यदि उस सम्बन्ध में सिनेट में मतभेद हुआ तो उस हालत में स्वयं सिनेट ही उसका फैसला करेगी।"

अमेरिका के प्रेसीडेंट पर मामला चल रहा था और वहां का प्रधान न्यायाधीश कार्यवाही की अध्यक्षता कर रहा था। मुकद्दमे के दौरान में एक सवाल खड़ा हुआ

था, जिस पर यह निर्णय हुआ था कि साक्ष्य स्वीकार किया जाये या नहीं। इस संबंध में प्रधान न्यायाधीश को फैसला देने का अधिकार है। हमें अपने विधान में भी यही पद्धति अपनानी चाहिए। भारतीय गणतंत्र के प्रधान के प्राभियोग के सम्बन्ध में दोषारोप का अनुसंधान करने वाले निकाय की अध्यक्षता भारत के प्रधान न्यायाधीश को ही करनी चाहिए, जो न लोक-सभा का अध्यक्ष रहेगा और न राज्य-परिषद् का सभापति ही। अत: मि. काजी करीमुद्दीन ने जो इस आशय का संशोधन पेश किया है कि प्रधान के विरुद्ध लगाये गये प्राभियोग में दोषारोप के अनुसंधान की कार्यवाही प्रधान न्यायाधीश की अध्यक्षता में हो, मैं इसका पूर्णत: समर्थन करता हूं।

श्री के.टी. शाह ने भी एक संशोधन इस सम्बन्ध में पेश किया है। मेरा अभिप्राय है उनके संशोधन नं० 1183 से। उनकी योजना यह है कि दोषारोप का पुरोधान लोक-सभा ही करे अर्थात् प्राभियोग के सम्बन्ध में कार्रवाई शुरू होनी चाहिये लोक-सभा से, और उत्तर आगार ही दोषारोप का अनुसंधान करे। मैं उनके इस विचार से सहमत नहीं हूं कि दोषारोप का पुरोधान लोक-सभा ही करे। लोक-सभा या उत्तर आगार कोई भी दोषारोप का पुरोधान कर सकता है किन्तु अनुसंधान दूसरे ही आगार को करना चाहिये। किन्तु उनके संशोधन नं० 1183 की इस बात से मैं अवश्य सहमत हूं कि दोषारोप का अनुसंधान करने वाला आगार अगर दोषारोप को सही ठहराता है तो प्रधान के निष्कासन के सम्बन्ध में उस आगार का निर्णय ही अन्तिम न होना चाहिये। यदि दोषारोप सिद्ध होता जाता है तो उस सिद्धि को घोषित करने वाला प्रस्ताव पुन: उस आगार के पास जाना चाहिए जिसने कि दोषारोप का पुरोधान किया क्योंकि प्रधान का प्राभियोग और निष्कासन केवल एक आगार के मत के आधार पर न होना चाहिए बल्कि दोनों ही आगारों के मत के आधार पर यह होना चाहिए। इसलिए विधान में इस आशय का एक सुनिश्चित एवं स्पष्ट प्रावधान रखना जरूरी है कि प्रधान अगर अपने उच्च पद से हटाया जायगा तो न केवल एक आगार के मत के आधार पर ही, बल्कि दोनों आगारों के मत के आधार पर वह हटाया जायेगा। प्रो. के.टी. शाह ने जो तर्क उपस्थित किये हैं वह पूर्णत: युक्तिसंगत हैं। मुकद्दमे के सिलसिले में हो सकता है कि कई महीने बीत जायें और इस बीच में सम्भव है कि कतिपय

[श्री एच.वी. कामत]

विरोधी धारणायें तथा दलगत आवेश, जिनसे प्रेरित होकर दोषारोप का पुरोधान किया गया हो वह सब शान्त हो जायें और जब मामला पुनः दूसरे आगार के सामने जाये तो हो सकता है—मैं यह नहीं कहता कि हमेशा ऐसा ही होगा—पर सम्भव है कि जिन दोषों का आरोप उस आगार ने किया हो, उन पर पुनः विचार करने पर वह इस परिणाम पर पहुंचे कि न्यायतः और पूर्णतः वे आरोप सिद्ध नहीं किये जा सकते हैं। इसलिए प्रो. के.टी. शाह द्वारा पेश किये दोनों ही संशोधन नं० 1183 और 1186—इस दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उनका प्रभाव यह होता है कि भारत का प्रधान दोनों ही आगारों के मत के आधार पर हटाया जा सकेगा, न कि केवल एक आगार के मताधार पर अर्थात् केवल उस आगार के निर्णय के आधार पर जिसने दूसरे आगार द्वारा लगाये गये दोषारोपों का अनुसंधान किया हो। इसलिए मेरा मत तो यह है, श्रीमान्, कि इन दोनों ही संशोधनों को हमें किसी न किसी रूप में विधान में लिपिबद्ध कर देना चाहिए। जिस तरह कि दण्ड सम्बन्धी यानी फौज़दारी के मामलों में होता है कि पहले पुलिस मामले की जांच करती है और फिर उसे न्यायालय के सामने विचारार्थ पेश करती है, जहां अध्यक्षता करने वाला प्राधिकारी सर्वथा तटस्थ व्यक्ति रहता है, उसी तरह यहां भी यही होना चाहिए कि एक आगार द्वारा लगाये गये दोषारोपों का अनुसंधान हो तो कार्यवाही की अध्यक्षता भारत का प्रधान न्यायाधीश ही करे, क्योंकि वह न तो लोक-सभा का अध्यक्ष है और न राज्य-परिषद् का सभापति ही। मि. करीमुद्दीन के पहले संशोधन के सम्बन्ध में तो मेरा यह मत है।

प्रो. के.टी. शाह ने जो इस आशय का संशोधन पेश किया है कि प्रधान का निष्कासन दोनों ही आगारों के निर्णय के आधार पर होना चाहिए न कि केवल एक आगार के निर्णय पर, वह भी महत्वपूर्ण है। इसके पीछे जो सिद्धान्त है वह बहुत ही ठोस सिद्धान्त है और विधान में इसे अवश्य ही स्थान मिलना चाहिए।

इसके अलावा मित्र मि. करीमुद्दीन का एक और संशोधन है, जिसका नम्बर है 1187 जिसका आशय है कि प्राभियुक्त तथा पद से निष्कासित किये जाने पर

प्रधान पर यह निर्योग्यता लागू हो जायेगी कि वह भारतीय संघ के अधीनवर्ती किसी भी लाभ या सम्मान के स्थान के लिए न चुना जा सकेगा। मैं समझता हूं कि यह हमारे सार्वजनिक जीवन की शुद्धता से तथा हमारे जातीय आचरण से सम्बन्ध रखता है जिसकी कि अभी-अभी उस दिन हमने जयपुर में घोषणा की है। इसका यह अर्थ हुआ कि प्रधान.....।

माननीय मित्र मि. हुसैन मुस्करा रहे हैं, दबी हंसी हंस रहे हैं। मैं नहीं समझ पाता हूं कि वह क्यों हंस रहे हैं। उनका यह मतलब है कि जयपुर.....।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** इसका यह अर्थ नहीं हुआ।

***श्री एच.वी. कामतः** इसका यह अर्थ नहीं हुआ, इसे समझाने का भार मैं मि. हुसैन पर ही छोड़ रहा हूं। मैं तो केवल यह पूछना चाहूंगा कि प्रधान जब संविधान के अतिक्रमण के लिए प्राभियुक्त होता है और दोनों सभायें उसे दोषी ठहरा कर निष्कासित कर देती हैं, तो क्या उस सूरत में भी हम यह कल्पना कर सकते हैं या सोच सकते हैं कि ऐसा उच्च पदस्थ व्यक्ति संसद् द्वारा पदच्युत किये जाने के बाद भी भारतीय संघ के अधीनवर्ती किसी सम्मान या विश्वास के पद के लिए पात्र हो सकेगा? मैं कहता हूं—और हज़ार बार कहता हूं कि वह पद के लिए कभी पात्र न हो सकेगा। ऐसे व्यक्ति को तो हम अपने देश में किसी पद पर न रहने देंगे, उसे कोई भी सम्मान या विश्वास का पद न देंगे। इसलिए संशोधन नं० 1187 का मैं पूर्ण समर्थन करता हूं।

**पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): जनाब प्रेसिडेंट साहब, इस सेक्शन 50 में जो अलफ़ाज हैं, मैं उनसे सहमत नहीं हूं। सबसे अव्वल दफा 50 में यह नुक्स है कि इसमें सिर्फ प्रेसिडेंट का जिक्र है, हालांकि चन्द ऐसे भी मौके होंगे जिसके अन्दर वायस-प्रेसिडेंट भी बतौर प्रेसिडेंट के काम करेगा। और इसके वास्ते कोई प्रोवीज़न नहीं है। ऐसे मौके पर जब वायलेशन कांस्टीट्यूशन की होगी इसकी जिम्मेदारी सरिहन वायस-प्रेसिडेंट की होगी और वह अपने फेल का जिम्मेदार होगा। इसलिए इस दफा में वायस-प्रेसिडेंट का भी जिक्र होना चाहिए था।

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

"दूसरी कमी जो मैं पाता हूं वह यह है कि दफ़ा 50 में अलफ़ाज "वायलेशन ऑफ दी कांस्टीट्यूशन" (Violation of the Constitution) की कहीं तारीफ नहीं की गई है और यह वायलेशन ऑफ दी कांस्टीट्यूशन बहुत से तरीकों से हो सकता है। मसलन शैड्यूल नं० 4 में जो हिदायतें होंगी उनके खिलाफ़वर्ज़ी होने से दफ़ा 49 में जो जिम्मेदारी बज़रिये कस्म आयद हुई है, इसके पूरा न करने से और दीगर ग़रज़ पूरा न करने से इस अलफ़ाज के गैर मबहम और साफ अलफ़ाज में तारीफ न होने से यह अलफ़ाज बिल्कुल वेग (vague) हैं।

प्रेसिडेंट साहब, इंडियन युनियन के सबसे बड़े मुअज्ज़िज़ अफ़सर होंगे और इसके अफाल के बारे में ऐसे 'वेग' (vague) अलफ़ाज की मौजूदगी से उनको बिला वजह भी 'हरास' (harass) किये जाने का इमकान है और यह अमर इसलिए सख्त अफसोसनाक है।

तीसरी चीज जो मैं नुक्स की पाता हूं कि ऐसे 'वेग' अलफ़ाज की मौजूदगी में यह शर्त कि महज़ 30 मैम्बरों की राय से नोटिस रिजोल्यूशन का दिया जाना काफी समझा जाये, यह मुनासिब सेफगार्ड नहीं है। मेरा यह ख्याल है कि एक बटा चार टोटल का नोटिस होना चाहिये। यह तरमीम निहायत जरूरी है और मैं इसको सपोर्ट करता हूं रिजोल्यूशन के पास होने के लिए कुल मेम्बरान के दो बटा तीन का होना मजीद सेफगार्ड भी जरूरी है। इन अमूर के पूरा होने पर दरवाजा तहकीकात खुल जाता है और तहकीकात दूसरे हाउस के हाथ में आ जाती है। दफ़ा 50 (3) की रू से या तो हाउस खुद तहकीकात करेगा या किसी और से तहकीकात करायेगा। अगर हाउस खुद तहकीकात करे, तो कोई माकूल वजह नहीं कि क्यों इस हाउस का प्रेसिडेंट बहैसियत प्रेसिडेंट के काम न करे। 'हाउस ऑफ दी पीपुल' का प्रेसिडेंट एक निहायत ही काबिल ऐतबार शख्स होता है और पार्टी बाज़ी से बाला होता है। उस पर पूरा ऐतबार किया जा सकता है कि वह बिला रू रियायत इन्साफ से काम लेगा। मिस्टर कामत साहब की दलील, कि कौन्सिल ऑफ स्टेट का प्रेसिडेंट चूंकि वायस-प्रेसिडेंट होगा, इसलिए वह इन्साफ से काम न लेगा, क्योंकि प्रेसिडेंट के हटाये जाने से उसको कुछ अर्से के लिए प्रेसिडेंट बनने का मौका मिलेगा, यानी अपील नहीं करे। क्योंकि अव्वल तो वह अकेला जज न होगा और दोयम ऐसा शख्स इतना

केरेक्टरलैस (characterless) न होगा कि इन्साफ़ को अपने हाथ से खो दे। इस जिम्न में एक निहायत जरूरी सवाल जो पैदा होता है वह यह है कि अगर तहकीकात का नतीजा यह हो कि चार्ज साबित है तो फिर दो-तिहाई मेम्बरान की मैजोरिटी जरूरी करार देने के मानी यह होंगे कि 'इम्पीचमेंट' (impeachment) का हक महज़ 'इल्यूजरी' (illusory) हो जायेगा। इन्साफ को इतने 'रिस्ट्रेक्शन' (restriction) से जकड़ना मुनासिब नहीं है। 'फ्रिवोलस एक्युजेशन्स' (frivolous accusations) के खिलाफ सेफगार्ड (अलिफ़) व (बे) में काफी ठीक है। लेकिन हाउस के तहकीकात का नतीजा असबात में होने से या सुप्रिम कोर्ट या किसी और बगैर अदालत का फैसला असबात में होने से शक्ल मामला तब्दील हो जाती है और ऐसे हालात में रिजोल्यूशन का 'कन्फर्मेशन' (confirmation) दो तिहाई मैजोरिटी से न चाहिए बल्कि महज मामूली मैजोरिटी काफी है। और अगर तहकीकात का नतीजा यह है कि चार्ज साबित नहीं हुआ तो फिर रिजोल्यूशन के पास न होने का सवाल भी पैदा नहीं होता। अगर इस सूरत में ही दो तिहाई मैजोरिटी रिजोल्यूशन असबात में पास करने का हक रखती है तो यह 'इन्वेस्टिगेटिंग हाउस' (investigating House) या अदालत मुकर्रर कर दे, यह हाउस की तौहीन है। ऐसे हालात में रिजोल्यूशन के पास करने का कोई मौका या जवाज़ कायम नहीं रहता है। अलबत्ता चार्ज के साबित होने पर हाउस को मैजोरिटी से फैसला तहकीकात असबाती पर कन्फर्मेशन करने का हक है। दफ़ा 50 (3) में तहकीकात के तरीका व मशीनरी के डैफिनिट न होने से और दफा 50 (4) में तहकीकात के नतीजा के डेफिनिट असर जाहिर न होने से यह सारी दफ़ा 50 गैर तसल्लीबख्श और 'वेग' (vague) रह जाती है। यह ठीक है कि इस दफ़ा का इस्तेमाल निहायत ही रेयर (rare) होगा लेकिन ताहम जब कभी इसको इस्तेमाल किया जायेगा, इसके जायज और मुनासिब इस्तेमाल में दिक्कत का सामना होगा। और मौजूदा शक्ल में इसका "इन्टरप्रिटेशन" (interpretation) मुश्किल होगा। मेरी गुजारिश यह है कि अगर इसमें यह तरामीम जिनका मैंने ऊपर इशारा किया है न की गईं तो दिक्कत का सामना होगा।

एक छोटा-सा प्वाइंट मैं और अर्ज करना चाहता हूं और वह यह है कि अगर किसी प्रेसिडेंट का वायलेशन इतना 'प्रोनाउंस्ड, एक्सप्रेस्ड प्रोनाउंस्ड' (pronounced, expressed pronounced) हो कि दोनों हाउसेज 'एक्यूज़र' (accuser) बनना चाहते हों तो किसको 'एक्यूजर' (accuser) समझा जायेगा और किसको 'इन्वेस्टिगेटिंग अथोरिटी' (investigating authority) समझा

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

जायेगा? गोकि ऐसा 'प्राबेबिल' (probable) नहीं है। मैं अर्ज़ करूंगा कि ऐसा 'कन्टिन्जैन्सी' (contingency) के लिए इसके अन्दर कोई 'प्रोवीज़न' (provision) नहीं है। उसमें ऐसा प्रोवीज़न होना चाहिए कि ऐसी 'कन्टिन्जैंसी' (contingency) हाउस ऑफ पीपुल को एक्यूजर करार दिया जाये और हाउस ऑफ लाड्र्स को 'इन्वेस्टिगेटिंग अथोरिटी' करार दिया जाये। इन अलफ़ाज के साथ मैं दफ़ा 50 की ताईद करता हूं।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे खुशी है कि आपने सभा में जहां महत्त्वपूर्ण, अतिशय महत्त्वपूर्ण एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सदस्यों को बोलने का मौका दिया है वहां अब आप सभा के महत्त्वशून्य वर्ग को भी बोलने का मौका दे रहे हैं।

प्रधान पर प्राभियोग का लगाया जाना एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है और इस पर सभा को खूब सावधानी से विचार करना चाहिए। मि. करीमुद्दीन का संशोधन सर्वथा संगत, समुचित एवं पक्षपातशून्य दिखाई देता है। जब हम एक पदस्थ एवं मर्यादापूर्ण व्यक्ति के विरुद्ध मुकद्दमा चला रहे हैं तो यह जरूरी है कि कार्यवाही की अध्यक्षता एक ऐसा व्यक्ति करे जो दलगत आवेश से तथा पक्षपात से सर्वथा मुक्त हो और पूर्णत: तटस्थ दृष्टिकोण रख सके। ऐसा व्यक्ति सम्भवत: कौन हो सकता है? उसके लिए संधान-न्यायालय का प्रधान न्यायाधीश ही एक मात्र उपयुक्त व्यक्ति है। वह मुकद्दमे में सर्वथा पक्षपातशून्य दृष्टिकोण अपना सकेगा जो अध्यक्ष के लिए संभव नहीं है। जब हम अपने राज्य के सर्वोच्च पदस्थ प्राधिकारी के विरुद्ध मुकद्दमा चला रहे हों, तो यह जरूरी है कि कार्यवाही की अध्यक्षता एक ऐसा व्यक्ति करे जो पक्षपात से सर्वथा ऊपर हो और दल विशेष के मोह से सर्वथा स्वतन्त्र हो। अध्यक्ष कितना ही महान् व्यक्ति क्यों न हो, पर दल विशेष की ओर उसका झुकाव होगा ही और वह पक्षपात से ऊपर नहीं उठ सकता, जैसा कि आज हम सर्वत्र देख रहे हैं।

यह एक बहुत ही साधारण संशोधन है और इस पर पूर्णत: विचार करना होगा, इसलिए नहीं कि यह एक ऐसे दल या व्यक्ति की ओर से आया है जिससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। अगर इस मनोभाव से ही हम इस पर विचार करना जरूरी समझते हैं तो हम अपने ही प्रति अन्याय कर रहे हैं। हमें तो सभी संगत

संशोधनों पर विचार करना चाहिए, चाहे उसे उपस्थित किसी भी व्यक्ति ने किया हो। क्या ही अच्छा होता कि मैं पंडित भार्गव की वक्तृता को समझ पाता। वह ओजपूर्ण हिन्दुस्तानी में बोले हैं जो हम लोगों के लिए बोधगम्य नहीं है। किन्तु जो कुछ भी मैं समझ सका उससे उनका पक्ष कुछ जंचा नहीं। अध्यक्ष उस विषय पर समुचित बहस न करा पायेगा। इसके अलावा हो सकता है कि वह कानून-विशारद न हो। सम्भव है कि वह एक प्रख्यात सर्वप्रिय व्यक्ति हो पर हो सकता है कि वह सर्वोत्तम व्यक्ति न हो और यह भी हो सकता है कि बहुमत प्राप्त दल उसे बढ़ावा देता हो। इसलिए, किसी साक्ष्य को स्वीकार किया जाये या न किया जाये, उस सम्बन्ध में उसके क्या विचार होंगे, यह विशेषत: एक अनुमान की बात रहेगी और सम्भव है कि अफवाह या अन्य बातें उसके विचारों को प्रभावित करें। हो सकता है वह ऐसे किसी साक्ष्य की अनुमति दे दे जिससे उस उच्च व्यक्ति की प्रतिष्ठा में आघात पहुंचे। मेरा कहना है कि इस संशोधन पर हमें शान्त चित्त से विचार करना चाहिए। प्रधान पर लगाये गये दोषारोपों के अनुसंधान की कार्यवाही के लिए प्रधान न्यायाधीश को ही अध्यक्ष बनावें, क्योंकि प्रधान हमारे देश का एक बहुत ही प्रख्यात तथा उच्च नागरिक होगा। इसलिए नम्रतापूर्वक मैं यही सुझाव दूंगा कि आप इस मसले पर गौर करें और मि. करीमुद्दीन के संशोधन पर विचार करें।

अमेरिकन विधान में यही व्यवस्था रखी गई है कि प्रधान पर जब ऐसा मामला चलेगा तो वहां के प्रधान न्यायाधीश की अध्यक्षता में ही तत्संबंधी कार्यवाही होगी। वस्तुत: प्रेसिडेंट जानसन के मुकद्दमे में यही पाया गया कि अगर प्रधान न्यायाधीश की अध्यक्षता में मुकद्दमे की कार्यवाही न की गई होती, तो प्रेसिडेंट निष्कासित कर दिया गया होता। किन्तु प्रधान न्यायाधीश ने ऐसे साक्ष्यों की अनुमति दी कि जो बिल्कुल ठीक थे और इसीलिए प्रेसिडेंट निष्कासित होने से या पदच्युत होने से बच गया। इसी तरह हमें भी यही कोशिश करनी चाहिए कि इस सम्बन्ध में हमारे देश में समुचित न्याय हो सके।

आशा है हम लोगों की पार्टी इस सुन्दर एवं सुसंगत संशोधन पर विचार करेगी, जिसका समर्थन श्री कामत ने इतनी योग्यता से किया है।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, बहुत निराशा के साथ मैं अपनी बात कहने जा रहा हूं। हम कोशिश तो इस बात की कर रहे हैं कि एक गणतन्त्रात्मक प्रधान की व्यवस्था करें पर तरह-तरह के सन्देह हमारे मन में उठ रहे हैं और यह सभा संदिग्ध हो रही है। विश्राम के बाद, जयपुर से लौटने के पश्चात् सदस्यगण बहुत कुछ दब गये हैं। वह अपने मन की बात साफ-साफ और खुल कर नहीं कहते हैं। फिर भी वह कतिपय संशोधन, जिन्हें कि ऐसे सदस्यों ने पेश किये हैं जिनसे मेरा मतैक्य नहीं है, तथा वह कई संशोधन जिनकी सूचना तो आई पर जो पेश किये गये, यह साफ़ जाहिर करते हैं कि सदस्यों के मन में कुछ सन्देह है।

***उपाध्यक्ष:** मिस्टर दास, क्या जयपुर का उल्लेख करना आपके लिए कुछ जरूरी ही है? सदस्यों ने बार-बार जयपुर की चर्चा की है। ये नहीं समझता कि इस सभा की कार्यवाही से जयपुर का क्या सम्बन्ध है।

***श्री बी. दास:** मुझे नहीं पता कि सदस्य-वृन्द क्यों इतना दब गये हैं। प्रधान के सम्बन्ध में, 47 से 50 तक के अनुच्छेद बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। मैं पूछता हूं कि हम लोग किसी गणतंत्रात्मक प्रधान की व्यवस्था करने जा रहे हैं या किसी विभीषिका की? अनुच्छेद 50 को लेकर इस समय हम अपने उन सन्देहों पर बहस-मुबाहिसा कर रहे हैं जो प्रधान के बारे में हमारे मन में उठ रहे हैं और हम यह सोच रहे हैं कि किस तरह विधान के अतिक्रमण के लिए प्रधान को हम प्राभियुक्त करें। इससे तो यही प्रकट होता है कि हम गणतंत्रात्मक प्रधान की व्यवस्था नहीं कर रहे हैं। उन कतिपय संशोधनों के द्वारा, जिनमें से बहुत तो उपस्थित किये गये हैं और बहुत से उपस्थित ही नहीं किए गए हैं, बहुत से सदस्य यह चाहते हैं कि प्रधान की शक्ति को और नियंत्रित कर दिया जाये। इस सम्बन्ध में विचार करते-करते हम सब सुदूरवर्ती अतीत की ओर पहुंच गये और हमें नेपोलियन की याद आ गई। वह एक साधारण व्यक्ति था; प्रेसिडेंट चुना गया और आगे चल कर वह निरंकुश सम्राट बन बैठा। दक्षिणी अमेरिका के प्रधानों की याद अभी पुरानी नहीं हुई। वे लोग अपने तथा कथित गणतंत्रों में, जिनकी कि दक्षिणी अमेरिका में भरमार है, एकाएक निरंकुश तानाशाह बन बैठे। अत: दुर्भाग्य से स्थिति यह है कि हमें यह देखना होगा कि हम अपने प्रधान को ऐसे अधिकार तो नहीं दे रहे हैं कि मनमानी कर सकें। इसमें शक नहीं कि उसको

परामर्श देने के लिए एक गणतंत्रात्मक मंत्रिमण्डल रहेगा पर क्या हमारे लिए यह कल्याणकर होगा कि हम उसे मनमानी करने की शक्तियां दे दें? मानवी कमज़ोरियों के रहते हुए क्या यह संभव होगा कि हमारा गणतंत्रात्मक प्रधान सदा गणतंत्रात्मक ही बना रहे और निरंकुश या स्वेच्छाचारी न हो जाय? जो संशोधन पेश नहीं किये गये हैं उनसे व्यक्त है कि हम मानव प्राणी हैं और हमें यह सन्देह होता है कि कहीं हमारा गणतंत्रीय प्रधान स्वेच्छाचारी न बन जाय। बहुत से सदस्य यह चाहते हैं कि प्रधान कम उम्र का—35 का—न हो बल्कि वह वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ हो। मैंने ही अपने संशोधन नं० 1185 को यही आशा करके नहीं पेश किया कि हमारा प्रधान सदा अपने को सज्जन पुरुष सिद्ध करेगा। हमारे संशोधन का यह आशय है कि प्रधान के पद से अवकाश पाने के बाद कोई भी प्रधान भारतीय संघ के अधीनवर्ती किसी पद के लिए या किसी राज्य का शासक (गवर्नर) बनने के लिए प्रयास न करेगा। आखिर यह दौर्बल्य हमारे वयोवृद्ध राजनीतिज्ञों में क्यों प्रकट हो? क्यों वह राजदूत या शासक बनने की कोशिश करे? ये विचार हमारे दिमाग में आज उथल-पुथल मचा रहे हैं। यह सिद्ध कर दिखाना हमारे प्रधान का काम है कि वह इन प्रलोभनों से ऊपर है।

अभी निकटवर्ती अतीत काल में जब यहां अंग्रेज़ों की हुकूमत थी, हमें ऐसे सन्देहास्पद आचरणों का अनुभव मिला है। मद्रास के एक गवर्नर अवकाशप्राप्ति के पश्चात् यहां गवर्नर जनरल होकर आये और उनकी पत्नी इसे बहुमूल्य उपहार तथा परिलाभों की प्राप्ति का एक अच्छा साधन समझती थी। हमें इस पर विचार करना होगा कि 41-51 तक के अनुच्छेदों के द्वारा हम जिस प्रजातंत्रीय प्रधान की व्यवस्था कर रहे हैं, वह आगे चल कर स्वेच्छाचारी तो न बन जायेगा और उपहार और अन्य बहुमूल्य वस्तुएं तो स्वीकार न करने लगेगा। इस तरह मिलने वाले उपहार साधारण लागत की चीज़ें नहीं होतीं बल्कि इसमें जवाहरात तथा अन्य वस्तुएं रहती हैं, जिनकी कीमत लाखों और करोड़ों तक पहुंचती हैं। हमें यह देखना होगा कि हमारा प्रधान और उसकी पत्नी, उसकी कन्या, उसकी बहुएं ऐसे उपहार न ले सकें। मैं चाहता हूं कि मेरे सुयोग्य मित्र डॉ. अम्बेडकर विधान में एक ऐसा प्रावधान रखें जिससे हमारा प्रधान तथा उसका परिवार, उस अवधि के अन्दर जब तक कि वह दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान है, जो

[श्री बी. दास]

कुछ उपहार पाये वह सब राष्ट्र की चीज़ हो, राज्य की सम्पत्ति हो। ऐसे उपहारों का लाभ प्रधान या उसके आश्रितों को नहीं मिलना चाहिए।

मैंने आपसे यहां बोलने की अनुमति ली, वह केवल इसलिए ली, श्रीमान्, कि बहुत से सदस्यों की भावनाओं को मैं व्यक्त कर दूं। हम सभी मानवप्राणी हैं। हम न ठक्कर बाबा हैं, न महात्मा गांधी हैं और न उपाध्यक्ष महोदय, हम आपके ही समान ऊंचे मानव हैं। मेरा मन सन्देहशील है। अपने तमाम राजनैतिक जीवनकाल में मैं सदा ही प्रत्येक अंग्रेज के प्रति सन्देह करता रहा हूं। मैं उन पर भी सन्देह करता रहा हूं जिनकी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी परम्परा के अनुसार हुई है। इसलिए मैं यह जानना चाहता हूं कि उन सन्देहों को दूर करने के लिए हम क्या-क्या व्यवस्था कर रहे हैं। यहां सभा-भवन में जो वक्तृतायें हुई हैं उनसे व्यक्त होता है कि हमें अपने प्रधान के सम्बन्ध में सन्देह हैं। ऐसी हालत में उन सभी बातों को क्यों न स्पष्ट कर दिया जाये? केवल इस आधार पर कि गांधी-विचारधारा की सम्यक रूप से शिक्षा पाया हुआ कोई प्रधान हमें मिल सकता है, हम यह आशा तो नहीं कर सकते कि दूसरे भी गवर्नरी पाने की या अन्य पद पाने की कोशिश न करेंगे।

**श्री तजम्मुल हुसैन:** मिस्टर वाइस प्रेसिडेंट, मेरे लायक दोस्त मि. मोहम्मद ताहिर ने तरमीम नं० 1178 पेश की है जिसमें.....।

***उपाध्यक्ष:** हमारे दाक्षिणात्य मित्रों ने बार-बार हमसे यह कहा है कि इतनी प्रभावपूर्ण भाषा को वे समझ नहीं सकते हैं। आपको यह स्वतंत्रता है कि जिस भाषा में भी चाहें बोले, किन्तु अगर आप उनके मत पर असर डालना चाहते हैं तो आपको अंग्रेजी में ही बोलना होगा। किस भाषा में आप बोलें यह तय करना आपका काम है।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** मेरे मित्र पंडित भार्गव अभी हिन्दुस्तानी में बोले हैं इसलिए मैं सभा को यह दिखला देना चाहता था कि मैं भी दिल्ली निवासियों के बराबर ही अपनी भाषा में बोलने में समर्थ हूं, यद्यपि एक सुदूरवर्ती प्रदेश बिहार से मैं आया हूं।

***उपाध्यक्ष:** यह पूर्वी पंजाब के हैं।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** पंजाबी जुबान हिन्दुस्तानी नहीं कही जाती। खैर, मैं अंग्रेजी में बोलूंगा।

मिस्टर ताहिर ने इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में एक संशोधन पेश किया है। अनुच्छेद में कहा गया है कि जब भी संसद् यह चाहेगी कि भारतीय गणतंत्र के प्रधान के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव पास किया जाये तो उसे उस प्रस्ताव को, उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों की दो-तिहाई से अन्यून बहुमत द्वारा पास करना होगा। इस सम्बन्ध में मिस्टर ताहिर का कहना यह है कि यह व्यवस्था ठीक नहीं है। गणतंत्र ऐसा न होना चाहिये। वहां तो साधारण बहुमत से किया हुआ निर्णय ही मान्य होना चाहिए। मैं उनके इस संशोधन का विरोध करने के लिए खड़ा हुआ हूं।

अगर भारतीय गणतंत्र का प्रधान एक वोट के बहुमत से अथवा अध्यक्षता करने वाले व्यक्ति के निर्णायक मत से हटाया जाता है तो आप जानते हैं, क्या होगा? उस सूरत में प्रधान सभा में जिस दल का बहुमत होगा उसके हाथ की वह कठपुतली बन जायगा। हम अपने प्रधान को इस स्थिति में नहीं आने देना चाहते। हम ऐसा प्रधान नहीं चाहते हैं जो बहुमत प्राप्त दल की चाटुकारिता करे, चाहे अधिकारारूढ़ दल कांग्रेस हो या समाजवादी दल हो। हम नहीं चाहते कि प्रधान बहुमत प्राप्त दल का मुंह देखा करे। प्रधान चुन लेने पर उसे पूर्णत: पक्षपातशून्य होकर अपना काम करने दीजिए और ऐसा न कीजिए कि वह पार्टी से कृपा की भीख मांगे। इसलिए मैं मूल अनुच्छेद का समर्थन करता हूं। अगर प्रधान पर प्राभियोग लगाना है तो उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई के बहुमत से ही उसे प्राभियुक्त कीजिए।

अब, श्रीमान्, संशोधन नं० 1183 को मैं लेता हूं जिसे आदरणीय मित्र प्रो. के. टी. शाह ने पेश किया है। वह चाहते हैं कि अनुच्छेद 50 के खण्ड (4) में "such resolution shall" शब्दों के बाद "be placed before the People's House and if adopted by the latter, shall" ये शब्द जोड़ दिये जायं। अनुच्छेद 50 में उस जाप्ते का उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार प्रधान प्राभियुक्त किया जा सकेगा। हमारे दो आगार हैं, एक तो उत्तर आगार और दूसरा अवर आगार अर्थात् राज्य-परिषद् और लोक-सभा। अनुच्छेद 50 में कहा

[श्री तजम्मुल हुसैन]

गया है कि कोई भी आगार प्रधान के विरुद्ध दोषारोप ला सकता है और एक आगार—मान लीजिए कि लोक-सभा—प्रधान के विरुद्ध दोषारोप करता है, उसके विरुद्ध कतिपय अभियोग लगाता है तो दूसरा आगार, यानी राज्य-परिषद् उसका अनुसंधान करेगा। इसका मतलब यह हुआ कि दूसरा आगार न्यायाधीश के रूप में काम करेगा और जिस आगार ने दोषारोप किया है, वह केवल फ़रियादी या अभियोक्ता के रूप में ही रहेगा। कानून-विज्ञान के अनुसार अभियोक्ता न्यायाधीश का काम नहीं कर सकता। इसी सिद्धान्त को लेकर तो अब तक हम इस बात के लिए लड़ते आये हैं कि न्याय-प्रकार्य को अधिशासी प्रकार्य से सर्वथा पृथक् रखना चाहिए। ज्यों ही ऐसा करना शक्य होगा हम ऐसा कर देंगे। अंग्रेजी हुकूमत को इसी में सुविधा थी कि अभियोक्ता तथा न्यायाधीश दोनों ही काम वह खुद करे। किन्तु अब जब हम प्रजातन्त्रात्मक राज्य बनाने जा रहे हैं और भारतवर्ष स्वतन्त्र हो गया है, अभियोक्ता न्यायाधीश का काम नहीं कर सकता। इसलिए मैं आदरणीय मित्र प्रो. के. टी. शाह के संशोधन का विरोध करता हूं।

दूसरा संशोधन यह है नं० 1185 जिसे मि. नजीरुद्दीन अहमद ने पेश किया है। उनका कहना है कि प्रधान उसी समय से प्रधान के पद से अलग हो जायेगा, जबसे कि दोषारोप को सिद्ध घोषित करने वाला प्रस्ताव पास हो जाता है, न कि उस दिन से जिस दिन कि प्रस्ताव पास होता है। यह तो एक सरल और समुचित बात दिखाई देती है। मान लीजिए कि दोषारोप के अनुसंधान करने वाली सभा की बैठक 10 बजे सवेरे हुई और निन्दा का प्रस्ताव पास हुआ 12 बजे दिन को। वर्तमान खण्ड (4) के अनुसार प्रधान उस तारीख के प्रारम्भ से ही यानी 12 बजे रात से प्रधान पद से अलग हो जायेगा। इस संशोधन के अनुसार यह होगा कि प्रस्ताव के पास होते ही स्वतः प्रधान अपने पद से च्युत समझा जायेगा। यह तो, मेरी समझ से तर्कसंगत बात है और हमें इसे स्वीकार करना चाहिए। अब मैं संशोधन नं० 1186 को लेता हूं जिसे प्रो. के.टी. शाह ने पेश किया है और जिसमें कहा गया है कि खण्ड (4) के अन्त में "by both Houses of Parliament" ये शब्द जोड़ दिये जायें। वह चाहते हैं कि जब एक आगार भारतीय संघ के प्रधान के विरुद्ध दोषारोप का पुरोधान करे तो मुकद्दमे की

सुनवाई दोनों ही आगार करें। मैं अपने तर्कों को दुहराना नहीं चाहता। वह यह चाहते हैं कि अभियोक्ता और न्यायाधीश दोनों ही मिलकर उस मामले में निर्णय दें। चूंकि अभियोक्ता न्यायाधीश नहीं हो सकता, इसलिए मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

अब आता है संशोधन नं० 1187, जिसे माननीय मित्र मि. काजी सैयद करीमुद्दीन ने पेश किया है। इस अनुच्छेद में कहीं भी इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि प्रधान के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव पास हो जाने पर जब वह प्रधान-पद से निष्कासित हो जायेगा, तो उसका क्या होगा। होना यह चाहिए कि निष्कासित होने के बाद वह किसी भी पद के लिये पात्र न रह जाये। किन्तु इस बात को हमें विधान में भी लिपिबद्ध कर देना होगा। मेरी समझ से मि. करीमुद्दीन का संशोधन सर्वथा समुचित है और इसलिए मैं इसका समर्थन करता हूं। निष्कासित किये जाने पर प्रधान पर यह निर्योग्यता लागू हो जायेगी कि वह भारतीय संघ के अधीनवर्ती किसी सम्मान या विश्वास अथवा लाभ के पद को न धारण कर सकेगा। इसमें शक नहीं कि ऐसा ही होगा, पर मैं चाहता हूं कि विधान में यह बात रख दी जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में जो कतिपय संशोधन पेश किये गये हैं, उनमें से केवल दो को मैं स्वीकार कर सकता हूं। एक तो संशोधन नं० 1158 को, जिसे माननीय मित्र श्री गुप्ते ने पेश किया है, जिसमें कहा गया है कि प्रधान के प्राभियोग के सम्बन्ध में विचारार्थ जो प्रस्ताव आवे, उसके लिए 14 दिनों की पूर्व सूचना होनी चाहिए। दूसरा संशोधन है नं० 1160 का, जिसे माननीय मित्र श्री देव ने पेश किया है। मैं इसे भी श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा संशोधित रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार हूं। मेरा ख्याल है कि मूल अनुच्छेद में जो वह व्यवस्था है कि 30 सदस्यों के हस्ताक्षरों से आई हुई सूचना के बाद ही दोषारोप सम्बन्धी संकल्प पर विचार हो, इसमें 30 की संख्या पर्याप्त नहीं है। मेरा मत है कि संशोधन द्वारा जिस परिवर्तन का सुझाव दिया गया है, उससे व्यवस्था और उत्तम हो जायेगी और इसलिए मैं इसे मान लेता हूं।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

अब मैं दूसरे संशोधनों को लेता हूं। मुझे दु:ख है कि मैं इन्हें स्वीकार करने में असमर्थ हूं। पर इनके सम्बन्ध में उत्तर देना मेरे लिए जरूरी है। जिन संशोधनों के सम्बन्ध में जवाब देना जरूरी है वह है नं० 1151, 1171, 1173, 1176 और 1186 के, जिनको प्रो. के.टी. शाह ने पेश किया है। प्रो. के.टी. शाह ने जो संशोधन पेश किये हैं, श्रीमान्, वह दो बातों के सम्बन्ध में हैं। एक तो प्राभियोग-सम्बन्धी योजना के सम्बन्ध में, जो कि विधान के मसौदे में रखी गई है, और दूसरे इस सम्बन्ध में, कि दोषारोप का अनुसंधान करने वाले आगार के सामने उपस्थित होने का तथा वकील के जरिये अपना बचाव करने का प्रधान को अधिकार है। दूसरी बात के सम्बन्ध में प्रो. के.टी. शाह का जो संशोधन है, मैं नहीं समझता कि उसकी कोई भी जरूरत है। प्रो. के.टी. शाह ने इस सम्बन्ध में जिस अनुच्छेद का उल्लेख किया है वह है शायद 50(3) या 50(4)। उसमें न केवल दोषारोप का अनुसंधान करने वाले आगार के सामने उपस्थित होने का बल्कि वकील के द्वारा अपना प्रतिनिधान कराने का प्रधान को अधिकार दिया गया है। प्रो. के.टी. शाह ने इतना ही किया है कि इस अनुच्छेद के खण्ड (3) के कुछ अंश को अलग करके खण्ड (3)(क) के रूप में रख दिया है ताकि यह एक अलग स्वतंत्र खण्ड हो जाये। मैं नहीं समझता, जो उपाय उन्होंने अपनाया है, उसकी कोई भी जरूरत है।

अब मैं दूसरी बात को लेता हूं, यानी मसौदे में दी हुई प्राभियोग-सम्बन्धी योजना में उन्होंने जो त्रुटियां बताई हैं उनको लेता हूं। पेश्तर इसके कि इस सम्बन्ध में जवाब यह अच्छा होगा कि मसौदे में प्राभियोग-सम्बन्धी योजना के बारे में जो प्रावधान रखे गये हैं, मैं उनकी एक स्पष्ट रूपरेखा सभा के सामने उपस्थित कर दूं। जो कोई भी इस अनुच्छेद का विश्लेषण करेगा, उसे ज्ञात हो जायगा कि इसमें चार बातें रखी गई हैं। पहली बात तो यह कि प्राभियोग-सम्बन्धी प्रस्ताव किसी आगार में—लोक-सभा में या राज्य-परिषद् में—उपस्थित किया जा सकता है। दूसरी बात यह कि ऐसे प्रस्ताव के लिए एक अपेक्षित संख्यक सदस्यों का समर्थन आवश्यक है। तीसरी बात यह कि जिस आगार ने दोषारोप सम्बन्धी

प्रस्ताव को पास किया है, उसी आगार को दोषारोप के अनुसंधान का अधिकार न होगा। और चौथी बात यह कि जिस आगार ने दोषारोप का अनुसंधान किया है, वह अगर प्रधान को दोषी पाता है तो दोष को सिद्ध घोषित करने वाला प्रस्ताव वहां दो तिहाई के बहुमत से स्वीकृत होना चाहिए।

ये चार बातें हैं, जो इस अनुच्छेद विशेष में रखी गई हैं। प्रो. शाह का कहना यह है कि प्रधान के प्राभियोग के सम्बन्ध में उत्तर-आगार को सर्वथा मौन रहना चाहिए। प्रधान पर प्राभियोग लगाने का, दोषारोप के अनुसंधान का तथा उस सम्बन्ध में फैसला देने का अधिकार एकमात्र लोक-सभा को ही प्राप्त होना चाहिए। मैं उन कारणों को समझने में सर्वथा असमर्थ हूं जिनके आधार पर प्रो. शाह का यह ख्याल है कि अवर आगार यानी लोक-सभा को कुछ खास हक है कि इन सब बातों की शक्ति उसी में सन्निहित रहे। आखिर प्रधान पर जो प्राभियोग लगाया या जो मुकद्दमा चलाया जायेगा, वह उसी उद्देश्य से तो कि जो भी व्यक्ति प्रधान पद पर आसीन हो वह उस पद की मर्यादा को, उसके गौरव तथा सम्मान को सदा सुरक्षित रखे। स्पष्ट है कि उस पद की मर्यादा, उसका गौरव और सम्मान एक ऐसी बात नहीं है कि जिसका सम्बन्ध केवल लोक-सभा से ही हो। उत्तर आगार को भी इन सब बातों से उतना ही सम्बन्ध है जितना कि लोक-सभा को। जैसा मैं कह चुका हूं, उत्तर आगार को भी इस बात की कि प्रधान विधान के प्रावधानों के अनुसार चले, उतनी ही फ़िक्र होगी, जितनी कि लोक-सभा को। इसलिए मैं नहीं समझ पाता कि क्यों उत्तर आगार को भी यह अधिकार न दिया जाये कि प्रधान के विरुद्ध अगर प्रतिकूल आचरण करने का कोई प्राभियोग लगाया जाये, तो वह भी उसका अनुसंधान कर सकता है और मुकद्दमे की सुनवाई कर सकता है। इस अधिकार से उसे ही क्यों वंचित किया जाये? उसे भी तो आखिर इन बातों से उतना ही सम्बन्ध है जितना कि लोक-सभा को है। अपने मन्तव्य के ठीक होने का प्रो. के.टी. शाह को इतना विश्वास था कि अपना पक्ष प्रतिपादन करते हुए आपने यहां तक कह दिया कि उनके इस संशोधन का विरोध करने का साहस केवल ऐसे ही लोग कर सकते हैं, जो गुलामों की तरह दूसरे विधानों की नकल करते आये हैं। मसौदा-समिति

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

पर आपने जो आक्षेप किया है, मैं उसकी चिन्ता नहीं करता। जैसा कि मैं अपने आरम्भिक भाषण में कह चुका हूं। मसौदा-समिति ने जिस विधान में यह देखा है कि उसके प्रावधान हम लोगों के द्वारा बनाई जाने वाली व्यवस्थाओं से अच्छे हैं, उसने देश-हित के ख्याल से उन प्रावधानों को तुरन्त अपना लिया है। ऐसा करने में वह कभी भी डरी नहीं। प्रो. के.टी. शाह शायद यह भूल जाते हैं कि यहां अगर कोई भी ऐसा व्यक्ति है, जहां तक कि मैं देख पाता हूं, जिसने गुलामों की तरह अमेरिकन विधान की ही नकल करने की आदत डाल रखी है तो वह व्यक्ति मेरे विचार से सिवाय प्रो. शाह के और कोई नहीं है। (*हंसी*) मेरा ख्याल है कि अमेरिकन विधान में अधिशासन-सम्बन्धी जो योजना है ठीक उसी योजना को मय कामा और फुलस्टाप के प्रो. के.टी. शाह ने उठा लिया था और उसी का यहां संशोधन रखा था, और जब मूल बात में उनको सफलता न मिली तो अमेरिकन विधान के प्रति उनकी आस्था और भी बढ़ गई, जिसके फलस्वरूप वह ऐसे संशोधनों पर जोर देते आ रहे हैं, जिन्हें वह खुद भी जानते हैं कि, वह आनुषंगिक हैं और उनमें सार की कोई बात नहीं है। इसलिए मसौदा-समिति पर जो आक्षेप उन्होंने किया है उसकी मुझे चिन्ता नहीं है।

दूसरी बात प्रो. शाह विधान में रखना चाहते हैं, वह यह है कि प्रधान के विरुद्ध लगाये गये दोषारोप के सम्बन्ध में दोनों ही आगारों का मत लिया जाना चाहिए। मसौदे में जो मुख्य योजना है, उसे मंजूर करना आपने स्पष्टतः तय कर लिया है। आप चाहते यह हैं कि दोषारोप का अनुसंधान करने वाला आगार अनुसंधान के फलस्वरूप अगर किसी निर्णय पर पहुंच जाय तो उस निर्णय पर तब तक अमल न होना चाहिए जब तक कि दूसरा आगार भी उसे स्वीकार न कर ले। उदाहरण के तौर पर आपसे पूछता हूं कि जूरी अगर किसी मामले का अनुसंधान करके किसी निर्णय पर पहुंचते हैं तो क्यों वह निर्णय फिर किसी दूसरे जूरी के सामने रखा जाये? यहां अनुसंधान के फलस्वरूप निर्णय देने वाला आगार जूरी की ही स्थिति में है और मेरी समझ में नहीं आता कि उसके निर्णय को क्यों फिर दूसरे आगार के सामने रखा जाये। ऐसे सिद्धान्त या ऐसे उदाहरण की बात मैंने आज तक नहीं सुनी। मान लीजिए कि दूसरा आगार उस निर्णय को नहीं स्वीकार करता है जिसे कि अनुसंधान करने वाले आगार ने किया है। ऐसी सूरत में क्या किया जायेगा? स्पष्ट है कि ऐसी सूरत में गतिरोध की स्थिति पैदा हो

जायगी। मेरी समझ से प्रो. के.टी. शाह ने इस गतिरोध का कोई उपाय नहीं बतलाया है। इन कारणों से प्रो. के.टी. शाह के किसी भी संशोधन को मानने में असमर्थ हूं।

एक दूसरा है, जिसके सम्बन्ध में मुझे जवाब देना होगा क्योंकि यह प्रो. के. टी. शाह के संशोधन से मिलता-जुलता है। यह है संशोधन नं० 1178 जिसे माननीय मित्र मि. ताहिर ने पेश किया है। उनका कहना है कि विधान के अतिक्रमण सम्बन्धी दोष को सिद्ध घोषित करने वाला जो प्रस्ताव हो, उसके लिए यह नहीं होना चाहिए कि वह दो-तिहाई के बहुमत से पास हो। उनका ख्याल है कि साधारण बहुमत ही इसके लिए पर्याप्त है। मैं समझता हूं कि माननीय मित्र मि. ताहिर ने उस तथ्य पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है कि प्राभियोग सम्बन्धी प्रस्ताव में और अविश्वास के प्रस्ताव में बड़ा अन्तर है। अविश्वास के प्रस्ताव में कोई लज्जा या नैतिक नीचता का प्रश्न नहीं सन्निहित रहता। उसका केवल इतना ही अर्थ होता है कि पार्टी अथवा सभा हकूमत की नीति को नहीं मानती है। अविश्वास के प्रस्ताव में, इसके अतिरिक्त और कोई निन्दा की बात नहीं है। किन्तु प्राभियोग सम्बन्धी प्रस्ताव का आधार ही बिल्कुल भिन्न होता है। यदि प्राभियोग सम्बन्धी प्रस्ताव के आधार पर कोई व्यक्ति दोषी घोषित किया जाता है तो इससे उसका सार्वजनिक जीवन ही प्रायः खत्म हो जाता है। इन दोनों में इतना बड़ा अन्तर है। इसलिए मेरी समझ में वांछनीय यही है कि जिस प्रस्ताव का परिणाम इतना गम्भीर होता है उसको केवल साधारण बहुमत द्वारा स्वीकृत होने की व्यवस्था न की जाये। इसी अन्तर के कारण ही मसौदा-समिति ने यह प्रावधान किया है कि दोषी घोषित करने वाला प्रस्ताव दो-तिहाई के बहुमत से पास होना चाहिए।

अब, श्रीमान्, मैं माननीय मित्र काजी सैयद करीमुद्दीन के संशोधन को लेता हूं। उनके संशोधन नं० 1152 पर मैं पहले विचार करता हूं। इस संशोधन के द्वारा वह यह चाहते हैं कि "violation of the Constitution" (विधान के अतिक्रमण) शब्दों के बाद "treason, bribery and other high crimes and misdemeanours" (राजद्रोह, घूस तथा अन्य गम्भीर अपराधों और दुष्कृत्यों) ये शब्द रखे जायें। "विधान का अतिक्रमण" यह पदसंहति बहुत ही व्यापक है और इसमें हम राजद्रोह, घूस तथा अन्य गम्भीर अपराधों और दुष्कृत्यों को शामिल कर सकते हैं। राजद्रोह करना, अवश्य ही विधान का अतिक्रमण करना है। घूस लेना भी विधान का अतिक्रमण करना है क्योंकि इससे वह शपथ

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

भंग होती है जो प्रधान द्वारा ली जाती है। जहां तक अन्य अपराधों का सम्बन्ध है सदस्यों को मालूम होना चाहिए कि ऐसे अपराधों के सम्बन्ध में प्रधान के प्राभियोग के लिए एक और ही व्यवस्था की गई है। इसलिए मेरी राय में इन शब्दों को यहां जोड़ना अनावश्यक है। 'विधान का अतिक्रमण' इस पदसंहति के अन्दर ये सभी बातें आ जाती हैं।

उनका दूसरा संशोधन है नं० 1170 का, जिसके द्वारा वह यह प्रावधान करना चाहते हैं, दोषारोप के अनुसंधान की कार्यवाही प्रधान न्यायाधीश की अध्यक्षता में हो। उनके इस मन्तव्य से मेरा कोई विरोध नहीं है कि प्राभियोग-सम्बन्धी मामले के अनुसंधान का काम जिस आगार को भी करना पड़े, अनुसंधान सम्बन्धी कार्यवाही का संचालन पूर्णत: अदालती ढंग पर होना चाहिए और दण्ड-प्रणाली-संहिता तथा साक्ष्य-अधिनियम में दिये गये प्रावधानों का इस सम्बन्ध में पालन होना चाहिए। जैसा कि मैं कह चुका हूं मुझे उनके मन्तव्य से कोई विरोध नहीं है बल्कि मैं उनसे सहमत हूं। किन्तु इस सम्बन्ध में एक ही बात है जिस पर हमें विचार कर लेना चाहिए। क्या इस मसले को दोनों आगारों पर ही छोड़ दें कि वहीं उसके बारे में जाप्ते के कायदे बना लें या यह अच्छा होगा कि विधान में इन सभी बातों को स्पष्टत: लिपिबद्ध कर दिया जाये। माननीय मित्र मि. करीमुद्दीन देखेंगे कि प्रस्तुत अनुच्छेद के उपखण्ड (3) में यह प्रावधान किया गया है कि एक आगार दोषारोप का अनुसंधान करेगा। इसलिए स्पष्ट है कि जाप्ते के नियम बनाने में दोनों ही आगारों को उसमें एक धारा प्राभियोग सम्बन्धी प्रणाली के सम्बन्ध में रखना ही होगा। यह इसलिए करना होगा क्योंकि हो सकता है किसी समय दोषारोप का पुरोधान उत्तर आगार करे और लोक-सभा उसका अनुसंधान करे और कभी इसके विपरीत हो। इसलिए दोनों ही आगारों को प्राभियोग संबंधी मामले के लिए एक धारा बनानी ही होगी, जिसके जाप्ते के नियमों का उल्लेख होगा। ऐसी हालत में विधान-मण्डल जाप्ते के नियमों में यह बात रख सकता है कि जिस आगार में भी अनुसंधान की कार्यवाही होगी, वह प्रधान न्यायाधीश की अध्यक्षता में होगी अथवा अन्य किसी न्यायालय संबंधी प्राधिकारी की अध्यक्षता में होगी। इसलिए मेरी समझ से मि. करीमुद्दीन साहब

का मतलब पूरा हो जायेगा, अगर दोनों आगारों के लिए जाप्ते के जो नियम बने उसमें वह बात आ जाय जिसका मैंने यहां उल्लेख किया है। इसलिए इस प्रावधान की कोई जरूरत नहीं रह जाती है।

अब मैं उनके तीसरे संशोधन को लेता हूं, जो 1187 नं० का है। वह चाहते हैं कि विधान में निर्योग्यताओं का उल्लेख हो जाना चाहिए, जो प्रधान के विरुद्ध लगाये गये दोषारोप के सिद्ध होने पर ही उन पर लागू होंगी। जो भाषा उन्होंने अपने संशोधन में व्यवहृत की है वह मैं समझता हूं कि उन्होंने अमेरिकन विधान से ली है। इस सम्बन्ध में मेरा मत यह है। जहां तक कि विधान-मण्डल की सदस्यता का सवाल है, जैसा कि मैं पहले भी एक अवसर पर बता चुका हूं, यह बात अनुच्छेद 83 के अन्तर्गत आ जाती है जिसमें विधान-मण्डल संबंधी सदस्यता की निर्योग्यताएं लिपिबद्ध की गई हैं। जैसा कि मैंने उस मौके पर कहा था, संसद् के लिए यह सर्वथा शक्य होगा कि जब वह अतिरिक्त निर्योग्यताओं को रखने लगे तो उसमें वह उस आशय का एक खण्ड रख दे कि जब विधान के अनुसार कोई व्यक्ति प्राभियुक्त होगा तो वह विधान-मण्डल का सदस्य होने का पात्र न रह जायेगा। इसलिए अनुच्छेद 83 के आधार पर ऐसे प्रधान को जो प्राभियुक्त हो चुका हो, विधान-मण्डल की सदस्यता से अलग किया जा सकता है।

अब केवल एक ही बात रह जाती है जिसके संबंध में मुझे जवाब देना है और वह बात यह है कि प्राभियुक्त प्रधान को पुनः किसी भी पद पर न नियुक्त किया जाय। मेरा ख्याल है कि इस सम्बन्ध में हमें कई बातों पर ख्याल करना होगा। यह सच है कि विधान के प्रावधानों में यह बात नहीं लाई गई है। किन्तु मेरा ख्याल है कि संसद् के लिए यह बिल्कुल शक्य होगा कि जब वह 'सिविल सर्वेन्ट्स एक्ट' बनाने लगे, जो कि निश्चय ही हमारे भावी संसद् को बनाना पड़ेगा, तो सरकारी नौकरों के लिए, उनके परिलाभ एवं नौकरी सम्बन्धी अन्य बातों के सम्बन्ध में निर्योग्यताओं को वह लिपिबद्ध कर दे। स्पष्ट है कि संसद् यह कानून बना सकती है कि जो भी व्यक्ति विधान के अनुसार प्राभियुक्त होगा वह फिर किसी भी पद पर नियुक्त होने का पात्र न रह जायेगा, वह पद चाहे

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

राजदूत का पद हो या अधिशासन के किसी विभाग में कोई पद हो। इसलिए मेरा ख्याल है कि यह बात संसद द्वारा निर्मित कानून से भी पूरी की जा सकती है।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मैं यह समझूं कि डॉ. अम्बेडकर निजी तौर पर इस संशोधन के पक्ष में हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** हां। मेरी समझ से तो इस संशोधन में आपत्ति की कोई बात नहीं है सिवाय इस तथ्य के संशोधन का अभिप्राय दूसरे तरीकों से भी पूरा किया जा सकता है।

अब, श्रीमान्, जो दूसरा सवाल आता है वह यह है, क्या यह जरूरी है कि इन निर्योग्यताओं के लिए विधान में ही खास तौर पर लिखित रूप में प्रावधान किया जाये? मेरी समझ से ऐसा करना दो कारणों से अनावश्यक है। पहला कारण तो यह है कि कोई भी व्यक्ति, जिस पर सार्वजनिक रूप में मुकद्दमा चलाया गया हो, जिसे जन-शत्रु घोषित करके लज्जित किया गया हो, वह कभी भी किसी भी पद के लिए अभ्यर्थी बनने का साहस न करेगा। इस बात को ध्यान में रखते हुये, मेरी समझ से तो इस बात की सम्भावना ही नहीं रह जाती कि वह पुनः किसी पद के लिए अभ्यर्थी होगा। दूसरा कारण यह है। क्या इस देश के लोग सार्वजनिक कर्त्तव्य ज्ञान से इतना शून्य होंगे कि वह ऐसे व्यक्ति को, अगर वह खड़ा ही हो जाये तो पुनः चुनेंगे? यह कहना कि विधान में इस आशय का एक स्पष्ट प्रावधान रखना जरूरी है, क्योंकि संभव है, यहां के लोग ऐसे व्यक्तियों को चुन दें जो अपराधी हों, जिन्होंने विश्वास-भंग किया हो या सरकारी कर्त्तव्य का पालन न करके जनता के प्रति विश्वासघात किया हो, मेरी समझ से इस देश के निवासियों पर एक बड़ा ही लज्जापद कलंक लागू करना है। मैं समझता हूं कि ये कमजोरियां सभी समाजों में हैं और उनका विज्ञापन करने से इनको विधान में स्थान देने से कोई लाभ नहीं होगा। इसलिए मेरी समझ से, ये संशोधन कितने ही स्तुत्य क्यों न हों, इनको विधान में रखना अनावश्यक है।

***उपाध्यक्षः** उपस्थित संशोधनों पर अब मत लिया जायेगा।

संशोधन नं० 1152 जो मि. काजी करीमुद्दीन के नाम में है। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (1) में 'for violation of the Constitution' (विधान के अतिक्रमण) शब्दों के बाद 'treason, bribery or

other high crimes and misdemeanour (राजद्रोह, घूस या अन्य गम्भीर अपराध और दुराचार) शब्द रखे जायें।

*संशोधन नामंजूर हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1151 जो प्रो. के.टी. शाह के नाम में हैं, उसका प्रथम भाग लिया जाता है।

प्रश्न यह है कि:

†"अनुच्छेद 50 के खण्ड (1) में 'is to be impeached for' शब्दों के बाद 'treason or' शब्द जोड़ दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1151 जो प्रो. के.टी. शाह के नाम में है। अब इसका दूसरा भाग लिया जाता है।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (1) में 'either House (कोई आगार) शब्दों की जगह 'the People's House' (लोक-सभा) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा संशोधित संशोधन नं० 1160 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में 'thirty members' शब्दों की जगह 'one-fourth of the total number of members'(उस आगार के कुल सदस्यों की एक चौथाई से.....) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

---

†"अनुच्छेद 50 (1) का संशोधित रूप होगा:

घूस या संविधान के अतिक्रमण के लिए इत्यादि इत्यादि, ....."

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में 'thirty members' शब्दों की जगह 'hundred members' शब्द रखे जायें।"

*संशोधन नामंजूर हुआ।*

†***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में 'after a notice' (ऐसी····सूचना) शब्दों की जगह 'after at least 14 days notice' (ऐसी.....कम से कम 14 दिनों की सूचना) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकृत हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में 'moved after a' (ऐसी....सूचना) शब्दों की जगह 'moved after 14') (ऐसी····14 दिनों की सूचना) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन नामंजूर हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (2) के उपखण्ड (ख) में 'supported by' शब्दों की जगह 'passed by a majority of' शब्द रखे जायें।"

*संशोधन मंजूर हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (2) के उपखण्ड (ख) की जगह निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'(ख) इस संकल्प का समर्थन, उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत ने न किया हो।'"

*संशोधन अस्वीकृत हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1168 पर मैं मत नहीं लेने जा रहा हूं क्योंकि यह नं० 1167 से बिल्कुल मिलता-जुलता है। 1167 के सम्बन्ध में मत लिया जा चुका है।

---

†अनुच्छेद का हिन्दी रूप देखने से संशोधन स्पष्ट हो जायेगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (2) के उपखण्ड (ख) के बाद निम्नलिखित नया उपखण्ड जोड़ा जाये:

'(ग) बैठकों की अध्यक्षता सर्वोच्च न्यायालय का प्रधान न्यायाधीश करेगा और साक्ष्य की स्वीकृति के सम्बन्ध में उसका निर्णय अन्तिम होगा।'"

*संशोधन अस्वीकृत रहा।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (3) में 'either House' (किसी आगार) शब्दों के स्थान पर 'the People's House' (लोक-सभा) शब्द रखे जायें और 'or cause the charge to be investigated and the President shall have the right to appear and to be represented at such investigation' (या अनुसंधान करायेगा और इस अनुसंधान में उपस्थित होने का तथा अपना प्रतिनिधान कराने का प्रधान को अधिकार होगा) ये शब्द रखे जायें।"

*संशोधन नामंजूर हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (3) में निम्नलिखित 'investigated' शब्द के बाद पूर्णविराम का चिन्ह रखा जायें।"

*संशोधन नामंजूर रहा।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (3) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ा जाये:

'(3-क) अनुसंधान में उपस्थित होने का तथा अपना प्रतिनिधान कराने का प्रधान को अधिकार होगा।'"

*संशोधन अस्वीकृत हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (4) में 'passed supported by' (.....समर्थित होकर पास हो जाता है) शब्दों की जगह 'passed by a majority of' (बहुमत द्वारा पास हो जाता है) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (4) में 'not less than two-thirds of the total membership of the House' (.....आगार के समस्त सदस्यों की दो तिहाई से अन्यून संख्या द्वारा) शब्दों की जगह 'a majority of the members present and voting' (आगार में उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत रहा।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (4) में 'such resolution shall' (वह संकल्प) शब्दों के बाद 'be placed before the People's House and if adopted by the latter, shall' (लोक-सभा के सामने रखा जायगा और यदि उस सभा द्वारा स्वीकृत हुआ तो) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हुआ।*

**उपाध्यक्ष:** अब सवाल है कि संशोधन नं० 1185.....

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मेरे संशोधन के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर ने कोई जवाब नहीं दिया है, श्रीमान्।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं कह चुका हूं, श्रीमान्, कि मैं इसका विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (4) में 'date on which' (उसकी पारण तिथि से) शब्दों की जगह 'time when' (उसके पारण के समय से) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन नामंजूर रहा।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (4) के अन्त में 'by both Houses of Parliament' शब्द जोड़े जायें।"

*संशोधन नामंजूर रहा।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 के खण्ड (4) के अन्त में इतना जोड़ दिया जाये:

'and it shall operate as a disqualification to hold and enjoy any office of honour, trust or profit under the Indian Union.' "

(और इसका प्रभाव यह होगा कि भारतीय संघ के अधीनवर्ती किसी भी सम्मान, विश्वास या लाभ के पद के लिए वह निर्योग्य समझा जायेगा।)

*संशोधन अस्वीकृत रहा।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधित अनुच्छेद 50 को विधान का अंग समझा जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।*

*अनुच्छेद 50 को संशोधित रूप में विधान में शामिल किया गया।*

---

## अनुच्छेद 51

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 51 को लेते हैं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 51 को विधान का अंग माना जाये।"

[उपाध्यक्ष]

संशोधनों को हम एक-एक करके लेंगे। संशोधन नं० 1190 और 1191 एक ही आशय के हैं और इन पर एक ही साथ विचार किया जाएगा। नं० 1190 अब पेश किया जा सकता है।

(संशोधन नं० 1190 और 1191 पेश नहीं किये गये।)

नं० 1192 को उपस्थित किये जाने की अनुमति नहीं दी जाती है।

नं० 1193—इसका पहला विकल्प तथा नं० 1194 दोनों ही का आशय समान है और इन पर एक ही साथ विचार किया जायेगा। मैं नं० 1193—प्रथम विकल्प को उपस्थित करने की अनुमति दे सकता हूं। मि. मोहम्मद ताहिर आइये।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** मैं प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्, कि:

"अनुच्छेद 51 के खण्ड (2) में 'six months' (छ: मास) और 'full term of five years as provided in article 45 of this Constitution' (इस संविधान के अनुच्छेद 45 में प्रावहित पांच वर्ष की पूर्ण अवधि.....) शब्दों के स्थान पर क्रमश: 'three months' (तीन मास) और 'remaining term of five years in which the vacancy so occurs' (पांच वर्ष से बची हुई अवधि के लिए जिसके अन्दर कि इस तरह पद रिक्त होगा) शब्द रखे जायें।"

छ: मास और तीन मास की अवधि के संबंध में मुझे यही कहना है कि यह एक महत्त्वपूर्ण मसला है और जितनी ही जल्दी इसके संबंध में निर्णय हो जाये अच्छा है। छ: मास की अवधि इसके लिए बहुत ज्यादा है। इसलिए मैंने तीन महीने का सुझाव दिया है।

अब मैं दूसरी बात की ओर आता हूं। मेरे संशोधन के अनुसार यह होगा कि पांच वर्ष की कालावधि में जो बची हुई अवधि रहेगी। उसी तक नव निर्वाचित प्रधान अपने पद पर रहेगा। मान लीजिए कि प्रधान एक वर्ष तक अपने पद पर रहता है और उसके बाद निष्कासन या पदत्याग अथवा अन्य कारणों से उसका

स्थान रिक्त हो जाता है। अब जो नया प्रधान निर्वाचित होगा वह पांच वर्ष से बची हुई अवधि के लिए ही प्रधान का पद धारण करेगा। ऐसी व्यवस्था करने में मेरा अभिप्राय यह है कि प्रधान तथा संसद्, इन दोनों का कार्यकाल साथ-साथ चलता रहे, ताकि प्रत्येक पांच वर्ष के बाद जब नई संसद् बने, तो उसके साथ एक नया प्रधान भी आये और इस तरह एक शुद्धत नवीन वातावरण में कार्यारम्भ हो। अगर ऐसा नहीं होता है तो, मेरी समझ से कुछ कठिनाइयां पैदा हो जायेंगी। मान लीजिए, दो वर्ष के कार्यकाल के बाद प्रधान का स्थान रिक्त हो जाता है और उसकी जगह नया प्रधान निर्वाचित होकर आता है। अब मूल अनुच्छेद के अनुसार यह होगा कि नव-निर्वाचित प्रधान पांच वर्ष तक प्रधान-पद पर आसीन रहेगा अर्थात् नई संसद् के आ जाने के दो वर्ष बाद तक। इसमें दो कठिनाइयां आयेगी। मान लीजिए कि प्रधान एक दल विशेष का व्यक्ति है और नई संसद् में उस दल का बहुमत नहीं है। ऐसी स्थिति में पदारूढ़ प्रधान क्या करेगा? अवश्य ही कई कारणों से पद से अलग हो जाना पड़ेगा। या तो पदत्याग करेगा या बहुमत प्राप्त दल उसे अपने उद्देश्यों और लक्ष्यों के लिए अनुपयुक्त समझेगा।

और फिर मैं यह कहूंगा कि प्रधान जो कि संसद् के निर्वाचन के समय पदासीन रहेगा, अगर निर्वाचन के पश्चात् कुछ वर्षों तक वह पदासीन रहा तो यह स्वाभाविक है कि अधिकारारूढ़ होने के कारण वह अवश्य ही नवीन निर्वाचन पर अपना असर डालेगा। मेरी राय से यह गणतंत्रीय विचारधारा के सर्वथा विपरीत है कि कोई भी अधिशासी निर्वाचन में अपने प्रभाव का उपयोग करे। और फिर कठिनाई यह है कि इसे कोई रोक नहीं सकता है। कारण यह है कि अधिकारारूढ़ प्रधान स्वभावतः यह चाहेगा कि वह अधिकारारूढ़ बना रहे। सुतरां वह अपने सम्पूर्ण प्रभाव का उपयोग उसी उद्देश्य से करने लगेगा कि उसका दल शासनारूढ़ हो जाये। इसलिए मेरा यह कहना है कि औचित्य की दृष्टि से वांछनीय यही है कि प्रधान का कार्यकाल तथा संसद् का कार्यकाल साथ-साथ चले और दोनों की अवधि एक हो। इन कतिपय शब्दों के साथ मैं सभा के समक्ष, स्वीकारार्थ अपना यह संशोधन उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्षः** अपना विकल्प वाला संशोधन भी आप पेश कर सकते हैं।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** मेरा, दूसरा वैकल्पिक संशोधन यह है:

"कि अनुच्छेद 51 के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये:

' 51 यदि मृत्यु, पदत्याग अथवा निष्कासन, अथवा अन्य कारण से प्रधान का पद रिक्त हो जाये तो उसकी अवधि के अवशिष्ट काल के लिए, जिसमें कि उस प्रकार पद रिक्त होगा, उप-प्रधान प्रधान के रूप में कार्य करेगा।'"

इस संशोधन को पेश करने में मुझे यह कहना है, श्रीमान्, कि जब भी प्रधान या उप-प्रधान के निर्वाचन का प्रश्न देश या संसद् के सामने आयेगा तो यह स्वाभाविक है कि संसद् और समूचा देश यही सोचेगा कि देश के सर्वोत्तम दो व्यक्तियों को प्रधान और उप-प्रधान पद के लिए चुना जाये। दो सर्वोत्तम व्यक्ति ही इन पदों के लिए चुने जायेंगे। उसके बाद अगर प्रधान का पद रिक्त हो जाता है तो कोई कारण नहीं है कि एक तीसरे व्यक्ति को इसके लिए चुना जाये और दूसरा सर्वोत्तम व्यक्ति जो पहले से ही उप-प्रधान चुना जा चुका है, जो उस पर रह चुका है और जिसे उस पद का कुछ दिनों का अनुभव मिल चुका है, उसे क्यों न प्रधान पद पर आसीन किया जाये। इसलिए मेरी राय में उचित यही है कि प्रधान का पद खाली होने पर, उसके शेष कार्यकाल के लिए उसकी जगह पर उप-प्रधान ही आये।

इन चन्द शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन स्वीकृति के लिए सभा के सामने रखता हूं। आशा है, सभा इन संशोधनों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेगी और इनको स्वीकार करेगी।

***उपाध्यक्षः** अब आता है संशोधन नं० 1198 जो प्रो. के.टी. शाह के नाम में है।

***प्रो. के.टी. शाहः** मेरा प्रस्ताव यह है, श्रीमान्, कि:

"अनुच्छेद 51 के खण्ड (2) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ा जाये:

'(3) During the interval between the date when a vacancy in the office of the President occurs, and the date

when new election to that office is completed, and the name of the new President announced, the Vice-President, provided for in the next following article, shall hold the office of and act as President of the Union.' "

[(3) जिस तिथि पर प्रधान का पद रिक्त होगा और जिस तिथि पर उस पद के लिए नया निर्वाचन पूरा हो जायेगा और नवीन प्रधान का नाम घोषित हो जायगा, इन दोनों के अन्तर्वर्ती काल में उप-प्रधान, जिसका कि अलग दूसरे अनुच्छेद में प्रावधान किया गया है, संघ के प्रधान के पद पर आसीन रहेगा और प्रधान के रूप में कार्य करेगा।]

यह केवल एक आनुषंगिक संशोधन है। प्रधान के निष्कासन, पदत्याग या उसकी मृत्युकाल से लेकर उसके उत्तराधिकारी चुने जाने तक जो व्यवधान पड़ेगा उसकी पूर्ति की इसमें व्यवस्था की गई है। प्रधान की मृत्यु या निष्कासन के समय से लेकर उसके उत्तराधिकारी चुने जाने तक की मध्यवर्ती अवधि के लिए—वह अवधि चाहे तीन मास की हो या छः मास की हो या जितनी भी हो—कोई न कोई प्रबन्ध तो हमें करना ही होगा। कम से कम मेरा यह संशोधन तो अवश्य एक ऐसा उदाहरण है, जिसे मैं अमेरिकन विधान के अननुकरण का प्रमाण न दे सकता हूं। अमेरिकन विधान में तो यह है कि ऐसी अवस्था में उप-प्रधान प्रधान का पद ले लेता है और इस तरह वहां नवीन निर्वाचन की नौबत ही नहीं आती। यहां अपने विधान में हमने न केवल नये निर्वाचन पर ही जोर दिया है बल्कि वह व्यवस्था की है कि नव निर्वाचित प्रधान न केवल पूर्ववर्ती प्रधान के कार्यकाल की अवशिष्ट अवधि के लिए ही प्रधान होगा, बल्कि वह पांच साल की पूर्ण अवधि के लिए प्रधान रहेगा। मसौदा-समिति के अध्यक्ष यदि मेरे संशोधन के मूलगत सिद्धान्त पर तथा उसके शब्दों पर विचार करें तो वह देखेंगे कि मेरे संशोधनों में अमेरिकन विधान का उतना अनुकरण नहीं किया गया है, जितना कि खुद उन्होंने अपने मसौदे में किया है। हां, हम लोगों में यह अन्तर जरूर है कि मेरी 'आस्था' जैसा कि वह कहते हैं केवल अमेरिकन विधान के प्रति है, पर उनकी आस्था दुनिया के कितने ही विधानों के प्रति है और उन सभी से उन्होंने कुछ न कुछ अवश्य ही नकल कर रखा है।

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

अस्तु इन बातों से हमारी इस आवश्यकता पर कोई असर नहीं पड़ता कि मध्यवर्ती काल के लिए कुछ न कुछ व्यवस्था होनी ही चाहिए। जहां तक मैं देखता हूं, विधान में इस मध्यवर्ती काल के लिए, जब तक कि प्रधान का पद रिक्त रह सकता है, कोई संतोषजनक प्रबन्ध नहीं किया गया है। मेरे संशोधन में इसी आवश्यकता की व्यवस्था की गई है और आशा है, सभा इसे स्वीकार करेगी।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं० 1195, 1196 तथा 1197 केवल शाब्दिक मात्र हैं, इसलिये इनको पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती है। डॉ. अम्बेडकर, इन संशोधनों के संबंध में अब आप अपना मत दीजिए।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे खेद है, श्रीमान्, कि प्रो. के.टी. शाह के संशोधन को स्वीकार करने में मैं असमर्थ हूं। अनुच्छेद 54 (1) में उनके संशोधन की सभी बातें आ जाती हैं। जो संशोधन उन्होंने पेश किया है, उसमें और अनुच्छेद 54 के खण्ड (1) में, मुझे कोई अन्तर नहीं दिखाई देता। मेरा ख्याल है कि अगर वह इस अनुच्छेद को देखें तो यह बात उनकी समझ में आ जायेगी कि उनके संशोधन की कोई जरूरत नहीं रह जाती है।

अन्य संशोधनों में तथा विधान के प्रावधान में एकमात्र अन्तर इतना ही है कि संशोधनों में यह कहा गया है कि निष्कासन आदि के फलस्वरूप निर्वाचन होने पर जो नवीन प्रधान आयेगा वह अपने पूर्वाधिकारी की अवशिष्ट कालावधि के लिए उस पद पर रहेगा, जब कि मसौदे में यह प्रावधान किया गया है कि प्रधान के पद-त्याग अथवा मृत्यु आदि के फलस्वरूप जो नवीन प्रधान आयेगा, वह विधान द्वारा प्रावहित पूर्ण अवधि के लिए प्रधान पद पर आसीन रहेगा। मैं तो कोई कारण नहीं देख पाता कि अगर कोई व्यक्ति किसी पद के लिए चुना जाता है तो उसके कार्यकाल की अवधि क्यों न वही पूर्ण अवधि रहे, जो विधान में उस पद के लिये प्रावहित है और क्यों उसकी कालावधि उसके पूर्वाधिकारी की अवशिष्ट अवधि तक ही सीमित की जाये। इसलिए इस संशोधन के लिए मुझे तो कोई औचित्य नहीं दिखाई देता।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन नं० 1193 के प्रथम विकल्प पर मत लेता हूं जिसे मि. मोहम्मद ताहिर ने पेश किया है।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 51 के खण्ड (2) में 'six months' (छ: मास) और 'full term of five years as provided in article 45 of this Constitution' (इस संविधान के अनुच्छेद 45 में प्रावहित पांच वर्ष की पूर्ण अवधि.....) शब्दों के स्थान पर क्रमश: 'three months' (तीन मास) तथा 'remaining term of five years in which the vacancy so occurs' (पांच वर्ष से बची हुई अवधि के लिए जिसके अन्दर कि इस तरह पद रिक्त होगा) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार नहीं हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1194 जो प्रो. के.टी. शाह के नाम में है।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 51 के खण्ड (2) में 'hold office for the full term of five years' (पांच वर्ष की पूर्ण कालावधि के लिए पद-धारण करेगा) शब्दों की जगह 'hold office for the balance of term of five years' (पांच वर्ष से बची हुई कालावधि के लिए पद-धारण करेगा) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत रहा।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1198—दूसरा विकल्प जो मि. मोहम्मद ताहिर के नाम में है।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 51 के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'51. यदि मृत्यु, पदत्याग अथवा निष्कासन अथवा अन्य कारणों से प्रधान का पद रिक्त हो जाये तो उसकी अवधि के अवशिष्ट काल के लिए, जिसमें कि इस प्रकार पद रिक्त होगा, उप-प्रधान प्रधान के रूप में कार्य करेगा।'"

*संशोधन अस्वीकृत हुआ।*

***उपाध्यक्षः** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 51 विधान का अंग माना जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।*

*अनुच्छेद 51 को विधान में शामिल किया गया।*

---

## नवीन अनुच्छेद 51-क

***उपाध्यक्षः** अब हम संशोधन नं० 1199 पर आते हैं जो प्रो. के.टी. शाह के नाम में है।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** श्रीमान्, क्या मुझे संशोधन के दूसरे हिस्से को पेश करने की आप अनुमति दे रहे हैं, जिसमें प्रधान के पेंशन (उत्तर वेतन) का जिक्र है?

***उपाध्यक्षः** प्रधान के पेंशन के प्रश्न पर तो शायद आप किसी पहले के संशोधन में विचार कर चुके हैं।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** हां, श्रीमान्, इसीलिये तो मैंने यह पूछा।

***उपाध्यक्षः** तब दूसरे हिस्से को छोड़ दीजिए।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** तो मैं इस संशोधन को पेश न करूंगा।

---

## अनुच्छेद 52

***उपाध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 52 को लेते हैं।

मैं देखता हूं कि इस संशोधन में एक ऐसे मसले की चर्चा की गई है जिसका सम्बन्ध अनुच्छेद 1 से है। मैं विश्वास करता हूं कि अगर इसी तरह का कोई परिवर्तन अनुच्छेद 1 में किया जाता है तो मसौदा-समिति स्वयं ही तीसरी, आवृत्ति (reading) में तदनुसार परिवर्तन कर देगी। इस विश्वास के आधार पर मैं इसे पेश करने की अनुमति नहीं देता हूं। श्री कामत, आप यह मानने को तैयार हैं तो?

***श्री एच.वी. कामतः** मैं इस संशोधन को पेश नहीं करूंगा, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** तो मैं इस पर मत ले सकता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 52 को विधान का अंग माना जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।*

*अनुच्छेद 52 विधान में शामिल किया गया।*

---

## अनुच्छेद 53

***उपाध्यक्षः** अब हम लेते हैं अनुच्छेद 53 को।

संशोधन नं० 1201 को पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती है क्योंकि इसका निषेधात्मक प्रभाव पड़ता है। संशोधन नं० 1202 तथा 1203 समान आशय के प्रतीत होते हैं, इसलिए 1202 को उपस्थित किये जाने की अनुमति देता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्, कि:

"अनुच्छेद 53 में 'or position of emolument' (परिलाभ का पद अथवा स्थिति) शब्दों की जगह 'of profit' (लाभ का पद) शब्द रखे जायें।"

***उपाध्यक्षः** अब आता है संशोधन नं० 1204 जो मि. मोहम्मद ताहिर के नाम में है।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** मैं इसे पेश नहीं कर रहा हूं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं० 1205 जो डॉक्टर अम्बेडकर के नाम में है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरा प्रस्ताव है कि:

"अनुच्छेद 53 के परादिक में इतना और जोड़ दिया जाये:

'और ऐसे वेतन या अधिदेय का अधिकारी न होगा जो इस संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार राज्य-परिषद् के सभापति को देय हो।'"

इस प्रावधान का अभिप्राय यह है कि दुतरफा लाभ वह न उठा सके।

***उपाध्यक्ष:** मि. नज़ीरुद्दीन ने एक संशोधन भेजा है जिसकी संख्या है 33 । यह केवल शाब्दिक है इसलिए इसे पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती है।

अब मैं इन संशोधनों पर मत लेता हूं। इन संशोधनों पर किसी सदस्य को कुछ कहना तो नहीं है?

***श्री एच.वी. कामत:** संशोधन 1205 के सम्बन्ध में एक बात जानना चाहता हूं, श्रीमान्। जब उप-प्रधान, प्रधान के रूप में कार्य करेगा तो उसे प्रधान के वेतन तथा अधिदेय दिये जायेंगे या सिर्फ उप-प्रधान के?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उस समय उसे प्रधान का वेतन मिलेगा अर्थात् वह वेतन दिया जायेगा जो उस पद के लिये दिया जाता है।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं इन संशोधनों पर मत लेता हूं। संशोधन नं० 1202 जो डॉ. अम्बेडकर के नाम में है।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 50 में 'or position of emolument'(परिलाभ का पद अथवा स्थिति) शब्दों की जगह 'of profit' (लाभ का पद) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकृत हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** मिस्टर नज़ीरुद्दीन अहमद, क्या आप यह चाहते हैं कि आप के संशोधन पर मत लूं जो पहले के संशोधन से बिल्कुल मिलता-जुलता है?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** नहीं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** तो अब मैं संशोधन नं० 1205 पर मत लेता हूं

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 53 के परादिक में इतना और जोड़ दिया जाये:

'और यह ऐसे वेतन या अधिदेय का अधिकारी न होगा जो इस संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार राज्य-परिषद् के सभापति को देय हो।'"

*संशोधन स्वीकृत हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 53 को उसके संशोधित रूप में विधान का अंग माना जाय।"

*प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।*

*अनुच्छेद 53 विधान में शामिल किया गया।*

---

## अनुच्छेद 54

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 54 पर आते हैं।

सभा के सामने प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 54 को विधान का अंग माना जाये।"

इसके सम्बन्ध में आये हुए संशोधनों पर हम विचार करते हैं। संशोधन नं० 1206, यह मि. मोहम्मद ताहिर के नाम में है।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** मैं इसे नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** अब आता है संशोधन नं० 1207। चूंकि संशोधन नं० 1185 को पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती है, इसलिए.....

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** यहां तो स्थिति बिल्कुल ही भिन्न है, श्रीमान्। मैं एक मिनट में इसे स्पष्ट कर दूंगा।

***उपाध्यक्ष:** अच्छी बात है, आप संशोधन पेश कीजिए।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

"अनुच्छेद 54 के खण्ड (1) में 'date on which' (उस तिथि तक... जब) शब्दों की जगह 'time when'(उस समय तक....जब) शब्द रखे जायें।"

मैं बहुत ही संक्षेप में अपनी बात कहूंगा। ये शब्द आये हैं अनुच्छेद 54 के खण्ड (1) में। यहां कहा गया है कि प्रधान का पद रिक्त होने पर उस तिथि तक उप-प्रधान, प्रधान का स्थानापन्न होगा, जब तक कि नव निर्वाचित प्रधान

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

अपने पद पर प्रवेश न करे। मैं सभा के सामने एक ही स्थिति का उदाहरण रखता हूं और उससे अनुरोध करता हूं कि वह उस पर विचार करे। मान लीजिए कि प्रधान का पद रिक्त होने पर उप-प्रधान उसका स्थानापन्न होता है और नया प्रधान पहली जनवरी को निर्वाचित होकर 12 बजे दिन को अपने पद पर प्रवेश करता है। मूल खण्ड में यह कहा गया है कि उप-प्रधान उस तिथि तक प्रधान का स्थानापन्न होगा जब तक कि नया प्रधान अपने पद पर प्रवेश न करे। इसलिए वह केवल 31 दिसम्बर तक ही प्रधान के रूप में कार्य कर सकेगा क्योंकि इस खण्ड के अनुसार वह केवल "उस तिथि तक" प्रधान का स्थानापन्न होगा जब तक कि नया प्रधान अपने पद पर प्रवेश न करे। ऐसी सूरत में 31 दिसम्बर की मध्य रात्रि से लेकर पहली जनवरी के दोपहर तक जब कि नया प्रधान अपने पद पर प्रवेश करता है, प्रधान का पद सर्वथा रिक्त ही रहेगा और भारतीय सरकार के कार्यों की अध्यक्षता के लिए कोई न रहेगा। न प्रधान ही रहेगा और न उप-प्रधान ही रहेगा। इस राजनैतिक व्यवधान की पूर्ति के लिए ही यह संशोधन रखा गया है।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1208 और 1209 केवल शाब्दिक हैं इसलिए इनको पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती है।

संशोधन नं० 1211 और 1210 एक ही आशय के हैं। इनमें पहला अधिक व्यापक है और वह पेश किया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 54 के खण्ड (3) में निम्नलिखित अंश जोड़ दिया जाये:

'and be entitled to such privileges, emoluments and allowances as may be determined by Parliament by law and until provision in that behalf is so made, such privileges, emoluments and allowances as are specified in the Second Schedule.'"

(तथा ऐसे विशेषाधिकारों, परिलाभों और अधिदेयों का अधिकारी होगा जिन्हें संसद् विधि द्वारा निश्चित करे, और जब तक इस संबंध में प्रावधान नहीं बनता तब तक वह ऐसे विशेषाधिकारों परिलाभों और अधिदेयों का अधिकारी रहेगा जो द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित हैं।)

मसौदे में यह बात छूट गई है और इसे विधान में स्थान देने के लिए ही यह संशोधन रखा जा रहा है।

***उपाध्यक्षः** अनुच्छेद 49 के स्वीकृत हो जाने से संशोधन नं० 1212 और 1213 के पेश किये जाने पर रुकावट पड़ गई है।

***श्री एच.वी. कामतः** संशोधन नं० 1211 के संबंध में, जिसे डॉ. अम्बेडकर ने उपस्थित किया है, मैं कुछ कहना चाहता हूं, श्रीमान्, अभी कुछ देर पहले उन्होंने यह कहा है कि उप-प्रधान जब प्रधान का स्थानापन्न होगा तब उसे वही परिलाभ और अधिदेय मिलेंगे जो कि प्रधान को मिलते हैं। किन्तु इस संशोधन में यह कहा गया है कि वह "ऐसे विशेषाधिकारों, परिलाभों और अधिदेयों का अधिकारी होगा जिन्हें संसद् विधि द्वारा निश्चित करे और जब तक इस संबंध में प्रावधान नहीं बनता तब तक वह ऐसे विशेषाधिकारों, परिलाभों और अधिदेयों का अधिकारी रहेगा जो द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित हैं"। उप-प्रधान जब प्रधान के रूप में कार्य करता है तो उसके सम्बन्ध में यह भेद क्यों किया जा रहा है कि जब तक इस संबंध में संसद् प्रावधान न बना दे तब तक वह उन परिलाभों या अधिदेयों को पायेगा जो द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित हैं? जब तक वह प्रधान के रूप में कार्य करता है तब तक उसे प्रधान के परिलाभ और अधिदेय मिलने ही चाहिएं। मैं जानना चाहता हूं कि आखिर यह अन्तर क्यों रखा गया है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** अनुच्छेद 54(3) यह कहता है, श्रीमान्, किः

"The Vice-President shall, during and in respect of the period, while he is so acting as, or discharging the functions of the President, have all the powers and immunities of the President."

(उप-प्रधान, उस कालावधि में और उस कालवधि के संबंध में जब कि वह प्रधान का स्थानापन्न है अथवा उसके प्रकायों का पालन कर रहा है, प्रधान की सब शक्तियों और विमुक्तियों का अधिकारी होगा।)

डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन पेश किया है उसमें विशेषाधिकारों, परिलाभों

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

तथा अधिदेयों की चर्चा अवश्य की गई है किन्तु उसमें इस बात का उल्लेख नहीं है कि उप-प्रधान जब प्रधान का स्थानापन्न रहेगा, उस समय उसके क्या कर्त्तव्य और दायित्व होंगे। अगर उप-प्रधान संविधान का अतिक्रमण करे तो उस पर किस प्रकार से प्राभियोग लगाया जायेगा या उस संबंध में क्या कार्यवाही की जायेगी। इसके लिए विधान में कोई प्रावधान नहीं रखा गया है।

और आगे जाने पर विधान के अनुच्छेद 56 में यह प्रावधान देखते हैं कि संसद् के दोनों आगारों द्वारा पास किये हुए प्रस्ताव के द्वारा उसे पद से निष्कासित किया जा सकता है। किन्तु संविधान के अतिक्रमण के संबंध में या कर्त्तव्यपालन में च्युत होने के संबंध में विधान में कोई प्रावधान नहीं रखा गया है। जब उप-प्रधान, प्रधान का स्थानापन्न रहे उस समय प्रधान के कर्त्तव्यों और दायित्वों का भार उस पर होना चाहिए। इसलिए मैं चाहता था कि "शक्तियों और विमुक्तियों" शब्दों के बाद "दायित्व तथा कर्त्तव्य" ये शब्द भी आ जाते। इन शब्दों के रख देने से हमारा काम पूरा हो जायेगा। इस आशय का एक संशोधन मैंने भेजा है किन्तु चूंकि सदस्यों के पास यह नहीं भेजा गया है, मैं इसे बाकायदा पेश नहीं करूंगा; पर मैं जरूर चाहूंगा कि डॉ. अम्बेडकर 'शक्तियों और विमुक्तियों' शब्दों के बाद 'दायित्वों और कर्त्तव्यों' शब्दों को जोड़ने पर विचार करें। ऐसा होने से यह अनुच्छेद सर्वथा सम्पूर्ण हो जायेगा और इसमें जो त्रुटि रह गई है वह जाती रहेगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनमें मुख्यत: तीन बातें उठाई गई हैं। मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने अपने संशोधन में समय का सवाल उठाया है। माननीय मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद कितने सतर्क व्यक्ति हैं, यह बात हम सबको अब तक अच्छी तरह मालूम हो गई है। वह चाहते हैं कि विधान में स्पष्ट रूप से समय का उल्लेख कर दिया जाये कि जिस समय प्रधान पद खाली करेगा उसकी जगह उप-प्रधान पदासीन हो जायेगा। मैं नहीं समझता कि विधान में इतनी सतर्कता की कोई जरूरत है, अस्तु। अपने संशोधन में उन्होंने यह नहीं बताया है कि समय कौन-सा लिया जायेगा। इसलिए उनका संशोधन मानने में मुझे कठिनाई है। कौन-सी समय-पद्धति उनके दिमाग में है? ग्रीनविच से वह समय लेना चाहते हैं या वर्तमान स्टैंडर्ड टाइम को रखना चाहते हैं या कलकत्ता अथवा बम्बई के समय

को लेते हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मेरा मतलब है कि ठीक उस समय से जब कि प्रधान पदासीन किया जायेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** समय क्या था यह तय करना तो बड़ा मुश्किल होगा। जब तक कि समय-पद्धति का वह खुलासा नहीं करते, 'समय' शब्द रख देने से इस संबंध में कोई अधिक स्पष्टता या सुनिश्चितता नहीं आ सकती।

दूसरी बात यह है कि जहां तक इस खंडविशेष का सम्बन्ध है, मैं देखता हूं कि यह संशोधन सर्वथा अनावश्यक है क्योंकि अनुच्छेद 54 के उपखंड (1) में कहा गया है कि 'रिक्त पूर्ति सम्बन्धी प्रावधानों के अनुसार निर्वाचित नया प्रधान अपने पद पर प्रवेश न करें'। निश्चय ही प्रधान अपने पद पर प्रवेश करेगा, किसी समय उसी तिथि पर। हो सकता है वह उस दिन आधी रात को पद-प्रवेश करे या दिन के 12 बजे। यहां समय की बात तो अपने आप ही निश्चित हो जाती है, इसलिए यह संशोधन सर्वथा अनावश्यक है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** खंड में कहा गया है कि उप-प्रधान 'उस तिथि तक' प्रधान का स्थानापन्न रहेगा जब तक कि नया प्रधान अपने पद पर प्रवेश न कर ले। इसमें यह तो नहीं कहा गया है कि वह 'उस समय तक' स्थानापन्न रहेगा जब तक कि नया प्रधान पद-प्रवेश न कर ले।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** निश्चय है कि वह उस तिथि पर किसी समय ही अपने पद पर प्रवेश करेगा। सम्भव है कि वह ज्योतिषी से कोई शुभ मुहूर्त पूछे। अस्तु यह संशोधन सर्वथा अनावश्यक है।

माननीय मित्र श्री कामत ने कहा है कि पूर्ववर्ती अनुच्छेद के संबंध में वादानुवाद का उत्तर देते हुये या अपना संशोधन पेश करते हुए मैंने यह कहा था कि जब उप-प्रधान का स्थानापन्न रहेगा तो उसे प्रधान के ही परिलाभ दिये जायेंगे। मैंने जो संशोधन रखा है, उसके अनुसार संसद् को यह अधिकार होगा कि वह उस काल के लिए उप-प्रधान का वेतनादि निश्चित कर सकती है जब कि वह प्रधान का स्थानापन्न हो। इस संशोधन में और मेरे वक्तव्य में सामंजस्य

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

पाना उन्हें कठिन मालूम पड़ता है। अगर मित्र कामत मसौदे के पृष्ठ 161 पर दृष्टि डालें तो देखेंगे कि वहां एक अनुसूची दी गई है जिसमें प्रधान का वेतन तय कर दिया गया है। उस अनुसूची की कंडिका पैरा (5) में उप-प्रधान का वेतन निश्चित कर दिया गया है। अवश्य ही जब कोई व्यक्ति प्रधान का स्थानापन्न रहेगा तो विधान में प्रावहित वेतन का ही वह अधिकारी होगा, चाहे कितनी ही कम उम्र में वह उस पद पर क्यों न पहुंच गया हो। किन्तु यह महसूस किया गया कि अल्पकालिक अवधि के लिए अगर कोई व्यक्ति प्रधान का स्थानापन्न होता है तो उसके लिए वेतनादि निश्चित करने का काम संसद् पर छोड़ना आवश्यक हो सकता है। हो सकता है कि संसद् उसे प्रधान का वेतन न देना चाहे क्योंकि उसके कार्यकाल की अवधि वहीं नहीं होगी जो कि खुद प्रधान की होती है। अतः अगर संसद् ने इस संबंध में कोई प्रावधान नहीं किया तो उसे प्रधान का ही वेतन दिया जायेगा। किन्तु संसद् भिन्न वेतन देने का प्रावधान कर सकती है। इसीलिए यह संशोधन रखा गया है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं अपने माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर का ध्यान अनुच्छेद 48 (4) की ओर खींचना चाहता हूं, जिसमें कहा गया है कि प्रधान के परिलाभ और अधिदेय के संबंध में, उसके कार्यकाल में कम नहीं किये जायेंगे। क्या मैं यह समझूं कि आप प्रधान तथा स्थानापन्न प्रधान के बीच अन्तर बरतने जा रहे हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** निश्चय ही।

***श्री एच. वी. कामतः** गत अनुच्छेद के संबंध में आये हुये एक संशोधन पर जब मैंने आपत्ति की थी, तो डॉ. अम्बेडकर ने यह कहा कि उप-प्रधान जब प्रधान का स्थानापन्न रहेगा तो उसे प्रधान के वेतन तथा अधिदेय ही दिये जायेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जब तक कि संसद् अन्यथा प्रावधान न करे, उप-प्रधान जब तक प्रधान का स्थानापन्न रहेगा, तब तक वह प्रधान का ही वेतन पायेगा। कोई कारण नहीं है कि क्यों संसद् को यह शक्ति न दी जाये कि अल्पकालिक अवधि के लिए, प्रधान का स्थानापन्न होने वाले उप-प्रधान के वेतन को वह निश्चित कर सकती है।

पंडित ठाकुरदास भार्गव ने यह बात कही है कि उप-प्रधान जब प्रधान का

स्थानापन्न रहेगा तो उस पर प्राभियोग चलाने के संबंध में विधान में कोई व्यवस्था नहीं रखी गई है। स्पष्ट है कि उप-प्रधान जब प्रधान का स्थानापन्न हो जायेगा तो प्रधान के सभी कर्त्तव्य और दायित्व स्वतः उस पर आरोपित हो जायेंगे चाहे इसका स्पष्ट उल्लेख भले ही न किया जाये। उस कालावधि में, जब कि वह प्रधान का स्थानापन्न रहता है, यदि वह कोई अपराध करता है या ऐसा कोई काम करता है जिससे वह अपने प्राभियोग को संकट में डाल देता है तो उसे इस कारण से विमुक्ति नहीं मिल सकेगी कि वह तो उप-प्रधान है या प्रधान का केवल स्थानापन्न मात्र है। इसलिए ऐसे प्रावधान की कोई जरूरत ही नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** उपाध्यक्ष महोदय, क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि...

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इस समय मैं किसी भी जिरह में पड़ने के लिए तैयार नहीं हूं।

***उपाध्यक्षः** मि. नज़ीरुद्दीन अहमद अपना स्थान ग्रहण करें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** माननीय डॉ. अम्बेडकर का ध्यान मैं एक त्रुटि की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** वह उसे सुनने पर तैयार नहीं हैं, ऐसी सूरत में मैं क्या कर सकता हूं? मैं उन्हें मजबूर तो कर नहीं सकता।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** उन्हें मजबूर तो कोई भी नहीं कर सकता, किन्तु बात यह है कि अनुच्छेद 54 के खण्ड (3) में.....

***उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधन पर मत लेने जा रहा हूं। डॉ. अम्बेडकर यह कह चुके हैं कि वह कोई भी जवाब नहीं देंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं आशा करता हूं कि वह इस बात पर विचार करेंगे।

***उपाध्यक्षः** मैंने मिस्टर नज़ीरुद्दीन अहमद को बोलने के लिए तो नहीं कहा है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं सभा का ध्यान एक बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जिससे मतों पर प्रभाव पड़ सकता है।

***उपाध्यक्ष:** तीसरी आवृत्ति के समय आप क्यों न ऐसा करें? मैं संशोधन पर मत लेने जा रहा हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** किन्तु, श्रीमान्, यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है।

***उपाध्यक्ष:** यह आपका ख्याल है। अब मैं आपसे साग्रह कहूंगा कि आप अपना स्थान ग्रहण करें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं आपके अनुरोध का पालन करूंगा।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन नं० 1205 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 54 के खण्ड (1) में 'date on which' (जिस तिथि पर) शब्दों की जगह 'time when' (उस समय) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन नामंजूर रहा।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 54 के खण्ड (3) में निम्नलिखित अंश जोड़ दिया जाये:

'and be entitled to such privileges, emoluments, and allowances as may be determined by Parliament by law and until provision in that behalf is so made such privileges, emolument and allowances as are specified in the Second Schedule.'"

(तथा ऐसे विशेषाधिकारों, परिलाभों और अधिदेयों का अधिकारी होगा जिन्हें संसद् विधि निश्चित करे, और जब तक इस संबंध में प्रावधान नहीं बनता तब तक वह ऐसे विशेषाधिकारों, परिलाभों और अधिदेयों का अधिकारी रहेगा जो द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित हैं।)

*संशोधन स्वीकृत हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 54 के खण्ड (3) में 'have all the powers' शब्दों के बाद 'and privileges, emoluments' शब्द जोड़ दिये जायें।"

*संशोधन नामंजूर रहा।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 54 को, उसके संशोधित रूप में, विधान का अंग माना जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।*

*अनुच्छेद 54 विधान में शामिल किया गया।*

---

## अनुच्छेद 55

***उपाध्यक्ष:** अब अनुच्छेद 55 पर विचार प्रारम्भ किया जायेगा। इस अनुच्छेद के संबंध में पहला संशोधन है श्री हिम्मत सिंह के. माहेश्वरी का। चूंकि सदस्य महोदय सभा में उपस्थित नहीं हैं इसलिये यह संशोधन नहीं पेश हो रहा है।

संशोधन नं० 1215 जो मि. मोहम्मद ताहिर के नाम में है तथा नं० 1218 जो प्रो. के. टी. शाह के नाम में है—यह दोनों ही एक समान हैं। प्रो. शाह अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

***प्रोफेसर के. टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 55 के खण्ड (1) में 'by the members of both Houses of Parliament assembled at a joint meeting in accordance with the system of proportional representation by means of the single transferable vote and the voting at such election shall be by secret ballot' (संयुक्त अधिवेशन में एकत्रित संसद् के उभय आगारों के सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार एकल संक्राम्य मत द्वारा.....और ऐसे निर्वाचन में) शब्दों की जगह 'at the same time and in the same manner as the President' (उप-प्रधान का निर्वाचन उसी समय और उसी पद्धति से होगा जैसे कि प्रधान का होता है) रखा जाये।"

मैं यहां यह बतला दूं, यद्यपि मेरा यह कथन मेरे ही खिलाफ जायेगा, कि बालिग मताधिकार के संबंध में एक संशोधन द्वारा मैंने प्रधान के निर्वाचन की एक पद्धति का सुझाव पहले दिया था और उस संशोधन को सभा ने कृपया ठुकरा भी दिया था। उस संशोधन में सुझाई गई पद्धति के अनुरूप ही मेरा यह संशोधन भी है। नियमत: इस संशोधन को अब मैं पेश कर सकता हूं, इस पर मुझे शक है।

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य से मैं अनुरोध करूंगा कि वह अपने विवेक से काम लें।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** मैं तो अपनी ही बात सुनने का आदी नहीं हूं। मैं तो केवल उस त्रुटि को बतला देना चाहता हूं जो यहां है।

***उपाध्यक्ष:** ऐसी सूरत में, मैं समझता हूं कि माननीय सदस्य इसे न पेश करें यही अच्छा है। सुतरां इस पर मत लेने की कोई आवश्यकता नहीं है।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 55 के खण्ड (1) की जगह निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'(1) The Vice-President shall be elected in the same manner as provided in article 43.' "

[(1) उप-प्रधान का निर्वाचन उसी तरह से किया जायगा जैसा कि अनुच्छेद 43 में प्रावहित है।] "

अनुच्छेद 43 में वह पद्धति दी गई है जिसके अनुसार प्रधान निर्वाचित होगा। मेरा ख्याल है, श्रीमान्, कि जहां तक प्रधान और उप-प्रधान के निर्वाचन का सम्बन्ध है उसमें एक ही पद्धति बरती जानी चाहिये, उसमें कोई अन्तर न होना चाहिये। उप-प्रधान की स्थिति वही है जो कि प्रधान की है। हां, उनके कार्यों को अवश्य बांट दिया गया है और उसमें अन्तर कर दिया गया है। किन्तु कम या बेशी दोनों एक-सा ही पद धारण करते हैं अत: उनके निर्वाचन-पद्धति में कोई अन्तर न होना चाहिये।

दूसरी बात मैं यह कहता हूं कि प्रधान का निर्वाचन तो करेंगे संसद् के दोनों आगार तथा राज्यों के विधान-मण्डलों के सदस्यगण। अगर हम उप-प्रधान को भी इसी तरह नहीं चुनते हैं तो इसका मतलब यह हुआ कि राज्यों के विधान-मण्डलों को उप-प्रधान को चुनने का जो हक है उससे उन्हें हम वंचित करते हैं। ऐसा करना, राज्यों के विधान-मण्डलों के सदस्यों के प्रति अन्याय होगा। इसलिये मैंने संशोधन में यह सुझाव दिया है कि उप-प्रधान का निर्वाचन भी उसी रूप में होना चाहिये जैसे कि प्रधान का होगा।

(संशोधन नं० 1216 और 1217 पेश नहीं किये गये।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 55 के खण्ड (1) में 'assembled at a joint meeting' (संयुक्त अधिवेशन में एकत्रित) शब्द हटा दिये जायें और इस संशोधित अनुच्छेद की क्रम संख्या 55 कर दी जाये।"

मेरा अपना ख्याल यह है, श्रीमान्, कि जिन शब्दों को मैं हटाना चाहता हूं उनके कारण कुछ असामंजस्य उत्पन्न होता है। "संयुक्त अधिवेशन में एकत्रित संसद् के उभय आगारों के सदस्यों द्वारा.....उप-प्रधान का निर्वाचन होगा," यह प्रावधान में कहा गया है। मेरा कहना यह है, श्रीमान्, कि उप-प्रधान के निर्वाचन के लिए संसद् के दोनों आगारों के सदस्यों का मत अवश्य ही लिया जाना चाहिये, किन्तु इसके लिये संयुक्त अधिवेशन में एकत्रित होने की कोई जरूरत नहीं है। इसके लिये न तो बैठक करने की जरूरत है और न सदस्यों के एकत्रित होने की ही। विभिन्न समितियों के सदस्य जिस पद्धति से निर्वाचन करते हैं उससे हम सब पूर्णतया परिचित हैं। इसके लिये वे किसी बैठक में समवेत् नहीं होते। सभा की अध्यक्षता चाहे अध्यक्ष या उपाध्यक्ष करे या प्रधान या उप-प्रधान करे—जैसी भी दशा हो—किन्तु सदस्यों के लिये जरूरी नहीं है कि नियमत: वे उपस्थित ही हों। एक समय पर उनका उपस्थित होना जरूरी भी नहीं है और यही आशा की जा सकती है कि वे एक समय पर समवेत् होंगे। इसके लिये न तो संयुक्त बैठक होती है और न अन्य किसी प्रकार की बैठक होती है। कोई कोरम (गणपूरक) भी इसके लिये जरूरी नहीं है। सदस्यगण निश्चित अवधि के अन्दर एक निश्चित स्थान पर पहुंच जाते हैं और निर्वाचन-प्राधिकारी, उसे आप रिटर्निंग आफ़ीसर कहें या पोलिंग आफ़ीसर कहें, उनका मत दर्ज कर लेता है। इसके लिये यदि केवल एक ही सदस्य आता है तो उतना ही पर्याप्त है। इसके लिये यह जरूरी नहीं होता कि कोई बैठक हो और वहां सभी सदस्य एकत्रित हों। मतदान के सम्बन्ध में यह बात लागू ही नहीं हो सकती कि उसके लिये कोई बैठक की जाये या संयुक्त अधिवेशन बुलाया जाये। इसी कारण से मैं सभा से अनुरोध कर रहा हूं कि 'संयुक्त अधिवेशन में एकत्रित' शब्दों को वह हटा दें। इन शब्दों के हटा देने पर खण्ड का रूप यह होगा:

"The Vice-President shall be elected by the members of

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

both Houses of Parliament.....by means of single transferable vote."

(संसद् के उभय आगारों के सदस्यों द्वारा, एकल संक्राम्य मतपद्धति के अनुसार उप-प्रधान का निर्वाचन होगा।)

इसके लिये सदस्यों को एकत्रित होने की कोई जरूरत ही नहीं है। यदि एकत्रित होने की बात रखी गई तो इससे विभिन्न प्रतिबन्ध खड़े हो जायेंगे और कार्य-प्रणाली या जाप्ते के नियमों में बड़ा वितण्डावाद आ जायेगा, जिनकी मतदान के संबंध में कोई आवश्यकता नहीं होती। मैं कहूंगा कि ये शब्द अनावश्यक हैं, इनसे भ्रम पैदा होता है और इनको हटा ही देना चाहिये। संशोधन का दूसरा भाग इस आशय का है कि उस अनुच्छेद को एक पृथक् अनुच्छेद के रूप में रखा जाय। संशोधन के प्रथम अंश पर सभा को गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1220 बेगम ऐज़ाज रसूल तथा मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम में है। बेगम साहिबा यहां उपस्थित नहीं है इसलिए मि. नज़ीरुद्दीन अहमद, आप इसे पेश कर सकते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 55 के खण्ड (1) से 'in accordance with the system of proportional representation' (अनुपाती प्रतिनिधान की प्रणाली के अनुसार) शब्द हटा दिये जायें।"

इस मसले पर, कि जब एक ही स्थान की पूर्ति करनी हो तो अनुपाती प्रतिनिधान की व्यवस्था लागू हो सकती है या नहीं, सभा ने बहुत विचार किया है। उस एक स्थान के लिए उम्मीदवार कई हो सकते हैं इसलिए मतों का हस्तान्तरण तो किया जा सकता है। मत-हस्तान्तरण की व्यवस्था से आप ऐसे व्यक्ति को चुन सकेंगे जो अभ्यर्थियों में सर्वाधिक प्रिय हो। उदाहरण देकर मैं इस बात का खुलासा कर देता हूं। मान लीजिये कि एक सौ मतदाता हैं और दस

स्थानों की पूर्ति करनी है। ऐसी सूरत में एक वर्ग या दल का प्रतिनिधान करने वाले दस सदस्य मिलकर अपना एक व्यक्ति चुन सकते हैं और उनके द्वारा चुना हुआ व्यक्ति मतदाताओं के दशमांश का प्रतिनिधान करने वाला समझा जायेगा। यही हुई अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति। इस बात की ओर मैं डॉ. अम्बेडकर का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। मैं यह देखता हूं कि अक्सर वह मेरी बात को पकड़ नहीं पाते हैं और उसका जवाब देना भूल जाते हैं। खास तौर पर एक बात की ओर मैं उनका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं और वह बात यह है। अगर एक सौ मतदाता हैं और दस जगह हैं तो दस मतदाता अपना एक दल बनाकर अपने एक व्यक्ति को चुन सकते हैं और दसों द्वारा चुना हुआ व्यक्ति, अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति के अनुसार, उन दसों सदस्यों का प्रतिनिधान करने वाला माना जायेगा। वह मतदाताओं के दशमांश का प्रतिनिधान करता है। जहां जगहें अनेक हों वहीं अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति लागू हो सकती है। किन्तु जब एक ही व्यक्ति को चुनना है, उस दशा में अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति लागू ही नहीं हो सकती। एक व्यक्ति अपने को अनेक अंशों में विभक्त करके मतदाताओं के अंशों का पृथक्-पृथक् प्रतिनिधित्व करे, ऐसा तो हो नहीं सकता। उदाहरण के लिए, श्रीमान्, आपको सभा ने चुना है पर आपके लिए यह नहीं कहा जा सकता कि आप निर्वाचकों के भिन्न-भिन्न दलों का अनुपाती प्रतिनिधान करते हैं। जब एक ही स्थान की पूर्ति करनी हो तो उस जगह अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति नहीं लागू की जा सकती।

मतों के हस्तान्तरण की जो बात है वह वस्तुतः एक ऐसा मन्तव्य है जो माना जा सकता है। अगर पहली बार की मतगणना में प्रथम आये व्यक्ति को आये वोटों में से आधे से कम वोट उसे प्राप्त होते हैं तो दूसरी बार की मतगणना में हस्तान्तरित मतों को फिर से ठीक-ठीक हिसाब से उम्मीदवारों के नाम में दिखाया जायेगा और इसमें ऐसा हो सकता है कि पहली बार की मतगणना में जो व्यक्ति प्रथम आया हो वह दूसरी बार की मतगणना में प्रथम न आये। इस प्रकार हस्तान्तरित मत-पद्धति में वही व्यक्ति या लोग निर्वाचन में सफल होते हैं जिनको सर्वाधिक समर्थन प्राप्त होता है। अगर जगह एक ही हो तो उसके लिए

[श्री नजीरूद्दीन अहमद]

भी हस्तान्तरित मत की व्यवस्था ही वांछनीय है, किन्तु वहां आनुपातिक प्रतिनिधान नहीं हो सकता। कहने का मतलब यह है कि जब एक व्यक्ति को चुनना है तो वह अकेला निर्वाचकों के भिन्न-भिन्न दलों का आनुपातिक रूप से प्रतिनिधान नहीं कर सकता। हस्तान्तरित मत-पद्धति बरती जाने पर, आनुपातिक प्रतिनिधान की व्यवस्था अनिवार्य रूप से उसी हालत में लागू होगी जब कि जगहें एक से ज्यादा हों। किन्तु जब जगह एक ही हो या यों कहिए कि जब एक ही आदमी चुना जाता है तो वह अकेला किसी वर्ग का आनुपातिक प्रतिनिधान नहीं कर सकता। एक स्थान के लिए, आनुपातिक प्रतिनिधान की व्यवस्था लागू ही नहीं हो सकती। मेरा ख्याल है, श्रीमान्, कि इस आनुपातिक प्रतिनिधान के सम्बन्ध में बड़ी गड़बड़ी या अस्पष्टता पैदा हो गई है। मैं चाहता हूं कि आनुपातिक प्रतिनिधान की पद्धति तथा हस्तान्तरित मतपद्धति के बीच जो अन्तर है उसे स्पष्ट कर दिया जाये। इन दोनों को अलग-अलग रखना चाहिए अन्यथा इस बात की आशंका है कि लोग उन दोनों को एक-दूसरे का अंग समझेंगे।

(संशोधन नं० 1221 और 1222 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1223 को पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती है क्योंकि यह केवल शाब्दिक है।

संशोधन नं० 1224 । डॉ. अम्बेडकर, आप इसे अब पेश कीजिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्, कि:

"अनुच्छेद 55 के खण्ड (2) में 'either of Parliament or' (किसी संसद् का या) शब्दों की जगह 'of either House of Parliament or of a House' (संसद् के किसी आगार का या.....के आगार) तथा 'member of Parliament or' शब्दों की जगह 'member of either House of Parliament or of a House' (संसद् के किसी आगार अथवा.....के आगार का सदस्य) शब्द और 'in Parliament or such Legislature, as the case may be' (संसद् का अथवा उस विधान-मण्डल का, जैसी कि स्थिति हो)

शब्दों की जगह 'in that House' (उस आगार का) शब्द रखे जायें।"

केवल भाषा संबंधी सुधार की दृष्टि से ही यह संशोधन रखा जा रहा है और इसमें सार की कोई खास बात नहीं है।

(संशोधन नं० 1225, 1226 और 1227 नहीं पेश किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1228 और 1229 समान आशय के हैं।

(संशोधन नं० 1228, 1229 तथा 1230 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन नं० 1231, जो कि प्रो. के.टी. शाह के नाम से है, पेश किया जा सकता है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मेरा यह प्रस्ताव है कि:

"अनुच्छेद 55 के खण्ड (3) के उपखण्ड (ग) में 'Council of States' (राज्य-परिषद्.....न रखता हो) शब्दों के बाद निम्नलिखित अंश जोड़ दिया जाये:

'and is not disqualified by reason of any conviction for treason, or any offence against the safety, security or integrity of the State, or any violation of the Constitution, or has been elected and served more than once as President or Vice-President of the Union.'"

(और साथ ही यदि वह राज्यद्रोह का अपराधी प्रमाणित होने के कारण, अथवा राज्य की रक्षा, सुरक्षा तथा अखण्डता के विरुद्ध कोई अपराध करने के कारण, अथवा विधान का उल्लंघन करने के कारण निर्योग्य न ठहरा दिया गया हो अथवा एकाधिक बार संघ का प्रधान या उप-प्रधान न चुना जा चुका हो और उस पद पर काम न कर चुका हो।)

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

अन्त में एकाधिक बार चुने जाने आदि की जो निर्योग्यता रखी गई है वह अनुच्छेद 46 के संबंध में किये गये निर्णय को देखते हुए उचित नहीं प्रतीत होती है। पर उसके पूर्व की जो निर्योग्यताएं मैंने सुझाई हैं वह तो सभा को मान्य होनी ही चाहिएं।

उपाध्यक्ष महोदय, एक ऐसी विचारधारा आज वर्तमान है जो सम्भवत: यह समझती है कि कुछ खास-खास पदों के अभ्यर्थियों की निर्योग्यताओं का विधान में उल्लेख करना विधान की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल है—मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं। ये राजनीतिक पद हैं और इनके लिए जिन निर्योग्यताओं का मैंने उल्लेख किया है, उनको रखा जाये या नहीं, इस संबंध में लोग अपना अलग-अलग विचार रखते हैं। अगर आप विधान में इनका स्पष्ट उल्लेख नहीं कर देते हैं तो आपको ऐसे लोग मिलेंगे, जिनके संबंध में विधान भंग करने का सन्देह किया जाता है या जिन पर विधानोल्लंघन का दोषारोपण किया गया है, या यहां तक कि नियमानुसार जो राजद्रोह के अपराधी घोषित हो चुके हैं, फिर भी वह इन पदों के लिए अभ्यर्थी के रूप में खड़े होने का न केवल साहस ही करेंगे (जिसके संबंध में डॉ. अम्बेडकर का ख्याल है कि वे नहीं करेंगे) बल्कि मैं तो कहता हूं कि इसका दुस्साहस भी करेंगे। विधान का उल्लंघन करने पर भी राजद्रोह का अपराधी कोई हो सकता है। मैं आपको बता दूं, राजद्रोह अगर सफल हो जाता है तो फिर राजद्रोह के नाम से उसका उल्लेख नहीं किया जायेगा; क्योंकि उस हालत में कोई भी उसे राजद्रोह कहने की हिम्मत नहीं करेगा। इस दृष्टि से मैं इसे आवश्यक समझता हूं कि विधान में एक ऐसा प्रावधान होना ही चाहिये जिस में तीन-चार बातों के आधार पर, जिसका मैंने अभी उल्लेख किया है, निर्योग्यता लागू की गई हो। विधान का उल्लंघन या राजद्रोह के लिए अपराधी घोषित होना ऐसी बातें हैं कि राजनीतिक अपराधों या राजनीतिक पदों के संबंध में निश्चित रूप से हम यह नहीं मान सकते हैं कि इन अपराधों के दोषी निर्वाचन के लिये खड़े ही न होंगे।

इसलिए नि:शंक होकर हम यह नहीं मान सकते कि अगर ऐसे दोषी व्यक्ति

निर्योग्यताओं की उपेक्षा करके ऐसे पदों के लिए खड़े होने का साहस या दुस्साहस करें तो निर्वाचक अवश्य ही इतनी साधारण बुद्धि वाले और औचित्य का ख्याल करने वाले होंगे कि वे इनको चुनेंगे ही नहीं। विधान में जिस तंग पैमाने पर मताधिकार दिया गया है उसे ध्यान में रख कर, मुझे यह भरोसा नहीं है कि विधान में उस निर्योग्यता का उल्लेख न हो, पर यह बात संभव न होगी कि पार्टी के प्रभाव में आकर या तरफदारी के फेर में पड़कर निर्वाचक इन निर्योग्यताओं की उपेक्षा करें। इसलिए मैं सभा से सिफ़ारिश करता हूं कि वह इस संशोधन को स्वीकार कर ले।

***उपाध्यक्ष:** आगे के दो संशोधनों को अर्थात् नं० 1232 तथा 1233 को पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती है क्योंकि ये केवल शाब्दिक हैं।

संशोधन नं० 1235 और 1239 जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम में हैं तथा संशोधन नं० 1234 जो डॉ. अम्बेडकर के नाम से है—ये दोनों—समान आशय के हैं। इनमें से डॉ. अम्बेडकर का संशोधन मुझे अधिक व्यापक दिखाई देता है। डॉ. अम्बेडकर अब इसे पेश करें।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्, कि:

"अनुच्छेद 55 के खण्ड (4) में जहां कहीं भी 'or position of emolument' (परिलाभ के पद) शब्द आये हों उनकी जगह 'of profit' (लाभ के) शब्द रखे जायें।"

***उपाध्यक्ष:** क्या मि. नज़ीरुद्दीन अहमद अपने संशोधन नं० 1235 के संबंध में यह चाहते हैं कि उस पर राय ली जाये?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** नहीं, श्रीमान्, वह डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में आ जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1239 के संबंध में आप क्या कहते हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** यही बात उसके संबंध में भी लागू होगी।

(संशोधन नं० 1236 पेश नहीं हुआ।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1237 तथा 1238 शाब्दिक मात्र हैं, अत: उनको उपस्थित करने की अनुमति नहीं दी जाती है।

[उपाध्यक्ष]

संशोधन नं० 1240 डॉ. अम्बेडकर के नाम में है। वे इसे पेश कर सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा यह प्रस्ताव है, श्रीमान्, कि:

"अनुच्छेद 55 के खण्ड (4) के व्याख्या संबंधी उपखण्ड (क) की जगह निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'(a) he is the Governor of any State for the time being specified in Part I of the First Schedule or is a minister either for India or for any such State, of.' "

[(क) वह प्रथम अनुसूची के भाग 1 में तत्समय उल्लिखित किसी राज्य का प्रमुख है अथवा भारत का या ऐसे किसी राज्य का मंत्री है।]

इस प्रश्न पर गत बैठक में बहस हो चुकी है।

(संशोधन नं० 1241 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1242, 1243 तथा 1244 केवल शाब्दिक हैं अत: इनको उपस्थित करने की अनुमति नहीं दी जाती है।

संशोधन नं० 1245 प्रो. के.टी. शाह के नाम में है। मैं नहीं समझता कि इसे पेश करने में कोई फ़ायदा है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** बहुत अच्छा, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1246, 1247 तथा 1248 केवल शाब्दिक हैं अत: उनको पेश करने की अनुमति नहीं देता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** वे 'केवल शाब्दिक' नहीं हैं, हां, शाब्दिक जरूर हैं।

***उपाध्यक्ष:** इस संबंध में मैं आपसे सहमत नहीं हूं।

(संशोधन नं० 1249 तथा 1250 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं० 1251 जो प्रो. के.टी. शाह के नाम में हैं उसके पेश होने में भी रुकावट पड़ गई है। संशोधन नं० 1252, 1253, 1254 तथा

1255 मेरी समझ से केवल शाब्दिक हैं, अतः इन्हें पेश करने की अनुमति नहीं दे सकता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** संशोधन नं० 1255 तो शाब्दिक नहीं है।

***उपाध्यक्षः** अगर यह शाब्दिक नहीं है तो महज रस्मी है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** खैर, जब आपने इसे अस्वीकृत ही कर दिया तो फिर पूछना व्यर्थ है कि क्यों अस्वीकृत किया है।

(संशोधन नं० 1256 और 1257 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** अब कोई संशोधन नहीं रह गया। अनुच्छेद पर अब विस्तृत रूप से वाद-विवाद किया जा सकता है।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** अभी दस मिनट का समय है और इतने में ही मैं अपनी बात कह दूंगा। उपाध्यक्ष महोदय, संशोधन नं० 1215 को ही मैं पहले लेता हूं। जिसे हमारे माननीय मित्र मि. मोहम्मद ताहिर ने पेश किया है। उनके संशोधन में यह कहा गया है कि उप-प्रधान उसी प्रकार से निर्वाचित किया जायेगा जैसा कि अनुच्छेद 43 में प्रावहित है। अनुच्छेद 43 में प्रधान के निर्वाचन की व्यवस्था बताई गई है। वह कैसे चुना जायेगा? उसका निर्वाचन करेंगे, संसद् के दोनों आगारों के निर्वाचित सदस्यगण तथा दो आगार वाले राज्यों के विधान-मण्डल के दोनों आगारों के निर्वाचित सदस्यवृन्द। किन्तु अनुच्छेद 55 के अनुसार, जिस पर कि अभी हम विचार कर रहे हैं, वह इस प्रकार नहीं चुना जायेगा, बल्कि इस अनुच्छेद के अनुसार तो उसका निर्वाचन होगा केन्द्रीय विधान-मण्डल के दोनों आगारों की संयुक्त सभा में और उसको चुनने वाले होंगे उक्त दोनों आगारों के सदस्यगण। मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं क्योंकि प्रधान तथा उप-प्रधान में अन्तर है। उप-प्रधान को तो राज्य-परिषद् की बैठकों में उसका सभापतित्व करना होगा। किन्तु भारतीय गणतंत्र के प्रधान को, विधान-मण्डल की बैठकों की अध्यक्षता से कोई संबंध नहीं है। उप-प्रधान को भी इससे कोई संबंध नहीं है जब तक कि मृत्यु आदि कारण से प्रधान का पद रिक्त होने पर वह उसकी जगह न आ जाये। इसलिए अनुच्छेद 35, जिस रूप में विधान में रखा गया है, वह मेरी राय से सर्वथा समुचित है। दूसरा संशोधन आता है नं० 1219 का, जिसे पेश किया है मेरे माननीय मित्र नज़ीरुद्दीन अहमद

[श्री तजम्मुल हुसैन]

साहब ने। वह यह चाहते हैं कि अनुच्छेद 55 के खण्ड (1) में "assembled at a joint meeting" (संयुक्त अधिवेशन में एकत्रित) शब्द जो आये हैं उनको हटा दिया जाये। वह यह नहीं चाहते कि उप-प्रधान का निर्वाचन दोनों सदस्यों की संयुक्त बैठक में हो। वह यह भी नहीं बताते हैं कि उसका निर्वाचन कौन सदन करे। इसलिये यह संशोधन अर्थशून्य है और इसको रद्द कर देना चाहिए।

अब मैं संशोधन नं० 1220 को लेता हूं, जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद तथा बेगम ऐज़ाज़ रसूल की ओर से आया है। इसके लिये यह कहा गया है कि अनुच्छेद 55 के खण्ड (1) से "in accordance with the system of proportional representation" (अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति के अनुसार) शब्दों को हटा दिया जाये। प्रधान के चुनाव में हम सर्वथा अनुपाती प्रतिनिधित्व की पद्धति ही बरतने की व्यवस्था कर रहे हैं। मान लीजिए एक से अधिक, तीन या चार उम्मीदवार इस पद के लिए खड़े हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में अनुच्छेद में दी हुई पद्धति ही हमारे लिए सर्वथा उपयुक्त है। हर मतगणना में एक अभ्यर्थी छांट दिया जाता है और इस तरह अनुपाती प्रतिनिधान के आधार पर हस्तान्तरित मत-व्यवस्था के हिसाब से किसको कितने मत मिले यह हमें आसानी से मालूम हो जाता है। हमारे जैसे देश के लिए यही पद्धति सर्वोत्तम है। इसलिए मैं इस संशोधन का भी विरोध करता हूं।

अब मैं लेता हूं उस संशोधन को, जिसे पेश किया है मसौदा-समिति के सदर डॉक्टर अम्बेडकर साहब ने। यह संशोधन नं० 1224 का है। मैं इसका भी विरोध करता हूं। इस संबंध में मेरा मन्तव्य यह है। जिस समय अम्बेडकर साहब इसे पेश कर रहे थे उस समय मेरा ध्यान और किसी बात में था अन्यथा उसी समय औचित्य का प्रश्न मैंने उठाया होता। अस्तु, मेरा औचित्य प्रश्न यह है और इसे मैं अब भी उठा सकता हूं। मेरी आपत्ति यह है कि कोई सदस्य एक प्रस्ताव के द्वारा बहुत-सी बातें पेश नहीं कर सकता। हर बात के लिए एक अलग प्रस्ताव

होना चाहिए। उन्होंने तीन या चार बातें एक ही प्रस्ताव के ज़रिये पेश की हैं। प्रस्ताव द्वारा रखी गई सभी बातों को पढ़ने के बाद आपको इसे अनियमित ठहराना ही होगा। यह संशोधन सर्वथा अवैध है। उनका कहना है कि अनुच्छेद 55 के खण्ड (2) में "either of Parliament or" (किसी संसद् का और) शब्दों की जगह "of either House of Parliament or of a House" (संसद् के किसी आगार का या.....के आगार) शब्द रखे जायें तथा "member of Parliament or" शब्दों की जगह "member of either House of Parliament or of a House" (संसद के किसी आगार अथवा... के आगार का सदस्य) शब्द रखे जायें और "in Parliament or such Legislature, as the case may be" (संसद् का अथवा उस विधान-मंडल का, जैसी कि स्थिति हो) शब्दों की जगह "in that House" (उस आगार का) शब्द रखे जायें। ये चार संशोधन एक ही प्रस्ताव द्वारा पेश किये हैं। हो सकता है, कोई एक संशोधन को स्वीकार करता हो पर दूसरे को मंजूर न करता हो। इसलिये मेरा ख्याल है कि आप उनके प्रस्ताव को अनियमित ठहरा दें। यही ठीक होगा।

***उपाध्यक्ष:** बदकिस्मती यह है, अब ऐसा नहीं किया जा सकता। आपकी राय जरा देर से आई।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** एक बात कह दूं। मेरा ख्याल है कि डॉक्टर अम्बेडकर खुद इस बात से सहमत होंगे कि ऐसे कामों के लिए देर का सवाल ही नहीं उठता।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** कार्यालय इसे ठीक कर सकता था।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** मेरा ख्याल है कि डॉ. अम्बेडकर मेरे इस कथन से सहमत होंगे कि विधि संबंधी प्रश्न किसी समय भी उठाया जा सकता है। किसी समय भी आप यह कह सकते हैं कि अमुक बात अनियमित है।

***उपाध्यक्ष:** कार्य-पद्धति के संबंध में मेरी जो अजानकारी है, उससे शायद उन्होंने फ़ायदा उठाया है।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** मेरी समझ में तो इस बात का कोई कारण नहीं दिखाई देता कि अगर मैं कोई भूल करता हूं तो उसके आधार पर वह भूल बनी

[श्री तजम्मुल हुसैन]

ही क्यों रहने दी जाये। सब कुछ निर्भर करता है आपके फैसले पर उसके बाद मैं लेता हूं संशोधन नं० 1231 को, जिसे मेरे आदरणीय मित्र प्रो. के.टी. शाह ने पेश किया है। उनका कहना है कि अनुच्छेद 55 के खण्ड (3) के उपखण्ड (ग) में "Council of States"(राज्य-परिषद्) शब्दों के बाद इतना जोड़ दिया जाये:

"and is not disqualified by reason of any conviction for treason, or any offence against the safety, security or integrity of the State, or any violation of the Constitution, or has been elected and served more than once as President or Vice-President of the Union."

(और साथ ही यदि वह राज्यद्रोह का अपराधी प्रमाणित होने के कारण, अथवा राज्य की रक्षा, सुरक्षा तथा अखण्डता के विरुद्ध कोई अपराध करने के कारण, अथवा विधान का उल्लंघन करने के कारण निर्योग्य न ठहरा दिया गया हो, अथवा एकाधिक बार संघ का प्रधान या उप-प्रधान न चुना जा चुका हो और उस पद पर काम न कर चुका हो।)

मेरा ख्याल है कि यह संशोधन बिल्कुल गलत है। मैं यह नहीं समझ पाता कि इस संशोधन को पेश करने की इजाज़त ही क्यों दी गई। सदस्यों की निर्योग्यता के संबंध में, अनुच्छेद 83 में आप देखेंगे कि सभी बातों का उल्लेख किया गया है। इसमें कहा गया है कि कोई व्यक्ति संसद् के किसी सदन का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य बने रहने के लिए निर्योग्य होगा अगर भारत सरकार के अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर है, अथवा यदि वह विकृत चित्त है और सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा है, या यदि वह अनुन्मुक्त दिवालिया है, या किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा या अनुषक्ति को स्वीकार किये हुए हैं, या किसी विदेशी राज्य का नागरिक या प्रजा है अथवा वहां की नागरिकता के अधिकारों का अधिकारी है और या वह संसद् निर्मित किसी विधि के अधीन निर्योग्य कर दिया गया है। ये सभी बातें उस अनुच्छेद में दी हुई हैं। इसलिए इस अनुच्छेद के अनुसार ऐसा व्यक्ति राज्य-परिषद् का सदस्य हो ही नहीं सकता। अनुच्छेद 55 के खण्ड (3) में तो यह दिया गया है कि राज्य-परिषद् का सदस्य चुने जाने की क्या-क्या योग्यताएं

हैं। इसलिए इन सब बातों को खण्ड (3) में रखना व्यर्थ है। मुझे विश्वास है, डॉ. अम्बेडकर इस बात को कभी न स्वीकार करेंगे और न सभा ही इसे स्वीकार करेगी।

मैंने इस संशोधन को दो हिस्सों में बांट दिया है और पहले हिस्से के संबंध में अपनी बातें कह चुका हूं। अब दूसरे हिस्से पर आता हूं। संशोधन के दूसरे हिस्से में यह कहा गया है कि एक से अधिक बार अगर कोई व्यक्ति प्रधान या उप-प्रधान चुना जा चुका है और उस पद पर काम कर चुका है तो वह इस पद के लिए निर्योग्य समझा जाएगा। मान लीजिए कि कोई व्यक्ति एक से अधिक बार प्रधान या उप-प्रधान के पद पर काम कर चुका है। अगर वह बहुत ही योग्य-व्यक्ति है और जनता उसे चाहती है तथा विधान-मण्डल उसे चाहता है तो उसे क्यों दुबारा उप-प्रधान होने से रोकते हैं? मैंने इस आशय का एक संशोधन भेजा था कि कोई भी व्यक्ति एक से अधिक बार प्रधान चुना जा सकता है। पर चूंकि मैं सभा में समय पर उपस्थित नहीं था इससे मैं उसे पेश नहीं कर सका। किन्तु सभा ने इस बात को स्वीकार कर लिया था कि कोई व्यक्ति एक से अधिक बार प्रधान चुना जा सकता है। फिर उप-प्रधान के लिए यह रोक क्यों लगाई जाये कि एक से अधिक बार कोई इसके लिए नहीं चुना जा सकता?

ठीक डेढ़ बजे हैं, श्रीमान्, और मैं अपनी बात समाप्त करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब सभा कल प्रात: 10 बजे तक के लिए स्थगित होती है।

*इसके बाद सभा बुधवार, 29 दिसम्बर सन् 1948 ई. के प्रात: 10 बजे के लिए स्थगित हुई।*

Con. 3. VII. 28. 48
350

अंक 7
संख्या 28

बुधवार,
29 दिसम्बर
सन् 1948 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

विधान का मसौदा-(जारी)..... 1871-1927

[अनुच्छेद 55, 56, 57, 58, 59 और 60 पर विचार-विमर्श]

# भारतीय विधान-परिषद्

बुधवार, 29 दिसम्बर सन् 1948 ई.

---

*भारतीय विधान-परिषद् कांस्टिट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः दस बजे समवेत् हुई। उपाध्यक्ष महोदय (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) अध्यक्ष-पद पर आसीन थे।*

## प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्यों ने प्रतिज्ञा-ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

1—श्रीमती ऐनी मैसकरीन (त्रावणकोर)

2—श्री सीताराम जाजू [संयुक्त राज्य—ग्वालियर-इंदौर-मालवा (मध्यभारत)]

---

# विधान का मसौदा—(जारी)

## अनुच्छेद 55—(जारी)

***उपाध्यक्ष** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): अब हम अनुच्छेद 55 पर आगे विचार-विमर्श आरम्भ करते हैं। श्री भारती।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 55 पर सामान्य बहस हो रही है। सभा को स्मरण होगा कि कल मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने अपने नाम से एक संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 1220 को उपस्थित किया था। यद्यपि हम उनके संशोधन को सीधे-सीधे स्वीकार नहीं कर सकते हैं परन्तु मैं यह अनुभव करता हूं कि उनका तर्क बहुत बलशाली है। वे अपने संशोधन द्वारा अनुच्छेद 55 से 'अनुपाती प्रतिनिधित्व' शब्दों को निकालना चाहते थे। जहां तक मैं उन्हें समझ पाया हूं, मेरे विचार से उन्हें मत के संक्रमण के संबंध में कोई आपत्ति नहीं है परन्तु यह प्रणाली जिन शब्दों में रखी गई है उन्हें वे ठीक नहीं समझते हैं। वास्तव में उन्होंने यह कहा था कि जब एक ही उम्मीदवार चुना जाने वाला हो तो अनुपाती प्रतिनिधित्व का प्रश्न ही नहीं उठता। जिस निर्वाचन-क्षेत्र से एक ही सदस्य चुना जाने वाला हो उसके

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

संबंध में अनुपाती प्रतिनिधित्व का विचार निरर्थक है। इसका अर्थ यह है कि अन्तिम निर्वाचन में एक प्रकार का अनुपात होना चाहिए। निर्वाचकों की संख्या के अनुपात के अनुसार जगहें निश्चित की जाती हैं। इसीलिये उनको 'अनुपाती प्रतिनिधित्व' शब्दों से आपत्ति है।

मैंने इस विषय के संबंध में कुछ साहित्य पढ़ा और मैंने यह अनुभव किया कि उन्होंने जो कुछ कहा है उसमें बहुत बल है। इंग्लैण्ड में भी इसी कठिनाई का अनुभव किया गया और सभी निर्वाचन-प्रणालियों के प्रश्न पर विचार करने के लिये एक शाही कमीशन बिठाया गया था। इसके फलस्वरूप सन् 1908 ई. में कामन्स सभा में मि. राबर्टसन ने दो विधेयक उपस्थित किये थे और यह विचार किया गया था कि 'अनुपाती प्रतिनिधित्व' शब्द उपयुक्त शब्द नहीं हैं। यह प्रणाली अर्थात् संक्राम्य मत-प्रणाली उस स्थिति के लिये उपयुक्त प्रमाणित होती है जब एक से अधिक उम्मीदवार होते हैं। किन्तु जब एक ही उम्मीदवार को निर्वाचित करना होता है तो यह स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष बहुमत को प्राप्त करने के लिये हमें संक्रमण की व्यवस्था को स्वीकार करना होगा। यह एक निश्चित बात है। एक-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र के संबंध में उन्होंने उपयुक्त शब्द ढूंढ निकाले हैं। उपयुक्त शब्द हैं "वैकल्पिक मत"। श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं इस विषय पर एक अधिकृत लेखक—हम्फ्रीज—की राय बताना चाहता हूं। वह लेखक यह कहता है:

"पिछले कुछ वर्षों से 'वैकल्पिक मत' शब्द इंग्लैण्ड में प्रयोग में रहे हैं और इन्हें निर्वाचन प्रणालियों के संबंध में बिठाये हुये शाही कमीशन ने एक-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र तथा बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र के संक्राम्य मत में अन्तर करने के लिये स्वीकार किया था।

बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों को अलग प्रकार का समझा गया है और "अनुपाती प्रतिनिधित्व" शब्दों का भी विशेष अर्थ लगाया गया है। इस प्रकार यद्यपि संक्रमण-व्यवस्था को समान रूप से रखा गया है किन्तु एक-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों को बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों से विशिष्ट बनाने के लिये "वैकल्पिक मत" शब्दों का प्रयोग किया गया है। मि. राबर्टसन के विधेयक के स्मृति-पत्र में आगे यह कहा गया है कि "वैकल्पिक मत का सिद्धान्त बहुत सरल है"। मि. राबर्टसन के विधेयक के स्मृति-पत्र में उसका उद्देश्य तथा उसकी प्रणाली इस प्रकार वर्णित है:

"उद्देश्य यह है कि किसी संसदात्मक निर्वाचन में ऐसी व्यवस्था की जाये कि जहां तक संभव हो निर्वाचकों के बहुमत की इच्छाओं का प्रभाव हो। वर्तमान प्रणाली के अधीन जब एक ही जगह के लिये दो से अधिक उम्मीदवार होते हैं तो इसकी संभावना रहती है कि निर्वाचित सदस्य निर्वाचकों के अल्पमत से चुना जाये।

इस विधेयक का उद्देश्य यह है कि ऐसी व्यवस्था की जाये कि निर्वाचक अपने मत-पत्रों में इसका संकेत कर सकें कि यदि उनकी पहली पसन्द का उम्मीदवार का मत-पत्र में तीसरा अथवा उससे भी बाद का स्थान हो और किसी भी उम्मीदवार का प्रत्यक्ष बहुमत न हो तो वे किस उम्मीदवार के पक्ष में अपने मतों का संक्रमण चाहेंगे। इस प्रकार एक ही व्यवस्था से दूसरे मत-पत्र का भी प्रभाव हो जाता है।"

इसलिये मेरे विचार से इन शब्दों से, जो न केवल इंग्लैण्ड में बल्कि आस्ट्रेलिया के राज्यों में भी सन् 1911 ई. से प्रचलित रहे हैं, लाभ उठाना चाहिये और इन्हें अपने विधान में प्रविष्ट कर लेना चाहिये ताकि एक-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र और बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों में अन्तर किया जा सके और 'अनुपाती प्रतिनिधित्व' शब्दों की अनर्गलता का निराकरण हो जाये।

संभव है कि इस सुझाव को सीधे-सीधे स्वीकार न किया जा सके परंतु मैं डॉ. अम्बेडकर और वैधानिक सलाहकार श्री बी.एन. राव से यह प्रार्थना करता हूं कि इस पर विचार किया जाये, जबकि उपयुक्त शब्द हैं और वे इंग्लैण्ड में प्रचलित रहे हैं तो कोई कारण नहीं है कि हम उन्हें स्वीकार न करें। आखिर यह बताने के लिये कि इस प्रणाली का क्या अर्थ है हमें कुछ नियम बनाने ही हैं और कोई कार्य-प्रणाली निश्चित करनी ही है। एकल संक्राम्य मत की भी कई प्रणालियां हैं जैसे हेयर प्रणाली इत्यादि। इस अन्तर को स्पष्ट करने के लिये हमें कोई विधेयक उपस्थित करना होगा अथवा कोई नियम निश्चित करना होगा।

यह आपत्ति की जा सकती है कि अब हम 'अनुपाती प्रतिनिधित्व' शब्दों से तो परिचित हैं ही। किन्तु मेरा निवेदन यह है कि हम एक-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों के संबंध में इस प्रणाली से परिचित नहीं हैं और पहली बार ही हम एक-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों को स्थापित कर रहे हैं। इसलिये उचित तो यह होगा कि निर्वाचन-प्रणाली संबंधी शाही कमीशन द्वारा स्वीकृत 'वैकल्पिक मत' शब्दों पर विचार किया जाये। श्रीमान्, आपको धन्यवाद।

***उपाध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर!

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे इसका खेद है कि इस अनुच्छेद के संबंध में जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनमें से मैं किसी को भी स्वीकार नहीं कर सकता हूं। जहां तक सामान्य विचार-विमर्श का संबंध है मेरे विचार से केवल दो संशोधनों का उत्तर देने की आवश्यकता है। पहला संशोधन मि. ताहिर का संशोधन संख्या 1215 है। मि. ताहिर ने अपने संशोधन द्वारा यह प्रस्ताव किया है कि प्रधान के लिये जो प्रणाली निर्धारित की गई है वही प्रणाली उप-प्रधान के निर्वाचन के लिये भी प्रयोग में लाई जाये। श्रीमान्, विधान के मसौदे में प्रधान के निर्वाचन और उप-प्रधान के निर्वाचन में जो अन्तर किया गया है वह इस कारण किया गया है कि इन दो व्यक्तियों के कार्य भिन्न हैं। प्रधान राज्य का प्रमुख है और उसकी शक्तियां केवल केन्द्र ही के प्रशासन के संबंध में नहीं हैं बल्कि राज्यों के प्रशासन के संबंध में भी हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि उसके निर्वाचन में न केवल संसद् के सदस्य भाग लें बल्कि राज्यों के विधान-मण्डलों के सदस्य भी भाग लें। किन्तु उप-प्रधान को केवल राज्य-परिषद् में ही सभापतित्व करना होता है। बहुत कम अवसरों पर ही और वह भी थोड़े काल के लिये ही उसे प्रधान के कर्त्तव्यों का पालन करना होता है। इस स्थिति में यह आवश्यक प्रतीत नहीं होता कि उप-प्रधान के निर्वाचन में भाग लेने के लिये राज्यों के विधान-मण्डलों के सदस्यों को भी आमन्त्रित किया जाये। इसी तर्क को सामने रख विधान के मसौदे में इन दो व्यक्तियों के निर्वाचन के प्रकार में अन्तर किया गया है।

दूसरा संशोधन, जिसका उत्तर देने की आवश्यकता है, मि. नज़ीरुद्दीन अहमद का संशोधन संख्या 1219 है। उन्होंने यह सुझाव रखा है कि 'assembled' (एकत्रित) शब्द को निकाल दिया जाये। इस अनुच्छेद में इस शब्द को इस कारण रखा गया है कि मत-पत्रों को डाक से भेजने की प्रथा न अपनाई जाये। हम सभी जानते हैं कि यदि निर्वाचन के कार्य के लिये डाक के साधन से काम लिया गया तो वह असफल हो जायेगा। मत-पत्र निश्चित स्थान पर नहीं पहुंच सकते हैं अथवा रास्ते में खो भी सकते हैं। यह भी संभव है कि कोई उम्मीदवार अपने कार्यकर्ताओं को मत-पत्र एकत्रित करने के लिये चारों ओर भेज दे और वह उन्हें लेकर स्वयं उन पर हस्ताक्षर कर दे और भेज दे जिससे निर्वाचन के संबंध में निर्वाचक को अपना मत-प्रकाश करने की कोई स्वतन्त्रता ही नहीं रहेगी। इसी कारण यह निश्चय किया गया था कि निर्वाचन उसी समय हो जब दोनों सभाओं के सदस्य एकत्रित हों ताकि डाक के साधन का दुरुपयोग न किया

जा सके। मेरे विचार से इस कार्य के लिए संसद् के सदस्यों की एक बैठक करने में न कोई कठिनाई होगी और न कोई असुविधा ही। आखिर संसद् के सदस्य कानून बनाने के लिये एकत्रित होंगे ही और इस उद्देश्य से जो अधिवेशन होंगे उनमें से किसी में भी निर्वाचन किया जा सकता है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि इस स्थिति में मसौदे की भाषा ही अधिक उपयुक्त है।

श्रीमान्, जहां तक प्रोफेसर के.टी. शाह के इस आशय के संशोधन का संबंध है कि उप-प्रधान के पद के लिये जो अयोग्यतायें हैं उनका उल्लेख विधान में होना चाहिये। मैंने इस संबंध मैंने उस समय उत्तर दे दिया था जब उन्होंने प्रधान के संबंध में इसी प्रकार का संशोधन उपस्थित किया था। उस समय मैंने यह कहा था कि संसद् कानून द्वारा इस प्रकार की व्यवस्था कर सकती है।

श्री भारती और मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने 'वैकल्पिक मत' शब्द प्रयोग करने के संबंध में जो सुझाव रखा है उसके संबंध में मैं केवल यह कह सकता हूं कि यह प्रश्न केवल भाषा के अन्तर का है और संभवत: मसौदा-समिति बाद को इस प्रश्न पर विचार कर सके। परन्तु, चूंकि मैं किसी प्रकार का वचन नहीं देना चाहता, यदि वैकल्पिक मत से कोई सारपूर्ण परिवर्तन हो तो इस पर किसी समय भी विचार करना संभव न होगा।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं विभिन्न संशोधनों पर अलग-अलग मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 55 के खण्ड (1) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(1) The Vice-President shall be elected in the same manner as provided in article 43.'"

[(1) उप-प्रधान उसी प्रकार निर्वाचित किया जायेगा जैसे अनुच्छेद 43 में प्रावहित किया गया है।

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 55 के खण्ड (1) में 'assembled at a joint meeting' (संयुक्त अधिवेशन में एकत्रित) शब्दों से निकाल दिया जाये और संशोधित खण्ड की पुनर्गणना अनुच्छेद 55 के रूप में की जाये।"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1220, जो मि. नज़ीरुद्दीन के नाम से है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, इस आश्वासन को दृष्टि में रखते हुये कि मसौदा-समिति इस पर विचार करेगी, मैं इसे उपस्थित नहीं करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** क्या सभा इसकी आज्ञा देती है कि इसे मतदान के लिये उपस्थित न किया जाये?

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।)

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 55 के खण्ड (2) में 'either of Parliament or' (न तो संसद् का और न किसी राज्य के विधान-मण्डल का) शब्दों के स्थान में 'of either House of Parliament or of a House' (न तो संसद् की किसी सभा का न किसी राज्य के विधान-मण्डल की किसी सभा का) शब्द, 'member of Parliament or' (संसद् अथवा किसी राज्य के विधान-मण्डल का सदस्य) शब्दों के स्थान में 'member of either House of Parliament or of a House' (संसद् की किसी सभा अथवा किसी राज्य के विधान-मण्डल की किसी सभा का सदस्य) शब्द और 'in Parliament or such legislature, as the case may be' (संसद् का अथवा उस विधान-मण्डल का अपना स्थान, जैसी कि स्थिति हो) शब्दों के स्थान में 'in that House' (उस सभा का अपना स्थान) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 55 के खण्ड (3) के उपखण्ड (ग) में 'Council of State' (हिन्दी में—पात्र न हो) शब्दों के बाद निम्नलिखित रखा जाये:

'and is not disqualified by reason of any conviction for treason, or any offence against the safety, security or integrity of the State, or any violation of the

Constitution or has been elected and served more than once as President or Vice-President of the Union.'"

(और राजद्रोह अथवा राज्य के क्षेत्र, अभिरक्षण तथा अक्षुण्णता को भंग करने के किसी अपराध अथवा कानून को भंग करने के लिये दण्डित होने की अयोग्यता से मुक्त न हो अथवा ऐसा व्यक्ति भी न हो जो एक बार से अधिक संघ का प्रधान अथवा उप-प्रधान चुन लिया गया हो और इस हैसियत से सेवा कर चुका हो।)"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 55 के खण्ड 4 में जहां कहीं 'or position of emolument' (आय के पद) शब्द आये हों उनके स्थान में 'of profit,' (परिलाभ के पद) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 55 के खण्ड (4) की व्याख्या के उपखण्ड (क) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(a) he is the Governor of any State for the time being specified in Part I of the First Schedule or is a minister either for India or for any such State, or.'"

[(क) वह इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित किसी राज्य का शासक है अथवा भारत का अथवा किसी ऐसे राज्य का मन्त्री है; अथवा]

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 55, संशोधित रूप में, विधान का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*अनुच्छेद 55, संशोधित रूप में, विधान का अंग बना लिया गया।*

## अनुच्छेद 56

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 56 को उठाते हैं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 56 विधान का अंग बना लिया जाये।"

पहला संशोधन, संशोधन संख्या 1258 है। पहले विकल्प को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती क्योंकि उसका संबंध केवल शाब्दिक परिवर्तन से है। दूसरा विकल्प उपस्थित किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 1258 का दूसरा विकल्प उपस्थित नहीं किया गया।)

प्रोफेसर शाह—संशोधन संख्या 1259 ।

***प्रोफेसर के.टी. शाह** (बिहार : जनरल) : उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करना चाहता हूं कि:

"अनुच्छेद 56 की गणना अनुच्छेद के खण्ड (1) के रूप में की जाये और उसके बाद निम्नलिखित नये खण्ड जोड़ दिये जायें:

'(2) The Vice-President shall have an official residence and there shall be paid to the Vice-President such emoluments and allowances, not exceeding those granted to the President, as may be determined by Parliament by law, and until provision in that behalf is made by Act of Parliament, the Vice-President shall be paid a monthly salary of Rs. 4,500.

(3) The emoluments and allowances of the Vice-President shall not be diminished during his term of office.

(4) Every Vice-President, on completion of his term of office and retirement shall be given such pension or allowance during the rest of his life as Parliament may by law determine, provided that, during the life

time of any such Vice-President in retirement and pensioned, such pension or allowance shall not be diminished.'

[(2) उप-प्रधान का एक सरकारी निवास-गृह होगा और उसे ऐसे परिलाभ और भत्ते दिये जायेंगे जो प्रधान को दिये जाने वाले परिलाभ और भत्तों से अधिक न होंगे और जिन्हें संसद् कानून द्वारा निश्चित करेगी और जब तक संसद् के कानून द्वारा व्यवस्था न की जाये उप-प्रधान को 4,500 रु० का मासिक वेतन दिया जायेगा।

(3) उप-प्रधान के परिलाभ तथा भत्ते उसकी पदावधि में कम नहीं किये जायेंगे।

(4) प्रत्येक उप-प्रधान को उसकी पदावधि समाप्त होने पर तथा उसके अवकाश ग्रहण करने पर उसके अवशेष जीवन-काल में ऐसा उत्तर-वेतन तथा भत्ता दिया जायेगा जिसे संसद् कानून द्वारा निश्चित करे परन्तु किसी ऐसे अवकाश ग्रहण किये हुये और उत्तर-वेतन पाने वाले उप-प्रधान के जीवन-काल में यह उत्तर-वेतन अथवा भत्ता कम नहीं किया जायेगा।]

सभा के सम्मुख इस प्रस्ताव को उपस्थित करते हुये मैं तीन तर्क उपस्थित करना चाहता हूं और मुझे आशा है कि सभा उन्हें पसन्द करेगी। उप-प्रधान के लिये निवास-गृह की व्यवस्था उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी प्रधान के लिये। श्रीमान्, मेरा यह मत है कि उच्च शासनाधिकारियों को मकानों को किराये पर लेने की आवश्यकता न होनी चाहिये और उन्हें मकान-मालिकों से मकान किराये पर लेकर किसी प्रकार उनका कृतज्ञ न होना चाहिये। इस समय किराये की नियन्त्रण-प्रणाली के अधीन दूषित पगड़ी की प्रथा चली हुई है। उससे प्रलोभन हो सकता है और इसलिये उसकी निन्दा ही की जानी चाहिये तथा उच्च पदाधिकारियों को उससे अछूता ही रखना चाहिये। मालिक मकान और किरायेदार के संबंध के कारण यह संभव है कि इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण अधिकारी अनुचित रूप से प्रभावित हो जायें और इसका उनके सरकारी कार्य पर भी प्रभाव पड़े, जो एक दूषित बात होगी।

इस प्रकार यह एक साधारण प्रस्ताव है और मुझे विश्वास है कि इस संबंध में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती है। वह इस प्रकार है कि उच्च शासनाधिकारियों को, जिनको अधिशासी अथवा अन्य प्रकार की शक्ति प्राप्त हो,

[प्रो. के.टी. शाह]

इस स्थिति में न डालना चाहिये कि वे किसी व्यक्ति की दया पर निर्भर रहें, क्योंकि वह व्यक्ति उनके प्रभाव से लाभ उठाना चाहेगा।

मैं इससे परिचित हूं कि इस विधान के अधीन उप-प्रधान को अधिशासी अथवा परिपोषण की शक्ति नहीं दी गई है और इसलिये यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि कम से कम उनके लिये जो मुख्य कारण मैंने बताया है वह लागू नहीं होता है। इसके अतिरिक्त मेरा यह निवेदन है कि सर्वोच्च सामाजिक स्थिति तथा महत्त्व की दृष्टि से उप-प्रधान देश में दूसरा व्यक्ति होगा। यदि उन्हें अधिशासी अथवा राजनैतिक परिपोषण की शक्ति न भी प्राप्त हो तो भी वह एक उच्च-पदाधिकारी होगा जिसे सभी प्रलोभनों से दूर रखना आवश्यक है। यदि उनके अधिकार के दुरुपयोग से लोक-सेवा को किसी प्रकार भी हानि पहुंचने की संभावना हो और किसी व्यक्ति विशेष को लाभ होने की संभावना हो तो उससे उसे दूर ही रखना चाहिये।

दूसरा तर्क उप-प्रधान के वेतन और भत्तों के संबंध में है। मेरे संशोधन के अनुसार संसद् के कानून के द्वारा इसकी व्यवस्था की जा सकती है। बात यह नहीं है कि यह व्यवस्था संसद् में कोई प्रस्ताव उपस्थित करके की जायेगी क्योंकि प्रस्ताव केवल बहुसंख्यक दल के बहुमत से भी स्वीकार हो सकता है और यह भी नहीं है कि यह एक तदर्थ तत्कालीन निर्णय होगा जो समय-समय पर बदला जा सकता है। मैं इसे भी कानून द्वारा निश्चित कराना चाहता हूं। मैं यह चाहता हूं कि कानून इस संबंध में बिल्कुल स्पष्ट हो कि उप-प्रधान की पदावधि में उसके वेतन, भत्तों तथा परिलाभ में कोई ऐसा परिवर्तन न किया जायेगा जिससे उसे हानि हो और न वे किसी प्रकार कम किये जायेंगे।

मैं जिस शब्दावली को प्रयोग में लाया हूं वह इससे कुछ भिन्न है। वह इस प्रकार है कि 'ऐसा परिवर्तन न किया जायेगा जिससे उसको हानि हो।' मैंने केवल यह सुझाव रखा है कि इन आंकड़ों को कम न किया जायेगा। इस पर भी आपत्ति की जा सकती है। उप-प्रधान राज-सभा का प्रधान होगा और उसके अन्य प्रकार के भी सक्रिय कर्त्तव्य तथा संभवत: कुछ प्रकार्य भी होंगे। इसके अतिरिक्त उसका सामाजिक स्थान ऊंचा होगा और उसको उसे बनाये रखना होगा। साथ ही उसका स्थान अलंकारपूर्ण भी है और वह पूरे समय के लिये अधिकारी समझा जायेगा। इसलिये उसे किसी ऐसे निजी व्यापार, वाणिज्य, उद्योग, वृत्ति अथवा व्यवसाय में संलग्न रहने की आज्ञा न होनी चाहिये जिससे उसे अपने कर्त्तव्यों

की उपेक्षा करनी पड़े। इसलिये यह आवश्यक है, उसके लिये उपयुक्त वेतन तथा परिलाभ की व्यवस्था होनी चाहिये।

मैंने इस प्रकार का एक सीमा-बोधक खण्ड भी रखा है कि यह वेतन प्रधान के वेतन से अधिक न होना चाहिये। किन्तु वह इतना अवश्य होना चाहिये कि उप-प्रधान जैसे पदाधिकारी का जो स्थान समझा जाता है उसे वह सम्मानपूर्वक बनाये रखे।

अन्त में मैंने यह कहा है, जैसा कि मैंने प्रधान के संबंध में भी प्रस्ताव किया था, कि उप-प्रधान को उत्तर-वेतन अर्थात् अवकाश-काल का भत्ता दिया जाना चाहिये। पहले एक अवसर पर मैंने यह कहा था कि इस देश में इन उच्च पदों पर धनी लोगों का ही एकाधिपत्य न होना चाहिये। उनको किसी भत्ते की अथवा अवकाश-काल में किसी प्रकार की व्यवस्था की आवश्यकता नहीं हो सकती है क्योंकि अन्य साधनों से वे अपने लिये पर्याप्त व्यवस्था कर सकते हैं और इसलिये उत्तर-वेतन के रूप में राज्य द्वारा जो थोड़ा-बहुत धन मिले उसकी भी उन्हें चिन्ता नहीं हो सकती है।

मुझे आशा है कि हमारी सरकार पर जो दोष लगाया जाता है वह इस विधान के अधीन न लगाया जा सकेगा और उसके लिये यह न कहा जा सकेगा कि वह केवल धनिकों की सरकार है और उसका संचालन धनिकों द्वारा, धनिकों के लिये ही होता है। कम से कम सैद्धान्तिक रूप से तो यह होना ही चाहिये कि विधान के अधीन सरकार ने सभी के लिये समान अवसरों की व्यवस्था की है और इसलिये देश का गरीब से गरीब नागरिक इन पदों के लिये उम्मीदवार हो सकता है और उन्हें स्वीकार करने में उसे गरीबी में पड़ जाने अथवा ऋण से लद जाने का भय न रहेगा।

इसलिये मेरी यह इच्छा है कि ऐसे अधिकारियों के अवकाश-काल के लिये उचित व्यवस्था की जाय ताकि वे किसी प्रलोभन में न पड़े और गरीबी से पीड़ित न रहें और जीवन-पर्यन्त देश की सेवा करने के उपरान्त यदि सम्पन्नता में नहीं तो कम से कम शान्ति और सुख से अपना अवशेष जीवन बिता सकें।

मेरी यह इच्छा नहीं है कि इन व्यक्तियों को ऐसी सम्पन्नता प्राप्त हो जो देश के अन्य लोगों को प्राप्त न हो। परन्तु मैं इस विचार को भी छिपाना नहीं चाहता कि यदि कोई व्यक्ति इस पद पर पूरे काल के लिये एक बार भी रहा तो उसे उत्तर-वेतन दिया जाना चाहिए।

[प्रो. के.टी. शाह]

पहले एक अवसर पर, जब मैंने सभा के सम्मुख इसी प्रकार का एक प्रस्ताव रखा था, यह तर्क उपस्थित किया गया था कि मैं इस संबंध में सावधान नहीं रहा हूं कि यदि वही व्यक्ति दुबारा उसी पद पर रहे अथवा किसी अन्य पद पर रहे और अपने पदकारणात् वेतन इत्यादि पाता रहे तो उसके संबंध में क्या होगा? मुझे विश्वास है कि इस प्रकार की आपत्ति करने वाले लोगों को साधारण बुद्धि से ही यह ज्ञात हो जायेगा कि यदि वे किसी पद पर होंगे तो इस प्रकार का उत्तर-वेतन न दिया जा सकेगा और न दिया जायेगा। यह प्रत्यक्षत: ऐसा उत्तर-वेतन और भत्ता है जो केवल अवकाश-ग्रहण करने पर और अवकाश-काल में ही दिया जायेगा। इसलिये इस तर्क को सुन कर मुझे आश्चर्य हुआ कि मैंने इसका उल्लेख नहीं किया है कि यदि उदाहरणार्थ प्रधान अवकाश ग्रहण करें और राष्ट्रीय उत्तर-वेतन को पाता हो तो क्या उसे कोई अन्य वेतन दिया जायेगा और यदि वह पुनर्निर्वाचित हो जाये तो क्या इस प्रकार का वेतन उत्तर-वेतन के साथ-साथ दिया जायेगा। मैं यह कह सकता हूं कि यह बात मेरे दृष्टिकोण को तर्कपूर्ण ढंग से समझ कर नहीं कही गई है बल्कि केवल द्वेष के कारण कही गई है। मैं इस प्रकार के द्वेष का निराकरण करने में असमर्थ हूं परन्तु मुझे सभा की सद्भावना पर विश्वास है और इसलिये मैं उससे सिफ़ारिश करता हूं कि मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** दो संशोधन पण्डित ठाकुरदास भार्गव के नाम से हैं। क्या माननीय सदस्य महोदय उन्हें उपस्थित कर रहे हैं?

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): मैं इन दो संशोधनों को नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1260, 1261 और 1262 शाब्दिक संशोधन हैं और इसलिये उन्हें उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती है।

संशोधन संख्या 1263 प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है। इसे उपस्थित किया जा सकता है।

***प्रोफेसर के. टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि:

"अनुच्छेद 56 के परादिक के पैरा (ख) में 'be removed from his office for' (हिन्दी में—अपने पद से) शब्दों के बाद निम्नलिखित रखा जाये:

'reason duly proved, or for any violation of the Constitution duly established, or for conviction for any offence constituting a disqualification for election to the office of a President, Vice-President, or member of Parliament or for physical or mental incapacity duly certified, or for bribery or corruption, duly proved.' "

(यथाविधि प्रमाणित कारण से, अथवा यथाविधि स्थापित विधान के खण्डन के लिये, अथवा किसी ऐसे अपराध के कारण दण्डित होने के लिये जिसे प्रधान के, उप-प्रधान के अथवा संसद् के सदस्य के पद के निर्वाचन के लिये अयोग्य समझा जाता हो, अथवा यथाविधि प्रमाणित शारीरिक अथवा मानसिक अयोग्यता के लिये अथवा यथाविधि सिद्ध घूसखोरी और भ्रष्टाचार के लिये)

इस संशोधन में बहुत सरल प्रस्ताव सन्निहित हैं किन्तु उन्हें बताना आवश्यक है। श्रीमान्, मेरी धारणा है कि प्रथाओं और रूढ़ियों के न होते हुये यदि आप विधान को और वह भी लिखित विधान को बिना इस प्रकार की संभावनाओं के संबंध में स्पष्ट वक्तव्यों के, इसी प्रकार छोड़ दें तो आप इन खण्डों के दुरुपयोग के लिये तथा विधान को वास्तव में प्रयोग में लाने में जो हथकण्डे दिखाये जा सकते हैं उनके लिये दरवाज़ा खोल देंगे।

उस देश की बात दूसरी है जहां लिखित विधान न होने पर भी ऐसी सुस्थापित प्रथायें तथा रूढ़ियां हैं कि उनसे पदाधिकारियों का अपने कार्य में पथप्रदर्शन होता है। इस देश में हमारे सामने कुछ नहीं है और हम पहली बार विधान बना रहे हैं। इस देश में हमने पहली बार ही लोकाचार के स्वरूप को तथा शासन के सिद्धांतों को निश्चित करने का दायित्व ग्रहण किया है। इस समय जब हम एक लिखित विधान बना रहे हैं, कम से कम मैं इसे उचित नहीं समझता हूं कि हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का निर्णय सामान्य बुद्धि अथवा जनसाधारण के मत तथा औचित्य-ज्ञान ही से हो। मेरा अपना यह विचार है कि विधान में इन विषयों का निर्णयात्मक रूप से उल्लेख होना चाहिये।

इसका परिणाम यह होगा कि उच्च पदाधिकारियों को उल्लिखित कारणों से अपने पदों से हटाया जा सकेगा। जिन कारणों से मैं यह चाहता हूं कि पदाधिकारी अपने पदों से हटाये जायें अथवा उनको अयोग्य घोषित किया जाये, उनका उल्लेख अनेक प्रमुख राष्ट्रों के विधानों में है और अनेक अधीन संस्थाओं के विधानों में जैसे नगर-समितियों के विधानों में तो है ही और इस देश में भी है।

[प्रो. के.टी. शाह]

इस दशा में इस प्रस्ताव के संबंध में कोई आपत्ति नहीं की जानी चाहिये अर्थात् यह न होना चाहिये कि कोई ऐसा व्यक्ति, जो देश-द्रोह के लिये अथवा विधान में उल्लिखित किसी अपराध के लिये अथवा विधान को खण्डित करने के लिये अथवा घूसखोरी और भ्रष्टाचार जैसे नैतिक दुराचार के लिये दण्डित हुआ हो और जिसके संबंध में ये अपराध सिद्ध हो गये हों, अपने पद पर बना रहे।

घूसखोरी और भ्रष्टाचार जैसे नैतिक दुराचार का अपराध बहुत गंभीर है और उसे प्रमाणित करना भी बहुत कठिन है। यह केवल इस कारण कठिन नहीं है कि घूसखोर बहुत सावधानी से घूस लेते हैं बल्कि इसलिये भी कि आसानी से गवाह नहीं मिलते हैं। मैं यह नहीं कहता हूं कि उच्च पदाधिकारियों पर केवल सन्देह होने पर उन पर घूसखोरी का आरोप लगाया जाये और उन्हें दण्डित किया जाय। इसके विपरीत उन्हें कानून द्वारा स्थापित न्यायालयों के सम्मुख यथोचित रूप से उपस्थित किया जाना चाहिये। उन पर नियमानुसार मुकद्दमा चलना चाहिये। उनकी सफाई को पूरी तौर से सुना जाना चाहिये और यदि उनके पास इसके लिये साधन हों तो उन्हें अभियोग से अपने को मुक्त कराने का पूरा अवसर दिया जाना चाहिये। मैं इससे अच्छी प्रकार परिचित हूं कि जिन लोगों का उच्च स्थान होता है अथवा उच्च पदाधिकारी होते हैं, उन्हें शीशे के घरों में रहना होता है। उनके प्रत्येक कार्य पर, प्रत्येक बात पर और प्रत्येक हरकत पर लोग आलोचना करते हैं और उनसे लोगों को भ्रम भी होता है।

इसलिये मैं यह नहीं चाहता हूं कि केवल सन्देह मात्र से ही, उनको निन्दित किया जाये और तुरन्त ही पद से हटा दिया जाये। किन्तु यदि किसी कानून द्वारा स्थापित किसी ऐसे न्यायालय के सम्मुख, जिससे किसी के लिये किसी प्रकार के पक्षपात की आशा नहीं की जा सकती है, यथाविधि मुकद्दमा चलने पर यह सिद्ध हो जाये कि उन्होंने घूस ली है और अनुचित रूप से प्रभावित हुये हैं तो उचित यही होगा कि वे अपने उच्च पदों से हटायें जायें और उन्हें देश के शासन को आगे दूषित न करने दिया जाये।

यही तर्क शारीरिक और मानसिक अयोग्यता के संबंध में भी उपस्थित किया जा सकता है। श्रीमान्, यदि हम इसके प्रति भी उदासीन रहे और हमने इस पर जोर न दिया तो इससे संबंधित पदाधिकारी को तो कोई लाभ न होगा किन्तु उसके अधीनस्थ संस्थाओं को, विभागों को अथवा हितों को हानि हो सकती है।

इसलिये लोक-सेवा, लोक-शील और सुयोग्य शासन के हित ही में मैं यह प्रस्ताव कर रहा हूं कि विधान में स्पष्ट शब्दों में यह प्रावधान रख देना चाहिये कि जो लोग अयोग्य प्रमाणित हों और शारीरिक तथा मानसिक असामर्थ्य के भागी हों उन्हें उनके पदों से हटा देना चाहिये। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि इस पर कोई आपत्ति नहीं की जायेगी और यदि मसौदाकार इसे स्वीकार करना पसन्द न भी करें तो सभा अपनी सद्भावना से इसे स्वीकार कर लेगी।

**उपाध्यक्षः** श्री कामत के नाम से संशोधन संख्या 1264 और मि. ताहिर तथा सय्यद जाफ़र इमाम के नाम से संशोधन संख्या 1266 तथा मि. महबूब अली बेग के नाम से संशोधन संख्या 1269 का आशय समान है। इनमें से संशोधन संख्या 1264 अधिक विस्तृत प्रतीत होता है और श्री कामत उसे उपस्थित कर सकते हैं। क्या माननीय सदस्य महोदय उसे उपस्थित कर रहे हैं?

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): जी हां, श्रीमान्! मैंने जिन संशोधनों को अलग-अलग भेजा था उन्हें दुर्भाग्य से फिर एक ही जगह रख दिया गया है और इसलिये मुझे कठिनाई हो रही है। मैं इस संशोधन के केवल तीसरे भाग को उपस्थित करना चाहता हूं। इस संशोधन में चार संशोधनों को मिलाकर रख दिया गया है। मैं इसके लिये दफ्तर को दोष नहीं देता हूं.....।

***उपाध्यक्षः** क्या माननीय सदस्य महोदय अन्य तीन संशोधनों को भी उपस्थित करना चाहते हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** केवल तीसरे संशोधनों को मैं उपस्थित करना चाहता हूं।

श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 56 के परादिक के खण्ड (ख) में 'agreed to by the House of the People' (जिसे लोक-सभा की स्वीकृति प्राप्त हो) शब्दों के स्थान में 'agreed to by a similar resolution of the House of the People' (जिसे लोक-सभा ने इसी प्रकार के संकल्प द्वारा स्वीकृति प्रदान की हो) शब्द रखे जायें।"

मुझे आश्चर्य है कि मसौदा-समिति ने परादिक के इस भाग में इस प्रकार के शब्द रखकर मनोरंजनपूर्ण ढंग से अस्पष्ट होने का क्यों निश्चय किया। इस अनुच्छेद के मसौदे में केवल यह कहा गया है कि इस संकल्प को लोक-सभा की स्वीकृति प्राप्त होनी चाहिये। यह सभी स्वीकार करते हैं कि संक्षिप्त, स्पष्ट

[श्री एच.वी. कामत]

और सारपूर्ण विवरण एक उत्कृष्ट विधान का लक्षण है। किन्तु कोई भी यह नहीं कह सकता कि संक्षिप्त विवरण हमारे विधान की विशेषता है। हम इस पर गर्व करते हैं कि हमारे विधान का आकार संसार के अन्य सभी विधानों से वृहत् है। कुछ लोगों को तो इस पर बहुत ही गर्व है। किन्तु इस विधान के कुछ भागों में मैं यह देखता हूं कि मसौदा-समिति ने संक्षिप्त विवरण के प्रति एक विचित्र प्रेम का परिचय दिया है। किन्तु दुर्भाग्य से इससे स्पष्टता और सुगठन का हनन हो गया है। उदाहरणार्थ, इस स्थान पर यह नहीं बताया गया है कि संकल्प के लिये किस प्रकार के बहुमत की आवश्यकता होगी। परादिक में यह नहीं बताया गया है कि उस पर एकमत होना चाहिये अथवा दो-तिहाई बहुमत अथवा तीन-चौथाई बहुमत अथवा साधारण बहुमत। मैं आशा करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर इस ओर कुछ ध्यान देंगे और इसका उत्तर देंगे।

मैं सभा का ध्यान अनुच्छेद 50 की ओर आकृष्ट करता हूं जिसे हमने कल स्वीकार किया है और जो प्रधान पर प्राभियोग लगाने और उसे अपने पद से हटाये जाने के बारे में है। उसमें हमने यह कहा है कि प्रधान पर प्राभियोग लगाने के लिये तथा उसे पद से हटाने के लिये भी सभा में बहुमत की आवश्यकता होगी। यह भी भारतीय गणराज्य के उप-प्रधान को, उसके पद से हटाने के लिये उसी प्रकार का एक अनुच्छेद है। किन्तु यह एक आश्चर्य की बात है कि उसमें यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है कि क्या राज्य-परिषद् के सभी सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प से सारी लोक-सभा को सहमत होना चाहिये अथवा उसको उसे साधारण बहुमत से स्वीकार कर लेना चाहिये। यदि इस अनुच्छेद और इसके परादिक को इसी प्रकार छोड़ दिया जाय तो बाद को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। यह हो सकता है कि राज्य-परिषद् संकल्प को केवल साधारण बहुमत से स्वीकार करे। लोक-सभा के संबंध में अनुच्छेद में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं है कि संकल्प के पारण के लिये किस प्रकार के बहुमत की आवश्यकता होगी। मेरे विचार से यह आवश्यक है कि अनुच्छेद में यह स्पष्ट कर दिया जाये कि राज्य परिषद् के संकल्प को लोक-सभा द्वारा स्वीकृति प्रदान करने के लिये कितने बहुमत की आवश्यकता होगी। यदि यह स्पष्ट नहीं किया गया तो बाद को हम कठिनाई में पड़ सकते हैं।

क्या मैं इस परादिक में एक और दोष बता सकता हूं? कल हमने प्राभियोग लगाने पर प्रधान को पद से हटाने के बारे में अनुच्छेद 50 को स्वीकार किया

था। उसमें हमने इस व्यवस्था को पर्याप्त समझा है कि प्रधान को उसके पद से हटाने के लिये एक सभा दोषारोप का पुरोधान करेगी और दूसरी सभा उस आरोप के परीक्षणार्थ एक संकल्प को स्वीकार करेगी। किन्तु जहां तक उप-प्रधान को पद से हटाने का संबंध है हमने यह व्यवस्था की है कि राज्य-परिषद् द्वारा पारित संकल्प लोक-सभा द्वारा स्वीकार होना चाहिये। कल प्रोफेसर शाह के संशोधन का समर्थन करते हुये मैंने यह तर्क उपस्थित किया था कि संसद् की दोनों सभाओं के संकल्प अथवा मतदान द्वारा, न कि संसद् की किसी एक सभा के मतदान द्वारा, प्रधान को अपने पद से हटाना चाहिये।

उप-प्रधान को हटाने के लिये हमने यह कहा है कि निष्कासन के संकल्प को संसद् की दोनों सभाओं को स्वीकार करना चाहिये किन्तु प्रधान को पद से हटाने के लिये हमने एक ही सभा का संकल्प स्वीकार करना पर्याप्त समझा है। यह एक विचित्र बात है जिसका यह अर्थ है कि हम उप-प्रधान के निष्कासन को प्रधान के निष्कासन से भी अधिक महत्त्व दे रहे हैं।

श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं, प्रोफेसर शाह ने अभी जो संशोधन उपस्थित किया है, उसके संबंध में एक शब्द कहना चाहता हूं। मेरे विचार से मेरे मित्र ने 79वां अनुच्छेद नहीं पढ़ा है जिसमें राज्य-परिषद् के सभापति अर्थात् हमारे विधान के अनुसार भारत के उप-प्रधान के परिलाभ, वेतन और भत्तों की व्यवस्था की गई है। यदि उन्होंने वह अनुच्छेद पढ़ा होता तो वे अपने 1259वें संशोधन के इस प्रश्न से संबंधित भाग को उपस्थित नहीं करते।

**उपाध्यक्ष:** आगे के संशोधन पर एक संशोधन है जो पण्डित ठाकुरदास भार्गव के नाम से है। मेरे विचार से वे उसे उपस्थित नहीं कर रहे हैं। मुख्य संशोधन भी उपस्थित नहीं किया जा रहा है। क्या मि. मोहम्मद ताहिर यह चाहते हैं कि उनके संशोधन संख्या 1266 पर मत लिया जाये?

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, चूंकि श्री कामत ने अपने संशोधन संख्या 1264 का केवल एक भाग उपस्थित किया है, इसलिये मुझे आशा है कि आप मुझे अपना संशोधन उपस्थित करने की आज्ञा देंगे।

***उपाध्यक्ष:** यह नहीं हो सकता है। हमने इस प्रकार की एक प्रथा स्थापित की है। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या माननीय सदस्य महोदय चाहते हैं कि मैं उस पर मत लूं अथवा नहीं?

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, वे ठीक कह रहे हैं। चूंकि मैंने अपना पूरा संशोधन, जिसके चार भाग हैं, उपस्थित नहीं किया है; उन्हें अपना संशोधन उपस्थित करने दिया जा सकता है। मैंने अपने संशोधन का केवल तीसरा भाग उपस्थित किया था। उनके संशोधन का संबंध एक दूसरे विषय से है और इसलिये उसे उपस्थित करने में कोई रुकावट नहीं है।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** क्या मैं तीनों संशोधनों को अर्थात् संशोधन संख्या 1266, 1267 और 1268 को एक साथ उपस्थित कर सकता हूं?

***उपाध्यक्षः** आप केवल संशोधन संख्या 1266 को उपस्थित कर सकते हैं। संशोधन संख्या 1267 एक दूसरे समूह के अधीन आता है जैसा कि माननीय सदस्यों को भेजी हुई संशोधन-समूहों की सूची में देखा जा सकता है।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 56 के परादिक के खण्ड (ख) में 'all the then members of the Council' (परिषद् के तत्कालीन समस्त सदस्यों) के स्थान में 'the members of the Council present and voting' (परिषद् के उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो खण्ड इस प्रकार हो जायेगा:

"The Vice-President may be removed from his office for incapacity or want of confidence by a resolution of the Council of States passed by a majority of the Members of the Council present and voting."

(उपप्रधान, राज्य-परिषद् के ऐसे सकंल्प द्वारा अपने पद से असामर्थ्य अथवा विश्रम्भाभाव के लिये निष्कासित किया जा सकेगा जिसे परिषद् के उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के बहुमत ने पारण किया हो।)

श्रीमान्, इस संबंध में मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि वर्तमान प्रावधान में यह कहा गया है कि "राज्य-परिषद् के ऐसे संकल्प द्वारा जिसे परिषद् के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत ने पारण किया हो।" मैं "परिषद् के तत्कालीन समस्त सदस्यों" और "परिषद् के उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों" में अन्तर करना चाहता हूं। "परिषद् के तत्कालीन समस्त सदस्यों" में

वे सब सदस्य भी सम्मिलित हैं जो यद्यपि परिषद् के सदस्य हों परन्तु परिषद् में उपस्थित न हों; परन्तु स्पष्टत: इसका उद्देश्य यह है कि संकल्प को वे सदस्य उपस्थित करें तथा पारण करें जो उपस्थित हों और मत देते हों। श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर इस ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं।

***उपाध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर, मि. ताहिर चाहते हैं कि आप उनकी ओर ध्यान दें।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** मैं यह कह रहा था कि "परिषद् के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत" शब्दों में वे सदस्य भी सम्मिलित हैं जो यद्यपि परिषद् के सदस्य हों परन्तु परिषद् में उपस्थित न हों परन्तु स्पष्टत: इसका उद्देश्य यह है कि संकल्प को वे सदस्य उपस्थित करें तथा पारण करें जो उपस्थित हों और मत देते हों। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि "परिषद् के उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों" शब्द वर्तमान शब्द "परिषद् के तत्कालीन समस्त सदस्यों" से अधिक उपयुक्त होंगे। इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्ताव को उपस्थित करता हूं।

***श्री महबूब अली बेग साहब** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 56 के परादिक के खण्ड (ख) में 'all the then members of the Council and agreed to by the House of the People' (परिषद् के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत ने पारण किया हो तथा जिसे लोक-सभा की स्वीकृति प्राप्त हो) शब्दों के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'not less than two-thirds of the total membership of the Council and agreed to by the House of the people by a majority of not less than two-thirds of its total membership.'"

(परिषद् के कुल सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत ने पारण किया हो तथा जिसे लोक-सभा के कुल सदस्यों में से दो-तिहाई सदस्यों की स्वीकृति प्राप्त हो।)

श्रीमान्, विधान में उप-प्रधान के निर्वाचन की व्यवस्था की गई है। वह प्रधान के बीमार होने के कारण अथवा अन्य किसी कारण से अनुपस्थित होने पर

[श्री महबूब अली बेग साहब]

उसके प्रकार्यों को करेगा। प्रधान के पद रिक्त होने पर भी वह प्रधान के प्रकार्यों को करेगा। इस प्रकार इस पद का पर्याप्त महत्त्व है। यह केवल एक आकस्मिक बात है कि उनसे राज्य-परिषद् का सभापतित्व करने को कहा गया है। वे पद-कारणात् राज्य-परिषद् के सभापति होंगे। इस प्रकार, श्रीमान्, उप-प्रधान के पद को बहुत महत्त्वपूर्ण बना दिया गया है। इस पद के लिये निर्वाचन की जो प्रणाली निश्चित की गई है वह बहुत सरल बना दी गई है, यद्यपि मेरी तो यह इच्छा थी कि इसे उतना ही विस्तृत बनाया जाता जितना प्रधान-पद संबंधी निर्वाचन प्रणाली को बनाया गया है। हमने यह स्वीकार किया है कि दोनों सभाओं के सदस्य ही उनका निर्वाचन कर लेंगे। इतने महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी को, जो प्रधान के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकार्यों को करेगा और जिसको प्रधान की वे सभी शक्तियां और विमुक्तियां प्राप्त होंगी जिनका उल्लेख अनुच्छेद 54 के खण्ड (3) में है, क्या केवल राज्य-परिषद् के साधारण बहुमत से और लोक-सभा की स्वीकृति से निर्वाचित कर लेना चाहिये? यह एक विचारणीय प्रश्न है। मेरा यह निवेदन है कि मैं उन सदस्यों से सहमत हूं जिन्होंने इस आशय का एक संशोधन उपस्थित किया था कि असामर्थ्य, देश-द्रोह आदि के लिये उप-प्रधान को भी उसी प्रकार हटाया जाना चाहिये जिस प्रकार प्रधान को! मैं उन संशोधनों का समर्थन करता हूं जिनका आशय यह है कि पद-निष्कासन के संबंध में उनके साथ उसी प्रकार का व्यवहार होना चाहिये जैसा प्रधान के प्रति। किन्तु यदि किसी कारण मसौदा-समिति के सभापति इतना आगे बढ़ने के लिये तैयार नहीं हैं तो उचित यह है कि उप-प्रधान को असामर्थ्य और विश्रम्भाभाव के लिये दोनों सभाओं के दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से अपने पद से हटाना चाहिये। यह कहा जा सकता है कि यदि राज्य-परिषद् को उप-प्रधान पर कोई विश्वास नहीं रह गया हो तो उसे साधारण बहुमत से हटा देना चाहिये क्योंकि जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है वे इस प्रकार हैं—"असामर्थ्य और विश्रम्भाभाव के लिये"। किन्तु हम एक बात भूल रहे हैं। वह केवल राज्य-परिषद् का सभापतित्व ही नहीं करेगा बल्कि एक ऐसा व्यक्ति होगा जो प्रधान के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकार्यों को करेगा। मैं इससे सहमत हूं कि यदि राज्य-परिषद् उसे अपना सभापति बनाये रखने के पक्ष में न हो तो निस्संदेह यह कहा जा सकता है कि उसे हटा दिया जाये परन्तु, जैसा कि मैं कह चुका हूं, हम यह भूल रहे हैं कि यदि प्रधान किसी कारण अनुपस्थित हो अथवा उसका स्थान रिक्त हो जाये तो उसे प्रधान की हैसियत से भी काम करना होगा। यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रकार्य है और

इसलिये, श्रीमान्, यदि मसौदा-समिति के सभापति उसे उसी प्रकार हटाने के लिये तैयार न हों जैसे प्रधान को, तो उसे कम से कम दोनों सभाओं के दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से हटाना चाहिये। श्रीमान्, मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 5 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती है क्योंकि वह केवल शाब्दिक है। इसी कारण संशोधन संख्या 1268 को उपस्थित करने की भी आज्ञा नहीं दी जाती है।

अब हम उन चार संशोधनों पर आते हैं जो माननीय सदस्यों को दिये हुये पत्रों में एक ही समूह में रखे गये हैं अर्थात् संशोधन संख्या 1267, 1270, 1271 और 1272। इनमें से संशोधन संख्या 1270 सबसे अधिक विस्तृत है और उसे उपस्थित किया जा सकता है। वह श्री नन्दकिशोर दास और श्री विश्वनाथ दास के नाम से है।

(संशोधन संख्या 1270 उपस्थित नहीं किया गया।)

तब संशोधन संख्या 1267 उपस्थित किया जा सकता है। मि. मोहम्मद ताहिर!

***श्री मोहम्मद ताहिर:** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 56 के परादिक के खण्ड (ख) में 'fourteen days' notice' (सूचना कम से कम चौदह दिन पूर्व) शब्दों के स्थान में 'fourteen days' notice in writing signed by not less than thirty members of the Council of States' (लिखित सूचना राज्य-परिषद् के कम से कम तीस सदस्यों द्वारा अपने हस्ताक्षरों से कम से कम चौदह दिन पूर्व न दे दी गई हो) शब्द रखे जायें।"

मैं इस विषय के संबंध में संक्षेप में कहूंगा चूंकि प्रधान के संबंध में हम यह स्वीकार कर चुके हैं कि इस प्रकार के संकल्प सभा के एक चौथाई सदस्यों के हस्ताक्षर से उपस्थित किये जाने चाहियें। उप-प्रधान के संबंध में भी हम इस प्रकार का प्रावधान क्यों न रखें कि इस प्रकार की सूचना पर राज्य-परिषद् के कम से कम 30 सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहियें और तभी उसे स्वीकार किया जा सकता है। मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर इस पर यथोचित विचार करेंगे और इस संशोधन को स्वीकार करने के लिये सहमत होंगे।

(संशोधन संख्या 1271 और 1272 उपस्थित नहीं किये गये।)

**उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 1273 मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम से है। यह शाब्दिक है और इसलिये इसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं है।

(संशोधन संख्या 1274 उपस्थित किया जा सकता है।)

**श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 56 के परादिक (ग) में 'term' (पदावधि समाप्त हो जाने) शब्दों के बाद 'or resignation or removal as the case may be' (अथवा पदत्याग करने अथवा पद से हटाये जाने पर भी, जैसी भी दशा हो) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

परादिक (ग) में यह व्यवस्था है कि 'पदावधि समाप्त हो जाने पर भी' उप-प्रधान पदारूढ़ रहेगा। मैं यह चाहता हूं कि यह पद इस प्रकार पढ़ा जाय— "पदावधि समाप्त हो जाने अथवा पदत्याग करने अथवा पद से हटाये जाने पर भी, जैसी भी दशा हो।" 'पदावधि समाप्त हो जाने पर' शब्दों से उस अवधि का बोध होता है जब वे पदासीन रहेंगे। इस पद को सम्पूर्ण बनाने के लिये इसके साथ 'पदत्याग अथवा पद से हटाया जाना' शब्द भी सम्मिलित कर देने चाहियें। इसी को स्पष्ट करने के लिये मैंने इस संशोधन का सुझाव रखा है।

***उपाध्यक्षः** इस अनुच्छेद पर अब सामान्य वादानुवाद हो सकता है। पहले श्री सिधवा और उनके बाद मि. तजम्मुल हुसैन बोलेंगे। मैं इन दोनों नामों को एक साथ सुना देता हूं।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह ने अपना संशोधन संख्या 1259 उपस्थित करते हुये यह कहा था कि उप-प्रधान के लिये एक सरकारी निवास-गृह की व्यवस्था करनी चाहिये और उसके परिलाभ और भत्ते विधान में निश्चित कर दिये जाने चाहियें। इस सुझाव को उपस्थित करने का उन्होंने यह कारण बताया था कि यदि हम परिलाभ निश्चित नहीं करते हैं और उसके लिये न्यायोचित वेतन तथा निवास-गृह की व्यवस्था नहीं करते हैं तो यह संभव है कि उसे कई प्रकार के दुराचार का प्रलोभन हो। उन्होंने कुछ उदाहरण दिये थे। श्रीमान्, मैं इन प्रश्नों पर अपना मत प्रकट करूंगा।

हम सभी जानते हैं कि उप-प्रधान के पद के संबंध में हमने अनुच्छेद 53 में, जिसे हमने स्वीकार कर लिया है, यह कहा है कि वह पद-कारणात् राज्य-परिषद् का सभापति होगा। इस प्रकार उसका वेतन अवश्य ही निश्चित किया जायेगा। राज्य-परिषद् का सभापति, जिसका पद बहुत ही उत्तरदायित्वपूर्ण होगा, अवश्य ही वेतन पायेगा और वह अनुच्छेद 79 में निश्चित कर दिया गया है। श्रीमान्, अनुच्छेद 79 में यह कहा गया है कि प्रधान, राज्य-परिषद् के सभापति, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष सभी के वेतन निश्चित किये जायेंगे। मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह की यह धारणा है कि यह विधान ही में निश्चित कर दिया जाना चाहिये। श्रीमान्, मेरे विचार से विधान में उप-प्रधान के पद के लिये वेतन निश्चित करना आवश्यक नहीं है। प्रधान और गवर्नरों के वेतन कुछ सुपरिचित कारणों से निश्चित किये गये हैं ताकि समय-समय पर उनके वेतन न बदले जायें। किन्तु चूंकि उप-प्रधान प्रधान के अधीन होगा। इसलिये उसका वेतन सभा के मतानुसार निश्चित किया जाना चाहिये।

प्रोफेसर के.टी. शाह आगे यह कहते हैं कि उसका वेतन प्रधान के वेतन से अधिक न होना चाहिये जैसे उनकी यह धारणा हो कि उप-प्रधान का पद प्रधान के पद से अधिक महत्त्वपूर्ण है और इसलिये हमें उसके लिये प्रधान से भी अधिक वेतन निश्चित करना चाहिये। हम सभी स्वीकार करते हैं कि राज्य-परिषद् के सभापति और उप-प्रधान को वेतन दिया जाना चाहिये और इस प्रकार का एक प्रावधान भी है, परन्तु मैं उनके इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हूं, और मुझे आशा है कि सभा भी इससे सहमत न होगी कि वेतन विधान में निश्चित कर दिया जाना चाहिये।

श्रीमान्, निवास-गृह के संबंध में प्रोफेसर शाह ने कहा है कि आजकल जैसी किराये के नियंत्रण की व्यवस्था है उसे देखते हुये, यदि हम उसे निवास गृह न दें तो यह संभव है कि उसका किसी से कलह हो जाय और उसे कई प्रकार के दुराचार करने का प्रलोभन हो। मैं इस सुझाव को इस कारण स्वीकार नहीं कर सकता हूं। आज हमारी विधान-परिषद् के एक अध्यक्ष हैं। उनके लिये कानून द्वारा किसी निवास-गृह की व्यवस्था नहीं की गई है परन्तु सरकार ने उनके लिये एक मकान प्राप्त किया है। इसी प्रकार राज-मन्त्रियों और उपमन्त्रियों के लिए सरकार ने मकान प्राप्त किये हैं, यद्यपि वे मकान पाने के अधिकारी नहीं हैं। मुझे इसका पता नहीं है कि उनसे कितना किराया लिया जाता है परन्तु साधारणतया सरकारी कर्मचारियों से उनके वेतन का 10 प्रतिशत लिया जाता है। इसलिये श्रीमान्, यह कहना अतिशयोक्ति ही होगी कि यदि हम सरकारी निवास-गृह की व्यवस्था न करें तो अधिकारी को किराये के नियंत्रक के पास जाकर यह कहना

[श्री आर.के. सिधवा]

होगा कि "यदि आप मुझे इस मकान को दे दें तो मैं आपको इतना धन दूंगा"। मेरे विचार से कोई भी उप-प्रधान यह करने के लिये सहमत न होगा और वह भारत के लिये एक दुर्दिन होगा जब कोई उप-प्रधान यह सब करने के लिये तैयार हो जायेगा। इस दृष्टि से, श्रीमान्, मेरे विचार से प्रोफेसर शाह का भय निराधार है।

प्रोफेसर शाह ने भ्रष्टाचार पर बहुत जोर दिया है। उन्होंने यह कहा है कि वे उपप्रधान, सभी मन्त्रियों और कर्मचारियों को यथोचित उच्च वेतन इस कारण देना चाहते हैं कि उन्हें किसी प्रकार के भ्रष्टाचार अथवा घूस आदि का प्रलोभन न हो। यदि हम इस तर्क को स्वीकार करें और किसी व्यक्ति को ईमानदार बनाने के लिये उसे अधिक वेतन दें तो, श्रीमान्, मेरे विचार से यह एक अनर्गल ही बात होगी। एक ईमानदार आदमी आखिर एक ईमानदार आदमी ही है। यदि वह बीस रुपया मासिक भी पाता है तो एक ईमानदार आदमी ईमानदार ही रहेगा। एक बेईमान आदमी यदि वह बीस हजार रुपया मासिक भी पाता है तो वह बेईमान ही रहेगा। मैं यह जानता हूं कि पहले 5,000 रु० पाने वाले कुछ एक्जीक्यूटिव कौंसिलर भी भ्रष्ट पाये गये हैं। मैं यह जानता हूं कि कुछ गवर्नर, जो 10,000 रू. मासिक पाते रहे हैं और कुछ वायसराय, जो 20,000 रु० मासिक पाते रहे हैं, भ्रष्ट पाये गये हैं। इस सभा में और देश में मेरे कई मित्र यह जानते हैं कि कई वायसराय, जो 20,000 रु० मासिक पाते रहे हैं, भ्रष्ट सिद्ध हुये हैं और वे घूस लेते रहे हैं और कुछ गवर्नर भी ऐसा करते रहे हैं। श्रीमान्, मैं उनके नाम नहीं बताना चाहता हूं परन्तु मैं जानता हूं कि यह सभा मुझसे सहमत है। इसलिये यह कहना गलत और तर्कविरुद्ध है और मैं इसे कभी स्वीकार नहीं कर सकता कि आपको किसी व्यक्ति को ईमानदार बनाने के लिये उसे अधिक वेतन देना चाहिये। मैं ऐसे लोगों को जानता हूं जो केवल 15 रु० अथवा 20 रु० मासिक पाते हैं परन्तु ईमानदार हैं यद्यपि वे बहुत यत्न करने पर भी अपने परिवार का भरण-पोषण नहीं कर सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति कम वेतन पाता है तो वह अपने घर का खर्च उसी के अनुसार चला लेता है। यदि आप किसी व्यक्ति को अधिक ईमानदार बनाने के लिये ही उसे अधिक वेतन देना चाहते हैं तो मैं इस सुझाव को कभी भी स्वीकार नहीं कर सकता। जहां कहीं इसे स्वीकार किया गया है वहां असफलता ही हुई है। इसलिये मुझे खेद है कि मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर

के.टी. शाह ने अपने संशोधन को उपस्थित करते हुये जिस तर्क को उपस्थित किया है उसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता हूं, यद्यपि सिद्धान्ततः यह एक प्रशंसनीय प्रस्ताव प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति को ईमानदार बनाने के लिये उसे अधिक वेतन देना चाहिये। मैंने अपने सार्वजनिक जीवन में देखा है कि अधिक वेतन पाने वाले सरकारी कर्मचारी क्या करते रहे हैं। मैं जानता हूं कि वे कितने भ्रष्ट रहे हैं। इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं अपने माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन का घोर विरोध करता हूं।

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं पहले अपने माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह द्वारा उपस्थित संशोधन संख्या 1259 को उठाऊंगा। उनके संशोधन में यह कहा गया है कि भारतीय गणराज्य के उप-प्रधान के लिये एक सरकारी निवास-गृह होना चाहिये, उप-प्रधान के परिलाभ और भत्ते संसद् द्वारा निश्चित किये जाने चाहियें और जब तक यह न किया जाये उसका वेतन 4,500 रु० होना चाहिये और उसका वेतन उसकी पदावधि में कम न किया जाना चाहिये तथा पांच वर्ष की पदावधि में वह जिस उच्च पद पर आरूढ़ रहा है उसकी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये उसे अवकाश ग्रहण करने पर उत्तर-वेतन दिया जाना चाहिये। इस संशोधन का समर्थन करने के लिये मैं यहां उपस्थित हुआ हूं। मुझसे पहले बोलने वाले वक्ता महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा ने कहा है कि जब विधान के 79वें अनुच्छेद में इसका उल्लेख हो चुका है तो फिर उप-प्रधान के वेतन का उल्लेख करने की क्या आवश्यकता है? मैंने तुरंत ही 79वें अनुच्छेद को निकाला और देखा कि उप-प्रधान के वेतन का कहीं भी उल्लेख नहीं है। उत्तर-सभा तथा अवर-सभा, राज्य-परिषद् तथा लोक-सभा के सभापति, उपसभापति, अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के वेतनों का उल्लेख किया गया है। श्रीमान्, ये दो अलग-अलग बातें हैं कि वह उप-प्रधान भी है और राज्य-परिषद् का सभापति भी है। वह उपाध्यक्ष निर्वाचित होगा और पद-कारणात् राज्य-परिषद् का सभापति होगा। श्रीमान्, इंग्लैण्ड में हम क्या देखते हैं? वहां लार्ड चांसलर होता है, जो लार्ड सभा का सभापति होता है। साथ ही लार्ड चांसलर न्यायाधीश-वर्ग में सर्वोच्च अधिकारी होता है। उसका पद इंग्लैण्ड के लार्ड चीफ जस्टिस के पद से भी ऊंचा होता है। वह लाड्र्स सभा के सभापति की हैसियत से 4,000 पौंड वेतन पाता है और देश के सर्वोच्च न्यायाधीश के नाते 6,000 पौंड पाता है। इस प्रकार उसका कुल वेतन 10,000 पौंड होता है। जब वह अवकाश ग्रहण कर लेता है तो वह 4,000 पौंड उत्तर-वेतन पाता है। श्रीमान्, इतने उच्च पद की प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये उसे यह सब कुछ दिया जाना चाहिये और भारतीय गणराज्य के उप-प्रधान के

[श्री तजम्मुल हुसैन]

विधान में होना चाहिये। इसी कारण मैं इस संशोधन का समर्थन करने के लिए उपस्थित हुआ हूं।

अब मैं अपने माननीय मित्र प्रोफ़ेसर के.टी. शाह द्वारा उपस्थित दूसरे संशोधन को उठाता हूं। मैं इस संशोधन का भी समर्थन करता हूं। इस संशोधन में यह कहा गया है। इसके पहले मैं अनुच्छेद 56 से कुछ शब्द पढ़ूंगा:

> "(ख) उपप्रधान . . . अपने पद से असामर्थ्य अथवा विश्रम्भाभाव के लिये निष्कासित किया जा सकेगा।" वह और किसी कारण से निष्कासित न किया जा सकेगा। मेरे माननीय मित्र प्रोफ़ेसर के.टी. शाह के संशोधन में इसका उल्लेख है कि इन दो बातों के अतिरिक्त कुछ और भी होना चाहिये। उनका संशोधन स्वीकार होने पर खण्ड इस प्रकार हो जायेगा:
>
> "उप-प्रधान . . . अपने पद से यथाविधि प्रमाणित कारण से, अथवा यथाविधि स्थापित विधान के खण्डन के लिये अथवा किसी ऐसे अपराध के कारण दण्डित होने के लिए जिसे प्रधान के, उप-प्रधान के अथवा संसद् के सदस्य के पद के निर्वाचन के लिये अयोग्यता समझा जाता हो, अथवा यथाविधि प्रमाणित शारीरिक अथवा मानसिक अयोग्यता के लिए अथवा यथाविधि सिद्ध घूसखोरी और भ्रष्टाचार के लिये निष्कासित किया जा सकेगा।"

मेरे विचार से, श्रीमान्, इस साधारण विषय के सम्बन्ध में किसी तर्क की आवश्यकता नहीं हं। ये सब बातें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और ये विधान के अनुच्छेद 56 (ख) में प्रविष्ट की जानी चाहियें। इसलिए मैं प्रोफ़ेसर के. टी. शाह के इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

अब मैं अपने माननीय मित्र श्री कामत के संशोधन को उठाता हूं। श्रीमान्, मुझे इसका खेद है कि मुझे इसका विरोध करना पड़ रहा है। इस सम्बन्ध में मैं, यह चाहता हूं कि, श्रीमान्, आप अपना निर्णय दें। हम यह देखते हैं। कि हमारे माननीय मित्र श्री कामत ने पांच स्पष्टत: भिन्न संशोधनों को एक ही संशोधन में मिलाकर भेजा है।

**श्री एच.वी. कामत:** मुझे इसका खेद है कि इस संशोधन को उपस्थित करते समय मैंने जो कुछ कहा उसे मेरे माननीय मित्र मि. तजम्मुल हुसैन नहीं समझे। मैंने यह कहा था कि मैंने इन्हें चार पृथक संशोधनों के रूप में भेजा था।

परन्तु वे संशोधनों की पुस्तक में एक ही संशोधन के रूप में छपे हैं। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। मैंने इन चार संशोधनों में से केवल एक को उपस्थित किया है।

***उपाध्यक्षः** श्री कामत ने अपने संशोधन का केवल तीसरा भाग उपस्थित किया है। उन्होंने अन्य भाग उपस्थित नहीं किये हैं।

**श्री तजम्मुल हुसैनः** दुर्भाग्य से जब श्री कामत ने अपना संशोधन उपस्थित किया था उस समय मैं सभा में उपस्थित नहीं था। इसलिए मुझे यह ज्ञात न था। कि वास्तव में उन्होंने क्या उपस्थित किया। मैं यह जानना चाहता हूं कि उन्होंने एक ही संशोधन उपस्थित किया है अथवा सभी संशोधन?

***उपाध्यक्षः** केवल तीसरा भाग।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** एक ही संशोधन? तब मुझे उसके विरोध में कुछ नहीं कहना है। यदि उन्होंने सभी संशोधन उपस्थित किये होते तो मैं आपसे निर्णय के लिये कहता। यह सम्भव है दफ़्तर की गलती के कारण हुआ होगा। इससे मुझे कोई मतलब नहीं हैं। प्रत्येक संशोधन स्पष्ट तथा पृथक् रूप से उपस्थित किया जाना चाहिये।

अब मैं अपने माननीय मित्र मि. महबूब अली बेग द्वारा उपस्थित संशोधन संख्या 1269 को उठाता हूं। मैं इसका विरोध करता हूं। वे यह कहते हैं कि अनुच्छेद 56 के परादिक के खण्ड (ख) में "परिषद् के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत ने पारण किया हो तथा जिसे लोक-सभा की स्वीकृति प्राप्त हो" शब्दों के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये: "परिषद् के कुल सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई सदस्यों ने...." आदि। वे यह चाहते हैं कि जब उप-प्रधान के विरुद्ध दोषारोप का पुरोधान किया जाये तो दो-तिहाई सदस्यों का बहुमत होना चाहिए। श्रीमान्, कल प्रधान के विरुद्ध दोषारोप के प्रस्ताव के सम्बन्ध में मैंने कहा था कि प्रधान बहुसंख्यक दल के हाथों में कठपुतली न होना चाहिए और कम से कम दो-तिहाई सदस्यों का बहुमत होना चाहिए। आज मैं यह कह रहा हूं कि केवल बहुमत ही पर्याप्त होगा। इसका कारण कल मैंने जो बातें कही थीं उनसे भिन्न है। इसका कारण यह है कि वह केवल सभा के अध्यक्ष के रूप में काम करेगा। वह राज्य-परिषद् का सभापति होगा। सभ्य संसार में सब जगह तथा भारत में भी संसद् में तथा प्रान्तीय विधान-मण्डलों में आप देखेंगे कि अध्यक्ष सामान्य

[श्री तजम्मुल हुसैन]

वेतन का उल्लेख बहुमत से हटाया जा सकता है। इसलिये उसके लिये यह आवश्यक है कि उसे लोगों के बहुमत का विश्वास प्राप्त हो। इसलिये मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं अन्यथा वह बहुत ही स्वेच्छाचारी हो जायेगा। सभा में एक पक्ष में एक मतदाता भी अधिक होने से उसका बहुमत हो जायेगा और इसलिये उसे सारी सभा की रक्षा करनी होगी। इस कारण मैं इसका विरोध करता हूं।

आगे संशोधन संख्या 1274 आता है जिसे मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने उपस्थित किया था। वे चाहते हैं कि अनुच्छेद 56 के परादिक (ग) में "अथवा पदत्याग करने अथवा पद से हटाये जाने पर भी, जैसी भी दशा हो," शब्द जोड़ दिये जायें। इसे स्वीकार करने से खण्ड इस प्रकार हो जायेगा:

> "उप-प्रधान, अपनी पदावधि समाप्त हो जाने अथवा पदत्याग करने अथवा पद से हटाये जाने पर भी, जैसी भी दशा हो, अपने उत्तराधिकारी के पद-प्रवेशन तक पदारूढ़ रहेगा।"

मैं इसका घोर विरोध करता हूं। इस खण्ड (ग) का अर्थ केवल यह है कि जब उसकी पदावधि समाप्त हो जाये और दूसरा निर्वाचन हो रहा हो तथा उस समय तक उसका उत्तराधिकारी न मिल सका हो तो वह अपने उत्तराधिकारी के यथोचित रूप से प्राप्त होने तक और पदासीन होने तक अपने पद पर आरूढ़ रहेगा। परन्तु यदि उप-प्रधान अथवा राज्य-परिषद् का सभापति घूसखोरी आदि जैसे किसी कारण से निष्कासित किया गया हो तो हम नहीं चाहते कि वह एक मिनट के लिये भी पदारूढ़ रहे। मैं उस सभा में बैठना पसन्द न करूंगा जिसका सभापति घूसखोरी के लिये दोषी ठहराया गया हो। उसे तुरन्त ही अपना स्थान रिक्त कर देना चाहिये। पदत्याग के संबंध में भी वह तभी पदत्याग करेगा जब वह अयोग्य हो जायेगा अथवा पदत्याग करने के लिये बाध्य किया जायेगा। इस दशा में भी हम नहीं चाहते कि वह पदारूढ़ रहे। मैं इससे सहमत हूं कि जब पांच वर्ष के उपरान्त उसकी पदावधि समाप्त हो जाये तो वह अपने उत्तराधिकारी के आने तक पदारूढ़ रहे परन्तु यदि वह हटाया गया है तो उसे तुरन्त ही अपना स्थान छोड़ देना चाहिये। इस कारण मैं मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन का घोर विरोध करता हूं।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव:** श्रीमान्, उप-प्रधान की दो प्रकार की क्षमतायें होंगी। एक तो वह प्रधान के रूप में भी कार्य कर सकेगा और दूसरे राज्य-परिषद् के अध्यक्ष के रूप में काम करेगा। उसकी प्रधान के रूप में कार्य करने की

क्षमता के संबंध में यह स्पष्ट है कि यदि वह विधान का खण्डन करता है तो वह अनुच्छेद 50 की परिधि के अन्दर लाया जा सकेगा और उस पर प्राभियोग लगा कर उसे प्रधान पद से निष्कासित किया जा सकेगा। जब वह अनुच्छेद 56 के अनुसार राज्य-परिषद् के अध्यक्ष के रूप में काम करेगा और उसे हटाने का प्रश्न उठेगा तो उस पर वही प्रावधान लागू किये जा सकेंगे जो लोक-सभा के अध्यक्ष पर लागू किये जायेंगे। अनुच्छेद 77 (ग) को पढ़ने से यह ज्ञात हो जायेगा कि लोक-सभा के अध्यक्ष और उप-प्रधान के संबंध में एक ही प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है। उप-प्रधान राज्य-परिषद् के अध्यक्ष-पद को ग्रहण करेगा और मेरे विचार से किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। मैं इस सभा का समय लेने के लिये केवल इसलिये उपस्थित हुआ हूं कि मेरा ध्यान एक विषय की ओर आकृष्ट हुआ है और मैं उस पर जोर देने के लिये चिंतित हूं। वह यह है कि यदि उप-प्रधान पर अनुच्छेद 50 के अधीन प्राभियोग लगाया गया और वह सिद्ध हो गया तो वह अवश्य ही पदच्युत हो जायेगा। इस संबंध में मुझे यह आश्वासन दिया गया है कि स्थिति स्पष्ट है और अनुच्छेद 56 में इसे प्रावहित न करके किसी अन्य प्रकार इसकी व्यवस्था की जायेगी। मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी परन्तु मैंने इसी आश्वासन पर उसे उपस्थित नहीं किया कि नियमों में इसकी व्यवस्था की जायेगी। मैं इस विषय पर केवल अधिकारियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने के लिये बोल रहा हूं कि कोई ऐसी व्यवस्था करना आवश्यक है कि बिना एक प्रस्ताव द्वारा विश्रम्भाभाव प्रकट किये हुये, जैसा कि खण्ड (ख) में प्रावहित है, उप-प्रधान को अनुच्छेद 50 के अधीन प्राभियोग के सिद्ध होने पर निष्कासित किया जा सके। उप-प्रधान पर लगाये हुये प्राभियोग का सिद्ध होना ही उसके निष्कासन के लिये, मेरे विचार से, पर्याप्त है और इसलिये इसे स्पष्ट कर देना चाहिये। मैं केवल इस विषय की ओर संकेत करना चाहता था ताकि यह आश्वासन मिल सके कि नियमों में इसकी व्यवस्था की जायेगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 56 के संबंध में जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं, उन्हें स्वीकार न कर सकने के लिये मुझे खेद है। किन्तु संशोधनों के प्रस्तावकों ने जो तर्क उपस्थित किये हैं उनमें से कुछ का मैं उत्तर देना चाहता हूं। श्रीमान्, पहला संशोधन प्रोफेसर शाह ने उपस्थित किया था जिसमें यह कहा गया था कि उप-प्रधान के वेतन और उत्तर-वेतन के संबंध में विधान में कोई प्रावधान होना चाहिये। प्रोफेसर शाह ने इस प्रश्न को प्रधान पद के संबंध में भी उठाया था और मैं विधान में इस प्रकार के प्रावधान को रखने के विरुद्ध अपना तर्क उपस्थित कर चुका हूं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): क्या मैं यह बता सकता हूं कि द्वितीय अनुसूची में एक स्पष्ट प्रावधान रख दिया गया है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इस संबंध में मैं अपनी स्थिति स्पष्ट कर चुका हूं और जो कुछ मैं कह चुका हूं उसे मैं नहीं दुहराऊंगा। अनुच्छेद 56 के उपखण्ड (ख) के संबंध में कई बातें कही गई हैं। पहली बात यह कही गई है कि "घूसखोरी, भ्रष्टाचार आदि" शब्दों को जोड़ देना चाहिये। मेरा तो यह विचार है कि इस प्रकार के विशिष्ट शब्दों की आवश्यकता नहीं है। विश्रम्भाभाव का आशय बहुत वृहत् है और उसमें भ्रष्टाचार, घूसखोरी आदि आ जाते हैं। इसलिये मेरे विचार से वह संशोधन अनावश्यक है। दूसरी बात यह कही गई है कि उप-प्रधान का निष्कासन उन्हीं नियमों के अनुसार होना चाहिये जिन नियमों के अनुसार प्रधान का निष्कासन होगा अर्थात् इसके लिये दो-तिहाई सदस्यों का बहुमत होना चाहिये। श्रीमान्, इस संबंध में मैं सभा का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूं कि यद्यपि विधान में उप-प्रधान का उल्लेख है परन्तु वह वास्तव में राज्य-परिषद् का सभापति है। दूसरे शब्दों में, जहां तक उसके प्रकार्यों का संबंध है, वह लोक-सभा के अध्यक्ष के समान ही समझा जायेगा। इसलिये अनुच्छेद 56 के उपखण्ड (ख) के प्रावधानों की तुलना करने अथवा उन पर आलोचना करते समय उन्हें अध्यक्ष के निष्कासन संबंधी प्रावधानों से मिला लेना चाहिये। ये प्रावधान अनुच्छेद 77 (ग) में है। यदि इस अनुच्छेद 56 (ख) की तुलना अनुच्छेद 77 (ग) से की जाये तो सदस्य महोदय देखेंगे कि स्थिति एकसमान है। जिन नियमों के अनुसार अध्यक्ष का निष्कासन होगा उन्हीं नियमों के अनुसार उप-प्रधान का भी निष्कासन होगा। मैं यह कह चुका हूं कि यह वास्तव में राज्य-परिषद् के सभापति का ही दूसरा नाम है। इसलिये दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत की मांग अनावश्यक है।

इसके अतिरिक्त मेरे मित्र श्री कामत ने एक प्रश्न उठाया है जो कुछ हद तक चुलबुलाहट पैदा करने वाला प्रश्न है। उन्होंने यह कहा है कि इस अनुच्छेद के उपखण्ड (ख) में बहुमत का उल्लेख है किन्तु लोक-सभा के संबंध में इस प्रकार की शब्दावली का प्रयोग नहीं किया गया है। यह विषय बहुत सरल है। जहां कहीं हमने यह कहा है कि कोई संकल्प पारित होना चाहिये तो यह समझा जाता है कि वह सभा के बहुमत से पारित होगा। जब विशेष प्रकार के बहुमत का उल्लेख करना होता है तभी उसका विशेष रूप से उल्लेख किया जाता है,

अन्यथा नहीं। मैं यह स्वीकार करता हूं कि उनका तर्क यह है कि यद्यपि हमने राज्य-परिषद् के संबंध में किसी विशेष बहुमत का उल्लेख नहीं किया है किन्तु हमने इस शब्दावली का प्रयोग किया है। इस प्रकार का विभेद क्यों किया गया है? राज्य-परिषद् के संबंध में और लोक सभा के संबंध में जो शब्द प्रयोग किये गये हैं उनमें अन्तर क्यों रखा गया है? यह अन्तर इसलिये रखा गया है कि अनुच्छेद में 'तत्कालीन' शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'तत्कालीन' शब्द महत्त्वपूर्ण है। 'तत्कालीन' शब्द का संकेत उन सदस्यों की ओर है जिनके स्थान रिक्त न हो गये हों। उसका अर्थ उन सदस्यों से नहीं है जो उपस्थित हों और मत दे रहे हों। इस व्यवस्था के कारण कि संसद् के सभी ऐसे सदस्यों के मतों की गणना करनी होगी जिनके स्थान रिक्त न हो गये हों, हमने यह कहा है कि "तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत ने पारण किया हो"।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या इसका अर्थ राज्य-परिषद् के समस्त सदस्यों से है?

**माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जी हां। 'तत्कालीन' शब्द आवश्यक है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, स्पष्टीकरण के उद्देश्य से मैंने एक बात पूछनी है। कल हमने अनुच्छेद 50 में दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत के स्थान में "बहुमत द्वारा पारित" शब्द रखे हैं। अर्थ स्पष्ट करने के लिये क्या हम यहां भी ऐसे ही शब्द नहीं रख सकते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं इसे स्पष्ट कर देता हूं। इसका कारण यह है कि हमें 'तत्कालीन' शब्द प्रयोग करना पड़ा है। वह इसलिए प्रयोग किया गया है कि हमें उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों तथा उन सदस्यों में अन्तर करना है जिनके स्थान रिक्त न हुए हों और जो मत देने वाले हों।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मैं यह समझूं कि जब तक इस संबंध में स्पष्टीकरण न किया हुआ हो, संकल्प के पारण होने अथवा स्वीकार होने का यह अर्थ होगा कि वह सामान्य बहुमत से स्वीकार हुआ है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जी हां। अब मैं अपने मित्र मि. ताहिर के प्रश्न को अर्थात् संशोधन संख्या 1266 को उठाता हूं। यदि मैं उनको ठीक समझ पाया हूं तो उनका यह कहना है कि विश्रम्भाभाव के संकल्प के लिये दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत की आवश्यकता होगी। यह अच्छा होगा या बुरा मैं कह नहीं सकता। मैं केवल यह कह सकता हूं कि यह प्रावधान भी उन्हीं

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

प्रावधानों के समान है जो अध्यक्ष के प्रति विश्रम्भाभाव के संबंध में हैं। उनमें भी हमने यह नहीं कहा है कि दो-तिहाई सदस्यों के अथवा सभा में उपस्थित दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से संकल्प का पारण होगा।

अब मैं अपने मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद का संशोधन उठाता हूं। वे यह चाहते हैं कि खण्ड (ग) में "पदावधि समाप्त हो जाने" शब्दों के बाद "पदत्याग" आदि शब्द प्रविष्ट किये जायें। यह संशोधन बिल्कुल अनावश्यक है क्योंकि इस अनुच्छेद में आकस्मिक रूप से रिक्त हुये स्थान की पूर्ति के लिये कोई व्यवस्था नहीं है। आकस्मिक रूप से रिक्त हुये स्थान के लिये कोई अन्य व्यवस्था करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जब कभी इस प्रकार स्थान रिक्त होगा तो अनुच्छेद 75 के उपखण्ड (1) के अधीन उपसभापति उसे ग्रहण कर लेगा। इसलिये इस प्रकार का संशोधन अनावश्यक है।

श्रीमान्, मुझे आशा है कि इस स्पष्टीकरण के उपरान्त सभा इस अनुच्छेद को इसके मौलिक रूप में स्वीकार कर लेगी।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 56 की गणना अनुच्छेद के खण्ड (1) के रूप में की जाये और उसके बाद निम्नलिखित नये खण्ड जोड़ दिये जायें:

'(2) The Vice-President shall have an official residence and there shall be paid to the Vice-President such emoluments and allowances, not exceeding those granted to the President as may be determind by Parliament by law, and until provision in that behalf is made by Act of Parliament, the Vice-President shall be paid a monthly salary of Rs. 4,500.

(3) The emoluments and allowances of the Vice-President shall not be diminished during his term of office.

(4) Every Vice-President, on completion of his term of office and retirement, shall be given such pension

or allowance during the rest of his life as Parliament may by law determine, provided that, during the lifetime of any such Vice-President in retirement and pensioned, such pension or allowance shall not be diminished.' "

[(2) उप-प्रधान का एक सरकारी निवास-गृह होगा और उसे ऐसे परिलाभ और भत्ते दिये जायेंगे जो प्रधान को दिये जाने वाले परिलाभ और भत्तों से अधिक न होंगे और जिन्हें संसद् कानून द्वारा निश्चित करेगी और जब तक संसद् के कानून द्वारा व्यवस्था न की जाये उप-प्रधान को 4,500 रु० का मासिक वेतन दिया जायेगा।

(3) उप-प्रधान के परिलाभ तथा भत्ते उसकी पदावधि में कम नहीं किये जायेंगे।

(4) प्रत्येक उप-प्रधान की उसकी पदावधि समाप्त होने पर तथा उसके अवकाश ग्रहण करने पर उसके अवशेष जीवन-काल में ऐसा उत्तर-वेतन तथा भत्ता दिया जायेगा, जिसे संसद् कानून द्वारा निश्चित करे, परन्तु किसी ऐसे अवकाश ग्रहण किये हुये और उत्तर-वेतन पाने वाले उप-प्रधान के जीवन-काल में यह उत्तर-वेतन अथवा भत्ता कम नहीं किया जायेगा।]

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 56 के परादिक के पैरा (ख) में 'be removed from his office for' (हिन्दी में—अपने पद से) शब्दों के बाद निम्नलिखित रखा जाये:

'reason duly proved, or for any violation of the Constitution duly established, or for conviction for any offence constituting a disqualification for election to the office of a President, Vice-President or member of Parliament, or for physical or mental incapacity duly certified, or for bribery and corruption, duly proved.' "

(यथाविधि प्रमाणित कारण से अथवा यथाविधि स्थापित विधान के खण्डन के लिये, अथवा किसी ऐसे अपराध के कारण दण्डित होने के कारण

[उपाध्यक्ष]

जिसे प्रधान के, उप-प्रधान के अथवा संसद् के सदस्य के पद से निर्वाचन के लिये अयोग्यता समझा जाता हो, अथवा यथाविधि प्रमाणित शारीरिक अथवा मानसिक अयोग्यता के लिये अथवा यथाविधि सिद्ध घूसखोरी और भ्रष्टाचार के लिये।)

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 56 के परादिक के खण्ड (ख) में 'agreed to by the House of the People' (जिसे लोक-सभा की स्वीकृति प्राप्त हो) शब्दों के स्थान में 'agreed to by a similar resolution of the House of the People' (जिसे लोक-सभा ने इसी प्रकार के संकल्प द्वारा स्वीकृति प्रदान की हो) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 56 के परादिक के खण्ड (ख) में 'all the then members of the Council' (परिषद् के तत्कालीन समस्त सदस्यों) शब्दों के स्थान में 'the members of the Council present and voting' (परिषद् के उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 56 के परादिक के खण्ड (ख) में 'all the then members of the Council and agreed to by the House of the People' (परिषद् के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत ने पारण किया हो तथा जिसे लोक-सभा की स्वीकृति प्राप्त हो) शब्दों के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'not less than two-thirds of the total membership of the Council and agreed to by the House of the People by a majority of not less than two-thirds of the total membership.'"

(परिषद् के कुल सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत ने पारण किया हो तथा जिसे लोक-सभा के कुल सदस्यों में से दो-तिहाई सदस्यों की स्वीकृति प्राप्त हो।)"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 56 के परादिक के खण्ड (ख) में 'fourteen days' notice' (सूचना कम से कम चौदह दिन पूर्व) शब्दों के स्थान में 'fourteen days' notice in writing signed by not less than thirty members of the Council of States' (लिखित सूचना राज्य-परिषद् के कम से कम तीस सदस्यों द्वारा अपने हस्ताक्षरों से कम से कम चौदह दिन पूर्व दे दी गई हो) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 56 के परादिक (ग) में 'term' (पदावधि समाप्त हो जाने) शब्दों के बाद 'or resignation or removal, as the case may be' (अथवा पदत्याग करने अथवा पद से हटाये जाने पर भी, जैसी भी दशा हो) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 56 विधान का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*अनुच्छेद 56 विधान का अंग बना लिया गया।*

---

## अनुच्छेद 57

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 57 पर आते हैं।

सभा के सम्मुख यह प्रस्ताव है कि अनुच्छेद 57 विधान का अंग बना लिया जाये।

अभी तक केवल दो संशोधनों की सूचना मिली है अर्थात् संशोधन संख्या 1275 और 1276। मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन संख्या 1275 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती क्योंकि इसका प्रभाव यह होगा कि प्रावधान का ही शून्यन हो जायेगा।

[उपाध्यक्ष]

संशोधन संख्या 1276, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है, उपस्थित किया जा सकता है।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 57 में 'the functions of the President' (प्रधान के) शब्दों के बाद 'or Vice-President' (अथवा उप-प्रधान के) शब्द रखे जायें।"

संशोधित रूप में अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

"Parliament may make such provision as it thinks fit for the discharge of the functions of the President or Vice-President in any contingency not provided for in this Chapter."

(इस अध्याय में अप्रावहित किसी संभाव्यता में प्रधान के अथवा उप-प्रधान के प्रकार्य पालनार्थ संसद् जैसा उचित समझे वैसा प्रावधान बना सकेगी।)

श्रीमान्, मेरी समझ में नहीं आता है कि प्रधान के प्रकार्य-संबंधी प्रावधान को निश्चित करते समय जब किसी भी संभाव्यता की व्यवस्था की गई है तो उप-प्रधान का उल्लेख क्यों नहीं किया गया है। ऐसी संभाव्यता भी उपस्थित हो सकती है जब प्रधान किसी कारण से, जिनमें सभा का अविश्वास और प्राभियोग का सिद्ध होना भी सम्मिलित है, अपने प्रकार्यों का पालन न कर सकता हो और उप-प्रधान विक्षिप्त हो गया हो। ऐसी संभाव्यता बिल्कुल असंभव नहीं है और इसलिये मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसी साधारण संभाव्यता मसौदाकारों के ध्यान में क्यों नहीं आई है। मसौदाकार महोदय कई स्थानों में अपने ही मसौदे में अपने ही संशोधन उपस्थित करते रहे हैं और इसकी चिन्ता करते रहे हैं कि अन्य लोग भी उनका समर्थन करें और अन्य लोगों के संशोधनों से जब उन्हें इसका संकेत मिलता है कि पहले मसौदे में कुछ बातें रह गई हैं तो वे अपने संशोधनों को उपस्थित करते हैं जिनको एक व्यक्ति के अतिरिक्त सारी सभा का समर्थन प्राप्त होता है। परन्तु इस विषय के संबंध में मेरी मसौदाकार महोदय को नेक सलाह यही है कि वे यह न कहें कि यह संशोधन अनावश्यक है।

मैंने अभी एक विशेष प्रकार की सम्भाव्यता की ओर संकेत किया था और यह कहा था कि जब ये दोनों उच्च पदाधिकारी अपने प्रकार्यों का पालन न कर सकें अथवा विधान के अधीन उन्हें उनका पालन करने की आज्ञा न हो तो ऐसी सम्भाव्यता के लिये यह आवश्यक है कि कोई इस प्रकार का प्रावधान रखा जाये:

चूंकि यह विधान का एक अनुच्छेद है इसलिये मैं यह समझता हूं कि इसकी आज्ञा न होनी चाहिये कि किसी सम्भाव्यता के उपस्थित होने पर जो कमी रह जायेगी उसे साधारण कानून द्वारा पूरा किया जायेगा। आप यह कह सकते हैं कि आखिर संसद् तो होगी ही और वह इस प्रकार की सम्भाव्यता के लिये आवश्यक व्यवस्था कर लेगी। परन्तु जब विधान में स्पष्ट रूप से एक प्रावधान रखा गया है और संभवत: जानबूझ कर उसमें 'उप-प्रधान' शब्द को स्थान नहीं दिया गया है तो मेरा सभा से यह निवेदन है कि यह बात रह गई है और इस समय हमें इस गलती को दूर कर देना चाहिये। इसलिये अधिक तर्क उपस्थित न करके मैं यह सुझाव रखता हूं कि कम से कम यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाना चाहिये। इससे किसी प्रकार का आक्षेप नहीं होता है और न इससे मसौदाकार की योग्यता, सूझ तथा दूरदर्शिता की ही आलोचना होती है। इसलिये मुझे विश्वास है कि मसौदाकार इसे स्वीकार करने के लिये सहमत होंगे।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** उपाध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसका मैं विरोध करना चाहता हूं। इसके दो कारण हैं। पहला कारण यह है कि अनुच्छेद 57 में यह कहा गया है कि "इस अध्याय में अप्रावहित किसी सम्भाव्यता में प्रधान के प्रकार्य पालनार्थ संसद्, जैसा उचित समझे, वैसा प्रावधान बना सकेगी।" मेरे मित्र प्रोफेसर शाह इसमें "अथवा उप-प्रधान" शब्दों को प्रविष्ट करना चाहते हैं। यदि उनका संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो संसद् को प्रधान के लिये अथवा उप-प्रधान के लिये व्यवस्था करने की शक्ति होगी। वह दोनों के लिये व्यवस्था नहीं कर सकती है। यदि थोड़ी देर के लिये मान लिया जाये कि वह केवल उप-प्रधान के लिये व्यवस्था करती है और प्रधान के लिये कोई व्यवस्था नहीं करती है तो कैसी दशा उत्पन्न हो जायेगी? इसलिये "अथवा" शब्द बिल्कुल गलत है। संसद् यह कह सकती है कि वह केवल उप-प्रधान के लिये व्यवस्था करती है और प्रधान के लिये अपने प्रकार्यों का पालन करने के लिये कोई व्यवस्था नहीं करती है।

दूसरी आपत्ति यह है कि यदि "अथवा" शब्द को हटा दिया जाये और उसके स्थान में "और" शब्द को रखा जाये, और यदि प्रोफेसर शाह का आशय

[श्री तजम्मुल हुसैन]

भी यही है, तो मेरा यह निवेदन है कि उप-प्रधान के रूप में उप-प्रधान को किसी भी प्रकार के प्रकार्यों का पालन नहीं करना है। इसलिये उसके प्रकार्यों के पालन के संबंध में संसद् अथवा कोई भी व्यक्ति क्या व्यवस्था कर सकता है? वह केवल राज्य-परिषद् के सभापति के रूप में काम करेगा। इसलिये मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं और इसका कारण यह है कि उसे किसी प्रकार के प्रकार्यों अथवा कर्त्तव्यों का पालन नहीं करना है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे विचार से इस संशोधन को उपस्थित करने के पूर्व प्रोफेसर के.टी. शाह ने इस पर उतना विचार नहीं किया जितना उन्हें करना चाहिये था। अनुच्छेद 57 में उप-प्रधान का जानबूझ कर उल्लेख नहीं किया गया है क्योंकि, जैसा कि मि. तजम्मुल हुसैन अभी बता चुके हैं, उसके मुख्य प्रकार्य राज्य-परिषद् के सभापति के हैं और वे अनुच्छेद 75 (1) में पर्याप्त रूप से प्रावहित हैं और उसमें इसका भी उल्लेख है कि एक उप-सभापति भी होगा जो उनकी अनुपस्थिति में कार्य करेगा। इसलिये अनुच्छेद 57 में इस प्रकार के संशोधन को प्रविष्ट करना आवश्यक है।

मेरे मित्र प्रोफेसर शाह ने कहा है कि जब कभी मैं देखता हूं कि मसौदे में कोई दोष है तो मैं बहुत से विचार अपने मित्रों के संशोधनों से ले लेता हूं। मेरे विचार से प्रोफेसर के.टी. शाह ने एक प्रकार से अप्रत्यक्ष रूप से मेरी प्रशंसा ही की है क्योंकि इमर्सन ने कहा है कि "प्रतिभाशाली व्यक्ति सबसे अधिक आभारी व्यक्ति है।" मैं अवश्य ही अपने मित्रों का आभारी हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 57 में 'the functions of the President' (प्रधान के) शब्दों के बाद 'or Vice-President' (अथवा उप-प्रधान के) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** और कोई संशोधन नहीं है। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 57 विधान का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*अनुच्छेद 57 विधान का अंग बना लिया गया।*

## अनुच्छेद 58

***उपाध्यक्ष:** अब हम आगे के अनुच्छेद को, अर्थात् अनुच्छेद 58 को, उठाते हैं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 58 विधान का अंग बना लिया जाये।"

मेरे सामने कई संशोधन हैं जिनमें से केवल संशोधन संख्या 1281 को उपस्थित करने की आज्ञा दी जाती है। अन्य संशोधन शाब्दिक हैं और इसलिए उन्हें उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती।

(संशोधन संख्या 1281 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** अब मैं इस अनुच्छेद पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 58 विधान का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*अनुच्छेद 58 विधान का अंग बना लिया गया।*

---

## अनुच्छेद 59

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 59 विधान का अंग बना लिया जाये।"

मेरे सामने कई संशोधन हैं। संशोधन संख्या 1282 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती क्योंकि इसके प्रभाव से अनुच्छेद का ही शून्यन हो जायेगा। संशोधन संख्या 1282-ए उपस्थित किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 1282-ए उपस्थित नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 1283 और 1284 । इन पर भी कई संशोधनों की सूचना मिली है परन्तु उन्हें उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती क्योंकि वे शाब्दिक हैं। संशोधन संख्या 1285 उपस्थित किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 1285 उपस्थित नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 1286 ।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि:

"अनुच्छेद 59 का खण्ड (3) निकाल दिया जाये।"

श्रीमान्, मेरे विचार से केवल प्रधान को ही मृत्यु-दण्ड के स्थगन, परिहरण अथवा लघ्वादेशन की शक्ति प्राप्त होनी चाहियें। वह राज्य का सर्वोच्च प्रमुख है। इसलिये उसे सर्वोच्च शक्तियां भी प्राप्त होनी चाहियें। मेरी यह सम्मति है कि राज्यों के नरेशों को अथवा प्रान्तीय गवर्नरों को यह सर्वोच्च शक्ति नहीं प्राप्त होनी चाहिये। संघानीय विषयों के विरुद्ध किये हुये अपराधों के संबंध में संघान का प्रधान ही सर्वोच्च प्राधिकारी समझा जाना चाहिये। मेरा यह कहना है कि इस संबंध में कई लोगों के प्रति वफ़ादारी न होनी चाहिये। जब राज्य संघान में सम्मिलित हुये थे तो उन्होंने अपने यहां संघानीय कानूनों के प्रवर्तन को स्वीकार किया था और इस सीमा तक इसे भी स्वीकार किया था कि संघानीय सरकार का पद सर्वोच्च है और संघानीय सरकार के प्रतिनिधि संघान के प्रधान को ही ऐसा प्राधिकारी समझा जा सकता है जो क्षमण प्रदान कर सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रधान ही राज्यों के लोगों को क्षमण प्रदान करता है। केन्द्र का अस्तित्व बनाये रखने के लिये ये बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है और इसलिये क्षमण की शक्ति केवल संघानीय सरकार के प्रभुत्व अर्थात् भारतीय संघ अथवा भारतीय गणराज्य के प्रधान को ही दी जा सकती है। यदि राज्यों के नरेशों को उन विषयों के विरुद्ध अपराधों के संबंध में भी शक्ति प्राप्त हो जिनको उन्होंने स्वयं संघान को समर्पित कर दिया है तो इसका अर्थ यह होगा कि उन्होंने एक हाथ से जो कुछ दिया है उसे वे दूसरे हाथ से वापस ले रहे हैं, उन विषयों के संबंध में राज्यों का सर्वोच्च अधिकार नहीं रह जाता जिन्हें उन्होंने संघ को समर्पित कर दिया है। संघानीय कानून प्रत्येक नागरिक पर लागू होगा और उसका संघानीय सरकार से अव्यवहित संबंध होगा। संघानीय कानून के भंग होने की दशा में संघान के प्रतिनिधि को ही क्षमण की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। मैं अमेरिका की ओर संकेत कर चुका हूं। इंग्लैण्ड में भी सम्राट् ही, गृह-मन्त्री के परामर्श से, क्षमण प्रदान करता है। राज्य का प्रतिनिधि ही क्षमण प्रदान करता है। पिछले दिनों में, जब देश-विभाजन की कोई चर्चा नहीं थी, यह विचार किया जा रहा था कि केन्द्र अशक्त हो और उसके अधिकार में यातायात, रक्षा, वैदेशिक संबंध जैसे तीन या चार विषय हों और प्रान्त पूर्णतया स्वायत्तशासी हों। अब चूंकि देश का विभाजन हो गया है, इस देश के निवासी, हम लोगों ने अन्तिम रूप से यह निश्चय कर लिया है कि केन्द्र अशक्त न होगा, बल्कि सशक्त होगा, और यथासंभव शक्तिसंपन्न होगा। यदि यही हमारा उद्देश्य है तो केन्द्रीय सरकार के

प्रमुख को यह शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं अपने संशोधन को उपस्थित करता हूं और आशा करता हूं कि इसे पूर्ण सभा का तथा मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर और आपका भी समर्थन प्राप्त होगा।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1287 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती, क्योंकि वह रस्मी है।

(संशोधन संख्या 1288 उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र मि. तजम्मुल हुसैन का प्रस्ताव यह है कि अनुच्छेद 59 के खण्ड (3) को निकाल दिया जाये और इसके लिये उन्होंने यह तर्क उपस्थित किया है कि प्रधान का प्राधिकार सर्वोच्च रहना चाहिये। उनकी यह इच्छा है। इसे कोई अस्वीकार नहीं करता। यदि माननीय सदस्य अनुच्छेद 59 (1) को पढ़ें तो वे देखेंगे कि उसमें कहा गया है कि:

> "किसी अपराध के लिये दोषप्रमाणित किसी व्यक्ति के दण्ड के क्षमण, प्रविलम्बन, प्रास्थगन या परिहरण प्रदान करने की अथवा दण्डादेश का स्थगन, परिहरण या लघ्वादेशन करने की प्रधान को शक्ति होगी...."

इसी प्रकार की शक्तियां गवर्नरों को भी दी गई हैं और वे भी मृत्यु-दण्ड का स्थगन, परिहरण अथवा लघ्वादेशन कर सकते हैं। मेरी सम्मति में यदि प्रान्तीय गवर्नरों को पहले की तरह यह शक्ति दी जाये तो इससे बहुत लाभ होगा क्योंकि क्षमण-संबंधी किसी मामले से, जो उसके सम्मुख रखा जाये, प्रान्त का गवर्नर अधिक परिचित होता है। जहां तक प्रधान का संबंध है, जब इस प्रकार का प्रश्न उसके सामने उपस्थित किया जाता है, उसे पहले गवर्नर से पूछताछ करनी होती है और जब वह देखता है कि गवर्नर ने अपने अधिकार का यथोचित रूप से प्रयोग नहीं किया है तो वह सारे मामले की जांच करता है और फिर अपने अधिकार का प्रयोग करता है। यह उचित ही है कि दण्ड के लघ्वादेशन के संबंध में गवर्नर को भी शक्ति प्राप्त होनी चाहिये और सर्वोच्च शक्ति प्रधान को ही प्राप्त होनी चाहिये। गवर्नर लोकप्रिय गवर्नर होगा और एक प्रकार से वह विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होगा क्योंकि प्रधान-मन्त्री उसे मनोनीत करेगा। यदि वह गलती करेगा, जैसा कि मेरे मित्र को भय है, तो विधान-मण्डल उस पर देख-रेख रख सकता है। इसलिये मेरी यह धारणा है कि विधान के मसौदे में जैसी स्थिति रखी गई है वह बहुत ही संतोषजनक है और हमें चाहिये कि हम उसकी इन शक्तियों को बनाये रखें।

[श्री आर.के. सिधवा]

जहां तक नरेशों का संबंध है, मेरी धारणा स्पष्ट नहीं है। परन्तु मुझे विश्वास है कि राज्यों के विभिन्न विधान-परिषद् जिन विधानों को बनाने जा रहे हैं उनमें वे नरेशों को विधान-मण्डलों के प्रति उत्तरदायी बनायेंगे और उसको भी प्रान्तों के प्रमुखों के समान राज्यों के केवल नाममात्र के प्रमुख बनायेंगे। इस दृष्टि से मैं नरेशों को भी शक्ति देने के पक्ष में हूं, यद्यपि मैं यह कहता हूं कि इस समय मुझे ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है कि नरेशों की स्थिति क्या है। यदि नरेश स्वेच्छाचारी और विधान-मण्डलों के प्रति अनुत्तरदायी बनाये जायें तो मैं कभी नहीं चाहूंगा कि यह शक्ति उन्हें दी जाये। परन्तु यह मानते हुये कि राज्यों के नरेश विधान-मण्डलों के प्रति उत्तरदायी बनाये जायेंगे, मैं इस अनुच्छेद का उस रूप में समर्थन करता हूं जिस रूप में इसे डॉ. अम्बेडकर ने उपस्थित किया है। मृत्यु-दण्ड के लघ्वादेशन की शक्ति बहुत महत्त्वपूर्ण है और हम यह नहीं चाहते कि कोई मृत्यु-दण्ड का मामला सीधे-सीधे प्रधान के सामने रखा जाये। गवर्नर अपने प्रान्त से अच्छी प्रकार परिचित रहता है और अपने प्रधान-मन्त्री से भी परामर्श ले सकता है और इसलिये उसे चाहिये कि इस संबंध में अपनी शक्ति का प्रयोग करे। प्रधान सारे भारत के लिये होगा। यदि इस प्रकार का मामला उसके सम्मुख रखा भी जायेगा तो उसे पहले गवर्नर से पूछताछ करनी होगी और गवर्नर अपने प्रधान-मन्त्री से पूछेगा। इस दृष्टि से मैं मि. तजम्मुल हुसैन के संशोधन का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** क्या डॉ. अम्बेडकर मि. तजम्मुल हुसैन द्वारा उपस्थित इस संशोधन पर कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जी हां, श्रीमान्! यह उचित ही होगा कि मैं अनुच्छेद 59 में सन्निहित योजना की रूपरेखा को कुछ शब्दों में स्पष्ट कर दूं। वह इस प्रकार है: संघानीय कानूनों के अधीन घोषित अपराधों के लिये दिये हुये दण्ड के लघ्वादेशन की शक्ति संघ के प्रधान को प्राप्त होगी और राज्यों के विधान-मण्डलों के बनाये हुये कानूनों के अधीन घोषित अपराधों के लिये दिये हुये दण्ड के लघ्वादेशन की शक्ति राज्य के गवर्नरों को प्राप्त होगी। मृत्यु-दण्ड के संबंध में, चाहे वह संसद् द्वारा पारित कानून के अधीन दिया हुआ हो अथवा राज्यों के किसी कानून के अधीन दिया हुआ हो, लघ्वादेशन की शक्ति प्रधान को तथा संबंधित राज्य को, दोनों को प्राप्त होगी। योजना इस प्रकार है।

मेरे मित्र मि. तजम्मुल हुसैन के संशोधन का उद्देश्य यह है कि गवर्नर को मृत्यु-दण्ड के लघ्वादेशन की जो शक्ति दी गई है वह उससे ले लेनी चाहिये।

उपखण्ड (3) में उस प्रथा का सन्निवेश है, जो इस समय प्रवर्तन में है और जिसके अधीन मृत्यु-दण्ड के लघ्वादेशन की शक्ति गवर्नर और प्रधान दोनों को दी गई है। मसौदा-समिति के सम्मुख कोई ऐसा बलशाली तर्क उपस्थित नहीं किया गया जिसको दृष्टि में रखते हुये यह शक्ति गवर्नरों से वापस ले ली जाती। आखिर अपराध उसी विशेष क्षेत्र में किया जायेगा। गृह-मन्त्री किसी मृत्यु-दण्ड प्राप्त अपराधी से आये हुये दया के लिये प्रार्थना-पत्र के संबंध में गवर्नर को परामर्श देगा और चूंकि उसे उस क्षेत्र की तथा उस मामले की पूरी जानकारी होगी, वह ठीक-ठीक परामर्श दे सकेगा। इसलिये इसे हानिकारक नहीं समझा गया कि जो शक्ति इस समय गवर्नर को प्राप्त है वह उसी के पास रहने दी जाये। किन्तु एक अभिरक्षण रखा गया है। यदि किसी मृत्यु-दण्ड के संबंध में दया के लिये आया हुआ प्रार्थना-पत्र अस्वीकार हो जाये तो इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अधीन अपराधी को इसकी स्वतन्त्रता होगी कि वह दया के लिये प्रधान के पास दूसरा प्रार्थना-पत्र भेजे और उसके यहां अपने भाग्य की परीक्षा करे। मेरे विचार से यदि मसौदे के अनुच्छेद को उसी रूप में स्वीकार कर लिया जाय तो इससे न किसी आधारभूत सिद्धान्त का अधिक हनन होगा और न कोई असुविधा ही होगी।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं मि. तजम्मुल हुसैन के संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 59 का खण्ड (3) निकाल दिया जाये।"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद 59 पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 59 विधान का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*अनुच्छेद 59 विधान का अंग बना लिया गया।*

---

## अनुच्छेद 60

***उपाध्यक्ष:** अब सभा विधान के मसौदे के अनुच्छेद 60 पर विचार करेगी मि. अहमद इब्राहीम संशोधन संख्या 1289 को उपस्थित कर सकते हैं।

***के.टी.एम. अहमद इब्राहीम साहब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): मैंने इस संशोधन पर एक संशोधन की सूचना दी है।

***उपाध्यक्षः** जी हां। मुझे वह अभी मिली है। माननीय सदस्य महोदय उसे उपस्थित कर सकते हैं।

***के.टी.एम. अहमद इब्राहीम साहब बहादुरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"अनुच्छेद 60 के खण्ड (1) का परादिक निकाल दिया जाये।"

मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि कम से कम समवर्ती विषयों की सूची में दिये हुये विषयों के संबंध में राज्यों अथवा प्रान्तों की अधिशासी शक्तियों का परिरक्षण हो। सामान्य वादानुवाद के समय यह कहा गया था कि विधान के मसौदे की योजना यह है कि राज्यों की शक्तियां बहुत अंश में कम कर दी जायें। यद्यपि यह योजना संघानीय कही जाती है परन्तु वास्तव में विधान के मसौदे के द्वारा देश में एकात्मक शासन-प्रणाली को प्रयोग में लाने का आयोजन है। सामान्य वादानुवाद के समय सभी दलों के सदस्यों ने, चाहे उनकी किसी दल की विचारधारा के प्रति निष्ठा हो, विधान के मसौदे के इस अंग की निन्दा की है। उन्होंने बार-बार यह कहा कि इस विधान के मसौदे में जो भावना सन्निहित है वह एकात्मक शासन की है, न कि संघानीय शासन की।

श्रीमान्, विषयों की जो सूचियां तैयार की गई हैं और विधान के साथ सम्बद्ध की गई हैं, उनमें बहुत से ऐसे विषय, जो साधारणतया प्रान्तीय सूची में होते हैं, समवर्त्ती सूची और संघ-सूची में दिये हुये हैं और इसका यह परिणाम हुआ है कि प्रान्तीय सूची में बहुत कम विषय रह गये हैं। अनुच्छेद 60 (1) (क) में उन थोड़े से विषयों के संबंध में भी राज्यों से अधिशासी शक्ति ले ली गई है जो समवर्त्ती सूची में दिये हुये हैं। इससे, श्रीमान्, राज्य उस थोड़ी सी अधिशासी शक्ति से भी वंचित हो जायेंगे जो उन्हें इस परादिक के न रहने पर इस विधान के अधीन प्राप्त होती। यह कहा जा सकता है कि यह समान हितों, एकरूपता, रक्षा और सम्भाव्यताओं की दृष्टि से किया गया है। परन्तु मैं यह बताना चाहता हूं कि इस सीमित शक्ति को ले लेने की कोई आवश्यकता नहीं है.....

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** क्या मैं माननीय सदस्य महोदय को यह बता सकता हूं कि खण्ड (1) के परादिक को निकालने से सारी अधिशासी शक्ति और समवर्त्ती विषय केन्द्र के पास चले जायेंगे।

***के.टी.एम. अहमद इब्राहीम साहब बहादुरः** मैं इस पर आ रहा हूं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** इस परादिक को निकालने का परिणाम वही होगा जो मैंने बताया है।

***के.टी. एम. अहमद इब्राहीम साहब बहादुरः** मैं इस पर आ रहा हूं। इस कठिनाई को दूर करने के लिये मैंने एक अन्य संशोधन की सूचना दी है। वह इस प्रकार है कि अनुच्छेद 60 (1) (क) में "Parliament has" और "power" शब्दों के बीच में (हिन्दी में "संबंध में" और "संसद्" शब्दों के बीच में) "exclusive" (एकमात्र) शब्द रखा जाये। इसका परिणाम यह होगा कि संघ की अधिशासी शक्ति केवल उन विषयों तक सीमित रहेगी जिनके संबंध में एकमात्र उसी को कानून बनाने की शक्ति हो। मेरे विचार से इससे मेरे माननीय मित्र के सन्देह का निराकरण हो जायेगा। मेरे संशोधन के अनुसार अधिशासी शक्ति.....

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** क्या माननीय सदस्य महोदय को इस संशोधन को उपस्थित करने के लिये उपाध्यक्ष महोदय की आज्ञा मिल गई है?

***के.टी.एम. अहमद इब्राहीम साहब बहादुरः** उपाध्यक्ष महोदय ने कृपा करके इस संशोधन को उपस्थित करने की मुझे आज्ञा दे दी है और उस आज्ञा के अनुसार ही मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** अब खण्ड किस प्रकार हो जाता है?

***के.टी.एम. अहमद इब्राहीम साहब बहादुरः** वह इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"Clause (1) (a) to the matters with respect to which Parliament has exclusive power to make laws."

(वे विषय जिनके संबंध में एकमात्र संसद् को विधि बनाने की शक्ति है।)

इसलिये संघ को उन विषयों के संबंध में अधिशासी शक्ति प्राप्त न होगी जिनके संबंध में एकमात्र उसी को कानून बनाने की शक्ति प्राप्त न होगी अर्थात् समवर्ती विषयों की सूची के विषयों के संबंध में। श्रीमान्, वर्तमान भारत सरकार

[के.टी.एम. अहमद इब्राहीम साहब बहादुर]

के अधिनियम के अधीन इस प्रकार का कोई प्रावधान नहीं है। मसौदा-समिति के सभापति ने विधान-परिषद् के माननीय अध्यक्ष महोदय को भेजे हुये अपने पत्र के पृष्ठ 6 के पैरा 7 में कहा है कि:

"वर्तमान विधान के अधीन समवर्ती विषयों की सूची के किसी विषय के संबंध में अधिशासी शक्ति संबंधित प्रान्त को प्राप्त है परन्तु कुछ दशाओं में केन्द्र को आदेश देने का अधिकार है।"

आगे उसमें कहा गया है–

"विधान के मसौदे में समिति ने इस योजना से थोड़ा-सा भिन्न मार्ग ग्रहण किया है।"

श्रीमान्, मैं यह बताना चाहता हूं कि उसने इस योजना से थोड़ा-सा भिन्न भाग ग्रहण नहीं किया है किन्तु उसने समवर्ती विषयों के संबंध में, प्रान्तों और राज्यों की शक्तियों के संबंध में केन्द्रीय सरकार के अपनी इच्छानुसार हस्तक्षेप करने के लिये एक सिंहद्वार, खुला दरवाजा तैयार कर दिया है जैसा कि परादिक ही से स्पष्ट हो जाता है:

"पर इस विधान में अथवा संसद् द्वारा निर्मित किसी कानून में, स्पष्टतया प्रावहित तिथि के अतिरिक्त इस खण्ड के उपखण्ड (क) में निर्दिष्ट अधिशासी शक्ति का विस्तार किसी राज्य में उन विषयों पर न होगा जिनके संबंध में राज्य के विधान-मण्डल को भी कानून बनाने की शक्ति है।"

इस प्रकार संघीय सरकार को समवर्ती विषयों की सूची में दिये हुये विषयों के संबंध में विधान द्वारा निश्चित सीमा तक ही अधिशासी शक्ति प्राप्त नहीं है किन्तु समय-समय पर संसद् भी कानून द्वारा समवर्ती विषयों की सूची के विषयों के संबंध में संघीय सरकार को अधिशासी शक्ति प्रदान कर सकती है जिसका परिणाम यह होगा कि कुछ समय बाद सब विषय समवर्ती विषयों की सूची से हटा कर संघानीय सूची में रख दिये जायेंगे। श्रीमान्, यह उचित नहीं है कि प्रान्तीय स्वायत्त शासन का इस सीमा तक शून्यन कर दिया जाय। व्यवहार में यही होके रहेगा। श्रीमान्, मुझे ज्ञात है कि इस कठिनाई को दूर करने के लिये मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू ने इस आशय के एक संशोधन की सूचना दी है कि–"or in any law made by Parliament" (अथवा संसद् द्वारा निर्मित किसी विधि में) शब्द निकाल दिये जायें। एक प्रकार से इससे कठिनाई दूर हो

जायेगी परन्तु पूरी कठिनाई दूर न होगी। इसी कारण मैं अपने संशोधन पर ज़ोर दे रहा हूं: श्रीमान्, वर्तमान भारत शासन अधिनियम के अधीन यद्यपि इन विषयों के संबंध में केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकारों को निर्देश कर सकती है किन्तु व्यवहार में यदि इस शक्ति का प्रयोग करके केन्द्रीय सरकार कोई बाधा डाले तो प्रान्तीय सरकारें अपना प्रशासन चला ही नहीं सकती हैं। अपने मन्त्रियों से हमने प्राय: यह सुना है कि केन्द्रीय सरकार के निर्देशों से वे सहमत नहीं हैं परन्तु वे लाचार हैं और जो कुछ वे सबसे हितकर भी समझते हैं उसे भी नहीं कर सकते। खाद्य-नीति के संबंध में भी वे कहते हैं कि प्रान्त के लिये जो सबसे हितकर कार्य है, उसे भी वे नहीं कर सकते क्योंकि उन्हें केन्द्रीय सरकार के निर्देशों का पालन करना है। प्राय: दिल्ली से मद्रास वापस आने पर हमारे मन्त्री कहते हैं कि यद्यपि वे केन्द्रीय सरकार के विचारों से सहमत नहीं हैं परन्तु उन्हें उसके निर्देशों का पालन करना है क्योंकि वे कानून के अधीन दिये गये हैं। उन्हें उसके निर्देशों का पालन करना ही होता है भले ही उनका यह विश्वास हो कि किसी विषय विशेष के संबंध में केन्द्र द्वारा निश्चित नीति सफल न होगी।

श्रीमान्, मुझे आशा है कि यह सभा इस संशोधन के महत्त्व को समझेगी। जैसा कि मैं बता चुका हूं, प्रान्तीय सरकारों से उनकी बहुत सी शक्तियां ले ली गई हैं और यदि इस खण्ड को भी रहने दिया जायेगा तो प्रान्तीय स्वायत्त-शासन का लगभग शून्यन ही हो जायेगा। वर्तमान प्रावधानों के अधीन भी प्रान्त केवल प्रतिष्ठा प्राप्त जिला बोर्डों और नगर-समितियों के समान ही रह जायेंगे और समवर्ती विषयों की सूची के विषयों के संबंध में संघीय सरकार को अधिशासी शक्ति देने के लिये संसद् को कानून बनाने की शक्ति प्रदान करने के संबंध में इस खण्ड को बनाये रखना भी प्रान्तीय स्वायत्त-शासन की चिता में एक और लकड़ी डालने के समान ही होगा।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 44 और 45 एक साथ उपस्थित किये जा सकते हैं।

***पण्डित हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "संशोधन संख्या 1289 के संबंध में, अनुच्छेद 60 के खण्ड (1) के परादिक में से 'or in any law made by Parliament' (अथवा संसद् द्वारा निर्मित किसी विधि में) शब्द निकाल दिये जायें" और

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

"संशोधन संख्या 1289 के संबंध में, अनुच्छेद 60 के खण्ड (1) के बाद निम्नलिखित खण्ड प्रविष्ट किया जाये:

" '(1a) Any power of Parliament to make laws for a State with respect to any matter specified in entries 25 to 37 of the Concurrent List shall include power to make laws as respects a State conferring powers and imposing duties, or authorising the conferring of powers and the imposition of duties upon the Government of India or officers and authorities of the Government of India as respects that matter, notwithstanding that it is one with respect to which the Legislature of the State also has power to make laws.' "

[(1क) समवर्ती विषयों की सूची की 25 से 37 तक की प्रवेष्टियों में उल्लिखित किसी विषय के संबंध में किसी राज्य के लिये कानून बनाने की संसद् की शक्ति में किसी राज्य के संबंध में ऐसे कानून बनाने की शक्ति भी सम्मिलित है जिनसे भारत सरकार अथवा भारत सरकार के अधिकारियों तथा प्राधिकारियों को उस विषय के संबंध में शक्तियां प्रदान होती हों तथा उनके कर्त्तव्य निश्चित होते हों, चाहे उस विषय के संबंध में राज्य के विधान-मण्डल को भी कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो।]

श्रीमान्, संघान कई प्रकार के हैं। उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और आस्ट्रेलिया के संघान हैं। परन्तु इनमें से किसी देश के संघानीय विधान में केन्द्रीय सरकार को प्रान्तों तथा राज्यों की सरकारों को अधिशासन संबंधी निर्देश करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। कनाडा में दो विषयों के संबंध में अर्थात् कृषि और प्रवास के संबंध में उपनिवेश की तथा प्रान्तों की सरकारों को कानून बनाने की समवर्ती शक्तियां प्राप्त हैं। आस्ट्रेलिया में बहुत से ऐसे विषय हैं जिनके संबंध में कामनवेल्थ की और राज्यों की सरकारें दोनों कानून बना सकती हैं। किन्तु इनमें से किसी भी देश में केन्द्रीय सरकार, राज्यों अथवा प्रान्तों की सरकारों को यह निर्देश नहीं कर सकती है कि वे अपने प्राधिकार को विशेष प्रकार प्रयोग में लायें। हमारे विधान में इस सिद्धान्त का अनुसरण नहीं किया गया है। भारत शासन अधिनियम, सन् 1935 ई., के अधीन कुछ प्रश्नों के संबंध में केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकारों को निर्देश कर सकती है। वे प्रश्न या तो उन विषयों के संबंध में हैं जो एकमात्र केन्द्रीय विधान-मण्डल के अधिकार-क्षेत्र में हैं अथवा जो

समवर्त्ती विषयों की सूची के भाग 2 में दिये हुये हैं। यदि अनुच्छेद 60 के परादिक की भाषा स्वीकार कर ली जाये तो केन्द्रीय सरकार को समवर्त्ती विषयों की सूची के सभी विषयों के संबंध में प्रान्तीय सरकारों को यह निर्देश करने का अधिकार होगा कि वे अपने अधिशासी प्राधिकार को किस प्रकार प्रयोग में लायें। हमने इस पर विचार करना है कि क्या ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है कि केन्द्रीय सरकार को इस प्रकार की शक्ति देना वांछनीय अथवा आवश्यक हो गया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** क्या मैं माननीय सदस्य महोदय को यह बता सकता हूं कि जब संसद् कानून बनायेगी और यह शक्ति प्रदान करेंगी तभी किसी राज्य के संबंध में यह शक्ति प्राप्त होगी?

***पण्डित हृदयनाथ कुंजरू:** मैं इसे अच्छी प्रकार समझता हूं। यह स्पष्ट ही है। यदि श्री सन्तानम् कुछ देर तक मेरी बातें सुनते रहे तो वे देखेंगे कि मैं इस विषय की ओर संकेत करना न भूलूंगा।

श्रीमान्, मुझे इसका कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि केन्द्रीय सरकार को इतनी अधिक शक्ति क्यों दे दी जाये। विधान के स्वरूप के संबंध में हमारे विचार स्पष्ट होने चाहिये। हम ऐसे देशों के अनुभव से लाभ उठा सकते हैं जिनके संघानीय विधान हैं और यद्यपि इसकी आवश्यकता नहीं है कि हम उनके विधानों की अक्षरश:, नकल करें परन्तु यह आवश्यक है कि संघानीय सिद्धान्त के सारभूत अंगों का आदर किया जाय। हमें सद्यस्कृत्यस्थिति के संबंध में केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्ति देने में इतना आगे न बढ़ना चाहिये कि प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार के अधीन हो जायें। यदि संघानीय सिद्धान्त को प्रभाव में लाना है तो चाहे केन्द्रीय सरकार को जो कोई भी शक्तियां दी जायें किन्तु प्रान्तीय क्षेत्रों में प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार की दासियां नहीं होनी चाहिये बल्कि उसकी सहयोगिनियां होनी चाहियें। यदि सभा इस सिद्धान्त को स्वीकार करती है तो मेरे विचार से यह स्पष्ट हो जायेगा कि विचाराधीन अनुच्छेद का परादिक उन संबंधों के विपरीत है जो केन्द्र और प्रान्तीय सरकारों के न्यायोचित रूप से होने चाहियें। माननीय सदस्य जानते हैं कि परादिक इस प्रकार है:

"पर इस संविधान में अथवा संसद् द्वारा निर्मित किसी कानून में, स्पष्टतया प्रावहित स्थिति के अतिरिक्त इस खण्ड के उपखण्ड (क) में

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

निर्दिष्ट अधिशासी शक्ति का विस्तार किसी राज्य में उन विषयों पर न होगा जिनके संबंध में राज्य के विधान-मण्डल को भी कानून बनाने की शक्ति है।"

यदि इसे स्वीकार कर लिया गया तो केन्द्रीय विधान-मण्डल को इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह प्रान्तीय सरकारों को कानून को प्रयोग में लाने की विधि के संबंध में निर्देश करे। भारत शासन अधिनियम, सन् 1935 ई., के अधीन केन्द्रीय सरकार को इस प्रकार की शक्ति प्राप्त थी परन्तु वह इससे अधिक आयंत्रित थी। भारत शासन अधिनियम, सन् 1935 ई., की धारा 126 की उपधारा (2) में कहा गया है कि अधिराज्य के अधिशासी प्राधिकार का विस्तार प्रान्तों को दिये जाने वाले उन निर्देशों तक भी होगा जो अधिराज्य के विधान-मंडल के किसी भी ऐसे अधिनियम को प्रयोग में लाने के संबंध में हो जो समवर्ती विषयों की सूची के भाग 2 में उल्लिखित किसी विषय के बारे में हो और जिसमें इस प्रकार के निर्देश देने की आज्ञा हो और यह भी कहा गया है कि इस विषय के संबंध में कोई विधेयक अथवा संशोधन उस समय तक उपस्थित नहीं किया जा सकता है जब तक कि गवर्नर जनरल की आज्ञा पहले से न प्राप्त कर ली गई हो। नई व्यवस्था में, यह स्पष्ट है कि गवर्नर जनरल को, जो राज्य का वैधानिक प्रमुख होगा, वह शक्ति नहीं दी जा सकती है जो इस उपधारा द्वारा गवर्नर जनरल को दी गई है। परन्तु इसका कोई कारण नहीं दिखाई देता कि भारत शासन अधिनियम, सन् 1935 ई., की धारा 126 की उपधारा (2) द्वारा प्रदान की हुई शक्ति को उस विस्तृत रूप में रखा जाये जैसे कि वह विधान के मसौदे के अनुच्छेद 60 के परादिक में रखी गई है। यह सच है कि किसी कानून को प्रयोग में लाने के संबंध में केन्द्रीय सरकार को प्रान्तीय सरकारों को तब तक निर्देश देने का अधिकार न होगा जब तक कानून ही में यह प्रावहित न हो कि इस प्रकार के निर्देश दिये जाने चाहिये। परन्तु इससे केन्द्रीय विधान-मण्डल की शक्ति किसी प्रकार अवरुद्ध नहीं होती है। केन्द्रीय सरकार ही इसका निर्णय करेगी कि उसके प्रति जो सरकार उत्तरदायी है उसे यह शक्ति देना उचित है अथवा नहीं। मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि प्रान्तीय सरकारों की शक्तियों में केन्द्रीय विधान-मण्डल और केन्द्रीय सरकार द्वारा अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप न होने दिया जाये।

श्रीमान्, मुझसे यह कहा जा सकता है कि यदि परादिक से 'or in any law made by Parliament' (अथवा संसद् द्वारा निर्मित किसी विधि में) शब्द निकाल दिये गये तो केन्द्रीय सरकार को वह सीमित शक्ति भी प्राप्त न होगी जो उसे भारत शासन अधिनियम, सन् 1935 ई., की धारा 126 की उपधारा (2)

से प्राप्त है। मेरे विचार से, श्रीमान्, अनुच्छेद 234 के अधीन इसे प्रावहित किया जा सकता है। इसलिये मैंने अनुच्छेद 234 के संबंध में एक संशोधन की सूचना दी है जिससे, यदि केन्द्रीय विधान-मण्डल, केन्द्रीय सरकार को इस संबंध में अधिकार दे तो वह समवर्ती विषयों की सूची के विषय 25 से 37 तक के बारे में प्रान्तीय सरकारों को कानूनों को प्रयोग में लाने के संबंध में निर्देश दे सकेगी।

एक और बात है जिसकी ओर सभा का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक होगा। मेरे संशोधन का दूसरा भाग भारत शासन अधिनियम, सन् 1935 ई., में जो कुछ कहा गया है उससे आगे बढ़ गया है। मुझसे यह पूछा जा सकता है कि जब मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि प्रान्तीय सरकारों को केन्द्रीय सरकार द्वारा संसद् के बनाये हुये कानूनों के अधीन दी हुई आज्ञाओं से प्रान्तीय सरकारों की अधिशासी शक्ति अनावश्यक रूप से आयन्त्रित न हो तो मैं क्यों केन्द्रीय विधान-मण्डल की और उसके द्वारा केन्द्रीय सरकार की शक्ति में वृद्धि चाहता हूं। माननीय सदस्यों को स्मरण होगा कि कुछ सप्ताह पूर्व उप-प्रधान मन्त्री महोदय ने इस सभा में एक विधेयक उपस्थित किया था जिसका उद्देश्य यह था कि भारत शासन अधिनियम, सन् 1935 ई., में संशोधन किया जाये। विधेयक के साथ सम्बद्ध उद्देश्य और कारणों के वक्तव्य में यह कहा गया था कि अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि केन्द्रीय और प्रान्तीय औद्योगिक न्यायाधिकरणों के निर्णयों पर पुनर्विचार केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण में समान सिद्धान्तों के अनुसार होना चाहिये। इसलिये विधेयक में यह प्रस्ताव रखा गया था कि केन्द्रीय सरकार को केवल इसी का अधिकार नहीं है कि वह प्रान्तीय सरकारों को निर्देश दे कि वे अपने प्राधिकार किस प्रकार प्रयोग में लायें किन्तु उसे इसकी भी शक्ति है कि वह समवर्ती विषयों की सूची में दिये हुये विषयों के संबंध में, कानूनों को प्रयोग में लाने के लिये अपने अधिकारियों को शक्ति प्रदान करे। मैं उस विधेयक के गुण-दोषों पर विचार नहीं करना चाहता परन्तु हमें इस पर अवश्य विचार करना है कि वर्तमान परिस्थिति में केन्द्रीय सरकार की शक्तियों को इतना विस्तृत करना आवश्यक है या नहीं कि कुछ विषयों के संबंध में, यदि संसद् द्वारा निर्मित कोई कानून इसकी आज्ञा देता है, वह अपने अधिकारियों के कर्त्तव्य निश्चित कर सके। माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल द्वारा प्रस्तुत विधेयक का संबंध औद्योगिक तथा कुछ अन्य विषयों से है। मोटे तौर से ये विषय विधान के मसौदे में दी हुई समवर्ती विषयों की सूची के 25 से 37 तक के विषयों के अन्तर्गत आ जाते हैं। ये विषय, दो विषयों को छोड़ कर, वही हैं जो भारत शासन अधिनियम, सन्

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

1935 ई., को समवर्ती विषयों की सूची के भाग 2 में दिये हुये हैं। वर्तमान परिस्थिति में, जब श्रमिकों में अपने अधिकारों की चेतना आ रही है और जब उनके प्रश्नों का निर्णय अखिल भारतीय आधार पर करना होता है, यह न्यायोचित ही प्रतीत होता है कि ऐसे सब प्रश्नों के संबंध में, जिनमें श्रमिकों और मालिकों के विवाद का निर्णय करना होता है, शक्ति का किसी स्थान पर संकेन्द्रण होना चाहिये ताकि महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को समान रूप से हल किया जा सके। मुझे ज्ञात नहीं है कि सरदार पटेल द्वारा प्रस्तुत विधेयक पर इस सभा में कब विचार होगा। परन्तु मुझे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि उन्होंने जिस शक्ति को प्रदान करने की मांग की है उसे यह सभा केन्द्रीय सरकार को समर्पित कर देगी। यदि यह किया गया तो यह स्पष्ट है कि विधान के मसौदे में इस प्रकार संशोधन करने होंगे कि वह भारत शासन अधिनियम, सन् 1935 ई., के अनुरूप हो सके। मैंने इस आवश्यकता का पहले से अनुभव किया है और इसलिये इस आशय का एक संशोधन उपस्थित किया है कि अधिराज्य की संसद् को यह अधिकार होगा कि वह समवर्ती विषयों की सूची की 25 से 37 तक की प्रविष्टियों के संबंध में, केन्द्रीय सरकार अथवा उसके किसी अधिकारी को शक्ति दे अथवा उसके कर्त्तव्य निश्चित करे। श्रीमान्, मेरे विचार से मेरे संशोधन से इस विषय संबंधी सभी आवश्यकतायें पूरी हो जाती हैं। इसका कोई भी कारण नहीं है कि केन्द्रीय सरकार को ऐसी विस्तृत शक्ति दी जाय जो इस परादिक के स्वीकार किये जाने पर केन्द्रीय संसद् द्वारा बनाये हुये कानूनों के अधीन केन्द्रीय अधिशासी वर्ग को प्राप्त हो जायेगी।

श्रीमान्, अपनी जगह पर जाने के पूर्व मैं एक और विषय की ओर संकेत करना चाहता हूं। भारत शासन अधिनियम, सन् 1935 ई., के अधीन अधिराज्य के विधान-मण्डल की ऐसे कानून बनाने की शक्ति, जिनसे केन्द्रीय सरकार को अपने अधिकारियों को उन विषयों के बारे में शक्ति देने अथवा उनके कर्त्तव्य निश्चित करने का अधिकार मिलता हो, जिनके संबंध में प्रान्तीय विधान-मण्डल भी कानून बना सकते हों, केवल उसी समय प्रयोग की जा सकती थी जब सद्यस्कृत्यस्थिति की घोषणा की जाती थी जिसमें यह कहा जाता था कि भारत की सुरक्षा युद्ध के कारण संकट में पड़ गई है। श्रीमान्, जहां तक मुझे स्मरण है, किसी भी अन्य स्थिति में केन्द्रीय विधान-मण्डल को केन्द्रीय सरकार को इस प्रकार का अधिकार नहीं देने की शक्ति न थी और न केन्द्रीय अधिकारियों को यह शक्ति दी जाती थी कि वे समवर्त्ती विषयों की सूची के विषय संबंधी कानूनों का प्रयोग कर सकें। इसलिये मेरे दूसरे संशोधन में यह देखा जा सकता

है कि मैंने भारत शासन अधिनियम, सन् 1935 ई., के प्रावधानों की नकल नहीं की है। मैंने उस अधिनियम के प्रावधानों के मार्ग से बहुत ही भिन्न मार्ग ग्रहण किया है किन्तु यह मैंने तभी किया है जब मैंने यह देखा कि विशेष परिस्थितियों में यह आवश्यक है। मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर के लिये यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जिस विस्तृत शक्ति की उन्होंने मांग की है वह वर्तमान परिस्थिति में, भारत में कानून और व्यवस्था की रक्षा के लिये अथवा उसकी सुरक्षा को संकट में न पड़ने देने के लिये आवश्यक है अथवा इसलिये भी आवश्यक है कि नवीन परिस्थिति में ऐसी समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं कि उनको तभी हल किया जा सकता है जब कि प्रान्तीय सरकारों को केन्द्रीय सरकार के बहुत कुछ अधीन कर दिया जाये। मेरी यह धारणा है कि इस प्रकार की कोई परिस्थिति उपस्थित नहीं हुई है और इसीलिये मैंने इन संशोधनों को प्रस्तुत किया है। श्रीमान्, मुझे आशा है कि यह सभा इन पर सावधानी से विचार करेगी।

(संशोधन संख्या 1290 और 1291 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1292 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती है क्योंकि यह एक शाब्दिक संशोधन है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** वह केवल शाब्दिक ही नहीं है। उससे आशय बदल जायेगा। वास्तव में मेरे संशोधन द्वारा एक भिन्न ही प्राधिकारी अस्तित्व में आ जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** मुझे खेद है कि मैं आपसे सहमत नहीं हूं।

संशोधन संख्या 1293 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती क्योंकि वह शाब्दिक है।

अब अनुच्छेद पर सामान्य वादानुवाद हो सकता है। मि. मोहम्मद इस्माइल साहब।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मि. के.टी. एम. अहमद इब्राहीम ने जिन संशोधनों को उपस्थित किया है उनका मैं समर्थन करता हूं। मेरा भी इनको उपस्थित करने का इरादा था और मैंने इसकी सूचना दे दी थी। श्रीमान्, अनुच्छेद 60 के नीचे लिखे हुये लेख में मसौदा-समिति ने कहा है कि–

"समिति ने इस परादिक को इस दृष्टि से प्रविष्ट किया है कि जब तक विधान में अथवा संसद् के बनाये हुये किसी कानून में अन्य प्रकार

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

का प्रावधान न हो, समवर्ती विषयों की सूची के विषयों के संबंध में अधिशासी शक्ति मुख्यत: संबंधित राज्य को ही प्राप्त होनी चाहिये।"

इस लेख से पाठकों के मस्तिष्क में यह प्रभाव पड़ता है कि इस अनुच्छेद में प्रत्यक्षत: जितनी शक्ति सन्निहित है उससे अधिक शक्ति अथवा कुछ शक्ति प्रान्तों को देने का प्रयास किया जा रहा है परन्तु मसौदा-समिति के सभापति ने विधान-परिषद् के अध्यक्ष को जो पत्र लिखा है उसके पैरा 7 को पढ़ने से यह धारणा मिट जाती है। वे परादिक के परित्राण खण्ड के बारे में कहते हैं कि–

"इस परित्राण खण्ड का प्रभाव यह होगा कि नवीन विधान के अधीन संघीय संसद् को इसकी स्वतन्त्रता होगी कि वह संघ के प्राधिकारियों को अधिशासी शक्ति प्रदान करे और यदि आवश्यक हो तो संघ के प्राधिकारियों को इस संबंध में निर्देश दे कि राज्यों के प्राधिकारी अधिशासी शक्ति को किस प्रकार प्रयोग करें।"

अपने आगे के वाक्य से वे इसे और भी स्पष्ट कर देते हैं। वे कहते हैं:

"इस प्रावधान को रखते समय समिति ने इस सिद्धान्त को दृष्टि में रखा कि अधिशासी प्राधिकार का विस्तार विधायी शक्ति के समान ही होना चाहिये।"

जहां कहीं केन्द्र को विधायी शक्ति दी गई है उसे अधिशासी शक्ति देने का भी प्रयास किया जा रहा है। हमारे संशोधनों में इस स्थिति के दोषों को दूर करने का प्रयास किया गया है और यह कहा गया है कि समवर्त्ती विषयों की सूची के विषयों के संबंध में केन्द्र को भले ही विधायी शक्ति प्राप्त हो किन्तु अधिशासी शक्ति इकाइयों को अर्थात् प्रान्तों को प्राप्त होनी चाहिये। श्रीमान्, इस विधान की योजना के संबंध में मैंने कुछ बातें कहनी हैं। यह कहा गया है कि अमेरिका के विधान का आधार केन्द्र के प्राधिकारियों का यह सन्देह था कि जब कभी अवसर मिलेगा केन्द्र में पदारूढ़ व्यक्ति राज्यों की अर्थात् संघान के अंगों की अथवा इकाइयों की तथा लोगों की शक्तियों में हस्तक्षेप करने का प्रयास करेंगे। उस विधान की रचना के समय तथा उसके उपरान्त यह तर्क उपस्थित किया गया था और वर्तमान काल में भी यह कहा गया है कि विधान के संबंध में यह धारणा वास्तविकता पर आधृत है क्योंकि यह मानी हुई बात है कि जब लोग शक्ति प्राप्त कर लेते हैं तो वह उन्हें प्राय: भ्रष्ट कर देती है। इसलिये अधिशासी-वर्ग और सर्वोच्च प्राधिकारी को बहुत शक्ति प्रदान नहीं करनी चाहिये। परन्तु जहां तक हमारे विधान का संबंध है, इसमें इससे विपरीत मार्ग का अवलंबन किया गया

है। यह व्यक्तियों तथा संघांगों के प्रति सन्देह पर आधृत है। यह कल्पना की गई है कि प्राधिकार को मिटाने के लिये व्यक्ति हमेशा कुचक्र रचते रहेंगे और षड्यन्त्र करते रहेंगे और संघांग हमेशा कोई न कोई उत्पात करने का प्रयास करते रहेंगे। इसलिये, श्रीमान्, यद्यपि विधान के मसौदे की योजना का आधार संघानीय बताया गया है परन्तु वास्तव में केन्द्र को ही अत्यधिक शक्ति दे दी गई है। कम से कम देश की वर्तमान परिस्थिति को देखते हुये यह उपयुक्त व्यवस्था नहीं है। यह देश के लिये हितकर सिद्ध न होगी। हमारे देश का वृहत् क्षेत्र तथा वृहत् जनसंख्या है। इसलिये केन्द्र को अत्यधिक शक्ति देना सुयोग्य शासन के हित में न होगा। संघांगों को पर्याप्त शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। विधान इस विचार पर आधृत न होना चाहिये कि देशभक्ति और लोगों के हितचिंतन का ठेका एकमात्र केन्द्र का ही है। यह स्वीकार किया जाना चाहिये कि प्रान्त में और लोग भी देशभक्त हैं। इसलिये उनके अधिकारों तथा उनकी शक्तियों में हस्तक्षेप करने का प्रयास न करना चाहिये। यह विधान पहले तो लोगों के प्रति और फिर संघांगों के प्रति सन्देह पर आधृत है। श्रीमान्, जहां तक लोगों का संबंध है, यह भी स्वीकार नहीं किया गया है कि लोगों को कोई ऐसा वैयक्तिक स्वातन्त्र्य प्राप्त है जो कम नहीं किया जा सकता है। अनुच्छेद 15 में जिस वैयक्तिक स्वातन्त्र्य का प्रावधान है उसमें ऐसे गम्भीर-गंभीर ही नहीं बल्कि घातक परिवर्तन कर दिये गये हैं कि उनसे वैयक्तिक स्वातन्त्र्य के अधिकार का बिल्कुल शून्यन हो गया है। यह स्वीकार नहीं किया गया है कि किसी व्यक्ति को कोई ऐसा वैयक्तिक स्वातन्त्र्य प्राप्त है जिसका किसी कानून द्वारा परिहरण नहीं हो सकता है। प्रान्तों और संघांगों के संबंध में भी यही भावना दिखाई गई है। विभिन्न प्रावधानों से प्रान्तों की शक्तियों को ले लेने का प्रयास किया गया है। मेरे विचार से सुशासन और सुयोग्य शासन के लिये यह भावना हितकर न होगी और इसलिये संघांगों की शक्तियों में हस्तक्षेप न होना चाहिये।

हमारे संशोधनों में जहां केन्द्र के लिये उपयुक्त विषयों के संबंध में विधायी शक्ति प्रावहित की गई है तो केन्द्र की अधिशासी शक्ति आयन्त्रित भी की गई है। इसलिये मेरे विचार से ये बहुत ही तर्कपूर्ण संशोधन है और इस सभा को इनका समर्थन करना चाहिये। मैं यह भी जानता है कि यदि सदस्यों को अपनी इच्छानुसार मत देने का अधिकार दिया गया और, कम से कम, यदि उन्हें इस प्रस्ताव पर मत देने की स्वतन्त्रता दी गई तो, श्रीमान्, बहुत से सदस्य इन संशोधनों के पक्ष में मत देंगे। श्रीमान्, मुझे ज्ञात है कि इन संशोधनों के संबंध में बहुत से सदस्यों के वही विचार हैं जो मेरे हैं।

***उपाध्यक्षः** क्या मैं यह सुझा सकता हूं कि इन बातों की आवश्यकता नहीं है।

***मोहम्मद इस्माइल साहब बहादुरः** श्रीमान्, इस महत्त्वपूर्ण विषय के संबंध में अपने साथियों के जो विचार मुझे ज्ञात हैं उन्हें मैं आपकी अनुमति से बता रहा हूं। इन संशोधनों से सरकार के कार्यकौशल में वृद्धि होगी जिससे देश का तथा देशवासियों का हितसाधन हो सकेगा। इन संशोधनों का उद्देश्य यह है कि भविष्य में केन्द्र और प्रान्तों के बीच कलह की बहुत कम संभावना रह जाये। यदि केन्द्र समय-समय पर संघांगों के अधिकारों और उनकी शक्तियों में हस्तक्षेप करता रहेगा तो अवश्य ही कलह होगा। इन संशोधनों द्वारा इस प्रकार के कलह की संभावना को मिटा देने का प्रयास किया गया है। मैं इसे स्पष्ट करना चाहता था कि सभा में केवल मेरी ही ऐसी भावना अथवा सम्मति नहीं है परन्तु कई अन्य सदस्यों की भी, चाहे वे किसी भी दल के क्यों न हों, यही सम्मति है। इसलिये मेरी बहुत इच्छा है कि मेरे इस सभा के साथियों को अपनी इच्छानुसार मत देने की स्वतन्त्रता दी जाये। इस दशा में मसौदा-समिति के सभापति को यह ज्ञात हो जायेगा कि इन संशोधनों में प्रतिपादित विचारों से इस सभा के सदस्य वास्तव में सहमत हैं अथवा नहीं। यदि मसौदा-समिति के सभापति इन संशोधनों को स्वीकार करना उचित न समझें तो क्या मैं उनसे अनुरोध कर सकता हूं कि वे कम से कम हमारे संशोधनों पर पण्डित कुंजरू के उपस्थित किये हुये संशोधन को स्वीकार कर लें जिसका आशय यह है कि "or in any law made by Parliament" (अथवा संसद् द्वारा निर्मित किसी विधि में) शब्द निकाल दिये जायं। इससे कम से कम कुछ तो सुधार हो जायेगा। इससे कम से कम कुछ सीमा तक वे दशायें मिट जायेंगी जिनकी मैंने कल्पना की है और जिनके संबंध में मैं अपने विचार व्यक्त कर चुका हूं। इससे कम से कम कुछ सीमा तक प्रान्तों की शक्तियों में हस्तक्षेप न हो सकेगा। इसलिये मैं सभा से तथा मसौदा-समिति के सभापति से अनुरोध करता हूं कि कम से कम उस साधारण संशोधन पर विचार किया जाये जिसका उद्देश्य "or in any law made by Parliament" (अथवा संसद् द्वारा निर्मित किसी विधि में) शब्दों को निकालना है।

***उपाध्यक्षः** मुझे अभी सूचना मिली है कि आसाम के गवर्नर, सर अकबर हैदरी की एकाएक मृत्यु हो गई है। वे इस सभा के सदस्य नहीं थे परन्तु हम

सबको ज्ञात है कि उन्होंने हमारे देश के लिये कितना उत्कृष्ट कार्य किया है और हमें यह भी ज्ञात है कि हम केवल उन्हीं के आभारी नहीं हैं बल्कि उनके पिता जी के भी आभारी हैं। भारत सरकार के दफ्तर बन्द हो चुके हैं। यह सच है कि श्रीमान् गवर्नर महोदय इस सभा के सदस्य न थे किन्तु मेरे विचार से उनके प्रति अपने सम्मान तथा आदर की भावना व्यक्त करने के लिये हमें सभा स्थगित कर देनी चाहिये।

सभा कल प्रातः दस बजे तक के लिये स्थगित होती है।

*इसके पश्चात् विधान-परिषद् बृहस्पतिवार, ता० 30 दिसम्बर सन् 1948 ई. के प्रातः दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।*

Con. 3. VII. 29. 48
350

अंक 7
संख्या 29

बृहस्पतिवार,
30 दिसम्बर
सन् 1948 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी)..... 1929-2007

[अनुच्छेद 60, 61 तथा 62 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

बृहस्पतिवार, 30 दिसम्बर सन् 1948 ई.

*उपाध्यक्ष (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे हुई।*

---

## विधान का मसौदा-( जारी )

### अनुच्छेद 60-( जारी )

***उपाध्यक्ष** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): मुझे अभी स्थगन-प्रस्ताव की सूचना मिली है। इस पर श्री महावीर त्यागी के हस्ताक्षर हैं। भारतीय विधान-परिषद् की कार्यप्रणाली के नियमों तथा स्थायी आदेशों के नियम 26 के अधीन में इसको नियम-विरुद्ध ठहराता हूं। क्या सभा यह चाहती है कि स्थगन-प्रस्ताव में जो बात दी हुई है वह उसे बताई जाये?

***माननीय सदस्य:** जी हां, जी हां।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। क्या स्थगन-प्रस्ताव इस सभा में रखा जा सकता है?

***उपाध्यक्ष:** मैं स्थगन-प्रस्ताव को पढ़ कर सुनाता हूं:

> "मैं यह प्रस्ताव प्रस्तुत करना चाहता हूं कि इंडोनेशिया पर अभी हाल में किये गये आक्रमणों के संबंध में भारतीय सरकार की विचारधारा पर विचार-विमर्श करने के लिये यह सभा स्थगित की जाये।"

भारतीय विधान-परिषद् की कार्यप्रणाली के नियमों तथा स्थायी आदेशों के नियम 26 के अधीन इसको नियम-विरुद्ध ठहराया जाता हैं?

अब हम अनुच्छेद 60 पर आगे विचार करेंगे। क्या पोकर साहिब बहादुर सभा में उपस्थित हैं।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***बी. पोकर साहिब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष, यह खण्ड जिस रूप में है, उससे तो अवश्य ही यह परिणाम होगा कि संघात्मक राज्य-प्रणाली एकात्मक राज्य-प्रणाली में परिवर्तित हो जायेगी। यह बड़े गंभीर महत्त्व का विषय है। हम इस विचारधारा के अनुसार कार्य करते चले जा रहे हैं और यह घोषित भी किया जा चुका है कि जिस विधान का हम निर्माण कर रहे हैं, वह संघात्मक है। श्रीमान्, यदि इस अनुच्छेद को जिससे कि केन्द्रीय सरकार का वे अधिशासी शक्तियां भी मिल जाती हैं जो समवर्त्ती सूची में दिये हुए विषयों से संबंधित हैं, यदि इस अनुच्छेद को उसके वर्तमान रूप में स्वीकार किया गया तो इस विधान को संघात्मक विधान कहना किसी प्रकार से भी उपयुक्त न होगा। उसका यह नाम भ्रमात्मक होगा। इस प्रकार के प्रावधानों के होते हुए भी इस विधान को संघात्मक कहना केवल एक ढोंग होगा। यह कहा जाता है कि समवर्त्ती सूची में दिये हुए कुछ विषयों के संबंध में केंद्र को विधायिनी शक्तियां देना आवश्यक है, पर श्रीमान्, केन्द्र को उनके संबंध में अधिशासी शक्तियां देने से तो बात ही दूसरी हो जाती है। इन प्रावधानों का यह प्रभाव होगा कि प्रान्तों के पास कुछ भी अधिकार नहीं रहेंगे। समवर्त्ती सूची में भी अनेकों ऐसे विषय हैं जिनको उसमें स्थान ही नहीं मिलना चाहिये। जब समय आयेगा हमें उन पर विचार करना होगा। परन्तु यह खण्ड उन विषयों के संबंध में भी केन्द्र को अधिशासी शक्तियां प्रदान करता है जिनका विवरण समवर्त्ती सूची में दिया गया है। इस बात को माननीय पंडित कुंजरू ने बड़ी योग्यता तथा कुशलतापूर्वक स्पष्ट किया है। उन बातों को लेकर मैं सभा का समय लेना नहीं चाहता हूं।

अब मैं इस विषय के एक अंग की ओर संकेत करना चाहता हूं और वह यह है। भारत जैसे महान प्रायद्वीप में केन्द्र के अधिकारियों के लिये देश के सुदूरवर्ती भागों में रहने वाले लोगों की आवश्यकताओं को समझना बड़ा कठिन होगा और यही कमी कानून निर्माण के संबंध में भी है। परन्तु यदि समवर्त्ती सूची के विषयों से संबंधित कानून की अधिशासी शक्ति भी केन्द्र को दे दी जाती है तो फल यह होगा कि यदि उस कानून को बरतने के ढंग के खिलाफ किसी व्यक्ति को शिकायत होती है तो शिकायत दूर कराने के लिये उस व्यक्ति को हजारों मील दूर वाले केन्द्र में ही शरण लेनी होगी। और यह बात सब व्यक्तियों

के लिये संभव नहीं है कि वे देश के एक भाग से दूसरे भाग को हवाई जहाज द्वारा कुछ ही घंटों में जा सके। श्रीमान्‌जी, मेरा निवेदन है कि यदि हम समवर्त्ती सूची के वर्तमान रूप पर विचार करें तो हमको यह विदित होगा कि उसमें ऐसे अनेकों विषय हैं जिनको उसमें स्थान नहीं मिलना चाहिए। यदि केन्द्र के नियंत्रणाधीन अधिकारियों द्वारा इन विषयों के बारे में कार्यवाही की जानी है तो मेरी समझ में उससे बड़ी कठिनाई होगी। इसके साथ ही मेरा यह भी निवेदन है कि राजतंत्र में बहुत-सी खराबियां हो जायेंगी और फलस्वरूप शासनतंत्र के नाम पर तो गहरा धब्बा ही लग जायेगा।

जिन विषयों का उल्लेख समवर्त्ती सूची में किया गया है उनके बारे में, कार्यपालिका जिस रीति से काम करेगी उससे यदि किसी व्यक्ति को कोई कष्ट हुआ तो उसे उस कष्ट से त्राण पाने के लिए बहुत दूर जाना होगा और फिर भी केन्द्र के अधिकारियों के लिए उसकी बात को समझने में बड़ी कठिनाई होगी। इस बात की ओर स्पष्ट संकेत किया जा चुका है कि समवर्त्ती सूची में जो विषय उल्लिखित हैं उनके बारे में कोई कार्यवाही करने का अधिकार अब तक प्रान्तीय सरकारों को प्राप्त है। उस व्यवस्था में परिवर्तन करना और इन विषयों के संबंध में कार्यवाही करने के अधिकारों को केन्द्रीय सरकार को देना ऐसा कदम है जिसे अत्यंत ही प्रतिक्रियावादी कहा जा सकता है। अंग्रेजों के समय में भी 1919 के बाद राजनैतिक सुधारों का मुख्य ध्येय था, प्रान्तों को स्वायत्तशासी बनाना। अब जब कि हमने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है, प्रान्तीय स्वायत्तशासन को मेटना और समस्त शक्तियों को केन्द्र में केन्द्रित करना तानाशाही कायम करने के बराबर ही है और यह एक निन्दनीय कदम है। आजकल तो यह आम रिवाज हो गया है कि जिसको मिटाना है उस पर कोई लांछन लगा दिया जाये। कुछ लोग अपने सामूहिक अधिकारों की सरंक्षा की मांग करते हैं, तो यह साम्प्रदायिकता है और उसकी निन्दा की जाती है। यदि अपने विशेष विषयों पर स्वयं विचार करने के लिए प्रान्त अपनी स्वतंत्र सत्ता प्राप्त करना चाहते हैं तो उसको प्रान्तीयता कहा जाता है और उसकी निन्दा की जाती है। यदि लोग भाषा के आधार पर प्रान्तों के पृथक्‌करण पर जोर देते हैं तो उसको पृथक्‌वाद कहा जाता है और उसकी निन्दा की जाती है। मैं केवल यही चाहता हूं कि ये लोग जो इन वादों की निन्दा करते हैं तनिक इस ओर भी ध्यान दें कि घटनाओं का बहाव किस ओर है। आज जगत में सर्वाधिकारवाद का जोर है। मुझे भय है कि इन विभिन्न वादों अर्थात् साम्प्रदायवाद, प्रान्तीयवाद और पृथक्‌वाद की निन्दा करने का फल यह होगा कि

[बी. पोकर साहिब बहादुर]

हम सर्वाधिकारवाद और यहां तक कि तानाशाही की ओर अग्रसर हो जायेंगे। यदि विशिष्ट समुदायों के लोगों के लिये जिनकी अपनी विशिष्ट विचारधारा है, पृथक्-पृथक् संस्थायें हैं तो साम्प्रदायवाद अथवा कोई अन्य वाद कह कर उनकी निन्दा की जाती है। यदि किसी प्रकार के विरोध की इस प्रकार से निन्दा की जाती है तो उसका फल यही होगा कि एक बहुत ही निम्न प्रकार का सर्वाधिकारवाद यहां फैल जाये। इस संविधान के उपबंधों का जो रूप है उससे यह विदित होता है कि हम उसी ओर जा रहे हैं।

अत: अब समय आ गया है कि हम इस प्रवृत्ति पर ध्यान दें और उससे बचने का प्रयत्न करें जिससे कि आगे चल कर हम दु:खों में न फंसें। मेरा निवेदन है कि इस संशोधन द्वारा एक बहुत ही साधारण मांग की गई है कि इस उपबंध में ऐसा परिवर्तन कर दिया जाये कि समवर्ती सूची के विषयों के संबंध में चाहे विधायिनी शक्ति केन्द्र में ही रहे पर उन विषयों से संबंधित कार्यपालिका शक्ति प्रान्त के हाथ में दे दी जाये। यह एक बहुत ही साधारण मांग है। जैसा कि बताया जा चुका है, विभिन्न प्रान्तों के माननीय सदस्य इस बात का अनुभव भी करते हैं कि इन कार्यपालिका शक्तियों को प्रान्तों के हाथ में ही रहने दिया जाये। पर जैसा कि हम सबको विदित है वे लोग अपने विचारों को कारगर करने में असमर्थ हैं और उनकी इस असफलता के कारण भी स्पष्ट हैं। मैं ऐसे प्रश्न उठाना नहीं चाहता जिनके कारण यहां पर विवाद उत्पन्न हो जाये। किन्तु फिर भी मेरा निवेदन है कि जो सदस्य सचमुच यह अनुभव करते हैं कि यह संशोधन लोक कल्याण के लिये है और उनका अन्त:करण भी यह कहता हो कि उसे स्वीकार कर लेना चाहिये तो उन्हें अपने अन्त:करण की प्रेरणा पर चलकर अपने विचारों को कारगर करने में नहीं हिचकिचाना चाहिये। मैं माननीय सदस्यों से फिर यही कहता हूं कि जिस कर्त्तव्य का हमें पालन करना है वह कर्त्तव्य बड़ा ही पवित्र है। यहां किये गये अपने प्रत्येक कार्य के लिये हमें ईश्वर के सामने जवाबदेही देनी होगी और यदि कोई यह समझता हो कि दल उद्बोधक के आदेशों पर न कि अपने अन्त:करण के अनुसार कार्य करने में उसका बचाव है तो मैं उससे यही कहूंगा कि वह सच्चाई से बहुत दूर है और उसे समय बतायेगा कि जिसे उसने बचाव समझा था वह सचमुच में बचाव नहीं था।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, क्या इन सब बातों का उल्लेख करना आवश्यक है?

***बी. पोकर साहिब बहादुर:** मैं इस कारण इन बातों का उल्लेख कर रहा हूं कि ये वे सच्चाइयां हैं जिनको अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

***उपाध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि पोकर साहिब की इन बातों से नया विवाद पैदा हो जायेगा।

***बी. पोकर साहिब बहादुर:** उपाध्यक्ष, श्रीमान्, मैं पहले ही कह चुका हूं कि मैं वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहता हूं परन्तु प्रत्येक माननीय सदस्य से निवेदन करने का मुझे अधिकार है।

***उपाध्यक्ष:** ऐसा करने से माननीय सदस्य को कोई रोक नहीं पा रहा है।

***बी. पोकर साहिब बहादुर:** मुझे प्रत्येक सदस्य से यह निवेदन करने का अधिकार है कि वह अपने अन्त:करण के अनुसार अपने मताधिकार का प्रयोग करे। इसी कारण मैं यह निवेदन कर रहा हूं। उन स्पष्ट कारणों के कारण मुझे यह निवेदन करना पड़ रहा है, जिनका बयान करना मैं आवश्यक नहीं समझता। माननीय सदस्य उसे जानते हैं, मैं जानता हूं और माननीय उपाध्यक्ष भी जानते हैं। अत: मैं उन बातों का जिक्र यहां नहीं करना चाहता।

***उपाध्यक्ष:** माननीय उपाध्यक्ष को इस बात का कुछ भी ज्ञान नहीं है।

***बी. पोकर साहिब बहादुर:** श्रीमान्, मेरी आशा तो यही है कि माननीय उपाध्यक्ष इस विषय के बारे में साफ़-साफ़ बयान करने के लिये मुझे बाध्य नहीं करेंगे। मैं यह मानता हूं कि माननीय उपाध्यक्ष यह जानते हैं कि दल की ओर से आदेश दिये जाते हैं और सदस्यों को उन आदेशों का पालन करना पड़ता है। संक्षेप में इतना ही कहना काफी होगा। इस बात को सब जानते हैं और इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। और इसीलिये मैं विशेष रूप से माननीय सदस्यों से यह निवेदन करता हूं कि यदि उनका समाधान हो गया हो कि यह ऐसा विषय है कि जिसके संबंध में उन्हें इस संशोधन का समर्थन करना चाहिये तो फिर उसका समर्थन करने में उन्हें कोई संकोच नहीं होना चाहिये और यदि

[बी. पोकर साहिब बहादुर]

वे आवश्यक समझें तो वे जिस दल से सम्बद्ध हैं उसकी अनुमति भी प्राप्त कर लें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष, श्रीमान्, अनुच्छेद 60 पर सभा के समक्ष जो दो संशोधन हैं उनका विरोध करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं। श्रीमान्, दोनों संशोधन दो पृथक् श्रेणियों में आते हैं। मेरे माननीय मित्र श्री के.टी.एम. अहमद इब्राहिम द्वारा प्रस्तावित संशोधन अनुच्छेद 60 के उपखंड (1) के परादिक को निकालना चाहता है। संशोधन का मूल रूप यही था। यदि इस रूप में यह संशोधन स्वीकार किया गया तो इसका यह अर्थ होगा कि संघ की जितनी विधायिनी शक्ति है उतनी ही कार्यपालिका शक्ति हो जायेगी अर्थात् कार्यपालिका शक्ति का विस्तार केवल सूची 1 पर ही नहीं होगा वरन् वह सूची 3 पर भी होगा।

यह प्रत्यक्ष है कि बाद में मेरे माननीय मित्र को अपनी गलती मालूम हुई और फिर उन्होंने अनुच्छेद 60 के उपखंड (1) में संशोधन करने का प्रयास किया जो कार्यपालिका संबंधी विषयों में संघ की शक्ति को परिसीमित करता है और समवर्त्ती विधान के क्षेत्र में उसके प्रयोग का पूर्णतया निषेध करता है। श्रीमान्, सभा इस बात से परिचित है कि इसका मतलब भारतीय सरकार के अधिनियम के वर्तमान प्रावधानों से भी पीछे हटना होगा। मेरे माननीय मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने इस गलती को दूर किया। अपनी स्वभावजन्य मंजी हुई भाषा में उन्होंने ऐसे संशोधन को रखा जो उस स्थिति से बिल्कुल मेल खाता है जो भारत शासन अधिनियम, 1935 द्वारा अवेक्षित थी। उससे केन्द्र को उस कार्यपालिका शक्ति से अधिक शक्ति नहीं मिलती जो कि केन्द्र को भारत शासन अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत उसे प्राप्त है। श्रीमान्, इन दोनों संशोधनों के पेश करने वालों के दृष्टिकोण में बहुत अन्तर भी है। इस संशोधन के तीनों समर्थकों ने, और इनमें इसके प्रस्तावक श्री इब्राहिम भी सम्मिलित हैं, अनुच्छेद 60 (1) के परादिक के बारे में राजनैतिक आधार पर आपत्ति की है। मेरे माननीय मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने मानसिक आधार पर इसमें आपत्ति की है। पहले मैं अपने माननीय मित्र पंडित कुंजरू की आपत्तियों पर विचार करता हूं। उन्होंने कहा कि यदि उस स्थिति में किंचित्मात्र भी परिवर्तन कर दिया गया तो भारत शासन अधिनियम ने इस बारे में स्थिर की थी कि समवर्त्ती क्षेत्र में केन्द्र किन

कार्यपालक कार्यों का प्रयोग कर सकेगा तो इस सभा के समक्ष प्रस्तुत संविधान के मसौदे का संघ अथवा संघवाद एक तमाशा हो जायेगा। पंडित कुंजरू एक ऐसे व्यक्ति हैं जो अपने विशाल पांडित्य के लिये विख्यात हैं। उनका अनुभव बहुत गहरा है। साथ ही इस बारे में विधि स्थापना के उनके अधिकार के बारे में ही मैं कोई विवाद नहीं करना चाहता हूं। परन्तु फिर भी उन्होंने यह कह कर एक मूलभूत भूल की है कि एक विशेष प्रकार के संघवाद अथवा विधान को ही संघात्मक कहा जा सकता है और संघात्मक अथवा संघवाद का अपना ही एक निश्चित पूर्ण अर्थ है जिसमें कोई भी सम्भाव्य परिवर्तन नहीं किया जा सकता। मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि पंडित कुंजरू का यह कथन भी बड़ी भारी भूल पर आधृत है कि यदि इस अनुच्छेद के परादिक को रहने दिया गया तो हमारे संविधान का रूप संघात्मक न रहेगा।

श्रीमान्, संघात्मक संविधान की अनेकों और आपस में अत्यन्त भिन्न व्याख्यायें हैं। उदाहरणार्थ संसार में जो चार प्रसिद्ध संघात्मक संविधान हैं उनमें से एक कनाडा का संविधान है। कुछ लोग उसे भी पूर्णतया संघात्मक नहीं मानते हैं। इसके विपरीत सच्चाई यह है कि कार्य रूप में कनाडा का संविधान आस्ट्रेलिया के संविधान से भी अधिक संघात्मक है जब कि संविधानिक दृष्टिकोण से आस्ट्रेलिया के संविधान को नि:सन्देह पूर्णतया संघात्मक ही माना जा सकता है। बहुधा यह कहा जाता है कि कोई भी संविधान इस कारण संघात्मक कहा जाता है क्योंकि पहले उसके मूलभूत अंगों का निर्माण होता है और तत्पश्चात् केन्द्र का निर्माण होता है। इस प्रकार का मत लार्ड सेलबोर्न ने एक विषय पर विचार के दौरान में प्रकट किया था जो आस्ट्रेलिया के किसी मुकदमे से पैदा हुआ था और उनको विचार के लिऐ सौंपा गया था। उन्होंने कहा था कि कनाडा का संविधान सच्चे अर्थ में सांधिक संविधान नहीं है क्योंकि पार्लामेंट ने ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका अधिनियम बनाते समय ही केन्द्र और प्रान्तों का साथ-साथ निर्माण किया था।

इसी प्रकार इस बारे में कि किस बात के होने से कोई तंत्र संघ कहा जा सकता है, विभिन्न मत है। एक मत यह भी है कि अवशिष्ट सत्ता प्रादेशिक अंगों में निहित होनी चाहिए न कि केन्द्र में। किन्तु यह कहना कठिन है कि इस बात से संघ के स्वरूप में कहां और कैसे कमी होती है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

संघ का हवाला देकर इस बात पर जोर दिया जाता है। यदि यह बात ठीक है तब तो वास्तव में सभा के समक्ष यह जो संविधान का मसौदा है वह संघात्मक नहीं है क्योंकि पहली बात तो यह है कि अवशिष्ट सत्ता प्रादेशिक अंगों में निहित नहीं है और दूसरी बात यह है कि यह संविधान का मसौदा दोनों प्रान्तों और केन्द्र की साथ-साथ उत्पत्ति करता है।

श्रीमान्, यदि हम यह बात मान लें तो हम केवल सिद्धान्त के आगे से ही बंधे रहेंगे। किन्तु मैं तो यही समझता हूं कि कोई ऐसा कारण नहीं है कि हम आज भी इस सिद्धान्त के वाग्जाल में फंसे रहें और संविधान को केवल सिद्धान्त की कसौटी पर ही परखें। इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इस संविधान के पीछे और इसके आधार पर संघवाद का सिद्धान्त स्थिर है। व्यवहार में यह संघतंत्र देश के लिये कितना लाभदायक होगा। तथा कहां तक विभिन्न शक्तियों की पारस्परिक क्रिया और प्रतिक्रिया के फलस्वरूप प्रान्तों को उस स्वायत्तता से, जो हम आज उन्हें दे रहे हैं, अधिक या कम स्वायत्तता प्राप्त हो जाती है। इस बारे में मैं यह बात पुनः दोहरा देना चाहता हूं कि कनाडा में ऐसे संविधान के अधीन भी जिसके बारे में यह स्पष्ट मान्यता है कि वह सचमुच में साधक नहीं है, कार्यरूप में प्रान्तों को उससे कहीं अधिक स्वेच्छा से काम करने की स्वतंत्रता है जितनी कि आस्ट्रेलिया के संविधान के अधीन है और जहां कि इकाइयों के मामलों में केन्द्र पर्याप्त हस्तक्षेप करता रहा है।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या मैं माननीय सदस्य से बीच में यह पूछ सकता हूं कि वे यह जानते हैं या नहीं कि प्रिवी कौंसिल के निर्णय के कारण कनाडा में जितनी शक्ति समझी जाती है उससे अधिक प्रान्तों को प्राप्त है?

***श्री टी. टी. कृष्णमाचारी:** इससे तो मेरी बात यह पुष्ट होती है कि भारतीय संविधान भी पास होने के पश्चात् या तो पूर्णतया संघात्मक हो जायेगा या कुछ समय के लिये व्यवहार में अंशतः संघात्मक रहेगा। यदि हम केन्द्र तथा प्रादेशिक अंगों के अधिकार क्षेत्र की कोई व्यवस्था नहीं करते तो न्यायालय उसका निर्वचन एक या दूसरे पक्ष में करेंगे ही। यह बात ध्यान में आसानी से

आ सकती है कि यदि हम समवर्त्ती सूची के विषयों पर कार्यपालिका शक्तियों के प्रयोग के बारे में कुछ भी न कहें तो भी किसी न किसी प्रकार न्यायालय उसकी व्यवस्था करेंगे ही और परिस्थितियों के अनुसार ही तथा इस संबंध में न्यायाधीशों के जो विचार होंगे तथा जिस निर्णय पर वे पहुंचेंगे उनके अनुसार यह विधान अधिक संघात्मक अथवा कम संघात्मक हो जायेगा। अत: मैं समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र की आपत्ति सारहीन है और मैं नहीं समझता कि मैं अधिक समय तक उसका उत्तर दूं। श्रीमान्, समवर्त्ती शक्तियों के संबंध में कार्यपालिका कार्यवाही करने के संबंध में, और इस समय इसी बारे में आपत्ति उठाई गई है, ठीक-ठीक स्थिति तो यह है कि भारत शासन अधिनियम इस बात को ध्यान में रख कर बनाया गया था कि उसमें उपबन्धों में स्पष्टता और असंदिग्धता हो। प्रोफेसर के.सी. ह्वीर ने संघ शासन के ऊपर लिखी गई अपनी छोटी किन्तु सारगर्भित पुस्तक में यद्यपि वह यह नहीं मानते कि भारत शासन अधिनियम ने पूर्णरूपेण संघतंत्र की स्थापना की है तो भी वे उस पुस्तक में इस बात को जोर से कह सकते हैं कि संघतंत्र के संविधानों में उस अधिनियम का बड़े मार्के का स्थान है क्योंकि उसने केन्द्र और इकाइयों की शक्तियों का तीन सूचियों में ऐसा बंटवारा कर दिया है कि कोई बात बाकी रही ही नहीं है।

सच तो यह है, श्रीमान्, कि जहां तक इस समवर्त्ती सूची के उपबंधों का सवाल है वहां तक संविधान का मसौदा अथवा सन् 1935 का अधिनियम किसी प्रकार से भी अनोखा नहीं है। सच तो यह है कि कुछ बातों के अतिरिक्त जिनकी गणना आस्ट्रेलिया के संविधान की धारा 52 में की गई है, आस्ट्रेलिया के संविधान ने भी विधायी प्रकार्य के सम्पूर्ण क्षेत्र को समवर्त्ती सूची में ही रखा है। हमारे संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 60 के समान ही आस्ट्रेलिया के संविधान में धारा 61 है। उसमें यह कहा गया है कि संविधान के निष्पादन और बनाये रखने तक और राष्ट्र संघ के कानूनों को बनाये रखने तक कार्यपालिका शक्ति विस्तृत है। कामनवेल्थ द्वारा कार्यपालक शक्ति के अबाध प्रयोग में बाधा डालने के राज्य के प्रयास को 1903 में पैडन के विरुद्ध डी एमडन के अभियोग में विधिविरुद्ध ठहराया गया था। आस्ट्रेलिया संविधान में शक्तियों के विभाजन की स्थिति अस्पष्ट है और भारत शासन अधिनियम के निर्माता इस तथ्य से परिचित थे और इसीलिये उन्होंने तीन सूचियां बनाईं जो बहुत स्पष्ट और सम्पूर्ण हैं।

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

श्रीमान्, यदि आप उन पिछली बातों पर ध्यान दें जो कनाडा में हुईं किन्तु जहां कालक्रम ने न्यूनाधिक रूप में संघानीय तथा प्रान्तीय कार्यपालक शक्ति के यथार्थ क्षेत्र को परिसीमित कर दिया है तो हमें यह विदित होगा कि वहां अनेकों महत्त्वपूर्ण विषयों के बारे में संघर्ष के लिये गुंजाइश बनी रही। और संघ और प्रान्त के परस्पर संबंध में रोवल-सिरोइस रिपोर्ट द्वारा कुछ परिवर्तनों की सिफारिश की गई है। उन्होंने यह सिफारिश की है कि विशेषकर श्रम-संबंधी विधि के निर्माण-क्षेत्र में तथा ऐसी बेकारी, बीमा इत्यादि सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में संघ को केवल कानून निर्माण के प्रयोजन के लिये ही अधिकार नहीं होना चाहिये जो कि किसी सीमा तक उसको अब भी है वरन् कार्यपाल प्रकार्य के क्षेत्र में भी इस बारे में उसे अधिकार होना चाहिये। इस पृष्ठभूमि में और गत 12 वर्षों के अनुभव को ध्यान में रखकर मैं आपके सामने भारत शासन अधिनियम की इस बारे में समीक्षा करता हूं कि उसने समवर्त्ती सूची के अधीन शक्तियों के बंटवारे में क्या स्थिति अपनाई है।

श्रीमान्, खासतौर से शक्तियों के बंटवारे के विषय में तथा केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों को कार्यपालिका शक्तियों के प्रदान के संबंध में बहुत सावधानी से काम लिया है। समिति का इस बारे में निम्न मन्तव्य है–

> "हमारा विचार है कि इसका हल इस तरह से हो सकता है कि हम समवर्त्ती सूची में रखे जाने वाले विषयों में से उन विषयों में जिन्हें मोटे तौर पर सामाजिक और आर्थिक विधान से संबंधित कहा जा सकता है और उन विषयों में जिन्हें विधि और व्यवस्था तथा वैयक्तिक अधिकारों और प्रतिष्ठा से संबंधित माना जा सकता है, विभेद करे। पिछली कोटि के विषय अपेक्षाकृत अधिक होते हैं और इन विषयों संबंधी कानून को काम में लाना अधिकतर प्रान्तीय न्यायालयों के हाथों में होगा जिनके सामने कि प्रान्तीय अधिकारी अभियोग लाने के लिये जिम्मेदार होते हैं यह स्पष्ट है कि न्यायालयों को संघ की ओर से कोई निर्देश नहीं दिया जा सकता और न इस प्रकार का कोई निर्देश अभियोग लाने वाले प्रान्तीय अधिकारियों को ही अनौचित्य के बिना किये जा सकते हैं। अत: मैं समझता हूं कि जिस प्रकार व्यावहारिक रूप से संघ अधिकारियों का इस दशा में कोई अधिकार नहीं होगा,

उसी प्रकार विधि द्वारा भी उनको इस बारे में प्रशासनीय नियंत्रण का कोई अधिकार नहीं होना चाहिये! दूसरे प्रकार के समवर्त्ती विषयों में वे विषय हैं जिनका संबंध विशेषकर खानों, कारखानों, सेवा-योजक के उत्तरदायित्व तथा मजदूरों का हानिपूर्ण, श्रमिकसंघों, श्रमिकों के हितों, औद्योगिक झगड़े, संक्रामक रोग बिजली इत्यादि इत्यादि के आनियमन से होता है। इस कोटि के विषयों के संबंध में हमारा विचार है कि जहां आवश्यक हो संघ सरकार को प्रसंगानुसार कानून को प्रावर्तन में लाने के लिये निर्देश देने का अधिकार होना चाहिये। किन्तु इस अधिकार का विस्तार उतना ही होना चाहिये जितना कि संबंधित संघ अधिनियम में विहित होगा।"

श्रीमान्, इस योजना के आधार पर भारतीय शासन अधिनियम बनाया गया था। यही कारण था कि उसकी धारा 126 में एक उपखंड बढ़ाया गया था अर्थात् उपखंड (2) जो समवर्त्ती सूची के भाग 2 में दिये गये विषयों के संबंध में केन्द्र को कार्यपालिका निदेश देने का अधिकार प्रदान करता है। श्रीमान्, अपने माननीय मित्रों से मेरा निवेदन है कि वास्तविक व्यवहार से हमें यह ज्ञान हुआ है कि जहां तक भाग 2 का संबंध है कार्यपालिका निदेश केन्द्र द्वारा बनाये गये कानून के उद्देश्यों को पूरा करने के लिये पर्याप्त नहीं होते। श्रीमान्, अतः एक महत्त्वपूर्ण समस्या हमारे सामने पैदा होती है। उत्तरदायी शासन में ऐसे कानूनों के उद्देश्य को पूरा कराने के लिये उत्तरदायित्व किस प्रकार हो? प्रान्तीय सरकारें प्रान्तीय विधान मंडलों के प्रति उत्तरदायी हैं और अब तक ऐसा हुआ है कि प्रान्तीय कार्यपालक वर्ग बहुधा यह कह देता है कि हां, केन्द्र ने अपने निर्देश दिये हैं, हमारे पास धन नहीं है, और अतः हम नहीं जानते कि क्या करें। यह बहुत ही अनुचित है कि इन विषयों के बारे में कार्य तो हम करें और कानून कोई दूसरा ही बनाये। भारतीय शासन अधिनियम की वर्तमान योजना दोषपूर्ण है। क्योंकि कार्यपालन उत्तरदायित्व का क्षेत्र अस्पष्ट है। हम नहीं जानते कि यह कहां से आरंभ होता है और कहां समाप्त होता है और इस परादिक को, जिसकी कि सावधानीपूर्वक रचना की गई है, रखने का एक कारण भी है कि जब भारतीय सरकार सही अर्थ में कार्यपालक उत्तरदायित्व का भार प्रान्तों अथवा प्रादेशिक अंगों के कन्धों पर डालना चाहती हो तो वह ऐसा कर सकेगी चाहे फिर उसने अपने कानून में यह उल्लेख न किया हो कि उसे किसी विशिष्ट कानून के संबंध में कार्यपालक

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

अधिकार प्राप्त हैं। धारा 126 (2) में जो योजना रखी गई है उससे इसमें भिन्नता है और मैं तो यह समझता हूं कि जहां तक आपसी अन्तर की रेखा स्पष्ट कर दी गई है वहां तक तो कम से कम यह परिवर्तन बुद्धिमत्तापूर्ण ही है। जहां भी यह बात संभव या आवश्यक होगी वही और विशेषतया सामाजिक क्षेत्र के लिये अथवा सामाजिक बीमा, वृत्तिहीनता और संभवत: श्रम क्षेत्र में संघ सरकार कार्यपालक भार संबंधित नियमों में यह विहित करके दे सकेगी कि इन क्षेत्रों में कार्यभार उसके ऊपर होगा और जहां ऐसा कोई विशेष प्रावधान न होगा वहां प्रान्तों पर कार्यपालक भार होगा और प्रान्तीय मंत्री कानून के उद्देश्य पूरा कराने के उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकेंगे। श्रीमान्, मैं चाहता हूं कि मेरे माननीय मित्र श्री जगजीवन राम जो कुछ कल्याणकारी कानूनों के लिये जिम्मेदार रहे हैं, इस विषय पर भाषण दें। विशेषतया मैं यह इसलिये चाहता हूं क्योंकि इस क्षेत्र में अनेकों बार हमें यह लगा है कि हम पक्षपातपूर्ण कानून बनाने से मुश्किल से ही बच सकते हैं। मेरे विचार में यह ऐसा कारण है और अनुभव से इसको पूरा बल प्राप्त होता है कि हम इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के परादिक के सदृश कोई प्रावधान रखें और मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं कि वह इस विधान के मसौदे के संघात्मक स्वरूप में कुछ भी कमी नहीं करता। आखिरकार संघात्मक संविधान होता कैसा है? वह ऐसा संविधान होता है जिसमें उन क्षेत्रों का स्पष्ट परिसीमन होता है जिसमें क्रमश: इकाइयां और केन्द्र सर्वोच्च होते हैं। किन्तु जहां इस प्रकार का परिसीमन है संभव नहीं होता तो वहां किसी अन्य रीति से इस बात का उल्लेख करना पड़ता है कि किसी बात के लिये उत्तरदायित्व किस पर रखा जायेगा। इस परादिक के कारण यह संविधान अन्य प्रकार से जितना संघात्मक बन सकता था उससे अधिक संघात्मक हो जाता है। अत: मैं समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू की आपत्ति सारहीन है, और इन बारह वर्षों में 1935 के अधिनियम का जो अनुभव हुआ है उस अनुभव का उस आपत्ति में कोई विचार नहीं रखा गया है। और न उसमें संघवाद के सिद्धान्त तथा व्यवहार का ही विचार रखा गया है, यहां तक कि उसमें आस्ट्रेलिया तथा कनाडा में जो अनुभव प्राप्त हुआ है उसका भी कोई विचार नहीं रखा गया है, अत: उस आपत्ति को हमें नहीं मानना चाहिये।

श्रीमान्, अब मैं दूसरे संशोधन पर विचार व्यक्त करूंगा। उस संशोधन पर जो मूल रूप में अपूर्ण था और जो समवर्त्ती विषयों के संबंध में प्रान्तों को और

अधिक शक्तियां प्रदान करने के पक्ष में है और कार्यपालक क्षेत्र में केन्द्र की शक्तियों को लगभग समाप्त-सा करता है। इस संशोधन को मेरे माननीय मित्र श्री के.टी.एम. अहमद इब्राहिम ने पेश किया था और श्री मुहम्मद इस्माइल तथा श्री पोकर ने योग्यतापूर्वक इसका समर्थन किया है। सभा को यह विदित होगा कि ये माननीय सदस्य बड़े विख्यात व्यक्ति हैं विशेषकर श्री मुहम्मद इस्माइल जो भारत में मुस्लिम लीग के अध्यक्ष हैं और श्री जिन्ना के वास्तविक उत्तराधिकारी हैं। जब वे कोई राजनैतिक बयान देते हैं तो उसको यह कह कर नहीं टाला जा सकता कि इसका कुछ भी महत्व नहीं है। भारतीय शासन अधिनियम में इतनी बारीक बातों के लिये क्यों प्रावधान किये गये, और भूतकाल में प्रान्तीय स्वायत्तता के बारे में अधिक आग्रह क्यों किया गया और हम लोगों ने इस देश में मंत्रिमंडल को 16 मई 1946 वाली योजना क्यों स्वीकार की, इन सब बातों का एक कारण यह बात थी कि मुस्लिम लीग यह चाहती थी कि उसके नियंत्रण में जितने प्रान्त हों उनमें वह मनमानी कर सकें। श्रीमान्, देश के दो भागों में विभाजन हो जाने के कारण वह स्थिति अब नहीं रही है। वह स्थिति अब ओझल हो चुकी है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे माननीय मित्र पुराने झगड़े को पुनः शुरू कर रहे हैं अर्थात् यह कि प्रान्तों की शक्तियों को जबकि सच्चाई यह है कि प्रान्तों की शक्तियों को किसी प्रकार कम नहीं किया जा रहा है। इस संविधान के मसौदे की किसी विशिष्ट बात पर यदि विरोध है तो वह राजनैतिक कारणों से है न कि उसके किसी पहलू की अच्छाई-बुराई के कारण। मेरे इन माननीय मित्रों ने हम से कहा है कि हम सबको अपने अन्तःकरण के आदेशानुसार कार्य करना चाहिये। मैं इस सभा के माननीय सदस्यों से यह कहना चाहता हूं कि जिस रूप में अनुच्छेद 60 है, उसे उसी रूप में स्वीकार करने उनका अन्तःकरण किसी प्रकार से भी दूषित नहीं होगा, वे इस बात पर पूर्ण विश्वास करें कि प्रान्तों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने में कोई बाधा नहीं होगी और यह बात सच है, हमारा इरादा प्रान्तों की कार्यपालक शक्तियों पर कोई भी प्रतिबन्ध लगाने का नहीं है। भविष्य में बनने वाली संसद् में प्रान्तीय मत का यथेष्ट रूप में प्रतिपादन होगा इस अनुच्छेद के अधीन प्रत्येक कानून की पर्याप्त रूप में परीक्षा की जायेगी और तदुपरान्त ही समवर्त्ती सूची में आये हुए किसी विषय से संबंधित कार्यपालक शक्ति केन्द्र को प्रदान की जायगी। सन् 1935 के अधिनियम के संबंध में संयुक्त सिलेक्ट कमेटी की रिपोर्ट में जो कुछ कहा गया है उसकी ओर मैं एक बार फिर सभा का ध्यान आकर्षित करता हूं। उन्होंने कहा है कि उनका यह विचार नहीं है कि धारा 126 (2) के अधीन कार्यपालक निदेश प्रान्तों की

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

इच्छाओं का विचार बिना किये दे दिये जायेंगे और ऐसा इसलिये न होगा क्योंकि ऐसा तो है नहीं कि केन्द्र का प्रान्तों से कोई संबंध ही न हो। भविष्य में भी केन्द्रीय विधान-मण्डल में प्रादेशिक इकाइयों के प्रतिनिधि ही तो होंगे। एक सभा में तो इकाइयों के विधान-मण्डलों के प्रतिनिधि होंगे। दूसरी सभा में इकाइयों की जनता के प्रतिनिधि होंगे। भविष्य में केन्द्र की सत्ता प्रान्तों अथवा अंगों से भिन्न तो होगी नहीं। इसलिये कोई कारण नहीं है कि उस विधान-मण्डल की नेकनियती के बारे में संदेह किया जाये और यह कहा जाये कि वह विधान-मण्डल केन्द्र को ऐसी शक्ति प्रदान कर देगा कि जिससे प्रान्तों की कार्य करने की स्वतन्त्रता बिल्कुल कम हो जायेगी।

श्रीमान्, जैसा कि मैंने पहले कहा था यह परन्तुक केन्द्र और प्रादेशिक अंगों के प्रकार्यों को ठीक-ठीक नियत कर देता है। और उस बारे में कोई असंदिग्धता नहीं रहेगी और न उत्तरदायित्व अब अस्पष्ट रहेगा मैं तो यही समझता हूं कि यह अनुच्छेद वास्तव में ठीक ही है और मुझे विश्वास है कि लोगों के अन्त:करण टटोलने के साथ मद्रास के मुस्लिम लीगी प्रतिनिधियों ने जो भूत दिखाया है कि ऐसा होने से शीघ्र ही तानाशाही राज्य कायम हो जायेगा, उससे सभा किसी प्रकार न घबड़ायेगी।

श्रीमान्, यह अनुच्छेद.....।

***बी. पोकर साहिब बहादुर:** क्या यह सत्य नहीं है कि ऐसे प्रसंगों पर दल की ओर से आदेश दिये जाते हैं?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अपने माननीय मित्र को उत्तर देने की मेरी इच्छा नहीं है। हो सकता है कि दल की ओर से आदेश दिये जाते हों। हम सब जानते हैं कि क्या होता है। और सच्चाई तो यह है कि यह सब तो सुविधा के लिये किया जाता है। यदि हम में से कुछ लोग इकट्ठे होकर उस काम को आपस में मिलकर न करें जो कि सभा के समक्ष आने वाला है तो मुझे इस बात का भय है कि सभा को तीन या चार वर्ष बैठना पड़ेगा। एक साथ मिलकर हम में से कुछ लोग, जो कि एक ही दल के लोग नहीं हैं बल्कि वे ऐसे हैं जो साथ साथ काम करने के लिये तत्पर हैं, एक साथ कार्य करने से यह बात संभव कर

रहे हैं कि देश का संविधान जल्द तैयार हो जाये। मैं यह बात तो समझ सकता हूं कि मेरे माननीय मित्र इस देश के लिये किसी संविधान को बनाना न चाहते हों। यदि यही उनका विचार हो तब तो वे जिस रीति से हम कार्य कर रहे हैं उस पर आपत्ति कर सकते हैं। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि उनके ये सारे दोषारोप सारहीन हैं। उनके विरोध का आधार राजनैतिक है। इसका मूल कारण यह है कि मुस्लिम लीग यह कभी नहीं चाहती कि भारत शक्तिशाली देश हो और उसकी सरकार भी मजबूत हो। श्रीमान्, मुझे आशा है कि सभा इन समस्त थोथी धमकियों तथा इन सब दोषारोपणों पर ध्यान नहीं देगी और इस अनुच्छेद का समर्थन करेगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि इस परन्तुक पर जो दो संशोधन पेश किये गये हैं उनमें से मैं किसी को भी स्वीकार नहीं कर सकता। मैं सभा को संक्षेप में यह बताऊंगा कि मैं इन संशोधनों को क्यों स्वीकार नहीं कर सकता। ऐसा करने के पूर्व मैं यह वांछनीय समझता हूं कि सभा को इस बात से परिचित करा दूं कि इस परन्तुक में तथा इस पर जो दो संशोधन पेश किये गये हैं उनमें परस्पर ठीक-ठीक अन्तर क्या है। परन्तुक का वर्तमान रूप दो बातों का निर्धारण करता है। पहली बात यह है कि सामान्यतया समवत्ती कहे जाने वाले क्षेत्र से संबंधित कानूनों के संपादन करने का प्राधिकार, चाहे वे कानून केन्द्रीय विधान-मण्डल द्वारा पारित किये गये हों, चाहे प्रान्तीय अथवा राज्य विधान-मण्डल द्वारा पारित किये गये हों, साधारणतया प्रान्तों अथवा राज्यों का होगा। यह पहली बात है जिसे यह परादिक निर्धारित करता है दूसरी बात जिसे यह परादिक निर्धारित करता है, यह है कि यदि संसद् यह समझती है कि समवर्त्ती क्षेत्र से संबंधित कानून के पारण करने पर उसके संपादन का अधिकार केन्द्रीय सरकार को ही रहे तो संसद् को ऐसा करने का अधिकार होगा। अत: स्थिति यह है कि साधारणतया समस्त बातों में समवर्त्ती सूची से संबंधित कार्यपालक प्राधिकार प्रादेशिक इकाइयों अर्थात् प्रान्तों तथा राज्यों के हाथ में होंगे। केवल आपवादिक अवस्थाओं में ही केन्द्र यह विहित करेगा कि समवर्त्ती कानून पर कार्य कराने का अधिकार केन्द्र को होगा। जो संशोधन पेश किये गये हैं उनके आशय भिन्न-भिन्न हैं। पहला संशोधन यह है कि समवर्त्ती विषयों से संबंधित कानून को अमल में लाने में केन्द्र का कुछ

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

भी हाथ नहीं होना चाहिये। दूसरा संशोधन, जिसे मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू ने पेश किया है, यद्यपि वह भी इस बात की अनुमति नहीं देता है कि समवर्त्ती विषयों के संबंध में पारित कानून पर कार्य कराने का भार केन्द्र स्वयं अपने ऊपर ले। पर उससे इस बात की छूट तो हो ही जायेगी कि केन्द्र 25 तथा 37 पदों में उल्लिखित विषयों के संबंध में प्रान्तीय सरकारों को निदेश दे सके। दोनों संशोधनों में यही अन्तर है।

पहला संशोधन वास्तव में भारत शासन अधिनियम, 1935 में दी हुई वर्तमान स्थिति से बहुत परे है। माननीय सदस्यों को यह विदित ही है कि वर्तमान भारत शासन अधिनियम, 1935 में भी इस बात की अनुमति दी गई है कि केन्द्रीय सरकार प्रान्तों को कम से कम यह निदेश दे सके कि किस तरीके से किसी विशिष्ट कानून का संपालन किया जाये। मैं कहता हूं कि पहला संशोधन उस अधिकार को भी छीन लेता है जिसे भारतीय शासन अधिनियम, 1935 ने केन्द्र को दिया है। मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू के संशोधन में यह इच्छा प्रकट की गई है कि भारत शासन अधिनियम, 1935 में दी हुई स्थिति को पुनः ग्रहण किया जाये।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** मैं उससे कुछ थोड़ा आगे जाता हूं। मेरे संशोधन का दूसरा भाग भारत शासन अधिनियम के अधीन भारत सरकार जिस किसी शक्ति का भी उपभोग कर रही है उससे अधिक शक्ति प्राप्त कराता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** संभव है, ऐसा हो किन्तु मैंने स्थिति को वैसे ही बयान किया है जैसी कि मेरी समझ में वह है। श्रीमान्, अब मैं बड़े संशोधन पर, जो चाहता है कि केन्द्र को निदेश देने तक का भी अधिकार न हो, अपने विचार आपके सामने रखना चाहता हूं। इसके लिये मैं यह आवश्यक समझता हूं कि मैं इस विशेष विषय के इतिहास को आपके सामने रखूं। मैं यह बात केवल एक तथ्य के रूप में बिना किसी भेद-भाव के कहता हूं कि पहले संशोधन के पक्ष में बोलने वाले सदस्य अधिकतर मुसलमान हैं। उनमें से एक मेरे माननीय मित्र श्री पोकर ने समझा कि प्रत्येक सदस्य का यह पवित्र कर्त्तव्य है कि इस संशोधन का विरोध करे। मेरा विचार नहीं है.....।

***बी. पोकर साहिब बहादुरः** श्रीमान्, मैंने यह नहीं कहा है। मैंने केवल यही कहा था कि अन्तःकरण के अनुसार कार्य करना प्रत्येक सदस्य का कर्त्तव्य है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जिससे मैंने यह समझा कि प्रत्येक सदस्य जिसके अन्तःकरण है उसे इस परन्तुक का विरोध करना चाहिये। उनके कथन का और कोई अर्थ नहीं हो सकता। (*हंसी*)

***बी. पोकर साहिब बहादुरः** कभी नहीं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, जैसा कि मैंने कहा था इस परन्तुक पर मुसलमान सदस्यों के इस विचित्र प्रदर्शन के पीछे एक इतिहास है, और मुझे खेद के साथ यह कहना पड़ता है कि मेरे माननीय मित्र श्री कुंजरू उस इतिहास को बिल्कुल ही भूल गये हैं साथ ही इस बात में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि वे इस इतिहास से इतने ही परिचित हैं जितना कि मैं।

यह विषय उस गोलमेज सम्मेलन तक से संबंध रखता है जो सन् 1930 ई. में हुई थी। सन् 1930 ई. के गोलमेज सम्मेलन में जो कुछ हुआ उससे तो लोग परिचित हैं। उनमें से प्रत्येक को यह याद होगा कि उस सम्मेलन में जिन दो प्रमुख दलों का प्रतिनिधान हुआ था अर्थात् मुस्लिम लीग और भारत राष्ट्रीय कांग्रेस। उनमें अनेकों वैधानिक महत्त्व के प्रश्नों पर परस्पर मतभेद था।

एक प्रश्न जिस पर उनमें परस्पर मतभेद था वह प्रान्तीय स्वायत्त-शासन का विषय था। इस सच्चाई को तो सब लोग समझते थे कि जो संविधान विधि और प्रशासन के क्षेत्रों में भारत की एकता को कायम रखने के लिये बनाया गया हो उसके द्वारा प्रान्तों को पूर्णरूपेण स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती। किन्तु इस बारे में मुस्लिम लीग ने ऐसी हठ पकड़ी कि भारत मंत्री को इस बात के लिये मजबूर हो जाना पड़ा कि वह कुछ ऐसी रियायतें मुस्लिम लीग को दे जिनसे खुश होकर वह केन्द्र में किसी न किसी प्रकार के उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए राजी हो जाये। और रियायतों के साथ-साथ उसने एक यह भी रियायत दी कि उसने भारत शासन अधिनियम की धारा 126 में यह खंड भी शामिल करा दिया कि समवर्त्ती सूची में प्रगणित विषयों के बारे में विधान बनाने के संबंध में

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

केन्द्रीय सरकार को केवल इतनी शक्ति होगी कि वह उनके अधीन इकाइयों को निदेश तो दे सकेगी किन्तु उन विषयों का प्रशासन स्वयं अपने द्वारा न कर सकेगी। तर्क यह था कि यदि केन्द्रीय सरकार में हिन्दुओं के आधिपत्य की संभावना न होती तो समवर्त्ती क्षेत्र में किसी विशिष्ट कानून के बारे में केन्द्र द्वारा स्वयं कार्यान्वित करने में मुस्लिम लीग की कोई आपत्ति न होती। मुझे याद है कि गोलमेज सम्मेलन के विवाद में यह बात बहुत ही स्पष्ट रूप में कही गई थी कि भारत मंत्री को यह रियायत इसलिए करनी पड़ी थी कि क्योंकि उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त, पंजाब, बंगाल और कुछ हद तक आसाम जैसे मुस्लिम बहुल प्रान्तों की मुस्लिम लीगी सरकारें यह नहीं चाहती थीं कि इस प्रकार का हस्तक्षेप केन्द्र उन क्षेत्रों में भी करे जिनको कि वह बिल्कुल अपने अधिकार के अन्तर्गत ही समझती थीं। मुझे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि यह एक रियायत मात्र थी। यह बात सिद्धान्त के रूप में स्वीकार नहीं की गई थी कि समवर्त्ती विषयों के संबंध में बनाये गये कानून को अमल में लाने के लिये केन्द्र को लेशमात्र भी अधिकार न होगा। अतः मेरा निवेदन यह है कि भारत शासन अधिनियम 1935 के अधिनियम की धारा 126 में इस बारे में जो विधान रखा गया है वह सिद्धान्त की दृष्टि से उचित नहीं ठहराया जा सकता। उसका औचित्य केवल इसी दृष्टि से है कि वह मुसलमानों के लिये एक रियायत है। अतः इस संशोधन के पक्ष में जो तर्क दिये गये हैं उनको धारा 126 के प्रावधानों की दुहाई देकर ठीक बताना उचित नहीं है।

श्रीमान्, इस बात को, कि भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 126 से इस बारे में जो व्यवस्था की गई थी वह अन्ततः ठीक नहीं थी। इस सच्चाई को भारत मंत्री ने युद्ध की घोषणा होने के पूर्व बनाये गये कानून के सिलसिले में स्वीकार किया था। माननीय सदस्यों को यह याद होगा कि युद्ध की घोषणा होने के पूर्व संसद् ने धारा 126 की एक सहायक धारा 126-क बनाई थी। संसद् ने धारा 126-क का बनाना आवश्यक क्यों समझा? आपको यह स्मरण होगा कि जहां तक समवर्त्ती कानून का संबंध है भारत शासन अधिनियम की धारा 126-क ऐसी धारा है जिसका असर बहुत से क्षेत्रों पर पड़ता है उससे केवल प्रान्तीय विषयों पर ही कानून बनाने की शक्ति ही केन्द्र को नहीं मिलती वरन् प्रान्तीय तथा समवर्त्ती विषयों के बारे में प्रशासन को अपने अधिकार में लेने की शक्ति भी केन्द्र को उससे मिल जाती है। यह इसलिये बनाई गई थी कि भारत मंत्री

को ऐसा प्रतीत हुआ कि युद्धकाल में देश के प्रशासन के लिये धारा 126 पूर्णतया घातक सिद्ध होगी। अत: मेरा निवेदन यह है कि धारा 126-क जो संकट काल के लिये बनायी गयी थी केवल संकट काल में ही प्रयोज्य नहीं है वरन् सामान्यस्थिति तथा सामान्य काल में भी प्रयोज्य है। अत: सभा से मेरा पहला निवेदन यह है कि जिन परिस्थितियों का मैंने उल्लेख किया है उनके कारण धारा 126 की दुहाई देकर किसी भी तर्क का समर्थन नहीं किया जा सकता।

परन्तुक पर विचार करते हुए.....।

***बी. पोकर साहिब बहादुर:** श्रीमान् आपकी अनुमति से क्या मैं अपने विद्वान् मित्र के भ्रमों का निवारण कर सकता हूं? यह विधान वर्तमान भारतीय संघ के लिये बनाया जा रहा है जिसमें कोई भी ऐसा प्रान्त नहीं है जिसमें मुसलमान बहुसंख्या में हों। अत: इस कथन में कोई भी सार नहीं है कि मुस्लिम लीग के हितों के लिये ही मुसलमान सदस्य इस संशोधन को पेश कर रहे हैं। यह बहुत ही भ्रमात्मक तर्क है और एक भ्रम पर आश्रित है। माननीय कानून मंत्री इस बात को भूल जाते हैं कि वर्तमान भारतीय संघ में हम मुसलमानों को इस संशोधन से कोई भी विशिष्ट लाभ नहीं होगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यद्यपि यह बात सच है और मैं इसे स्वीकार करता हूं, मैं अभी-अभी इतना ही कहने वाला था कि मेरी शिकायत केवल इतनी है कि मुसलमान सदस्यों ने अभी तक मुस्लिम लीग के दृष्टिकोण को नहीं छोड़ा है जिसे उन्हें त्याग देना चाहिये था। वे उन्हीं तर्कों को दोहरा रहे हैं जो उस समय तक ठीक थे जब तक कि यहां मुस्लिम लीग थी और मुसलमान प्रान्त थे। अब वे ठीक नहीं हैं। मैं नहीं समझ पाता हूं कि मुसलमान अब उन्हें क्यों दोहरा रहे हैं। (*बाधायें*)

***उपाध्यक्ष:** शान्ति, शान्ति।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** मैं यह कह रहा था कि इस तर्क में कोई सार नहीं है कि हम भारत शासन अधिनियम की धारा 126 में दिए हुऐ प्रावधानों से पीछे हट रहे हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं वह धारा किसी भी सिद्धान्त पर आश्रित नहीं है। परन्तुक के पक्ष में मैं दो बातें कहूंगा। पहली बात यह है कि इस परन्तुक में विहित सिद्धान्त के पक्ष में हमें पहले और देशों के प्रमाण भी हैं जिन देशों में संघानीय संविधान चालू हैं। उनमें इस बारे में पाई जाने

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

वाली स्थिति की पूरी व्याख्या मेरे मित्र टी.टी. कृष्णमाचारी ने कर दी है। अत: इस विषय के संबंध में मैं कुछ कहना नहीं चाहता। परन्तु आस्ट्रेलिया के संविधान से मैं एक उदाहरण दे देता हूं। आस्ट्रेलिया के संविधान में भी ऐसे समवर्त्ती विषय हैं जिनके बारे में संघ और राज्य की सरकारें कानून बना सकती हैं। आस्ट्रेलिया के संविधान के अन्तर्गत कामनवेल्थ पार्लियामेंट को यह अधिकार है कि वह समवर्त्ती विषय के लिये अमल कराने का कोई अधिकार बनाते समय यह भी विधान कर दे कि उस कानून पर एक महान् स्मृतिज्ञ श्री वाईन्स द्वारा "आस्ट्रेलिया में विधायी तथा अधिशासी शक्तियां" नामक एक प्रसिद्ध पुस्तक में से मैं एक छोटी-सी कंडिका आपको पढ़कर सुनाता हूं। वे यह कहते हैं:

> "कामनवेल्थ के कानूनों का हम अन्त में जिक्र कर सकते हैं। लेफ्राय का कहना है कि यदि किसी कानून से इस बारे में कोई बाधा या प्रतिबन्ध न लगा दिया गया हो तो आमतौर से कार्यपालिका शक्ति विधायी शक्ति से निकली हुई मानी जाती है किन्तु यह बात कनाडा के लिये ठीक-ठीक कही जा सकती है। जहां विषयों को अलग गिना दिया गया है। और उस कारण केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों को अपनी अलग-अलग विधायी शक्तियां मिली हुई हैं। किन्तु यह आस्ट्रेलिया के लिये ठीक नहीं है। जिन विषयों के बारे में वहां कामनवेल्थ को अनन्य शक्तियां मिली हुई हैं मसलन प्रतिरक्षा के बारे में उन विषयों के बारे में अनुदान करने की कार्यपालिका शक्ति कामनवेल्थ में निहित है। किन्तु समवर्त्ती शक्तियों के बारे में यह नियम है कि उन पर अमल करने का अधिकार आम-तौर पर राज्यों में तब तक निहित रहता है जब तक कि उनके बारे में कामनवेल्थ अपनी विधि नहीं बनाती।"

इसका यह अर्थ है कि समवर्त्ती क्षेत्र में कार्यपालन प्राधिकार तब तक राज्यों के होते हैं जब तक कि कामनवेल्थ कानून बनाने की अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करती। जिस समय भी वह ऐसा करती है उसी समय कानून पर अमल कराने की शक्ति कामनवेल्थ को स्वयं हो जाती है। अत: इस परन्तुक में निर्धारित स्थिति की आस्ट्रेलिया में वर्तमान स्थिति से तुलना करने पर मैं निवेदन कर सकता हूं कि हम किसी भी संघानीय सिद्धान्त का जिसको कि कोई उद्धृत कर

सकता है, किसी प्रकार से भी उल्लंघन नहीं कर रहे हैं। श्रीमान्, मेरा दूसरा निवेदन है इस परन्तुक के लिये जिससे केन्द्र को यह अधिकार मिलता है कि वह किसी विशेष अवस्था में समवर्त्ती सूची में दिये गये विषयों के संबंध में बने कानूनों पर अमल कराने की शक्ति अपने हाथ में ले ले, हमारे पास पर्याप्त कारण हैं। इस बारे में मैं आपको एक या दो उदाहरण देता हूं। संविधान परिषद् ने अनुच्छेद 11 स्वीकार कर लिया है जो अस्पृश्यता का अन्त करता है। वह संसद् को अस्पृश्यता के अन्त को सार्थक बनाने के लिये उपयुक्त कानून पारित करने का भी अधिकार देता है। मान लीजिये कि अछूतों को अपने नागरिक अधिकारों के प्रयोग करने में बाधा डालने पर अभियोग और कुछ दण्ड विहित करने वाले कानून का केन्द्र निर्माण करता है। मान लीजिये कि ऐसा कोई कानून बना दिया जाता है और मान लीजिये कि किसी विशेष प्रान्त में अस्पृश्यता के अन्त करने के पक्ष में उतनी पवित्र तथा प्रबल भावनायें नहीं हैं और न सरकार की ही यह इच्छा है कि अछूतों के लिये जिन नागरिक अधिकारों की प्रत्याभूति संविधान देता है वे उनको मिलें तो क्या यह बात तर्कसंगत तथा उचित होगी कि अस्पृश्यता के विषय में जिस केन्द्र पर संविधान द्वारा इतना उत्तरदायित्व लादा गया है वह केवल कानून पारित कर दे और हाथ बांधे यह देखता तथा प्रतीक्षा करता रहे कि उन सब विशिष्ट कानूनों पर अमल कराने के विषय में प्रान्तीय सरकारें क्या कर रही हैं? क्या उस केन्द्र को जो इस प्रकार का कानून बनाता है उस पर अमल कराने का प्राधिकार नहीं होना चाहिये? यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जो यह कह सकता है कि इतने महत्व के विषय पर केन्द्र कानून बनाने के अतिरिक्त और कुछ न करे तो मैं उसे जानना चाहूंगा।

मैं आपके सामने एक उदाहरण और दे दूं। हमारे देश में बाल विवाह की प्रथा है जिसके विरुद्ध बहुत प्रचार हुआ है और बहुत कोलाहल हुआ है केन्द्र द्वारा कानून पारित कर दिये गये हैं। उन पर अमल कराना प्रान्तों पर छोड़ दिया गया है। हम सब जानते हैं कि एक सरकार में विधायी प्राधिकार निहित होने से और दूसरी सरकार में कार्यपालक प्राधिकार निहित होने से क्या नतीजा हुआ है। मैं समझता हूं (और मैं विचार करता हूं कि मेरे मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव जो इस विषय के कट्टर समर्थक रहे हैं इस बात को सभा में सदैव कहते रहे हैं) कि कानून के होते हुए भी देश में बाल विवाह उसी प्रकार से होते हैं जिस प्रकार

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

से कि वे पहले होते थे। क्या यह वांछनीय नहीं है कि केन्द्र जो कि इन दोषों के निवारण करने में बहुत ही रुचि रखता है उसे इस प्रकार के कानूनों पर अमल कराने का कुछ भी प्राधिकार न हो? क्या वह प्रान्तों को यह स्वतन्त्रता दे दे कि वे जिन कानूनों को संसद् ने बड़ी लग्न तथा उत्कण्ठा से अमल में लाये जाने के लिये बनाया है, उनके बारे में प्रान्त चाहे जो कुछ करें एक और उदाहरण है। कारखानों से संबंधित कानून को लीजिये। मुझे अच्छी तरह याद है कि जब मैं भारतीय सरकार का श्रम मंत्री था उस समय अनेकों ऐसे मामले आते थे जिनमें यह शिकायत की जाती थी कि कोई भी प्रान्त अथवा अधिकतर प्रान्त यह देखने के लिये कि कारखाने संबंधी कानूनों पर उचित रूप में अमल किया जाता है कारखाने में निरीक्षक नियुक्त करने के लिये उद्यत नहीं हैं। क्या यह वांछनीय है कि केन्द्रीय सरकार के श्रम संबंधी कानून केवल कागजी कानून रहें और उन पर कोई अमल न किया जाय? जब तक केन्द्र को अपने बनाये हुए कानूनों को अमल में लाने का अधिकार न हो तब तक उन कानूनों को किस प्रकार प्रभावी किया जा सकता है?

अत: जिन उदाहरणों को मैंने आपके सामने प्रस्तुत किया है उनको ध्यान में रख कर—और मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि अपने अनुभव के आधार पर माननीय सदस्यों को और भी अनेकों उदाहरण याद होंगे—मैं निवेदन करता हूं कि समवर्त्ती क्षेत्र में केन्द्र के बनाये हुए कानून का एक बड़ा भाग केवल इस कारण कागजी कानून ही बना रहता है कि केन्द्र अपने कानूनों पर स्वयं अमल नहीं करा सकता। मैं समझता हूं कि यह परिस्थिति बहुत खराब है और हमें उस से मुक्त होना चाहिये। यह परन्तुक इसी बात का प्रयत्न करता है।

एक और बात है जिसका मैं उल्लेख करना चाहता हूं और वह यह है। सच बात तो यह है कि प्रांतीय सरकारों को इस परन्तुक का स्वागत करना चाहिये क्योंकि आजकल एक प्रकार की आर्थिक अव्यवस्था फैली हुई है। केन्द्र के कानून बनाने और उन पर अमल कराने को प्रान्तों पर छोड़ देने का यह अर्थ होगा, प्रान्तों पर कुछ आर्थिक भार का लादना जिसकी आवश्यकता उन कानूनों के पालन करने के लिये तन्त्र की नियुक्ति में होती है। इस परन्तुक के कारण आर्थिक भार से प्रान्त मुक्त हो जायेंगे और इसीलिये मैंने सोचा कि इस परन्तुक का एक ऐसे अपर अनुदान के रूप से स्वागत होगा जिसकी प्रान्तों को बड़ी

आवश्यकता है। अतः श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि जो तर्क मैंने प्रस्तुत किये हैं उनसे प्रत्यक्ष है कि इस परन्तुक में वह सिद्धान्त निहित है जिसको अपनाना कल्याणकारी होगा।

***उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 1289 के प्रसंग में अनुच्छेद 60 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में 'Parliament has' (विधि बनाने की) और 'Power' (शक्ति) शब्दों के मध्य 'exclusive' (अनन्य) शब्द प्रविष्ट किया जाये।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन संख्या 1289 के प्रसंग में अनुच्छेद 60 के खण्ड (1) के परन्तुक में से 'or any law made by Parliament' (अथवा संसद् द्वारा निर्मित किसी विधि में) शब्द निकाल दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन संख्या 1289 के प्रसंग में अनुच्छेद 60 के खण्ड (1) के पश्चात् निम्न खण्ड प्रविष्ट किया जाये:

'(1a) Any power of Parliament to make laws for a State with respect to any matter specified in entries 25 to 37 of the Concurrent List shall include power to make laws as respects a State conferring powers and imposing, duties, or authorising the conferring of powers and the imposition of duties upon the Government of India or officers and authorities of the Government of India as respects that matter, notwithstanding that it is one with respect to which the Legislature of the State also has power to make laws.' "

[(1क) समवर्त्ती सूची की 25 से 37 प्रविष्टियों में उल्लिखित किसी विषय के संबंध में किसी राज्य के लिये कानून बनाने की संसद् की किसी

[उपाध्यक्ष]

शक्ति में किसी राज्य के संबंध में भारतीय सरकार अथवा अधिकारियों तथा भारतीय सरकार के प्राधिकारियों को उस विषय से संबंधित शक्तियां प्रदान करने तथा कर लगाने के प्राधिकार देने की शक्ति निहित है चाहे उस विषय के संबंध में कानून बनाने की शक्ति उस राज्य के विधान-मण्डल को भी क्यों न हो।]"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद के खण्ड (1) के परन्तुक को निकाल दिया जाये।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 60 विधान का भाग बने।"

*प्रस्ताव स्वीकार किया गया।*

*अनुच्छेद 60 विधान में प्रविष्ट किया गया।*

---

## अनुच्छेद 61

***उपाध्यक्ष:** सभा के समक्ष यह प्रस्ताव है:

"कि अनुच्छेद 61 विधान का अंग बने।"

संख्या 1294 पर श्री बेग का प्रथम संशोधन पेश किया जा सकता है।

***महबूब अली बेग साहिब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 61 के वर्तमान खंड (1) के स्थान में निम्न खण्ड रखे जायें:

'1(a) There shall be a Council of Ministers to aid and advise the President in the exercise of his functions,

(b) The Council shall consist of fifteen ministers elected by the elected members of both the Houses of

Parliament from among themselves in accordance with the system of proportional representation by means of a single transferable vote, and one of the ministers shall be elected as Prime Minister, in like manner.' "

[1(क) राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों का पालन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी।

(ख) परिषद् में अनुपाती प्रतिनिधान की प्रणाली के अनुसार एकल-संक्राम्य मत द्वारा संसद् के दोनों आगारों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा उन्हीं सदस्यों में से निर्वाचित पन्द्रह मंत्री होंगे और इसी रीति से उन मंत्रियों में से एक को प्रधान मंत्री निर्वाचित किया जायेगा।]

श्रीमान्, इस संशोधन को पेश करने का प्रथम आशय यह है कि कार्यपालक मंडल में अर्थात् मंत्रिमंडल में उचित प्रतिनिधि ही शामिल हो सकें।

और दूसरा आशय यह है कि जनता के विभिन्न भागों को भी उसमें प्रतिनिधित्व मिले। इस संविधान के मसौदे में मंत्रिमंडल में मंत्री नियुक्त करने की जो रीति प्रस्तुत की गई है और पहले जैसी प्रथा भारत शासन अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत अथवा उससे भी पूर्व रही है वह यह है कि जिस राजनैतिक दल का बहुमत द्वारा निर्वाचन होता है उसके नेता को गवर्नर अथवा गवर्नर जनरल द्वारा जैसी भी दशा हो, आमंत्रित किया जाता है और उससे मंत्रिमंडल बनाने के लिये कहा जाता है और वह यह तय करता है कि मंत्रिमण्डल में उसके साथी मंत्री और कौन होंगे। अतीत काल की यही प्रथा है और इस संविधान में भी यही रीति प्रस्तुत की गई है और यही प्रथा संसदात्मक प्रजातंत्र कही जाने वाली सरकार के स्वरूप के अनुरूप है। किन्तु मैं प्रजातंत्र का वह अर्थ नहीं लगाता जो वे लोग लगाते हैं जो संसदात्मक प्रणाली की सरकार को प्रजातन्त्र का सच्चा रूप मानते हैं। मेरे विचारानुसार संसदात्मक प्रजातन्त्र प्रजातन्त्र है ही नहीं। मेरे विचारानुसार केवल बहुसंख्यकों द्वारा शासन ही प्रजातन्त्र नहीं है वरन् प्रजातन्त्र वहां है जहां उचित विचार-विमर्श द्वारा, किसी विशेष विषय पर विचार-विमर्श की उचित रीति द्वारा, और जनता के समस्त विभागों के हितों को ध्यान में रख कर निश्चय किये जाते हैं। अब यह देखिये के मंत्रिमण्डल के बनाते समय वास्तव में होता क्या है। उदाहरण के लिये एक ऐसी संसद् का उदाहरण लीजिये जिसमें 200 सदस्य हों। यदि किसी विशेष दल के 105 सदस्य निर्वाचित हो गये हों तो उन 105 में से एक सदस्य नेता निर्वाचित किया जाता है और यदि उसका

[महबूबअली बेग साहिब बहादुर]

निर्वाचन केवल 60 सदस्यों के बहुमत द्वारा किया गया हो तो उसको राष्ट्रपति आमन्त्रित करता है और मन्त्रिमण्डल बनाने के लिये कहता है। अर्थात् 200 सदस्यों में से जिस व्यक्ति को 60 मत मिले हैं उसको राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल बनाने के लिये आमन्त्रित करता है और वह प्रधान मन्त्री बनता है और यह प्रधान मन्त्री अपने दल की सम्मति तथा इच्छा के बिना अथवा संसद् के सदस्यों की सम्मति लिये बिना अपने मन्त्रियों को चुनता है। वह अपने मित्रों को चुन सकता है। कभी-कभी वह वास्तव में बड़ी कठिनाई में पड़ जाता है। यदि वह किसी व्यक्ति को अपने मन्त्री के रूप में चुनता है तो अन्य उसके विरुद्ध हो जाते हैं। पर उसे तो चुनने का अधिकार है ही। अतः फल यह होता है.....।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। श्री बेग द्वारा प्रेषित संशोधन का दूसरा भाग प्रधान मंत्री की नियुक्ति के संबंध में है जो अनुच्छेद 62 का विषय है। अतः अनुच्छेद 61 के संशोधन के रूप में यह संशोधन पेश नहीं किया जा सकता।

***उपाध्यक्षः** मैं समझता हूं कि एक दूसरा संशोधन है, ठीक जिससे आपकी आपत्ति पूरी हो जाती है।

***महबूब अली बेग साहिब बहादुरः** अतः श्रीमान्, विधान के मसौदे के अनुसार वह व्यक्ति जिसे सभा के 200 सदस्यों में से 60 का समर्थन प्राप्त होता है·····।

***उपाध्यक्षः** श्री कामत, कृपया श्री बेग के नाम के संशोधन संख्या 1302 को देखें और आपको अपनी आपत्ति का समुचित उत्तर मिल जायेगा।

***महबूब अली बेग साहिब बहादुरः** उसको मंत्रिमण्डल बनाने के लिये आमन्त्रित किया जाता है। वह किसी व्यक्ति को अपना मन्त्री चुन सकता है जो समस्त सभा की सम्मति तो क्या स्वयं उसके दल की सम्मति में भी मंत्रिपद के लिये उपयुक्त व्यक्ति न हो। अतः मेरा निवेदन यह है कि देश पर शासन करने के लिये इस प्रकार के कार्यपालक मंडल की नियुक्ति चाहे और कैसी ही क्यों न कही जा सकती हो किन्तु प्रजातन्त्रात्मक तो हर्गिज कही जा सकती ही नहीं। जैसा कि मैं कह चुका हूं कि 200 सदस्यों की पूरी सभा द्वारा उनका निर्वाचन

नहीं होता इतना ही क्यों नेता जिसको प्रधान मंत्री कहा जाता है उसका निर्वाचन भी सभा के बहुमत द्वारा नहीं होता और मंत्रिमण्डल के अन्य सदस्यों को भी लोक द्वारा नहीं चुना जाता।

यह कहा जा सकता है कि चूंकि बहुमत ने दल को चुना है अतः नेता को अपने आदमियों को ही मंत्रिमण्डल में रखने का हक है। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि यह केवल एक कानूनी कल्पना है जिसके आधार पर मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को चुना जाता है। ऐसा हो सकता है कि यदि व्यक्तिगत रूप में इन मंत्रियों का निर्वाचन किया जाये तो वे बिल्कुल ही न चुने जायें। तो क्या हम इन मन्त्रियों को लोक-मंत्री कह सकते हैं? क्या हम यह कह सकते हैं कि इनका निर्वाचन प्रजातन्त्रात्मक रीति से हुआ है, इनकी नियुक्ति प्रजातन्त्रात्मक ढंग से हुई है? कदापि नहीं। केवल कानूनी कल्पना के आधार पर वे यहां हैं। अतः मेरा निवेदन है कि यह प्रजातन्त्रात्मक ढंग नहीं है।

फिर भी यह कहा जाता है कि संसदात्मक प्रजातंत्र इंग्लैंड तथा अन्य देशों में सफल हुआ है इत्यादि, इत्यादि। मेरा निवेदन यह है कि मैं इस कथन से बिल्कुल ही सहमत नहीं हूं कि यह संसदात्मक पद्धति प्रजातन्त्रात्मक है। श्रीमान्, मुझे तो बड़ी हंसी भी आती है और चिन्ता भी होती है जब मैं लोगों का यह कथन सुनता हूं कि राजनैतिक दलों पर आश्रित संसदात्मक प्रजातन्त्र ही सर्वोत्तम प्रजातन्त्र है। मेरा कहना तो यह है कि इस प्रकार का प्रजातन्त्र जो कि संसदात्मक प्रजातन्त्र के नाम से प्रसिद्ध हो रहा है प्रजातन्त्रात्मक होने से कोसों दूर है और विशेष कर यूरोप के शासन में आन्तरिक परिवर्तन तथा आन्तरिक क्रान्ति की समस्त बुराइयां तथा दोष इन राजनैतिक दलों के ही पैदा हुए कारण हैं–एक राजनैतिक दल शक्ति सम्पन्न होता है तो दूसरा उसे गिराने का प्रयत्न करता है। वहां यही हो रहा है। क्या बिना दलों के, बिना राजनैतिक दलों के, हम प्रजातन्त्र प्राप्त कर सकते हैं? भविष्य की राजनीति की मेरी कल्पना विचार दल विहीन राजनीति से है.....।

***एक माननीय सदस्यः** साम्प्रदायिक दलों से।

***महबूब अली बेग साहिब बहादुरः** कदापि नहीं, श्रीमान्, आप गलती पर हैं। उस विचार से भयभीत न हों। जितना शीघ्र आप उससे मुक्त हों उतना ही अच्छा।

***उपाध्यक्षः** श्री बेग, कृपया अध्यक्ष को संबोधन करिये।

***महबूब अली बेग साहिब बहादुरः** मैं आपको संबोधित कर रहा हूं, श्रीमान्। हमारे कुछ मित्रों की यह प्रवृत्ति है कि जब कोई उनके धर्म से पृथक् धर्म का अनुयायी बोलता है तो वे बाधा देते हैं। यह दुर्भाग्य की बात है। मैं उस विचार का प्रतिपादन कर रहा हूं कि हम दल विहीन राजनीति अपनायें।

***श्री अलगूराय शास्त्री** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): यह संकीर्ण विचार युक्त दलाश्रित राजनीति है जिसका आप प्रतिपादन कर रहे हैं।

***महबूब अली बेग साहिब बहादुरः** यदि मेरे मित्र उदाहरण चाहते हैं तो मैं उनको स्विट्जरलैंड का उदाहरण दे सकता हूं। उस देश में राजनैतिक दलों का निर्वाचन नहीं होता है। वहां संसद् के सदस्यों का निर्वाचन होने के पश्चात् वे अपने मंत्रिमण्डल के मंत्रियों का निर्वाचन करते हैं। वहां यही हो रहा है और विगत अनेकों शताब्दियों से उस देश में कोई क्रान्ति नहीं हुई। वहां ऐसा कभी नहीं हुआ कि एक दल शक्ति सम्पन्न हो और वह दूसरे दल को सताये या कष्ट पहुंचाये तथा अन्य ऐसी ही बातें वहां नहीं हुई।

अतीतकाल में प्रजातन्त्र की क्या कल्पना थी? उस समय राजनैतिक दल मंत्रिमण्डल नहीं बनाते थे। दल विहीन राजनीति की प्रचुरता थी और जनता के समस्त विभागों में से सर्वोत्तम व्यक्तियों को चुना जाता था। वे संसद् में जाते थे और संसद् के ये सदस्य स्वयं अपने शासकों अथवा कार्यपालक मण्डलों को चुनते थे।

श्रीमान्, शक्ति सम्पन्न दल से किसी अन्य राजनैतिक दल के सदस्य क्यों भयभीत हैं? इसीलिये कि प्रत्येक राजनैतिक दल शक्ति बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील है और जब उसके हाथ में शक्ति होती है तो वह अन्य दलों को सताने तथा दबाने में उस शक्ति का प्रयोग करता है। ऐसी बात नहीं होनी चाहिये। हमें केवल उसी राजनैतिक दल को रखना चाहिये जो देश के कल्याणार्थ कार्य करता है। यदि हमारे प्रतिनिधि जिनको विधान-मण्डलों व संसद् में भेजा जाता है वे सब साथ बैठकर यह विचार करें कि प्रजातन्त्र की उत्तमोत्तम रीति क्या है और ऐसे कानून बनाये जो लोगों के लिये लाभदायक हों चाहे वे राष्ट्रीयकरण के लिये हों अथवा अन्य किसी प्रयोजन के लिये; तो मैं पूछता हूं कि राजनैतिक दलों की क्या आवश्यकता है?

***पंडित ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): आप सामूहिक उत्तरदायित्व का किस प्रकार सुनिश्चयन करेंगे?

***श्री अलगूराय शास्त्री:** प्रश्न तो यही है कि आप सामूहिक उत्तरदायित्व का किस प्रकार सुनिश्चयन करेंगे?

***महबूब अली बेग साहिब बहादुर:** जब राजनैतिक दल नहीं होंगे तो जो मंत्रिमण्डल चुना जायेगा वह किसी राजनीति से संबंध रखने वाला नहीं होगा और उन लोगों के समक्ष केवल देश कल्याण का ही उद्देश्य होगा और इस प्रयोजन के लिये उनमें परस्पर सहयोग होगा। मेरा ऐसा विचार है। अत: जैसा कि मैंने निवेदन किया था कि जिस वर्तमान रीति से प्रधान मंत्री और मंत्रिमंडल के सदस्य चुने जाते हैं उसको प्रजातन्त्रात्मक नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रधान मंत्री के चुनने में सबका हाथ नहीं होता है। स्वयं उनके दल के व्यक्तियों को चुनने का अधिकार होता है और उस दल में भी यदि अपने विरोधी से नेता को केवल एक मत भी अधिक मिल जाता है तो वह नेता हो जाता है और फिर वही मंत्रिमण्डल के सदस्य चुनता है। अत: मंत्रिमंडल के इन मंत्रियों की नियुक्ति प्रजातंत्रात्मक नहीं है और न उसको किसी भी रूप में प्रजातन्त्रात्मक कहा ही जा सकता है। यह पहली बात है जिस पर मैं जोर देना चाहता हूं।

दूसरी बात जिसे मैं स्वयं सोच रहा हूं वह यह है कि हम उन समस्त घबराहटों और कष्टों से किस प्रकार मुक्त हों जो राजनैतिक दलों के कारण, जैसे कि साम्यवादी दल, समाजवादी दल, प्रजातन्त्रात्मक समाजवादी दल, इस संसार के देशों में पाये जाते हैं। ये समस्त दल अपनी-अपनी सत्ता स्थापित कर लेते हैं और प्रत्येक दल का अपना कार्यक्रम होता है और जो दल शक्ति सम्पन्न हो जाता है वही अन्य दलों को दबाता और सताता है। इन सब बातों की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक दल अथवा समुदाय इस बात की घोषणा करता है कि देश के लिये उसका कार्यक्रम सर्वोत्तम है। परन्तु जब उद्देश्य अच्छा है और देश के कल्याण के हित में है तो लोगों में परस्पर किसी प्रकार के विभाजन की और अपने आप को समाजवादी दल के सदस्य, प्रजातंत्रात्मक समाजवादी दल, साम्यवादी दल के सदस्य कहने की क्या कोई आवश्यकता ही न होगी? अत: इस दृष्टिकोण से मैं एक ऐसी वस्तुस्थिति की कल्पना कर रहा हूं जिसमें जनता

[महबूब अली बेग साहिब बहादुर]

द्वारा भेजे हुए सदस्य अपने लोगों को चुनें और विधान-मंडलों में उनका निर्वाचन करें। यह प्रजातन्त्रात्मक रीति है।

अत: मैं निवेदन करता हूं कि मेरे दृष्टिकोण पर उचित विचार किया जाये और मैं आशा करता हूं कि सदस्यगण इतने अनुदार नहीं होंगे कि वे इस कारण से इस बात की निन्दा करें कि मैं मुसलमान हूं और वे यह सोचें कि मेरे मन में कुछ और है। मेरे मन में किसी प्रकार के छिपे भाव नहीं हैं। सामान्य विषयों पर वार्तालाप करने का हमें अधिकार है और हम पर घातक प्रवृत्तियों का दोषारोपण नहीं होना चाहिये।

***श्री आर.वी. धुलेकर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या मैं आप से यह जान सकता हूं कि स्विट्जरलैंड एक देश है अथवा एक विश्व सराय?

***उपाध्यक्ष:** आपको इस प्रश्न का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है। इसके बाद का संशोधन प्रो. के.टी. शाह के नाम से संशोधन संख्या 1295 है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): उनके नाम से एक ऐसा ही संशोधन संख्या 1300 पर है, वह भी पेश किया जा सकता है।

***उपाध्यक्ष:** मैं माननीय सदस्य को यह सूचना देना चाहता हूं कि इस संशोधन पर कुछ संशोधन हैं।

इस कारण क्या माननीय सदस्य जिस प्रकार मैं आमंत्रित करूं उस प्रकार संशोधन पेश करेंगे? प्रो. शाह–संशोधन संख्या 1295 ।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 61 के खण्ड (1) में से 'with the Prime Minister at the head' (जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री होगा) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधित रूप में अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"There shall be a Council of Ministers to aid and advise the President in the exercise of his functions.'

(राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों का पालन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी।)

यह विचार प्रस्तुत करके कि प्रधान मंत्री के पद को विधान के बाहर रखा जाये मैं प्रधान मंत्री पद के रखे जाने का विशिष्ट रूप से विरोध नहीं कर रहा हूं। जबसे सर रोवर्ट वालपोल ने इस पद को ग्रहण किया था तभी से प्रधान मंत्री का पद इंग्लैण्ड के संविधान में विख्यात है। परन्तु ब्रिटिश संविधान में उसका जिक्र अब तक नहीं है। जो कुछ सामाजिक स्थिति, पद संबंधी ऐश्वर्य तथा अन्य अग्रगण्यता उसे प्राप्त हैं वे संविधान की किसी विशिष्ट धारा द्वारा प्राप्त नहीं है वरन् वे परिषदादेशों के कारण उसे प्राप्त हैं।

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): क्या मैं प्रो. शाह से यह जान सकता हूं कि यद्यपि वे यह कहते हैं कि इंग्लैण्ड का संविधान इस बात से परिचित नहीं है कि आया प्रधानमंत्री है या नहीं, परन्तु क्या यह सत्य नहीं है कि समस्त संसार यह जानता है कि इंग्लैण्ड का कोई प्रधान मंत्री है?

***प्रो. के.टी. शाह:** मैंने यह नहीं कहा है कि प्रधान मंत्री के पद को न रखा जाये। मैं तो केवल यह विचार प्रस्तुत कर रहा हूं कि उसका जिक्र संविधान में न किया जाये। इसका यह आशय नहीं है कि वह प्रधानमंत्री के रूप में विख्यात नहीं होगा और न यह अर्थ है कि वास्तव में प्रधानमंत्री होगा ही नहीं। ऐसी कोई बात नहीं है। इसका केवल यही आशय है कि जहां तक संविधान का संबंध है उसमें मंत्रियों को तो मंत्री कहा जाये, उसके अतिरिक्त किसी मंत्री के संबंध में पृथक् महत्त्व अथवा स्थान अथवा व्याख्या को संविधान में न लिखा जाये जिससे कि संविधान किसी हद तक लचीला रहा आये अन्यथा वह किसी हद तक लचीला न रहेगा।

अर्थमंत्री का वर्णन हम यहां अर्थमंत्री के रूप में नहीं करते हैं इसी प्रकार यद्यपि सुरक्षा मंत्री तो कोई न कोई होगा ही परन्तु हम संविधान में सुरक्षा मंत्री

[प्रो. के.टी. शाह]

की विशिष्ट रूप में हम व्यवस्था नहीं करते हैं। इसी प्रकार प्रधानमंत्री भी होगा चाहे हम संविधान में इस पद की कोई व्यवस्था साफ-साफ लफ्जों में की जाये या नहीं और चाहे उसका इस प्रकार वर्णन भी न किया जाये जैसा कि यहां किया गया है।

श्रीमान्, मैंने यह आरंभ में ही कहा था कि प्रधानमंत्री का पद बड़ा ही लाभदायक है और वह किसी दल को सुसंगठित रखने के लिये आवश्यक है। उसके कारण कार्य को शीघ्र पूरा करने, बांटने और आनियमन का कार्य हो सकता है। अन्य प्रकार से भी इस पद से संविधान को अमल में लाने में काफी सहायता मिलती है। किन्तु संविधानिक सिद्धान्तों की दृष्टि से मैं कह सकता हूं कि यह पूर्णतया अनावश्यक हैं, और मैं तो यहां तक समझता हूं कि यह वांछनीय भी नहीं है कि हम प्रधान मंत्री को प्रधान मंत्री के रूप में, मंत्रिपरिषद् के प्रमुख के रूप में रखने के लिये आग्रह करें।

इस संशोधन को रखने का दूसरा कारण यह है कि मैं मंत्रियों को परस्पर बराबर ही नहीं मानता हूं परन्तु मैं यह भी समझता हूं कि यदि किसी कारणवश प्रधानमंत्री अनिष्टकारी हो जाये अथवा उसका कोई अन्य साथी अनिष्टकारी हो जाय तो उनको हटाने के लिये हमें समस्त मंत्रिमंडल के पूर्ण परिवर्तन के लिये विवश नहीं होना चाहिये। संविधान के रूप में यह संविधान प्रधान मंत्री को जो शक्ति प्रदान करता है वह शक्ति इस बात को अनिवार्य बना देगी कि उसके हाथ में शक्ति का संकेन्द्रण हो ऐसा संकेन्द्रण जो उत्तरदायी तथा प्रजातन्त्रात्मक सरकार से मेल न खाता हो।

यह हो सकता है—और ऐसा बहुधा हुआ है—कि किसी विशेष अवसर पर कोई एक विशेष मंत्री लोगों को पसन्द न हो अथवा सरकार की कोई विशिष्ट नीति प्रजा को पसन्द हो। अब यदि कोई विशेष मंत्री ही पसंद नहीं है तो मैं स्वयं यह सोचता हूं कि सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अन्तर्गत, जो बाद में इस अनुच्छेद में दिया हुआ है, समस्त मंत्रिमंडल का बलिदान करना अवांछनीय है। समस्त मंत्रिमंडल में परिवर्तन करने की आवश्यकता के बिना हमें किसी एक मंत्री को निकालने की व्यवस्था करनी चाहिये। यह हो सकता है कि प्रधान मंत्री

को जो प्राधिकार प्राप्त होंगे उस प्राधिकार के द्वारा वह एक मंत्री को निकाल दे और फिर भी सामूहिक मंत्रिमण्डल के रूप में सरकार को इस मान्यता पर चला सके कि सारे मंत्रिमंडल का स्थान दूसरे मंत्रिमंडल ने ले लिया है।

मैं समझता हूं कि यह संकट उस समय और भी उग्रतर हो जाता है जब स्वयं प्रधान मंत्री लोकप्रिय या विश्वास-पात्र नहीं रहता ऐसे अवसर पर अपने साथियों के बहुमत के विरुद्ध प्रधान मंत्री को संसद् अथवा लोक-सभा को भंग करने का अधिकार होना चाहिये और यदि वह चाहे तो कम से कम उसे अपने आपको बचाने का एक और अवसर मिलना चाहिये।

श्रीमान्, मेरा यह विचार है कि यह केवल सच्ची, उत्तरदायित्वपूर्ण तथा प्रजातन्त्रात्मक सरकार के काम करने के हित में ही नहीं होगा वरन् सम्बद्ध मंत्रिमण्डल अथवा उसकी नीति के हित में भी होगा। इस कारण मैंने इस संशोधन को प्रस्तुत किया है जिसके संबंध में मैं फिर कहता हूं कि लोक-रूढ़ि के आधार पर न तो वह प्रधान मंत्रित्व पद के बने रहने को ही असंभव कर देता है और न वह प्रधान मंत्री के रूप में किसी भी मंत्री को हम जिन शक्तियों तथा प्रकार्यों को सौंपते हैं उनका हरण ही करता है।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1296 जो श्री रामनरायण सिंह के नाम से है। सदस्य उपस्थित नहीं थे।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

इसके बाद संशोधन संख्या 1297 तथा 1298 है जो सर्वश्री मुहम्मद ताहिर और सैयद जफर इमाम के नाम से हैं। उनको साथ-साथ पेश किया जा सकता है।

***श्री मुहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 61 के खण्ड (1) के अन्त में (हिन्दी रूपान्तर के आरंभ में) निम्न प्रविष्ट किया जाये:

'Except in so far as he is by or under this Constitution required to exercise his functions or any of them in his discretion.'"

[श्री मुहम्मद ताहिर]

(सिवा उन प्रकार्यों अथवा उनमें से किसी एक के पालन करने में जिनके लिये इस संविधान द्वारा अथवा उसके अन्तर्गत राष्ट्रपति के लिये अपने स्वविवेक का प्रयोग करना अपेक्षित है।)

यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा।

"सिवा उन प्रकार्यों अथवा उनमें से किसी एक प्रकार्य के पालन करने में जिनके लिये इस विधान द्वारा अथवा उसके अन्तर्गत के राष्ट्रपति के लिये अपने स्वविवेक का प्रयोग करना अपेक्षित है राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों का पालन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रमुख प्रधान मंत्री होगा।"

मेरा दूसरा संशोधन इस प्रकार है:

"कि अनुच्छेद 61 के खण्ड (1) के पश्चात् निम्न नया खण्ड प्रविष्ट किया जाये और वर्तमान खण्ड (2) की क्रम संख्या (3) कर दी जाये:

'(2) If any question arises whether any matter is or is not a matter as respects which the President is by or under this Constitution required to act in his discretion, the decision of the President in his discretion, shall be final and the validity of any thing done by the President shall not be called in question on the ground that he ought or ought not to have acted in his discretion.'"

[(2) यदि कोई ऐसा प्रश्न उठता है कि क्या कोई विषय ऐसा विषय है या नहीं कि जिसके संबंध में राष्ट्रपति को इस संविधान द्वारा अथवा उसके अन्तर्गत अपने स्वविवेक से कार्य करना आवश्यक है तो इस प्रश्न पर अपने स्वविवेक के संबंध में राष्ट्रपति का निर्णय अन्तिम होगा और राष्ट्रपति द्वारा किसी कार्य-संपादन की मान्यता के प्रति इस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि उसे अपने स्वविवेक से कार्य करना चाहिये या नहीं।]

इन संशोधनों को पेश करते हुए, यद्यपि श्री कामत के शब्दों में राष्ट्रपति नाम मात्र का राष्ट्रपति है, फिर भी मैं चाहता हूं कि राष्ट्रपति को चारों ओर से जकड़

नहीं देना चाहिए। कम से कम इस सभा को इतना उदार तो होना चाहिये कि वह उसे अपनी स्वविवेकात्मक शक्तियों का प्रयोग करने की स्वतंत्रता दे। इस अपवाद का पुर:स्थापन करते हुए मैं यह निवेदन करूंगा कि यह कोई अनोखा अपवाद नहीं है; यदि आप इस संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 148 को देखेंगे तो आपको विदित होगा कि राज्य के मंत्रियों और शासकों के प्रति यही अपवाद स्वीकार किया गया है। जब कि राज्य के शासकों को यह अधिकार दिया गया है कि वे कुछ शक्तियों को अपने स्वविवेक के अनुसार प्रयोग कर सकते हैं तो मुझे कोई ऐसा कारण प्रतीत नहीं होता कि यह निर्दोष अधिकार भारत के राष्ट्रपति को क्यों न दिया जाये।

इस संबंध में मुझे कोई लंबा भाषण देने की आवश्यकता नहीं है। मैं यह आशा लिये हुए अपना भाषण समाप्त करता हूं कि मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार करेंगे और मेरे संशोधनों के पक्ष में निर्णय करेंगे। इन चन्द शब्दों के साथ मैं अपने संशोधन पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** तत्पश्चात् प्रो. के.टी. शाह के संशोधन संख्या 1299 और 1300 आते हैं।

***प्रो. के.टी. शाह:** क्या मैं दोनों को साथ-साथ पेश कर सकता हूं? उनमें से एक पर और भी संशोधन है।

***उपाध्यक्ष:** जी हां।

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 61 के खंड (2) के अन्त में 'except by the High Court of Parliament when trying a President under section 50' (हिन्दी रूपान्तर में 'पर' शब्द के पश्चात् 'धारा 50 के अन्तर्गत राष्ट्रपति पर अभियोग की जांच करते समय सिवा संसद् के उच्च न्यायालय के अन्य') शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

आपकी मंत्रणा के अनुसार मैं अभी अपने संशोधन 1300 को भी पेश करता हूं।

[प्रो. के.टी. शाह]

मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 61 के खण्ड (2) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड प्रविष्ट किये जायें:

'(2A) On every change in the Council of Ministers, and particularly on every change of the holder of Prime-Ministership, the Prime Minister (alternatively, the President) shall present the new minister as the case may be to the People' House of Parliament, and shall ask for a vote of confidence from that body in the particular minister newly appointed. In the event of an adverse vote in the case of a particular minister, the minister concerned shall fortwith cease to hold office and a new minister appointed. If a vote of confidence in the Council of Ministers collectively is refused, the Council as a whole shall resign and a new Ministry formed in its place.

(2B) Every minister shall, at the time of his appointment, be either an elected member of one or the other House of Parliament, or shall seek election and be elected member of one or the other House within not more than six months from the date of his appointment, provided that no one elected at the time of a General Election, and appointed minister within less than six months of the date of the General Election, shall be liable to seek election.

(2C) No one who is not an elected member of either House of Parliament shall be appointed minister unless he gets elected to one or the other House of Parliament within six months of the date of his appointment.

(2D) Not less than two-thirds of the members of the Council of Ministers shall at any time be members of the

People's House of Parliament; and not more than one-third of the members of the Council of Ministers shall at any time be members of the Council of States. Members of the Council of Ministers may have such assistance in the shape of Deputy Minister or Parliamentary Secretaries as Parliament may by law from time to time determine, provided that no one shall be appointed Deputy Minister or Parliamentry Secretary who at the time of his appointment was not an elected member of either House of Parliament, or who is not elected within six months of the date of his appointment to a seat in one or the other House of Parliament.

(2E) No one shall be appointed Minster or Deputy Minister or Parliamentary Secretary, who has been convicted of treason, or of any offence against the sovereignty, security, or integrity of the State, or of any offence involving moral turpitude and of bribery and corruption and liable to a maximum punishment of two years' rigorous punishment.' "

[(2क) मंत्रिपरिषद् में प्रत्येक परिवर्तन होने पर तथा विशेषतया प्रधानमंत्री-पदधारी के बदलने पर प्रधानमंत्री (विकल्पत: राष्ट्रपति) यथास्थिति नये मंत्री को संसद् की लोकसभा में प्रस्तुत करेंगे और उस निकाय से उस नवीन नियुक्त मंत्री के प्रति विश्वास का प्रस्ताव स्वीकार करने के लिये कहेंगे। किसी विशिष्ट मंत्री के संबंध में विरोधी मत प्रकट होने की स्थिति में वह मंत्री उसी समय से पदच्युत हो जायेगा और कोई नया मंत्री नियुक्त किया जायेगा। यदि सामूहिक रूप से मंत्रिपरिषद् पर विश्वास का प्रस्ताव अस्वीकार किया गया तो समस्त परिषद् को पदत्याग करना होगा और उसके स्थान में नया मंत्रिमंडल बनाया जायेगा।

[प्रो. के.टी. शाह]

(2ख) नियुक्ति के समय प्रत्येक मंत्री या तो संसद् के दोनों आगारों में से किसी एक का निर्वाचित सदस्य होगा और या निर्वाचित होने के लिये प्रयास करेगा और अपनी नियुक्ति तिथि से 6 माह के भीतर किसी न किसी आगार का सदस्य निर्वाचित हो जायेगा पर कोई भी व्यक्ति जो सामान्य निर्वाचन के समय निर्वाचित हुआ था तथा सामान्य-निर्वाचन-तिथि से 6 माह के भीतर मंत्री नियुक्त किया गया है वह निर्वाचित होने के लिये प्रयास करने के लिये बाध्य नहीं होगा।

(2ग) किसी भी व्यक्ति को जो संसद् के दोनों आगारों में से किसी आगार का सदस्य नहीं है तब तक मंत्री नियुक्त नहीं किया जायेगा जब तक कि वह अपनी नियुक्त तिथि से 6 माह के भीतर संसद् के किसी न किसी आगार का सदस्य निर्वाचित न हो।

(2घ) किसी भी समय मंत्रिपरिषद् के सदस्यों में कम से कम दो तिहाई ऐसे होंगे जो संसद् की लोक-सभा के सदस्य भी हैं और न किसी समय मंत्रिपरिषद् के सदस्यों में से एक तिहाई से अधिक सदस्य ऐसे होंगे जो राज्यपरिषद् के सदस्य भी हैं। मंत्रिपरिषद् के सदस्य ऐसे उपमंत्रियों तथा संसदीय सचिवों से सहायता प्राप्त कर सकते हैं जैसों का कि संसद् समय-समय पर विधि द्वारा निश्चय करे। पर किसी ऐसे व्यक्ति को उपमंत्री तथा संसदीय सचिव नियुक्त नहीं किया जायेगा जो नियुक्ति के समय संसद् के दोनों आगारों में से किसी आगार का भी निर्वाचित सदस्य नहीं है। अथवा जो संसद् के किसी आगार में नियुक्त तिथि से 6 माह के भीतर निर्वाचित न हो जाये।

(2ङ) जो व्यक्ति राजद्रोह के लिये अथवा राज्य की प्रभुता, सुरक्षा या अक्षुण्णता के विरुद्ध अपराध के लिये अथवा नैतिक दुराचार और उत्कोच और भ्रष्टाचार वाले तथा अधिक से अधिक दो वर्ष के कठोर कारावास से दण्डित होने वाले अपराध के लिये दोष प्रमाणित

हुआ है वह मंत्री या उपमंत्री अथवा संसदीय सचिव नियुक्त नहीं किया जायेगा।]

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य पांचवें सप्ताह की सूची 4 में दिये हुए संशोधन संख्या 47 को पेश कर सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधन संख्या 1300 में, जिसको मैंने अभी पेश किया है, खण्ड (2ङ) के अन्त में निम्न जोड़ दिया जाये:

'Every Minister shall, before entering upon the functions of his office, declare all his right, interest or title in or to any property, business, industry, trade or profession, and shall divest himself of the same either by selling all or any such right, interest, or title in or to any property, business industry, trade or profession in open market or to Government at the market price; and further, shall take an oath ever to consider exclusively the interests of the country and not seek to promote his own interest or aggrandisement of his family in any act he may do or appointment he may have to make.' "

(अपने पद के प्रकार्यों को संभालने के पूर्व प्रत्येक मंत्री किसी सम्पत्ति, वाणिज्य, उद्योग, व्यापार अथवा व्यवसाय में अथवा उसके संबंध में अपने समस्त स्वत्व, हित अथवा स्वामित्व की घोषणा करेगा और सम्पत्ति वाणिज्य, उद्योग, व्यापार अथवा व्यवसाय में या उसके संबंध में अपने उन सब अथवा उनमें से किसी भी ऐसे स्वत्व, हित अथवा स्वामित्व को खुले बाजार में अथवा बाजार की दर से सरकार को बेचकर उनसे स्वयं पृथक् हो जायेगा; और फिर इस बात की शपथ ग्रहण करेगा कि वह सदैव देश के हितों का पूरा-पूरा ध्यान रखेगा और जो कोई भी कार्य उसे करना है उसके करने में अथवा जो नियुक्ति उसे करनी है उसके करने में वह अपने निजी हितों को उन्नत करने के लिये अथवा अपने कुटुम्ब के अभ्युदय के लिये प्रयास नहीं करेगा।)

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान्, संशोधन संख्या 1299, के संबंध में मैं यह तो मानता हूं कि सामान्यतया जो मन्त्रणा कोई मन्त्री राष्ट्रपति को दे उसे बहुत गुप्त रखा जाये अत: किसी साधारण रीति से उसकी जांच करने की छूट न हो। परन्तु यदि ऐसा हो कि राष्ट्रपति अथवा किसी मंत्री पर अभियोग चल रहा हो, विशेषकर जब राष्ट्रपति पर अभियोग चल रहा हो और संसद् ने या तो स्वयं ही अभियोग लगाते समय जांच करने का आदेश दे दिया है अथवा ऐसी जांच करा ली है तो न्याय के हितार्थ यह आवश्यक है, और उस हालत में तो खासतौर पर जरूरी है जब कि दी गई मन्त्रणा के संबंध में ही यह प्रश्न उत्पन्न है कि संविधान का पालन किया गया है अथवा नहीं उस स्थिति में यह नि:सन्देह सही तथा उचित है कि उच्च न्यायालय अथवा संसद् को यह पूछने का अधिकार हो कि क्या मन्त्रणा दी गई थी।

ऐसी दशा में फैसला इस बात पर निर्भर होगा कि वाकया क्या था और कहां तक वह सम्मति ठीक थी उस सूरत में वाकया होगा राष्ट्रपति को दी हुई मन्त्रणा हो और इस संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति सदैव यह तर्क प्रस्तुत कर सकेगा कि उसने अपने मन्त्री की मंत्रणा के अनुसार कार्य किया। यदि किसी व्यक्ति द्वारा उस मंत्रणा की परिपृच्छा नहीं की जाती है तो मैं समझता हूं कि जब कभी राष्ट्रपति पर अभियोग लगाया जायेगा उस समय उसके साथ यह अन्याय होगा। यदि मंत्री ने जो कुछ मंत्रणा उसे दी है उसको वह अपनी सर्वोत्तम रक्षा के रूप में प्रस्तुत नहीं कर सके। मैं समझता हूं कि इस आधार पर मेरा संशोधन इस प्रकार की विशेष स्थिति को स्पष्ट करेगा और इस कारण उसे स्वीकार करना चाहिये।

मेरे दूसरे संशोधन के संबंध में मैं यह बताना चाहता हूं कि वह उन तीन या चार प्रमुख विषयों पर सुझाव प्रस्तुत करता है जो मुझे इस विधान में यहां स्पष्ट रूप से दिये हुए दिखाई नहीं देते हैं। सामूहिक रूप में मंत्रियों के विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होने के कारण यह स्पष्ट है कि उनको उस मंडल का सदस्य होना चाहिये बाद में इस संविधान में विधान-मण्डल संबंधी कुछ खंड दिये हुए हैं जिनमें इस प्रकार के प्रावधान मिलते हैं। उन खंडों पर भी कुछ संशोधनों की सूचना देने का मुझे गौरव प्राप्त है। परन्तु मैं समझता हूं कि यह उपयुक्त स्थल

है जहां कि हमें कोई ऐसा निश्चित प्रावधान रखना चाहिये कि मंत्रिमण्डल निर्माण करते समय संसद् में—संसद के किसी भी आगार में—उन मंत्रियों का स्थान होना चाहिये जो संसद् के प्रति उत्तरदायी हैं अथवा यह कि यदि उनका कोई ऐसा स्थान नहीं है तो मंत्री नियुक्ति होने की तिथि से 6 मास के भीतर वे ऐसा स्थान प्राप्त कर लें। यह एक बहुत ही साधारण सी बात है और इसकी पुष्टि उस प्रथा से भी होती है कि बहुत से लोकप्रिय संविधानों में ऐसी रीति है—मसलन इंग्लैंड के संविधान में—अत: इसका कोई विरोध नहीं होना चाहिये।

श्रीमान्, दूसरा विषय जिसका मैंने सुझाव दिया है वह निरपेक्ष नहीं है। मैंने केवल यह सुझाव रखा है कि किसी समय भी मंत्रिपरिषद् के सदस्यों में से कम से कम दो तिहाई सदस्य ऐसे होने चाहियें जो लोक-सभा के सदस्य भी हैं। यह स्पष्ट है कि लोक-सभा का अधिक महत्त्व होना चाहिये क्योंकि उस सभा के विश्वास प्रस्ताव के कारण ही मन्त्रिमण्डल अपने पद पर बना रहेगा। ऐसा होने के कारण मैं समझता हूं कि उस सभा में पर्याप्त मात्रा में मन्त्रियों की उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक है। दूसरी सभा के संसद् के अधिकतर प्रकार्यों में समवर्त्ती अथवा बराबर की साझीदार होने के कारण यह आवश्यक है कि उसमें भी कुछ मन्त्री उपस्थित रहें जो उस सभा की सरकार अथवा मन्त्रिमण्डल का दृष्टिकोण बता सकें। अत: मैंने यह सुझाव रखा है कि कम से कम दो तिहाई सदस्य अवरागार में हों और उसके सदस्यों में से कम से कम एक तिहाई राज्यपरिषद् में हों। मोटे रूप में इस विधान के अन्तर्गत लोक-सभा और राज्यपरिषद् की सदस्यता से भी यह क्रमश: साम्य रखता है। अत: मैं सोचता हूं कि इस संशोधन पर भी आपत्ति नहीं होगी।

चाहे मन्त्री अपने को किसी नाम से क्यों न पुकारें किन्तु उन्हें संसदीय सचिवों तथा उपमन्त्रियों से चाहे सहायता लेने की बात तो संसदीय कार्यप्रणाली को सुविधाजनक बनाने की ही बात है। यह इसलिए आवश्यक है जिससे कि उस हालत में जब कि मुख्य मन्त्री या किसी मंत्री ने सार्वजनिक कार्यों में अति व्यस्त होने से समय की कमी के कारण उपस्थित न हो अथवा गैरहाजिर हो यह

[प्रो. के.टी. शाह]

मुश्किल न हो कि सभा में प्रस्तुत विषयों पर मन्त्रिमण्डल का दृष्टिकोण रखने वाला वहां कोई व्यक्ति ही न हो। उस प्रकार की संसदीय सहायता प्राप्त कराने के लिये संविधान में व्यवस्था होनी चाहिये जैसी कि उपमन्त्रियों और संसदीय सचिवों संबंधी संशोधन से मैंने प्रस्तावित की है।

यह स्पष्ट है कि ये मन्त्री उस दर्जे के मंत्री नहीं होंगे जिस दर्जे के प्रधानमन्त्री अथवा मन्त्रिमंडल के अन्य मंत्री होंगे। विशिष्ट रूप से संविधान में यह स्पष्ट घोषणा होनी चाहिये कि राज्य के विभिन्न विभागों के मन्त्रियों के वे केवल सहायक होंगे। परन्तु संविधान में उनकी नियुक्ति की विशेष रूप से व्यवस्था होनी चाहिये और उसे किसी विशिष्ट मंत्रिमंडल की आवश्यकताओं पर नहीं छोड़ देना चाहिये।

इन सहायक मंत्रियों की संख्या तथा उनके ठीक-ठीक प्रकार्य समय-समय पर संसद् द्वारा निश्चित किये जाने चाहियें जिससे कि ये नियुक्तियां केवल उस कार्यपालन प्रादेश का विषय न हो जाये जिसकी पुष्टि करने की संसद् को आवश्यकता नहीं है।

जिस सामूहिक सिद्धान्त पर यह अनुच्छेद आश्रित है उसका मेरी समझ में यह तकाजा है कि प्रत्येक नवीन नियुक्ति के लिये तथा जब समस्त मंत्रिमंडल प्रथम बार नियुक्त हो तो उसके लिये सभा में विश्वास का प्रस्ताव आना चाहिये और यदि प्रस्ताव स्वीकार न हो तो उस मंत्री अथवा मंत्रिमंडल को पदत्याग कर देना चाहिये और उसके स्थान में नवीन नियुक्ति होनी चाहिये।

अन्त में श्रीमान्, प्रश्न यह है कि क्या मंत्रियों की ईमानदारी का विषय उनके सरकारी कर्त्तव्यों से सम्बद्ध है? इससे पूर्व अवसर पर राष्ट्रपति के संबंध में विचार प्रस्तुत करते हुए मैंने एक यह सुझाव रखा था कि राष्ट्रपति व्यापार, सम्पत्ति, वाणिज्य अथवा उद्योग संबंधी अपने उन समस्त स्वत्वों, स्वामित्वों तथा हितों की घोषणा करेगा जो निर्वाचन के पूर्व उसे प्राप्त हों, और उस स्वत्व, स्वामित्व इत्यादि को या तो बेच देगा या उसका उत्सर्जन कर देगा अथवा उस समय तक के लिये जब तक कि वह अपने पद पर रहे सरकार के हाथ में थाती रख देगा। श्रीमान्, उस समय मुझ से यह कहा गया था कि चूंकि राष्ट्रपति

न्यूनाधिक रूप में राज्य का नाम मात्र का अथवा शोभामात्र का कार्यपालक प्रमुख होगा इसलिये उसे ऐसी कोई शक्ति प्राप्त नहीं होगी जिससे राज्य के हितों पर वह कोई आघात कर सके। अतः इसको इस बात के लिये बाध्य करना अनावश्यक है कि वह अपने स्वत्व, स्वामित्व तथा हित की घोषणा करे, उनको बेचे अथवा अपने पदकाल के लिये उन्हें सरकार के पास थाती रख दे। उस समय मुझसे यह भी कहा गया था कि कार्यपालक प्राधिकार के अर्थात् मंत्रिपद के संबंध में यदि ऐसा कोई सुझाव रखा जायेगा तो संभव है कि उस पर विचार किया जाये।

मैं इतना मूर्ख तो नहीं हूं कि मैं यह विश्वास कर लूं कि इस नपे तुले कथन का, जिसे मैं आश्वासन तो कह ही नहीं सकता हूं, अक्षरशः पालन किया जायेगा और वह भी उस समय जब कि दुर्भाग्यवश इस विचार को मैं प्रस्तुत कर रहा हूं। इस समय मसौदा लेखकों को दूसरों की ओर का वक्ता भी समझकर क्या मैं उनको उस सोच समझकर कहे गये आश्वासन का (यद्यपि मैं तो उसको आश्वासन नहीं कहूंगा) अथवा विचार का स्मरण कराने का साहस कर सकता हूं जो उन्होंने पहले प्रकट किया था और उनसे यह निवेदन कर सकता हूं कि इस समय कम से कम उस विषय पर उचित रूप से विचार तो करें और यह देखें कि यदि मेरे शब्दों द्वारा नहीं तो अन्य शब्दों द्वारा क्या कोई ऐसा आश्वासन दिया जा सकता है कि जिससे मंत्री, जो कि देश के सच्चे कार्यपालक मुखिया हैं, प्रलोभन से मुक्त रह सकें और अपने तथा अपने परिवार के संबंध में न सोचते हुए देश के हित में तन मन से अपने आपको लगा दें। मैं आशा करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार किया जायेगा।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर एक संशोधन है। उसकी संख्या 46 है और वह श्री कामत के नाम से है।

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची में के संशोधन संख्या 1300 में प्रस्तावित नये खंड (2ङ) में 'moral turpitude' के पश्चात् आने वाले समस्त शब्दों को निकाल दिया जाये (हिन्दी रूपान्तर में और 'उत्कोच' और

[श्री एच.वी. कामत]

'दण्डित होने वाले' शब्दों के बीच में आये हुए सब शब्दों को निकाल दिया जाये।)''

मेरे मित्र प्रो. शाह ने अभी संशोधन सं. 1300 पेश किया है जिसमें पांच उपखंड हैं। मैं दावे से कह सकता हूं कि न तो डॉ. अम्बेडकर और न इस सभा में उपस्थित मेरे माननीय मित्रों में से अन्य कोई भी प्रो. शाह द्वारा पेश किये गये संशोधन सं. 1300 में निहित सिद्धान्तों के बारे में कोई आपत्ति करेगा। मैंने अपने संशोधन संख्या 46 में और "उत्कोच" और "दण्डित होने वाले" शब्दों के बीच में आये हुए सब शब्दों को निकालने के सुझाव रखने का प्रयास किया है क्योंकि मेरा विचार है कि उत्कोच और भ्रष्टाचार "नैतिक नीचता" में आ जाते हैं। मेरा विचार है कि नैतिक नीचता के अन्तर्गत उत्कोच भ्रष्टाचार तथा और भी इस संबंध के अन्य अपराध आ जाते हैं श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि यहां उपस्थित मेरे मित्र मुझसे इस बात में सहमत होंगे कि किसी भी सरकार के लिये यह श्रेय की बात नहीं होगी कि वह किसी ऐसे मंत्री को अपनी परिषद् में रखे जो बदनाम हो चुका हो या जिसके चालचलन या ईमानदारी के संबंध में किसी भी प्रकार की शंका हो। मुझे आशा है कि हमारे देश में ऐसी कोई घटना नहीं होगी परन्तु कुछ हाल की घटनाओं से मेरे मन में कुछ शंका होने लगी है। श्रीमान् मैं एक छोटे से लेख—एक छोटी सी टिप्पणी का हवाला देता हूं जो मंत्रिमण्डल के संबंध में बम्बई के ता: 8 सितम्बर 1948 के फ्री प्रेस जर्नल में प्रकाशित हुई है। उस लेख का तत्संबंधी भाग इस प्रकार है:

"मंत्रिमंडल (.....मंत्रिमंडल) में एक ऐसा व्यक्ति है जो चोरबाजारी का प्रमाणित अपराधी है और यह कहा जाता है कि इस अयोग्यता का, जो न्यायालय में अपराधी प्रमाणित हो जाने के फलस्वरूप सिद्ध हो गई थी और जिसके कारण अन्तर्वर्ती सरकार में उनको शरीक करने में बड़ी कठिनाई हुई, महाराजा ने उदारतापूर्वक निराकरण कर दिया।"

***उपाध्यक्ष:** मैंने आपकी बात नहीं सुनी अन्यथा मैं आपको नाम उद्धृत करने की आज्ञा न देता।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं समाचार-पत्र में छपे हुए लेख को केवल पढ़ रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** अब तो मैं निरुपाय हूं। मैं आपको राज्य का नाम बताने की अनुमति न देता और उद्धरण को पढ़ने की अनुमति दे देता।

***श्री एच. वी. कामतः** "यद्यपि महाराजा ने उस अयोग्यता का निराकरण कर दिया है परन्तु समाज-विरोधी उसके पाप को जनता किस प्रकार भूल सकती है और क्षमा कर सकती है? उस सरकार को जिसमें ऐसा व्यक्ति है किस प्रकार लोकप्रिय सरकार कहा जा सकता है? प्रजातंत्र का उपहास करने के अलावा इस प्रकार के व्यक्तियों को रखने से सरकार का गौरव मिट जायेगा और उसके फलस्वरूप आरंभ में ही जनता के विचारों में उत्साह और विश्वास उत्पन्न करने में सरकार असफल हो जायेगी। क्या इस अव्यवस्था का शीघ्र ही अन्त किया जायेगा?"

मैं यह नहीं जानता हूं कि यह पूर्णतया सच है परन्तु फिर भी समाचार-पत्रों को किसी मंत्रिमंडल अथवा किसी सरकार के बारे में इस प्रकार के लेखों को प्रकाशित करने के लिये कुछ सामग्री देने से न तो सरकार का ही लाभ होता है और न यह लोक हित के पक्ष में है। मैं आज्ञा करता हूं कि किसी राज्य के अथवा हमारे देश की केन्द्रीय सरकार के किसी भी उम्मीदवार मंत्री के लिये यह अयोग्यता मानी जायगी।

यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि इस खास संशोधन के लिये यहां जगह नहीं है और हम इस निर्योग्यता को अनुच्छेद 83 में भी रख सकते हैं जो लोक सभा के सदस्यों की निर्योग्यताओं के संबंध में है चूंकि मंत्री का चुनाव लोक सभा के सदस्यों में से किया जायेगा। पर इस विषय में एक कठिनाई है जिसके संबंध में मैं डॉक्टर अम्बेडकर से प्रार्थना करूंगा कि इस वाद-विवाद का उत्तर देते समय वे उसे स्पष्ट करें जिस रूप में अनुच्छेद 83 है उसमें इस प्रकार की कोई भी निर्योग्यता नहीं है। उसमें एक व्यापक उपखण्ड है जो इस प्रकार है:

"(ङ) यदि वह संसद् निर्मित किसी विधि के द्वारा अथवा अधीन इस प्रकार निर्योग्य कर दिया गया है।"

[श्री एच.वी. कामत]

निश्चय ही मुझे ऐसी संभावना दिखाई देती है, यही नहीं वरन् यह सत्य है कि संसद् अवश्य ही विभिन्न निर्योग्यताओं को विहित करेगी। पर वह संसद् तो राज्यों और केन्द्र में मंत्रिमंडल बन जाने के पश्चात् नये विधान के अनुसार चुनाव हो जाने पर बनेगी। इसलिये यदि अनुच्छेद 83 में लोक-सभा के सदस्यों अथवा मंत्रियों के लिये निर्योग्यताओं को स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं किया जाता है तो हम यह निश्चय नहीं कर सकते कि कुछ लोग जो दोषी हैं या जिन पर कुछ अपराधों का शक किया जाता है वे लोग राज्य अथवा केन्द्र के मन्त्रिमण्डल के सदस्य हो सकेंगे या नहीं, राज्य अथवा केन्द्र में सरकारों के बन जाने के बाद यदि संसद् इस विषय के इस विशेष रूप पर ध्यान देती है तो वह बैठक कर के कोई विधि पारित तो करेगी ही पर यह सब राज्यों और केन्द्र में सरकार बनने के पश्चात् होगा। इस कारण इसका निर्माण करते समय ही राज्य अथवा केन्द्र के मंत्रिमण्डलों के सदस्यों की निर्योग्यताओं के संबंध में प्रावधान रखना चाहिये।

अतः श्रीमान्, प्रो. के.टी. शाह के संशोधन का समर्थन करते हुए मैं इस संशोधन को पेश करता हूं और उसके अन्तिम भाग अर्थात् 1300 का 2ङ पर यह प्रस्ताव रखता हूं कि "Moral turpitude" के पश्चात् आये हुए सब शब्दों को निकाल दिया जाय क्योंकि उन शब्दों का अर्थ "Moral turpitude" के अन्तर्गत है।

***उपाध्यक्षः** उस सदस्य को बुलाने के पूर्व जिसके नाम से संशोधन है मैं इस संबंध में सभा की अनुमति प्राप्त करना चाहता हूं कि हमारी सरकारी वाद-विवाद की प्रतियों में समाचार-पत्र के लेख की उद्धृत करते समय उस राज्य का नाम किसी चिह्न द्वारा प्रकट किया जाये। क्या यह आवश्यक अनुमति मुझे मिल गई? यह अच्छा मालूम होगा। हमें इस आगार के सम्मान की रक्षा करनी है और ऐसा करने का यह भी एक तरीका है।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** किसी को कोई आपत्ति नहीं है।

***उपाध्यक्षः** धन्यवाद।

(संशोधन संख्या 1301 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर अब व्यापक वाद-विवाद हो सकता है।

(श्री महावीर त्यागी से) जो लोग बोलना चाहते हैं उनकी संख्या अधिक है इसलिये मैं आपसे निवेदन करता हूं कि आप जितना संक्षेप में बोल सकते हैं बोलें।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस सभा का अधिक समय लेना नहीं चाहता हूं पर मैं एक बात बताना चाहता हूं। मेरे माननीय मित्र श्री महबूब अली बेग ने यह सुझाव रखा है कि एकलसंक्राम्य मत पद्धति के आधार पर सभा द्वारा मंत्रिमंडल का निर्वाचन हो। इस प्रकार के बड़े-बड़े शब्दों का सब जगह प्रयोग करना बड़ा अच्छा लगता है, पर मेरे मित्र यह भूल जाते हैं कि मंत्रिमण्डल में दो या तीन या जैसा कि मेरे मित्र ने सुझाया है पन्द्रह व्यक्तियों के पृथक्-पृथक् रूप में कार्य करने से बचने के लिये हमने इतना महान् बलिदान किया है। देश को अभी-अभी एक ऐसे मंत्रिमंडल का अनुभव हुआ है जिसमें दो दल मिल कर काम कर रहे थे। यदि अंग्रेजों द्वारा मंत्रिमंडल की ऐसी बुरी रचना न की जाती तो भारत का दो भागों में विभाजन नहीं होता। हमने अपनी भूमि का सर्वोत्तम तथा बेशकीमती भाग दे दिया है और हमने इच्छापूर्वक विभाजन किया है। वास्तव में एक बड़ी कीमत देकर मंत्रिमंडल में हमने इस एकरूपता को प्राप्त किया है। हमारे हजारों मित्र तथा इस देश के नागरिक उस तरफ मारे गये और इसी प्रकार हजारों ऐसे ही भले आदमी जो बिल्कुल निर्दोष थे इस तरफ भी मारे गये। यह सब तो हुआ ही परन्तु इस कटु तथा नृशंस अनुभव के पश्चात् क्या मेरे मित्र अब भी यह हट पकड़ते हैं कि एक ऐसे मंत्रिमंडल का निर्माण किया जाय जिसमें अनेक दलों का प्रतिनिधान हो। एकलसंक्राम्य मत पद्धति द्वारा निर्वाचन का अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति जिसके अधिकार में 30 मत हैं उस मंत्रिमंडल में आ सकता है जो राज्य के अत्यन्त आवश्यक गुप्त भेदों से संबंध रखता है; जो बजट निश्चय करता है; जिसे कई संधियां और अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकार्य करने पड़ते हैं क्या आप अपने सुभाव से यह आशय रखते हैं कि इस सभा में जितने दल हैं वे सब मंत्रिमण्डल में हों जिससे कि वे न तो किसी बात का निश्चय कर सकें और न किसी भेद को गुप्त रख सकें? क्या हम अपने आपको ऐसी दुर्व्यवस्था में डालना चाहते हैं कि एक ऐसा मंत्रिमंडल बनायें जिसमें समान विचार के व्यक्ति न हों? मैं इस विषय की बारीकियों में नहीं जाना चाहता। सभा समझती है कि कोई भी

[श्री महावीर त्यागी]

मंत्रिमंडल एक दिन के लिये भी नहीं टिक सकता यदि उसके सदस्यों के एक से विचार न हों।

इसके बाद मेरे माननीय मित्र प्रो. के.टी. शाह यह प्रस्ताव रखते हैं कि प्रधान मंत्री जब कभी भी मंत्री नियुक्त करें तो उनको सभा द्वारा विश्वास का प्रस्ताव स्वीकार कराना चाहिये। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से यह सत्य तो है कि प्रधानमंत्री के समान अन्य मंत्रियों को भी सभा द्वारा विश्वास के प्रस्ताव को स्वीकार कराना चाहिये, पर इसमें एक बड़ी बारीक बात है कि यदि मंत्रिमंडल के प्रत्येक सदस्य को स्वयं अपने लिये मत प्राप्त करना आवश्यक है अथवा नियुक्त होने के प्रथम दिवस ही उसकी जांच की जाती है तो इसका मतलब यह होगा कि वे आदमी ही मंत्री बनेंगे जिनके साथी अथवा जिनके निजी दल सभा में हैं। ऐसे मंत्री की सदैव यही प्रवृत्ति रहेगी कि वह अपने निजी दल को सचेष्ट, सक्रिय तथा पृथक् बनाये रखे। सच बात तो यह है कि जब एक मंत्री मंत्रिमण्डल में प्रविष्ट हो जाता है तो वह अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को तथा अपने समस्त प्रभाव को मंत्रिमंडल में विलीन कर देता है। उसके खुद के कोई शब्द नहीं होते वह प्रधानमंत्री के शब्दों में बोलता है और मंत्रिमण्डल के निर्णय के अनुसार कार्य करता है। मंत्रिमंडल में उसका निजी अस्तित्व कुछ नहीं होता है वह समूचे मंत्रिमंडल से मिलकर पूर्ण इकाई प्राप्त कर लेता है। यदि मंत्रिमंडल में 15 सदस्य हैं तो प्रत्येक सदस्य उस समूचे मंत्रिमंडल का अविभाज्य अंग हो जाता है। प्रधानमंत्री अपने तथा अपने मंत्रिमण्डल का पक्ष समर्थन करता है और मंत्री और मंत्रिमंडल प्रधान मंत्री का पक्ष समर्थन करते हैं। अतः ऐसी परिस्थितियों के अन्तर्गत, यदि प्रो. के.टी. शाह का संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो उसका वास्तव में यह अर्थ होगा कि जब कभी किसी अन्य मंत्री की नियुक्ति होगी तो प्रधान मंत्री की जांच की जायेगी। वह सदैव प्रधान मंत्री के प्रति विश्वास का प्रस्ताव होगा। सभा केवल एक प्रधानमंत्री को नियुक्त करेगी। और एक बार जब प्रधान मंत्री नियुक्त हो जायेगा तो वह अपने मंत्रिमंडल में अपने पसन्द के उन साथियों को रखेगा जिन पर वह राज्य के सब गुप्त भेदों को प्रकट कर सकता है और उत्तरदायित्वों को बांट सकता है।

प्रधान मंत्री प्रत्येक मंत्री को सभा में अपने-अपने व्यक्तिगत प्रभाव का एक अलग गुट कैसे बनाने देगा? यदि सदस्यों से मंत्रियों के इस प्रकार के संबंध रहेंगे तो मंत्रिमंडल में हर प्रकार का भ्रष्टाचार होगा क्योंकि जब तक वह सदस्यों को खुश करने का प्रयत्न नहीं करेगा तब तक वे उसको मत देने और उसका समर्थन करने के लिये सदैव तत्पर नहीं रहेंगे। यह सदैव हानिकारक तथा जनतन्त्र के विरुद्ध होगा कि मंत्रिगणों को सभा में अपने छोटे-छोटे गुट बनाने दिया जाये। जनतन्त्र में बहुमत प्राप्त दल को शासन व्यवस्था का अधिकार दिया जाता है। प्रधान मंत्री की नियुक्ति बहुमत प्राप्त दल निश्चित करता है, क्योंकि समूचे देश की यह इच्छा होती है कि अमुक नाम का दल शासन संभाले। अत: मंत्रिमण्डल को उस बहुमत प्राप्त दल के प्रति आज्ञाकारी होना पड़ता है जिस दल को जनता की ओर से यह आदेश मिलता है कि वह सरकार का संचालन करे। शासन व्यवस्था सामान्य निर्वाचकों द्वारा स्वीकृत घोषणा-पत्र के अनुसार की जायेगी। इस कारण मैं निवेदन करता हूं कि मंत्रिमण्डल समान विचार का होना चाहिये और यह तभी हो सकता है, जब कि सब मंत्री प्रधान मंत्री द्वारा नियुक्त हों और अपने सम्मोदन के लिये प्रधान मंत्री पर निर्भर हों न कि सभा पर। उनको सभा का प्रिय होना चाहिये और इसके साथ-साथ प्रधानमंत्री का समर्थन करने और अपने पक्ष का समर्थन करने के लिये भी उनको प्रसिद्ध होना चाहिये परन्तु व्यक्तिगत रूप से उनको प्रसिद्धि प्राप्त नहीं करनी चाहिये। प्रत्येक मंत्री अपना व्यक्तिगत समर्थन और प्रभाव संचित करता है और अपने अन्य सहयोगियों के साथ मिलकर वह सभा के एक बहुत बड़े भाग का समर्थन प्राप्त कर लेता है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि ये दोनों संशोधन तो जनतन्त्रात्मक विधान के ढांचे को ही ढा देंगे। अभी तक इस प्रकार के दल युक्त मंत्रिमंडल की कहीं भी परीक्षा नहीं हुई है। अत: मैं इस बात पर जोर देता हूं कि दोनों संशोधनों का सिद्धान्त के आधार पर विरोध होना चाहिये और मैं इनका विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** मत्स्य राज्य संघ के श्री राजबहादुर। मैं आपको संक्षेप में बोलने के लिये निवेदन करूंगा क्योंकि बहुत से सदस्य बोलना चाहते हैं।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** श्रीमान्, प्रत्येक सदस्य के लिये पांच मिनट रखिये।

***श्री राजबहादुर** (मत्स्य राज्य): उपाध्यक्ष महोदय, श्री महबूब अली बेग द्वारा प्रेषित प्रस्ताव का विरोध करने में मैं अपने माननीय मित्र श्री महावीर त्यागी का साथ देता हूं। श्री महबूब अली बेग ने एक ऐसा संशोधन रखा है जिससे दुर्भाग्यवश सभा के कुछ सदस्यों की वह प्रवृत्ति प्रकट होती है कि किसी न किसी प्रकार से पृथक्वाद तथा विभाजन की भावना को फिर से लाया जाये। यह दुर्भाग्य की बात है कि बहुमत प्राप्त दल के रूप में कांग्रेस के अल्पसंख्यक दलों के प्रति सामान्यतया और मुसलमान अल्पसंख्यक दल के प्रति विशेषतया उदारतापूर्ण व्यवहार के होते हुए भी इस प्रकार की बातें प्रस्तुत की जाती हैं। इस संशोधन में तथा इस संशोधन के पीछे मुझे सम्प्रदायवाद तथा पृथक्वाद की बुराई को प्रवेश कराने का षड्यन्त्र दिखाई देता है। (*वाह, वाह*)

श्री महबूब अली बेग ने अपने संशोधन के पक्ष में तीन मुख्य तर्कों को प्रस्तुत किया है पहली बात उनकी यह है कि परिषदात्मक जनतन्त्र दोषयुक्त है और वह जनतन्त्र है ही नहीं। इस सभा में ऐसे स्पष्ट कथन को सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। हम यह जानते हैं कि कम से कम एक देश में 300 वर्षों से परिषदात्मक जनतन्त्र का अनुभव किया जा रहा है और हम यह भी जानते हैं कि कुछ प्रसिद्ध अपवादों को छोड़कर संसार के लगभग समस्त देश आज परिषदात्मक जनतन्त्र को प्राप्त करने और इस दिशा में प्रगति करने के लिये प्रयत्न कर रहे हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि वे देर से जागे हैं जब कि वे परिषदात्मक प्रजातन्त्र को दोषयुक्त बताते हैं। वे कहते हैं कि यह दुर्भाग्य की बात होगी यदि साठ प्रतिशत बहुमत प्राप्त दल शत प्रतिशत जनसंख्या पर शासन करे। मेरा निवेदन है कि मानव समाज के प्रत्येक कार्य पर सार्वजनिक सर्वोत्तम कल्याण के सिद्धान्त के अनुसार विचार कर उस पर निर्णय करना चाहिये और इस प्रकार का निर्णय केवल बहुमत के आधार पर निर्वाचकों द्वारा ही किया जा सकता है। यह कहना पूरी तरह से ठीक नहीं है कि स्विट्जरलैंड में जैसा जनतन्त्र है वही हमारी आवश्यकताओं के अनुकूल है, और न यह एक पुष्ट बात ही है। हम जानते हैं कि स्विट्जरलैंड में तीन विभिन्न जातियां, जर्मन, फ्रांसीसी और इटालियन को संयुक्त किया गया है। उनकी अपनी परिस्थितियों की आवश्यकताओं के

अनुकूलन के लिये यह किया गया था। मेरा निवेदन है कि जिस प्रकार का जनतन्त्र स्विट्जरलैंड में है वह हमारी परिस्थितियों के अनुकूल होगा ही नहीं। हमें इसका कुछ अनुभव हुआ था जब कि लार्ड वेवल की कृपा से कांग्रेस के साथ मुस्लिम लीग पार्टी एक प्रकार से मिलजुल गई थी। उसका फल जो कुछ हुआ वह वर्तमान इतिहास ही है। हम जानते हैं कि किस प्रकार ऊपर से लेकर नीचे तक समस्त नौकर पेशों में तथा समस्त राजनैतिक दल बन्दी में पृथक्वाद और सम्प्रदायवाद का विष फैल गया हम जानते हैं कि उस समय उन्नति करना कितना कठिन हो गया था। हम जानते हैं कि नीति संबंधी योजनाओं का सम्पादन अथवा अभिपूरण हम क्यों नहीं कर सके। उस सबका फल यह हुआ कि हमें देश का विभाजन स्वीकार करना पड़ा। हम उस प्रयोग को फिर से दोहराना नहीं चाहते हैं। अन्त में मेरा निवेदन है कि यह उचित तथा उपयुक्त होगा कि हम देश की एकता के विरुद्ध यदि हमारे कोई डाह और द्वेष हों तो उनको दूर करें। इन शब्दों में मैं अपने मित्र श्री महबूब अली बेग द्वारा प्रेषित संशोधन का विरोध करता हूं।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** श्रीमान्, मैं बहुत ही संक्षेप में भाषण दूंगा। सर्वप्रथम मैं अपने माननीय मित्र श्री महबूब अली बेग द्वारा पेश किये गये संशोधन संख्या 1294 को लेता हूं। अनुच्छेद 61 में यह दिया हुआ है कि "राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों का पालन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रमुख प्रधान मंत्री होगा।" श्री महबूब अली बेग का संशोधन यह है कि मंत्री 15 होंगे और उनका निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति से एकलसंक्राम्य मत प्रणाली द्वारा होगा। वे यह नहीं कहते कि इस मंत्रिमण्डल का प्रमुख प्रधान मंत्री होगा। इस अनुच्छेद पर उनकी ये तीन मुख्य आपत्तियां हैं। मैं अपने माननीय मित्र श्री महबूब अली बेग के संशोधन से सहमत नहीं हूं। (*वाह, वाह*) सबसे पहली बात यह है कि वे मंत्रिमण्डल में मंत्रियों की संख्या नियत करना चाहते हैं। हम संख्या किस प्रकार नियत कर सकते हैं? वे 15 मंत्री चाहते हैं। मान लीजिये हमें 10 की ही जरूरत है तो बाकी 5 का क्या करें? मान लीजिये हमें 20 की आवश्यकता है तो हम और नियुक्त नहीं कर सकते? इसलिये श्रीमान्जी, मैं कहता हूं कि विधान में मंत्रियों की संख्या नियत करना मूर्खता है। संसद् अथवा स्वयं मंत्रिमंडल का यह कर्त्तव्य है कि वह यह निश्चय करे कि उसे काम के लिये कितने मंत्रियों की आवश्यकता है।

[श्री तजम्मुल हुसैन]

श्रीमान्, अनुपाती प्रतिनिधान का क्या फल होगा? अनुच्छेद 61 में यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि सामान्य निर्वाचन के पश्चात् जो दल बहुमत प्राप्त करता है वह अपना नेता चुनेगा और राष्ट्रपति अथवा गवर्नर जनरल जो भी हो वह उस नेता को मंत्रिमंडल बनाने के लिये आमन्त्रित करेगा। वह नेता मुख्य मंत्री अथवा प्रधान मंत्री कहा जायेगा और वह राष्ट्रपति को अन्य मंत्रियों के नाम देगा। श्रीमान् जी, यदि आप एकलसंक्राम्य मत प्रणाली तथा अनुपाती प्रतिनिधान के आधार पर निर्वाचन करते हैं तो एक ऐसे आदमी का चुनाव भी हो सकता है जो बहुमत प्राप्त दल को फूटी आंखों से भी न देख सके। ऐसी अवस्था में क्या होगा? प्रत्येक देश प्रतिदिन की कार्यप्रणाली में विधान को सुचारू रूप से क्रियान्वित करना चाहता है। (*बाधायें*) मैं निवेदन करता हूं कि यह मूर्खतापूर्ण होगा। और फिर आपको हर बार मेल जोल की सरकार बनानी होगी चाहे कोई विशिष्ट दल बहुमत प्राप्त किये हो या नहीं।

इंग्लैंड में मिला जुला मंत्रिमंडल है। क्योंकि एक बार जब कि मजदूर दल ने सत्ता प्राप्त की तो उदार तथा अनुदार दलों के होने के कारण उनका (मजदूर दल) ही पूर्ण बहुमत में न था तो उन्होंने प्रथम महायुद्ध और द्वितीय महायुद्ध के हेतु एक मिले जुले मंत्रिमंडल का निर्माण किया। परन्तु सदैव मिले जुले मंत्रिमण्डल का निर्माण करना मूर्खतापूर्ण है। इसलिये मैं इसका विरोध करता हूं। दूसरा संशोधन श्री प्रोफेसर शाह का है जो यह नहीं चाहते कि प्रधान मंत्री प्रमुख हो। सब जगह प्रधान मंत्री प्रमुख होता है। इसलिये मैं इसका विरोध करता हूं। अनुच्छेद में यह दिया गया है कि:

> "राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों का पालन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रमुख प्रधान मंत्री होगा।"

मेरे मित्र कहते हैं कि प्रधान मंत्री प्रमुख नहीं होगा। श्रीमान्, मैं इससे सहमत नहीं हूं। इंग्लैंड में प्रधान मंत्री प्रमुख होता है। यह इंग्लैंड की प्रणाली है और अनेकों वर्षों से वह संतोषजनक रूप में कार्य कर रही है। मेरे मित्र कहते हैं कि इसका जिक्र उनके संविधान में नहीं है पर मेरा निवेदन तो यह है कि उनकी कभी संविधान परिषद् ही नहीं बनी। उनका संविधान परम्परा के आधार पर

विकसित हुआ। उन दिनों उनके यहां प्रधान मंत्री नहीं होता था। धीरे-धीरे यह विचार उत्पन्न हुआ और उन्होंने यह सोचा कि मंत्रिमंडल के प्रमुख के रूप में प्रधानमंत्री का पद बहुत ही आवश्यक है तो अब उनके यहां वह पद है और उससे बड़ा संतोषजनक काम हो रहा है और अपने संविधान में भी इस पद का रखना ठीक है। इसलिये मैं इस संशोधन का भी विरोध करता हूं।

अब मैं श्री ताहिर के संशोधन संख्या 1297 को लेता हूं। श्रीमान्, अनुच्छेद में यह कहा गया है कि मंत्रिपरिषद् प्रधान को मंत्रणा देगा। संशोधन कहता है:

> "सिवा उन प्रकार्यों अथवा उनमें से किसी एक प्रकार्य के पालन करने में जिनके लिये, इस संविधान द्वारा अथवा उसके अन्तर्गत राष्ट्रपति को अपने स्वविवेक का प्रयोग करना अपेक्षित है।"

श्रीमान्, मैं इसे स्वीकार नहीं करता हूं।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): क्या वे डॉ. अम्बेडकर की ओर से उत्तर दे रहे हैं?

***श्री तजम्मुल हुसैन:** श्रीमान्, मैं डॉ. अम्बेडकर अथवा अन्य किसी व्यक्ति की ओर से नहीं बोल रहा हूं। मैं वही कह रहा हूं जिसके बारे में मैं समझता हूं कि यह होना चाहिये। डॉ. अम्बेडकर के मैंने कई संशोधनों का समर्थन किया है और कइयों का विरोध किया है। मेरे मित्र श्री करीमुद्दीन ने डॉ. अम्बेडकर के किसी संशोधन का भी विरोध नहीं किया है परन्तु मैंने उनके संशोधन का विरोध किया है। अत: इस बात का कोई अर्थ नहीं है कि मैं डॉ. अम्बेडकर का समर्थन कर रहा हूं। मैं यह भी नहीं जानता कि डॉ. अम्बेडकर किस संशोधन को स्वीकार कर रहे हैं। यदि मेरे मित्र श्री करीमुद्दीन पहले से ही बात को जानते हैं कि डॉ. अम्बेडकर किन-किन बातों को स्वीकार करेंगे तो अवश्य ही वे डॉ. अम्बेडकर के विश्वासपात्र हैं।

***उपाध्यक्ष:** शान्ति, शान्ति, श्री तजम्मुल हुसैन! यदि मैं आपके स्थान पर होता तो मैं इस प्रकार की बाधा पर ध्यान न देता। आप अपना भाषण जारी रखिये और मित्रों की बातों पर ध्यान न दीजिये।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** मैं अपना भाषण जारी रखूंगा। पर कभी-कभी निराधार आरोपों का उत्तर देना ही पड़ता है। मुझे खेद है कि सभा का जितना समय मुझे लेना चाहिये उससे मैं अधिक ले रहा हूं। अब मैं श्री ताहिर के संशोधन संख्या 1297 पर आता हूं वे चाहते हैं कि जब राष्ट्रपति व्यक्तिगत स्वविवेक का प्रयोग करना चाहे उस समय मंत्रिमंडल उसे मंत्रणा नहीं देगा। श्रीमान्, मैं इसका भी विरोध करता हूं। हम यह नहीं चाहते हैं कि राष्ट्रपति अथवा गवर्नर किसी रूप में भी व्यक्तिगत स्वविवेक का प्रयोग करे। जिन दिनों अंग्रेज यहां पर थे वे भारत शासन अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत अपने हितों का संरक्षण करना चाहते थे। उनकी सम्मति में कांग्रेस मंत्रिमंडल के कार्यों में रुकावट डालने के लिये उस अधिनियम में ऐसी व्यवस्था करना नितान्त आवश्यक था। परन्तु अब तो परिस्थिति बिल्कुल ही बदल गई है। इंग्लैंड का बादशाह अब व्यक्तिगत स्वविवेक का बिल्कुल ही प्रयोग नहीं करता है। वह केवल मंत्रिमंडल द्वारा दी गई मंत्रणा का अनुसरण करता है यदि वह उस मंत्रणा को स्वीकार नहीं करता है तो वह पृथक् हो जायेगा न कि मंत्रिमंडल और अन्त में उसे पृथक् होना ही है अत: हम अधिकतर अंग्रेजों के ही संविधान का पालन कर रहे हैं और उससे ठीक-ठीक काम भी हो रहा है और मैं भी अंग्रेजों के संविधान का प्रशंसक हूं, पर मैं समझता हूं कि व्यक्तिगत स्वविवेक का प्रसंग बिल्कुल ही न आना चाहिये। यदि मंत्रिमंडल मंत्रणा देता है तो राष्ट्रपति को उसे स्वीकार करना ही चाहिये। अब संशोधन संख्या 1298 को लीजिये।

***उपाध्यक्ष:** यदि संशोधन संख्या 1297 अस्वीकृत कर दिया जाता है तो यह संशोधन भी रोक दिया जायेगा अत: आपको इसे लेने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** अब मैं प्रोफेसर शाह के संशोधनों पर आता हूं। उनका पहला संशोधन यह है कि हर बार जब कि मंत्री अथवा प्रधान मंत्री स्थिति के अनुसार नियुक्त किया जाये या चुना जाये तो उसे सभा द्वारा विश्वास का प्रस्ताव प्राप्त करना चाहिये। यह एक अनोखी कार्यप्रणाली है। मैंने तो नहीं सुना कि इस प्रकार की प्रणाली कहीं भी बरती जाती है। कोई नया आदमी आ गया है, आपको उसकी परीक्षा करनी चाहिये। यदि आप कुछ समय के बाद देखते हैं कि आपकी मर्जी जैसा वह काम नहीं करता है तो आप उसे हटा दें। परन्तु

हर बार जब-जब प्रधान मंत्री नियुक्त किया जाये उसे सभा के समक्ष क्यों लाया जाये और क्यों सभा में विश्वास का प्रस्ताव रखा जाये? इस संशोधन को स्वीकार नहीं करना चाहिये। उनका संख्या 2 का संशोधन यह है कि प्रत्येक मंत्री किसी न किसी आगार का निर्वाचित सदस्य होना चाहिये और यदि वह सदस्य नहीं है तो 6 माह के भीतर उसे निर्वाचित होने का प्रयत्न करना चाहिये। मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं। (*बाधायें*)

कल मैंने इन शब्दों का प्रयोग किया था कि "मैं अपने संशोधन का समर्थन करता हूं।" लोग मुझ पर टूट पड़े। अब मैं इन शब्दों का प्रयोग करता हूं कि "मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं।" क्योंकि हम सब एक हैं।

अब भी प्रान्तीय विधान-मण्डलों ने उत्तर आगार का मनोनीत सदस्य मंत्री नियुक्त किया जा सकता है। हम यह नहीं चाहते हैं। हम यह चाहते हैं कि उसका निर्वाचन हो। यही युक्ति-युक्त है।

तीसरा संशोधन यह है कि मन्त्रिपरिषद् के कम से कम दो तिहाई सदस्य ऐसे हों जो लोक-सभा के सदस्य भी हों और मंत्रिपरिषद् के कम से कम तिहाई सदस्य ऐसे हों जो राज्यपरिषद् के सदस्य भी हों। मैं इसे मानने के लिये तैयार नहीं हूं। मैं न इसे स्वीकार करता हूं और न इसका समर्थन करता हूं। मैं इसका विरोध करता हूं। मान लीजिये कि लोक-सभा में बहुमत प्राप्त दल—हम उसे अनुदार दल कहेंगे। कांग्रेस का अन्त होना चाहिये और कांग्रेस का अन्त होगा और आर्थिक आधार पर मजदूर दल अथवा अनुदार दल तथा अन्य दलों का निर्माण होगा—तो उस अनुदार दल को, जिसका अवर आगार में बहुमत है, मन्त्रिमंडल बनाने के लिये कहा जाता है और राष्ट्रपति उस दल के नेता से मंत्रिमंडल बनाने के लिये कहते हैं। अब यह संशोधन कहता है कि वह राज्य-परिषद् से कम से कम एक तिहाई सदस्य ले। मान लीजिये उत्तर आगार में उस दल के एक तिहाई सदस्य नहीं हैं तो क्या होगा। यह होगा कि एक से विचार वाले मनुष्य न लिये जा सकेंगे। यह भी आपत्तिजनक है।

संख्या की कोई सीमा नहीं होनी चाहिये। चाहे मंत्री अवर आगार से हो चाहे उत्तर आगार से, इस बात का कोई विचार नहीं होना चाहिये। परन्तु उन सबको एक दल का होना चाहिये।

[श्री तजम्मुल हुसैन]

दूसरा विषय यह है कि संसद् उपमंत्री और संसदीय सचिव नियुक्त करे। मैं समझता हूं कि यही होगा और इस पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है, मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं।

अन्त में यह है कि यदि कोई व्यक्ति किसी अधिकृत न्यायालय द्वारा नैतिक पतन अथवा किसी अन्य अपराध का दोषी पाया जायेगा तो उसको नियुक्त नहीं किया जायेगा। मैं समझता हूं कि यह प्रावधान अच्छा है अत: मैं इसका समर्थन करता हूं।

श्रीमान्, इन बातों को कहने के पश्चात् मैं अपना स्थान ग्रहण करता हूं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** उपाध्यक्ष महोदय, सभा को अनुच्छेद 61, 62 और 64 पर जरा सावधानी से व्याख्या करनी चाहिये। उनकी शाब्दिक व्याख्या नहीं करनी चाहिये क्योंकि इंग्लैंड के बादशाह और संसद् के एक दीर्घकालीन संघर्ष के पश्चात् इस रूप में शासन की मंत्रिमंडल पद्धति का विकास हुआ है। इस संघर्ष के हर एक कदम पर बादशाह ने कुछ शक्ति दे दी परन्तु अपने सम्मान की संरक्षा के लिये वह उत्सुक रहा। अत: संघर्ष के अन्त में बादशाह ने अपनी समस्त शक्ति तो दे दी पर अपनी समस्त प्रतिष्ठा को संरक्षित रखा। इसी कारण यहां यह कहा गया है कि राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों के पालन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रमुख प्रधान मंत्री होगा इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि सामान्यतया राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों के पालन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने का कार्य प्रधान मंत्री का होगा। वास्तव में स्थिति विपरीत अथवा उल्टी है। प्रधान मंत्री का कार्य मंत्रिपरिषद् की सहायता से देश पर शासन करना है और राष्ट्रपति कभी-कभी ही मंत्रिपरिषद् को सहायता तथा मन्त्रणा दे सकता है। अत: हमें इस अनुच्छेद के सार पर विचार करना चाहिये न कि केवल इसकी पदावली पर जो परम्परा के फलस्वरूप विकसित हुई है। हां, यह पूछा जा सकता है कि हम उन परम्पराओं को क्यों अंगीकार करें तथा इन बातों को ठीक वैधिक भाषा में क्यों न रखें। ऐसा करना वांछनीय हो सकता था, पर मैं यह मानता हूं कि यह आसान नहीं है क्योंकि प्रधान मंत्री और मंत्रिपरिषद् ऐसी सत्तायें हैं जो आगार के विश्वास पर निर्भर हैं।

आगार में नित्यप्रति परिवर्तन होते रहते हैं और वह किसी समय भी प्रधान मंत्री तथा मंत्रिपरिषद् में से विश्वास खो सकता है। अत: संविधान में प्रधान मंत्री और मंत्रिमंडल की सत्ता का समावेश करने के लिये संविधान में कुछ कड़ापन रखना पड़ेगा जो चाहे सरकार की मंत्रिमंडल पद्धति के लचीलेपन से असंगत ही हो। लचीलापन ही अंग्रेजी संविधान का सबसे बड़ा गुण है। जब तक प्रधान मंत्री और मंत्रिमंडल आगार के विश्वासपात्र हैं वे पूर्णतया सम्पूर्ण सत्ताधारी हैं और वे सब कुछ कर सकते हैं। पर जब उनमें से विश्वास उठ जाता है तो वे कमजोर होते चले जाते हैं और यह कोई नहीं कह सकता है कि किसी भी समय उनकी स्थिति न जाने कैसी हो जाये। इस लचीली स्थिति के समावेश करने के लिये ही हमने अंग्रेजों के परम्पराश्रित संविधान के शब्दों को अंगीकार किया है। अत: उनकी शाब्दिक व्याख्या करके दोष निकालने में कोई लाभ नहीं। उदाहरणार्थ खंड 2 को ही लीजिये "क्या मंत्रियों ने प्रधान को कोई मंत्रणा दी, और यदि दी, तो क्या इस प्रश्न पर किसी न्यायालय में परिपृच्छा न की जायेगी।"

मेरे मित्र प्रो. के.टी. शाह का इस प्रकार का संशोधन है कि इसमें एक अपवाद होना चाहिये ताकि इस विषय की उस समय परिपृच्छा की जा सके जब संसद् में उच्च न्यायालय द्वारा प्राभियोग लगाया गया हो। सबसे पहले तो यह बात है कि संसद् के उच्च न्यायालय का जिक्र करना विधान की भाषा को अन्धकारमय बनाना है क्योंकि संसद् तो एक भिन्न वस्तु है वह किसी प्रकार से भी न्यायालय नहीं है। सामान्यतया राष्ट्रपति को मंत्रियों द्वारा कोई मंत्रणा नहीं दी जायेगी। वे अपना निर्णय करेंगे और उन निर्णयों को क्रियान्वित करेंगे। अत: प्रधान मंत्री अथवा मन्त्रिपरिषद् द्वारा दी गई किसी मंत्रणा के संबंध में राष्ट्रपति पर प्राभियोग लगाने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। और इस कारण प्राभियोग के विषय में उस मंत्रणा पर विचार करने का प्रश्न ही नहीं है।

श्रीमान्, जो संशोधन प्रस्तुत किये गये हैं उनके संबंध में एक दो बातें और कहूंगा। मैं समझता हूं कि इस प्रकार का विचार प्रस्तुत करना कि श्री बेग का संशोधन साम्प्रदायिक अथवा अन्य आधारों पर निर्भर है, ठीक नहीं है। शासन पद्धतियों में वह भी एक प्रमाणित शासन पद्धति है। उदाहरणार्थ स्विट्जरलैंड की शासन प्रणाली निर्वाचित कार्यपालक मण्डल में विश्वास करती है। वह अमेरीका के कार्यपालक मण्डल और संसदीय कार्यपालक मण्डल के बीच का मण्डल

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

है। अत: यद्यपि वहां असंसदात्मक प्रणाली नहीं है परन्तु वहां एक प्रकार का स्थायी कार्यपालक मण्डल है। कुछ परिस्थितियों में यह प्रणाली भी लाभदायक हो सकती है। परन्तु भारत जैसे देश में, जो बहुत बड़ा है और जो भिन्न-भिन्न प्रकार के विरोधी हितों से परिपूर्ण है और जिसकी संसद् में परस्पर कट्टर विरोधी व्यक्ति हो सकते हैं, यह प्रणाली उपयुक्त नहीं हो सकती है। इस आधार पर न कि किसी अन्य दुष्टतापूर्ण भावना के आधार पर इसे अस्वीकार कर देना चाहिये।

श्रीमान्, प्रो. के.टी. शाह एक इस प्रकार का एकाकी युद्ध लड़ते चले जा रहे हैं कि मैं उनकी आलोचना करना नहीं चाहता हूं। उन्होंने अपने ऊपर आवश्यकता से अधिक कार्य लाद लिया है और वह भी बिल्कुल अनावश्यक रूप में। यदि वे प्रमुख बातों पर ध्यान देते तो उनकी बातें अधिक वजनदार हो सकती थीं। उन्होंने इतने लंबे-लंबे संशोधन रखे हैं जिनके संबंध में मेरा विश्वास है कि उनकी वे स्वयं ही जांच नहीं कर सके हैं। उदाहरण के लिये संशोधन संख्या 1300 (2ग) को ही लीजिये। वे कहते हैं:

> "किसी भी व्यक्ति को जो संसद् के दोनों आगारों में से किसी भी आगार का सदस्य नहीं है तब तक मन्त्री नियुक्त नहीं किया जायेगा जब तक कि वह अपनी नियुक्त तिथि से 6 माह के भीतर संसद् के किसी न किसी आगार का सदस्य निर्वाचित न हो।"

मंत्री कब नियुक्त किया जायेगा? 6 माह का काल कब से आरंभ होता है? उसके नियुक्त होने के पूर्व उसको निर्वाचित होना चाहिये और निर्वाचित होने के पहले 6 माह गुजर सकते हैं। अत: यह एक स्पष्ट तथा ठीक नहीं है। ऐसा प्रकट होता है कि यह सोचने के लिये उनको समय नहीं मिला। जब कभी वे उन विषयों पर अनेकों संशोधन प्रस्तुत करते हैं जो समितियों के सावधानतापूर्ण विचार-विमर्श के फलस्वरूप प्रस्तुत होने चाहियें तब यह स्वाभाविक है कि स्वयं नीचे गिर जाते हैं। जब हम इस प्रकार के उलझे हुए संविधान पर विचार-विमर्श कर रहे हों तो व्यक्तिगत रूप में सदस्यों को समस्त संविधान का फिर से मसौदा बनाने का प्रयत्न करने के स्थान में किसी विशेष विषय का संकेत कर तथा विशेष संशोधनों पर जोर देकर संतुष्ट हो जाना होगा। सभा की जानकारी बढ़ाये

बिना इससे तो केवल सभा का समय नष्ट होता है। मैं नम्रतापूर्वक प्रो. के.टी. शाह से यह निवेदन करता हूं कि संविधान का विकल्प प्रस्तुत करने का प्रयत्न न करते हुए वे उन्हीं बातों पर ध्यान दें जिनसे संविधान में सुधार संभाव्य हो। धन्यवाद, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, यह एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है जिस पर मैं.....

***उपाध्यक्षः** मैं जानता हूं कि ऐसे बहुत से सदस्य हैं जो इस अनुच्छेद पर बोलना चाहेंगे, पर सभा के पास समय बहुत ही कम है और मैं भी समझता हूं कि इस पर काफी वाद-विवाद हो चुका है।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहूः** परन्तु, श्रीमान्.....

***उपाध्यक्षः** कृपया अध्यक्ष के आदेशों का उल्लंघन करने का प्रयत्न न करें। डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, मुझे दुख है कि मैं श्री बेग, श्री ताहिर अथवा प्रो. के.टी. शाह द्वारा प्रस्तुत संशोधन में से किसी संशोधन को भी स्वीकार नहीं कर सकता हूं। अपने संशोधनों के समर्थन में जो बातें उन्होंने कही हैं उनके उत्तर में मैं जितना संक्षेप में हो सकता है उतना संक्षेप में अपनी स्थिति स्पष्ट करना चाहूंगा।

श्री महबूब अली के संशोधन के दो भाग हैं। प्रथम भाग मंत्रिमंडल के मंत्रियों की संख्या नियत करने का प्रयास करता है। उनकी सम्मति में मंत्री 15 होने चाहियें। उनके प्रस्ताव का दूसरा भाग यह है कि मंत्रिमंडल के सदस्यों की नियुक्ति प्रधान मंत्री अथवा प्रधान मंत्री की मंत्रणा से राष्ट्रपति द्वारा न की जाये वरन् सभा द्वारा अनुपाती प्रतिनिधान के आधार पर उनका निर्वाचन हो।

श्रीमान्, उनके संशोधन का प्रथम भाग स्पष्टतया व्यवहार में आने योग्य नहीं है। आरंभ में ही मंत्रिमंडल के सदस्यों की संख्या नियत करना संभव नहीं हैं। यह भी हो सकता है कि प्रधान मंत्री 15 से भी कम मंत्रियों से देश का शासन

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

चला सके। तो फिर यह तर्कसंगत बात नहीं है कि जब प्रधान मंत्री इतने मंत्री नहीं चाहता है जितने कि संविधान द्वारा नियत किये गये हैं तो संविधान उस पर 15 मंत्रियों का भार क्यों कर रखे। यह भी हो सकता है कि सरकार का काम इतना अधिक बढ़ जाये कि उसे संभालने के लिये 15 मन्त्री बहुत ही कम हों। ऐसी आवश्यकता आ जाये कि 15 मंत्रियों से भी अधिक मंत्री नियुक्त किये जायें। तो फिर यह बात गलत होगी कि संविधान में मंत्रियों की संख्या सीमित कर दी जाये और प्रधान मंत्री को ऐसे मंत्रियों के नियुक्त करने से रोका जाये जिनकी नियुक्ति कार्य की अधिकता के कारण आवश्यक हो गई हो।

दूसरे संशोधन के संबंध में, कि प्रधान मंत्री की मन्त्रणा से राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रियों की नियुक्ति न हो वरन् अनुपाती प्रतिनिधान के आधार पर उनका निर्वाचन हो, मैं यह ठीक-ठीक नहीं समझ सका हूं कि उनके मन के क्या भाव हैं। जहां तक मैं उनके तर्कों को समझ सका हूं उन्होंने यह कहा कि जो तरीका संविधान में दिया हुआ है वह जनतन्त्रात्मक नहीं है। मैं नहीं समझ पाता हूं कि वह कैसे जनतन्त्र विरोधी है। जनता द्वारा निर्वाचित प्रधान मंत्री को प्रौढ़-मताधिकार द्वारा अथवा उन लोगों द्वारा, जो प्रौढ़-मताधिकार के आधार पर चुने गये हैं, निर्वाचित सभा के सदस्यों में से मन्त्री नियुक्त करने की अनुमति देने वाली प्रणाली जनतंत्र विरोधी कैसे हो सकती है यह बात मेरी समझ के बाहर है। मुझे तो यह शंका होती है कि उनके संशोधन का आशय अल्पसंख्यक वर्गों के लिये मंत्रिमंडल में प्रतिनिधान प्राप्त करने से है। यदि ऐसा है तो मैं उनके उद्देश्य से सहानुभूति रखता हूं क्योंकि मैं समझता हूं कि सुशासन का बहुत कुछ अंश इस बात पर निर्भर है कि शासन की बागडोर किनके हाथों में है। यदि शासन का नियंत्रण किसी विशेष दल द्वारा किया जाता है तो इसमें सन्देह नहीं कि शासक वर्ग उस दल के हित साधन के लिये कार्य करेगा जिसके लोग शासन का नियन्त्रण करते हैं और जो उस विशिष्ट दल के प्रतिनिधि है। अतः ऐसा प्रस्ताव रखने में कोई त्रुटि नहीं है कि मन्त्रिमण्डल के चुनाव का ऐसा तरीका हो कि जिससे अल्पसंख्यक समुदायों के सदस्य भी मन्त्रिमंडल में आ सकें। मैं नहीं समझता हूं कि यह लक्ष्य ओछा है या इसमें कोई लज्जा की बात है। फिर भी मैं अपने मित्र श्री महबूब अली बेग का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहूंगा

कि विधान में कुछ और जोड़ देने से उनके आशय की पूर्ति हो जायेगी और मसौदा-समिति का ऐसा विचार है कि एक और अनुसूची जिसको अनुच्छेद 3-क कहा जाये, बढ़ा दिया जाये। यह देखा होगा कि हमने संविधान में अनुसूची 4 नाम की एक अनुसूची रखी है जिसमें शासक के लिये निदेश लेख दिये गये हैं कि वह किस प्रकार प्रशासन कार्य में स्वविवेक की शक्तियों का प्रयोग करे। हमने एक ऐसा संशोधन पेश करने के लिये निश्चय कर लिया है कि इस अनुसूची के समान एक और अनुसूची रखी जाये जिसमें राष्ट्रपति के लिये भी इसी प्रकार के निदेश लेख हों। प्रस्तावित निदेश लेख का एक खण्ड यह होगा:

> "मंत्रिमंडल में नियुक्ति करते समय मन्त्रियों के चुनने में राष्ट्रपति निम्न रीति के पालन करने का पूर्ण प्रयत्न करेगा अर्थात् वह एक ऐसे व्यक्ति को प्रधान मंत्री नियुक्त करे जिसे वह संसद् में स्थायी बहुमत प्राप्त करने के लिये सबसे अधिक उपयुक्त समझें और फिर प्रधान मंत्री की मंत्रणा से अन्य व्यक्तियों को नियुक्त करे और जहां तक हो सके इनमें अल्पसंख्यक वर्गों के उन सदस्यों को रखे जो सामूहिक रूप में संसद् के विश्वासपात्र होने की सर्वोत्तम स्थिति को ग्रहण कर सकें।"

यदि श्री महबूब अली बेग के मन में संशोधन पेश करते समय यही आशय था तो मैं समझता हूं कि यह निदेश-लेख उनके आशय की पूर्ति कर सकेगा। मैं इस बात को संभव नहीं समझता हूं कि मंत्रिमंडल में किसी विशेष सम्प्रदाय के सदस्यों को रखने के लिये कोई कानूनी प्रावधान बनाया जाये। मेरे विचार से यह इसलिये संभव नहीं हो सकेगा कि हमारे विधान में, जैसा कि सोचा गया है, सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त निहित है और प्रधान मंत्री पर एक ऐसा सहयोगी लादने से कोई लाभ नहीं जो केवल इस कारण रखा जाये कि वह किसी विशेष अल्पसंख्यक सम्प्रदाय का सदस्य है परन्तु वह नीति की उन आधारभूत बातों से सहमत नहीं है जिनको प्रधान मंत्री तथा उसके दल ने स्वीकार किया है।

अब आइये मेरे मित्र श्री ताहिर के संशोधन पर। वे चाहते हैं कि यह निर्धारित किया जाये कि जहां कहीं राष्ट्रपति को स्वविवेक से प्रकार्य करना हो वहां-वहां मंत्रियों की मंत्रणा स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं होगा। मेरे विचार से

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

श्री ताहिर ने उपयोजित होने से पूर्व भारत शासन अधिनियम की धारा 50 की ज्यों की त्यों नकल ही की है। मूल रूप में भारत शासन अधिनियम की धारा 50 में दिया हुआ प्रावधान बिल्कुल ठीक है क्योंकि उस अधिनियम के अन्तर्गत विधि तथा कानून द्वारा गवर्नर जनरल को कुछ स्वविवेकात्मक प्रकार्य सौंपे गये थे जो धारा 11, 12, 19 तथा संविधान के अन्य कई भागों में दिये हुए हैं। जहां तक कि गवर्नर जनरल का संबंध है उसे यहां कोई भी स्वविवेकात्मक प्रकार्य नहीं सौंपे गये हैं। अत: ऐसी कोई स्थिति उत्पन्न नहीं हो सकती है जब राष्ट्रपति को मंत्रिमंडल अथवा प्रधान मंत्री की मंत्रणा के बिना कोई प्रकार्य करना पड़े। इस दृष्टिकोण से यह संशोधन पूर्णतया अनावश्यक है। श्री ताहिर यह न समझ सके कि राष्ट्रपति को नये संविधान के अन्तर्गत कुछ परमाधिकार ही प्राप्त होंगे उसे कोई भी प्रकार्य नहीं करना है और परमाधिकार तथा प्रकार्य में बहुत अन्तर है।

शासन व्यवस्था की संसदात्मक पद्धति में केवल दो ही परमाधिकार हैं जिनका शासक अथवा राज्य का प्रमुख प्रयोग कर सकता है। पहला प्रधानमंत्री की नियुक्ति करना और दूसरा संसद् का विलयन करना। प्रधान मंत्री की नियुक्ति के संबंध में यह संभव नहीं हो सकता है कि राष्ट्रपति में स्वविवेकात्मक शक्ति निहित करने से बचा जाये। राष्ट्रपति में स्वविवेक अथवा अधिकार निहित करने के अभाव में दूसरी रीति, जिसके द्वारा हम प्रधान मंत्री की नियुक्ति की व्यवस्था कर सकते हैं, केवल यही है कि सर्वप्रथम आगार अपना नेता चुने और फिर प्रस्ताव अथवा संकल्प द्वारा उस नेता के प्रति इच्छा प्रकट करने पर प्रधानमंत्री को नियुक्त करने के लिये राष्ट्रपति अग्रसर हो।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** एक वैधानिक प्रश्न है। इससे वहां राज्य के शासकों और मंत्रियों की स्थिति किस प्रकार स्पष्ट होगी जहां कि शासकों को स्वविवेकात्मक शक्ति का प्रयोग करने दिया गया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** शासक की स्थिति ठीक वैसी ही है जैसी राष्ट्रपति की स्थिति है और मैं समझता हूं कि अभी मुझे इसकी आवश्यकता से अधिक व्याख्या नहीं करनी चाहिये क्योंकि जिस समय हम राज्य

के विधान-मण्डलों और शासकों पर विचार करेंगे उस समय हम पूरी स्थिति पर गौर करेंगे। अत: प्रधान मंत्री की नियुक्ति के संबंध में दूसरी रीति यह है कि आगार को अपना नेता चुनने दिया जाये परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह नितान्त अनावश्यक है। चाहे प्रधान मंत्री का आगार में स्थायी बहुमत न होने से अथवा सभा को मान्य न होने से मान लीजिये कि प्रधान मंत्री किसी व्यक्ति को गलत चुनता है तो इसका इलाज तो स्वयं आगार के हाथ में है क्योंकि जैसे ही राष्ट्रपति प्रधान मंत्री की नियुक्ति करता है तो उस विशेष व्यक्ति की नियुक्ति पर आगार को अथवा आगार के किसी सदस्य को अथवा दल को यदि विरोध है तो वह अविश्वास का प्रस्ताव रख सकता है और यदि सभा की वैसी ही इच्छा है तो वह उस व्यक्ति को पद त्याग करने के लिये बाध्य कर सकती है। अत: दोनों रीतियां एक-सी ही हैं इसीलिये यह वांछनीय समझा गया कि इस विषय को राष्ट्रपति के स्वविवेक पर छोड़ दिया जाये।

आगार के विलयन करने के संबंध में जहां तक अंग्रेज विधान विशेषज्ञों का संबंध है उनका कोई निश्चित मत नहीं है। एक मत यह है कि यदि प्रधान मंत्री यह समझे कि आगार अपनी जिद पर है अथवा आगार लोक इच्छाओं का प्रतिनिधान नहीं करता है तो राष्ट्रपति को अथवा शासक को प्रधान मंत्री की विलयन करने की मंत्रणा को स्वीकार करना चाहिये। एक और मत भी है कि प्रधान मंत्री और उसके मंत्रिमंडल की चाहे कुछ भी मंत्रणा हो, राष्ट्रपति यदि यह समझता है कि आगार लोक इच्छाओं का प्रतिनिधान नहीं करता है तो वह अपनी इच्छा से सभा का विलयन कर सकता है।

मेरे विचार से ये केवल परमाधिकार है और देश की शासन व्यवस्था के अन्तर्गत नहीं आते हैं अत: जैसा कि श्री ताहिर ने अपने संशोधन में सुझाया है वैसे किसी प्रावधान के परमाधिकारों के प्रयोग करने को नियमित करने के लिये कोई आवश्यकता नहीं है।

श्रीमान्, अब मैं प्रो. के.टी. शाह के संशोधनों को लेता हूं। मेरे लिये उनके लंबे-लंबे संशोधनों का पढ़ना और यह सारांश निकालना कि उनके लम्बे-लम्बे पदों में वास्तविक तथ्य क्या है, कठिन ही है। मैंने उनको पढ़ा है और मुझे प्रतीत

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

होता है कि प्रो. शाह चार बातें चाहते हैं। पहली बात यह है कि कानून द्वारा वे प्रधानमंत्री को नहीं चाहते हैं। दूसरी बात वे यह चाहते हैं कि प्रत्येक मंत्री के नियुक्त होने पर वह मंत्री विधान-मण्डल में उपस्थित हो और उसमें अपने प्रति विश्वास का प्रस्ताव पास कराये। उनकी तीसरी बात यह है कि यदि कोई ऐसा व्यक्ति मंत्री नियुक्त किया जाता है जो नियुक्ति के समय आगार का निर्वाचित सदस्य नहीं है तो वह निर्वाचित होने का प्रयास करे और छः मास के भीतर सदस्य हो जाये। उनकी चौथी बात यह है कि कोई भी व्यक्ति जो उत्कोच भ्रष्टाचार इत्यादि का अपराधी प्रमाणित कर दिया गया हो मंत्री नियुक्त न किया जाये।

श्रीमान्, मैं इन बातों को एक-एक करके अलग-अलग लूंगा। पहली प्रधान मंत्री के संबंध की बात है। मैं नहीं समझ सका हूं कि प्रो. के.टी. शाह क्यों यह सोचते हैं कि प्रधान मंत्री की स्थिति को संविधान में स्पष्ट न किया जाये। यदि मैं उनको ठीक-ठीक समझ सका हूं तो परम्परा के आधार पर कार्यपालक मण्डल के अंगस्वरूप प्रधान मंत्री को यदि रखा जाय तो उनको कोई आपत्ति न होगी। यदि ऐसी बात है, यदि परम्परा द्वारा प्रधान मंत्री के बने रहने पर उनकी कोई आपत्ति नहीं है तब तो मैं समझता हूं कि प्रधान मंत्री की स्थिति को कानूनी तौर पर बयान करने में भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

इंग्लैंड में भी, जैसा कि वैधानिक कानून के अधिकांश छात्रों को स्मरण होगा, प्रधान मंत्री का एक पद था जिसको परम्परा के आधार पर अभिस्वीकृत किया गया था। बाद में जब कि मंत्रिमण्डल के मंत्रियों के वेतन को नियमित करने के लिये अधिनियम बनाया गया तब मेरा विश्वास है कि सन् 1909 में या उसके लगभग प्रधान मंत्री की स्थिति का कानूनी अभिस्वीकरण किया गया। तो भी इसके पूर्व प्रधान मंत्री था।

मैं अपने मित्र प्रो. के.टी. शाह से यह कहना चाहता हूं कि उनके संशोधन अन्य सिद्धान्त के लिये जिसके अनुसार हम अधिनियम बनाना चाहते हैं अर्थात् सामूहिक उत्तरदायित्व के लिये बड़े घातक होंगे। इस आगार के समस्त सदस्य इस बात के इच्छुक हैं कि सामूहिक उत्तरदायित्व के आधार पर मंत्रिमंडल कार्य करे और सब इस बात में सहमत है कि यह बड़ा ठोस सिद्धान्त है। पर मैं यह

नहीं जानता हूं कि आगार के कितने सदस्य इस बात को समझते हैं कि वह सही तन्त्र कौन-सा है जिससे सामूहिक उत्तरदायित्व का प्रवर्तन होता है। यह स्पष्ट है कि कानून से स्थिर किया हुआ उपचार तो कोई हो ही नहीं सकता। मान लीजिये कि कोई मंत्री मंत्रिमंडल के अन्य सदस्यों से भिन्न मत रखता है और वह अपने उन विचारों को जो मंत्रिमंडल के विचारों से भिन्न हैं प्रकट कर देता है तो सामूहिक उत्तरदायित्व को भंग करने के अपराध में उसे गिरफ्तार करने के लिये कानून का प्रयोग कदाचित असंभव है। यह स्पष्ट है कि सामूहिक उत्तरदायित्व की विधि द्वारा कोई पुष्टि नहीं हो सकती है। यदि कोई पुष्टि है, जिसके द्वारा कि सामूहिक उत्तरदायित्व अमल में लाया जा सकता है तो वह प्रधानमंत्री के द्वारा ही है। मेरे विचार से सामूहिक उत्तरदायित्व दो सिद्धान्तों पर अमल करने से काम में लाया जा सकता है। एक सिद्धान्त यह है कि प्रधान मंत्री की मंत्रणा के अतिरिक्त अन्य प्रकार से किसी भी व्यक्ति को मंत्रिमंडल में मनोनीत नहीं किया जायेगा। दूसरा सिद्धान्त यह है कि यदि प्रधान मंत्री यह कहे कि अमुक सदस्य को बरखास्त कर दिया जाये तो वह सदस्य मंत्रिमंडल के सदस्य के रूप में नहीं रह सकेगा। हमारे लिये सामूहिक उत्तरदायित्व के आदर्श को प्राप्त करना केवल तभी संभव हो सकेगा जब कि मंत्रिमंडल के सदस्य अपनी नियुक्ति और वियुक्ति दोनों विषयों के संबंध में प्रधान मंत्री के अधीन हो। इस सिद्धान्त के प्रभावीकरण के लिये मुझे अन्य कोई उपाय तथा मार्ग सुझाई नहीं देता है।

मान लीजिये कि आपका कोई प्रधानमंत्री नहीं है तब क्या होगा? यह होगा कि प्रत्येक मंत्री राष्ट्रपति के नियंत्रण अथवा प्रभाव के अधीन रहेगा। राष्ट्रपति यदि किसी विशिष्ट मंत्रिमंडल के अनुकूल नहीं है तो उसके लिये यह पूर्णतया संभव होगा कि प्रत्येक मंत्री से एक-एक करके अलग-अलग इस प्रकार बर्ताव करे कि मंत्रिमंडल में फूट उत्पन्न कर दे। इस प्रकार की कल्पना करना असंभव नहीं है। ब्रिटिश पार्लियामेंट में सामूहिक उत्तरदायित्व के कायम होने से पूर्व आपको स्मरण होगा कि वहां का बादशाह ब्रिटिश मंत्रिमंडल में किस प्रकार फूट डाला करता था मंत्रिमंडल तथा पार्लियामेंट में भी वह एक दल रखता था जिसे बादशाह के मित्रों का दल कहा जाता था। सामूहिक उत्तरदायित्व द्वारा इस प्रकार की बातों का अन्त किया गया। जैसा कि मैं कह चुका हूं सामूहिक उत्तरदायित्व

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

प्रधान मंत्री के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। अत: मंत्रिमंडल रूपी मेहराब का प्रधान मंत्री बीच का मुख्य पत्थर है और जब तक उस पद को नहीं रखते हैं और उस पद पर प्रतिष्ठित व्यक्ति को मंत्रियों के नियुक्त तथा वियुक्त करने का कानूनी अधिकार नहीं सौंपते हैं तब तक सामूहिक उत्तरदायित्व नहीं हो सकता।

श्रीमान्, प्रो. के.टी. शाह की दूसरी बात के संबंध में कि नियुक्त होने पर मंत्री विश्वास का प्रस्ताव प्राप्त करने का प्रयास करे मुझे विश्वास है कि प्रो. के. टी. शाह समझ जायेंगे कि इस प्रकार के किसी प्रावधान की कोई आवश्यकता नहीं है। यह सच है कि ब्रिटिश मंत्रिमंडल के प्रारम्भिक इतिहास में प्रत्येक व्यक्ति के लिये चाहे वह संसद् का सदस्य ही हो यदि वह मंत्री नियुक्त किया जाता था तो यह आवश्यक था कि वह संसद् से अपना त्याग-पत्र दे दे और फिर से चुनाव लड़े क्योंकि यह समझा जाता था कि मंत्रिपद पर नियुक्त हो जाने के पश्चात् वह व्यक्ति बादशाह के प्रभाव के अधीन हो सकता है और ऐसे काम कर सकता है जो लोक-हित के पक्ष में न हों। अंग्रेजों ने स्वयं इस प्रणाली को छोड़ दिया है। कानून द्वारा उन्होंने इस नियम का निराकरण कर दिया है और अब किसी व्यक्ति को या पार्लियामेंट के सदस्य को मंत्री नियुक्त होने पर दुबारा चुनाव लड़ने की आवश्यकता नहीं है। अत: यह प्रावधान बिल्कुल अनावश्यक है। जैसा कि मैंने थोड़ी देर पहले बताया था कि यदि प्रधान मंत्री किसी ऐसे मंत्री को नियुक्त करता है जो उस पद के योग्य नहीं है तो विधान-मण्डल के लिये यह पूर्णतया संभव होगा कि वह चाहे उस मंत्री के या चाहे पूर्ण मंत्रिमंडल के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव रखे और इस प्रकार प्रधान मंत्री से या उस मंत्री से जिसे प्रधान मंत्री विधान-मण्डल के कहने पर भी वियुक्त करना नहीं चाहता छुटकारा पा ले। अत: मेरा निवेदन है कि प्रो. के.टी. शाह की दूसरी बात भी अनावश्यक है।

तीसरी बात के संबंध में कि यदि कोई ऐसा व्यक्ति मंत्रिमंडल का सदस्य नियुक्त किया जाता है जो विधान-मंडल का सदस्य नहीं है तो छ: माह के भीतर वह विधान-मंडल का सदस्य हो जाये मैं यह बता दूं कि अनुच्छेद 62 (5) में इसकी व्यवस्था की जा चुकी है। अत: यह संशोधन अनावश्यक है।

उनकी आखिरी बात यह है कि अपराधी प्रमाणित किये गये किसी भी व्यक्ति को राज्य का मंत्री न बनाया जाये। जहां तक उनके उद्देश्य का संबंध है इसमें संदेह नहीं कि वह सराहनीय है और मैं समझता हूं कि सभा का कोई भी सदस्य इस बात का विरोध नहीं करेगा। परन्तु पूरा प्रश्न यह है कि क्या हमें संविधान में इन सब योग्यताओं और निर्योग्यताओं को रखना चाहिये। क्या यह वांछनीय नहीं है और क्या यह पर्याप्त नहीं है कि हम प्रधान मंत्री विधान-मंडल और जनता पर विश्वास रखें वह जनता जो अधिकतर मंत्रियों के तथा मंत्रिमंडल के कार्यों की देखभाल रखती है वह यह देखे कि इस प्रकार का अशोभनीय कार्य दोनों में से कोई भी न कर सके? मैं समझता हूं कि यह एक ऐसा काम है जिसे सम्मानपूर्वक प्रधान मंत्री तथा विधान-मंडल की सद्भावना पर छोड़ा जा सकता है और सामान्य जनता उनकी देख-रेख करेगी ही। इसलिये मैं कहता हूं कि ये संशोधन अनावश्यक है।

***श्री एच.वी. कामत:** कदाचित डॉ. अम्बेडकर साहब की दृष्टि पांचवें सप्ताह की सूची 4 में संशोधन संख्या 47 पर नहीं पड़ी।

***उपाध्यक्ष:** हर एक बात का उत्तर देने के लिये वे बाध्य नहीं हैं। उस संशोधन का उत्तर श्री तजम्मुल हुसैन ने दे दिया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उसके उत्तर की आवश्यकता नहीं है। उन सबको प्रधान मंत्री पर छोड़ा जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं एक-एक करके संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 61 के वर्तमान खण्ड (1) के स्थान में निम्न खण्ड रखे जायें:

'1 (a) There shall be a Council of Ministers to aid and advise the President in the exercise of his functions,

[उपाध्यक्ष]

(b) The Council shall consist of fifteen ministers selected by the elected members of both the Houses of Parliament from among themselves in accordance with the system of proportional representation by means of the single transferable vote, and one of the ministers, shall be elected as Prime Minister in like manner.' "

[1(क) राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों का पालन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी।

(ख) परिषद् में अनुपाती प्रतिनिधान की प्रणाली के अनुसार एकलसंक्राम्य मत द्वारा संसद् के दोनों आगारों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा उन्हीं सदस्यों में से 15 निर्वाचित मंत्री होंगे और इसी रीति से उन मंत्रियों में से एक को प्रधान मंत्री निर्वाचित किया जायेगा।]

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 61 के खण्ड (1) में से 'with the Prime Minister at the head' (जिसका प्रमुख प्रधान मंत्री होगा) शब्द निकाल दिये जायें।"

*प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 61 के खण्ड (1) के अन्त में (हिन्दी रूपान्तर के आरंभ में) निम्न प्रविष्ट किया जाये:

'except in so far as he is by or under this Constitution required to exercise his functions or any of them in his discretion' (सिवा उन प्रकार्यों अथवा उनमें से किसी एक

प्रकार्य के पालन करने में जिसके लिये इस विधान द्वारा अथवा उसके अन्तर्गत राष्ट्रपति को अपने स्वविवेक का प्रयोग करना अपेक्षित है।)

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1297 के गिर जाने से श्री मोहम्मद ताहिर का संशोधन संख्या 1298 गिरा है। अत: मैं उस पर मत नहीं ले रहा हूं। अब मैं प्रो. के.टी. शाह के संशोधन संख्या 1299 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 61 खण्ड (2) के अन्त में 'except by the High Court of Parliament when trying a President under section 50' (हिन्दी रूपान्तर में पर शब्द के पश्चात् 'धारा 50 के अन्तर्गत राष्ट्रपति पर अभियोग की जांच करते समय सिवा संसद् के उच्च न्यायालय के अन्य) शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं पांचवें सप्ताह की सूची 4 के संशोधन संख्या 47 द्वारा संशोधित किये गये संशोधन संख्या 1300 पर मत लेता है।

"कि अनुच्छेद 61 के खण्ड (2) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड प्रविष्ट किये जाये:

'(2A) On every change in the Council of Ministers, and particularly on every change of the holder of Prime-Ministership, the Prime Minister (alternatively, the President) shall present the new minister as the case may be to the People's House of Parliament, and shall ask for a vote of confidence from that body in the particular minister newly appointed. In the event of an adverse vote in the case of a particular minister, the minister concerned shall forthwith cease to hold office and a new minister appointed. If a vote of confidence in the Council of Ministers collectively is refused, the Council as a whole shall resign and a new Ministry formed in its place.

[उपाध्यक्ष]

(2B) Every minister shall, at the time of his appointment, be either an elected member of one or the other House of Parliament, or shall seek election and be elected member of one or other House within not more than six months from the date of his appointment, provided that no one elected at the time of a General Election, and appointed minister within less than six months of the date of the General Election, shall be liable to seek election.

(2C) No one who is not an elected member of either House of Parliament shall be appointed minister unless he gets elected to one or the other House of Parliament within six months of the date of his appointment.

(2D) Not less than two-thirds of the members of the Council of Ministers shall at any time be members of the People's House of Parliament; and not more than one-third of the members of the Council of Ministers shall at any time be members of the Council of States. Members of the Council of Ministers may have such assistance in the shape of Deputy Ministers or Parliamentary Secretaries as Parliament may by law from time to time determine provided that no one shall be appointed Deputy Minister or Parliamentary Secretary who at the time of his appointment was not an elected member of either House of Parliament, or who is not elected within six months of the date of his appointment to a seat in one or the other House of Parliament.

(2E) No one shall be appointed Minister or Deputy Minister or Parliamentary Secretary, who has been convicted of treason or of any offence against the sovereignty, security, or integrity of the State, or of any offence involving moral turpitude and of bribery and corruption and liable to a maximum punishment of two years' rigorous punishment.

Every minister shall, before entering upon the functions of his office, declare all his right, interest or title in or to any property, business, industry, trade of profession, and shall divest himself of the same either by selling all or any such right, interest, or title in or to any property, business, industry, trade or profession in open market or to Government at the market price; and further, shall take an oath ever to consider exclusively the interests of the country and not seek to promote his own interest or aggrandisement of his family in any act he may do or appointment he may have to make.' "

[(2क) मंत्रिपरिषद् में प्रत्येक परिवर्तन पर तथा विशेषकर प्रधान मंत्रित्व पद को ग्रहण करने वाले व्यक्ति के प्रत्येक परिवर्तन पर प्रधान मंत्री (विकल्पत: प्रधान) यथास्थिति नये मंत्री को संसद् की लोक-सभा में प्रस्तुत करेंगे और उस निकाय से उस नवीन नियुक्त मंत्री के प्रति विश्वास का प्रस्ताव स्वीकार करने के लिये कहेंगे। किसी विशिष्ट मंत्री के संबंध में विरोधी मत प्रकट होने की स्थिति में वह मंत्री उसी समय से पदच्युत हो जायेगा और कोई नया मंत्री नियुक्त किया जायेगा। यदि सामूहिक रूप से मंत्रिपरिषद् पर विश्वास का प्रस्ताव अस्वीकार किया गया तो समस्त परिषद् को पदत्याग करना होगा और उसके स्थान में नया मंत्रिमंडल बनाया जायेगा।

(2ख) नियुक्ति के समय प्रत्येक मंत्री या तो संसद् के दोनों आगारों में से किसी एक का निर्वाचित सदस्य होगा और या निर्वाचित होने के लिये प्रयास करेगा और अपनी नियुक्ति तिथि से 6 माह के भीतर किसी न किसी आगार का सदस्य निर्वाचित हो जायगा, पर कोई भी व्यक्ति जो सामान्य निर्वाचन के समय निर्वाचित किया गया था तथा सामान्य निर्वाचन तिथि से 6 माह के भीतर मंत्री नियुक्त किया गया था वह निर्वाचित होने के लिये प्रयास करने के लिये बाध्य नहीं है।

(2ग) किसी भी व्यक्ति को जो संसद् के दोनों आगारों में से किसी भी आगार का सदस्य नहीं है तब तक मंत्री नियुक्त नहीं किया जायेगा जब तक वह अपनी नियुक्ति तिथि से 6 माह के भीतर संसद् के किसी न किसी आगार का सदस्य निर्वाचित न हो।

[उपाध्यक्ष]

(2घ) किसी भी समय मंत्रिपरिषद् के दो तिहाई से कम सदस्य संसद् की लोकसभा के सदस्य नहीं होंगे, और न किसी समय मंत्रिपरिषद् के एक तिहाई से अधिक सदस्य राज्यपरिषद् के सदस्य होंगे। मंत्रिपरिषद् के सदस्य उपमंत्रियों तथा पार्लियामेंट्री सेक्रेटरी (संसदीय सचिव) के रूप में उनसे ऐसी सहायता प्राप्त कर सकते हैं जिसका संसद् समय-समय पर विधि द्वारा निश्चय करे, पर किसी उस व्यक्ति को उपमंत्री तथा पार्लियामेंट्री सेक्रेटरी नियुक्त नहीं किया जायेगा जो नियुक्ति के समय संसद् के दोनों आगारों में से किसी आगार का भी निर्वाचित सदस्य न हो अथवा जो संसद् के किसी आगार में नियुक्ति तिथि से 6 माह के भीतर निर्वाचित न हो जाये।

(2ङ) जो व्यक्ति राजद्रोह के लिए अथवा राज्य की प्रभुता, सुरक्षा या अक्षुण्णता के विरुद्ध अपराध के लिए अथवा नैतिक दुराचार और उत्कोच और भ्रष्टाचार वाले तथा अधिक से अधिक दो वर्ष के कठोर कारावास से दण्डित होने वाले अपराध के लिए दोष प्रमाणित हुआ है, वह मंत्री या उपमंत्री अथवा संसदीय सचिव नियुक्त नहीं किया गया।

"अपने पद के प्रकार्यों को संभालने के पूर्व प्रत्येक मंत्री किसी सम्पत्ति वाणिज्य, उद्योग, व्यापार अथवा व्यवसाय में अथवा उनके संबंध में अपने समस्त स्वत्व, हित, अथवा स्वामित्व की घोषणा करेगा और सम्पत्ति, वाणिज्य, उद्योग, व्यापार अथवा व्यवसाय में या उसके संबंध में अपने उन सब अथवा उनमें से किसी भी ऐसे स्वत्व हित अथवा स्वामित्व को खुले बाजार में अथवा बाजार की दर से सरकार को बेच कर उन से स्वयं पृथक् हो जायेगा; और फिर इस बात की शपथ ग्रहण करेगा कि वह सदैव देश के हितों का पूरा पूरा ध्यान रखेगा और जो कोई भी कार्य उसे करना है उसके करने में अथवा जो नियुक्ति उसे करनी है उसके करने में वह अपने निजी हितों को उन्नत करने के लिये अथवा अपने कुटुम्ब के अभ्युदय के लिये प्रस्ताव नहीं करेगा।]"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** चौथी सूची का संशोधन संख्या 46 रुक जाता है। श्री कामत इस बात को समझ जायेंगे कि मैं उस पर क्यों मत नहीं ले रहा हूं। संशोधित रूप में संशोधन संख्या 1300 के अस्वीकार हो जाने से वह एक जाता है।

अब मैं अनुच्छेद 61 पर सभा का मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 61 विधान का अंग माना जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार किया गया।*

*अनुच्छेद 61 विधान में प्रविष्ट किया गया।*

---

## अनुच्छेद 62

***उपाध्यक्ष:** सभा अनुच्छेद 62 पर विचार-विमर्श आरंभ करेगी। प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 62 विधान का अंग माना जाये।"

श्री महबूब अली बेग संशोधन संख्या 1302 पेश कर सकते हैं। मगर नहीं, मैं देखता हूं कि पूर्व अनुच्छेद पर निर्णय हो जाने के कारण वह रुक जाता है।

***महबूब अली बेग साहिब बहादुर:** जी हां, ऐसा ही है।

***उपाध्यक्ष:** काजी सैयद करीमुद्दीन के नाम का संशोधन संख्या 1303 अब पेश किया जा सकता है।

मुझे संशोधन प्रस्तुत करने वाले सज्जन को यह बता देना चाहिये कि भाग (1) और (2) रुक जाते हैं। वे केवल भाग (3) पेश कर सकते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं यह संकेत कर सकता हूं कि पहले अनुच्छेद के अस्वीकृत हो जाने से यदि इस संशोधन के भाग (1) और (2) रुक जाते हैं तो संशोधन के शेष भाग को भी पेश नहीं किया जा सकता।

***उपाध्यक्षः** संशोधन के भाग (3) को पेश किया जा सकता है। वह मंत्रिमंडल के सदस्य को हटाने से संबंध रखता है।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** श्रीमान्, आपके इस आदेश से कि मेरे संशोधन के उपखण्ड (1) और (2) रुक जाते हैं मेरे लिये भाग (3) और (3क) पर भाषण देना वास्तव में कठिन हो गया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** पहले संशोधन के अस्वीकृत हो जाने के कारण वह रुक नहीं गया है। यदि मंत्रियों का निर्वाचन नहीं होता है तो ऐसा हरगिज नहीं होगा। जिस रूप में प्रस्तुत है वह बिल्कुल निरर्थक है।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** वह निरर्थक नहीं है।

***उपाध्यक्षः** कृपया श्री सन्तानम् को बोल लेने दीजिये।

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** भाग (3) भाग (2) का समनुवर्ती है। भाग (3) पर तभी विचार किया जा सकता है जब कि भाग (2) स्वीकार कर लिया जाये। अन्यथा उसका कोई अर्थ नहीं होगा। वह स्थिति तभी उत्पन्न हो सकती है जब कि मंत्रियों का निर्वाचन किया जाये। यहां तो मंत्रियों की राष्ट्रपति द्वारा केवल नियुक्ति ही होती है। और फिर यह संशोधन उनको स्थायी बना देगा। उनका तर्क यह है कि यदि उनका निर्वाचन किया जाता है तो उनको हटाना नहीं चाहिये।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** मेरा संशोधन मंत्रियों के हटाने के संबंध का है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, क्या मैं यह बता सकता हूं कि यदि अनुच्छेद 62 का भाग (2) रहता है और उसको निकाला नहीं जाता है तो संशोधन संख्या 1303 का भाग (3) पेश नहीं हो सकता। अनुच्छेद 62 के भाग (2) में यह दिया गया है कि "·····मंत्री अपने पद पर आसीन रहेंगे"। यदि यह भाग रहता है तो माननीय सदस्य के संशोधन के भाग (3) को इसके प्रसंग में कोई स्थान नहीं मिल सकता।

***उपाध्यक्षः** मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को हटाने के लिये श्री करीमुद्दीन एक विशेष प्रावधान चाहते हैं। क्या ऐसा नहीं है?

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** जी हां।

***उपाध्यक्षः** श्री कृष्णमाचारी का विचार यह है कि वह रुक जाता है। क्यों?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** यदि माननीय सदस्य अपने उद्देश्य की पूर्ति करना चाहते हैं तो सर्वप्रथम उपखण्ड (2) को निकाल देना होगा। यदि उनके संशोधन के भाग (1) और (2) पेश नहीं किये जाते हैं तो भाग (2) किसी प्रकार से भी संगत नहीं होगा।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** मेरे संशोधन के भाग (1) और (2) का भाग (3) से कोई संबंध नहीं है।

***उपाध्यक्षः** इसको (2) और (3) के स्थान में समझा जा सकता है। जो कुछ हो मैं उन्हें अपनी बात रखने की आज्ञा देता हूं।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं उपखण्ड (3) और (3क) को संविधान में रखने के लिये संशोधन पेश करता हूं:

"(3) A member of the Cabinet shall not be liable to be removed except on impeachment by the House on the ground of corruption or treason or contravention of laws of the country or deliberate adoption of policy detrimental to the interests of the State.

(3A) The procedure for such impeachment will be the same as provided in article 50."

[(3) भ्रष्टाचार अथवा राजद्रोह अथवा देश के कानून का विरोध करने अथवा राज्य हित के लिये घातक नीति को जान बूझ कर ग्रहण करने के आधार पर आगार द्वारा प्राभियोग लगाने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से मंत्रिमण्डल का सदस्य हटाया नहीं जा सकेगा।

(3क) ऐसे प्राभियोग के लिये वही विधि होगी जो अनुच्छेद 50 में प्रावहित है।]"

श्रीमान्, मेरा निवेदन यह है कि वर्तमान समय में देश में सरकार का

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

कार्यपालक तन्त्र बड़ी शीघ्रता से पतन की ओर जा रहा है क्योंकि विधान-मण्डल के सदस्य और परिषदों में बहुसंख्यक दलों के सदस्य मंत्रियों पर बहुत जोर डालते हैं। यदि मंत्री विधान-मण्डल के सदस्यों और उनके समर्थकों की बात पर ध्यान नहीं देते हैं तो उसका फल यह होता है कि उनको हटाया तक जा सकता है। वर्तमान परिस्थितियों में यह स्पष्ट है कि कांग्रेस हाई कमान्ड ने भी यह अनुभव किया है कि कोई ऐसी प्रणाली सोचनी चाहिये जिससे मंत्रियों को विधान-मंडल के सदस्यों तथा उनके समर्थकों की प्रार्थनाओं को स्वीकार करने के लिये बाध्य न होना पड़े। मध्य-प्रान्त में माननीय पंडित मिश्रा ने ये स्पष्ट आदेश निकाल दिये हैं कि सरकारी नौकर कांग्रेसियों और उनके समर्थकों को किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करने दें। इसका अर्थ यह है कि इस देश में कार्यपालक मण्डल पर वे लोग प्रभाव डालते हैं जो दल के समर्थक हैं। जब तक मंत्री यह न समझें कि वे अपने पदों पर सुरक्षित हैं तब तक यह संभव है कि देश के दिन प्रति दिन के प्रशासन में हस्तक्षेप हो। अतः मेरा निवेदन यह है कि स्थायी तथा सुदृढ़ सरकार बनाने के लिये, जिस पर साधारण लोगों और उनके समर्थकों का प्रभाव न पड़े यह बहुत ही आवश्यक है कि आगार द्वारा वह सरकार हटाई न जा सके। मैंने भाग (3) में यह रखा है "भ्रष्टाचार अथवा राजद्रोह अथवा देश के कानून का विरोध करने अथवा राज्य के लिये घातक नीति को जान बूझ कर ग्रहण करने के आधार पर प्राभियोग के द्वारा अन्य किसी प्रकार से" उनको नहीं हटाया जायेगा।

***श्री महावीर त्यागी:** अविश्वास के प्रस्ताव के संबंध में क्या होगा? क्या उसको पेश किया जा सकता है या नहीं?

***काजी सैयद करीमुद्दीन:** जी नहीं।

(संशोधन संख्या 1304, 1305, 1306, 1307 और 1308 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 62 के खण्ड (1) में 'and the other minister's' शब्दों के पूर्व 'from the members of the party commanding a majority of votes in the People's

House of Parliament' हिन्दी रूपान्तर में खण्ड के प्रारंभ में (संसद् के लोकागार में बहुमत प्राप्त दल के सदस्यों में से) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधित खण्ड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"The Prime Minister shall be appointed by the President from among the Party commanding a majority of votes in the People's House of Parliament, and the other Ministers, etc."

(संसद् के लोकागार में बहुमत प्राप्त दल के सदस्यों में से प्रधान मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और अन्य मंत्रियों को, प्रधान मंत्री की मंत्रणा पर राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।)

श्रीमान्, यह केवल इस विचार को स्पष्ट करने के लिये है कि मंत्रिमंडल विधान-मंडल के प्रति केवल सामूहिक रूप में ही उत्तरदायी नहीं है वरन् उसमें समान विचार के चुने हुए व्यक्ति होने के कारण इस बात की प्रत्याभूति भी हो जाती है कि वह आगार का विश्वासपात्र भी है। इस बात को निश्चित करने के लिये कि मंत्रिमंडल केवल स्थायी ही नहीं है वरन् वह सभा का विश्वासपात्र भी है, मेरे विचार से यह आवश्यक है कि इस बात को स्वयं संविधान में स्पष्ट किया जाये। जो लोग चुने हुए लोक प्रतिनिधियों के प्रति मंत्रिमंडल के सामूहिक उत्तरदायित्त्व के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं उनको इस सुझाव में कोई भी दोष नहीं निकालना चाहिये क्योंकि यह केवल उस उद्देश्य को स्पष्ट करता है जो नि:सन्देह इस समूचे खण्ड का और वास्तव में इस समूचे संविधान का उद्देश्य है।

मैं समझता हूं कि मैं स्वयं उन लोगों की समाज में अप्रिय बन रहा हूं जो इतने अथवा ऐसे संशोधनों को पसन्द नहीं करते हैं जिनको मैं प्रस्तुत करता हूं या जो मेरे सुझाये गये खण्डों की बहुलता के कारण उनके सार को समझने में असमर्थ हैं। मुझे बहुत खेद है कि मैं ऐसा करने के लिये विवश हूं क्योंकि मैं यह नहीं सोचता हूं कि मेरा कार्य केवल यही हो कि जो लोग स्वीकार नहीं करते हैं उनसे कोई बात स्वीकार करा लूं। जो देखना नहीं चाहते उनके बराबर कोई

[प्रो. के.टी. शाह]

अन्धा नहीं और जो सुनना नहीं चाहते उनके बराबर कोई बहरा नहीं। श्रीमान्, मेरा काम यह नहीं है कि मैं इन संशोधनों को स्वीकार कराऊं। मैं यह मानता हूं कि मेरा काम यह है कि सभा के समक्ष प्रत्येक विषय पर अपने विचार प्रकट कर दूं और मेरे तर्कों को सुनने के पश्चात् यह आगार का कार्य है कि वह उस विचार को स्वीकार करे अथवा अस्वीकार। जीवन काल में पैगम्बरों का कभी सम्मान नहीं होता है। जो काम मैंने स्वयं अपने को सौंपा है उसके बारे में मैं यह नहीं सोचता कि अपने विचारों को सफलतापूर्वक स्वीकार करा लूं। मैं अपने मित्र श्री सन्तानम् का बड़ा कृतज्ञ हूं जिन्होंने कृपापूर्वक मुझ पर, मैंने जो भारी बोझ अपने कंधे पर रख लिया है और जिस बोझ को वे अनावश्यक समझते हैं उसके प्रति करुणा प्रकट की। पर, श्रीमान्, मैं फिर दोहराता हूं कि मैं यह नहीं मानता कि मेरा काम केवल इतना ही है कि मैं जिन प्रस्तावों को सभा के सामने रखता हूं उनको सभा द्वारा स्वीकार करा लूं। मुझे इस सभा की कार्यप्रणाली के अनुसार कोई वैकल्पिक विधान प्रस्तुत नहीं करना है वरन् प्रत्येक विशेष खण्ड पर जिस समय विचार हो संशोधन प्रस्तुत करना है। तदनुसार, नियमों का उल्लंघन किये बिना, मेरे लिये यह असंभव होगा कि जो विचार मेरे मन में हैं उनको सभा के सामने प्रकट न करूं। जो पहले कार्यपालक मंडल विधान और न्यायाधीश वर्ग के अधिकारों को पृथक् करने के हामी थे हो सकता हे कि वे यह ठीक समझें कि वे अपने विचारों को बदल दें, वे अब इस विषय के बारे में भिन्न प्रकार से सोचें और यहां तक कि वे अपने पद में भी परिवर्तन कर लें। इस पर मेरी कोई आपत्ति नहीं है। पर मैंने तो अपने तई कभी यह विश्वास नहीं किया है कि राजनीति में दृढ़ता गुण नहीं है। राजनीतिज्ञों में दृढ़ता कोई गुण न हो। दुर्भाग्यवश इस सिद्धान्त को न मान सकने के कारण बिना इस बात पर विचार किये कि सभा उनको स्वीकार करेगी ही मैं आगार में अपने विचार प्रस्तुत करता चला जा रहा हूं। हर बार जब मैंने विशिष्ट सिद्धान्तों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है सभा की मेरी बात मानने के प्रति अनिच्छा रही है। पर मैं आपको यह आश्वासन देता हूं कि जब तक सभा के किसी विशिष्ट प्रस्ताव द्वारा मुझ पर यह पूरी-पूरी रोक नहीं लगा दी जायेगी कि मेरे समस्त संशोधन पेश करने के पूर्व ही

अस्वीकार कर दिये जायेंगे तब तक मैं अपने हर एक संशोधन को प्रस्तुत करूंगा, उन पर भाषण दूंगा और सभा का उन पर जो भी मत हो उसे मानूंगा।

***उपाध्यक्ष:** सभा कल प्रात: 10 बजे तक स्थगित की जाती है।

*तत्पश्चात् शुक्रवार ता० 31 दिसम्बर सन् 1948 ई. के*
*प्रात: 10 बजे तक सभा स्थगित हुई।*

---

Con. 3. VII. 30. 48
350

अंक 7
संख्या 30

शुक्रवार,
31 दिसम्बर
सन् 1948 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी)..... 2009-2067
[अनुच्छेद 62 तथा 62-ए पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

शुक्रवार, 31 दिसम्बर, सन् 1948 ई.

---

*भारतीय विधान-परिषद् कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में 10 बजे माननीय उपाध्यक्ष महोदय (डॉक्टर एच.सी. मुकर्जी) के सभापतित्व में समवेत् हुई।*

---

## विधान का मसौदा–(जारी)

### अनुच्छेद 62–(जारी)

---

***उपाध्यक्ष (डॉ. एच.सी. मुकर्जी):** अब हम अनुच्छेद 62 पर आगे विचार जारी करेंगे।

(संशोधन संख्या 1310 और 1311 पेश नहीं किये गये।)

संख्या 1312 और 1329 समान आशय के हैं। संख्या 1329 पेश किया जा सकता है। डॉक्टर अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 62 के खंड 5 के बाद, निम्न नया खंड रख दिया जाये:–

'(5-a) In the choice of his Ministers and the exercise of his other functions under this Constitution, the President shall be generally guided by the instructions set out in Schedule III-A but the validity of anything done by the President shall not be called in question on the ground that it was done otherwise than in accordance with such instructions.' "

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

[(5-क) अपने मंत्रियों के चुनने में तथा इस संविधान के अधीन अपने अन्य कृत्यों के प्रयोग में प्रधान साधारणतया अनुसूची 3-क में दी हुई हिदायतों के अनुसार चलेगा, किन्तु प्रधान द्वारा की हुई किसी बात की मान्यता पर इसलिए आपत्ति न की जायेगी कि वह बात इन हिदायतों से अन्यथा की गई है।]

***उपाध्यक्ष:** इस संशोधन पर एक संशोधन है, वह है सूची 5 का संख्या 50 जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम में है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन द्वारा 1329 में, प्रस्तावित नये खंड 5(क) में 'किन्तु प्रधान द्वारा' इससे आरंभ करके अंत तक के समस्त शब्द हटा दिये जायें।"

श्रीमान्, माननीय सदस्य डॉक्टर अम्बेडकर ने अभी-अभी जो संशोधन पेश किया है उससे अनुच्छेद 62 में एक नया खंड 5(क) जोड़ दिया जायेगा। इसमें यह प्रावधान है कि प्रधान अपने मंत्रियों को चुनने में तथा संविधान के अधीन 'अन्य प्रकार्यों की पूर्ति में' साधारणतया हिदायतों के अनुसार चलेगा। इस खंड के इस विभाग के संबंध में मेरा कोई झगड़ा नहीं है। किन्तु अंतिम कुछ पंक्तियां जिन्हें मैं हटाना चाहता हूं अत्यंत आपत्तिजनक प्रतीत होती हैं। कम से कम उनका स्पष्टीकरण आवश्यक है। मैं निम्न शब्दों को हटाना चाहता हूं "किन्तु प्रधान द्वारा की हुई किसी बात की मान्यता पर इसलिए आपत्ति न की जायेगी कि वह बात इन हिदायतों से अन्यथा की गई है"।

मेरा निवेदन है, श्रीमान्, कि इन शब्दों से विधान पर गंभीर अतिक्रमण होगा। इस खंड के प्रथम भाग का प्रभाव संविधान के अधीन 'अन्य प्रकार्यों' पर भी पड़ता है। यह शब्द सर्व आशय पूर्ण है। वास्तव में विधान के अधीन 'अन्य प्रकार्यों' का अर्थ समस्त प्रकार के प्रकार्यों से है। मंत्रियों को चुनने का काम तो ऐसा है जिस पर जरा भी उंगली नहीं उठाने देना चाहिये। किन्तु मेरा निवेदन है कि अन्य किसी प्रकार्य की मान्यता आपत्ति से परे नहीं होनी चाहिये। वास्तव में

विधान के अधीन प्रधान भी वैधानिक प्रधान होगा। वह मंत्रियों की मन्त्रणा पर कार्य करेगा। अत: विधान के अधीन अन्य प्रकार्यों के करने में, वह अपने मंत्रियों की मंत्रणा के अनुसार चलेगा। मैं जो शब्द हटा देना चाहता हूं उनका प्रभाव यह होगा कि इनसे प्रधान को विधान के अधीन अपने अन्य प्रकार्यों की पूर्ति में पूर्ण तथा निरंकुश शक्ति होगी। यह बात मानना तो हद से बाहर है। प्रधान के वैधानिक प्रधान बनने का वास्तविक प्रभाव यह होगा कि मंत्रिमंडल अथवा कोई मंत्री प्रधान को ऐसा कोई कार्य करने की मंत्रणा दे सकता है जो कि अवैधानिक है, और मैं जिन शब्दों को हटाना चाहता हूं उनको रखने का परिणाम यह होगा कि एक स्पष्टत: अवैधानिक कार्य, अथवा ऐसे कार्य पर जिससे कि विधान का जानबूझ कर खुलेआम उल्लंघन होता हो, आपत्ति नहीं की जा सकती। नये खंड में उल्लिखित है कि प्रधान के ऐसे कार्य पर 'आपत्ति न की जायेगी'। ऐसा करने से तो आपत्ति करने पर निषेध लगाती है। इस पर कहीं भी और किसी प्रकार भी कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। इस पर न्यायालय में, विधान मंडल में अथवा कहीं अन्यत्र कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। मैं नहीं जानता कि प्रधान के किसी कार्य की वैधता अथवा औचित्य पर किसी समाचार-पत्र में आपत्ति करना भी वर्जित होगा या नहीं। किन्तु, इन शब्दों का स्पष्ट अर्थ यह होगा कि विधान-मंडल अथवा न्यायालय में इस पर वाद-विवाद नहीं हो सकता, जहां कि अवैधानिक कार्य के विरुद्ध प्रभावी रूप में आपत्ति नहीं की जा सकती है। मैं निवेदन करता हूं, श्रीमान्, कि यह शब्द इतने व्यापक हैं कि इन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता। मैं ऐसा नहीं कहता और न ऐसा विश्वास ही करता हूं कि वे इसलिये रखे गये हैं कि किसी जानबूझ कर किये हुए अवैध कार्य को ढका जा सके तथा उसकी रक्षा की जा सके। मुझे ऐसा विश्वास नहीं है। किन्तु इन शब्दों का प्रभाव तो यही होगा। इससे मंत्री अथवा मंत्रिमंडल द्वारा प्रधान के नाम पर किये गये कार्यों पर आपत्ति होने से रक्षा तथा बचाव किया जा सकेगा, और इससे मंत्री को ऐसा रक्षण प्राप्त हो जायेगा जो कि उसे नहीं मिलना चाहिये। मंत्री अपने अवैधानिक कार्य का समर्थन करने के लिये प्रधान को प्रभावी ढाल के रूप में प्रयोग कर सकेगा। इस प्रकार विधान की पवित्रता को भारी धक्का पहुंचेगा। इसकी शक्ति का गंभीर ह्रास हो जायेगा, यदि इस खंड के उत्तर भाग के अधीन

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

एक सर्वथा अवैधानिक कार्य पर किसी प्रकार के वाद-विवाद अथवा आपत्ति करने का वर्जन हो जायेगा। मेरा निवेदन है, श्रीमान्, कि यह नागरिकों के अधिकारों का, जिनको विधान में इतने शोर के साथ स्पष्टतः प्रत्याभूत किया गया है, अत्यंत गंभीर अतिक्रमण है। यदि प्रधान को मंत्रियों की मंत्रणा पर अवैधानिक तरीके से बाध्य अथवा तैयार किया जा सके, तो यह अधिकार पूर्णतः व्यर्थ हो जायेंगे। मेरा निवेदन है कि यह प्रभाव ऐसा है जो कि अवांछनीय है और शायद इच्छित नहीं है। अतः मैं चाहता हूं कि प्रधान के किसी कार्य की अवैधानिकता के विषय में आपत्ति को रोकने की संभावना ही न रहे। कम से कम मैं स्पष्टीकरण चाहता हूं। मैं समझता हूं कि अंतिम कुछ पंक्तियों में इस प्रकार के अतिक्रमण से नागरिकों के अधिकारों का रक्षण होना चाहिये।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 1312 । मि. मोहम्मद ताहिर और सैयद जाफ़र इमाम क्या आप चाहते हैं कि इस संशोधन पर मत लिये जायें?

***सैयद जाफ़र इमामः** (बिहार : मुस्लिम): हां।

(संशोधन संख्या 1313 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 1314, 1315, 1316, 1317, 1319 और 1320 सब सदृश आशय के हैं। संख्या 1315 सर्वाधिक व्यापक दिखाई देता है तथा वह पेश किया जा सकता है। वह श्री दामोदर स्वरूप सेठ के नाम में है।

(संशोधन संख्या 1315 पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 1314, जोकि श्री केशव राव के नाम में है, पेश किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 1314 पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 1316, जोकि मि. मोहम्मद इस्माइल तथा मि. पोकर साहिब के नाम में है, पेश किया जा सकता है।

**बी. पोकर साहिब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 62 के खण्ड (2) के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:

'(2) मंत्रिगण तभी तक पदासीन रहेंगे जब तक कि वे लोक-सभा के विश्वास के पात्र रहें।'"

श्रीमान, मैं आरंभ में ही बता सकता हूं कि यह संशोधन सांप्रदायिक नहीं है और न इसके पीछे कोई राजनीतिक उद्देश्य ही छिपा हुआ है। मुझे यह बात अपने पिछले अनुभव के कारण कहनी पड़ रही है। इस संशोधन में यही बात कही गई है जो कि कुछ परिपाटी प्रचालित है उसे विधान में लिखित रूप से रख दिया जाये। नि:संदेह यह परिपाटी है कि मंत्री उसी समय तक पदासीन रहेंगे जब तक कि वे लोक सभा के विश्वासपात्र होंगे। जब तक वे लोक सभा के विश्वासपात्र रहेंगे, नि:संदेह वे प्रधान द्वारा पदच्युत नहीं किये जायेंगे। किन्तु व्यवहार रूप में, यह कहना सत्य नहीं है कि मंत्रिगण प्रधान के प्रसाद काल तक पदासीन रहेंगे। यह कथन तो वास्तव में नाट्यमात्र ही है कि मंत्रिगण प्रधान के प्रसाद काल में ही पदासीन रहेंगे। वास्तव में, ऐसा नहीं है नि:संदेह यह परिपाटी ग्रेट ब्रिटेन तथा कुछ अन्य देशों में प्रचलित है। किन्तु जब हम देश के लिए लिखित विधान की व्यवस्था कर रहे हैं, तो मैं कोई कारण नहीं देखता कि हम उन परिपाटियों से चिपटे रहें जो कि अन्य देशों में पाई जाती हैं। जब हमें विधान में प्रत्येक बात को स्पष्टत: रखने का अवसर मिला है, तब भी क्या हम यूनाइटेड किंगडम अथवा अमरीका के उदाहरण पेश करने के लिये ही उन्हें छोड़ दें? विधान में, कागज़ पर वास्तविक परिस्थिति लिख देने में कुछ भी हानि नहीं है, कि मंत्रिगण तब तक पदासीन रहेंगे जब तक कि वे लोगों के विश्वासपात्र बने रहेंगे। मैं यह बात इसलिये कह रहा हूं कि इस संशोधन पर केवल एक ही संभावित आपत्ति है कि यह तो ऐसी परिपाटी है जो कि संसार के समस्त भागों में लागू है, अत: इसे विधान में रखना अनावश्यक है। वास्तव में, मैं अनुभव करता हूं कि यहां

[बी. पोकर साहिब बहादुर]

जो कार्य-प्रणाली है उसके कारण में घाटे की स्थिति में हूं; इस कार्य-प्रणाली के अंतर्गत जब तक डॉक्टर अम्बेडकर खड़े होकर आपत्ति नहीं करते तब तक किसी को यह पता नहीं लग सकता कि उसके संशोधन पर क्या आपत्ति है। प्रत्येक विषय पर वे ही अंत में बोलते हैं। प्रस्तावक अथवा परिषद् के किसी अन्य सदस्य को उन आपत्तियों के उत्तर देने का अथवा परिषद् को यह बताने का अवसर नहीं मिलता कि वे आपत्तियां ठीक हैं अथवा नहीं। मैं कार्य-प्रणाली पर ज़रा भी आपत्ति नहीं कर रहा हूं। मैं तो केवल यही बता रहा हूं कि यहां की कार्य-प्रणाली क्या है। अत: मुझे पूर्व-कल्पना करने की आवश्यकता पड़ती है कि किस प्रकार के सीधे-सादे संशोधन पर संभवत: क्या आपत्ति हो सकती है।

अनुच्छेद 61 पर वाद-विवाद के संबंध में माननीय श्री के. सन्तानम् ने जो कुछ कहा था उससे मुझे ख्याल हुआ है कि संभवत: केवल यही आपत्ति की जायेगी कि यही परिपाटी अन्यत्र प्रचलित है, अत: इसे पत्र पर लिखना कठिन होगा और यह अनावश्यक भी है। इस पूर्व कल्पित आपत्ति पर मेरा निवेदन है कि अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् भी हमें आगे दासवत् नहीं होना चाहिये। नि:संदेह अब तक हम दासवत् ग्रेट ब्रिटेन तथा ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्य भागों की परिपाटी अथवा कार्य-प्रणाली का अनुसरण करते रहे हैं। किन्तु अब हमें अपने देश के लिये हम जो उचित समझें वही करने की स्वतंत्रता है। फिर हम अपने विचारों को विधान में ही क्यों न रखें? मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि आगे भी हम अन्यत्र प्रचलित परिपाटियों और उदाहरणों से क्यों चिपटे रहें और हम जो कानून बनाना चाहते हैं वही अपने विधान में क्यों न रखें? यह परिपाटियां अन्य देशों में इसलिये प्रचलित हैं कि वहां अलिखित विधान हैं। कम से कम जहां तक इन पहलुओं का संबंध है, हम उन्हें अस्पष्ट रूप में क्यों छोड़ें, जिससे कि सर्वोच्च न्यायालय में जाकर संघर्ष हो? जब हमें इन चीजों को अब विधान में रखने का अवसर मिला हुआ है तो इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। हम इसे स्पष्ट क्यों नहीं कह सकते? ऐसा करने में क्या हानि अथवा जोखिम है, मैं समझ नहीं पाता।

श्रीमान्, जैसा कि मैं कह चुका हूं मैंने अपने संशोधन पर संभाव्य आपत्ति की कल्पना कर ली है और मैं कहता हूं कि यह तो कोई आपत्ति ही नहीं है। हमें

तो बल्कि स्पष्टत: लिपिबद्ध कर देना चाहिये कि क्या परिपाटी है।

अब, श्रीमान्, माननीय डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन के बाद के भाग को निकाल देने के संबंध में, मेरे माननीय मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद का जो संशोधन है मैं उसका हार्दिक समर्थन करता हूं। मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन में इन शब्दों के निकाल देने का सुझाव है कि "किन्तु प्रधान द्वारा की हुई किसी बात की मान्यता पर इसलिये आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह बात इन हिदायतों से अन्यथा की गई है।" मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन में केवल उस चीज को हटाने का प्रयत्न किया गया है जिसके अनुसार माननीय डॉक्टर अम्बेडकर के संशोधन के प्रथम भाग में दी हुई वस्तु को द्वितीय भाग में छीन लेने का प्रयत्न किया गया है। यदि डॉक्टर अम्बेडकर के संशोधन का दूसरा भाग नहीं हो तो इसका कुछ आशय हो सकता है। अन्यथा यह संशोधन केवल कागजी संशोधन होगा, एक सदाशय मात्र होगा, जिसमें कोई तथ्य नहीं होगा और जिससे किसी की सहायता न होगी। अत: मैं मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन का हार्दिक समर्थन करता हूं।

अब, श्रीमान्, जहां तक मेरे संशोधन का संबंध है, अपना स्थान लेने से पूर्व मैं केवल इतना ही कहूंगा : कि जैसे कि मैं पहले ही कह चुका हूं, मुझे इस संशोधन पर संभावित आपत्तियों तथा उनके उत्तर की कल्पना करनी पड़ी। दूसरी संभव आपत्ति, जिसकी मैं अन्य खंडों के वाद-विवाद संबंधी अपने अनुभव के अनुसार कल्पना कर सकता हूं, वह यह है कि संशोधन सांप्रदायिक है। उस पर मेरा कहना है यह संशोधन पूर्णत: असांप्रदायिक तथा अराजनीतिक है और इसके पीछे कोई उद्देश्य निहित नहीं है। यह तो समस्या के केवल वैधानिक पहलू पर ही प्रभाव डालता है। केवल यह बात है कि यह ऐसे सदस्य द्वारा पेश किया जा रहा है जो कि मुस्लिम है। मैं यह इसलिये कह रहा हूं, श्रीमान्, कि कल मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि डॉक्टर अम्बेडकर ने मि. के.टी.एम. अहमद शाह के एक संशोधन पर बोलते हुए परिषद् से कहा था कि यह स्मरण रखना चाहिये कि यह संशोधन केवल मुस्लिमों द्वारा ही पेश किये जाते हैं तथा वे ही उनका समर्थन करते हैं। मैं पूछता हूं, श्रीमान्, क्या कोई संशोधन अथवा उसके

[बी. पोकर साहिब बहादुर]

पीछे युक्ति केवल इसीलिये बलहीन हो जाती है कि प्रस्तावक एक मुसलमान है अथवा ईसाई अथवा अनुसूचित जाति का अथवा अन्य किसी अल्पसंख्यक जाति का सदस्य है? मुझे यह देख कर बहुत खेद है कि एक ओर तो डॉक्टर अम्बेडकर ने इस विधान को शीघ्र पास कराने का अत्यन्त कठिन कार्य, इतना त्याग करके, अपने ऊपर ले लिया है वह देश की महान् सेवा है, पर मुझे ज़रा भी आशा नहीं थी कि वे ऐसे तर्कों की शरण लेंगे।

***उपाध्यक्ष:** कृपया अपने संशोधन तक ही सीमित रहिये। आप अपने मार्ग से बाहर जा रहे हैं।

***बी. पोकर साहिब बहादुर:** श्रीमान् मैं नहीं चाहता.....।

***उपाध्यक्ष:** कृपया मेरे सुझाव पर अमल करिये।

***बी. पोकर साहिब बहादुर:** मैं आपके सुझाव पर अमल कर रहा हूं। मैं यही कहना चाहता हूं, मैं केवल परिषद् से अनुरोध कर रहा हूं कि इस संशोधन के औचित्य अथवा मान्यता पर विचार करते समय, इस बात का ख्याल नहीं करना चाहिये कि इसका प्रस्तावक एक मुस्लिम है। श्रीमान्, मैं यह कहने का अधिकारी हूं कि अन्य मुस्लिम सदस्यों द्वारा प्रस्तावित संशोधनों के संबंध में जो कुछ हुआ है उसे ध्यान में रखते हुए.....।

***उपाध्यक्ष:** आपको इस पर अधिक बोलने की आवश्यकता नहीं है।

***बी. पोकर साहिब बहादुर:** यह ठीक है, श्रीमान्, मैं पूर्णत: सहमत हूं। मैं केवल उस बात को स्पष्ट करना चाहता था। बस। मैं केवल यही कहना चाहता था कि यदि अल्पसंख्यक जातियों के संशोधनों का विरोध करने के लिये इस तरह के तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं तो परिषद् में वाद-विवाद का स्तर नीचा हो जायेगा हमें इस स्तर को और उच्च रखने का प्रयत्न करना चाहिये।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): मैं एक बात जानना चाहता हूं, श्रीमान्, क्या मैं जान सकता हूं कि क्योंकि संशोधनों के प्रस्तावकों को

उत्तर देने का अधिकार नहीं होता और विशेषत: क्योंकि कुछ सदस्यों ने कुछ गंभीर बातें कही हैं और सदस्यों पर वैयक्तिक व्यंग भी किये हैं, अत: क्या वे उत्तर देने का अवसर आने पर उनका उत्तर दे सकते हैं, विशेषतया जब कि उन्हें व्यंगों का और परिषद् में किये गये अनुचित और असंगत कथनों का उत्तर देने का अवसर प्राप्त हो? समस्त संसदीय वाद-विवादों में किसी गंभीर संशोधन, किसी आशयपूर्ण संशोधन के प्रस्तावक को अंत में उत्तर देने का अधिकार है; किन्तु आपने, श्रीमान्, विपरीत नियम बना दिये जिनको हम शिरोधार्य करते हैं। किन्तु क्या हमें, अवसर मिलने पर और वह भी ऐसा अवसर मिलने पर जब कि सदस्य को अपने रास्ते से हटना न पड़े, उन कथनों का उत्तर देने का अधिकार नहीं है?

***उपाध्यक्ष:** मैं निस्संदेह किसी सदस्य को अनुचित आक्षेपों का उत्तर देने से नहीं रोकूंगा। इस विषय में मुझे अपने मन में सर्वथा कोई संदेह नहीं है। साथ ही साथ मैं अपनी शक्तियों का प्रयोग करके सदस्यों को समझाऊंगा कि वे उत्तर देते समय ऐसी भाषा का प्रयोग करें जो आवेशजनक न हो। इसी भावना से मैंने पोकर साहिब से वह प्रार्थना की थी। मेरे विचार में आप सहमत होंगे कि बिना अनावश्यक संघर्ष के कार्य संपादन करने का यही उपाय है।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब:** मैं आपके परामर्श को समझता हूं तथा उससे सहमत हूं, श्रीमान्, कि सदस्यों को कोई आवेशजनक भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिये। मुझे आशा है कि आपका यह परामर्श परिषद् के सब वर्गों के लिये है।

***उपाध्यक्ष:** क्या सभापति ने कभी कोई ऐसी बात कहने का अपराध किया है जो परिषद् के एक ही वर्ग के लिये हो? मेरे विचार में ऐसा कभी नहीं हुआ।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब:** इसी पर मैं आप से बल दिलवाना चाहता था, श्रीमान्, मुझे यह बाधा इसलिये डालनी पड़ी थी कि कुछ आवेशजनक बातें कही गई थीं। वे सर्वथा अकारण थीं। अत: मैं आपके इस कथन के लिये कृतज्ञ हूं कि आपका परामर्श परिषद् के केवल एक ही वर्ग के लिये नहीं है, प्रत्युत सब वर्गों के लिये है। बाधा करने के लिये मैं आपसे क्षमा-याचना करता हूं।

***उपाध्यक्षः** पोकर साहिब, कृपया अपनी वक्तृता जारी रखिये।

***बी. पोकर साहिब बहादुरः** श्रीमान्, मैं आपके परामर्श का सादर पालन करूंगा। मैं न आवेशजनक बातें ही कहना चाहता हूं और न इस विषय पर अधिक बोलना ही चाहता हूं। मैं जो कुछ कहना चाहता था, पहले ही कह चुका हूं कि कोई सदस्य किसी जाति विशेष का है यह बात ऐसा कहने का आधार नहीं बननी चाहिये कि कोई युक्ति विशेष का कुछ मूल्य नहीं है अथवा वह अमान्य है क्योंकि किसी जाति विशेष के सदस्य ने कही है। मैं यह बात विशेषतः इस कारण कहता हूं कि परिषद् के प्रत्येक सदस्य का यह कर्त्तव्य है कि वाद-विवाद को उच्च स्तर पर रखे। हमें उस निम्न स्तर पर नहीं जाना चाहिये, जहां कि हम ऐसे कथनों से पहुंच जायेंगे। मैं इस विषय पर और अधिक नहीं कहना चाहता। श्रीमान्, मैं इस संशोधन को पेश करता हूं और यह बात परिषद् पर छोड़ देता हूं कि वह इस प्रश्न का प्रसंग न लेते हुए कि यह मुस्लिम द्वारा पेश किया गया है इस पर विचार करे।

(संशोधन संख्या 1317 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 1319, प्रोफेसर शाह, क्या आप चाहते हैं कि इस पर मत लिये जायें?

**प्रोफेसर के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): हां, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर एक संशोधन है। मैं उसे पेश करने की अनुमति देता हूं। सूची 5 का संख्या 48 ।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं चाहता हूं कि इस पर भी मत लिये जायें।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 1320 जो मि. ताहिर और मि. जाफ़र इमाम के नामों से है। क्या आप चाहते हैं, कि इस पर मत लिये जायें।

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): हां, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** इस पर एक संशोधन है। सूची 5 का संख्या 49 ।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं चाहता हूं कि इस पर भी मत लिये जाने चाहियें।

(संशोधन संख्या 1318 और 1321 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1322 जो श्री मिहिर लाल चट्टोपाध्याय के नाम पर है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्। यह अच्छा संशोधन है किन्तु यह कोरा शाब्दिक है।

***उपाध्यक्ष:** यह अच्छा संशोधन है चाहे यह शाब्दिक है। अत: इसे पेश करने की अनुमति दी जाती है।

***श्री मिहिर लाल चट्टोपाध्याय** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 62 के खण्ड (3) में, 'Council' शब्द के पश्चात् 'of Ministers' ये शब्द रख दिये जायें।"

स्पष्ट है कि यह साधारण संशोधन है किन्तु मैं इसे अत्यंत आवश्यक समझता हूं। Council शब्द का विधान के मसौदे में भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न आशय व्यक्त करने के लिये प्रयोग किया गया है। यह वांछनीय है कि इस खंड में कुछ भी अस्पष्ट अथवा संदेहास्पद नहीं छोड़ना चाहिये। यह ठीक-ठीक और निश्चित होना चाहिये। मुझे आशा है कि डॉक्टर अम्बेडकर और इस परिषद् को इसके स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

(संशोधन संख्या 1323 और 1324 पेश नहीं किये गये।)

***श्री मोहम्मद ताहिर:** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 62 के खंड (5) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:

'(5) A Minister shall at the time of his appointment as such, be a member of the Parliament.'

[(5) कोई मंत्री अपने पद पर नियुक्त होने के समय संसद् का सदस्य होगा।]

[श्री मोहम्मद ताहिर]

अपने संशोधन के संबंध में कुछ शब्द निवेदन करने से पूर्व मैं परिषद् का ध्यान अनुच्छेद के विद्यमान खंड की ओर आकृष्ट करता हूं। खंड (5) में लिखा है:

"कोई मंत्री, जो छ: निरन्तर मासों की किसी अवधि तक संसद् के किसी आगार का सदस्य न रहे, उस अवधि के पश्चात् मंत्री न रहेगा।"

इससे पता चलता है कि यदि कोई व्यक्ति संसद् का सदस्य न भी हो तब भी वह मंत्री नियुक्त किया जा सकता है। इस संबंध में मेरा निवेदन है कि यह जनतन्त्र की भावना के सर्वथा विरुद्ध है कि ऐसे व्यक्ति को मंत्री बनाया जाये जिसे कि लोगों ने चुना नहीं है। जब संसद् का निर्माण होगा तब यह स्पष्ट है कि वह 300 से भी अधिक सदस्यों का आगार होगा और वे सब सदस्य देश के लोगों द्वारा निर्वाचित होंगे, और कोई कारण नहीं है कि बाहर के किसी व्यक्ति को जो कि संसद् का सदस्य न हो मंत्री नियुक्त किया जाये। यह कल्पना नहीं की जा सकती कि संसद् के 300-400 सदस्यों में से प्रधान अथवा दल के नेता को मंत्रिमंडल में लेने योग्य व्यक्ति नहीं मिल सकेगा और उसे ऐसा मंत्री चुनना पड़ेगा जो कि संसद् का सदस्य न हो। मेरे विचार में यह जनतंत्र की भावना के विरुद्ध है, वरन् यह तो जनतंत्र के मूल पर ही आघात है कि देश द्वारा निर्वाचित संसद् के सदस्यों में से मंत्री को न चुना जाये। अत: मेरा निवेदन है कि इस खंड के स्थान पर मेरा संशोधन रख देना चाहिये।

इसके बाद मेरे माननीय मित्र डॉक्टर अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन, अर्थात् संख्या 1329 पर मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। इस विषय पर मैंने एक संशोधन संख्या 1312 की सूचना दी थी, जो इस प्रकार है।

" 'In choosing his Ministers the President shall be generally guided by the instructions set out in Schedule IV-A.'

[अपने मंत्रियों को चुनने में प्रधान साधारणतया अनुसूची 4 (क) में दी हुई हिदायतों के अनुसार चलेगा।]

अब मेरे मित्र ने ऐसा ही संशोधन रखा है, किन्तु वह बिल्कुल वैसा नहीं है, और उन्होंने अनुसूची 3 (क) को चुना है। मैं कहना चाहता हूं कि अनुसूची 3 (क) उचित स्थान नहीं है, क्योंकि विद्यमान अनुसूचियों में हम देखते हैं कि अनुसूची 4 में शासकों (गवर्नरों) के लिये हिदायतें हैं, और अनुसूची 3 में घोषणाओं के प्रपत्र हैं। अत: मेरा निवेदन है कि यदि इस अनुसूची को उचित स्थान में रखना है तो अनुसूची 4 अथवा 4 (क) ही उचित हो सकता है। इसे अनुसूची 3 (क) का स्थान नहीं दिया जा सकता। इसके अतिरिक्त, मेरे माननीय मित्र द्वारा प्रस्तावित संशोधन का जो अंतिम भाग है वह तो प्रधान को दिये गये निर्देशों का निराकरण ही है; उसमें लिखा है कि "किन्तु प्रधान द्वारा की हुई किसी बात की मान्यता पर इसीलिये आपत्ति न की जायेगी कि वह बात इन हिदायतों से अन्यथा की गई है।" इस अनुसूची के पीछे भावना यह है कि प्रधान को, मंत्री चुनने में अल्पसंख्यकों को उचित प्रतिनिधित्व देने का ख्याल रखना चाहिये। मेरे माननीय मित्र डॉक्टर अम्बेडकर ने जो आदेश रखा है उससे तो मुझे पता लगता है कि यदि संशोधन में उस भाग को रखा जायेगा तो अल्पसंख्यकों को उचित प्रतिनिधित्व देने का जो विचार है वह पूरा ही नहीं हो सकता। वास्तव में मेरे माननीय मित्र ने प्रधान को स्वविवेक की शक्ति देने में बहुत उदारता दिखाई है, जब कि कल अपनी वक्तृता में उन्होंने परिषद् को स्पष्ट कहा था कि प्रधान को कोई स्वविवेक की शक्ति नहीं दी जानी चाहिये, और परिषद् ने इसे स्वीकार कर लिया था। इस संशोधन द्वारा, दूसरे शब्दों में, उन्होंने प्रधान को स्वविवेक की शक्ति दे दी है। मेरा निवेदन यह है प्रधान को हिदायतें बहुत सीधी और स्पष्ट होनी चाहियें जैसे कि मैंने अपने संशोधन में रखी हैं और मुझे आशा है कि मेरे माननीय मित्र डॉक्टर अम्बेडकर इस पर विचार करेंगे और कृपया अपने संशोधन को तदनुसार संशोधित कर लेंगे, जिससे कि हिदायतों की सूची अत्यंत सीधी और स्पष्ट हो।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 62 के खंड (5) में 'छ: निरंतर मासों की किसी अवधि तक' इन शब्दों के स्थान पर 'अपनी नियुक्ति के पश्चात् छ: निरंतर मासों की किसी अवधि तक' ये शब्द रख दिये जायें।"

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

मैं समझता हूं खण्ड का यही अभिप्राय होगा। मेरे विचार में तो यह अभिप्राय नहीं हो सकता कि विदेश चले जाने अथवा ऐसा काम करने के कारण जिससे कि वह परिषद् का सदस्य न रह सके, वह निर्योग्य हो जाये अथवा मंत्रिपद पर न रहे। इस खंड का यही अभिप्राय होगा कि यदि कोई मंत्री, मंत्री नियुक्त होने के बाद निरंतर छः मास तक सदस्य न हो, वह पहले ही न चुना गया हो अथवा बाद में भी आगार का सदस्य चुना न जा सका हो, तो वह मंत्री नहीं रहना चाहिये। यह तो, श्रीमान्, मंत्री के सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का परिणाम ही है, जिसके अनुसार प्रत्येक मंत्री को संसद् के किसी न किसी आगार का सदस्य होना चाहिये। अतः मैं समझता हूं कि इस संशोधन के समर्थन में कोई लम्बी-चौड़ी युक्तियों को पेश करना अपेक्षित नहीं है। मैं इसे परिषद् में पेश करता हूं।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर एक संशोधन, सूची 5 का संख्या 71 है जो श्री कृष्णमाचारी के नाम से है। क्या वे इसे पेश कर रहे हैं?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> "कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 1326 में 'के पश्चात्' इन शब्दों (जिन शब्दों के रखने का सुझाव उनमें) के स्थान पर 'कि तारीख से' ये शब्द रख दिये जायें।"

यदि यह संशोधन स्वीकार हो जाता है तो, यह इस प्रकार हो जायेगा:

'अपनी नियुक्ति की तारीख से, छः निरंतर मासों की अवधि तक' इत्यादि। यह बहुत छोटा-सा संशोधन है। इससे आशय बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है और पता लग जाता है कि छः मास कब आरंभ होंगे। मुझे भरोसा है कि परिषद् इसे स्वीकार कर लेगी।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): क्या मैं अपने मित्र श्री कृष्णमाचारी को सुझाव दूं कि उनके संशोधन के आशय और अर्थ के अनुकूल ही 'any' शब्द के स्थान पर 'a' शब्द रखा दिया जाना चाहिये। any शब्द से इस प्रसंग में कोई अर्थ नहीं निकलता।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** व्यक्तिगत रूप में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, यद्यपि मेरे विचार से इससे कोई आशय में अंतर नहीं होगा।

(संशोधन संख्या 1327 पेश नहीं किया गया।)

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 62 के खंड (5) में 'संसद् के किसी आगार' इन शब्दों के स्थान पर 'लोक सभा' ये शब्द रख दिये जायें।"

इस संशोधन को मैंने अपने दूसरे संशोधन द्वारा संशोधित कर दिया है जो कि सूची 5 में सख्या 72 है। मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 1328 के स्थान पर निम्न संशोधन रख दिया जाये:

'कि अनुच्छेद 62 के खंड 5 में 'सदस्य न रहे' इन शब्दों के स्थान पर "निर्वाचित सदस्य न रहे" ये शब्द रख दिये जायें'।"

यह एक आधारभूत संशोधन है। हमने विधान में व्यवस्था की है कि राज्य परिषद् में 12 सदस्य मनोनीत किये जायेंगे। परिषद् में 12 सदस्य नियुक्त किये जायेंगे और निम्न परिषद् में भी आंग्ल-भारतीय मनोनीत होंगे विद्यमान रूप में खंड (5) के अनुसार निर्वाचकों द्वारा न चुने हुए लोग भी सरकार के स्थायी मंत्री बन सकेंगे। यह जनतंत्र के तरीकों के सर्वथा विरुद्ध है। पहले मेरी इच्छा थी कि केवल निम्न सभा के सदस्य ही, जो कि सामान्य निर्वाचकों द्वारा चुने गये हों, मंत्री नियुक्त होने के योग्य होंगे, किन्तु कई सदस्यों की सम्मति जानने के पश्चात् मैंने सोचा कि मेरा संशोधन इतना उग्र नहीं होना चाहिये, किन्तु मेरे विचार में किसी व्यक्ति को मंत्री नियुक्त नहीं करना चाहिये जब तक कि उसमें निर्वाचकों का विश्वास न हो। अत: मैं चाहता हूं कि 'सदस्य न हो' के स्थान पर 'निर्वाचित

[प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना]

सदस्य न हो' ये शब्द होने चाहिये। आपको स्मरण होगा कि, पहले, प्रधान के निर्वाचन पर वाद-विवाद करते समय हमने व्यवस्था की थी कि केवल निर्वाचित सदस्यों को ही मत देने का अधिकार होना चाहिये। अब, यदि मनोनीत सदस्य प्रधान के निर्वाचन में मत देने के योग्य नहीं समझे जाते हैं, यदि हम उन्हें इतना भी उत्तरदायित्व नहीं सौंप सकते, तो निस्संदेह भारत सरकार का मंत्री होना तो इससे कहीं अधिक उत्तरदायित्व का पद है। यही अवस्था किसी प्रांत के मंत्रिमंडल के विषय में होगी। अतः, यदि मनोनीत सदस्य प्रधान के निर्वाचन में मत देने के योग्य नहीं हैं तो वे किसी सरकार के मंत्री होने के योग्य भी नहीं हैं। प्रत्येक मंत्री को, जो कि मंत्रिमंडल का सदस्य हो खुले चुनाव में आना चाहिये और यदि वह चुना जाये, तभी उसे मंत्री नियुक्त किया जाना चाहिये। अन्यथा तो यही होगा। कई प्रांतों में उच्च परिषदें होंगी और वहां मनोनीत सदस्य होंगे, और यदि ये मनोनीत सदस्य मंत्री हो सकते हों तो मुझे विश्वास है कि ऐसा भी अवसर आ सकता है जब सारी मंत्रिपरिषद् में शायद प्रधान मंत्री के अतिरिक्त शेष सब मनोनीत सदस्य ही होंगे। वास्तव में वह अत्यन्त असाधारण स्थिति होगी। वह तो जनतंत्र के सर्वथा प्रतिकूल होगा। अतः मैं चाहता हूं कि इस प्रश्न को उचित रूपेण समझा जाये। कदाचित् यही मेरे माननीय डॉक्टर अम्बेडकर का अभिप्राय था और उनका यही आशय था कि यदि कोई मंत्री छः मास के भीतर ही किसी न किसी आगार का सदस्य नहीं बनेगा तो वह मंत्री नहीं रहेगा। इससे उनका निस्संदेह यही आशय था कि वह चुना जाना चाहिये और यदि यही उनका आशय था तो मैं उनकी इस बात का अत्यंत स्वागत करूंगा, और मैं आशा करता हूं कि वे मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेंगे मुझे आशा है कि इस प्रकार से वे ऐसा आयोजन करेंगे कि सरकार पर ऐसा दोषारोपण न हो सके कि हमारे विधान में ऐसे मंत्रिमंडल बन सकते हैं जिनमें प्रधान मंत्री के अतिरिक्त सब मंत्री मनोनीत हों। विशेषतया राज्यों के विधान-मंडलों में, जैसे कि इस समय प्रावहित है, उच्च परिषदों में लगभग दो-तिहाई सदस्य मनोनीत होंगे, और यदि कोई प्रधान मंत्री केवल उन्हीं सदस्यों को नियुक्त करने की सोच ले, तो सारा मंत्रिमंडल एक प्रकार का मनोनीत मंत्रिमंडल हो जायेगा और वह निस्संदेह जनतंत्र के सिद्धान्तों के सर्वथा विरुद्ध है। इसी प्रकार केन्द्रीय संसद् में भी प्रधान जिन 12 सदस्यों को मनोनीत करे, वे ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं जिनमें से अधिकांश मंत्रिमंडल में

नियुक्त हो जायें। हो सकता है ऐसी बात हो ही नहीं, किन्तु यह सर्वथा संभव है और हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि कोई प्रधान मंत्री अपनी शक्ति का दुरुपयोग न होने दे सके। अतः मेरे विचार में 'निर्वाचित सदस्य' इस शब्द के जोड़ देने से सब बातें नितांत स्पष्ट हो जायेंगी। मुझे आशा है कि डॉक्टर अम्बेडकर इस संविधान को स्वीकार कर लेंगे। श्रीमान् मैं इसे पेश करता हूं।

(संशोधन संख्या 1330 तथा 1331 पेश नहीं किये गये।)

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 62 के खंड (6) के पश्चात्, निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये:

'(7) Every Minister shall, before he enters upon the functions and responsibilities of his office, make a declaration and take steps in regard to any right, title, corresponding to those provided in this Constitution for the President and Vice-President, and shall take an oath—or make a solemn declaration—in the presence of the President and of his colleagues in the following form.' "

[(7) प्रत्येक मंत्री, अपने पद के प्रकार्यों तथा उत्तरदायित्वों को ग्रहण करने से पूर्व, किसी अधिकार, स्वत्व के विषय में ऐसी घोषणा करेगा तथा ऐसे कार्य करेगा, जैसे कि इस विधान में प्रधान तथा उप-प्रधान के लिये प्रावहित हैं, और निम्नलिखित प्रपत्र के अनुसार प्रधान तथा अपने साथियों की उपस्थिति में शपथ लेगा अथवा गम्भीर निश्चयोक्ति करेगा।]

श्रीमान्, मैं देखता हूं कि प्रपत्र (फार्म) यहां छपा हुआ नहीं है। मैं नहीं जानता आया कि यह कोई पृथक् चिट पर था जो मैंने दी हो, जो रह गई हो या भुला दी गई हो, या खो गई हो, किन्तु जो शपथ मैंने सुझाई थी वह छपी नहीं है। श्रीमान्, मुझे आशा है कि इस पर कोई आपत्ति नहीं होगी।

***उपाध्यक्षः** इस पर आपत्ति नहीं होगी। किन्तु साथ ही, मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि प्रपत्र कार्यालय में प्राप्त नहीं हुआ था।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** मैं भूल गया हूंगा। मैं कार्यालय को दोष नहीं दे रहा हूं। प्रपत्र तो वही है जो मैं पहले एक बार पढ़ चुका हूं, श्रीमान्। मेरे पास वह पत्र यहां नहीं है, किन्तु मैं जबानी बोल सकता हूं।

***उपाध्यक्षः** आप अपनी वक्तृता को जारी रख सकते हैं।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** श्रीमान् यह ऐसा संशोधन है जिस पर मैं सिद्धान्ततः विभिन्न दृष्टिकोणों से बल देता रहा हूं, कभी प्रधान के विषय में तो कभी मंत्री के लिये, तो कभी प्रधान मंत्री के बारे में। मेरे लिये एक अत्यन्त दुःखद तथा आश्चर्यजनक बात हुई कि कल जब कि मसौदा-समिति के अध्यक्ष ने मेरे एक संशोधन का अत्यंत संतोषजनक रूप से तर्कसंगत उत्तर दिया था, किन्तु इस बात विशेष का उन्होंने उत्तर नहीं दिया; मैं नहीं जानता कि भूल से इसका उत्तर देना रह गया था अथवा उन्होंने जान बूझ कर चुप्पी साध ली थी। मैंने ध्यान करके उन्हें स्मरण कराया कि प्रधान के विषय में इसी प्रकार के संशोधन पर वाद-विवाद के समय उन्होंने मुझे आश्वासन दिया था, या कम से कम, उन्होंने कुछ वचन सा दिया था कि यदि कभी और जब भी यह विषय मंत्रियों के बारे में, जिन्हें विधान के अंतर्गत वास्तविक प्रभावी कार्यपालिका शक्ति होगी, उठ खड़ा होगा, तब वे इस पर विचार कर सकते हैं। मैं कहता हूं, श्रीमान्, कि यह अत्यधिक आश्चर्यजनक बात थी कि मसौदे के ऐसे सतर्क तथा श्रमशील समर्थक, स्पष्टतः स्मरण कराये जाने पर भी चुप रहे, और जब एक माननीय सदस्य ने वास्तव में पूछ लिया कि उस तर्क विशेष का कुछ उत्तर है क्या, तब तो उनकी चुप्पी षड्यन्त्रयुक्त सी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि या तो मसौदा-समिति के माननीय अध्यक्ष के पास कोई उत्तर नहीं है या वे उत्तर देना नहीं चाहते, या उन्होंने ऐसा वचन दे दिया है जो ऐसा परेशानी करने वाला है कि वे उसके विषय में स्मरण दिलाना भी पसंद नहीं करते।

चाहे यह कुछ भी हो, श्रीमान्, मैं इस परिषद् के समक्ष निवेदन करना चाहता हूं कि पत्रों में भी इस विशेष बात की पूर्णतः उपेक्षा कर दी गई है, चाहे ऐसा भूल से ही हुआ हो, जैसे कि यह प्रपत्र यहां नहीं छपा हुआ है,—हां, यह तो मेरी त्रुटि है,—अन्यथा किसी अन्य कारण से इसकी उपेक्षा की गई है इस अत्यन्त आवश्यक बात को जो कि मेरे मतानुसार हमारी सरकार के कार्यवाहन में उसकी शुद्धता, ईमानदारी, सम्मानीयता की प्रतिभूति होती उसे चुप्पी के विशेष षड्यन्त्र द्वारा कुचल दिया गया है। मुझे विश्वास है कि यह ऐसा विषय है, कम से कम जब हम मंत्रियों की बात करते हैं उस सिलसिले में, कि मसौदा बनाने वाला

इसको ध्यान में रखेगा। यह कोई अर्धविराम अथवा विराम बदलने का प्रश्न नहीं है; यह मंत्रिपरिषद् के स्थान पर मंत्रिगण रखने का मामला नहीं है; यह तो ऐसा मामला है, श्रीमान्, जो कि शासन तंत्र की वास्तविक कार्य व्यवस्था के लिये मूलभूत है; अत: श्रीमान्, मुझे आशा है कि जिन्हें इस विधान के निर्माण करने, गढ़ने तथा इसका रूप निश्चित करने, इसे उपयुक्त शब्दों में ढालने और इसे समुचित कार्य योग्य रूप देने की शक्ति है, वे सराहना करेंगे कि किस इच्छा से इस सिद्धान्त को विभिन्न दृष्टिकोणों से उनके समक्ष रखा गया है, जिससे कि वे यह समझ सकें कि हमें अपने विधान में ऐसा कोई बन्धन रखना अपेक्षित है।

श्रीमान्, मुझे कल एक उच्चाधिकारी द्वारा यह परामर्श दिया गया था कि यदि मैं प्रत्येक खंड पर संशोधन रखने के इस अनावश्यक कार्य को नहीं पकड़ता, और यदि मैं कुछ ही सिद्धांतों पर ध्यान से काम करता, तो मैं अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता था। श्रीमान्, मैं अपने संशोधनों की उपयोगिता को इस मापदंड से नहीं मापता कि उनमें से कितने स्वीकार किये गये हैं। मैं अपने संशोधनों की उपयोगिता को इसी पैमाने से मापता हूं कि उनसे कितनी विचारशीलता, रुचि अथवा विरोध का सृजन हुआ है; और इसीलिये वे स्वीकृत हों या न हों, यदि माननीय सदस्यों को, जिनमें भारत सरकार के मंत्री भी हैं, इस विषय पर उत्तेजना से सोचना पड़ जाये; और उस प्रकार की बातों का विशेषत: उत्तर देना पड़ जाये, तो मैं नितान्त सन्तुष्ट हो जाता हूं। किन्तु, यह तो, श्रीमान्, ऐसा मामला है, जिस पर ऐसा प्रतीत होता है, कि मैंने, जानबूझ कर अथवा अनजाने में, ऐसे आदरणीय तथा उच्च परामर्श को स्वीकार तथा कार्यान्वित कर लिया है; और ऐसा प्रतीत होता है कि इस सिद्धान्त पर ही विशेषत: बल दिया है। इस पर मैं बार-बार विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रयास करता रहा हूं। फिर भी, क्या परिणाम हुआ है? मसौदा बनाने वाले तथा उसे स्वीकार करवाने वाले गिरोह को अपने दृष्टिकोण से सहमत करने में असफल ही तो रहा। उनसे समुचित उत्तर की कोई संभावना नहीं है। मैं जो बात रख रहा हूं उसकी वांछनीयता असंदिग्ध है। किन्तु फिर भी इतना ही नहीं है कि मुझे उत्तर नहीं दिया जाता है, वरन् मैं जो भी बात कहता हूं उसे पत्रों में भी दबा दिया जाता है तथा प्रकाशित नहीं किया जाता। यह चुप्पी का षड्यन्त्र, कुछ भी हो, विचित्र है। मुझे विश्वास है कि इस अवसर पर चुप्पी

[प्रो. के.टी. शाह]

तोड़ दी जायेगी; मुझे भरोसा है कि इस अवसर पर मुझे ऐसा उत्तर दिया जायेगा जिसे मुंहतोड़ उत्तर कहा जाता है। और मुझे विश्वास है कि, कम से कम इस बार, उत्तर ऐसा मुंहतोड़ होगा कि मैं कम से कम इस परिषद् में तो, इस प्रकार का संशोधन रखना बंद ही कर दूंगा।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर एक संशोधन है। वह सूची संख्या 4 का संख्या 51 है तथा श्री एच.वी. कामत के नाम से है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधन संख्या 1332 के स्थान पर जो कि मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह ने अभी-अभी पेश किया है, निम्न संशोधन रख दिया जाये:

"कि अनुच्छेद 62 के खंड (6) के पश्चात्, निम्न नया खंड रख दिया जाये:

'(7) Every Minister including the Prime Minister shall, before he enters upon his office, make a full disclosure to Parliament of any interest, right, share, property or title he may have in any enterprise, business or trade, directly owned or controlled by the State, or which is in any way aided, protected or subsidized by the State; and Parliament may deal with the matter in such manner as it may, in the circumstances, deem necessary or appropriate.'"

[(7) प्रत्येक मंत्री, जिसमें प्रधान मंत्री भी शामिल है, अपना पद ग्रहण करने से पूर्व, संसद को अपने किसी हित, स्वत्व, अंश, सम्पत्ति अथवा अधिकार का ब्यौरा दे देगा, जो कि उसे किसी ऐसे कार्य, व्यापार या वाणिज्य में हो, जिस पर राज्य का नियन्त्रण हो या जिसे किसी प्रकार राज्य से सहायता, रक्षण अथवा आर्थिक मदद मिलती हो; और संसद् उस विषय पर ऐसे तरीके से निर्णय करेगी जोकि वह, उन परिस्थितियों में आवश्यक अथवा उपयुक्त समझे।]

श्रीमान्, मेरा संशोधन उतनी दूर नहीं जाता, जितना कि मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह का संशोधन जाता है। मैं तो इस संशोधन द्वारा यही चाहता

हूं कि मंत्री अपना पद ग्रहण करने से पूर्व संसद् को अपने किसी हित, अंश अथवा अधिकार का ब्यौरा दे देगा, जो कि उसे किसी व्यापार, या कार्य में हो, जिस पर कि सरकार का नियंत्रण हो या जिसे किसी प्रकार राज्य से सहायता, रक्षण अथवा आर्थिक मदद मिलती हो और मैं इसे संसद् पर छोड़ देता हूं कि इस विषय में जैसा भी वह कर सके निर्णय करे। संसद् उसे कह सकती है कि वे अधिकार आदि सरकार को बेच दिये जायें; संसद् उसे कह सकती है कि वह उसे अपनी ओर से प्रन्यास रूप में प्रबंध करने के हेतु सौंप दे अथवा रिजर्व बैंक उसे सुरक्षित प्रन्यास के रूप में धारण कर सकता है। मैं संसद् पर छोड़ता हूं, जो कि सार्वभौम विधान-मंडल है कि वह इस मामले को निबटाने के लिये परिस्थितियों के अनुसार सर्वोत्तम उपाय निश्चित करे।

श्रीमान्, मैं आपकी अनुमति से फैक्ट्री कानून में से, जिसकी कि मैंने पहले भी एक बार चर्चा की थी, कुछ पढ़ कर सुनाना चाहता हूं। यह कानून व्यवस्थापिका सभा के गत अधिवेशन में पास हुआ था। इस 1948 के कानून में एक धारा धारा 8 है जिसमें फैक्ट्री इंस्पैक्टरों की नियुक्ति का बन्धान है। और उस धारा के एक खंड में यह लिखा है:

> "No person shall be appointed as Factory Inspector or having been so appointed shall continue to hold office, who is or becomes directly or indirectly interested in the factory or in any process or business carried on therein, or in any patent or machinery connected therewith."
>
> (कोई ऐसा व्यक्ति फैक्ट्री इन्स्पैक्टर नहीं बनाया जायेगा और यदि नियुक्त हो चुका होगा तो उस पद पर नहीं रहेगा, जिसका कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से फैक्ट्री में अथवा उसके किसी व्यापार अथवा उपक्रम में अथवा उससे संबंधित किसी मशीन या पेटेन्ट में, स्वार्थ हो।)

श्रीमान्, एक और भी धारा है, धारा 10, जिसमें फैक्ट्री डाक्टरों, प्रमाणकर्ता सर्जनों (शल्यशास्त्रियों) की नियुक्ति के विषय में बन्धान हैं। उसमें भी यह बन्धान है कि:

> *"Certifying Surgeon.* No persons shall be appointed to be or authorised to exercise the powers of a Certifying

[श्री एच.वी. कामत]

Surgeon, or having been so appointed or authorised, continue to exercise such powers, who is or becomes an occupier of a factory or is or becomes directly or indirectly interested therein or in any process or business carried on therein or in any patent or machinery connected therewith or is otherwise in the employ of the factory.' "

(*प्रमाणकर्ता सर्जन:*—किसी ऐसे व्यक्ति को प्रमाणकर्ता सर्जन नियुक्त न किया जायेगा और न प्रमाणकर्ता सर्जन की शक्तियों के निर्वाहन का अधिकार ही दिया जायेगा, अथवा इस प्रकार नियुक्त हो जाने अथवा अधिकार दिये जाने के बाद, उन शक्तियों का निर्वाहन करने दिया जायेगा, जो कि फैक्ट्री का अधिकारी बन गया हो या जिसका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से फैक्ट्री में अथवा उसके किसी व्यापार अथवा उपक्रम में अथवा उससे संबंधित किसी मशीन या पेटेन्ट में स्वार्थ हो, अथवा जो अन्यथा फैक्ट्री की सेवा में हो।)

अब यह स्पष्ट है, यह करकंगन के समान प्रत्यक्ष है, कि किसी फैक्ट्री या सम्बद्ध व्यापार से किसी फैक्ट्री इंस्पैक्टर या प्रमाणकर्ता सर्जन का जितना संबंध होता है, उससे अधिक गहरा संबंध राज्य के मंत्री का इन बातों से होता है। इस संबंध में अच्छाई या बुराई की अधिक संभावना के बनिस्बत इन्स्पैक्टर और फैक्टरी के संबंध में जो चीज एक के लिये अच्छी है वह दूसरे के लिये भी अच्छी होनी चाहिये। यदि यह सिद्धान्त बड़े पैमाने पर लागू किया जाये तो मेरी समझ में नहीं आता कि फैक्टरी कानून में फैक्टरी इन्स्पैक्टर तथा प्रमाणकर्ता सर्जन के लिये जो सिद्धान्त रखा गया है वह राज्य के मंत्रियों पर क्यों न लागू किया जाये।

श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं परिषद् को स्मरण कराना चाहता हूं कि दो दिन पूर्व अनुच्छेद 47 पर वाद-विवाद के समय डॉ. अम्बेडकर ने क्या कहा था। मुझे आशा है कि मुझे आपकी, इस बात के लिये भी अनुमति है कि मैं परिषद् को तथा उन्हें भी यह स्मरण कराऊं कि उन्होंने उस वाद-विवाद का उत्तर देते समय किन शब्दों का प्रयोग किया था। प्रधान के विषय में जब ऐसा ही प्रावधान

रखने का संशोधन रखा गया था जिसमें कहा गया था कि राज्य द्वारा नियन्त्रित, सहायता प्राप्त अथवा राज्य के स्वामित्व में स्थित किसी व्यापार अथवा वाणिज्य में उसको जो अधिकार हित, अंश अथवा स्वामित्व है, उन सबकी प्रधान संसद् के समक्ष घोषणा कर देगा और उनसे अपने को अलग कर लेगा, तब उस प्रावधान की चर्चा करते हुए डॉक्टर अम्बेडकर ने कहा था कि:—"यदि ऐसा प्रावधान अपेक्षित ही हो, तो वह प्रधान मंत्री तथा राज्य के अन्य मंत्रियों के संबंध में रखना चाहिये, क्योंकि राज्य के प्रशासन का पूर्ण नियंत्रण उन्हीं के हाथों में होता है। यदि भारत सरकार के अंतर्गत किसी को अपना वैभव बढ़ाने का अवसर प्राप्त है तो वह या तो प्रधान मंत्री को या राज्य के मंत्रियों को ही प्राप्त है और ऐसा प्रावधान"—उनके शब्दों पर ध्यान दीजिये—"ऐसा प्रावधान प्रधान के लिये, उनके लिये होना चाहिये"—उन्होंने यह नहीं कहा कि 'हो सकता है' उन्होंने कहा कि 'होना चाहिये'। मुझे आशा है कि डॉक्टर अम्बेडकर इस संशोधन विशेष का उत्तर अत्यधिक विचार के पश्चात् तथा विस्तार से देंगे। मुझे तो आशा नहीं है कि उन्हें इस उलझन से निकलने का कोई मार्ग मिलेगा, जो कि पिछले अवसर पर उन्हीं द्वारा प्रयुक्त शब्दों तथा भाषा से पैदा हो गई है। आशा है कि वे अपने शब्दों पर स्थिर रहेंगे जो उन्होंने दो ही दिन पहले कहे थे, वर्ष दो वर्ष पूर्व नहीं; और यह भी आशा है कि इन्हीं दो दिनों में अपने विचार बदल लेने के लिये उन पर जोर नहीं डाल दिया गया होगा, न उन्हें ऐसा करने का मौका या अवसर ही मिला होगा और न उन्हें ऐसा करने के लिये समझाया ही गया होगा। परिषद् को और डॉक्टर अम्बेडकर को यह स्मरण कराने के पश्चात् कि उन्होंने दो दिन पूर्व क्या कहा था, मैं नहीं समझता कि मुझे और कुछ कहना शेष है, किन्तु मेरा ख्याल है कि डॉक्टर अम्बेडकर अपने विचार पर दृढ़ रहने में हिचकिचायेंगे नहीं। वह कोई पुराना नहीं, वरन् अत्यन्त अर्वाचीन विचार है, और आशा है वे इस संशोधन को स्वीकार कर लेंगे।

(संशोधन संख्या 1333, 1334 और 1335 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** अब इस अनुच्छेद पर व्यापक वाद-विवाद हो सकता है।

[उपाध्यक्ष]

मेरा सुझाव यह है कि अगले दो संशोधन संख्या 1336 और 1337 भी ऐसे ही विषय से संबंधित हैं और उन पर यहीं विचार कर लिया जाये। प्रोफेसर शाह, क्या आप कृपया अपने संशोधन संख्या 1336 को अभी पेश करेंगे?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** वह तो एक नया अनुच्छेद है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** यह नया अनुच्छेद है; यह संशोधन नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** जैसा आप ठीक समझें।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** मैं तो आपकी आज्ञा पर हूं। यदि आप मुझे अभी इसे पेश करने के लिये कहें तो मैं पेश कर दूंगा।

***उपाध्यक्ष:** मैंने सोचा था कि व्यापक वाद-विवाद साथ ही हो सकता है। जैसा कि माननीय सदस्यों को पता ही है आज हमें अपने मुसलमान भाइयों को जुम्में की नमाज पढ़ने की सुविधा देने के लिये परिषद् को एक बजे स्थगित कर देना है। यदि इस पर कोई आपत्ति न हो तो मैं चाहता हूं कि प्रोफेसर के.टी. शाह अपना संशोधन अभी पेश कर दें।

***श्री अमिय कुमार घोष** (बिहार : जनरल): श्रीमान् यह एक नया अनुच्छेद है। हम पहले अनुच्छेद 62 को समाप्त कर के, तत्पश्चात् इस नये अनुच्छेद को ले सकते हैं।

***उपाध्यक्ष:** मान लीजिये, हम एक बार कानून की अच्छाइयों को भूल जाते हैं।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 62 के पश्चात्, निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'62-A. No one shall be elected or appointed to any public office including that of the President, Governor, Minister of the Union or of any State of the Union, Judge of the Supreme Court or of any High Court in any State in the Union, who—

(a) is not able to read or write and express in the English language; or

(b) within ten years from the day when this Constitution comes into operation, is not able to read or write or express himself in the National language; or

(c) or who has been found guilty at any time before such election or appointment of any offence against the safety, security or integrity of the Union; or

(d) of any offence involving moral turpitude and making him liable on conviction to a maximum punishment of two years imprisonment; or

(e) or who has not, prior to such election or appointment served in some public body, or done some form of social work, or otherwise proved his fitness, capacity and suitability for such election or appointment as may be laid down by Parliament by law in that behalf.' "

[62-ए ऐसा कोई व्यक्ति किसी सरकारी पद के लिये, जिनमें प्रधान, गवर्नर, संघीय मंत्री अथवा संघ के किसी राज्य के मंत्री, सर्वोच्च न्यायालय के अथवा संघ के किसी राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाध्यक्ष के पद भी सम्मिलित हैं, नियुक्त अथवा निर्वाचित नहीं किया जायेगा: जो—

(क) अंग्रेजी भाषा में लिखने, पढ़ने अथवा अपने विचार व्यक्त करने के योग्य न हो; अथवा

(ख) इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने के दस वर्ष के भीतर ही राष्ट्रभाषा में पढ़ने, लिखने अथवा अपने विचार व्यक्त करने के योग्य न हो; अथवा

(ग) किसी समय ऐसे निर्वाचन अथवा नियुक्ति से पूर्व संघ की सुरक्षा, संरक्षा अथवा अखंडता के विरुद्ध किसी अपराध के लिये दोषी सिद्ध हो चुका हो; अथवा

(घ) ऐसे नैतिक पतन संबंधी अपराध का दोषी सिद्ध हो चुका हो जिस पर उसे दो वर्षों से अधिक कारावास का दंड दिया जा सकता हो; अथवा

(ङ) ऐसे निर्वाचन अथवा नियुक्ति के पूर्व किसी सार्वजनिक संस्था में सेवाकार्य न कर चुका हो, अथवा किसी प्रकार का सामाजिक कार्य

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

न कर चुका हो, अथवा ऐसे निर्वाचन अथवा नियुक्ति के लिये अन्यथा अपनी योग्यता क्षमता और उपयुक्त सिद्ध न कर चुका हो, जैसे कि इस विषय में संसद् कानून द्वारा व्यवस्था करे।]

श्रीमान् ये कुछ बातें हैं जो मेरे मतानुसार अवश्यमेव पूरी होनी चाहियें; अथवा प्रधान मंत्री, गवर्नर, न्यायाध्यक्ष आदि जैसे पदों पर प्रतिष्ठित होने वाले व्यक्ति के लिये ये बातें निर्योग्यताओं के रूप में लिपिबद्ध हो जानी चाहियें। मैं जो बातें रख रहा हूं वे प्रथम दृष्टिपात पर सम्भवत: ऐसी लगें कि उन्हें विधान में रखना शायद कुछ अनुपयुक्त सा दिखाई पड़े। उदाहरणार्थ मैं इसे खुद स्वीकार करता हूं कि मेरे संशोधन का पहला खंड यानी जिसमें कहा गया है, अंग्रेजी भाषा में लिखने, पढ़ने और अपने विचारों के व्यक्त करने में सामर्थ्य होना चाहिये अनुपयुक्त ही दिखाई देता है। किन्तु, श्रीमान्, वर्तमान अवस्था में, जैसी स्थिति में हम हैं, अपनी राष्ट्रभाषा की अनुपस्थिति में, यह अवश्य है कि सदस्यगण इस योग्य हों कि वे संविधान संबंधी किसी जटिल विषय पर, अथवा किसी कानून संबंधी अथवा भविष्य में संसद् के समक्ष पेश होने वाले किसी विधि-कार्य संबंधी किसी पेचीदे विषय पर अपने विचारों का आदान-प्रदान वार्तालाप के किसी सर्वज्ञात माध्यम द्वारा कर सकें। इस दृष्टिकोण से देखते हुए, और यह प्रावधान करने की इच्छा न रखते हुए कि अंग्रेजी इस देश और इस उप-महाद्वीप में सदैव के लिये वार्तालाप का माध्यम रहे, मेरे विचार में यह बन्धान करना उपयुक्त ही रहेगा कि जब तक वे लोग, जो संसद् के किसी सदन के सदस्य बने या चुने जायें किसी सर्वज्ञात भाषा में अपने विचारों को व्यक्त न कर सकें, जिसे कि उनके अन्य मित्र समझ सकें सदस्य न चुने जायेंगे। ऐसा बन्धान न करना अनुपयुक्त होगा और देश-हित के प्रतिकूल होगा।

श्रीमान्, मैं भली प्रकार जानता हूं कि इस विषय पर मतान्तर हो सकता है, ईमानदारी से मतान्तर हो सकता है और शायद आवेशपूर्ण मतान्तर भी हो सकता है। किन्तु श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि प्राय: हम सभी जानते हैं कि इस परिषद् में ऐसी भाषा में वक्तृता हो जाती है जो इस परिषद् के अन्य सदस्यों के कानों या मस्तिष्कों के लिये पूर्णत: निरर्थक ही होती हैं। जो उस भाषा को नहीं समझ पाते उनकी तथा वक्ताओं की भी भलाई के लिये ही मैं यह निवेदन करता हूं कि कोई सर्वज्ञात माध्यम ही प्रयुक्त होना चाहिये, जिससे कि परिषद् मैं सब उसे

समझ सकें और उत्तर दे सकें। मैं तो यह नहीं समझता कि इस परिषद् के किसी सदस्य का काम केवल हाथ उठाना ही है। मुझे तो विश्वास है कि जो कुछ भी कहा जाता है उसे प्रत्येक सदस्य विवेक से और ध्यान से समझ पाता है; अतः परिषद् के लिये यह एक हानि की बात होगी यदि परिषद् में कही गई कोई बात, भाषा न समझने के कारण अथवा वाग्धारा न जानने के कारण, परिषद् के किसी वर्ग के समझ में न आ सके। श्रीमान्, केवल इसी कारण मैं कम से कम आगामी दस वर्षों के लिये, यह बन्धान इस विधान में रखना चाहता हूं।

अगले खंड में मैं राष्ट्रभाषा के विषय में भी ऐसा ही बन्धान रखना चाहता हूं। इस विषय पर भी मेरी धारणा उतनी ही प्रबल है कि एक बार हम प्रारंभिक कठिनाई को पार कर लें, एक बार हम राष्ट्रभाषा का निश्चय कर सकें, तो फिर दस वर्ष की अवधि में,—और मेरे विचार में इस कार्य के लिये यह अवधि पर्याप्त है,—प्रत्येक सदस्य से आशा की जानी चाहिये कि वह राष्ट्रभाषा को जाने, और उसे लिख सके, पढ़ सके तथा उसमें अपने विचार व्यक्त कर सके। यहां भी आधारभूत तर्क वही है जो कि पहले खंड में था, कि लोगों को किसी ऐसे सर्वज्ञात माध्यम द्वारा अपने विचारों को व्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिये, जिसे उनके सहयोगी सदस्य समझ सकें। अतः इस बात को अनिवार्य करार दे देना चाहिए कि हमारी जो राष्ट्रभाषा होगी वह केवल नाम के लिए नहीं, केवल इसलिए नहीं कि लोग भाषा-संबंधी कानून का पालन करने के बजाय अधिकतः उसका उल्लंघन ही किया करें बल्कि वह एक सजीव भाषा होगी और सदस्यों को उसी में बोलना होगा ताकि इस सभा में या भावी सभाओं में या संसद् में हम अपने विचारों का आदान-प्रदान उसी लालित्य एवं पारिभाषिक रूप में कर सकें जो कि ऐसे कानूनी प्रपत्रों के लिए अपेक्षित है। अतः मेरे विचार में इस प्रावधान के समर्थन में अधिक तर्कों की आवश्यकता नहीं है। मेरे संशोधन के प्रथम अथवा प्रमुख खंड में वर्णित अथवा उल्लिखित उच्च पदों के इच्छुकों के लिये ऐसी योग्यताएं अवश्य अपेक्षित होनी चाहियें।

ऐसे उच्च पदों के इच्छुक लोगों की नैतिक उच्चता के संबंध में जो खंड है वह भी स्वयं-स्पष्ट है और मुझे विश्वास है कि ऐसे बन्धान पर कोई विरोध नहीं हो सकता और न होगा ही। मुझे भय है कि यदि हम ऐसा मानने लगें कि 'यह तो है ही' जैसा कि इस विषय में कहा जा सकता है कि 'यह तो है ही'

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

तो हम ऐसी कठिनाइयों अथवा परेशानियों में पड़ जायेंगे, जिन्हें आरंभ से ही दूर कर देना हमारे लिये अच्छा होगा।

यह भी, श्रीमान्, मैं कह सकता हूं कि एक अन्य आधारभूत सिद्धान्त है, जिस पर मैंने बल दिया है, जैसे कि मुझे एक उच्चाधिकारी द्वारा परामर्श दिया गया था, किन्तु इसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ, कम से कम उन लोगों पर तो नहीं हुआ जो कि अन्यथा धारणा वाले हैं।

अन्ततः श्रीमान्, मैं इस शर्त को आवश्यक समझता हूं कि जो व्यक्ति ऐसे विधान-मंडलों के सदस्य बनने के अथवा ऐसे उच्च पदों पर प्रतिष्ठित होने के इच्छुक हों उनमें कुछ ठोस योग्यतायें होनी चाहियें। मैं केवल शिक्षा संबंधी योग्यताओं की ही बात नहीं सोच रहा हूं। बल्कि योग्यता द्योतक उन गंभीर परिपक्व तथा गूढ़ गुणों की बात सोच रहा हूं, जो रचनात्मक कार्य, सामाजिक सेवा तथा अन्य कार्यों के आधार पर हमें प्राप्त होते हैं। जो कि शैक्षणिक योग्यताओं से भी अधिक ये गुण ही इस बात के प्रमाण होते हैं कि कोई व्यक्ति उन पदों के लिये उपयुक्त तथा योग्य है अथवा नहीं। शैक्षणिक योग्यताएं तो प्रायः अच्छी स्मरण शक्ति के कारण ही प्राप्त होती हैं, सदाचार, अथवा व्यक्ति के शुभ विचारों के कारण नहीं, और वे उन उत्तरदायित्वों के लिये उसकी वास्तविक, विशेष उपयुक्तता ज्ञापित करने का कोई साधान अथवा माध्यम नहीं होती। मैं जो पहचान अथवा उपाय सुझा रहा हूं उससे अधिक अच्छी तरह और विश्वसनीय रूप से यह पता लग सकेगा कि कोई व्यक्ति-विशेष उन पदों के योग्य है या नहीं जिनके वे इच्छुक हैं या जो उन्हें सौंपे जा सकते हैं।

श्रीमान्, इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्ताव को परिषद् में पेश करता हूं।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर दो संशोधन हैं। एक संशोधन चतुर्थ सूची में संख्या 52 है और मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम में है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1336 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 62-ए में 'सर्वोच्च न्यायालय के अथवा संघ के

किसी राज्य के उच्च न्यायालय के 'न्यायाध्यक्ष' ये शब्द हटा दिये जायें।"

श्रीमान्, प्रस्तावित अनुच्छेद 62-ए अत्यन्त व्यापक है। वास्तव में इस संशोधन द्वारा प्रोफेसर शाह ने अपनी स्वाभाविक विचारशीलता से, सरकारी सेवकों और विशेषत: मन्त्रियों, प्रधानों और यहां तक कि सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाध्यक्षों के लिये कुछ शर्तें रखना चाहा है। वे उनके लिये जो शर्त रखना चाहते हैं, वे ये हैं: (क) कि वे अंग्रेजी भाषा पढ़ने, लिखने तथा उसमें अपने विचार व्यक्त करने के योग्य हो; तत्पश्चात् कदाचित विकल्प में, (ख) उन्हें राष्ट्रभाषा का ज्ञान होना चाहिये, और (ग) और (घ) वे किसी अपराध के दोषी सिद्ध न हो चुके हों और (ङ) वे प्रमाणित उपयुक्तता के व्यक्ति होने चाहियें।

श्रीमान्, इस संशोधन के पीछे जो आशय है, उसके विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है। मैं भी उस विचार का समर्थन करता हूं। किन्तु मेरा यह विचार अवश्य है कि उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाध्यक्ष इन शर्तों से परे होने चाहियें—इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं ऐसा चाहता हूं कि वे निरक्षर हों, या अंग्रेजी अथवा राष्ट्रभाषा में अपने विचार व्यक्त करने के अयोग्य हों, या यह कि उनका नैतिक अपराधों से संबंध रहा हो अथवा यह कि उनके लिये उपयुक्त सिद्ध होना अपेक्षित नहीं है,—ऐसा कदापि नहीं है। किन्तु मेरा निवेदन है कि विधान के मसौदा में ही हमने कुछ मापदण्ड निश्चित कर दिये हैं जिनके आधार पर ही उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालयों के न्यायाध्यक्ष नियुक्त होंगे। अनुच्छेद 193 के खंड (2) में हमने स्पष्ट बन्धान रखा है कि ऐसा ही व्यक्ति उच्च न्यायालय में न्यायाध्यक्ष नियुक्त हो सकता है जो कतिपय वर्षों तक न्यायविभाग में अधिकारी रहा हो या अधिवक्ता (advocate) रहा हो; और अनुच्छेद 103 के खंड (6) के अनुसार ऐसा कोई व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाध्यक्ष नियुक्त नहीं हो सकता जो कि उच्च न्यायालय का न्यायाध्यक्ष न रहा हो या एक विशेष अवधि तक अधिवक्ता न रहा हो। मुझे विश्वास है कि बहुत समय तक जिसका कि हम अभी अनुमान कर सकते हैं, वकील तो साक्षर होंगे ही और अंग्रेजी में अपने विचार व्यक्त करने के योग्य भी होंगे ही। इस समय हमारी परिषद् में बहुत से वकील हैं,—डॉक्टर अम्बेडकर, श्री के.एम. मुन्शी, श्री अनंतशयनम् आयंगर और कई अन्य भी हैं जैसे अल्लादी कृष्णास्वामी

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

अय्यर (**एक सदस्य:** और आप भी), हां, मैं छोटा-सा व्यक्ति भी। इस देश में बहुत से वकील हैं और मुझे विश्वास है कि आगामी बहुत काल तक तो वे साक्षर होंगे ही।

कदाचित् यह तो निस्संदेह मान लिया जा सकता है कि, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रचार के फलस्वरूप, वकील लोग साक्षर होंगे, और यदि कोई साक्षर नहीं होगा तो वह वकील नहीं हो सकता। वकील बनने के लिये और अधिवक्ता भी बनने के लिये, साक्षरता और सामान्य ज्ञान की कुछ परीक्षायें पास करनी होती हैं। अत: यदि कोई साक्षर नहीं होगा तो वह अधिवक्ता नहीं बन सकता, और इस कारण वह उच्च न्यायालय का न्यायाध्यक्ष नियुक्त नहीं हो सकता और सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाध्यक्ष भी नियुक्त नहीं हो सकता।

तत्पश्चात् उनके राष्ट्रभाषा में अपने विचार व्यक्त करने के विषय में, मेरी धारणा है कि यदि और जब कभी अंग्रेजी को हटाया जायेगा तो न्यायाध्यक्षों और अभिभाषकों को न्यूनतम अपेक्षित योग्यता अवश्य प्राप्त करनी होगी और उन्हें राष्ट्रभाषा में अपने विचार व्यक्त करने योग्य होना चाहिये। जितने समय की पूर्वकल्पना की जा सकती है उसमें अधिवक्ता (advocate) तथा उच्च अथवा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाध्यक्ष अवश्यमेव, अंग्रेजी भाषा में जब तक वह भाषा प्रचलित रहे, और तत्पश्चात् राष्ट्रभाषा में अपने विचार व्यक्त करने के योग्य होंगे।

मुझे यह भी विश्वास है कि कोई व्यक्ति, जो नैतिक पतन संबंधी किसी अपराध का दोषी हो, उच्च न्यायालय अथवा सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाध्यक्ष नियुक्त नहीं हो सकता। पहले तो वह अधिवक्ता ही नहीं बन सकेगा और इसके फलस्वरूप न्यायाध्यक्ष नियुक्त नहीं हो सकेगा। अत: न्यायाध्यक्षों के लिये इस प्रकार का बन्धान नितान्त अनावश्यक है, यद्यपि हम श्री कामत के अथक प्रयत्नों के आभारी हैं जिन्होंने कल यहां यह बात खोज निकाली कि किसी स्थान पर कोई ऐसा मंत्री नियुक्त हुआ है जो पहले कभी चोर-बाजारी के लिये दंडित हो चुका था। यद्यपि इस प्रकार के मंत्री नियुक्त हो सकते हैं; संभवत: न्यायाध्यक्ष नियुक्त नहीं हो सकते। मैं हार्दिक आशा करता हूं कि नैतिक पतन संबंधी

अपराधों पर पूर्व दंडित अथवा निरक्षर न्यायाध्यक्षों को नियुक्त करने की संभावना पर विचार करने के बजाय तो हमारा देश स्वतंत्र ही न रहे तो बुरा नहीं है।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या मेरे माननीय मित्र की यह धारणा है कि चोर-बाजारी के कारण दंडित व्यक्ति भी मंत्री नियुक्त किया जा सकता है? मुझे आश्चर्य है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैंने कोई व्यक्तिगत विचार प्रकट नहीं किया है। मैंने तो सावधानी के साथ कहा था कि हम श्री कामत के परिश्रम के लिये आभारी हैं, जिन्होंने यह खोज की है। वास्तव में उन्होंने ही कल कहा था कि किसी स्थान विशेष पर कोई मंत्री नियुक्त किया गया है जो चोर-बाजारी संबंधी नैतिक पतन के अपराध पर दंडित हो चुका था। अत: ऐसी घटना की कल्पना की जा सकती है। ऐसी धारणा मंत्री के संबंध में की जा सकती है पर न्यायाध्यक्ष के संबंध में नहीं। अत: मेरा निवेदन है कि न्यायाध्यक्षों के संबंध में इन शब्दों को निकाल देना चाहिये। वास्तव में उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाध्यक्षों के लिये ऐसा कहना ही अत्यन्त अपमानजनक होगा कि किसी ऐसे व्यक्ति को न्यायाध्यक्ष नियुक्त नहीं करना चाहिये जो साक्षर न हो अथवा जो पूर्व दंडित हो। अत: इन शब्दों को निकाल देना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** इस संशोधन पर अगला संशोधन संख्या 73 है जो पंचम सूची में से है। किन्तु इसे पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती क्योंकि इसका आशय पहले किसी संशोधन में आ चुका है।

तत्पश्चात् संशोधन संख्या 1337 है, जो श्री भारती के नाम में है।

(संशोधन संख्या 1337 पेश नहीं किया गया।)

अब इस अनुच्छेद पर व्यापक वाद-विवाद हो सकता है! श्री सिधवा!

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद पर बहुत से संशोधन रखे गये हैं, विशेषत: खंड (1), (2) और (5) के संबंध में, जिससे इस पर काफी वाद-विवाद हो गया है। बाकी खंड तो महज रस्मी ही हैं। खंड (1) में तो इतना ही है कि प्रधान, प्रधान मंत्री को नियुक्त करेगा और प्रधान मंत्री अपने सहयोगियों अर्थात् अन्य मंत्रियों को नियुक्त

[श्री आर.के. सिधवा]

करेगा। बहुत से संशोधन पेश किये गये हैं जिनमें कहा गया है कि प्रधान को उसी व्यक्ति को बुलाना चाहिये जो परिषद् का विश्वासपात्र हो और जो कि स्थिर मंत्रिमंडल का निर्माण कर सकता हो। श्रीमान्, यह निस्संदेह बहुत अच्छा सुझाव है और अपने पूर्व अनुभव से हमें यह ज्ञात है कि कई प्रान्तों में गवर्नरों ने जानबूझ कर, अपनी सुविधा और अपने मनोरथ के लिये, ऐसे व्यक्ति को मंत्रिमंडल बनाने के लिये आमंत्रित किया है जो कि परिषद् का विश्वासपात्र नहीं था, और जिसे कठिनाई से थोड़े से अल्पसंख्यकों का समर्थन प्राप्त था। हमारे पास बंगाल, आसाम, उड़ीसा, सिंध और पंजाब के उदाहरण हैं। और इन गवर्नरों ने ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करके जो कि परिषद् के तनिक भी विश्वासपात्र नहीं थे, आफत पैदा कर दी और कठिनाइयां उत्पन्न कर दीं। और इसका दूसरा पहलू क्या था? जब 1935 के विधान के अन्तर्गत ऐसे मंत्रिमंडल बन गये, तो परिषदों का कोई अधिवेशन नहीं बुलाया जा सका, जब तक कि वार्षिक बजट-अधिवेशन का समय न आया। इस तरह वह व्यक्ति पूरे एक वर्ष तक मंत्रिमंडल का आनन्दोपभोग करता रहा और जब तक बजट का समय आता, तब वह सदस्यों को विभिन्न प्रकार के पद तथा घूस देकर अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना लेता था, और यह दिखा सकता था कि वह परिषद् का विश्वासपात्र है। हां, मैं यह तो समझता हूं कि नये संविधान के अधीन, परिस्थितियां बदल गई हैं, और निर्देशन-पत्र में जो कि अनुसूची 3-क में दिया हुआ है, यह कहा गया है कि प्रधान मंत्री ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो सभा का विश्वासपात्र हो। मैं जानता हूं कि यह अनुसूची भी विधान का ही भाग है। अतः मैं कहता हूं कि यह अच्छा सुझाव है। अतीत में जो कुछ हो चुका है उसे ध्यान में रखते हुए, मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं, और इसका कारण यह है कि हमारे गवर्नर और हमारे प्रधान अनुत्तरदायी व्यक्ति नहीं होंगे। यदि कोई प्रधान ऐसे व्यक्ति को बुलायेगा जो कि सभा का विश्वासपात्र न हो तो प्रधान पर महाभियोग लगा दिया जायेगा और प्रधान मंत्री को भी पदच्युत कर दिया जायेगा।

श्रीमान्, मैं जानता हूं कि भूतकाल में, ऐसा हुआ है कि अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने हेतु विधान-मंडल का अधिवेशन बुलाने के लिए गवर्नरों से मांग की जाती थी किन्तु गवर्नर अधिवेशन नहीं बुलाता था। पर आज स्थिति भिन्न है। यदि इस प्रकार की त्रुटि हो जाये तो प्रधान को अधिवेशन बुलाना होगा, अन्यथा

उस पर कई निर्योग्यताएं लागू हो जायेंगी, जो हमने विभिन्न अनुच्छेदों में रखी हैं। अत:, यद्यपि मेरे मन में भी वही आशंकाएं हैं जो माननीय सदस्यों के हृदयों में हैं, तद्पि मैं उस विचार का समर्थन नहीं करना चाहता जिसका भूत में अस्तित्व था, और मैं अनुच्छेद के मसौदे में उल्लिखित खंड (1) का समर्थन करता हूं।

दूसरा महत्त्वपूर्ण खण्ड (5) है, जिसमें कहा गया है कि कोई मंत्री, जो 6 मास तक संसद् के किसी सदन का सदस्य न हो, उस अवधि के उपरान्त मंत्री न रहेगा। ऐसा खंड 1935 के विधान में था और इसे वहीं से लिया गया है। मैं चाहता हूं कि ऐसा खंड हमारे विधान में नहीं होना चाहिये, और इसका सीधा कारण है कि हमारे नये विधान-मंडल में लगभग 500 सदस्य होंगे, और यदि हम किसी विषय का दक्ष या विषय विशेष का ज्ञान रखने वाला मंत्री उनमें से आवश्यकतानुसार प्राप्त नहीं कर सकते, तो यह विधान-मंडल पर कलंक समान है कि उसमें विशेष विषय का ज्ञान वाला एक भी व्यक्ति नहीं है। इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, हमारा सारा विधान ग्रेट ब्रिटेन की सांसदिक प्रणाली पर बना हुआ है और वहां निर्वाचन पार्टी-लाइन पर होते हैं। वहां वे इस बात का ध्यान रखते हैं कि विशिष्ट विषय का ज्ञान रखने वाले जिन व्यक्तियों को मंत्री बनाना है उन्हें दल की ओर से खड़ा किया जाये और उन्हें निर्वाचित कराया जाये। हम भी इस विधान के अंतर्गत ऐसे ही दल प्रणाली से निर्वाचन करेंगे। और हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि विशिष्ट ज्ञान संपन्न व्यक्तियों को चुनाव में खड़ा किया जाये। श्रीमान्, मेरी समझ में नहीं आता कि कानूनमंत्री और अर्थमंत्री शायद इन दो विषयों के अतिरिक्त, जिनमें कि कुछ विशिष्ट विषयों के ज्ञान की आवश्यकता है, शेष मंत्रियों को किसी विशेष विशिष्ट योग्यता की क्या अपेक्षा है? उसमें तो सहज ज्ञान, व्यावहारिक ज्ञान, योग्यता, उद्यमशीलता, दृढ़ संकल्प, दृढ़ निश्चय और आगे बढ़ने की शक्ति—आदि गुण ही अपेक्षित हैं। सैद्धान्तिक ज्ञान की अपेक्षा ये गुण ही उसमें होने चाहियें। हम जानते ही हैं कि सैद्धान्तिक ज्ञान वाला व्यक्ति व्यावहारिक राजनीति में असफल होता है। मेरे मतानुसार तो व्यावहारिक ज्ञान वाला मनुष्य केवल सैद्धान्तिक ज्ञान वाले व्यक्ति से कहीं अच्छा है। श्रीमान्, यदि यह भी मान लिया जाये कि हमें एक सैद्धान्तिक ज्ञान वाले व्यक्ति की अपेक्षा है, तो मुझे विश्वास है कि चुनाव में भाग लेने वाला दल यह

[श्री आर.के. सिधवा]

ध्यान रखेगा कि ऐसे व्यक्ति को दल की ओर से खड़ा किया जाये। इसके अतिरिक्त मैं इसे विधान-मंडल का अपमान समझता हूं कि हमें एक मंत्री-विशेष के पद की पूर्ति करने के लिये सदस्यों के अतिरिक्त किसी को लेना पड़े। ऐसी बातें अब तक होती रही हैं। किन्तु आगे से यह अनावश्यक होगा कि मंत्रिमंडल में, विधान-मंडल के समान ऐसे सदस्यों का सम्मिश्रण हो, जिनमें से कुछ शक्ति-आरूढ़ दल का समर्थन न भी करते हों। अत: मैं यह अनुभव करता हूं कि इस मामले पर वास्तव में इसी दृष्टिकोण से विचार करना चाहिये। अंग्रेजी मंत्रिमंडल में मैंने कभी ऐसा नहीं देखा कि ऐसा व्यक्ति जो कि संसद् का सदस्य न हो मंत्रिमंडल में लिया जाये। पहले चाहे कुछ भी हुआ है, किन्तु आज तो यही स्थिति है। यह तर्क किया जा सकता है कि जो संसद् का सदस्य नहीं होगा वह तो मंत्रिमंडल में केवल छ: ही मास रहेगा। मुझे तो बाहरी व्यक्ति के एक दिवस भी मंत्रिमंडल में रहने पर आपत्ति है। हम असदस्य को छ: मास तक क्यों रखें जब तक कि सदस्यों में हमें उपयुक्त व्यक्ति मिल सकते हैं? अत: मैं यह कहता हूं कि इस खंड को निकाल दिया जाये।

अब अपने मित्र प्रोफेसर शाह के अंतिम संशोधन के विषय में मैं कह सकता हूं कि वह प्रशंसनीय है। इस पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। किन्तु मेरे विचार में उन्होंने, यह कह कर कि गवर्नर, प्रधान और मंत्रियों के पद सर्वप्रथम उन लोगों को दिये जाने चाहियें जो अंग्रेजी जानते हों और जो, दस वर्ष के भीतर, राष्ट्रभाषा सीख लें, अंग्रेजी को अत्यधिक महत्व दे दिया है। ऐसे खंड के विषय में मेरी प्रतिक्रिया यह है कि केवल वे ही व्यक्ति प्रधान, गवर्नर तथा मंत्री नियुक्त होने चाहियें जो कि आरंभ से ही अंग्रेजी और राष्ट्रभाषा दोनों जानते हों। इन उच्चपदधारियों का कार्यकाल पांच वर्ष है और हमने एक खण्ड पास कर दिया है जिसमें हमने कहा है कि गवर्नर एक बार चुना जायेगा और एक बार और चुना जा सकेगा, अर्थात् वह कुल दस वर्ष तक रह सकेगा। यदि प्रोफेसर साहब के संशोधन को स्वीकार कर लिया जाये, तो उसका यह अर्थ होगा कि जब तक गवर्नर या प्रधान को राष्ट्रभाषा सीखनी होगी, उससे पहले वह अवकाश ही प्राप्त कर लेगा। यद्यपि मैं इसे उचित नहीं समझता कि इस बात को विधान में रखा

# भारतीय विधान-परिषद्

मंगलवार, 4 जनवरी सन् 1949 ई.

---

*भारतीय विधान परिषद् की बैठक कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे उपाध्यक्ष महोदय (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में समवेत् हुई।*

---

## विधान का मसौदा-(जारी)

### अनुच्छेद 67-(जारी)

***उपाध्यक्ष (डॉ. एच.सी. मुकर्जी):** सभा का कार्य आरम्भ करने से पूर्व मुझे माननीय सदस्यों को यह सूचित करना है कि कल यह सूचना प्राप्त हुई थी कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्य किस प्रकार दर्शकों की दीर्घाओं में और बरामदों में प्रवेश प्राप्त करके विघ्न उपस्थित करेंगे। सौभाग्य से इसकी रोकथाम कर दी गई है। क्या मैं माननीय सदस्यों से यह प्रार्थना कर सकता हूं कि वे दर्शकों के कार्डों को केवल उन लोगों के लिये मंगवायें, जिन्हें वे स्वयं जानते हों, ताकि हम निर्विघ्नता से अपना कार्य कर सकें?

अब हम अनुच्छेद 67 पर विचार-विमर्श आरम्भ करेंगे। सूची में प्रथम संशोधन, संशोधन संख्या 1411 है। क्योंकि यह केवल शाब्दिक संशोधन है, इसलिये इसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती।

अब हमारे सामने संशोधन संख्या 1412, 1413 प्रथम भाग, 1414 प्रथम भाग और 1415 प्रथम भाग हैं। ये एक समान हैं। संशोधन संख्या 1415, जो काजी सैयद करीमुद्दीन के नाम से है, उपस्थित किया जा सकता है।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री महावीर त्यागी]

मि. पोकर साहिब, आदि भी सोचते हैं, कि प्रधान मंत्री और उनका मंत्रिमंडल विधान-मंडल के प्रतिनिधि हैं। राजनैतिक दृष्टि से और जनतंत्र के दृष्टि बिन्दु से, विधान-मंडल का प्रतिनिधित्व करने का दायित्व उनका नहीं है। विधान-मंडल का प्रतिनिधि यहां सभापति है। व्यवस्थापिका तो सभापति के द्वारा ही अपने विचार व्यक्त कर सकती है। प्रधान मंत्री बहुसंख्यक दल का प्रतिनिधि होता है, अतः वह सारी व्यवस्थापिका द्वारा निर्वाचित नहीं हो सकता। यदि प्रधान मंत्री समस्त सभा द्वारा निर्वाचित हो तो उसे नैतिक रूप से सारी सभा के प्रति उत्तरदायी होना पड़ेगा। प्रधान मंत्री सारी सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। वह केवल उसी बहुसंख्यक दल के प्रति उत्तरदायी होता है, जिसने उसे यहां भेजा है। यद्यपि वह विरोधी दल के विचारों का भी ध्यान रखता है पर वह समस्त व्यवस्थापिका द्वारा निर्वाचित नहीं हो सकता। यदि वह सारी व्यवस्थापिका द्वारा निर्वाचित हो तो दल के नेता के रूप में उसकी स्थिति समाप्त हो जायेगी, क्योंकि जिन लोगों ने उसके विरुद्ध मतदान किया है वे भी दावा करेंगे कि वह उनका प्रतिनिधि है। जैसे कि किसी निर्वाचन क्षेत्र द्वारा निर्वाचित सदस्य को उन लोगों के विचारों का भी प्रतिनिधित्व करना होता है जिन्होंने उसके विरुद्ध मत दिये हैं प्रधान मंत्री को भी, यदि वह समस्त सभा द्वारा निर्वाचित हो, विरोधी दल का भी प्रतिनिधित्व करना होगा। ऐसा निर्वाचन दल-प्रणाली पर चलने वाले जनतंत्र के सिद्धांतों के विरुद्ध है। वह सभा के बाहर जनसाधारण की व्यापक इच्छा का प्रतिनिधि होता है, जनता के उस अत्यधिक बहुमत का प्रतीक होता है, जिन्होंने उसके दल को अपने पसंद का दल कह कर मतदान दिया है। हां, यद्यपि वह कर्त्तव्य समझ कर अल्पसंख्यकों का रक्षण करता है, किन्तु वह केवल बहुसंख्यक दल का ही प्रतिनिधि रहता है। किन्तु प्रधान का मामला सर्वथा भिन्न है। वह सारे दलों द्वारा निर्वाचित होता है। जिसका अर्थ हुआ कि वह जनता के सारे निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा चुना जाता है। अतः वह समानरूपेण सबका संरक्षक होता है। राज्य के प्रमुख के नाते, उसी के द्वारा जनता की सामूहिक इच्छा व्यक्त होती है। मंत्रियों को जनता की इच्छा को प्रतिध्वनित करने के लिये कहा जाना चाहिये। प्रधान में सर्वाधिक प्रतिनिधित्व निहित होता है। अतः ऐसे प्रधान को मंत्रियों के नियुक्त करने का अधिकार होगा। हमने इस बात को विधान

में प्रधान के लिये निदेश पत्र की व्यवस्था करके स्पष्ट कर दिया है जिसमें कहा गया है कि जब वह मंत्रियों को नियुक्त करेगा, तब वह इस बात को ध्यान में रखेगा कि वे व्यवस्थापिका के विश्वास के योग्य हैं। किन्तु नियुक्ति प्रधान द्वारा की जानी चाहिये, क्योंकि वही एक व्यक्ति है जिसमें सारे राष्ट्र ने अपनी सार्वभौमिक सत्ता निहित कर दी है, और इस कारण मि. पोकर साहिब का संशोधन जनतंत्र की समस्त व्यवस्था के विपरीत है।

तत्पश्चात् एक और संशोधन भी पेश किया गया है, जिसमें कहा गया है, कि मंत्री तब तक अपने पदों पर रहेंगे जब तक कि वे सभा के विश्वासपात्र रहें। विधान के मसौदे में भी वस्तुस्थिति वही है। मंत्रियों को प्रधान नियुक्त करता है और जब वह जनता का एकमात्र प्रतिनिधि मंत्रियों को नियुक्त करता है, तो परिस्थितियों की मांग होने पर वही उनको पदच्युत करेगा। सभा को विश्वास अथवा अविश्वास का प्रस्ताव पास करने का सदा अधिकार है। सभा द्वारा मंत्रिमंडल में अविश्वास का प्रस्ताव सदा प्रधान को सिफारिश ही होता है कि वह मंत्रिमंडल को हटाने की और उसके स्थान में दूसरा नियुक्त करने की व्यवस्था करे। इस बात का विधान में और भी विवरण दिया गया है। अतः मैं इस संशोधन का भी विरोध करता हूं।

तत्पश्चात्, प्रोफेसर का संशोधन है जिसमें वे कहते हैं कि मंत्रियों को दस वर्ष के लिये अंग्रेजी भाषा जाननी चाहिये और दस वर्ष बाद हिन्दी जाननी चाहिये। जहां तक साक्षरता का प्रश्न है मैं उस विषय में अराजकतावादी हूं। मैं वर्तमान काल की शिक्षा में विश्वास नहीं करता। मैं साक्षरता की विचारधारा के विरुद्ध हूं, यद्यपि उसका भी अपना मूल्य है। यदि मेरे पढ़ने का प्रश्न आज उठता तो पढ़ने-लिखने से इन्कार कर देता। ऐसा ही था, कि मैंने पढ़ने-लिखने से इन्कार कर दिया था और इसी कारण में अध-पढ़ हूं। भारत में बहुसंख्यक जन निरक्षर है। उन्हें देश के शासन में अपने भाग से क्यों वंचित किया जायें? मुझे आश्चर्य है कि साक्षरता को लोगों की सर्वोत्तम सफलता क्यों समझा जाता है। किसी व्यक्ति को देश का शासन संभालने के लिये यही पूर्ण कसौटी क्यों समझी जाये। और कला, उद्योग, कल-विज्ञान, शरीर अथवा सौन्दर्य को अधिक अच्छी कसौटी क्यों न मान लिया जाये। रणजीत सिंह साक्षर नहीं था, शिवाजी साक्षर नहीं था और अकबर भी विशेष साक्षर नहीं था। किन्तु उन सबने अपने राज्यों का शासन बहुत सुचारु रूप से किया। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि हमें साक्षरता को

[श्री महावीर त्यागी]

आवश्यकता से अधिक महत्व नहीं देना चाहिये। मैं डॉक्टर अम्बेडकर से पूछता हूं कि क्या वे कभी लिखते हैं? कदाचित् उनके पास लिखने के लिये लेखक हैं और पढ़ने के लिये पाठक हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि मंत्रियों को पढ़ने और लिखने की क्या आवश्यकता है। जब उन्हें कुछ लिखने की आवश्यकता हो वे यन्त्र-लेखकों से काम ले सकते हैं। न लिखना ही आवश्यकता है और न पढ़ना ही। आवश्यकता है कार्येच्छा, ईमानदारी, व्यक्तित्व, सच्चाई, बुद्धिमत्ता और खरेपन की। मंत्री बनने के लिये किसी व्यक्ति में ये योग्यतायें होनी चाहियें। साक्षरता का ही महत्त्व नहीं है।

***श्री एच. वी. कामतः** क्या मेरे अदम्य उत्साही मित्र भारत को ऐसा ही निरक्षर रखना चाहते हैं जैसा कि वह आज है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** क्या आपको साक्षरता पर कोई सैद्धान्तिक विरोध है?

***श्री महावीर त्यागीः** जी, नहीं।

***श्री बी.एच. खार्डेकर** (कोल्हापुर): एकाकी और अथक योद्धा प्रोफेसर के.टी. शाह के समर्थन में मैं अपनी छोटी-सी आवाज उठाना चाहता हूं। मैं विशेषतः उनके संशोधन संख्या 1332 का समर्थन करने के लिये खड़ा हुआ हूं। जहां तक मंत्रियों का प्रश्न है मैं भ्रष्टाचार की संभावना का पूर्ण निर्मूलन चाहता हूं। प्रधान के विषय में मेरा उनसे मतभेद है। निम्न कारणों से मैं प्रधान और मंत्रियों के बीच बहुत अन्तर करता हूं: प्रधान की कोई कार्यकारिणी सत्ता नहीं होगी। श्रीमान्, प्रधान देश का एक, एक मात्र, सर्वोत्तम और सर्वोच्च नागरिक होगा। वह करोड़ों नेत्रों का आनन्द होगा, लोगों के हृदयों का सुखधाम होगा। लोगों की इस सच्ची प्रतिमा के विषय में कोई संदेह रखना उचित नहीं है। मैं बहमबाजी की बातें नहीं कर रहा हूं। किन्तु मंत्री भिन्न स्तर पर हैं और अत्यन्त भिन्न व्यक्ति हैं। उनके पास कार्यकारिणी शक्ति होती है और अपेक्षाकृत वे बहुत से होते हैं। श्रीमान्, इस देश में, आप जानते हैं कि कुछ लोग बहुत महान् हैं किन्तु वे बहुत थोड़े हैं। मुझे याद है कि परसों मैंने किसी साप्ताहिक में,—मुझे विश्वास है कि शङ्कर के साप्ताहिक में—मैंने एक व्यङ्ग-चित्र देखा था—कि

आजकल दो व्यक्ति सदा समस्त कार्य करते हुए दिखाई देते हैं—वे हैं पंडित जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल। एक दो को और समझ लीजिये, किन्तु शेष ऐसे हैं जिन्हें मैं अपेक्षाकृत बहुत साधारण व्यक्ति कह सकता हूं।

अब, मैं चाहता हूं कि माननीय सदस्य अपने कालेज के दिनों की स्मृति जागृत करें और राजनीति-शास्त्र पर एक बहुत महान् पुस्तक—प्लेटो के 'गणराज्य'—के विषय में सोचें। प्लेटो ने हमारे समक्ष आदर्श राज्य का नमूना रखने का प्रयत्न करते हुए शासकों के लिये यह आवश्यक बताया है कि उन्हें किसी सम्पत्ति में तनिक भी वैयक्तिक हित नहीं रखना चाहिये। वह तो आगे चल कर यह भी लिखता है कि शासकों के परिवार भी नहीं होने चाहियें। इस देश में लोग आदर्शवाद की बहुत बातें करते हैं—ऊंचे आदर्शों की—किन्तु जब कार्य रूप में उन्हें परिणत करने का प्रश्न आता है, तो मुझे प्रतीत होता है कि हम बहुत निम्नस्तर पर गिर जाते हैं। यदि प्लेटो के मधुर स्वप्नों को पूरा करना असंभव है तो कम से कम हमें उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये यथासंभव उनके निकट तो पहुंचना ही चाहिये। मैं इतना संदेह भी नहीं करता, किन्तु मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने एक ऐसा उदाहरण देकर बहुत सेवा का कार्य किया है। यह निन्दनीय बात है, इस देश के किसी राज्य की कलंक कहानी की बात है कि वहां एक व्यक्ति जो कि चोर-बाजारी के अपराध पर दंडित था, मंत्री नियुक्त हो गया। यह तो अत्यंत कलंक की बात है। केवल राज्यों में ही नहीं प्रान्तों में भी व्यापक भ्रष्टाचार की कई कथायें सुनाई देती हैं। वे चाहे किवदन्तियां ही हों, किन्तु बिना अग्नि के धुवां नहीं हो सकता, जैसे कि संस्कृत में लोकोक्ति है:—

"यत्र यत्र धूमः
तत्र तत्र वह्निः।"

जब हम गांधी जी की बात करते हैं और प्रत्येक बार उनके नाम को बीच में लाते हैं तो हमें कुछ हद तक उस महान् व्यक्ति के योग्य तो बनना चाहिये, और यदि मैं इस समय भी प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन में संशोधन रख सकूं तो मैं यहां तक कहूंगा कि मंत्रियों को केवल अपने हितों और अपनी सम्पत्ति की ही घोषणा नहीं कर देनी चाहिये, वरन् उन्हें अपने संबंधियों और मित्रों की घोषणा कर देनी चाहिये। इतना पक्षपात, कुल-पक्षपात और असम-दृष्टि है कि ऐसा प्रतीत होता है कि हम नीचे ही नीचे गिरते जा रहे हैं, यद्यपि हमने बहुत से महान्

[श्री बी.एच. खार्डेकर]

कार्य पूरे कर लिये हैं। प्रोफेसर शाह ने मंत्रियों और उच्चाधिकारियों द्वारा संक्रमण काल में अंग्रेजी जानने के संबंध में जो संशोधन पेश किया है उसका मैं कुछ हद तक समर्थन करना चाहता हूं। श्री महावीर त्यागी के चेतनामय भाषण को सुनने में बहुत आनन्द आया। वे साक्षरता को लगभग समाप्त करने के पक्ष में थे और उन्होंने हमें शिवाजी आदि की याद दिलाई। मैं तो परिषद् को केवल उस व्यंग की याद दिलाना चाहता हूं कि जो फ्रांसिसी राजा ने उस समय किया था जब कि उसने अब्राहम लिंकन की जनतन्त्र की यह परिभाषा सुनी कि "जनता का शासन, जनता द्वारा शासन और जनता के लिये शासन" ही जनतन्त्र है। फ्रांसीसी राजा तत्काल ही बिना सोचे-समझे बोल पड़ा, "पशुओं का शासन, पशुओं द्वारा शासन और पशुओं के लिये शासन, यह जनतन्त्र है"। यदि हम निरक्षर लोगों द्वारा जनतन्त्र चलाना चाहते हैं तो वह ऐसा ही जनतन्त्र होगा जैसा कि फ्रांसीसी राजा ने बताया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, जितने संशोधन पेश किये गये हैं उनमें से मैं संशोधन संख्या 1322 को और पंचम सूची के संख्या 71 द्वारा संशोधित संशोधन संख्या 1326 को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। शेष संशोधनों के विषय में मैं एक प्रकार से सरसरी सी टिप्पणी करना चाहता हूं।

इन संशोधनों से तीन बातें पैदा होती हैं। पहली बात मंत्री की पदावधि के विषय में है, दूसरी बात मंत्री की योग्यता के विषय में है और तीसरी बात मंत्रिमंडल की सदस्यता के लिये शर्त के संबंध में है। मैं पहली बात पर अर्थात् मंत्री की पदावधि पर विचार करूंगा। इस विषय में दो संशोधन हैं, एक मि. पोकर का और दूसरा मि. करीमुद्दीन का है। मि. पोकर का संशोधन है कि मंत्री को तब तक अपने पद पर रहना चाहिये, जब तक कि वह सदन का विश्वासपात्र रहे, चाहे और बातें कुछ भी हों। वह भ्रष्टाचारी मंत्री हो, चाहे वह बुरा मंत्री हो, चाहे वह नितांत अक्षम हो, किन्तु यदि उस पर सदन को विश्वास रहे तो किसी को भी उसे पद से हटाने का अधिकार नहीं है। मि. करीमुद्दीन ने जो बात कही है वह, यदि मैं उन्हें ठीक समझा हूं, तो इसके बिल्कुल विपरीत है। उनकी धारणा यह दिखाई देती है कि मंत्री को केवल कुछ निर्धारित अपराधों, जैसे कि घूस,

भ्रष्टाचार, राजद्रोह आदि के महाभियोग द्वारा ही हटाया जायेगा, चाहे वह सदन का विश्वासपात्र हो या न हो। यदि एक मंत्री पर सदन का विश्वास न भी रहे, तो भी जब तक उनके द्वारा निर्धारित कारणों से उस पर महाभियोग न लगाया जाये, तब तक प्रधान मंत्री अथवा प्रधान को उसे हटाने का अधिकार नहीं होगा। यह महती परिषद् देखेगी कि इन दोनों संशोधनों में सामञ्जस्य तो है ही नहीं, भले उनमें ही ये परस्पर विरोधी न हों। मेरा निवेदन है कि अनुच्छेद 62 के उपखण्ड (2) में जो प्रावधान है वह कहीं अच्छा है और उसमें दोनों बातें आ जाती हैं। अनुच्छेद 62 के खंड (2) में कहा गया है कि मंत्रिगण प्रधान के इच्छाकाल तक अपने पद पर आसीन रहेगा। इसका अर्थ यह है कि मंत्री को दो कारणों से पदच्युत किया जा सकता है। एक कारण, जिससे कि वह अनुच्छेद 62 के खंड (2) में कथित प्रावधानों के अन्तर्गत पदच्युत किया जा सकता है, यह है कि वह सदन का विश्वास खो चुका हो, और दूसरा यह कि उसका प्रशासन 'शुद्ध' नहीं है क्योंकि यहां 'इच्छाकाल' शब्द का प्रयोग किया गया है। अनुच्छेद 62 के उस खंड विशेष के अधीन प्रधान को पूरा अधिकार होगा कि किसी मंत्री विशेष को हटाने के लिये इस आधार पर कह सके कि वह भ्रष्टाचार, अथवा घूस अथवा कुशासन का अपराधी है, चाहे वह मंत्री शायद ऐसा व्यक्ति हो जिस पर कि सदन को विश्वास हो। मेरे विचार में माननीय मंत्री यह समझ जायेंगे कि मंत्री की पदावधि के बारे में केवल एक ही नहीं, वरन् दो शर्तें होनी चाहियें, और वे दो शर्तें हैं प्रशासन की शुद्धता और सदन का विश्वास। इस अनुच्छेद में दोनों के लिये बन्धान है, अतः मेरे माननीय मित्र मि. पोकर और मि. करीमुद्दीन द्वारा पेश किये गये संशोधन सर्वथा अनावश्यक हैं।

दूसरी बात, अर्थात् मंत्री की योग्यताओं के विषय में, तीन संशोधन हैं। पहला संशोधन मि. मोहम्मद ताहिर का है। उनका सुझाव है कि किसी व्यक्ति को तब तक मंत्री नियुक्त नहीं करना चाहिये जब तक कि अपनी नियुक्ति के समय वह सदन का निर्वाचित सदस्य न हो। वे परन्तुक में उल्लिखित संभावना को स्वीकार करना नहीं चाहते कि चाहे एक व्यक्ति अपनी नियुक्ति के समय सभा का सदस्य न हो, किन्तु वह मंत्रिमंडल में इस शर्त पर मंत्री नियुक्त किया जा सके, वह छः मास के भीतर ही सभा का सदस्य बन जाये। प्रोफेसर के.टी. शाह ने दूसरी शर्त रखी है। उन्होंने कहा कि मंत्री को बहुसंख्यक दल में से होना चाहिये और वे तीसरी शर्त यह चाहते हैं कि उसकी कुछ विशेष शैक्षणिक स्थिति होनी

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

चाहिये। अब, पहली बात के संबंध में, कि कोई व्यक्ति तब तक मंत्री नियुक्त होने का अधिकारी नहीं होता जब तक कि वह अपनी नियुक्ति के समय सभा का निर्वाचित सदस्य न हो, मेरा ख्याल है कि ऐसा कहते समय कुछ महत्त्वपूर्ण मामलों को ध्यान में नहीं रखा जाता, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। पहला यह है कि यह कल्पना करना सर्वथा संभव है कि कोई व्यक्ति जो मंत्री के पद पर आसीन होने के सर्वथा योग्य हो, किसी निर्वाचन-क्षेत्र में किसी कारण से पराजित हो जाये। संभव है निर्वाचन-क्षेत्र वाले चिढ़ गये हों और उसने उस निर्वाचन-क्षेत्र विशेष को नाराज कर दिया हो। कोई कारण नहीं है कि ऐसे योग्य व्यक्ति को इस धारणा के आधार पर मंत्रिमंडल का सदस्य नियुक्त न किया जाये कि वह उसी निर्वाचन क्षेत्र से अथवा किसी अन्य निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित हो जायेगा। आखिर केवल उतना ही विशेषाधिकार तो उसे दिया गया है कि वह छः मास ही तक रहेगा? इससे उस व्यक्ति को यह अधिकार नहीं मिल जाता कि वह सर्वथा बिना निर्वाचित हुए ही सभा में बना रहेगा। मेरा दूसरा निवेदन यह है कि किसी मनोनीत व्यक्ति के मंत्रिमंडल का सदस्य होने से न तो संयुक्त उत्तरदायित्व के ही सिद्धान्त का उल्लंघन होता है और न इससे विश्वास के सिद्धान्त का उल्लंघन होता है, क्योंकि यदि वह मंत्रिमंडल का सदस्य होता है, यदि वह मंत्रिमंडल की नीति को स्वीकार करने के लिये उद्यत है तो वह मंत्रिमंडल का अंग होता है और यदि वह सदन का विश्वासपात्र नहीं रहता तो वह मंत्रिमंडल के साथ ही त्यागपत्र देता है। उसके मंत्रिमंडल का सदस्य होने से किसी प्रकार कोई असुविधा अथवा उन मूलभूत सिद्धान्तों का हनन नहीं होता जिन पर संसदात्मक सरकार आधारित होती है। अतः मेरे विवेकानुसार यह योग्यता सर्वथा अनावश्यक है।

दूसरी शर्त अर्थात् सदस्य के बहुसंख्यक दल का सदस्य होने के संबंध में मेरा ख्याल है कि प्रोफेसर के.टी. शाह की ऐसी कल्पना है या उन्हें ऐसा विश्वास और आशा है कि निर्वाचक निर्वाचन में सदा एक ऐसे दल को चुनेंगे जो कि बहुमत में होगा और एक अन्य दल को चुनेंगे जो कि अल्पमत में होगा किन्तु विरोध में होगा। अब, ऐसी धारणा बनाना ठीक नहीं होगा। यह सर्वथा संभव और स्वाभाविक होगा, कि किसी निर्वाचन के बाद संसद् में कई दल हों, जिनमें से कोई बहुमत में न हो। यह सिद्धान्त उस प्रकार की स्थिति में कैसे लागू हो सकता है अथवा काम में लिया जा सकता है, जब कि तीन दल हों, जिनमें से एक का भी बहुमत न हो? अतः उस प्रकार की स्थिति में प्रोफेसर के.टी. शाह

द्वारा रखी गई शर्त के कारण तो शासन सर्वथा असंभव हो जायेगा।

दूसरी बात, यह मानते हुए भी कि सदन में बहुमत दल है, किन्तु कोई अत्यधिक स्थिति है और बहुमत दल तथा अल्पमत दल दोनों की ओर से यह इच्छा प्रकट की जाती है कि संकटकाल की अवधि में दलीय संघर्षों को बंद कर देना चाहिये तथा कोई दलीय सरकार नहीं बननी चाहिये, जिससे कि सरकार संकटकाल का सामना कर सके—उस अवस्था में भी ऐसी स्थिति का सामना केवल मिश्रित सरकार बना कर ही किया जा सकता है, और यदि एक मिश्रित सरकार बनती है तो यह स्पष्ट है कि अल्पमत दल के सदस्यों को मंत्रिमंडल के सदस्य बनने का अधिकार होगा। अतः मेरा निवेदन है कि इन दोनों कारणों से यह संशोधन व्यावहारिक नहीं है।

शिक्षा-संबंधी योग्यता के विषय में, चाहे मेरे मित्र श्री महावीर त्यागी ने साक्षरता विषयक योग्यता के विषय में कुछ भी कहा हो, किन्तु जब मैंने उनसे पूछा कि साक्षरता की योग्यता के विषय में उन्होंने इतने बलपूर्वक अपने विचारों को प्रगट किया है, इस बात को ध्यान में रखते हुए क्या उन्हें साक्षरता संबंधी योग्यता पर कोई सैद्धान्तिक आपत्ति है, तो उन्होंने मुझे प्रसन्नतापूर्वक यह आश्वासन दिया था कि कोई नहीं है। साथ ही, मुझे आश्चर्य है कि ऐसा कोई प्रधानमंत्री अथवा प्रधान होगा जो अंग्रेजी न जानने वाले व्यक्ति को नियुक्त करेगा, यह मानते हुए कि अंग्रेजी कार्यकारिणी अथवा संसद् के कार्य के हेतु सरकारी भाषा रहती है। मैं ऐसी बात की कल्पना नहीं कर सकता। फर्ज़ किया सरकारी भाषा हिन्दी, हिन्दुस्तानी अथवा उर्दू, चाहे कुछ भी हो—उस अवस्था में, मैं यह सोचना भी असंभव समझता हूं कि कोई प्रधान-मंत्री इतना मूर्ख होगा कि वह ऐसे मंत्री को नियुक्त करे जो कि देश की अथवा शासन की सरकारी भाषा को न समझे, और यद्यपि यह बात ध्यान में रखना निस्संदेह वांछनीय है कि जो व्यक्ति शासन के किसी विभाग का स्वामी होगा, उसकी शैक्षणिक योग्यता उपयुक्त होनी चाहिये, किन्तु मेरे विचार में इस सिद्धान्त को विधान में रखना अनावश्यक सा है।

अब मैं तीसरी शर्त को लेता हूं जो यह है कि मंत्रिमंडल का जो सदस्य बने उसे वास्तव में पद ग्रहण करने से पहले अपने हितों, अधिकारों और संपत्तियों की

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

घोषणा कर देनी चाहिये। प्रोफेसर के.टी. शाह के इस संशोधन को कुछ हद तक श्री कामत ने संशोधित किया है। इस विषय पर परिषद् में वाद-विवाद पहली बार नहीं किया जा रहा है। इस प्रश्न पर उस समय भी बहस हुई थी जब कि प्रधान की नियुक्ति और शपथ संबंधी अनुच्छेद के विषय में भी ऐसे ही संशोधन पेश किये गये थे, और उस समय मैंने इस पर बहुत कुछ कहा था, और उस अवसर पर मैंने जो कुछ कहा था, मैं उसे यहां दोहराना नहीं चाहता। मेरे मित्र श्री कामत ने मुझे स्मरण कराया है कि परिषद् में प्रधान संबंधी अनुच्छेद पर बहस हुई थी तब मैंने क्या कहा था, और मुझे याद है कि मैंने यह अवश्य कहा था कि ऐसा प्रावधान आवश्यक हो सकता है.....

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मैं डाक्टर अम्बेडकर को स्मरण करा सकता हूं कि उन्होंने शब्दशः क्या कहा था? मैं परिषद् के सचिवालय की सरकारी टाइप-लिपि में पढ़ता हूं। उनके यही शब्द हैं:

> "यदि भारत सरकार में किसी व्यक्ति को अपने परिपोषण करने का कोई अवसर है, तो प्रधान मंत्री को है अथवा राज्य के मंत्रियों को है, और ऐसा बन्धान उनकी पदावधि के लिये उन पर लगाया जाना चाहिये किन्तु प्रधान पर नहीं।"

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं भी यही कह रहा था। मैंने तो यह कहा था कि मंत्रियों के विषय में ऐसा बन्धान अपेक्षित हो सकता है, और मेरे मित्र श्री कामत ने फैक्टरी कानून में से कोई धारा पढ़कर भी सुनाई थी जिसमें फैक्टरी दरोगा के लिए ऐसी योग्यताएं अपेक्षित थीं। अब, श्रीमान्, हमें जिस स्थिति पर विचार करना है वह यह है: निस्संदेह, यह अत्यन्त प्रशंसनीय उद्देश्य है कि विभागाधिकारी मंत्रियों को प्रशासन की शुद्धता स्थिर रखनी चाहिये। मैं नहीं समझता कि इस परिषद् में किसी को भी इस पर आपत्ति हो सकती है। हम सबको इस बात में रुचि है कि प्रशासन उच्च स्तर पर रहे, केवल कुशलता में ही नहीं शुद्धता की दृष्टि से भी। वास्तव में प्रश्न यह है: इस शुद्धता को स्थिर रखने के लिये क्या वैधानिक शक्ति हो? मुझे तो दिखता है कि दो बन्धान हो सकते हैं। एक तो यह कि हमें कानून अथवा संविधान द्वारा केवल यही बात निश्चित नहीं कर देनी चाहिये कि मंत्रियों को पद ग्रहण करने के समय अपनी

संपत्ति और दायित्वों की घोषणा करनी चाहिये, किन्तु हमें दो अन्य प्रावधान भी रखने चाहियें। एक यह है कि प्रत्येक मंत्री अपना पद छोड़ते समय पदत्याग के दिन अपनी संपत्ति की घोषणा करेगा, जिससे कि प्रत्येक व्यक्ति, जो कि यह हिसाब लगाना चाहे कि उसकी पदावधि में प्रशासन भ्रष्टाचार युक्त था या नहीं, वह यह देख सकता है कि मंत्री की संपत्ति में कितनी वृद्धि हुई और क्या उस वृद्धि का हिसाब उस बचत में से पूरा किया जा सकता है जो वह अपने वेतन में कर सकता हो। दूसरा बन्धान यह होगा कि यदि हमें पता लगे कि त्यागपत्र देने के दिन तक मंत्री की सम्पत्ति में जो वृद्धि हुई उसका हिसाब उसकी बचत में से पूरा नहीं बैठ सकता, तो उस मंत्री पर अभियोग लगाने के लिये तीसरा बन्धान होना चाहिये कि वह इस बात की सफाई पेश करे कि उसने उस अवधि में अपनी संपत्ति में असाधारण वृद्धि कैसे कर ली। मेरे विचार में, यदि आप इस खंड को प्रभावी बनाना चाहते हैं तो मेरे बताये हुए तीन प्रावधान होने चाहियें। एक तो आरंभ में घोषणा करने का, दूसरा पद छोड़ते समय घोषणा करने का, तीसरा यह बताने के उत्तरदायित्व के विषय में कि वह संपत्ति इतनी असाधारण रूप से कैसे बढ़ी है, और चौथा बन्धान इसे अपराध घोषित करने का हो जिसमें दण्ड अथवा जुर्माने की व्यवस्था हो। आरंभ में केवल इतना ही घोषित करना·····।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** आप अदृश्य पूंजी का अथवा गुप्त पूंजी का कैसे पता लगा सकते हैं या उसे कैसे रोक सकते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** सारी बात ही व्यर्थ है, यह कहना चाहिये। इस संशोधन के बावजूद भी यह किसी मंत्री के लिये संभव हो सकता है कि वह उस अवधि में अपनी पूंजी को इस प्रकार से हस्तांतरित कर दे कि किसी को यह पता न लग सके कि उसने क्या किया है, और इस कारण, यद्यपि उद्देश्य प्रशंसनीय है, किन्तु इसके लिये व्यवस्था बहुत अपूर्ण रखी गई है और मैं कहता हूं कि उपचार कदाचित् रोग से भी अधिक भयानक हो।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या, श्रीमान्, मैं यह समझ लूं कि डॉक्टर अम्बेडकर कम से कम सिद्धान्त में तो इस संशोधन को स्वीकार करते हैं और कि वे अपनी

[श्री एच.वी. कामत]

बात से पीछे नहीं हटे हैं जो उन्होंने परसों कही थी, कि वे वापस नहीं लौटे हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं अपनी बात से बिल्कुल पीछे नहीं हटता। मैं तो बस यही कह रहा हूं कि जिस उपचार का प्रावधान किया गया है वह अत्यन्त अपूर्ण है और प्रभावी नहीं है, और इसलिये, मैं इसे स्वीकार करने की स्थिति में नहीं हूं।

***प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना:** इसे अधिक व्यापक बना दीजिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं अब ऐसा नहीं कर सकता। जिन्होंने यह संशोधन पेश किया है उनका यह काम था कि इसे ऐसा बनाते कि कोई मूर्ख न बना सके और धोखा न दे सके, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया।

अब, श्रीमान्, मैं कह रहा था कि किसी को भी इस संशोधन के उद्देश्य पर कोई आपत्ति नहीं है; किसी को इससे कोई झगड़ा नहीं है। प्रश्न यह है, हम किस प्रकार इस पर रोक लगावें। जैसे कि मैं कह चुका हूं, कानूनी शक्ति अपर्याप्त है। क्या हमारे पास और कोई शक्ति है ही नहीं? मेरे विवेकानुसार, प्रशासन की शुद्धता को स्थिर रखने के लिये हमारे पास एक अधिक अच्छी शक्ति है, और वह है व्यवस्थापिका सभा में एकत्रित और केन्द्रित जनमत की शक्ति। मेरे माननीय मित्र श्री एच.वी. कामत ने फैक्टरी कानून का उदाहरण दिया है। फैक्टरी दरोगा के लिये ऐसी निर्योग्यताएं रखने का कारण यह है कि जनमत का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता, किन्तु मंत्रिमंडल के विरुद्ध तो जनमत का प्रचण्ड दण्ड सदा सामने रहता है, और यदि सभा चाहे तो किसी समय वह किसी कुशासन पर अपनी सत्ता का प्रयोग करके मंत्रिमंडल को हटा सकता है; और इसलिये मेरा निवेदन यह है कि सभा के मत और प्राधिकार में प्रशासन की शुद्धता को स्थिर रखने की अधिक शक्ति है जिससे कि कोई बाह्य शक्ति की आवश्यकता नहीं रहती।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): क्या वह अधिक असंभव कार्य नहीं है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जनतंत्र को इससे भी अधिक असंभव कई कार्य करने होते हैं। यदि आप जनतंत्र चाहते हैं तो आपको उनका सामना करना होगा।

अब, श्रीमान्, मैं अपने माननीय मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन पर आता हूं। वे मेरे पेश किये हुए संशोधन के उत्तर भाग को हटाना चाहते हैं। उनकी आपत्ति यह है कि यदि मेरे संशोधन का उत्तर भाग रहा तो वह मेरे संशोधन के पूर्वभाग को बेकार कर देगा, जिसमें निदेशपत्र में दिये गये निदेशों पर चलने के मंत्री के कर्त्तव्य की चर्चा है। हां, सैद्धान्तिक रूप में तो ऐसा है। वहां भी यही प्रश्न उठता है। हम निदेशपत्र में उल्लिखित आज्ञाओं को कैसे कार्यान्वित करेंगे? इसके दो तरीके हैं। एक तरीका तो यह है कि न्यायालय को इस मामले की जांच करने और इसकी वैधता पर निर्णय देने की अनुमति दी जाये। दूसरा तरीका यह है कि इस मामले को विधान-मंडल पर छोड़ दिया जाये और यह देखा जाये कि वह निन्दा प्रस्ताव द्वारा या अविश्वास प्रस्ताव द्वारा मंत्रिमंडल को बाध्य कर सकता है या नहीं कि मंत्रिमंडल प्रधान को उचित परामर्श दे और वह प्राभियोग द्वारा प्रधान को बाध्य कर सकता है या नहीं कि प्रधान मंत्रिमंडल के उस परामर्श पर चले। मेरे विवेकानुसार, बाद वाला तरीका हमारे प्रयोजन को सिद्ध करने का अधिक अच्छा तरीका है और यह अनुचित तथा असुविधाजनक होगा यदि सभा की किसी कार्यवाही को न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत कर दिया जाये, जिससे कि कोई भी अड़ियल सदस्य सर्वोच्च न्यायालय में जाकर निषेधाज्ञा द्वारा सभापति को सभा का कार्य चलाने से वर्जित करा सके, जब तक कि वह विशेष मामला सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा, जैसी भी स्थिति हो, निश्चित न हो जाये। मुझे दिखाई देता है कि वह तो सभा के कार्य में असह्य बाधास्वरूप हो जायेगा। इंगलिस्तान में भी संसद् अपनी कार्यप्रणाली और कार्य वाहन के विषय में न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं होती, और मेरे विचार में यह बहुत सुचारु नियम है, जिसका हमें अनुसरण करना चाहिये, विशेषत: जब कि सभा के लिये यह देखना सर्वथा संभव है कि निदेश-पत्र का उसी भावना से पालन किया जाये जैसे कि प्रधान और मंत्रिमंडल की इच्छा हो। श्रीमान्, मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** मंत्रिमंडल में मनोनीत सदस्य रखने के विषय में क्या बात है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं उस पर बोल चुका हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 62 के खंड (3) के स्थान पर निम्न खंड रख दिये जायें:

'(3) A member of the Cabinet shall not be liable to be removed except on impeachment by the House on the ground of corruption or treason or contravention of laws of the country or deliberate adoption of policy detrimental to the interests of the State.

(3A) The procedure for such impeachment will be the same as provided in article 50.' "

(3) भ्रष्टाचार अथवा राजद्रोह अथवा देश के कानून का विरोध करने अथवा राज्य हित के लिये घातक नीति को जानबूझ कर ग्रहण करने के आधार पर आगार द्वारा प्राभियोग लगाने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से मंत्रिमंडल का सदस्य हटाया नहीं जा सकेगा।

(3क) ऐसे प्राभियोग के लिये वही विधि होगी जो अनुच्छेद 50 में प्रावहित है।]

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 62 के खण्ड (1) में 'and the other Ministers' शब्दों के पूर्व 'from the members of the party commanding a majority of votes in the People's House of Parliament' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 62 के खण्ड (5) के पश्चात् निम्न नया खण्ड रख दिया जाये:

'5(a) In the choice of his Ministers and the exercise of his other functions under this Constitution, the

President shall be generally guided by the instructions set out in Schedule III-A, but the validity of anything done by the President shall not be called in question on the ground that it was done otherwise than in accordance with such instructions.' "

[5(क) अपने मंत्रियों को चुनने में तथा इस संविधान के अंतर्गत अन्य प्रकार्यों की पूर्ति में, प्रधान साधारणत: अनुसूची 3-क में दी हुई हिदायतों के अनुसार चलेगा, किन्तु प्रधान द्वारा की हुई किसी बात की मान्यता पर इसीलिये आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह बात इन हिदायतों से अन्यथा की गई है।]

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** इस संशोधन पर एक संशोधन है, जिस पर पहले मत लेने चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन 1329 में, प्रस्तावित नये खण्ड (5क) में 'किन्तु प्रधान द्वारा' इससे आरम्भ होने वाले अंत तक समस्त शब्द हटा दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

**उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि खंड (1) के पश्चात् निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये जो खंड (2) हो, और वर्तमान खंडों की संख्याओं में परिवर्तन कर दिया जाये:

'(2) अपने मंत्रियों को चुनने में प्रधान साधारणत: उन हिदायतों के अनुसार चलेगा जो कि अनुसूची 4 (क) में दी गई हैं।'"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 62 के खण्ड (2) के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:

'(2) मंत्रिगण तभी तक पदासीन रहेंगे जब तक कि वे लोक-सभा के विश्वास के पात्र रहें।'"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1319 में अंग्रेजी के इन शब्दों 'People's House of Parliament' (जिन शब्दों को रखने का सुझाव है उन में) के स्थान पर 'House of the People's ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1319 जो प्रोफेसर के. टी. शाह के नाम से है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 62 के खंड (2) में 'during the pleasure of the President' इन शब्दों के स्थान पर 'such time as they possess the confidence of a majority in the People's House of Parliament' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** सूची 4 का संशोधन संख्या 49 जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम से है।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधन सूची के संशोधन संख्या 1320 में, 'maintains' शब्द के स्थान पर 'enjoys' शब्द रख दिया जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1320 जो मि. मोहम्मद ताहिर के नाम में है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 62 के खंड (2) के अंत में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'and till such time as the Council of Ministers maintains the confidence of the Parliament.' "

(और उस समय तक जब तक कि मंत्रिपरिषद् संसद् की विश्वासपात्र रहे।)

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1322 जो कि श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय के नाम पर है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 62 के खण्ड (3) में 'Council' शब्द के पश्चात् 'of ministers' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1325 जो मि. मोहम्मद ताहिर के नाम पर है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 62 के खण्ड (5) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:

'(5) A minister shall at the time of his appointment as such, be a member of the Parliament.' "

[(5) कोई मंत्री अपने पद पर नियुक्त होने के समय संसद् का सदस्य होगा।]"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1326 जिस रूप में कि वह सूची 5 के संशोधन संख्या 71 द्वारा संशोधित हुआ और तत्पश्चात् श्री कृष्णमाचारी और श्री कामत द्वारा संशोधित हुआ।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 62 के खण्ड (5) में 'छः निरन्तर मासों की किसी अवधि तक' इन शब्दों के स्थान पर 'अपनी नियुक्त की तारीख से, छः निरन्तर मासों की अवधि तक' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1328, जिस रूप में कि वह सूची 5 के संशोधन संख्या 72 द्वारा संशोधित हुआ है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 62 के खंड (5) में, 'सदस्य न रहे' इन शब्दों के स्थान पर 'निर्वाचित सदस्य न रहे' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1332 जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 62 के खंड (6) के पश्चात् निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये:

'(7) Every Minister shall, before he enters upon the functions and responsibilities of his office, make a declaration and take steps in regard to any right, title, corresponding to those provided in this Constitution for the President and Vice-President, and shall take an oath—or make a solemn declaration—in the presence of the President and of his colleagues in the following form.' "

[(7) प्रत्येक मंत्री, अपने पद के प्रकार्यों तथा उत्तरदायित्वों को ग्रहण करने से पूर्व, किसी अधिकार, स्वत्व के विषय में ऐसी घोषणा करेगा तथा ऐसे कार्य करेगा, जैसे कि इस विधान में प्रधान तथा उपप्रधान के लिये प्रावहित हैं, और निम्नलिखित प्रपत्र के अनुसार प्रधान तथा अपने साथियों की उपस्थिति में शपथ लेगा अथवा गंभीर निश्चयोक्ति करेगा।]

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** सूची 4 का संशोधन संख्या 51 जो श्री कामत के नाम में है।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1332 के स्थान पर, निम्न संशोधन रख दिया जाये:

"कि अनुच्छेद 62 के खंड (6) के पश्चात् निम्न नया खंड रख दिया जाये:

'(7) Every minister including the Prime Minister shall, before he enters upon his office, make a full disclosure to Parliament of any interest, right, share, property or title he may have in any enterprise, business or trade, directly owned or controlled by the State, or which is in any way aided, protected or subsidised by the State; and Parliament may deal with the

matter in such manner as it may, in the circumstances, deem necessary or appropriate.' "

[(7) प्रत्येक मंत्री, जिसमें प्रधान मंत्री भी शामिल है अपना पद ग्रहण करने से पूर्व, संसद् को अपने किसी हित, स्वत्व, अंश, सम्पत्ति अथवा अधिकार का ब्यौरा दे देगा, जो कि उसे किसी ऐसे कार्य, व्यापार या वाणिज्य, में हो, जिस पर राज्य का नियन्त्रण हो या जिसे किसी प्रकार राज्य से सहायता, रक्षण अथवा आर्थिक मदद मिलती हो, और संसद् उस विषय पर ऐसे तरीके से निर्णय करेगी जो कि वह, उन परिस्थितियों में आवश्यक अथवा उपयुक्त समझे।] "

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** सूची 4 का संशोधन संख्या 52, जो कि मि. नज़ीरुद्दीन के नाम पर है।

"कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 1336 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 62-ए में 'सर्वोच्च न्यायालय के अथवा संघ के किसी राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाध्यक्ष' ये शब्द हटा दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1336 जो प्रोफेसर के. टी. शाह के नाम पर है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 62 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'62-A. No one shall be elected or appointed to any public office including that of the President, Governor, Minister of the Union or of any State of the Union, Judge of the Supreme Court or of any High Court in any State in the Union, who—

(a) is not able to read or write and express in the English language ; or

(b) within ten years from the day when this Constitution comes into operation, is not able to read or write or express himself in the National language; or

[उपाध्यक्ष]

(c) or who has been found guilty at any time before such election or appointment of any offence against the safety, security or integrity of the Union; or

(d) of any offence involving moral turpitude and making him liable on conviction to a maximum punishment of two years' imprisonment; or

(e) or who has not prior to such election or appointment served in some public body, or done some form of social work, or otherwise proved his fitness, capacity and suitability for such election or appointment as may be laid down by Parliament by law in that behalf.' "

[(62-ए) ऐसा कोई व्यक्ति किसी सरकारी पद के लिये, जिनमें प्रधान, गवर्नर, संघीय मंत्री अथवा संघ के किसी राज्य के मंत्री, सर्वोच्च न्यायालय के अथवा संघ के किसी राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाध्यक्ष के पद भी सम्मिलित हैं, नियुक्त अथवा निर्वाचित नहीं किया जायेगा, जो–

(क) अंग्रेजी भाषा में लिखने, पढ़ने अथवा अपने विचार व्यक्त करने के योग्य न हो; अथवा

(ख) इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने के दस वर्ष के भीतर ही, राष्ट्रभाषा में पढ़ने, लिखने अथवा अपने विचार व्यक्त करने के योग्य न हो; अथवा

(ग) किसी समय ऐसे निर्वाचन अथवा नियुक्ति से पूर्व संघ की सुरक्षा, संरक्षा अथवा अखंडता के विरुद्ध किसी अपराध के लिये दोषी सिद्ध हुआ हो; अथवा

(घ) ऐसे नैतिकपतन संबंधी अपराध का दोषी सिद्ध हुआ हो जिस पर उसे दो वर्षों से अधिक कारावास का दंड दिया जा सकता हो; अथवा

(ङ) ऐसे निर्वाचन अथवा नियुक्ति के पूर्व किसी सार्वजनिक संस्था में सेवाकार्य न कर चुका हो, अथवा किसी प्रकार का सामाजिक कार्य

न कर चुका हो, अथवा ऐसे निर्वाचन अथवा नियुक्ति के लिये अन्यथा अपनी योग्यता, क्षमता और उपयुक्तता सिद्ध न कर चुका हो, जैसे कि इस विषय में संसद् कानून द्वारा व्यवस्था करे।]"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** इस संशोधन पर एक संशोधन है। उस पर पहले मत लिये जाने चाहियें।

***उपाध्यक्षः** उस पर पहले लिये गये। शायद माननीय सदस्य कार्यवाही को ध्यान से नहीं समझ रहे हैं।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 62 विधान का भाग हो।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 62 विधान में जोड़ दिया गया।*

***उपाध्यक्षः** अब हम अगले.....।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** उपाध्यक्ष महोदय, क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूं कि परिषद् अनुच्छेद 67 को ले ले, क्योंकि परिषद् के बहुत से सदस्यों की यह इच्छा है कि निर्वाचन संबंधी अनुच्छेदों को पहले पारित कर दिया जाये जिससे कि निर्वाचन-व्यवस्था को स्थापित किया जा सके?

***बी. पोकर साहिब बहादुरः** उपाध्यक्ष महोदय, मुझे इस प्रस्तावित कार्यप्रणाली पर तीव्र आपत्ति है। वास्तव में सदस्यों को यह जानने का अधिकार है कि परिषद् का कार्य किस क्रमानुसार होगा। यदि अकस्मात्, किसी सदस्य विशेष के बहम के अनुसार, कोई अनुच्छेद विशेष अचानक ले लिया जाये, तो मेरा निवेदन है कि इससे इस परिषद् के माननीय सदस्यों को बहुत असुविधा हो जायेगी और उनके लिये काम करना असंभव हो जायेगा। अनुच्छेद 67 अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है और यदि उस पर पहले विचार किया जाना है तो आप द्वारा इसकी घोषणा की जानी चाहिये और माननीय सदस्यों को इसकी पर्याप्त सूचना मिलनी चाहिये और इसलिये, मुझे अपने माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के सुझाव पर प्रबल आपत्ति है।

***उपाध्यक्ष:** मैं माननीय सदस्य को स्मरण कराना चाहता हूं कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के सुझाव को परिषद् की अनुमति लिये बिना कार्यान्वित नहीं किया जा सकता, और मैं यथासमय ऐसी अनुमति प्राप्त करूंगा।

दूसरी बात, जहां तक वैधानिक आपत्ति का प्रश्न है, मैं माननीय सदस्य को स्मरण कराना चाहता हूं कि जो कार्यवली भेजी गई है उसमें हमने स्पष्टत: कह दिया है कि अमुक भाग लिया जायेगा। ऐसा विशेष संकेत नहीं है। अन्तत:, मैं उन्हें याद दिलाना चाहता हूं कि विचाराधीन संशोधनों का वर्गीकरण माननीय सदस्यों के पास भेज दिया गया है। उस आपत्ति को मैं नहीं मानता।

वास्तविक आपत्ति यह है कि आया परिषद् सामूहिक रूप से अनुच्छेद 47 को लेना चाहती है। मैं परिषद् को सूचना देना चाहता हूं कि मुझे बताया गया है कि कई प्रान्तों में निर्वाचन सूचियां लगभग पूर्ण हैं और कुछ प्रांतों में सूचियां तैयार की जा चुकी हैं। अब यह हम पर है कि अनुच्छेदों के पास करने में शीघ्रता करें क्योंकि यदि कोई बड़ा परिवर्तन कर दिया गया, तो प्रांतीय सरकारों के कार्य में बड़ा खलल पड़ जायेगा। हमें इस बात को ध्यान में रखना है। किन्तु यह परिषद् को निर्णय करना है कि आया वह अपनी प्रतिष्ठा पर अड़ी रहेगी और प्रांतीय सरकार की कठिनाइयों को बढ़ाती जायेगी।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं इस संबंध में आपके समक्ष एक विचार उपस्थित कर सकता हूं? जहां तक मुझे स्मरण है, मसौदा-समिति ने इस खंड पर एक संशोधन का सुझाव दिया है। इस संशोधन में कहा गया है कि इस अनुच्छेद में, राज्यों के लिये निश्चित निर्वाचित स्थानों के अनुपात की जगह प्रत्येक राज्य के लिये निश्चित संख्या रख दी गई। अत: मेरे विचार में इस अनुच्छेद पर अब विचार नहीं होना चाहिये, अपितु आगामी सोमवार को होना चाहिये। इससे व्यवहार रूप में कोई विलम्ब नहीं होगा। लगभग एक बजने ही वाला है और क्योंकि आज शुक्रवार है अत: मेरा ख्याल है कि अपनी साधारण परम्परानुसार आज परिषद् एक बजे उठ जायेगी।

***उपाध्यक्ष:** हां।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** यदि हम इस खंड को सोमवार को लें तो हमें इस विषय पर और पूरी तरह विचार करने का समय मिल जायेगा और हम यह भी पता कर सकेंगे कि यहां राज्यों के प्रतिनिधित्व के विषय में पिछली बार क्या किया गया था। इस विषय पर स्वयं डॉक्टर अम्बेडकर से परामर्श करने का भी समय हमें मिल जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** यह अधिक उचित आपत्ति दिखाई देती है। मैं सर्वथा तैयार हूं.....।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मुझे एक और भी अधिक महत्त्वपूर्ण विचार पेश करना है।

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 62-ए को लेंगे। हम अनुच्छेद 67 सोमवार को लेंगे। उस संबंध में मैं परिषद् को स्मरण कराना चाहता हूं कि निर्वाचन प्रावधानों से संबंधित अन्य अनुच्छेद भी हैं। वे हैं अनुच्छेद 149, 150, 289, 290 और 291 । मैं विभिन्न अनुच्छेदों का वर्गीकरण किस प्रकार करना चाहता हूं इस विषय में माननीय सदस्यों को यथासमय सूचना दे दी जायेगी, जिससे कि ज्यों ही अनुच्छेद 67 समाप्त हो त्यों ही हम अनुच्छेद 149 को ले सकें और तत्पश्चात् 150 को, और इसी प्रकार क्रमश: चल सकें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** क्या उससे कार्य में कुछ भी प्रगति होगी? यदि अनुच्छेद 67 पारित भी हो जाये तो वह प्रवर्तन में तो नहीं आयेगा, क्योंकि जब तक हम समस्त विधान को तृतीय वाचन के पश्चात् पारित न कर दें और उस पर प्रधान हस्ताक्षर न कर दे.....।

***उपाध्यक्ष:** हम जब अनुच्छेद 67 को पारित करेंगे तब इस पर विचार करेंगे। कदाचित् कुछ वकीलों की बुद्धि से कोई ऐसा उपाय निकल जायेगा, जिससे कि हम इस कठिनाई को दूर कर सकें।

---

## अनुच्छेद 62-ए

***उपाध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 62-ए और 62-बी पर आते हैं। संशोधन संख्या 1338 ।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 62 के पश्चात्, निम्न नया अनुच्छेद 62-ए रख दिया जाये:

[प्रो. के.टी. शाह]

'62-A. No one selected to be a Minister shall be a member of Parliament in either House; and if already a member of either House, he shall, before accepting the office of a Minister, resign his seat in the Legislature. The provisions of article 48-A shall apply to every Minister *mutatis mutandis*.

62-B. A Minister shall have the right to sit in either House of Parliament and to address the House or any of its committees, at any time he deems necessary but not vote on any, issue coming before any such body.' "

[62-ए कोई भी व्यक्ति जो मंत्री चुना जाये संसद् के किसी आगार का सदस्य न होगा; और यदि वह पहले ही किसी आगार का सदस्य हो तो, वह, मंत्रिपद स्वीकार करने से पहले विधान-मंडल में अपने पद से त्याग-पत्र दे देगा। अनुच्छेद 48-ए के प्रावधान प्रत्येक मंत्री पर यथायोग्य लागू होंगे।

62-बी मंत्री को संसद् के किसी आगार में बैठने का, और आगार में अथवा उसकी किसी समिति में, जब भी वह आवश्यक समझे तभी, भाषण देने का अधिकार होगा, किन्तु ऐसे किसी निकाय के समक्ष पेश होने वाले किसी प्रश्न पर मत देने का अधिकार न होगा।]

श्रीमान्, इस प्रस्ताव को परिषद् में पेश करने के पहले क्यों मैं यह कह सकता हूं कि यह संशोधन मेरी संशोधनों की योजना का फल है जो कि उस समय मेरे दिमाग में थी जब कि मैं यह सुझाव दे रहा था कि कार्यकारिणी अथवा मंत्रिमंडल को विधायिका से पृथक् कर देना चाहिये और राज्य के सब अंगों को एक-दूसरे से पृथक् कर देना चाहिये। क्योंकि परिषद् ने उसे अस्वीकार कर दिया है अतः मुझे आश्चर्य है कि इस प्रस्ताव के प्रथम भाग को प्रस्तावित करना नियमानुकूल होगा या नहीं।

***उपाध्यक्षः** दूसरा भाग ले लीजिये।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** उस अवस्था में मैं दूसरे भाग को पेश कर रहा हूं जिसमें कहा गया है कि मंत्रियों को किसी भी आगार में बैठने का

अधिकार होना चाहिये चाहे वे मूलत: किसी आगार के हों अथवा उसमें चुने गये हों।

***पंडित ठाकुरदास भार्गव:** क्या मैं बता सकता हूं कि यह अनुच्छेद 72 का विषय है?

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** तो मैं इसे उस समय ही पेश करूंगा।

***उपाध्यक्ष:** अब हम नया अनुच्छेद लें या अब उठ जायें। अनुच्छेद 63 शायद आज समाप्त नहीं होगा। समस्त सोमवार को तो मैं अनुच्छेद 67 के लिये रखना चाहता हूं।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** हम अनुच्छेद 66 को समाप्त कर सकते हैं। वह छोटा-सा है।

***उपाध्यक्ष:** मैं नये अनुच्छेद को आरंभ नहीं करना चाहता क्योंकि उससे हमारे कार्य में सोमवार को बाधा पड़ेगी, और मेरा अनुमान है कि मंगलवार से अपना ध्यान लगाने के लिये हमारे पास और दूसरा काम है। मुझे परिषद् को सूचना देनी है कि यह अत्यन्त संभव है कि हम अपना कार्य 8 जनवरी को समाप्त कर लेंगे; किन्तु 8 जनवरी अर्थात् शनिवार को बैठक होगी। औपचारिक घोषणा बाद में की जायेगी, किन्तु मैं अग्रिम सूचना दे रहा हूं ताकि माननीय सदस्यों को अपनी यात्रा के लिये स्थान निश्चित करने में कोई कठिनाई न पड़े।

परिषद् आगामी सोमवार को प्रात: के दस बजे तक के लिये स्थगित होती है।

*तत्पश्चात् परिषद् सोमवार दिनांक 3 जनवरी, 1949 को प्रात: दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।*

---

Con. 3. VII. 31. 49
350

अंक 7
संख्या 31

सोमवार,
3 जनवरी
सन् 1949 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी) 2069-2141
[अनुच्छेद 66 तथा 67 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

सोमवार, 3 जनवरी, सन् 1949 ई.

---

*भारतीय संविधान-परिषद कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः दस बजे, माननीय उपाध्यक्ष (डॉ. एच. सी. मुकर्जी) के सभापतित्व में समवेत् हुई।*

---

## विधान का मसौदा-( जारी )

अनुच्छेद 66

***उपाध्यक्ष** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): सभा का कार्य आरम्भ करने से पूर्व मैं सदस्यों से कहूंगा—और मुझे इसका पक्का विश्वास है कि सभी सदस्य इससे सहमत होंगे—कि सब लोग एक मिनट खामोश खड़े होकर परमपिता परमात्मा के प्रति, जो सभी प्राणियों एवं शक्तियों का मूल आधार है और जिसकी उपासना हम सभी अपने-अपने तरीकों से करते हैं, उसके लिये अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करें कि अन्ततोगत्वा काश्मीर में युद्ध-विराम का समझौता हो गया।

(सभा एक मिनट तक नीरव खड़ी रही)

आप सबको धन्यवाद है।

आज का काम हम प्रारम्भ करेंगे अनुच्छेद 66 को लेकर। इसके पास हो जाने पर हम अनुच्छेद 67 को उठायेंगे।

सभा के समक्ष प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 66 को विधान का अंग समझा जाये।"

इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में संशोधन नं. 1353 मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम से आया है। इसे उपस्थित करने की अनुमति नहीं दी जाती है क्योंकि इसमें सार की बात नहीं है।

संशोधन नं. 1354 और 1355 दोनों का एक ही आशय है। 1355 को उपस्थित करने की अनुमति दी जाती है। यह श्री ब्रजेश्वरप्रसाद के नाम में है।

(संशोधन नं. 1354 और 1355 पेश नहीं किये गये।)

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[उपाध्यक्ष]

नं. 1358 अब उपस्थित किया जा सकता है। यह श्री लोकनाथ मिश्र और श्री मोहनलाल गौतम के नाम से है।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्, कि:

"अनुच्छेद 66 से 'and two Houses to be known respectively as the Council of States' शब्द निकाल दिये जायें।

मेरा संशोधन स्वीकृत होने पर अनुच्छेद का रूप यह होगा:—

"There shall be a Parliament for the Union which shall consist of the President and House of the People.' "

(संघ के लिये एक संसद् होगी जो प्रधान और लोक-सभा की बनेगी।)

इसका नतीजा यह होगा कि संसद् का, राज्य-परिषद् नामक दूसरा आगार नहीं होगा।

मेरा निवेदन है, श्रीमान्, कि सिद्धान्तत: मैं दूसरे आगार के विरुद्ध हूं। किन्तु आज देशवासियों की जो मनोदशा है तथा विधान में, दूसरे आगार की रचना के लिये जो व्यवस्था रखी गई है इनको देखते हुए मैं तो नहीं समझता कि दूसरे आगार की कोई आवश्यकता है और न मैं यही समझता हूं कि दूसरा आगार हमारे लिये कुछ उपयोगी होगा। जहां तक मैंने विधान का तथा वैधानिक नजीरों का अध्ययन किया है, मैं तो यही समझता हूं कि आजकल प्राय: सभी यह स्वीकार करते हैं कि द्वितीय आगार की अब कोई जरूरत नहीं रह गई है। दूसरे आगार के रखने के पक्ष में एकमात्र दलील जो आजकल आमतौर पर पेश की जाती है वह यह है कि लोक-सभा के फैसलों पर इसका हितकर प्रभाव पड़ेगा क्योंकि लोक-सभा में अधिकतर आम जनता के प्रतिनिधि आते हैं और आजकल जनता बड़ी अधीर है। इसलिये मेरा निवेदन यह है कि जब तक कि दूसरे आगार की रचना प्रणाली में परिवर्तन नहीं किया जाता है और हम एक ऐसी व्यवस्था को नहीं अपनाते हैं जो शुद्धत: भारतीय हो, भारत की गहन एवं सर्वांगीण-दृष्टि मूलक संस्कृति पर आधृत हो, जो भारतीय भावना एवं प्रवृत्ति पर आधृत हो, जो प्रशांति-कर प्रभाव पैदा करने वाली हमारी परम्पराओं के आधार पर निर्मित हो, तब तक खाली एक दूसरा आगार बना देने से ही उसका लोक सभा पर कोई

प्रभाव न पड़ेगा। पर ऐसा तो होने वाला नहीं है इसलिये मैं नहीं समझता कि दूसरे आगार की कोई वास्तविक आवश्यकता हमें है। इसके निर्माण का एकमात्र परिणाम यह होगा कि सरकारी धन का अपव्यय होगा और समय की बर्बादी होगी। इसलिये मेरा मत यह है कि संविधान में द्वितीय आगार की जो रचना पद्धति रखी गई है उसमें अगर परिवर्तन नहीं किया जाता है तो अच्छा यह होगा कि द्वितीय आगार की व्यवस्था ही न की जाये। मुझे प्रसन्नता है कि अपने उड़ीसा प्रान्त में हम लोगों ने द्वितीय आगार न रखने का निश्चय किया है और वहां केवल एक ही आगार हम रखेंगे। मेरा यह मत नहीं है कि दूसरे आगार के अभाव में, आज जो हमारी स्थिति है, उसमें, हमारा देश किसी तरह से अकिंचन हो जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 1356 तथा 1359 एक ही आशय के हैं। बेगम ऐजाज रसूल अपना संशोधन नं. 1356 पेश कर सकती हैं।

***बेगम ऐजाज रसूल** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मेरा प्रस्ताव यह है, श्रीमान् कि:

> "अनुच्छेद 66 में 'There shall be a Parliament for the Union which' शब्दों की जगह 'The Legislature of the Union shall be called the Indian National Congress and' शब्द रखे जायें।"

उस सूरत में अनुच्छेद का रूप यह होगा:

> "The Legislature of the Union shall be called the Indian National Congress and shall consist of a President and two Houses to be known respectively as the Council of States and the House of the People."
>
> (संघ के विधान-मण्डल का नाम होगा इण्डियन नैशनल कांग्रेस और उसमें राष्ट्रपति तथा दो आगार होंगे जिनके नाम क्रमश: राज्य-परिषद् और लोक-सभा होंगे।)

यह संशोधन रखने में मेरा उद्देश्य यह है कि 'पार्लामेण्ट' शब्द के बदले एक ऐसा नाम रखा जाये जो हमारे देश को और दुनिया को उस संगठन के नाम का संकेत दे सके जिसने देश के स्वातन्त्र्य-संग्राम का सूत्रपात तथा संचालन किया है। यदि 'पार्लामेण्ट' शब्द की जगह 'इण्डियन नैशनल कांग्रेस' शब्द रखे जाते

[बेगम ऐजाज रसूल]

हैं तो इससे यह होगा कि कांग्रेस के स्वातन्त्र्य-संग्राम को हम सदा के लिये देश की स्मृति में प्रतिष्ठित कर देंगे। इससे यह भी होगा कि कांग्रेस को हम गिरने से बचा लेंगे क्योंकि प्राय: यही होता है कि प्रत्येक राजनैतिक दल कालान्तर में चल कर जरूर गिर जाया करते हैं। इससे यह भी होगा कि भारतीय जन समाज कांग्रेस के जादू से मुक्त हो जायेगा और वह सोच समझ कर अपने मताधिकार का प्रयोग करेगा क्योंकि अन्यथा, कांग्रेस का नाम उनकी भावनाओं पर अनुचित प्रभाव डालेगा। ऐसा करना हमारे लिये इस कारण से और भी आवश्यक है कि कांग्रेस अतीत में, विशेषत: एक आन्दोलन के रूप में थी न कि एक दल के रूप में। स्वातंत्र्य के लिये राष्ट्र के हृदय में जो एक तीव्र लालसा थी, कांग्रेस उसका प्रतीक थी और त्याग तथा कष्ट की ओर जनता को सदा आकृष्ट किया करती थी। किन्तु कांग्रेस आज केवल एक दल के रूप में बदल गई है जिससे हो सकता है कि राजनैतिक मनचलों और सफल चोर-बाजारुओं के लिये यह एक सुन्दर आखेट-स्थल बन जाये।

कांग्रेस शब्द कोई नया नहीं है। अमेरिका के पार्लामेण्ट को कांग्रेस ही कहा जाता है और अगर भारत के विधान-मण्डल के लिये भी इसी शब्द को प्रयोग किया जाता है तो निश्चय ही इससे विश्व का ख्याल उन आदर्शों तथा सिद्धान्तों की ओर जायेगा जिन्हें कांग्रेस मानती है। इसलिये मैं समझती हूं कि हमारे लिये उपयुक्त यही है कि हम संविधान में 'पार्लामेण्ट' शब्द के लिये 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' शब्दों को रखें। आशा है मेरे इस सुझाव पर सभा समुचित ध्यान देगी और सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी। इन शब्दों के साथ मैं यह संशोधन उपस्थित करती हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब छठे सप्ताह की सूची 1 में संशोधन नं 1 है जो श्री आर. के. सिधवा के नाम से है। अभी-अभी जो संशोधन यहां पेश किया गया था, उसमें संशोधन लाने के अभिप्राय से यह संशोधन रखा जा रहा है। श्री सिधवा इसे पेश कर सकते हैं। सिधवा साहब सभा भवन में उपस्थित नहीं दिखाई देते हैं। अच्छा, तब प्रो. शाह अपने संशोधन नं. 1397 को पेश कर सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 66 से 'the President and' शब्द हटा दिये जायें।"

संशोधित अनुच्छेद का स्वरूप यह होगा:

"There shall be a Parliament for the Union which shall consist of two Houses to be known respectively as the Council of States and the House of the People."

(संघ के लिये एक संसद् होगी जिसमें दो आगार होंगे जिनके नाम क्रमश: राज्य-परिषद् तथा लोक-सभा होंगे।)

इस संशोधन को उपस्थित करते हुए मैं सभा के ध्यान में यह बात लाना चाहता हूं कि इस खण्ड का जो वर्तमान स्वरूप है, वह मेरी राय में, ब्रिटिश-पद्धति की नकल है और अनावश्यक नकल है। ब्रिटेन में सम्राट् वहां की समूची शासन-व्यवस्था, समस्त संविधान और खास करके वहां की पार्लामेण्ट का आवश्यक अंग समझा जाता है। वहां जो भी कानून बनाये जाते हैं उनके सम्बन्ध में यही कहा जाता है कि "वे परम महिमा-मण्डित सम्राट् द्वारा, दोनों आगारों के परामर्श एवं सहमति से बनाये गये हैं" (made by the King's Most Excellent Majesty, with the advice and consent of the two Houses)। वहां सम्राट् के नाम से न्याय किया जाता है; डाक विभाग सम्राट् के नाम पर काम करता है; वहां की सारी सेना, नौ बल एवं प्रतिरक्षा बल, तथा वहां की सभी असैनिक सेवायें सम्राट् के अधीन समझी जाती हैं।

किन्तु यह एक ऐसी व्यवस्था है जो अपने देश के संविधान के लिये उपयुक्त नहीं हो सकती है और न हमें अपने संविधान में इसकी नकल ही करनी चाहिये। सपरिषद्-सम्राट् (the King in Parliament) की जो पद्धति वहां बरती जाती है वह न केवल परम्परा पर ही आधृत है बल्कि इसका एक ठोस सा वैधानिक आधार है जिस पर यह स्थिर है। उदाहरण के लिये परमाधिकार सम्बन्धी शक्तियों (Prerogative powers) को ही लीजिये जिनका प्रयोग सम्राट् ही करता है। इसमें शक नहीं कि इन अधिकारों का प्रयोग वह अपने मन्त्रियों की सलाह से ही करता है फिर भी ये अधिकार केवल सम्राट् को ही प्राप्त हैं।

किन्तु भारत के राष्ट्रपति को यदि हम इंग्लैण्ड के राजा का यहां स्थानीय बनाते हैं और इस दिशा में इंग्लिश संविधान का अनुकरण करते हैं तो यह करना गलत होगा। भारतीय संघ के राष्ट्रपति को यहां के विधान-मण्डल का अंग बनाना ठीक नहीं होगा।

परमाधिकार की शक्तियां जो कि ब्रिटेन के नरेश को प्राप्त हैं, वह हमारे राष्ट्रपति को प्राप्त होंगी ही नहीं। हमारे ख्याल से अपने संविधान में मूलभूत

[प्रो. के.टी. शाह]

विचार तो यह है, अगर मैं बिल्कुल गलत नहीं समझ बैठा हूं, कि राष्ट्रपति केवल प्रतीक मात्र रहेगा जो प्रत्येक मामले में और प्रत्येक अवस्था में अपने मन्त्रियों की राय से ही काम करेगा। उसका अपना अधिकार कुछ नहीं होगा और वह केवल शोभा के लिये राज्य के राष्ट्रपति के रूप में रहेगा।

अगर अपने संविधान में राष्ट्रपति को यही स्थिति प्राप्त है जैसा कि मैंने अभी बताया है, और मैं तो नहीं देखता कि संविधान में ऐसी कोई बात है जो इस मत का खण्डन करती हो, तो मेरा यही कहना है कि इस अनुच्छेद 66 में राष्ट्रपति को लाना और उसे अपनी संसद का आवश्यक अंग बनाना सर्वथा असंगत है और हमें ऐसा नहीं करना चाहिए।

हमारा यह संविधान इंग्लैण्ड के संविधान की तरह शनैः शनै कालक्रम से पीढ़ी दर पीढ़ी शताब्दियों में नहीं विकसित हुआ है। ब्रिटिश संविधान का निर्माण हुआ है वहां के राजाओं के अधिकारों के द्वारा। वहां राजा शनैः शनै अपने अधिकार प्रजा को देता गया, अपने परमाधिकार को एक-एक कर छोड़ता गया या इस बात पर राजी होता गया कि वह अपने अधिकारों का प्रयोग केवल मन्त्रियों के परामर्श से ही करे। इस रूप में वहां संविधान विकसित हो पाया है। किन्तु हमारी पार्लामेण्ट यानी भारतीय संसद् तो यहां की जनता के नाम पर अपने अधिकार से कार्य करेगी और इसलिये हमारे राष्ट्रपति के लिये, यद्यपि वह जनता का मनोनीत प्रतिनिधि रहेगा, ऐसी व्यवस्था करना आवश्यक नहीं है और न ऐसा होना ही चाहिये, कि वह हमारी विधायिनी सभा का आवश्यक अंग समझा जाये।

मेरा ख्याल है कि अगर हम ब्रिटिश रूढ़ि की या वहां की सांविधानिक रस्मों की इस प्रकार आंख बन्द करके और इस सीमा तक नकल करेंगे तो इससे हम मुसीबत में ही पड़ेंगे। ब्रिटिश संविधान जिस सिद्धान्त पर बना है वह उस सिद्धान्त से सर्वथा भिन्न है जिस पर कि हमारा संविधान आधृत है। ब्रिटिश संविधान अधिकतर रूढ़ि और परम्परा के आधार पर निर्मित हुआ है। अधिकांश में ये रूढ़ियां अभी भी लिपिबद्ध नहीं हुई हैं और न इन्हें कोई प्रामाणिक रूप ही प्राप्त है। और परिस्थिति के अनुरूप उन्हें अपनाने की काफी गुंजाइश छोड़ी गई है। और जो कुछ वहां लिपिबद्ध हुआ है वह पार्लामेण्ट द्वारा बनाये गये कतिपय कानून ही हैं जो वहां की परम्परा रूढ़ि या प्रथाओं के आधार पर ही बनाये गये हैं। किन्तु हमारे साथ यह बात नहीं है। हम अपने संविधान को लिखित रूप में रखने जा रहे हैं और यह हमारा उस सम्बन्ध में प्रथम प्रयास है। इसलिये मेरा

यह निवेदन है कि हमारे लिये यह मौजूं नहीं होगा कि हम अपने राष्ट्रपति को अपनी संसद् में वही स्थिति दें जो कि ब्रिटेन नरेश को वहां की पार्लामेण्ट में प्राप्त है।

इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इन शब्दों को निकाल देना चाहिये। मेरा यह एक पुराना सुझाव था। इसके लिये मैंने एक संशोधन भी रखा था कि शासन सम्बन्धी, एवं न्याय सम्बन्धी जो शक्तियां हैं, उनको पृथक्-पृथक् कर दिया जाये और उन्हें किसी एक अधिकारी या निकाय में न सन्निहित किया जाये। कहीं सभा यह न समझ बैठे कि यह संशोधन भी मैं अपने उसी पुराने विचार से प्रभवित होकर उपस्थित कर रहा हूं, मैं सभा को इस बात का यकीन दिलाता हूं कि अब मेरा वह विचार नहीं रह गया और प्रस्तुत संशोधन पर उस विचार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। राष्ट्रपति को आप इस खण्ड से अलग कर सकते हैं और ऐसा करने से, संयुक्त शक्ति या सामूहिक दायित्व का जो सिद्धान्त है, जिस पर कि हमारा यह संविधान आधृत है, उसमें कोई आघात नहीं पहुंचेगा। अतः आशा है सभा को यह संशोधन ग्राह्य होगा।

(संशोधन नं. 1360, 1361, 1362, 1363 और 1364 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** अब इस अनुच्छेद पर विस्तृत रूप से विचार किया जा सकता है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): मुझे खेद है कि जो भी संशोधन उपस्थित किये गये हैं मैं उनके विरुद्ध हूं। इन संशोधनों का सम्बन्ध तीन बातों से है। पहला संशोधन जो और सबों में सर्वाधिक महत्त्व का है, वह इस आशय से रखा गया है कि प्रस्तुत अनुच्छेद को केवल लोक-सभा तक ही सीमित रखा जाये अर्थात् संशोधन पेश करने वाले साहब ऊपर वाला आगार नहीं रखना चाहते हैं। यह सभी जानते हैं कि आज हमारे देशवासियों में प्रबल उत्साह है और अन्य कारणों को तो जाने दीजिये, केवल इस उत्साह और बाहुल्य को देखते हुए यह जरूरी है कि हम विभिन्न लोगों को राजनीति में भाग लेने का मौका दें। इसलिये यह जरूरी है कि दूसरे आगार को भी हम रखें जहां लोगों की प्रतिभा को अबाध क्षेत्र मिल सके। दूसरे आगार के पक्ष में एक दूसरा कारण यह भी है कि अगर नीचे वाला आगार आवेश में कोई कानून तुरन्त पास कर देता है तो ऊपर वाले आगार तक उसके पहुंचने में जो समय का व्यवधान पड़ेगा उससे आवेश का प्रशमन हो जायेगा और कानून पर सही-सही विचार किया जा

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

सकेगा। उसके पक्ष में तीसरा कारण यह है कि ऊपर वाला आगार एक स्थायी निकाय होगा किन्तु लोक-सभा स्थायी नहीं होगी। ये कतिपय कारण हैं जिसको देखते हुये, हमारी वर्तमान स्थिति में यह आवश्यक है कि देश की समुन्नति के लिये हम दूसरा आगार रखें ही।

उसके नाम के सम्बन्ध में भी एक संशोधन आया है माननीया मित्र बेगम ऐजाज रसूल की ओर से। इसी आशय का एक संशोधन लारी साहब के नाम से भी आया है। दोनों ही संशोधनों में यह कहा गया है भारत की संसद् का नाम रहे "इण्डियन नेशनल कांग्रेस"। मैं उनके अभिप्राय की प्रशंसा करता हूं। निस्संदेह देश के स्वातन्त्र्य के लिये कांग्रेस ने ही संघर्ष किया है और इसी लिये इन मित्रों ने, जो कांग्रेस के प्रति सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं, गो कि ये लोग कांग्रेस के साथ कभी नहीं थे, यह सुझाव रखा है कि भारतीय संघ की संसद् का नाम गौरवशाली कांग्रेस के नाम पर रखा जाये। यह संशोधन कितना भी स्तुत्य क्यों न हो, पर इसके स्वीकार कर लेने पर यह आरोप लगेगा कि इस देश की हुकूमत में केवल एक दल विशेष के ही लोग हैं। यही मित्र जिन्होंने संशोधन रखा है यह कहने लग जायेंगे:

> "देखिये न देश में क्या हो रहा है। कांग्रेस ने इस देश में केवल अपने ही दल की हुकूमत बना रखी है। यहां की संसद् का नाम भी उन्होंने कांग्रेस रख लिया है।"

यदि यह सुझाव स्वीकार कर लिया जाता है तो हो सकता है कि इससे कांग्रेस का खात्मा भी हो जाये। क्योंकि उस हालत में यह संगठन प्रतिक्रियावादी राजनीतिक दलों के विरुद्ध जो आज भी धर्म एवं सम्प्रदाय के आधार पर जोर पकड़ते जा रहे हैं, एक राजनीतिक दल के रूप में कोई मोर्चा न ले सकेगा। इसलिये यह संशोधन सर्वथा अमान्य है, श्रीमान।

अब मैं माननीय मित्र प्रो. के.टी. शाह के संशोधन पर आता हूं जिसमें कहा गया है कि राष्ट्रपति का इस अनुच्छेद में कोई जिक्र न होना चाहिये और देश के शासन से उसको किसी भी तरह सम्बद्ध नहीं करना चाहिये। इस सम्बन्ध में मैं अपने माननीय मित्र का ध्यान अनुच्छेद 42 की ओर आकृष्ट करूंगा जो यहां पास हो चुका है और जिसमें कहा गया है कि भारतीय संघ की अधिशासी शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी, और वह इसका प्रयोग संविधान तथा विधि के अनुसार कर सकेगा। हमारी योजना में राष्ट्रपति को एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण अधिकारी बनाया गया है और अपने संविधान में हमने उस प्रमुख कार्यपालक का स्थान

दिया है। कार्यपालिका शक्ति के साथ-साथ उसी मात्रा तक उसकी विधायिनी शक्ति भी विस्तृत हो जाती है। इसलिये यहां हम ब्रिटेन की नकल नहीं कर रहे हैं बल्कि हम अपनी ही कोई स्वतंत्र व्यवस्था क्यों न रखें पर उसमें भी हम उसी नतीजे पर पहुंचेंगे। इसलिये यह जरूरी है कि प्रेसिडेण्ट (राष्ट्रपति) शब्द यहां रहने दिया जाये अन्यथा अनुच्देद में एक त्रुटि रह जायेगी।

मैं सभा से साग्रह करूंगा कि वह इस अनुच्छेद को ज्यों का त्यों पास करे और सभी संशोधनों को अस्वीकार कर दें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): इनमें से किसी भी संशोधन को मैं नहीं स्वीकार कर रहा हूं और न ही यही समझता हूं कि इनके उत्तर देने की कोई आवश्यकता है।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं एक-एक करके संशोधनों पर मत लेता हूं। संशोधन नं. 1358 । मसला यह है कि:

"अनुच्छेद 66 से 'and two Houses to be known respectively as the Council of States' शब्द निकाल दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत रहा।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 1356 । प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 66 में 'There shall be a Parliament for the Union which' शब्दों की जगह 'The Legislature of the Union shall be called the Indian National Congress and शब्द रखे जायें।"

*संशोधन नामंजूर हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 1357 । मसला यह है कि:

"अनुच्छेद 66 से 'the President and' शब्द निकाल दिये जायें।

संशोधन नामंजूर हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 66 को विधान का अंग माना जाये।"

*प्रस्ताव पास हुआ।*

*अनुच्छेद 66 को विधान में शामिल किया गया।*

## अनुच्छेद 67

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 67 को लेते हैं। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 को विधान का अंग समझा जाये।"

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में जो संशोधन आये हैं उन पर हम किस तरीके से विचार करें, इसके बारे में मैं सुझाव आपकी सेवा में रखता हूं। आप देखेंगे कि इस अनुच्छेद में संसद् के दोनों आगारों की रचना के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है, यानी राज्य-परिषद् तथा लोक-सभा किस तरह बनेगी यही इसमें बताया गया है। इसमें कुल मिलाकर 9 खण्ड हैं और मेरा सुझाव यह है कि इस बात को मद्देनजर रख कर कि इस पर विचार करने में सहूलियत हो और अस्पष्टता न रहे, हम अभी इस अनुच्छेद को तीन भागों में विभक्त कर दें। एक भाग तो बना दें 1 से 4 तक के खण्डों का जिनमें राज्य-परिषद् की रचना का जिक्र है और दूसरा 5 से 7 तक के खण्डों का जिनमें लोक-सभा की रचना का जिक्र है और तीसरा 8 और 9 के खण्डों का जो दोनों ही आगारों के लिये समान रूप से लागू है और जिनमें प्रत्येक जनगणना के फलस्वरूप की जाने वाली पुनर्व्यवस्था का जिक्र है।

मैंने इस संशोधन में डॉ. अम्बेडकर से बात की थी और खुद उन्होंने ही मुझे यह बताया कि अपनी किताब में निशान लगा कर इसी तरह तीन भागों में इसे विभक्त किया है और तीसरी रीडिंग के समय इन खण्डों को ऊपर नीचे करने के लिए वह खुद प्रस्ताव रखेंगे। इसलिये इस खण्ड को अभी विभक्त करना शायद सम्भव न हो पर मैं आपसे यह अनुरोध जरूर करूंगा कि 1 से 4 तक के सम्बन्ध में यानी राज्य-परिषद् के सम्बन्ध में जो संशोधन आये हों उन सबको एक साथ लिया जाये और पहले उन पर विचार किया जाये और शेष अनुच्छेद को संशोधनों के लिये खुला रखा जाये। जब वाद-विवाद समाप्त हो जाये तो सब खण्डों को आप एक साथ रख दें। विचार सम्बन्धी स्पष्टता के ख्याल से मैं यह सुझाव दे रहा हूं ताकि माननीय सदस्यगण जब राज्य-परिषद् के सम्बन्ध में कुछ कहें तो अपनी बात को राज्य-परिषद् तक ही सीमित रखें और लोक-सभा के सम्बन्ध में उन्हें जो कुछ कहना हो उसे बाद में कहें जब लोक-सभा सम्बन्धी संशोधनों पर विचार हो।

***उपाध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर, इस मसले के सम्बन्ध में यानी श्री भारती के सुझाव के सम्बन्ध में आपको भी कुछ कहना है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वाद-विवाद की सहूलियत के ख्याल से जो सुझाव उन्होंने उपस्थित किया है, उससे मैं पूर्णत: सहमत हूं।

***उपाध्यक्ष:** तो हम संशोधनों को इसी क्रम से लेते हैं।

पहला संशोधन है नं. 1365 का। यह निषेधात्मक है अत: इसको उपस्थित करने की अनुमति नहीं दी जाती है।

संशोधन नं. 1366, 1367, 1379 और 1408 पर एक साथ विचार किया जा सकता है।

संशोधन नं. 1366 को अब पेश किया जा सकता है। यह श्री मोहनलाल गौतम के नाम में है।

चूंकि सभा भवन में वह महाशय उपस्थित नहीं हैं हम सब आगे बढ़ते हैं।

इसके बाद आता है संशोधन नं. 1367 । यह श्री लोकनाथ मिश्र के नाम में है।

**श्री लोकनाथ मिश्र:** चूंकि संशोधन नं. 1366 को हम छोड़ चुके हैं, मैं इस संशोधन को नहीं पेश करना चाहता हूं। अब यह ठीक नहीं बैठेगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** यह सवाल तो उठता नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** दूसरा संशोधन है प्रो. के.टी. शाह के नाम से। वह है संशोधन नं. 1379 ।

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान् कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (2) को हटा दिया जाये।"

यह खण्ड (2) इस प्रकार है:

"इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जाने वाले सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्हें निम्न प्रकार के विषयों सम्बन्धी विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव है, अर्थात्–

(क) साहित्य, कला, विज्ञान और शिक्षा;

(ख) कृषि, मत्स्य-पालन और तत्सम्बद्ध विषय;

(ग) अभियंत्रणा (इंजीनियरी) और वास्तु शास्त्र;

(घ) लोक-प्रशासन और सामाजिक सेवाएं।"

[प्रो. के.टी. शाह]

खण्ड का जो वर्तमान रूप है वह दो कारणों से मुझे चुभता है। पहली बात तो यह है कि मनोनयन की जो बात यहां रखी गई है चाहे मनोनीत सदस्यों की संख्या कितनी ही कम क्यों न रखी गई हो। वह, हमारे विधान-मण्डलों की रचना की एकरूपता के प्रतिकूल है। और फिर इससे निर्वाचन सम्बन्धी सिद्धान्त का मूलत: हनन होता है। मेरा अपना मत यह है कि जिस रूप में हम संविधान बना रहे हैं उसमें हमें दोनों आगारों के लिये यही करना चाहिये कि उनमें शुद्धत: निर्वाचित सदस्य ही आयें और इसमें मनोनयन के सिद्धान्त को बिल्कुल ही हटा दिया जाये चाहे मनोनीत सदस्यों की संख्या कितनी भी नगण्य क्यों न हो। इस प्रकार से यदि आप मनोनीत सदस्यों को विधान-सभा में आने देंगे तो इसका एक मात्र परिणाम यह होगा; जैसा कि मैं कह चुका हूं, कि इससे विधान-मण्डलों की आन्तरिक एकरूपता जाती रहेगी। इसलिये हमें इससे बचना चाहिये और इस बात को हटा देना चाहिये।

दूसरा कारण जिसकी वजह से मैं इस खण्ड के प्रस्तुत स्वरूप को नापसन्द करता हूं वह यह है कि मनोनयन द्वारा जिन विभिन्न हितों या वर्गों को लाने की बात कही गई है उनको इसमें मिला जुला कर रख दिया गया है और पृथक्-पृथक् स्पष्ट रूप से उनको नहीं निर्दिष्ट किया गया है। ऐसा करना न तो तर्कसंगत है, न कार्यसंगत है और न सिद्धान्तत: संगत है।

उदाहरण के रूप में मैं आपको बताऊं कि यहां 'कला' का अलग उल्लेख किया गया है और 'विज्ञान' का अलग। विज्ञान में 'इंजीनियरिंग' या 'वास्तुशास्त्र' भी शामिल की जा सकती है और इन दोनों को एक पृथक् उपखण्ड में भी रखा गया है। इस बात को अब सभी मानते हैं कि 'वास्तुशास्त्र' एक ललित कला है। अगर ऐसा है तो मैं नहीं समझता कि इनका अलग-अलग उल्लेख क्यों किया किया गया है और व्यापक शब्द 'कला' के उल्लेख के बाद फिर दूसरे उपखण्ड में पृथक् रूप से 'वास्तुशास्त्र' का क्यों उल्लेख किया गया है। और फिर 'विज्ञान', 'साहित्य' एवं 'शिक्षा' इन तीनों का पृथक् रूप से उल्लेख किया गया है। ये तीनों ही एक-दूसरे से पूर्णत: पृथक् नहीं हैं। यहां भी मैं नहीं समझ पाता कि किस लिये इन तीनों का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया गया है। क्योंकि आप सोचिये तो सही कि 'शिक्षा' में कला और विज्ञान को यदि विश्वद्यिालयों जैसी संस्थाओं के सिलसिले से आप शामिल करते हैं तो कोई कारण नहीं है कि विश्वविद्यालयों के नाम से ही इनका उल्लेख क्यों न किया जाये और कला, विज्ञान तथा साहित्य का विशेष उल्लेख करके इन्हें क्यों पृथक् रखा जाये?

और फिर आप साहित्य को साधारणत: ललित कला में शामिल समझा जाता है और कम से कम विश्वविद्यालयों में ऐसा ही माना जाता है। इसलिये साहित्य, विज्ञान और कला इन तीनों का पृथक् उल्लेख बिल्कुल असंगत, अतर्कयुक्त एवं...

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** क्या मैं यह बताऊं कि इस सम्बन्ध में एक संशोधन डॉ. अम्बेडकर पेश करने वाले हैं। उनका संशोधन है नं. 1380 उसमें इन सभी अंशों को हटा दिया गया है और रखा गया है केवल कला, विज्ञान एवं सामाजिक सेवा को। यदि मेरे माननीय मित्र के ध्यान में यह आता हो कि डॉ. अम्बेडकर का संशोधन स्वीकृत होगा तो इस मसले पर बहस की कोई जरूरत नहीं है। वह कृपया डॉ. अम्बेडकर के इस संशोधन नं. 1380 को देखें जिसमें उन्होंने इस समूचे खण्ड को हटा कर बदले में केवल चार श्रेणियां रखने की बात कही है। इसलिये मैं आपसे अनुरोध करूंगा, उपाध्यक्ष महोदय, कि आप माननीय सदस्य से कहें कि वह अपना भाषण संक्षिप्त कर दें।

***उपाध्यक्ष:** क्या माननीय वक्ता की समझ में माननीय सदस्य की यह बात आ रही है?

***प्रो. के.टी. शाह:** माननीय सदस्य के सुझाव को मैं अच्छी तरह समझ रहा हूं किन्तु मुझे कुछ बातें कहनी हैं और अगर अनुमति हो तो कहूं अन्यथा मुझे कुछ विशेष आग्रह नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** आप अपनी बात कहिये।

***प्रो. के.टी. शाह:** धन्यवाद! इंजीनियरिंग को ही लीजिये। यह ज्यादा करके शिल्प-कला-विज्ञान (Technology) या अमेरिका में जिसे Technocracy कहते हैं, उसका विषय है और उसी नाम से यहां इसका उल्लेख होना चाहिये। शिल्प-कला-विज्ञान (Technology) इंजीनियरिंग के अलावा और भी बहुत सी बातें आ जायेंगी। खण्ड का जो वर्तमान रूप है वह बिल्कुल असंगत है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये सामाजिक सेवा का। इसमें सम्भवत: सार्वजनिक उपयोगिता की चीजें नहीं आती हैं। इसी तरह लोक-प्रशासन (Public Administration) जो यहां रखा गया है उसके सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। विधान-मण्डल की रचना के सम्बन्ध में लोक-प्रशासन शब्द का क्या प्रयोजन है यह मेरी समझ में आता नहीं है। क्या सिविल सर्विस वालों को लाने के अभिप्राय से यह रखा गया है? सर्वत्र सब लोगों की राय यही रही है कि सर्वोत्तम

[प्रो. के.टी. शाह]

यही है कि सिविल-सर्विस वालों को राजनीति से सर्वथा पृथक् रखा जाये। पर यहां 'लोक-प्रशासन' क्या इस अभिप्राय से रखा जा रहा है कि विभिन्न विभागों के प्रधान-कर्मचारियों को या उनके द्वारा नामजद किये गये व्यक्तियों को विधान-मण्डल में स्थान दिया जाये? पुराने भारतीय विधान में सेक्रेटरीज को विधान सभा में स्थान दिया गया था किन्तु मेरा ख्याल है कि अब उनके लिये इसकी गुंजाइश नहीं है। या 'सामाजिक सेवा' को आप 'शिक्षा' से भिन्न समझते हैं क्योंकि 'शिक्षा' का उल्लेख आप पृथक् रूप से कर चुके हैं? ख्याल तो यह किया जाता था कि 'सामाजिक-सेवा' के मद के द्वारा, जिसमें शिक्षा सबसे जरूरी है, चुनाव में सभी श्रेणियों के लोग लिये जायेंगे और इसके पृथक् उल्लेख की कोई आवश्यकता न होगी। किन्तु यदि आप उसका विशेष रूप से उल्लेख करना चाहते ही हैं तो मेरी समझ में नहीं आता कि क्यों आप केवल शिक्षा का पृथक् उल्लेख करते हैं। 'सामाजिक-सेवा' जैसे एक व्यापक शब्द को आप रखते हैं किन्तु फिर भी इसमें आप केवल सेवा को ही शामिल करते हैं शायद इसलिये कि आपने इसका पृथक् उल्लेख किया है। आप 'स्वास्थ्य' का उल्लेख नहीं करते हैं, जिसका कि पृथक् उल्लेख होना चाहिये।

इसलिये मुझे तो यही प्रतीत होता है कि यह वर्गीकरण बहुत ही असंगत है। मनोनीत सदस्यों को विधान-मण्डल में रखने की जो व्यवस्था की जा रही है उससे, मेरी समझ में, विधान-मण्डल की एकरूपता नष्ट हो जायेगी। इन दो प्रमुख कारणों से मेरा मत है कि यह समस्त हटा दिया जाना चाहिये और उसकी जगह कोई दूसरी चीज रखनी चाहिये। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन द्वारा अवश्य ही कुछ हद तक हमारी आवश्यकता जरूर पूरी हो जाती है पर उसमें यह नहीं कहा गया है कि किस प्रकार से प्रतिनिधि लिये जायेंगे और मैं इसी बात का स्पष्ट उल्लेख चाहता हूं। चूंकि मुझे इस संशोधन पर पुनः बोलने का हक नहीं रहेगा और न आम बहस में ही भाग लेने का मुझे हक रहेगा इसलिये मैं इसे जरूरी समझता हूं कि सभा इस मसले पर मेरे दृष्टिकोण को जान ले।

***उपाध्यक्षः** आप संशोधन नं. 1408 को भी पेश कर सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाहः** मेरा यह प्रस्ताव है किः

"अनुच्छेद 67 का खण्ड (4) हटा दिया जाये।"

अनुच्छेद 67 के खण्ड (4) में कहा गया है किः

"राज्य-परिषद् में, प्रथम अनुसूची के भाग 2 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के प्रतिनिधि ऐसी रीति से निर्वाचित होंगे, जैसी कि विधि द्वारा संसद् विहित करे।"

यहां भी मेरा सुझाव केवल इसी सिद्धान्त के आधार पर है कि विभिन्न अंगभूत राज्यों के प्रतिनिधान में समता रहनी चाहिये। क्षेत्र, जनसंख्या, साधन आदि के सम्बन्ध में इनमें परस्पर कुछ भी अन्तर क्यों न हो अथवा इनके महत्त्व को आंकने के लिये आप जो भी और तरीका क्यों न चुनें पर जब आपने संघानीय-संघ (Federal Union) के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है तो आपको, राज्यों को समान स्तर देना चाहिये।

इस कारण से खण्ड (4) के द्वारा स्थानों को वितरित करने का काम जो संसद् पर छेड़ा गया है मैं उससे असहमत हूं। किस राज्य को कितनी जगहें प्राप्त होंगी इसका उल्लेख खुद संविधान में आना चाहिये। मैंने एक दूसरा संशोधन भी भेजा है जिसमें कहा गया है कि राज्य-परिषद् में सभी राज्यों को समान प्रतिनिधान प्राप्त होना चाहिए अर्थात् उनको हर राज्य को समान संख्या में प्रतिनिधि भेजने का हक मिलना चाहिये। इस कारण से भी यह खण्ड निरर्थक प्रतीत होता है और मैं इसको हटाने का प्रस्ताव रखता हूं।

(संशोधन नं. 1368 और 1372 नहीं पेश किये गये।)

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं श्रीमान् कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) की जगह निम्नलिखित अंश रखा जाये:

(1) राज्य-परिषद् के 250 सदस्य होंगे जिनमें से–

(क) बारह सदस्य प्रधान द्वारा, इस अनुच्छेद के खण्ड (2) में बन्धानित रीति से, मनोनीत होंगे; तथा

(ख) शेष, राज्यों के प्रतिनिधि होंगे।"

एकमात्र महत्त्व की बात इसमें यह है कि मनोनीत सदस्यों की संख्या 15 से घटाकर 12 कर दी गई है।

***उपाध्यक्ष:** इस संशोधन पर 6 संशोधन आये हैं। एक-एक करके मैं उनको लेता हूं। पहला संशोधन है सूची 1 (छठे सप्ताह) का नं. 2 जो श्री लोकनाथ मिश्र के नाम से है।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्, कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1369 में अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (1) में 'दो' शब्द की जगह 'एक' शब्द रखा जाये।"

[श्री लोकनाथ मिश्र]

इसका मतलब यह हुआ कि राज्य-परिषद् में 150 से अधिक सदस्य नहीं होंगे। इस संशोधन को रखने में यानी सदस्य संस्था को घटा कर 150 करने में मेरा केवल एक ही उद्देश्य है। अपने व्यावहारिक अनुभव के आधार पर हमने यही पाया है कि लोक-सभा हो या राज्य-परिषद् हो, उसमें बड़ी सदस्य संख्या रखने से कोई लाभ नहीं होता है। और हमें यह भी मालूम है कि योग्य एवं विधि निर्माण में रुचि रखने वाले सदस्यों को इतनी बड़ी संख्या में पाना बड़ा कठिन है। इस सभा में ही तीन सौ से अधिक सदस्य हैं और इसकी ही कार्यवाही से हमें यह पता चलता है कि कितने कम लोग हैं जो कार्यवाही में वास्तविक भाग लेते हैं और जिनकी यहां कुछ वास्तविक देन होती है।

***उपाध्यक्ष:** यह तो आप निन्दा कर रहे हैं, मैं इसकी अनुमति नहीं दे सकता।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** मैं खेद प्रकट करता हूं श्रीमान्, पर यह निन्दा नहीं है। अस्तु, इसलिये मेरा निवेदन यह है कि बजाय 250 सदस्य रखने के अगर हम दूसरे आगार में केवल 150 सदस्य रखते हैं तो इससे हमारा प्रयोजन खूब सिद्ध हो जायेगा। ऐसा करते समय और पैसे की भी बचत होगी इसलिये मैं पुन: निवेदन करता हूं कि दूसरे आगार की सदस्य संख्या 250 से घटा कर 150 कर दी जाये।

***उपाध्यक्ष:** अब आता है सूची 1 का संशोधन नं. 3 जो श्री लक्ष्मीनारायण साहू के नाम में है।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू** (उड़ीसा : जनरल): (हिन्दी में बोलना आरम्भ किया)

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य से मेरा अनुरोध है। दक्षिण भारत से आये हुये बहुत से सदस्य हिन्दी नहीं जानते हैं। अगर वह उन्हें अपनी बात समझाना चाहते हैं तो यह अच्छा होगा कि वह अंग्रेजी में बोलें। मेरा यह अनुरोधमात्र है। उन्हें इस बात की पूर्ण स्वतंत्रता है कि वह जिस भाषा में चाहें अपनी बात कहें।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू:** नहीं श्रीमान्, मैं तो हिन्दी में ही बोलूंगा।

उपाध्यक्ष महोदय, मेरे नाम पर जो संशोधन प्रस्ताव यहां उपस्थित है उस प्रस्ताव को जाहिर करने के लिये मैं जो कुछ कहूंगा उसका यह सबब है कि हम लोग नौमिनेशन को नहीं चाहते हैं। नौमिनेशन जहां-जहां भी होता है वहां हम लोग बुरा समझते हैं। इसलिये हम जब अभी नये तरीके से यह कान्स्टीट्यूशन बनाते हैं तो हमको अच्छी तरह से सोचना चाहिए कि हम ऐसी हालत में इस नौमिनेशन को जितनी दूर हो सके हटा दें या नहीं। जहां-जहां भी नौमिनेशन है और जहां इंडाइरेक्ट एलेक्शन है यह भी एक तरीके का नौमिनेशन है, इसलिये मैं चाहता हूं कि हम लोग नौमिनेशन के ख्याल को जितनी दूर हो सके हटा दें।

पहले यह देखना चाहिये कि हमने नौमिनेशन से यहां जो पंद्रह आदमी रखे हैं और अब थोड़ा परिवर्तन करके बारह आदमी रखते हैं, किस लिये रखते हैं कि वे सब आदमी ऐसे विलक्षण हैं कि जिन लोगों को हम लेना चाहते हैं। परन्तु जब यह है तो यूनिवर्सिटी से हम लोग निर्वाचन करके ऐसे आदमी ला सकते हैं। इसमें क्या दिक्कत रहती है यह मेरी समझ में नहीं आता है। मैं चाहता हूं कि हम लोग जब, ऐसे आदमी जो रह जाते हैं उनको असेम्बली के भीतर या कौंसिल के भीतर लेना चाहते हैं तो वहां भी एलेक्शन होना चाहिये। जब तक यह हम लोगों के ख्याल में नहीं रहेगा तब तक हम लोग जो कान्स्टीट्यूशन बनाते हैं उसको बहुत आदमी बुरा समझेंगे। मान लीजिये हम बारह आदमी का नौमिनेशन करने के लिये प्रेजिडेण्ट को क्षमता दे देते हैं तो इसमें यह होगा कि बहुत आदमी यह कहेंगे कि प्रेजिडेण्ट ने फेवर किया है। जो असली आदमी, जो लायक आदमी है उसको न रख कर के अपने मन मुताबिक जो आदमी है उसको रख दिया है। यह झगड़ा बराबर रहेगा और प्रेजिडेण्ट जो हम समझते हैं कि हम लोगों में सब से बड़ा होगा, जो हम लोगों के सब आलोचना में शामिल होगा जो हम लोगों का साधारण स्वाधीन सार्वभैम शासन-तंत्र होगा, उसके नाम पर जो कलंक का टीका लग जायेगा तब बहुत खराब होगा। इसलिये मैं चाहता हूं कि इस नौमिनेशन को यहां कम से कम हटा दिया जाये और Functional Representation किया जाये। कोई-कोई कहते हैं कि आयरलैण्ड में यों टिकट दिया गया है और आयरलैण्ड में ऐसा कहा गया कि यहां वह कामयाबी नहीं हुई है। मैं कहता हूं वह पेनल कोड के तरीके से एलेक्शन करके वह जरूर कामयाब होगा। इस नौमिनेशन के बारे में ज्यादा मैं नहीं कहना चाहता हूं। सिर्फ एक बात मैं कहता हूं कि हम जब यह भारत में जितने भी कौंसिल और ऐसेम्बली के मेम्बर हैं सब जा करके एक आदमी के पास जाते थे और सब परामर्श करके यह काम चलाते थे। महात्मा गांधी के पास ऐसे भी कोई आदमी

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

हैं जिसको हम नौमिनेशन में चाहते हैं उनको भीतर लाने के लिये वह जब नहीं आयेंगे तो उनके पास जाकर के हम लोग उनका परामर्श ले सकते हैं। कम से कम हम तो यह कर सकते हैं कि जो पण्डित आदमी हैं, जो ज्ञानी आदमी हैं और जो ऐलक्शन में आना नहीं चाहते हैं तो उन लोगों के पास हमको जाने में शर्म क्या है? महात्मा गांधी के पास हम जाते थे ऐसे ही जब कोई आदमी रह जायेंगे जिनको हम समझते हैं कि बहुत लायक आदमी हैं और ऐसेम्बली के एलेक्शन में नहीं आयेंगे तब तो हम उनके पास जा करके परामर्श ले सकते हैं। उनका हम एक Advisory Board बना सकते हैं। ऐसे अद्वितीय आदमी बाहर रह जायेंगे। विद्वान आदमी, तो हम उनका एक Advisory Board बना सकते हैं। उससे हम उनका परामर्श ले सकते हैं। ऐसा ही रूस में भी होता है। ऐसे ही हर एक मिनिस्टर का Advisory Board हम बना सकते हैं। ऐसा न करके हम जो नौमिनेशन बारह आदमियों का करेंगे तो बहुत टीका हो जायेगी प्रेजिडेण्ट पर कि यह favouritism करते हैं nepotism करते हैं। यह सब सुनने में अच्छा नहीं लगेगा इसलिये मैं चाहता हूं कि जो 12 आदमी हम नौमिनेशन में लेंगे उनको एक दम हटा देना चाहिये। ज्यादा मैं कुछ नहीं कहना चाहता हूं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): सूची 1 (छठे सप्ताह) के संशोधन नं. 5 को मैं नहीं पेश करना चाहता क्योंकि यह केवल शाब्दिक है। अत: मैं केवल संशोधन नं. 4 के सम्बन्ध में ही बोलूंगा।

मेरा प्रस्ताव यह है, श्रीमान्, कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1369 द्वारा प्रस्तावित, अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में '12 सदस्य शब्दों की जगह सभा की समस्त सदस्य संख्या के 6 प्रतिशत से अधिक नहीं' शब्द रखे जायें।"

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव** (मैसूर): मेरा कहना यह है कि इस संशोधन को अनियमित करार दे दिया जाये क्योंकि मूल अनुच्छेद में मनोनीत सदस्यों की संख्या 15 रखी गई है और कुल सदस्य हैं 250। इस तरह 6 प्रतिशत रखने पर भी 15 ही होंगे।

**श्री नजीरुद्दीन अहमद:** 15 नहीं होंगे। मूल अनुच्छेद 67 में यह कहा गया है कि राज्य-परिषद् में 250 सदस्य होंगे किन्तु अब डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में यह कहा गया है *250 से अधिक सदस्य नहीं होंगे*।

***उपाध्यक्ष:** वह अधिक से अधिक सदस्य संख्या कितनी हो, यह रखता है, इसलिये थोड़ा-सा अन्तर तो आयेगा ही। इस बात पर माथा-पच्ची करने की जरूरत नहीं है। आप अपनी बात कहिये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** नये खण्ड में आपने यह रखा है कि सभा की सदस्य संख्या 250 से ज्यादा नहीं होगी। इसलिये डॉ. अम्बेडकर के संशोधन के हिसाब से राज्य-परिषद् की सदस्य संख्या 250 के नीचे ही कम या वेशी रहेगी पर 250 से ज्यादा न होगी, इसके अन्दर ही रहेगी। सभा में मनोनीत सदस्यों की संख्या, सभा की समस्त सदस्य संख्या के किसी अनुपात के आधार पर ही रहनी चाहिये। उसी हिसाब से मनोनीत सदस्यों की संख्या भी घटनी या बढ़नी चाहिये। इसीलिये मैंने 6 प्रतिशत का सुझाव रखा है जिसके हिसाब से 15 मनोनीत सदस्य केवल उसी सूरत में होंगे जब आप सभा की अधिकतम सदस्य संख्या को लें, अन्यथा अगर उनकी संख्या अधिकतम से कम रहती है तो मनोनीत सदस्यों की संख्या भी घट जायेगी। इन दोनों की संख्या में एक निश्चित अनुपात रहना चाहिये। अगर आप घटा कर मनमाने तौर पर 12 कर देते हैं तो सम्पूर्ण सदस्य संख्या से इसका कोई अनुपात न बैठेगा। हो सकता है कि सभा में सदस्यों की सही संख्या इससे कहीं कम हो। इसलिये मेरा कहना यह है श्रीमान्, कि समस्त सदस्य संख्या पर 6 प्रतिशत के अनुपात से मनोनीत सदस्यों की संख्या निश्चित करना अधिक सुविधाजनक एवं संगत है।

[सूची 1 (छठे सप्ताह) का संशोधन न. 6 नहीं पेश किया गया।]

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे यह सुझाया गया है कि अच्छा होगा कि मैं अपने संशोधन को अभी पेश करने के बजाय तब पेश करूं जब डॉ. अम्बेडकर अपना संशोधन नं. 1378 पेश कर चुकें और उनके इस संशोधन के बारे में ही अपने संशोधन को रखूं। मेरे लिये तो यह एक-सी बात है चाहे मुझे अभी पेश करने की इजाजत दी जाये या बाद में। यदि आप मेरी बात से सहमत हों तो मैं इसे बाद में पेश करूं।

***उपाध्यक्ष:** मैं सहमत हूं।

अल्पकालिक सूचना से आये हुये, सरदार हुकुमसिंहजी के एक संशोधन को मैंने सूची में रख लिया है। वे उसे पेश कर सकते हैं।

***सरदार हुकमसिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1369 में, अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में 'प्रवाहित रीति से' शब्दों की जगह 'दिखाई गई श्रेणियों में से' शब्द रखे जायें।"

लोग ऐसा सोच सकते हैं कि यह बहुत साधारण-सी बात है किन्तु मैं निवेदन करूंगा, अनुरोध करूंगा कि मेरी बात पर ध्यान दिया जाये क्योंकि मेरा ख्याल है कि मेरे संशोधन में कुछ तत्व है।

संशोधन नं. 1369 में यह कहा गया है कि इस अनुच्छेद के खण्ड (2) में प्रावहित रीति से राष्ट्रपति 12 सदस्यों को मनोनीत करेगा। इस संशोधन के अनुसार, हमें यह आभास मिलता है कि अनुच्छेद 67 के खण्ड (2) में वह रीति उल्लिखित हो गई है जिसके अनुसार राष्ट्रपति 12 सदस्यों को मनोनीत करेगा। किन्तु खण्ड में रीति का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। हमें यहां केवल इसी बात का उल्लेख मिलता है कि प्रस्तुत अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) के अधीन राष्ट्रपति जिन व्यक्तियों को मनोनीत करेगा वे ऐसे व्यक्ति होंगे जिनको अमुक-अमुक विषयों का विशेष ज्ञान एवं व्यावहारिक अनुभव होगा। खण्ड (2) में उस रीति का कोई उल्लेख नहीं है जिसके मुताबिक राष्ट्रपति उनको मनोनीत करेगा। वहां केवल नागरिकों की श्रेणियों का उल्लेख कर दिया गया है और ये श्रेणियां भी बतौर उदाहरण के रखी गई हैं, कोई विस्तृत सूची नहीं दी गई है कि इसी वर्ग के लोग मनोनीत किये जायेंगे। केवल इतना कहा गया है कि इन श्रेणियों से राष्ट्रपति 12 व्यक्तियों को मनोनीत करेगा। मेरी आपत्ति केवल यह है कि बजाय यह कहने के कि राष्ट्रपति द्वारा 12 व्यक्ति प्रावहित रीति से मनोनीत किये जायंगे, हमें यहां यह कहना चाहिये कि इन श्रेणियों के लोगों में से, जिनका उल्लेख खण्ड (2) में है, राष्ट्रपति 12 को मनोनीत करेगा। यही मेरा संशोधन है और मेरा अनुरोध है कि इस पर समुचित ध्यान दिया जाये।

(संशोधन नं. 1370 नहीं पेश किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** तीन संशोधन ऐसे हैं जिन पर एक साथ विचार होना चाहिये। वे हैं नं. 1371, 1373 तथा 1374 के। इनमें से पहला सर्वाधिक विस्तृत मालूम पड़ता है और इसे ही पेश किया जा सकता है।

(संशोधन नं. 1371, 1373 और 1374 पेश नहीं किये गये।)

अब आता है संशोधन नं. 1375 और 1376 । नं. 1375 को पेश किया जा सकता है। नं. 1376 बहुत कुछ 1375 से मिलता-जुलता है। इसलिये मैं इस पर राय भी नहीं लूंगा। डॉ. अम्बेडकर, आप संशोधन न. 1375 को उपस्थित करें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान् कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के परन्तुक को हटा दिया जाये।"

अगर आपकी अनुमति हो तो मैं संशोधन नं. 1378 को भी पेश कर दूं। इस परन्तुक की जगह दूसरा अंश रखने की बात इसमें कही गई है।

***उपाध्यक्ष:** हां, आप पेश कर सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा यह प्रस्ताव है श्रीमान्, कि: "अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ा जाये:

'(1क) राज्य-परिषद् के स्थानों का राज्यों के प्रतिनिधियों में बंटवारा, अनुसूची 3(ख) में इस बारे में दिये हुए बन्धनों के अनुसार होगा।'"

**उपाध्यक्ष:** अब पं. कुंजरू का संशोधन पेश किया जा सकता है। यह है न. 7 का।

**पं. हृदयनाथ कुंजरू:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (1क) में, जिस रूप में कि अभी वह उपस्थित किया गया है, निम्नलिखित शब्द और जोड़ दिये जायें:

'किन्तु शर्त यह है कि 'प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के प्रतिनिधियों की कुल संख्या और उन राज्यों की समस्त जनसंख्या के बीच जो अनुपात होगा वह उस अनुपात से ज्यादा न होगा जो उस अनुसूची के भाग 1 और 2 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के प्रतिनिधियों की कुल संख्या तथा ऐसे राज्यों की समस्त जनसंख्या के बीच होगा।'"

अनुच्छेद 67 के खण्ड 1 के परन्तुक, जिसे हटाने के लिये डॉ. अम्बेडकर ने प्रस्ताव रखा है, वह इस प्रकार है:

"पर प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के प्रतिनिधियों की समस्त संख्या इस शेष के चालीस प्रतिशत से अधिक न होगी।"

अर्थात् राज्य-परिषद् के निर्वाचित सदस्यों के चालीस प्रतिशत से अधिक उनकी संख्या न होगी।

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

अब डॉ. अम्बेडकर ने प्रस्ताव यह रखा है कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों को राज्य-परिषद् में उतने ही स्थान दिये जायेंगे जितने का प्रावधान अनुसूची 3 ख में हो यह अनुसूची 3 ख हमारे सामने नहीं है इसलिये हमें यह नहीं मालूम हो पाता है कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधियों तथा प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या में क्या अनुपात रहेगा।

पहली गोलमेज कांफ्रेंस के दौरान में रियासती नरेशों ने इस बात का आग्रह किया था कि विधान सभा तथा राज्य-परिषद् दोनों ही आगारों में उनकी अपनी जनसंख्या के अनुपात से अधिक स्थान मिलने चाहिये। दूसरे शब्दों में यह कहिये कि केन्द्रीय विधान-मण्डल के दोनों ही आगारों में उन्होंने अपने लिये पासंग या वजन मांगा था और इसीलिये 'भारत शासन अधिनियम, 1935' में यह रखा गया था कि राज्य-परिषद् में रियासतों के प्रतिनिधियों की संख्या, राज्य-परिषद् के मनोनीत या निर्वाचित सभी सदस्यों की संख्या के चालीस प्रतिशत के अनुपात से होगी। विधान-सभा के सम्बन्ध में यह कहा गया था कि रियासतों के प्रतिनिधियों की संख्या, सभा के समस्त निर्वाचित सदस्यों की एक तिहाई के हिसाब से होगी। संघ शक्ति समिति (Union Powers Committee) ने यह सिफारिश की कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या का अनुपात राज्य-परिषद् में, वहां के समस्त निर्वाचित सदस्यों के चालीस प्रतिशत के हिसाब से होना चाहिये। दूसरे शब्दों में यह कहिये कि राज्य-परिषद के सम्बन्ध में तो संघ शक्ति समिति ने भारत शासन अधिनियम, 1935 में रखी हुई व्यवस्था को मन्जूर कर लिया पर विधान-सभा के सम्बन्ध में उसने उस व्यवस्था को नहीं माना जो कि भारत शासन अधिनियम, 1935 में दी हुई है। प्रस्तुत संविधान के मसौदे में संघ शक्ति समिति की उन सिफारिशों को स्वीकार किया गया है जिन्हें गत वर्ष सभा ने मंजूर किया था। किन्तु अब डॉ. अम्बेडकर यह प्रस्ताव रखते हैं कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या किसी प्रतिशत के हिसाब से निर्धारित नहीं रहेगी किन्तु उन्हें राज्य-परिषद् में जितने स्थान दिये जायेंगे वह एक अनुसूची में दी हुई व्यवस्था के हिसाब से दिये जायेंगे और जो अनुसूची संविधान में जोड़ दी जायेगी। श्रीमान् भारत शासन अधिनियम, 1935 जब ब्रिटिश-पार्लियामेण्ट में पास हुआ था तो उस समय की स्थिति आज से बिल्कुल भिन्न थी। उस समय राज्य-संघ में शामिल होने के लिये केवल किसी कीमत पर ही तैयार थे। इसके अलावा,

उनको पासंग देना ब्रिटिश हित के अनुकूल भी था। किन्तु आज की परिवर्तित स्थिति और व्यवस्था में, इन राज्यों की, जिनका कि पहले 'भारतीय रियासतें' के नाम से उल्लेख किया जाता था, स्थिति आज बिल्कुल बदल गई है। उनके जो प्रतिनिधि यहां आये हैं स्वयं वे ही यह चाहते हैं कि उनके प्रदेशों का दर्जा वही हो जाना चाहिये जो कि प्रान्तों का है। इसलिये कोई कारण नहीं है कि रियासतों के लिये, भारत शासन अधिनियम में दिये हुए पासंग को अब क्यों जारी रखा जाये।

जैसा कि मैं कह चुका हूं श्रीमान् भारत शासन अधिनियम, 1935 में लोक-सभा के सम्बन्ध में रियासतों को प्रतिनिधान देने की जो व्यवस्था है उसे अपने संविधान के मसौदे में स्थान नहीं दिया गया है। अनुच्छेद 67 के खण्ड (5) को अगर माननीय सदस्य पढ़ें तो देखेंगे कि उसके उपखण्ड (ख) का जो परन्तुक है उसमें कहा गया है कि:—प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के प्रतिनिधियों की समस्त संख्या का, उनकी समस्त जनसंख्या से अनुपात, उस अनुपात से अधिक न होगा जो उक्त अनुसूची के भाग 1 और 2 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के प्रतिनिधियों की समस्त संख्या का, इन राज्यों की समस्त जनसंख्या से है। संविधान सम्बन्धी मसौदे में इस बात पर आग्रह किया गया है कि लोक-सभा में राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या उनकी जनसंख्या के हिसाब से होनी चाहिये मेरा कहना यह है कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों को राज्य-परिषद में जो प्रतिनिधान दिया जाये वह भी उसी सिद्धान्त के आधार पर दिया जाये जो कि लोक सभा के सम्बन्ध में रखा गया है। मेरे सामने यह दलील पेश की जा सकती है कि राज्य-परिषद् हमारा ऊपर वाला आगार होगा इसलिये वहां, भाग 3 तथा भाग 1 और 2 में उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या उनकी समस्त जनसंख्या के आधार पर निर्धारित नहीं की जा सकती। अगर आपत्ति के रूप में यह दलील मेरे सामने रखी जाये तो मैं उसे व्यर्थ समझता हूं। अगर मैंने यह कहा होता कि अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) के परन्तुक में शब्द '40' की जगह '25' या '30' रख दिया जाये तब तो ऐसी आपत्ति नहीं पेश की जाती। किन्तु इसी उद्देश्य को मैं भिन्न रूप से प्राप्त करना चाहता हूं। इसलिये मेरे संशोधन पर इस बिना पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है कि ऐसा करने से, राज्य-परिषद् की रचना के पीछे जो मूलभूत सिद्धान्त है, उसका विरोध होगा।

और फिर यदि माननीय सदस्यगण अनुच्छेद 67 के खण्ड 8 को पढ़ें तो देखेंगे कि वहां यह कहा गया है:—"प्रत्येक जनगणना की समाप्ति पर राज्य-

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

परिषद् में विविध राज्यों का और लोक-सभा में विविध निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधान, इस संविधान के अनुच्छेद 289 के प्रावधानों के अधीन रहते हुये, ऐसे प्राधिकारी द्वारा ऐसी रीति से और ऐसी तिथि से प्रभावी होने के लिये, पुनर्व्यवस्थापित किया जायेगा जैसा कि संसद विधि द्वारा निश्चय करे।" इससे प्रकट होता है कि प्रतिनिधान निश्चित करने में, न केवल लोक-सभा के सम्बन्ध में बल्कि राज्य-परिषद् के सम्बन्ध में भी, जनसंख्या का ख्याल रखा जायेगा। इसलिये मेरा संशोधन, इस खण्ड (8) के प्रावधानों से सर्वथा संगत है।

डॉ. अम्बेडकर ने इस सम्बन्ध में एक नया प्रस्ताव जरूर रखा है किन्तु फिर भी मैंने संशोधन जो पेश किया है श्रीमान् वह केवल इस कारण से कि उनके प्रस्ताव से यह साफ नहीं होता कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों को राज्य-परिषद् में जो प्रतिनिधान प्राप्त होगा वह वहां के समस्त निर्वाचित प्रतिनिधियों के 40 प्रतिशत से ज्यादा न होगा या यह कि उनकी समस्त जनसंख्या के हिसाब से जितने स्थानों के वे अधिकारी हैं उससे ज्यादा उन्हें नहीं मिलेंगे। यह सच है कि संविधान में यह तो नहीं लिखा जायेगा कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों को राज्य-परिषद् में जितने स्थान दिये जायेंगे उनका, उनकी समस्त जनसंख्या से एक निश्चित अनुपात बैठेगा ही किन्तु ऐसा तो किया ही जा सकता है कि रियासतों को जो प्रतिनिधित्व दिया जाये वह कार्यरूप में इसी हिसाब से हो। मैं इसे रोकना चाहता हूं और यह सुनिश्चित कर देना चाहता हूं कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 तथा भाग 1 और 2 में उल्लिखित राज्यों के जो स्थान वितरित किये जायें वह उनकी जनसंख्या के हिसाब से किये जायें। हमने संविधान से न केवल पृथक्-निर्वाचन पद्धति को बल्कि वजन देने की पद्धति को भी हटा दिया है। अगर विविध सम्प्रदायों के सम्बन्ध में वजन दिये जाने की पद्धति को हम हटा रहे हैं तो कोई कारण नहीं है कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में ही हम इसे क्यों बने रहने दें।

इन कारणों से, श्रीमान् आशा है कि मेरा संशोधन खुद डॉ. अम्बेडकर को पसंद होगा और सुतरां सभा भी उसे पसन्द करेगी।

***उपाध्यक्ष:** अब सूची 1 का संशोधन नं. 9 लिया जायेगा जो प्रो. शिब्बन-लाल सक्सेना के नाम से है।

**प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं अपना संशोधन सभा के सामने रखता हूं। वह इस प्रकार से है:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1378 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (1क) की जगह निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'(1क) राज्यों के प्रतिनिधियों को, राज्य-परिषद् में, निम्नलिखित सिद्धान्त के आधार पर स्थान वितरित किये जायेंगे:

(i) प्रथम अनुसूची के प्रत्येक राज्य के लिये, प्रथम 70 लाख की आबादी तक प्रति दस लाख पर 1 प्रतिनिधि होगा किन्तु शर्त यह है कि किसी भी राज्य का, राज्य-परिषद् में एक से कम प्रतिनिधि न होगा।

(ii) प्रथम 70 लाख की आबादी के ऊपर प्रति 20 लाख पर 1 प्रतिनिधि होगा।'"

अपने इस संशोधन के साथ मैंने एक अंक चित्र भी दे दिया है जिसमें दिखाया गया है कि प्रत्येक राज्य को कितने स्थान दिये जायें। मैं नहीं समझ पाता कि वह चित्र यहां क्यों नहीं है। जब हम संविधान-समिति की रिपोर्ट पर विचार कर रहे थे तो हमने तय किया था कि प्रत्येक प्रान्त के लिये अधिक से अधिक प्रतिनिधि संख्या 20 होगी और हमने हर प्रान्त के लिये अलग संख्या निश्चित कर दी थी। उस समय हमने जिस पद्धति को तय किया था वह तर्कसंगत और कायदे की नहीं थी। मेरा ख्याल यह है कि एक निश्चित आबादी तक हमें इस प्रतिनिधि-संख्या को जनसंख्या के आधार पर रखना चाहिये। यही कारण है कि मैंने अपने संशोधन में यह रखा है कि 70 लाख की आबादी तक तो प्रति दस लाख पर 1 प्रतिनिधि हो और उसके ऊपर की आबादी पर प्रति बीस लाख पर एक प्रतिनिधि हो। इस तरह बड़े-बड़े राज्यों को, कम प्रतिनिधान मिलेगा और छोटे-छोटे राज्यों को कुछ पासंग मिल जायेगा जो हम उन्हें देना चाहते हैं। यह व्यवस्था अधिक व्यावहारिक होगी। अन्यथा तो यह होगा कि संयुक्तप्रान्त को 20 स्थान मिलेंगे तो बिहार को भी उतने ही स्थान मिलेंगे। जो अंक चित्र मैंने संशोधन के साथ भेजा था अगर वह यहां उपलब्ध होगा तो यह बात साफ हो जायेगी कि किन राज्यों को कितने स्थान मैंने दिये हैं। स्थानों को वितरित करने के लिये जो पद्धति मैंने यहां उपस्थित की है वह बहुत ही समुपयुक्त है और मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि वह उसे स्वीकार करे।

***उपाध्यक्ष:** सूची 1 का संशोधन नं. 10 अब लिया जायेगा जो श्री फूलसिंह के नाम से है।

(सूची 1 का संशोधन नं. 10 पेश नहीं किया गया।)

अब सूची 2 का संशोधन नं. 2 लिया जाता है जो श्री लोकनाथ मिश्र के नाम से है।

***श्री लोकनाथ मिश्रः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्, किः

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1378 में, अनुच्छेद 67 के लिए प्रस्तावित खण्ड (1क) में 'अनुसूची 3ख में, इस बारे में, दिये हुये बन्धनों के अनुसार होगा' शब्दों की जगह ये शब्द रखे जायें कि 'प्रत्येक अंगभूत राज्य को समान प्रतिनिधान के आधार पर स्थान दिये जायें और स्थानों की संख्या किसी भी दशा में तीन से ज्यादा न होगी।"

डॉ. अम्बेडकर के संशोधन पर जो मैंने यह संशोधन रखा है उसका कारण यह है। चूंकि राज्य-परिषद् द्वारा राज्यों का प्रतिनिधान होगा इसलिये उचित यह है कि हर राज्य-घटक को एक इकाई माना जाय और हर इकाई को समान प्रतिनिधान दिया जाये। यदि ऐसा नहीं होता है तो यह कहना सर्वथा अर्थ-शून्य है कि राज्य-परिषद् द्वारा राज्यों का प्रतिनिधित्व किया जायेगा। वस्तुतः अमेरिका में तथा अन्य देशों में, जहां राज्यों के हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिये दूसरे आगार की व्यवस्था है, वहां हर राज्य को समान प्रतिनिधान दिया गया है। हमें यह भी मालूम है कि राज्य-परिषद् के निर्वाचित सदस्यों को राज्य के विधान-मण्डलों का निचला आगार चुनेगा। ऐसी सूरत में अगर हम यह कहते हैं कि इनका चुनाव किसी दूसरे तरीके से होगा यह कि या तो जनसंख्या के हिसाब से होगा या और किसी आधार पर किन्तु सदस्यों के लिये योग्यता वही रहेगी जो निर्वाचन करने वाले आगार के सदस्यों की रखी गई है तो राज्य-परिषद् से कोई वास्तविक प्रयोजन सिद्ध न होगा सिवाय इसके कि व्यर्थ में एक लोक-सभा और बन जायेगी वस्तुतः जो लोक-सभा होगी; उसमें तो राज्यों की जनता के ही प्रतिनिधि रहेंगे क्योंकि लोक-सभा के लिये राज्य, जो प्रतिनिधि भेजेंगे वह भी करीब-करीब उसी आधार पर भेजेंगे। इसलिये अगर हम इस सिद्धान्त को, कि हर राज्य एक इकाई है और वह अपने प्रतिनिधि राज्य-परिषद् में इसलिये भेजते हैं कि उनके विशेष हितों का संरक्षण हों, नहीं स्वीकार करते हैं तो राज्यों के प्रतिनिधान के लिये एक दूसरे आगार को रखने का कोई अर्थ नहीं है। अनुसूची 3 ख को यद्यपि, इस सम्बन्ध में हम विधान में रख रहे हैं फिर भी मैं समझता हूं कि इस बात को और स्पष्ट कर देना चाहिये कि राज्य-परिषद् में राज्यों के हितों का ही प्रतिनिधान रहेगा, सुतरां सभी राज्यों को, स्वायत्त-शासन प्राप्त इकाइयों के रूप में उस आगार के लिये समान स्थान प्राप्त रहेंगे। इसी कारण से मैं यह सुझाव दे रहा हूं कि राज्य-परिषद् में राज्यों को जो स्थान दिये जायें वह समान-प्रतिनिधान के सिद्धान्त के आधार पर ही दिये जायें और किसी भी

दशा में उनके प्रतिनिधियों की संख्या तीन से ज्यादा न हो। तीन तक ही में क्यों उनके प्रतिनिधित्व को सीमित रख रहा हूं? मेरा ख्याल है कि अगर हर राज्य से तीन प्रतिनिधि राज्य-परिषद् में आते हैं तो राज्य के विशेष हितों को सुरक्षित रखने के लिये वे यथेष्ट हैं और उनकी विशेष समस्याओं का वे सम्यक् रूप से समाधान कर सकेंगे। आखिर हमारा यह आगार यानी राज्य-परिषद् तो ऐसा आगार होगा जहां लोक-सभा से आये हुए प्रस्तावों पर विचार किया जायेगा और शान्तिपूर्वक विचार के लिये ही इस आगार की सृष्टि की जा रही है। इस आगार में विशेष ज्ञानसम्पन्न व्यक्ति ही रहेंगे और वह जो कुछ कहेंगे उसको सदस्य इसीलिये सुनेंगे कि उनके कथन में तत्व की बात होगी, गम्भीरता होगी और अपने भाषणों में सम्बन्धित प्रश्न पर विशेष प्रकाश डालेंगे न कि इसलिये कि सदस्य होने के नाते उन्हें बोलने का अधिकार है। उनकी संख्या कितनी हो यह बात हमारे लिये महत्व नहीं रखती और फिर तीन की संख्या मैं समझता हूं हमारे प्रयोजन के लिये पर्याप्त है।

***उपाध्यक्ष:** सूची का संशोधन नं. 12 अब लिया जायेगा जो श्री लक्ष्मीनारायण साहू के नाम में है।

**श्री लक्ष्मीनारायण साहू:** उपाध्यक्ष महोदय, मैंने जो संशोधन प्रस्ताव इस समय रखा है वह यह है:

"इस बात के लिये कार्रवाई की जानी चाहिये कि जहां तक सम्भव हो विभिन्न इकाइयों के लोगों को प्रतिनिधित्व प्राप्त रहे।" (Steps should be taken to see that, as far as possible, men from different units are represented.) यह प्रस्ताव देने का मतलब यह है कि जब मैंने कहा था कि इसके आगे के अनुच्छेद 67 के खण्ड एक का उपखण्ड "ए" को निकाल देना चाहिये तो इसका मतलब यह है कि और मैं चाहता हूं कि सब स्टेट्स के रिप्रेजेण्टेटिव बनकर कौंसिल ऑफ स्टेट में आयें।

इसलिये दूसरा जो संशोधन प्रस्ताव में लाया हूं उसमें यह है कि हर एक यूनिट जिससे प्रतिनिधि होकर आ सकेंगे ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये। यह शिड्यूल 3 "बी" बनाया गया है इसमें इसका प्रबन्ध किया गया है, इसमें कोई शक नहीं। परन्तु किसी प्रान्त से किसी यूनिट से कितने प्रतिनिधि आयेंगे उसका कुछ परिचय यहां नहीं दिया गया है। इसलिये हम लोगों को कुछ अच्छा मालूम नहीं होता कि इसका कम्पोजीशन कैसे हो सकता है। इसलिये पं. हृदयनाथ कुंजरू जी ने जो संशोधन प्रस्ताव किया है, मैं उसकी ताइद करता हूं और श्री शिब्बनलाल सक्सेना का जो प्रस्ताव है उसका मतलब भी यही है कि ऐसा करना चाहिये कि

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

जिसमें हर एक स्टेट प्रतिनिधित्व कर सकता है। परन्तु अभी मैं देखता हूं। कि दो तीन तरीके की स्टेट अभी हैं, जब हम लोग कोशिश करके एक तरीके की स्टेट बना सकेंगे तो अच्छा है। ऐसा हो सकता है कि अभी जो छोटी-छोटी स्टेट नैगलैक्टिड (अवहेलित) हो गई हैं, बाहर हैं, वह सब स्टेट चाहेंगी कि हम लोगों का कोई प्रतिनिधि वहां जाना चाहिये। परन्तु ऐसी अभी छोटी-छोटी स्टेट्स हैं जिसमें प्रतिनिधि आने की कोई सुविधा नहीं है। इसलिये मैं यह संशोधन रख रहा हूं "Steps should be taken to see that, as far as possible, men from different units are represented."

इसके बाद मैं इस मामले में ज्यादा नहीं कहना चाहता हूं।

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, सविनय मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) का परन्तुक हटा दिया जाये और खण्ड (1) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(1a) Parliament may by law establish a consultative Council of Representatives of Agriculture (25, Industry (15), Commerce (10), Mining, Forestry and Engineering (10), Public Utilities (5), Social Services (5), Economists (5), to advise Parliament and the Council of Ministers on all matters of policy affecting Agriculture, Industry, Commerce, Mining, Forestry, Engineering, Public Utilities and Social Services; and prepare or scrutinise proposals for legislation concerning any of these items.

*Explanation.*—The number given in the brackets after each group is the total number of representative from each section.

Members of this Council shall have, individually or collectively no administrative or executive duties, functions or responsibilities. Every member of this Council shall be paid such salaries, emoluments or allowances as Parliament may from time to time provide.'"

[(1क) संसद विधि द्वारा एक परामर्शदातृ,-परिषद् स्थापित कर सकती है जिसमें कृषि के (25), उद्योग-धन्धे के (15), व्यापार के (10), माइनिंग, फारेस्ट्री और इंजीनियरिंग के (10), सार्वजनिक उपयोगिताओं के (5), सामाजिक सेवाओं के (5) तथा अर्थ शास्त्रज्ञों के (5) प्रतिनिधि होंगे और वह परिषद्, संसद तथा मन्त्रिमण्डल को नीति-विषयक प्रश्नों पर, जिनका कि कृषि, उद्योग-धन्धा, व्यापार, माइनिंग-फारेस्ट्री और इंजीनियरिंग, सार्वजनिक उपयोगिता तथा सामाजिक सेवाओं पर प्रभाव पड़ता हो परामर्श देगी; और इनमें से किसी भी विषय के बारे में कानून बनाने के लिये प्रस्ताव तैयार करेगी या तद्विषयक प्रस्तावों की छानबीन करेगी।

*व्याख्या*—हर वर्ग के आगे कोष्ठक में जो संख्या दी हुई है वह हर वर्ग के प्रतिनिधियों की कुल संख्या है।

इस परिषद् के सदस्यों के, व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से, प्रशासन सम्बन्धी या कार्यपालक कर्तव्य, प्रकार्य अथवा दायित्व न होंगे। परिषद् के प्रत्येक सदस्य को ऐसे वेतन, परिलाभ या भत्ते दिये जायेंगे जिनका संसद समय-समय पर प्रावधान करे।]

यह सुझाव बिल्कुल मौलिक है, कहीं से लिया नहीं गया है और मसौदा समिति के माननीय अध्यक्ष को मैं इसका विश्वास दिला सकता हूं। वह किसी भी वर्तमान संविधान को देखकर मेरे कथन की सच्चाई खुद जान सकते हैं। इस तरह की कुछ मिलती-जुलती व्यवस्था, जर्मन के वाइमार-संविधान में, जो कि अब प्रयोग-शून्य है, पाई जाती है। किन्तु उस व्यवस्था में भी यहां आमूल सुधार कर दिया गया है।

यहां जो सुझाव रखा गया है उसमें तीन बातें हैं। एक तो परिषद् बिल्कुल परामर्शदातृ मात्र होगी; उसमें विशेष हितों के ही प्रतिनिधि होंगे और वे तद्विषयक यानी कृषि उद्योग, व्यापार आदि से सम्बन्ध रखने वाले संगठनों द्वारा निर्वाचित होंगे।

***डॉ. जीवराज एन. मेहता** (बड़ौदा): क्या मैं जान सकता हूं कि माननीय सदस्य ने चिकित्सा-व्यवसाय के सदस्यों को क्यों अपने संशोधन में स्थान नहीं दिया है?

* **प्रो. के.टी. शाह:** अगर आप उस दिशा में कोई संशोधन रखें तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूंगा। इस वर्ग के सदस्यों को रखना मैं भूल गया और इसके लिये आपसे क्षमा चाहता हूं। मेरे संशोधन में, पांडित्यपूर्ण, वकालती पेशे का या लिपिक-वर्ग का भी उल्लेख नहीं है। यदि सभा इनको भी यहां सम्मिलित कर ले तो मुझे उस पर कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु मैं इस बात को स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जिन वर्गों को प्रतिनिधान देने की बात कही गई है वह किसी व्यवसाय विशेष के आर्थिक हितों के ख्याल से नहीं बल्कि समस्त देश के हित का ध्यान रखते हुये ही इन वर्गों का प्रतिनिधान देने की बात कही गई है।

यह परिषद् पूर्णत: परामर्शदातृ-परिषद् होगी और जैसा कि संशोधन में कहा गया है, इसके कार्यपालक या प्रशासन सम्बन्धी कोई प्रकार्य न होंगे। विधि निर्माण सम्बन्धी सभी प्रस्तावों पर, जो कि संसद् के समक्ष आयेंगे या जिन्हें संसद् "छानबीन के लिए इसके पास भेजेगी, यह संसद्" को अपनी सलाह देगी।

आजकल विधान-मण्डलों द्वारा जो कानून पास किये जाते हैं उनको सामूहिक रूप से या एक-एक करके देखने से मैं यह कहूंगा श्रीमान, कि विधि-निर्माण

[प्रो. के.टी. शाह]

का काम आज इतना जटिल हो गया है, और इतनी विविध समस्याओं के सम्बन्ध में इतने कानून बनते हैं कि संसद् के औसत सदस्यों के लिये, उनके सम्बन्ध में अपना मत निश्चित करना या खास पारिभाषिक भाषा में जो कानून आज बनते हैं या जिन्हें संसद् को पास करना पड़ता है, उनको समझना बड़ा कठिन है।

विधि-निर्माण का काम आज इतना बारीक होता जा रहा है कि वह एक ललित कला का रूप ग्रहण करता जा रहा है, न केवल प्रस्तावित कानून का मसौदा तैयार करने के ख्याल से जो स्वत: एक बड़ा ही जटिल काम है बल्कि इस ख्याल से भी कि कानून में विविध बातों का समावेश करना पड़ता है और विभिन्न हितों को सन्तुष्ट करना पड़ता है जिनके लिये की कानून बनता है। आज भी आप देखेंगे कि यह एक परिपाटी सी बन गई है और साधारणत: इसको बरता जाता है, कि जिन विविध हितों को संसद् में प्रत्यक्ष प्रतिनिधान नहीं मिला है वे सम्बन्धित विभाग के सामने अपनी बात कह सकते हैं और अपनी वैकल्पिक योजना भी पेश कर सकते हैं।

चाहे बीमा के सम्बन्ध में कानून बनाना हो या श्रमिकों के सम्बन्ध में या बैंकिंग, शिपिंग और ट्रेड मार्क के बारे में हो, इन सभी कारोबारों के लोग इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं कि उनकी बात या उनका दृष्टिकोण अधिकारियों के समक्ष जरूर रखा जाये। जिस मन्त्री का उस कानून से सम्बन्ध रहता है वह आमतौर पर, कानून का अन्तिम रूप से मसौदा तैयार करने के पहले, इन लोगों की बात सुनता है। यदि सम्बन्धित मन्त्री सम्बन्धित हितों के लोगों से परामर्श नहीं करता है तो कभी-कभी प्रवर समिति (सिलेक्ट कमेटी) उस बिल पर सम्बन्धित हितों के प्रतिनिधियों की बात सुनती है या उनके आवेदन पर विचार करती है और उसके बाद तब जाकर संसद् द्वारा कानून पास होता है।

इस कारण मैं समझता हूं कि परामर्शदातृ-परिषद् का होना न केवल सम्बन्धित हितों के लिये लाभप्रद होगा बल्कि इसलिये भी कि आज देश जिस सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के अधीन जीवन-यापन कर रहा है उससे उस कानून विशेष का सामंजस्य स्थापित करने में परिषद् सहायक हो सकेगी। आज अक्सर होता यह है कि जब भी कोई कानून विधान-मण्डल के समक्ष आता है तो केवल वही लोग, जिनका कि उस कानून से सम्बन्ध है या जिनको कि प्रत्यक्ष या व्यक्तिगत रूप से उसमें कोई खास दिलचस्पी है, उस कानून के विभिन्न पहलुओं पर, खण्डों पर और उसमें सन्निहित सिद्धान्तों पर समझदारी से दिलचस्पी लेते हैं और सभा के शेष सदस्य या उनमें से अधिकांश लोग प्राय:

उदासीन रहते हैं। पार्टी के ख्याल से हो या पारस्परिक निष्ठा के कारण से हो, सदस्यगण बनने वाले कानूनों के सम्बन्ध में जो अपना मतदान करते हैं वह अधिकतर इन्हीं बातों के प्रभाव में आकर करते हैं जिनका मैंने अभी-अभी उल्लेख किया है और न कि इस कारण से कि कानून को ठीक-ठीक समझ कर, उसके प्रभाव को समझ कर उन्होंने उसके सम्बन्ध में अपना निश्चय किया है।

इसलिए समुचित विधि-निर्माण के ख्याल से यह सर्वथा अनुपयुक्त है कि हम कानून बनाने के लिये अनभिज्ञों और अनाड़ियों का दल इकट्ठा करें जो संसद् के समक्ष प्रतिवर्ष उपस्थित होने वाले जटिल एवं गहन विषयों पर विधि बनाये और वह भी उन विषयों के पंडितों और माने हुए विशेषज्ञों से बिना कोई परामर्श लिये, बगैर उनके पथ-प्रदर्शन के। मैंने यहां अनाड़ी शब्द का प्रयोग किया है और जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधि संसद् के समक्ष आने वाले अधिकांश प्रश्नों के सम्बन्ध में विधि-निर्माण करने के लिये प्रायः अनाड़ी ही होंगे। इन प्रतिनिधियों को परामर्श देने के लिये एक ऐसी परिषद् होनी ही चाहिये जिसमें तटस्थ, निस्पृह एवं उदासीन व्यक्ति हों जो अपने अध्ययन, अनुभव एवं शिक्षा के आधार पर, इन मसलों पर परामर्श देने के लिये सर्वथा सक्षम हों, जिनका कोई अधिशासी और शासन सम्बन्धी प्रकार्य न हो, जो स्वयं विधान-मण्डल के सदस्य न हों पर जिनका संसद् के बाहर देश में इतना सम्मान हो कि विधान-मण्डल से वह ऐसे निश्चय करा सकें जिनसे देश का अधिकाधिक हित हो। बहुत से देशों में श्रीमान्, एक यह पद्धति चालू होती जा रही है कि संसद् सामाजिक महत्व के मूलभूत कानून तो पास कर देती है किन्तु उन कानूनों के अधीन; सम्बन्धित विभागों को उस सम्बन्ध में उप-विधि या नियम बनाने का अधिकार दे देती है। उन मूलभूत कानूनों के अधीन वहां की नौकरशाही को—यहां आपत्तिजनक अर्थ में, मैं इस शब्द का प्रयोग नहीं कर रहा हूं—आप यों कह सकते हैं कि वहां स्थायी सरकारी कर्मचारीवृन्द को, विस्तृत रूप से नियमादि बनाने का अधिकार रहता है। इन नियमों को संसद् खुद नहीं बनाती। इसमें शक नहीं कि कभी-कभी इस ख्याल से कि शायद सदस्यों को उनके सम्बन्ध में कोई आपत्ति हो और वे उसे व्यक्त करना चाहें, नियमों की प्रतियां सभासदों की मेजों पर अवश्य रख दी जाती हैं पर सच तो यह है कि शायद ही कभी सदस्य उनको पढ़ते हों और उनकी छानबीन करते हों। मूलभूत कानून के अधीन जब सम्बन्धित विभाग ऐसे नियमों को बनाते हैं तो वे नियम केवल इस आधार पर ही कानून का रूप ग्रहण कर लेते हैं कि उनको विभागस्थ कर्मचारियों ने बनाया है और संसद् के सदस्य उस पर आपस में परामर्श नहीं करते।

[प्रो. के.टी. शाह]

यह एक ऐसी पद्धति है, श्रीमान्, जिसके सम्बन्ध में विख्यात विधि-शास्त्र-वेत्ता, किंग्स बेंच डिवीजन के प्रधान न्यायाधीश लार्ड हैवेट ने यह कहा है कि यह एक तरह का नया निरंकुशतंत्र है। वस्तुतः यह पद्धति ऐसी है कि उससे सरकारी महकमों के स्थायी अफसरों को इतना अधिकार मिल जाता है कि उससे एक तरह से नागरिक स्वतंत्रताओं का होना न होना दोनों बराबर हो जाता है और नागरिकों की सामान्य स्वतन्त्रतायें तो जाती रहती हैं।

हम जिस स्वतंत्र लोकतन्त्र की योजना बना रहे हैं, उसके लिये मैं कहूंगा, श्रीमान् कि यह व्यवस्था कदापि हितकर नहीं हो सकती। इसलिये मेरा निवेदन यह है कि लोक-स्वातन्त्र्य के हित में समुचित विधान-निर्माण के हित में श्रेयस्कर यही है कि हम एक परामर्शदातृ-परिषद् बनायें, जिसमें निस्पृह एवं निस्वार्थ व्यक्ति हों, जिनको हम केवल अनुभव, शिक्षा एवं योग्यता के आधार पर ही चुनें और जिन पर हमारे मन्त्रियों की तरह अन्य कोई भार न हो, जिनके कार्यपालक या शासन सम्बन्धी प्रकार्य न हों। उनको हम इतना अच्छा पारिश्रमिक दें कि उन पर देश-हित के अतिरिक्त अन्य किसी बात का प्रभाव न पड़ सके और वे अपना समस्त समय उन खास-खास विषयों पर ही लगायें जिनके सम्बन्ध में कानून बनाने का प्रश्न संसद के समक्ष खड़ा हो। आशा है, सभा यह संशोधन स्वीकार करेगी।

***उपाध्यक्षः** अब संशोधन नं. 1380 लिया जाये, जो डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के नाम में है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 67 के खण्ड (2) के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये":

'(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) के अधीन प्रधान द्वारा मनोनीत किये जाने वाले सदस्यों में ऐसे व्यक्ति होंगे जिनको इन विषयों का, जिनका उल्लेख नीचे है, विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव है–

साहित्य, कला, विज्ञान और सामाजिक सेवायें।' "

***उपाध्यक्ष:** इस संशोधन पर कई संशोधन आये हैं और उनको मैं एक-एक करके लेता जाऊंगा। संशोधन नं. 13 जो श्री कामत के नाम में है।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

अब संशोधन नं. 14 आता है जो श्री लोकनाथ मिश्र के नाम में है।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1380 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (2) में, 'विशेषज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव' शब्दों की जगह 'वास्तविक ज्ञान या उनके प्रति सक्रिय निष्ठा' शब्द तथा 'साहित्य, कला, विज्ञान और सामाजिक सेवायें' शब्दों की जगह 'प्राचीन भारतीय दर्शन और संस्कृति का इतिहास, कला, विज्ञान तथा ऐसी सामाजिक सेवायें जो अन्तर्मुखी भारत के पुनर्निर्माण के हेतु हों' शब्द रखे जायें।"

मैं माननीय डॉ. अम्बेडकर का धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने यह संशोधन उपस्थित किया और उसमें 'साहित्य, कला, विज्ञान तथा सामाजिक सेवायें' शब्दों को रखा। उनका यह संशोधन मूल अनुच्छेद से कहीं अच्छा है। वस्तुत: मेरी तुच्छ राय तो यह है कि राज्य-परिषद्, जैसा कि मैं इसे समझता हूं, हमारे अतीत के प्रतिनिधित्व करने वाला आगार होगी और लोक-सभा हमारे वर्तमान का प्रतिनिधित्व करेगी। और जहां तक हमारे भविष्य का सवाल है, वह तो विधाता के ही हाथ में है। मैं तो कहूंगा कि हम अपने देश में उस स्निग्धकर प्रभाव की सृष्टि जो आज अपेक्षित है तभी कर सकते हैं, जब कि हम अपने मन और विचारों का निर्माण अपने अतीत के आधार पर करें। अगर भारत को वास्तविक भारत होना है तो मैं कहूंगा कि उसे अपने महान् एवं गौरवशाली अतीत का सम्यक् ज्ञान होना चाहिये। अत: राज्य-परिषद् के लिये राष्ट्रपति द्वारा जो सदस्य मनोनीत किये जाये वह ऐसे ही व्यक्ति होने चाहियें जिन्हें हमारे अतीत का, हमारे इतिहास, दर्शन एवं संस्कृति का पूरा ज्ञान हो। इसीलिये मैं कह रहा हूं कि बजाय 'साहित्य' शब्द रखने के हमें 'इतिहास, दर्शन और संस्कृति' शब्द रखने चाहियें। हमारे सारे प्रयास एक ही दिशा में होने चाहियें और वह दिशा यही हो सकती है कि हमारा आदर्श यह होना चाहिये कि भारत अपने अतीत स्वरूप को, अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करे। राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये गये सदस्य इन्हीं चार विषयों का वहां प्रतिनिधित्व करेंगे। अपने सुझाव का औचित्य समझाने के लिये मुझे कोई लम्बा

[श्री लोकनाथ मिश्र]

भाषण देने की जरूरत नहीं है। इस सम्बन्ध में मैं 'भारत तथा पाश्चात्य जगत' नामक निबन्ध से चन्द पंक्तियां उद्धृत करूंगा जिसे कैप्टन एनथानी एम. लुडोवी (इंग्लैण्ड) ने लिखा है। आप लिखते हैं:

"मनुष्य-विज्ञान के वेता हमें विश्वासपूर्वक यह बतलाते हैं कि किसी भी जाति विशेष के अस्तित्व को समाप्त करने के लिये अक्सर हिंसा, व्याधि या उनमें यूरोपियनों द्वारा किसी बुरी आदत का फैलाया जाना ही अपेक्षित नहीं है। आप उस जाति पर नया विश्वास और रहन-सहन लाद दीजिये और इसके परिणामस्वरूप उसमें एक नैराश्य या मानसिक शैथिल्य उत्पन्न हो जायेगा जो उसके अस्तित्व को समाप्त कर देगा, क्योंकि ऐसा होने पर वह एक ऐसी मानसिक अवस्था में पड़ जाती है जो उसके उत्साह को, जीवन के आनन्द को और यहां तक कि अपने को बचाये रखने की इच्छा-शक्ति को ही निर्जीव कर देती है।"

"जब हम यह देखते हैं कि सभी जातियों में, यहां तक कि यूरोप की खानाबदोश जातियों में भी अपने जातीय संस्कृति एवं रीतिरिवाजों के प्रति बड़ा ही गहरा मोह होता है, तो हमें यह जान कर लेशमात्र भी आश्चर्य न होना चाहिये कि उन जातियों में, जिनमें कि परिवर्तन की तथा परिवर्तन सहन करने की क्षमता हमसे कुछ भिन्न है, एक नई और जबरदस्त संस्कृति के आ जाने का—जो कि बहुधा धर्म परिवर्तन के सहारे, बलपूर्वक या प्रलोभन द्वारा उन पर तेजी से लादी गई है—प्रभाव यह पड़ा है कि वह सर्वथा निर्जीव हो गई है, न उनमें कोई कामना रह गई है, न कोई आशा और विश्वास रह गया है।"

"यूरोपवासी इस स्थिति में था कि उन लोगों को, जो कि धर्म-परिवर्तन न करने पर अड़े हुये थे, धमकी के जरिये राजी कर लेता था, धर्म-प्रचार एवं व्यापार प्रसार करने वाले अपने दलालों के दुराग्रह के द्वारा उनको उत्तेजित करके उनसे शत्रुवत् आचरण कराता था और फिर उसके बहाने उनके विरुद्ध प्रायः करके फौजी कार्रवाई कर बैठता था। ऐसी दशा में अगर कुछ जातियां इस प्रबल आघात को सह कर भी अपना अस्तित्व बनाये रखने में, न केवल एक सुसंगठित समुदाय के रूप में बल्कि एक सजीव जाति के रूप में, अपनी परम्परागत रूढ़ियों का निर्वाह करते हुये अपने देवी-देवताओं की उपासना अपने रीत्यानुसार करते हुये अपना अस्तित्व कायम रखने में सफल रहीं तो यह कहना

होगा कि उन्होंने एक बहुत ही बड़ा कारनामा कर दिखाया, एक महान् चमत्कार कर दिखाया और इस चमत्कार को हम धर्म एवं निष्ठा का चमत्कार कहेंगे। अपनी संस्कृति पर डटे रहने की भावना, जाति को आश्चर्यजनक जीवन शक्ति प्रदान करती है जिससे ये चमत्कार सम्भव होते हैं।

"हम जानते हैं कि भारतवर्ष ने एक हद तक यह चमत्कार कर दिखाया। अपने अपेक्षाकृत विकास के कारण, अपने सांस्कृतिक जाटिल्य के कारण, अपनी महती जनसंख्या के कारण जो आक्रमणकारियों की तुलना में कहीं अधिक थी, सर्वोपरि अपने नेताओं के उच्चतम बौद्धिक स्तर के कारण तथा इस कारण कि उसके नेताओं में अपने देशवासियों के चिरपलित शारीरिक एवं मानसिक अभ्यासों को कायम रखने की एक दृढ़ भावना है, भारतवर्ष आगामी हजारों वर्षों तक दुनिया में एक सजीव राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित रहेगा, एक ऐसे राष्ट्र के रूप में....

***उपाध्यक्ष:** कितनी देर तक आप यह सब पढ़कर सुनाना चाहते हैं? मेरा ख्याल है कि जो संशोधन आपने रखा है, उससे इन बातों का कोई सम्बन्ध नहीं है।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** अभी समाप्त किये देता हूं। हम क्या हैं इसकी प्रशंसा एक विदेशी ने की है और इसी दृष्टि से यह उद्धरण यहां प्रासंगिक है:

"एक ऐसे राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित रहेगा, जिसने ऐसी प्रबल शक्तियों के विरुद्ध जो अन्यत्र प्राय: सर्वत्र ही विजयी रही, शताब्दियों तक बल्कि यह कहना चाहिये कि अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के अन्तिम दिन तक, अपने जीवन को, अपने आचार-विचार सदा बनाये रखने के लिए संघर्ष किया और बिना कोई असाध्य क्षति उठाये।"

मैं यह निवेदन करूंगा, श्रीमान्, कि अपने संविधान का मसौदा तैयार करते समय हम अपने अतीत की रक्षा करने का साहस नहीं कर सकते। राज्य-परिषद् का एक ऐसा आगार होना चाहिये जहां अतीत को अवश्य प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। और यह तभी हो सकता है, जब कि राष्ट्रपति ऐसे व्यक्तियों को मनोनीत करें जो हमारे उन अतीतकालीन मेधावी महापण्डितों का प्रतिनिधित्व करने के योग्य हों, जिनकी भावनायें सर्वथा उदात्त थीं, जिनका नैतिक स्तर बहुत ही ऊंचा था।

***उपाध्यक्ष:** अब आता है संशोधन नं. 15, जो मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम में है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1380 में अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (2) के अन्त में 'विज्ञान' शब्द के बाद 'दर्शन, धर्म एवं कानून' शब्द जोड़ दिये जायें।"

**उपाध्यक्ष:** क्यों न आप संशोधन नं. 17 को भी इसी समय पेश कर दें? वह भी तो आप ही के नाम में है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्, कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1380 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (2) के अन्त में 'साहित्य....' इत्यादि से प्रारम्भ होने वाले शब्दों को, उस खण्ड के उपखण्ड (क) के रूप में रखा जाये और उसके बाद निम्नलिखित नया उपखण्ड जोड़ दिया जाये:

'(ख) पत्रकारिता, वाणिज्य, उद्योग-धन्धा तथा कानून।'"

इस सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है, श्रीमान्, कि अनुच्छेद 67 के मूल खण्ड (2) में कई विषय रखे गये हैं जिनके विशेषज्ञों को राष्ट्रपति राज्य-परिषद् के लिये मनोनीत करेगा। वस्तुत: उस खण्ड में बहुत से विषय रखे गये हैं जिनके नाम ये हैं:

(क) साहित्य, कला, विज्ञान और शिक्षा।

(ख) कृषि, मत्स्यपालन और तत्सम्बद्ध विषय।

(ग) अभियंत्रणा (इंजीनियरिंग) और वास्तुशास्त्र।

(घ) लोक-प्रशासन और सामाजिक सेवायें।

इस लम्बी सूची में से केवल तीन विषय 'कला, विज्ञान और सामाजिक सेवायें' डॉ. अम्बेडकर के प्रस्तुत संशोधन में रखे गये हैं और "letters" को उन्होंने और जोड़ लिया है। मेरा यह कहना है, श्रीमान्, कि यदि राष्ट्रपति पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है कि मनोनीत करने में वह केवल इन्हीं चार विषयों

के विशेषज्ञों को लेगा और शेष विषयों की तरफ ध्यान न देगा, तो इसमें खतरा होगा। कोई कारण नहीं है कि मनोनीत करने के सम्बन्ध में राष्ट्रपति पर कोई पाबन्दी लगाई जाये और उसे व्यापक क्षेत्र न दिया जाये। अस्तु, मेरा पहला संशोधन जिसे कि मैं अभी पेश कर चुका हूं केवल इतना ही कहता है कि इसमें 'दर्शन, धर्म, एवं कानून' और जोड़ दिये जायें। इस सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है, श्रीमान्, कि जहां तक दर्शन शास्त्र का सम्बन्ध है, वह मूलतः एशियाई प्रदेश की चीज है। यही बात धर्म के सम्बन्ध में है। विश्व के सभी बड़े-बड़े दर्शन और धर्म एशिया में ही पैदा हुये और यहीं से उनका प्रसार हुआ। कोई कारण नहीं है कि हम क्यों अपने दार्शनिकों को तथा धर्म विषयक नेताओं को संसद् से बाहर रखें। अभी उस दिन की ही तो बात है कि श्री कामत के कहने पर हमने अपने संविधान में 'परमात्मा' शब्द को स्थान दिया है। वस्तुतः राष्ट्रपति जब पद ग्रहण की शपथ लेगा तो वह परमात्मा के नाम में ही शपथ लेगा। जब हमने परमात्मा को संविधान में रखा है तो धर्म को भी, जो परमात्मा के मानने के फलस्वरूप पैदा होता है, अपने संविधान में मान्यता देना हमारे लिये स्वाभाविक होना चाहिये। अक्सर यह कहा जाता है कि धर्म बहुत बुरी चीज है और इसके कारण झगड़े पैदा होते हैं। मेरा यह निवेदन है, श्रीमान्, कि धर्म कभी भी झगड़ों की सृष्टि नहीं करता। यह तो साम्प्रदायिकता है जो झगड़े पैदा करती है न कि धर्म। विश्व के सभी महान् धर्म बहुत ही अच्छे हैं और इनसे एक नैतिक आधार मिलता है, जिसके सहारे मानवता अपना काम कर सकती है। इसलिये हमें धर्म की उपेक्षा न करनी चाहिये और न दर्शन की ही। इस सभा के लिये तो दार्शनिक दृष्टिकोण विशेष रूप से आवश्यक है। ऐसे समय जबकि एक सदस्य यह पाता है कि उसके संशोधन पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता है और उसकी वक्तृता को मसौदा-समिति का प्रधान सुनता ही नहीं है तो उस बेचारे के लिये दार्शनिक होने के सिवाय क्या चारा रह जाता है? इसलिये परमात्मा के नाम पर मैं अनुरोध करता हूं कि धर्म को जरूर संविधान में रखिये, छोड़िये मत।

अब इसके बाद 'कानून' रखने की बात आती है। मैं कहूंगा, श्रीमान्, कि कानून-विशेषज्ञों का भी राज्य-परिषद् में जरूर प्रतिनिधान होना चाहिये। ऊपर वाले आगार में तो खास तौर पर कानून विशेषज्ञों की खासी संख्या रहनी चाहिये क्योंकि उस आगार में तो उन सभी प्रस्तावों पर पुनर्विचार किया जायेगा जो नीचे वाले आधार से पास होंगे। सुतरां वहां कानून विशेषज्ञ अवश्य ही रहने चाहियें। सर तेजबहादुर सप्रू, सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर जैसे कानून-विशारद....

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** सर बी.एन. राव।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** अवश्य ही, सर बी.एन. राव भी। मैं इस सुझाव के लिये माननीय मित्र का आभारी हूं। ये बहुत ही उपयोगी नाम हैं और राष्ट्रपति जब मनोनीत सदस्यों को चुनने लगें तो इन धुरन्धरों को भी चाहें तो वह मनोनीत कर लें, यह उसके वश की बात होनी चाहिये। हो सकता है कि किसी भावी चुनाव में खुद डॉ. अम्बेडकर को हम न चुन पायें। ऐसी हालत में यह उपाय रहना ही चाहिये कि राष्ट्रपति को मनोनीत करने का जो अधिकार है, उस व्यवस्था द्वारा हम इन्हें ले सकें। हां, इसके अतिरिक्त सर जयकर हैं। ये लोग कानून के धुरन्धर विद्वान हैं और इनका लिया जाना भी बड़ा ही लाभप्रद होगा। इसलिये मैं कहूंगा कि प्रधान मनोनीत व्यक्तियों को चुनते समय इन सब नामों पर भी विचार कर सकें, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये।

अब हम वाणिज्य के प्रतिनिधित्व की बात लेते हैं। हम अपने बड़े-बड़े व्यापारियों को भी लेना चाहते हैं जो देश में सम्पत्ति का वस्तुत: सृजन करते हैं। इनको भी प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिये। इनकी राय हमारे लिये बहुत ही सहायक होगी। यही बात हमारे उद्योगपतियों के सम्बन्ध में भी लागू है।

ये कई भिन्न वर्ग हैं जिनमें से राष्ट्रपति अपने मनोनीत व्यक्तियों को ले सकता है। राष्ट्रपति को इस सम्बन्ध में काफी व्यापक क्षेत्र मिलना चाहिये, जहां से वह राज्य-परिषद के लिये लोगों को मनोनीत कर सकें। इसलिये मैं कहूंगा कि सभा को यह संशोधन स्वीकार करना चाहिये।

पत्रकारिता, वाणिज्य, उद्योग-धन्धा और कानून—इनको यहां जोड़ने का जो मैंने सुझाव दिया है, वह मैंने कतिपय कानून विशारदों के एक सुझाव के आधार पर ही दिया है जिसे कि उन्होंने भारतीय विधान के मसौदे पर विचार करते हुये, कलकत्ता के 'इण्डियन ला रिव्यू' नामक जनरल में प्रकाशित लेख में दिया है। यह एक त्रिमासिक पत्रिका है। इसके दूसरे अंक के पृष्ठ 9 पर उक्त लेख छपा है। उस लेख में इसी अनुच्छेद के सम्बन्ध में विचार करते हुये उन्होंने सुझाव रखा है कि पत्रकारिता, वाणिज्य, उद्योग-धन्धा तथा कानून—इन चार पेशों के भी प्रतिनिधि राज्य-परिषद् में रहने चाहियें। उनका कहना है कि कोई कारण नहीं है कि क्यों इन चार महत्वपूर्ण पेशों को भी प्रतिनिधित्व न दिया जाये। सबसे महत्व की बात जो मैं सभा को सुझा रहा हूं, वह यही है। मनोनीत व्यक्तियों को लेने के लिये राष्ट्रपति को व्यापक क्षेत्र मिलना चाहिये और वह सीमित न होना

चाहिये। इस सूची में अगर हम भिन्न-भिन्न पेशों और व्यवसायों को रखते हैं ताकि उनमें राष्ट्रपति लोगों को मनोनीत कर सकें, तो यह लाभप्रद ही होगा।

***उपाध्यक्ष:** अब दूसरा संशोधन जो हमारी सूची में आता है, वह है सूची 1 का संशोधन नं. 16 जो श्री सिधवा के नाम में है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मैं अपना संशोधन नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** अब दूसरा संशोधन है सूची 1 का नं. 18, जो श्री बी. दास के नाम में है।

चूंकि श्री बी. दास यहां उपस्थित नहीं हैं, हम इसे छोड़कर आगे बढ़ते हैं।

अब आता है संशोधन नं. 1381। मैं देखता हूं कि संशोधन नं. 1383, 1384 तथा 1385 से 1392, ये सब एक ही आशय के हैं। इसलिये इन सभी संशोधनों पर एक साथ विचार किया जा सकता है।

संशोधन नं. 1384 अब पेश किया जा सकता है, जो श्री प्रभुदयाल हिम्मत-सिंहका के नाम से है।

**श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): मैं अपना संशोधन नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान।

(नं. 1381 से 1384 तक संशोधन पेश नहीं हुये।)

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये:
> '(3) राज्य-परिषद् के सभी सदस्य निर्वाचित होकर आयेंगे और प्रत्येक संविधायी राज्य वयस्क मताधिकार के आधार पर पांच सदस्य चुनेगा।' "

मैं यहां इसी आम सिद्धान्त का सदा पक्ष-प्रतिपादन करता रहा हूं कि विधान-मण्डल के सभी सदस्य ऐसे होंगे जिन्हें जनता ने अपना प्रतिनिधि चुन

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

कर भेजा हो, भले ही चुनाव आप चाहे जिस पद्धति से करना तय करें। प्रस्तुत संशोधन को मैंने इसी सिद्धान्त के आधार पर रखा है।

दूसरी बात उस सम्बन्ध में यह है कि राज्य-परिषद् में, संघ के अंगभूत सभी राज्यों या इकाइयों को—आप चाहें जो नाम उसके लिये रख लें—समान प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये। नीचे वाले आगार में यानी लोक-सभा में तो आप जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधि ले सकते हैं, पर ऊपर वाले आगार यानी राज्य-परिषद् के लिये जो प्रतिनिधित्व होगा, वह तो विशेषकर प्रादेशिक आधार पर ही होगा और सम्बन्धित प्रदेश के हित विशेषों की ओर से ही प्रतिनिधि लिये जायेंगे न कि केवल जनसंख्या के आधार पर।

और ये लोग भी अर्थात् जो लोग कि राज्य-परिषद् के लिये लिये जायें, वे भी निर्वाचन के द्वारा ही लिये जायें, न कि मनोनयन द्वारा या अतिरिक्त रूप से सदस्य लेकर या अन्य किसी पद्धति के जरिये उस आगार के सदस्य निर्वाचित होने चाहियें।

दूसरी बात यह कि राज्यों के जो प्रतिनिधि आयेंगे, वह सभी इकाइयों से समान संख्या में आयेंगे, यानी हर राज्य को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त रहेगा, ताकि हमारा लोकतन्त्र वास्तविक संघ के अर्थ में काम करता दिखाई दे और यह न हो कि राज्यों में कोई भेदभाव बरता गया हो। इन सभी बातों के आधार पर सभा से इस अपने संशोधन को स्वीकार करने की मैं सिफारिश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 1396 केवल रस्मी है, इसलिये इसे उपस्थित करने की अनुमति नहीं दी जाती है।

(संशोधन नं. 1397 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 1398 का पहला हिस्सा तथा संशोधन नं. 1402 समान आशय के हैं। संशोधन नं. 1398 के प्रथम अंश को उपस्थित करने की अनुमति मैं दे सकता हूं।

***श्री मुहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): उसके दूसरे हिस्से के बारे में आप क्या कहते हैं?

***उपाध्यक्ष:** वह अपनी जगह पर लिया जायेगा।

***श्री मुहम्मद ताहिर:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्, कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में जहां भी दूसरी बार शब्द आया है वह हटा दिया जाये।"

मैं यह संशोधन इसलिये रख रहा हूं कि मैं ऐसा समझता हूं कि राज्य-परिषद् के प्रतिनिधियों का जहां तक सम्बन्ध है, उनमें निर्वाचित एवं मनोनीत सदस्य के बीच कोई अन्तर नहीं रहना चाहिये। मनोनीत सदस्यों को भी आगार में ले लिये जाने पर वही अधिकार और सुविधायें प्राप्त हों जो कि उस आगार के सदस्यों को सदस्य होने के नाते प्राप्त हैं।

भारत के राष्ट्रपति के निर्वाचन के सम्बन्ध में भी मैंने इसी आशय का एक संशोधन रखा था, किन्तु उसके बारे में सभा ने यह तय किया कि केवल निर्वाचित सदस्य ही राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिये मत दे सकेंगे। वहां ऐसी व्यवस्था करने का तो कुछ कारण भी था, क्योंकि अगर कोई राष्ट्रपति संसद् के लिये सदस्य मनोनीत करने के बाद अगर राष्ट्रपति पद के लिये खुद उम्मीदवार खड़ा हो जाता है, तो मनोनीत सदस्यों को मतदान में अवश्य ही कुछ न कुछ कठिनाई—संकोच—होगी। किन्तु जहां तक कि राज्य-परिषद् के प्रतिनिधियों के निर्वाचन का प्रश्न है, मैं कोई कारण नहीं देखता कि विधान-मण्डल के मनोनीत सदस्यों को क्यों राज्य-परिषद् के लिये प्रतिनिधि-निर्वाचन में मतदान करने से रोका जाये। आशा है, सभा इन सभी बातों पर विचार करते हुये मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन के दूसरे हिस्से की अब आप पेश कर सकते हैं। उन पर अलग-अलग राय ली जायेगी। संशोधन नं. 1402 इसी आशय का है। क्या आप चाहते हैं कि उस पर भी राय ली जाये?

***श्री मुहम्मद ताहिर:** हां, जनाब।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 1398 के दूसरे भाग को अब आप पेश कर सकते हैं।

***श्री मुहम्मद ताहिर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में 'लेजिस्लेटिव असेम्बली' (Legislative Assembly) शब्दों की जगह 'लोअर हाउस' (Lower House) शब्द रखे जायें।"

[श्री मुहम्मद ताहिर]

इस सम्बन्ध में मैं चाहूंगा कि माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर खास तौर पर इस पर ध्यान दें। मैंने यह संशोधन इसलिये पेश किया है कि मसौदे के अनुच्छेद 148 में राज्यों के विधान-मण्डल को विधान-सभा (Legislative Assembly) या विधान-परिषद् (Legislative Council) कहा गया है और लोअर हाउस (Lower House) नाम नहीं दिया गया है जैसा कि अनुच्छेद 67 में सुझाया गया है। इस सम्बन्ध में मैं समझता हूं, माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर मुझ से भी ज्यादा सतर्क निकले क्योंकि जब हम अनुच्छेद 43 पर विचार कर रहे थे, उस समय उन्होंने उस अनुच्छेद में एक व्याख्या इस आशय की जोड़ दी थी: "इस तथा निकटवर्ती आगामी अनुच्छेद में 'राज्य के विधान-मण्डल' पदावली से, जहां विधान-मण्डल दोधारा हो, विधान-मण्डल का प्रथम सदन अभिप्रेत होगा।" जब हम अनुच्छेद 43 पर यहां विचार कर रहे थे, तो उन्हें यह व्याख्या जोड़नी पड़ी थी, और इसका मतलब यह हुआ कि यह व्याख्या केवल अनुच्छेद 43 तथा 44 के लिये ही है। इसलिये विचाराधीन अनुच्छेद में स्थिति को स्पष्ट करने के लिये मेरे संशोधन को स्वीकार करने के लिये मुझे और कोई उपाय नहीं दिखाई देता, श्रीमान्। या मैं डॉ. अम्बेडकर से यह अनुरोध करूंगा कि वे यहां भी एक व्याख्या जोड़ दें जैसा कि उन्होंने अनुच्छेद 43 में किया है, क्योंकि अगर ऐसा नहीं किया जाता है तो अनुच्छेद का मतलब साफ नहीं होगा। आशा है कि सभा संशोधन पर समुचित रूप से विचार करेगी और उसे स्वीकार करेगी।

**महबूब अली बेग साहब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं यह प्रस्ताव रखना चाहता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में 'लोअर हाउस' (Lower House) शब्दों की जगह 'दोनों आगारों के' (the two Houses) शब्द रखे जायें।"

इस उपखण्ड का संशोधित रूप यह होगा:

"67 (3) (क) जहां राज्य के विधान-मण्डल के दो आगार हैं वहां दोनों आगारों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा निर्वाचित होंगे।''

मुझे तो कोई कारण नहीं दिखाई देता श्रीमान्, कि जिन राज्यों में दोधारा विधान-मण्डल हैं, वहां अवर आगार के निर्वाचित सदस्यों को इस निर्वाचन में भाग लेने से क्यों रोका जाये। जो लोग मनोनीत होकर अवर आगार में आयेंगे,

मैं उनके ख्याल से यह संशोधन नहीं दे रहा हूं, बल्कि इसे मैं इस ख्याल से पेश कर रहा हूं कि अवर आगार के निर्वाचित सदस्यों को निर्वाचन में भाग लेने का अधिकार मिलन चाहिये। सैद्धान्तिक दृष्टि से कोई कारण नहीं है कि अवर आगार के निर्वाचित सदस्यों को निर्वाचन में भाग लेने से क्यों वंचित रखा जाय। यही कारण है, जिसके लिये मैं यह संशोधन रख रहा हूं।

मेरे नाम से एक संशोधन और है, जिसका नं. है 1407 । उसे भी पेश करने की मुझे अनुमति दी जाये, श्रीमान्।

**उपाध्यक्षः** इसी आशय के तीन संशोधन आये हैं। एक है नं. 1400, दूसरा नं. 1403 और अन्तिम है नं. 1407 । इनमें से नं. 1407 मुझे सर्वाधिक व्यापक प्रतीत होता है। श्री बेग अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

***महबूब अली बेग साहब बहादुरः** दूसरा संशोधन जो मेरे नाम से है, वह है नं. 1407, जिसे मैं पेश करता हूं। मेरा प्रस्ताव है किः

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) में निम्नलिखित नया उपखण्ड (घ) जोड़ा जाये :

'(घ) उपखण्ड (क) तथा (ख) के अधीन होने वाला चुनाव अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति के आधार पर एक संक्राम्य मत द्वारा किया जायेगा।' "

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्तः जनरल): मेरी एक नियम सम्बन्धी आपत्ति है, श्रीमान्। श्री बेग से पहले तो इसी आशय का मेरा संशोधन आता है, पर उसे पेश करने की मुझे तो अनुमति नहीं दी गयी।

***उपाध्यक्षः** बात यह है कि तीनों ही संशोधन यानी नं. 1400, 1403 तथा 1407 एक साथ पेश किये गये हैं, जैसा कि माननीय सदस्य को खुद मालूम हो जायेगा, अगर वह वितरित पत्रों को देखें। मेरी राय में इन तीनों में संशोधन नं. 1407 सर्वाधिक व्यापक दिखाई देता है। अस्तु, माननीय सदस्य को आगे चल कर अपना संशोधन पेश करने का मौका मिलेगा।

***महबूब अली बेग साहब बहादुरः** मुझे खुशी है कि यहां निर्वाचन-पद्धति के सम्बन्ध में कुछ सदस्यों की, और खास कर माननीय मित्र श्री महावीर त्यागी

[महबूब अली बेग साहब बहादुर]

की वही राय है जो मेरी है। मुझे इसकी भी खुशी है कि अब से विधान के इस हिस्से पर पहुंच कर त्यागी जी ने अपनी राय बदल दी है। जब संविधान के किसी पूर्व के भाग में राष्ट्रपति के निर्वाचन के सम्बन्ध में मैंने अपना संशेधन रखा था, तो मुझे खूब याद है, त्यागी जी ने बड़ी अनुदारता दिखाई थी।

***श्री महावीर त्यागी:** वहां राष्ट्रपति के निर्वाचन का प्रश्न या, पर यहां प्रश्न है राज्य-परिषद् के सदस्यों के निर्वाचन का।

***उपाध्यक्ष:** मेरा ख्याल है कि "बड़ी अनुदारता दिखाई थी" यह न कह कर आप यह कहें कि "बड़ी दृढ़ता से आपने राय दी थी" तो और अच्छा होगा।

***महबूब अली बेग साहब बहादुर:** शायद तब उन्होंने समझा नहीं था। पर अब आपकी समझ में यह आ रहा है कि अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति के आधार पर एकल संक्राम्य मत द्वारा निर्वाचन करना देश की दृढ़ता के लिये हानिप्रद नहीं है। मुझे याद है कि उस समय त्यागी जी ने कहा था.....

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य से मैं कहूंगा कि बजाय इसके कि वह इस सभा के एक-दूसरे सदस्य श्री महावीर त्यागी के अतीत कालीन प्रवृत्ति पर टीका-टिप्पणी करें, उन्हें अपने संशोधन पर ही बोलना चाहिये। ऐसा करने से सम्भवत: सभा का समय बचेगा।

***महबूब अली बेग साहब बहादुर:** अनुच्छेद 55 के द्वारा, जो कि राष्ट्रपति के निर्वाचन के बारे में है, एक निर्वाचन-पद्धति को सभा पहले ही स्वीकार कर चुकी है। अनुच्छेद 55 में यह कहा गया है:

> "संयुक्त अधिवेशन में एकत्रित संसद् के उभय आगारों के सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार एकल संक्राम्य मत द्वारा उप-राष्ट्रपति का निर्वाचन होगा और ऐसे निर्वाचन में मतदान गूढ़शलाका द्वारा होगा।"

अत: निर्वाचन के लिये जिस पद्धति का सुझाव मैं दे रहा हूं, वह कुछ नया नहीं है और न उसमें कोई असाधारण बात ही है।

हमारे संवैधानिक सलाहकार की ओर से सभा के सदस्यों को संविधान सम्बन्धी नजीरों की जो पुस्तिका दी गई है, उसमें कतिपय मान्य विद्वानों की जो संविधान सम्बन्धी बातों पर कुछ कहने का अधिकार रखते हैं, रायें दी हुई हैं। यदि आप की अनुमति हो, श्रीमान्, तो मैं कुछ रायों को पढ़ कर सुना दूं। अनुपाती प्रतिनिधान के सम्बन्ध में अधिकारी विद्वानों की सम्मतियां यह हैं:

"अल्पसंख्यकों के अधिकारों और हितों के संरक्षण के लिये सर्वोत्तम उपायों में एक उपाय यह है कि निर्वाचन, अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार एकल संक्राम्य मत द्वारा किया जाये और यह पद्धति बहुत से देशों में अपनाई भी जा चुकी है। स्विट्जरलैण्ड देश इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

पहले तो धर्म सम्बन्धी तथा प्रादेशिक कई प्रबल मतभेद थे, किन्तु इधर एक लम्बे अरसे से अब सरकार में स्थिरता आ गई है। सरकार बनाने की जिम्मेदारी संसद् पर होती है। उसका पहला कर्तव्य यह है कि एक कार्यपालक मण्डल का निर्माण करे। स्विट्जरलैण्ड की पार्लामेण्ट का चुनाव अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति से ही होता है।"

स्वर्गीय पेनरिथ के लार्ड हवार्ड ने, जो बर्न, स्टाकहोल्म, मैड्रिड और वाशिंगटन में ब्रिटेन के प्रतिनिधि थे और जिन्होंने विभिन्न सरकारों की कार्य-प्रणाली का अध्ययन किया था, इस सम्बन्ध में यह लिखा है:

"लोकतंत्र की मूलभूत दो आवश्यकताएं यह हैं। एक तो यह है कि सरकार जनता की इच्छा की प्रतीक हो और दूसरी यह कि वह ऐसी होनी चाहिये कि सुचारु रूप से स्थिरतापूर्वक कार्य कर सके और वह बहुधा संकटग्रस्त ही न होती रहे। इन दोनों ही बातों का निर्वाह जितनी सफलतापूर्वक स्विट्जरलैण्ड की शासन-पद्धति में हुआ है, उतना संसार के किसी और देश में नहीं।"

एक दूसरे अधिकारी ने इस सम्बन्ध में यह कहा है:

"सर सैमुएल होर ने चेज़ला में अपने निर्वाचकों के समक्ष भाषण देते हुये यह मत व्यक्त किया था कि यूरोप में प्रतिनिधिमूलक सरकार और भी सन्तोषजनक रूप से कार्य कर सकती है, अगर ब्रिटिश प्रणाली के बजाय स्विट्जरलैण्ड की प्रणाली के आधार पर सरकार बनाई जाये। 'दी न्यूयार्क रिव्यू फ्री वर्ल्ड' ने इटली के भविष्य के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने के लिये गैर सरकारी तौर पर एक गोलमेज सभा

[महबूब अली बेग साहब बहादुर]

का आयोजन किया था, जिसमें कर्नल रैनडोल्फ पैकिआर्डी ने, जो वाम पक्ष के एक बड़े ही सक्रिय सदस्य थे, यह कहा था:

"लेटिन प्रदेशों के लोकतंत्रों पर प्राय: करके आने वाले संकटों को, जिनके कारण लोकतंत्रात्मक शासन-व्यवस्था को बड़ी ही बदनामी उठानी पड़ी है, दूर किया जा सकता है, अगर वहां वह शासन-व्यवस्था अपनाई जाये जो आज स्विट्जरलैण्ड में विकसित हो चुकी है।"

जून सन् 1945 में प्रोपोर्शनल रिप्रेजेंटेशन सोसायटी (The Proportional Representation Society) ने इस वक्तव्य को प्रचारित भी किया था।

इसलिये निर्वाचन की यह पद्धति जनता की इच्छा को प्रतिध्वनित करती है और इस व्यवस्था में स्थैर्य और दायित्व दोनों ही अधिक हैं। मेरा कहना तो यह है कि कुछ लोगों का जो यह भय है कि इस निर्वाचन-पद्धति से देश कई टुकड़ों में विभक्त हो जायेगा और उसकी अखण्डता जाती रहेगी, वह सर्वथा निराधार है। प्रतिनिधान की यह पद्धति सर्वथा समुचित है, किन्तु जो लोग साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के हैं उन्हें इस पद्धति के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा जाय, उसमें साम्प्रदायिकता की ही गंध मिलती है। लोकतंत्रात्मक शासन-व्यवस्था में, देशवासियों के प्रतिनिधान के लिये यही सर्वोत्तम युक्तिसंगत एवं लोकतंत्रीय पद्धति है। इसलिये सभा से मैं सिफारिश करूंगा कि वह मेरे दोनों संशोधनों को—पहला यह कि अवर आगार के निर्वाचित सदस्यों को निर्वाचन में भाग लेने का अधिकार होना चाहिये और दूसरा यह कि निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार एकल संक्राम्य मत द्वारा होना चाहिये—अवश्य स्वीकार करें। इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अन्य दो संशोधन जो इस सम्बन्ध में आये हैं, वह है नं. 1400 तथा 1406 ।

***श्री महावीर त्यागी:** यह दोनों संशोधन मेरी ओर से आये हैं, श्रीमान्, और मैं यह निवेदन करूंगा कि इनको अलग-अलग पेश करने की अनुमति दी जाये, ताकि सभा इन प्रश्नों पर अलग-अलग निर्णय कर सके।

***उपाध्यक्ष:** कृपा करके माइक्रोफोन पर आइये।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्, कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:

'अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार एकल संक्राम्य मत द्वारा' इस संशोधन को पेश करने में..."

***उपाध्यक्ष:** मेरा ख्याल है कि माननीय सदस्य को अपने संशोधनों को उपस्थित करने की अनुमति मैंने नहीं दी है। मैं कारण जानना चाहता हूं कि क्यों वह इन्हें पेश करना चाहते हैं। इनका आशय वही है, जो संशोधन नं. 1407 का है।

***श्री महावीर त्यागी:** यह बिल्कुल सही है। इन्हें पेश करने का कारण यह है कि मैं यह चाहता हूं एक बात के सम्बन्ध में सभा इस प्रश्न पर एक तरह से निर्णय करे और दूसरी बात के सम्बन्ध में दूसरी तरह। मैं चाहता हूं कि सभा को इस प्रश्न पर विचार करने का पूरा मौका दिया जाये।

**उपाध्यक्ष:** आम बहस के दौरान में तो माननीय सदस्य को अपनी बात कहने का मैं मौका दे सकता हूं, किन्तु जो प्रथा यहां काम में आ चुकी है, उसे मैं नहीं तोड़ सकता। उनके दोनों संशोधनों पर अलग-अलग राय ले ली जायेगी।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या मैं अपनी बात अभी कह दूं, श्रीमान्?

***उपाध्यक्ष:** आम बहस के समय माननीय सदस्य को मैं जरूर इसका मौका दूंगा।

***उपाध्यक्ष:** अब आता है, संशोधन नं. 1401, जो श्री नजीरुद्दीन अहमद का है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता दूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के अन्त में 'और' (and) शब्द जोड़ दिया जाये और उपखण्ड (ख) के अन्त में 'तथा' (and) शब्द को हटा दिया जाये।"

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

अपने संशोधन नं. 1404 को भी मैं आपकी अनुमति से उपस्थित करता हूं, श्रीमान् । वह यह है:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (ग) को हटा दिया जाये।"

जहां तक कि इस उपखण्ड का सम्बन्ध है, इसके कारण यहां कुछ असंगतता पैदा हो जाती है। खण्ड (3) का, जहां यह उपखण्ड आता है, सम्बन्ध है विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधान से। उपखण्ड (क) का सम्बन्ध है उन राज्यों के प्रतिनिधान से जहां कि विधान-मण्डल दोधारा है। उपखण्ड (ख) का सम्बन्ध है उन राज्यों के प्रतिनिधान से, जिनका विधान-मण्डल एक धारा है।

***उपाध्यक्ष:** मिस्टर नजीरुद्दीन अहमद, आप अपने संशोधन नं. 1404 को भी पेश कर सकते हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** हां, श्रीमान्, मैंने भी अभी उसी संशोधन को ही पेश किया है।

***उपाध्यक्ष:** और केवल एक वक्तृता दीजिये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** उपखण्ड (ग) का सम्बन्ध है उन राज्यों के प्रतिनिधान से जहां कोई विधान-मण्डल है ही नहीं। यहां 'राज्य' शब्द में प्रान्त, चीफ कमिश्नरों के प्रान्त और रियासतें भी शामिल हैं। जहां तक प्रान्तों का सम्बन्ध है, सभी में विधान-मण्डल हैं और भावी विधान के अनुसार भी वहां विधान-मण्डल रहेंगे। इसलिये उपखण्ड (ग) से अगर किन्हीं राज्यों पर असर पड़ता है, तो वह हैं वह राज्य जो आज रियासतों के नाम से ज्ञात हैं तथा चीफ कमिश्नर वाले प्रान्तों के नाम से ज्ञात हैं। जिन राज्यों में विधान-मण्डल नहीं है वहां के लिये प्रतिनिधि निर्वाचन की पद्धति को निश्चित करने की शक्ति संसद् को दी जा रही है। इस सम्बन्ध में मेरा कहना यह है कि इस व्यवस्था से उन राज्यों के और खास कर रियासतों के अधिकार पर अतिक्रमण होता है। जिन राज्यों में विधान-मण्डल नहीं है, उनका अपना एक अलग व्यक्तित्व है, उनको एक अलग तरह की सार्वभौमिकता या प्रभुता प्राप्त है। अभी उस दिन डॉ. अम्बेडकर ने यह स्वीकार किया था कि इन्हें भी एक तरह के सार्वभौमिकताधिकार प्राप्त है, यद्यपि पूर्ण रूप से ये सार्वभौम अधिकार नहीं हैं। केवल इस बात के आधार पर कि इन राज्यों में विधान-मण्डल नहीं है, इनके प्रतिनिधि निर्वाचन की व्यवस्था को निश्चित करने का काम आप संसद् पर छोड़ दें इसका कोई कारण

नहीं है। अगर फिलहाल उनमें कोई विधान-मण्डल नहीं है तो इससे क्या होता है? आखिर आगे चल कर इनमें कोई न कोई प्रधान या राजप्रमुख अथवा अन्य कोई प्राधिकारी होगा ही जो वहां कार्य करेगा। अगर उस राज्य का सारा कार्य-संचालन—उसके शासन को, उसके अधिशासी और न्याय सम्बन्धी सभी कामों को वह प्राधिकारी चला सकता है तो उसी प्राधिकारी को यह व्यवस्था भी निश्चित करनी चाहिये कि उस राज्य में प्रतिनिधि राज्य-परिषद् के लिये किस तरह चुने जायें। इसलिये यह उपखण्ड यहां संगत नहीं होता है। हां, यह सम्भव है कि संसद् को कभी इस सम्बन्ध में व्यवस्था निश्चित करनी पड़े, पर यह उसी समय हो सकता है जब कि राज्य की शासन-व्यवस्था में कोई व्यवधान, वास्तविक सांवैधानिक व्यवधान पैदा हो जाये। और आप जिस व्यवधान की कल्पना कर रहे हैं वह यह है कि वहां विधान-मण्डल का कोई आगार न हो। आखिर उस राज्य में एक सुसंगठित सरकार तो होगी ही, भले ही, वहां कोई विधान-मण्डल न हो। तो फिर, इस बात का निश्चय करना कि राज्य-परिषद् के लिये उसके प्रतिनिधि कैसे लिये जायें, वस्तुतः उस सरकार का ही काम होना चाहिये। वस्तुतः यह विषय सम्बन्ध रखता है कि समाविष्टि सम्बन्धी शर्तों से (Terms of Accession)। वस्तुस्थिति यह है कि कोई राज्य जिसमें विधान-मण्डल नहीं है, अगर वह भारतीय संघ में किन्हीं शर्तों पर समाविष्ट होता है, तो उस सूरत में तो इस उपखण्ड (ग) को लागू करने के लिये यह जरूरी है कि यह उपखण्ड समाविष्टि की शर्तों के अनुसार हो। किन्तु जहां तक मैं देख पाता हूं, समाविष्टि की शर्तों में यह बात नहीं दी हुई है, जो इस उपखण्ड में रखी गई है और यह उपखण्ड (ग) उससे एक अलग चीज है। इस उपखण्ड द्वारा तो इन राज्यों के सार्वभौम या अर्ध-सार्वभौम सत्ता पर अतिक्रमण होता है। इसलिये मेरा कहना यह है कि इनके प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में कोई व्यवस्था निश्चित करने का अधिकार संसद् को न होना चाहिये। यह संसद् की शक्ति के परे की बात है। अपने प्रतिनिधान सम्बन्धी व्यवस्था को निश्चित करने का काम तो इन राज्यों पर ही छोड़ना चाहिये। वस्तुतः यह अधिकार उनको होना चाहिये कि वे खुद इस सम्बन्ध में निश्चय करें। हां, यह जरूर है कि वहां विधान-मण्डल को होना एक वांछनीय बात है, पर यह नहीं है कि सांवैधानिक दृष्टि से विधान-मण्डल का होना लाजिमी ही हो। आखिर इस बात के आधार पर कि वहां विधान-मण्डल नहीं है, आप उन राज्यों को इस अधिकार से वंचित नहीं कर सकते कि वे अपने प्रतिनिधि भेजने के लिये किसी व्यवस्था का निश्चय खुद वहीं कर सकते हैं।

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

ऐसी हालत में मैं यही कहूंगा कि उपखण्ड (ग) को हटा देना चाहिये। किन्तु इसके साथ ही मैं यह भी महसूस करता हूं कि इसके स्थान पर कोई न कोई एक ऐसा प्रावधान होना चाहिये, जिसमें विधान-मण्डल-शून्य राज्यों के इस अधिकार को स्वीकार किया गया हो कि प्रतिनिधि भेजने के सम्बन्ध में जो भी व्यवस्था हो वह तय करना चाहे खुद कर सकते हैं। मेरे पास समय बहुत कम रह गया है, अतः इस सम्बन्ध में अपनी ओर से मैं कोई वैकल्पिक योजना तो उपस्थित नहीं कर सकता हूं, किन्तु इतना जरूर कहूंगा कि यह एक सैद्धान्तिक प्रश्न है। और अगर इस सभा को यह सिद्धान्त स्वीकार हो तो इस उपखण्ड की जगह कोई और समुचित प्रावधान आसानी से पेश किया जा सकता है। किन्तु आपने जो इस उपखण्ड में प्रावधान किया है, उसके बारे में मैं यह जरूर कहूंगा कि राज्यों में जो भी शासन-व्यवस्था हो, चाहे वह सरकार के रूप में काम करती हो या अन्य किसी रूप में काम करती हो, उसकी जगह अगर आप संसद् को देते हैं, तो यह व्यवस्था न तो कानूनन और न सांवैधानिक दृष्टि से ही सही है।

इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन रखना हूं और सभा से उसे स्वीकार करने का अनुरोध करता हूं।

(संशोधन नं. 1405 पेश नहीं किया गया)।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 1406 को, केवल शाब्दिक होने के कारण पेश करने की अनुमति दी जाती है।

(संशोधन नं. 1409 पेश नहीं किया गया)।

नं. 1410 को उपस्थित करने की अनुमति नहीं दी जाती है।

आम बहस शुरू होने के पहले सभा के सामने एक सुझाव रखना चाहता हूं। जाप्ते के कई नियमों को मैंने यहां तोड़ दिया है। कुछ को तो जानकारी के अभाव में और कइयों को जानबूझ कर। अब मैं जानबूझ कर यहां की एक स्थायी परम्परा को तोड़ देना चाहता हूं, किन्तु इसके लिये मैं सभा की अनुमति चाहता हूं। इस अनुच्छेद को दो भागों में बांटा जा सकता है। इसके प्रथम चार खण्डों का सम्बन्ध है, राज्य-परिषद् सम्बन्धी प्रतिनिधान से और अन्त के कुछ प्रावधानों का सम्बन्ध है लोक-सभा के प्रतिनिधान से। मेरा सुझाव यह है कि हम पहले इसके प्रथम भाग को अर्थात् पहले के चार खण्डों पर विचार करें, जिनमें

राज्य-परिषद् के प्रतिनिधान का जिक्र है। इन खण्डों से सम्बन्ध रखने वाले सभी संशोधन एक-एक करके पेश हो चुके हैं। अब मैं माननीय सदस्यों को इन चार खण्डों पर विचार करने का मौका देता हूं। उसके बाद मैं डॉ. अम्बेडकर को बुलाना चाहता हूं कि उत्तर में उन्हें जो कुछ कहना हो, कहें। उसके बाद मैं इन संशोधनों पर मत लूंगा। इतना हो जाने पर हम खण्ड (5) से सम्बन्ध रखने वाले संशोधनों को लेंगे। वे संशोधन भी पेश किये जायेंगे और इनके सम्बन्ध में भी वही जाप्ता बरता जायेगा। किन्तु यह जाप्ता केवल इसी खण्ड के लिये हैं। क्या सभा मुझे इसकी अनुमति देती है?

***माननीय सदस्यगण:** हां।

***उपाध्यक्ष:** अब इन चार खण्डों पर आप आम बहस कर सकते हैं। श्री रोहिणीकुमार चौधरी को अब मैं बुलाता हूं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में चन्द शब्द मैं कहना चाहता हूं। मेरे माननीय मित्र श्री मुहम्मद ताहिर ने एक संशोधन पेश किया है, जिसमें उन्होंने 'लोअर हाउस' (Lower House) शब्द का प्रयोग पर यहां आपत्ति की है। वास्तविक बात तो यह है, जैसा कि सभी जानते हैं कि अवर आगार (Lower House) ही वस्तुत: ऊपर वाला आगार होता है। वस्तुत: प्रान्त के शासन में, अवर आगार की ही बात सुनी जाती है और उसी का ज्यादातर हाथ रहता है। इसी तरह हाउस ऑफ कामन्स में साधारण जनता के प्रतिनिधि होते हैं और हाउस ऑफ लाड्र्स में विशिष्ट वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं। किन्तु हाउस ऑफ लाड्र्स से ज्यादा शक्ति हाउस ऑफ कामन्स के हाथ में होती है, पर केवल इसके लिये यह कोई नहीं कहता कि हाउस ऑफ कामन्स का नाम बदल दिया जाय। इसके अलावा 'लोअर हाउस' शब्द रखने से यह स्वत: प्रकट होता है कि उस प्रान्त में उत्तर आगार यानी अपर हाउस भी है। अब जहां तक कि उत्तर आगार की बात है, इसके सदस्य बहुत से विशेषाधिकारों से वंचित होते हैं। उदाहरण के लिये मैं आप को बताऊं कि उम्मीद तो यह की जानी चाहिये थी कि राज्य-परिषद् के सदस्यों के चुनाव में उनके भाईबन्दों को यानी ऊपर वाले आगार के सदस्यों को अपना मत देने का मौका जरूर मिलेगा, क्योंकि आखिर ये दोनों ही एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं और इनमें—प्रान्त के उत्तर आगार और केन्द्र के राज्य-परिषद् के सदस्यों में—परस्पर सहानुभूति का होना स्वाभाविक है। किन्तु जब उन्हें वह विशेषाधिकार नहीं दे रहे हैं जिनका प्रयोग लोअर हाउस या असेम्बली के सदस्य

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

करते हैं, तो उनको तसल्ली देने के लिये उत्तर आगार के सदस्य के नाम से उन्हें पुकारा जाने दीजिये। इस दृष्टि से भी "लोअर हाउस" शब्दों को जहां वह आये हैं रहने देना चाहिये क्योंकि पहली बात तो यह है "लोअर हाउस" का मतलब यह नहीं है कि उस आगार के सदस्यों का रुतबा कुछ नीचा है बल्कि यह तो केवल जरूरत के ख्याल से रखा गया है। दूसरी बात यह है, श्रीमान्, कि जब तक हमारा यह विचार है कि प्रान्त में एक दूसरा आगार होना ही चाहिये तो फिर उस हालत में एक उत्तर आगार होना ही चाहिये क्योंकि जब हम उसे बहुत से विशेषाधिकार नहीं देने जा रहे हैं तो कम से कम सौजन्य के ख्याल से उसे उत्तर आगार यानी अपर हाउस के नाम से तो हमें पुकारना ही चाहिये।

इसके बाद अब मैं प्रो. शाह के संशोधन के सम्बन्ध में चन्द शब्द कहूंगा। अवश्य ही लोकतन्त्र की दृष्टि से हम यही आशा कर सकते हैं कि किसी भी आगार के सदस्य हों उन्हें निर्वाचित होकर ही आना चाहिये पर निर्वाचन द्वारा उन्हें लाने में कुछ कठिनाई है। अगर राज्य-परिषद् के लिये प्रतिनिधियों को केवल निर्वाचन के ही द्वारा लेंगे तो मनोनयन द्वारा जिस श्रेणी के व्यक्तियों को आप राज्य-परिषद् में लाना चाहते हैं उन्हें आप नहीं पा सकेंगे क्योंकि हम चाहते हैं ऐसे व्यक्तियों को जिन्हें कृषि, मत्स्य पालन, शासन तथा सामाजिक सेवाओं का विशिष्ट ज्ञान हो। ऐसे लोग चुनाव से सदा दूर भागते हैं और चुनाव के द्वारा सभा में आ नहीं सकते। इसलिये, इस परिस्थिति में हमें एक न एक ऐसा प्रावधान रखना ही चाहिये जिसके द्वारा हम मनोनयन के जरिये विषय विशेष की खास जानकारी रखने वाले ऐसे व्यक्तियों से लाभ उठा सकें जो चुनाव के संघर्ष में जाना पसन्द न करते हों पर जिनकी सेवायें विधान-मण्डल के लिये बहुत ही अपेक्षित हों।

इन शब्दों के साथ अनुच्छेद के प्रथम भाग का मैं समर्थन करता हूं।

***श्री आर.के. सिधवा:** उपाध्यक्ष महोदय, जहां तक कि राज्य-परिषद् से इस अनुच्छेद का सम्बन्ध है, इसके दो हिस्से किये जा सकते हैं। एक हिस्सा तो खण्ड (1) (क) का जिसमें संशोधन करके मनोनीत सदस्यों की संख्या को मूल संख्या 15 से घटा कर 12 कर दिया है। दूसरा हिस्सा है खण्ड (2) जिसमें मसौदा समिति ने 14 विषय रखे हैं जिनके विशेषज्ञों को मनोनीत किया जायेगा पर अब डॉ. अम्बेडकर ने एक संशोधन के द्वारा 4 विषयों के विशेषज्ञों में से ही मनोनीत करने की बात कही है। अनुच्छेद का यह खण्ड बड़ा ही विवादपूर्ण

है और सभा को उसकी ओर पूर्ण ध्यान देना चाहिये और इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये। इस खण्ड में चुनाव तथा मनोनयन—दोनों ही–बातें रखी गई हैं। मैं तो अपनी सारी जिन्दगी में इसी बात के पक्ष में रहा हूं कि विधान–मण्डल में तथा सार्वजनिक संस्थाओं और स्थानीय निकायों में चुनाव द्वारा ही सदस्यों को लेना चाहिये।

यह बात नहीं है कि मैं यह नहीं समझ रहा हूं कि हालत अब बदल गई है। किन्तु मैं ऐसा महसूस करता हूं कि इस बदली हालत में भी, राष्ट्रपति को जो शक्तियां दी गई हैं—यहां मेरा अभिप्राय मनोनयन सम्बन्धी अधिकार से है–उनका दुरुपयोग हो सकता है। यह एक ऐसी बात है जिसमें हम राष्ट्रपति के कार्यों पर कोई प्रश्न नहीं उठा सकते क्योंकि इस सम्बन्ध में उसे पूरा अधिकार है कि वह अपने विवेक के अनुसार जैसा चाहे करे। हो सकता है कि 'क' मनोनयन द्वारा लिये जाने के सर्वथा उपयुक्त हो पर राष्ट्रपति 'ख' को ज्यादा ठीक समझता हो और उसी को मनोनीत करे। उस सूरत में सभा या कोई भी व्यक्ति राष्ट्रपति की पसन्दगी पर कोई प्रश्न नहीं उठा सकता। यह तो कोई नहीं कह सकता कि राष्ट्रपति पर प्राभियोग चलाया जाये क्योंकि उसने खराब नीयत से फलां काम किया है। ऐसी कोई बात उसके खिलाफ तो कही नहीं जा सकती। मुझे डर है, श्रीमान्, कि अगर योग्य व्यक्तियों को छोड़ दिया गया और उनकी जगह राष्ट्रपति ने अपने कृपापात्रों को या अपने इर्द–गिर्द रहने वाले व्यक्तियों को मनोनीत कर लिया तो उससे बड़ा कलह पैदा होगा। आखिर मानव स्वभाव तो मानव–स्वभाव है और उसके लिये यह सब सम्भव है। मैं कोई नई बात नहीं कर रहा हूं क्योंकि ऐसे व्यक्ति आपको विरले ही मिलेंगे जो उन बातों से ऊपर हो। मनोनीत करने के लिये जब व्यक्तियों के चुनने में राष्ट्रपति को बहुत सी बातों का ख्याल करना पड़ेगा और हो सकता है कि योग्यता, सेवा त्याग आदि गुणें का वह ख्याल न करे अथवा उनकी अपेक्षा कर जाये। इसलिये मैं ऐसा महसूस करता हूं कि मनोनयन सम्बन्धी व्यवस्था को हमें यहां रखना ही नहीं चाहिये क्योंकि इससे कलह पैदा होगा और उस कलह के फलस्वरूप कलह बढ़ता ही जायेगा। मसौदा समिति ने पहले मनोनयन के लिये 14 विषय रखे थे पर उसके सभापति डॉ. अम्बेडकर ने अब यह संशोधन रखा है कि केवल चार ही विषयों के विशेषज्ञों में से मनोनीत व्यक्ति लिये जायें। खुद इससे ही स्पष्ट है कि इस सम्बन्ध में कितना मतान्तर है। इसके अलावा इस अनुच्छेद में अनेकानेक संशोधन आये हैं और इस बात से भी यह जाहिर हो जाता है कि इस व्यवस्था के सम्बन्ध में यहां लोगों के विचारों में कितना अन्तर है। एक विचारधारा तो

[श्री आर. के. सिधवा]

यह है कि केवल चन्द विषयों के लिये ही, जैसे कि कानून वगैरह जो बहुत ही शिथिल है, मनोनयन द्वारा विशेषज्ञों को रखा जायेगा। इस सम्बन्ध में यहां पूछा गया था कि आखिर 'स्वास्थ्य' को आप क्यों महत्व दे रहे हैं? मैं 'ला' (कानून) को विशेष महत्व नहीं देता हूं, श्रीमान्। इस सभा में ही कितने ही कानून विशेषज्ञ हैं और अगर अनुमति हो तो मैं तो कहूंगा कि इतने में ही कितने ऐसे हैं जो डॉ. अम्बेडकर के समान ही अपने विषय में दक्ष हैं। कहने का मतलब यह है कि इस व्यवस्था के रखने से लोगों के मन में प्रलोभन आयेगा और इन आये हुए अनेक संशोधनों से यह स्पष्ट है कि लोगों के मन में अभी से इस सम्बन्ध में प्रलोभन उठने लगा है। इसलिये मैं तो यही महसूस करता हूं, श्रीमान्, कि मनोनयन सम्बन्धी व्यवस्था हमें अभी हटा देनी चाहिये।

अब मैं प्रो. के.टी. शाह के संशोधन पर आता हूं। उन्होंने परामर्शदातृ-समिति रखने का जो सुझाव दिया है मैं उसका पूर्णत: समर्थन करता हूं। उनके विचारों से मेरा पूरा मेल तो नहीं खाता है। मसलन उन्होंने कई विषयों के विशेषज्ञों को रखने की बात कही है, उनकी अलग संख्या बताई है, जैसे कि कृषि के लिये 25 आदमी रखने को कहा है। इन सब विस्तार की बातों से मेरा मतैक्य नहीं है। कई विषयों के विशेषज्ञों को मनोनयन द्वारा लिया जाये, मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं। किन्तु यह मैं जरूर महसूस करता हूं कि विशेषज्ञों की एक परामर्शदातृ-समिति का होना वांछनीय है। उदाहरण के लिये मैं आपको बताऊं कि नागरिक एवं सामाजिक जीवन के विशेषज्ञों की हमें जरूरत हो सकती है। हम अपने ग्रामों में तथा स्थानीय निकायों में नागरिक सेवा की उपेक्षा नहीं कर सकते। पर मैं यह नहीं समझता कि ऐसी समिति के लिये संविधान में कोई प्रावधान रखना आवश्यक है। अगर मनोनयन का प्रावधान रहता है तो उसके लिये परामर्शदातृ-समितियों को हम रख सकते हैं पर केवल दो या तीन ही चुने हुए विषयों के लिये। पर यह काम तो संसद् ही एक कानून पास करके कर सकती हैं। संविधान परामर्शदातृ-समिति का प्रावधान करके इन लोगों को अनावश्यक महत्व आप क्यों दें? चुनाव के समय जो स्थिति वर्तमान होगी उसके अनुसार संसद् खुद निश्चय कर सकती है। खास खास वजारतों के साथ कुछ विशेषज्ञ लगा दिये जायें। पर पहले विधान-मण्डल को ही इस बात को मौका दीजिए कि वह अपने में से कुछ ऐसे सदस्यों को पाले जो खास खास विषयों के विशेषज्ञ हों। यदि ऐसे सदस्य उन्हें अपने में न मिल सकें तो संसद् परामर्शदातृ-समिति नियुक्त करने

के लिये कानून पास कर सकती है। आपको अच्छी तरह मालूम है, श्रीमान्, कि आज देश की जो आर्थिक दशा है उसको देखते हुए अर्थशास्त्र विशेषज्ञों के परामर्श की हमें जरूरत हैं और हम उनका परामर्श पाना चाहते हैं। किन्तु बाहरी लोगों को लेकर ऐसी समिति बनाना वांछनीय नहीं हो सकता अगर हमें पूर्णतः तटस्थ एवं निष्पक्ष परामर्श लेना है। पर हां अगर ऐसे लोग राज्य की सेवा में हों, जैसा कि सुझाया गया है तो उनसे आप यह विश्वास रख सकते हैं कि वे तटस्थ राय देंगे।

जो भी मैं इस बात को स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि मनोनयन के मैं सर्वथा विरुद्ध हूं और जो सुझाव मैंने अभी दिया है वह तो केवल इस ख्याल से दिया है कि अगर आप मनोनयन की व्यवस्था को रखना ही चाहते हैं तो इस रूप में रखिये। हम यह नहीं मान सकते कि चूंकि हम इतने निर्वाचित सदस्य वहां रहेंगे कि मनोनयन की व्यवस्था से कुछ नुकसान नहीं होगा। जैसा कि मैं कह चुका हूं हर आदमी से आप उज्ज्वल और निर्मल चरित्र की आशा नहीं कर सकते, गो कि हम सब चाहते यही हैं कि हमारा चरित्र बड़ा धवल हो और हम जिस व्यक्ति को भी चुनें उसे पक्षपात अथवा अन्य किसी ख्याल से न चुनें, बल्कि उस जगह के लिये जो वस्तुतः सर्वोत्तम व्यक्ति हो उसी को चुनें।

अपनी ओर से इतना सुझाव रखते हुए मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***उपाध्यक्षः** श्री महावीर त्यागी।

***श्री महावीर त्यागीः** मैं आपको धन्यवाद देता हूं, श्रीमान्, कि इस अनुच्छेद पर अपने विचार व्यक्त करने का आपने मुझे मौका दिया। इसके सम्बन्ध में मैं एक संशोधन पेश करना चाहता था पर आपने यह निर्णय दे दिया कि एक दूसरे संशोधन में मेरी बात आ चुकी है।

***उपाध्यक्षः** हां, आपके संशोधन नं. 1400 और 1408 दोनों ही की बातें पहले के संशोधनों में आ चुकी हैं।

***श्री महावीर त्यागीः** हां, श्रीमान्। मेरा संशोधन यह था कि अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के अन्त में "अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार एकल संक्राम्य मत द्वारा" शब्द जोड़ दिये जायें और इसी आशय का सुधार उपखण्ड (ख) में कर दिया जाये। अस्तु अब मुझे विशेष कुछ कहना नहीं है। मेरे माननीय मित्र मि. महबूब अली बेग ने एक संशोधन पेश कर दिया है

[श्री महावीर त्यागी]

जिससे मेरा ख्याल है कि मेरे संशोधन का मतलब पूरा हो जायेगा। किन्तु मेरा ख्याल है कि जो शब्द उन्होंने सुझाये हैं वे खण्ड में रखे गये शब्दों के साथ ठीक नहीं बैठते और मैं समझता हूं कि डॉ. अम्बेडकर को उन्हें वहां बिठाने में समूचे वाक्य को इधर उधर कर उसे ठीक करने की तकलीफ उठानी पड़ेगी। मिस्टर बेग का संशोधन है कि एक नया उपखण्ड (घ) जोड़ दिया जाये। उपखण्ड (क), (ख) और (ग) सब के सब एक बड़े के वाक्य से अंश हैं जो कि इस तरह प्रारम्भ होता है:

"प्रथम अनुसूची के भाग 1 अथवा 3 में उस समय उल्लिखित रहे प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधि वगैरह वगैरह.....।

और इसके बाद आते हैं उपखण्ड (क), (ख) और (ग)। इसके अन्त में अगर मिस्टर बेग का उपखण्ड (घ) रखा जाता है तो उसका रूप यह होगा:

"(घ) प्रथम अनुसूची के...के प्रत्येक प्रतिनिधि का चुनाव अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार...होगा।"

यह वाक्य विन्यास तो कुछ ऐसा हो जायेगा जिसमें वाक्य ही बेतुका हो जायेगा। मेरा तो ख्याल है कि मैंने जो संशोधन सुझाया था वह बहुत आसान है और उसके रहने से ऐसी कोई गड़बड़ी नहीं पैदा होती जैसा कि मिस्टर बेग के संशोधन के आने से होती है। आशा है सभा मेरे सुझाव पर ध्यान देगी क्योंकि अगर मेरा संशोधन स्वीकार होता है तो डॉ. अम्बेडकर को इस अनुच्छेद के वाक्य विन्यास को बदलने की दिक्कत न उठानी पड़ेगी।

राज्य-परिषद् में जो प्रतिनिधि आयेंगे वह राज्यों की ओर से आयेंगे जो लोग कि वहां आम चुनाव में बहुमत द्वारा लिये जायेंगे। इसका मतलब यह हुआ कि राज्यों की ओर से जो प्रतिनिधि आयेंगे उनमें वहां के अल्पसंख्यक दल के कोई सदस्य न रहेंगे। इसका परिणाम तो यह होगा कि अगर राज्यों का चुनाव एकल संक्राम्य मत द्वारा न हुआ तो वहां के अल्पसंख्यकों को राज्य-परिषद् में कोई प्रतिनिधान मिलेगा ही नहीं। आज यूरोप में जिस किस्म का लोकतंत्र प्रचलित है, श्रीमान्, मैं उस से राजी नहीं हूं। यह तो एक भयानक छल कपट है जिसे विश्व के राजनीतिज्ञ अपनी जनता के प्रति अनजाने में प्रयोग में ला रहे हैं। चुनाव की जो पद्धति आज प्रचलित है उसमें जनता को कोई वास्तविक प्रतिनिधित्व मिल ही नहीं पाता है। पार्टी की बुनियाद पर बने सभी लोकतंत्रों में केवल चंद चुने

हुए लोगों का ही आधिपत्य रहता है जो कि शिक्षित और बुद्धिसम्पन्न वर्ग के होते हैं। ये लोग दल बना लेते हैं और दल के आधार पर ही चुनाव लड़ते हैं। ऐसी स्थिति में चुनाव में जगहें उन्हीं लोगों को मिलती हैं जो जनता की भावना में चढ़े रहते हैं। राजनीतिज्ञ लोग चुनाव के समय जनता की भावुकता को, उसकी भावनाओं को उत्तेजना प्रदान करते हैं। यह काम इस मात्रा तक होता है कि जब मतदाता चुनाव के समय अपना वोट देने जाता है तो वह उन भावनाओं से ओत-प्रोत रहता है जिनको चुनाव के सिलसिले में प्रचार द्वारा उत्तेजित किया जाता है। वह आप में नहीं रहता और भावना के प्रवाह में अपना व्यक्तित्व भी भूल बैठता है। जनता की मनोवृत्ति का हाल ही कुछ विचित्र है। जब भावना के आवेश में आकर कोई मतदाता अपना वोट देता है तो उस समय वह अपने विवेक का प्रयोग नहीं करता। चुनाव सम्बन्धी प्रचार के प्रवाह में वह उस समय बहता रहता है। ऐसी अवस्था में बहुमत वाले दल के भी जो लोग चुने जाते हैं उनके सम्बन्ध में हम यह नहीं कह सकते कि जनता की स्थिर बुद्धि का वह प्रतिनिधान करते हैं। यह तो अल्पसंख्यक दल हारे हुए या विजयी सदस्य ही हैं जो कुछ हद तक जनता की वास्तविक भावना का प्रतिनिधान करते हैं। हम तो दल के ऐसे लोगों को ही एक मात्र साहसिक समझते हैं जो बहुसंख्यक दल के आक्रमणों का, आघातों का सदा निर्भीकतापूर्वक सामना करते हुए अपनी जगह डटे रहें, जिन्होंने चुनाव सम्बन्धी प्रचार द्वारा उत्पन्न भावावेश में भी अपने को सदा शान्त रखते हुए बुद्धि संतुलन को बनाये रखा और जो अपने सिद्धान्त से जरा भी डिगे नहीं। इसलिये मैं तो यही कहूंगा कि जो लोग अल्पसंख्यक वर्ग के हैं हमें उनका सदा ध्यान रखना चाहिये और उस निगाह से देखना चाहिये कि जिस निगाह से हम दृढ़ सिद्धान्त वाले व्यक्ति को देखते हैं। पाश्चात्य देशों में जो लोकतन्त्र आज प्रचलित है वह महज एक धोखा है, छल है किन्तु फिर भी जो आज तक वह जीवित रह पाया है वह वहां के विपक्षी दल के अस्तित्व के कारण ही। जनता की वास्तविक आवाज को तो विपक्षी दल ही प्रकट करता है। विपक्षी दल के कारण ही लोकतंत्र की यह प्रणाली कायम है। अगर विपक्षी दल न होता तो यह लोकतंत्रीय परम्परा न जाने कब टूट गई होती। मैं लोकतंत्र में...

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य का समय समाप्त हो चुका है।

***श्री महावीर त्यागीः** कृपया मुझे एक मिनट का समय और दीजिये। मैं विश्वास दिलाता हूं, श्रीमान्, कि कुछ लाभप्रद सुझाव सभा के सामने रखूंगा।

***उपाध्यक्ष:** किन्तु माननीय सदस्य को मालूम होना चाहिये कि अन्य सदस्यों को जो बोलने का लोकतंत्रीय अधिकार प्राप्त है उसे वह छीन रहे हैं।

***श्री महावीर त्यागी:** महात्मा गांधी के अनुसार राम राज्य है वास्तविक लोकतंत्र है जिसमें हर व्यक्ति अपने को तथा अपनी शक्ति और अपनी सभी सामग्रियों को जनमत की इच्छा पर समर्पित कर देता है। वस्तुत: राम राज्य की जो व्यवस्था है उसमें हर आदमी राज्य का अविभाज्य अंग बन जाता है। यद्यपि उस व्यवस्था में एक व्यक्ति समस्त जनता की सामूहिक इच्छा के अनुसार कार्य करता है पर उस हालत में भी वह अपने ही विवेक के आदेशानुसार ही चलता है और अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रखता है। ऐसी लोकतंत्रीय व्यवस्था में तो यह होता है कि एक व्यक्ति पर किया गया आघात समस्त जन समुदाय पर आघात समझा जाता है और समस्त जन समुदाय पर किया गया आघात हर व्यक्ति पर आघात माना जाता है। पर हमने तो पाश्चात्य ढंग का लोकतंत्र अपना रखा है। अत: हमारे देश की राजनैतिक व्यवस्था में दलों का होना आवश्यक है। इसलिये राज्य-परिषद् में कुछ स्थान हमें विपक्षी विचारधारा के लोगों को भी देने चाहियें। इन लोगों को आप चुनाव के जरिये तभी पा सकते हैं जबकि मेरे संशोधन स्वीकार किये जायें। उनके स्वीकार होने पर ही आप विपक्षी वर्ग के सदस्यों को राज्य-परिषद् में स्थान न दे सकेंगे। विपक्षी दल के सदस्यों के रहने से आपको यह लाभ होगा कि जब भी हम राज्य से सम्बन्ध रखने वाली किसी महती नीति पर विचार-विमर्श करेंगे तो उनके विचारों से भी अवगत होने का हमें मौका मिल सकेगा। पाश्चात्य ढंग का लोकतंत्र तो इसी बुनियाद पर कायम है कि विपक्षी दल को वहां स्वच्छन्द रूप से काम करने की पूरी सहूलियत दी जाती है। बिना एक अच्छे विपक्षी दल के हुए लोकतन्त्र तो लंगड़ा हो जायेगा और गिर पड़ेगा। इन शब्दों के साथ, मैं अपनी बात समाप्त करता हूं और आशा करता हूं सभा मेरे संशोधन को स्वीकार करेगी।

***श्री मुहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं केवल चन्द शब्द कहना चाहता हूं और एक या दो मिनट से ज्यादा समय नहीं लूंगा।

अनुच्छेद 67 के खण्ड (2) में उन विभिन्न श्रेणियों का नामोल्लेख किया गया है जिनमें से राष्ट्रपति मनोनीत व्यक्तियों को ले सकेगा। इसमें व्यवसाय, वाणिज्य तथा उद्योग धन्धों को नहीं रखा गया है और मसौदा समिति ने उसका कारण यह बताया है कि चूंकि अब वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव होगा

इन श्रेणियों के लोग आम चुनाव के जरिये भी आ सकते हैं। इस कारण के आधार पर तो, श्रीमान्, उन श्रेणियों के लोगों का भी बाद दिया जा सकता है जिनका उल्लेख उपखण्ड (क) और (घ) में किया गया है। वयस्क मताधिकार के आधार पर होने वाले आम निर्वाचन में ये लोग भी आ सकते हैं।

मैं नहीं समझता, श्रीमान्, कि जिन श्रेणियों का नामोल्लेख इस खण्ड में किया गया है उनके महत्व से वाणिज्य कुछ कम महत्व रखता है। अत: मेरी समझ से यह सर्वथा उचित है कि व्यवसाय और वाणिज्य को भी उसमें स्थान दिया जाये।

खण्ड (3) के विभिन्न उपखण्डों में यह कहा गया है कि राज्यों की ओर से राज्य-परिषद् के लिये जो प्रतिनिधि चुने जायेंगे उनके निर्वाचन में मनोनीत सदस्यों की कोई आवाज न रहेगी। मनोनीत सदस्यों को रखने की बात ही उठा दीजिये मझे उस पर कोई आपत्ति न होगी। किन्तु जब आप मनोनयन को आवश्यक समझते हैं और कुछ श्रेणियों से मनोनीत सदस्यों को लेने का प्रावधान कर रहे हैं, उनको मनोनीतकरण की व्यवस्था द्वारा राज्य-परिषद् में ले रहे हैं तो फिर उनके साथ यह भेदभाव बरतना ठीक न होगा। उनको एक असुविधा की स्थिति में रखना और चुने हुए सदस्यों से नीचा स्थान देना कदापि उचित न होगा। जब आपने मनोनयन सम्बन्धी व्यवस्था का महत्व स्वीकार कर लिया है तो फिर मनोनीत सदस्यों को भी वही स्थान दीजिये जो निर्वाचित सदस्यों को आप उस निकाय में देते हैं। इसलिये मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि मनोनीत सदस्यों को प्रतिनिधि-निर्वाचन में भाग लेने से क्यों वंचित किया जाये।

अब, श्रीमान्, मैं अनुपाती प्रतिनिधान की प्रणाली के सम्बन्ध में चन्द शब्द कहूंगा जिसको लेकर इस अनुच्छेद में एकाधिक संशोधन पेश किये गये हैं। इस प्रणाली के विरुद्ध यह कहा जाता है कि इससे लोगों में विभेद और अनैक्य पैदा होगा। किन्तु वास्तविकता यह है कि उसके परिणामस्वरूप पार्थक्य की भावना तो कभी उत्पन्न ही नहीं हो सकती क्योंकि हर वर्ग को यह बात अच्छी तरह मालूम है कि इस प्रणाली के आधार पर होने वाले निर्वाचन में हर वर्ग के लोगों की राय का गहरा असर पड़ेगा इसलिये हर वर्ग एक दूसरे से मिलने की कोशिश करेगा। निर्वाचन का प्रश्न उपस्थित होने पर सभी वर्ग आपस में मिल कर काम करने लगेंगे। बाध्य हो कर उन्हें हर वर्ग की राय पाने की कोशिश करनी पड़ेगी। इसलिये इस प्रणाली के आधार पर अगर निर्वाचन होता है तो लोग एक दूसरे के निकट आयेंगे न कि एक दूसरे से अलग होंगे। इससे लोगों में एकता पैदा

[श्री मुहम्मद इस्माइल साहब]

होगी न कि अनैक्य। आशा है मसौदा समिति के सभापति इस प्रणाली का जो प्रस्ताव रखा गया है उसके औचित्य का ख्याल करेंगे और सभा से, उसे स्वीकार करने की सिफारिश करेंगे।

**उपाध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर!

(पं. हृदयनाथ कुंजरू बोलने के लिये खड़े हुये।)

***उपाध्यक्षः** आप क्या कहना चाहते हैं, पण्डित कुंजरू?

***पण्डित हृदयनाथ कुंजरूः** अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति के सम्बन्ध में मैं कुछ बातें कहना चाहता हूं और मैं चाहता हूं कि डॉ. अम्बेडकर जवाब देने के लिये खड़े हों उसके पहले ही मैं अपनी बात कह दूं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारतीः** आम बहस के सिलसिले में इस प्रश्न पर अब तक केवल दो ही वक्ता बोले हैं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** चार वक्ता इस पर बोल चुके हैं। किन्तु मैं आपको बोलने की अनुमति देता हूं, पं. कुंजरू। कृपया अपनी बातें अनुपाती प्रतिनिधान-पद्धति तक ही सीमित रखेंगे।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** उपाध्यक्ष महोदय, अब जब प्रावधान रखा जा रहा है कि राज्य-परिषद् के सदस्यों को प्रान्तीय विधान-सभाओं के निचले आगार चुनेंगे तो यह आवश्यक हो जाता है कि उनके चुनाव के लिये एक पद्धति भी तय कर दी जाय जो विभिन्न दृष्टिकोणों के लोगों के लिये उचित हो। इसी ख्याल से यह सुझाव दिया गया है कि इनका चुनाव अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के आधार पर एकल संक्राम्य मत द्वारा किया जाये। माननीय सदस्यों को सम्भवतः यह आशंका हो कि इस पद्धति को स्वीकार कर लेने का परिणाम यह होगा कि प्रकारान्तर से यहां साम्प्रदायिक निर्वाचन चल पड़ेगा। फिरकेदाराना चुनाव की बुराइयों से हम सभी अच्छी तरह परिचित हैं। हम जानते हैं कि उसी साम्प्रदायिक चुनाव के फलस्वरूप ही हमारा देश दो भागों में आज बंट गया है। इसलिये हमें सतत सावधान रहना पड़ेगा कि ऐसी निर्वाचन पद्धति यहां न चलने पावे जो हमारी पिछली खराबियों को कायम रहने दे। अतः आइये हम इस बात पर विचार करें कि जो सुझाव यहां रखा गया है उसको स्वीकार करने का अमली नतीजा क्या होगा कि राज्य-परिषद् के सदस्यों का चुनाव विभिन्न सम्प्रदायों के

लोगों द्वारा होगा। स्थिति को साफ-साफ समझने के लिये यह जरूरी है कि पहले हम इस बात पर विचार कर लें कि प्रान्तीय-विधान सभाओं के सदस्य चुने किस तरह जायेंगे। वे लोग साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति के अनुसार तो चुने नहीं जायेंगे। उनका चुनाव मिले जुले तौर पर होगा और उनके निर्वाचकों में सभी सम्प्रदाय के लोग रहेंगे। इस प्रकार संयुक्त निर्वाचकों द्वारा जो लोग चुन कर आयेंगे उनमें साम्प्रदायिक मनोवृत्ति होगी, यह तो सम्भव नहीं है। हमें यह नहीं मान लेना चाहिये कि कोई भी व्यक्ति केवल अपने सम्प्रदाय के मत के बल पर चुन लिया जायेगा। उनको यह कोशिश करनी ही होगी कि निर्वाचकों में सभी वर्गों के लोगों के वोट उन्हें प्राप्त हो सकें। अगर उन्हें अपनी स्थिति कायम रखनी है और फिर चुनाव में आना है तो उनको एक ऐसी नीति पर चलना होगा जो सम्प्रदाय या धर्म के आधार पर न तय की गई हो। इसलिये अगर प्रांतीय विधान सभाओं में निचले आगारों में इस तरह के सदस्य आते हैं तो क्या आपका यह भय सर्वथा निराधार नहीं है कि अगर राज्य-परिषद् के सदस्यों का चुनाव अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के आधार पर एकल संक्राम्य मत द्वारा किया गया तो इससे साम्प्रदायिक निर्वाचन की बुराई कायम रह जायेगी या और भी उग्र रूप धारण कर लेगी? हमें इस प्रश्न पर विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधान के ख्याल से ही नहीं विचार करना चाहिये। हमें इस सम्बन्ध में इस पर भी और विचार करना चाहिये कि हमें ऐसे व्यक्तियों को लेने की जरूरत है जो अप्रिय विचारधारा के लोग हैं और ऐसे लोगों को लेने के लिये अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के आधार पर एकल संक्राम्य मत द्वारा चुनाव करना ही एक ऐसा मार्ग है जिससे आप अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों को ले सकेंगे जो बहुसंख्य दल की विचारधारा से भिन्न विचार रखते हैं। जब तक अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति पर चुनाव नहीं होता, अप्रिय और विरोधी विचारधारा रखने वाले लोगों के प्रतिनिधि आ ही नहीं सकते। उदाहरण के लिये आप इस विधान-परिषद् के सदस्यों को ही लीजिये। यहां कुछ ऐसे सदस्य भी हैं जिनका कांग्रेस से सम्बन्ध नहीं है पर वह चुन कर आए हैं। अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के आधार पर एकल संक्राम्य मत द्वारा चुनाव होने के कारण ही वह संविधान परिषद् में आ सके। अगर यह पद्धति न बरती गई होती तो कोई भी गैर-कांग्रेसी यहां न आ पाता।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): खूब, खूब।

***पण्डित हृदयनाथ कुंजरू:** इसलिये मेरा ख्याल तो यही है कि हमें राज्य-परिषद् के चुनाव के सम्बन्ध में अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के आधार पर

[पंडित हृदयनाथ कुंजरू]

एकल संक्राम्य मत द्वारा निर्वाचन की जो प्रणाली है उसे जरूर अपनाना चाहिये। मुझे इस बात को दुहराने की जरूरत नहीं है कि राज्य-परिषद् के सदस्यों का चुनाव प्रान्तीय विधान-मण्डलों के प्रतिनिधि करेंगे जो साम्प्रदायिक निर्वाचन के जरिये चुनाव में न आये रहेंगे। उन लोगों का निर्वाचन तो एक ऐसा निर्वाचक मण्डल करेगा जिसमें बहुसंख्यक वर्ग के लोगों का ही प्राधान्य होगा। इसलिये हमारा यह भय सर्वथा निराधार है कि अगर राज्य-परिषद् के प्रतिनिधियों का चुनाव अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति पर एकल संक्राम्य मत द्वारा किया जाता है तो इसका मतलब यह होगा कि हम साम्प्रदायिक निर्वाचन की प्रथा कायम करने जा रहे हैं और जिसकी सारी बुराइयां हमें भुगतनी पड़ेंगी। इसके प्रतिकूल मेरा ख्याल तो यह है कि आज की परिवर्तित दशा में इस पद्धति के रखने के विरोधी विचारधारा को समुचित प्रतिनिधान प्राप्त हो सकेगा और अगर यह पद्धति नहीं रखी जाती है तो ये लोग कभी आ ही नहीं सकेंगे और इनकी आवाज बेसुनी ही रह जायेगी।

***उपाध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, संशोधन नं. 1369, 1375, 1378, 1380, 1400 और 1403 को मानने के लिये मैं तैयार हूं। इनमें अन्त के जो दो संशोधन हैं (नं. 1400 तथा 1403) वह मि. महबूब अली बेग द्वारा उपस्थित किये संशोधन में आ चुके हैं। मि. महबूब अली बेग के जिस संशोधन का जिक्र कर रहा हूं वह है नं. 1407। मैं तो खुशी से इस संशोधन को स्वीकार कर लेता पर दुर्भाग्यवश उस संशोधन की इबारत, अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) में प्रयुक्त भाषा की व्यापकता के अनुरूप नहीं है। मैंने इस संशोधन को गौर से पढ़ा है और उसे स्वीकार करने में यही कठिनाई है। केवल इसी कारण से मैं संशोधन नं. 1403 को पसन्द कर रहा हूं कि उसकी भाषा, अनुच्छेद में प्रयुक्त भाषा के साथ ठीक बैठ जाती है।

जहां तक अन्य संशोधनों का सम्बन्ध है, मेरी समझ से केवल तीन ही संशोधन ऐसे हैं जिन पर गौर करना जरूरी है। एक संशोधन तो है श्री कुन्ही रमन का जिसका उद्देश्य यह है...

***उपाध्यक्षः** यह संशोधन पेश नहीं हुआ है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** तो फिर इसके सम्बन्ध में मुझे कुछ भी कहने की जरूरत नहीं है। अब बाकी बचे दो, जिनमें एक है पं. हृदयनाथ

कुंजरू का। राज्यों के प्रतिनिधियों की 40 प्रतिशत प्रतिनिधान देने का जो परन्तुक मसौदे में था उसके सम्बन्ध में पं. कुंजरू बहुत ही विचलित हैं और यह स्वाभाविक ही है। मेरी समझ से यह वांछनीय है कि स्थिति को मैं स्पष्ट कर दूं और वह बता दूं कि 40 प्रतिशत वाला परन्तुक रखने का उस समय कारण क्या था और अब स्थिति क्या है। यह बिल्कुल सही है कि गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया एक्ट में, निचले आगार में राज्यों को एक तिहाई प्रतिनिधान दिया गया था जो कि उनकी आबादी, तत्कालीन जनगणना के अनुसार एक चौथाई थी और राज्य-परिषद् में उनको 2/5 के हिसाब से प्रतिनिधान दिया गया था जो 40 प्रतिशत होता था। किन्तु मसौदे में इस परन्तुक को रखने की बुनियाद यह नहीं है। इसलिये मैं चाहता हूं कि कुछ विस्तारपूर्वक इस खण्ड का इतिहास मैं बता दूं।

इस सभा के सदस्यों को यह याद होगा कि यूनियन पावर्स कमेटी नाम की एक कमेटी इस सभा ने नियुक्त की थी। उस कमेटी ने ब्रिटिश भारत तथा रियासतों को प्रतिनिधान देने के सम्बन्ध में एक आम नियम की सिफारिश की थी। वह नियम यह था। पचास लाख की आबादी तक प्रत्येक दस लाख पर एक जगह दी जाये और अतिरिक्त प्रत्येक बीस लाख की आबादी पर एक जगह दी जाये। जैसा कि मैंने बताया है कि यह नियम प्रान्तों तक रियासतों दोनों पर समान रूप से लागू होने को था। किन्तु जब यूनियन पावर्स कमेटी की रिपोर्ट संविधान परिषद् के समक्ष विचारार्थ पेश हुई तो यह देखा गया कि राज्यों के प्रतिनिधियों ने इस कमेटी की रिपोर्ट के इस हिस्से के सम्बन्ध में बहुत से संशोधन दे रखे थे। प्रान्तों और रियासतों के प्रतिनिधियों के बीच इस मसले की बाबत काफी बातचीत चली और उसके फलस्वरूप मेरे आदरणीय मित्र एवं साथी श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने, जिन्होंने यूनियन पावर्स कमेटी को स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा था, यह संशोधन पेश किया कि राज्यों को 40 प्रतिशत से अधिक प्रतिनिधान न दिया जायेगा। माननीय सदस्यगण, इस सभा की, 31 जुलाई सन् 1947 की, कार्यवाही की रिपोर्ट देखें तो उन्हें उनका यह संशोधन मिलेगा। यही कारण था कि हमें मसौदे में यह बात रखनी पड़ी थी। जहां तक कि मैंने उस दिन की कार्यवाही को पढ़ा है, मेरा यही विश्वास है कि 40 प्रतिशत स्थान देने का जो परन्तुक रखा गया है वह उनको वजन देने के ख्याल से नहीं रखा गया है बल्कि इसलिये कि रियासतों की तादाद इतनी ज्यादा थी कि संघ में शामिल होने की इच्छा रखने वाली हर रियासत को प्रतिनिधान देना सम्भव ही नहीं होता अगर रियासतों के जगहों की तादाद काफी न बढ़ा दी जाती। रियासतों को संघ में

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

शामिल करने के उद्देश्य से ही यह परन्तुक रखा गया था। किन्तु अब हम यह देखते हैं कि स्थिति सर्वथा बदल गई है, कुछ रियासतों ने आपस में मिलकर अपना एक संघ बना लिया है, कुछ रियासतें प्रान्तों में मिल गई हैं और कुछ ही रियासतें ऐसी रह गई हैं जो एक इकाई के रूप में हैं। इन सब परिवर्तनों के कारण राज्यों के प्रतिनिधान को बढ़ाना अब कुछ वैसा जरूरी नहीं है जैसा कि शुरू में था क्योंकि जो रियासतें प्रान्तों में मिल गई हैं उनको अलग प्रतिनिधान देने की अब जरूरत नहीं रह गई है। उनका प्रतिनिधान प्रान्तों की मार्फत होगा। इसी तरह जो रियासतें आपस में मिलकर जो संघ बेद्ध हो गई हैं उनको अब अलग-अलग प्रतिनिधान देने की जरूरत नहीं रह गई है। अलग-अलग रियासतों को जो प्रतिनिधान पहले दिया जाता वही अब संघभूत इकाइयों को प्राप्त होगा। सुतरां, जो संशोधन मैंने रखा है और जिसमें अनुसूची 3(क) का उल्लेख है—दुर्भाग्यवश यह अनुसूची इस समय सदस्यों के सामने नहीं है और वह उस समय पेश की जायेगी जब हम उन सूचियों पर विचार करने लगेंगे—उसके द्वारा हम जो कुछ करना चाहते हैं वह यह है।

रियासतों को प्रतिनिधान के सम्बन्ध में 40 प्रतिशत जो अनुपात दिया गया है वह हटा दिया जायेगा और ऊपर वाले आगार में प्रान्तों तथा रियासतों—दोनों को ही समान प्रतिनिधान दिया जायेगा। इस सम्बन्ध में मैं आंकड़े भी पेश कर सकता हूं जो उस समय शायद बिल्कुल रत्ती रत्ती सही न हों पर इनसे आप को अनुसूची 3(क) में क्या हो सकता है, इसका एक खाका मिल जायेगा।

अनुसूची 3(क) के अनुसार प्रान्तों को 141 जगहें मिलेंगी। चीफ कमिश्नर वाले प्रान्तों को 2 जगहें मिलेंगी और रियासतों को कुल 70 जगहें मिलेंगी। इस तरह ऊपर वाले आगार में कुल निर्वाचित सदस्य होंगे 213 । इसमें 12 मनोनीत प्रतिनिधियों की जगहें जोड़ लीजिये तो कुल जगहें हुईं 225 । संशोधित खण्ड में यह कहा गया है राज्य-परिषद की कुल सदस्य संख्या होगी 250 । इस तरह आप देखेंगे कि अनुसूची 3(क) के अनुसार जगहों का जो वितरण होगा उससे दो बातें पूरी हो जाती हैं। एक तो यह कि इससे वजन देने का सवाल जाता रहता है और दूसरे यह कि कुल सदस्य संख्या उस अधिकतम संख्या के भीतर ही रह जाती है जो अपने प्रस्तावित संशोधन द्वारा मैंने उसके लिये निर्धारित की है। मेरा ख्याल है कि सभा उस स्थिति को सर्वथा सन्तोषजनक पायेंगे।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** क्या माननीय मित्र से मैं यह पूछ सकता हूं कि क्या प्रथम अनुसूची के भाग 3 की रियासतों को उनकी आबादी के अनुसार प्रतिनिधान दिया गया है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अवश्य, हर एक को उसकी जनसंख्या के अुनपात से प्रतिनिधान मिलेगा।

अब मैं लेता हूं दूसरे संशोधन को जिसका नं. है 1377 और जिसे पेश किया है प्रो. के.टी. शाह ने। प्रो. शाह का प्रस्ताव यह है, कृषि, उद्योग धन्धा, वाणिज्य तथा अन्य हितों के प्रतिनिधियों की एक परिषद् बनाई जाये और संविधान में उसके निर्माण का प्रावधान किया जाये। यह एक स्थायी निकाय होगा। राज्य को उसे वेतन भत्ता बगैरह देना होगा। और इसका संविधानत: कर्तव्य यह होगा—जैसा कि प्रो. शाह ने अपने संशोधन में दिया है—कि सरकार को परामर्श दे और सरकार का संविधानत: यह कर्तव्य होगा कि उसका परामर्श प्राप्त करे और गवर्नमेण्ट को यह अधिकार न होगा—मैं यही समझता हूं—कि वह ऐसे किसी भी बिल को पास करा सके जब तक कि उस पर यह सनद मौजूद न हो कि सरकार ने उसके सम्बन्ध में परामर्शदातृ-परिषद् से परामर्श ले लिया है। मेरा ख्याल है कि प्रो. शाह के संशोधन का यही उद्देश्य है।

इस पर कई आपत्तियां की जा सकती हैं। पहली बात तो यह है कि कोई भी व्यक्ति जो भारत सरकार या प्रान्तीय सरकारों में किसी भी महकमे का मंत्रित्व कर चुका है वह अच्छी तरह जानता है कि भारत सरकार हो या प्रान्तीय सरकार हो किसी भी बिल को कानून का रूप देने के पहले साधारणत: समुचित परामर्श अवश्य प्राप्त कर लिया करती हैं। भारत सरकार कभी ऐसा कोई प्रस्ताव ही नहीं रखती जिस पर संगठित रूप में उसने समुचित जनमत पहले ही प्राप्त न कर लिया हो। अत: जो प्रावधान प्रो. शाह ने उपस्थित किया है वह आमतौर पर बरता ही जाता है अत: उसे संविधान में स्थान देने की तो कोई जरूरत नहीं है। इस दृष्टि से मैं इसे अनावश्यक समझता हूं।

और फिर सभा को बता दूं कि ऐसा तय हो रहा है कि आगे चल कर मैं एक ऐसा संशोधन पेश करूंगा जिसके अनुसार राष्ट्रपति तीन व्यक्तियों को तो राज्य-परिषद् के लिये या लोक-सभा के लिये मनोनीत कर सके और मनोनीत व्यक्ति उस विषय के विशेषज्ञ हों जिसके सम्बन्ध में सरकार ने कोई बिल उपस्थित किया हो। अगर कोई व्यवसाय सम्बन्धी मसले के बारे में कोई बिल है तो कोई ऐसा व्यक्ति जिसे उसकी पूरी जानकारी हो प्रधान द्वारा राज्य-परिषद् के लिये या लोक-सभा के लिये मनोनीत कर लिया जायेगा। जब तक उस बिल का निपटारा न हो जाये उस समय तक के लिये वह विधान-मण्डल का सदस्य रहेगा और उसे सभा में बोलने का अधिकार होगा किन्तु मत देने का उसे

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

अधिकार न होगा। इस तरह के एक संशोधन द्वारा मसौदा समिति ऐसे विशेषज्ञों को सभा में लाना चाहती है जिनकी विधान-मण्डल को किसी समय जरूरत पड़ जाये। जैसा कि मैं कह चुका प्रो. शाह के संशोधन को नामंजूर करने का यही औचित्य है और इसी के आधार पर अन्य संशोधन भी, जिसमें कृषि, उद्योग धन्धा तथा अन्य हितों के प्रतिनिधान पर आग्रह किया गया है, अनावश्यक हैं। जब भी विशेषज्ञों का परामर्श आवश्यक होगा, हम जो संशोधन रखने वाले हैं, उससे हमारा यह प्रयोजन पूर्णत: सिद्ध हो जायेगा। माननीय सदस्यों को याद होगा कि सन् 1919 के एक्ट द्वारा जब प्रान्तों में द्वैध-शासन व्यवस्था चलायी गयी थी तो उसी आशय का एक प्रावधान उस एक्ट में भी रखा गया था जिसके आधार पर प्रान्तीय सरकारें किसी खास बिल के सम्बन्ध में परामर्श प्राप्त करने के लिये विशेषज्ञों को विधान-मण्डल में मनोनीतकरण द्वारा ले सकती थीं। मेरा ऐसा ख्याल है और मैं विश्वास करता हूं, श्रीमान्, कि जो संशोधन सभा के समक्ष मैं आगे चल कर रखने जा रहा हूं उससे हमारी आवश्यकता पूरी हो जायेगी।

***श्री आर.के सिधवा:** क्या मनोनयन सम्बन्धी खण्ड रह जायेगा?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन नं. 1379 पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 का खण्ड (2) हटा दिया जाये।"

*संशोधन नामंजूर रहा।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 का खण्ड (4) हटा दिया जाये।"

*संशोधन नामंजूर रहा।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1369 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (1) में 'दो' शब्द की जगह 'एक' शब्द रखा जाये।"

*संशोधन नामंजूर रहा।*

***उपाध्यक्ष** : अब प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1369 में, अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) को हटा दिया जाये।"

*संशोधन अस्वीकृत रहा।*

***उपाध्यक्ष** : प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1369 द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में '12 सदस्य' शब्दों की जगह 'सभा की समस्त सदस्य संख्या के 6 प्रतिशत से अधिक नहीं' शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकार कर दिया गया*

***उपाध्यक्ष** : अब मैं अल्पकालिक सूचना से प्राप्त, श्री हुकुमसिंह के संशोधन पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1369 में, अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में 'प्रावहित रीति से' शब्दों की जगह 'दिखाई गई श्रेणियों में से' शब्द रखे जायें।"

*संशोधन नामंजूर रहा*

***उपाध्यक्ष** : प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) की जगह निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'(1) राज्य-परिषद् के दो सौ पचास से अधिक सदस्य न होंगे, जिनमें,

(क) बारह सदस्य प्रधान द्वारा इस अनुच्छेद के खण्ड (2) में प्रावहित रीति से मनोनीत होंगे, और

(ख) शेष राज्यों के प्रतिनिधि होंगे।' "

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष** : अब मैं, संशोधन नं. 1375 पर जो डॉ. अम्बेडकर के नाम है, राय लेता हूं। यह यों है:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के परन्तुक को हटा दिया जाये।"

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती:** एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्। संशोधन नं. 1375 कायदे के बाहर है क्योंकि हम संशोधन नं. 1369 को पास कर चुके हैं जिसके द्वारा खण्ड (1) की जगह एक दूसरा अंश हमने रख लिया है जिसमें यह परन्तुक नहीं है। अत: यह परन्तुक अब उस संशोधन के स्वीकृत हो जाने से, खण्ड (1) में रह ही नहीं जाता। अब इस खण्ड में उसका अस्तित्व ही नहीं है तो उसके हटाने का सवाल ही नहीं खड़ा हो सकता है।

***उपाध्यक्ष:** तब मैं इस संशोधन पर राय नहीं लूंगा।

***उपाध्यक्ष:** अब सवाल यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (1क) में, जिस रूप में कि वह अभी उपस्थित किया गया है, निम्नलिखित शब्द और जोड़ दिये जायें:

'किन्तु शर्त यह है कि, प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के प्रतिनिधियों की कुल संख्या और उन राज्यों की समस्त जनसंख्या के बीच जो अनुपात होगा वह उस अनुपात से ज्यादा न होगा जो उस अनुसूची के भाग 1 और 2 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के प्रतिनिधियों की कुल संख्या तथा ऐसे राज्यों की समस्त जनसंख्या के बीच हो।' "

*संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1378 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (1क) की जगह निम्नलिखित अंश रखा जाये:-

'(1क) राज्यों के प्रतिनिधियों को राज्य-परिषद् में, निम्नलिखित सिद्धान्तों के आधार पर स्थान वितरित किये जायेंगे:

(क) प्रथम अनुसूची के प्रत्येक राज्य के लिये, प्रथम सत्तर लाख की आबादी तक प्रति दस लाख पर 1 प्रतिनिधि होगा किन्तु शर्त यह है कि किसी भी राज्य को, राज्य-परिषद् में एक से कम प्रतिनिधान न होगा।

(ख) प्रथम सत्तर लाख की आबादी के ऊपर प्रति बीस लाख पर 1 प्रतिनिधि होगा।' "

*संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1378 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (1क) में 'अनुसूची 3 (ख) में, इस बारे में दिये हुए बन्धानों के अनुसार होगा' शब्दों की जगह ये शब्द रखे जायें कि 'प्रत्येक अंगभूत राज्य को समान प्रतिनिधान के आधार पर स्थन दिये जायें और स्थानों की संख्या किसी भी देश में तीन से ज्यादा न होगी।' "

*संशोधन नामंजूर रहा।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1378 में अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड 1 (क) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड (1ख) जोड़ दिया जाये:

'(1ख) इस बात के लिये कार्रवाई की जायेगी कि जहां तक सम्भव हो, विभिन्न इकाइयों के लोगों को प्रतिनिधित्व प्राप्त रहे।' "

*संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (क) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'राज्य-परिषद् के स्थानों का राज्यों के प्रतिनिधियों में बंटवारा, अनुसूची 3(ख) में इस बारे में दिये हुए बन्धानों के अनुसार होगा।' "

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) की परन्तुक हटा दी जाये और खण्ड (1) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(1क) संसद् विधि द्वारा एक परामर्शदातृ-परिषद् स्थापित कर सकती

[उपाध्यक्ष]

है जिसमें कृषि के (25), उद्योग धन्धे के (15), व्यापार के (10), माइनिंग, फारेस्ट्री और इंजीनियरिंग के (10), सार्वजनिक उपयोगिताओं के (5), सार्वजनिक-सेवाओं के (5), तथा अर्थ-शास्त्रज्ञों के (5) प्रतिनिधि होंगे और वह परिषद्, संसद् तथा मन्त्रिमण्डल को नीति विषयक प्रश्नों पर जिनका कि कृषि, उद्योग धन्धा, व्यापार, माइनिंग, फारेस्ट्री और इंजीनियरिंग, सार्वजनिक उपयोगिता तथा सार्वजनिक-सेवाओं पर प्रभाव पड़ता हो, परामर्श देगी; और इनमें से किसी भी विषय के बारे में कानून बनाने के लिये प्रस्ताव तैयार करेगी या तद्विषयक प्रस्तावों की छानबीन करेगी।

*व्याख्या.*—हर वर्ग के आगे कोष्ठक में जो संख्या दी हुई है वह हर वर्ग के प्रतिनिधियों की कुल संख्या है।

इस परिषद के सदस्यों के, व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से, प्रशासन सम्बन्धी या कार्यपालक प्रकार्य, कर्त्तव्य अथवा दायित्व न होंगे। परिषद् के प्रत्येक सदस्य को ऐसे वेतन, परिलाभ, या भत्ते दिये जायेंगे जिनका संसद् समय-समय पर प्रावधान करे।' "

*संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1380 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (2) में 'विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव' शब्दों की जगह 'वास्तविक ज्ञान या उनके प्रति सक्रिय निष्ठा' शब्द तथा 'साहित्य, कला, विज्ञान और सामाजिक सेवायें' शब्दों की जगह 'प्राचीन भारतीय दर्शन और संस्कृति का इतिहास, कला, विज्ञान तथा ऐसी सामाजिक सेवायें जो अन्तर्मुखी भारत के पुनर्निर्माण के हेतु' शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत रहा।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1380 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (2) के अन्त में 'विज्ञान' शब्द के बाद 'दर्शन, धर्म एवं कानून' शब्द जोड़ दिये जायें।"

*संशोधन नामंजूर रहा।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1380 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (2) के अन्त में 'साहित्य...' इत्यादि से आरम्भ होने वाले शब्दों को, उस खण्ड के उपखण्ड (क) के रूप में रखा, जाये और उसके बाद निम्नलिखित नया उपखण्ड जोड़ दिया जाये:

'(ख) पत्रकारिता, वाणिज्य, उद्योग धन्धा तथा कानून'"

*संशोधन नामंजूर हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (2) के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जाने वाले सदस्यों में ऐसे व्यक्ति होंगे जिनको इन विषयों का जिनका उल्लेख नीचे है, विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव होगा:

साहित्य, कला, विज्ञान और सामाजिक सेवायें।' "

*संशोधन स्वीकार हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) की जगह निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'राज्य-परिषद् के सभी सदस्य निर्वाचित होकर आयेंगे और प्रत्येक संविधायी राज्य वयस्क मताधिकार के आधार पर पांच सदस्य चुनेगा।' "

*संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में जहां भी दूसरी बार 'elected' शब्द आया है वह हटा दिया जाये।"

*संशोधन नामंजूर रहा।*

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) में जहां भी दूसरी बार 'elected' शब्द आया है हटा दिया जाये।"

*संशोधन नामंजूर रहा।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में, 'लेजिस्लेटिव असेम्बली' (Legislative Assembly) शब्दों की जगह 'अवरागार' (Lower House) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में 'लोअर हाउस' (Lower House) शब्दों की जगह 'दोनों आगारों के' (the two Houses) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) में निम्नलिखित नया उपखण्ड (घ) जोड़ा जाये:

'(घ) उपखण्ड (क) तथा (ख) के अधीन होने वाला चुनाव अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति के आधार पर एकल संक्राम्य मत द्वारा किया जायेगा।' "

*संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:

'अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार एकल संक्राम्य मत द्वारा,।' "

*संशोधन स्वीकृत हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) में 'उस आगार के निर्वाचित सदस्यों द्वारा' शब्दों के बाद 'अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार एकल संक्राम्य मत द्वारा' शब्द जोड़ दिये जायें।"

*संशोधन मंजूर हुआ।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के अन्त में 'और' (and) शब्द जोड़ दिया जाये और उपखण्ड (ख) के अन्त में 'तथा' (and) शब्द को हटा दिया जाये।"

*संशोधन नामंजूर रहा।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (ग) को हटा दिया जाये।"

*संशोधन नामंजूर रहा।*

***उपाध्यक्ष:** तो कुल मिला कर पांच संशोधन ऐसे हैं जो यहां स्वीकार कर लिये गये हैं और वह हैं नं. 1369, 1378, 1380, 1400 और 1403 ।

अब मैं इस स्थिति में हूं कि सभा को यह सूचना दे दूं कि इस महीने की 8वीं तारीख को निश्चित रूप से यह अधिवेशन स्थगित कर देंगे। किन्तु 8 तारीख शनिवार को बैठक होगी। अब सभा कल प्रात: 10 बजे तक के लिये स्थगित होती है।

*तदुपरान्त सभा मंगलवार, 4 जनवरी, सन् 1949 ई. के प्रात: 10 बजे तक के लिये स्थगित हुई।*

Con. 3. VII. 32. 49
250

अंक 7
संख्या 32

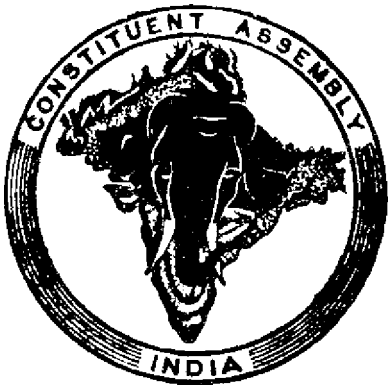


मंगलवार,
4 जनवरी
सन् 1949 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी)..... 2143-2210

[अनुच्छेद 67 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

मंगलवार, 4 जनवरी सन् 1949 ई.

---

*भारतीय विधान परिषद् की बैठक कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे उपाध्यक्ष महोदय (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में समवेत् हुई।*

---

## विधान का मसौदा-(जारी)

### अनुच्छेद 67-(जारी)

***उपाध्यक्ष (डॉ. एच.सी. मुकर्जी):** सभा का कार्य आरम्भ करने से पूर्व मुझे माननीय सदस्यों को यह सूचित करना है कि कल यह सूचना प्राप्त हुई थी कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्य किस प्रकार दर्शकों की दीर्घाओं में और बरामदों में प्रवेश प्राप्त करके विघ्न उपस्थित करेंगे। सौभाग्य से इसकी रोकथाम कर दी गई है। क्या मैं माननीय सदस्यों से यह प्रार्थना कर सकता हूं कि वे दर्शकों के कार्डों को केवल उन लोगों के लिये मंगवायें, जिन्हें वे स्वयं जानते हों, ताकि हम निर्विघ्नता से अपना कार्य कर सकें?

अब हम अनुच्छेद 67 पर विचार-विमर्श आरम्भ करेंगे। सूची में प्रथम संशोधन, संशोधन संख्या 1411 है। क्योंकि यह केवल शाब्दिक संशोधन है, इसलिये इसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती।

अब हमारे सामने संशोधन संख्या 1412, 1413 प्रथम भाग, 1414 प्रथम भाग और 1415 प्रथम भाग हैं। ये एक समान हैं। संशोधन संख्या 1415, जो काजी सैयद करीमुद्दीन के नाम से है, उपस्थित किया जा सकता है।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***काजी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खंड (5) के उपखंड (क) में से निम्नलिखित शब्द निकाल दिये जायें:

'Subject to the provisions of articles 292 and 293 of this Constitution' (इस विधान के अनुच्छेद 292 और 293 के अधीन) और अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें: 'in accordance with the system of proportional representation with multi-member constituencies by means of cumulative vote' (बहु-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों के साथ सामूहिक मतदान द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अनुसार)"

श्रीमान्, मेरे विचार से एक-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र की वर्तमान निर्वाचन-प्रणाली बहुत ही दोषपूर्ण है। जनतंत्र का एक प्रमुख दोष यह है कि बहुसंख्यक अपने संख्या-बल से निर्वाचनों में सफल हो जाते हैं। इस व्यवस्था को मिटाने से इस दोष का निराकरण हो सकता है। प्रतिनिधित्व की साधारण प्रणाली से यह दोष बना रहता है और इसके निराकरण का एकमात्र उपाय अनुपाती प्रतिनिधित्व है। यह प्रणाली भी मुख्यत: जनतंत्रात्मक है, क्योंकि इससे उन हजारों लोगों का प्रभाव बढ़ जाता है, जिनके मत का सरकार पर अन्यथा कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। चूंकि कोई मत व्यर्थ नहीं जाता और प्रत्येक मतदाता अपनी इच्छा और अपनी सम्मति का प्रतिनिधित्व करने वाले अपने पसन्द के सदस्य को संसद् में भेजने में योग देता है, इसलिये सभी लोग एक प्रकार से समान स्तर पर आ जाते हैं। श्रीमान् वर्तमान निर्वाचन-प्रणाली का एक दूसरा दोष यह भी है कि इस प्रणाली से इसका भी आश्वासन नहीं मिलता कि बहुसंख्यकों का ही राज्य होगा। हमें इंग्लैंड और अमेरिका में इस प्रकार के असंख्य उदाहरण मिलते हैं। सन् 1924 ई. में अनुदार दल का बहुमत वास्तव में बहुमत नहीं था, क्योंकि उसने कुल मतों के केवल 48 प्रतिशत मत प्राप्त किये थे; किन्तु वह देश का बहुसंख्यक दल समझा गया। इसी प्रकार सन् 1876 ई. और सन 1888 ई. में श्री हेज और श्री हैरीसन प्रेजीडेंट तो हो गये, किन्तु उन्होंने वास्तव में अपने विरोधियों से कम मत

प्राप्त किये थे। जहां तक इन बातों का सम्बन्ध है, वास्तव में वर्तमान निर्वाचन-प्रणाली दोषपूर्ण है। इस प्रणाली के अधीन अल्पसंख्यकों का भी यथोचित प्रतिनिधित्व नहीं हो सकता है और वे पंगु हो जाते हैं। आयरलैंड के निर्वाचन में इसका एक उदाहरण मिलता है। इस प्रणाली के कट्टर समर्थक भी अल्पसंख्यकों को किसी न किसी प्रकार के प्रतिनिधित्व का अधिकार देना चाहते हैं। यह एक उल्लेखनीय बात है कि ग्लेडस्टन ने यह तर्क उपस्थित किया था कि इस प्रणाली से अल्पसंख्यकों को स्वत: प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है; किन्तु यह आयरलैंड में गलत प्रमाणित हुआ। जैसी कि सन् 1885 के वादानुवाद में भविष्यवाणी की गई थी, आयरलैंड के दक्षिणी और पश्चिमी प्रदेशों के अल्पसंख्यक इस तारीख से निर्वाचनाधिकार से स्थायी रूप से वंचित हो गये हैं। सन् 1850 ई. से सन् 1911 ई. तक की आठ संसदों में उनका कोई भी प्रतिनिधित्व नहीं हुआ। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि जिस रूप में वर्तमान प्रणाली प्रचलित है उससे, जैसा कि साधारणतया समझा जाता है, बहुसंख्यकों के शासन का भी आश्वासन नहीं मिलता और धर्म पर आधृत अल्पसंख्यकों की बात तो अलग रही, राजनीति पर आधृत अल्पसंख्यकों को भी किसी प्रकार के प्रतिनिधित्व का आश्वासन नहीं मिलता। आज हमारे सम्मुख एक ऐसी निर्वाचन प्रणाली है, जिसमें और तो किसी प्रकार का आश्वासन नहीं है परन्तु जगहें संरक्षित रख दी गई हैं और इसे 292 और 293 अनुच्छेदों में प्रावहित कर दिया गया है। अपने संशोधन द्वारा मैंने वह तर्क उपस्थित किया है कि यदि अनुपाती प्रतिनिधित्व का आश्वासन दे दिया जाये तो धर्म के आधार पर जगहें सुरक्षित रखने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। इसे सभी लोगों ने स्वीकार किया है कि इस देश से साम्प्रदायिकता का पूर्णतया उन्मूलन कर दिया जाना चाहिये। हम उसके कुफलों को भोग चुके हैं और वास्तव में औपनिवेशिक संसद् इस कदम के लिये वचनबद्ध है। चूंकि इस आशय का एक प्रस्ताव स्वीकार हो चुका है, इस देश में कोई भी साम्प्रदायिक दल रहने न दिया जायेगा। इसलिये भारत की राजनीति में पृथक्ता, साम्प्रदायिकता और एकाकीपन का कोई स्थान न होना चाहिये। परन्तु साथ ही हम देश की वर्तमान परिस्थिति की उपेक्षा भी नहीं कर सकते। हम यह देखते हैं कि हिन्दू राज्य की स्थापना के लिये एक आन्दोलन चल रहा है। हम यह भी देखते हैं कि देश में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नाम

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

का एक संगठन भी है। इन बातों को दृष्टि में रखते हुये हमें बड़ी सावधानी से और धीरे-धीरे आगे कदम उठाना है। इसलिये हमें कोई ऐसा उपाय ढूंढ निकालना है, जिससे साम्प्रदायिकता का निराकरण हो जाये और विधान-मण्डलों में अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व हो सके।

हमारे सम्मुख दो उपाय हैं। एक तो जगहें सुरक्षित रखने का उपाय है, जिसकी व्यवस्था विधान में, अर्थात् अनुच्छेद 292 के अधीन, की गई है। दूसरा उपाय अनुपाती प्रतिनिधित्व का है। जगहें सुरक्षित रखने के प्रावधान में बहुत बड़े दोष हैं, क्योंकि वह धर्म पर आधृत है। उससे उन उद्देश्यों का ही निराकरण हो जाता है, जिनकी पूर्ति के लिये उसे स्वीकार किया गया था, क्योंकि जिस सम्प्रदाय के लिये जगहें सुरक्षित रखी गई हैं वह अपनी पसन्द के प्रतिनिधियों को निर्वाचित नहीं कर सकता। जैसा कि मैं सामान्य वादानुवाद के समय कह चुका हूं, एक बनावटी प्रतिनिधि भी चुनाव में एक सच्चे प्रतिनिधि को हरा देगा और वास्तव में अल्पसंख्यक ऐसे वकीलों को खड़ा करने के लिये बाध्य होंगे, जो अपने मुवक्किलों के खिलाफ मुकदमा लड़ेंगे। यह कहना गलत है कि यह व्यवस्था सम्प्रदायों पर आधृत हैं, क्योंकि वास्तव में बहुसंख्यक ही, न कि अल्पसंख्यक समुदाय, अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों को निर्वाचित करेंगे।

मेरे विचार से सबसे अच्छी प्रणाली अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली है। वह धर्म पर आधृत नहीं है और उससे सभी अल्पसंख्यक वर्गों को, चाहे वे राजनैतिक हों अथवा धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक लाभ हो जाता है। इस प्रणाली के सम्बन्ध में तीन आपत्तियां की जाती हैं और सामान्यत: इन्हीं को सामने रखते हुये तर्क उपस्थित किया जाता है और वादानुवाद किया जाता है। पहली आपत्ति यह है कि बहुत बड़े निर्वाचन-क्षेत्र हो जायेंगे और मतदाताओं का प्रबन्ध करना एक कठिन कार्य हो जायेगा। दूसरी आपत्ति यह है कि शासन अस्थिर हो जायेगा और तीसरी यह है कि बहुदल शासनों की स्थापना हो जायेगी। पहली आपत्ति के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि वह निराधार है। बड़े निर्वाचन-क्षेत्रों में यदि दलों की प्रणाली प्रयोग में रही, तो उम्मीदवारों का निर्वाचकों के सम्पर्क में आने का.... दलों की प्रणाली से ही कार्य सम्पन्न हो जायेगा। यह कल्पना करना ठीक नहीं।

कि शासन अस्थिर हो जायेगा। चूंकि बहुसंख्यक दल का ही सभा में बहुमत रहेगा और वही शासनारूढ़ होगा, इसलिये जहां तक बहुदल शासन का सम्बन्ध है, मेरे विचार से, जिन प्रदेशों में विभिन्न प्रकार के लोग हैं, यह बहुत ही आवश्यक है कि बहुदल-शासन स्थापित हो। यह कोई बुरी बात न होगी कि विभिन्न प्रमुख समुदायों से मंत्रिमंडल की स्थापना से परामर्श लिया जाये। इस समय देश अन्तरकालीन स्थिति में है और साम्प्रदायिकता उसके द्वार पर खड़ी है। यह बहुत ही आवश्यक है कि विरोधी दल को, चाहे उसका स्वरूप साम्प्रदायिक हो अथवा राजनीतिक, यथोचित स्थान दिया जाये। हम देश के शासन को मध्य-वर्ग के हाथ से लेकर उस वर्ग को सौंपने ही जा रहे हैं जिसे मैं श्रमजीवी-वर्ग कहता हूं। यह एक बहुत बड़ा परिवर्तन है और इसका अनुभव देश में बहुत कम लोग करते हैं। कांग्रेस के लोगों का यह मत है कि वे निर्वाचन में अवश्य ही सफल होंगे और इसलिये वे विधान के ऐसे मसौदे का समर्थन करते है, जिससे बहुसंख्यक दल का शासन स्थापित होता है और जिसमें देश के साम्प्रदायिक अथवा राजनीतिक अल्पसंख्यक-वर्गों के लाभ के लिये कोई प्रभावपूर्ण प्रावधान नहीं रखे गये हैं। वे गलत रास्ते पर हैं और आगे चलकर गलत रास्ते पर पाये जायेंगे। संसार का कोई भी संगठन श्रमिकों और पूंजीपतियों, किसानों और जमींदारों के परस्पर विरोधी अधिकारों का समीकरण नहीं कर पाया और उन्हें एक ही झंडे के नीचे रखना असम्भव है। अपने चारों ओर तो देखिये, साम्यवाद बड़ी तीव्र गति से फैल रहा है। यदि एक बार भी श्रमिकों ने उसे अपना लिया तो वे बहुत ही सबल हो जायेंगे। यदि श्रमिक आगे चलकर समाजवादी अथवा साम्यवादी सिद्धान्तों को अपना लेते हैं, तो विधान में राजनैतिक अथवा साम्प्रदायिक अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिये कोई प्रावधान न होने के कारण और उनके बहुसंख्यक होने के कारण वे अवश्य ही शासन-सत्ता को अपने हाथ में ले लेंगे। इस प्रकार की परिस्थितियों से बचने का एकमात्र उपाय अनुपाती प्रतिनिधित्व का ही उपाय है। इसके अतिरिक्त बिना जनतंत्रात्मक सिद्धान्तों का हनन किये हुये उससे साम्प्रदायिक अल्पसंख्यकों की रक्षा हो सकती है। बिना साम्प्रदायिकता की भावना से प्रेरित हुये ही राजनैतिक और साम्प्रदायिक अल्पसंख्यक-वर्गों के प्रतिनिधि निर्वाचित हो सकते हैं। यदि इस प्रकार का प्रावधान न रखा गया तो देश साम्यवाद के गर्त में पड़ जायेगा।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं माननीय सदस्य से प्रार्थना कर सकता हूं कि वे धीरे-धीरे पढ़ें।

***काजी सैयद करीमुद्दीन:** मैं पढ़ नहीं रहा हूं। मैं केवल अपनी कुछ टिप्पणियों की ओर देख रहा हूं। आप यहां आकर देख सकते हैं।

***उपाध्यक्ष:** मि. करीमुद्दीन मेरा यह सुझाव है कि आप धीरे-धीरे बोलें।

***काजी सैयद करीमुद्दीन:** श्रीमान्, यदि वर्तमान निर्वाचन-प्रणाली के अधीन सामान्य निर्वाचन में साम्यवाद के पक्ष में निर्णय हुआ, तो विकास की सभी योजनायें समाप्त हो जायेंगी और यदि साम्प्रदायिकता के पक्ष में निर्णय हुआ तो राज्य का ऐहिक स्वरूप समाप्त हो जायेगा। यदि अल्पसंख्यक-वर्गों को, चाहे वे राजनैतिक हों अथवा साम्प्रदायिक, कुचला गया और उन्हें संसदात्मक कार्यों से अलग रखा गया, तो साम्यवादी उनको अपना निशाना बनायेंगे और उनका निशाना ठीक बैठेगा। इसलिये यह बुद्धिमत्ता की ही बात है कि विरोधी दल को वैधानिक मार्ग का अवलम्बन करने के लिये प्रोत्साहित किया जाये और इसका एकमात्र उपाय अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली को प्रयोग में लाना है। मैं यह भविष्यवाणी करता हूं कि यदि ऐसा न किया गया, तो देश में अराजकता फैल जायेगी। इसका यह अर्थ नहीं हैं कि मैं वर्तमान शासन को जारी रखने के विरोध में हूं। मैं यह चाहता हूं कि कांग्रेस बहुत काल तक जीवित रहे, क्योंकि उसने भारत में सभी सम्प्रदायों को शान्ति और अक्षोभ प्रदान किया है और एक असाम्प्रदायिक राज्य की स्थापना की है, परन्तु जब तक अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली प्रयोग में नहीं लाई जाती, इसका आश्वासन नहीं मिल सकता।

श्रीमान्, मेरे संशोधन के प्रथम भाग में कहा गया है कि जगहों को सुरक्षित रखने की अन्तरकालीन व्यवस्था को तभी समाप्त किया जाये, जब कि अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली स्वीकार की जाये, अन्यथा नहीं। श्रीमान्, जब मैं जगहों को सुरक्षित रखने की व्यवस्था को समाप्त करने और अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली को स्वीकार करने के सम्बन्ध में बोल रहा था, तो यह मिथ्या धारणा बन गई थी कि मैं जगहों को सुरक्षित रखने की प्रणाली को बिना किसी शर्त के

समाप्त कराने के पक्ष में बोल रहा हूं। मैं यह कह चुका हूं, और आज भी यह कहता हूं, कि यदि अनुपाती प्रतिनिधित्व को प्रणाली को प्रयोग में लाया गया तो जगहों को सुरक्षित रखने के सम्बन्ध में कोई प्रावधान न होना चाहिये। यदि आप इसे स्वीकार करते हैं कि अल्पसंख्यक-वर्गों का अस्तित्व है और उन्हें किसी न किसी प्रकार की मान्यता प्रदान करनी चाहिये, तो मेरा यह निवेदन है कि इस सभा को कृपा करके अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली को प्रयोग में लाना चाहिये।

***उपाध्यक्षः** अब हम संशोधन संख्या 1412 पर आते हैं, जो मि. मोहम्मद ताहिर के नाम से है। मि. ताहिर, क्या आप चाहते हैं कि इस पर मत लिया जाये?

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): जी नहीं। मैं उसे उपस्थित नहीं करना चाहता।

***उपाध्यक्षः** अच्छी बात है, इस दशा में उस संशोधन पर जो संशोधन हैं, अर्थात् पंडित ठाकुरदास भार्गव के नाम से जो संशोधन संख्या 19 और 20 हैं, वे गिर जाते है। परन्तु श्री भार्गव, क्या आप उन्हें उपस्थित करना चाहते हैं? मै देखता हूं कि उनका सम्बन्ध केवल संशोधन संख्या 1412 ही से नहीं, बल्कि अन्य संशोधनों से भी है।

***पंडित ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मैं इन संशोधनों को तो उपस्थित नहीं करना चाहता हूं, किन्तु आपकी अनुमति से मैं इनके सम्बन्ध में एक वक्तव्य देना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** आप उसे सामान्य वादानुवाद के समय दे सकते हैं। मैं इसे ध्यान में रखूंगा। इसलिए मैं उन सबको काटे दे रहा हूं। अब हम संशोधन संख्या 1413 पर आते हैं, जो पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र के नाम से है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं उसे उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

(संशोधन संख्या 1414, प्रथम भाग, उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** अब हम संशोधन संख्या 1414 के द्वितीय भाग, संशोधन संख्या 1415 के द्वितीय भाग और संशोधन संख्या 1421 को उठाते हैं। इनका आशय एक समान है और इसलिए इन पर एक साथ विचार किया जा सकता है। संशोधन संख्या 1415 उपस्थित किया जा सकता है। वह काजी सैयद करीमुद्दीन

[उपाध्यक्ष]

के नाम से है। मैं संशोधन संख्या 1415 के द्वितीय भाग की ओर संकेत कर रहा हूं।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 1415 के दोनों भागों को उपस्थित कर चुका हूं।

***उपाध्यक्षः** अच्छी बात है। मुझे खेद है कि मैं समझ नहीं पाया। संशोधन संख्या 1414 मिस्टर लारी की अनुपस्थिति के कारण गिर जाता है। अब हम संशोधन संख्या 1416 और संशोधन संख्या 1417 पर आते हैं। संशोधन संख्या 1416 प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करना चाहता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खंड (5) के उपखंड (क) में:

'five hundred representatives of the people of the territories of the States directly chosen by the voters' (अव्यवहित रीति से मतदाताओं और द्वारा निर्वाचित, राज्यों के प्रादेशिक लोक-प्रतिनिधि, लोक-सभा में पांच सौ से अधिक न होंगे) शब्दों के स्थान में 'such members as shall, in the aggregate, secure one representative for every 500,000 of the population in all the constituent parts of the Union, whether States or territories directly administered by the Centre. All members of the People's House shall be chosen directly by the votes of adult citizens. The votes shall be cast in a secret ballot and voting shall be on the basis of Proportional Representation with single Transferable Vote.' (लोक-सभा में ऐसे सदस्य होंगे, जो सभी संघांगों में, चाहे वे राज्य हों अथवा केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्र, कुल मिलाकर जनसंख्या के 500,000 लोगों के लिये एक प्रतिनिधि प्राप्त करेंगे। लोक-सभा के सभी सदस्य प्रौढ़ नागरिकों द्वारा अव्यवहित रूप से चुने जायेंगे। मतदान गूढ़-शलाका द्वारा होगा तथा एकल संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली के आधार पर होगा।) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, तीन परिवर्तनों के उद्देश्य से मैंने इस संशोधन को उपस्थित किया है।

पहला यह है कि विधान में लोक-सभा के लिए प्रतिनिधियों की अधिक से अधिक संख्या निश्चित नहीं की जा सकेगी। मेरे विचार से यह व्यवस्था लोक-प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के अनुरूप नहीं है। क्योंकि किसी भी ऐसे देश के शासन में, जो अपने को जनतंत्रात्मक कहता है, लोकमत अंतिम मत होना चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार विधान में लोक सभा के लिए प्रतिनिधियों की अधिक से अधिक संख्या स्थायी रूप से निश्चित न होनी चाहिए।

पिछली तीन या चार जनगणनाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि प्रत्येक दशाब्दी के उपरान्त इस देश की जनसंख्या बराबर बढ़ी है। पिछली जनगणना से यह पता चलता है कि पिछले दस वर्षों में वह पन्द्रह प्रतिशत बढ़ गई। यदि इस समय आप अधिक से अधिक संख्या को निश्चित कर देंगे तो इसका परिणाम यह होगा कि आप अनुचित रूप से उन लोगों की संख्या बदल देंगे, जिनका कि प्रतिनिधित्व प्रत्येक प्रतिनिधि करता है। इसका यह अर्थ होगा कि प्रत्येक प्रतिनिधि की प्रतिनिधित्व की शक्ति कम होती जायेगी। क्योंकि वह जिन लोगों का प्रतिनिधित्व करेगा, उनकी संख्या निरन्तर बढ़ती जायेगी।

श्रीमान्, यदि मेरी यह धारणा है कि यदि आप मतदाताओं की बहुत बड़ी संख्या का प्रतिनिधित्व एक ही सदस्य को करने देंगे, तो सामान्य निर्वाचन के समय मतदाताओं के सम्मुख जो विभिन्न प्रश्न रखे जाते हैं, उन पर वे यथोचित रूप से अपना मत प्रकट न कर सकेंगे।

सामान्य निर्वाचन के अवसर पर, जिसकी कि सम्भवत: यहां कल्पना की गई है, मतदाताओं के सम्मुख विभिन्न प्रश्न उपस्थित होंगे और चूंकि वे अनेक प्रकार के और प्राय: परस्पर विरोधी भी होंगे, इसलिए मतदाता अपना मत प्रकट करते समय गड़बड़ में पड़ जायेंगे। इस प्रकार के प्रत्येक निर्वाचन में यह अवश्य ही होगा और इसलिए मेरे विचार से अच्छा तो यह होगा कि लोगों के प्रतिनिधियों की अधिक से अधिक संख्या निश्चित न की जाये। इसके स्थान में हमें एक ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे कि बदलती हुई जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधियों की संख्या स्वत: ही निश्चित हो जाये। यह सच है कि यदि जनगणना प्रत्येक दशाब्दी के उपरान्त हो, तो उससे किसी ऐसे निर्वाचन में पथ-प्रदर्शन नहीं हो सकता है, जो दो जनगणनाओं के बीच में पड़े; क्योंकि हम इसे स्वीकार कर रहे हैं कि निर्वाचन कम से कम पांच वर्ष में एक बार होंगे और हो सकता है कि अधिक बार हों। चूंकि हमने पिछली जनगणना को इसका आधार स्वीकार

[प्रो. के.टी. शाह]

किया है, यद्यपि वह आठ वर्ष पहले हुई थी और इसमें भी सन्देह है कि युद्धकाल में वह यथोचित रूप से हुई अथवा नहीं, यदि आप प्रतिनिधियों की अधिक से अधिक संख्या निश्चित कर देते हैं, तो सम्भावना इसकी है कि आगामी निर्वाचन में सभी लोगों का यथोचित प्रतिनिधित्व न होगा। आगे के सामान्य निर्वाचनों में पांच वर्ष की कालावधि से इतना अधिक अन्तर न पड़ेगा। वह अन्तर सम्भव है पांच प्रतिशत हो अथवा छः प्रतिशत अथवा साढ़े सात प्रतिशत। इसका अर्थ यह है कि जनसंख्या में परिवर्तन के बाद प्रतिनिधियों की संख्या अधिक हो जायेगी, किन्तु निर्वाचन के प्रबंधकों के लिए उनकी व्यवस्था करना असम्भव न होगा।

इस दशा में मेरा सुझाव यह है कि प्रतिनिधित्व के लिए 500,000 की जनसंख्या की सीमा निश्चित की जाये। प्रतिनिधियों की कुल संख्या 500 निश्चित करने से, जैसा कि इस खंड के अधीन प्रावहित है, इस व्यवस्था से लोगों का मत और अच्छी प्रकार प्रकाशित होने की सम्भावना है, भले ही उनके सम्मुख कितने ही प्रश्न हों। निःसन्देह यदि जनसंख्या बढ़ी तो यह संख्या भी बढ़ जायेगी। इस प्रकार यह सम्भव है कि आगामी दो दशाब्दियों में अधिक से अधिक संख्या 600 या अधिक तक पहुंच जाये। मेरे विचार से भारतीय संघ के विस्तार और उसकी जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए प्रतिनिधियों की यह कोई बहुत बड़ी संख्या नहीं है।

जो लोग तेजी से काम करना चाहते हैं और कुछ ही लोगों की इच्छानुसार देश का शासन चलाना चाहते हैं, वे स्वभावतः प्रतिनिधियों की बहुत बड़ी संख्या नहीं चाहेंगे। उनकी जितनी अधिक संख्या होगी, उतना अधिक विचार-विमर्श होगा और कानूनों अथवा प्रस्तावों को स्वीकार करने में उतना ही अधिक समय लगेगा। सरकार के कार्यों की कई दृष्टिकोणों से, अर्थात् बीच में बोलकर इत्यादि, आलोचना होगी। इसलिए जो लोग सार्वजनिक कार्य को तेजी से चलाना चाहते हैं वे इस सुझाव को बहुत पसंद नहीं करेंगे।

किन्तु वे लोग, जिनको लोगों का तथा उनकी इच्छाओं का अधिक ध्यान रहता है, मेरे विचार से, इस व्यवस्था के कारण सुशासन के मार्ग में किसी प्रकार की बाधा न देखेंगे और न उन्हें देखना चाहिए। प्रतिनिधियों की संख्या में परिवर्तन

करने अथवा बढ़ाने की सम्भावना को आपत्तिजनक न समझना चाहिए। वास्तव में जिस रूप में यह खंड रखा गया है, उसमें इस विचार के सन्निवेश से भी कि प्रतिनिधियों की अधिक से अधिक संख्या निश्चित करना आवश्यक है, यह प्रकट होता है कि इस योजना के अधीन भी संख्या में परिवर्तन करने की सम्भावना है और इसलिए मेरा संशोधन ठुकराने योग्य नहीं है।

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं, वह मतदान की प्रणाली के सम्बन्ध में है। आगे आने वाले खंडों के सम्बन्ध में मैंने इस आशय के कुछ अन्य संशोधन उपस्थित किये हैं और जब वे उठाये जायेंगे, तो उस समय अपने विचार प्रकट करूंगा। इसलिए मैं इस समय सभा का समय नहीं लेना चाहता।

मतदान की प्रणाली के सम्बन्ध में मैं केवल इस पर जोर देना चाहता हूं कि प्रौढ़ नागरिक गूढ़शलाका द्वारा मतदान दें और वह एकल संक्राम्य मत की प्रथा से अनुपाती प्रतिनिधित्व की योजना के अनुसार हो। मैं अनुपाती प्रतिनिधित्व के सैद्धान्तिक आधार के पक्ष में अथवा उसके विरुद्ध विस्तृत भाषण नहीं देना चाहता, क्योंकि मुझसे पहले बोलने वाले वक्ता महोदय उस पर विस्तार से बोल चुके हैं। मैं केवल यह कहना चाहता हूं, ताकि किसी प्रकार का भ्रम न रहे, कि अनुपाती प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त का उद्देश्य साम्प्रदायिक अल्पसंख्यक-वर्गों को बनाये रखना नहीं है, बल्कि विभिन्न प्रकार के राजनैतिक विचारों का प्रतिनिधित्व करना है। यदि आप अपने शासन को वास्तव में जनतंत्रात्मक बनाना चाहते हैं, तो आपके विधान-मंडल में इनका प्रतिनिधित्व होना ही चाहिए। उदाहरणार्थ, फ्रांसीसी प्रणाली सच्चे अर्थ में अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली पर आधृत नहीं है। किन्तु फिर भी फ्रांसीसी विधान-सभा में विभिन्न राजनैतिक विचारों का प्रतिनिधित्व होता है। यह कहा जाता है कि तीसरी रिपब्लिक में कोई भी फ्रांसीसी विधान-सभा में विभिन्न राजनैतिक विचारों का प्रतिनिधित्व होता है। यह कहा जाता है कि तीसरी रिपब्लिक में कोई भी फ्रांसीसी सरकार 11 महीने से अधिक काल तक पदारूढ़ नहीं रही। किन्तु इस कारण इस सिद्धान्त की निन्दा नहीं की जा सकती वहां प्रत्येक प्रकार के लोकमत के प्रतिनिधित्व का अवसर मिलता है और भले ही वहां की सरकार सुस्थिर न हो, किन्तु वह लोकमत का उस प्रणाली से अधिक प्रतिनिधित्व करती है, जिसके अधीन मनमाने मत की व्यवस्था है और जिसकी यहां कल्पना की गई है।

विभिन्न प्रकार के राजनैतिक विचारों के प्रतिनिधित्व की सम्भावना से अल्पसंख्यकों को विधान-मंडल में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने का अवसर ही नहीं मिलेगा, बल्कि वे प्रभावपूर्ण ढंग से अपना मत प्रकट कर सकेंगे और अपने वर्ग

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

को एक बहुसंख्यक-वर्ग भी बना सकेंगे। जो लोग अनुपाती प्रतिनिधित्व और साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को भ्रमवश एक समान समझते हैं, वे इस पर विचार करें। श्रीमान्, इन कारणों को ध्यान में रखकर मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाये।

**श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खंड (5) के उपखंड (क) में 'representatives of the people of the territories of the States directly chosen by the voters' (अव्यवहित रीति से मतदाताओं द्वारा निर्वाचित, राज्यों के प्रादेशिक लोक-प्रतिनिधि) शब्दों के स्थान में 'members directly chosen by the voters in the States' (राज्यों के मतदाताओं द्वारा अव्यवहित रीति से निर्वाचित सदस्य) शब्द रखे जायें।"

विधान के मसौदे में यह खंड इस प्रकार है:

"5 (a) Subject to the provisions of articles 292 and 293 of this Constitution, the House of the People shall consist of not more than five hundred representatives of the people of the territories of the States directly chosen by the voters."

[5 (क) इस संविधान के अनुच्छेद 292 और 293 के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, अव्यवहित रीति से मतदाताओं द्वारा निर्वाचित, राज्यों के प्रादेशिक लोकप्रतिनिधि, लोक सभा में पांच सौ से अधिक न होंगे।]

यदि मेरा संशोधन इस सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया, तो यह खंड इस प्रकार हो जायेगा:

"Subject to the provisions of articles 292 and 293 of this Constitution, the House of the People shall consist of not more than five hundred members directly elected by the voters in the States."

(इस संविधान के अनुच्छेद 292 और 293 के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, राज्यों के मतदाताओं द्वारा अव्यवहित रीति से निर्वाचित सदस्य, लोक-सभा में पांच सौ से अधिक न होंगे।)

सभा इस ओर ध्यान देगी कि मेरे संशोधन से यह खंड संक्षिप्त और स्पष्ट हो जाता है और उसके वर्तमान रूप में जो भाषा के दोष हैं, वे भी मिट जाते

हैं। मुझे आशा है कि डॉक्टर अम्बेडकर और यह सभा उसे स्वीकार करने में किसी कठिनाई अथवा आपत्ति का अनुभव न करेगी। मैं केवल एक शब्द और कहूंगा। यदि मेरा संशोधन इस सभा ने स्वीकार कर लिया, तो इसके परिणामस्वरूप खंड 5 के उपखंड (ख) में तथा उसके परादिक में कुछ परिवर्तन करने होंगे। खंड 5 के उपखंड (क) के सम्बन्ध में जो यह संशोधन उपस्थित किया गया है, उसके अनुसार उपखंड (ख) और परादिक में भी 'representatives of the States' (राज्यों के प्रतिनिधि) शब्दों के स्थान में 'members' (सदस्य) शब्द रखना होगा। मैं इस सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1418, 1419 और 1420 का आशय एक समान है। मैं प्रोफेसर रंगा को संशोधन संख्या 1419 उपस्थित करने की आज्ञा देता हूं।

(संशोधन संख्या 1418 से 1423 तक उपस्थित नहीं किये गये।)

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 67 के खंड (5) के उपखंड (ख) में 'the States' (राज्यों) शब्द के बाद निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायं : 'and Territories directly governed by the Centre' (तथा केन्द्र द्वारा अव्यवहित रीति से शासित क्षेत्र)"

श्रीमान्, वर्तमान खंड में केवल उन राज्यों के लिये व्यवस्था की गई है, जिनका उद्देश्य सम्बद्ध अनुसूची में है। अनुसूची में उन वृहत् क्षेत्रों तथा उनकी वृहत जनसंख्या का उल्लेख नहीं है, जिनका प्रशासन सीधे-सीधे केन्द्र द्वारा होता है। मेरे विचार से उनका इस खंड में स्पष्ट रूप से उल्लेख करना इसलिए आवश्यक है कि उनके प्रतिनिधित्व के अधिकार की उपेक्षा न हो सके और वे अपने यहां प्रतिनिधि संस्थाओं को स्थापित करने तथा केन्द्र में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने से वंचित न रहें।

यह कहा गया है और मैंने इसे बहुत ही प्रामाणिक रूप से सुना है कि इनमें से कुछ क्षेत्रों के अथवा किसी ऐसे क्षेत्र के लोग, जो केन्द्र द्वारा शासित हैं, इतने पिछड़े हुए हैं और इतने अपेक्षित हैं और उनका देश इतना अविकसित है कि

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

वे अपने यहां प्रतिनिधि संस्थाओं को स्थापित करने के योग्य नहीं हैं। यह बात कांग्रेस के जयपुर के अधिवेशन में कही गई थी और विशेषतया कच्छ की ओर संकेत किया गया था। कच्छ जैसे प्रदेश के सम्बन्ध में, जिसका प्रशासन केन्द्र द्वारा होता है, उच्च अधिकारियों से ऐसी निराधार निन्दा सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। श्रीमान्, बम्बई के नगर में बसे हुए कच्छ के लोगों ने ही वहां के वाणिज्य और उद्योग-धंधों को बहुत आगे बढ़ाया है। यह सच है कि कच्छ के ये लोग बहुत अंश में बम्बई के स्थायी नागरिक हो गये हैं, यद्यपि अब भी उनका कच्छ राज्य से सम्बन्ध है। यह लोग इस समय की बदली हुई परिस्थिति में अपने प्रदेश और अपने यहां के निवासियों को शीघ्रातिशीघ्र उन्नत बनाने में बहुत योग दे सकते हैं। यह एक निरर्थक बात है कि सारे प्रान्त अथवा राज्य को अशिक्षित, अविकसित तथा पुरुषार्थहीन घोषित करके और राज्य के भविष्य तथा उसके साधनों को समझने की बुद्धि से शून्य बताकर निन्दित किया जाये।

श्रीमान्, मेरे विचार से यह उन सब लोगों के प्रति अन्याय है, जिन्होंने देश की जागृति तथा उन्नति में अपना योग दिया है। इन कारणों से यदि उन लोगों को राज्य में अथवा उनके राज्य के संघांग होने के कारण केन्द्र में प्रतिनिधित्व न दिया जाये तो, यदि और अधिक कुछ न कहा जाय तो कम से कम यह तो कहा ही जा सकता है कि यह एक प्रतिक्रियावादी कदम होगा।

मुझे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि इसी प्रकार अन्य प्रदेशों की भी उपेक्षा होगी और उनका भी प्रतिनिधित्व न होगा और इसीलिए मैंने यह आवश्यक समझा कि इस संशोधन को उपस्थित किया जाय और इन शब्दों द्वारा उनको इस खंड में समाविष्ट कर दिया जाय। मैं इस सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1425 का प्रथम भाग और संशोधन संख्या 1426, जो श्री कामत के नाम से है, एक समान हैं। मेरा यह प्रस्ताव है कि संशोधन संख्या 1425 का प्रथम भाग और द्वितीय भाग दोनों उपस्थित किये जायें। श्री कामत क्या आप चाहते हैं कि आपके संशोधन संख्या 1426 पर मत लिया जाये?

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह देखता हूं कि डॉक्टर अम्बेडकर चोरी से मुझसे आगे बढ़ गये हैं और इसलिए मैं अपना संशोधन उपस्थित नहीं करना चाहता।

***उपाध्यक्षः** डॉक्टर अम्बेडकर।

***माननीय डॉक्टर बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): मैं उसे उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** तब हम संशोधन संख्या 1427 पर आते हैं, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** मेरे नाम से संशोधन संख्या 1428 और 1429 भी हैं। क्या मैं उन्हें एक साथ उपस्थित कर सकता हूं?

***उपाध्यक्षः** आप उन्हें एक-एक करके उपस्थित कर सकते हैं। तीनों संशोधनों को उपस्थित करने पर आप उन सब के सम्बन्ध में एक भाषण दे सकते हैं।

**प्रोफेसर के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (5) के उपखण्ड (ख) में से 'divided, grouped or' (विभाजन, वर्गीकरण अथवा) शब्द निकाल दिये जायें।"

'अनुच्छेद 67 के खंड (5) के उपखंड (ख) में 'constituencies' (निर्वाचन क्षेत्रों) शब्द के बाद निम्नलिखित जोड़ दिया जाये:

'So that each State being constituent part of the Union, or Territory governed directly by the Centre is a single constituency by itself if its population is not less than a million; or grouped with such adjoining States or Territories as together have a population of not less than a million.' "

(ताकि प्रत्येक राज्य संघ का अथवा केन्द्र द्वारा अव्यवहित रीति से शासित क्षेत्र का अंग होने के कारण यदि उसकी जनसंख्या दस लाख से कम

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

न हो तो, एक स्वतंत्र निर्वाचन-क्षेत्र हो अथवा वह किन्हीं ऐसे निकटस्थ राज्यों अथवा क्षेत्रों के वर्ग में हो, जिनकी जनसंख्या मिलाकर दस लाख से कम न हो।)

"अनुच्छेद 67 के खंड (5) के उपखंड (ख) में 'constituencies' (कांस्ट्यूएंसीज) शब्द के बाद फुलस्टाप रखा जाये, उसके बाद ही आने वाली 'and' (एण्ड) शब्द निकाल दिया जाये। और शब्द 'the' (दी) बड़े टी से छापा जाये।"

श्रीमान् मैं जो प्रस्ताव उपस्थित कर चुका हूं, उसके परिणामस्वरूप ही मैंने इन संशोधनों को भी उपस्थित किया है। मैंने इन्हें इस उद्देश्य से उपस्थित किया है कि निर्वाचन-क्षेत्र इस प्रकार निश्चित किये जायें कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के प्रतिनिधित्व के लिए कम से कम दो जगहों की व्यवस्था हो सके। कम से कम 10 लाख की जनसंख्या की सीमा निश्चित की गई है और मेरा सुझाव यह है कि अनुपाती प्रतिनिधित्व की जिस प्रणाली के अनुसार प्रतिनिधित्व होने वाला है, उसका आधार यही समझा जाये।

श्रीमान् एक-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों में अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली को प्रयोग में लाना सम्भव न होगा। कम से कम उसका वह प्रभाव न होगा, जिसकी आशा इस प्रणाली पर विश्वास करने वाले लोग लगाये बैठे हैं। इसलिए यह उचित ही होगा कि बहु-सदस्य विर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था की जाये और प्रत्येक के कम से कम दो प्रतिनिधि हों।

इसी आधार पर और उस सिद्धान्त के अनुसार, जिसे हमने विधान में इस सभा में ही स्वीकार किया है, मैंने दस लाख जनसंख्या की इकाई का सुझाव उपस्थित किया है। पहले एक संशोधन में मैंने यह सुझाव भी रखा है कि ऐसी कम से कम जनसंख्या, जिसका प्रतिनिधित्व हो सके, पांच लाख होनी चाहिए। मेरे विचार से इन दो संशोधनों के फलस्वरूप प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र को कम से कम दो प्रतिनिधि प्राप्त हो जायेंगे।

अधिकांश राज्य इस प्रकार के निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था करने में स्वयं समर्थ हो सकेंगे। निस्सन्देह कुछ राज्य ऐसे भी होंगे, जो बहुत विस्तृत होंगे और

इसलिए उनमें अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली का प्रयोग बहुत सफल हो सकेगा। इस प्रकार केन्द्र द्वारा शासित सभी राज्यों और प्रदेशों का भी पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व हो जायेगा। इससे संघीय विधान-मंडल में भी यथोचित रूप से प्रतिनिधित्व हो सकेगा और सभी विचारधाराओं के प्रतिनिधि अपने विचार व्यक्त कर सकेंगे। और संघीय विधान-मंडल के समक्ष कानून बनाने की दृष्टि से अथवा अन्य उद्देश्य से जो प्रश्न उपस्थित किये जायेंगे, उन पर पूर्ण रूप से प्रकाश पड़ सकेगा।

जैसा कि मैं कह चुका हूं, उचित यह होगा कि हम निर्वाचन-क्षेत्रों के ऐसे समूह बनायें अथवा ऐसी इकाइयां बनायें जिससे कि अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली के आधार पर प्रत्येक संघांग का और प्रत्येक राजनैतिक विचारधाारा का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व हो सके। श्रीमान्, मैं इस सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

(संशोधन संख्या 1430 उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, क्या मैं आपके सम्मुख एक निवेदन कर सकता हूं? मैंने यह सोचा था कि डॉक्टर अम्बेडकर अपना संशोधन संख्या 1425 उपस्थित कर रहे हैं और इसलिए मैंने यह कहा था कि मेरा संशोधन उपस्थित न होगा। यह प्रतीत होता है कि डॉक्टर अम्बेडकर अपना संशोधन उपस्थित नहीं कर रहे हैं। उनके संशोधन के दो भाग हैं और उन्होंने उन भागों को अलग-अलग नहीं किया है। इसलिए क्या आप कृपा करके मुझे अपना संशोधन संख्या 1426 उपस्थित करने की आज्ञा देंगे?

***उपाध्यक्षः** अच्छी बात है।

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खंड (5) के उपखंड (ख) में से 'of India' (भारत के) शब्द निकाल दिये जायें।"

विधान के मसौदे में खंड 5 का उपखंड (ख) इस प्रकार है:

"For the purpose of sub-clause (a), the States of India shall be divided, etc. [उपखंड (क) के प्रयोजनार्थ भारत के

[श्री एच.वी. कामत]

राज्यों का इत्यादि] यह स्पष्ट है कि 'of India' (भारत के) शब्द बेकार हैं और मेरे विचार से उन्हें निकाल देना चाहिए। क्योंकि विधान के मसौदे में राज्यों का अर्थ सर्वत्र भारतीय राज्यों से ही है। इसलिये, श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि 'of India' (भारत के) शब्द इस खंड से निकाल दिये जायें। यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया गया, तो यह उपखंड इस प्रकार हो जायेगा।

"For the purpose of sub-clause (a), the States shall be divided, etc. [उपखंड (क) के प्रयोजनार्थ राज्य इत्यादि]"

यह स्पष्ट है। मैं नहीं समझता हूं कि इस विषय पर अधिक बोलने की आवश्यकता है। मैं इस सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खंड (5) के उपखंड (ख) का परादिक निकाल दिया जाये।"

श्रीमान्, यह संशोधन उन संशोधनों के परिणामस्वरूप ही उत्पन्न होता है, जिन्हें मैं उपस्थित कर चुका हूं। चूंकि मैं यह नहीं चाहता कि लोक-सभा में प्रतिनिधियों की अधिक से अधिक संख्या निश्चित की जाये, इसलिए यह उचित न होगा कि दोनों सभाओं के लिए इस प्रकार की अधिक से अधिक संख्या अथवा किसी प्रकार का अनुपात निश्चित किया जाये। यदि मेरे पहले के संशोधन स्वीकार कर लिये गये, तो यह उनके परिणामस्वरूप स्वीकार हो जायेगा। इसलिए मैं इस सम्बन्ध में सभा का अधिक समय लेना आवश्यक नहीं समझता। मैं इस सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1432 शाब्दिक है और इसलिये उसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जा सकती।

संशोधन संख्या 1433 के दोनों विकल्पों और संशोधन संख्या 1437 का आशय एक समान है। संशोधन संख्या 1437 उपस्थित किया जा सकता है। वह प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के नाम से है।

(संशोधन उपस्थित नहीं किये गये।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिम बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, आप की अनुमति से तथा इस सभा की अनुमति से मैं संशोधन संख्या 1434 को कुछ परिवर्तित रूप में उपस्थित करना चाहता हूं। उसमें एक ऐसे संशोधन के अनुसार शाब्दिक परिवर्तन होंगे जिसे कि सभा स्वीकार कर चुकी है।

मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खंड (5) के उपखंड (क) में 'Last preceding census' (अन्तिम पूर्ववर्ती जनगणना में) शब्दों के स्थान में 'last preceding census of which the relevant figures have been published' (अन्तिम पूर्ववर्ती जनगणना में, जिसके आंकड़े प्रकाशित हो चुके हों) शब्द रखे जायें।"

माननीय डॉ. अम्बेडकर ने इसी प्रकार के एक अन्य संशोधन को इसी रूप में स्वीकार किया था। जिस विषय पर इस सभा में विचार-विमर्श हो चुका है और एक दूसरे प्रसंग में इस सिद्धान्त को भी स्वीकार कर लिया गया है वह प्रसंग यह था कि यदि हमें किसी जगनणना पर निर्भर होना है, तो उसके आंकड़े उपलब्ध होने चाहियें। हम किसी ऐसी जनगणना पर निर्भर नहीं हो सकते जिसके कि आंकड़े प्राप्त न हों। यदि हमें निर्वाचन करना होगा तो जनगणना के बाद तुरन्त ही हमें आंकड़े प्राप्त न हो जायेंगे। आंकड़े प्राप्त करने में लगभग एक वर्ष का समय लग जाता है। निर्वाचन के पूर्व जनगणना के आंकड़ों के आधार पर हमें कई बातें करनी होती हैं। इस स्थिति में हमें पहली जनगणना पर निर्भर रहना पड़ता है चूंकि उसके आंकड़े हम प्राप्त कर सकते हैं। इस विषय पर सभा में अच्छी प्रकार विचार-विमर्श हुआ था और इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया था। यह संशोधन उस स्वीकृत प्रस्ताव के बहुत कुछ परिणामस्वरूप ही उत्पन्न होता है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** श्रीमान् मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1434 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 67 के उपखंड (5) में 'members to be elected at any time for' (किसी समय निर्वाचित होने वाले सदस्यों) शब्दों के स्थान में 'representatives allotted to' (निश्चित प्रतिनिधि) शब्द रखे जायें।"

खंड (ग) इस प्रकार है:

"The ratio between the number of Mebers to be elected at any time for each territorial constituency and the

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

population of that constituency as ascertained at the last preceding census shall, so far as practicable, be the same throughout India.,

(प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र के लिये किसी समय निर्वाचित होने वाले सदस्यों की संख्या का, उस प्रदेश की अन्तिम पूर्ववर्ती जनगणना में निश्चित की गई जनसंख्या से, अनुपात, समस्त भारत में, जहां तक व्यवहार्य हो, एक ही होगा।

खंड (ख) के अनुसार 750,000 की जनसंख्या के लिये कम से कम एक प्रतिनिधि होगा और 500,000 की जनसंख्या के लिये एक से अधिक प्रतिनिधि न होगा। इस प्रकार की रियायत देने पर यह सम्भव है कि सारे भारत में प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में एकरूपता न हो। इस खंड का यह, उद्देश्य है कि सारे भारत में प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में एकरूपता आ जाये, चाहे वह किसी प्रकार की क्यों न हो। इसी एकरूपता को लाने के लिये यह खंड उपस्थित किया गया है, किन्तु 'members to be elected at any time for each territorial constituency' (प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र के लिये किसी समय निर्वाचित होने वाले सदस्यों) शब्दों से पूरा अर्थ-बोध नहीं होता है और इसीलिये मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है कि 'members to be elected at any time for' (किसी समय निर्वाचित होने वाले सदस्यों) शब्दों के स्थान में 'representatives allotted to' (निश्चित प्रतिनिधि) शब्द रखे जायें। यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो खंड इस प्रकार हो जायेगा:

"The ratio between the number of representatives allotted to each territorial constituency and the population of that constituency as ascertained at the last preceding census shall, so far as practicable, be the same throughout India."

(प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र के लिये निश्चित प्रतिनिधियों की संख्या का उस प्रदेश की अन्तिम पूर्ववर्ती जनगणना में निश्चित की गई जनसंख्या से, अनुपात, समस्त भारत में, जहां तक व्यवहार्य हो, एक ही होगा।)

अर्थ को स्पष्ट करने के लिये ही यह संशोधन उपस्थित किया गया है।

(संशोधन संख्या 1435 और 1436 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 1438 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती, क्योंकि वह केवल रस्मी है।

(संशोधन संख्या 1439, 1440, 1441 और 1442 उपस्थित नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 1443 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती, क्योंकि वह शाब्दिक है।

(संशोधन संख्या 1444 और 1445 उपस्थित नहीं किये गये।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 का खंड (7) निकाल दिया जाये।"

इस खंड में उन प्रदेशों का वर्णन है, जो राज्य नहीं है। इस खण्ड के सम्बन्ध में यह आपत्ति है कि संसद् को उन प्रदेशों का प्रतिनिधित्व निश्चित करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जो राज्य नहीं हैं। इन प्रदेशों के सम्बन्ध में यह निवेदन करता हूं, और यही निवेदन मैं एक इसी के समान अन्य संशोधन के सम्बन्ध में कह चुका हूं, कि यदि किसी प्रदेश में किसी प्राधिकारी का शासन हो तो उसी प्राधिकारी को उसका प्रतिनिधित्व निश्चत करना चाहिये। इस सिद्धान्त का विधान में समावेश कर देना चाहिये। उस प्रदेश के किसी यथोचित प्राधिकारी पर यह छोड़ देना चाहिये कि वह इसका निर्णय करे कि प्रतिनिधित्व का अधिकार किसे दिया जाये। इन प्रदेशों में कोई प्राधिकारी पदारूढ़ होंगे ही और उन्हीं को, न कि संसद् को अपने प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में निर्णय करना चाहिये। यह जनमत की व्यवस्था कर के हो सकता है अथवा किसी अन्य प्रकार। वास्तव में इससे कुछ प्रदेश आत्मनिर्णय के अधिकार से वंचित हो जाते हैं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 1447, प्रोफेसर के.टी. शाह!

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खंड (7) में 'may' (मे) शब्द के स्थान में 'shall' (शैल) शब्द, 'territories" (टेरिटरीज) शब्द के स्थान में 'the territories' (दी टेरिटरीज) शब्द और 'other than States' (अन्य प्रदेशों के) शब्दों के स्थान में 'directly governed by the Centre on the same basis as in the case of States which are constituent parts of the Union' (जो केन्द्र द्वारा अव्यवहित रीति से उसी आधार पर शासित हों जिस आधार पर

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

वे राज्य शासित होते हैं जो संघ के अंग हैं) शब्द क्रमशः रखे जायें। संशोधित खंड इस प्रकार हो जायेगा:

"Parliament shall, by law, provide for the representation in the House of the People, of the Territories directly governed by the Centre on the same basis as in the case of States which are constituent parts of the Union."

(संसद, विधि द्वारा, राज्यों के, जो केन्द्र द्वारा अव्यवहित रीति से उसी आधार पर शासित हों जिस आधार पर वे राज्य शासित होते हैं जो संघ के अंग हैं, लोक सभा में प्रतिनिधान का प्रावधान कर सकेगी।)

इससे इन सभी प्रदेशों को समान अधिकार प्राप्त हो जायेगा। श्रीमान्, मैं यह बता चुका हूं कि कई प्रदेश ऐसे हैं जिनका शासन सीधे-सीधे केन्द्र द्वारा होता है और यदि आगे चलकर नये प्रदेश संघ में सम्मिलित होना चाहेंगे, तो यह सम्भव है कि इनकी संख्या बढ़ जाये। इसके अतिरिक्त यदि कुछ समय के लिये भी इनका शासन सीधे-सीधे केन्द्र द्वारा हो तो यह उचित ही होगा कि उनको भी किसी प्रकार का प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।

इसलिये मैं यह चाहता हूं कि विधान द्वारा यह अनिवार्य कर दिया जाये कि उन्हें भी यथोचित प्रतिनिधित्व प्राप्त कराने की व्यवस्था की जाये। उनका प्रतिनिधित्व उसी आधार पर होना चाहिये जिस आधार पर संघ में सम्मिलित अन्य राज्यों का होता है; अर्थात् 500,000 की जनसंख्या के लिये एक प्रतिनिधि होना चाहिये। इसकी चर्चा न की जानी चाहिये कि कोई प्रदेश अधिक विकसित है और इसलिये उसको प्रतिनिधित्व प्राप्त करने का अधिक अधिकार है और अन्य प्रदेश, भले ही वे संघ के अंग हो गये हों, चूंकि वे कम विकसित हैं और पिछड़े हुये हैं, इसलिये वे अपने यहां अथवा संघ में यथोचित प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के पात्र नहीं हैं। इस प्रकार की चर्चा तो उस विदेशी सत्ता को शोभा देती थी जो 18 महीने पूर्व इस देश में शासन करती थी और वास्तव में वह सत्ता तो बहुत काल तक इस सारे देश को प्रतिनिधि संस्थाओं के योग्य ही नहीं समझती थी। यदि इस प्रकार की विचारधारा प्रबल रहती तो हम इस समय स्वतंत्र भारत का विधान न बनाते होते। इस प्रकार की संस्थाओं और कार्यों के सम्बन्ध में लोग

काम करके ही उनके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करते हैं। उनके कार्य की शिक्षा देने से लोग इस प्रकार के कार्य की जिम्मेदारी के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते। मेरी यह धारणा है कि यह संशोधन मेरे उपस्थित किये हुये पूर्व संशोधनों के फलस्वरूप ही उत्पन्न होता है और इसलिये यह स्वीकार कर लिया जाना चाहिये।

श्रीमान्, मैं इस सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** अब हम संशोधन संख्या 1448 और 1449 पर आते हैं जिन्हें उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती क्योंकि वे केवल शाब्दिक हैं।

संशोधन संख्या 1450, जो पं. लक्ष्मीकात मैत्र के नाम से है, उपस्थित किया जा सकता है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 67 के खंड (8) में 'readjusted' शब्द के बाद (हिन्दी में 'पुनर्व्यवस्थापित' शब्द के पूर्व) 'on the basis of population' (जनसंख्या के आधार पर) शब्द जोड़ दिये जायें।"

अनुच्छेद 67 के खंड (8) में यह प्रावधान है कि प्रत्येक जनगणना के समाप्त होने पर राज्य-परिषद् में कई राज्यों का तथा लोकसभा में कई प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व, इस विधान के अनुच्छेद 289 के प्रावधानों के अधीन उस प्राधिकारी द्वारा उस प्रकार और उस तारीख से पुनर्निश्चित किया जायेगा, जिसे कि संसद् कानून द्वारा निश्चित करेगी। मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि यह पुनर्निश्चयन जनसंख्या के आधार पर हो। यह संशोधन स्वव्याख्यात्मक है और मुझे इस पर अधिक विस्तार से बोलने की आवश्यकता नहीं है। मैं इस सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** सूची 2 के इस संशोधन संख्या संख्या 43 पर एक संशोधन है जो श्री एल. कृष्णास्वामी भारती के नाम से है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** श्रीमान्, मैं उसे उपस्थित कर रहा हूं। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1450 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 67 के खंड (8) के बाद निम्नलिखित नया परादिक रखा जाये:

"Provided that such readjustment shall not affect representation to the House of the People until the dissolution of the then existing House.' " (पर ऐसी पुनर्व्यवस्थापना का लोक सभा में प्रतिनिधित्व पर, वर्तमान सभा की समाप्ति तक कोई प्रभाव न होगा।)

श्रीमान्, अनुच्छेद 67 का उपखंड (8) इस प्रकार है:

"Upon the completion of each census the representation of the several States in the Council of States and of the several territorial constituencies in the House of the People shall, subject to the provisions of article 289 of this Constitution, be readjusted by such authority, in such manner and with effect from such data as Parliament may, by law, determine."

(प्रत्येक जनगणना की समाप्ति पर राज्य-परिषद् में विविध राज्यों का और लोक-सभा में विविध प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व, इस विधान के अनुच्छेद 289 के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, ऐसे प्राधिकारी द्वारा, ऐसी रीति से और ऐसी तिथि से प्रभावी होने के लिये, पुनर्व्यवस्थापित किया जायेगा जैसा कि संसद, विधि द्वारा, निश्चय करे।)

यह उपखंड इस आवश्यकता को ध्यान में रखकर रखा गया है कि विधान-मंडल के निर्वाचन के पश्चात्, चाहे वह राज्य-परिषद् के लिये हो अथवा लोक सभा के लिये, जनगणना की व्यवस्था करनी पड़ेगी और इस प्रकार नये आंकड़े प्राप्त हो जायेंगे और इन आंकड़ों के आधार पर ही हमें नि:संदेह जगहों की संख्या निश्चित करनी होगी। परन्तु यदि आंकड़े बाद को प्राप्त हुये तो जगहें निश्चित करना सम्भव न होगा और यह आगे के निर्वाचनों के समय भी किया जा सकेगा इसलिये इस कठिनाई को दूर करने के लिये यह व्यवस्था की गई

है कि जब कभी जनगणना हो और ऐसे आंकड़े प्राप्त हों, जिनके आधार पर जगहों को फिर से निश्चित करना आवश्यक हो, तो यह आगे के निर्वाचन के समय ही किया जाये। इसका उस समय की राज्य-परिषद् अथवा लोकसभा पर कोई प्रभाव न पड़ना चाहिये। अनुच्छेद 149 के उपखंड 4 में भी इसी के समान एक प्रावधान है। यह बात यहां पर छूट गई है और मैंने यहां रखने का प्रयास किया है, ताकि यह अनुच्छेद 149 की व्यवस्था के अनुरूप हो जाये। मुझे आशा है, यह सभा इस संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

***उपाध्यक्ष:** इसके बाद संशोधन संख्या 1451 आता है, जो श्री नन्दलाल के नाम से है। माननीय सदस्य सभा में उपस्थित नहीं हैं।

संशोधन संख्या 1452, जो मि. महबूब अली बेग के नाम से है, उपस्थित किया जा सकता है।

***श्री महबूब अली बेग साहिब** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के साथ निम्नलिखित नया खंड (10) जोड़ दिया जाये:

'(10) the election to the House of the People shall be in accordance with the system of proportional representation by means of a single transferable vote' (लोक सभा के लिये निर्वाचन एकल संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अनुसार होगा।)' "

श्रीमान्, कल राज्य-परिषद् के निर्वाचन के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त हमने स्वीकार किया था, उसी को मैं इस प्रसंग में भी प्रयोग में लाना चाहता हूं। श्रीमान्, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि कल सभा ने उस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया, जो इस निर्वाचन-प्रणाली में सन्निहित है। इस प्रणाली के सम्बन्ध में तथा यह सिद्ध करने के लिये कि यह निर्वाचन-प्रणाली अधिक जनतंत्रात्मक और वैज्ञानिक है, मैंने जो तर्क उपस्थित किये थे उन्हें मैं नहीं दोहराना चाहता। इस सभा के कुछ माननीय सदस्यों के भाषणों से, विशेषतया मेरे माननीय मित्र पं. कुंजरू के भाषण से, इस सभा पर यह प्रभाव पड़ा था कि राज्य-परिषद् के सम्बन्ध में निर्वाचक विधान-मंडल के सदस्य ही होंगे, जो संयुक्त निर्वाचन

[श्री महबूब अली बेग साहिब]

प्रणाली के आधार पर, न कि साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणाली के आधार पर, चुने जायेंगे। इस प्रकार यदि राज्य-परिषद् अथवा किसी अन्य परिषद् के निर्वाचन के सम्बन्ध में यह प्रणाली स्वीकार कर ली जाये, तो किसी भी साम्प्रदायिक दल के प्रवेश करने का आशंका नहीं रह जाती। उन्होंने बताया कि वे इस प्रणाली का इसी कारण समर्थन कर रहे हैं।

यदि मुझे उनके भाषण का अर्थ लगाने की आज्ञा हो, तो उनका आशय यह था कि यदि इस निर्वाचन-प्रणाली के अधीन यह सम्भावना होती कि साम्प्रदायिक दलों के लोग विधान-मंडल के लिये चुने जा सकते तो वे इसका समर्थन न करते। मेरा यह निवेदन है कि इस प्रणाली के अधीन किसी साम्प्रदायिक दल के प्रवेश करने की सम्भावना नहीं रह जाती और यदि ऐसे दल का कोई सदस्य निर्वाचित हो जाये, तो वह उसी प्रकार निर्वाचित होगा, जैसे बहुसंख्यक दल के मत से भिन्न मत रखने वाला कोई व्यक्ति निर्वाचित होता। यदि इसे आपत्ति-जनक न समझा जाये कि कुछ ऐसे लोग भी हो सकते हैं, जिनके विचार बहुसंख्यक दल के विचारों से भिन्न हों, तो वे इस प्रणाली के अधीन विधान-मंडलों में प्रवेश कर सकते हैं। मैं नहीं समझता कि कोई ऐसा कारण है जिससे कि किसी साम्प्रदायिक दल को विधान-मंडल में प्रवेश करने का अधिकार हो, पं. कुंजरू ने कहा था कि राज्य-परिषद् के लिये वे इस प्रणाली का समर्थन इसलिये कर रहे हैं कि विभिन्न विचारधाराओं के लोग निर्वाचित हो सकें, भले ही उनकी विचारधारा बहुसंख्यक दल की विचारधारा से भिन्न हो। उन्होंने कहा था कि अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली को इसी कारण एक सुन्दर प्रणाली कहा जा सकता है क्योंकि इसके अधीन ऐसे लोग भी विधान-मंडल में प्रवेश कर सकते हैं, जिनका मत बहुसंख्यक दल के मत से भिन्न हो।

इसलिये, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यदि इस निर्वाचन-प्रणाली को दोषयुक्त कहा जा सकता है, तो यह संसदात्मक जनतंत्रात्मक प्रणाली ही के कारण कहा जा सकता है। सारा दोष राजनैतिक दलबन्दी का है, अन्यथा इस प्रणाली में कोई दोष नहीं है। पहले एक अवसर पर मैंने यह कहा था कि इस

दलबन्दी की प्रणाली के कारण, इस संसदात्मक जनतंत्र के कारण कहीं यह भी होता है कि एक ही दल के सदस्य निर्वाचित हो जाते हैं और वे दूसरे दल पर प्रभुत्व रखने का प्रयास करते हैं और अल्पसंख्यक दलों के सदस्यों के लिये निर्वाचित होना असम्भव कर देते हैं और सभी प्रकार का दमन करते हैं। श्रीमान्, इसी कारण मैंने यह कहा था कि संसदात्मक जनतंत्र पर आधृत इस प्रकार का शासन वांछनीय नहीं है। चाहे वह जैसा भी हो, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इस प्रणाली के अधीन, इस एकल संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अधीन, ऐसे लोगों और दलों का भी विधान-मंडलों में प्रतिनिधित्व हो सकेगा, जिनका मत बहुसंख्यक दल से भिन्न हो। जो बात राज्य-परिषद् के निर्वाचन के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। वही बात लोक सभा के निर्वाचन के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। यदि इस प्रणाली के अधीन लोगों के ऐसे दलों अथवा वर्गों को प्रतिनिधित्व प्राप्त करने का अवसर मिलता है, जिनका मत बहुसंख्यक दल के मत से भिन्न हो और इस प्रकार वे एक विपक्षी दल स्थापित कर सकते हैं, तो मैं यह पूछता हूं कि इससे भिन्न प्रणाली को स्वीकार ही क्यों किया जाये? क्या आप किसी ऐसे संसदात्मक जनतंत्र की कल्पना कर सकते हैं, जिसमें विपक्षी दल का कोई स्थान ही न हो? जब तक विपक्षी दल नहीं रहेगा, शासनारूढ़ दल के फासिस्ट दल हो जाने की सम्भावना बनी रहेगी। विपक्षी दल की ऐसी भावना तभी हो सकती है जब कि ऐसे लोगों को विधान-मंडल के लिये निर्वाचित होने का अवसर दिया जाये, जिनका मत बहुसंख्यक दल के मत से भिन्न हो। इसलिये, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि केवल इस प्रणाली के अधीन ही संसदात्मक जनतंत्र में एक प्रबल विरोधी दल की स्थापना हो सकती है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि प्रथम तो सिद्धान्ततः इसमें कोई दोष नहीं है और जैसा कि मैं कह चुका हूं यह अधिक वैज्ञानिक और जनतंत्रात्मक है और फिर इससे ऐसे वर्गों के लोगों को भी निर्वाचित होने का अवसर मिलता है, जिनका मत बहुसंख्यक दल के मत से भिन्न हो और वे एक विपक्षी दल का संगठन कर सकते हैं। अन्यथा शासनारूढ़ दल एक फासिस्ट दल हो जायेगा। इसलिये, श्रीमान्, मैं यह सिफारिश करता हूं कि लोक सभा के निर्वाचन के सम्बन्ध में भी इस प्रणाली को स्वीकार किया जाये।

श्रीमान्, मैं दूसरे वैकल्पिक संशोधन को उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** अब इस अनुच्छेद पर खंड 5 के अन्त तक सामान्य वादानुवाद हो सकता है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 67 के खंड (5) में लोक-सभा के लिये 500 प्रतिनिधि निश्चित किये गये हैं और उसमें यह भी कहा गया है कि इन प्रतिनिधियों को निर्वाचक सीधे-सीधे चुनेंगे तथा खंड (ख) में प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों का वर्णन है। इन दो उपधाराओं के सम्बन्ध में मैंने संशोधन उपस्थित किये थे और उनका यह आशय था कि अनुच्छेद 292 का उल्लेख न किया जाये और यह भी कि प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र सुसम्बद्ध क्षेत्र होने चाहिये और कोई विशेष निर्वाचन-क्षेत्र अथवा सुरक्षित निर्वाचन-क्षेत्र न होने चाहिये। वास्तव में इस खंड (5) में निर्वाचकों के लिये एक ही प्रणाली निश्चित की गई है और उसमें यह नहीं कहा गया है कि किस विशेष प्रणाली द्वारा उन्हें प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार होगा। मि. करीमुद्दीन ने इस आशय का एक संशोधन उपस्थित करने का प्रयास किया था कि प्रतिनिधित्व सामूहिक मतदान द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अनुसार हो, जिसका अर्थ मेरे मतानुसार यह है कि पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों की स्थापना हो जायेगी। मेरा यह प्रस्ताव है कि इन दो खंडों पर तथा अनुच्छेद 292 के अधीन जगहों को सुरक्षित रखने के प्रश्न पर और निर्वाचन सम्बन्धी अन्य अनुच्छेदों पर उस समय पूर्ण रूप से विचार-विमर्श हो जब कि हम उन अनुच्छेदों को उठायेंगे और इन पर इस समय पृथक् रूप से विचार-विमर्श न होना चाहिये, क्योंकि यदि हम अनुच्छेद 292 अथवा 293 में कुछ परिवर्तन करना चाहते हैं, तो उन्हें संशोधित करने अथवा स्वीकार करने का ठीक अवसर उस समय होगा जब कि हम इन अनुच्छेदों पर विचार-विमर्श करें। इसलिये मेरा नम्र निवेदन यह है कि खंड (5) के सम्बन्ध में हमें यह मान लेना चाहिये कि जब तक अनुच्छेद 292 और 293 पर विचार-विमर्श न हो जाये, हमारे लिये उन पर संशोधन उपस्थित करने और उन्हें अपनी इच्छानुसार परिवर्तित करने में कोई अवरोध न होगा। इसलिये मेरा यह प्रस्ताव है कि जगहों को सुरक्षित रखने, निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमायें निर्धारित करने और सीमा निर्धारित करने की प्रणाली पर विचार-विमर्श उस समय के लिये स्थगित किया जाये, जब कि हम अनुच्छेद 292 और 293 पर विचार करें।

अन्य विषयों के सम्बन्ध में भी मैं खंड 6 के सम्बन्ध में इस आशय का एक संशोधन उपस्थित करना चाहता था कि प्रौढ़ मताधिकार पर मतदान के अधिकार से वंचित करने के लिये निरक्षरता भी एक कारण समझा जाये। यदि कोई व्यक्ति निरक्षर हो तो उसे मतदान का अधिकार न देना चाहिये। वास्तव में इस संशोधन को उपस्थित करके मैं किन्हीं लोगों को मतदान के अधिकार से वंचित नहीं करना चाहता था, क्योंकि मैं प्रौढ़ मताधिकार के बहुत पक्ष में हूं। मैं केवल यह चाहता था कि चूंकि अगले दो वर्ष अथवा एक वर्ष तक निर्वाचन न होंगे, इसलिये उस समय में प्रत्येक निर्वाचक को अपने को शिक्षित बना लेना चाहिये और कम से कम लिखना-पढ़ना तो सीख ही लेना चाहिये। क्योंकि मेरी समझ से कोई भी व्यक्ति तीन महीने के अन्दर ही लिखना-पढ़ना सीख सकता है। यदि हम मताधिकार के प्रयोग पर साक्षरता का प्रतिबन्ध लगा दें तो इससे प्रौढ़ शिक्षा को बहुत प्रोत्साहन मिलेगा और निर्वाचक भी लिखने-पढ़ने का विशेष अभ्यास करेंगे। श्रीमान्, यदि हम इस पर विचार करें कि प्रौढ़ मताधिकार प्राप्त होने पर कितने अधिक निर्वाचक हो जायेंगे, तो हमारे सामने एक बृहत् प्रश्न उपस्थित हो जाता है। हिसाब लगाने पर मेरी समझ से लगभग बारह करोड़ निर्वाचक हो जायेंगे। तीस करोड़ की जनसंख्या को ध्यान में रखकर यह कोई गलत अनुमान नहीं है कि निर्वाचकों की संख्या बारह करोड़ हो जायेगी। यदि एक-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था रही और पांच सौ प्रतिनिधि चुने गये, तो इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में कम से कम 240,000 मतदाता होंगे। यदि बहु-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था की गई और एक निर्वाचन-क्षेत्र से 4 सदस्य चुने गये तो मतदाताओं की संख्या लगभग 960,000 होगी। अभी तक केन्द्रीय विधान-सभा के सामान्य निर्वाचनों में 8,000 से लेकर 40,000 तक मतदाता भाग लेते थे। इतनी अधिक संख्या हो जाने पर मेरी समझ में नहीं आता कि हम निर्वाचनों का प्रबन्ध किस प्रकार करेंगे। निर्वाचनों में इस समय की तरह एक या दो दिन नहीं लगेंगे, बल्कि मेरे विचार से एक महीना तक लग सकता है। निर्वाचन-स्थल भी बहुत बड़े होंगे। मेरे विचार से यह प्रश्न इतना बृहत् है कि हमें यह सन्देह होता है कि जिस प्रकार हम निर्वाचन करना चाहते हैं उस प्रकार वे हो भी सकेंगे अथवा नहीं। इतने अधिक निर्वाचक शिक्षित कैसे बनाये जायेंगे? निर्वाचनों को सफल बनाने के लिये आप इन निर्वाचकों को किस प्रकार

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

समझायेंगे? जब मेरे ध्यान में यह आता है कि बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों और सुरक्षित निर्वाचन-क्षेत्रों का भी प्रस्ताव उपस्थित किया गया है तो मुझे तो स्थिति और भी जटिल दिखाई देती है। मेरे विचार से इस समय दलित-वर्गों के किसी व्यक्ति को अथवा अन्य किसी व्यक्ति को लोग उसी के तालुके में जानते हैं और अन्य कई जिलों के लोग उसे नहीं जानते। यदि कई जिलों का एक निर्वाचन-क्षेत्र हुआ तो मेरी समझ में नहीं आता कि निर्वाचन की समुचित व्यवस्था किस प्रकार की जायेगी। निर्वाचकों को निर्वाचित व्यक्ति को जानने का कोई अवसर ही न मिलेगा। इसलिये इस कठिनाई को दूर करने के लिये मेरा यह सुझाव है कि पहले दस वर्ष के लिये यह मताधिकार साक्षर लोगों तक ही सीमित रखा जाये। इस प्रकार हम ऐसा कार्य करेंगे जो वास्तव में उपयोगी सिद्ध होगा, अन्यथा मेरे मत में यह निर्वाचन उपहासास्पद ही होंगे। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि यदि इस सभा को यह मत स्वीकार्य प्रतीत हो, तो हमें खंड (6) में साक्षरता का प्रतिबन्ध रख देना चाहिये।

इसी आशय की एक बात और मुझे खंड 5 के उपखंड (ग) के सम्बन्ध में कहनी है। उस अनुच्छेद में ये शब्द हैं—"अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना में निश्चित की गई जनसंख्या"। पिछली जनगणना के आधार पर जो आंकड़े एकत्रित किये गये हैं, वे बहुत कुछ गलत सिद्ध होंगे। पूर्वी पंजाब में लाखों लोग पश्चिमी पंजाब से आ गये हैं और वहां से बाहर भी चले गये हैं। यही स्थिति पश्चिमी बंगाल की भी है। यहां अब भी पूर्वी बंगाल से लोग आ रहे हैं। दिल्ली में भी बहुत से लोग आ बसे हैं। पिछली जनगणना के आंकड़े सही नहीं समझे जा सकते और यदि हम वर्तमान स्थिति पर विचार करें तो वे आंकड़े वास्तविकता से बहुत दूर पाये जायेंगे। इसलिये हमें किसी अन्य साधन को अपनाना होगा और ऐसे साधन का सुझाव अनुच्छेद 313 में किया गया है। मुझे इस सम्बन्ध में बहुत संदेह है कि निर्वाचकों की संख्या से हमें वास्तविक आंकड़े प्राप्त हो सकेंगे अथवा नहीं। निर्वाचकों की संख्या से जनसंख्या के आंकड़ों का हिसाब लगाना केवल अनुमान मात्र होगा और यह उन सिद्धान्तों के अनुरूप न होगा जो 5 से लेकर 8 तक के खंडों में वर्णित हैं। इसलिये मेरा नम्र निवेदन है कि पूर्वी पंजाब

और पश्चिमी बंगाल के सम्बन्ध में हमें उस समय तक सही आंकड़े प्राप्त नहीं हो सकते, अब तक कि जनगणना न की जाये। इसमें बहुत समय लगेगा। यदि सन् 1952 अथवा सन् 1951 में निर्वाचन किये गये तो स्थिति का निराकरण हो सकता है अन्यथा इन प्रावधानों को प्रयोग में लाने के पूर्व जनगणना करनी होगी, वरना "अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना में निश्चित की गई जनसंख्या" शब्दों का कोई भी अर्थ न होगा। यदि इन शब्दों को अक्षरशः सत्य माना जाये और इनमें कोई परिवर्तन न किया जाये तो इसका अर्थ यह होगा कि पूर्वी पंजाब से जो 50 लाख मुसलमान चले गये हैं, उनके लिये स्थानीय विधान-मंडल में 50 जगहें सुरक्षित रखनी होंगी, भले ही वहां इस समय मुसलमानों की जनसंख्या लगभग 2 लाख ही क्यों न हो। यह वास्तविक कठिनाइयां हैं और इन्हें दूर करना आवश्यक है। मेरी यह धारणा है कि जब तक हम इन कठिनाइयों को दूर न करेंगे, हम सच्चे अर्थ में निर्वाचन न कर पायेंगे।

अनुच्छेद 292 के सम्बन्ध में मुझे केवल एक शब्द और कहना है। खंड (5) में अनुच्छेद 292 का संकेत अनावश्यक हैं क्योंकि अनुच्छेद 292 में प्रत्यक्ष निर्वाचनों, निर्वाचन-क्षेत्रों और सुरक्षित निर्वाचन-क्षेत्रों का वर्णन है। वर्तमान स्थिति यह है कि प्रतिनिधि अव्यवहित निर्वाचनों द्वारा चुने जायेंगे। अनुच्देद 292 की ओर संकेत बिल्कुल अनावश्यक है। यदि इसे रहने भी दिया जाये तो मैं आपकी अनुमति से इसे दोहराना चाहता हूं कि इस स्थान पर अनुच्छेद 292 की ओर संकेत से इस सभा के लिये अनुच्छेद 292 को संशोधित करने में कोई प्रतिबन्ध न होगा। मैं इस सभा से यह छिपाना नहीं चाहता कि मेरी इच्छा यह है कि किसी भी सम्प्रदाय के लिये निर्वाचन-क्षेत्र सुरक्षित न रखे जायें। मैं केवल यह चाहता हूं कि अनुसूचित वर्गों के लिये प्रतिनिधित्व सुरक्षित रखा जाये और यह अनुच्छेद 293 के आधार पर किया जाये। मैं जगहें सुरक्षित रखने के पक्ष में नहीं हूं क्योंकि यदि आप पूरे प्रश्न पर विचार करेंगे और बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों को भी ध्यान में रखेंगे तो आपको सब निर्वाचन वास्तविकता से बहुत दूर प्रतीत होंगे। हमारे सामने यह कठिनाई है कि हम यह समझ नहीं पाये हैं कि इन निर्वाचन-क्षेत्रों का स्वरूप क्या होगा। जब यह विषय सभा के सम्मुख ठोस रूप में रखा जायेगा, तो मुझे पूरा विश्वास है कि वह जगहों को सुरक्षित रखने के प्रश्न को उठाना भी न चाहेगी।

श्रीमान्, इन शब्दों के साथ मैं अनुच्छेद 67 का समर्थन करता हूं।

**श्री देशबन्धु गुप्त ( दिल्ली ) :** जनाब वायस प्रेजिडेंट साहब, मैं हाउस की तवज्जह आर्टिकिल 67 के पार्ट बी. और सी. की तरफ खासतौर पर मबजूल कराना चाहता हूं। मेरे लायक दोस्त पंडित ठाकुरदास भार्गव ने इस तरफ अभी-अभी हाउस की तवज्जह खींची है और बतलाया कि अगर हम पिछली मर्दुमशुमारी के आदादशुमार को अपने सामने रख कर फैसला करें और यह फैसला करें कि इसके कितने नुमायंदे होने चाहिएं तो बिलखसूस पंजाब, वेस्ट बंगाल और देहली में इसका असर बहुत गलत होगा। मैं बतलाना चाहता हूं कि जहां तक ईस्ट पंजाब का ताल्लुक है गालिबन जितनी आबादी ईस्ट पंजाब से पाकिस्तान की तरफ गई है उससे शायद कुछ ही कम इधर आई है। इसलिए ईस्ट पंजाब की आबादी गैर जरूरी तौर पर शायद नहीं बढ़ी। लेकिन जहां तक देहली का ताल्लुक है मैं समझता हूं कि यह एक एडमिटेड फैक्ट है कि देहली उन शहरों में से है जिनकी आबादी रिफ्यूजीज की वजह से बहुत ज्यादा बढ़ गई है। पिछली सैन्सस के मुताबिक देहली के सारे प्राविन्स की आबादी 9 लाख के करीब थी और इस वक्त अन्दाज किया जाता है कि देहली की आबादी 19 लाख हो गई है। इसलिए यह बहुत अनफेयर होगा अगर देहली के लिए रिप्रेजेंटेशन का मेयार पिछली सैन्सस को बनाया जाये।

इसलिए जनाब सदर, मैं चाहता हूं कि डॉक्टर अम्बेडकर और दूसरे साहिबान इस बात को मलहूज रखें। जहां तक देहली का ताल्लुक है या और इस तरह के शहर हैं जिनकी आबादी कुदरती वजू की बिना पर नहीं बल्कि इस पार्टिशन ऑफ इंडिया की वजह से गैर जरूरी तौर पर बहुत ज्यादा बढ़ गई है उनके लिए मैं समझता हूं कि सीट्स का मेयार कायम करते हुए इस तरह की आबादी लिहाज रखा जायेगा। अगर क्लाज (सी) में ईक्वल पापुलेशन के बजाय ईक्वल नम्बर ऑफ वोटर्स हो जाता तो मैं समझता हूं कि किसी को शिकायत नहीं होती। लेकिन ऐसा इसमें नहीं है। इसलिए मैं चाहता हूं कि इस बात का ख्याल रखा जाये और अडेप्टेशन क्लाज म—जैसा कि सेक्शन 313 है या इसके मातहत या किसी और तरीके पर—इस तरह का ऐश्यूरेंस आना चाहिए। वरना देहली के साथ और उन शहरों के साथ जिन्होंने कि हमारे पुरुषार्थी भाइयों को बसाया है जो कि

उधर से उजड़ कर आये हैं, बहुत बेइन्साफी होगी और उनका ड्यू रिप्रेजेन्टेशन हाउस में नहीं हो सकेगा।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 67 के खंड (5) के सम्बन्ध में पं. ठाकुरदास भार्गव ने उन कठिनाइयों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है जो यथोचित रूप से निर्वाचन करते समय उपस्थित होंगी। प्रस्ताव यह है कि 5 से लेकर साढ़े सात लाख लोगों का एक प्रतिनिधि होगा और मोटी तौर पर हम यह कह सकते हैं कि प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में लगभग तीन लाख मतदाता होंगे। किन्तु यदि निर्वाचन यथोचित रूप से किया जायेगा और उन दुराचारों को न होने दिया जायेगा, जोकि ऐसे बड़े निर्वाचन के समय होते हैं, जिसका बहुत से मतदाताओं से सम्बन्ध रहता है, तो कोई ऐसा साधन अपनाना होगा जिससे कि मतदाता पहचाने जा सकें और झूठे ढंग से मतदान न हो सके। श्रीमान्, पिछले दिनों में जो निर्वाचन हमें करने पड़े हैं उनसे हमें यह अनुभव हुआ है कि जब बहुत से मतदाता किसी निर्वाचन में भाग लेते हैं तो निर्वाचन के अधिकारियों के मतदाताओं से परिचित न होने के कारण दुराचार की सम्भावना बढ़ जाती है। इसलिये इस प्रकार के निर्वाचनों के सम्बन्ध में लोगों को पहचानने का कोई साधन अपनाना चाहिये।

उन विभिन्न संशोधनों के सम्बन्ध में जो बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों में और सामूहिक मतदान के सम्बन्ध में उपस्थित किये गये हैं, पं. ठाकुरदास भार्गव ने यह भी स्पष्ट किया है कि इस प्रणाली को प्रयोग में लाना बहुत ही गलत होगा क्योंकि निर्वाचन-क्षेत्र बहुत बड़े होंगे और यदि कई जगहें होंगी तो उम्मीदवार की कठिनाइयों की केवल कल्पना ही की जा सकती है, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। यदि बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था की गई तो कोई प्रतिष्ठित से प्रतिष्ठित व्यक्ति भी अविरोध निर्वाचित होने की आशा नहीं कर सकता।

यदि किसी निर्वाचन-क्षेत्र में एक से अधिक जगहें होंगी, तो उम्मीदवारों की संख्या अधिक होगी। और उनमें से प्रत्येक, चाहे वह प्रतिष्ठित हो अथवा नहीं, चुनाव लड़ कर ही निर्वाचित होगा और यदि उस निर्वाचन-क्षेत्र में चार जगहें होगीं जो लगभग बारह से तेरह लाख तक मतदाता होंगे और इससे अधिक जगहें हुईं तो मतदाताओं की संख्या भी अधिक होगी और उम्मीदवार को भी अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

[श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका]

इसलिये, श्रीमान्, बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों अथवा बहुमतदान के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं, उनका विरोध किया जाना चाहिये और उन्हें अस्वीकार कर देना चाहिये।

इन शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव का, उसके मूल रूप में, समर्थन करता हूं।

***उपाध्यक्षः** सरदार भूपेन्द्रसिंह मान! हमारे पास बहुत कम समय है। बहुत से माननीय सदस्य बोलना चाहते हैं और मैं पूर्वी पंजाब के सदस्यों को विशेष सुविधा दे रहा हूं, क्योंकि इस विषय के सम्बन्ध में उनकी भावनायें प्रबल हैं और मुझे आशा है कि यह सभा इस रियायत का कारण समझेगी। आप कृपा करके अपना भाषण कम से कम समय में समाप्त कर दीजियेगा।

सरदार भूपेन्द्रसिंह मान!

**सरदार भूपेन्द्रसिंह मान** (पूर्वी पंजाब : सिख): साहिबे सदर, इस आर्टिकिल पर बहस करते हुए दो चीजें ज्यादा उभर रही हैं जिनके मुताल्लिक हम बतौर अक्लियत के खासतौर पर महसूस करते हैं। आपने अपनी पिछली बैठक में तकरीबन खुले तौर पर फैसला कर दिया था कि जहां तक माइनोरिटीज का ताल्लुक है उन्हें रिजर्वेशन ऑफ सीट्स उसूली तौर पर दे दिया गया था और इस चीज को मानते हुए आपने इन्हें दावत दी थी कि जो माइनोरिटीज इस चीज को छोड़ना चाहें वह खुशी के साथ इसको छोड़ दें। लेकिन मैं महसूस करता हूं कि इस सवाल को नये सिरे से शुरू करते हुए इसमें दावत की कमी की गई है। बल्कि उसी चीज को छीना जा रहा है। मैं नहीं समझता कि अभी इतनी कौन सी जल्दी थी कि इसको फौरन बदला जाये और वह हक जो अपने हमें पिछली बैठकों में दिया था, हमसे छीना जाये। मैं इस चीज को तो समझ सकता हूं कि जब दस साल का अरसा गुजर जाये और माइनोरिटीज यह महसूस करें कि अक्सरियत ने उनका ऐतमाद पूरे तौर पर हासिल कर लिया है, तो वह खुद इस हक को छोड़ दें।

***उपाध्यक्षः** आप पृथक् प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में बोल रहे हैं और इसका विचाराधीन खण्ड से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं आपसे अनुरोध

करता हूं कि आप अपने वक्तव्य विचाराधीन खंड के विषय तक ही सीमित रखें।

यह मेरा अन्तिम निर्णय है।

**सरदार भूपेन्द्रसिंह मानः** साहिबे सदर, मैं चाहता हूं कि जब यह कांस्टीट्यूएंसी मुरत्तब हो तो प्लूरल कांस्टीट्यूएंसी मुरत्तब हों और जो हक आप माइनोरिटीज को देते हैं, वे तभी कायम रह सकते हैं जब कि आप हलके बनावें तो वह इस तौर पर हों कि माइनोरिटीज को अभी चूंकि पूरा ऐतमाद हासिल नहीं हो सका है इसलिये वह अपने आपको रिप्रेजेन्ट कर सकें।

दूसरी चीज यह है कि पंडित भार्गव साहब यह कोशिश कर रहे हैं कि कांस्टीट्यूएंसी इस शक्ल से हों कि जो देहाती हलके हों वह शहरी हलकों के साथ मिला दिये जायें। लेकिन अभी देहाती हलकों में तालीम का मेयार इतना कम है कि जब कभी भी शहर के मुकाबले में आवेंगे तो वह किसी हालत में जीत नहीं सकते। इसके अलावा प्रोड्यूसर और कंज्यूमर की पुरानी चीज है। हम जो पैदा करते हैं, वह मंडियों में जाकर बेचते हैं। अब हमारे खिलाफ पच्चीस हजार के वोट होंगे तो मैं समझता हूं कि कभी भी देहात वाले शहर वालों के और मंडियों वालों के मुकाबले अपने नुमायन्दे नहीं भेज सकेंगे। तो ऐसी हालत में क्या होगा? यह होगा कि जो पैदा करने वाले हैं और जिनमें तालिमी मेयार कम है और जिनके छोटे-छोटे दूरदराज गांव हैं वह अपने नुमायन्दे चुनाव में नहीं भेज पावेंगे और चीज यह है कि मंडियां हमेशा सेंटर ऑफ ऐक्टीविटी रहेंगी और देहात सियासी तौर पर मुल्क से कट जायेंगे। जो बीस-पच्चीस हजार वोट होंगे वह हमेशा इस तरह से चाहेंगे कि सियासी तौर पर देहाती पिछड़ जावें। तो हम पंजाब में यह महसूस करते हैं कि जब कि बुनियादी तौर पर यह इख्तिलाफ प्रोड्यूसर और कंज्यूमर का है और जब तक यह कायम रहता है तब तक इनका हलका अलग हो। इसलिये हम चाहते हैं कि डिलिमिटिंग कमेटी पर भार्गव साहब की तकरीर का कुछ भी असर न हो और यह बिल्कुल फर्क बरकरार रखा जाये कि जो देहाती हलके हों वह अलहदा रखे जायें और जो शहरी हलके हैं वह अलग रहें।

[सरदार भूपेन्द्रसिंह मान]

इसके बाद ईस्ट पंजाब में बहुत सी फ्लूइड पापुलेशन है। कुछ देहली में आ गई है और कुछ देहली से बाहर वापस जा रही है। फिर यह भी पता नहीं है कि कितनी पंजाब में रह गई है और कितनी बाहर चली गई है। तो मैं समझता हूं कि लाजिमी तौर पर ईस्ट पंजाब की आबादी की गिनती होनी चाहिये। बगैर ठीक गिनती के मैं समझता हूं कि कुछ गलतफहमी फैल सकती है। तो मेरी यह राय है कि गिनती के लिये फौरन बन्दोबस्त होना चाहिए और देहाती और शहरी हलके अलहदा-अलहदा होने चाहियें और हलकों की बनावट प्लूरल हो।

***सरदार हुकमसिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): उपाध्यक्ष महोदय, हमने यह व्यवस्था की है कि इस विधान के अधीन अल्पसंख्यकों के लिए सुरक्षा का प्रबन्ध किया जाय। मेरा अर्थ जगह की सुरक्षा से है। वास्तव में हम अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा दो प्रकार कर सकते हैं। अभी तक अल्पसंख्यकों के लिये पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था रही है और उन्हें कुछ वजन भी दिया जाता रहा है। यह अब समाप्त हो चुके हैं क्योंकि हमने यह निर्णय किया है कि सिद्धान्त: और आधारत: यह एक गलत प्रणाली है और किसी अल्पसंख्यक को किसी प्रकार का वजन अथवा पृथक् निर्वाचन-क्षेत्र प्राप्त न होने चाहिये। जैसा कि मैं कह चुका हूं उनका हित साधन दो प्रकार किया जा सकता है। एक की सिफारिश अल्पसंख्यकों की समिति ने की है और वह यह है कि जगहें सुरक्षित रखी जानी चाहियें और इसका विधान के मसौदे के अनुच्छेद 292 से लेकर 299 तक में समावेश है। मैं पंडित ठाकुरदास भार्गव के इस विचार से सहमत हूं कि अच्छा यह होगा कि इन दोनों खण्डों पर एक साथ विचार किया जाये और अनुच्छेद 67 के इस भाग पर विचार-विमर्श उस समय किया जाये जब अनुच्छेद 292 उठाया जाये। सभा के सम्मुख इस समय मि. करीमुद्दीन और एक अन्य माननीय सदस्य के जो संशोधन हैं वे उन धाराओं में प्रावहित जगहों की सुरक्षा के विरोध में हैं अथवा उनके विकल्प हैं। श्रीमान्, मेरा यह मत है कि यदि पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों से घृणित और निन्दनीय साम्प्रदायिकता चिरस्थायी हुई है तो जगहों

की सुरक्षा से इससे कम हानि होने की आशंका नहीं है। (*वाह-वाह*) मेरे विचार से यह अल्पसंख्यकों के लिये ही अधिक हानिकर है और इससे उनके हितों की सुरक्षा नहीं होती। इसके विपरीत इससे बहुसंख्यकों का लाभ ही होगा। यदि आप तीस प्रतिशत जगहें अल्पसंख्यकों के लिये सुरक्षित रखते हैं तो अप्रत्यक्ष रूप से आप 70 प्रतिशत जगहें बहुसंख्यकों के लिये सुरक्षित रखते हैं। इसके अतिरिक्त आरक्षित जगहों के लिये चुनाव लड़ने की रियायत का भी कार्यरूप में दुरुपयोग किया जा सकता है। साथ ही सुरक्षा से—यद्यपि यह विषय इस समय सभा के सम्मुख उपस्थित नहीं है किन्तु चूंकि दोनों पर एक साथ विचार करना आवश्यक है, मैं सभा से प्रार्थना करता हूं कि वह मेरी बातें ध्यानपूर्वक सुनें—जगहों की सुरक्षा से हानि ही होगी और इससे एक घृणित वातावरण उत्पन्न हो जाएगा। जब अल्पसंख्यक यह देखेंगे कि उन्हीं के सम्प्रदाय के कुछ ऐसे सदस्य, जिन्हें वे फूटी आंख देखना नहीं चाहते, खड़े किये जा रहे हैं और उन्हें बहुसंख्यक सम्प्रदाय का समर्थन प्राप्त है तो इससे अवश्य ही पारस्परिक सम्बन्ध बिगड़ जायेंगे और हमारे उद्देश्य की किंचित्मात्र भी पूर्ति न होगी। इसके अतिरिक्त जगहों की सुरक्षा की इस व्यवस्था के अधीन बहुसंख्यक अल्पसंख्यकों में से अपनी पसंद के कुछ सदस्य चुन सकेंगे किन्तु कुछ सदस्य अल्पसंख्यकों द्वारा ही चुने जायेंगे। इस प्रकार दो वर्ग हो जायेंगे और अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के वर्गों के बीच ही अधिक फूट पड़ जायेगी।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** श्रीमान्, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। हम इस समय जगहों की सुरक्षा के प्रश्न पर विचार नहीं कर रहे हैं और इसलिये मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या यह बातें प्रासंगिक हैं?

***उपाध्यक्ष:** वे इस अर्थ में प्रासंगिक हैं कि माननीय सदस्य महोदय अनुपाती प्रतिनिधित्व का समर्थन कर रहे हैं। क्या यह ठीक है?

***सरदार हुकमसिंह:** जी हां।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** किन्तु यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है जिस पर हमें ध्यानपूर्वक विचार करना होगा और इसलिये विचार-विमर्श के लिये

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

अधिक समय देना होगा। मैं इस प्रश्न के इस अंग को सामने रखना चाहता था क्योंकि यह एक बहुत बड़ा प्रश्न है और.....

***उपाध्यक्ष:** अपनी सामान्य नीति के अनुसार मैं सरदार हुकुमसिंह को बोलने देता हूं और विचाराधीन-प्रणाली के लाभों को दर्शाने के लिये जगहों की सुरक्षा के प्रश्न की ओर संकेत करने देता हूं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** श्रीमान्, यह न समझा जाये कि मैं इस प्रकार के विचार-विमर्श को रोकना चाहता हूं। मैं केवल यह चाहता हूं कि.....

***उपाध्यक्ष:** क्या माननीय सदस्य महोदय अपनी जगह पर बैठ जायेंगे? हमें उदार होना चाहिये और बहुसंख्यक सम्प्रदाय के सदस्य होने के नाते हमें अल्पसंख्यकों के प्रति उदारता दिखानी चाहिये। (*वाह, वाह*) उस सम्प्रदाय ने उदारता दिखाई है और उस परम्परा को भंग न करना चाहिये।

सरदार हुकुमसिंह आप आगे कहिये।

***सरदार हुकमसिंह:** मैं इस सभा को तथा उपाध्यक्ष महोदय को धन्यवाद देता हूं यद्यपि इस समय मुझे किसी उदारता की आवश्यकता नहीं है। मैं इस पर और कुछ न कहूंगा।

श्रीमान्, इस सभा में कई सदस्यों ने यह तर्क उपस्थित किया है कि बहुसदस्य निर्वाचन क्षेत्रों में और सामूहिक मतदान की प्रणाली बहुत खर्चीली और अव्यावहारिक सिद्ध होगी। मेरा कहना यह है कि यदि पृथक् निर्वाचन-क्षेत्र घृणित हैं और जगहों की सुरक्षा आपत्तिजनक है तो किसी ऐसे साधन को अपनाना होगा जिससे कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा हो सके। संशोधन में जिस साधन का सुझाव रखा गया है केवल उसी पर विचार किया जा सकता है। यदि वह बोझल और खर्चीला है जो हमें उसके दोषों को उन जनतंत्रात्मक सिद्धान्तों के अनुसार दूर करना होगा जिनका कि हम अनुसरण करते आये हैं। मेरा यह

निवेदन है कि यही एक ऐसी प्रणाली है कि जिससे हम अल्पसंख्यकों को भी संतुष्ट कर सकते हैं और अपने सिद्धान्तों पर भी अटल रह सकते हैं।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय.....

***उपाध्यक्ष:** मैं माननीय सदस्य महोदय से प्रार्थना करता हूं कि वे कम से कम समय लें। बहुत से सदस्य बोलना चाहते हैं और मैं अधिक से अधिक लोगों को बोलने का अवसर देना चाहता हूं।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले:** श्रीमान्, अनुच्छेद 67 का समर्थन करते हुए मैं यह कह सकता हूं कि मैं उपखंड (6) का विशेष रूप से स्वागत करता हूं क्योंकि इसमें प्रौढ़ मताधिकार की व्यवस्था है। अनुसूचित जातियों की ओर से बोलते हुए मैं यह कह सकता हूं कि इस समय, जबकि हमने इस देश के लिये स्वतंत्रता प्राप्त की है, इस प्रकार के निर्वाचन की बहुत आवश्यकता है। पूना के समझौते के अनुसार अनुसूचित जातियों को दो प्रकार के चुनाव स्वीकार करने पड़े थे अर्थात् प्रारम्भिक चुनाव और सामान्य चुनाव। मैं यह जानता हूं कि इससे उम्मीदवारों को वास्तव में बहुत असुविधा का सामना करना पड़ा है।

श्रीमान्, इस सभा के एक सदस्य महोदय ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया है कि सामूहिक मतदान की प्रणाली स्वीकार कर ली जाए। मेरी यह धारणा है कि वर्तमान परिस्थिति में सामूहिक मतदान की यह प्रणाली बहुत खतरनाक सिद्ध होगी क्योंकि सम्प्रदायों का निर्वाचकों के मुख्य समूह से सम्बन्ध-विच्छेद हो जायेगा। इसलिये मेरे विचार से सामूहिक मतदान की प्रणाली को किसी कारण भी प्रोत्साहित न करना चाहिये। मतदान की वितरणशील प्रणाली से विभिन्न सम्प्रदाय एक दूसरे से निकट सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे और अपनी स्वतंत्रता को बनाये रखने में उन्होंने जो प्रयत्न किये हैं वे सफल हो सकेंगे।

इस अनुच्छेद पर बोलते हुये एक सदस्य महोदय ने यह कहा था कि अल्पसंख्यकों के लिये जगहें सुरक्षित रखने की व्यवस्था समाप्त कर देनी चाहिये और साथ ही उन्होंने उदारता से यह भी कहा था कि जहां तक अनुसूचित जातियों का सम्बन्ध है इस व्यवस्था में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाना चाहिये। श्रीमान्, पं. भार्गव ने जो वक्तव्य दिया है, उसका मैं स्वागत करता हूं। इस

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

सर्वसत्ताधारी सभा में अल्पसंख्यकों के लिये जगहें सुरक्षित रखने के लिये और उनके हितों की रक्षा करने के प्रश्न पर विचार हो चुका है और हमने कुछ निर्णय किये हैं। यदि विचार यह हो कि इस विषय को फिर उठाया जाये तो इसके लिये उचित अवसर उस समय होगा जब कि हम अनुच्छेद 292 और 293 पर विचार करेंगे। चाहे जो कुछ भी किया जाये, मेरी यह धारणा है और इस सर्वसत्ताधारी सभा में अनुसूचित जातियों के प्रत्येक सदस्य की यही धारणा है, कि इस सम्प्रदाय को जो सुरक्षा प्रदान की गई है, उसमें हस्तक्षेप न किया जाना चाहिये। श्रीमान्, इस देश का दौरा करते समय आपने स्वयं देखा होगा कि हरिजन सम्प्रदाय किन अयोग्यताओं का शिकार है। अल्पसंख्यक सम्बन्धी रिपोर्ट में इन बातों पर विचार किया गया है और इस सभा में उस रिपोर्ट पर विचार करके अल्पसंख्यक सम्प्रदायों को कुछ सुरक्षा प्रदान करने का निश्चय किया है। इस स्थिति में सभा का अधिक समय न लेकर मैं केवल इतना कह कर समाप्त करना चाहता हूं कि अनुसूचित जातियों को और वनजातियों को जो सुरक्षा प्रदान की गई है उसमें हस्तक्षेप न किया जाना चाहिये। जैसा कि मैं कह चुका हूं, जब हम अनुच्छेद 292 और 293 को उठायेंगे, उस समय हम उन विभिन्न प्रश्नों पर विस्तृत रूप से विचार-विमर्श कर सकते हैं, जो अल्पसंख्यकों की रक्षा के सम्बन्ध में उठाये जायें।

***उपाध्यक्ष:** अब श्री खांडेकर सभा के सामने बोल सकते हैं। मैं आशा करता हूं कि वे अपने भाषण को विचाराधीन विषय तक ही सीमित रखेंगे और कम से कम समय लेंगे। इस प्रश्न पर बहुसंख्यक सम्प्रदाय के धैर्य की एक सीमा है।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): मेरे मित्र कहते हैं कि उनका धैर्य असीम है।

***उपाध्यक्ष:** वह बात केवल श्री खांडेकर के लिये कही गई थी।

**श्री एच.जे. खांडेकर** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्री सभापति महोदय, मैं अपना विचार प्रकट करने के लिये खड़ा हुआ हूं। इस आर्टिकल 67 के पांचवें क्लाज को जब हम पढ़ते हैं, तब वह आर्टिकल 292 और आर्टिकल 293 का भी उसमें रेफरेंस दिया गया है। आर्टिकल 292 में माइनोरिटीज

कम्युनिटीज को रिजर्वेशन देने के बारे में कहा गया है और मैं खुद शिड्यूल्ड कास्ट का होने के कारण मुझे बहुत आनन्द है कि इस हाउस ने उस आर्टिकल को पहले वक्त पास कर लिया है। इस आर्टिकल के पास करने के पहले माइनोरिटीज सब कमेटी ने भी अल्पसंख्यकों के लिए सुरक्षित जगह देने की सिफारिश इस हाउस से की है। मैं उस अल्पसंख्यक जाति से आता हूं जिसके बारे में कुछ ज्यादा कहने की जरूरत नहीं है। शिड्यूल्ड कास्ट एक ऐसा तबका है इस देश के अन्दर जिस तबके को हजारों वर्ष से दूसरी जातियों ने दबा कर रखा है और न तो उन्हें सामाजिक अधिकार मिले हुए हैं और न राजनीतिक अधिकार मिले हुए हैं।

सभापति जी, मैं आपको याद दिलाऊं कि सन् 1919 के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया कानून के मुताबिक इस समाज को नामिनेशन के जरिए प्रान्तिक धारा सभाओं में कुछ जगहें दी गई थीं। जब राउन्ड टेबिल कान्फ्रेंस हुई, राउन्ड टेबिल कान्फ्रेंस में हमारे जो प्रतिनिधि हाजिर थे उन्होंने इस समाज के लिये सुरक्षित जगह की मांग की और अपनी संख्या के अनुसार मांग की। परन्तु हमारे समाज का यह दुर्भाग्य है कि जब मैकडानल्ड साहब ने अपना एवार्ड जाहिर किया तो हम लोगों की, जिनकी तादाद इस देश के अन्दर साढ़े सात करोड़ थी, उनको 1580 जगहों में से सिर्फ 72 जगहें दी गई थीं। यानी इस जाति को उसकी संख्या के अनुसार जितनी जगहें चाहिए थीं, उससे कई गुना कम। मैकडानल्ड एवार्ड होने के बाद पूज्य बापू ने यरवदा जेल में उपवास किया और जब कि पूना पैक्ट पास हुआ। पूना पैक्ट के अनुसार उस जाति को इस देश के प्राविंशियल लेजिस्लेचर में 1580 जगहों में से 151 जगहें दी गईं, यानी दुगुनी जगहें दी गईं। इसलिए मैं अपनी कम्युनिटी की ओर से महात्मा जी को धन्यवाद देता हूं। परन्तु सो भी जगहें हमारी जनसंख्या के अनुसार नहीं थीं। और जैसा कि मेरे मित्र श्री मुनिस्वामी पिल्लई ने अभी बतलाया कि हम लोगों को पूना पैक्ट के अनुसार दो चुनाव लड़ने पड़ते थे। एक तो पहला चुनाव पेनेल जो हम अपने आपस में लड़ा करते थे और बाद में हम दूसरी जातियों के साथ एक जनरल चुनाव को लड़ते थे, तब हमारे लिए डिस्ट्रिब्यूटिव सिस्टम ऑफ वोट्स नहीं था। क्यूमूलेटिव सिस्टम था और जिसका कि अमेंडमेंट यहां इस क्लाज में मेरे मित्र काजी सैयद करीमुद्दीन ने दिया है और जिसका कि नम्बर 1415 है। यह अमेंडमेंट अगर पास होता है तो अब चुनाव होगा और जिस क्षेत्र में क्यूमूलेटिव सिस्टम के जरिये से वोट दिये जायेंगे। इसका मतलब यह है कि अगर दो जगहें हैं—एक रिजर्व और

[श्री एच.जे. खांडेकर]

एक जनरल—और एक वोटर को दो चिट्ठियां मिलती हैं तो क्यूमूलेटिव सिस्टम के अनुसार वह अपनी दोनों चिट्ठियां चाहे एक ही केंडिडेट की पेटी में डाल सकता है या दो पेटियों में डिस्ट्रिब्यूट कर सकता है। और ऐसे वक्त किसी भी जाति का मतदाता अपने ही जाति के केंडिडेट की पेटी में वोट डालेगा दूसरी जाति के नहीं और इस प्रकार जातिवाद का झगड़ा चालू ही रहेगा। हमें जातिवाद जल्दी से जल्दी मिटाना है। और इसलिए मैं इस अमेंटमेंट का विरोध करता हूं। इसका कारण यह है कि मुझे हरिजन होने के कारण और क्यूमूलेटिव सिस्टम के अनुसार हमारा चुनाव होने के कारण अनुभव है और इसके पूरे परिणाम भी मुझे याद हैं। हमारी इस असेम्बली में माइनोरिटीज सब-कमेटी और एडवाइजरी सब-कमेटी में सेपेरेट इलेक्टोरेट के बड़े भारी पुरस्कर्त्ता खास कर डॉ. अम्बेडकर साहब ने सेपेरेट इलेक्टोरेट को छोड़ कर ज्वाइंट इलेक्टोरेट की तरफ वोट दिया और जातिवाद के झगड़े को मिटाया। इस कारण मैं उन्हें इसके लिए धन्यवाद देता हूं। ऐसा होते हुए भी जब यह अमेंडमेंट काजी करीमुद्दीन साहब लाये, तो उसका मतलब सीधा-सादा यह निकलता है कि अब उनको इनडाइरेक्टली सेपेरेट इलेक्टोरेट चाहिये। एक हाथ से हम सेपेरेट इलेक्टोरेट को छोड़ते हैं तो क्यूमूलेटिव सिस्टम के जरिये से हम उसको दूसरे हाथों से जारी रखते हैं। अगर यह अमेंडमेंट पास करते हैं तो इसका मतलब साफ है कि एक जाति के लोग क्यूमूलेटिव सिस्टम होने के कारण दूसरी किसी भी जाति के आदमी को वोट नहीं देंगे। इसका मतलब यह है कि सेपेरेट इलेक्टोरेट इनडाइरेक्टली जारी रहता है और मैं इस कारण से काजी साहब के अमेंडमेंट का विरोध करता हूं।

इसके साथ दूसरी बात मैं डॉक्टर अम्बेडकर साहब के ध्यान में लाना चाहता हूं और इस बात पर वह विचार करेंगे कि इस सेक्शन में सेंशस के बारे में लिखा हुआ है। सब-क्लाज (5) (सी) में तो अभी दो चार दिन पहले इस असेम्बली के सामने सवाल उपस्थित था और वह पास हो गया तो इस जगह पर भी वह सेंशस शब्द है। अगर इसमें लेटेस्ट सेंशस रखें तो ज्यादा अच्छी बात होगी। और मैं इस चीज को क्यों कहता हूं? इसका साफ कारण यह है कि अभी चुनाव जो होगा। आर्टिकल 292 के मुताबिक, उसमें माइनोरिटीज के लोगों को रिजर्वेशन से कुछ सीट्स दी जाने वाली हैं और प्रोविंसियल एसेम्बलीज में एक लाख के ऊपर उन्हें एक जगह मिलेगी और सेंट्रल असेम्बली में दस लाख आदमियों पर एक जगह मिलेगी। मैं बड़े दु:ख के साथ सभापति जी, आपके सामने कहना

चाहता हूं कि सन् 1941 का जो सेंशस लिया गया है, उसमें हमारा बिल्कुल विश्वास नहीं है, क्योंकि हरिजनों की जो तादाद उसमें दिखाई गई है वह बहुत गलत है और इसलिए जब तक कि नया सेंशस नहीं लिया जाता और हरिजनों की तादाद नये सेंशस के मुताबिक निश्चित नहीं की जाती है, तब तक हम लोगों को ठीक-ठीक जगह मिलेगी, इसका मुझे बिल्कुल विश्वास नहीं है।

अगर सभापति जी, मैं आपके सामने कहूं कि हाउस में हमारी संख्या के अनुसार करीबन साठ आदमी आने वाले थे। हमारी संख्या पार्टीशन के पहले छः करोड़ थी और छः करोड़ संख्या होने के कारण हमारे साठ प्रतिनिधि आने वाले थे। लेकिन मुझे इस हाउस के सामने दुःख के साथ कहना पड़ता है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट का एनाउन्समेंट होने पर और कांग्रेस ने इस चीज को निश्चित करने के बाद कि हरिजनों को भी उनकी संख्या के अनुसार लेना चाहिये सिर्फ 27 हरिजन सदस्य यहां आये और इसका मुझे बड़ा दुःख है। हमारी संख्या जितनी निश्चित हो जाये, चाहे हमारी संख्या दो करोड़ क्यों न हो, हम दो करोड़ के मुताबिक अपने प्रतिनिधि भेजेंगे। परन्तु सेंशस अवश्य होना चाहिए और बाद में चुनाव होना चाहिए। मगर दो करोड़ हो नहीं सकते। इस जाति की संख्या आज भी हिन्दुस्तान के टुकड़े होने के बाद कम से कम छः करोड़ है। और जब छः करोड़ है, यह तो मैं उनके फिगर्स न लेते हुए कहता हूं, लेकिन अगर आप फिगर्स लें और बाद में चुनाव करें और बाद में इस जाति के लिए रिजर्वेशन ऑफ सीट्स दें, एक लाख पर एक सीट दें, तो मैं आपसे कहूंगा कि इस जाति की संख्या आज भी सात करोड़ से कम नहीं है और इसका मतलब यह है कि आप देखेंगे कि ज्यादा बच्चे उस जाति के पैदा होते हैं, जो गरीब हैं। हमारे पास पैसा नहीं है, विद्या नहीं है, कुछ नहीं है, मगर बच्चे पैदा करने की ताकत हम में ज्यादा है। और मैं आपसे कहता हूं कि हम इस कौम के बच्चे आज भी सात करोड़ से कम हिन्दुस्तान में नहीं हो सकते। इसलिए सेंशस की जरूरत है, सेंशस आपको लेना चाहिए।

इन शब्दों के साथ सभापति जी, मैं अपील करूंगा डॉक्टर अम्बेडकर के सामने कि वह जिस वक्त इसका जवाब देंगे वह यह जो 'प्रिसीडिंग सेंशस' शब्द है उसके बारे में खुलासा करेंगे। जब तक सेंशस फिर से नहीं लिया जाता तब तक न रिजर्वेशन ऑफ सीट्स किसी के लिये मददगार होती है न चुनाव होता

[श्री एच.जे. खांडेकर]

है। यह मैं मानूंगा कि अगर सेंशस लिया जाये तो चुनाव कुछ लम्बा जा सकता है। जाना जरूरी तो नहीं है लेकिन अगर गया तो आपको इसकी परवाह नहीं करनी चाहिये। जब कि इस देश की हर जाति के आदमी कहते हैं कि हरिजनों का उद्धार होना चाहिये, यह चीज हर आदमी के मुंह से निकलती है तो वह मुंह से ही न निकलनी चाहिए बल्कि दिल की बात होनी चाहिये। अगर इसके लिये एक साल तक यह चुनाव बढ़ गया तो हमें इसकी परवाह न करना चाहिये।

इन शब्दों के साथ मैं इस आर्टिकिल का समर्थन करता हूं और काजी करीमुद्दीन साहब का जो अमेंडमेंट है, उसका तीव्र विरोध करता हूं।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करने के लिए उपस्थित हुआ हूं और ऐसा करते हुए मैं इस सभा के सम्मुख कुछ बातें रखना आवश्यक समझता हूं। श्रीमान्, मेरे विचार से अनुच्छेद 67 और 149 पर एक साथ विचार-विमर्श होना चाहिए था। क्योंकि यह ऐक दूसरे से सम्बन्धित हैं और एक दूसरे के समवर्त्ती तथा अनुवर्त्ती अनुच्छेद हैं। इस दशा में मेरी यह धारणा है कि यदि इन दोनों अनुच्छेदों पर एक साथ विचार-विमर्श होता तो इस सभा के माननीय सदस्यों के लिए बहुत सुविधा हो जाती। मैं इस सभा के माननीय सदस्यों को यह बताना चाहता हूं कि आज वे इस प्रस्ताव को स्वीकार कर रहे हैं, वह कितना वृहत् है। हम सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धांत अर्थात् प्रौढ़-मताधिकार के सिद्धान्त को स्वीकार करने जा रहे हैं, जिसके अनुसार इस देश का प्रत्येक प्रौढ़, चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष, चाहे वह मैदान का हो अथवा पहाड़ की वनजातियों का अथवा अनुसूचित जातियों का, एक मतदाता हो जायेगा और इस प्रकार उसे देश के प्रशासन के उत्तरदायित्व का भार उठाना होगा और हर प्रकार वह एक समान अधिकार-प्राप्त नागरिक हो जायेगा। इस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त को स्वीकार करने पर यह आवश्यक है कि हम उसके वृहत् आकार का अनुभव करें। इससे मैं यह अनुभव करता हूं कि आगे चलकर किसी हालत में 20 करोड़ से कम निर्वाचक न होंगे। इससे अधिक हो सकते हैं। मेरे विचार से मेरे माननीय मित्र पं. ठाकुरदास भार्गव ने संख्या कम बताई क्योंकि उन्होंने अनुमान किया है कि मतदाताओं की संख्या पन्द्रह और सोलह करोड़ के बीच होगी। हमारी जनसंख्या 32 करोड़ है और यदि 21 वर्ष से कम आयु के लोगों की गणना न की जाये तो मेरा यह विश्वास है कि मतदाताओं की

संख्या 20 करोड़ से अधिक होगी। 15 प्रतिशत स्कूल जाने वाले बच्चे हैं जिनकी आयु 14 वर्ष से कम है। ऐसी स्थिति में मैं यह नि:संकोच कह सकता हूं कि ऐसे लोग जिनकी आयु 21 वर्ष से कम है, 25 प्रतिशत माने जा सकते हैं। इस दशा में कुल जनसंख्या की तीन चौथाई संख्या मतदाताओं की मानी जा सकती है। इसलिए आज हम जिस प्रस्ताव को स्वीकार कर रहे हैं उससे उत्पन्न होने वाले वृहत् प्रश्न को हल करने के लिए देश को तथा सरकार को तैयार रहना चाहिए। इस प्रकार कम से कम 20 करोड़ मतदाता होंगे। इसका अर्थ यह होगा कि लगभग 2 लाख निर्वाचन-स्थल स्थापित करने होंगे और 4 लाख निर्वाचन-अधिकारियों को रखना होगा। मैं कह नहीं सकता कि निर्वाचनों के संचालन में तथा उन्हें समाप्त करने में कितना समय लगेगा। इसलिए मैं सरकार से और आपसे, कम से कम जहां तक हमारा सम्बन्ध है मुख्यत: इस कार्य के वाहक होने के नाते, अनुरोध करता हूं कि इस वृहत् कार्य को सम्पन्न करने के लिए तुरन्त व्यवस्था की जाए। आप ही के द्वारा हम एक निर्वाचन-आयोग स्थापित करके एक विशेष व्यवस्था करने जा रहे हैं किन्तु केवल इतने से इस कार्य की वृहत्ता किसी प्रकार कम नहीं हो जाती।

इस वृहत् प्रश्न के सम्बन्ध में इतना कहने के उपरान्त मैं दो ऐसे क्षेत्रों की चर्चा करना चाहता हूं जो पर्याप्त चिन्ता के विषय हो सकते हैं। यह क्षेत्र उत्तर के राज्य तथा प्रान्त और पश्चिमी बंगाल तथा आसाम के प्रान्त हैं। इन दो प्रकार के क्षेत्रों में जनसंख्या में बहुत उलटफेर हुआ है। लाखों-करोड़ों लोग या तो पाकिस्तान चले गये हैं या वहां से आ गये हैं। हमने जगहों को सुरक्षित रखने की व्यवस्था की है और यही नहीं किया है बल्कि कुछ मामलों में, जैसे कि आदिवासियों की आबादी के मामले में, विधान में यह प्रावहित किया है कि चाहे वे पहाड़ों के रहने वाले हों अथवा मैदान के उन्हें एक ही जनसमूह समझा जाये और उसी आधार पर जगहें सुरक्षित रखी जायें। इस स्थिति में यदि जनगणना न की गई तो मेरे विचार से पूर्वी पंजाब, उत्तर में पाकिस्तान की सीमा पर स्थित राज्य, सम्भवत: बम्बई और सौराष्ट्र तथा आसाम और पश्चिमी बंगाल के लोगों के प्रति बहुत अन्याय होगा। मेरे विचार से अनुच्छेद 149 को रखने पर हमें जनगणना अवश्य ही करनी होगी। इस अनुच्छेद में यह कहा गया है कि प्रतिनिधित्व पिछली जनगणना के आंकड़ों के आधार पर निश्चित किया जाना चाहिए। पिछली जनगणना सन् 1941 में हुई थी। इसे सभी जानते हैं कि युद्ध के

[श्री विश्वनाथ दास]

कारण तथा कागज की कमी इत्यादि के नाम पर उस समय की सरकार ने पूर्णरूप से जनगणना करना आवश्यक नहीं समझा। केवल यही नहीं हुआ, किन्तु जो कुछ भी सूचना प्राप्त हुई उसे अलग रख दिया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि जनगणना केवल संकुचित रूप में ही हो सकी। तब से स्थिति में बहुत परिवर्तन हो चुका है। इसलिये उत्तर-पूर्व और उत्तर-पश्चिम के प्रदेशों के प्रति न्याय करने के लिए यह आवश्यक है कि शीघ्र से शीघ्र जनगणना की जाय। इस दृष्टि से इन प्रदेशों में विशेष रूप से जनगणना करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में क्या यह आवश्यक है कि मैं आपका ध्यान पाकिस्तान में जो कुछ किया गया है, उसकी ओर आकृष्ट करूं? पाकिस्तान में सिन्ध और पश्चिमी पंजाब तथा पूर्वी बंगाल के प्रान्तों में जनगणना की गई है और उसके उपरान्त ही वहां के अधिकारियों ने विधान-परिषद् में प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में कुछ निर्णय किए हैं। पाकिस्तान में जो कुछ किया गया है वह हिन्दुस्तान में भी आसानी से किया जा सकता था। क्या मुझे यह कहने की आवश्यकता है कि गम्भीरतापूर्वक तथा अविलम्ब जनगणना करने के लिए अब भी समय हाथ से नहीं गया है।

जनगणना के सम्बन्ध में इतना कहकर मैं इस प्रश्न के एक अन्य अंग पर अपने विचार प्रकट करता हूं। ब्रिटिश पार्लामेंट के सुधार के तीसरे कानून को स्वीकार करने के बाद ही स्वर्गीय ग्लेडस्टन ने कामन्स सभा में यह कहा था कि अब वह समय आ गया है कि जब उन्हें अपने शिशुस्वामियों को शिक्षित करने के लिए अधिक धन प्राप्त करना चाहिए और यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए। यह "शिशुस्वामी" कौन हैं? यह "शिशुस्वामी" मतदाता हैं। यह वास्तव में स्वामी हैं। आपने अपने "शिशुस्वामियों" को शिक्षित बनाने के लिए क्या किया है? इस देश में लगभग 10 प्रतिशत साक्षर हैं। स्त्रियों तथा अनुसूचित जातियों की साक्षरता के आंकड़े इससे भी कम निकलते हैं। पहाड़ों की वनजातियों के लोगों में जिन्हें आपने पूर्ण मताधिकार प्रदान किया है, साक्षरता का बिल्कुल ही अभाव है। आपने कितनी भयास्पद स्थिति में अपने को डाल दिया है? आप उनसे मत देने के लिए कह रहे हैं परन्तु वे हैं कौन? वे बहुत ही उत्तेजनापूर्ण लोग हैं जिन्हें अभी तक प्रचार का अथवा निर्वाचनों में मतदान का कोई अनुभव नहीं है। इसलिए मैं आपको चेतावनी देता हूं कि इस सम्बन्ध में शीघ्र ही कार्यवाही की जानी चाहिए ताकि जो कठिनाइयां मैंने बताई हैं वे जहां तक हो सके कम की जा सकें। आपने

उन्हें कम करने के लिये किया ही क्या है? आपने कुछ नहीं किया है। पिछले वर्ष विधान-परिषद् का कार्यवाही के मध्य में दुर्भाग्य से बोलकर मैंने यह जानने का प्रयास किया था कि सरकार ने निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमा निश्चित करने के लिये कोई संगठन स्थापित किया है अथवा नहीं। उत्तर यह दिया गया था कि वह स्थापित किया जा चुका है। आपने इस समय तक किस प्रकार की सीमा निश्चित की है? प्रान्तीय सरकारों से सीमा निश्चित करने के लिए कहा जाता है और वे अपने कर्मचारियों से यह काम करने के लिये कहते हैं और कोई कर्मचारी निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमा निश्चित करने के लिये बैठ जाता है। क्या इस विधान के अधीन आप इस प्रकार सीमा निश्चित करने जा रहे हैं? मैं सरकार को चेतावनी देता हूं और, श्रीमान्, आपके द्वारा विधान-परिषद् के माननीय सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि स्थिति में अवश्य ही परिवर्तन करना चाहिए। निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमा निश्चित करने के सम्बन्ध में तुरन्त ही कार्यवाही करना आवश्यक है और यह काम तुरन्त ही हाथ में लिया जाना चाहिये।

श्रीमान्, इन शब्दों के साथ तथा जो चेतावनी मैंने दी है उसके साथ मैं इस अनुच्छेद का पूर्ण रूप से समर्थन करता हूं।

**मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): जनाबआली, मुझे इस सेक्शन 67 के मुतल्लिक कुछ बोलना नहीं था। लेकिन एक चीज इसके दर्मियान में आ गई है जिसकी वजह से मेरे लिए लाजमी हो गया है कि कम-अज-कम मैं इसके मुतल्लिक कुछ कहूं।

***श्री एस. नागप्पा:** उपाध्यक्ष महोदय, मौलाना अंग्रेजी में बोल सकते हैं।

***उपाध्यक्ष:** क्या माननीय सदस्य अंग्रेजी में नहीं बोल सकते?

***मौलाना हसरत मोहानी:** इसके लिए मुझे प्रयास करना पड़ता है।

***उपाध्यक्ष:** कोई हर्ज नहीं। हमारी दिलचस्पी तो आपके विचारों में है न कि आपकी भाषा में।

**मौलाना हसरत मोहानी:** वह चीज क्या है, जो इसमें कही गई है, जिसने मजबूर किया है कि मैं अपने ख्यालात को जाहिर कर दूं। वह यह है। इसका सेक्शन 5 (ए) है। उसमें लिखा हुआ है कि:

[मौलाना हसरत मोहानी]

"इस दस्तूर की दफा 292 और 293 के कायदों का लिहाज रखते हुये एवाने आम में रियासती इलाकों की आबादी के नुमायन्दे होंगे जिनकी तादाद पांच सौ से ज्यादा होगी और इनकी राय देने वाले वराह रास्त इन्तखाब करेंगे।" और 293 यह एक ऐसी चीज है कि इसके मानी यह हैं कि माइनोरिटीज के लिये सीट्स रिजर्व कर दी गई हैं। इसलिए मैं इस रिजर्वेशन ऑफ सीट्स का सख्त मुखालिफ हूं और यह किसी हालत में भी रिजर्वेशन नहीं होना चाहिए। इसलिये जब हमने ज्वाइंट इलेक्टोरेट और ऐडल्ट फ्रेंचाइज कर दिया है तो, मैं कहता हूं कि अब रिजर्वेशन की कोई जरूरत नहीं है और यह दोनों साथ नहीं चल सकते। जब आप ज्वाइंट इलेक्टोरेट करेंगे तो इसके मानी यह हैं कि शख्स को हक है कि जितनी सीट्स हों, हर एक सीट से खड़ा हो जायेगा और कंटेस्ट कर सकेगा। अगर आप महदूद करते हैं, कम्युनल बेसिस पर, जैसा कि आपने कहा है कि मुसलमान माइनोरिटीज में हैं, इसलिए उनको रिजर्वेशन देना चाहिए। शिड्यूल्ड कास्ट के लिए तो मैं जानता नहीं, लेकिन अभी मेरे एक दोस्त ने कहा कि आप इनको रिजर्वेशन नहीं देना चाहते। मुसलमानों को आप माइनोरिटीज क्यों कहते हैं? मुसलमान माइनोरिटीज में उस वक्त हो सकते हैं जिस वक्त वह कम्युनल बाडी के तौर पर काम करें। जिस वक्त मुसलमान मुस्लिम लीग में शरीक थे, उस वक्त वह माइनोरिटी में थे। लेकिन अगर आप यह समझें कि if they elect to form a political party without any restriction leaving it open to any community (अगर वे कोई सियासी पार्टी कायम करना चाहें और उसमें दाखिल होने के लिये किसी भी कौम के लिये कोई पाबन्दी न रखें) आप इस बात को याद रखें कि जिस वक्त पोलिटिकल पार्टियां बनेंगी तो मुसलमान कोइलेशन करके लड़ेंगे, तो उस वक्त मैं कहता हूं कि मुसलमान माइनोरिटी में नहीं होंगे। मुसलमानों के लिए यह कहना कि वह माइनोरिटी में हैं, उनकी सख्त तौहीन करना है। मैं इसको एक मिनट के लिए भी बरदाश्त नहीं कर सकता।

मुझसे कई मेम्बरों से बातचीत हुई। उन्होंने मुझसे कहा कि हम यह मंसलमानों को जनरासिटी के तौर पर दे रहे हैं। मैं कहता हूं कि आपसे कौन कहता है कि आप यह जनरासिटी कीजिये। Muslims will become part

of the majority party and they will become majority. (मुसलमान अक्सरियत वाली पार्टी का हिस्सा हो जायेंगे और वे अवसरियत ही बन जायेंगे।) हम आपसे जनरासिटी या कन्सेशन नहीं चाहते और न कोई मुसलमान चाहता है।

Concession to whom? We refuse to accept any concession (रिआयत किसके लिये? हम किसी तरह की रिआयत मंजूर करने के लिये तैयार नहीं हैं।) अगर मेजोरिटी पार्टी या कांग्रेस पार्टी ने रिजर्वेशन ऑफ सीट्स को मंजूर किया तो इसका यह दावा गलत हो जायेगा कि हम सिकूलर स्टेट बनाना चाहते हैं। हमने कम्यूनीलिज्म को खत्म कर दिया। मैं कहता हूं कि आपने कम्यूनीलिज्म को नहीं खत्म किया। इसका सुबूत यह है कि मुसलमान 14 फीसदी हैं और हिन्दू 86 फीसदी हैं। आपके दिमाग में अभी तक यही खिनास मौजूद है कि मुसलमान 14 फीसदी है, उनका रिजर्वेशन कर दिया जाये।

मैं समझता हूं कि रिजर्वेशन ऑफ सीट्स का सवाल मुसलमानों के लिये यह सिर्फ उन नेशनलिस्ट मुसलमानों का उठाया हुआ है जो कांग्रेस और आपके गुलाम थे। आप यह सीट्स उन्हीं के लिये रिजर्व करना चाहते हैं और यह सीट्स चौदह या पन्द्रह फीसदी उन्हीं के लिए रिजर्व कर दी जायेंगी जो उनको सबसे पहले मिल जायेंगी। I take the responsibility we will isolate the nationalists. (मैं इसकी जिम्मेदारी लेता हूं कि हम नेशनलिस्टों से दस्तबरदार होते हैं।)

मुसलमान कोइलेशन करेंगे और आपके ख्याल को बातिल कर देंगे और उस वक्त, यह मेरा दावा है, कि मुसलमान माइनोरिटी में नहीं रहेंगे।

**ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिरः** सभापति जी, मेरा आज बोलने का इरादा नहीं था। मगर एक जरूरी सवाल जेर बहस है जिस पर मैं अपनी राय जरूर देना चाहता हूं। इसलिए मैं आपका बड़ा मशकूर हूं कि आपने मुझे बोलने का मौका दिया है। आर्टिकल 67 से मुतल्लिक इस वक्त दो बातें जेर बहस आई हैं। एक मर्दुमशुमारी का सवाल और दूसरा कान्स्टीट्यूएंसीज का सवाल। इस आर्टिकल के क्लाज (5) में 292 आर्टिकल का जिक्र आया है जो माइनोरिटीज के क्वेश्चन के साथ डील करता है। इसलिये रिजर्वेशन का या माइनोरिटीज का

[ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर]

जिक्र यहां रिलेवेंट हो गया है। मैं तो समझता हूं कि इस कान्स्टीट्यूशन से माइनोरिटीज का चैप्टर ही उड़ा दिया जाये। इसके बगैर देश का कल्याण होने वाला नहीं है। बाकी रह जाता है रिजर्वेशन का सवाल। इस सवाल पर जितना भी गौर किया जाये, इस नतीजे पर पहुंचना पड़ेगा कि पोपुलेशन बेसिस पर रिजर्वेशन से माइनोरिटीज को कोई फायदा नहीं है और खास कर मैं समझता हूं कि सिक्खों को तो रिजर्वेशन से कोई फायदा नहीं है। फिजा ऐसी बन रही है कि मुझे डर है कि कहीं यह बात आखिर सिक्खों पर न आ जाय कि वह रिजर्वेशन को ज्यादा चाहते हैं। मैं समझता हूं कि इस वक्त कई किस्म की बातें हो रही हैं जो मसलहत की बातें हैं और इसी तरह दूसरी तरह की, जो अक्सर ऐसे मौकों पर जब कि इन्टरिम पीरियड होता है, होती हैं। मैं इन बातों में ज्यादा नहीं जाता। मसलहत के तौर पर हमारे रहनुमाओं के सामने कई बातें होंगी। इसलिए भी मैं इन बातों में ज्यादा नहीं जाता। लेकिन मैं यह बात स्पष्ट तौर पर कह देना चाहता हूं कि अगर हम कान्स्टीट्यूशन में रिजर्वेशन रह गया तो इसका बायस सिक्ख नहीं होंगे। यानी मेरा कहने का मतलब यह है कि इस किस्म की रिजर्वेशन से सिक्खों को बिल्कुल कोई फायदा नहीं है। उनको रिजर्वेशन में बन्द कर देना उनकी तमाम उन्नति को रोक देने के बराबर है। हां, मुझे हरिजनों और शिड्यूल्ड कास्ट के मुतल्लिक जरूर ख्याल आता है।

***उपाध्यक्षः** मैं यह चाहता हूं कि आप विचाराधीन अनुच्छेद पर ही बोलें।

**ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिरः** लेकिन मैं समझता हूं कि जिस तरह से सेपरेट इलेक्टोरेट का जहर इस कान्स्टीट्यूशन से निकाला जा रहा है उसी तरह से कोई भी किसी किस्म का जहर इस कान्स्टीट्यूशन में ऐसा नहीं रहना चाहिये जिससे कम्युनिलिज्म फिर किसी न किसी शक्ल में बढ़ जाये। इसके लिए हैल्दी कौंवेशन्स बनाई जा सकती हैं। नोमीनेशन्स के जरिये ऐसे मुनासिब इन्तजाम किये जा सकते हैं जिनसे किसी को कोई ऐतराज न हो।

दूसरी बात कान्स्टीट्यूएंसीज के मुतल्लिक कही गई है। पंडित ठाकुरदास जी एक अमेंडमेंट लाये थे। मगर वह पेश नहीं की गई और उस पर उन्होंने जोर भी नहीं दिया। मगर मैं समझता हूं कि यह मामला बिल्कुल अलहदा है। रूरल और अर्बन हलके मेरी राय में अलहदा-अलहदा ही रहने चाहिएं। इनको मिला देने का अभी वक्त नहीं है। देहात वाले लोगों को अभी तालीम देने की जरूरत है। अभी तो वह बहुत पिछड़े हुये हैं और शहर वाले एडवांस्ड हैं। एक छत के ऊपर खड़ा हो और एक फर्श पर हो तो उन दोनों का आपस में मेल नहीं हो सकता। यानी तांगा और मोटर एक साथ नहीं चलाये जा सकते। इसके लिए बहुत जरूरी है कि जो जमीन पर है, उसको आहिस्ता-आहिस्ता ऊपर लाने की कोशिश की जाये और जो छत पर है वह ऐसी जहनियत बनाये कि अपने नीचे के भाई से मिले। तो जब ऐसी सूरत पैदा हो जाये, तब यह चीज आ सकती है। मेरा यह हरगिज मतलब नहीं है कि देहात और शहर का जो फर्क है, उसको कायम रखा जाये और मैं इस बात पर ज्यादा जोर भी नहीं देता कि देहात वाले पिछड़े हुये हैं। हो सकता है कि बाज हालतों में देहात में ज्यादा जागृति हो। मगर यह बात जरूर है कि उनके पास रिसोर्सेज ज्यादा नहीं हैं। वह ऐसी जगह पड़े हैं कि हमारी जो यह सरकार है, वही इनका इन्तजाम कर सकती है। अभी तो देहात में पहुंचना ही मुश्किल है। इसलिए मैं समझता हूं कि देहात को कान्स्टीट्यूएंसीज अलहदा ही होनी चाहियें। दूसरी सूरत में देहात वालों को नुकसान होगा। इन अलफाज के साथ मैं इस आर्टिकल का समर्थन करता हूं।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अभी तक हमने जो अनुच्छेद स्वीकार किये हैं उनमें से सम्भवत: अनुच्छेद 13 और 25 को छोड़ कर, जिनमें मूल स्वतंत्रताओं को प्रत्याभूति दी गई है, मेरे विचार से यह अनुच्छेद सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसके अधीन हम भारत के प्रत्येक प्रौढ़ नागरिक को मताधिकार देने जा रहे हैं और मेरे विचार से लोग इसका अनुभव आगे चल कर करेंगे कि इसका वास्तव में क्या अर्थ है। अभी तक निर्वाचन संकुचित मताधिकार के आधार पर होते आये हैं। अब यदि नई जनगणना में भारत की जनसंख्या लगभग 35 करोड़ निकली तो इस देश के निर्वाचकों की संख्या 20 करोड़ होगी। अमेरिका जैसे देश में भी मतदाताओं की संख्या केवल 5 या 6 करोड़ है। किन्तु इस देश में प्रतिनिधियों के निर्वाचन में 20 करोड़

[प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना]

मतदाता भाग लेंगे। मेरे विचार से सभी प्रौढ़ लोगों को, जिन खण्डों द्वारा मताधिकार, की प्रत्याभूति दी जा रही है, वे विधान के सबसे महत्वपूर्ण अंग हैं। इनके कारण हम बहुत बड़ी आशायें करने लगे हैं और आज हम उस आदर्श का महत्व समझ रहे हैं जिसके लिये हम पिछले कई वर्षों से संघर्ष करते आये हैं। मेरे विचार से खण्ड (6) में जिसके अनुसार यह प्रत्याभूति दी गई है, 'अपराध' शब्द का भी इस रूप में उल्लेख है कि वह किसी व्यक्ति को मतदाता होने के लिये अयोग्य ठहराने के लिये एक कारण होगा। मेरी यह धारणा है कि ऐसे लोगों को, जिन्होंने जेल से छूटने पर अपने चरित्र का सुधार कर लिया हो मतदाता होने के अयोग्य न ठहराना चाहिए और इसलिये मेरे विचार से 'अपराध' शब्द का उसमें समावेश न होना चाहिए था। आवास, मनोविक्षेप आदि के सम्बन्ध में जो अन्य प्रतिबन्ध रखे गये हैं उन पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

श्रीमान्, इसके अतिरिक्त इस अनुच्छेद में दो सदनों की अर्थात् राज्य-परिषद् और लोक-सभा की व्यवस्था है। श्रीमान् मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि मैं केवल एक ही सदन के पक्ष में हूं और दो सदनों के पक्ष में नहीं हूं। इस अनुच्छेद में दो सदन प्रावहित हैं और सबसे आपत्तिजनक बात यह है कि उच्च सदन में बारह मनोनीत सदस्य होंगे। पिछले ही दिन हमने यह स्वीकार किया है कि वे सदस्य भी, जो केवल मनोनीत हुये हों और जिन्हें लोगों ने कभी भी निर्वाचित न किया है, मंत्री भी हो सकते हैं। मेरे विचार से यह विधान का सबसे अधिक जनतंत्र विरोधी अंग है। प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जो साहित्य, कला और विज्ञान का विशेषज्ञ रहा हो अवश्य ही....

***उपाध्यक्षः** क्या मैं माननीय सदस्य महोदय से कह सकता हूं कि वे वाणिज्य की ओर संकेत न करें क्योंकि उसके संबंध में जो खण्ड हैं उन्हें हम स्वीकार कर चुके हैं। इस समय खंड (5) के अन्त तक के विषयों पर विचार-विमर्श हो रहा है। सभा ने यही निर्णय किया था।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेनाः** यदि स्थिति यह है तो मैं पूर्व खण्डों की ओर संकेत न करूंगा, यद्यपि मेरा विचार यह है कि हम पूरे अनुच्छेद पर विचार-विमर्श कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, इस अनुच्छेद में ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाबन्दी के सम्बन्ध में भी प्रावधान है, जिनकी जनसंख्या पांच लाख से लेकर साढ़े सात लाख तक है। मेरे विचार से आगे की संख्या अनावश्यक है। कहीं भी इसका उल्लेख नहीं है कि इन दो संख्याओं के बीच की संख्या ठीक-ठीक कैसे निश्चित की जायेगी। परन्तु मेरे विचार से औसत संख्या वही होगी जो प्रत्येक प्रान्त के लिये जगहें निश्चित करने के लिये उपयुक्त समझी जायेगी और वह लगभग 6,25,000 होगी। मेरा अपना यह विचार है कि वर्तमान रूप में इस खंड से बहुत कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी।

मेरे विचार से 13 लाख और 20 लाख जनसंख्या वाले बहुत बड़े बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र होंगे और गरीब उम्मीदवार तो इस स्थिति में न होंगे कि वे ऐसे निर्वाचन-क्षेत्रों में चुनाव लड़ सकें। यदि हम अल्पसंख्यकों के लिये जगहें सुरक्षित रखना चाहते हैं तो हमें बड़े बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र स्थापित करने ही होंगे। इस दशा में केवल धनी लोग ही निर्वाचित हो सकेंगे। इसके अतिरिक्त जगहें सुरक्षित रखने से साम्प्रदायिक भावनायें प्रबल हो जायेंगी। इसलिये मेरा यह विचार है कि हमें जगहें सुरक्षित न रखनी चाहियें। वास्तव में जब मेरे माननीय मित्र मौलाना हसरत मोहानी और ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर ने यह कहा कि उन्हें जगहों की सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है तो मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। मेरे विचार से इस विधान द्वारा जगहें सुरक्षित रखने की जो व्यवस्था की गई है उसे बिल्कुल समाप्त कर देना चाहिये। हमें एक पूर्णतया ऐहिक राज्य की स्थापना करनी चाहिये जिसमें प्रत्येक व्यक्ति भारत का एक स्वतंत्र नागरिक होगा और उसे निर्वाचक होने की सुविधा प्राप्त होगी, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय का क्यों न हो। मेरा यह विश्वास है कि कुछ ही वर्षों में साम्प्रदायिक उत्तेजना का अन्त हो जायेगा और जगहें सुरक्षित रखने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। मेरे विचार से वह समय आ ही गया है। वास्तव में जब निर्वाचन होंगे, उस समय विशेष प्रकार से जगहें सुरक्षित रखने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। यदि हम अल्पसंख्यकों के लिये जगहें सुरक्षित रखने का निश्चय करें तो डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित नहीं किया था उसे उपस्थित किया जाना चाहिए, अन्यथा बहुत बड़े निर्वाचन क्षेत्र हो जायेंगे। यदि किसी निर्वाचन-क्षेत्र में एक सामान्य जगह, एक हरिजनों की जगह और एक मुसलमानों की जगह सुरक्षित रहेगी तो प्रत्येक

[प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना]

उम्मीदवार को लगभग 11 लाख मतदाताओं में प्रचार करना होगा। कोई भी सामान्य व्यक्ति अपने सीमित साधनों द्वारा 11 लाख मतदाताओं में प्रचार नहीं कर सकता है। इसके अतिरिक्त हमें असंख्य निर्वाचन-स्थल स्थापित करने होंगे। मैं कह नहीं सकता कि कितने निर्वाचन-स्थलों की आवश्यकता होगी। मेरे विचार से इस कार्य को सम्पन्न करना असम्भव हो जायेगा और इसलिये व्यवहार दृष्टि से भी, मेरे विचार से, जगहें सुरक्षित न रखी जानी चाहियें। इसके अतिरिक्त यदि बहुत बड़े बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र स्थापित किये गये तो यह भी सम्भव है कि कुछ लोगों को यथोचित अवसर भी न मिलेगा। उनका जिस क्षेत्र में प्रभाव होगा वह विच्छिन्न हो जायेगा अथवा वह क्षेत्र किसी अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के लिये सुरक्षित रख दिया जायेगा।

इसलिये यही सम्भव है और व्यावहारिक भी है कि जगहें सुरक्षित न रखी जायें। मुझे विश्वास है कि अल्पसंख्यकों का भय तुरन्त ही दूर हो जायेगा और वे लोग भी जो इस समय जगहें सुरक्षित रखने के पक्ष में है यह कहने लगेंगे कि वे जगहों की सुरक्षा नहीं चाहते। यदि जगहें सुरक्षित न रखी गईं तो हमें इसकी चिन्ता होगी कि अपनी जनसंख्या के अनुसार अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के जितने सदस्य निर्वाचित होते उससे अधिक संख्या में वे निर्वाचित हों।

श्रीमान्, प्रस्ताव यह है कि खंड (5) के उपखंड (ख) का परादिक निकाल दिया जाये। यह भी उचित नहीं है। अनुच्छेद 67 के खंड (1) के अधीन राज्य-परिषद् में राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या 40 प्रतिशत से अधिक न होगी। अवर सदन में इस अनुपात को समाप्त करने का प्रस्ताव है। यदि राज्य बहुत कुछ अपने वर्तमान रूप ही में बने रहे और केवल रक्षा, यातायात, इत्यादि के सम्बन्ध में संघ में सम्मिलित रहे, तो परादिक को निकालना सम्भव न होगा। राज्यों की जनसंख्या के आधार पर जितने प्रतिनिधि होते उससे कहीं अधिक प्रतिनिधि होंगे। मेरे विचार से मूल प्रस्ताव अधिक उपयुक्त है। राज्यों को अपनी जनसंख्या के अनुपात में ही जगहें प्राप्त होनी चाहियें। यदि राज्य प्रान्तों के स्तर पर आ जायें और इस विभेद का निराकरण कर दिया जाये, तब इस परादिक को निकालने में कोई आपत्ति न होगी।

श्रीमान्, मैंने खंड (7) को निकाल देने के सम्बन्ध में एक संशोधन की सूचना दी थी। मेरा उद्देश्य यह था कि संसद् को यह शक्ति प्राप्त होनी चाहिये कि वह लोक सभा में राज्यों के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों के प्रतिनिधित्व के

सम्बन्ध में कानून बना सके। यह विधान का विषय है न कि संसद् का। संसद् हमेशा पदारूढ़ दल की इच्छानुसार कानून बना सकती है। इस प्रकार के विषयों के सम्बन्ध में संसद् को कानून बनाने का अधिकार न होना चाहिए। मेरे विचार से खंड (7) निकाल देना चाहिए, क्योंकि उससे संसद् को लोक सभा में अतिरिक्त जगहें स्थापित करने की शक्ति मिल जाती है।

श्रीमान्, ये बहुत महत्वपूर्ण बातें हैं। हम बहुत से संशोधनों पर विचार कर चुके हैं और मेरे विचार से सभा का निर्णय शीघ्र ही ज्ञात हो जायेगा। सभा केवल उन्हीं संशोधनों को स्वीकार करेगी जिन्हें कि डॉ. अम्बेडकर स्वीकार करेंगे। यद्यपि इस अनुच्छेद का रूप वैसा नहीं है जैसा कि मैं चाहता था किन्तु फिर भी, मेरे विचार से, यह बहुत महत्वपूर्ण अनुच्छेद है और यह स्वीकार कर लिया जाना चाहिए।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 67 के खंड (5) से लेकर (8) तक के सम्बन्ध में जो कुछ अधिक महत्वपूर्ण तथा सारपूर्ण संशोधन उपस्थित किये गये हैं उन्हीं के बारे में मैं बोलूंगा।

श्रीमान्, मैं इसके लिये कृतज्ञ हूं तथा मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई है कि अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के कुछ सदस्य, विशेषतया मेरे माननीय मित्र मि. करीमुद्दीन और मि. महबूबअली बेग, अपने सम्प्रदायों के लिये जगहें सुरक्षित रखने के विरोध में रहे हैं। उसके स्थान पर उन्होंने निर्वाचन की दो प्रणालियों का सुझाव रखा है। एक प्रणाली एकल संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की है और दूसरी सामूहिक मतदान द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की है।

***श्री महबूबअली बेग साहब:** क्या मैं अपने मित्र की गलती ठीक कर सकता हूं। मैंने जगहों को सुरक्षित रखने के बारे में कुछ भी नहीं कहा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** अच्छी बात है, यह गलती थी। जहां तक मेरे मित्र मि. करीमुद्दीन का सम्बन्ध है वे किसी प्रकार जगहों को सुरक्षित रखना नहीं चाहते हैं। उसके स्थान में वे चाहते हैं कि निर्वाचन सामूहिक मतदान द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अनुसार हो। मि. महबूबअली बेग प्रत्यक्षत: दोनों हाथ लड्डू चाहते हैं। मैं उनकी बातों के सम्बन्ध में बाद में बोलूंगा।

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

अनुच्छेद 292 और 293 में जो सुरक्षा प्रावहित है, अधिकांश लोग उसके विरोध में हैं। मैं यह भी देखता हूं कि अनुसूचित जातियों को छोड़ कर अन्य लोगों के सम्बन्ध में जो प्रावधान है, उसके बारे में ऐसे सदस्यों का, जो अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के हैं, यह मत है कि जगहें इस प्रकार सुरक्षित नहीं रखी जानी चाहियें। नि:सन्देह यह विषय स्थगित किया जायेगा और इस पर विस्तृत रूप से उस समय विचार-विमर्श होगा जब कि हम 292 और 293 अनुच्छेदों को उठायेंगे। अल्पसंख्यकों के हितों को ही दृष्टि में रखकर मैं यह अनुरोध करता हूं कि यदि वे जगहों की सुरक्षा पर जोर देंगे तो यह उनके लिये बहुत उपयोगी सिद्ध न होगा क्योंकि...

***उपाध्यक्ष:** क्या आप अनुच्छेद 292 पर बोल रहे हैं?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** जी नहीं, मैं प्रस्तावित विकल्प की ओर संकेत कर रहा हूं।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): इस खंड के सम्बन्ध में अनुच्छेद 292 की ओर संकेत किया ही क्यों जाए?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** यह उस संशोधन का विषय है, जो मेरे माननीय मित्र मि. करीमुद्दीन ने उपस्थित किया है। वे यह चाहते थे कि अनुच्छेद 292 और 293 का प्रसंग न रखा जाये और उसके सामने निर्वाचन-प्रणाली अर्थात् सामूहिक मतदान द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली के सम्बन्ध में कुछ जोड़ दिया जाए। इसलिए यदि मैंने जगहों को सुरक्षित रखने के सम्बन्ध में, जो कि अनुच्छेद 292 और 293 का विषय है, कुछ कहा है तो मेरा आदरपूर्वक यह निवेदन है कि मैंने जो कुछ कहा है वह अप्रासंगिक नहीं है। मि. करीमुद्दीन के संशोधन का उद्देश्य यह है कि अनुच्छेद 292 और 293 में जगहों को सुरक्षित रखने का जो उल्लेख है वह निकाल दिया जाये और उसके स्थान में सामूहिक मतदान द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली रख दी जाए, क्योंकि उनकी यह धारणा है कि इससे अल्पसंख्यकों का अधिक हित-साधन होगा। दो प्रकार की निर्वाचन-प्रणालियों का सुझाव रखा गया है। मैं आदरपूर्वक प्रस्तावक महोदय को यह बताना चाहता हूं कि एकल संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती

प्रतिनिधित्व की प्रणाली बिल्कुल भी व्यावहारिक नहीं है। निर्वाचन-क्षेत्र बहुत बड़े होंगे और प्रत्येक में 5 लाख से लेकर साढ़े सात लाख तक लोग होंगे। इसके अतिरिक्त हमारा देश उन्नत नहीं है और बहुत से लोग निरक्षर है। हमारे देश में साक्षर लोग 14 प्रतिशत से अधिक नहीं हैं। एकल संक्राम्य मत द्वारा तरजीह देना सम्भव है। हम स्वयं, जब हम विधान-सभा में विभिन्न विभागों के लिये विधान-मंडल की स्थायी समितियों के लिये सदस्य चुनते हैं, तो कई बार गलती कर बैठते हैं। इसलिये निरक्षर मतदाताओं से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वे यथोचित रूप से मत देंगे। अपने देश की साक्षरता की उन्नति में शैथिल्य को ध्यान में रखते हुए बहुत काल तक इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

जहां तक सामूहिक मतदान द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली का सम्बन्ध है, मेरा यह कहना है कि अनुसूचित जातियों के प्रारम्भिक चुनाव में इसका प्रयोग किया जा चुका है। मैं श्री बी. एन. राव द्वारा प्रकाशित कांस्टीट्यूशनल प्रिसिडेंट्स के तीसरे अंक की ओर ध्यान दिलाता हूं। पृष्ठ 161 में निर्वाचन-प्रणाली के अध्याय के सम्बन्ध में एक परिशिष्ट है, वे कहते हैं:

> "कोई दल किसी निर्वाचन में कितनी जगहें प्राप्त कर लेता है यह इस पर निर्भर है कि उसने कितने सही तौर पर प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में अपने समर्थकों की संख्या का अनुमान लगाया है और अपनी ओर से ठीक संख्या में उम्मीदवार खड़े किये हैं।"

परिशिष्ट में उदाहरण देते हुए वे यह कहते हैं कि एक बार गलत हिसाब लगाने से कांग्रेस ने दोनों जगहें किस प्रकार खो दीं जबकि उसके लिये यह सम्भव था कि वह कम से कम एक जगह प्राप्त कर लेती। यह मध्यप्रान्त की विधान सभा के निर्वाचनों के सम्बन्ध में भांडार्स साकोली निर्वाचन-क्षेत्र के सम्बन्ध में हुआ। दोनों जगहें कांग्रेस के हाथ से निकल गईं। इसके बाद कांग्रेस दल ने बम्बई नगर और उसके सीमावर्ती जिलों में बम्बई विधान-परिषद् की चार जगहों में से दो जगहों के लिये चुनाव लड़ा। यदि उसने अपने निर्वाचकों की संख्या का कम अनुमान लगाया होता अथवा अधिक अनुमान लगाया होता और उससे कम अथवा अधिक उम्मीदवार खड़े किये होते, तो एक जगह उसके हाथ से निकल जाती। इसलिये इस प्रकार का सामूहिक निर्वाचन पूर्णतया उपयुक्त न होगा।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** यह तो अनुपाती प्रतिनिधित्व नहीं हुआ।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** यह भी एक प्रकार का अनुपाती प्रतिनिधित्व है। मैं न तो एकल संक्राम्य मत-प्रणाली के पक्ष में हूं, न सामूहिक मत-प्रणाली के। एक को प्रयोग में लाना असम्भव है और दूसरी से हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती। उससे हम सामाजिक न्याय न कर पायेंगे। इस दृष्टि से न मि. करीमुद्दीन का संशोधन और न मि. बेग का संशोधन विचार के योग्य है। मैं उन दोनों का विरोध करता हूं। प्रोफेसर शाह ने यह सुझाव रखा था कि लोक सभा में सदस्यों की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध न होना चाहिए। उन्होंने कहा था कि चाहे जितने भी सदस्य हों इस पर कोई रोक न होनी चाहिये। मेरी यह धारणा है कि 500 की संख्या बहुत बड़ी है। इस सभा में ही जिसमें 300 सदस्य हैं, हमें लगभग प्रत्येक दिन गणपूरण के लिये घंटी बजानी होती है। इसलिये संख्या को अधिक बढ़ाने से क्या लाभ होगा? प्रतिनिधित्व प्रभावपूर्ण न हो सकेगा। सदस्यों की संख्या जितनी कम होगी उतना ही अधिक वह प्रभावपूर्ण होगा। नि:सन्देह वह बहुत कम न होनी चाहिये। 500 की संख्या ठीक ही है। इसके अतिरिक्त 500 की संख्या कोई निश्चित अथवा अखंडनीय संख्या नहीं है क्योंकि अनुच्छेद 292 और 293 के अधीन एंग्लो इंडियनों के लिये उस दशा में मनोनीतकरण प्रावधान है, जबकि उनका प्रतिनिधित्व न हुआ हो। इसी प्रकार उन प्रदेशों के सम्बन्ध में, जो राज्यों के अंग नहीं हैं, संसद् को इस अनुच्छेद के खंड (7) के अधीन यह अधिकार दिया गया है कि वह कानून द्वारा लोक सभा में उनके प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करे। खंड (5) के अधीन 500 प्रतिनिधि तो राज्यों के ही होंगे। 500 के अतिरिक्त कुछ ऐसे एंग्लो इंडियन सदस्य भी हो सकते हैं, जो राज्यों के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करेंगे। इस दशा में 500 की संख्या कोई निश्चित संख्या नहीं है किन्तु साथ ही इसे बहुत अधिक भी न बढ़ाना चाहिए।

मेरे मित्र पं. ठाकुरदास भार्गव ने यह सुझाव उपस्थित किया है कि किसी प्रकार की योग्यता निर्धारित की जानी चाहिए, यद्यपि उन्होंने यह संशोधन उपस्थित नहीं किया कि केवल साक्षर लोगों को ही मतदान का अधिकार होना चाहिए। श्रीमान्, मैं इस पर जोर देना चाहता हूं कि एक खंड ऐसा होना चाहिए,

जिसके अनुसार वे लोग दंडित किये जा सकें जो मत देने में आनाकानी करें। इस देश में बहुत समय तक यह होगा कि जब तक लोग निर्वाचन-स्थल पर आने के लिये बाध्य न किये जायेंगे, उनमें से बहुत से मत देंगे ही नहीं और यदि आप साक्षरता की योग्यता भी निर्धारित करते हैं, तो मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कोई भी दिलचस्पी न लेगा। आप प्रौढ़ मताधिकार प्रदान कर रहे हैं जिससे किसी एक व्यक्ति के मत का कोई प्रभाव न होगा। यदि हमारे अधिकांश लोग इस समय निरक्षर हैं तो दोष किसका है? यह आशा नहीं की जा सकती कि दो वर्ष के समय में ही प्रत्येक व्यक्ति साक्षर हो जायेगा। इसके अतिरिक्त केवल साक्षरता की ही योग्यता तो नहीं है। मैं बहुत से ऐसे लोगों को जानता हूं जो साक्षर नहीं हैं, किन्तु उनका साधारण ज्ञान शिक्षित लोगों से भी अच्छा है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** हस्ताक्षर करना दो महीने में ही सीखा जा सकता है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** तो इसका प्रभाव ही क्या होगा? यह सोचना निरर्थक है कि किसी व्यक्ति के हस्ताक्षर करने योग्य होने से ही वह तुरन्त ही इतना साक्षर और शिक्षित हो जायेगा कि वह अपने मत का यथोचित रूप से प्रयोग कर सकेगा। मेरा यह कहना है कि इस प्रकार की योग्यता अनावश्यक है। इस आशय के संशोधन को उपस्थित न करके उन्होंने बुद्धिमत्ता ही दिखाई है। इसके विपरीत आगे चलकर जब निर्वाचन बहुत खर्चीले हो जायेंगे और लोग निर्वाचन-स्थलों में नहीं आयेंगे, तो यह आवश्यक प्रतीत होगा कि अन्य विधानों के समान हमारे विधान में भी कोई ऐसा प्रावधान रखा जाना चाहिए, जिससे मतदाता निर्वाचन-स्थलों पर आने और मत देने के लिये बाध्य किये जा सकें। जहां तक निर्वाचन को शीघ्र करने का सम्बन्ध है, मेरी यह इच्छा है कि विभिन्न प्रान्तीय सरकारें योग्यता प्राप्त मतदाताओं की सूची बनाने और निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाबन्दी के कार्य में अभी से लग जायें। इसी उद्देश्य से हम इन अनुच्छेदों पर विचार कर रहे हैं और हमने केवल उन अनुच्छेदों को उठाया है जो निर्वाचन के सम्बन्ध में हैं। इसके बाद सभा की अनुमति से, हम अनुच्छेद 148 पर विचार करने जा रहे हैं। इसलिये अगले वर्ष शीघ्र ही निर्वाचन करने के

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

लिये मुझे विश्वास है कि केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकारों को इन सूचियों को बनाने और निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमाबन्दी करने के लिये आदेश देगी।

मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर ने जो रस्मी संशोधन उपस्थित किये हैं उनका मैं समर्थन करता हूं और मि. करीमुद्दीन और मि. बेग तथा प्रोफेसर शाह ने जो भी संशोधन उपस्थित किये हैं उनका विरोध करता हूं।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रोफेसर शाह के संशोधन संख्या 1417, 1426 और 1413 को प्रस्तावक द्वारा संशोधित रूप में तथा सूची 2 के संशोधन संख्या 42 और 43 द्वारा संशोधित रूप में स्वीकार करता हूं। अन्य संशोधनों की सावधानी से परीक्षा करने पर मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि केवल एक संशोधन का उत्तर देने की आवश्यकता है, वह मेरे मित्र मि. करीमुद्दीन का संशोधन संख्या 1415 है। उनके संशोधन का उद्देश्य यह है कि विभिन्न राज्यों में निर्वाचन एकल संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अनुसार होना चाहिये। मेरे विचार से इस संशोधन को स्वीकार करना सम्भव नहीं है, क्योंकि जहां तक मैं इस देश की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए अनुपाती प्रतिनिधित्व की सार्थकता को समझ पाया हूं, मेरे विचार से इस संशोधन को स्वीकार नहीं किया जा सकता। मेरे विचार से मेरे मित्र मि. करीमुद्दीन इसे स्वीकार करेंगे कि अनुपाती प्रतिनिधित्व के लिये एक बड़े पैमाने में साक्षरता की आवश्यकता है। वास्तव में उसके लिये वह आवश्यक है कि प्रत्येक मतदाता कम से कम इतना साक्षर हो कि वह अंकों को जाने और उन्हें मतपत्र पर लिख सके। इस देश की साक्षरता को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार की आशा करना बिल्कुल ही निरर्थक होगा। इस सम्बन्ध में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। मुझे विश्वास है कि साक्षरता की दृष्टि से हम संसार में सबसे पिछड़े हुये हैं और इसलिये यहां के निरक्षर मतदाताओं पर एक ऐसी निर्वाचन-प्रणाली का भार डालना, जिसके अनुसार मतपत्रों पर लिखना आवश्यक है, बिल्कुल ही असम्भव है। केवल इसी कारण से भी मेरे विचार से अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

एक दूसरी बात, जिसकी ओर मैं इस सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं, यह है कि मेरे विचार से अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली उस शासन व्यवस्था के अनुरूप नहीं है जो कि इस विधान में निर्धारित की गई है। इस

विधान में संसदात्मक संघ प्रणाली निर्धारित की गई है, जिसका हम यह अर्थ समझते हैं कि किसी सरकार के लिये कानून द्वारा निर्धारित की हुई कालावधि तक अर्थात् पांच वर्ष तक पदारूढ़ रहना आवश्यक नहीं है। वह उसी समय तक पदारूढ़ रह सकती है, जब तक उस पर सभा के अधिकांश सदस्यों का विश्वास हो। इसका स्पष्टत: यह अर्थ है कि जहां संसदात्मक शासन-प्रणाली प्रयोग में हो वहां की विधान-सभा में अवश्य ही एक दल ऐसा होना चाहिए, जो बहुमत में हो और सरकार का समर्थन करने के लिए तैयार हो। जहां तक संसदात्मक अथवा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणालियों को प्रयोग में लाने का परिणाम मैं समझ पाया हूं, वह यह है कि अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली का एक कुपरिणाम यह होता है कि विधान-मंडल छोटे-छोटे समूहों में विभाजित हो जाता है। मेरे विचार से सभा को यह ज्ञात होगा कि यद्यपि ब्रिटिश पार्लामेंट ने सन् 1910 में एक रायल कमीशन इसकी जांच करने के लिए नियुक्त किया था कि 'एक व्यक्ति के लिए एकमत' वाले एक-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र की उनकी प्रणाली अच्छी है अथवा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली अच्छी है। किन्तु पार्लामेंट इस रायल कमीशन की सिफारिशों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुई। मेरे विचार से यह एक ध्यान देने योग्य बात है। मेरे विचार से उन्हें स्वीकार न करने के लिए जो कारण बताया गया वह बहुत ही उपयुक्त कारण था। वह यह था कि अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अधीन कोई सरकार स्थायी रूप से पदारूढ़ न रह सकेगी, क्योंकि पार्लामेंट बहुत से छोटे-छोटे समूहों में विभाजित हो जायेगी और जब कभी कोई ऐसी बात होगी, जिससे पार्लामेंट के कुछ समूह असंतुष्ट हो जायेंगे, तो उस समय वे सरकार का समर्थन न करेंगे और उसका परिणाम यह होगा कि सरकार विनष्ट हो जायेगी। चाहे आगे की सरकार कुछ भी करे, चाहे वह लोगों को उनकी वर्तमान कठिनाइयों से मुक्त करे अथवा नहीं, मेरी यह धारणा है कि उसे यह तो अवश्य करना चाहिए कि सरकार को स्थायी रखे और कानून तथा व्यवस्था की रक्षा करे। (*वाह, वाह*) इसलिए मुझे किसी ऐसी निर्वाचन-प्रणाली को स्वीकार करने में संकोच होता है, जिससे कि सरकार की स्थिरता पर आघात होगा। इस कारण मैं इस व्यवस्था को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूं।

एक तीसरी बात और है जिसे, मेरे विचार से, ध्यान में रखना आवश्यक है। इस देश में बहुत वर्षों तक लोग बहुसंख्यक समुदाय और अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में विभाजित रहे हैं। मैं इस प्रश्न पर विचार करने नहीं जा रहा हूं कि

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

लोगों का इस प्रकार बहुसंख्यक समुदाय और अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में विभाजित रहना प्राकृतिक था अथवा यह एक कृत्रिम व्यवस्था थी अथवा किसी ऐसे व्यक्ति ने, जो इस देश की उन्नति के विरोध में था, जानबूझ कर इसका बीज बोया। चाहे इसका कारण कुछ भी रहा हो, किन्तु हमारे देश में यह बहुसंख्यक समुदाय तथा अल्पसंख्यक समुदाय अस्तित्व में रहे ही। आरम्भ में जब यह विधान-परिषद् देश के भावी विधान के सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श करने के लिए समवेत् हुई थी, तो विभिन्न अल्पसंख्यक सम्प्रदायों तथा बहुसंख्यक सम्प्रदाय के बीच प्रतिनिधित्व की प्रणाली के सम्बन्ध में एक समझौता हुआ था। वह समझौता परस्पर आदान-प्रदान का था। विधान-परिषद् का अधिवेशन होने के पूर्व जिन अल्पसंख्यक सम्प्रदायों को पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों के गढ़ में रखा हुआ था, वह उस गढ़ को त्याग देने के लिए तैयार हो गये थे। बहुसंख्यक सम्प्रदाय, जो इस पर विश्वास करता था कि किसी विशेष सम्प्रदाय के लिए किसी प्रकार से जगहें सुरक्षित न रखी जानी चाहिएं इसके लिए राजी हो गया था कि भले ही वह पृथक् निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था से सहमत न हो, परन्तु वह जगहें सुरक्षित रखकर पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था के लिए सहमत हो जायेगा। यह समझौता दो बातों के सम्बन्ध में है। इसके अनुसार विभिन्न अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों की एक निश्चित संख्या रखी गई है और यह भी निश्चित किया गया है कि यह प्रतिनिधि संयुक्त निर्वाचन के आधार पर चुने जायेंगे। इस सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि यद्यपि इस सभा को इसकी स्वतंत्रता है कि वह विधान के मसौदे के किसी भाग को दुहराये अथवा बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के बीच जो कोई समझौता हुआ हो उसे दुहराये, किन्तु मेरे विचार से यह एकाएक अथवा एक प्रकार से अप्रत्याशित रूप से न किया जाना चाहिए। अच्छा तो यह होगा कि यह प्रत्यक्ष रूप से किया जाय और मेरे विचार से अनुच्छेद 292 और 293 में परिवर्तन करने का उचित तरीका यह होगा कि यह परिवर्तन विभिन्न अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के इच्छानुसार ही किया जाय। यदि कोई ऐसा अल्पसंख्यक सम्प्रदाय, जिसका इस सभा में प्रतिनिधित्व हुआ है, यह कहता है कि उसे जगहों की सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है, तो सभा को इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह उस विशेष अल्पसंख्यक सम्प्रदाय का नाम अनुच्छेद 292 के प्रावधानों से निकाल दे। यदि किसी अल्पसंख्यक सम्प्रदाय की यह धारणा हो कि वह जो कुछ चाहता था वह उसे शत प्रतिशत नहीं मिला है अर्थात् उसे पृथक् निर्वाचन-मंडल प्राप्त नहीं हुआ

है, परन्तु जगहों की सुरक्षा के रूप में उसने जो कुछ भी प्राप्त किया है वह कुछ न पाने से अच्छा है, तो मेरे विचार से यह उचित तथा न्यायपूर्ण होगा कि विधान-परिषद् ने उसे जो कुछ प्रदान किया है, वह उसके हाथों में रहने दिया जाये।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** विभिन्न सम्प्रदायों के बीच जगहों की सुरक्षा के सम्बन्ध में कोई समझौता नहीं हुआ था। बहुत से सदस्यों ने पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों आदि के सम्बन्ध में ही कई संशोधन उपस्थित किये थे, परन्तु वे सब अस्वीकार कर दिये गये थे। इन विषयों के सम्बन्ध में कोई समझौता नहीं हुआ था।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं केवल यह कह रहा था कि उसे बलपूर्वक न छीनना चाहिए बल्कि सम्बन्धित पक्षों की स्वीकृति से ही उसे वापस लेना चाहिए। मेरा यह प्रस्ताव है और इसलिए मेरा यह निवेदन है कि इस अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली का यह अर्थ है कि अल्पसंख्यकों को समझौते द्वारा एक हाथ से जो कुछ दिया गया है, वह दूसरे हाथ से छीन लिया जा रहा है। क्योंकि अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अधीन अल्पसंख्यक जो कुछ चाहते थे, वह उन्हें नहीं मिलेगा अर्थात् उन्हें प्रतिनिधियों की एक निश्चित संख्या प्राप्त न होगी। उससे अपने प्रतिनिधियों के निर्वाचन में उनके मत का प्रभाव हो सकता है। मेरे विचार से उचित यही होगा कि इसका निर्णय अल्पसंख्यकों पर ही छोड़ दिया जाय कि वे प्रतिनिधियों की निश्चित संख्या त्याग कर केवल प्रतिनिधियों के निर्वाचन में अपने मत का प्रभाव चाहते हैं अथवा नहीं। श्रीमान्, इन कारणों से मैं मि. करीमुद्दीन के संशोधन को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके सभा का मत लूंगा।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** श्रीमान्, मुझे एक सूचना प्राप्त करनी है। क्या मैं डॉक्टर अम्बेडकर से यह पूछ सकता हूं कि पिछली जनगणना का क्या होगा? पिछले दिन अनुच्छेद 35 को संशोधित करते समय उन्होंने इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा। क्या पिछली जनगणना के स्थान में वे "अन्तिम जनगणना" शब्द रखने के लिए तैयार हैं?

***उपाध्यक्ष:** श्री खांडेकर मंच पर आकर बोल सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैंने मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन को उन्हीं द्वारा संशोधित रूप में तथा श्री भार्गव द्वारा संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया है।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खंड (5) के उपखंड (क) में से निम्नलिखित शब्द निकाल दिये जायें:

'Subject to the provisions of articles 292 and 293 of this Constitution' (इस विधान के अनुच्छेद 292 और 293 के अधीन)'

और अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:

"in accordance with the system of proportional representation with multi-member constituencies by means of cumulative vote' (बहु-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों के साथ सामूहिक मतदान द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अनुसार)।"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (5) के उपखण्ड (क) में 'not more than five hundred representatives of the people of the territories of the States directly chosen by the voters' (अव्यवहित रीति से मतदाताओं द्वारा निर्वाचित राज्यों के प्रादेशिक लोक-प्रतिनिधि, लोक सभा में पांच सौ से अधिक न होंगे), शब्दों के स्थान में 'Such members as shall, in the aggregate, secure one representative for every 500,000 of the population in all the constituent parts of the Union whether States of territories directly governed by the Centre. All members of the People's House shall be elected directly by the votes of all adult citizens. The votes shall be cast in a secret ballot and voting shall be on the basis of Proportional Representation with single Transferable Vote' (लोक सभा में ऐसे सदस्य होंगे जो, सभी संघांगों में, चाहे वे राज्य हों अथवा केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्र, कुल मिलाकर जनसंख्या के 500,000 लोगों के लिये एक प्रतिनिधि प्राप्त करेंगे। लोक-सभा के सभी सदस्य प्रौढ़ नागरिकों द्वारा अव्यवहित रूप से चुने जायेंगे। मतदान गूढ़-शलाका द्वारा होगा तथा एकल संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली के आधार पर होगा।) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (5) के उपखण्ड (क) में 'representatives of the people of the territories of the States directly chosen by the voters' (अव्यवहित रीति से मतदाताओं द्वारा निर्वाचित, राज्यों के प्रादेशिक लोक-प्रतिनिधि), शब्दों के स्थान में 'members directly elected by the voters in the States' (राज्यों के मतदाताओं द्वारा अव्यवहित रीति से निर्वाचित सदस्य) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (5) के उपखण्ड (ख) में 'the States' (राज्यों) शब्द के बाद निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:

'and Territories directly governed by the Centre' (तथा केन्द्र द्वारा अव्यवहित रीति से शासित क्षेत्र)"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (5) के उपखण्ड (ख) में से 'divided, grouped or' (विभाजन, वर्गीकरण अथवा) शब्द निकाल दिये जायें।"

*संशोधन गिर गया।*

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, संशोधन संख्या 1426 जिसका आशय 'of India' (भारत के) शब्द निकालना है, सभा के सामने मतदान के लिये रखा जाये।

***उपाध्यक्ष:** वह बाद को आता है। मैं संशोधनों पर उसी क्रम से मत ले रहा हूं जिस क्रम से वे उपस्थित किये गये थे।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (5) के उपखण्ड (ख) में 'constituencies' (निर्वाचन-क्षेत्रों) शब्द के बाद निम्नलिखित जोड़ दिया जाये:

'So that each State being constituent part of the Union, or territory governed directly by the Centre is a

single constituency by itself, if its population is not less than a million.' (ताकि प्रत्येक राज्य-संघ का अथवा केन्द्र द्वारा अव्यवहित रीति से शासित-क्षेत्र का अंग होने के कारण, यदि उसकी जनसंख्या दस लाख से कम न हो तो, एक स्वतंत्र निर्वाचन-क्षेत्र हो अथवा वह किन्हीं ऐसे निकटस्थ राज्यों अथवा क्षेत्रों के वर्ग में हो जिनकी जनसंख्या मिलाकर दस लाख से कम न हो।)"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (5) के उपखण्ड (ख) में 'constituencies' (कांस्टिट्यूएंसीज) शब्द के बाद फुलस्टाप रखा जाय, उसके बाद ही आने वाला 'and' (एण्ड) शब्द निकाल दिया जाये और शब्द 'the' (दी) बड़े टी से छापा जाये।"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (5) के उपखण्ड (ख) में से 'of India' (भारत के) शब्द निकाल दिये जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (5) के उपखण्ड (ख) का परादिक निकाल दिया जाये।

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1434 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 67 के उपखण्ड (5) में 'members to be elected at any time for' (किसी समय निर्वाचित होने वाले सदस्यों) शब्दों के स्थान में 'representatives allotted to' (निश्चित प्रतिनिधि) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 1434 को प्रस्तावक द्वारा संशोधित रूप में मतदान के लिये सभा के सामने रखता हूं। क्या यह आवश्यक है कि मैं संशोधित संशोधन को पढ़ूं?

***माननीय सदस्य:** जी नहीं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (5) के उपखण्ड (क) में 'last preceding census' (अन्तिम पूर्ववर्ती जनगणना में) शब्दों के स्थान में 'last preceding census of which the relevant figures have been published' (अन्तिम पूर्ववर्ती जनगणना में, जिसके आंकड़े प्रकाशित हो चुके हों) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 का खण्ड (7) निकाल दिया जाये।"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (7) में 'may' (मे) शब्द के स्थान में 'shall' (शैल) शब्द, 'territories' (टेरीटरीज) शब्द के स्थान में 'the territories' (दी टेरीटरीज) शब्द और 'other than States' (अन्य प्रदेशों के) शब्दों के स्थान में 'directly governed by the Centre on the same basis as in the case of States which are constituted parts of the Union' (जो केन्द्र द्वारा अव्यवहित रीति से उसी आधार पर शासित हों जिस आधार पर वे राज्य शासित होते हैं जो संघ के अंग हैं) शब्द क्रमश: रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1450 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 67 के खण्ड (8) के बाद निम्नलिखित नया परादिक रखा जाये:

'provided that such readjustment shall not affect representation to the House of the People until the

[उपाध्यक्ष]

dissolution of the then existing House' (पर ऐसी पुनर्व्यवस्थापना का लोक सभा के प्रतिनिधित्व पर, वर्तमान सभा की समाप्ति तक, कोई प्रभाव न होगा।)"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (8) में 'readjusted' शब्द के बाद (हिन्दी में 'पुनर्व्यवस्थापित' शब्द के पूर्व) 'on the basis of population' (जनसंख्या के आधार पर) शब्द जोड़ दिये जायें।"

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 1452 में दिये हुए पहले विकल्प को सभा के सामने मतदान के लिये रखूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के साथ निम्नलिखित नया खण्ड (10) जोड़ दिया जाये:

'(10) The election to the House of the People shall be in accordance with the system of proportional representation by means of single transferable vote' (लोक सभा के लिये निर्वाचन एकल संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अनुसार होगा।)"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधित खण्ड 67 पर सभा का मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67, संशोधित रूप में, विधान का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

अनुच्छेद 67, संशोधित रूप में, विधान का अंग हो गया।

***उपाध्यक्ष:** सभा बुधवार, 5 जनवरी सन् 1949 तक के लिये स्थगित की जाती है।

*इसके उपरान्त सभा बुधवार, 5 जनवरी सन् 1949 तक के लिये स्थगित हो गई।*

---

Con. 3. VII. 33. 49
250

अंक 7
संख्या 33

बुधवार,
5 जनवरी
सन् 1949 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

**पृष्ठ**

अध्यक्ष का पत्र..... 2211-2212

भारत शासन अधिनियम (संशोधक) विधेयक..... 2212-2283

# भारतीय विधान-परिषद्

बुधवार, 5 जनवरी, सन् 1949 ई.

---

*भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः 10 बजे उपाध्यक्ष महोदय (डॉक्टर एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में समवेत् हुई।*

---

## अध्यक्ष का पत्र

**उपाध्यक्ष** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): सभा का कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व मैं एक पत्र पढ़ कर सुनाना चाहता हूं जो कि मुझे कल शाम अध्यक्ष महोदय से प्राप्त हुआ था। उसमें कहा गया है:

"मैं आप के पत्र के लिये धन्यवाद देता हूं जिसमें कि आपकी तथा सभा की ओर से मुझे मौसम की बधाई दी गई है। मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस सद्भावना से मुझे कितनी प्रसन्नता हुई है। मुझे इसका खेद है कि वर्तमान अधिवेशन के आखिरी कुछ दिनों के लिये भी मैं उपस्थित न हो सका। मैं पहली तारीख को यहां से रवाना होना चाहता था किन्तु 28 तारीख को बुखार तथा बहुत खांसी हो जाने के कारण मैं न आ सका।"

इसके आगे वे कहते हैं:

"मुझे आशा है कि इस स्थिति में उपस्थित न हो सकने के कारण सभा मुझे क्षमा करेगी। मैं अच्छा होने के लिए यथासम्भव प्रयत्न कर रहा हूं। परन्तु कई महीनों से मेरे दिन बुरे कटे हैं। मौसम के कुछ गरम और अच्छा होने पर मुझे आशा है कि मैं स्वास्थ्य लाभ करूंगा जैसा कि मैं सभी गर्मियों में करता हूं।"

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[उपाध्यक्ष]

सभा की अनुमति से मैं इस पत्र का यह उत्तर देना चाहता हूं कि हमें आशा है कि वे अच्छे ही न हो जायेंगे बल्कि पूर्णतया अच्छे हो जायेंगे और मई में जब हम समवेत् होंगे तो वे सभा के कार्य का संचालन करेंगे।

अब हम विषय (2) अर्थात् उस प्रस्ताव पर आते हैं जिसे माननीय सरदार पटेल उपस्थित करेंगे।

---

## भारत शासन अधिनियम (संशोधक) विधेयक

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"भारत शासन अधिनियम सन् 1935 ई. के संशोधक विधेयक पर विचार-विमर्श किया जाये।"

सभा के सम्मुख एक समुचित प्रस्ताव है और इसका सम्बन्ध शासन के विभिन्न क्षेत्रों से है। अनुभव से हमें यह ज्ञात हुआ है कि इन क्षेत्रों में कुछ परिवर्तनों की आवश्यकता है और जहां तक एक क्षेत्र अर्थात् राज्यों का सम्बन्ध है उनमें पिछले वर्ष जो परिवर्तन हुए हैं उन्हें कानूनी तौर से स्वीकार करने तथा नियमित करने की आवश्यकता है। सभा इससे परिचित है, कम से कम सभा के पिछले अधिवेशन में जो सदस्य उपस्थित थे वे इससे परिचित हैं कि व्यापार विवाद अधिनियम को प्रयोग में लाने में कुछ अनियमित बातों और कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। व्यापार विवाद अधिनियम के अधीन प्रान्तों ने विवादों के निर्णय के लिये औद्योगिक न्यायाधिकरण स्थापित किये हैं। इन विभिन्न न्यायाधिकरणों ने अपने काम के सिलसिले में कुछ ऐसे निर्णय किये हैं जिनमें एकरूपता नहीं है। कम से कम उनमें सन्निहित सिद्धान्तों में तो एकरूपता नहीं ही है। इससे पेचीदगियां पैदा हो गई हैं और साधारणतया यह सभी की इच्छा है कि इन निर्णयों में सन्निहित सिद्धान्तों के सम्बन्ध में एकरूपता हो। इसलिये सरकार के सामने यह सुझाव रखा गया है कि एक केन्द्रीय न्यायाधिकरण अथवा पुनर्विचार प्राधिकारी की व्यवस्था होनी चाहिये ताकि इस न्यायाधिकरण के निर्णय

दृष्टान्तों का रूप धारण कर सकें जिनसे प्रान्तीय न्यायाधिकरणों का पथप्रदर्शन हो और उनके निर्णयों में सन्निहित प्रमुख सिद्धान्तों में एकरूपता आ सके। यह एक बात हुई।

दूसरी बात यह है कि हमने प्रान्तीय सरकारों से परामर्श किया और वे बहुत कुछ इसके लिये राजी हो गईं कि फिल्मों के सम्बन्ध में निरीक्षकों का एक केन्द्रीय बोर्ड होना चाहिये। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को शक्ति प्राप्त होनी चाहिये और इस उद्देश्य से भी हम इस अधिनियम को एक प्रकार से संशोधित करना चाहते हैं। प्रान्तीय सरकारों तथा फिल्म के व्यवसाइयों, दोनों ने, इस प्रकार के केन्द्रीय बोर्ड का स्वागत किया है जो फिल्मों के समान रूप से निरीक्षण के लिये सिद्धान्त निश्चित करेगा और इसकी व्यवस्था करेगा कि ये सिद्धान्त कार्य रूप में व्यवहार में लाये जाते हैं। आंकड़ों के सम्बन्ध में पूछताछ के बारे में भी हम कुछ वैधानिक कठिनाइयों का अनुभव कर रहे हैं। इन सभी कारणों से इन विषयों के सम्बन्ध में यह आवश्यक हो गया है कि कार्य-पालन के क्षेत्र में शक्ति प्राप्त की जाये।

हमने यह अनुभव किया कि औपनिवेशिक विधान-मंडल को उपनिवेश के कानून के द्वारा उपनिवेश के किसी अधिकरण को इस प्रकार के कार्य पालन के प्रकार्य प्रदान करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये और इसलिये भारत शासन अधिनियम की धारा 126-ए के अधीन एक संशोधन की आवश्यकता समझी गई। किन्तु प्रान्तीय प्रधान मंत्रियों से, जो स्वभावत: अपने विधान-मंडलों की शक्तियों को द्वेष की दृष्टि से देखते हैं और उन शक्तियों में हस्तक्षेप करने से उत्तेजित हो जाते हैं, हमने अधिक परामर्श किया और उन्हीं की सम्मति से एक सीमित संशोधन, जो कुछ विशेष विषयों तक ही सीमित है, उपस्थित किया जा रहा है।

इसके अतिरिक्त भारत सरकार की औद्योगिक नीति के कारण यह आवश्यक हो गया है कि केन्द्रीय विधान-मंडल को कई उद्योग-धंधों के सम्बन्ध में शक्तियां प्राप्त हों। ये शक्तियां सातवीं अनुसूची की सूची 1 की धारा 34 के अधीन प्राप्त हो सकती हैं किन्तु चूंकि इससे सरकार को केवल विकास सम्बन्धी विषयों के बारे में शक्ति प्राप्त होती है इसलिये यह संदेहात्मक है कि इससे केन्द्र को उत्पादन, प्रदाय अथवा वितरण के सम्बन्ध में यही शक्ति प्राप्त होती है अथवा

[माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल]

नहीं। सभा यह समझ सकती है कि बिना इस शक्ति के विकास पर किसी प्रकार का नियंत्रण केवल नाममात्र का ही और प्रभावशून्य होगा। इसलिये विधेयक में यह प्रस्ताव किया गया है कि संघीय कानून सम्बन्धी सूची में कुछ बातें जोड़ दी जायें किन्तु बाद को प्रान्तीय प्रधान-मंत्रियों से परामर्श करने पर, जिसकी ओर मैं संकेत कर चुका हूं, यह निर्णय किया गया कि विधेयक में जिस प्रबन्ध की कल्पना की गई है उसमें कुछ परिवर्तन किया जाये और खण्ड 2 के अधीन, जो समवर्त्ती सूची में उपरोक्त रीति से संशोधित किया जायेगा, कुछ ऐसे विषय रख दिये जायें जिनसे हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो सके। इससे औपनिवेशिक विधान-मंडल को इन उद्योग-धंधों के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जायेगी और वह उनके सम्बन्ध में कार्यपालन की शक्ति भी प्रदान कर सकेगा।

अब मैं विधेयक के खण्ड (3) पर आता हूं। भारत शासन अधिनियम की धारा 61 की उपधारा (3) के प्रावधानों के कारण इस संशोधन की आवश्यकता समझी जा रही है। उसके अनुसार मद्रास, बम्बई, संयुक्तप्रान्त और बिहार की विधान-परिषद् स्थायी सभाए हैं। किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि परिषदों के एक तिहाई सदस्य तीन वर्ष में अवकाश ग्रहण कर लेंगे। इन प्रावधानों के अधीन संयुक्तप्रान्त में सदस्यों ने पिछले सितम्बर अवकाश ग्रहण करना था और वहां निर्वाचन हो भी चुके हैं किन्तु मद्रास, बम्बई और बिहार में वे मार्च अथवा अप्रैल में होंगे। वहां की सरकारों ने यह विचार किया कि चूंकि विधान के निकट भविष्य ही में प्रयोग मे आने की सम्भावना है। इसलिये उच्च सदन के सदस्यों के अवकाश ग्रहण करने में जो निर्वाचन आवश्यक हो गये हैं वे न किये जाये। इस स्थिति में भारत शासन अधिनियम की धारा 61 की उपधारा (3) के अधीन परिषदों के जिन सदस्यों ने अवकाश ग्रहण करना है उनकी पदावधि बढ़ाने के लिये हमने यह आवश्यक समझा है कि शक्ति प्राप्त की जाये।

अब मैं विधेयक के खण्ड (6) पर आता हूं। सभा को यह विदित है कि समाविष्टि संविदाओं के अनुसार, जिन पर नरेशों ने हस्ताक्षर किये हैं, उड़ीसा के पच्चीस राज्यों, मध्यप्रान्त के पन्द्रह राज्यों, मद्रास के तीन राज्यों, पैंतीस पूर्ण

शक्ति प्राप्त राज्यों, बम्बई के एक सौ पचास अर्ध-अधिकार प्राप्त राज्यों और पूर्वी पंजाब के तीन राज्यों का अधिकार-क्षेत्र भारत सरकार को सौंप दिया गया है और उसने केन्द्रीय विधान-मण्डल द्वारा स्वीकृत अतिरिक्त-प्रान्तीय-अधिकार-क्षेत्र-अधिनियम के अधीन यह शक्ति प्रान्तीय सरकारों को सौंप दी है। इसके अतिरिक्त कुछ राज्य केन्द्रीय सरकार ने अपने अधिकार में ले लिये हैं और उन्हें केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों के अधीन कर दिया है जिन्हें चीफ कमिश्नरों का पद दिया गया है और ये राज्य अब चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों के नाम से कहे जाते हैं। इस श्रेणी में सर्वप्रथम पूर्वी पंजाब के पहाड़ी प्रदेशों के राज्य आते हैं। उनकी संख्या लगभग पन्द्रह से बीस तक है। ये छोटे-छोटे राज्य हैं और इनको एक साथ मिला दिया गया है। उनकी विशेष स्थिति को ध्यान में रखते हुए हमने उन्हें अपने हाथ में ले लिया और उन्हें चीफ कमिश्नर के एक प्रान्त में परिणत कर दिया। इस प्रकार जो अन्य राज्य अधिकार में ले लिये गये वे कच्छ, बिलासपुर और मयूरभंज के राज्य हैं जो उड़ीसा को सौंप दिये गये। ये चीफ कमिश्नर के प्रान्तों में परिणत कर दिये गये हैं। कच्छ के सम्बन्ध में यह उसकी विशेष स्थिति के कारण किया गया। उसकी सीमा का एक बहुत बड़ा भाग पाकिस्तान से मिला हुआ है तथा वह एक अविकसित क्षेत्र है जिसकी बहुत काल तक उपेक्षा हुई है। वहां न कोई रेल है और न कोई आधुनिक यातायात के साधन और न सड़कें आदि हैं। यदि आप एक सहस्र वर्ष प्राचीन कोई मध्यकालीन राज्य देखना चाहें तो आपको भारत में कच्छ का ही राज्य मिलेगा। किन्तु इस राज्य में एक बहुत ही सुन्दर बन्दरगाह है जिसका विकास करने की आवश्यकता है और भारत सरकार का विचार है कि उस पर बहुत-सा धन खर्च किया जायेगा। इसके अतिरिक्त कच्छ में छोटी रेल की पटरियां बिछाई जायेंगी जिससे दीसा से उसका सम्बन्ध स्थापित हो जायेगा। इसके अतिरिक्त वीरामगाम तक बड़ी रेल की पटरियां बिछाने का प्रस्ताव है। इस स्थिति में और इसलिये भी कि उसकी सीमा का बहुत बड़ा भाग दूसरे उपनिवेश से मिला हुआ है, यह आवश्यक समझा गया कि इस राज्य का शासन अपने हाथ में ले लिया जाये और इसे एक पृथक् चीफ कमिश्नर के प्रान्त में परिणत कर दिया जाये।

इन प्रान्तों के शासन के सम्बन्ध में कानूनी स्थिति यह है कि केन्द्रीय विधान-सभा द्वारा सन् 1947 में स्वीकृत अतिरिक्त प्रान्तीय अधिकार-क्षेत्र

[माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल]

अधिनियम की धारा 4 के अधीन चीफ कमिश्नर के नाम से जारी की हुई अधिसूचना में घोषित करके कानून बनाये जाते हैं। इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा अथवा प्रान्तीय सरकारों द्वारा शासन चलाया जाता है। यह स्पष्ट है कि शासन के एकीकरण के जिस उद्देश्य से ये संविदाएं की गई हैं वह कुछ अंश में पूरा हो गया है। केन्द्रीय विधान-मण्डल के अथवा प्रान्तीय विधान-मण्डलों के कानून उन राज्यों में प्रयोग में नहीं लाये जा सकते जो समाविष्ट हो गये हैं अथवा चीफ कमिश्नरों द्वारा शासित हैं। इन राज्यों का कोष उपनिवेश के कोष का अथवा सम्बन्धित प्रान्त के कोष का भाग नहीं है और उसे फिलहाल पृथक् रखना होगा। इसलिये स्वभावत: हमने इस पर विचार किया कि शासन का पूर्ण रूप से किस प्रकार एकीकरण हो सकता है क्योंकि नरेशों ने जिन समाविष्टि-संविदाओं पर हस्ताक्षर किये हैं और जिन्हें भारत सरकार ने स्वीकार किया है उनका उद्देश्य यही है। पहले यह विचार किया गया कि भारत शासन अधिनियम की धारा 290 के अधीन आज्ञा देकर तथा इस प्रकार सीमाओं में परिवर्तन करके तथा क्षेत्रों को बढ़ाकर यह किया जा सकता है किन्तु धारा 290 में समाविष्ट राज्य का कोई उल्लेख नहीं है और इसलिये यह बहुत संदेहास्पद है कि उस धारा के अधीन गवर्नर जनरल आज्ञा देकर समाविष्ट राज्यों के प्रदेश को प्रान्तों से मिलाने का आदेश दे सकता है अथवा नहीं। कई कारणों से प्रेरित होकर ये समाविष्टि-संविदाएं की गईं और अब इन राज्यों के समावेश में विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं है। इसलिये यह आवश्यक समझा गया कि सन् 1935 के भारत शासन अधिनियम में एक ऐसा प्रावधान रखा जाये जिससे उन राज्यों का शासन चलाया जा सके जिनके नरेशों ने उन्हें गवर्नर के प्रान्त का अंग बना कर अथवा चीफ कमिश्नर का प्रान्त बना कर उनका अधिकार-क्षेत्र औपनिवेशिक सरकार को सौंप दिया है। राजनैतिक, वैधानिक तथा शासन-सम्बन्धी कारणों से इस प्रकार का प्रावधान आवश्यक हो गया है। राजनैतिक दृष्टि से इस से समाविष्टि का कार्य शीघ्र ही सम्पन्न हो जायेगा और इन सभी क्षेत्रों को उन प्रान्तों के विधान-मण्डलों में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने का अवसर मिलेगा जिनमें वे समाविष्ट हो गये हैं। इस समय यद्यपि ये राज्य समाविष्ट हो चुके हैं किन्तु कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है जिसके अधीन ये सम्बन्धित प्रान्तों में प्रतिनिधित्व प्राप्त कर सकते हैं। वैधानिक दृष्टि से, इस

प्रावधान के फलस्वरूप उपनिवेश तथा प्रान्तों के विधान-मण्डल इन क्षेत्रों के लिये कानून बना सकेंगे। शासन की दृष्टि से तो पूर्ण समाविष्टि का बहुत महत्त्व है। विधेयक में किसी प्रान्त और समाविष्ट होने वाले निकटवर्ती राज्य के बीच प्रदेशों के समायोजन के सम्बन्ध में भी प्रावधान है। शासन के लिये इस प्रकार का समायोजन लाभप्रद अथवा आवश्यक होने पर भी वह इस समय नहीं किया जा सकता। मैं इसे एक उदाहरण देकर स्पष्ट करता हूं। पंथ पिप्लोदा नाम के चीफ कमिश्नर के प्रान्त में 1211 गांव हैं। सम्भवत: सभा को यह विदित है। ये गांव एक जगह पर नहीं बल्कि विभिन्न जगहों पर स्थित हैं और उनके शासन की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जा सकता। इस क्षेत्र का यथोचित रूप से शासन नहीं हो सकता और वैधानिक दृष्टि से विभिन्न जगहों में स्थित गांवों का यह छोटा-सा क्षेत्र एक समस्या का रूप धारण कर लेता है जिसे तुरन्त ही हल करना आवश्यक हो जाता है। ये राज्य अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण तथा अन्य कारणों से मध्यभारत में ही समाविष्ट किये जा सकते हैं और उसी के साथ इनका शासन किया जा सकता है। वे सब इसी प्रदेश के मध्य में स्थित हैं।

श्रीमान्, मैंने सभा को यथेष्ट रूप से बता दिया है कि सभा के सम्मुख यह प्रस्ताव क्यों उपस्थित किया गया है। उसमें, विशेषतया खण्ड (6) में बहुत से संशोधनों का प्रस्ताव किया गया है। संशोधनों की एक बहुत लम्बी सूची की सूचना दी गई है परन्तु मेरा यह विचार है कि मैंने यथेष्ट रूप से यह बता दिया है कि किन कारणों से प्रेरित होकर यह विधेयक उपस्थित किया गया है। मुझे आशा है कि माननीय सदस्य इन संशोधनों पर फिर विचार करेंगे और उनमें से कई को सभा में उपस्थित करना आवश्यक न समझेंगे।

श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि इस विधेयक पर विचार किया जाये।

***श्री युधिष्ठिर मिश्र** (उड़ीसा राज्य): उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस सभा के विचाराधीन प्रस्ताव के सम्बन्ध में सामान्य वादानुवाद में भाग लेना चाहता हूं और कुछ ऐसे राज्यों के शासन सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करना चाहता हूं जिन्होंने अपनी सारी शक्ति भारत सरकार को सौंप दी है। इस विधेयक के प्रावधानों के अनुसार कुछ राज्य, जैसे कि वे राज्य जो अब हिमाचल प्रदेश में सम्मिलित हैं,

[श्री युधिष्ठिर मिश्र]

चीफ कमिश्नर के प्रान्त का रूप धारण कर लेंगे और कुछ राज्य जैसे उड़ीसा तथा छत्तीसगढ़ के राज्य तथा दक्षिण के राज्य और पुदुकोटा का राज्य निकटवर्ती प्रान्तों के अंगों के रूप में शामिल होंगे। उड़ीसा और छत्तीसगढ़ के राज्यों की समाविष्टि जनवरी सन् 1948 में हुई और तब से ये राज्य उड़ीसा और मध्यप्रान्त के शासन में हैं। नरेशों और भारत सरकार के बीच जो संविदाएं हुईं उन्हीं के फलस्वरूप यह समाविष्टि हुई। राज्यों के लोगों अथवा उनके प्रतिनिधियों का इसमें कोई हाथ नहीं रहा। न उनसे समाविष्टि के सम्बन्ध में कोई परामर्श लिया गया और न उनसे उनके राज्यों के शासन के सम्बन्ध में कोई सम्मति ली गई। उन्हें स्वायत्त शासन के अधिकार से वंचित किया गया है जिसके फलस्वरूप इन राज्यों में बहुत असंतोष है। उड़ीसा के राज्यों का लोकमत, जैसा कि वह अखिल भारतीय राज्य-परिषद् से सम्बद्ध प्रादेशिक परिषद् द्वारा प्रतिध्वनित हुआ है, बिना किसी प्रतिबन्ध के समाविष्टि के पक्ष में नहीं था। उड़ीसा के राज्यों को राजनैतिक, आर्थिक तथा शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए होने के कारण यह भय था कि नौकरियों, विधान-मण्डल और विकास योजनाओं के सम्बन्ध में उड़ीसा प्रान्त का उन पर प्रभुत्व हो जायेगा और वह उनका शोषण करेगा। इसलिये इन राज्यों और प्रान्त के लिए एक शासन के कुछ प्रतिबन्धों के साथ स्वीकार करना चाहते थे। इसलिये उनके और उड़ीसा प्रान्त के बीच इन प्रतिबन्धों को तय करना आवश्यक था। यह नहीं किया गया और इन राज्यों के लोगों का विश्वास प्राप्त नहीं किया गया और जो संविदा संपन्न हुई वह केवल भारत सरकार, प्रान्तीय सरकार और राज्यों के नरेशों के बीच हुई। इन राज्यों की बिना किसी प्रतिबन्ध के समाविष्टि के कारण लोगों को कुछ हद तक दासत्व में और उनका भय निराधार नहीं प्रमाणित हुआ है। सभी प्रकार से उनको पराजित लोगों के समान समझा जाता है और अब इन राज्यों में नरेश के राज के स्थान पर प्राधिकारियों का राज है। निस्संदेह प्रत्येक राज्य में एक परामर्शदातृ-समिति है परन्तु इन समितियों के परामर्श और सुझावों पर कभी भी गम्भीरता से विचार नहीं किया जाता। जहां तक उड़ीसा के राज्यों का सम्बन्ध है वहां दो कार्यपालक पार्षद्

(इक्जीक्यूटिव कांसिलर) हैं परन्तु मैं नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि वे केवल कोतल के घोड़े हैं और उनसे महत्त्वपूर्ण तथा सारपर्ण विषयों के सम्बन्ध में कभी परामर्श नहीं लिया जाता।

श्रीमान्, इस सम्बन्ध में मैं सभा का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूं कि जब उड़ीसा की सरकार ने नरेशों की निजी सम्पत्ति पर विचार किया और नरेशों के साथ एक संविदा पर हस्ताक्षर किये तो इन कार्यपालक पार्षदों से किसी समय भी परामर्श नहीं लिया गया और इस संपत्ति के सम्बन्ध में लोगों का जो मत था उस पर विचार ही नहीं किया गया।

श्रीमान्, इसमें कोई संदेह नहीं है कि लोगों की मांग पूरी करने के लिये प्रान्तीय सरकार ने कुछ कदम उठाये हैं किन्तु समाविष्टि के उपरान्त यत्र तत्र जो कुशासन हुआ है उसको दृष्टि में रखते हुए उनका कुछ भी महत्त्व नहीं रह जाता।

श्रीमान्, दुराचार बढ़ गया है और पहले से अधिक शोषण होने लगा है। प्रत्येक गांव शराब की दुकान में परिणत हो गया है और शराबखोरी बढ़ गई है। राज्य के अस्पतालों के लिये औषधि आदि के लिये जो अनुदान मिलता था उसमें कमी कर दी गई है। राज्य के कर्मचारियों का विशेषकर कम वेतन पाने वाले कर्मचारियों का आधारभूत वेतन कम कर दिया गया है और प्रारम्भिक पाठशालाएं जिनका प्रबन्ध उनके राज्य की सरकार करती थी, सहायता पाने वाले पाठशाला बना दिये गये हैं जिसके फलस्वरूप इन प्रारम्भिक पाठशालाओं के अध्यापकों को न मंहगाई का भत्ता मिलेगा और न प्राविडेंट फण्ड की सुविधा। कुछ राज्यों में सड़क बनाने का काम भी रोक दिया गया है।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, नरेशों को निजी पूंजी प्रदान की गई है उसके साथ ही उनके सम्बन्धियों को कुछ भत्ता देने का प्रस्ताव है। राज्यों के नरेशों को तथा अथवा उनके सम्बन्धियों को अधिक भत्ता देने का प्रस्ताव लोगों की इच्छा के विरुद्ध है और कोई कारण नहीं है कि संविदा के अधीन उनको जो कुछ दिया गया है उससे अधिक धन उन लोगों को दिया जाये। किन्तु, श्रीमान्, लोगों की इच्छा न होते हुए भी प्रान्तीय सरकार उनके सम्बन्ध में विचार करने के लिये

[श्री युधिष्ठिर मिश्र]

तैयार है। मैं कह नहीं सकता कि उस प्रस्ताव के सम्बन्ध में क्या किया गया है। श्रीमान्, राज्यों के समाविष्ट होने के पूर्व तथा उसके उपरान्त प्रान्तीय सरकार ने लोगों को कुछ आश्वासन दिये थे और यह कहा था कि प्रान्तीय सरकार वेतन में विशेषकर कम वेतन पाने वाले राज्यों के कर्मचारियों के वेतन में कोई कमी नहीं करेगी और लोगों की शिक्षा की तथा अन्य प्रकार की जो सुविधाएं प्राप्त थीं उन्हें प्रान्तीय सरकार किसी प्रकार कम न होने देगी किन्तु कई मामलों में उसका आश्वासन मिथ्या प्रमाणित हुआ है और उसने समाविष्टि के पूर्व लोगों को जो वचन दिया था उसे पूरा नहीं किया है।

श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि केन्द्रीय सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रान्तीय सरकार को विकास-कार्य को पहले आरम्भ करने के लिये आदेश दे और ऐसा प्रबन्ध करे कि लोगों को जीवनोपयोगी थोड़ी बहुत जो सुविधाएं प्राप्त थीं उनसे वे वंचित न किया जायें। इसलिये मैं तो यह पसंद करता कि प्रान्तीय सरकार को शासन सौंपने के पूर्व, जो कि इस विधेयक का उद्देश्य है, भारत सरकार को राज्यों के वर्तमान शासन की जांच करा लेनी चाहिये थी और इस सम्बन्ध में निश्चय कर लेना चाहिये था कि राज्यों के लोगों के किसी वर्ग के हितों के विरुद्ध कुछ न किया जायेगा।

श्रीमान्, संशोधक विधेयक में एक प्रावधान इस प्रकार का है कि इसके पूर्व कि गवर्नर जनरल आज्ञा देंगे राज्यों को किसी प्रान्त का अंग बनाने के सम्बन्ध में उस प्रान्त की सरकार से परामर्श लिया जायेगा किन्तु इस सम्बन्ध में लोगों के विचार ज्ञात करने के बारे में कोई प्रावधान नहीं है। जब राज्यों के लोगों के भाग्य का ही निर्णय होने जा रहा है तो यह उचित ही होगा कि उनसे परामर्श लिया जाय। यदि भारत सरकार के लिये इस सुझाव को स्वीकार करना सम्भव नहीं है तो आज्ञा देने के पूर्व कम से कम राज्यों के लोकप्रिय संगठन से इस सम्बन्ध में परामर्श लिया जाये कि ये राज्य किस प्रकार प्रान्त के अंग बनाये जायेंगे।

श्रीमान्, मेरे विचार से विधान के स्वीकार होने और प्रयोग में आने तक के लिये राज्यों के प्रतिनिधियों से उनके सभी प्रश्नों के सम्बन्ध में परामर्श लिया जाय और इन प्रतिनिधियों के परामर्श के अनुसार शासन चलाया जाये।

श्रीमान्, यदि मेरे सुझाव के अनुसार राज्यों के लोगों को कोई वैधानिक प्रत्याभूतियां नहीं दी जा सकती हैं तो प्रस्तावित धारा 290ए के अधीन आज्ञा देने के पूर्व गवर्नर जनरल को प्रान्त को इस प्रकार का आदेश देना चाहिए कि कुछ विशेष प्रश्नों के सम्बन्ध में उसे राज्यों के प्रतिनिधियों के परामर्श के अनुसार कार्य करना चाहिये।

**श्री रामचन्द्र उपाध्याय** (मत्स्य संघ): सभापति जी, मैं एक रियासती जनता के नुमाइन्दे के नाते इस ऐमेंडिंग एक्ट का स्वागत करता हूं, विशेष रूप से दफा 6 का। जो रियासत की जनता के फायदे के लिये तरमीम इस वक्त की जा रही है उसका मैं समर्थन करता हूं और मैं श्री युधिष्ठिर मिश्र ने जो कुछ अपने विचार जाहिर किये हैं उनके खिलाफ कहना चाहता हूं। मैं तो समझता हूं यह हमारे बहुत फायदे की चीज है। इस समय यदि हम अपनी छोटी मोटी बातों की तरफ ध्यान दे कर चलेंगे तो हम इससे कुछ लाभ न उठा सकेंगे।

मैं देखता हूं कि थोड़े ही दिनों पहले रियासतों का मामला हिन्दुस्तान में इतना कठिन हो रहा था और विदेशी हुकूमत जब यहां से गई थी उस वक्त विदेशी लोग यह समझते थे कि हिन्दुस्तान रियासतों के बोझ से दब कर खत्म हो जायेगा। मगर हिन्दुस्तान की हुकूमत के लिये यह बड़ी मुबारकबादी का विषय है कि आज हमको दफा 290ए जैसी एक धारा आज ही इंडिया एक्ट के अन्दर बनानी पड़ी। हमने एक साल में इतनी तरक्की कर ली है। और जो कुछ झगड़े अभी रियासतों के बाकी हैं उन्हें भी बहुत जल्द खत्म कर लेंगे। सबसे विशेष बात इस एक्ट में यह है कि:

> "Where full and exclusive authority, jurisdiction and powers for and in relation to the Government of the Indian State of any group of such States are for the time being exercisable by the Dominion Government the Governor General may by Order direct:–"

[श्री रामचन्द्र उपाध्याय]

रियासती जनता को रियासतों के मामलों को खत्म कराने का सबसे सीधा तरीका यह है कि सब राजाओं से उनके समस्त अधिकार इंडिया गवर्नमेंट को सौंपवा दें। और जैसा सरदार पटेल ने बतलाया कि बहुत-सी रियासतें इस पर रजामन्द हो गई हैं लेकिन बहुत-सी ऐसी हैं जो रजामन्द नहीं हैं। मैं समझता हूं कि हैदराबाद के खत्म हो जाने के बाद कोई राजा ऐसा नहीं होगा कि इस शर्त के मानने में अड़चन डाल सके। लेकिन हमारे दूसरी तरह के राजा महाराजा वहां पैदा हो रहे हैं और वे हैं हमारी रियासतों के सार्वजनिक कार्यकर्ता। आज और इससे पहले भी भोपाल की बाबत पढ़ कर दु:ख हुआ है। रियासत के बहुत से कार्यकर्ता और नेता यह समझते हैं कि हम छोटी-छोटी रियासतों को अलग रखकर अपना-अपना नेतृत्व कायम रख सकेंगे। लेकिन वह उनकी बड़ी सख्त गलती है और वे तमाम हिन्दुस्तान को एक बनाने में रुकावट डाल रहे हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि भोपाल जैसी एक छोटी रियासत को वे समझते हैं कि हम अलग रख सकते हैं और चतुर नारायण मालवीय जैसे कासिम रिजवी यह समझते हैं कि एक छोटी रियासत को अलग रख कर हम नेता बन सकते हैं। इसी तरह टेहरी की बाबत भी मैंने स्टेटमेंट देखा था। अगर हम हिन्दुस्तान की तरक्की करना चाहते हैं तो सबसे पहले हम सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को अपने दिमाग साफ कर लेने चाहियें। जैसा सरदार पटेल कह चुके हैं और हम भी देखते हैं कि अब राजा हिन्दुस्तान की तरक्की के बीच खड़े नहीं हो सकते। तब हम नई रुकावटें डालें। यह बड़े अफसोस की बात है। इसी लिये मैं कहता हूं कि यदि हम देश की तरक्की चाहते हैं तो हमें अपना दृष्टिकोण साफ कर लेना चाहिये।

दूसरी बात इस दफा में है कि रियासतों को चीफ कमिश्नर्स प्राविन्सेज बनाना। यह बात ठीक है। हम को रियासतों को हिन्दुस्तान के किसी हिस्से में मिलाने के पहले चीफ कमिश्नर्स प्राविन्स या गवर्नर्स प्राविन्स बनाना पड़ेगा। कुछ लोग चाहते हैं कि पहले हमारी राय ली जाये। लेकिन अगर ऐसा करने लगें तो देश की तरक्की काफी दिनों तक रुक जायेगी। अगर प्लेबिसाइट करते हैं या रिफरेन्डम करते हैं तो मैं समझता हूं कि रियासतों की जनता इतनी पिछड़ी हुई है कि वह इस मामले को अच्छी तरह समझ नहीं सकती और इसको ठीक ढंग से तय नहीं कर सकती। हिन्दुस्तान की तरक्की इतनी जल्दी हो रही है कि अगर

हम रियासत वाले इस पर रिफरेन्डम करने लगें तो और भी देर लगेगी। तो ऐसी बातों की तरफ हमें ख्याल नहीं करना चाहिये। कांग्रेस सभी रियासतों में है और उनकी इच्छानुसार ही रियासतों को मिला लिया जाये तो मैं समझता हूं काफी होगा। ज्यादा करने से गड़बड़ होने की आशंका है।

श्री युधिष्ठिर मिश्र ने बताया है कि बहुत-सी स्टेट्स का एडमिनिस्ट्रेशन इस तरह चल रहा है कि इसकी हालत देखते हुए यह ख्याल होता है कि यहां जो कुछ हमारे मुताल्लिक किया जा रहा है उससे तो वे पहले अच्छे थे। इसमें कोई शक नहीं कि पहले जब छोटी-छोटी रियासतें थीं वहीं उनके हाई कोर्ट होते थे वहीं एडमिनिस्ट्रेशन हुआ करता था, इससे हमें आसानी हुआ करती थी। जो तकलीफ होती थी उसको हम जा कर फौरन खत्म कर सकते थे। लेकिन अब हम किसी बड़े सूबे में मिल जाने से ऐसी चीज न कर सकेंगे। हम इसको बहुत बड़ी बात मानते हैं। लेकिन अब हिन्दुस्तान की तरक्की के लिये, देश की उन्नति के लिये, हमको अपने छोटे-छोटे फायदे और नुकसान को छोड़ देना पड़ेगा। हमको यह देखना पड़ेगा कि छः महीने बाद हमारा भला किसमें है। थोड़े दिनों के फायदे के बजाय लम्बा फायदा देखना चाहिये और इसी में हमारी व देश की भलाई है।

***उपाध्यक्षः** आप घंटी की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं।

**श्री रामचन्द्र उपाध्यायः** यह आज मुमकिन है कि हमको किसी प्राविंस में मिल जाने से कुछ दिनों के लिए तकलीफ हो। आज भरतपुर या धौलपुर के रहने वाले यदि यू. पी. में मिल जायें तो लखनऊ या इलाहाबाद जाना पड़ेगा। तो क्या हम नहीं देखते हैं कि सूबे के दूसरे लोग भी काफी दूर चल कर वहां जाते हैं। तो ऐसी छोटी-छोटी जो हमारी तकलीफें हैं उनको छोड़कर हमें यह देखना पड़ेगा कि भविष्य किसमें ज्यादा उज्ज्वल है और किसमें हम ज्यादा से ज्यादा फायदा उठा सकते हैं।

इसलिये जो एक दफा 6 इस तरह बनाई गई है मैं समझता हूं यह बिल्कुल उचित है और उसको लोगों को बिला किसी ऐमेंडमेंट के मंजूर कर लेना चाहिये और अपनी तकलीफों का ख्याल थोड़े दिनों के लिये नहीं करना चाहिये।

***श्री बी. एच. खार्डेकर** (कोल्हापुर): उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस विधेयक का स्वागत करता हूं। वास्तव में इसे उपस्थित करने में कुछ विलम्ब हो गया है।

[श्री बी.एच. खार्डेकर]

कुछ समाविष्ट राज्यों के सम्बन्ध में जो संदेहास्पद स्थिति उत्पन्न हो गई है उसका इस विधेयक से निराकरण हो जायेगा। निस्सन्देह इस विधेयक में भी कुछ दोष हैं जिन्हें मैं बाद को बताऊंगा।

श्रीमान्, पहले मैं कुछ सामान्य बातों को बताऊंगा और फिर कुछ विशेष बातों पर आऊंगा। श्रीमान्, आप जानते हैं कि अंग्रेज भारत से चले गये...

***उपाध्यक्ष:** मेरा यह सुझाव है कि माननीय सदस्य केवल इन खण्डों की ओर संकेत करें वे विभिन्न खण्डों के सम्बन्ध में विशेषतया खण्ड 6 के सम्बन्ध में जो राज्यों ही के बारे में है। सामान्य वादानुवाद में भी भाग ले सकते हैं। इस प्रकार हम इस सभा के समय में बचत कर सकेंगे।

**श्री बी. एच. खार्डेकर:** जी हां, श्रीमान्, अब मैं विशेष बातों पर आता हूं। श्रीमान्, लगभग ग्यारह महीने हुये कि कुछ राज्य समाविष्ट किये गये थे और चूंकि इस सम्बन्ध में कोई कानून नहीं था इसलिये उन्हें प्रान्तों में समाविष्ट नहीं किया जा सका। बहुत काल तक जो दोष था उसका इस विधेयक से निराकरम हो जाता है। यह दोष किस प्रकार का था इसका मैं कुछ ही समय लेकर वर्णन करूंगा। इन दस या ग्यारह महीनों में प्रशासकों का स्वेच्छाचारी शासन था। इससे प्रान्तीय सरकारों को जो असुविधा हुई वह तो हुई ही परन्तु इससे सुविधा कुछ भी नहीं हुई। मैं एक ऐसा उदाहरण देता हूं जो ध्यान देने योग्य है और वह है शिक्षा के सम्बन्ध में। एक राज्य में और सम्भवत: कई राज्यों के पिछले शासन-काल में शिक्षा नि:शुल्क थी। प्रारम्भिक कक्षाओं से लेकर एम.ए. और एम.एस.सी. कक्षाओं तक शिक्षा नि:शुल्क प्राप्त की जा सकती थी। समाविष्टि के उपरान्त शुल्क लिया जाने लगा है। किन्तु इसके विपरीत दुर्भाग्य से अध्यापकों को अब भी वही वेतन दिये जा रहे हैं। एक या दो मिनट लेकर मैं प्रशासक के शासन का सामान्य रूप से वर्णन करूंगा। लगभग सभी महत्वपूर्ण जगहों में ये प्रशासक आई.सी.एस. के पुराने लोग हैं। अपने शिक्षालय में हम आई.सी.एस. के किसी आदमी से यह समझते थे कि वह न भारतीय है, न शिष्ट और सेवक। निस्सन्देह आज उनमें से अधिकांश भारतीय हैं किन्तु अन्य विशेषण अभी उसी प्रकार हैं। अधिकांश राज्यों में जो कुछ भी राजनैतिक जीवन था वह एकाएक

समाप्त हो गया। पुराने स्वेच्छाचारी शासक का स्थान—यद्यपि किसी प्रकार का वैधानिक शासन प्रयोग में आने से नरेश स्वेच्छाचारी नहीं रह गये थे—अब नये सरकारी स्वेच्छाचारी शासक ने ले लिया। श्रीमान् मैं संक्षेप में यह बताऊंगा कि एक राज्य में कैसी स्थिति उत्पन्न हो गई। दण्ड कार्य-प्रणाली संहिता की धारा 144 स्थायी रूप से लागू है। वहां पक्षपात भी दिखाई देता है। और एक विशेष समूह को कुछ सुविधाएं दी जाती हैं। गिरफ्तारियां हुईं और लोग बिना किसी काल-सीमा के अथवा आठ या नौ महीनों के लिये हिरासत में रखे गये। इसी कारण, श्रीमान्, इस सभा के अधिकांश सदस्यों को जिन्हें वैयक्तिक स्वातंत्र्य से प्रेम था, इसकी बड़ी चिन्ता थी कि अनुच्छेद 15 में 'बिना यथोचित कानूनी कार्यवाही के' शब्द प्रविष्ट किये जायें। कई पत्रों पर जिन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से भी प्रशासक की आलोचना की थी अथवा आलोचना करने का प्रयास किया था, प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस सिविल सेवक की भाषा और चाहे जो कुछ हो किन्तु शिष्ट नहीं है। वे ऐसे शब्द प्रयोग में लाते हैं जैसे "मैं आप को गोली मार दूंगा, मैं आपको गिरफ्तार कर लूंगा, मैं आपका, आपके परिवार का तथा आपके बच्चों का देशनिकाला कर दूंगा"। ऐसे असभ्य उत्पीड़क उस सरकार को दुर्भाग्य से बदनाम करते हैं जिसके कि वे प्रतिनिधि हैं। एक उच्च पदाधिकारी केवल नौकरी से नहीं निकाल दिया गया किन्तु उन्हें देशनिकाले की सूचना भी दी गई। वास्तव में वह उच्च पदाधिकारी बहुत प्रतिष्ठित है वह एक प्रान्तीय सरकार का मंत्री रह चुका है और विधान-परिषद् का भी सदस्य था तथा अन्य कई पदों का भी अधिकार उसे प्राप्त था। यदि मैं संसद् की भाषा को ही प्रयोग करना चाहूं और फिर भी सबल भाषा का प्रयोग करूं तो, श्रीमान् मैं यह कहूंगा कि यह शासन काल स्वर्ग का उल्टा है। मैं राज्य विभाग से प्रार्थना करता हूं कि वह ऐसे पदाधिकारियों के आचरण की जांच करवाये। मैं यह जानता हूं कि कुछ राज्यों में 'पागल' मन्त्रिमण्डलों के कारण ऐसे पदाधिकारी आ गये और उनका आना आवश्यक हो गया किन्तु सरकार के प्रतिनिधियों को इन 'पागल' मंत्रिमण्डल से भी आगे बढ़ने का प्रयास न करना चाहिये।

इस विधेयक में एक दोष यह है कि कुछ राज्यों की समाविष्टि के सम्बन्ध में प्रान्तों से तो परामर्श लिया जायेगा परन्तु इन राज्यों के लोगों से परामर्श नहीं लिया जायेगा। आत्मनिर्णय ही वास्तव में जनतंत्र का सार है। यदि आप लोगों को

[श्री बी.एच. खार्डेकर]

इसका निर्णय करने के अधिकार से वंचित कर रहे हैं कि वे किस प्रान्त को अथवा चीफ कमिश्नर के प्रान्त को चुनें तो आप उन्हें जनतंत्र के अधिकार से ही वंचित कर रहे हैं। और इसी कारण यथोचित समय पर मैं पं. ठाकुरदास भार्गव के संशोधन का समर्थन करूंगा। इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, मैंने उस नीति के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहे हैं जिसका भारत सरकार ने समाविष्टि के सम्बन्ध में अनुसरण किया है। भारत का मानचित्र सुन्दर, स्वच्छ तथा स्पष्ट बना देने के लिए राष्ट्र सरदार पटेल का आभारी है। किन्तु समाविष्टि के सम्बन्ध में जो नीति अपनाई गई है उसमें कुछ दोष रहे हैं और उसके बारे में कुछ भ्रम भी रहा है। भारत सरकार की सुघोषित नीति यही रही है कि राष्ट्र तभी समाविष्ट किया जाये जब कि वहां का नरेश तथा वह लोग यह चाहें। प्रथम तो इस नीति के विरुद्ध मुझे एक सैद्धांतिक आपत्ति करनी है क्योंकि हम यह घोषित कर चुके हैं कि लोग ही सर्वसत्ताधारी हैं। यदि थोड़ी देर के लिए यह माना जाये कि कोई नरेश बड़ी अकड़ वाला है और अपने अधिकारों को नहीं त्यागना चाहता है किन्तु लोग समाविष्टि के पक्ष में हैं, क्योंकि अधिकांश राज्यों में संभवत: यही स्थिति हो, तो इस दिशा में हम क्या करेंगे। हमें कुछ चालें चल कर उसे फुसलाना होगा। यह उचित न होगा। दूसरी बात यह है कि बहुत नरेश एकाएक बहुत ही देशभक्त हो गये हैं और चूंकि उन्हें अपने आर्थिक हितों का अधिक ध्यान है इसलिये उन्होंने यह निश्चय ही किया है कि वे भारतीय संघ के प्रति वफादार रहेंगे। ये लोग जो पहले देश तथा जनसाधारण के शत्रु थे, जो गांधी जी के नाम मात्र से कुछ हो जाते थे जिनको गांधी टोपी देखने मात्र से ही सरदर्द हो जाता था, वे आज एकाएक देशभक्त हो गए हैं और समाविष्टि के लिए सहमत हो गये हैं। सरदार पटेल के इन लोगों के प्रति इस प्रकार के वर्णन से मुझे कोई चिढ़ नहीं है। आखिर राज्य का शासन चलाने के लिए कुछ राजनीतिज्ञता की आवश्यकता होती ही है और यदि किसी बकरे को मारना होता है तो उसे पहले खिलाना-पिलाना पड़ता है। इसलिए जहां कहीं राज्यों का अस्तित्व मिटाना होगा, इन लोगों से कुछ समय के लिए सुखद बातें कहनी होंगी। किन्तु लोगों का क्या होगा? इस सम्बन्ध में मैं बहुत ही स्पष्ट घोषणा चाहता हूं। निस्संदेह, अन्त में सभी राज्य समाप्त हो

जायेंगे। मैं यह नहीं चाहता कि इस देश में कहीं भी पाशविकता और सामन्तवाद के अवशेष रहें। किन्तु समाविष्टि का कार्य इस प्रकार किया जाना चाहिये कि जब कभी राज्यों को हड़प लिया जाये तो किसी प्रकार की कटुता शेष न रह जाये और यह समाविष्टि सभी के सुखसाधन तथा हित साधन के लिए हो। मैं यह जानता हूं कि सरदार पटेल बहुत ही महान् पुरुष हैं और बहुत ही व्यावहारिक राजनीतिज्ञ भी हैं और मैं उनको बुजुर्ग मानकर उनके सामने आदरपूर्वक अपने कुछ विनम्र सुझाव रखना चाहता हूं। श्रीमान्, उन राज्यों के सम्बन्ध में जो अभी समाविष्ट नहीं हुए हैं, जनमत-संग्रह के लिये एक तिथि निश्चित की जानी चाहिये। मेरे विचार से लोगों से परामर्श लेना चाहिये और सम्बन्धित राज्य के नरेश को तीन महीने पूर्व राज्य को छोड़ देने तथा यूरोप अथवा अमेरिका जैसे देशों में भ्रमण के लिए चले जाने की सलाह देनी चाहिये। तब कुछ समय बाद सरदार पटेल को थोड़े समय के लिए उस राज्य में जाना चाहिए और लोगों के नेताओं से मित्रतापूर्ण विचार-विमर्श करना चाहिये। इससे आधा संघर्ष समाप्त हो जायेगा। मेरे विचार से भारत के नैतिक तथा आध्यात्मिक शस्त्रागार में एक जादू का हथियार है और वह जादू का हथियार अथवा मन्त्र पं. नेहरू हैं। जनमत-संग्रह के कुछ ही दिन पूर्व उस राज्य में जाने के लिये पंडित नेहरू से कहना चाहिये और उनसे एक छोटा-सा भाषण देने के लिए भी कहना चाहिए। मेरा यह विश्वास है कि कोई भी भारतीय हृदय ऐसा नहीं है जो पंडित नेहरू से प्रभावित न होता हो। हम लोग, जिनका गांधीवाद में विश्वास है, इस प्रकार के यथोचित साधनों से उच्च उद्देश्यों की पूर्ति करेंगे। हमारे उद्देश्य ही नहीं बल्कि उन्हें प्राप्त करने के साधन भी प्रशंसनीय होने चाहियें। इसलिए सामन्तवाद के अवशेषों को समाप्त करने का प्रयास करने में भी हमें ऐसे साधन अपनाने चाहियें जो राष्ट्रपिता के सिद्धांतों के अनुरूप हों।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस सभा को जिस प्रश्न पर विचार करना है उसका इस विधेयक के प्रावधानों से उतना सम्बन्ध नहीं है जितना कि इस सैद्धांतिक प्रश्न से कि औपनिवेशिक सरकार को किस सीमा तक प्रान्तीय मामलों में हस्तक्षेप करना चाहिये। श्रीमान्,

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

मैं इसे स्वीकार करता हूं कि सद्यस्कृत्यता की स्थिति में यह आवश्यक ही नहीं किन्तु उचित भी है कि औपनिवेशिक सरकार को हस्तक्षेप का अधिकार होना चाहिये। हमने यह विचार करना है कि इस विधेयक के प्रावधान कहां तक हस्तक्षेप की यथोचित सीमा के अन्दर रहे हैं अथवा क्या कोई ऐसा समय भी आ सकता है जब कि इस विधेयक द्वारा प्रयोग में आने वाली शक्तियों का दुरुपयोग किया जायेगा जिसके फलस्वरूप प्रान्तीय शासक असंतुष्ट हो जायेंगे। श्रीमान्, हमारे सम्मुख जो विधेयक है उसके सम्बन्ध में बहुत से संशोधन प्रस्तावित हैं। मैं यह भविष्यवाणी कर ही सकता हूं कि इनमें से अधिकांश उपस्थित नहीं किये जायेंगे और जो उपस्थित किये भी जायेंगे तो स्वीकार न होंगे। सिवाय मेरे माननीय मित्र संयुक्त प्रान्त के प्रधान मन्त्री के संशोधनों के क्योंकि उनके वजनी होने के कारण उनमें से कुछ स्वीकार हो जायेंगे। इस विधेयक के सम्बन्ध में उपस्थित किये हुये संशोधनों के बारे में एक विचित्र बात मैं यह देखता हूं कि वे एक समान है। अधिकांश खण्डों के सम्बन्ध में किसी न किसी सदस्य ने निकाल देने का प्रस्ताव किया है। उदाहरणार्थ खंड 1 की आवश्यकता नहीं समझी गई है और उसे निकाल देने के सम्बन्ध में संशोधन मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी और श्री भारती जैसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने प्रस्तावित किया है। माननीय पंडित पंत चाहते हैं कि खण्ड 2 निकाल दिया जाये और मेरे माननीय मित्र श्री चालिहा और श्री लक्ष्मीनारायण साहू चाहते हैं कि खंड 3 निकाल दिया जाये। माननीय पंडित कुंजरू चाहते हैं कि खण्ड 5 निकाल दिया जाये। राय बहादुर लाला राजकुंवर चाहते हैं कि खण्ड 4 और 6 निकाल दिये जायें। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी चाहते हैं कि खण्ड 7 के उपखण्ड (ख) और (ग) निकाल दिये जायें। इसलिए, श्रीमान्, यदि आप इन संशोधनों के सभी प्रस्तावकों की इच्छा पूरी करने जा रहे हैं तो इस विधेयक का बहुत थोड़ा अंश शेष रह जायेगा। (*हास्य*) श्रीमान्, मुझे यह दिखाई देता है कि इस सभा के सदस्य यदि किसी खण्ड को चाहते हैं तो वह खण्ड 7 का उपखण्ड (1) है।

***उपाध्यक्ष:** आप यह कैसे कहते हैं कि उसे भी सभी सदस्य चाहते हैं?

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं यह देखता हूं कि अन्य सभी खण्डों के सम्बन्ध में किसी न किसी सदस्य का निकाल देने का प्रस्ताव है और इसलिये...

***उपाध्यक्ष:** तब तर्कसंगति की दृष्टि से आप केवल यह कह सकते हैं कि दस सदस्य सात खण्डों को नहीं चाहते हैं। अपने शिक्षा-काल में मुझे यह सिखाया गया था कि इस प्रकार का आशय निकालना खतरनाक सिद्ध होता है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** श्रीमान्, यह ठीक है। इस विधेयक में सात खण्ड हैं जिनमें से छ: के सम्बन्ध में किसी न किसी सदस्य का यह प्रस्ताव है कि उनमें से कोई न कोई संशोधन निकाल दिया जाये। इसलिये केवल खण्ड (7) का उपखण्ड (क) ही ऐसा रह जाता है जिस पर सभा एक मत से विचार करना चाहती है और जिसे निकाल देने के सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): यह सच नहीं है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** और इसलिये, श्रीमान्,

***उपाध्यक्ष:** एक माननीय सदस्य कहते हैं कि यह बात भी सच नहीं है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** यह हो सकता है किन्तु इस विधेयक का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रावधान वही है और मैं इस प्रावधान का, जिसका आशय यह है कि ऐसे उद्योग-धंधों के विकास का अधिकार, जो आवश्यकीय समझे जायें, औपनिवेशिक सरकार को प्राप्त होना चाहिये। मैं विभिन्न प्रान्तों में उद्योग-धंधों के विकास को बहुत दिलचस्पी से देखता रहा हूं और मुझे यह खेद के साथ कहना पड़ता है कि राष्ट्रीय सरकार के इस थोड़े से कार्यकाल में भी यदि यह विषय केवल औपनिवेशिक सरकार के हाथ में होता तो उद्योग-धंधों का अधिक विकास हुआ होता। इसलिये इस खण्ड का समर्थन करने में अर्थात् इस खण्ड के उस अंश का समर्थन करने में, जिसके अधीन उद्योग-धंधों के विकास का पूरा कार्य भारत सरकार को सौंप देने का प्रस्ताव है, मुझे किसी प्रकार का संकोच नहीं है। किन्तु इस खण्ड के अन्तिम भाग से मैं सहमत नहीं हूं अर्थात् इससे कि प्रान्त में व्यापार और वाणिज्य तथा पदार्थों का उत्पादन और प्रदाय किसी समय पूर्णतया भारत सरकार के नियंत्रण में आ जायेगा। मेरी यह धारणा है कि जहां तक विशेष पदार्थों के उत्पादन तथा प्रदाय का सम्बन्ध है प्रान्तों के लिये उनके प्रदाय पर, यदि प्रान्त नहीं चाहते हैं तो कोई आयंत्रण न गाना चाहिये किन्तु यदि वे चाहते हैं तो इस सम्बन्ध में कोई अन्य अनुच्छेद रखना चाहिये। यह समझा जा सकता

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

है कि मैं कई बातों को पहले से मान ले रहा हूं परन्तु साथ ही मैं नम्रतापूर्वक यह निवेदन करता हूं कि मेरे माननीय मित्र पंडित पंत द्वारा उपस्थित किये जाने वाले संशोधन में जो प्रस्ताव है उसका सारी सभा को समर्थन करना चाहिये ताकि प्रान्त अपने उद्योग-धंधों से सम्बन्धित व्यापार और वाणिज्य के सम्बन्ध में स्वतंत्रता से काम कर सकें।

इन शब्दों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** मि. नजीरुद्दीन अहमद!

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस विधेयक में सन्निहित सिद्धान्तों से साधारणतया सहमत हूं सिवाय एक अंश के सम्बन्ध में अर्थात् खण्ड 6 के एक अंश के सम्बन्ध में।

***उपाध्यक्ष:** यदि यह बात है तो क्या मैं आपसे अनुरोध कर सकता हूं कि आप पांच मिनट से अधिक न लें?

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मेरे लिये पांच मिनट बहुत काफी हैं।

श्रीमान्, इस खण्ड के सम्बन्ध में मुझे केवल उस प्रावधान से आपत्ति है जिसके अनुसार समाविष्ट होने वाले राज्यों को किसी गवर्नर के प्रान्त का अंग बना लिया जायेगा अथवा चीफ कमिश्नर का प्रान्त बना लिया जायेगा। श्रीमान्, मैंने किसी राजनैतिक दृष्टि से नहीं बल्कि कानून की दृष्टि से यह बात उठाई है। यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि इस विधेयक के माननीय प्रस्तावक महोदय ने जब इस विधेयक को उपस्थित किया था तो वे साधारण सरदार पटेल ही थे किन्तु मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई है कि आज उन्होंने कानून के डॉक्टर की विद्वत्ता का परिचय दिया है। वे इस उपाधि के लिये हर प्रकार योग्य हैं। मुझे विश्वास है कि जिन कानूनी बातों को मैं उनके सामने रखने जा रहा हूं उन पर वे स्वयं विचार करेंगे।

कुछ राज्यों ने, जो समाविष्ट हुए हैं उन्होंने यह अधिकार औपनिवेशिक सरकार को दे दिया है कि वह जिस प्रकार चाहे और जिस साधन से चाहे उनका

प्रबन्ध अथवा 'प्रशासन' करे। मेरा यह तर्क है और मैं इसे उचित अवसर पर विस्तृत रूप से उपस्थित करूंगा कि इन राज्यों के नरेशों की ओर से राज्यों का प्रशासन सौंपने की जो रियायत दिखाई गई है उसमें इन राज्यों को इस प्रकार प्रान्तों में परिणत करना तथा प्रान्तों का अंग बनाना सम्मिलित नहीं है कि इनका अस्तित्व ही मिट जाये। संविदा द्वारा इस प्रकार की शक्ति प्रदान नहीं की गई।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): केवल "जैसे कि इस प्रकार का क्षेत्र अंग हो गया हो" शब्द हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मैंने "जैसे कि" शब्दों की ओर ध्यान दिया है। किन्तु फिर भी, जैसा कि मैं बाद को निवेदन करूंगा, ऐसी शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं जो वैधानिक दृष्टि से न्यायसंगत नहीं कही जा सकती हैं।

श्रीमान्, जब अंग्रेज यहां से चले गये तो ये राज्य पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो गये। इन राज्यों तथा भारत के सम्बन्ध किसी संविदा, समाविष्टि पत्र अथवा अनुपूरक समाविष्टि-पत्र के आधार पर स्थापित किये जा सकते हैं। एक समाविष्टि-पत्र पर हस्ताक्षर किये ही गये और बाद में एक नई संविदा की गई जिसके अनुसार इन राज्यों का प्रबन्ध भारत सरकार के हाथ में आ गया। किन्तु इन राज्यों के प्रशासन का अधिकार देने से इनको किसी प्रान्त में मिलाने अथवा इनको इस प्रकार एक साथ मिला देने की शक्ति प्राप्त नहीं हो जाती कि बाद को इनके लिये अलग होना असम्भव हो जाये। मेरा यह निवेदन है कि इस प्रकार की शक्ति नहीं दी गई है और यह संविदा की परिधि के बाहर की चीज है। मैं बाद को बताऊंगा कि स्थिति इस प्रकार है कि एक दूसरी संविदा पर हस्ताक्षर करना आवश्यक है।

श्रीमान्, इस अवसर पर इसकी विस्तृत व्याख्या करके मैं सभा का समय नहीं लेना चाहता। इन थोड़े से शब्दों के साथ केवल विधेयक के उस अंश के अतिरिक्त जिसकी ओर मैंने संकेत किया है मैं विधेयक में सन्निहित सभी सिद्धान्तों का समर्थन करता हूं।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र सरदार पटेल भले ही उल्टे ढंग से काम करने का निश्चय कर चुके हों

[मौलाना हसरत मोहानी]

और आप उनका समर्थन करने का निश्चय कर चुके हों किन्तु मेरे विचार से इस सभा के लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव को दृष्टि में रखते हुए इस विधेयक पर विचार-विमर्श करने का अब कोई अवसर नहीं है क्योंकि उसमें निश्चित रूप से यह कहा गया है कि:

"यह विधान-परिषद् अपना यह दृढ़ तथा पवित्र संकल्प घोषित करती है कि वह भारत को एक स्वतंत्र सर्वसत्ताधारी गणराज्य घोषित करेगी...."

श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि सन् 1935 का सारा भारत शासन अधिनियम भारत पर औपनिवेशिक प्रभुत्व के सिद्धान्त पर आधृत है। उस अधिनियम का प्रत्येक शब्द उस सिद्धान्त पर आधृत है। यदि हम अपने संकल्प को तथा लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव में घोषित उद्देश्यों को पूरा करना चाहें तो मेरे विचार से सन् 1935 के भारत शासन अधिनियम जैसी दूषित चीज पर विचार विमर्श करने के लिये हमारे पास कोई अवसर नहीं है और ऐसा करने से हम केवल अपने समय को तथा अपनी शक्ति को नष्ट करेंगे। इससे क्या लाभ होगा? निस्सन्देह यदि कोई गुप्त समझौता हो गया है और गणराज्य घोषित करने पर भी अपने ब्रिटिश कामनवेल्थ में रहने का निश्चय कर लिया है और, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, आप कोई नई पदावली गढ़ने जा रहे हैं अर्थात् जैसा कि हालैंड इंडोनेशिया को बनाने जा रहा है, आपका देश औपनिवेशिक गणराज्य है और यदि वह गणराज्य कामनवेल्थ की गोद ही में रहेगा तो हम अपने को मूर्ख ही सिद्ध करेंगे। यदि हम इस विधेयक को स्वीकार कर लेते हैं तो हमारा देश भले ही गणराज्य हो किन्तु वह औपनिवेशिक गणराज्य ही होगा। हम फिर भी ब्रिटिश कामनवेल्थ में ही रहेंगे। श्रीमान् यदि 'ब्रिटिश कामनवेल्थ' से 'ब्रिटिश' शब्द निकाल भी दिया जायेगा तो स्थिति में कोई सुधार न होगा क्योंकि यदि हम कामनवेल्थ में रहते हैं तो हमें उसके अन्य राष्ट्रों से सहयोग करना पड़ेगा। यदि हम इसे एक बार आरम्भ करेंगे तो हमें पश्चिमी गुट अर्थात् पश्चिमी यूरोपीय राष्ट्रों से सहयोग करना पड़ेगा। यह बहुत ही खराब होगा। इसका अर्थ यह होगा

कि हमें हालैंड, बेल्जियम और उस पश्चिमी गुट के देशों से सहयोग करना पड़ेगा जो स्पष्टतया सोवियत रूस का विरोध करने के लिए बनाया गया है। यदि भविष्य में ऐंग्लो-अमेरिकन गुट और दूसरे गुट के बीच युद्ध छिड़ गया तो हमें पश्चिमी गुट के साथ सहयोग करना पड़ेगा। इसका यह अर्थ है कि भावी विश्व-युद्ध में तटस्थ रहने का हमने जो संकल्प किया है वह समाप्त हो जायेगा। इसका यह अर्थ होगा कि हम जिन सिद्धान्तों का पोषण कर रहे हैं उन्हें हमें त्याग देना होगा। यदि इस अवसर पर हम यह कहें कि हम ब्रिटिश कामनवेल्थ को छोड़ देंगे और हमारा देश गणराज्य हो जायेगा तो ब्रिटिश सम्राट से हमारा कोई सम्बन्ध न रह जायेगा तो हम किस आधार पर ब्रिटिश कामनवेल्थ में सम्मिलित होंगे? लोग यह कहते हैं कि यह समान नागरिकता के आधार पर होगा और प्रथम नागरिक ब्रिटिश सम्राट होगा। श्रीमान्, इस सम्बन्ध में मुझे यह कहना है कि दक्षिणी अफ्रीका, न्यूजीलैंड और कनाडा के रुख को देखते हुए किसी प्रकार की समान नागरिकता को स्वीकार करना बिल्कुल निरर्थक है। इसलिये मेरा यह कहना है कि हमें किसी प्रकार की नागरिकता से, चाहे वह समान नागरिकता हो अथवा प्रथम नागरिकता, कोई सरोकार न होना चाहिये। इस प्रकार की मूर्खता से अब हमें कोई सरोकार न रखना चाहिये। इसलिये यदि हम भारत में गणराज्य स्थापित करने का संकल्प करते हैं तो हमें उसे स्थापित करने का हर प्रकार प्रयास करना चाहिये और सन् 1935 के अधिनियम को तथा भारत में औपनिवेशिक प्रभुत्व स्थापित करने के सम्बन्ध में प्रत्येक बात को त्याग देना चाहिये। इसके अतिरिक्त सब बातें निरर्थक और बिल्कुल ही अनियमित हैं। मेरा यह कहना है कि इस समय कोई भी अन्य कार्य करना अनैतिक है।

श्रीमान्, मैं आरम्भ में ही जब माननीय सरदार पटेल ने यह विधेयक उपस्थित किया था, ये बातें कह देना चाहता था। मैं आरम्भ में ही उनका विरोध करना चाहता था परन्तु, श्रीमान्, दुर्भाग्य से आपने मेरा आशय नहीं समझा, मेरी बातों को अनियमित बता दिया और बिना मुझे मत प्रकाश का अवसर दिये हुए ही मेरे विरोध पर मत ले लिया। इस अवसर पर मैंने अपने विचार प्रकट किये हैं। मैंने जो कारण बताये हैं उनको दृष्टि में रखते हुए मैं अपने माननीय मित्र सरदार पटेल

[मौलाना हसरत मोहानी]

से प्रार्थना करता हूं कि वे सन् 1935 के भारत शासन अधिनियम जैसी दूषित चीज पर अपना समय तथा अपनी शक्ति को नष्ट न करें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि अब इस प्रश्न पर मत लिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** मेरे विचार से हमने काफी समय तक सामान्य वादानुवाद कर लिया है। कुल मिलाकर सात माननीय सदस्यों ने भारत ने जो भारत के विभिन्न भागों से आये हैं और राज्यों से भी आये हैं, क्योंकि मेरे विचार से उनका इस विधेयक से बहुत सम्बन्ध है, इस वादानुवाद में भाग लिया है। अब मैं प्रस्ताव पर मत लूंगा।

क्या सरदार पटेल किसी प्रकार का उत्तर देना चाहते हैं?

निस्संदेह वादानुवाद समाप्त करने का प्रस्ताव स्वीकार किया जाता है।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल:** श्रीमान्, इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में कुछ वक्ताओं ने भाषण दिये हैं किन्तु उन्होंने अपने को केवल उन प्रावधानों तक सीमित रखा है, जो राज्यों के सम्बन्ध में हैं। अन्य विषयों के बारे में विचार-विमर्श हुआ ही नहीं है और मुझे विश्वास है कि उनके सम्बन्ध में जो खण्ड है उन्हें स्वीकार करने में बहुत कम समय लगेगा।

श्रीमान् जहां तक खण्ड 6 का सम्बन्ध है, जिसका प्रभाव राज्यों पर पड़ता है, मुझे इन भाषणों की ध्वनि से ज्ञात हुआ है कि वक्ता महोदयों ने इस विधेयक में सन्निहित सिद्धान्त का बहुत कुछ पूर्ण रूप से ही समर्थन किया है। कुछ आलोचनाएं मेरे विचार से इस अर्थ में अप्रासंगिक थीं कि उनमें से कुछ में उस तरीके पर ही आपत्ति की गई थी जो राज्यों को संघ में समाविष्ट करने के लिये अपनाया गया था और कुछ में उस शासन के परिवर्तन पर आपत्ति की गई थी जिससे समाविष्ट क्षेत्रों पर अच्छा प्रभाव न पड़ता था। उदाहरणार्थ उड़ीसा के एक माननीय सदस्य महोदय ने, जो सब से प्रथम बोले थे, प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कुछ ऐसे परिवर्तनों के सम्बन्ध में शिकायत की थी जो वहां के राज्य के संघ

में समाविष्ट होने के कारण हो गये हैं। उन्होंने यह बताया कि वहां के नरेश के शासन काल में उन्हें कुछ ऐसी सुविधाएं प्राप्त थीं जो राज्य के संघ में समाविष्ट होने के उपरान्त उन्हें उड़ीसा सरकार से नहीं प्राप्त हो रही हैं। यह सम्भव है और यह समझ में भी आता है कि उस क्षेत्र में किसी उदार नरेश ने लोगों के हितार्थ कुछ अधिक धन व्यय किया हो और उड़ीसा की सरकार उसी क्षेत्र में उसी प्रकार धन व्यय करने में अपने को समर्थ न पा रही हो। मैं यह कहना चाहता हूं कि राज्यों को संघ में समाविष्ट करने का उद्देश्य यह था कि शासन कार्य के लिये देश छोटे-छोटे प्रदेशों में न बंटा रहे। यह सम्भव है कि राज्य के संघ में समावेश से लोग छोटी-मोटी सुविधाओं से वंचित हो गये हों। किन्तु उद्देश्य यह है कि इस प्रश्न पर अन्य बड़ी बातों को सामने रख कर विचार किया जाये और साधारणतया अपेक्षाकृत सुशासन स्थापित किया जाये और पिछड़े हुए क्षेत्रों को प्रान्तीय शासन के स्तर पर लाया जाय। यह एक समझ में आने वाली बात है कि जब आप किसी उच्च लक्ष्य की प्राप्ति चाहते हैं तो आपको थोड़ा त्याग भी करना होता है। जब इन क्षेत्रों को ही संघ में समाविष्ट किया जा रहा है तो थोड़े से त्याग के सम्बन्ध में शिकायत न की जानी चाहिये। अन्यथा राज्यों का संघ में समावेश ही असम्भव हो जायेगा।

इसके अतिरिक्त अलवर के माननीय सदस्य महोदय ने भूपाल की चर्चा की।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): मैं कोई औचित्य प्रश्न करने के लिये नहीं उठा हूं। क्या मैं माननीय राज्य मंत्री महोदय से यह सूचना प्राप्त कर सकता हूं कि क्या यह ठीक है कि इस राज्य से जो आय प्राप्त होती है उसके अतिरिक्त उड़ीसा की सरकार ने अपने इसी वर्ष के आय-व्ययक में इस राज्य के लिये पचास लाख रुपये अलग रखे हैं? क्या मैं यह जान सकता हूं कि यह सूचना ठीक है?

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल:** इससे मेरे इस कथन का ही समर्थन होता है कि थोड़ा त्याग भले ही करना पड़े किन्तु उससे हित अधिक होगा। यदि उड़ीसा की सरकार ने अपने आय-व्ययक में इन क्षेत्रों के लिये बहुत

[माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल]

सा धन अलग रखा है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वास्तव में उससे यही आशा की जाती है और यदि वह इन छोटे-छोटे क्षेत्रों के हितसाधन में तत्परता दिखायेगी, जो वह अवश्य ही दिखायेगी, तो केवल भय के कारण इस प्रकार की जो शिकायत की जाती है वह न की जायेगी। इसलिये जो माननीय सदस्य इस प्रश्न पर सबसे प्रथम बोले हैं वे इस बात की ओर ध्यान देंगे कि उड़ीसा की सरकार को इसकी चिन्ता है कि उनके यहां के लोगों को सभी सुविधाएं दी जायें और उससे भी अधिक सुविधाएं दी जायें जो उनको एक छोटे प्रदेश के शासन काल में प्राप्त थीं।

जहां तक अलवर के माननीय सदस्य के उठाये हुए भूपाल के प्रश्न का सम्बन्ध है, मैं ऐसे प्रश्नों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहता जो अभी तय नहीं हुए हैं और विचाराधीन ही हैं क्योंकि इस प्रकार के प्रश्नों पर वादानुवाद करने से उन पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। किन्तु मैं सभी को आश्वासन दे चुका हूं कि यदि किसी राज्य के लोग किसी प्रदेश में समाविष्ट होना चाहते हों अथवा संघ में सम्मिलित हो जाना चाहते हों तो नरेशों की ओर से शायद ही कोई विरोध हो क्योंकि मैं नहीं समझता कि लोगों की इच्छा के विरुद्ध छोटे-छोटे प्रदेशों को बनाये रखना सम्भव है। इसलिये यदि भूपाल के लोग किसी निकटवर्ती प्रदेश में समाविष्ट हो जाना चाहते हैं तो मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि नरेश अथवा भूपाल के नवाब उनके मार्ग में बाधक सिद्ध न होंगे क्योंकि इस युग में कोई भी नरेश अपने लोगों की इच्छा की उपेक्षा करके सुखी नहीं रह सकता। वास्तव में जनतंत्र का अर्थ यही है। जब हम सारे भारत में जनतंत्रात्मक शासन स्थापित करने जा रहे हैं तो नरेश और उसकी प्रजा में इतना घोर संघर्ष होने पर छोटे-छोटे प्रदेश बने नहीं रह सकते। दोष नरेश का नहीं है बल्कि लोगों का ही है। आप जानते हैं कि छोटे-छोटे प्रदेशों में जहां कहीं मंत्रिमण्डल भी स्थापित किये जाते हैं, वे एक प्रकार का स्थायी स्वार्थ अस्तित्व में ले आते हैं और वे बड़े प्रदेश में समाविष्ट नहीं होना चाहते और वास्तव में अलग रहने के लिये नरेश से उनकी इच्छा अधिक बलवती होती है। इसलिये उन राज्यों के सम्बन्ध

में, जो अब शेष हैं, सामान्य रूप से वादानुवाद करना उचित न होगा। इस प्रश्न का यहां उठाने से उस राज्य के लोगों के बीच काम करना अधिक अच्छा है। परन्तु आपको वह विश्वास होना चाहिये कि नरेशों तथा उनकी प्रजा दोनों की सहमति से सारे भारत में एकरूपता लाने के लिये यथासम्भव प्रयत्न किया जायेगा। यदि लोग पद अथवा स्थायी स्वार्थों के संकुचित विचारों से प्रेरित न होकर जनसाधारण के हित को ध्यान में रखें तो कोई बाधा न होगी।

कोल्हापुर के माननीय सदस्य ने कोल्हापुर के शासन के सम्बन्ध में कई विवादग्रस्त प्रश्न उठाये हैं। मेरे विचार से इस समय वहां के प्रतिदिन शासन तथा शासनकार्य की कठिनाइयों पर विचार करने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। सम्भवत: सभा को यह विदित है कि भारत सरकार ने इस राज्य के शासन की जांच करने के लिये एक समिति नियुक्त की थी जिसके सभापति बम्बई के उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश थे। न्यायाधीश कोयाजी का प्रतिवेदन प्रकाशित हो चुका है। राज्यों से आये हुए उन माननीय सदस्यों से, जिनकी इस मामले में दिलचस्पी है मेरी यह प्रार्थना है कि वे इस प्रतिवेदन को पढ़ें? उस प्रतिवेदन में बड़ी खेदजनक स्थिति का वर्णन है। महात्मा गांधी की हत्या की दु:खद घटना के उपरान्त उस क्षेत्र के लोगों के एक समूह ने यह ठान ली कि वहां के ब्राह्मणों को सताया जाये क्योंकि यह कहा जाता था कि एक ब्राह्मण नवयुवक ने उनकी हत्या की थी। उसके नाम धारी एक पूरे परिवार को जीवित ही जला डाला। ब्राह्मणों के कई घर जला दिये गये और उनकी सम्पत्ति लूट ली गई तथा वृहत् रूप से अत्याचार तथा उत्पीड़न किया गया। उस समय वहां एक लोकप्रिय मंत्रिमण्डल पदारूढ़ था। उस समय वहां कोई प्रशासक नहीं था। कोल्हापुर के हमारे मित्र ने कहा है कि प्रशासक का शासन, जो कि एक सिविल नौकर था, संसद् की भाषा में स्वर्ग का उल्टा था। आप उन लोगों से पूछिये जिनको उन दिनों में अत्याचार सहन करना पड़ा कि तथाकथित लोकप्रिय सरकार की शासन-व्यवस्था स्वर्ग के समान थी अथवा कुम्भीपाक नरक के समान। यदि लोकप्रिय सरकारों ने इस प्रकार का व्यवहार किया तो मेरे विचार से हम अपने जनतन्त्र पर गर्व नहीं कर सकते। नरेश की सहमति से हमने एक प्रशासक नियुक्त किया। नरेश ने एक प्रशासक की मांग की। प्रतिवेदन में मंत्रियों की निन्दा की हुई है। मैं इस सम्बन्ध में और अधिक नहीं कहना चाहता। सदस्य महोदय यह कहते हैं कि समाविष्टि के सम्बन्ध में

[माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल]

कोल्हापुर में जनमत लेने के लिए एक कालावधि निश्चित की जाये। उनके भाषण से मैं यह समझ पाया हूं कि वे समाविष्टि के विरुद्ध हैं। यदि किसी क्षेत्र अथवा राज्य के लोग समाविष्टि नहीं चाहते हैं तो हम उन्हें उसे स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं कर रहे हैं। यदि एक समय लोग समाविष्टि के पक्ष में हों और दूसरे समय अपने राज्य को पृथक् रखना चाहें, यदि मंत्रिमंडल न होने पर वे समाविष्टि चाहें और मंत्रिमंडल में आने पर समाविष्टि का विरोध करें तो इस स्थिति में लोकमत लेना कोई आसान काम नहीं है क्योंकि इस स्थिति में लोगों को भयभीत करने की तथा वृहत् रूप में हिंसात्मक अपराध करने की आशंका बनी रहती है। मैं सभा को यह आश्वासन देता हूं कि लोगों की इच्छा के विरुद्ध कोई समाविष्टि नहीं हुई है और अभी तक किसी भी समाविष्टि के सम्बन्ध में कोई शिकायत नहीं की गई है। भविष्य में भी किसी दिशा से शिकायत न की जायेगी, सिवाय उन लोगों से जो निजी कारणों से किसी क्षेत्र के जनसाधारण की इच्छा की पूर्ति के मार्ग में बाधक सिद्ध होंगे। इस समय तक हमने जो कुछ किया है वह इन प्रदेशों के नरेशों तथा लोगों की स्वतन्त्र सहमति के अनुसार ही किया है। मैं यह भी कहना चाहता हूं कि कुछ छोटे नरेशों ने, जिन्होंने पहले तो समाविष्टि संविदा पर हस्ताक्षर कर दिये परन्तु बहुत काल के उपरान्त फिर विचार करके, सम्भवत: कुछ वकीलों के परामर्श से शिकायत की और समाविष्टि संविदा की सार्थकता पर न्यायालय में सन्देह प्रकट करना चाहा। मैंने उन्हें यह सलाह दी कि वे वकीलों और न्यायालयों पर व्यर्थ रुपया नष्ट न करें और यदि वे समाविष्टि संविदाओं को अब अस्वीकार करना चाहते हैं तो मैं उन्हें फाड़ दूंगा और उन्हें स्वतन्त्र कर दूंगा परन्तु फिर उन्हें मेरे पास रक्षा तथा सुरक्षा के लिए न आना चाहिए। जिस समय मैंने उनकी समाविष्टि संविदा स्वीकार की थी उस समय मुझे उनकी रक्षा का प्रबन्ध करना पड़ा था क्योंकि उन क्षेत्रों में जिस प्रकार का शासन वे चला रहे थे वह लोगों को इतना अप्रिय था कि कुछ क्षेत्रों में उन्होंने उनके महलों पर अधिकार कर लिया था। इसलिये समाविष्टि के प्रश्न का अब बहुत महत्व नहीं रह गया है क्योंकि अधिकांश राज्यों ने या तो संघ बना लिए हैं या समाविष्ट हो गये हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो अभी अलग ही हैं। ऐसे भी नरेश हैं जिनको यदि विश्वास हो जाये कि उनके अधिक त्याग करने से सारे देश का हितसाधन होगा तो वे इसके लिये भी तैयार

हैं। यदि कोई नरेश अपनी अकड़ नहीं छोड़ना चाहता है तो, जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं उसके लिये कुछ न कर सकूंगा। वह और उसके लोग अपना हिसाब तय कर सकते हैं।

इसलिये कोल्हापुर से आये हुए माननीय सदस्य से चेतावनी के रूप में मैं यह कहना चाहता हूं कि मुझे विश्वास है कि कोल्हापुर के लोग समाविष्टि के पक्ष में हैं और यदि मैं वहां के नरेश को समाविष्टि के लाभ के सम्बन्ध में समझ सकूंगा तो वे लोग जो समाविष्टि के विरुद्ध रहेंगे आगे चलकर दया के पात्र न होंगे। जब संसार तेजी से आगे बढ़ रहा है तो जो लोग उसके रास्ते में रोड़े अटकायेंगे उन्हें अपने लिये एक अलग रास्ता निकालना होगा।

हम देश के अंग में शासन-प्रबन्ध की छोटी-छोटी इकाइयों के रूप में इन नासूरों का अन्त करने के कार्य को अब तुरन्त समाप्त कर देना चाहते हैं, क्योंकि इनके कारण हमें बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। इन क्षेत्रों से आये हुए सभी लोगों से मेरा यह अनुरोध है कि वे अधिक तर्कपूर्ण हों और अधिक बुद्धिमानी से काम लें तथा जो कुछ पहले होता था उसकी चर्चा न करें। मेरे मित्र ने यहां कोल्हापुर के अपने समय के शिक्षा-विभाग के संचालन के कुछ उदाहरण दिये हैं जब कि वास्तव में वहां किसी प्रकार का शासन ही नहीं था। यदि उनके समय में शिक्षा का कार्य थोड़ी बहुत कुशलता से किया जा रहा था तो लोगों को हाल में जिन विपत्तियों का सामना करना पड़ा उनको दृष्टि में रखते हुए उसका महत्व कुछ भी नहीं रह जाता। आखिर समाविष्टि के उपरान्त हो क्या जायेगा? स्थिति यह है कि वह बम्बई के प्रान्त में समाविष्ट होने जा रहा है। कोल्हापुर निवासियों को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि बम्बई के प्रान्त में समाविष्ट होने से उनकी प्रतिष्ठा अथवा शासनकार्य की कुशलता किसी प्रकार कम न हो जायेगी।

हमारे मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद को यह भय है कि शासनतंत्र अथवा राजसत्ता विनष्ट हो जायेगी। मैं कह नहीं सकता कि उन्होंने कानूनी दृष्टि से यह आपत्ति की है अथवा अपने चित्त की विकलता के कारण। किन्तु मैं यह कहूंगा कि जो राज्य समाविष्ट हो गये हैं उनके नरेशों तथा लोगों ने स्वेच्छा से अपने शासनाधिकार सौंप दिये। निजी पूंजी तथा प्रतिष्ठा और स्थिति के सम्बन्ध में कुछ अधिकारों के अतिरिक्त, जो उन्हें प्रदान किये गये हैं, अन्य सभी अधिकार हमें समर्पित कर दिये गये हैं और उनके सम्बन्ध में कानून विरोधी कोई बात नहीं

[माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल]

है। यदि वे यह कहते हैं कि लोगों से परामर्श नहीं लिया गया है तो मैं उनसे पूछता हूं कि क्या वे एक स्थान भी ऐसा बता सकते हैं जहां यह नहीं किया गया है? यदि लोग शिकायत नहीं करते हैं तो उसका कारण यह है कि जिस प्रकार भी किसी क्षेत्र में जाना जा सकता था उस प्रकार वहां लोगों की इच्छा जानने का प्रयास किया गया है। आप इसे स्वीकार करेंगे कि मतदाताओं की सूचियां तैयार नहीं हैं। उस रीति से उनकी इच्छा जानने का कोई साधन उपलब्ध नहीं है। किन्तु उनकी नब्ज देख ली गई और यही कारण है कि उनकी ओर से कोई शिकायत नहीं की जाती है।

हमारे मित्र भी रोहिणी कुमार चौधरी ने संशोधनों का विश्लेषण करते हुए सारे विधेयक का ही शून्यन कर दिया। मैं नहीं समझता कि इस सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता है, किन्तु उन्होंने एक ही प्रश्न अर्थात् औद्योगिक विधेयक की ओर ही संकेत किया है और वे उसका समर्थन करते हैं। इसलिये इस सम्बन्ध में कोई उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है।

मैं नहीं जानता कि मैं मौलाना हसरत मोहानी के सम्बन्ध में कुछ कह सकता हूं कि नहीं। अब वे यह देखते हैं कि यह सभा उनका समर्थन नहीं करती है और उनकी मांग के अनुसार अपनी सर्वसत्ता का भी प्रयोग नहीं करती। इसलिये उनके लिये इस सभा में बैठना अपने अन्त:करण का विरोध करना ही होगा। जो कार्यवाही उनके सिद्धान्तों के अनुसार नहीं होती है उसमें भाग न लेना ही उनके लिये श्रेयस्कर है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** मैं आपको मनमानी नहीं करने दूंगा। इसी लिये मैं यहां उपस्थित हूं।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल:** मुझे बस इतना ही कहना है। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि सभा ने आमतौर से इस विधेयक का समर्थन ही किया है। अब हम संशोधनों पर विचार-विमर्श कर सकते हैं।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"भारत शासन अधिनियम के संशोधक विधेयक पर तुरन्त विचार-विमर्श किया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** मैं यह देखता हूं कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी और श्री एल. कृष्णस्वामी भारती के नाम से एक संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 4 है और यह भी कि इस संशोधन पर दो संशोधन हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** आपकी अनुमति से तथा सभा की अनुमति से मैं मूल सूची के संशोधन संख्या 4 को उपस्थित न करके अनुपूरक सूची का संशोधन संख्या 1 उपस्थित करना चाहता हूं। श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"खण्ड (1) के बाद निम्नलिखित खण्ड प्रविष्ट किया जाये:

'Interpretation–

1-A. The Interpretation Act, 1889, applies for the Interpretation of this Act as it applies for the Interpretation of an Act of Parliament.' "

[निर्वचन–

1-ए. निर्वचन अधिनियम, सन् 1889 इस अधिनियम के निर्वचन के लिये उसी प्रकार प्रयोग में आयेगा जैसे वह संसद् के किसी अधिनियम के निर्वचन में प्रयोग में आता है।]

यह बहुत कुछ एक रस्मी संशोधन है क्योंकि यह इस अधिनियम के केवल निर्वचन के लिये प्रावधान रखता है। यहां जिस अधिनियम की ओर संकेत किया गया है वह ग्रेट ब्रिटेन का सन् 1889 का निर्वचन अधिनियम है। मूल भारत शासन अधिनियम के सम्बन्ध में यह बात थी कि चूंकि ब्रिटिश पार्लियामेंट ने उसे बनाया था इसलिये यह निर्वचन-अधिनियम प्रयोग में आ सकता था। किन्तु इस समय जब तक कि विधेयक में ही इस अधिनियम का उल्लेख न किया जाय तब तक वह प्रयोग में नहीं आयेगा। इसलिये मुझे आशा है कि यह सभा इस संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

***उपाध्यक्ष:** दूसरा संशोधन मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम से है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, आपकी तथा इस सभा की अनुमति से मैं अपने संशोधन को परिवर्तित रूप में उपस्थित करना चाहता हूं क्योंकि मूल प्रस्ताव में ही परिवर्तन हो गया है। मैं उस प्रस्ताव पर संशोधन उपस्थित करना

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

चाहता हूं जो श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने सभा के सामने रखा है अर्थात् यह कि खण्ड (1-ए) उस रूप में प्रविष्ट किया जाये जिस रूप में वह अनुपूरक सूची संख्या 1 में दिया हुआ है। मैं सारे खण्ड को निकाल देने के लिये नहीं बल्कि उसके अन्तिम भाग को ही निकालने के लिये प्रस्ताव उपस्थित कर रहा हूं। श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुपूरक सूची के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित खण्ड (1-ए) में से 'As it applies for the interpretation of an Act of Parliament' (उसी प्रकार तथा जैसे वह संसद् के किसी अधिनियम के निर्वचन में प्रयोग में आता है) शब्द निकाल दिये जायें।"

इन शब्दों को निकालने का प्रस्ताव करते हुए मैं इस सिद्धान्त का पूर्णरूप से समर्थन करता हूं कि सन् 1889 का निर्वचन अधिनियम इस अधिनियम के निर्वचन के लिये प्रयोग में आये। वास्तव में इस संशोधन से एक विखण्डनशील बात का निराकरण हो जाता है। संसद् के सभी अधिनियमों के सम्बन्ध में सन् 1889 का अधिनियम प्रयोग में आता है और इसलिये वह भारत शासन अधिनियम के सम्बन्ध में भी प्रयोग में आयेगा। इस विधेयक में इसका उल्लेख नहीं है। कि ब्रिटिश अधिनियम अथवा भारतीय खण्ड-अधिनियम में से कौन-सा निर्वचन अधिनियम प्रयोग में आयेगा। यह संदेहास्पद है कि बाद में बताया हुआ अधिनियम इस विधेयक के सम्बन्ध में लागू होगा अथवा नहीं। इस संशोधन से इस संदेह का निराकरण हो जाता है। जिन शब्दों को मैं निकालना चाहता हूं वे केवल इस खण्ड के व्यावहारिक अंग के सम्बन्ध में तर्क उपस्थित करते हैं। संशोधित रूप में खण्ड इस प्रकार हो जायेगा:

> "1A. The Interpretation Act, 1889, applies for the interpretation of this Act." (1-ए. निर्वचन अधिनियम, सन् 1889, इस अधिनियम के निर्वचन के लिये प्रयोग में आयेगा।)

मेरा यह निवेदन है कि यह पर्याप्त है अन्तिम भाग अर्थात् 'जैसे' वह संसद् के किसी अधिनियम के निर्वचन में प्रयोग में आता है केवल एक तर्क मात्र है अथवा एक वर्णनात्मक खण्ड है। चूंकि विधान-मंडल के किसी कानून में इस

प्रकार का तर्क अथवा वर्णनात्मक खण्ड प्रविष्ट करने की आज्ञा नहीं है इसलिये इन शब्दों को निकाल देना चाहिये। यह बात नहीं है कि किसी प्रकार का तर्क अथवा व्याख्या अनुचित है—इस प्रकार का तर्क अथवा व्याख्या उचित ही है—किन्तु इसे खण्ड के व्यावहारिक अंग से निकाल देना चाहिये। मुझे आशा है कि सभा इस विषय पर विचार करेगी।

***माननीय श्री बी.जी. खेर** (बंबई : जनरल): श्रीमान्, माननीय प्रस्तावक ने अपने संशोधन में कोई कारण नहीं बताया है बल्कि केवल यह कहा कि निर्वचन अधिनियम किस प्रकार प्रयोग में आयेगा। 'जैसे' का अर्थ है 'जिस प्रकार'। माननीय सदस्य, मि. नजीरुद्दीन अहमद ने 'जैसे' का अर्थ 'क्योंकि' लगाया है मानो कि प्रस्तावक कोई तर्क उपस्थित कर रहे हों।

*उपाध्यक्ष: प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड (1) के बाद निम्नलिखित खण्ड प्रविष्ट किया जाये:

'Interpretation–

1-A. The Interpretation Act, 1889, applies for the Interpretation of this Act as it applies for the Interpretation of an Act of Parliament.'

[निर्वचन–

1-ए. निर्वचन अधिनियम, सन् 1889, इस अधिनियम के निर्वचन के लिये उसी प्रकार प्रयोग में आयेगा जैसे वह संसद् के किसी अधिनियम के निर्वचन में प्रयोग में आता है।]"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** चूंकि सभा पहले संशोधन को स्वीकार कर चुकी है इसलिये इसका यह अर्थ है कि दूसरा संशोधन, जो मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम से है, गिर गया है। अब मैं खण्ड 1-ए पर सभा का मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 1-ए विधेयक का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*खण्ड 1-ए विधेयक का अंग हो गया।*

***माननीय डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"खण्ड 2 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'2. भारत शासन अधिनियम, सन् 1935, की धारा (8) में संशोधन—उक्त अधिनियम की धारा (8) में—(क) उपधारा (1) के परादिक के खण्ड (1) में 'in this Act' (इस अधिनियम में) शब्दों के बाद 'or in any law made by the Dominion Legislature with respect to any of the matters specified in the next succeeding sub-section' (अथवा किसी ऐसे कानून में जिसे औपनिवेशिक विधान-मंडल ने आगे की उपधारा में उल्लिखित विषयों के सम्बन्ध में बनाया हो) शब्द प्रविष्ट किये जाएं', और

(ख) उपधारा (1) के बाद निम्नलिखित उपधारा प्रविष्ट की जाये, अर्थात्–

'(1-A) The matters referred to in clause 1 of the proviso to Sub-Section (1) of this Section are–

(a) industrial and labour disputes;

(b) trade and commerce in, and production, supply and distribution of, products of industries the development of which is declared by Dominion law to be expedient in the public interest;

(c) the sanctioning of cinematographic films for exhibition; and

(d) inquiries and statistics for the purpose of any of the matters in the Concurrent Legislative List.' "

[(1.ए) इस धारा की उपधारा (1) के परादिक के खण्ड (1) में इन विषयों का संकेत है–

(क) औद्योगिक तथा श्रम सम्बन्धी विवाद;

(ख) ऐसे औद्योगिक पदार्थों का व्यापार तथा वाणिज्य और उनका प्रदाय तथा वितरण जिनके सम्बन्ध में औपनिवेशिक कानून द्वारा यह

घोषणा की गई हो कि उसका विकास लोकहित की दृष्टि से आवश्यक है;

(ग) सिनेमेटोग्राफिक फिल्मों के प्रदर्शन की मंजूरी; और

(घ) समवर्ती विधान-सूची के किन्हीं विषयों के सम्बन्ध में परिपृच्छा तथा आंकड़े।]

श्रीमान्, जब खण्ड 2 मसौदे में प्रविष्ट किया गया था तो उस समय सरकार का यह विचार था कि पूरी समवर्ती सूची के सम्बन्ध में अधिशासी प्रकार्यों के पालन के लिये औपनिवेशिक विधान-मंडल को कानून बनाने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। इस समय जहां तक समवर्ती सूची का सम्बन्ध है औपनिवेशिक विधान-मंडल ऐसे कानून बना सकता है जो प्रान्तों के बनाये हुए कानूनों का शून्यन कर देंगे किन्तु जहां तक अधिशासी प्राधिकार का सम्बन्ध है उसे केवल प्रान्तीय सरकारें प्रयोग में ला सकती हैं। नये विधान में अनुच्छेद 60 के अधीन, जो स्वीकार हो चुका है यह निर्धारित किया गया है कि समवर्ती सूची के सम्बन्ध में भी अधिशासी प्रकार्यों के बारे में औपनिवेशिक संसद् को कानून बनाने की स्वतंत्रता प्राप्त होगी। यह प्रश्न उठा कि क्या अन्तरिम काल में औपनिवेशिक संसद् को इस प्रकार की शक्तियां प्राप्त कर लेनी चाहियें अथवा नहीं? इस समय भारत शासन अधिनियम के अधीन औपनिवेशिक संसद् और औपनिवेशिक सरकार ऐसे विषयों के सम्बन्ध में, जो साधारणतया समवर्ती सूची के विषय हैं, प्राधिकार तीन प्रकार प्रयोग कर सकती है। आवश्यकीय प्रदार्थ-पदार्थों अधिनियम कुछ ऐसे विशेष पदार्थों से हैं जैसे खाद्य पदार्थ और कुछ अन्य पदार्थ जिनके सम्बन्ध में औपनिवेशिक संसद् तथा औपनिवेशिक सरकार को पूर्ण विधायी तथा अधिशासी शक्ति प्राप्त है। यह शक्ति सन् 1951 में समाप्त हो जायेगी। इसके अतिरिक्त एक प्रावधान ऐसा भी है कि उद्योग-धंधों के विकास के सम्बन्ध में, जो औपनिवेशिक संसद् के मत में सारे भारत के लिये महत्वपूर्ण है, औपनिवेशिक संसद् में विचार-विमर्श हो सकता है। किन्तु इसका सम्बन्ध किसी ऐसे धंधे से है जो औपनिवेशिक संसद् के मत से उद्योग समझा जा सकता है। यह अनुभव किया गया है कि औद्योगिक विकास के सम्बन्ध में केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है कि औपनिवेशिक संसद् तथा औपनिवेशिक सरकार को केवल उन उद्योग-धंधों के विकास के सम्बन्ध में शक्ति प्राप्त हो जिनका महत्व सारे भारत के लिये

[माननीय डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी]

समझा जाये। विकास की यह व्याख्या की गई है कि उसमें इस प्रकार के उद्योग-धंधों का नियमन तथा नियंत्रण, इनसे सम्बन्धित व्यापार तथा वाणिज्य तथा इस प्रकार के उद्योग-धंधों से उत्पादित पदार्थों पर नियंत्रण अथवा उनका वितरण सन्निहित नहीं है। इसलिये पहले यह सुविधाजनक समझा गया कि अन्तरिम काल में भी औपनिवेशिक संसद् भारत शासन अधिनियम में यथोचित संशोधन करके विस्तृत शक्ति प्राप्त कर ले। औद्योगिक विकास के अतिरिक्त आंकड़े फिल्मों की परीक्षा और औद्योगिक विवाद जैसे-जैसे कुछ अन्य विषय भी थे जिनके सम्बन्ध में यह समझा गया कि केन्द्रीय सरकार को पर्याप्त शक्ति प्राप्त हो जानी चाहिये।

जहां तक औद्योगिक तथा श्रम-संबंधी विवादों का सम्बन्ध है। जैसा कि सरदार पटेल बता चुके हैं यह एक प्रान्तीय विषय है किन्तु यह समझा गया कि विवादों को तय करने के लिये प्रान्तीय कानूनों के अधीन जो औद्योगिक अधिकरण बनाये जायें उनके सम्बन्ध में कानूनों में तथा अधिशासी-कार्य में एकरूपता होनी चाहिये प्रान्तीय सरकारों, कुछ प्रान्तीय प्रधान-मंत्रियों तथा दिल्ली में उपस्थित प्रान्तीय सरकारों के प्रतिनिधियों से परामर्श लेकर यह विचार किया गया है कि अन्तरिम काल में भारत सरकार इस सम्बन्ध में विस्तृत शक्ति तो अपने हाथ में न ले किन्तु ऐसे प्रश्नों के सम्बन्ध में, जो इस समय के लिये बहुत ही आवश्यकीय हैं और जिनको तत्काल हल करना भी आवश्यक है। यथोचित संशोधन किया जाये। इस उद्देश्य से, आप संशोधन संख्या 9 में देखेंगे कि औद्योगिक तथा श्रम-सम्बन्धी विवादों, ऐसे औद्योगिक पदार्थों का व्यापार तथा वाणिज्य और उनका प्रदाय तथा वितरण जिनके सम्बन्ध में औपनिवेशिक कानून द्वारा यह घोषणा की गई हो कि उनका विकास लोकहित की दृष्टि से आवश्यक है, सिनेमेटोग्राफिक फिल्मों के प्रदर्शन की मंजूरी और समवर्ती विधान-सूची के किन्हीं विषयों के सम्बन्ध में परिपृच्छा तथा आंकड़ों का उल्लेख किया गया है। इसका अर्थ यह है कि विधेयक में खण्ड 7 मूल रूप में जिस प्रकार है उसमें परिवर्तन करना होगा। इसका यह परिणाम होगा कि जहां तक कि कानून बनाने की शक्ति का सम्बन्ध है औपनिवेशिक संसद् को, जब कभी आवश्यक होगा, कानून बनाने की पर्याप्त शक्ति प्राप्त होगी और इस प्रकार बनाये हुए कानून इस

सम्बन्ध में यदि कोई प्रान्तीय कानून हों तो उनके ऊपर समझे जायेंगे। जहां तक इन विषयों के सम्बन्ध में अधिशासी प्राधिकार का सम्बन्ध है। औपनिवेशिक संसद् को कानून बनाने और आवश्यकता पड़ने पर अधिशासी प्रशासन को अपने हाथ में ले लेने की स्वतंत्रता होगी। श्रीमान्, ऐसे विषयों के सम्बन्ध में भी, जिनका सारे देश के हित की दृष्टि से केन्द्र द्वारा नियमन तथा नियंत्रण आवश्यक है, उद्देश्य यह नहीं है कि केन्द्रीय सरकार की नीति का एकीकरण करने के लिए प्रान्तीय सरकारों से सहायता नहीं ली जायेगी। यह स्पष्ट है कि साधारण स्थिति में जिस अधिशासी तंत्र से काम लिया जायेगा वह प्रान्तीय शासन-तंत्र ही होगा। किन्तु यदि कोई ऐसा अवसर आये जब कि केन्द्रीय सरकार के लिये ऐसे विषयों के सम्बन्ध में जो सारे भारत के लिये महत्वपूर्ण समझे जायें, अधिशासी शक्ति का प्रयोग करना आवश्यक हो जाये तो भारत सरकार को तथा औपनिवेशिक संसद् को इस प्रकार की शक्ति अपने हाथ में लेनी ही होगी। एक प्रश्न यह उपस्थित हुआ है कि क्या औपनिवेशिक विधान-मंडल को बिना प्रान्तीय सरकारों से परामर्श लिये ही इस शक्ति का प्रयोग करना चाहिये अथवा नहीं। अभी तक जब कभी केन्द्रीय सरकार अथवा औपनिवेशिक विधान-मंडल को उद्योग-धंधों के विकास के सम्बन्ध में कानून बनाने की आवश्यकता हुई प्रान्तीय सरकारों से हमेशा पहले परामर्श लिया गया। मुझे विश्वास है कि यथोचित अवसर पर थोड़ी देर बाद जब यह प्रश्न उठाया जायेगा सरदार पटेल, सरकार की ओर से, यह आश्वासन देंगे कि विधान के प्रयोग में आने के पूर्व अन्तरिम काल में यदि केन्द्रीय सरकार के लिये यह आवश्यक हो कि वह इस समय संशोधन संख्या 9 में प्रस्तावित शक्तियों को प्रयोग करे तो प्रान्तीय सरकारों से हमेशा पहले परामर्श लिया जायेगा और इस परामर्श के फलस्वरूप जो निश्चय किया जायेगा उसे सूचनार्थ विधान-मंडल के सम्मुख रखा जायेगा।

इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** इस संशोधन पर चार संशोधन हैं जिन्हें मैं एक-एक करके बताऊंगा। पहला मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम से है। सूची का संशोधन संख्या 3 ।

**श्री नजीरुद्दीन अहमद:** यह केवल एक रस्मी संशोधन है, इसलिये मैं उसे उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "संशोधनों की मूल सूची के संशोधन संख्या 9 में प्रविष्टि के लिये प्रस्तावित खण्ड 2 में 'said Act' (उक्त अधिनियम) शब्दों के स्थान में 'Government of India Act, 1935 (hereinafter referred to as the said Act)' [भारत-शासन अधिनियम, सन् 1935 (जो आगे उक्त अधिनियम कहा गया है)] शब्द, संख्या तथा कोष्ठक रखे जायें।"

श्रीमान्, यह एक रस्मी संशोधन है जिससे मेरे माननीय मित्र डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी के संशोधन की अपूर्णता दूर हो जाती है। मुझे आशा है कि सभा इसे स्वीकार कर लेगी।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): श्रीमान्, डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी द्वारा उपस्थित संशोधन को दृष्टि में रखते हुए मुझे अपने संशोधन को उपस्थित करने की कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती।

***उपाध्यक्ष:** खण्ड 2 पर अब सामान्य वादानुवाद हो सकता है। पंडित हृदयनाथ कुंजरू कृपा करके माइक्रोफोन पर आयें।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** उपाध्यक्ष महोदय, इस विधेयक से सम्बद्ध उद्देश्यों और कारणों के वक्तव्य में कहा गया है कि प्रान्तीय तथा केन्द्रीय अधिकरणों के निर्णयों पर पुनर्विचार करने के सिद्धान्तों में एकरूपता लाने के लिये भारत सरकार के लिये अधिक शक्ति प्राप्त करना आवश्यक है। इस विधेयक पर विचार करने का प्रस्ताव उपस्थित करते हुए सरदार पटेल ने भी इसी विषय की चर्चा की थी। इसलिये मेरा यह अर्थ लगाना उपयुक्त ही होगा कि इसी कारण से सरदार पटेल ने यह कहा था कि समवर्ती विषयों से सम्बन्धित कानूनों के बारे में औपनिवेशिक विधान-मंडल को, केन्द्रीय अधिकारियों को अधिशासी प्रकार्य सौंपने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये।

श्रीमान्, यह स्पष्ट है कि विधेयक के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किया गया है वह आवश्यकता से अधिक आगे बढ़ गया है। जिस प्रश्न पर इस समय

विचार-विमर्श हो रहा है उसे मैंने पिछले दिन विधान के मसौदे के अनुच्छेद 60 के सिलसिले में उठाया था। मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने मेरे दृष्टिकोण को स्वीकार करने की असमर्थता प्रकट की थी और एक उत्कृष्ट भाषण देते हुए उनके विचार से मेरा संशोधन स्वीकार न करने के जो तर्क-संगत कारण थे उनको बताया था। यह विधेयक भारत शासन अधिनियम को केवल विधान के मसौदे के स्तर पर ले आना चाहता है। इसलिये मैंने यह सोचा था कि इस विषय पर विधान-परिषद् ने अन्तिम निर्णय कर लिया है और इसलिये अब इस विषय पर विचार नहीं किया जायेगा। किन्तु अब यह दिखाई देता है कि सभा उस दृष्टिकोण को स्वीकार करने के लिये तैयार है जिसे मैंने भारत शासन अधिनियम, सन् 1935, के संशोधन के सिलसिले में स्वीकार करने के लिये तर्क उपस्थित किया था परन्तु असफल रहा था। श्रीमान्, मैं कह नहीं सकता कि विधान के प्रयोग में आने तक प्रान्तीय सरकारें जो स्वतंत्रता चाहती हैं वह उन्हें प्राप्त होगी या नहीं अथवा मेरे माननीय मित्र डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी द्वारा उपस्थित संशोधन का यह अर्थ है कि सभा विधान के मसौदे के अनुच्छेद 60 के सम्बन्ध में अपने मत को दुहराने के लिये तैयार है। श्रीमान्, जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं डॉ. मुकर्जी द्वारा उपस्थित संशोधन का स्वागत करता हूं।

श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर के जिस भाषण की ओर मैंने संकेत किया है उसे पिछले दिन देते हुए उन्होंने कहा था कि यह आवश्यक है कि औपनिवेशिक विधान-मंडल इस स्थिति में हो कि वह समवर्ती विषयों के सम्बन्ध में उपनिवेश के अधिकारियों को अधिशासी शक्ति प्रदान करने के लिये कानून बना सके। अपने अर्थ को स्पष्ट करने के लिये उन्होंने कहा था कि केन्द्र अस्पृश्यता के सम्बन्ध में कानून बना सकता है और यह भी कहा था कि बाल-विवाह अवरोधक अधिनियम को प्रभाव में लाने में प्रान्तीय सरकारें असफल रही हैं। निस्सन्देह यह आवश्यक है कि जब केन्द्रीय विधान-मंडल कोई कानून बनाये तो उसे सभी प्रान्त वफादारी से प्रयोग में लायें। किन्तु यह सम्भव है कि केन्द्रीय विधान-मंडल ने जिस कानून को उचित समझा हो उसका कुछ प्रान्तों में बिल्कुल भी स्वागत न किया जाये। मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने यह कहा था कि इस स्थिति में यह परमावश्यक है कि केन्द्रीय विधान-मंडल अपने बनाये हुए कानूनों को यथोचित रूप से प्रयोग में लाने के लिये केन्द्रीय अधिकारियों को शक्ति प्रदान करने में समर्थ हो।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** हमेशा नहीं।

***पंडित हृदयनाथ कुंजरू:** मैंने डॉ. अम्बेडकर के दिये हुए केवल दो उदाहरणों की ओर संकेत किया है और मेरे विचार से उनके तर्कों का जो संक्षिप्त विवरण मैंने दिया है वह अनुपयुक्त नहीं है।

श्रीमान्, यदि केन्द्रीय सरकार को अस्पृश्यता-विरोधी कानूनों और बाल-विवाह अवरोधक अधिनियम को प्रयोग में लाने के लिये अपने ही कर्मचारियों को नियुक्त करना पड़े तो उसे एक गम्भीर स्थिति का सामना करना पड़ेगा। मेरे विचार से यह उसके सामर्थ्य में न होगा कि वह इतने वृहत् कार्य का भार उठा सके और प्रान्तीय सरकारों से कलह होने का परिणाम इतना दु:खद होगा कि कुछ कानूनों को प्रयोग में लाने के लिये औपनिवेशिक विधान-मंडल औपनिवेशिक कर्मचारियों को समवर्ती विषयों के सम्बन्ध में जो शक्ति प्रदान करेगी वह प्रभाव में न आ सकेगी। मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने आस्ट्रेलिया का उदाहरण दिया था जिसके सम्बन्ध में मेरा वक्तव्य गलत प्रमाणित हुआ था। डॉ. अम्बेडकर ने उसमें जो सुधार किया है उसे मैं स्वीकार करता हूं। किन्तु यदि आस्ट्रेलिया की कामनवेल्थ सरकार समवर्ती विषयों के सम्बन्ध में भी अपने बनाये हुये कानूनों को प्रयोग में लाने के लिये अपने कर्मचारियों से कह सकती है तो फिर भी हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि जनसंख्या की दृष्टि से आस्ट्रेलिया एक बहुत छोटा देश है। मुझे यह ज्ञात नहीं है कि व्यवहार में उसने महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में कामनवेल्थ के कर्मचारियों से कानूनों को प्रयोग में लाने के लिये कहा है अथवा नहीं क्योंकि इस सम्बन्ध में जिम्मेदारी राज्यों की सरकारों की ही है। श्रीमान्, भारत जैसे देश में संघीय सरकार को समवर्ती विषयों के सम्बन्ध में भी औपनिवेशिक कर्मचारियों को अधिशासी प्रकार्य सौंपने का अधिकार भले ही प्राप्त हो किन्तु यह देश इतना बड़ा है और यहां की जनसंख्या इतनी अधिक है कि इस प्रकार के कानूनों को प्रयोग में लाना असम्भव हो जायेगा। इसलिये मेरे विचार से डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने एक सामयिक संशोधन उपस्थित किया है। वह सभा को यह स्मरण कराता है कि केन्द्र को शक्तिशाली बनाने की इच्छा को पूरा करने के लिये वह बहुत आगे बढ़ रही है। हम सभी की यह इच्छा है कि केन्द्र शक्तिशाली हो। हम यह नहीं चाहते हैं कि केन्द्रीय प्राधिकारी महत्वपूर्ण विषयों से सम्बन्धित अपने कानूनों को लोगों से न मनवा सकें। भारत की एकता

केन्द्रीय सरकार की शक्ति तथा प्रतिष्ठा पर ही निर्भर है। किन्तु संघीय विधान-मंडल तथा संघीय सरकार की शक्तियों की एक सीमा होनी चाहिये। किसी सिद्धान्त को कार्यान्वित करने के लिये हमें कोई ऐसी नीति नहीं अपनानी चाहिये जिसका कोई दु:खद परिणाम हो। मुझे यह दिखाई देता है कि डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने जिस संशोधन को उपस्थित किया है उसे सभा स्वीकार करने जा रही है किन्तु मुझे आशा है कि उसे स्वीकार करने से ऐसी स्थिति उत्पन्न न होगी कि सभा को विधान के मसौदे के अनुच्छेद 60 के सम्बन्ध में किये हुए अपने निर्णय को दुहराना पड़े।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, जब से यह विधेयक घुमाया गया है मैं इस विचार से क्षुब्ध रहा हूं कि इस विधेयक द्वारा वही अधिशासी शक्ति प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है जिसे सन् 1939 से ब्रिटिश सरकार किसी न किसी बहाने अपने हाथ में लेती आई है। इसलिये श्रीमान्, मेरे मित्र डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसका मैं स्वागत करता हूं क्योंकि उससे अधिशासी शक्ति आयंत्रित हो जाती है। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि उन्हें पंडित गोविन्द बल्लभ पंत का समर्थन प्राप्त है और इसकी भी कि यह संशोधन इन दोनों माननीय मित्रों ने ही उपस्थित किया था। श्रीमान्, मेरे विचार से सभा इस सम्बन्ध में बहुत ही सतर्क है कि, सरकार में अथवा उसके बाहर जनतंत्र में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न हो। यह पहला ही अवसर नहीं है जब मैंने सन् 1935 ई. के भारत शासन अधिनियम की निन्दनीय धारा अर्थात् धारा 126-ए की चर्चा की है जिसे ब्रिटिश कामन्स सभा ने सन् 1939 में स्वीकार किया और सन् 1937 से ही उसे प्रभाव में ले आई। खण्ड 2 के अधीन धारा 126-ए का ही एक उप-पैरा प्रविष्ट करने का प्रस्ताव है। कामन्स सभा ने युद्ध के उपरान्त सन् 1939 में जिस निन्दनीय कानून को स्वीकार किया उसी के एक अन्य उपधारा को खण्ड 5 के अधीन प्रविष्ट करने का प्रस्ताव है।

श्रीमान्, यह जनतंत्र का परीक्षा-काल है और भारत में जैसे नवीन सर्वसत्ताधारी राज्य में तो उसका परीक्षा-काल है ही। विदेशी शासकों ने धारा 126-ए के अधीन भारत का शासन किया और उसी का चश्मा चढ़ा कर वे भारत की तस्वीर देखते रहे। मेरी समझ में नहीं आता कि भारत-सरकार के कानूनी सलाहकारों ने और इस प्रतिष्ठित सभा के वैधानिक सलाहकार ने शान्ति-काल में इस

[श्री बी. दास]

सर्वसत्ताधारी सभा द्वारा सबसे प्रथम स्वीकार होने वाले सर्वसत्ताधारी विधेयक में विभिन्न प्रकार से धारा 126-ए को प्रविष्ट करने की किस प्रकार सलाह दी। यह देख कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ और बहुत दु:ख भी हुआ। आज मुझे यह देख कर प्रसन्नता हुई है कि भारत सरकार का ही जो मतभेद है उसे डॉ. मुकर्जी ने प्रकट किया है और मैं उनके प्रस्ताव का हृदय से समर्थन करता हूं। मुझे आशा है कि बाद को पंडित पंत खण्ड (5) को निकाल देने के सम्बन्ध में अपना संशोधन उपस्थित करेंगे। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि यह सर्वसत्ताधारी सभा एक जनतंत्रात्मक विधान-मंडल के रूप में काम कर रही है और मुझे आशा है कि वह अपनी सरकार को ऐसी निरंकुश शक्तियां न देगी जिनकी युद्धकाल ही में आवश्यकता होती है शान्ति-काल में नहीं।

***माननीय पंडित गोविन्द बल्लभ पंत** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैंने भी इसी प्रकार के एक संशोधन की सूचना दी थी। वास्तव में डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने थोड़ी देर पहले जो संशोधन उपस्थित किया था उसके साथ मेरा भी नाम जुड़ा हुआ है। मेरा यह विचार है कि मेरे लिये यह आवश्यक है कि मैं यह बताऊं कि किन कारणों से प्रेरित हो कर मैंने एक समान संशोधन की सूचना दी थी यद्यपि वह इस संशोधन के बिल्कुल समान न था। इसलिये इस संशोधन का स्वागत करते हुए तथा इसका समर्थन करते हुए मैं यह बताना चाहता हूं कि मैं इसे क्यों आवश्यक समझता हूं।

भारत शासन अधिनियम की धारा 8 के अधीन सूची 1 में दिये हुए विषयों के सम्बन्ध में संघीय केन्द्र को अपना अधिशासी संगठन नियुक्त करने की शक्ति प्रदान की गई थी। प्रत्येक संघीय ढांचे में विधायी तथा अधिशासी प्रकार्यों, शक्तियों और कर्त्तव्यों का विभाजन होता है। प्रत्येक अंग के अधिकार-क्षेत्र को निश्चित तथा पृथक् करना होता है। अपने विधान में हमने संघीय ढांचे के आधारभूत सिद्धान्तों को स्वीकार किया है। सन् 1935 में भी, जब वह अधिनियम स्वीकार किया गया था; प्रान्तों और राज्यों के एक संघ की कल्पना की गई थी। संघ की तथा उसके अंग प्रान्तों और राज्यों की शक्तियों की परिभाषा की गई थी। निस्संदेह, माननीय सदस्यों को यह विदित है कि तीन सूचियां बनाई गई थीं।

सूची 1 में उन केन्द्रीय विषयों का वर्णन था जिनके सम्बन्ध में केन्द्र को कानून बनाने तथा उनको प्रयोग में लाने के लिये यथोचित तंत्र स्थापित करने की शक्ति प्राप्त थी। सूची 2 में प्रान्तीय विषयों का वर्णन था जिनके सम्बन्ध में केवल प्रान्तों को ही कानून बनाने तथा उनको प्रयोग में लाने के लिये यथोचित तंत्र स्थापित करने की शक्ति प्राप्त थी। इन दोनों के अतिरिक्त एक समवर्ती सूची थी। इसी सूची के सम्बन्ध में यह संशोधन उपस्थित किया गया है। समवर्त्ती सूची का सम्बन्ध मुख्यत: प्रान्तीय विषयों से था अर्थात् उन विषयों से जिनके बारे में यह समझा गया था कि प्रान्त ही इनके सम्बन्ध में कानून बना सकते हैं तथा उनको प्रयोग में लाने की व्यवस्था कर सकते हैं। किन्तु जहां कहीं कानूनों में एकरूपता लाना आवश्यक समझा गया कुछ अपवाद किया गया। उस अधिनियम की योजना के अधीन, जिस पर हमारा अधिकांश विधान आधृत है, केन्द्र को समवर्त्ती विषयों के सम्बन्ध में कोई अधिशासी शक्ति प्राप्त नहीं है। वह प्रान्तों को आदेश दे सकता है किन्तु सूची 3 के विषयों के सम्बन्ध में बनाये हुए कानूनों को प्रयोग में लाने के लिये वह अपने कर्मचारियों को नियुक्त नहीं कर सकता, इसी कारण यह संशोधन उपस्थित किया गया है। इसलिये सन् 1935 की योजना के अनुसार जहां तक सूची 3 का सम्बन्ध है, केन्द्र को कानून बनाने का सर्वोपरि अधिकार प्राप्त है किन्तु उसे आदेश देने के अतिरिक्त और कोई अधिशासी शक्ति प्राप्त नहीं है।

इस विधेयक के मूल खण्ड में बहुत विस्तृत व्यवस्था की गई है। उद्देश्य यह है कि समवर्त्ती सूची में उल्लिखित सभी विषयों अथवा किसी विषय के सम्बन्ध में कानूनों को प्रयोग में लाने के लिये केन्द्र को शक्ति दी जाये। यह बिल्कुल भी सम्भव नहीं है क्योंकि यह समझ में आने वाली बात नहीं है कि समवर्त्ती सूची में प्रविष्ट सभी विषयों से सम्बन्धित कानूनों को केन्द्र भारत के सभी प्रान्तों में प्रयोग में ला सकेगा। यह किसी भी अधिक से अधिक शक्तिशाली तथा साधनसम्पन्न केन्द्र के सामर्थ्य के बाहर है। यदि हम प्रान्तों में समवर्त्ती सूची के विषयों के सम्बन्ध में दो प्रकार की व्यवस्था करें तो इससे बहुत गड़बड़ होने की आशंका है। समवर्त्ती सूची में दंड-सम्बन्धी कानून है, व्यवहार-सम्बन्धी कानून है और मध्यस्थ-निर्णय भी है। उसमें अंजन, बौइलर जैसे प्रकीर्ण विषय भी हैं। यदि

[माननीय पंडित गोविन्द बल्लभ पंत]

हम इन विषयों से सम्बन्धित कानूनों को प्रयोग में लाने के लिये एक ओर प्रान्तों की व्यवस्था करें और दूसरी ओर केन्द्र की, तो बड़ी गड़बड़ हो जायेगी और भी सरकार योग्यता से कार्य न कर सकेगी। यही कारण था कि सन् 1935 के अधिनियम की योजना के अधीन समवर्त्ती सूची के विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने की जिम्मेदारी केवल प्रान्तों को ही सौंपी गई क्योंकि इसी प्रकार वे कानून यथोचित रूप से प्रयोग में आ सकते हैं। मेरा अपना यह विचार है कि ऐसी व्यवस्था करने में समझदारी दिखाई गई। यही उचित भी था। किन्तु साथ ही शासन-काल एक व्यावहारिक कला है और समय-समय पर इस उद्देश्य से परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है कि हमारा कार्य सुयोग्य तथा अल्पव्यय-साध्य हो तथा उससे अधिक से अधिक लोकहित साधन हो और अधिक से अधिक सुविधा प्राप्त हो। इन सब बातों की ओर ध्यान देना चाहिये। इसलिये मेरे विचार से कभी यह सम्भव हो सकता है कि केन्द्र समवर्त्ती सूची में दिये हुए विषयों के सम्बन्ध में प्रबन्ध करे। इसलिये जहां तक सामान्य सिद्धान्त को सम्बन्ध है, मेरा यह विश्वास है कि वर्तमान भारत शासन अधिनियम में यह स्वीकार किया गया है कि साधारणतया समवर्त्ती विषयों के सम्बन्ध में प्रशासन प्रान्तों द्वारा होना चाहिये। मेरे विचार से यह भी स्वीकार किया गया है कि बिना प्रान्तों की सहमति के वर्तमान शासन-प्रणाली में कोई परिवर्तन न किया जाना चाहिये। जहां तक हमारा सम्बन्ध है हम हमेशा केन्द्र की इच्छानुसार चलने के लिये तैयार हैं। वास्तव में अब कलह का कोई कारण नहीं रह गया है और चाहे कोई व्यक्ति कितना ही यह सोचे कि जो प्रणाली अपनाई गई है उससे भिन्न प्रणाली अधिक उपयुक्त होती किन्तु केन्द्र जब कोई निर्णय करता है तो वह व्यक्ति उसे स्वीकार ही नहीं करता परन्तु यह भी समझता है, कम से कम मैं तो यही सोचता हूं कि वही निर्णय ठीक है और सम्भवत: मैं गलत सोच रहा था। इस खण्ड के सम्बन्ध में भी यह बात हो सकती है। किन्तु जब हमने इस खण्ड के प्रावधानों का विश्लेषण किया तो हमने यह देखा कि उद्देश्यों और कारणों के विवरण में जो कारण बताये गये हैं उनके द्वारा केवल यह सुझाव किया गया है कि श्रम-सम्बन्धी और औद्योगिक विवादों का निर्णय करने के लिये पुनर्विचार औद्योगिक न्यायालयों के न्यायाधीश नियुक्त किये जायें। उन उद्देश्यों और कारणों

के विवरण के आधार पर मैंने पहले जिन संशोधनों की सूचना दी थी उन्हें माननीय सदस्यों ने देखा होगा। मैंने यह सुझाव किया था कि ऐसी दशा में वर्तमान स्थिति की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये सूचियों में ही परिवर्तन करना आवश्यक है। जब मैंने इस सम्बन्ध में माननीय गृह-मंत्री, माननीय उद्योग-मंत्री और माननीय श्रम-मंत्री से विचार-विमर्श किया तो हमने देखा कि इसके अतिरिक्त दो तीन और बातें भी ऐसी थीं जिनके सम्बन्ध में उनका यह विचार था कि उनके बारे में किसी प्रकार का प्रावधान रखना आवश्यक है भले ही वे उद्देश्यों और कारणों के विवरण में उल्लिखित नहीं थे। इसलिये इस संशोधन का स्वरूप बदल दिया गया। एक ओर इसमें इस सिद्धान्त का पोषण किया गया है कि समवर्त्ती विषयों के सम्बन्ध में अधिशासी शक्ति साधारणतया प्रान्तों को ही प्राप्त होगी, किन्तु दूसरी ओर इसमें यह भी स्वीकार किया गया है कि ऐसे भी अवसर आ सकते हैं जब इस सिद्धान्त को त्यागना पड़ेगा और केन्द्र को आगे बढ़ना होगा और अपने कर्मचारियों को भी नियुक्त करना पड़ेगा। में अभी कह नहीं सकता कि केन्द्र वास्तव में ऐसा करेगा अथवा नहीं करेगा। मैं नम्रतापूर्वक यह निवेदन करता हूं कि ढाल के दो रुख होते हैं; कभी केन्द्र एक रुख को देखता है तो प्रान्त दूसरे रुख को देखते हैं। इसलिये यह सम्भव है कि एक रुख को देखते हुए दूसरे रुख को कुछ भी महत्त्व न दिया जाये। किन्तु यह भी हो सकता है कि एक ओर जितना लाभ हो उसकी दृष्टि से दूसरी ओर की असुविधा नगण्य हो। इसलिये जब तक हम सारी समस्या को संतुलित दृष्टि से न देखें तब तक यह कहना कठिन है कि किसी विशेष विषय के कार्य को वहन करने वाले किसी माननीय मंत्री को जो मार्ग दिखाई देता है उसी पर चलने से लाभ हो सकता। मेरा यह आशय नहीं है कि इन संशोधनों में उल्लिखित विशेष विषयों के सम्बन्ध में ऐसी कठिनाइयां होंगी। किन्तु अवश्य ही मेरी यह धारणा है कि आधारभूत सिद्धान्त का अनुसरण किया ही जाना चाहिये। अन्यथा बड़ी गड़बड़ पैदा हो जायेगी। इसलिये हममें से कुछ लोगों के सम्मुख यह समस्या रही कि इस विधेयक में समवर्त्ती विषयों के सम्बन्ध में केन्द्र के लिये सर्वोपरि अधिशासी शक्ति की कल्पना की गई है। जैसा कि मैं कह चुका हूं, मुझे यह दिखाई दिया कि यह भारत-शासन के तथा किसी भी संघीय ढांचे के आधारभूत सिद्धान्त के विरुद्ध है। इसके विपरीत केन्द्र के माननीय मंत्रियों का यह अनुभव रहा है कि

[माननीय पंडित गोविन्द बल्लभ पंत]

इन विशेष विषयों के सम्बन्ध में उन्हें जो शक्ति प्राप्त है वह उनके कर्त्तव्यों का पालन करने के लिये तथा उनकी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिये पर्याप्त नहीं है। इसलिये हमारे सामने यह मध्यमार्ग दिखाई देता है कि इन विषयों के सम्बन्ध में केन्द्र को शक्ति दी जानी चाहिये। किन्तु यह शक्ति प्राप्त होने से ही केन्द्र को अपने कर्मचारियों को नियुक्त करने का अधिकार नहीं प्राप्त हो जाता है किन्तु उसे यह स्वतन्त्रता अवश्य प्राप्त हो जाती है कि वह इस उद्देश्य से किसी प्रस्ताव को सभा में उपस्थित करे और यदि उसे यह सभा स्वीकार कर लेती है तो अपने कर्मचारियों को नियुक्त करे। मेरा यह विश्वास है कि यदि इन विषयों के सम्बन्ध में वह प्रान्तीय सरकारों को ही अपना कार्यवाह नियुक्त करे तो इससे काम बहुत आसान हो जायेगा। हम प्रान्तों में उनकी इच्छा पूरी करने के लिये तैयार रहेंगे और उनकी इच्छा हमारे लिये आज्ञा के समान होगी। केन्द्र से हमें जो भी आदेश मिलते हैं उनके अनुसार तथा उनमें जो संकेत होते हैं उनके अनुसार भी चलने का हम यथाशक्ति प्रयत्न करते हैं और भविष्य में भी इस प्रकार चलने में हम गर्व का ही अनुभव करेंगे। किन्तु मुझे आशा है कि इस प्रकार का प्रबन्ध किया जायेगा कि गड़बड़ पैदा होने का कोई अवसर ही न आयेगा। मैं यह नहीं चाहता कि शासन में किसी प्रकार की गड़बड़ पैदा हो। शासन के क्षेत्र में जहां तक हो सके शक्तियों का दुहरा प्रयोग न होना चाहिये। प्रान्तीय स्वायत्त-शासन की स्पष्ट परिभाषा की गई है। प्रान्तीय शासन के किसी भी अंग में चाहे वह विधायी हो अथवा अधिशासी अथवा न्याय सम्बन्धी, हस्तक्षेप न होना चाहिये ताकि प्रान्त जिम्मेदार ठहराये जा सकें और उनका अपने जिम्मेदारी का ख्याल किसी प्रकार गिरने न पाये। जैसा कि मैं कह चुका हूं हमें व्यावहारिक दृष्टि से कार्य करना है और किन्हीं भी सिद्धान्तों के कारण इस समय की वास्तविक परिस्थिति में जो कुछ आवश्यक है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

इसलिये इस संशोधन का समर्थन करते हुए मुझे यह आशा है कि प्रान्तों में कोई नया अधिशासी-वर्ग भेजने की इच्छा प्रकट की जायेगी और इन विषयों के

सम्बन्ध में भी जो कानून बनाये जायेंगे उनको प्रयोग में लाने के लिये प्रान्तों का अधिक से अधिक उपयोग किया जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** क्या सरदार पटेल कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल:** जी नहीं, श्रीमान्, ये प्रस्ताव सहमति के उपरान्त उपस्थित किये गये हैं।

***उपाध्यक्ष:** तब मैं प्रस्ताव को उपस्थित करता हूं। प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 2, जैसा कि वह संशोधन संख्या 9 द्वारा संशोधित हुआ है और आगे संशोधन संख्या 4 द्वारा संशोधित हुआ है, विधेयक का अंग बना लिया जाये।"

मैं गलती कर रहा हूं। मैं यह देखता हूं कि मुझे पहले संशोधन संख्या 4 पर मत लेना है।

प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की मूल-सूची के संशोधन संख्या 9 में प्रविष्टि के लिये प्रस्तावित खंड 2 में 'said Act' (उक्त अधिनियम) शब्दों के स्थान में 'Government of India Act, 1935 (hereinafter referred to as the said Act)' [भारत शासन अधिनियम, सन् 1935 (जो आगे उक्त अधिनियम कहा गया है)] शब्द संख्या तथा कोष्ठक रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"खंड 2 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'2. भारत शासन अधिनियम, सन् 1935, की धारा 8 में संशोधन–

उक्त अधिनियम की धारा 8 में,–

(क) उपधारा (1) के परादिक के खण्ड (1) में 'in this Act' (इस अधिनियम में) शब्दों के बाद 'or in any law made by the Dominion Legislature with respect to any of the

[उपाध्यक्ष]

matters specified in the next succeeding sub-section' (अथवा किसी ऐसे कानून में जिसे औपनिवेशिक विधान-मंडल ने आगे की उपधारा में उल्लिखित विषयों के सम्बन्ध में बनाया हो) शब्द प्रविष्ट किये जायें; और

(ख) उपधारा (1) के बाद निम्नलिखित उपधारा प्रविष्ट की जाये, अर्थात्:—

'(1-A) The matters referred to in clause (i) of the proviso to sub-section (1) of this section are–

(a) industrial and labour disputes;

(b) trade and commerce in, and production, supply and distribution of, products of industries the development of which is declared by Dominion law to be expedient in the public interest;

(c) the sanctioning of cinematographic films for exhibition; and

(d) inquiries and statistics for the purpose of any of the matters in the Concurrent Legislative List.' "

[(1-ए) इस धारा की उपधारा (1) के परादिक के खंड (1) में इन विषयों का संकेत है—

(क) औद्योगिक तथा श्रम सम्बन्धी विवाद;

(ख) ऐसे औद्योगिक पदार्थों का व्यापार तथा वाणिज्य और उनका प्रदाय तथा वितरण जिनके सम्बन्ध में औपनिवेशिक कानून द्वारा यह घोषणा की गई हो कि उनका विकास लोकहित की दृष्टि से आवश्यक है;

(ग) सिनेमेटोग्राफिक फिल्मों के प्रदर्शन की मंजूरी; और

(घ) समवर्त्ती विधान-सूची के किन्हीं विषयों के सम्बन्ध में परिपृच्छा तथा आंकड़े।]

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं खण्ड 2 पर, संशोधित रूप में, सभा का मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 2, संशोधित रूप में, विधान का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*खण्ड 2, संशोधित रूप में, विधेयक का अंग बना लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब सभा खण्ड 3 पर विचार करेगी।

संशोधन संख्या 15 से, जो श्री कुलधर चालिया के नाम से है, प्रस्ताव का ही शून्यन हो जाता है इसलिए उसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती। संशोधन संख्या 16 में प्रथम विकल्प से भी, जो श्री टी. प्रकाशम् के नाम से है, प्रस्ताव का ही शून्यन हो जाता है और इसलिए उसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती। श्री टी. प्रकाशम् संशोधन संख्या 16 में दिए हुए दूसरे विकल्प को उपस्थित कर सकते हैं। मेरे विचार से प्रस्तावक महोदय उसे उपस्थित करना नहीं चाहते। मेरे विचार से इस खण्ड के सम्बन्ध में आगे के तीन संशोधन भी, अर्थात् संशोधन संख्या 17, 18 और 19 उपस्थित नहीं किये जा रहे हैं।

अब मैं खण्ड 3 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 3 विधेयक का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

*खण्ड 3 के विधेयक का अंग बना लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब सभा खण्ड 4 पर विचार करेगी, राय बहादुर लाला राजकुंवर के नाम से संशोधन संख्या 20 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती क्योंकि उससे प्रस्ताव का ही शून्यन हो जाता है।

मेरे विचार से आगे के दो संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 21 और 22, उपस्थित नहीं किये जा रहे हैं।

अब मैं खण्ड 4 पर सभा का मत लेता हूं।

[उपाध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 4 विधेयक का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*खण्ड 4 विधेयक का अंग बना लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब हम संशोधन संख्या 23 पर आते हैं जो माननीय पंडित गोविन्द बल्लभ पंत के नाम से है।

***माननीय पंडित गोविन्द बल्लभ पंत:** श्रीमान्, मैं संशोधन को उपस्थित कर रहा हूं और मैं अधिक समय नहीं लूंगा। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"खण्ड 4 के बाद निम्नलिखित नया खण्ड प्रविष्ट किया जाये:—

**4-ए, नवीन धारा 108-ए की प्रविष्टि—**उक्त अधिनियम के भाग 5 के अध्याय 2 में दी हुई धारा 109 के पहले निम्नलिखित धारा प्रविष्ट की जायेगी, अर्थात्:—

'108-A. No Bill or amendment providing for the exercise of the executive authority of the Dominion with respect to any of the matters specified in sub-section (1-A) for section 8 shall be introduced or moved in - the Dominion Legislature except with the previous sanction of the Governor-General, and the Governor-General shall not give his sanction to the introduction of any such Bill or the moving of any such amendment unless he is satisfied that the views of the Governments of the Provinces and the Acceding States concerned have been ascertained..'"

Previous sanction of Governor-General for certain legislative proposals.

[108-ए. कोई विधेयक अथवा संशोधन जिसका उद्देश्य कुछ विधायी प्रस्तावों के सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल की पूर्व मंजूरी धारा 8 की उपधारा (1-ए) में उल्लिखित विषयों के सम्बन्ध में उपनिवेश द्वारा अधिशासी प्राधिकार के बारे में प्रावधान करना हो उस समय तक औपनिवेशिक विधान-मंडल में उपस्थित न किया जायेगा जब तक कि गवर्नर-जनरल की पहले मंजूरी न ले ली गई हो और गवर्नर-जनरल ऐसे किसी विधेयक को उपस्थित करने अथवा ऐसे

किसी संशोधन को प्रस्तावित करने की मंजूरी उस समय तक न देगा जब तक कि उसे इस सम्बन्ध में सन्तोष न हो जाय कि प्रान्तों और सम्बन्धित समाविष्ट राज्यों की सम्मति ले ली गई है।]

श्रीमान्, इस संशोधन में मैंने केवल यह सुझाव उपस्थित किया है कि धारा 8 में अथवा अभी हमने जिस खण्ड 2 को स्वीकार किया है उसमें उल्लिखित विषयों के सम्बन्ध में सभा में कोई विधेयक अथवा संशोधन उपस्थित करने के पूर्व प्रान्तों से परामर्श लिया जाना चाहिये और यह प्रमाणिक रूप से किया जाना चाहिये तथा इस सम्बन्ध में जो लिखा-पढ़ी हुई हो उसे सदस्यों के सम्मुख रखा जाना चाहिये। मुझे विश्वास है कि माननीय गृह-मंत्री को इस संशोधन का सार स्वीकार्य है। जहां तक इसके रूप का सम्बन्ध है मुझे उसकी बहुत चिन्ता नहीं है। इसलिये यदि वे इस संशोधन के सार को स्वीकार करने के लिये तैयार हैं तो इसके वर्तमान रूप में मैं इसे वापस लेने के लिये तैयार हूं। इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर एक संशोधन है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** वह उपस्थित नहीं किया जा रहा है।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेलः** मैं इस संशोधन के सार के सम्बन्ध में माननीय पंडित पंत से पूर्णतया सहमत हूं। इसलिये मैं उन्हें यह आश्वासन देता हूं कि बिना प्रान्तों को अपनी सम्मति प्रकट करने का यथोचित अवसर दिये हुए केन्द्रीय विधान-मंडल में इस प्रकार का कोई विधेयक उपस्थित न किया जायेगा। इसलिये उचित यह होगा कि वे अपने संशोधन को वापस ले लें।

***माननीय पंडित गोविन्द बल्लभ पंतः** सभा की अनुमति से मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।

***उपाध्यक्षः** अब हम खण्ड 5 पर आते हैं। संशोधन संख्या 24 इस प्रकार है कि यह खण्ड निकाल दिया जाये और इसलिये उसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती। संशोधन संख्या 28, जो मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम से है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"खण्ड 5 में प्रस्तावित धारा 126-ए के अन्त में निम्नलिखित जोड़ दिया जाये....."

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उपाध्यक्ष महोदय, क्या मैं यह बता सकता हूं कि चूंकि विधेयक के प्रस्तावक महोदय का उद्देश्य यह है कि यह खण्ड वापस ले लिया जाये इसलिये यह संशोधन अनावश्यक है और उसे उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल:** हमने खण्ड 2 में एक परिवर्तन स्वीकार किया है और इसलिये अब खण्ड 5 को रखने का कोई अर्थ नहीं है। मेरे विचार से वह निकाल दिया जाना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 5 विधेयक का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब हम खण्ड 6 पर जाते हैं। संशोधन संख्या 29 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती क्योंकि इससे प्रस्ताव का खण्डन होता है।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 38 जो मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम से है। यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो हम यह मान लेंगे कि संशोधन पढ़ दिया गया है। आप उस पर अपनी सम्मति प्रकट कर सकते हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"खण्ड 6 में प्रस्तावित नवीन धारा 290-ए की उपधारा (1) के खण्ड (ख) में अन्त में आने वाला शब्द 'or' (अथवा) उपखण्ड (1) का पूरा खण्ड (ख) और उपखण्ड (1) का परादिक निकाल दिया जाये।"

अथवा, विकल्पत:

"खण्ड 6 में, प्रस्तावित नवीन धारा 290-ए की उपधारा (1) के खण्ड (ख) में 'shall be administered' (प्रशासित होंगे) शब्दों के

स्थान में 'shall with their consent be administered' (उनकी सहमति से प्रशासित होंगे) शब्द रखें जायें।"

अथवा, विकल्पत:

"खण्ड 6 में, प्रस्तावित नवीन धारा 290-ए के उपखण्ड (1) में 'the Governor-General may by order direct' (गवर्नर-जनरल आज्ञा देकर आदेश कर सकता है) शब्दों, से आरम्भ होने वाले तथा उक्त उपधारा के खण्ड (ख) तक के सभी शब्दों के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:—

'the Governor-General may by Order direct that the State or the group of States shall be administered in all respects as if the State or the group of States were—

(a) a Governor's or a Chief Commissioner's province' or

(b) with the consent of the State or States concerned, as part of a Governor's province.' "

[गवर्नर-जनरल आज्ञा देकर यह आदेश दे सकता है कि कोई राज्य अथवा राज्यों का समूह सभी विषयों के सम्बन्ध में उसी प्रकार प्रशासित होगा जैसे कि वह राज्य अथवा राज्यों का समूह—

(क) गवर्नर अथवा चीफ कमिश्नर का प्रान्त हो, अथवा

(ख) उस राज्य अथवा सम्बन्धित राज्यों की सहमति से गवर्नर के प्रान्त का भाग हो।]

मुझे खण्ड 6 की ओर सभा का ध्यान आकृष्ट करना है जिसमें नवीन धारा 290-ए को प्रविष्ट करने का प्रस्ताव है। धारा 290-ए की उपधारा (1) के खण्ड (ख) के इस अंश से मुझे आपत्ति है कि "कोई राज्य अथवा राज्यों का समूह सभी विषयों के सम्बन्ध में उसी प्रकार प्रशासित होगा जैसे कि वह राज्य अथवा राज्यों का समूह गवर्नर अथवा चीफ कमिश्नर का प्रान्त हो..." मेरा यह कहना है कि राज्यों ने एक संविदा पर हस्ताक्षर किये हैं जो समाविष्टि संविदा कही जाती है। उस संविदा की शर्तों के अधीन यह प्रस्ताव जिससे उनको वैसा ही समझा जायेगा जैसे कि वे गवर्नर अथवा चीफ कमिश्नर के प्रान्त के भाग हों, कानून के विरुद्ध होगा। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यदि यह किसी सम्बन्धित राज्य अथवा राज्यों की सहमति से किया जाये तो सब कुछ ठीक हो

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

जायेगा। इसलिये मेरे संशोधन का पहला भाग इस प्रकार है कि पूरा खण्ड (ख) निकाल दिया जाये। संशोधन के दूसरे भाग का रूप वैकल्पिक है और वह इस प्रकार है कि उस खण्ड को रहने दिया जाये किन्तु उसके साथ 'सम्बन्धित राज्य अथवा राज्यों की सहमति से' शब्द जोड़ दिये जायें। तीसरा विकल्प इस प्रकार है कि वह राज्य गवर्नर के अथवा चीफ कमिश्नर के एक स्वतन्त्र शान्त अथवा उसके भाग के रूप में केवल उसकी सहमति से शासित हो।

मैंने इस कारण इन संशोधनों को उपस्थित किया है: यह दिखाई देता है कि कुछ राज्यों ने, जो संक्षेप में पूर्वी राज्यों के रूप में वर्णित हैं, केन्द्रीय सरकार से इस आशय की संविदाओं पर हस्ताक्षर किये हैं कि अमुक नरेश केन्द्रीय सरकार को 'राज्य के शासन के लिये पूर्ण तथा एकात्मक प्राधिकार, क्षेत्राधिकार और शक्तियां समर्पित करता है और राज्य के प्रशासन को एक निश्चित तिथि से औपनिवेशिक सरकार के हाथ में देने के लिये सहमत है और औपनिवेशिक सरकार को इस प्रकार की शक्तियों, प्राधिकार और क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने का अधिकार है और वह जिस प्रकार उचित समझे और जिस साधन द्वारा उचित समझे इनका प्रयोग कर सकती हैं। मेरे विचार से इस संविदा का अर्थ यह है कि प्रत्येक राज्य के सम्बन्ध में राज्य ने अथवा उसकी ओर से नरेश ने भारत सरकार को राज्य का प्रबन्ध अथवा प्रशासन सौंप दिया है। भारत सरकार को इस प्रकार जो शक्ति समर्पित की गई है उसका सीधे-सीधे प्रयोग हो सकता है। अथवा किसी साधन द्वारा प्रयोग हो सकता है। मेरी यह आपत्ति है कि यह प्रबन्ध अथवा प्रशासन इस प्रकार नहीं किया जा सकता है कि राज्य का अस्तित्व ही नष्ट हो जाये। हुआ यह है कि इनमें से अधिकांश राज्य इन संविदाओं के आधार पर उड़ीसा के प्रान्त में मिला दिये गये हैं। मेरा यह निवेदन है कि इससे उनका अस्तित्व ही मिट जाता है। भारत शासन अधिनियम के अधीन उड़ीसा गवर्नर का प्रान्त है। जहां तक इन छोटे-छोटे राज्यों का सम्बन्ध है, यद्यपि इनके विधान अस्पष्ट हैं किन्तु वे उस प्रान्त के विधान से भिन्न हैं जिसमें वे मिलाये जा रहे हैं। मेरा यह निवेदन है कि यद्यपि भारत सरकार को इन राज्यों का सीधे-सीधे

अथवा किसी साधन द्वारा शासन अथवा प्रशासन करने का अधिकार दिया गया है परन्तु इन राज्यों को गवर्नर के किसी प्रान्त का अंग बनाने की शक्ति नहीं दी गई है। उड़ीसा का प्रान्त पूर्ण रूप से अथवा पूर्ण अधिकार से उनका प्रबन्ध कर सकता था किन्तु इस प्रकार कि उनके अस्तित्व अथवा स्वरूप पर कोई प्रभाव न पड़े। ये उड़ीसा के अंग तो बनाये ही नहीं जा सकते। मैं सभा से यही निवेदन करना चाहता हूं।

जहां तक मेरे माननीय मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर की बात का सम्बन्ध है उन्होंने यह कहा है कि स्थिति यह नहीं है कि किसी राज्य को गवर्नर के प्रान्त में समाविष्ट किया जा रहा है परन्तु इस प्रकार है 'जैसे कि' वह गवर्नर के प्रान्त का अंग हो गया हो। यद्यपि शब्दों में कुछ अन्तर अवश्य है परन्तु व्यवहार में, मेरे विचार से, इससे कुछ भी अन्तर न पड़ेगा। वास्तव में ये राज्य प्रान्त ही के समान समझे जायेंगे और कार्य रूप में ये प्रान्त में ही पूर्ण रूप से समाविष्ट किये जा रहे हैं। 'जैसे कि' शब्दों से स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। उन पर जोर देने का अर्थ यह है कि हम वास्तविक स्थिति से मुंह मोड़ रहे हैं। वास्तव में वे उड़ीसा प्रान्त के अंग बनाये जा चुके हैं।

मुझे आशा है कि सभा इस सुविदित कानूनी स्थिति पर विचार करेगी। वास्तव में जब अंग्रेज चले गये तो इन राज्यों को एक प्रकार की स्वतंत्रता और सर्वसत्ता प्राप्त हो गई। विधान के मसौदे पर विचार करने के लिये जो वादानुवाद हुआ था उसमें डॉ. अम्बेडकर ने इसे स्वीकार किया था। कुछ माननीय सदस्यों ने यह कहा था कि इन राज्यों को किसी प्रकार की सर्वसत्ता प्राप्त नहीं है किन्तु यथोचित विचार करने पर माननीय डॉक्टर महोदय ने, सम्भवत: भारत सरकार की ओर से और सरकार की पूर्ण सहमति से स्थिति को इस प्रकार स्पष्ट किया था कि उन्हें किसी न किसी प्रकार की सर्वसत्ता प्राप्त है ही। चाहे आप उसे परिवर्तित सर्वसत्ता कहिये अथवा निम्न प्रकार की सर्वसत्ता कहिये परन्तु उन्हें किसी न किसी प्रकार की सर्वसत्ता प्राप्त थी ही।

इसके सम्बन्ध में भारत शासन अधिनियम की एक संशोधित धारा इस प्रकार है ये राज्य समाविष्ट हो सकते हैं चाहे यह भिन्न पत्रों के आधार पर ही हो। किन्तु समाविष्टि का आशय केवल समाविष्टि की शर्तों तक ही सीमित है। भारत

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

शासन अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (2) से यह स्पष्ट हो जाता है।

वास्तव में जो शक्ति दी गई है और जिन विषयों के सम्बन्ध में शक्ति दी गई है वह स्पष्ट शब्दों में वर्णित होनी चाहिये। इस स्थिति में यह सब इस पर निर्भर है कि आप पत्रों की किस प्रकार व्याख्या करते हैं। एक समाविष्टि पत्र है और एक दूसरा पत्र भी है जिस पर 14 अथवा 15 दिसम्बर सन् 1947 की तिथि पड़ी हुई है। इन तिथियों में अथवा इसी बीच राज्यों के नरेशों ने इस प्रकार के अन्य कई पत्रों पर भी हस्ताक्षर किये। ये दो पत्र महत्त्वपूर्ण हैं और इनकी शर्तें भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध होंगी और सब कुछ इस पर निर्भर रहेगा कि वास्तव में केन्द्रीय सरकार को कौन से अधिकार, क्षेत्राधिकार तथा प्राधिकार समर्पित किये गये हैं विशेषत: या इसे दृष्टि में रख कर उसे किसी राज्य को गवर्नर के प्रान्त में समाविष्ट करने अथवा उसका अंग बनाने की कितनी शक्ति प्राप्त है। प्रश्न केवल यह है कि क्या यह शक्ति वास्तव में स्पष्ट शब्दों में और स्पष्ट अर्थ में दी गई है अथवा नहीं। दूसरे पत्र के सम्बन्ध में जिसमें 14 अथवा 15 दिसम्बर की तिथि पड़ी हुई है, और जिसका वास्तव में महत्त्व है, मैंने यह देखा कि उसकी जो व्याख्या मैं सभा के सम्मुख रख रहा हूं उसके पक्ष में तथा उसके विरुद्ध कई बातें हैं जिन्हें मैं सभा को स्पष्टतया बता देना चाहता हूं।

इस पत्र की प्रस्तावना में यह वाक्यावली है—

> "चूंकि यह राज्य के तथा उसके लोगों के तात्कालिक हित में और नरेश भी इसके लिये इच्छुक हैं कि राज्य का प्रशासन यथाशीघ्र उड़ीसा के प्रान्त में समाविष्ट कर दिया जाये।"

वास्तव में प्रस्तावना में स्पष्ट शब्दों में यह इच्छा प्रकट की गई है कि सम्बन्धित राज्य उड़ीसा के प्रान्त में समाविष्ट किये जायें।

***उपाध्यक्ष:** यद्यपि मैं यह स्वीकार करता हूं कि मुझे इन विषयों के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी है किन्तु मुझे यह प्रतीत होता है कि आप इस सम्बन्ध में सामान्य रूप से चर्चा कर रहे हैं। आपको अपने संशोधन के बारे में बोलना चाहिये। इस समय सामान्य वादानुवाद नहीं हो रहा है। ये बातें सामान्य वादानुवाद के समय अधिक उपयुक्त होतीं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मुझे आपका निर्णय शिरोधार्य है किन्तु जैसा कि मैं आगे बताऊंगा इन बातों का इस विषय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

***उपाध्यक्ष:** मुझे खेद है कि मैं आप से सहमत नहीं हूं। मैं आपसे कहता हूं कि आप संशोधन पर ही बोलिये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** संशोधन इन्हीं विषयों के सम्बन्ध में है। मैं सभा को यह बता रहा हूं कि मेरे तर्क के विरोध में क्या बातें हैं। मुझे इन बातों को भी स्पष्ट कर देना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** यह ठीक है। आपके अपने विचार हैं किन्तु सभा की भी कुछ सम्मति है और यह हो सकता है कि एक सदस्य की सम्मति से 299 सदस्यों की सम्मति अधिक महत्त्वपूर्ण हो।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है किन्तु प्रत्येक सदस्य को बोलने का अधिकार है।

***उपाध्यक्ष:** आपको तर्क-वितर्क न करना चाहिये बल्कि मेरे सुझाव के अनुसार चलना चाहिये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** आपका सुझाव क्या है?

***उपाध्यक्ष:** कि आप अपने संशोधन पर बोलें।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि मैं अपने संशोधन पर ही बोल रहा था।

***उपाध्यक्ष:** तब आप उस पर सीधे-सीधे बोलें और गोलमोल ढंग से न बोलें।

**श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मैं गोलमोल ढंग से नहीं बोल रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** मैं यह देख रहा हूं कि आप तर्क-वितर्क कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में मेरा मत ही अन्तिम है।

**श्री नजीरुद्दीन अहमद:** निस्सन्देह, श्रीमान्। कठिनाई यह है कि यह विषय बहुत पेचीदा है। मेरा यह निवेदन है कि समाविष्टि की इच्छा का प्रदर्शन, जिससे

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

मेरे तर्क का खण्डन होता है, केवल प्रस्तावना में किया गया है और संविदा में नहीं किया गया है। परन्तु संविदा ही व्यवहार में आती है और निर्वचन का यह नियम सर्वविदित है कि यदि प्रस्तावना में कोई इच्छा अथवा सम्मति प्रकट की गई हो तो उस समय तक उसका कोई मूल्य अथवा प्रभाव न होगा जब तक कि वह मुख्य पत्र में भी प्रविष्ट न कर दी जाये। यह एक सुनिश्चित सिद्धान्त है। मेरा यह निवेदन है कि अनुच्छेद 1 में, जिसके सम्बन्ध में ही यह प्रश्न है, 'पूर्ण तथा एकात्मक प्राधिकार, क्षेत्राधिकार और शक्तियों' का उल्लेख है किन्तु इनका सम्बन्ध केवल राज्य के शासन तथा प्रशासन से है। केवल उपरोक्त कारणों से राज्य इसके लिये सहमत हुए कि उनका प्रशासन हस्तान्तरित किया जाये। इस सम्बन्ध में दो महत्त्वपूर्ण बातें हैं। एक बात यह है कि संविदा का सम्बन्ध राज्य के प्रशासन से है और यह कि वह प्रशासन हस्तान्तरित करता है। समाविष्टि संविदा पर हस्ताक्षर करते समय उसकी जो कुछ भी सर्वसत्ता अवशेष रह गई थी उसे वह हस्तान्तरित नहीं करता। उस सर्वसत्ता से अधिकार लेकर जो कुछ बच जाता है वह अवशेष रहता ही है। उस पत्र में कहीं भी 'समाविष्टि' का उल्लेख नहीं है। केवल प्रशासनाधिकार हस्तान्तरित किया गया है। मेरा यह निवेदन है कि जो सम्पत्ति आपको सौंपी गई हो उसका प्रशासन करने में आप उसका स्वरूप नहीं बदल सकते। उदाहरण के लिये किसी व्यक्ति से किसी कारोबार का जैसे कि चीनी के कारोबार का प्रशासन करने के लिये कहा जा सकता है। आप किसी आढ़तिये से अथवा प्रशासक से ऐसा करने के लिये कहते हैं और यदि उस आढ़तिये अथवा प्रशासक का क्विनीन का भी कारोबार हो और वह चीनी को क्विनीन में बदल दे तो कोई मीठी चीज पैदा करने के स्थान में वह कड़वी चीज पैदा करता है। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि आप इसी प्रकार की एक बात करने जा रहे हैं। आपसे एक ऐसे राज्य का प्रशासन करने को कहा जा रहा है जिसके अपने कानून तथा नियम और अपना विधान तथा शासन है। आप अब उनके स्वरूप को ही बदल देना चाहते हैं। और उन्हें गवर्नर के प्रान्त का अंग बना देना चाहते हैं। जिसके भिन्न नियम और भिन्न विधान हैं। केवल दोनों

भूभागों का सम्मिलन ही नहीं होने जा रहा है किन्तु पूर्ण समाविष्टि हो रही है जिसके फलस्वरूप राज्य का अपना स्वरूप तथा अस्तित्व ही मिट जाता है। उदाहरण के लिये सदि विपत्तिग्रस्त कोई मनुष्य अपनी पत्नी को किसी मित्र की रक्षा में रख जाये और वह मित्र किसी दूसरे मित्र को उसकी पत्नी दे दे और वह उसे अपनी पत्नी बना ले तो यह कैसी स्थिति होगी? यही किया जाने वाला है।

***उपाध्यक्ष:** यह कोई बहुत अच्छा उदाहरण नहीं है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** प्रशासन की शक्ति का अर्थ है प्रबन्ध की शक्ति। किसी चीज का प्रशासन करने अथवा प्रबन्ध, करने में आप उसका स्वरूप नहीं बदल सकते हैं। साधारण शब्दों में स्थिति इस प्रकार है। माननीय डॉ. पटेल ने इस ओर संकेत किया था कि राज्यों के सम्बन्ध में कानूनी सलाह ली गई थी। कुछ सम्मतियां है और वे मुझ जैसे साधारण वकीलों की सम्मतियां नहीं हैं बल्कि सर तेज बहादुर जैसे लोगों की वजनी सम्मतियां हैं जो समाविष्टि के कानूनी होने के विरुद्ध हैं। उनका स्पष्ट रूप से यह मत है और मेरे विचार से भारत सरकार को यह सूचित कर दिया गया है कि यह कानून के विरुद्ध है।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल:** इस सभा का बाहर के लोगों की कानून सम्बन्धी सम्मति से कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** यह ठीक है। इस प्रश्न पर सभा को बाहर की सम्मति के आधार पर नहीं बल्कि इसी के आचित्य को देख कर विचार करना चाहिये। मैं केवल यह निवेदन करता हूं कि इस सम्बन्ध में बहुत वजनी सम्मति दी गई है और इस विषय पर सावधानी से विचार करना चाहिए। इस स्थिति में मेरा यह निवेदन है कि उपखण्ड (1) का विषय (ख) संविदा के प्रावधानों के विरुद्ध है। मेरा यह निवेदन है कि संविदा पर सावधानी से विचार किया जाना चाहिये। मैं यह देखता हूं कि संविदा में कोई ऐसी बात नहीं है जिसके आधार पर एक प्रकार का राज्य बिल्कुल ही भिन्न प्रकार का बनाया जा सकता है। यही साधारण तर्क मैं उपस्थित करना चाहता हूं। मैं यह बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहता

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

हूं कि केवल सभी बातों को नियमित बनाने के उद्देश्य से ही मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है। यदि कोई बात अनियमित है अथवा कोई बात रह गई है तो मेरे विचार से नरेशों से अपने स्वार्थों की दृष्टि से भी इस अधिकार को हस्तान्तरित करने के उद्देश्य से एक दूसरे पत्र पर हस्ताक्षर करने को कहा जाये ताकि इन राज्यों को गवर्नर के प्रान्त का अंग बनाया जा सके। यदि आगे चल कर कभी...

***उपाध्यक्ष:** मैं माननीय सदस्य को बीस मिनट दे चुका हूं

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** क्या आप यह चाहते हैं कि मैं समाप्त कर दूं?

***उपाध्यक्ष:** जी हां।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, धन्यवाद।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"खण्ड 6 में प्रस्तावित नवीन धारा 290-ए की उपधारा (3) में 'give such' (देते हैं) शब्दों के बाद 'supplemental' (अनुपूरक) शब्द रखा जाये।"

"यह बहुत कुछ एक रस्मी संशोधन है। खण्ड में 'incidental' (आनुसंगिक) और 'consequential' (समवर्त्ती) शब्द आये हैं। 'supplemental' (अनुपूरक) शब्द भी आवश्यक है।"

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल:** मैं इसे स्वीकार करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 64 जिसे श्री हिम्मतसिंहका ने प्रस्तावित किया है।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"खण्ड 6 में प्रस्तावित नवीन धारा 290-बी में, 'by the Government of' (वहां की सरकार द्वारा) शब्दों के स्थान में 'in all respects by' (सभी विषयों के सम्बन्ध में) शब्द रखे जायें।"

धारा 290-ए में कुछ समाविष्ट होने वाले ऐसे राज्यों के प्रशासन के सम्बन्ध में व्यवस्था की गई है जो चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों अथवा गवर्नरों के प्रान्तों के साथ मिलाये जा रहे हैं। यह उस मामले से भिन्न है जिसमें चीफ कमिश्नर के प्रान्त का कोई क्षेत्र किसी समाविष्ट होने वाले राज्य में मिलाया जा रहा है। इसलिए मैं यह सुझाव रख रहा हूं कि सभी विषयों के सम्बन्ध में उसका प्रशासन होगा ताकि जिस राज्य में वह समाविष्ट किया जाय उसके सभी विषयों के सम्बन्ध में प्रशासन करने के अधिकार पर संदेह प्रकट न किया जाये चाहे वे विषय अधिशासी शक्ति से सम्बन्ध रखते हों अथवा विधायी शक्ति से अथवा अन्य प्रकार की किसी शक्ति से। यह पहले के प्रावधान के अनुरूप ही होगा।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल:** मैं इसे स्वीकार करता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"खण्ड 6 में, प्रस्तावित नवीन धारा 290-बी की उपधारा (2) में 'contain such' (होंगे) शब्दों के बाद 'supplemental' (अनुपूरक) शब्द रखा जाये।"

यह संशोधन उसी संशोधन के समान है जो पहले उपस्थित कर चुका हूं और मुझे आशा है कि यह सभा उसे स्वीकार कर लेगी।

***उपाध्यक्ष:** खण्ड 6 पर अब सामान्य वादानुवाद हो सकता है। मैं राज्यों के लोगों से बोलने के लिए कहूंगा क्योंकि मुख्यत: उन्हीं लोगों को इस प्रश्न से दिलचस्पी है। श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय। मुझे खेद है कि मैं आपको बहुत समय न दे सकूंगा।

***श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय** (मध्य भारत): उपाध्यक्ष महोदय, मैं सभा का अधिक समय न लूंगा। मुझे विशेषत: मि. नजीरुद्दीन द्वारा उपस्थित संशोधन का उत्तर देना है। मैं एक राज्य से यहां उपस्थित हुआ है। और मेरा यह कहना है कि इस प्रश्न से राज्यों के नरेशों की उतनी दिलचस्पी नहीं है जितनी कि वहां के लोगों की। यद्यपि कानून सभी जगह प्रयोग में आता है किन्तु वास्तव में यह कोई कानूनी प्रश्न नहीं है। यह एक राजनैतिक प्रश्न है। हम इस देश को विभिन्न क्षेत्रों तथा राज्यों में विभाजित नहीं करना चाहते और इसी लिये राज्यों के लोग

[श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय]

बराबर यही मांग करते आये हैं कि विभिन्न राज्यों को समाप्त किया जाये और एक भारत का निर्माण किया जाय। इसलिये राज्य-विभाग ने जो कुछ भी किया है और जो कोई भी संविदाओं पर हस्ताक्षर किये हैं उन से लोगों का हितसाधन ही होगा। आखिर तथाकथित ब्रिटिश भारतीय प्रान्तों के लोग और राज्यों के लोग एक ही तो हैं। इसलिये जो कुछ भी किया गया है उससे देश का हित ही होगा। श्रीमान्, मैं यह कहूंगा कि कानूनी दृष्टि से 'जैसे कि' शब्द पर्याप्त हैं और इनसे जितना विभेद आवश्यक है वह हो जाता है। मेरी तो यह इच्छा है कि इन राज्यों का भारत के मानचित्र में कोई स्थान ही न होना चाहिये और विभेद भी न रखा जाना चाहिये। इसलिये मुझे यह कहना है कि इस धारा के सम्बन्ध में कानूनी आपत्तियों की ओर हमें कोई ध्यान न देना चाहिये और इसे मूल रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये।

**श्री रत्न लाल मालवीय** (मध्यप्रान्त और बरार : राज्य): अध्यक्ष महोदय, मैं सरदार पटेल के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट के संशोधन और खासकर आर्टिकल 6 के समर्थन करने के लिये खड़ा हुआ हूं। दरअसल छत्तीसगढ़ की स्टेटों की मनशा खासतौर से इस प्रकार थी कि ये सब स्टेटें मर्ज हो जायें जिससे वे प्रान्त के मुताबिक उन्नति कर सकें और देश की उन्नति में अपना हाथ बंटा सकें।

जब सरदार पटेल 14 दिसम्बर सन् 1947 को कटक पहुंचे थे तब उस वक्त इसी उद्देश्य से छत्तीसगढ़ के प्रतिनिधियों ने उन्हें इस बात के लिये एक मेमोरेंडम दिया था कि छत्तीसगढ़ की स्टेटों को भी जल्दी मर्ज कर दिया जाय, जैसा उड़ीसा के लिये किया गया। हमें यह खुशी हुई कि छत्तीसगढ़ की स्टेट सी. पी. में मर्ज कर दी गई। पहली जनवरी को मर्जर के बाद स्टेटों में हर जगह उत्सव किये गये और हमने मर्जर के उपलक्ष्य में खुशियां मनाईं।

पहली जनवरी के बाद यानी जब स्टेटें मर्ज हो चुकीं उसके बाद प्रान्तीय सरकार ने काफी कोशिश इस बात की की, कि स्टेटों में सुधार हो और उन्होंने कुछ सुधार भी जल्दी-जल्दी पेश किये जिससे लोगों को इस बात की तसल्ली हुई कि मर्जर के बाद उन्हें फायदा हुआ है मगर प्रान्तीय सरकार का स्टेटों के

प्रतिनिधियों के साथ सहयोग नहीं हो सका जिसकी वजह से वहां कुछ अशान्ति सी पैदा हो गई जो कि अब तक है। इस बात की जरूरत थी कि जो अमेंडिंग एक्ट पेश है, वह पहले पास हो जाता जिससे स्टेटों के प्रतिनिधियों को यह हक मिलता कि वे प्रान्तीय सरकार को सलाह देते और स्टेटों के शासन में उनकी राय के मुताबिक काम होता। पहली जनवरी को मर्जर के बाद एक माह के अन्दर उड़ीसा में वहां की स्टेटों का एडवाइजरी बोर्ड बना दिया गया और उनके प्रतिनिधियों को एक्जीक्यूटिव कौंसिल में ले लिया गया। पर सी. पी. की सरकार ऐसा नहीं कर सकी। सी. पी. की स्टेटों के प्रतिनिधियों ने इस बात की कोशिश की और यदि सी. पी. की सरकार ने भी उड़ीसा की तरह स्टेटों के शासन में सहयोग प्राप्त करने के लिये पहले ही एडवाइजरी कौंसिल बना दी होती और एक्जीक्यूटिव कौंसिलर ले लिये होते तो स्टेटों में अशान्ति न होने पाती। किन्हीं भी दिक्कतों के कारण सी. पी. सरकार ने ऐसा न किया हो पर अब ये दिक्कतें इस दफा के पास हो जाने से दूर हो जाती हैं।

इस दरमियान में सभापतिजी, मैं आपको बतला दूं जब हमारे प्रतिनिधि सी. पी. सरकार के सहयोग में नहीं थे तो उसका नतीजा यह हुआ कि अफसरों ने जो रिपोर्ट कार्यकर्ताओं के खिलाफ, जिम्मेदार आदमियों के खिलाफ की, वह सरकार को स्वाभाविक ही मंजूर करनी पड़ी जिस वजह से प्रारम्भ में वहां कुछ गड़बड़ हो गई।

इसके साथ ही साथ हमारा ताल्लुक उनके साथ न होने से यह भी हुआ कि कहीं-कहीं लगान की वसूली में बड़ी ज्यादती हुई। जब हम अपनी फरयाद लेकर प्रधान मंत्री और प्रान्तीय सरकार के पास पहुंचे तो हमसे अफसर नाराज हो गये और हमारे कार्यकर्ताओं के खिलाफ मुकद्दमे चलाये गये। और अभी हाल की बात है कि कई कार्यकर्ताओं को जेल की सजा दी गई है। इसी तरह जंगल के मामले में यह हुआ कि रेट्स बुरी तरह से बढ़ा दिये गये जिससे काफी असंतोष स्टेटों में फैल गया है। साथ ही साथ यह भी हुआ कि जो फैसीलिटी स्टेटों को पहले थीं वह करटेल कर दी गई जिससे भी असंतोष पैदा हो गया। यदि हमारा सहयोग होता जैसा कि इस दफा के अनुसार हमारा सहयोग आगे होगा

[श्री रत्न लाल मालवीय]

तो जो दिक्कतें अभी हमारे सामने आ चुकी हैं और जो परिस्थितियां वहां पैदा हो गई हैं वह पैदा न होतीं।

इस दफा के पास हो जाने से जनता के प्रतिनिधियों को उनकी सेवा करने में मदद मिलेगी और वह अपनी आवाज सरकार तक पहुंचा सकेंगे। इन शब्दों के साथ मैं इस बिल की दफा (6) का स्वागत करता हूं और सरदार पटेल को उनके इस बिल के लिये बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूं।

***उपाध्यक्ष:** सरदार पटेल, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल:** मुझे कुछ नहीं कहना है।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा।

संशोधन संख्या 38 जो मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम से है।

प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 6 में प्रस्तावित नवीन धारा 290-ए की उपधारा (1) के खण्ड (ख) में अन्त में आने वाला शब्द 'or' (अथवा) उपखण्ड (1) का पूरा खण्ड (ख) और उपखण्ड (1) का परादिक निकाल दिया जाये।"

अथवा, विकल्पत:

"खण्ड 6 में, प्रस्तावित नवीन धारा 290-ए की उपधारा (1) के खण्ड (ख) में 'shall be administered' (प्रशासित होंगे) शब्दों के स्थान में 'shall with their consent be administered' (उनकी सहमति से प्रशासित होंगे), शब्द रखे जायें।"

अथवा, विकल्पत:

"खण्ड 6 में प्रस्तावित नवीन धारा 290-ए के उपखण्ड (1) में "the Governor-General may by Order direct" (गवर्नर-जनरल

आज्ञा देकर आदेश कर सकता है)। शब्दों से आरम्भ होने वाले तथा उक्त उपधारा के खण्ड (ख) तक के सभी शब्दों के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:—

'the Governor-General may by Order direct that the State or the group of States shall be administered in all respects as if the State or the group of States were–

(a) a Governor's or a Chief Commissioner's province, or

(b) with the consent of the State or States concerned, as part of a Governor's province.' "

[गवर्नर-जनरल आज्ञा देकर यह आदेश दे सकता है कि कोई राज्य अथवा राज्यों का समूह सभी विषयों के सम्बन्ध में उसी प्रकार प्रशासित होगा जैसे कि वह राज्य अथवा राज्यों का समूह–

(क) गवर्नर अथवा चीफ कमिश्नर का प्रान्त हो, अथवा

(ख) उस राज्य अथवा सम्बन्धित राज्यों की सहमति से गवर्नर के प्रान्त का भाग हो।]

*संशोधन गिर गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 56 जो श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के नाम से है।

प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 6 में, प्रस्तावित नवीन धारा 290-ए की उपधारा (3) में 'give such' (देते हैं) शब्दों के बाद 'supplemental' (अनुपूरक) शब्द रखा जाये।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 64 जिसे श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका ने उपस्थित किया है।

[उपाध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 6 में, प्रस्तावित नवीन धारा 290-बी में 'by the Government of' (वहां की सरकार द्वारा) शब्दों के स्थान में 'in all respects by' (सभी विषयों के सम्बन्ध में) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 75 जो श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के नाम से है।

प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 6 में, प्रस्तावित नवीन धारा 290-बी की उपधारा (2) में 'contain such' (होंगे) शब्दों के बाद 'supplemental' (अनुपूरक) शब्द रखा जाये।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 6, संशोधित रूप में विधेयक का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

"खण्ड 6, संशोधित रूप में विधेयक का अंग बना लिया गया।"

***उपाध्यक्ष:** अब हम खण्ड 7 को उठाते हैं। संशोधन संख्या 80 जो श्री टी. टी. कृष्णमाचारी के नाम से है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"खण्ड 7 के उपखंड (ए) में, संघीय विधायी सूची के प्रस्तावित पैरा 34 में से 'trade and commerce (whether or not within a province) in, and production, supply and distribution of, products of such industries' [इस प्रकार के उद्योग धंधों की वस्तुओं में व्यापार और वाणिज्य (चाहे वह किसी प्रान्त में हो

अथवा न हो) और उनका उत्पादन, प्रदाय और वितरण] शब्द निकाल दिये जायें।"

श्रीमान्, आरम्भ में इस संशोधन को उपस्थित करने का उद्देश्य कुछ दूसरा था किन्तु अब यह इसलिये आवश्यक है कि अनुच्छेद 2 में परिवर्तन कर दिया गया है और इसलिये भी कि चूंकि मेरे माननीय मित्र श्री गोविन्द बल्लभ पंत संशोधन संख्या 87 और 88 उपस्थित करने जा रहे हैं इसलिये उनको दृष्टि में रखकर स्थिति को स्पष्ट करना आवश्यक होगा विशेषत: इसलिये कि जिन शब्दों को निकालने का प्रस्ताव था उन्हें अब संशोधन संख्या 87 और 88 द्वारा अनुसूची 7 की सूची 3 में रखा जा रहा है। मुझे आशा है कि यह सभा इस संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

***माननीय पंडित गोविन्द बल्लभ पंत:** श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करना चाहता हूं....

***उपाध्यक्ष:** क्या आप तीनों संशोधन उपस्थित कर रहे हैं?

***माननीय पंडित गोविन्द बल्लभ पंत:** जी हां, श्रीमान्, संशोधन संख्या 84, 87 और 88 । मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"खंड 7 के उपखण्ड (बी) में, प्रांतीय विधायी सूची के प्रस्तावित पैरा 27 में '34 of List I' (सूची 1 का 34) शब्दों के स्थान में '31(A) of List III' [सूची 3 का 31(ए)] शब्द रखे जायें।

"खण्ड 7 के उपखण्ड (सी) में प्रान्तीय विधायी सूची के प्रस्तावित पैरा 29 में '34 of List I' (सूची 1 का 34) शब्दों और अंकों के स्थान में '31 A of List III' (सूची 3 का 31-ए) शब्द और अंक रखे जायें।"

"खण्ड 7 में, अन्त में निम्नलिखित नवीन उपखण्ड प्रविष्ट किया जाये:

'(d) after paragraph 31 of the Concurrent Legislative List the following paragraph shall be inserted as paragraph 31(A):–

31(A). Trade and commerce in, and production, supply and distribution of, products of industries, the

[माननीय पंडित गोविन्द बल्लभ पंत]

development of which is declared by Dominion law to be expedient in the public interest under paragraph 34 of List I.' "

[(घ) समवर्ती विधायी सूची के पैरा 31 के बाद पैरा 31(ए) के रूप में निम्नलिखित पैरा प्रविष्ट किया जायेगा:

31(ए) ऐसे उद्योग धंधों की वस्तुओं का व्यापार और वाणिज्य तथा उनका उत्पादन, प्रदाय और वितरण, जिनका विकास उपनिवेश के कानून के द्वारा सूची 1 के पैरा 34 के अधीन लोकहित के लिये आवश्यक घोषित किया गया हो।] "

श्रीमान्, चारों संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 80, 84, 87 और 88 आपस में सम्बन्धित हैं और इसलिये वे साथ ही स्वीकार होंगे अथवा गिर जायेंगे। इस विधेयक के अनुसार यदि औपनिवेशिक कानून द्वारा यह घोषित किया गया है कि उपनिवेश के नियंत्रण में उद्योग-धन्धों का विकास लोकहित के लिये आवश्यक है तो इन उद्योग-धंधों का नियमन तथा नियंत्रण और इनके सम्बन्ध में व्यापार तथा वाणिज्य (चाहे वह किसी प्रान्त में हो अथवा न हो) तथा इनकी वस्तुओं का उत्पादन, प्रदाय और वितरण सूची 1 में समाविष्ट होना था। अर्थात् इन सभी विषयों को केवल संघीय विधान-मंडल और संघीय सरकार के अधिकार क्षेत्र में रखने का प्रस्ताव था। इससे बहुत-सी कठिनाइयां और पेचीदगियां उत्पन्न हो जातीं। हम सभी यह समझते हैं कि जहां तक उन उद्योग-धंधों के विकास का सम्बन्ध है जिनके बारे में औपनिवेशिक कानून द्वारा यह घोषित किया गया हो कि लोकहित की दृष्टि से इनका विकास उपनिवेश के नियंत्रण में आवश्यक है, उसका नियमन तथा नियंत्रण केन्द्र द्वारा हो। संघीय विधायी सूची में जो प्रविष्टि है उसके अनुसार ऐसे उद्योग-धंधों का विकास, जिनके बारे मे औपनिवेशिक कानून द्वारा यह घोषित किया गया हो कि लोकहित की दृष्टि से उनका विकास आवश्यक है उस सूची में उल्लिखित है ही और उद्देश्य यह नहीं है कि जहां तक उसका सम्बन्ध है उसमें कोई परिवर्तन किया जाये। किन्तु जैसा कि इस संशोधन द्वारा प्रस्ताव किया गया है, ऐसे उद्योग-धंधों का नियन्त्रण तथा नियमन, संघीय विधान-मंडल के अधिकार क्षेत्र में भी होना चाहिये। इसलिये जहां तक इस खण्ड के पहले दो भागों का सम्बन्ध है वे उसी प्रकार रहेंगे। किन्तु आगे के अंश के सम्बन्ध में अर्थात् व्यापार और वाणिज्य (चाहे वह

किसी प्रान्त में हो अथवा न हो) और इन उद्योग-धंधों की वस्तुओं के उत्पादन, प्रदाय और वितरण के सम्बन्ध में आरम्भ में मैंने जिन संशोधनों की चर्चा की थी उनके द्वारा यह प्रस्ताव किया गया है कि ये समवर्ती सूची में सम्मिलित किये जायें और अन्य संशोधनों में तदनुसार परिवर्तन किये जायें। इसलिये मुख्य प्रश्न, जिस पर सभा ने विचार करना है, यह है कि व्यापार और वाणिज्य (चाहे वह किसी प्रान्त में हो अथवा न हो) और ऐसे उद्योग-धंधों की वस्तुओं का उत्पादन, प्रदाय और वितरण इस वर्ग से हटा कर सूची 3 में रखा जाये अथवा नहीं अर्थात् उसे सूची 1 में सम्मिलित करने के बजाय उसे सूची 3 का अंग बना लिया जाये अथवा नहीं।

मेरे विचार से माननीय सदस्य इससे सहमत होंगे कि मैंने जिन संशोधनों को प्रस्तावित किया है उनसे मूल खण्ड के उद्देश्य की पूर्ण रूप से पूर्ति होगी और इन विषयों को समवर्ती सूची में सम्मिलित न करने से जो कठिनाइयां और पेचीदगियां पैदा होतीं वे भी दूर होंगी। इनको समवर्ती सूची में सम्मिलित करने से केन्द्र को इन विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। संशोधित रूप में खण्ड 2 के अधीन इन विषयों में से किसी विषय के सम्बन्ध में प्रशासन करने के लिये सीधे-सीधे कर्मचारियों को नियुक्त करने की शक्ति दी गई है ताकि इन विषयों के सम्बन्ध में केन्द्र को प्रारम्भिक तथा व्यापक शक्ति प्राप्त हो जाये और यदि वह चाहे तो पूरी शक्ति उसी को प्राप्त हो जाये। मेरा यह निवेदन है कि केन्द्र चाहे जो कुछ करे किन्तु इन विषयों के सम्बन्ध में प्रान्तों के लिये अपनी सीमा के अन्दर फिर भी अनेक प्रकार्य करना आवश्यक होगा। इसलिये यदि इन विषयों को केवल केन्द्र को ही समर्पित किया जायेगा तो प्रान्तों को जो कर्तव्य अवश्य ही करने होंगे उनके पालन की उन्हें स्वतंत्रता प्रान्त न होगी। केन्द्र को हस्तक्षेप की शक्ति प्राप्त होते हुए भी प्रान्तों को कर्त्तव्यपालन की स्वतंत्रता प्रदान करने के लिये इन विषयों को समवर्ती सूची में सम्मिलित करना आवश्यक है और यही मेरा प्रस्ताव है। इस समय भी आवश्यक पदार्थ अधिनियम के सम्बन्ध में केन्द्र साधारणतया कुछ आधारभूत नियमों को बना देता है और शेष प्रान्तों के लिये छोड़ देता है। प्रान्तों में हम लोग

[माननीय पंडित गोविन्द बल्लभ पंत]

इन विषयों के सम्बन्ध में आज्ञायें देते रहे हैं तथा नियम और आनियम बनाते रहे हैं। आगे चल कर चाहे जो भी स्थिति हो परन्तु फिर भी प्रान्तों के लिये यह आवश्यक होगा कि वे इन शक्तियों का प्रयोग कर उदाहरणार्थ हम अपने प्रान्त में एक ऐसा विधेयक प्रस्तावित करना चाहते हैं जिससे इमारत बनाने के सामान के वितरण का नियमन हो सके और 25,000 रु. से कम मूल्य की इमारत के लिये इस्पात, लोहा, कोयला इत्यादि न दिया जाये। वह हमारे विचाराधीन है। किन्तु जब तक ये विषय समवर्ती सूची में समाविष्ट नहीं किये जाते, हमें अपने विधान-मंडल में इस प्रकार का विधेयक उपस्थित करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त जैसा कि मैं कह चुका हूं, यदि इन विषयों को सूची 1 में स्थान दिया जाये तो केन्द्र इनके सम्बन्ध में समुचित व्यवस्था न कर सकेगा। इनके लिये बहुत बड़े कर्मचारी-वर्ग की आवश्यकता है और जब तक केन्द्र को इनके सम्बन्ध में प्रान्तों को सक्रिय सहयोग तथा सहायता प्राप्त न होगी वह समुचित व्यवस्था न कर सकेगा। इसलिये मेरा यह प्रस्ताव है कि आरम्भ में मैंने जिन संशोधनों की चर्चा की है वे इस सभा द्वारा एकमत से स्वीकार कर लिये जायें।

***उपाध्यक्ष:** दो संशोधन ऐसे हैं जिन पर आगे विचार करना आवश्यक है। एक संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 9 मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम से है किन्तु शाब्दिक होने के कारण उसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** उस पर मसौदाकारों को विचार करना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** मेरे विचार से वे करेंगे। क्या इस खण्ड पर सामान्य वादानुवाद आवश्यक है?

***माननीय सदस्य:** जी नहीं।

***उपाध्यक्ष:** तब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 7 के उपखण्ड (ए) में, संघीय विधायी सूची के प्रस्तावित पैरा 34 में से 'trade and commerce (whether or not within a province) in, and production, supply and distribution of, products of such industries' [इस प्रकार के

उद्योग-धंधों की वस्तुओं में व्यापार और वाणिज्य (चाहे वह किसी प्रान्त में हो अथवा न हो) और उनका उत्पादन, प्रदाय और वितरण] शब्द निकाल दिये जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 7 के उपखण्ड (बी) में, प्रान्तीय विधायी सूची के प्रस्तावित पैरा 27 में '34 of List I' (सूची 1 का 34) शब्दों के स्थान में '31(A) of list III' [सूची 3 का 31(ए)] शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 7 के उपखण्ड (सी) में, प्रान्तीय विधायी सूची के प्रस्तावित पैरा 29 में '34 of List I, (सूची 1 का 34) शब्दों और अंकों के स्थान में '31(A) of list III' [सूची 3 का 31(ए)] शब्द और अंक रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 7 में, अन्त में निम्नलिखित नवीन उपखण्ड प्रविष्ट किया जाये:

'(d) after paragraph 31 of the Concurrent Legislative List the following paragraph shall be inserted as paragraph 31(A):–

31(A) Trade and commerce in, and production, supply and distribution of, products of industries, the development of which is declared by Dominion law to be expedient in the public interest under paragraph 34 of List I.'"

[(घ) समवर्ती विधायी सूची के पैरा 31 के बाद पैरा 31 (ए) के रूप में निम्नलिखित पैरा प्रविष्ट किया जायेगा:

31(ए) ऐसे उद्योग धंधों की वस्तुओं का व्यापार और वाणिज्य तथा उनका उत्पादन, प्रदाय और वितरण, जिनका विकास उपनिवेश के कानून

[उपाध्यक्ष]

द्वारा सूची 1 के पैरा 34 के अधीन लोक-हित के लिये आवश्यक घोषित किया गया हो।]

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 7, संशोधित रूप में, विधेयक का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*खण्ड 7, संशोधित रूप में, विधेयक का अंग बना लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड 1 और लम्बा नाम विधेयक का अंग बना लिया जाये।"

इस पर एक संशोधन प्रस्तावित किया गया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"खण्ड (1) के स्थान में निम्नलिखित खण्ड रखा जाये:

1. (1) यह अधिनियम भारत शासन (संशोधक) अधिनियम, छोटा नाम और आरम्भ। सन् 1949, कहा जाये।

(2) यह 15 जनवरी सन् 1949, को प्रयोग में आयेगा।

श्रीमान्, पहला उपखण्ड इसलिये आवश्यक है कि तिथि में परिवर्तन करना है। दूसरे में यह निश्चित रूप से कहा गया है कि यह कब प्रयोग में आयेगा। श्रीमान् मैं इसे उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं इस संशोधन पर मत लूंगा प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड (1) के स्थान में निम्नलिखित खण्ड रखा जाये:

1. (1) यह अधिनियम भारत शासन (संशोधक) अधिनियम, छोटा नाम और आरम्भ। सन् 1949, कहा जायें।

(2) यह 15 जनवरी, सन् 1949 को प्रयोग में आयेगा।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड (1), संशोधित रूप में, विधेयक का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*खण्ड (1), संशोधित रूप में, विधेयक का अंग बना लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"लम्बा नाम और प्रस्तावना विधेयक का अंग बना लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"1 (ए), 2, 3 और 4 खण्डों की क्रमश: 2, 3 4 और 5 के रूप में पुनर्गणना की जाये।"

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"1 (ए), 2, 3 और 4 खण्डों की क्रमश: 2, 3, 4 और 5 के रूप में पुनर्गणना की जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"विधेयक, संशोधित रूप में, स्वीकार कर लिया जाये।"

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"विधेयक, संशोधित रूप में, स्वीकार कर लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब सभा कल दस बजे तक स्थगित रहेगी।

*इसके पश्चात् सभा बृहस्पतिवार 6 जनवरी सन् 1949 के प्रात: दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।*

Con. 3. VII. 34. 49
250

अंक 7
संख्या 34

बृहस्पतिवार,
6 जनवरी
सन् 1949 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी)..... 2285-2355
[नवीन अनुच्छेद 147-क, अनुच्छेद 148 तथा 149 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

बृहस्पतिवार, 6 जनवरी, सन् 1949 ई.

---

*उपाध्यक्ष (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे विधान-परिषद् की बैठक हुई।*

---

## संविधान का मसौदा–( जारी )

### नवीन अनुच्छेद 47–क

***उपाध्यक्ष** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): हम अनुच्छेद 147 पर वाद-विवाद प्रारम्भ करेंगे। परन्तु मुझे यह सूचना मिली है कि अनुच्छेद 147-क उसी अध्याय के अन्तर्गत आता है अतः सभा की अनुमति से हम अनुच्छेद 147-क को ले सकते हैं।

सभा के समक्ष यह प्रस्ताव है:

"कि अनुच्छेद 147–क विधान का अंग बने।"

यह प्रस्ताव प्रो. के.टी. शाह के नाम से है।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय,...

***उपाध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि केन्द्र के सम्बन्ध में एक ऐसा ही संशोधन इस सभा ने अस्वीकार कर दिया था।

***प्रो. के.टी. शाह:** जी हां। परन्तु सम्मानपूर्वक मैं यह संकेत करता हूं कि वह प्रस्ताव समस्त शक्तियों को पृथक् करने के हेतु था, और इस प्रस्ताव में केवल विधायी शक्ति को पृथक् करने का प्रयत्न किया गया है।

***उपाध्यक्ष:** ठीक है, आप अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

---

*इस संकेत का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

*प्रो. के.टी. शाहः श्रीमान्, मैं प्रस्ताव प्रस्तुत करता हूं:

"कि अनुच्छेद 148 के पूर्व निम्न नवीन अनुच्छेद 147क प्रविष्ट किया जाये:

'The Legislature of every State shall be wholly separate from and independent of the Executive or the Judiciary in the State.'

(प्रत्येक राज्य का विधान-मण्डल उस राज्य की कार्यपालिका अथवा न्यायपालिका से पूर्णतया पृथक् तथा स्वतन्त्र रहेगा।)

श्रीमान्, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि यह मेरा विचार है कि अपने को संघानीय और प्रजातन्त्रात्मक कहे जाने वाले राज्यों में संगठित सरकार की शक्तियां परस्पर एक-दूसरे से पृथक् होनी चाहियें, तो भी मैंने जानबूझ कर अपने संशोधन की ऐसी रचना की है कि सरकार का ढचरा और दिशाओं में चाहे वैसा ही बना रहे जैसा कि है पर स्थानीय विधान-मण्डल कार्यपालिका और न्यायपालिका से पृथक् किया जा सके। दोनों का पृथक्करण इस उद्देश्य से है कि विधान-मण्डल स्वतन्त्रता प्राप्त कर सके तथा न्यायपालिका भी विधान-मण्डल के किसी प्रभाव से मुक्त रहे। इस अवसर पर—तथा इस सम्बन्ध में विधान—मण्डल की अपेक्षा न्यायपालिका के पृथक्करण पर न्यायपालिका के स्वातन्त्र्य पर—मैं अधिक जोर दूंगा। जब हम न्यायपालिका के सम्बन्ध में विचार करेंगे उस समय न्यायपालिका का निश्चित रूप से उल्लेख करते हुए मैं इसी प्रकार के संशोधन प्रस्तुत करूंगा। इस समय, मैं केवल यह बताना चाहता हूं कि जब कि कानून बनाने वाला निकाय अपने कानूनी सलाहकारों अथवा अपने सहायक प्रावैधिक मसौदा बनाने वालों से परामर्श तथा सम्पर्क स्थापित कर कानून बनाता है तो उसको न्यायपालिका से कोई सम्पर्क नहीं रखना चाहिये जिससे कि ऐसा न हो कि इस बात की जानकारी से कि विधान-मण्डल में क्या हुआ, या उसके वाद-विवाद, पर्यालोचन, वचनों तथा प्रदत्त आश्वासनों अथवा यहां तक कि प्रत्येक पक्ष द्वारा विधान-मण्डल में किये गय अन्तर्वचनों की जानकारी से निर्णय पर कोई असर पड़ जाये। यह एक माना हुआ सिद्धान्त है—और मैं समझता हूं कि यह बिल्कुल ठीक सिद्धान्त है कि लिखित संविधान की व्याख्या करने में न्यायपालिका पर किसी भी ऐसी बात का

प्रभाव नहीं होना चाहिये जो उस कानून के निर्माण करते समय वाद-विवाद में उत्पन्न हुई थी। संघानीय संविधान में यह अनिवार्य है कि केवल साधारण कानून की व्याख्या पर ही नहीं वरन् एक स्वीकृत कानून अथवा संविधान के अन्तर्गत कार्यपालिका के अधिनियमों के संवैधानिक रूप में बारे में भी बार-बार प्रश्न उठेंगे। यही ठीक और उचित है कि विधान-मण्डल को राज्य के दो अन्य विभागों के प्रभाव से अथवा प्रभाव पड़ने के अवसर से पूर्णतया स्वतन्त्र होना चाहिये। एक बात और है। यह हो सकता है कि विधि के प्रयोजन और किस्म के बारे में अपनी निजी धारणायें रखने वाले न्यायाधीश उस विधि का ऐसा अर्थ लगायें जो निर्वचन के सिद्धान्तों की दृष्टि से ठीक न हो किन्तु जो उस न्यायाधीश की उस जानकारी पर निर्भर हो जो उसे उस विधि के बनने के समय बहस में कही गई बातों से उस विधि के प्रयोजन के सम्बन्ध में हुई है फिर चाहे वह प्रयोजन पास हुई विधि का नहीं भी हो।

श्रीमान्, इन बातों के कारण तथा दोनों विधान-मण्डल और न्यायपालिका की पवित्रता बनाये रखने के लिये मैं यह प्रस्ताव सभा के समक्ष प्रस्तुत करता हूं कि दोनों को बिल्कुल पृथक् कर देना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर इस संशोधन का उत्तर देंगे।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं और मुझे केवल यही कहना है कि इस संशोधन का मूलभूत सिद्धान्त उस मूलभूत सिद्धान्त से, जिस पर इस संविधान का मसौदा आश्रित है, सर्वथा विमुख है कि मैं समझता हूं कि इस समय ऐसे किसी प्रस्ताव को स्वीकार करना मेरे लिये लगभग असम्भव है।

**उपाध्यक्ष:** अब मैं इस संशोधन पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 148 के पूर्व नवीन अनुच्छेद 147-क प्रविष्ट किया जाये:

'147-A. The Legislature of every State shall be wholly separate from and independent of the Executive or the Judiciary in the State."

[उपाध्यक्ष]

(147—क प्रत्येक राज्य का विधान-मण्डल उस राज्य की कार्यपालिका अथवा न्यायपालिका से पूर्णतया पृथक् तथा स्वतन्त्र रहेगा।)

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

---

## अनुच्छेद 148

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 148 पर आते हैं।

सभा के समक्ष यह प्रस्ताव है:

"कि अनुच्छेद 148 विधान का अंग बने।"

संशोधन संख्या 2222, 2223, 2224, 2225 और 2227 समानार्थी हैं। संशोधन संख्या 2225 जो प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के नाम से है पेश किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 2222 और 2225 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 2223 और 2224 पेश किये जा सकते है; दोनों श्री बृजेश्वर प्रसाद के नाम से हैं।

***श्री बृजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): मैं उनको पेश नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** तो फिर श्री नन्दलाल के नाम से संशोधन संख्या 2227 पेश किया जा सकता है।

***मास्टर नन्दलाल** (पूर्वी पंजाब : जनरल): मैं उसे पेश नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** तत्पश्चात् छठे सप्ताह की सूची 2 में संशोधन संख्या 2222 पर एक संशोधन है चूंकि संशोधन संख्या 2222 पेश नहीं किया गया है अत: प्रो. शाह संशोधन संख्या 2226 पेश कर सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं—

"कि अनुच्छेद 148 के वर्तमान खण्ड (1) के स्थान में निम्न खण्ड रखा जाये:

'(1) For every State there shall be a Legislature which shall consist of such number of Houses, not exceeding two as Parliament shall determine by law in each

case; provided that it shall be open to the Legislature of any State to request the Parliament of the Union to change a bicameral into unicameral Legislature, and such request being duly made and received, Parliament shall pass the necessary legislation.' "

[(1) प्रत्येक राज्य के लिए एक विधान-मण्डल होगा जिसमें आगारों की उतनी ही संख्या, पर दो से अधिक नहीं, होगी जितनी संसद् प्रत्येक राज्य के लिये विधि द्वारा विनिश्चित करे; परन्तु किसी राज्य के विधान-मंडल को यह छूट होगी कि वह द्विआगारिक विधान-मंडल को एक आगारिक विधान-मंडल में परिवर्तित करने के लिये निवेदन कर सके और इस प्रकार का निवेदन उचित रूप से करने और प्राप्त हो जाने पश्चात् संसद् आवश्यक कानून पारित करेगी।]

श्रीमान्, मूल खण्ड जिस रूप में दिया हुआ है वह इस प्रकार है :

"For every State there shall be a Legislature which shall consist of the Governor; and

(a) in the States of..., two Houses,

(b) in other States, one House."

[प्रत्येक राज्य के लिये एक विधान-मण्डल होगा जो राज्यपाल, और

(क) ....राज्यों में, दो आगारों का;

(ख) अन्य राज्यों में, एक आगार का,

बनेगा।]

मैं राज्यों को समान स्थिति में रखना चाहता हूं और यह सुझाव रखता हूं कि प्रत्येक राज्य का विधान-मंडल संसद् के अधिनियम द्वारा अन्ततः निश्चित किया जाये और सम्बद्ध राज्य के निवेदन द्वारा यदि परिवर्तन की इच्छा प्रकट की जाती है तो बाद में उसमें परिवर्तन कर दिया जाये।

श्रीमान्, कम से कम राज्यों के लिये द्विआगारिक विधान-मंडलों में मैं विश्वास नहीं करता हूं। मैं समझता हूं कि दूसरा आगार जनता का प्रतिनिधान तो

[प्रो. के.टी. शाह]

करता ही नहीं और जहां वह जनता के प्रतिनिधित्व की दृष्टि से अथवा जनता के अतिरिक्त देश के किसी भाग के प्रतिनिधित्व के लिये बनाया भी गया हो वहां भी कानून के बारे में जनता के मत को व्यक्त करने की अपेक्षा वह कोई अटकावे का साधन कहीं अधिक होता है।

इस सच्चाई की हाउस ऑफ लॉर्ड्स की जीती-जागती मिसाल तो है ही किन्तु वह फिर भी एक वंशागत प्रतिक्रियावादी संस्था है और निर्वाचित संस्था नहीं है पर जहां कहीं दूसरे आगार निर्वाचित भी हैं वहां भी वे विधायी तंत्र में गड़बड़ डालने के अतिरिक्त कुछ नहीं करते। हां उनके कारण राजकोष पर उनके सदस्यों को दिये जाने वाले वेतन, भत्तों और प्रासंगिक खर्चों का भार अवश्य पड़ जाता है। और यदि उनका कुछ लाभ है तो केवल इतना ही कि दलपतियों को यह सुविधा मिल जाती है कि वे अपने दोस्तों को पद बांट दे। इसके अतिरिक्त तो जिन आवश्यक कानूनों के पास किये जाने के लिये जनता ने मतों द्वारा अपना समर्थन प्रगट कर दिया है, उनके पास करने में केवल देर और बाधा ही होती है। दूसरे आगारों के हामी तो ज्यादातर वे ही लोग होते हैं जो निहित हितों को बचाये रखना चाहते हैं और जिन्हें ही इन आगारों में स्थान मिलता है और जो ऐसे स्थान मिलने के कारण यह सुविधा पा जाते हैं कि जनहित के मुकाबले में अपने निजी अथवा साम्प्रदायिक अथवा वर्ग के स्वार्थों की रक्षा कर सकें। दूसरे आगारों के बारे में, जहां तक मैं समझता हूं, यह सवाल साफ-साफ पैदा होता है कि केवल जनमत का ही राज्य मे बोल-बाला हो अथवा विशेष हितों या किसी खास हित के लोगों को भी यह अधिकार हो कि राज्य में उनकी बात भी सुनी जाये। यह बात तो मान लेनी ही चाहिये कि जिस युग और देश में भी विधान-मण्डल के दो आगार रहे हैं वहीं कालान्तर में ऐसे रास्ते निकाल लिये गये हैं जिनसे कि अन्ततोगत्वा जनमत का बोल-बाला हो। अत: दूसरे आगारों का केवल एक ही फल होता है और वह यह कि जहां भी प्रजातन्त्र सफल राजतंत्र की तरह काम कर रहा होता है वहां विधान बनाने में विलम्ब या रुकावट डालने के अलावा यह जनमत के प्रभावी होने को भी अक्सर असम्भव कर देता है।

इंग्लैंड, अमरीका तथा अन्य स्थानों में दूसरा आगार अन्ततोगत्वा प्रभावहीन सिद्ध होता है यदि विश्व का यही अनुभव है तो मैं नहीं समझता कि उस अनुभव की क्यों उपेक्षा की जाये और राज्य में इस प्रकार के विधायी तन्त्र की क्यों

पुनर्व्यवस्था की जाये जो अनिवार्य रूप से बहुत मंहगा है और लाभदायक होने की अपेक्षा विलम्बकारी है।

केन्द्र की स्थिति भिन्न है। यह भिन्नता इस कारण है कि वहां जिन हितों का प्रतिनिधान किया जाता है वे अधिकतर देश की अपेक्षाकृत, जिसका अवर आगार में प्रतिनिधान होता है प्रदेशों के विशिष्ट हित हैं। अत: यद्यपि केन्द्रीय विधान-मण्डल के लिये दूसरे आगार की उचित व्यवस्था हो सकती है परन्तु केन्द्र में इस प्रकार की व्यवस्था पर प्रस्तुत किये गये तर्क मेरी सम्मति से प्रदेशों पर लागू नहीं होंगे। इसीलिये मैं यह सुझाव रखता हूं कि दूसरे आगार की बात पूर्णतया प्रदेशों पर छोड़ दी जाये। सर्वप्रथम परिमाण, जनसंख्या और क्षेत्र के अनुसार और यदि कुछ विशेष हित हैं तो उनके भी अनुसार संसद् निश्चित करे और अपने निर्णय में जो कुछ ठीक समझे वैसी एक विधायी तंत्र बनाये। परन्तु स्वयं प्रदेश अथवा प्रदेश के विधान-मण्डल को ही यह कहने का अधिकार होना चाहिये कि उसकी आवश्यकता के अनुसार उसके लिये क्या ठीक होगा। और यदि वह ऐसी प्रार्थना करे तो उसे यह भी अधिकार होना चाहिये कि वह मूल विधेयक की मांग कर सके, बदलवाये ताकि जिस प्रकार के एकागारिक विधान-मण्डल को वह चाहता है और जो उसके लिये आवश्यक तथा उपयुक्त है वैसे विधान-मण्डल की व्यवस्था की जा सके।

अत: मैंने अपने संशोधन में यह सुझाव रखा है कि चाहे शुरुआत में संसद् प्रत्येक राज्य के लिये ऐसे विधान-मण्डल की स्थापना कर दे जैसा कि उसे किसी विशिष्ट क्षेत्र के लिये उपयुक्त प्रतीत होता है तो भी अन्ततोगत्वा उस राज्य की जनता को ही यह अधिकार होना चाहिये कि वह बताये कि वह दूसरा आगार रखना चाहती है या नहीं। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं दूसरे आगार को अभी और यहीं अस्वीकार्य ठहरा देता हूं। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि संविधान के सम्बन्ध में स्थानीय जनमत की बात मानी जाने को हम असम्भव कर देंगे। मेरी मांग तो केवल इतनी है कि उस हालत में जब कोई इकाई यह इच्छा प्रगट करे कि उन्हें दूसरे आगार की आवश्यकता नहीं है वहां की जनता को यह स्वतंत्रता और अधिकार होना चाहिये कि वह केन्द्रीय संसद् से यह कह सके कि उन्हें

[प्रो. के.टी. शाह]

दूसरे आगार की दरकार नहीं है फिर चाहे दूसरे प्रदेशों में वहां की जनता की इच्छानुसार दो आगार क्यों न बने रहें। मैं इस प्रस्ताव को सभा के समक्ष प्रस्तुत करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** केवल शाब्दिक होने के नाते मि. नज़ीरुद्दीन के नाम से आगे के संशोधन संख्या 2228 और 2229 की पेश करने की आज्ञा नहीं दी जाती है।

श्री एल. एन. साहू संशोधन संख्या 2230 पेश कर सकते हैं।

**श्री लक्ष्मीनारायण साहू** (उड़ीसा : जनरल): माननीय उपप्रधान जी, मैं जो संशोधन लाया हूं उसका मतलब यह है कि अनुच्छेद 148 के उपखंड (1) (ए) में उड़ीसा का नाम जोड़ दिया जाये। इसका मतलब यह है कि उड़ीसा में एक हाउस न रहे बल्कि दो हाउस हों और एक अपर चेम्बर रहे। अभी मेरे मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह ने हम लोगों को समझाया कि सैकिंड चेम्बर की जरूरत इतनी नहीं है। लेकिन आपने कहा कि अगर "विल ऑफ दी पीपल" "will of the people" हो तो जहां चाहेंगे वहां सैकिन्ड चेम्बर हो सकेगा। इसमें कोई ऐतराज नहीं है। हम अभी जो विधान बनाते हैं उसमें उसका प्रबन्ध तो है ही, इसके आगे भी वह प्रबन्ध रहे। क्योंकि आसाम, मद्रास, बिहार इन सब जगहों में सैकिन्ड चेम्बर अभी तक काम कर रहे है। कोई कोई जगह में सैकिन्ड चेम्बर की जरूरत इतनी नहीं सोची गई है। मैं सोचता हूं कि आसाम में सैकिन्ड चेम्बर अभी नहीं चाहिए। लेकिन मैं यह कहना चाहता हूं कि अगर हम यहां यह तय कर देंगे कि उड़ीसा में सैकिन्ड चेम्बर नहीं होना चाहिये क्योंकि जो मेम्बर उड़ीसा से कांस्टीट्यूएंट असेम्बली में आये हैं उनका मत नहीं है, तो यह ठीक नहीं होगा। कम से कम यह होना चाहिए कि अगर "विल ऑफ दी पीपल" "will of the people" हो तो सैकिन्ड चेम्बर हो सकता है। तब तो हम तय कर सकेंगे कि उड़ीसा के लिए सैकिन्ड चेम्बर की जरूरत है या नहीं। मैं यहां यह कहना चाहता हूं कि हम लोग जो कांस्टीट्यूशन बना रहे हैं उसमें अमरीका का कांस्टीट्यूशन लेते हैं और अमरीका के कांस्टीट्यूशन में, सब स्टेट्स में बाईकेमरल लैजिस्लेचर है। और हम सैंटर में भी चाहते हैं कि बाईकेमरल होना चाहिए क्योंकि वहां हर एक प्राविंस रिप्रेजेंटेड होता हैं। उड़ीसा में अभी यह हुआ है कि 25 स्टेट्स उसमें शामिल हो गई हैं। आज तक उड़ीसा से वह अलग थीं। अभी हाल में उड़ीसा के साथ शामिल हुई हैं। इसी लिए वहां तो सैकिन्ड चेम्बर की बहुत जरूरत है।

कोई-कोई कहते हैं कि सैकिन्ड चेम्बर में वह डाईलेटरी टैक्टिक्स करते हैं, इसलिये सैकिन्ड चेम्बर की कोई जरूरत नहीं है। डाईलेटरी टैक्टिक्स तो मैं देखता हूं कि जहां सिंगल चेम्बर है, वहां भी हो सकती है। हिन्दू कोड बिल अभी चार पांच बरस से बढ़ रहा है। बहुत आदमियों को ऐसी फिक्र होती है कि जब दो चेम्बर होंगे, तो वहां बड़े-बड़े आदमी, पैसे वाले आदमी रह जायेंगे। मैं तो चाहता हूं कि यह रहना चाहिये, क्योंकि देश जब स्वाधीन बन गया और जब तक हम सोश्लिस्ट स्टेट नहीं बने हैं, तब तक जो बड़े आदमी हैं, धनिक आदमी हैं, उनको भी शासन में मौका देना चाहिये। उनको हटा देने का क्या मतलब है, जब सैकिन्ड चेम्बर रहने से वहां कोई थोड़े धनिक आदमी भी जा सकेंगे, तो क्या हर्ज है? फिर एक बात की जो हम लोग आलोचना करते हैं, प्राविन्स में उसमें तो शायद प्रपोर्शनल रिप्रेजेन्टेशन से नहीं करते हैं। इसलिये ऐसा हो सकता है कि माईनोरीटीज वहां नहीं जा सकती हैं और फिर पार्टी अभी तक हम लोगों के देश में अच्छी तरह से नहीं बनी हैं। जब तक पार्टी अच्छी तरह से नहीं बनती है, तब तक प्रपोर्शनल रिप्रेजेन्टेशन से जब चुनाव होता है, तो सब आदमी लोअर चेम्बर में से जा सकते हैं। जब वह पार्टी अच्छे तरीके से नहीं बनी है, तब तक हम लोगों को सैकिन्ड चेम्बर की जरूरत है। जो कोई रह जायेगा वह शायद उसमें रिप्रेजेन्टेड हो सकता है।

अभी हम देखते हैं कि बहुत आदमियों को सैकिन्ड चेम्बर उनको इतना अच्छा मालूम नहीं होता हैं। परन्तु मैंने जैसा कहा हैं, उड़ीसा अभी नया बनता है और अभी हाल में 25 स्टेट्स उड़ीसा के साथ मिली हैं। इसलिये वहां तो ऐसा करना चाहिये और सैकिन्ड चेम्बर का प्रबन्ध जरूर करना है। फिर एक और बात हम लोगों के देश में और बाहर इस तरह जल्द-जल्द होती है और कम्यूनिज्म और सोशलिज्म और कितनी इज्म उसमें आती जाती हैं। तो इतनी जल्दी-जल्दी जो सब परिवर्तन होते हैं, उन परिवर्तनों को जरा रोकने और जरा ध्यान से कहीं सोचने या प्रबन्ध करने के लिये सैकिन्ड चेम्बर की बहुत जरूरत है। जैसा प्रोफेसर शाह ने कहा इंग्लैन्ड में हाउस ऑफ लॉर्ड्स है और इतने ट्रेडेशनली पुराने ढंग से चलता आया है। लेकिन हम लोग जो सैकिन्ड चेम्बर बनायेंगे, वह तो

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

हाउस ऑफ लार्ड्स के तरीके का नहीं होगा, वह तो दूसरे तरीके का होगा। और इंग्लैंड में भी सैकिन्ड चेम्बर की बहुत जरूरत होती हैं, स्ट्रांग करने के लिये वह चाहते हैं। हम लोगों का यह जो शासन है, यह इतना यूनाएटरी तो नहीं है, फैडरल है और यूनिट्स की पावर सेन्ट्रल गवर्नमेन्ट ने ले ली है इसलिये वहां तो दो चेम्बरस होने की जरूरत है, क्योंकि वहां तो सोच-विचार करना चाहिये। जब सेन्ट्रल इतना पावरफुल होगा तो मैं समझता हूं कि हर एक प्राविन्स में दो चेम्बर होने चाहिये और जैसा कि मैंने कहा कम से कम उड़ीसा में जो नया कानून बनता है, उसमें दो चेम्बर होना एकदम जरूरी है। इसके बाद मैं चाहता हूं कि यह यहां उड़ीसा में सैकिन्ड चेम्बर होगा या नहीं होगा, इसको पास न करके "will of the people" वहां के सब आदमियों की क्या राय है उसके मुताबिक तय करें और तब तक हम इस विषय में कोई फैसला न करें। इसे स्थगित रखें।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 148 के खण्ड 1 के उपखण्ड (क) में 'in the States of' (शासक, और) शब्दों के पश्चात् 'Madras' (मद्रास) शब्द प्रविष्ट कर दिया जाये।"

माननीय सदस्यों ने देखा होगा कि अनुच्छेद 148 (1) इस प्रकार है:

"प्रत्येक राज्य के लिये एक विधान-मण्डल होगा जो शासक, और

(क).....राज्यों में"

(यहां कुछ रिक्त स्थान हैं जिसको बाद में भरा जायेगा।)

मेरा संशोधन यदि स्वीकार कर लिया जाता है तो मद्रास शब्द को रखने से रिक्त स्थान की कुछ पूर्ति हो जाती है अर्थात् मद्रास राज्य में दो आगार होंगे—एक विधान-सभा, दूसरी विधान-परिषद्।

श्रीमान्, यह कहा गया था कि विभिन्न प्रांतों के सदस्य परस्पर परामर्श करें और इस बात का निर्णय करें कि वे अपने-अपने प्रांतों में दूसरा आगार चाहते हैं

कि नहीं। इसके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रान्तों के सदस्यों ने अलग-अलग परामर्श किया और मद्रास के प्रतिनिधि भी कांग्रेसपति डॉ. पट्टाभि सीतारमैया की अध्यक्षता में एकत्रित हुए और पर्याप्त विचार-विमर्श के पश्चात् यह निश्चय किया गया कि मद्रास में दो आगार हों। यह निर्णय अभी-अभी किया गया है, परन्तु गत वर्ष.....।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): एक औचित्य-प्रश्न है श्रीमान्, क्या मैं यह जान सकता हूं कि प्रान्तों के जिन माननीय सदस्यों ने यह निश्चय किया है कि उनके यहां दो आगार हों क्या उनके लिये आवश्यक है कि वे यहां आयें और अपने-अपने प्रान्तों के लिए अलग-अलग संशोधन पेश करें? क्या उन सदस्यों का निर्णय एक सूची में नहीं समाविष्ट किया जा सकता है?

***उपाध्यक्ष:** यदि माननीय सदस्य थोड़ी देर और सब्र करें तो उनको मसौदा-समिति के सभापति द्वारा इस प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** मैं यह कह रहा था कि मद्रास के सदस्यों ने गत वर्ष एकत्रित होकर ऐसा ही निश्चय किया था और उसको नियमित बनाने के लिये हम अभी फिर एकत्रित हुए और वही निश्चय किया।

दूसरे आगार के सम्बन्ध में कुछ विरोध है। मेरा ऐसा विचार है कि आजकल के दूसरे आगारों के हानिकारक होने के कारण ही यह विरोध और भी अधिक हो गया है परन्तु सामान्य विचार यह है और मैं भी इस विचार से सहमत हूं कि दूसरे आगार कानून बनाने में जल्दबाज़ी रोकने के लिये हैं। अनुभव द्वारा यह सिद्ध हुआ है। जहां तक इस सभा की कार्यवाही का सम्बन्ध है गत वर्ष हमने कई विषयों पर निर्णय किया था, और उन विषयों पर निर्णय करके मसौदा-समिति को उन्हें केवल क्रम में रखने के लिये दे दिया था। परन्तु अब हम देखते हैं कि उनमें से बहुत से अनुच्छेदों पर हम फिर विचार कर रहे हैं यहां तक कि अनुच्छेद 150 जिसमें हमने एक सीमा नियत कर दी थी उसमें भी लगातार परिवर्तन हो रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि सदैव कुछ समय की ढील देने की आवश्यकता होती है।

इस सम्बन्ध में मैं सभा का ध्यान एक रोचक घटना की ओर आकर्षित करूंगा जो जार्ज वाशिंगटन के जीवन में हुई बताई जाती है। ऐसा कहा जाता हैं कि थॉमस

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

जेफर्सन वाशिंगटन के सामने दूसरे आगार का बड़ा कड़ा विरोध कर रहे थे। श्री फैरंड बड़े मनोहर ढंग से इस घटना का विवरण देते हैं। कलेवे के समय वे कॉफी पी रहे थे। अचानक जार्ज वाशिंगटन ने पूछा "श्री जैफर्सन आप अपनी तश्तरी में क्यों कॉफी उडेल रहे हैं?" जैफर्सन ने उत्तर दिया "उसे ठंडा करने के लिये।" इस पर वाशिंगटन ने कहा "इसी प्रकार हम कानून निर्माण को दूसरे आगार की तश्तरी में डालकर ठंडा करना चाहते हैं।" इस विचार को प्रकट करने के लिये यह एक बहुत अच्छा ढंग है और हम दूसरा आगार इसलिए बना रहे हैं कि वह जल्दबाज़ी में कानून के बनाने को रोके न कि इसलिये कि वह विकासमय कानून निर्माण का रोके। इस सम्बन्ध में कोई भ्रम नहीं होना चाहिए कि विकासमय कानून निर्माण को रोकने के लिये यह नहीं है वरन कुछ और समय देने के लिये है जिससे कि गंभीर तथा विचारपूर्ण निर्णय किया जा सके।

अतः कुछ समय के लिए दूसरे आगार की परम आवश्यकता है और प्रो. के. टी. शाह, जैसा कि मैं उनको समझ सका हूं, यह चाहते हैं कि कोई ऐसा प्रावधान होना चाहिये जिससे कि बाद में यदि हम दूसरा आगार न चाहें तो हम उससे मुक्त हो सकें और उसके लिए विधान में संशोधन करना आवश्यक न हो जो कि एक सरल कार्य नहीं है। इस प्रकार का प्रावधान स्वयं विधान में होना चाहिये। मैं उनकी बातों को इस प्रकार समझा हूं।

यदि प्रो. शाह अनुच्छेद 304 के उपखण्ड (2) को देखें तो वहां इस प्रकार का प्रावधान है। वह प्रावधान विभिन्न राज्यों अथवा प्रान्तों की इकाइयों अथवा विधान सभाओं को, जैसी भी स्थिति हो, यह अधिकार देता है कि वे एक विशेष सभा में दूसरा आगार न रखने के लिए कार्यवाही का सूत्रपात कर सकते हैं। वह एक व्यापक खण्ड है जिसमें प्रान्तीय विधान सभाओं को आगारों की संख्या पर निर्णय करने का अधिकार दिया गया है। मैं अनुच्छेद 304 (2) का वह भाग पढ़ने के लिए आपकी अनुमति चाहता हूं।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): यह आवश्यक नहीं है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** क्यों नहीं केवल श्री नागप्पा साहब के लिए ही नहीं वरन् समस्त सभा की जानकारी के लिये मैं इसे पढ़ रहा हूं। मैं समझता

हूं कि श्रीमान्, मुझे आपकी अनुमति मिल गई। यदि श्री नागप्पा इसे जानते हैं तो इसका यह आशय नहीं है कि औरों को वह न बताई जाये।

अनुच्छेद 304 (2) इस प्रकार है:

"2. अन्तिम पूर्ववर्त्ती खण्ड में किसी बात के होते हुए भी, (शासक को चुनने की पद्धति सम्बन्धी या) प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उस समय उल्लिखित रहे किसी राज्य के विधान-मंडल के आगारों की संख्या सम्बन्धी इस संविधान के प्रावधानों में कोई परिवर्तन चाहने वाले संशोधन का सूत्रपात, उस राज्य की विधान सभा में अथवा जिस राज्य में विधान-परिषद् है वहां राज्य के विधान-मण्डल के किसी आगार में, तदर्थ विधेयक पुर:स्थापित करके, किया जा सकेगा, और जब विधेयक विधान सभा द्वारा या जहां राज्य में विधान-परिषद् है वहां राज्य के विधान-मण्डल के दोनों आगारों द्वारा विधान-सभा या प्रत्येक आगार की, जैसी भी स्थिति हो, समस्त सदस्य संख्या के बहुमत से पारित हो जाता है तो, वह उपोद्बलन (रेटिफिकेशन) के लिये संसद् के समक्ष रखा जायेगा और जब वह संसद् के प्रत्येक आगार द्वारा, उस आगार की समस्त सदस्य संख्या के बहुमत से उपोद्बलित हो जाये तो वह प्रधान के समक्ष स्वीकृति के लिए रखा जायेगा और विधेयक को ऐसी स्वीकृति मिल जाने पर, विधेयक के अभिसमयों के अनुसार संविधान संशोधित हो जायेगा।"

अत: प्रावधान बना दिया गया है जब कि मैं भाषण दे रहा था कुछ माननीय सदस्यों ने यह जानना चाहा था कि प्रान्तीय सभाओं द्वारा इसे रद्द कर देने की सम्भावना है या नहीं। मैंने इस पर ध्यान दिया और सोचा कि विधान में दिये हुए प्रावधान की ओर सभा के ध्यान को आकर्षित करना मेरा कर्त्तव्य है। अत: मैं आशा करता हूं कि मेरा यह संशोधन स्वीकार किया जायेगा।

श्रीमान्, मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** सूची 2 में संख्या 46 पर डॉ. अम्बेडकर के नाम से इस संशोधन पर एक संशोधन है। क्या माननीय सदस्य उसे पेश कर रहे हैं?

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 2231 के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये:

'कि अनुच्छेद 148 के खण्ड 1 के उपखण्ड (क) में 'in the States of' (शासक, और) शब्द के पश्चात् 'Madras, Bombay, West Bengal, the United Provinces, Bihar and East Punjab' (मद्रास, बम्बई, पश्चिमी बंगाल, संयुक्त प्रान्त, बिहार और पूर्वी पंजाब) शब्द प्रविष्ट किये जायें।'"

श्रीमान्, मैं सभा को यह बताना चाहूंगा कि प्रान्तों में दूसरा आगार रखा जाये या नहीं इस प्रश्न पर इस सभा द्वारा नियुक्त प्रान्तीय विधान-समिति द्वारा विचार-विमर्श हुआ था। उस समिति का निर्णय यह हुआ कि यह एक ऐसा विषय है जिसको तत्सम्बन्धी प्रत्येक प्रान्त के निर्णय पर छोड़ देना चाहिये। यदि कोई प्रान्त दूसरा आगार चाहता है तो उसे दूसरा आगार रखने दिया जाये, और यदि कोई प्रान्त दूसरा आगार नहीं चाहता है तो उस पर दूसरा आगार न लादा जाये। प्रान्तीय विधान-समिति की इस सिफारिश के सम्पालनार्थ यह निश्चय किया गया कि विधान-परिषद् में विभिन्न प्रान्तों के सदस्य एकत्रित होकर इस विषय पर निर्णय करें। अत: इस विधान-परिषद् में विभिन्न प्रान्तों के सदस्यों ने इस प्रश्न पर निर्णय करने के लिए अपने-अपने प्रान्तों की अलग-अलग बैठकें कीं और उन सदस्यों ने जो कुछ विचार-विमर्श किया उसके निष्कर्ष रूप में कार्यालय को यह सूचित किया कि जो प्रान्त मेरे संशोधन में दिये गए हैं उन प्रान्तों ने अपने यहां दूसरा आगार रखने के पक्ष में निर्णय किया है। जिन प्रान्तों ने दूसरे आगार न रखने का निर्णय किया, वे मध्यप्रान्त और बरार, आसाम और उड़ीसा है। मेरा संशोधन प्रान्तीय विधान-समिति की सिफारिश के अनुसार विभिन्न प्रान्तों के प्रतिनिधियों के विचार-विमर्श के निश्चय को केवल क्रियान्वित करता है।

***उपाध्यक्ष:** तत्पश्चात् हम संशोधन संख्या 2232 पर आते हैं जो श्री मोहनलाल गौतम के नाम से है। संशोधन संख्या 2233 भी उनके नाम से है। उक्त माननीय सदस्य सभा में उपस्थित नहीं हैं अत: ये दोनों संशोधन नहीं लिये जाते हैं।

इस अनुच्छेद पर अब सामान्य वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, राजनैतिक विज्ञान की उलझी हुई समस्याओं में से एक समस्या दूसरे आगार की है। जल्दबाजी में कानून बनाने को रोकने के लिये यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी में दूसरे आगार आवश्यक थे पर अर्वाचीन काल में यदि दूसरे आगार को रहने भी दिया जाय तो हमें उसकी शक्तियों को सीमित कर देना चाहिये जिससे कि हमारे उन्नतिशील विचारों में वह विध्न न डाल सके।

प्राचीन काल में लगभग सभी प्रमुख राज्यों में दूसरे आगार थे, पर तुर्की और बल्गेरिया ने उनको हटा दिया। दूसरे आगारों को सामन्तशाही विधान के आवश्यक तत्वों के रूप में समझा जाता है। वे वैधानिक प्रदेशों के दूसरे आगारों को कहीं भी न रखने के नियम के अपवाद स्वरूप है। सोवियत रूस के संयुक्त राष्ट्र और दक्षिण अफ्रीका संघ के समस्त वैधानिक प्रदेश एक आगारी हैं। कनाडा के उपनिवेश में हमें आठ प्रान्तों में से केवल दो ही ऐसे मिलते हैं जिनमें दूसरा आगार है स्विट्ज़रलैन्ड में 18 प्रदेशों में से केवल 2 को छोड़ कर बाकी के सब 16 में एक आगार ही है। वाइमार जर्मनी में आधे राज्यों में एक आगार ही था।

दूसरे आगार की रचना परम्परा के कारण हुई प्रतीत होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि रूढ़गत स्वार्थों में फंसे बड़े-बड़े ऐश्वर्यशाली व्यक्ति यह चाहते हैं कि वे उन आसनों को सुशोभित करें जहां से वे अपने अधिकारों पर किये गये आक्रमणों से कुछ रक्षा कर सकते हैं। यह कहा जाता है कि जहां कहीं ऐसे रूढ़गत स्वार्थ वर्तमान हैं, जिनकी रक्षा करना आवश्यक है, वहां दूसरे आगार की सदैव मांग की जायगी। भारत में हम देखते हैं कि जहां-जहां जमींदार हैं वहां वे दूसरा आगार चाहते है। जो विभिन्न प्रान्त दूसरे आगार की मांग कर रहे हैं उनकी मांगों से यह विदित होता है कि वहां रूढ़गत स्वार्थ हैं, वहां जमींदार हैं और वे बहुमत से अपनी रक्षा कराना चाहते हैं। परन्तु इस विकसित युग में यदि हम दूसरा आगार बनाते हैं तो कानून-निर्माण में रोक लगा दी जायगी इसलिये हमें दूसरा आगार नहीं रखना चाहिये। फिर भी हम यह देखते हैं कि कुछ प्रान्तों की ऐसी कुछ इच्छा है। आसाम ने ठीक कहा है कि उन्हें इसकी आवश्यकता नहीं है। उड़ीसा ने भी यही कहा है और मध्यप्रान्त ने भी यही। उन्होंने यह बिल्कुल ठीक कहा है।

[श्री कुलधर चालिहा]

दूसरा आगार उन्नतिशील कानून निर्माण के मार्ग में रुकावट के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। हमारे प्राचीन केन्द्रीय विधान में देर करने वाली युक्तियों के द्वारा हमने चार या पांच वर्षों तक हिन्दू कोड को रोके रखा। उन्नतिशील कानून निर्माण में बाधा डालना बहुत आसान है जैसा कि हमने हिन्दू कोड के सम्बन्ध में किया। और यदि हम दूसरा आगार बनाते हैं तो यह उन्नतिशील कानून पारित करने के मार्ग में मैं समझता हूं कि और भी अधिक अड़चने डालना होगा। वास्तव में यह बड़ा ही आश्चर्यजनक है कि आज भी हमारे कुछ प्रान्त इस बात की मांग कर रहे हैं कि दूसरा आगार होना चाहिये। उनको समझना चाहिये कि अपनी और अधिक उन्नति करने की अपेक्षा कदाचित् यह भारस्वरूप ही होगा। यूरोप तथा अन्य देशों मे दूसरे आगार ने पहले कुछ अच्छे कानूनों के बनाने में विघ्न डाला है। मैं समझता हूं कि आधुनिक व्यक्ति होने के नाते हमें इन विचारों का परित्याग करना चाहिये और हमें आगे बढ़ना चाहिये। इसलिये अपने देश में हमें दूसरा आगार नहीं रखना चाहिये।

एक बात और है। दूसरे आगार के लिये हमें अपने प्रान्तों में नेताओं की पर्याप्त संख्या नहीं मिलती हैं। छोटे तथा पिछड़े प्रान्तों में हम यह कठिनाई अनुभव करते हैं और हमने दूसरे आगार के विरुद्ध ठीक राय दी है। बड़े-बड़े प्रान्तों में भी मैं समझता हूं कि हम इतने नेता पैदा नहीं कर सके हैं जो अच्छी तरह से इस आगार को भर सकें।

***एक माननीय सदस्य:** आपके प्रान्त में यह दशा होगी!

***श्री कुलधर चालिहा:** ठीक है। ऐसा कोई अपवाद हो सकता है पर इससे वह बात सिद्ध नहीं होती है, बल्कि उसके विपरीत बात सिद्ध होती है।

बम्बई, मद्रास तथा अन्य प्रान्तों में दूसरे आगार के रखने से आप देश की उन्नति में केवल बाधा ही डालेंगे जिससे कि कोई प्रगति न हो सके। और ऐसा ही होगा। ये चार प्रान्त हमारे लिए बाधक होंगे और हमें उन्नति नहीं करने देंगे। अत: जितना शीघ्र वे इस विचार से छुटकारा पा लें तथा जितना शीघ्र डॉक्टर अम्बेडकर इस संशोधन को वापस ले लें उतना ही देश का अधिक लाभ होगा। इस संशोधन को स्वीकार करने से पूर्व सभा इस पर ठीक-ठीक विचार करेगी और इस बात पर ध्यान देगी कि वे अपनी उन्नति में अड़चन डालना चाहते हैं या नहीं।

***श्री के. हनुमन्थैया** (मैसूर): उपाध्यक्ष महोदय, विधान के मसौदे में स्थिति के अनुसार एक आगार वाले या दो आगार वाले विधान-मण्डल की व्यवस्था है। यह सम्बद्ध राज्यों की इच्छा पर है और कुछ राज्यों ने द्विआगारिक विधान-मण्डल पसन्द किये हैं। तीन राज्यों, अर्थात् प्रान्तों ने एक आगार वाले विधान-मण्डल की इच्छा प्रकट की हैं। द्विआगारिक विधान-मण्डल के पक्ष अथवा विपक्ष के तर्कों से हम भलीभांति परिचित हैं। मैं इस विषय के व्यावहारिक रूप की ओर सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। जो लोग द्विआगारिक विधान-मण्डल के समर्थक हैं वे बहुधा यह कहते हैं कि यह जल्दबाज़ी में कानून बनाने के विरुद्ध एक साधन है। मेरे मित्र श्री भारती ने एक बड़ा रोचक उदाहरण प्रस्तुत किया है।

मैं अपने मित्रों को, जो द्विआगारिक विधान-मण्डल के पक्ष में हैं, यह याद दिलाना चाहता हूं कि हम एक उत्तरदायी शासन पद्धति के लिये विधान बना रहे हैं। उसमें दलाश्रित प्रणाली का पूर्वाभास है। दलाश्रित शासन पद्धति एक अनोखे रूप से कार्य करती है। वह एक आगार वाले अथवा दो आगार वाले विधान-मण्डल के रूप में कार्य नहीं करती है। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण विषय पर दल की बैठकों में निश्चय किया जाता है न कि उत्तर अथवा अवर आगार में। अत: व्यावहारिक राजनीति के दृष्टिकोण से तो श्रीमान्, मुझे यह प्रतीत होता है कि दल की बैठक ही सच्चा विधान-मण्डल है। दल की बैठक में एक बार किसी विषय पर निर्णय कर लेने के पश्चात् चाहे उस विषय को उत्तर आगार में प्रस्तुत किया जाये या अवर आगार में और यदि दस आगार हैं तो चाहे उसे उन दस आगारों में प्रस्तुत किया जाये उसमें कोई अन्तर नहीं होता। एक बार किसी विषय पर दल का निर्णय हो जाने के बाद जल्दबाजी में कानून बनाने को रोकने का प्रश्न ही नहीं रहता। अत: जब कि...।

***श्री ओ.वी. अलगेसन** (मद्रास : जनरल): क्या उत्तर आगार के सदस्य दल के सदस्य नहीं होंगे?

***श्री के. हनुमन्थैया:** ठीक यही मैं कहने वाला था। आप मेरे पक्ष में तर्क प्रस्तुत कर रहे है। अधिकार प्राप्त दल का इस विधान के अन्तर्गत जिसका हम निर्माण कर रहे हैं अवश्य ही दोनों उत्तर तथा अवर आगार में बहुमत होगा क्योंकि विधान-मण्डल निर्वाचित है दोनों उत्तर तथा अवर आगार के दल के सदस्यों की

[श्री के. हनुमन्थैया]

संयुक्त बैठक में एक बार कोई निर्णय कर लिया जाता है तो विरोध अथवा विरोधी तर्क होने पर भी वही निर्णय स्वीकार किया जाता है ऐसी दशा में दो आगारों का रखना बहुत मंहगा होगा। मेरे माननीय मित्र श्री भारती ने दूसरे आगार की उपयोगिता बताने के लिये प्याले और रकाबी का उदाहरण दिया। चाहे प्याली में कॉफी डाली जाये या चाहे रकाबी में, कॉफी का तापक्रम तो उसके बर्तन पर निर्भर है। यहां पर बर्तन दल की बैठक है, वही यह निश्चय करता है कि हमें किस प्रकार मत देना है। अतः वास्तव में मुझे यह नहीं सूझ पड़ता है कि वर्तमान परिस्थितियों में दूसरा आगार हमें किस प्रकार उत्तम या गंभीर मार्ग-प्रदर्शन करेगा।

श्रीमान्, एक बात और है। संयुक्त राज्य में विधायी क्षेत्र, जहां तक कि प्रदेशों के विधान-मण्डल का सम्बन्ध है, बहुत ही संकुचित क्षेत्र है। इस वर्तमान विधान के अन्तर्गत अधिकांश विधायी तथा प्रशासी अधिकार केन्द्र ने ले लिये हैं और जो कुछ शेष रहा है वह बहुत ही सीमित है। इस सीमित क्षेत्र के लिये दो आगार रखना वास्तव में बहुत मंहगा तथा अनावश्यक है। कानून निर्माण के अतिरिक्त प्रशासन का भी विषय है जिसके सम्बन्ध में हमें इस समस्या का परीक्षण करना है। लोकप्रिय नेता होने के कारण मंत्रियों को अपना बहुत-सा समय दर्शकों को देना पड़ेगा। भारत में प्रत्येक मंत्री का यह अनुभव है कि उसका बहुत-सा समय दर्शक तथा वे लोग ले लेते हैं जो सब तरह के कामों के लिये उससे मिलने आते हैं और उसके पास बहुत कम समय बच जाता है। यदि हम दो आगार रखते हैं तो कदाचित् वर्ष में अनेकों माह तक अवर आगार को बैठक करनी होगी और इसके साथ-साथ मंत्रियों को उत्तर आगार में भी अनिवार्य रूप से अपना बहुत-सा समय देना होगा। मैं समझता हूं कि लगभग सब समय उन्हें बातें ही करनी पड़ेगी और इसके फलस्वरूप प्रशासन कार्य में हानि होगी। सच तो यह है कि यदि प्रदेशों तथा राज्यों में भारतीय मंत्रिमंडलों के प्रशासन सम्बन्धी कार्यों के बारे में कुछ ज्ञान रखने का मैं दावा कर सकता हूं तो उन पर बहुधा अदक्षता का आरोप किया जाता है। जिस वेग के साथ पहले प्रशासी कार्य किया जाता था उस वेग के साथ अब नहीं किया जाता है। प्रदेशों के विभिन्न मंत्रिमण्डलों पर यह स्पष्ट

आरोप लगाया जाता है। मैं यह नहीं जानता हूं कि केन्द्र की क्या दशा है। परन्तु सच्ची बात यह है कि उनके पास समय नहीं है, उनका सब समय बातों में बीतता है। दक्ष तथा अविलम्ब प्रशासन के लिये यह अच्छा होगा कि दूसरा आगार न रखा जाये।

***उपाध्यक्षः** इस विषय पर अनेकों वक्ता भाषण देना चाहेंगे।

***श्री के. हनुमन्थैयाः** बहुत अच्छा श्रीमान्, मैं भाषण समाप्त कर चुका।

***श्रीमती रेणुका रे** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं उन व्यक्तियों में से हूं जिनकी यह धारणा है कि वर्तमान समय में द्विआगारिक विधान-मण्डल यदि अवनतिदायक नहीं है तो अनावश्यक तो है ही। श्रीमान्, भारत में और विशेषकर इस समय जब कि हमें आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में बहुत से कानून निर्माण की आवश्यकता है, जिस कार्य को विदेशी शासन काल में बहुत पीछे डाल दिया गया था, मैं तो यह समझती हूं कि दूसरा आगार, विशेषकर प्रान्तों में, बहुत ही शिथिल होगा। दूसरे आगार के पक्ष में केवल यही तर्क प्रस्तुत किया गया है कि इस प्रकार से हम जल्दबाजी और असावधानी से कानून बनाने को रोक सकेंगे। परन्तु जब कि प्रान्तों में शासक हैं और केन्द्र में प्रधान हैं जो कि असावधानी से बनाये गये किसी भी विधेयक को पुनर्विचार के लिये विधान-मण्डल को वापस कर सकते हैं तो मैं नहीं समझती हूं कि यह बहाना ठीक है। फिर भी चूंकि बहुत से प्रान्तों ने दूसरे आगार रखना निश्चित कर लिया है इस कारण इस वर्तमान विधान में हम उसे रखेंगे। मैं केवल यह बताना चाहती हूं कि यद्यपि अभी हमने प्रान्तों में दूसरे आगार रखना निश्चित कर लिया है परन्तु फिर भी विधान में ऐसा कोई प्रावधान होना चाहिये कि दूसरे आगारों से जितना शीघ्र मुक्त होना चाहें हो सकें और उनसे मुक्त होने के लिये प्रान्तों में विधान-मण्डल के दोनों आगारों के मतों की आवश्यकता न हो बल्कि केवल अवर आगार की इच्छा के अनुसार ही उनसे मुक्त हो सकें। मैं यह ठीक नहीं समझती हूं कि कोई आगार रहे या न रहे यह विषय किसी रूप में भी स्वयं उसी आगार के निश्चय के लिये छोड़ा जाये। यद्यपि उस रीति के विषय का विधान के मसौदे में एक अनुच्छेद है जिसके द्वारा प्रान्त यदि नहीं चाहते हैं तो बाद में दूसरा आगार न रखने का निश्चय कर सकते हैं परन्तु वह अनुच्छेद यह विनिहित करता है कि ऐसा विधान-मण्डल के दोनों आगारों द्वारा किया जा सकता

[श्रीमती रेणुका रे]

है। श्रीमान्, मैं आशा करती हूं कि जब समय आवे यह सभा और डॉक्टर अम्बेडकर इस बात से सहमत हो जायेंगे कि केवल अवर आगार ही यह निश्चय कर सकता है कि दूसरा आगार जारी रखा जाये या नहीं। जैसा कि मैंने पहले कहा था मैं नहीं समझती हूं कि वर्तमान समय में दूसरे आगार का रखना उपयोगी होगा। यह तो मैं समझती हूं कि पूर्वकालीन उत्तर आगारों की रचना से दूसरे आगार की रचना मूल रूप से भिन्न प्रकार की होगी। परन्तु फिर भी वर्तमान प्रसंगानुसार जैसा कि मैं कह चुकी हूं यह बहुत अच्छा होगा यदि हम अभी एक ही आगार रखें। जैसा कि हमने पूर्व वर्षों में अनुभव किया है यद्यपि यह विधान-परिषद् एक आगार वाले अधिराज्य विधान-मण्डल के रूप में कार्य कर रही है फिर भी जिस कार्यप्रणाली द्वारा कानून बनाया जाता है वह जितना हम चाहते हैं उसकी अपेक्षाकृत अधिक शिथिल है मैं नहीं समझ पाती हूं कि दूसरा आगार बनाना, विशेषकर प्रान्तों में हमारे लिये क्यों आवश्यक है और यदि बनाते भी हैं तो कम से कम यह व्यवस्था करें कि प्रान्तों में अवर आगार जितना शीघ्र हो सके उतना शीघ्र अपने आपको इस भार से मुक्त कर सकें।

***श्री ओ.वी. अलगेसनः** उपाध्यक्ष महोदय, दूसरे आगार का सिद्धान्त आज ही हमारे सामने प्रत्यक्ष रूप में आता है। इस सभा ने उस समय इस विषय पर विचार किया था जब कि मैं तो यह कहूंगा कि प्रत्यक्ष रूप में नहीं वरन् एक प्रकार से अप्रत्यक्ष रूप में प्रान्तीय विधान समिति का विवरण इस सभा को प्रस्तुत किया गया था।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारतीः** किस प्रकार?

***श्री ओ.वी. अलगेसनः** क्योंकि माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल ने, जिन्होंने कि इस सभा के विचारार्थ प्रान्तीय विधान-समिति के विवरण को पेश किया था, यह कहा था कि समिति सामान्यतया इस बात से सहमत थी कि विधान-मण्डल में केवल एक ही आगार हो परन्तु फिर वे उस कार्यप्रणाली का वर्णन करने लगे जिसे डॉ. अम्बेडकर ने सभा में अभी बताया था। विधान-परिषद् में विभिन्न प्रान्तों के सदस्यों की इच्छा पर यह छोड़ा गया था और उनसे यह

निश्चय करने के लिये कहा गया था कि अपने-अपने प्रान्तों के लिये वे दूसरा आगार चाहते हैं या नहीं। एक विचार से यह स्वतन्त्रता अच्छी थी परन्तु यही स्वतन्त्रता इस प्रश्न पर गंभीर रूप से विचार करने और उसके गुणावगुण के आधार पर उसकी जांच करने में सभा के लिये बाधक हुई। इस विषय से सम्बन्धित विशेष अनुच्छेद को जिस समय सरदार पटेल ने पेश किया था उन्होंने यह आशा प्रकट की थी कि छोटे-छोटे प्रान्त दूसरे आगार के पक्ष में निर्णय न करें। परन्तु वास्तव में उसका फल यह हुआ कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा गिनाये गये 6 प्रान्तों ने दूसरे आगार में निर्णय किया है। मैं यह निवेदन करता हूं कि गुणावगुण के आधार पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। जिसको मूल रूप में अपवाद समझा जाता था वह एक नियम के रूप में स्थायी हो गया।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** श्रीमान्, क्या मैं यह संकेत कर सकता हूं कि उस अवसर पर माननीय सदस्य उपस्थित नहीं थे अत: उन्हें यह कहने का अधिकार नहीं है?

***श्री ओ.वी. अलगेसन:** मैं इस कारण उपस्थित न हो सका कि मैं स्वस्थ नहीं था। परन्तु इस कारण अपना मत प्रकट करने का मेरा अधिकार छिन नहीं जाता है।

***उपाध्यक्ष:** कृपया अध्यक्ष को संबोधन करिये। श्री एल. कृष्णास्वामी भारती को उत्तर देने का प्रयत्न न करिये।

***श्री ओ.वी. अलगेसन:** बहुत अच्छा। उस विशिष्ट कार्यप्रणाली के कारण अनेकों प्रान्तों के सदस्यों ने सोचा "दूसरे आगार के इस अलंकार को हम भी धारण करें।" इसके विपरीत यदि सभा में प्रत्यक्ष रूप से यह सीधा सवाल किया जाता तो मैं समझता हूं कि सभा दूसरे आगार के विरुद्ध निश्चय करती। मेरा यह निवेदन था। क्योंकि गुणावगुण के आधार पर यह पहला ही अवसर है कि हम इस प्रश्न पर विचार कर रहे हैं अत: इस सभा को यह कहने का पूरा अधिकार है कि इस समय हम दूसरा आगार नहीं रखेंगे।

[श्री ओ.वी. अलगेसन]

यह भी कहा गया था कि ये 6 प्रान्त इस समय बड़े-बड़े प्रान्त हैं। भविष्य में उनका विभाजन चाहे हो जाये। फिर ये प्रावधान क्या हैं? वे आसानी से दूसरे आगार से मुक्त नहीं हो सकते हैं। भाषावार प्रान्त बनाने पर आर्थिक अस्थिरता के कारण आपत्ति है ही। यह उसके लिये एक और कारण होगा क्योंकि जब छोटे प्रान्त बन जायेंगे तो उन पर दूसरे आगार का खर्च अनावश्यक रूप से भारस्वरूप होगा।

मुझ से पूर्व अनेकों वक्ताओं ने यह बताया कि दूसरा आगार किस प्रकार अनावश्यक रुप से असामयिक है मैं तो यह कहूंगा कि यह राजनीतिज्ञों के लिये एक प्रकार का वृद्धावस्था का उत्तर वेतन है। जब हम दूसरे आगार की रचना पर विचार करेंगे मैं समझता हूं कि उस समय मैं यह समझा सकूंगा कि राज्य की राजनीति में वह किस प्रकार अपकारी होगा न कि उपयोगी। मेरे मित्र श्री कृष्णास्वामी भारती ने वाशिंगटन द्वारा दिये गये प्याले और रकाबी के उदाहरण को दिया था। मैं यह निवेदन करता हूं कि वाशिंगटन के समय से हम अनेकों शताब्दी आगे बढ़ गये हैं और अमरीका का विवेकपूर्ण वैधानिक मत आज दूसरे आगार के विरुद्ध है। अनेकों विशेषज्ञों ने अमरीका के संयुक्त राज्य के लिये एक आदर्श विधान तैयार किया है। उन्होंने द्विआगारिक प्रणाली का परित्याग किया है और राज्यों के लिये एक आगार वाले विधान की सिफारिश की है। यद्यपि अभी तक केवल एक राज्य में एकागार वाली प्रणाली को ग्रहण किया गया है। इस विशिष्ट विषय पर मैं एक अमेरीका के अधिकारी का उदाहरण दूंगा और उससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि दूसरा आगार किस प्रकार प्रतिक्रियावादी आगार के रूप में कार्य करता है। दूसरे आगार के पक्ष में जो तर्क बहुधा प्रस्तुत किया जाता है वह यह है कि अवर आगार द्वारा जल्दबाज़ी में कानून बनाये जाने को वह रोकेगा। उसने यह प्रकट किया है कि यह एक कोरी गप्प है। विद्वान लेखक ने कहा है:

"चाहे यह विचार न्यायसंगत और तर्कयुक्त प्रतीत हो, परन्तु द्विआगारिक प्रणाली की प्रथा ने इस विचार के समर्थन में कोई प्रमाण उपस्थित नहीं

किया है। इसके विरुद्ध अनेकों उदाहरणों से यह विदित होता है कि जिन प्रस्तावनाओं के लिये जनता की ओर से बड़ी मांग की गई थी उनको गिराने के लिये राजनीतिज्ञों ने एक आगार के प्रति दूसरे आगार को विरुद्ध करने में भाग लिया और इस प्रकार वे अपने कार्यों के प्रति अपने व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से बचने में सफल हुए।"

इस लेखक ने इन निरपवाद शब्दों में द्विआगारिक प्रणाली की निन्दा की है। अत: सर्वप्रथम तो मैं यह चाहूंगा कि यह सभा प्रान्तों के लिये दूसरे आगार के सिद्धान्त को पूर्ण रूप से अस्वीकार करदे और यदि ऐसा नहीं हो सकता है और सभा ऐसा नहीं करना चाहती है तो मैं यह निवेदन करूंगा कि कम से कम एक ऐसा प्रावधान होना चाहिये जिसके द्वारा किसी प्रान्त में अवर आगार केवल एक संकल्प द्वारा दूसरे आगार से मुक्त हो सके। इसके लिये अनुच्छेद 304 के उपखंड (2) को उद्धृत किया गया था। वह भी एक उलझन वाली कार्य प्रणाली है। अवर आगार में जब कि बहुसंख्यक दल अनिश्चित अवस्था में हो तो उत्तर आगार भी उस आशय की पूर्ति नहीं करेगा क्योंकि स्वभावत: वह उस दल की रक्षा का समर्थन करेगा। अत: उस प्रावधान में परिवर्तन कर देना चाहिये जिससे कि अवर आगार में बहुमत द्वारा एक साधारण संकल्प पारित करने पर अवर आगार उत्तर आगार से मुक्त हो सके।

श्रीमान्, मैं अपना भाषण समाप्त कर चुका हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, जिस ध्यान से इस प्रकार के विषय पर वाद-विवाद को सुनना चाहिये उसी ध्यान से, मेरे समक्ष जिन वक्ताओं ने भाषण दिया है, उनको मैंने सुना है। अपने निजी विचारों को व्यक्त करते हुए तो मैं उनमें से अनेकों के साथ सहानुभूति रखता हूं जिन्होंने प्रान्तों में दूसरे आगार के प्रति विरोध प्रकट किया। जब से विधान का विचार उत्पन्न हुआ तभी से इस विषय पर समस्त संसार में वाद-विवाद हुआ है कि दूसरा आगार आवश्यक है अथवा नहीं और इस विषय में विस्तृत रूप से मतभेद के लिये स्थान है। श्रीमान्, आज मेरा विषय इस बात की जांच करने से सम्बन्ध नहीं रखता है कि प्रान्तों के लिये दूसरा आगार रखना आवश्यक है या नहीं। जो

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

कुछ मैं इस महान् सभा को बताना चाहता हूं वह यह है कि इस सभा ने पहले कुछ मौलिक सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया है, वह इसलिये कि विधान बनाने में मसौदा-समिति का वे सिद्धान्त पथ-प्रदर्शन करे। प्रश्न यह है कि उचित रीति से अर्थात् इस आशय के लिये जो नियम बनाये गये हैं उनके अनुसार इस महान् सभा ने जो निर्णय किया है उसमें उचित सदस्यों की संख्या द्वारा पूर्ण परिवर्तन करने की मांग द्वारा सब बातों की जांच अथवा परिवर्तन किये बिना किसी अनुच्छेद के निषेध द्वारा क्या उन सिद्धान्तों को छोड़ा जा सकता है!

श्रीमान्, इस विषय पर प्रश्न किया जा सकता है कि कौन मौलिक सिद्धान्त है और कौन नहीं। उदाहरण के रूप में, यदि हम यह कह दें कि इस विधान के लिये प्रधान की आवश्यकता नहीं है, तो यह संघ-विधान-समिति के विवरण के आधार पर इस सभा द्वारा किये गये मूलभूत निश्चय के विरुद्ध होगा। इसी प्रकार यदि हम यह कहें कि राज्य के लिये शासक आवश्यक नहीं है, तो यह भी मूलभूत सिद्धान्त के विरुद्ध होगा। परन्तु, श्रीमान्, यदि हम यह कहें कि शासक का इस प्रकार निर्वाचन किया जायेगा या वह इस प्रकार मनोनीत किया जायेगा और प्रधान का इस प्रकार निर्वाचन किया जायेगा, तो यह सभा के निर्णय पर आश्रित मौलिक सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं होगा। 18 जुलाई सन् 1947 को इस सभा ने प्रान्तीय विधान-समिति के विवरण की मोटी-मोटी रूपरेखा स्वीकार की थी, विशेषकर नियम 19 के सम्बन्ध में जिसका इस अनुच्छेद के साथ कुछ सम्बन्ध है, जिस पर सभा वाद-विवाद कर रही है।

माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल ने यह पेश किया था:—

> "प्रत्येक प्रान्त के लिये एक प्रान्तीय विधान-मण्डल होगा जिसमें शासक और विधान सभा होगी; और उनके साथ-साथ निम्न प्रान्तों में एक विधान-परिषद् होगी।"

वास्तव में यह प्रावधान बड़ी सावधानी से बनाया गया था, जिससे कि प्रत्येक प्रान्त को यह निर्णय करने में कि दूसरा आगार हो या नहीं, अधिक से अधिक स्वतन्त्रता हो। मेरे कुछ माननीय मित्रों ने उस रीति का उल्लेख किया है जिसके द्वारा इस पर निर्णय किया गया था। श्रीमान्, सभा द्वारा इस विशेष नियम के पारित

हो जाने के पश्चात् समुचित समय पर विधान-परिषद् के सचिवालय ने प्रत्येक प्रान्त के सदस्यों को किसी विशिष्ट दिवस एकत्रित होने के लिये निमन्त्रित किया और वे दूसरा आगार रखना चाहते हैं या नहीं, इस विषय पर निर्णय करने के लिये कहा। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि मेरे यह कहने से किसी रहस्य का उद्घाटन अथवा विश्वासघात नहीं होता है कि मद्रास प्रान्त के प्रतिनिधियों की बैठक में जहां तक मद्रास प्रान्त का सम्बन्ध है, मैं उन लोगों में से था जिन्होंने दूसरे आगार का घोर विरोध किया था, लेकिन मैं अधिक वोटों से हार गया; परन्तु मैं यह नहीं समझता हूं कि चूंकि मेरे प्रान्त के प्रतिनिधियों का निर्णय मेरे विचारों के विरुद्ध था, इसलिये मैं केवल अपने प्रान्तों के सदस्यों के निर्णय के विरुद्ध ही नहीं बल्कि 18 जुलाई 1947 को इस महान् सभा द्वारा किये गये निर्णय के विरुद्ध भी इस खण्ड पर वाद-विवाद का लाभ उठा सकूं। श्रीमान्, उन सदस्यों के लिये जो यह समझते हैं कि यह बात ठीक नहीं है, नि:सन्देह उचित मार्ग यह है कि वे इस सभा की कार्यप्रणाली के नियम 32 से लाभ उठायें और इस विशेष प्रश्न पर पुन: विचार करने के पत्र पर सदस्यों की पर्याप्त संख्या से हस्ताक्षर करा कर इस विषय पर फिर से शास्त्रार्थ करायें। इस कार्य को करने की यही ठीक रीति है और मैं तो यह समझता हूं कि यद्यपि यह सभा साधारणतया इस विशेष अनुच्छेद 148 को पूरा का पूरा अथवा उसके किसी भाग को अस्वीकार कर सकती है—एक सर्वसत्तायुक्त सभा जिस कार्य को करना चाहती है उसके करने में कोई रुकावट नहीं होती है—पर मैं समझता हूं कि शिष्टता के नाते हम उस सिद्धान्त से विमुख नहीं हो सकते हैं, जो 15 जुलाई सन् 1947 को स्वीकार कर लिया था—वह सिद्धान्त जिसका विभिन्न प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने अपनी-अपनी अलग-अलग बैठकों में अपने-अपने प्रान्तों में दूसरा आगार हो या नहीं, इस विषय पर निर्णय पर समर्थन किया था। यह विषय सर्वथा भिन्न है कि यह सभा यह निश्चय करे कि उत्तर आगार की रचना 18 जुलाई सन् 1947 को निश्चित की गई रचना से अथवा जो कुछ मसौदा-समिति ने विधान के मसौदे में दिया है उससे भिन्न हो। इसके लिये ठीक समय आने पर मैं इस विषय पर कुछ कहूंगा। परन्तु हमें यह कहने का पूर्ण अधिकार है कि उत्तर आगार का निर्वाचन पूर्णतया अवर आगार द्वारा हो, उत्तर आगार को पूर्णतया शासक द्वारा मनोनीत किया जाये, उत्तर आगार का निर्वाचन सब प्रकार के निर्वाचन-क्षेत्रों में से हो, उत्तर आगार केवल श्रम का प्रतिनिधान करे न कि रूढ़गत स्वार्थों का अथवा इसके विपरीत

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

यह कि उत्तर आगार में केवल रूढ़गत स्वार्थों का प्रतिनिधान हो न कि श्रम का अथवा यह कि दोनों का समान रूप से प्रतिनिधान हो और प्रान्तों में प्रकार्य सम्बन्धी हितों के प्रतिनिधियों को उसमें रखा जाये या न रखा जाये। ये सब ऐसे विषय हैं जिन पर विचार करने का और यदि वह उचित समझती है तो उनमें परिवर्तन करने का इस सभा को पूर्ण स्वातन्त्र्य है। पर मैं समझता हूं कि 18 जुलाई सन् 1947 को वचनबद्ध होने के कारण तथा उस वचन को इस रूप में स्वीकार कर और भी अधिक दृढ़ बनाने के कारण प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने उन विशिष्ट प्रान्तों में दूसरा आगार रखना स्वीकार कर लिया है, जिनको मेरे मित्र डॉक्टर अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन में गिनाया गया है, मैं समझता हूं कि सभा के लिये मूल प्रश्न पर इस रूप में और अधिक विचार करना ठीक नहीं है कि किसी विशिष्ट प्रान्त में उत्तर आगार होना चाहिये या नहीं। अत: इस विषय को ऐसा ही रहने देना चाहिये और जिस रूप में सभा के समक्ष यह अनुच्छेद रखा गया है, उसी रूप में इसे स्वीकार कर लेना चाहिये।

*__श्री विश्वनाथ दास__ (उड़ीसा : जनरल): संसार के विभिन्न राज्यों में उत्तर आगारों की कार्यशैली का पुनरीक्षण कर मैं सभा को कष्ट नहीं देना चाहता हूं। जिन सीमाओं में मैं यहां सीमित हूं उनसे परे यह कार्य है। श्रीमान्, इतना कहना ही काफी है कि प्रान्तों में जिस प्रकार के दूसरे आगारों की रचना के लिये कहा जा रहा है, वह रचना कई रूप में उन दूसरे आगारों की रचना से भिन्न है जो आपको संसार के अनेकों राज्यों में आज कार्य करते दिखाई देते हैं। इतना ही यथेष्ट है कि केन्द्र में हमारे यहां दूसरा आगार है। केन्द्र में दूसरा आगार भी उस ऐश्वर्य और उत्तरदायित्व से गिर जाता है जो संयुक्त राज्य अमरीका जैसे उन्नत राज्यों में उस आगार को प्राप्त है। आजकल यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वह आगार जिसका अप्रत्यक्ष निर्वाचन है, इससे भी न्यून स्थिति में वह आगार जिसमें मनोनीतकरण है देश में न्यूनातिन्यून ऐश्वर्य तथा प्रभाव रखता है और वह किसी कानून-निर्माण की प्रगति को रोकता है चाहे वह कानून जल्दबाज़ी का हो अथवा चाहे क्रान्तिकारी हो। इन परिस्थितियों में प्रान्तों में दूसरे आगार के लिये जिस प्रणाली को सोचा जा रहा है और जिसको प्रयोग में लाने के लिये तैयार किया जा रहा है, वह बहुत उपयोगी नहीं है। हमने उसमें बहुत-सी बातों का

जमघट रखा है। आपने उसमें अप्रत्यक्ष निर्वाचन रखा है, आपने उसमें मनोनीतकरण भी रखा है, फिर मंत्रिमंडलों की इच्छा पर निर्भर करते हुये आपने उसमें निर्वाचन और सूची का मिश्रण रखा है। इन परिस्थितियों में दूसरे आगार के लिये जो प्रणाली सोची गई है वह लाभदायक नहीं है और मैं तो यहां तक कहूंगा कि वह उपयोगी भी नहीं होगी। अत: वह उस अवर आगार के निर्णय पर प्रभाव नहीं डाल सकती है जिसका वह प्रतिबिम्ब मात्र है और वह भी एक दु:खद प्रतिबिम्ब। श्रीमान्, दूसरी बात यह है कि यदि अवर आगार जल्दबाज़ी में कोई कानून बनाना चाहता है तो वह उसे नहीं रोक सकता है क्योंकि उसे परिमित सीमाओं में कार्य करना होगा। श्रीमान्, इन परिस्थितियों में प्रान्तों के लिये जो दूसरा आगार सोचा गया है वह उपयोगी नहीं है और क्या मैं यह भी कहूं कि वह एक कीमती दिखावा होगा। जहां तक हमारे प्रान्त का सम्बन्ध है, मैं इस सभा के माननीय सदस्यों को धन्यवाद देता हूं, विशेषकर उनको जिन्हों ने इस विषय को प्रान्तों पर छोड़ने का निर्णय कराया। यह बिल्कुल ठीक है कि इस प्रश्न पर प्रान्तों के प्रतिनिधियों को निर्णय करने के लिये आमन्त्रित किया। मैं नहीं समझता हूं कि इस प्रश्न के विरुद्ध क्या-क्या और कितना कहा जाता जैसा कि श्री कृष्णमाचारी ने उल्लेख किया था। यह सच है कि इसे प्रान्तों पर छोड़ा गया था। मेरे मित्र कहते हैं कि प्रान्तों ने निर्णय कर लिया हैं। मैं यह नहीं जानता कि उन्होंने कब निर्णय किया। मैं उड़ीसा प्रान्त का हूं। हमको उड़ीसा के प्रतिनिधियों को एक बार के अतिरिक्त इस प्रश्न पर वाद-विवाद करने के लिये और कभी नहीं बुलाया गया और जो कुछ निर्णय किया गया, वह दूसरे आगार की रचना के विरुद्ध था।

श्रीमान्, मैं धन्यवाद दे चुका हूं और समिति को तथा इस सभा के माननीय सदस्यों को फिर इस बात के लिये धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने इस प्रश्न को प्रान्तों पर पूर्णतया छोड़ा। जो निर्णय हमने किया है उसके करने में अपनी ओर से हम ने बहुत ही सावधानी बरती। हमने मंत्रियों को तथा उड़ीसा के प्रधानमंत्री तक को, जो इस महान् सभा के सदस्य हैं और यद्यपि वे उस समय उपस्थित न थे, सूचना दी। हमारे पास मंत्रिमण्डल के भी विचार थे और हमारे पास प्रधानमंत्री के भी विचार थे तथा प्रतिनिधि सदस्यों के भी विचार थे। अपने को और भी अधिक सुदृढ़ बनाने के लिये हमने उन सब राज्यों के प्रतिनिधियों को निमंत्रित किया जो उड़ीसा राज्य में सम्मिलित हो गये है; यहां तक कि उन राज्यों के प्रतिनिधियों को

[श्री विश्वनाथ दास]

भी निमंत्रित किया जो उड़ीसा राज्य में मिलना चाहते हैं। उन सबको बुलाया गया था और उनको विचार-विमर्श में भाग लेने दिया था, अतः इस प्रकार इन सब लोगों के मिल कर विचार-विमर्श करने के फलस्वरूप हम, केवल एक सदस्य श्री साहू को छोड़ कर, सर्वसम्मति इस निर्णय पहुंचे। हम बहुमत से इस निर्णय पर पहुंचे कि हम दूसरा आगार नहीं रखेंगे। श्रीमान्, दूसरे आगार लाभदायक नहीं है। वे उपयोगी भी नहीं हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं वे केवल अलंकारिक है। यदि वे अलंकारिक भी होते तो भी कुछ बात थी, क्योंकि अलंकारों का अपना मूल्य होता है, वे वस्तुओं को मनोहर तो बनाते ही है। परन्तु यहां तो इन पर बहुत खर्च करना पड़ेगा—उसके कारण प्रान्त की निधि पर बहुत अधिक भार पड़ेगा और कोई लाभ होगा नहीं। इन सब बातों के कारण मैं समझता हूं कि वह नितान्त अनावश्यक है और वह एक ऐसा उपकरण है जिसको यदि उतार फेंका जाये तो अच्छा है।

*__उपाध्यक्षः__ डॉ. अम्बेडकर!

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, .....।

*__उपाध्यक्षः__ श्री कामत मध्यप्रान्त के हैं जिसमें उत्तर आगार है ही नहीं। (*हंसी*)

*__श्री एच.वी. कामतः__ श्रीमान्, इसीलिये तो मैं बोलना चाहता हूं।

*__उपाध्यक्षः__ मैं समझता हूं कि इस विषय पर यथेष्ट वाद-विवाद हो चुका है। लगभग चार और माननीय सदस्य बोलना चाहते हैं, परन्तु हम डेढ़ घण्टा तो व्यतीत कर ही चुके हैं और हमें प्रति दिन नियत प्रगति करनी है। जिन सज्जनों को निराश होना पड़ा है उनसे मैं क्षमायाचना कर सकता हूं। वर्तमान परिस्थितियों में मैं इससे अधिक और कुछ नहीं कर सकता हूं। डॉ. अम्बेडकर!

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद पर जितने संशोधन पेश किये गये हैं, उनमें से मैं किसी को भी स्वीकार नहीं कर सकता हूं। जो भाषण दिये गये हैं उनसे मुझे यह विदित होता है कि विभिन्न प्रान्तों में दूसरा आगार रखने के सिद्धान्त के पक्ष में उतना एकमत नहीं है। दूसरे आगारों

के विरुद्ध सभा में जो विचार प्रकट किये गये हैं उनसे मुझे आश्चर्य नहीं हुआ है। जब से फ्रांस की विधान-परिषद् समवेत् हुई है तभी से लगातार एक ऐसी विचारधारा चली आ रही है जो दूसरे आगार के विरुद्ध है। मैं नहीं समझता हूं कि उन लोगों के विचार जो दूसरे आगार के विपक्ष में हैं एबे सैयीस (Abbe seiyes) के शब्दों से अधिक सुन्दर शब्दों में व्यक्त किये जा सकते हैं। उनकी आलोचना दोनों ओर थी। उन्होंने कहा कि यदि उत्तर आगार अवर आगार से सहमत हो जाता है, तब तो यह निरर्थक है और यदि वह अवर आगार से सहमत नहीं होता है तो वह एक दुष्टतापूर्ण आगार है और हमें उसका स्वागत नहीं करना चाहिये। (*हंसी*) एबे सैयीस की आलोचना का प्रथम भाग नि:सन्देह ठीक है क्योंकि वह बिल्कुल स्पष्ट है। परन्तु एबे सैयीस की आलोचना के दूसरे भाग से अभी तक कोई भी सहमत नहीं हुआ है। यहां तक कि फ्रांस के राष्ट्र ने भी इस विचार को स्वीकार नहीं किया है। उन्होंने भी लगातार दूसरे आगार को रखने के सिद्धान्त का निर्वाह किया है।

मेरे निजी विचार ये हैं कि मैं स्वयं यह नहीं कह सकता हूं कि मैं दूसरे आगार का पहले से ही कट्टर समर्थक था। मेरे लिये तो यह पादरी के उस अंडे के समान है जिसके केवल कुछ भाग अच्छे हैं। (*हंसी*) इस विधान से केवल हम प्रयोगात्मक रूप में दूसरे आगार का पुर:स्थापन करते हैं। विधान के मसौदे द्वारा हमने दूसरे आगार को स्थायी स्थान नहीं दिया है। हमने उसे अपने विधान का स्थायी भाग नहीं बनाया है। वह केवल एक प्रयोगात्मक साधन है जैसा कि मैं कह चुका हूं और वर्तमान अनुच्छेद 304 में दूसरे आगार से मुक्त होने के लिये पर्याप्त व्यवस्था है। जब हम अनुच्छेद 304 के गुण और दोषों पर विचार करेंगे जो दूसरे आगार के हटाने से सम्बन्ध रखता है और यदि माननीय सदस्य यह समझेंगे कि अनुच्छेद 304 में दिये हुये प्रावधानों को और भी अधिक शिथिल करना चाहिये, जिससे कि दूसरे आगार से मुक्त होने की विधि सरल हो जाये, तो अपनी ओर से मैं यह कह सकता हूं कि मैं कोई आपत्ति नहीं करूंगा। (*वाह, वाह*), अत: मैं एक प्रकार के समझौते के रूप में यह निवेदन करता हूं कि इस अनुच्छेद को विधान में रहने दिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं एक-एक करके संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 148 के वर्तमान खंड (1) के स्थान में निम्न खण्ड रखा जाये:—

'(1) For every State there shall be a Legislature which shall consist of such number of Houses, not exceeding two, as Parliament shall determine by law in each case; provided that it shall be open to the Legislature of any State to request the Parliament of the Union to change a bicameral into unicameral Legislature and such request being duly made and received, Parliament shall pass the necessary legislation.' "

[(1) प्रत्येक राज्य के लिये एक विधान-मण्डल होगा जिसमें आगारों की उतनी ही संख्या, पर दो से अधिक नहीं, होगी जितनी संसद् प्रत्येक राज्य के लिये विधि द्वारा निश्चित करे; परन्तु किसी राज्य के विधान-मण्डल को यह छूट होगी कि वह द्विआगारिक विधान-मण्डल को इकआगारिक विधान-मण्डल में परिवर्तित करने के लिये निवेदन कर सके और इस प्रकार का निवेदन उचित रूप से करने और प्राप्त हो जाने के पश्चात् संसद् आवश्यक कानून पारित करेगी।]

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है :

"कि अनुच्छेद 148 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में 'States of' (शासक और) शब्दों के पश्चात् 'Orissa' (उड़ीसा) शब्द प्रविष्ट कर दिया जाये।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 148 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में 'in the States' (शासक, और) शब्दों के पश्चात् 'Madras, Bombay,

West Bengal, the United Provinces, Bihar and East Punjab' (मद्रास, बम्बई, पश्चिमी बंगाल, संयुक्तप्रान्त, बिहार और पूर्वी पंजाब) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** श्री एल. कृष्णास्वामी भारती के संशोधन संख्या 2231 पर मत लेने की आवश्यकता नहीं है।

अब सभा के समक्ष यह प्रस्ताव है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 148 विधान का अंग बने।"

*प्रस्ताव स्वीकार किया गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 148 विधान में प्रविष्ट किया गया।*

---

## अनुच्छेद 149

***उपाध्यक्ष:** तत्पश्चात् हम अनुच्छेद 149 पर आते हैं।

सभा के समक्ष यह प्रस्ताव है:

"कि अनुच्छेद 149 विधान का भाग बने।"

संशोधनों पर आते हुए मैं देखता हूं कि संशोधन संख्या 2234 और संशोधन संख्या 2235 का प्रथम भाग समान है। संशोधन संख्या 2234 पेश किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 2234 पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 2235, जो श्री लारी के नाम से है, पेश किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 2235 पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 2240 । जिस सदस्य ने इस संशोधन की सूचना दी है वे इसे पेश नहीं कर रहे हैं।

शाब्दिक होने के कारण श्री नजीरुद्दीन अहमद का संशोधन संख्या 2236 पेश नहीं किया जा सकता।

[उपाध्यक्ष]

संशोधन संख्या 2237 और 2238 समानार्थी हैं। पीछे वाला संशोधन अधिक व्यापक होने के कारण पेश किया जा सकता है। जिस सदस्य का उससे सम्बन्ध है वह इसे पेश नहीं कर रहे हैं। इसलिये संशोधन संख्या 2237 पेश किया जा सकता है। यह भी पेश नहीं किया गया।

इसके बाद हम श्री दामोदरस्वरूप सेठ के नाम के संशोधन संख्या 2239 पर आते हैं। इस संशोधन को पेश किया जा सकता है। मैं समझता हूं कि उक्त सदस्य सभा में नहीं हैं, अतः यह पेश नहीं किया जाता है।

संशोधन संख्या 2241 और 2242 समान हैं।

संशोधन संख्या 2241 को पेश किया जा सकता है। वह डॉ. अम्बेडकर के नाम से है।

***एक माननीय सदस्यः** उसको पेश नहीं किया जाता है।

('सदस्य सभा में नहीं है' की ध्वनियां) (*हंसी*)

***उपाध्यक्षः** (माननीय डॉ. अम्बेडकर को सभा में आते हुए देख कर) माननीय सदस्यों को बाहर जा कर काफी पीने अथवा धूम्रपान करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। माननीय सदस्य उन लोगों की कठिनाइयों पर कृपया विचार करेंगे जो इन दोनों प्रकार की श्रांतियों के अभ्यस्त हैं। माननीय सदस्य इस बात से सहमत होंगे कि डॉ. अम्बेडकर इस प्रकार की श्रान्तियों का अधिकारी है। अध्यक्ष को तो वाद-विवाद सुनने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करना पड़ता है, परन्तु डॉक्टर अम्बेडकर को तो वाद-विवाद सुनना पड़ता है और उत्तर देना पड़ता है। (*हंसी*)

मैं समझता हूं कि श्री लोकनाथ मिश्र और श्री नन्दलाल संशोधन संख्या 2242 पेश नहीं कर रहे हैं।

संशोधन संख्या 2243 को पेश नहीं करने दिया जाता है क्योंकि वह शब्दिक है।

संशोधन संख्या 2244 तथा संशोधन संख्या 2245 का प्रथम भाग एक समान है। पिछला संशोधन पेश किया जा सकता है। चूंकि प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना सभा में उपस्थित नहीं हैं वह संशोधन पेश नहीं किया जाता है। अत: संशोधन संख्या 2244 पेश किया जा सकता है। इस संशोधन को पेश करने वाले सदस्य इसे पेश नहीं कर रहे हैं। संशोधन संख्या 2245 का दूसरा भाग भी पेश नहीं किया जाता है क्योंकि उक्त सदस्य सभा में नहीं हैं। इसके बाद संशोधन संख्या 2246 जो श्री मुहम्मद ताहिर तथा सैयद जफर इमाम के नाम से है, यह भी पेश नहीं किया जाता है क्योंकि इसको पेश करने वाले सदस्य अनुपस्थित हैं।

प्रो. शाह संशोधन संख्या 2247 तथा उसके बाद के संशोधन संख्या 2248 को भी पेश कर सकते हैं।

**प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, जैसा आपने कहा है उसके अनुसार मैं दोनों संशोधनों को अभी पेश कर रहा हूं। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि खण्ड (2) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड प्रविष्ट किये जायें:

'(2-a) No person shall be entitled to be a candidate or offer himself for election to either House of a State Legislature, if Bicameral, or to the Legislative Assembly of the State, who is duly certified to be of unsound mind, or suffering from any other physical or mental incapacity, duly certified, or is less than 25 years of age at the time of offering himself for election, or has been proved guilty of any offence against the safety, security or integrity of the Union, or of bribery and corruption, or of any malpractice at election, or is illiterate.

No one who is unable to read or write or speak the principal language spoken in the State for seat in whose Legislature he offers himself for election, or after a period of ten years from the date of the coming into operation of the Constitution, is unable to read or write or speak the National Language of India, shall be entitled to be a candidate for or other himself to be elected to seat in the State Legislature, or either House thereof.

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

(2-b) The election shall be on the basis of proportional representation with a Singler Transferable Preference Vote. For the purpose of election, every State shall be deemed to be a single constituency, and every member shall be deemed to have been elected in the order of Preference as recorded by the electors; and this arrangement shall hold good in the case of a General Election, as well as at a by-election, if and when one becomes necessary:

Provided that where there is a second chamber in any State, the voters may be grouped, for electing members to the Legislative Council, on the basis of trade, profession, occupation or interest recognised for the purpose by an Act of the State Legislature, each trade, profession, occupation or interest voting as a single constituency for the entire State.' "

[(2-क) राज्य के विधान-मण्डल में या राज्य के विधान-मण्डल के किसी भी आगार में यदि वह द्विआगारिक है तो कोई भी व्यक्ति जो उचित रीति से विक्षिप्त अथवा अन्य किसी प्रकार के शारीरिक अथवा मानसिक असामर्थ्य से पीड़ित प्रमाणित कर दिया गया है, या निर्वाचित होने के लिये अपने आपको प्रस्तुत करते समय 25 वर्ष की आयु से कम का है, या संघ की क्षेम, सुरक्षा अथवा अक्षुण्णता के विरुद्ध या उत्कोच तथा दुराचार के प्रति या निर्वाचन में भ्रष्टाचार के प्रति किसी अपराध का दोषी सिद्ध कर दिया गया है या निरक्षर है तो वह निर्वाचित होने के लिए अपने आपको प्रस्तुत करने का या उम्मीदवार बनने का अधिकारी न होगा।

कोई भी व्यक्ति यदि उस राज्य में बोली जाने वाली प्रमुख भाषा को लिख, पढ़ या बोल नहीं सकता है, जिसके विधान-मण्डल में स्थान प्राप्त करने के लिए निर्वाचन में वह अपने आपको प्रस्तुत करता है या इस विधान के प्रवर्तन में आने की तिथि से दस वर्ष की अवधि के पश्चात् भारत की राष्ट्रीय भाषा को लिख, पढ़ या बोल नहीं सकता

है, तो वह राज्य के विधान-मण्डल या उसके किसी आगार में निर्वाचित होने के लिए अपने आपको प्रस्तुत करने का या उम्मीदवार बनने का अधिकारी न होगा।

(2-ख) निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधान के अधिकार पर एकल संक्राम्य प्रश्रयात्मक मत पद्धति के अनुसार होगा। निर्वाचन के लिए प्रत्येक राज्य को एक निर्वाचनक्षेत्र समझा जायेगा और निर्वाचकों द्वारा लिखित प्रश्रयात्मक क्रम के अनुसार प्रत्येक सदस्य निर्वाचित समझा जायगा और सामान्य निर्वाचन करने में तथा यदि कभी आवश्यक हो तो उपनिर्वाचन करने में भी यही प्रबंध ठीक समझा जायेगा :

परन्तु किसी राज्य में जहां दूसरा आगार है वहां इस प्रयोजन के लिए राज्य के विधान-मण्डल के किसी अधिनियम द्वारा अभिस्वीकृत व्यापार, व्यवसाय, वृत्ति अथवा हित के अधिकार पर मतदाताओं के समूह बनाये जा सकते हैं और समस्त राज्य के लिय प्रत्येक व्यापार, व्यवसाय, वृत्ति अथवा हित एक-एक निर्वाचन-क्षेत्र के रूप में मतदान करेगा।] और

"कि अनुच्छेद 149 का खण्ड (3) निकाल दिया जाये और उसके स्थान में निम्न खण्ड रखा जाये:-

'The representation in the State Legislature shall be on the basis of one representative for every lakh of population:

Provided that the total number of members in the Legislative Assembly of a State shall in no case be less than sixty.'

(प्रति लाख जनगणना के लिए एक प्रतिनिधि के आधार पर राज्य के विधान-मण्डल में प्रतिनिधान होगा:

परन्तु किसी दशा में भी किसी राज्य के विधान-मण्डल के समस्त सदस्यों की संख्या साठ से कम नहीं होगी।)

संशोधन संख्या 2247 में बहुत-सी ऐसी बातें हैं जो सभा में इससे पहले किसी अवसर पर रखी जा चुकी हैं। वे उन निर्योग्यताओं और योग्यताओं से सम्बन्ध रखती हैं जिनका वर्णन केन्द्रीय विधान-मण्डल की रचना पर वाद-विवाद करते समय किया गया था। यह स्पष्ट है क उस समय सभा मुझसे सहमत नहीं

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

हुई और किसी न किसी प्रकार से मेरी प्रस्तावना को अस्वीकार कर दिया। अब स्थानीय विधान-मण्डलों के दृष्टिकोण से मैं उनको फिर प्रस्तुत कर रहा हूं और मैं आशा करता हूं कि इस बार इनका पहले से अच्छा भाग्य रहेगा।

यह एक बड़े महत्त्व की बात है कि विधान-मण्डलों के बनने तक चाहे आप समस्त मतदाताओं को साक्षर न बना सकें, मेरी सम्मति में आपको इस बात पर अवश्य ज़ोर देना चाहिये कि विधान-मण्डल के उच्च पद के लिये उम्मीदवार कुछ रूपों में योग्य हों अथवा कुछ रूपों में निर्योग्य न हों।

जिन योग्यताओं का मैंने विचार प्रस्तुत किया है वे बहुत साधारण हैं, बहुत अनुचित नहीं हैं और किसी रुप में भी प्रजातन्त्र के आधारभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध नहीं हैं, अर्थात् प्रत्येक को अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होना चाहिये। इसको मान लेने पर भी यह वांछनीय है कि जो प्रतिनिधि होना चाहते हैं, वे यदि सम्पत्ति की, आर्थिक शक्ति की अथवा किसी ऐसे साधन की, जो परस्पर नागरिकों में किसी असमानता का द्योतक हो, योग्यता नहीं रखते हैं तो कम से कम इतनी योग्यता तो रखें जैसे कि सेवा करने की क्षमता, अपने समक्ष आने वाले वादहेतुओं को समझने की योग्यता और इतनी ईमानदारी कि वे विधान-मण्डल में अपना निष्पक्ष मत दे सकें, जिससे कि देश के लाभार्थ ठीक विधान बन सके। मैं समझता हूं कि यद्यपि यह सम्भव हो सकता है कि सिद्धान्त के आधार पर बराबरी के योग्य तथा आदरणीय लोगों में मतभेद हो किन्तु फिर भी हमें उन लोगों को अलग करना होगा जो कुछ ऐसी निर्योग्यताएं रखते हैं जिनको मैंने अपने संशोधन में रखा है। मैं उन लोगों के समक्ष जो इस मसौदे के प्रति उत्तरदायी हैं तथा सभा के समक्ष भी यह प्रस्ताव रखता हूं कि चाहे हम वैसा ही निर्णय करें जैसा हम कर चुके हैं और उस पर आग्रह करें कि पूर्ण साक्षरता प्राप्त करने की प्रतिज्ञा किये बिना सब प्रौढ़ व्यक्तियों को मताधिकार मिल जाये, पर तो भी हमें इस बात पर ज़ोर देना चाहिये कि उम्मीदवार में कुछ योग्यतायें हों और कुछ निर्योग्यतायें न हों जिनको स्पष्ट करने का मैंने प्रयत्न किया है। ये केवल उदाहरणमात्र हैं न कि स्वयं गुणों की सूचियां अथवा पूरी की पूरी योग्यतायें। विधान-मण्डल के सामने जो वादहेतु प्रस्तुत किये जायेंगे उनको समझने के लिये मैंने कम से कम आवश्यकताओं से अधिक और किसी बात का वर्णन नहीं किया है। अत: मैं सोचता हूं कि ठीक और उचित यही है कि कम से कम उम्मीदवारों के लिये

हम इन योग्यताओं पर आग्रह करें। इसी प्रकार से जो सदस्य बनें वे दोषों तथा अपराधों से प्रमाणित नहीं होने चाहियें। इसको विधान-मण्डल बनाने की एक सामान्य बात के रूप में मान लेना चाहिये और मेरी ओर से इस पर और अधिक तर्क करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये।

इस संशोधन के एक भाग में मैंने एक बात रखी है जो आनुपातिक प्रतिनिधान से सम्बन्ध रखती है। सभा उस विचार के पक्ष में नहीं है इसलिये मैं इस बात पर ज़ोर नहीं दूंगा। बहुत कुछ सम्भव है कि यह क्रम के विरुद्ध घोषित किया जाये इसलिये मैं इस पर ज़ोर नहीं दूंगा।

अपने संशोधन संख्या 2248 में आखिरी बात जिस पर मैंने ज़ोर दिया वह यह है कि प्रति लाख जनगणना के लिये एक प्रतिनिधि के आधार पर राज्य के विधान-मण्डल में प्रतिनिधान होगा : परन्तु किसी दशा में भी राज्य के विधान-मण्डल के समस्त सदस्यों की संख्या साठ से कम नहीं होगी। मैं यह स्वीकार करता हूं कि पूर्ववर्ती भाग में मनमानी बात हैं। उसमें परिवर्तन हो सकता है। मैंने उसे केवल इसलिये प्रस्तुत किया है कि मैंने सोचा कि विधान-मण्डल के बड़ी-बड़ी संख्याओं की जनगणना का वास्तविक प्रतिनिधि होने के लिये और साथ ही साथ प्रबन्ध करने योग्य अनुपात में सदस्य संख्या रखने के लिये वह एक सूचक है। एक लाख बहुत बड़ी संख्या है। एक लाख की जनसंख्या में प्रौढ़ मतदाताओं की संख्या लगभग 50 या 60 हज़ार होगी, अत: उन वादहेतुओं की बहुलता पर स्पष्ट निर्णय प्राप्त करने की सम्भावना जिनको सामान्य निर्वाचन के समय प्रान्तीय निर्वाचक-समूह के समक्ष रखा जायेगा, उतनी अधिक हो जायेगी कि मतदाता ठीक-ठीक यह न कह सकेगा कि उस निर्वाचक-समूह के सामने प्रत्येक वादहेतु पर समस्त मतदाताओं द्वारा स्पष्ट मत ले लिया गया है, चाहे सब मतदाता मतदान करने जायें।

परन्तु इस परिमित सीमा को समझते हुये मेरे विचार में विधान-सभाओं के प्रबन्ध करने योग्य परिमाण में रखने की व्यावहारिक आवश्यकता भी थी और इसीलिये इस प्रकार की मनमानी संख्या नियत करना आवश्यक है। मैं समझता हूं कि इसका प्रतिकार केवल इसी प्रकार हो सकता है कि आप विधायी संगठन की विधि की अपेक्षाकृत छोटी-छोटी जनसंख्याओं की इकाइयों में जारी रखें,

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

अर्थात् बड़े-बड़े प्रान्तों से इसी विधि को जिले या म्युनीसिपल तक ले जायें, जहां कदाचित् आपको बहुत अधिक प्रत्यक्ष प्रतिनिधान प्राप्त हो जायेगा और इस प्रकार प्रत्यक्ष लोक-राज्य हो जायेगा। परन्तु जिस रूप में प्रान्त अथवा राज्य इस समय वर्तमान हैं उसके अनुसार इस प्रकार की संख्या रखना अनिवार्य-सा प्रतीत होता है जो कि रखी गई है और इसके अतिरिक्त मैं उसके और अधिक गुण नहीं बता सकता हूं कि किसी और अधिक बड़ी संख्या की अपेक्षा यह संख्या अधिक प्रत्यक्ष तथा अधिक पूर्ण लोकप्रतिनिधान प्रदान करेगी। शेष के लिये, इस संशोधन का दूसरा भाग कम से कम, न कि अधिक से अधिक संख्या प्रदान करता है। मैं ऐसा खण्ड रखने के विरुद्ध हूं जो इस आधार पर किसी प्रान्त अथवा राज्य में पाये गये प्रतिनिधियों की अधिक से अधिक संख्या प्रदान करता है कि इस प्रकार की अधिक से अधिक संख्या, नियत करने से, चाहे वह कितनी ही हो, आप बड़े निर्वाचक-समूह को स्वयं स्थापित करने के अधिकार से वंचित करते हैं। ऐसा नहीं है कि आप मताधिकार से वंचित कर रहे हों बल्कि बात यह है कि आप उनको इस प्रकार से संगठित कर रहे हैं कि उनकी एक बड़ी संख्या अन्य संख्याओं के प्रभाव को दूर कर सके और इस प्रकार से आपके प्रतिनिधि सच्चे प्रतिनिधि नहीं हो सकते। इन आधारों पर मैं सभा के समक्ष ये दोनों प्रस्ताव प्रस्तुत करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** इससे आगे मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम का संशोधन संख्या 2249 है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं इस संशोधन के स्थान में एक वैकल्पिक संशोधन को जो सूची 2 में संख्या 48 पर है पेश करना चाहता हूं, क्योंकि मैं समझता हूं कि उस रूप में वह सभा को मान्य होगा। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 2249 के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये:

"कि अनुच्छेद 149 के खण्ड (3) में 'last preceding census (अन्तिम पूर्ववर्ती जनगणना) शब्दों के स्थान में 'last preceding census of which the relevant figures have been published' (अन्तिम पूर्ववर्ती जनगणना जिसके आंकड़े प्रकाशित हो चुके हैं) शब्द रखे जायें।"

दो अन्य प्रसंगों में यह सिद्धान्त स्वीकार किया जा चुका है। खण्ड (3) में यह दिया गया है कि प्रत्येक एक लाख जनसंख्या के लिये एक प्रतिनिधि होना चाहिये। यह भी कहा गया है कि यह जनसंख्या अन्तिम पूर्ववर्ती जनसंख्या से ली जायेगी। मेरा प्रश्न यह है कि पूर्ववर्ती जनगणना के आंकड़े न मिले और उस दशा में हमें पूर्ववर्ती जनगणना को लेना होगा, जिसके आंकड़े हमें मिल सकते हैं। सभा में कुछ संदेह प्रकट किये गये हैं कि क्या 1941 की जनगणना पर निर्भर होना बुद्धिमानी होगी और यह कि जनसंख्या में बहुत हेर फेर होने के कारण 1941 की जनसंख्या निरर्थक हो चुकी है। पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब में ही नहीं बल्कि अन्य प्रान्तों में भी जनसंख्या के आंकड़ों में परिवर्तन हो गया है। जहां तक आगामी निर्वाचन का सम्बन्ध है, मैं यह विचार प्रस्तुत करता हूं कि नई जनगणना होनी चाहिये या प्रत्येक प्रान्त में लोगों की ठीक-ठीक संख्या निश्चित करने की कोई विधि होनी चाहिये और यदि साम्प्रदायिक परिरक्षण दिया जाता है, तो हमें सम्प्रदायों के आधार पर भी आंकड़ों की आवश्यकता होगी। किसी दशा में भी जनसंख्या के आंकड़ों को निश्चित करने की कुछ न कुछ विधि नितान्त आवश्यक है। सिद्धान्त तो स्वीकार हो ही चुका है।

(सूची 4 का संशोधन 61 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** सूची 4 का संशोधन संख्या 62 जो श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के नाम से है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2249 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 149 के खण्ड (3) में 'every lakh' (प्रत्येक लाख) शब्दों के स्थान में 'every seventyfive thousand' (प्रत्येक पचहत्तर हज़ार) रखा जाये।"

श्रीमान्, सभा यह समझ जायगी कि यह संशोधन कुछ उन आपत्तियों को दूर करने के लिये है जो शायद एक लाख की संख्या नियत करने में उन क्षेत्रों की ओर से उठाई जाये, जो पिछड़े हुये हैं, जिनका क्षेत्र तो बहुत बड़ा है पर आबादी बहुत कम है। अनेकों प्रान्तों में ऐसे क्षेत्र बहुत हैं। ऐसे बहुत से स्थल हैं जहां शायद पूरा का पूरा तालुका पचहत्तर हज़ार से अधिक संख्या नहीं रखता है। विधान में हमें वास्तविक रूप में यह विचार प्रस्तुत करने हैं कि प्रत्येक मतदाता अपने मत का प्रयोग कर सके, पर उस मत के प्रयोग करने में स्थान की दूरी बहुत

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

महत्त्व रखती है। यह हो सकता है कि एक क्षेत्र में जहां कि लगभग पचहत्तर हज़ार व्यक्ति हों, निर्वाचन स्थल के दूर होने के कारण यदि मतदाताओं की समस्त संख्या 75 हज़ार की लगभग आधी होती है, तो चाहे 35 अथवा 37 हज़ार मतदाताओं का एक अंश ही मत न दे सके; अतः समस्या यह है कि हमें उन बातों को कम करना चाहिये जो मतदाताओं के मत देने में बाधा डालें। वास्तव में विधान में, जो प्रौढ़ मताधिकार पर आश्रित है, हम मतदाता को निर्वाचन-स्थल तक लाने के सम्बन्ध में कोई प्रावधान नहीं रख रहे हैं। स्थान की दूरी अनेक लोगों के लिये मत देने में बड़े महत्त्व की होगी। श्रीमान्, इस सभा के सदस्यों के लिये जिन्होंने निर्वाचनों में भाग लिया है यह एक साधारण अनुभव की बात है कि जिस व्यक्ति के पास अधिक संख्या में सवारियां हैं वही मनुष्य निर्वाचनों में जीतता हैं, यद्यपि यह भी बहुधा होता है कि लोग जाते किसी की सवारी में हैं और मत किसी और को देते हैं। परन्तु फिर भी जिस व्यक्ति के पास सबसे अधिक सवारियां हैं वही सबसे अधिक मत प्राप्त करता है। यदि हो सके तो हमें इस विशेष बात के प्रभाव को जो हमारे भावी विधान में प्रवर्तित है, न्यून से न्यून करना चाहिये। अपने देश की विचित्र परिस्थितियों को, विभिन्न प्रान्तों में विचित्र परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये यह ठीक प्रतीत होता है कि एक लाख की संख्या को कम करके पचहत्तर हज़ार रखा जाये; यद्यपि इसका फल यह होगा कि निर्वाचन-क्षेत्रों में मतदाताओं की संख्या में अन्तर हो जायेगा, परन्तु बाद में शायद हम इस विधान में ऐसे प्रावधान रख सकें जिससे कि ये अन्तर जितना कम हो सके उतना कम कर दिया जाये। मेरे खुद के प्रान्त में शायद 6 या 7 ऐसे निर्वाचन-क्षेत्र हों जहां जनसंख्या पचहत्तर हज़ार ही होगी, पर इसके कारण तत्सम्बन्धी विधान-मण्डल के प्रतिनिध्यात्मक रूप में कमी नहीं होगी अथवा जो क्षेत्र अधिक घने बसे हुये हैं, उनके साथ कोई अन्याय नहीं होगा। यह एक रक्षात्मक खण्ड है जो पिछड़े क्षेत्रों को प्रतिनिधान देने के लिये बहुत आवश्यक है। मैं आशा करता हूं कि सभा इस संशोधन को स्वीकार करेगी।

क्या मैं इससे सम्बन्धित संशोधन को पेश कर सकता हूं जिसकी संख्या 62 है?

***उपाध्यक्षः** आप उसे बाद में पेश कर सकते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** एक औचित्य प्रश्न है। आपको यह जानकर खुशी होगी कि संशोधन संख्या 2249 और 2250 के सम्बन्ध में जो सूचना मेरे पास भेजी गई है, सबसे पहले तो यह कि उनमें से किसी को भी पेश नहीं किया गया। दूसरी बात यह है कि संशोधन संख्या 2249 के स्थान में मैंने एक दूसरा संशोधन पेश किया है और उसका सम्बन्ध एक बिल्कुल ही दूसरे विषय से है। वास्तव में उसका सम्बन्ध जनगणना से है परन्तु वर्तमान संशोधन इकाइयों की संख्या से सम्बन्ध रखता है।

***उपाध्यक्षः** कृपया ध्वनिविस्तारक यंत्र के निकट आइये। आपकी बात मुझे सुनाई नहीं देती है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** क्या मैं यह सुझाव करूं कि सभा उनके संशोधन संख्या 2249 पर उनके द्वारा एक अन्य संशोधन पेश कर देने के लिये सहमत हो ही चुकी है, अतः उनको कोई और औचित्य सम्बन्धी आपत्ति उठाने से रोका जाये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** इस औचित्य प्रश्न के उठाने में मुझे इस संशोधन के औचित्य के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहना है। मेरा प्रश्न पारिभाषिक है। इस संशोधन में यह कहा गया है कि वह संशोधन संख्या 2249 और 2250 के सम्बन्ध में है। वह सूची 4 में संशोधन संख्या 62 है।

***उपाध्यक्षः** ठहिरये, ठहरिये, इतनी जल्दबाज़ी न करिये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** संशोधन संख्या 2249 और 2250 के सम्बन्ध में इस संशोधन को पेश करने का प्रयत्न किया गया है। मैंने पहले संशोधन को पेश नहीं किया है। परन्तु संशोधन संख्या 2250 के सम्बन्ध में मैंने उसके स्थान में दूसरा संशोधन पेश किया हैं। यदि इस आशय से स्थानापन्न संशोधन का उल्लेख किया जा रहा है तो उसका सम्बन्ध तो किसी दूसरे विषय से होगा।

***उपाध्यक्षः** आपका विचार यह है कि यहां सूची 4 में संशोधन संख्या 62 को पेश करना ठीक ही है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जी हां, मैं इस स्थिति को स्पष्ट कराना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है और सामान्य विचार यह है कि उसको यहां रखना चाहिये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** उस अवस्था में हमें भी अन्य संशोधनों के सम्बन्ध में उपस्थित होने का (संशोधन रखने का) अवसर मिलना चाहिये। ऐसी अवस्था में मैं तो खुश होऊंगा।

***उपाध्यक्ष:** शाब्दिक संशोधनों को छोड़ कर अन्य संशोधनों के लिये मैं आपको अवसर देने का प्रयत्न करूंगा जैसा कि मैंने अब तक किया है।

क्या अब हम डॉ. अम्बेडकर के नाम के संशोधन संख्या 2250 को लें?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं उसे पेश नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** इस अवस्था में सूची 3 का संशोधन संख्या 59 गिर जाता है।

संशोधन संख्या 2251, 2252 और 2253 क्रमानुसार पेश किये जा सकते हैं।

संशोधन संख्या 2251 को छोड़ दिया जाता है क्योंकि उक्त माननीय सदस्य सभा में नहीं हैं।

संशोधन संख्या 2252 श्री रोहिणी कुमार चौधरी के नाम से है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, आखिर यहां मैं एक संशोधन पेश तो कर रहा हूं!

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं :

"कि अनुच्छेद 149 के खण्ड (3) में 'autonomous districts' (स्वायत्तशासी मण्डलों) शब्दों के स्थान में 'State' (राज्य) शब्द रखा जायें।"

श्रीमान्, मैं समझता हूं कि मुझे अपने आनन्दोगार में कमी करनी पड़ेगी क्योंकि इस संशोधन पर एक और संशोधन है और मैं समझता हूं कि वह अधिक

मान्य है। इसलिये, श्रीमान्, मैं केवल इस संशोधन को इस कारण पेश करता हूं कि वह दूसरा संशोधन पेश किया जा सके।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर संशोधन माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई के नाम से है।

***माननीय गोपीनाथ बारदोलोई** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2252 के सम्बन्ध में 'autonomus districts of Assam' (आसाम के स्वायत्तशासी मंडलों) शब्दों के पश्चात् 'and the constituency comprising the Cantonment and Municipality of Shillong' (और शिलोंग की नगर-समिति और छावनी वाला निर्वाचन-क्षेत्र) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

श्रीमान्, जो संशोधन श्री टी.टी कृष्णमाचारी ने प्रस्तुत किया है और मैं आशा करता हूं कि सभा उसे स्वीकार कर लेगी, उससे यह एक लाख जनसंख्या के पुराने हिसाब के स्थान में 75,000 जनसंख्या कर दी जायेगी। मैं समझता हूं कि जैसा श्री कृष्णमाचारी के संशोधन से विचार प्रकट होता है, उसके अनुसार यह "आसाम के स्वायत्तशासी मण्डलों" को छोड़ कर अन्य सब स्थानों के लिये लागू किया जा सकता है। इस संशोधन द्वारा हम शिलोंग की नगर-समिति और छावनी वाले निर्वाचन-क्षेत्र को भी पृथक् करने का प्रस्ताव करते हैं। उस निर्वाचन-क्षेत्र में 38,000 जनसंख्या है। वर्तमान काल में वह एक पुरुष के सदस्य बनाने का ही निर्वाचन-क्षेत्र नहीं है। वरन् एक स्त्री सदस्य बनाने का भी निर्वाचन-क्षेत्र है। इसका अर्थ यह हुआ कि 40,000 व्यक्तियों से कम आबादी का निर्वाचन-क्षेत्र वर्तमान समय में दो स्थानों का प्रतीक है। बिना किसी प्रतिनिधान के दिये हुये इस निर्वाचन-क्षेत्र को निर्वाचन-क्षेत्र की श्रेणी से पृथक् करना मेरी सम्मति से बहुत गलत होगा। इस विचार से मैंने इस संशोधन को प्रस्तुत किया है और मैं आशा करता हूं कि सभा इस संशोधन को स्वीकार करेगी।

[माननीय गोपीनाथ बारदोलोई]

जो संशोधन श्री रेहिणी कुमार चौधरी ने पेश किया है, उसके सम्बन्ध में मैं केवल यही कहना चाहता हूं कि वह संशोधन यह विचार प्रस्तुत करता है कि एक लाख जनसंख्या के बारे में इस खण्ड के प्रवर्तन से आसाम प्रान्त को पृथक् रखा जाये।

श्रीमान्, मैं यह समझता हूं कि श्री कृष्णमाचारी द्वारा प्रस्तुत संशोधन को स्वीकार कर लेने से स्थानों की संख्या के बारे में हमारी कठिनाइयां आसानी से हल हो जायंगी। इससे भी अधिक यह कि जो कठिनाइयां अन्य रूप में उत्पन्न होंगी—उसी प्रकार की कठिनाइयां जो स्थानों की संख्या पर इस सभा में उत्पन्न हुई हैं—वे भी यदि हम एक सामान्य गुरु स्वीकार कर लें तो दूर हो जायेगी। मेरी सम्मति में 75,000 का गुरु एक अच्छा गुरु है। अत: मैं नहीं समझता हूं कि श्री रोहिणी कुमार चौधरी द्वारा प्रस्तुत संशोधन संख्या 2252 पर विचार करने की कोई आवश्यकता है। अत: मैं सभा से निवेदन करता हूं कि वह मेरे इस प्रस्ताव को कि शिलोंग की नगर-समिति और छावनी वाले निर्वाचन-क्षेत्र को श्री कृष्णमाचारी द्वारा प्रस्तुत खण्ड के इस 75,000 के प्रवर्तन से पृथक् कर दिया जाये, स्वीकार कर ले।

***उपाध्यक्ष:** इससे आगे का संशोधन संख्या 2253 है, जो रेवेरेन्ड निकोल्स रॉय के नाम से हैं। चूंकि वे सभा में नहीं हैं, इसलिये वह संशोधन छोड़ दिया जाता है।

(संशोधन संख्या 2254 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 149 के खण्ड (3) परादिक के स्थान में निम्न परादिक रखा जाये:

'Provided that where the total population of a State as ascertained at the last preceding census exceeds three hundred lakhs, the number of members in the Legislative Assembly of the State shall be on a scale

of not more than one member for every lakh of the population of the State up to a population of three hundred lakhs and not more than five members for every complete ten lakhs of the population of the State in excess of three hundred lakhs:

Provided further that the total number of members in the Legislative Assembly of a State shall in no case be more than four hundred and fifty or less than sixty.'"

(परन्तु जहां किसी राज्य की समस्त जनसंख्या अन्तिम पूर्ववर्ती जनगणना में 3 करोड़ से अधिक निश्चित की गई है, तो वहां उस राज्य की विधान-सभा के सदस्यों की संख्या उस राज्य की प्रत्येक लाख जनसंख्या पर 3 करोड़ की जनसंख्या तक एक सदस्य के हिसाब से और 3 करोड़ से अधिक जनसंख्या पर प्रत्येक पूर्ण दस लाख पर पांच सदस्यों से अनधिक हिसाब से होगी।

और यह भी कि किसी राज्य की विधान-सभा के सदस्यों की समस्त संख्या किसी अवस्था में भी चार सौ पचास से अधिक या साठ से कम नहीं होगी।)

***उपाध्यक्ष:** इस संशोधन पर अनेकों संशोधन हैं। क्या मैं प्रस्तावकों को एक-एक करके बुलाऊं? संशोधन संख्या 31 से संख्या 34 तक संशोधन हैं। संख्या 31 श्री सिधवा के नाम से है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं उस संशोधन को पेश नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 32 प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के नाम से है। माननीय सदस्य सभा में उपस्थित नहीं हैं। संशोधन संख्या 33 और 34 श्री कमलेश्वरी प्रसाद यादव के नाम से है। वे सभा में उपस्थित नहीं हैं। तत्पश्चात् हम संशोधन संख्या 49 पर आते हैं, जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम से है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2255 के प्रस्तावित पहले परादिक में 'the last preceding census' (अन्तिम पूर्ववर्ती

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

जनगणना) शब्दों के पश्चात् 'of which the relevant figures have been published' (जिसके आंकड़े प्रकाशित हो चुके हैं) शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

श्रीमान्, इसका सिद्धान्त स्वीकार हो ही चुका है।

***उपाध्यक्षः** इसके पश्चात् हम संख्या 63 पर आते हैं, जो श्री जसपतराय कपूर के नाम से है।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं इस संशोधन को पेश नहीं कर रहा हूं, और न मैं संशोधन संख्या 64 और 65 को ही पेश कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** इसके पश्चात् संशोधन संख्या 66 है, जो श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के नाम से है।

**श्री टी. टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 149 के खण्ड (3) के परादिक में 'three hundred' (तीन सौ) शब्दों के स्थान में 'five hundred' (पांच सौ) शब्द रखे जायें।"

मैं समझता हूं कि इस संशोधन के कारण डा. अम्बेडकर के संशोधन को स्वीकार करने की आवश्यकता सभा को नहीं होगी।

डॉ. अम्बेडकर का संशोधन यह बताने का प्रयत्न करता है कि क्यों और किसलिये सदस्यों की संख्या को 300 से 450 किया जाये और उसको इस तर्क के आधार पर समझाया गया है कि उसका किस प्रकार हिसाब किया जायेगा। परन्तु इस तथ्य के कारण यह आवश्यक नहीं है कि एक ऐसी संस्था का निर्माण होगा—चाहे उसका निर्माण प्रान्तीय विधान-मंडल द्वारा हो अथवा संसद् द्वारा, जिसके द्वारा कि अन्त में यह सभा निश्चित करे—जो निश्चित रूप से यह निर्धारण करेगी कि प्रान्त में विधान-मंडल के प्रत्येक अवर आगार के सदस्यों की अधिकतम संख्या किस प्रकार निश्चित की जाये। अतः मैं समझता हूं कि इस विधि की व्याख्या करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि 300 के अंक से आगे किस रीति से संख्या बढ़ाई जाये।

यह भी अनुभव किया जाता है कि निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या के बड़े-बड़े प्रान्तों के लिय 450 की संख्या पर्याप्त न हो सके, उदाहरणार्थ संयुक्तप्रान्त और मद्रास जहां की जनसंख्या 5 करोड़ से भी अधिक है। अत: इस तथ्य के कारण कि इस सभा में जहां तक केन्द्र से सम्बन्ध है लोक-सभा के प्रतिनिधान के लिये 500 की संख्या स्वीकार कर ली है यह सोचा गया था कि यह संख्या बहुत बड़ी संख्या नहीं होगी।

इन बातों के कारण इस विशिष्ट संशोधन को पेश करने का मुझे साहस हुआ है जिसको मैं समुचित रूप से समझता हूं कि वह डॉ. अम्बेडकर के संशोधन पर संशोधन है और जिसे, मैं आशा करता हूं कि वे कृपा कर स्वीकार करेंगे और अपने संशोधन को वापस ले लेंगे जिससे कि सभा यह सीधे-सीधे निश्चय कर सके कि क्या वह इस संख्या को 300 से 500 तक बढ़ाना चाहती है।

श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** इसके बाद हम संशोधन संख्या 2256 पर आते हैं जो बेगम ऐज़ाज रसूल के नाम से है।

***बेगम ऐज़ाज रसूल** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करती हूं:

> "कि अनुच्छेद 149 के खण्ड 3 के परादिक में 'three hundred' (तीन सौ) शब्दों के स्थान में 'four hundred and fifty' (चार सौ पचास) शब्द रखे जायें।"

सभा को यह स्मरण होगा कि गत वर्ष जब कि विधान के विभिन्न खण्डों पर विचार-विमर्श हो रहा था सभा ने यह निश्चय किया था कि प्रान्तीय विधान-मण्डल के किसी आगार के सदस्यों की संख्या 300 से अधिक नहीं होनी चाहिये। बाद में यह विदित हुआ कि मेरे प्रान्त संयुक्तप्रान्त को इस खण्ड से बहुत अधिक हानि होगी। संयुक्तप्रान्त की जनगणना 5 करोड़ 50 लाख से अधिक है और यदि अवर आगार में सदस्यों की अधिकतम संख्या 300 नियत कर दी जाती है तो इस प्रान्त के साथ एक बड़ा अन्याय होगा। मैं समझती हूं कि यह महान्

[बेगम ऐजाज रसूल]

सभा इस बात से सहमत होगी कि इस बात के लिये कुछ संशोधन करना आवश्यक है। गत वर्ष मैंने 300 की अधिकतम संख्या का इस कारण समर्थन किया था कि 300 से अधिक सदस्यों का आगार बहुत बड़ा हो जायेगा और एक बहुत बड़े आगार में कानून-निर्माण पर वाद-विवाद करने का फल ऐसा नहीं होगा कि वह राज्य में विधान-मण्डल के सुन्दर कार्यकलाप में सहायक हो। परन्तु जैसा कि मैंने यह स्पष्ट बता दिया है कि यदि इस अधिकतम संख्या को माना जाता है तो हमारे प्रान्त की बहुत हानि होती है इसलिये मैं इस संशोधन को पेश कर रही हूं।

मुझे यह देख कर खुशी है कि मसौदा-समिति के सभापति माननीय डॉ. अम्बेडकर ने भी सदस्यों की संख्या 300 सीमित करने के अन्याय और अनौचित्य का अनुभव किया है और उसके लिये वे एक संशोधन पेश कर रहे हैं। अत: जो संशोधन माननीय डॉ. अम्बेडकर ने पेश किया है उससे मेरा संशोधन मजबूत हो जाता है। मैं आशा करती हूं कि 450 की संख्या स्वीकार कर ली जायेगी। यद्यपि जनसंख्या के अनुसार हमारे यहां 550 से अधिक संख्या होनी चाहिये, परन्तु यह विचार करते हुये कि 550 अथवा इससे अधिक सदस्यों का आगार बहुत ही बड़ा हो जायेगा मैं समझती हूं 450 की संख्या से प्रयोजन की पूर्ति हो जायेगी और हम प्रसन्नतापूर्वक यह त्याग स्वीकार करेंगे और हमारी जनसंख्या जितने सदस्य मांगती है उससे कम सदस्य रखेंगे। अत: मैं आशा करती हूं कि यदि माननीय डॉ. अम्बेडकर द्वारा मेरे संशोधन का समर्थन किया जायेगा तो सभा उसे स्वीकार कर लेगी।

इन अल्प शब्दों के साथ मैं इस संशोधन को पेश करती हूं।

***उपाध्यक्ष:** इस संशोधन पर एक संशोधन सूची 1 का संशोधन संख्या 35 है जो पंडित ठाकुरदास भार्गव के नाम से है। क्या वे उसे पेश कर रहे हैं?

***पंडित ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मैं एक दूसरा संशोधन पेश कर रहा हूं।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2249 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 149 के खण्ड 3 में 'Census' (जनगणना) शब्द के पश्चात् निम्न और प्रविष्ट किया जाये:

'except in the case East Punjab and West Bengal where fresh census will be taken to ascertain the population before the first election under this Constitution.' "

(सिवा पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल के जहां कि इस विधान के अनुसार प्रथम निर्वाचन के पूर्व जनसंख्या निश्चित करने के लिये नई जनगणना की जायेगी।)

यह एक बड़ा साधारण-सा प्रस्ताव है और इस पर जोर देने के लिये मुझे सभा का समय नहीं लेना चाहिये। जनसंख्या के प्रयाण करने से पंजाब और पश्चिमी बंगाल में जनसंख्या के अनुपात में परिवर्तन हो गया है और यह जनसंख्या इतनी तुच्छ नहीं है कि उसकी उपेक्षा की जा सके। अत: यह बहुत ही आवश्यक है कि नई जनगणना की जाये। यदि नई जनगणना नहीं की जाती है तो कोई ऐसा अन्य साधन खोजना चाहिये जिससे इन भागों की जनसंख्या को ठीक-ठीक निश्चित किया जा सके। यदि यह नहीं किया जायेगा तो यह कठिनाई होगी कि आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों में उन सम्प्रदायों को, उदाहरणार्थ मुसलमान जो यहां से 50 लाख की संख्या में चले गये हैं, बहुत अधिक प्रतिनिधान मिल जायेगा अपेक्षाकृत हिन्दू और सिखों के जो एक बड़ी संख्या में आ गये हैं—मैं समझता हूं कि उनकी संख्या 40 लाख से अधिक ही है। अत: मेरा निवेदन यह है कि यह देखने के लिये, कि इन 'अन्तिम पूर्ववर्ती जनगणना' शब्दों से उस शेष जनसंख्या को जो यहां आये हुये हैं, कोई कठिनाई न हो, या तो नई जनगणना होनी चाहिये और या कोई अन्य विधि काम में लानी चाहिये।

अत: जैसा कि मैंने दो दिन पूर्व कहा था मैं निवेदन करता हूं कि या तो मतदाताओं की नई सूची इस प्रकार तैयार की जाये कि यदि सम्भव हो सके तो इस साधन से ठीक जनसंख्या निश्चित की जाये—पर मेरा विनम्र निवेदन यह

[पंडित ठाकुरदास भार्गव]

है कि यह न्यूनाधिक रूप से अनुमान ही होगा। ठीक बात तो यह होगी कि प्रथम निर्वाचन के पूर्व इन दोनों प्रान्तों की नई जनगणना की जाये।

***उपाध्यक्षः** आप अपना इसके बाद का संशोधन भी पेश कर सकते हैं।

***पंडित ठाकुरदास भार्गवः** जहां तक इस संशोधन का सम्बन्ध है वह संशोधन संख्या 2260 से सम्बन्ध रखता है और उस संशोधन के पेश हो जाने के पश्चात् मैं उसे पेश करूंगा।

(संशोधन संख्या 2257 और 2258 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 2259 पंडित ठाकुरदास भार्गव के नाम से है और दो अन्य तथा संशोधन संख्या 2263 प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के नाम से है। ये दोनों संशोधन समानार्थी हैं। संशोधन संख्या 2263 पेश किया जा सकता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2263 के स्थान में निम्न रखा जाये:

कि अनुच्छेद 149 के खण्ड (3) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड प्रविष्ट किया जाये:

'(3 a) The ratio between the number of members to be allotted to each territorial constituency in a State and the population of that constituency as ascertained at the last preceding census of which the relevant figures have been published shall, so far as practicable, be the same throughout the State."

[(3 क) किसी राज्य में प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र के लिये नियत की जाने वाली सदस्यों की संख्या और उस निर्वाचन-क्षेत्र की जनसंख्या, जो अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना में निश्चित की गई है और जिसके आंकड़े प्रकाशित हो चुके हैं, में अनुपात जहां तक व्यवहार्य्य हो समस्त राज्य में एक ही होगा।]

श्रीमान्, यदि हम अभी पेश किये गये श्री कृष्णमाचारी के संशोधन के साथ-साथ अनुच्छेद 149 के खण्ड 3 दृष्टि डालते हैं तो प्रत्येक विधान सभा में अधिक से अधिक 500 और कम से कम 60 सदस्य हम रखेंगे परन्तु ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र एक से होंगे। मेरे प्रान्त संयुक्त-प्रान्त में एक निर्वाचन-क्षेत्र 25,000 का हो सकता है तो दूसरा 2 लाख का और यहां तक कि तीसरा 3 लाख का। यह एक ऐसी बात है जिसके कारण इस विधान में कमी आ जाती है। मैं नहीं समझ सकता हूं कि निर्वाचन-क्षेत्र इतने भिन्न-भिन्न प्रकार के कैसे हो सकते हैं एक एक लाख का तो दूसरा दो लाख का और तीसरा पांच लाख का। इस विधान में अवश्य ही एक भारी कमी है।

मैं सभा का ध्यान केवल अनुच्छेद 67 के खण्ड (5) के उपखण्ड (ग) की ओर आकर्षित करना चाहता हूं जिसमें हमने यह व्यवस्था की है कि यद्यपि प्रत्येक 5 लाख से 711 लाख तक एक प्रतिनिधि होगा परन्तु प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र के लिये किसी समय निर्वाचित होने वाले सदस्यों की संख्या का, उस प्रदेश की अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना में निश्चित की गई जनसंख्या से, अनुपात, समस्त भारत में जहां तक व्यवहार्य हो, एक ही होगा। यह व्यवस्था की गई है कि निर्वाचन-क्षेत्र एक से होंगे और इसका अर्थ यह है कि यदि संयुक्तप्रान्त में 6¼ लाख औसत परिमाण के निर्वाचन-क्षेत्र निश्चित करते हैं तो, जहां तक व्यवहार्य हो, प्रतिनिधान एक ही होगा। अतः समस्त भारत में समस्त निर्वाचन-क्षेत्र एक से और एक समान होंगे। इसी प्रकार मैं चाहता हूं कि राज्यों (रियासतों) में भी यही हो और जब निर्वाचन-क्षेत्र विभिन्न हैं तो वे लगभग समान हों। मैं समझता हूं कि यदि कुछ प्रान्तों में यह व्यवस्था नहीं की जाती है तो बड़े भयंकर परिणाम होंगे। प्रान्तीय ईर्ष्या हो सकती है जो प्रमुख रूप धारण कर लेगी कुछ लोग आगे बढ़ जायेंगे और वे उन स्थानों की व्यवस्था कर सकेंगे। वे अधिक स्थान बना सकेंगे 10,000 पर एक के हिसाब से और ऐसे स्थल भी हो सकते हैं जहां लोग अधिक स्थान रखना न चाहें और वे दो लाख पर एक स्थान की व्यवस्था करेंगे। श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि सभा इस संशोधन को स्वीकार करेगी, विशेषकर पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल का ध्यान रखते हुए जिन पर विशेष प्रभाव पड़ेगा।

श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2259 पेश नहीं किया जा सकता है। पर उस पर मत लिया जा सकता है। क्या पंडित ठाकुरदास भार्गव यह चाहते हैं कि इस पर मत लिया जाये?

***पंडित ठाकुरदास भार्गव:** जी, नहीं।

(संशोधन संख्या 2260 और 2261 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2262 शाब्दिक है। उसे पेश नहीं किया जा सकता है।

***पंडित ठाकुरदास भार्गव:** श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन संख्या 67 पर एक संशोधन पेश करता हूं:

मेरा संशोधन इस प्रकार है:

"कि अनुच्छेद 149 के खण्ड (3) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड प्रविष्ट किया जाये:

'(4) The ratio between the number of members to be elected at any time for each territorial constituency and the population of that constituency as ascertained at the fresh census mentioned in clause (3) shall so far as practicable be the same throughout the East Punjab and the West Bengal Province.' "

[(4) प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र के लिये किसी समय निर्वाचित होने वाले सदस्यों की संख्या का, उस प्रदेश की खण्ड 3 में उल्लिखित नई जनगणना में निश्चित की गई जनसंख्या से, अनुपात, समस्त पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल में, जहां तक व्यवहार्य हो, एक ही होगा।]

श्रीमान्, इस संशोधन को पेश करते हुये मैं अपनी बात का आधार अनुच्छेद 67 (3) को बनाता हूं जिसको हम स्वीकार कर ही चुके हैं। मैंने अभी-अभी अपने माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी से एक तर्क सुना था जिसमें उन्होंने यह प्रकट किया था कि वे इस प्रकार से निर्वाचन-क्षेत्रों का प्रबन्ध करना चाहते हैं कि उन निर्वाचन-क्षेत्रों में, जिनमें आने जाने की सुविधा नहीं है, मतदाताओं की

संख्या कम रखी जाय और उन निर्वाचन-क्षेत्रों में जिनमें आने जाने की सुविधायें हैं मतदाताओं की उतनी संख्या न हो। मेरा विनम्र निवेदन यह है कि यह न्याय नहीं होगा। यदि आप समस्त निर्वाचन-क्षेत्रों को एक-सा नहीं बनाते हैं अथवा जहां तक व्यवहार्य्य हो प्रान्तों में एक से निर्वाचन क्षेत्र नहीं बनाते हैं तो बड़ी गड़बड़ी होगी और विद्वेष हो जायेगा। मैं समझता हूं कि जनतन्त्र का वास्तविक अर्थ एक व्यक्ति को एक मत है न कि व्यक्तियों के एक समूह को मतों का एक समूह। क्षेत्रों को हम प्रमाणित नहीं कर रहे हैं वरन्, जनसंख्या के उस अंक को, जो किसी विशिष्ट निर्वाचन-क्षेत्र में किसी उम्मीदवार को दिये जायेंगे, हम प्रमाणित कर रहे हैं। अत: मेरा नम्र निवेदन यह है कि जिस सिद्धान्त को इस सभा ने अनुच्छेद 67 (3) में स्वीकार कर लिया है वही सिद्धान्त पुष्ट है। अन्यथा यह होगा कि पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बगाल में ऐसे निर्वाचन-क्षेत्र बनाये जा सकते हैं जो सब सम्प्रदायों के लिये एक से न हों। इससे बहुत अधिक विद्वेष तथा गड़बड़ी होगी। अत: मेरा नम्र निवेदन यह है कि जहां तक पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल का सम्बन्ध है सर्वप्रथम तो इनमें जनगणना की जाये और उसके बाद जहां तक हो सके समान जनसंख्या के निर्वाचन-क्षेत्र बनाना सर्वोत्तम होगा। यदि श्री शिब्बनलाल सक्सेना के मूल संशोधन को यह सभा स्वीकार कर लेती है तो पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल के लिये यह कठिनाई होगी कि अन्तिम जनगणना सही नहीं है और सम्प्रदायों का सही-सही प्रतिशत हिसाब नहीं बताती है। अत: मैंने अपने संशोधन को उस पूर्ववर्त्ती संशोधन के समक्ष लाने के लिये पेश किया है जिसको मैं पहले ही पेश कर चुका हूं कि सर्वप्रथम जनगणना की जाय और तत्पश्चात् निर्वाचन क्षेत्रों का इस प्रकार प्रबन्ध किया जाये कि उनमें जनसंख्या लगभग बराबर बराबर हो।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब इस अनुच्छेद पर सामान्य वादानुवाद हो सकता है।

***श्री आर.के. सिधवा:** उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के खण्ड 3 में मूलत: एक परादिक था कि किसी राज्य की विधान सभा में सदस्यों की समस्त संख्या किसी दशा में भी तीन सौ से अधिक और साठ से कम नहीं होगी। गत वर्ष जब इस परादिक पर विचार किया गया था उस समय, सभा को यह स्मरण होगा कि मैंने इसका बड़ा कड़ा विरोध किया था परन्तु श्रीमान्, उस समय सभा

[श्री आर.के. सिधवा]

ने मेरा साथ नहीं दिया। मुझे बड़ी खुशी है कि विचार करने पर मसौदा-समिति ने स्वयं यह सोचा कि इस परादिक में सुधार करना और तीन सौ शब्दों को हटाकर उसे चार सौ पचास तक बढ़ा देना ठीक है। अब एक यह संशोधन प्रस्तुत किया गया है कि अधिकतम संख्या 500 होनी चाहिये। कम से कम मैं इस बात से प्रसन्न हूं कि यद्यपि इस अधिकतम संख्या के अन्तर्गत पचहत्तर हजार अथवा एक लाख जनसंख्या पर एक सदस्य के हिसाब से तो जनसंख्या के अनुसार पूर्ण विस्तार तथा पूर्ण अवसर नहीं दिया जायेगा परन्तु वह कमी, जो विधान-मण्डल में समान प्रतिनिधान के मार्ग में यथेष्ट रूप से उपस्थित हो जायेगी, दूर कर दी गई है।

इसी प्रकार से श्रीमान्, जब हम विधान-मण्डल की अवधि सम्बन्धी एक खण्ड पर वादानुवाद कर रहे थे जिसको इस सभा ने चार वर्ष के रूप में रखा था मैंने उस अवधि को पांच वर्ष तक के लिये बढ़ाने का संशोधन पेश किया था, परन्तु सभा ने उसे स्वीकार नहीं किया। परन्तु जब हमारा वैधानिक परामर्शदाता विदेशों में गया तो उसको यह मंत्रणा दी गई कि आयरलैंड तथा अन्य देशों में विधान-मण्डल की अवधि पांच वर्ष है और वह प्रस्ताव हमारे समक्ष आया और हमने उसे स्वीकार कर लिया। इससे यह विदित होता है कि हमारे संशोधनों पर गुण दोष के आधार पर नहीं वरन् व्यक्तित्व के आधार पर विचार किया जाता है। जो कुछ हो, परन्तु श्रीमान्, मैं अपने लिये यह श्रेय नहीं चाहता हूं, पर मैं खुश हूं कि पूर्ण विचार के पश्चात् यह संशोधन आज सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

श्रीमान्, यह कहा गया है कि जितनी अधिक सदस्यों की संख्या होगी उतनी ही अधिक कष्ट-प्रदायक सभा हो जायेगी। मैं इस बात को नहीं समझ सकता हूं। यदि तीन सौ संख्या बड़ी नहीं है तो मैं नहीं समझ पाता हूं कि पांच सौ की संख्या किस प्रकार कष्ट-प्रदायक समझी जा सकती है। बड़ी संख्या के प्रति हम क्यों संदेह करें? क्या विदेशों में छह सौ या सात सौ के विधान-मण्डल नहीं हैं? आप इंग्लैण्ड के संसद् के विधान का अनुकरण कर रहे हैं। क्या लोक सभा (हाउस आफ कामन्स) में 600 सदस्य नहीं हैं? मैं यह जानना चाहता हूं कि हानि क्या है, कहां है। यदि ये प्रान्त संयुक्तप्रान्त और मद्रास, जो सबसे बड़े हैं, इसको स्थान

नहीं दे रहे हैं और विधान-मण्डल में प्रतिनिधि भेजने का समान अधिकार नहीं देते हैं तो उनको इतने बड़े बने रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि वे जनसंख्या के अनुसार 600 सदस्य नहीं लेते हैं तो उनको विभाजन के लिये तैयार होना चाहिये। श्रीमान्, मेरा यह विचार है कि यदि 75,000 की जनसंख्या पर एक सदस्य होने को है तो संयुक्तप्रांत में स्थानों की संख्या 650 होती है तो 150 सदस्यों को वे इस अधिकार से क्यों वंचित करें। यदि आप अपने प्रान्त में सदस्यों की अधिक संख्या से भयभीत होते हैं तो आपको इस सीमा को 75,000 से 1,25,000 तक बढ़ाने के लिये तैयार होना चाहिये। यह एक अन्य विषय है। जब आप किसी प्रतिशत संख्या अथवा अनुपात को स्वीकार कर लेते हैं तो उसको समान रूप से लागू करना चाहिये और चूंकि आपका प्रान्त बड़ा है इसलिये आपको प्रतिनिधि भेजने के अधिकार से लोगों को वंचित नहीं करना चाहिये। प्रान्तों को प्रत्येक व्यक्ति को सुविधा देने के लिये तैयार होना चाहिये; कोई यह न कहने पाये कि उसके लिये कोई सुविधा नहीं है अत: वह उस संख्या की वृद्धि करने के लिये तैयार नहीं है। ऐसा ही मद्रास के साथ है। यदि वहां जनसंख्या पांच करोड़ है तो सदस्य 500 होने चाहियें। यह सब होते हुये भी मैं वास्तव में बहुत खुश हूं और मैं मसौदा-समिति को बधाई देता हूं कि चाहे इतनी देर के बाद ही समझा हो परन्तु उसने अधिकतम संख्या को बढ़ाने की बुद्धिमत्ता को समझ लिया है। श्रीमान्, जनगणना के बारे में मैं अपने मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन का पूर्णतया समर्थन करता हूं तथा मैं उससे भी आगे बढ़ कर अपने मित्र पंडित भार्गव के संशोधन का समर्थन करता हूं। यह बात सभा में कई बार कही जा चुकी है कि आप प्रयाण करने वालों की तथा उन लोगों की संख्या की जो एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को चले गये हैं उपेक्षा नहीं कर सकते हैं और ठीक-ठीक जनगणना किये बिना आप उस वर्ग की सच्ची सेवा नहीं कर सकते हैं जो दुर्भाग्यवश चले आये हैं। मैं जानता हूं कि विधान-परिषद् ने प्रान्तीय सरकारों को यह आदेश दिया हैं कि निवास सम्बन्धी योग्यताओं के न होने पर भी उनके नाम मतदाताओं की सूचियों में लिख लिये जायें, परन्तु, मैं यह भी जानता हूं कि कुछ प्रान्तों में जैसे कि बम्बई में उसका पूर्णतया पालन नहीं किया जा रहा है। वह केवल एक अधिशासी आदेश है और अधिकारी वर्ग उस पर कोई गंभीर विचार नहीं कर रहे हैं क्योंकि वे समझते हैं कि वह एक बड़ी खर्चीली रीति है और जब तक उनको

[श्री आर.के. सिधवा]

इस काम के लिये और गणना करने वालों इत्यादि के लिये पर्याप्त धन नहीं दिया जाता है तब तक पाकिस्तान से आये हुए समस्त शरणार्थियों का जनगणना में रखना सम्भव नहीं है। अत: मैं यह समझता हूं कि यद्यपि इस विषय पर कोई सरकारी घोषणा नहीं है अत: डॉक्टर अम्बेडकर इस विषय पर सरकारी घोषणा करें कि मि. नज़ीरुद्दीन के संशोधन के भी अनुसार, जो मैं समझता हूं कि स्वीकार कर लिया जायेगा, स्थिति क्या होगी? 'अन्तिम जनगणना' यह शब्द कहा गया है। इसका क्या अर्थ है? क्या इसका यह अर्थ होगा कि उन सब लोगों को जो पाकिस्तान से आये हुये हैं वास्तव में मतदाताओं की सूची में सम्मिलित कर लिया जायेगा? यदि यही अर्थ है तो भाषा बहुत स्पष्ट नहीं है और यदि हम विधान में यह रखना नहीं चाहते हैं कि प्रान्तीय सरकारें मतदाताओं की सूचियां बनाते समय इस बात पर ध्यान रखें तो किसी न किसी प्रकार की घोषणा करनी होगी।

श्रीमान्, मैं प्रसन्न हूं कि परादिक में सुधार किया गया है कि संख्या कुछ भी हो सदस्यों का निर्वाचन जनसंख्या के अनुसार होना चाहिये जिसको हम स्वीकार करने वाले हैं अर्थात् 75,000 पर एक प्रतिनिधि। इन शब्दों के साथ-साथ, श्रीमान्, मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

*__सरदार हुकम सिंह__ (पूर्वी पंजाब : सिख): उपाध्यक्ष महोदय, मैं अपने आपको श्री ठाकुरदास भार्गव द्वारा पेश किये गये संशोधन तक ही सीमित रखूंगा और मैं उसका पूर्णतया समर्थन करता हूं। यह बहुत ही आवश्यक है कि निर्वाचन करने के पूर्व जनगणना होनी चाहिये। श्री ठाकुरदास भार्गव ने केवल दो प्रान्तों के लिये ही कहा है और यह हम जानते ही हैं कि इन प्रान्तों से बहुत से लोग चले गये हैं। यदि हम पूर्ववर्त्ती अथवा अन्तिम जनगणना पर विश्वास करें तो इन प्रान्तों के साथ बहुत अन्याय होगा। इस अवसर पर मैं सरकार का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि इन प्रान्तों के लिये यह एक अनुचित तथा अन्यायपूर्वक कार्य होने के साथ-साथ, यदि इस अन्तिम जनगणना पर विश्वास किया जायेगा तो वह मेरे सम्प्रदाय अर्थात् सिख सम्प्रदाय के लिये विशेष रूप से हानिकर होगी। क्योंकि यह भली प्रकार से विदित ही है कि पश्चिमी पंजाब से आकर वे केवल पूर्वी पंजाब में ही नहीं बसे हैं। वे और भी आगे बढ़ चुके हैं और बड़ी-बड़ी संख्याओं में दिल्ली तथा संयुक्तप्रान्त तक गये हैं। यदि हम केवल पूर्ववर्त्ती जनगणना पर निर्भर रहें और अभी केवल नई मतदाताओं की सूचियां ही तैयार

करें तो जैसा कि हम नये विधान में प्रस्तावित कर रहे हैं और जैसी मसौदे में अब तक व्यवस्था की गई है स्थानों का आरक्षण किया जायेगा और हम यह भी नहीं जानते कि बाद में इसमें परिवर्तन होगा या नहीं पर इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि स्थानों का आरक्षण जनसंख्या के आधार पर होगा और तब तो यह एक बड़ा ही अन्याय होगा। केवल मतदाताओं की सूचियां तैयार करने से उनको पर्याप्त प्रतिनिधान नहीं मिलेगा, क्योंकि दिल्ली और संयुक्तप्रांत में यदि अन्तिम जनगणना पर विश्वास किया जाता है तो उनको कुछ भी प्रतिनिधान नहीं मिलेगा। सरकार से मेरा विनम्र निवेदन यह है कि सबसे पहले जनगणना की जाये और फिर निर्वाचन किये जायें। विशेष कर पंजाब और बंगाल में क्योंकि अन्य प्रकार से केवल अन्याय और अनौचित्य ही नहीं होगा वरन् मेरे सम्प्रदाय को निश्चय ही हानि होगी।

***डॉ. मनमोहन दास** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, हमारे मन में अनुच्छेद 149 में 'अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना' शब्दों के प्रति कुछ शंकायें उत्पन्न होती हैं। कुछ पूर्ववर्त्ती अनुच्छेदों पर वादानुवाद करते समय माननीय कानून मंत्री ने इस बात को स्पष्ट किया था। हमारे कुछ माननीय सदस्यों ने इस प्रभाव के संशोधन प्रस्तुत किये हैं कि कम से कम पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब के प्रान्तों में नई जनगणना निर्वाचन के पूर्व की जाये। मैं उन तर्कों में जो निर्वाचन से पूर्व नई जनगणना करने के पक्ष में प्रस्तुत किये गये है एक और तर्क बढ़ाना चाहता हूं। श्रीमान्, बंगाल में सन् 1941 की अन्तिम जनगणना के समय कुछ राजनैतिक दलों ने बड़ा उग्र प्रचार किया था। प्रचार का आधार यह था कि राष्ट्र के रूप में हिन्दू अपने नाम के आगे कोई जाति न लिखायें। अत: लगभग 44 लाख हिन्दुओं के सामने कोई जाति नहीं लिखी गई। जनगणना से यह विदित नहीं हो सकता है कि 44 लाख हिन्दुओं का कितना भाग अथवा कितना हिस्सा अनुसूचित जातियों का है और कितना भाग सवर्ण हिन्दुओं का है। अब पश्चिमी बंगाल की अनुसूचित जातियों और सवर्ण हिन्दुओं में वाद-विवाद पैदा हो गया है। सवर्ण हिन्दू यह दावा करते हैं कि सबके सब ये 44 लाख हिन्दू सवर्ण हिन्दू हैं और अनुसूचित जातियां यह दावा करती हैं कि इस 44 लाख का एक सारवत् भाग अनुसूचित जातियों का है।

***श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): मैं यह जान सकता हूं कि क्या किसी मनुष्य के लिये यह आवश्यक है कि जनगणना के समय वह अपनी जाति बताये?

***डॉ. मनमोहन दास:** मैं इस बात को नहीं कह रहा हूं कि किसी व्यक्ति के लिये अपनी जाति बताना आवश्यक है या नहीं।

***उपाध्यक्ष:** क्या आप मुझे कृपा करके कुछ बातें कहने देंगे। इसमें वेदना की एक भावना है और जैसा कि मैं कह चुका हूं कि इस स्थिति की पेचीदगियां चाहे जो कुछ हों परन्तु वेदना की भावना को निकल जाने देना चाहिये। बहुधा जब किसी वेदना को प्रकट कर दिया जाता है तो उसके प्रति लगभग आधा विद्वेष अथवा उसका आधा वेग कम हो जाता है। स्मरण कीजिये कि आपने पांच मिनट मांगे थे और आप पांच मिनट समाप्त कर ही चुके हैं।

***डॉ. मनमोहन दास:** यदि निर्वाचन के पूर्व नई जनगणना की जाती है तब तो हमारा कोई झगड़ा नहीं है परन्तु यदि कुछ कारणोंवश निर्वाचन के पूर्व जनगणना नहीं की जाती है और नये निर्वाचनों के लिये सन् 1941 की जनगणना के उल्लेखपत्रों से ही हमारा पथ-प्रदर्शन किया जाता है तब तो सरकार द्वारा यह प्रश्न हल किया जाना चाहिये। मेरा आशय यह है कि श्रीमान्, इन 44 लाख हिन्दुओं में से कितने सवर्ण हैं और कितने अनुसूचित जातियों के हैं। श्रीमान्, यह अवसर प्रदान करने के लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं आशा करता हूं कि माननीय सदस्य मुझे इस बात के लिये क्षमा करेंगे कि मैं इस वादानुवाद में आसाम और केवल आसाम के ही सम्बन्ध में भाषण दूंगा।

माननीय सदस्यों को यह स्मरण कर खुशी होगी कि अभी थोड़े समय पूर्व मैंने एक संशोधन पढ़ कर सुनाया था जिसमें मैंने आसाम के लिये अपवाद करने का निवेदन किया था। मैंने यह अपवाद इस कारण चाहा था कि निर्वाचन-क्षेत्र के लिये एक लाख जनसंख्या की शर्त थी। यदि वह शर्त रहती तो आसाम प्रान्त के लोगों के साथ एक बड़ा अपकार होगा। परन्तु भाग्यवश उस शर्त को उस संशोधन से दूर कर दिया गया जिसको इस सभा ने सहर्ष स्वीकार कर लिया है और जो श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने पेश किया था। स्थिति को और भी अधिक स्पष्ट करने के लिये मैं सभा का ध्यान इस विधान के मसौदे के भाग एक की सूची की सारणी की ओर, जो पृष्ठ 188 पर है आकर्षित करना चाहता हूं। उसमें स्वायत्तशासी मण्डलों को गिनाया गया है। उसमें शिलोंग पर नगर, गारो पहाड़ियों

का जिला, लुशाई पहाड़ियों का जिला, नागा पर्वत, उत्तरी कछार, और नौगांव और शिवसागर जिलों की मिकिर पहाड़ियों को छोड़ कर खासी और जैन्तिया पहाड़ियों का जिला है। खासी और जैन्तिया पहाड़ियों के जिले में और नौगांव और शिवसागर जिलों की मिकिर पहाड़ियों के भाग में भी ऐसी एक बड़ी जनसंख्या है जो वनजाति सम्प्रदाय की नहीं है और यदि अनुच्छेद 149 अपने मूलरूप में रहता तो इन क्षेत्रों के इन गैर वनजाति के लोगों को बहुत अधिक हानि होती। यदि माननीय सदस्य अनुच्छेद 294 के उपखण्ड (5) और (6) की ओर गौर करेंगे तो वे यह देखेंगे–

"(5) आसाम राज्य के किसी स्वायत्तशासी जिले के लिये आरक्षित स्थानों के निर्वाचन-क्षेत्रों में उस जिले से बाहर का कोई क्षेत्र सम्मिलित न होगा।"

अत: यदि स्थिति पूर्ववत् ही रहती तो शिलोंग नगर का कुछ भाग– अर्थात् छावनी तथा शिलोंग का प्रशासन खासी और जैन्तिया पहाड़ियों के जिले के निर्वाचन-क्षेत्र में कदापि नहीं आता।

अनुच्छेद 294 के खण्ड (6) में यह कहा गया है:

"(6) कोई व्यक्ति, जो आसाम राज्य के किसी स्वायत्तशासी जिले की अनुसूचित वनजाति का अंग नहीं है आसाम राज्य की विधान-सभा के लिये, (शिलोंग छावनी और नगर समिति वाले निर्वाचन-क्षेत्र को छोड़ कर) उस जिले के किसी भी निर्वाचन-क्षेत्र से निर्वाचन का पात्र न होगा।"

अर्थात्, यदि किसी भाग में गैर वनजाति लोगों की एक बड़ी जनसंख्या स्वायत्तशासी मण्डल के अन्तर्गत आ जाती है तो उसको नागरिक अधिकार से पूर्णतया वंचित किया जायेगा इस दशा में यदि निर्वाचन में खड़े होने का अधिकार नहीं दिया जाता है तो किसी अधिकार अथवा नागरिक अधिकार का देना ही व्यर्थ है।

जहां तक शिलोंग का सम्बन्ध है, पृष्ठ 188 पर भाग 1 की सारणी में, उसको खासी और जैन्तिया की पहाड़ियों से पृथक् कर दिया गया है। यदि शिलोंग की जनसंख्या 75,000 से कम है तो शिलोंग का कोई पृथक् निर्वाचन-क्षेत्र नहीं होगा। पर इस संशोधन द्वारा जिसको श्री बारदोलोई ने पेश किया है, शिलोंग के लिये

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

अपवाद कर दिया है। यदि वह खण्ड पूर्ववत् ही रहता तो उस दशा में गैर वनजाति के लोगों को खासी और जैन्तिया की पहाड़ियों में सम्मिलित नहीं किया जाता, और वे पूर्णतया नागरिक अधिकार से वंचित हो जाते। मिकिर पहाड़ियों के सम्बन्ध में भी यही कठिनाई अनुभव की जायेगी क्योंकि यदि उस क्षेत्र को जिसमें केवल मिकिर लोग रहते हैं, अलग कर दिया जाता है तो मिकिर की पहाड़ियों के गैर वनजाति लोग 75,000 नहीं हो पायेंगे।

शिलोंग को इस 75,000 के गुरु के प्रवर्तन से पृथक् कर एक कठिनाई दूर कर दी गई है। उस संशोधन को पेश करने से मेरा उद्देश्य यह था कि इन समस्त झंझटों को दूर करने के लिये आसाम को पूर्णतया एक अपवाद के रूप में रख दिया जाता। पहले भी आसाम को अनेकों विषय में जो उसके पक्ष तथा विरोध के होते थे, परन्तु अधिकतर विपक्ष में ही होते थे, अलग कर दिया जाता था। मैं समझता हूं कि एक बार आसाम को एक प्रान्त मानने में अपवाद किया गया था—ऐसी मंत्रिमण्डल ने सिफारिश की थी। उसी प्रकार से ऐसा अब भी सम्भव हो सकता है और यह अच्छा होगा कि आसाम को पूर्णतया पृथक् कर दिया जाये और मेरे संशोधन को स्वीकार कर लिया जाये। पर मुझसे अधिक बुद्धिमान व्यक्तियों ने यह सोचा कि अच्छा हो यदि मेरा संशोधन पेश न किया जाये और श्रीमान्, मैंने सोचा कि मुझे उनसे सहमत होना ही पड़ेगा।

***उपाध्यक्ष:** श्री चौधरी, आपने मुझे इस बात के लिये धन्यवाद नहीं दिया कि यद्यपि आपने संशोधन पेश नहीं किया, फिर भी मैंने आपके लिये अपवाद किया और आपको बोलने की आज्ञा दी।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** धन्यवाद, श्रीमान्, पर मैंने अपने संशोधन पर भाषण नहीं दिया।

***उपाध्यक्ष:** यह ठीक है। मैंने तो केवल सभा के समक्ष अपनी स्थिति स्पष्ट की है। मैंने अपने रीतिविरोधी रूप में माननीय सदस्य को बोलने दिया। रीति का इसलिये उल्लंघन किया गया कि श्री चौधरी को आसाम के क्षेत्रों के बारे में कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण बातें कहनी थीं जिनका श्री बारदोलोई ने उल्लेख नहीं किया था।

मत्स्य-राज्य-संघ के श्री राजबहादुर!

*श्री **राजबहादुर** (मत्स्य-राज्य-संघ): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि मुझे उन प्रावधानों का जो प्रान्तों में अवर आगार के लिये प्रतिनिधियों की अधिकतम संख्या विनिहित तथा सीमित करते हैं विरोध करना पड़ रहा है। उनमें 500 की अधिकतम संख्या सीमित की गई है और यह व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक एक लाख अथवा 75,000 पर एक सदस्य होगा। लेकिन इस प्रावधान से परस्पर प्रान्तों में लोगों को दिये जाने वाले प्रतिनिधान के अधिकार में असमानता तथा विभिन्नता हो जायेगी। हम आसानी से यह देख सकते हैं कि छोटे-छोटे प्रान्तों में लोगों को प्रतिनिधान के अच्छे अधिकार और इसके फलस्वरूप उत्तम मतदान का अधिकार प्राप्त होगा, अपेक्षाकृत उन प्रान्त के लोगों को जहां जनसंख्या अधिक है। उदाहरणार्थ, यदि हम बिहार और उड़ीसा को लें और इनकी तुलना मद्रास और संयुक्तप्रान्त से करें तो बिहार और उड़ीसा के लोगों को प्रत्येक 75,000 पर एक सदस्य मिलेगा और संयुक्तप्रान्त के लोगों को एक लाख पच्चीस हज़ार अथवा एक लाख पचास हज़ार पर भी कठिनाई से एक सदस्य मिलेगा। मैं निवेदन करता हूं कि यह अच्छा होता कि प्रतिनिधान का यह परिमाण समस्त प्रान्तों में एक-सा तथा समान होता। यह स्पष्ट रूप से वांछनीय है कि हमारे विधान में प्रतिनिधान का परिमाण परस्पर प्रान्तों में अथवा परस्पर राज्यों में भिन्न-भिन्न न हो। यह तर्क भी कि यदि कोई अधिकतम संख्या नियत नहीं की जाती है, तो आगार बहुत बड़े हो जायेंगे, मैं समझता हूं कि मेरे सुझाव का खण्डन नहीं कर पाता है। हम देखते हैं कि इंग्लैंड में हाउस ऑफ कामन्स में 640 सदस्य हैं और 300 वर्ष का अनुभव भी इस संख्या को संसार के सबसे प्राचीन जनतंत्रात्मक राज्य में कष्टकारक अथवा बहुत बड़ा सिद्ध नहीं कर पाया है। अत: इस प्रकार का विचार प्रस्तुत करना कि संयुक्तप्रान्त और मद्रास के लोगों को सदस्यों की पूर्ण संख्या देनी चाहिये, जिसकी गणना एक लाख अथवा 75,000 जनसंख्या पर एक सदस्य के आधार पर हो, अयुक्तियुक्त नहीं हो सकता है। श्रीमान्, मैं यह सब इसलिये निवेदन कर रहा हूं कि एक ऐसे राज्य का सदस्य होने के नाते, जिस पर इस प्रावधान का घातक प्रभाव पड़ेगा, मैं इस विषय से रुचि रखता हूं। जो राज्य संयुक्तप्रान्त में सम्मिलित हो चुके हैं या सम्मिलित होने

[श्री राजबहादुर]

वाले हैं, उन सबको इस विषय में रुचि है; क्योंकि यदि आप उदाहरण के लिये संयुक्तप्रान्त और मद्रास में 500 की अधिकतम संख्या में स्थानों को सीमित करते हैं तो उन राज्यों के व्यक्तियों को जो इन प्रान्तों में सम्मिलित होने का विचार रखते हैं स्पष्टतया हानि होगी। परंपरा, इतिहास, देहाती संगीत, संस्कृति और भाषा के आधार पर भरतपुर और धौलपुर के लोग संयुक्तप्रान्त के लोगों के साथ रहना चाहते हैं। यदि भरतपुर और धौलपुर के लोगों को आत्मनिर्णय का अधिकार दिया जाता है, जिसके लिये मुझे विश्वास है कि इस सभा का कोई भी सदस्य मना नहीं करेगा और यदि वे संयुक्तप्रान्त में मिलना चाहते हैं, तो यह न्याय नहीं होगा कि सब के सब 500 स्थान संयुक्तप्रान्त की वर्तमान जनसंख्या द्वारा भर लिये जायें और भरतपुर अथवा धौलपुर अथवा अन्य किसी राज्य के लोगों को जो संयुक्तप्रान्त में मिलना चाहते हैं, विधान-मण्डल में प्रतिनिधान के अधिकार से वंचित किया जाये।

दूसरा प्रश्न उन राज्यों के सम्बन्ध का है जो प्रथम निर्वाचन के पश्चात् सम्मिलित होंगे। हम जानते हैं कि हमारे प्रान्तों की सीमायें अभी निश्चित नहीं हैं। प्रतिदिन के अनुभव से हमें यह प्रतीत होता है कि कुछ प्रान्तीय सीमाओं में परिवर्तन करना होगा और उसके फलस्वरूप कुछ क्षेत्रों की जनसंख्या पर प्रभाव पड़ेगा। अत: मैं निवेदन करता हूं कि यदि कोई अधिकतम संख्या नियत न की जाय तो अच्छा है। जब कि अनुच्छेद 291 और 312 के अन्तर्गत निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमायें निश्चित करना और अन्य समनुवर्त्ती विषयों का निर्णय करना प्रान्तीय सरकारों की स्वेच्छा पर छोड़ दिया गया है, तो उचित यही होगा कि विधान-मण्डलों में सदस्यों की अधिकतम संख्या को नियत करना भी सम्बद्ध प्रान्तों अथवा राज्यों की स्वेच्छा पर छोड़ दिया जाये।

इसके पश्चात् मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि अनुच्छेद 149 के खण्ड (2) में दी हुई मतदाताओं की निर्योग्यताओं को व्यापक बना दिया गया है। हम देखते हैं कि इन आधारों को कुछ प्रतिबन्धों तक ही सीमित किया गया है और मैं समझता हूं कि, इस सम्बन्ध में, उपयुक्त खण्ड में उल्लिखित आधारों तक ही

प्रान्तों में विधान-मण्डलों की शक्तियों और अधिकारों को भी आमंत्रित किया गया है। परन्तु यह हो सकता है कि राज्य के प्रति विश्वासघात, राजद्रोह, अनुन्मुक्त दिवाला अथवा निरक्षरता को इन आधारों में सम्मिलित किया जा सके। अतः यह अच्छा होता यदि इन आधारों की सूची को व्यापक न बनाया जाता वरन् केवल निदर्शी बनाया जाता।

अन्त में मुझे यह निवेदन करना है कि जहां तक प्रो. के.टी. शाह द्वारा पेश किये संशोधन का सम्बन्ध है, मैं उसकी स्वीकृति का कोई आधार नहीं देख पाता हूं। किसी मतदाता को निर्योग्य करने के लिये शारीरिक कमी अथवा मानसिक विक्षप्ति के कोई प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं है। जब निर्योग्यता के आधार विधान में अथवा प्रान्तीय अधिनियमों में दिये हुये हैं तब इस प्रकार के प्रावधान की कोई आवश्यकता नहीं है। अपनी पहली दो बातों को दुहराते हुये मैं फिर यह निवेदन करता हूं कि प्रान्तों और राज्यों की बदलती हुई सीमाओं को विचार में रखते हुये मेरी बातों पर अब भी विचार किया जा सकता है।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 149 के वादानुवाद के मध्य में मेरी समझ से अचानक ही एक बड़े महत्त्व का विषय उपस्थित कर दिया गया है और सौभाग्य से अनेक माननीय सदस्यों ने उस विषय के महत्त्व को स्वीकार किया है और उस पर अपने विचार प्रकट किये हैं।

श्रीमान्, विशेषतया दो ऐसी बातें हैं जिन पर केवल सदस्यों को ही नहीं वरन् उनको भी जो अधिकारी हैं गंभीर विचार करने की आवश्यकता है। वर्तमान दशा में 'अधिकारी' से मेरा आशय अपने माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर, इस विधेयक के प्रभारधारी माननीय मंत्री, विधेयक से मेरा आशय विधान के मसौदे से है।

***श्री एच.वी. कामतः** यह विधेयक नहीं है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** मैं यह जानता हूं। परन्तु डॉ. अम्बेडकर ही ऐसे सदस्य हैं जो इस कार्य का सभा में संचालन कर रहे हैं अतः समस्त यश तथा अपयश उनके लिये ही है। और मैं उनको सचेत करता हूं कि यदि कुछ ऐसे विषय हैं,

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

जिनके कारण उनकी उज्जवल कीर्ति को धब्बा लग सकता है, तो वे थोड़ी देर के लिये वार्तालाप बन्द करके मेरी बात सुनें।

श्रीमान्, वे दो बातें केवल जिन पर मैं अपने विचार प्रकट करूंगा ये हैं— पहली जनसंख्या के कुछ आंकड़ों पर आश्रित प्रान्तीय विधान-मण्डलों में प्रतिनिधान और दूसरी समानता का सिद्धान्त। प्रतिनिधान की संख्या के साथ-साथ इस विषय में और भी अधिक महत्त्वपूर्ण तथा उससे संगत अन्य आवश्यक सिद्धान्त निहित है, वह यह कि जनसंख्या पर आश्रित प्रतिनिधान के परिमाण के सम्बन्ध में पूर्ण समानता होनी चाहिये।

इस सम्बन्ध में दो संशोधन पेश किये गये हैं, एक पंडित ठाकुरदास भार्गव द्वारा जिसमें प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना द्वारा पेश किये संशोधन में और भी अधिक संशोधन करने का प्रयास किया गया है। जब इन दोनों संशोधनों को मिलाकर पढ़ा जायेगा तो यह अनुभव किया जायेगा कि इन संशोधनों द्वारा जिन बातों का प्रयास किया गया है वे कोई अनोखी बातें नहीं हैं, वरन् कोरा न्यूनातिन्यून न्याय है। सर्वसम्बन्धी राजनैतिक न्याय है। जनतन्त्रात्मक राज्य में प्रतिनिधान के तंत्र को किसी अनिश्चित अथवा फिसलने वाली आधारशिला पर स्थापित नहीं किया जा सकता है। कोई एक अथवा अनेक निश्चित सिद्धान्त होनें चाहिये जिन पर प्रतिनिधान की समस्त योजना स्थापित की जाये। उसको इस प्रकार स्थापित करना चाहिये कि गणतन्त्र के सामान्य विचार में कमी न हो। मैं समझता हूं कि इस प्रस्तावना पर कोई चुनौती नहीं दी जा सकती है।

अब आइये हम यह देखें कि यदि अनुच्छेद 149 को यह सभा इसी रूप में स्वीकार कर लेती है, जिस रूप में कि वह है तो उसका भारतीय अधिराज्य के कुछ भागों तथा अधिराज्य के अन्तर्गत कुछ राज्यों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा। कहने के लिये तो यह ठीक है कि प्रतिनिधान उस जनसंख्या के आधार पर किया जायेगा जो अन्तिम पूर्ववर्ती जनगणना में निश्चित की गई है। सैद्धान्तिक रूप से तो यह पूर्णतया निरअपवादनीय है बशर्ते कि सरकार निर्वाचनों के लिये उस समय तक प्रतीक्षा करे जब तक कि देश में सामान्य जनगणना न हो जाये। दसवर्षीय

जनगणना एक वर्ष पश्चात् सन् 1950 में होगी। यदि उसको करना है और वह भी यदि गंभीरतापूर्वक ही करना है तथा इस प्रकार से करना है कि सन् 1950 के समाप्त होने के पूर्व वह पूरी हो जाये, तो उसकी तैयारी अभी से अथवा 6 माह बाद से प्रारम्भ कर देनी चाहिये। किसी पूर्व अवसर पर किसी पूर्व अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैंने बड़े विस्तारपूर्वक उन संकटों और कठिनाइयों की व्याख्या की थी जो पूर्ववर्ती जनगणना के आंकड़ों को जिसका अर्थ समस्त व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये सन् 1941 की जनगणना के आंकड़े ही होगा—मान लेने से कुछ प्रान्तों को अर्थात् पश्चिमी बंगाल, भारत के पूर्वी पंजाब, मम्बई और दिल्ली को भुगतनी पड़ेगी। इसमें संदेह नहीं कि वर्तमान संशोधन केवल दो प्रान्त पश्चिमी बंगाल तथा पूर्वी पंजाब के सम्बन्ध में है। सभा को यह याद होगा कि पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब सहित इन चार प्रान्तों के सम्बन्ध में मैंने जोरदार शब्दों में यह घोषणा की थी और मुझे खुशी है कि उस घोषणा के बाद भाषण देने वाले अनेक सदस्यों ने मेरा समर्थन किया था। वह घोषणा यह थी कि नई योजना के अन्तर्गत प्रतिनिधान के सम्बन्ध में सन् 1941 की जनगणना के अंकों पर निर्भर होना व्यर्थ सा होगा। इस देश में ऐसा कौन है, कम से कम इस सभा में ऐसा कौन है जो यह नहीं जानता कि कुछ प्रान्तों के जनगणना के अंकों में राजनैतिक सुधारों की अनुवर्ती स्थिति में राजनैतिक लाभ उठाने के उद्देश्य से गड़बड़ी की गई थी? यह सबको विदित ही है, फिर क्या यह आवश्यक है कि चाहे अवसर हो अथवा न हो, पर मैं सभा में तत्सम्बन्धी प्राधिकारियों के लिये इस बात को दुहराता रहूं? इस स्थिति को स्पष्ट रूप में समझ लेना चाहिये। अब हमें शुद्ध अन्तःकरण से कार्य आरम्भ करना हैं। (इस समय सभा आगार में बत्तियां बुझ गईं।) सर्वत्र अन्धकार ही अंधकार है। यदि यही राजनैतिक अन्याय उनके साथ किया गया तो मुझे पश्चिमी बंगाल तथा पूर्वी पंजाब के लिये अंधकार के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता है।

***उपाध्यक्षः** जहां तक सम्भव होगा बत्ती जलाने के सम्बन्ध में आवश्यक कार्य किया जायेगा। पंडित मैत्र, आप अपना भाषण जारी रखें।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र:** कठिनाई यह है कि जिनको मैं सम्बोधन कर रहा हूं वे मुझे दिखाई नहीं देते हैं।

***माननीय सदस्यगण:** आपको हमारे चेहरे देखने की आवश्यकता नहीं है।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र:** कभी चेहरे देखने से प्रोत्साहन मिलता है। श्रीमान्, सभा को यह विदित है कि केन्द्रीय विधान-मंडल और भारतीय संसद् के सम्बन्ध में अनुच्छेद 67 में प्रतिनिधान के इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है। अब जो संशोधन पेश किये गये हैं, उनमें प्रान्तीय विधान-मण्डल के इस प्रतिनिधान को उस प्रतिनिधान के समान बनाने का विचार रखा गया है, जो संसद् के लिये इस सभा ने व्यवस्था कर स्वीकार किया है। श्रीमान्, जिन तर्कों को मैंने गत अवसर पर प्रस्तुत किया था उनको अब दुहराने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु कुछ को तो यहां दुहराना ही पड़ेगा।

मेरे अभागे प्रान्त पश्चिमी बंगाल तथा पूर्वी पंजाब के सम्बन्ध में भी मैं चाहता हूं कि सभा यह अनुभव करे कि इतनी अधिक संख्या में लोगों के स्थानान्तर गमन को, जो इन दो प्रान्तों में हुआ है, सरकारी रूप में अभिज्ञात कर देना चाहिये। उनको सहायता देने तथा पूर्वस्थिति में लाने के कार्य को कुछ सीमा तक अभिज्ञात कर लिया गया है, परन्तु राजनैतिक समायोजन के लिये, राजनैतिक अधिकार तथा मताधिकार प्रदान करने के लिये समान रूप से अभिस्वीकरण आवश्यक हैं। मैं इसे पूर्वस्थिति में लाने के प्रश्न से अधिक आवश्यक समझता हूं। आप लोगों को पूर्वस्थिति में तब तक नहीं ला सकते हैं, जब तक कि उसके साथ-साथ आप उन को राजनैतिक अधिकार तथा देश के भावी शासन में विशेषाधिकार न दें। अत: श्रीमान्, मैं समझता हूं कि इस सभा के दबाव द्वारा अधिकारियों को इस प्रश्न का निर्णय करना चाहिये। इस विषय में अब अधिक टालमटोल नहीं होनी चाहिये। समस्या बड़ी सरल है, वह यह है कि पश्चिमी बंगाल प्रान्त के लिये सन् 1941 की जनगणना को हमने स्वीकार नहीं किया है। यह पूर्वी पंजाब के लिये भी सच है। पश्चिमी पंजाब में कोई भी हिन्दू नहीं रहा और इसी प्रकार पूर्वी पंजाब में कोई मुसलमान नहीं रहा। अत: पूर्वी पंजाब के लिये सन् 1941 की जनगणना के अंक किसी रूप में भी वास्तविक स्थिति के परिचायक नहीं हो सकते हैं। पश्चिमी बंगाल के सम्बन्ध में मैं यह बता चुका हूं और एक बार और बताये देता हूं कि

स्थानान्तरगमन सन् 1947 से ही आरम्भ नहीं हुआ है, परन्तु 1941 के अन्त से ही आरम्भ हो गया था जब कि जापान ने ग्रेट ब्रिटेन से युद्ध छेड़ दिया था। पूर्वी बंगाल के बड़े-बड़े क्षेत्रों को, जो अब पूर्वी पाकिस्तान में हैं, अनेक सैनिक तैयारियों के लिये जैसे कि हवाई अड्डों का निर्माण तथा अन्य सैनिक व्यवस्थाओं के लिये सैनिक अधिकारियों के आदेशों से खाली कराया गया था। इन क्षेत्रों को बिल्कुल खाली कराया गया और वहां के लोगों को अपने जीवनयापन के साधन खोजने के लिये पश्चिमी बंगाल में विशेषकर कलकत्ता और कलकत्ता के निकटवर्ती स्थानों में औद्योगिक क्षेत्रों में जहां कई उत्पादन केन्द्र खोल दिये गये थे खदेड़ा गया था। चटगांव, टिपेरा, चांदपुर इत्यादि क्षेत्रों से हजारों व्यक्ति सपरिवार पश्चिमी बंगाल में जापानी बमों से अपनी रक्षा करने के लिये आये, जो उन क्षेत्रों में गिराये गये थे और जिनका अनुभव करना कोई हंसी-खेल न था। इसके बाद सन् 1943 का भयंकर अकाल पड़ा। केवल मेरे प्रान्त पर ही लगातार एक-एक करके अनेक कष्ट आये, परन्तु फिर भी मेरा प्रान्त जीवित रहा। आप उसको जीवित रखना चाहते हैं या उसे कोई घातक धक्का देकर सदैव के लिये मिटाना चाहते हैं? क्या आप पश्चिमी बंगाल को न्यूनातिन्यून राजनैतिक न्याय देना चाहते हैं या नहीं? मैं यह साधारण प्रश्न आपके सम्मुख रखता हूं और इनका ठीक उत्तर चाहता हूं। श्रीमान्, सन्, 1943 के अकाल ने रोटी की तलाश में लाखों आदमी पूर्वी बंगाल से पश्चिमी बंगाल में कर दिये। आज भी पश्चिमी बंगाल में चावल की कीमत 16 या 17 रुपये मन है जब कि पूर्वी बंगाल में जो कि बंगाल का धानागार समझा जाता है उसकी कीमत लगभग 50 रुपये मन है। उन दिनों पूर्वी बंगाल के जनशून्य स्थानों की अपेक्षा पश्चिमी बंगाल में रोटी कमाने के अच्छे अवसर थे। हम यह नहीं जानते हैं कि इस समय जनसंख्या की स्थिति क्या है। अकाल-कमीशन ने मृतकों की संख्या 30 लाख बताई है। प्रत्येक सम्प्रदाय इस बात का दावा करता है कि उसके सम्प्रदाय की सबसे अधिक क्षति हुई है।

***एक माननीय सदस्यः** अनुसूचित जातियों को सबसे अधिक क्षति हुई है।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्रः** मैंने इस बात को विश्वस्त सूत्रों से सुना है कि अनुसूचित जातियों को सबसे अधिक क्षति हुई है। यह सच है। स्त्रियों और बच्चों

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

की सबसे अधिक क्षति हुई है। मेरे विचारों का पूर्ण आशय यह है कि इस प्रान्त में पूर्ववर्ती जनगणना के पश्चात् परिस्थितियों में वर्ष प्रति वर्ष इतना परिवर्तन हुआ है कि यदि इन जनगणना के आंकड़ों में दिये गये अनुपातों में यदि कोई यथार्थता थी भी, तो वह सबकी सब जाती रही। इसके पश्चात् देश का विभाजन हुआ और बंगाल का पूर्वी और पश्चिमी बंगाल में विभाजन हुआ। सभा को यह विदित है कि बंगाल का अविभाजित प्रान्त तीन भागों में बांट दिया गय—पश्चिमी बंगाल, पूर्वी बंगाल और उत्तरी बंगाल। जलपैगुरी और दार्जिलिंग के जिले पश्चिमी बंगाल को दे दिये गये। उसके बीच में पाकिस्तानी राज्य-क्षेत्र का कुछ अंग आ गया है और इस पाकिस्तानी क्षेत्र से उत्तरी क्षेत्र में तथा समस्त दक्षिणी भाग में लोग बराबर आ रहे हैं।

***उपाध्यक्षः** मुझे इस बात का भय है कि हम दोनों एक प्रान्त के हैं और मैं आपके विचारों से सहमत हूं, इस कारण सदस्य यह न कहें कि मैंने पक्षपात किया। यह बड़ी कठिन परीक्षा है जिससे मैं बचना चाहूंगा।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्रः** अध्यक्ष के लिये मैं कोई कष्ट पैदा करना नहीं चाहता हूं। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, संसदीय कार्यवाहियों में मैं कोई नौसिखिया नहीं हूं और मैं सभा से सभा से क्षमा चाहता हूं। यदि सभा यही चाहती है, तो मैं अपना भाषण समाप्त कर दूंगा।

***माननीय सदस्यगणः** भाषण जारी रखिये, भाषण जारी रखिये।

***उपाध्यक्षः** अब ठीक है। आप भाषण जारी रख सकते है।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्रः** लोग अब भी आ रहे हैं और यदि अधिकारी-वर्ग पूर्वी बंगाल से आये हुये अभागे दुखियों के प्रति किसी उत्तरदायित्व से बचना चाहते हैं, तो उनको पूर्ण अधिकार है कि वे इन आंकड़ों पर झगड़ा करें, परन्तु यह बात सत्य है कि लोग अब भी आ रहे है। क्या मेरे माननीय मित्र डॉक्टर अम्बेडकर, जो इस समस्त दृश्य के नायक हैं, इस बात से परिचित हैं कि भारतीय संघ में लाखों अनुसूचित जातियों के लोग आ रहे हैं? मुझे विश्वास है कि वे इस बात से परिचित हैं। निष्पक्ष विचार करने के लिये मैं उनका सहारा लेता हूं, क्योंकि यहां वे ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनका हम बहुत शीघ्र सहारा ले

सकते हैं और कदाचित् वही सहारा सार्थक भी हो। वही इसकी गम्भीरता को समझ सकते हैं और वही उन लोगों से जो उनसे मतभेद रखेंगे, यह कह सकते हैं कि यह एक ऐसा विषय है जिसको गम्भीरतापूर्वक हल करना चाहिये। कुछ लोग कहते हैं कि आने वालों की संख्या 15 लाख है। हमारे पास भी उनकी संख्या है, परन्तु पश्चिमी बंगाल की सरकारी संख्या 20 लाख है।

***उपाध्यक्षः** अभी वह 20 ही लाख है?

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** मैं अधिकारी वर्ग की जहां तक हो सके वहां तक कम संख्या देने की स्थिति को समझ सकता हूं, पर सत्य बात यह है कि पाकिस्तान में हमारे मित्रों के अति विनम्र व्यवहार के कारण कम से कम 20 लाख लोगों को तो भारतीय संघ में खदेड़ दिया गया है और मुझे पूरा विश्वास है कि और लोग आते रहेंगे। पर सारी बात यह है कि क्या इन लोगों को ऐसी आपत्तिजनक स्थिति में ही छोड़ देना है? उन्होंने अपने घरबार छोड़ दिये हैं। वे अपना सर्वस्व त्याग चुके हैं। मैं पश्चिमी बंगाल के सम्बन्ध में कह रहा हूं, क्योंकि पंजाब की दशा तो भली प्रकार विदित है। वे सब बेघर हो चुके हैं और यहां आये हुए हैं परन्तु जो कुछ वहां हो रहा है उसको कम सोचा-समझा जा रहा है क्योंकि उससे सम्बन्धित घटनाओं का इतना नाटक नहीं किया जा रहा है। जब कि इन लोगों ने इस संघ में अपने भाग्य को हमारे ऊपर छोड़ दिया है और जब वे यहां बस गये हैं और जब वे चाहते हैं कि वे भारतीय संघ के अंग बनें, तो क्या इन लोगों को कोई राजनैतिक न्याय तथा कोई प्रतिनिधान नहीं मिलेगा? उन्होंने अपने तरीके से स्वतन्त्रता के संघर्ष में भाग लिया, उन्होंने त्याग भी किये, जिनकी किसी प्रकार से भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। कहने के लिये तो आप यह कह सकते हैं कि यदि पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल की जनगणना की जायेगी, तो निर्वाचन में एक वर्ष की और देर होगी। पर उससे हानि क्या होगी? क्या आप लाखों लोगों को देश के विधान-मण्डलों में प्रतिनिधि भेजने के विधिवत् अधिकार से वंचित रखना चाहते हैं? क्या आप न्याय को त्याग कर शीघ्रता करना चाहते हैं? इन साधारण प्रश्नों का आपको उत्तर देना है। क्या इन लोगों को त्याग कर हम जल्दी निर्वाचन करने के लिए उत्सुक हैं? इसका आपको उत्तर देना है। मुझसे यह कहा गया है कि कोई अनुभव सिद्ध रीति खोज ली गई है, जिसके द्वारा मतदाताओं की सूचियां तैयार होती चली जायेंगी और उसके पश्चात् उसमें दो का गुणा कर दिया

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

जायेगा और जनसंख्या विदित हो जायेगी। इस काम को सीधे-सीधे क्यों नहीं करते और सामान्य जनगणना क्यों नहीं करते? विधान को अन्तिम रूप देना है और किसी दशा में भी अगस्त से पूर्व यह नहीं हो सकता है—अभी तीसरा पारायण है और भी काम हैं। इसके पश्चात् उसके प्रवर्तन करने की तिथि है और फिर निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमायें स्थिर करने की तिथि है। यदि आप अभी से आरम्भ करें तो आप इस प्रान्त की जनगणना कर सकते हैं। यदि आप यह नहीं कर सकते हैं तो उस दशा में आपको इन अभागे पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब प्रान्त के लिए कुछ प्रबन्ध करना चाहिए। आपकी जनगणना के आंकड़े इनके लिए उपयुक्त नहीं हो सकते हैं क्योंकि आप चाहते हैं कि निर्वाचन अभी किये जायें।

श्रीमान्, एक माननीय मित्र के प्रेक्षण ने, जो उन माननीय सदस्य से अधिक सम्पर्क रखते हैं जिन पर इस विधेयक का प्रभार है, हमारे मस्तिष्क में एक प्रकार का आश्चर्य उत्पन्न कर दिया है। उनका ऐसा विचार प्रतीत होता है कि देश के विभिन्न भागों के अनुसार प्रतिनिधान के माप में परिवर्तन किया जा सकता है, क्योंकि कुछ भाग आने-जाने के साधनों से परिपूर्ण हैं और कुछ भाग परिपूर्ण नहीं हैं। इसका आशय यह है कि उनके विचार के अनुसार—जो मेरा विश्वास है कि सरकारी रूप में समझा जायेगा और मुझे यह भी पता नहीं है कि कहीं यह सरकारी विचार पर कटाक्ष तो नहीं है—वहीं 50,000 लोगों को एक सदस्य का प्रतिनिधान मिल जायेगा तो कहीं 1,20,000 लोगों को एक सदस्य भेजने का अधिकार होगा। यह अन्याय की पराकाष्ठा होगी। प्रजातन्त्र में एक व्यक्ति तथा एक मत का अनुपात समान होना चाहिये। इस समानता में अन्तर आ जाता है, यदि कहीं पर 50,000 व्यक्तियों से एक सदस्य चुनने के लिए कहा जाये और कहीं पर 1,20,000 व्यक्तियों से एक सदस्य चुनने के लिए कहा जाये। इसमें बहुत अन्तर है। अत: इससे समस्त पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल में बहुत असंतोष फैल जायेगा। यह असंतोष कटुता की सीमा तक पहुंच सकता है और मैं इस विधेयक के माननीय प्रवर्तक डॉ. अम्बेडकर से निवेदन करता हूं कि वे इस बात का प्रयत्न करें कि इस असंतोष को किस प्रकार मिटाया जा सकता है। जिससे कि हम इस कार्य को पूर्ण बन्धुत्व, सहयोग और सद्भावना से कर सकें। उन व्यक्तियों के हृदयों में अन्याय की किंचित मात्र भावना न रहने दीजिये, जो न्याय के इस अल्पांश के लिए कोलाहल करते हैं। इन दो संशोधनों में यह व्यवस्था की

गई है कि इस प्रतिनिधान को केवल जनसंख्या के आंकड़ों पर ही निर्भर न किया जाये, वरन् ये आंकड़े उस जनगणना के अन्तिम आंकड़े हों जिसको किया जायेगा, चाहे वह एतदर्थ जनगणना ही हो। किसी दशा में भी सन् 1941 की जनगणना के आंकड़े इन क्षेत्रों की वास्तविक जनसंख्या के प्रतीक नहीं होंगे। जनसंख्या में बहुत परिवर्तन हो चुका है। यह एक बात हुई।

दूसरी बात यह है कि एक स्थान से दूसरे स्थान के निर्वाचन-क्षेत्रों में ऐसा कोई अन्तर नहीं रखना चाहिये कि उनकी जनसंख्या में परस्पर कोई अन्तर हो। यदि आप 75,000 के लिए अथवा एक लाख के लिए एक स्थान नियत करते हैं, तो सब प्रकार से यह देखने का प्रयत्न करना चाहिये कि समस्त भारत के प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में एक लाख व्यक्तियों अथवा 75,000 व्यक्तियों के लिए एक सदस्य हो। परन्तु इस प्रकार से तो न्याय का खून किया जायेगा कि एक लाख पर भी एक सदस्य हो और 50,000 पर भी एक। इस प्रकार से तो चुनावों में धोखा देने का बड़ा विस्तृत क्षेत्र हो जायेगा। मैं समझता हूं कि मुझे अन्तिम चेतावनी दे देनी चाहिये कि इस बात को रोका जाये। अधिकारियों को निश्चय करके यह घोषणा कर देनी चाहिये कि जहां तक इन दो प्रान्तों का सम्बन्ध है, सन् 1941 की जनगणना के आंकड़े काम में नहीं लाये जायेंगे और इस विशेष अनुच्छेद के प्रवर्तन करने के पूर्व या तो नई जनगणना की जायेगी और या किसी नये तन्त्र का इन दोनों प्रान्तों—पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब—की जनसंख्या के वास्तविक आंकड़ों को निश्चित करने के लिए प्रयोग में लाया जायेगा।

श्रीमान्, पं. ठाकुरदास भार्गव द्वारा संशोधित रूप में प्रो. सक्सेना के संशोधन का मैं पूर्ण हृदय से समर्थन करता हूं। श्रीमान्, आपको तथा सभा को मैं धन्यवाद देता हूं।

*तत्पश्चात् शुक्रवार, 7 जनवरी, सन् 1949 के प्रातः 10 बजे तक परिषद् विसर्जित हुई।*

---

Con. 3. VII. 35. 49
250

अंक 7
संख्या 35

शुक्रवार,
7 जनवरी
सन् 1949 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी)..... 2357-2386
[अनुच्छेद 149, 63, 64 तथा 65 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

शुक्रवार, 7 जनवरी, सन् 1949 ई.

---

*भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातःकाल 10 बजे उपाध्यक्ष (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) के सभापतित्व में आरम्भ हुई।*

---

## अनुच्छेद 149—(जारी)

### विधान का मसौदा—(जारी)

***उपाध्यक्ष** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): अब हम अनुच्छेद 149 पर और आगे वाद-विवाद करेंगे।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 149 पर व्यापक वाद-विवाद हो रहा है। उप-खण्ड (3) बहुत महत्त्वपूर्ण है। श्री कृष्णमाचारी ने प्रतिनिधित्व माप को घटा कर 75,000 पर एक प्रतिनिधि कर देने के उद्देश्य से दो संशोधन पेश किये हैं। खण्ड में यह माप रखा गया है कि प्रत्येक लाख की आबादी पर एक प्रतिनिधि हो, और आगे चल कर परादिक में सदस्यों की संख्या की सीमा अधिकतम 300 रख दी गई है। यदि श्री कृष्णमाचारी के संशोधन को स्वीकार कर लिया गया तो उसका यह प्रभाव होगा कि 75,000 की आबादी पर एक से अधिक प्रतिनिधि नहीं लिया जायेगा, और सभा के सदस्यों की अधिकतम संख्या 500 होगी। निश्चयात्मक रीति से यह नहीं कहा जा सकता कि किसी विधान-मण्डल की सदस्य संख्या में वृद्धि करने से उसकी कार्यकुशलता बढ़ जाती है या नहीं। किन्तु संयुक्तप्रांत और मद्रास जैसे कुछ बड़े प्रान्तों ने इच्छा प्रकट की है कि संख्या में ऐसी वृद्धि की जाये और सम्भवतः यह ठीक होगा कि हम उनकी बात को मान लें पर साथ ही मैं इस बात पर ज़ोर दूंगा कि हमारे लिये यह आवश्यक न होना चाहिये कि हम उतने सब स्थान भर ही दें जितने कि अधिकतम संख्या में निर्दिष्ट हों।

---

*इस संकेत का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

श्रीमान्, अमरीका में, यद्यपि प्रतिनिधि-मान इस प्रकार निश्चित किया गया है कि 30,000 के पीछे एक प्रतिनिधि हो, किन्तु मुझे पता लगा है कि वास्तव में यह इससे दस गुनी संख्या के पीछे एक प्रतिनिधि होता है। यदि 30,000 के पीछे एक प्रतिनिधि निर्वाचित होता, तो सीनेट में लगभग 4,000 सदस्य हो जाते, किन्तु वास्तव में वहां प्रतिनिधि इससे बहुत कम हैं, और इसलिये यह बात याद रखनी चाहिये कि यद्यपि अधिकतम संख्या क्या हो, यह निर्धारित कर दिया गया है। वास्तव में सदस्य संख्या क्या हो, यह निश्चित करना प्रान्तीय विधान-मण्डलों का ही काम है। कुछ माननीय सदस्यों ने यह बात कही है कि यदि बाद में कोई राज्य भारतीय संघ में प्रवेश करे या विलीन हो तो उसके लिये कुछ और प्रतिनिधि बढ़ाये जा सकें ऐसा कोई प्रावधान होना चाहिये। किन्तु इस सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि यह कोई बुद्धिमानी की बात नहीं कि अधिकतम संख्या के अनुसार सब स्थानों को भर कर और स्थानों की मांग की जाये। इससे अधिक बुद्धिमानी का तरीका तो यह है कि आरम्भ में इस संख्या को कम कर दिया जाये—मान लीजिये 450 कर दिया जाये—और बाद में सभा के निर्माण के पश्चात् यदि कुछ राज्य विलीन हों, तो उनके लिये अतिरिक्त स्थानों का प्रावधान कर दिया जाये। इस खण्ड में और नये परादिक जोड़ने के स्थान पर यह तरीका अधिक अच्छा होगा।

कल श्री कृष्णमाचारी ने कहा था कि संख्या को कम करके 75,000 करने के विचार के पीछे यह प्रयोजन है कि पिछड़े हुए क्षेत्रों के लिये व्यवस्था की जाये, अर्थात् जिससे पिछड़े हुए क्षेत्रों में अनुपात कुछ कम हो जाये; अर्थात् उन क्षेत्रों में प्रत्येक 75,000 लोगों के लिये एक प्रतिनिधि होगा, जब कि अन्य क्षेत्रों में इससे अधिक संख्या के लिये एक प्रतिनिधि होगा। यद्यपि इस विचार से मेरी पूरी सहानुभूति है पर मेरा ख्याल है, श्रीमान्, कि हमें ऐसी कोई गुंजाइश नहीं छोड़नी चाहिये जिससे कि बाद में निर्वाचन-क्षेत्रों के पुनर्निर्माण आदि के नाम से गड़बड़ की जा सके। हमने अनुच्छेद 67 में ऐसा ही प्रावधान रखा है जिसमें हमने कहा है कि भारत भर में प्रतिनिधान का मान एक-सा हो। श्रीमान्, मेरी यह प्रबल इच्छा है कि एक प्रान्त के भीतर ही जहां तक व्यवहार्य हो, प्रतिनिधित्व के माप में एकरूपता हो, अर्थात् किसी निर्वाचन-क्षेत्र विशेष में कुल जनसंख्या और प्रतिनिधियों की संख्या का अनुपात, जहां तक व्यवहार्य हो, प्रत्येक राज्य विशेष या प्रान्त विशेष में सब स्थानों पर एक-सा हो। गणित के समान एकरूपता लाना

तो पूर्णतः सम्भव नहीं है। हम प्रत्येक स्थान पर 82,824 नहीं रख सकते यह तो लाज़मी है कि कुछ विभिन्नता होगी ही, किन्तु विभिन्नता अधिक नहीं होनी चाहिये; एक निर्वाचन-क्षेत्र में 75,000 हो और दूसरे में दो लाख, ऐसा होना कदापि ठीक नहीं।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): दो लाख नहीं, वरन् डेढ़ लाख।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** यहां डेढ़ लाख नहीं है। प्रतिनिधित्व के एकविध माप के सिद्धान्त को स्वीकार किया जाना चाहिये। जहां तक व्यवहार्य हो, एकरूपता होनी चाहिये। श्रीमान्, यदि यह मान लिया जाये कि प्रतिनिधियों की अधिकतम संख्या 500 होगी तो उन आंकड़ों के बल पर जो मेरे पास हैं मैं यह कह सकता हूं कि संयुक्तप्रान्त में फी 1 लाख दस हज़ार के लिये एक प्रतिनिधि होगा, जबकि मद्रास में, यदि पूरे के पूरे 500 स्थान भर दिये जायें—और ऐसा होने की कोई सम्भावना मुझे प्रतीत नहीं होती—तो औसतन प्रति 98,682 निर्वाचकों के लिये एक प्रतिनिधि होगा। यदि प्रतिनिधियों की संख्या को घटा दिया जाये, तो यह औसत बढ़ जायेगा। मेरे विचार में यद्यपि 75,000 का माप रखा गया है, किन्तु मद्रास और संयुक्तप्रान्त दोनों इससे लाभ नहीं उठा सकते, क्योंकि यदि वे 75,000 रखें, तो प्रतिनिधि संख्या अधिकतम से भी बढ़ जायेगी, अतः संयुक्तप्रान्त में एक लाख 10 हज़ार लोगों के पीछे एक प्रतिनिधि होगा तथा मद्रास में 98,682 के पीछे एक।

श्रीमान्, निःसंदेह श्री कृष्णमाचारी ने कहा था कि इसका उद्देश्य कुछ पिछड़े हुए क्षेत्रों के लिये व्यवस्था करना है। मुझे भय है कि इस सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए, जिसकी मैंने चर्चा की है, इसे विधान में नहीं रखा जा सकता।

इस सम्बन्ध में मुझे परिषद् को कई महत्त्वपूर्ण बातों की सूचना देनी है। मद्रास एक मिश्रित प्रान्त है, जिसमें चार भाषाभाषी क्षेत्र—आन्ध्र, तमिल, मलाबार और कन्नड़ हैं। श्रीमान्, आन्ध्र में 5 ज़िले ऐसे हैं जो रायलसीमा कहलाते हैं; वे वास्तव में पिछड़े हुए हैं, जिन्हें हर प्रकार का प्रोत्साहन मिलना चाहिये। आन्ध्र के दोनों भागों में इस विषय में एक प्रकार का कुछ समझौता हो गया है। रायलसीमा में पांच ज़िले हैं—बेलारी, कडप्पा, अनंतापुर, करनूल और चित्तूर। इसके अतिरिक्त दूसरे भाग में, जो तटवर्त्ती ज़िलों के नाम से ख्यात हैं, पांच-छः ज़िले हैं–विजिगापटम, पूर्वी गोदावरी, पश्चिमी गोदावरी, किशना, गन्टूर और नैलोर। सन् 1937 में इन दोनों भागों के बीच एक प्रकार का समझौता सा हो गया था जिसके अनुसार

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

रायलसीमा को, जो एक दुर्भिक्ष-पीड़ित क्षेत्र है, ज़िलों के आधार पर समान प्रतिनिधित्व मिलेगा। श्रीमान्, मैं यह बता दूं कि इन ज़िलों में जनसंख्या कम है और यह उचित ही था कि उन्होंने वज़न की मांग की और एक प्रकार का समझौता कर लिया। भाषावार-प्रान्त-कमीशन की रिपोर्ट से हमें पता चलता है कि दोनों भागों ने इसको अन्तिम रूप से स्वीकार नहीं किया हैं। मैं इस प्रश्न के विस्तार में नहीं जाना चाहता। मैं तो केवल यही निवेदन कर रहा हूं कि इन पिछड़े हुए क्षेत्रों के लिये व्यवस्था करने के उद्देश्य से ही यह सीमा कम कर दी गई है। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं इस विषय पर कुछ नहीं कहता, यह तो आंध्र-भाषियों के परस्पर निर्णय करने का ही विषय है किन्तु जहां तक दूसरे क्षेत्रों का सम्बन्ध है, यदि इन पांच जिलों, रायलसीमा के दुर्भिक्ष-पीड़ित ज़िलों को 75,000 प्रति स्थान के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाना उचित समझा जाये, और अन्य क्षेत्रों को दूसरे प्रकार से दिया गया तो उनका 1,07,000 की आबादी पर एक स्थान मिलेगा। मैंने कुछ आंकड़ों का हिसाब फैलाया है। उनसे पता चलेगा कि रायलसीमा को इस आधार पर 116 स्थान मिलेंगे, शेष आंध्र को 118, तमिलनाडु को 216, मलाबार को 36, और दक्षिण कन्नड़ को 14 स्थान मिलेंगे। प्रतिनिधित्व के इस माप के अनुसार संतुलन में सर्वथा उलट-पुलट हो जायेगी। अर्थात् आंध्र वर्ग को 234 स्थान मिलेंगे, जब कि तमिलनाडु को 216 स्थान मिलेंगे; आंध्र की जनसंख्या 2 करोड़ है, तमिल लोगों की 2 करोड़ तीस लाख है। अत: इन सब बातों से कठिनाइयां उत्पन्न हो जायेंगी। यह कठिनाई केवल इसी प्रान्त में नहीं है; मुझे पता लगा है कि अन्य प्रान्तों में भी ऐसी ही बात है। एक माननीय सदस्य मुझे बता रहे थे कि बम्बई में भी कुछ क्षेत्र हैं जो कि पिछड़े हुए हैं। यह भी सम्भव है कि अन्य पिछड़े हुए क्षेत्र भी हों। यदि हम इस प्रकार की चीज़ रखेंगे तो इससे बहुत कठिनाइयां उत्पन्न होंगी और यह बहुत अच्छी बात नहीं है कि हम इसे विधान में रखें। साथ ही हमारा यह सिद्धान्त होना चाहिये। यदि इसे रखा नहीं जा सकता, तो कम से कम हमें उपयुक्त प्राधिकारियों को सीमानिर्धारण समिति को सूचित कर देना चाहिये कि जहां तक व्यवहार्य हो, राज्य भर में एकरूपता होनी चाहिये। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है और इसलिये यद्यपि मुझे पिछड़े हुए क्षेत्रों से बहुत सहानुभूति है, किन्तु मैं प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम : जनरल): पूर्ववर्त्ती वक्ता के तर्क को समझना, वास्तव में कठिन है। हमारे प्रान्त में हमारी अपनी कठिनाइयां हैं। कुछ

कारणों से गत जनगणना ऐसे ढंग से हुई थी कि इससे यह पता नहीं चल सका कि वहां की ठीक जनसंख्या कितनी है। जनगणना में ऐसी गड़बड़ की गई थी कि सत्तारूढ़ दल ने अपनी इच्छानुसार आंकड़े बना लिये। वास्तव में कुछ जातियों की संख्या बढ़ा दी गई और आंकड़ों को इस प्रकार गढ़ा गया कि ठीक आबादी ही नहीं दर्ज की गई। प्रमुख जाति की संख्या इतनी घटा दी गई कि वह केवल 39.2 ही रह गई। हम देखते हैं कि वनजाति की संख्या बढ़ कर 29 प्रतिशत हो गई, मुसलमान लगभग 22 प्रतिशत हो गये और परिगणित जातियां लगभग 5 प्रतिशत हो गईं। यदि उचित प्रकार से जनगणना की जाये तो शायद प्रमुख जाति और बढ़ जायेगी। अत: आसाम में भी जनगणना अपेक्षित है। मैं श्री लक्ष्मीकांत मैत्र की इस बात का समर्थन करता हूं कि आसाम में नई जनगणना होनी चाहिये; अन्यथा प्रमुख जाति को बहुत गम्भीर और कठोर आघात पहुंचेगा।

यह आवश्यक है कि स्थान निश्चित करने में और विभिन्न जातियों में स्थानों का वितरण करने में हमें प्रत्येक के साथ न्याय करना चाहिये। पिछली जनगणना में आंकड़ों को इस प्रकार गढ़ा गया था कि आसाम में प्रमुख जाति अल्पसंख्यक बन गई और यदि तथाकथित अल्पसंख्यकों के लिये स्थान सुरक्षित कर दिये गये तो मेरे विचार में प्रमुख जाति और भी कम हो जायेगी और उन्हें विधान में कोई उचित स्थान नहीं मिलेगा। बात यह है कि प्रमुख जाति पिछली गणना में, जो कि सत्तारूढ़ दल द्वारा की गई थी, पहले ही हानि उठा चुकी है। यदि जनजातियों तथा अन्य लोगों के लिये, जिनकी अपेक्षित संख्या भी नहीं है, स्थान सुरक्षित रखे गये तो प्रमुख जाति के स्थान कम करने होंगे और बहुसंख्यक जाति घट कर ऐसी अल्पसंख्यक बन जायेगी कि उसकी रक्षा करनी होगी और उनके लिये स्थान सुरक्षित करने होंगे। अत: मैं परिषद् से प्रार्थना करता हूं कि वह आसाम में भी दुबारा जनगणना करने के प्रश्न पर विचार करे।

उसके अतिरिक्त, पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी बंगाल से कुछ लोग निष्क्रमण करके आसाम चले गये हैं। कुछ विशेष परिगणित जातियां हैं और अन्य जातियों के सदस्य हैं जिनकी ठीक गणना होनी है। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो कुछ मास के लिये पूर्वी पाकिस्तान चले जाते हैं और फिर वहां से लौट आते हैं। हमें उन लोगों की संख्या का पता लगाना चाहिये जो चाय के बागों में और अन्य स्थानों में कुछ कमाई करने के उद्देश्य से चले जाते हैं। यदि इन बातों का पता लगाये बिना ही हम स्थानों का वितरण कर देंगे तो प्रमुख जाति और अन्य जातियों के साथ अन्याय हो जायेगा। मैं परिषद् से प्रार्थना करता हूं कि आसाम में ठीक जनगणना की जाये, और आसाम को जनगणना में सम्मिलित किया जाये, जिसके लिये श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने एक संशोधन भेजा है।

***श्री एस. नागप्पा:** उपाध्यक्ष महोदय, यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है, विशेषत: रायलसीमा के प्रतिनिधियों के दृष्टिकोण से तो यह और भी महत्त्वपूर्ण है मैं समझता हूं कि मूलभूत सिद्धान्त के अनुसार कोई पासंग यानी वज़न की मांग नहीं कर सकता किन्तु यह साम्प्रदायिक पासंग नहीं हैं। हम सामाजिक अथवा राजनैतिक रुप से पिछड़े हुए होने के आधार पर कुछ नहीं मांग रहे हैं, प्रत्युत यह क्षेत्र आर्थिक दृष्टिकोण से शताब्दियों और युगों से पिछड़ा हुआ है और इस कारण इस क्षेत्र को प्रतिनिधित्व देने से यह होगा कि इसके प्रतिनिधि यहां के निवासियों के उद्धार के लिये प्रयत्न करेंगे। इसी कारण रायलसीमा के लोग, विशेषत: आन्ध्र देशवर्त्ती लोग, 1937 में स्त्री बाग संधि नामक एक समझौते के लिये सहमत हो गये थे, जिसमें कहा गया था कि रायलसीमा और सरकार, प्रदेश वासियों के बीच प्रतिनिधित्व 6:5 के अनुपात से होगा। रायलसीमा में 5 ज़िले हैं और सरकार में 6 हैं और इन 11 जिलों में एक समझौता कर लिया है कि प्रतिनिधित्व 6:5 के अनुपात से होगा, यहां तक कि मन्त्रिमण्डल में भी यही अनुपात रह चाहे जनसंख्या कुछ भी हो किन्तु यह समझौता एक ही प्रान्त के दो वर्गों में हुआ है।

**श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** मंत्रिमंडल में प्रतिनिधित्व किस अनुपात से हो यह बात समझौते में नहीं है।

***श्री एस. नागप्पा:** हम इस प्रतिनिधित्व की मांग तमिलनाडु से नहीं कर रहे हैं। विधान में प्रावहित सिद्धान्तों के अनुसार मद्रास प्रान्त को प्रतिनिधित्व दिया जायेगा, और उसमें से आंध्र को भी भाग मिलेगा। आन्ध्र के इस भाग में से रायलसीमा और सरकार के हम लोग आपस में अपने समझौते के अनुसार स्थान बांट लेंगे। उदाहरणार्थ यदि सरकार को 1,25,000 के पीछे एक स्थान मिलता है तो रायलसीमा को 75,000 के पीछे एक स्थान मिल सकता है। इससे हमारी समस्या हल हो जाती है। यह हम इसलिये मांगते हैं कि रायलसीमा क्षेत्रफल में आंध्र देश का दो तिहाई है किन्तु उसकी जनसंख्या केवल एक तिहाई है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** यह सही नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** कृपया वक्ता के भाषण में बाधा मत डालिये।

***श्री एस. नागप्पा:** मेरे पास जो आंकड़े हैं यदि वे चाहें तो इनसे देख सकते हैं कि सरकार की जनसंख्या दो तिहाई है और रायलसीमा की लगभग एक तिहाई है, किन्तु रायलसीमा का क्षेत्रफल आंध्र देश का दो तिहाई है।

यह समझौता हम लोगों में हुआ था और मैं सदस्यों से प्रार्थना करूंगा कि वे ऐसी व्यवस्था करें कि इस समझौते को कार्यान्वित किया जा सके। मैं मोटे-मोटे सिद्धान्तों के अनुसार यह मांग नहीं करता; किन्तु हमारे क्षेत्र के आर्थिक और राजनैतिक रूप में पिछड़े होने के कारण हमें यह मांग करनी पड़ती है।

***प्रोफेसर एन.जी. रंगा** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, हम सब इस सिद्धान्त के पक्ष में है कि जहां तक स्थानीय विधान-मण्डल में प्रतिनिधान के अनुपात का सम्बन्ध है, वहां तक यथासम्भव एक ही राज्य में विभिन्न निर्वाचन-मण्डलों के बीच कोई विभेद नहीं होना चाहिये। किन्तु साथ ही कई विशेष क्षेत्रों की कई विशेष आवश्यकतायें हैं जो कि साम्प्रदायिक, धार्मिक, राष्ट्रविरोधी अथवा अराष्ट्रीय विचारों पर आश्रित न होकर उन क्षेत्रों की सामाजिक अथवा आर्थिक स्थिति पर निर्भर हैं, जिनके विषय में कुछ विशेष प्रावधान करने ही होंगे ताकि राजनैतिक अथवा आर्थिक रूप में पिछड़े हुए अथवा अविकसित क्षेत्रों के लोग अपने पैरों पर खड़े हो सकें और उनमें तथा अधिक उन्नत लोगों के बीच जो अन्तर है वह कम हो सके। श्रीमान्, जैसे कि श्री नागप्पा ने अभी आपको बताया है, आंध्र देश के इन दो भागों के प्रतिनिधियों ने 1937 में बातचीत की थी और आपस में ही इस सम्बन्ध में मैत्रीपूर्ण निपटारा कर लिया था। मुझे उनकी जनसंख्याओं अथवा क्षेत्रफलों के विस्तृत विवरण देने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु यह सत्य है कि सरकार नामक क्षेत्र में घनी आबादी है और दूसरे क्षेत्र रायलसीमा में बहुत बिखरी आबादी है। सरकार आर्थिक रूप में भी कुछ अधिक आगे है और वहां रायलसीमा की अपेक्षा बहुत कम दुर्भिक्ष पड़ते हैं। अत: इन लोगों ने आपस में समझौता कर लिया है कि विभिन्न निर्वाचन-मण्डलों में एकविध प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के आधार पर सरकार को जितने स्थानों का हक होगा, उसमें से वे कुछ अंश रायलसीमा को दे देंगे और उनके ज़िलों में जनसंख्या के आधार पर बांट देंगे। यह समझौता उस समय हुआ था जब कि प्रान्तीय कांग्रेस समिति के प्रधान डॉक्टर पट्टाभि थे जो आज अखिल भारतीय कांग्रेस के राष्ट्रपति हैं। आज मैं प्रान्तीय कांग्रेस समिति का सभापति हूं और मैं उस समझौते को पूरा करने के लिये वचनबद्ध हूं। समूची आंध्र जनता की यह इच्छा है कि इस समझौते को कार्यान्वित किया जाये और वर्तमान स्थिति के अंतर्गत वैधानिक और राजनैतिक रूप से जहां तक शक्य हो उसे पूरा किया जाये। इस पक्ष में या उस पक्ष में छोटे-छोटे परिवर्तन किये जा सकते हैं और दोनों सम्बद्ध दल इसके लिये पूर्णत: सहमत होंगे किन्तु इतना पासंग रायलसीमा को देने के लिये हम सब सहमत हैं। यह पासंग इस विधान की शर्तो के अनुसार कैसे दिया जा सकता है यह एक टेढ़ी समस्या है।

[प्रो. एन.जी. रंगा]

कुछ वर्षों से हम सब इसको लेकर बहुत चिंतित हैं और इस अनिश्चितता के कारण दोनों क्षेत्रों के सम्बन्धों में कुछ तनातनी आ गई है; क्योंकि रायलसीमा के प्रतिनिधि का ख्याल था कि बहुत सम्भव है कि स्त्रीवाद्य सन्धि के कार्यान्वित होने से यह परिषद् बाधक बन जाये। किन्तु अब इस परिषद् ने इस सिद्धान्त को सहमति दे दी है कि जहां तक केन्द्रीय विधान-मण्डल का सम्बन्ध है विभिन्न निर्वाचन-मण्डलों में जनता के प्रतिनिधित्व में जनसंख्या के आधार पर कुछ विभिन्नता आ सकती है और वह विभिन्नता 5,00,000 से 7,50,000 तक हो सकती है, अत: हमारे हृदयों में यह आशा उत्पन्न हो गई है कि यह सर्वथा सम्भव है कि सम्भवत: यह परिषद् इस बात के लिये सहमत हो जायेगी कि हम रायलसीमा और सरकार के निर्वाचन-क्षेत्रों में इसी प्रकार कर विभेद कर सकते हैं। हमारे लिये इस परिषद् से इतनी रियायत मांगना तीन कारणों से उचित ही है। एक कारण यह है कि जहां तक केन्द्रीय विधान-मण्डल का प्रश्न है यह विभेद पहले ही स्वीकार कर लिया गया है। दूसरा कारण यह है कि इन दोनों क्षेत्रों के सम्बद्ध लोग आंध्र देश में ही हैं और वे इसे पहले ही स्वीकार कर चुके हैं और इस विषय में किसी ने भी विरोध में कोई आवाज़ नहीं उठाई है। इसको स्वीकार करने से इन लोगों के बीच अधिक अच्छे सम्बन्धों का विकास होगा और उनक सम्पर्क बढ़ेगा और आखिर यह परिषद् किसी राज्य के विभिन्न वर्गों में अधिकाधिक सहयोग ही तो बढ़ाना चाहती है, केवल एकरूपता के किसी व्यर्थ सिद्धान्त पर अड़ना तो चाहती नहीं जिससे कि वह इधर या उधर टल ही न सके और इस देश के भीतर किसी एक क्षेत्र के लिये कोई विशेष प्रावधान ही न करे। तीसरी बात इस परिषद् ने आसाम के विषय में कुछ अपवाद करके विशेष मामलों में अपवाद करने की वांछनीयता को स्वीकार कर लिया है। आसाम के समक्ष भी जनजातियों के विषय में ऐसी ही कठिनाई पेश है। वहां तथाकथित स्वशासन प्राप्त जनजातीय क्षेत्रों के लिये इस विधान में कुछ विशेष प्रावधान रख दिये हैं जिससे कि उनके हितों का संरक्षण हो सके और जिससे कि निकट-भविष्य में उनकी प्रगति व्यवस्थानुसार और शीघ्रतापूर्वक अवश्य ही हो सके।

श्रीमान्, उपर्युक्त तीन कारणों से मैं परिषद् से अनुरोध करता हूं और उनसे अनुरोध करता हूं, जिन पर इस विधान क मसौदा तैयार करने की तथा हम जो परिवर्तन निश्चित करते हैं उनका मसौदा तैयार करने में हमारी सहायता करने की जिम्मेदारी है, कि वे आंध्र की इन विशेष आवश्यकताओं की विधान में व्यवस्था

करें और इस प्रकार रायलसीमा के विशेष हितों की रक्षा करने में और इन लोगों में अधिकाधिक एक्य लाने में हमारी मदद करें।

श्रीमान्, मुझे एक और बात कहनी है। हाल ही में जो भाषा समिति हमारे क्षेत्रों में आई थी उसके समक्ष जे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विचार उपस्थित किया गया था वह यह था। रायलसीमा के कुछ प्रतिनिधियों ने इस बात पर जोर दिया था कि आंध्र को यथाशीघ्र पृथक् प्रान्त बनाया जाये और स्त्री-वाद्य समझौते को, वर्तमान परिस्थितियों के अधीन जहां तक शक्य हो, इस प्रकार कार्यान्वित किया जाये कि इसे विधान-परिषद् तथा संसद् दोनों स्वीकार कर लें ताकि रायलसीमा के लोग भी अपने और सरकार वासियों के बीच के सभी विभेदों को दूर कर सकें। उनके संगठित होने में जो कठिनाइयां हैं यदि आप उन्हें दूर कर सकें, तो मैं आपको आश्वासन दे सकता हूं कि जहां तक इस क्षेत्र विशेष का सम्बन्ध है—और यह क्षेत्र अब भी विचारधारा की दृष्टि से शेष मद्रास प्रान्त अथवा राज्य से पृथक् है—केन्द्रीय सरकार के लिये यह सम्भव हो सकेगा कि वह आंध्र प्रान्त का निर्माण कर सके और उस काम में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, वैयक्तिक अथवा और कोई भी कठिनाई नहीं पड़ेगी। अतः मैं परिषद् से हार्दिक अनुरोध करता हूं कि इस क्षेत्र के सम्बन्ध में एक विशेष प्रावधान रखे। जैसे कि आसाम के विषय में विशेष प्रावधान रखने के लिये यह परिषद् सहमत हो गई है उसी तरह यहां भी वह अवश्य ही सहमत हो जाये।

धन्यवाद, श्रीमान्।

***श्री देशबन्धु गुप्त** (दिल्ली : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र पण्डित ठाकुरदास भार्गव, आगामी निर्वाचनों से पूर्व ही पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी बंगाल में जनगणना की जाये, इसके पक्ष में अपना तर्क उपस्थित कर चुके है। अतः उन्होंने कल जो युक्तियां पेश की हैं उन्हें दोहरा कर मैं परिषद् का समय लेना नहीं चाहता। मैं तो केवल यही कहना चाहता हूं कि दिल्ली भी उसी श्रेणी में आता है, जिसमें पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल हैं।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): मैंने उसके विषय में भी कहा था।

***श्री देशबन्धु गुप्तः** धन्यवाद। दिल्ली भी उसी श्रेणी में है, क्योंकि केवल यही बात नहीं है कि दिल्ली से बहुत से मुसलमान पाकिस्तान चले गये हैं, बल्कि दिल्ली पर उन लोगों का भी प्रभाव पड़ा है जो बहुत बड़ी संख्या में पाकिस्तान से यहां आ गये हैं और इस समय दिल्ली में रह रहे हैं। शायद दिल्ली ही ऐसा

[श्री देशबन्धु गुप्त]

शहर है जिसकी जनसंख्या आबादी की अदलाबदली के कारण दुगनी हो गई है। पिछली जनगणना के अनुसार दिल्ली की जनसंख्या लगभग नौ लाख थी, और अब यह विश्वास किया जाता है कि इस समय जनसंख्या 19 लाख के लगभग है; केवल शहर को लीजिये तो उसकी जनसंख्या लगभग 15 लाख है। अतः न्याययुक्त बात यही है कि जब इस प्रश्न पर विचार जाये तो दिल्ली के दावे की अवहेलना न की जाये और इसके साथ पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब के समान ही व्यवहार किया जाना चाहिये।

श्रीमान्, मुझे कुछ और नहीं कहना है, केवल इतना ही कहना है कि पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल को संतुष्ट करने के लिये उन क्षेत्रों की वर्तमान जनसंख्या का पता लगाने के लिये, जिन पर विभाजन का प्रभाव पड़ा है, जो भी आश्वासन दिये जायें और जो कुछ उपाय किये जायें, वही उपाय दिल्ली के विषय में काम में लाये जाने चाहियें।

***माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई** (आसाम : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं पण्डित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन के सम्बन्ध में बोल रहा हूं जो पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल में जनगणना करने के सम्बन्ध में है। मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि यद्यपि इस परिषद् में आसाम की जनसंख्या के विषय में कई बार चर्चा हो चुकी है, फिर भी आसाम के मामले पर पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल के मामलों के साथ विचार नहीं किया गया। श्री चलिहा ने अभी-अभी बताया है कि पिछली जनगणना के अन्तर्गत आसाम की जनसंख्या की क्या स्थिति है। 1941 में आसाम के विधान-मण्डल में कांग्रेस दल ने पिछली जनगणना का इस आधार पर कड़ा विरोध किया था कि वह वास्तव में आसाम की जनसंख्या की सच्ची तस्वीर नहीं है। अब विभाजन के समझौते से बहुत सी बातें काफी बदल गई हैं और उसके पश्चात् जो परिस्थितियां उत्पन्न हो गई हैं उनमें, सरकारी आंकड़ों के अनुसार, जो कि हमारे पास हैं, पूर्वी बंगाल से तीन-चार लाख आदमी उसी प्रकार शरणार्थी बन कर आ गये हैं, जैसे कि उधर.....

***उपाध्यक्षः** उधर खड़े हुए माननीय सदस्यों से मैं कहना चाहता हूं कि वे अपने-अपने स्थानों पर बैठ जायें।

***माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोईः** आसाम में लोग उसी प्रकार आ गये हैं जैसे कि पश्चिमी पंजाब से लोग पूर्वी पंजाब में आये हैं और पूर्वी बंगाल से पश्चिमी बंगाल आये हैं। चार लाख कोई छोटी संख्या नहीं है और उनको

प्रतिनिधित्व से वंचित कर देना, मेरे ख्याल से एक जबरदस्त गलती होगी, और ऐसा करना बड़ा अन्याय होगा। अतः मेरा यह सुझाव है कि डॉक्टर अम्बेडकर कृपा करके आसाम को भी पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल की श्रेणी में सम्मिलित कर लें। यह संशोधन तो महज़ रस्म के तौर पर रखा गया है वरना मैंने जो बातें पेश की हैं वे परिषद् के समझ रखी जा चुकी हैं। मुझे तो केवल अपनी यह प्रार्थना दोहरानी है कि आसाम को भी पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल की श्रेणी में गिन लिया जाय। मैं समझता हूं कि पिछली जनगणना की विषमता पर तथा तब से अब तक के बीच आसाम में जो लोग आ गये हैं उनकी संख्या पर विचार किये बिना प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर कोई निर्णय करने का प्रयत्न करना एक ऐसी बात है जो सहन नहीं की जानी चाहिये। श्रीमान्, मैं सविनय निवेदन करता हूं कि पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल के साथ आसाम को भी सम्मिलित करने के मेरे सुझाव पर विचार किया जाये।

*__श्री कालुर सुब्बा राव__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं इस विषय पर कुछ कहना चाहता हूं क्योंकि रायलसीमा जिलों का मैं प्रतिनिधि हूं। यदि विधान-निर्माता इस अनुच्छेद में प्रत्येक स्थान के लिये अधिकतम तथा न्यूनतम जनसंख्या निश्चित कर देते, जैसा कि उन्होंने लोक-सभा में राज्यों के प्रतिनिधित्व के विषय में किया है, तो इस अवसर पर मेरा बोलना जरा भी अपेक्षित न होता। आपने अल्पतम संख्या 75,000 रख दी है, किन्तु कोई अधिकतम सीमा निश्चित नहीं की है। रायलसीमा के लोगों और आंध्र लोगों में केवल इसी के विषय में अन्तर है। सम्मिलित किये हुए जिले दुर्भिक्ष-पीड़ित जिले हैं और इतिहास के प्रारम्भ से ही इसी नाम से जाने जाते हैं। उनमें मुख्यतः पर्वतीय प्रदेश हैं। मैं ऐसे निर्वाचन-क्षेत्र अथवा तालुके का प्रतिनिधि हूं जिसका क्षेत्रफल अथवा आकार सबसे बड़ा है किन्तु उसकी जनसंख्या अल्पतम है। यदि आप प्रत्येक स्थान के लिये अल्पतम जनसंख्या 75,000 भी निश्चित कर दें, तब भी मेरे निर्वाचन-क्षेत्र के लोगों को अपना मतदान करने के लिये निकटतम मतदान स्थान को 15 मील चल कर जाना होगा। इसी कारण हम यह चाहते हैं कि जनसंख्या के आधार पर उन जिलों को अधिक प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिये। और वे आर्थिक तथा राजनैतिक रूप में पिछड़े हुए हैं। इन ज़िलों की जनता की इस कमी को बहुत समय पूर्व ही स्वीकार कर लिया गया था और सरकार के तथा रायलसीमा के आंध्र लोगों के बीच एक समझौता हो गया था। इस समझौते से श्री भारती अथवा तमिलनाडु के लोगों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हम केवल आंध्र क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व पर विचार कर रहे हैं और यह विचार कर रहे हैं आया कि इस

[श्री कालुर सुब्बा राव]

समझौते के अन्तर्गत रायलसीमा को अधिक मिलना चाहिये और सरकार को कम। इसी कारण हम परिषद् से प्रार्थना करते हैं कि अधिकतम सीमा के लिये प्रावधान कर दिया जाये, जिससे कि भावी राज्य में मैत्री और सद्भावना रहे। रायलसीमा के आंध्र प्रान्त के विरुद्ध होने का कोई प्रश्न नहीं है। किन्तु कठिनाई प्रतिनिधित्व की ही है। रायलसीमा की जनसंख्या 60 लाख है और सरकार प्रदेश की 1 करोड़ 25 लाख। मैं परिषद् से प्रार्थना करता हूं कि वह इस संशोधन को स्वीकार कर ले।

***डॉक्टर बी. पट्टाभि सीतारमय्या** (मद्रास : जनरल): उपाय्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि मुझे इस वाद-विवाद में हस्तक्षेप करना पड़ रहा है जो कि कुछ विवादास्पद हो गया है। किन्तु मैं देश के उस भाग से जिस पर विवाद केन्द्रित हो गया है घनिष्ठ सम्बन्ध रखता हूं, अत: मैं अनुभव करता हूं कि यह बता देना मेरा कर्त्तव्य है कि इस विषय में हम लोगों के ठीक-ठीक विचार क्या हैं। इस विवाद में ऊपर से जो कुछ दिखाई देता है, इसकी तह में उससे अधिक कुछ है। जब भी कोई विवादास्पद प्रश्न उठता है तो हमारा यह मानसिक स्वभाव है कि हम दोनों पक्षों से कहते हैं कि 'आपस में बातचीत कर लीजिये, एक-दूसरे के पास बैठ कर एक-दूसरे को प्रेमपूर्ण सुतर्क से समझाइये और पंचनिर्णय या न्याय के लिये तीसरे के पास मत जाइये।' यह उच्च सिद्धान्त है। आंध्र लोगों ने इस उच्च सिद्धान्त के अनुसार कार्य किया है। वे भारत में हिन्दी-भाषियों के पश्चात् शेष सबसे बड़ी जाति हैं। निज़ाम के प्रदेश में हमारे 85 लाख भाई रहते हैं जिन्हें हम तब तक नहीं मिलाना चाहते जब तक कि वे मिलना न चाहें—इस विषय पर कोई गलतफहमी नहीं होनी चाहिये—उन्हें छोड़ कर भी हम लोग जो कुछ मिला कर लगभग 3 करोड़ हैं, मद्रास प्रान्त के उत्तरी भाग में ही लगभग 1 करोड़ 80 लाख हैं। मद्रास प्रान्त की राजधानी मद्रास है और वहां लगभग आधी जनसंख्या आंध्र है और शेष आधी आबादी से नगर का दक्षिणी भाग बना हैं। वे चार विभिन्न भाषाएं बोलते हैं। मद्रास के विधान-मण्डल में भाषाओं की खिचड़ी है। लोग एक- दूसरे की बात नहीं समझते। किन्तु यह एक पृथक् बात है।

श्रीमान्, हम पिछले 35 वर्षों से पृथक् प्रान्त की मांग करते आ रहे हैं। हमें कहा गया था कि जब तक राष्ट्रीय सरकार न बने तब तक चुप रहिये। यद्यपि अब राष्ट्रीय सरकार बन चुकी है, फिर भी यही दिखाई देता है कि आंध्र के विभाजन का दावा दूर ही दूर सरकता जा रहा है। चाहे कुछ भी हो, हमने आपस में कुछ समझौता सा कर लिया है।

जब मैं पहले कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल के समय में आंध्र प्रान्तीय कांग्रेस समिति का प्रधान था—यह पद मुझ पर थोपा गया था—तब हमने सम्मिलित किये हुए ज़िलों अथवा रायलसीमा से कुछ सिद्धान्तों पर और बहुत अच्छे आधार पर एक समझौता कर लिया था। वह तो कुछ दे और कुछ ले का प्रश्न था। तटवर्त्ती जिलों के लोग, जो अधिक उन्नत हैं और जिन्हें सिंचाई के लिये डेल्टे से जल मिलता है, सब प्रकार से अधिक सम्पन्न हैं और वे रायलसीमा के लोगों से व्यापार, वाणिज्य, उद्योग में, शिक्षा और सार्वजनिक सेवाओं में बाजी मार लेते हैं, यद्यपि प्रान्त के दक्षिण भाग से तुलना की जाय तो समस्त आंध्र देश के लोग ही सामूहिक रूप से पिछड़े हुए हैं। आंध्र देश के दो भागों में तुलना की जाये तो तटवर्त्ती प्रदेश के लोग अत्यन्त उन्नत हैं तथा अन्य क्षेत्र अत्यन्त पिछड़े हुए हैं। इन दो भागों में भूमितल की अवस्थायें भी सर्वथा भिन्न हैं। हमारी ओर कुत्ते को मारने के लिये भी पत्थर नहीं मिलता और उनके प्रदेश में किसी भी काम के लिये मुट्ठी भर भी मिट्टी नहीं मिलती। वह प्रदेश पथरीला और पर्वतीय है और उसके तीन पंचमांश क्षेत्र में लगभग एक तिहाई जनसंख्या रहती है; और शेष प्रदेश में, जो क्षेत्रफल में दो पंचमांश है कुल जनसंख्या का दो तिहाई भाग रहता है। सांस्कृतिक, सामाजिक, व्यापारिक, औद्योगिक और आर्थिक उन्नति के अतिरिक्त भी यदि केवल संख्या पर ही विचार करें तो उनसे हम दुगने हैं और हमारी जनसंख्या प्रति वर्ग मील उनसे दुगनी है। जब ऐसी बात है, तो क्या यह मामला परिषद् के ध्यान देने योग्य नहीं है? क्या आप अपने सिद्धान्तों और नीतियों को सड़क कूटने के अंजन के समान ही लागू करना चाहते हैं जो कि लम्बे-लम्बे ताड़ के वृक्षों को भी छोटे-मोटे पौधों के बराबर कर देता है? यह तो वांछनीय नहीं है।

श्रीमान्, उस दिन आसाम का मामला परिषद् में पेश किया गया था और परिषद् ने कृपा करके कह दिया था कि 'अच्छा, हम आसाम के विषय में अपवाद रख देंगे'। हमारे वहां चार प्रकार के प्रदेश हैं अतः वहां कोई एक सिद्धान्त कड़ाई से लागू नहीं किया जा सकता। हम भारत के सारे प्रान्तों के लिये एक ही माप पर प्रतिनिधित्व लागू नहीं कर सकते। भारत एक वृहद् महाद्वीप है, जिसमें विभिन्न प्रकार की जलवायु और धरातल तथा भूतल हैं और समस्यायें सब जगह प्रायः विभिन्न हैं। अतः विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न सीमाओं तक प्रगति हुई है। अतः इन परिस्थितियों में प्रतिनिधित्व की जो प्रणाली तथा माप रखा जाये उसमें भी कुछ लोच होना चाहिये। और हम किस प्रकार के लोच के लिये मांग कर रहे हैं? वह केवल इतना ही है कि प्रतिनिधित्व के आधार को एक लाख तक ऊंचा मत रखिये। 75,000 की ही अल्पतम संख्या रखिये, जिससे कि आंध्रदेश

[डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमय्या]

के हल्की आबादी वाले क्षेत्रों को 90 स्थान मिल सकें। इससे उन्हें 90 स्थान मिल जायें और शेष प्रदेश के लिये आप एक लाख का माप रखिये तो हमें 120 स्थान मिल जायेंगे। इस उपाय से दोनों क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व की विषमता कम की जा सकती है और एक क्षेत्र के लोगों के लिये दूसरे क्षेत्र वालों के हितों की अवहेलना करना आसान न रहेगा।

अब दोनों क्षेत्रों के प्रशासन को लीजिये। यह शिकायत है कि देश के एक भाग पर उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना ध्यान पाने का वह अधिकारी है, अत: वह पिछड़ी हुई हालत में रह गया। देश के उस भाग में पीने के लिये तालाब या कुएं का जल उपलब्ध नहीं है और वहां सदा दुर्भिक्ष का अखण्ड साम्राज्य रहता है। लगभग प्रत्येक तीसरे वर्ष उसे दुर्भिक्ष पीड़ित क्षेत्र घोषित करना पड़ जाता है और करोड़ों रुपये की लागत के उपाय करने होते है। यदि उन क्षेत्रों में जल की तथा अन्य सुविधायें समय पर उपलब्ध करने के उद्देश्य से रचनात्मक कार्य किया जाता तो वह बहुत सहायक सिद्ध होता। किन्तु उस प्रकार की कोई बात नहीं की जाती। उनकी कोई सुनता नहीं। जब आंध्र प्रान्त का निर्माण हो जायेगा तब उस क्षेत्र में काफी रकम व्यय करनी होगी। यह कोई सरल बात नहीं है। किन्तु फिर भी हमें उनकी सहायता करनी है जिससे कि उनके प्रतिनिधित्व को ऊंचे स्तर पर लाया जा सके। यदि राज्यों को समान प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाता तो भारत को स्वशासन मिलने से क्या लाभ है? जब भारत की कोई एक इकाई किसी स्वेच्छाचारी नरेश के अधीन रही, तब तक मैंने भारत को कभी स्वतंत्र नहीं समझा। सौभाग्य से हमने उस स्थिति को पार कर लिया है। किसी प्रान्त को तब तक स्वतन्त्र समझने से क्या लाभ है जब तक कि इसका आधा भाग, वरन् दो तिहाई भाग पिछड़ा हुआ हो, उसके पास पीने के लिये जल न हो, खाने के लिय अन्न न हो और आर्थिक तथा शैक्षणिक दोनों प्रकार से वह दुर्बल हो? हम अपने देश के पर्वतीय क्षेत्रों को भी अपने स्तर पर लाना चाहते हैं चाहे उस दिशा में प्रगति धीमी ही हो। जब ऐसी बात है, तो ऐसा नियम बनाने से क्या लाभ है जिससे कि देश की प्रगति में बाधा पड़े? अत: मैं कहता हूं कि ऐसा-वैसा हल शायद सहायक सिद्ध न हो और इस विषय में मैं डॉक्टर अम्बेडकर से अनुरोध करना चाहता हूं जिन्होंने इस विधान के मसौदे को परिषद् में पारित करवाने के लिये इतना कष्ट उठाया हैं। वे सजग हैं, अच्छे तार्किक हैं और सुवक्ता हैं और इन विषयों पर उन्होंने विवेकपूर्ण निर्णय से काम लिया है। परसों हमने स्वीकार कर लिया है कि जनसंख्या के प्रत्येक 75,000 लोगों के लिये एक

स्थान होगा। दुर्भाग्य से कल शाम मुझे अमृतसर जाना पड़ा और मैं आज प्रातःकाल लौटा हूं। इसी बीच में यह संशोधन आ गया। यह संशोधन उस क्षेत्र के एक भाग के लिये कठिनाई खड़ी कर देगा। कहा जाता है कि यदि यह संशोधन नहीं रहता है तो पंजाब के साथ सख्ती होती है। अतः पंजाब के मामले पर विचार करना है, आसाम के मामले पर विचार करना है और आंध्र के मामले पर विचार करना है। इन सभी मामलों पर विचार करना है। अतः अपने नियमों को यथासम्भव लचीला बनाइये इन मामलों पर विस्तारपूर्वक ध्यान दीजिये और फिर उनके विषय में शान्ति से निर्णय करिये, जल्दी में नहीं। आखिर निर्वाचन-सूचियों के निर्माण के लिये यह सब विस्तार की बातें अपेक्षित नहीं होंगी, यद्यपि इन बातों के दे देने से उस कार्य में अत्यन्त सुविधा हो जायेगी। यदि सूचियां निश्चित करनी भी हैं तो यह काम मई या जून के मास में हो सकता है। हमें तो सूचियां तैयार करने की जल्दी है और सूचियों का आधार हमें ज्ञात होना चाहिये। हमने एक नियम पारित कर दिया है कि 21 वर्ष की आयु वाले नागरिक मतदाता हो सकते हैं। अतः प्रान्तीय सरकारें अपनी निर्वाचन सूचियां तैयार करने के काम को चालू रख सकती हैं, किन्तु यदि अन्य बातें अपेक्षित भी हों तो मैं कहता हूं, कृपया कुछ और समय ले लीजिये, और इस विषय पर अधिक विचार करके इसे कल पेश करिये, जिससे कि कोई ऐसा हल निकल आये जिस पर सब सहमत हों इसकी बजाय कि हम समस्त श्रोताओं को चक्कर में डालें जो कि इस विषय की सारी विस्तृत बातों को अथवा इसके परिणामों को वास्तव में समझ भी नहीं सकते। इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं कहूंगा। जब भी हम कोई प्रश्न उठाते हैं तो कह दिया जाता है, 'हूं, तमिल और आंध्र के लोग सहमत तो हो जायें तब'। जब हम सहमत हो जाते हैं तो आप यह कहते हैं 'समस्त आंध्र लोग सहमत हो जायें तब'। हम सभी आंध्रवासी सहमत होते हैं, तब आप कहते हैं, 'यह तो मेरे अनुभवसिद्ध नियम के अनुसार नहीं है'। ऐसी बात तो व्यर्थ है और ऐसा दिखाई पड़ता है कि इसका परिणाम यह होगा कि समस्या टल जायेगी। चाहे फिर आपका यह इरादा न हो। यदि अधिक उन्नत लोग कहते हैं कि 'हम प्रत्येक 75,000 अथवा एक लाख लोगों के पीछे एक स्थान नहीं चाहते; हम दो लाख के लिये एक स्थान चाहते हैं; हम आपको अपने बराबर की स्थिति में लाना चाहते है', तो क्या यह आपकी न्यायभावना के विरुद्ध है? क्या यह आपके राजनैतिक सिद्धान्तों अथवा प्रशासकीय नीति के विपरीत है? मैं इसे समझ नहीं पाता। अतः कृपया इस मामले को आराम से पेश होने दीजिये जिससे कि एक सर्वसम्मत समझौता हो सके।

***उपाध्यक्ष:** परिषद् ने मेरे प्रति इतनी सद्भावना प्रदर्शित की है और मुझ पर ऐसी अनुकम्पा की है तो मैं सुझाव रखता हूं कि मैं डॉक्टर अम्बेडकर को आज उत्तर देने के लिये कहूं, अपितु हम किसी और काम को हाथ में ले लें, ताकि सब सम्बद्ध दलों को आपस में मिल कर किसी सर्वसम्मत हल पर पहुंचने का अवसर मिल सके। आखिर, विधान-निर्माण सहकारी प्रयास है और हमें इसको सफल बनाने के लिये यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये।

***कुछ माननीय सदस्य:** धन्यवाद, श्रीमान्।

---

## अनुच्छेद 63

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 63 को लेते हैं।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 63 को विधान का अंग माना जाये।"

(संशोधन संख्या 1339 और 1340 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 1341 और 1342 को केवल शाब्दिक संशोधन होने के आधार पर पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती।

संशोधन संख्या 1343, जो श्री आर. वी. थोमस के नाम से है। मुझे पता लगा है कि वे अब इस परिषद् के सदस्य नहीं रहे।

संशोधन संख्या 1344 को, जो मि. नज़ीरुद्दीन के नाम से है, अब पेश किया जा सकता है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 63 के खण्ड (4) के स्थान पर निम्न खण्ड रख दिये जायें अर्थात्:

'(4) The Attorney-General shall retire from office upon the resignation of the Prime Minister, but he may continue in office until his successor is appointed or he is re-appointed.

(5) The Attorney-General shall receive such remuneration as the President may determine.'

[(4) अटारनी जनरल (महाप्राभिकर्त्ता) प्रधान मन्त्री के अपने पद से त्यागपत्र देने पर अपने पद से अवकाश प्राप्त कर लेगा, किन्तु जब तक उसका उत्तराधिकारी नियुक्त न हो जाये अथवा वह पुनर्नियुक्त न हो जाये, तब तक वह अपने पद पर रहेगा।

(5) अटारनी जनरल (महाप्राभिकर्त्ता) को उतना वेतन मिलेगा जितना कि प्रधान निश्चित करे।]"

श्रीमान्, मैंने यह संशोधन इसलिये रखा है कि जिससे यह खण्ड प्रान्तीय विधान में उल्लिखित खण्ड के समान बन जाय। परिषद् कृपया खण्ड 145 पर विचार करे। उस खण्ड 145 में प्रत्येक राज्य के लिये एक महाधिवक्ता का प्रावधान है।

मैं ऐसा समझता हूं कि मैं जो कुछ युक्तियां पेश कर रहा हूं उन्हें कम से कम यहां एक सदस्य को अवश्य सुनना चाहिये जिस पर इतना भार है। किन्तु समय बीतने पर तथा अनुभव से एक सदस्य को इस बात के प्रति कुछ उदासीन सा हो जाना पड़ता है कि उसकी वक्तृताओं का परिषद् पर क्या प्रभाव पड़ता है। वास्तव में मैं देखता हूं कि डॉक्टर अम्बेडकर एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण परामर्श में व्यस्त हैं, जिसका विषय इस संशोधन के विषय से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होगा, किन्तु मेरे विचार में मेरे लिये यह अनावश्यक अथवा व्यर्थ होगा कि मैं डॉक्टर अम्बेडकर के ध्यान देने तक के लिये ठहरा रहूं, और मेरे ख्याल में मुझे यह भरोसा करके कि परिषद् शायद किसी मौके पर मेरे मत को स्वीकार कर ले, अपने संशोधन पर वक्तृता जारी रखनी चाहिये।

श्रीमान्, अनुच्छेद 145 महाधिवक्ता के विषय में है, जो केन्द्र के महाप्राभिकर्त्ता के समान अधिकारी होगा। अनुच्छेद 145 का खण्ड (1) महाधिवक्ता की नियुक्ति के विषय में है। उसका खण्ड (2) विद्यमान अनुच्छेद के खण्ड (2) के समान है। अनुच्छेद 145 के खण्ड (1) और (2) वास्तव में विद्यमान अनुच्छेद के खण्ड (1) और (2) के समान हैं। अनुच्छेद 145 के खण्ड (3) और (4) वास्तव में महत्त्वपूर्ण हैं। खण्ड (3) में कहा गया है कि "राज्य के मुख्य मन्त्री के पदत्याग पर महाधिवक्ता पद से निवृत्त होगा, पर वह अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति अथवा अपनी पुनर्नियुक्ति होने तक पदासीन रह सकेगा।" खण्ड (4) में प्रावधान है कि "महाधिवक्ता को वे परितोषण दिये जायेंगे जो गवर्नर निश्चित करे।" इन दोनों खण्डों में जो प्रावधान हैं वे अनुच्छेद 63 में दिखाई नहीं देते। मेरा निवेदन है, श्रीमान्, कि इन दो अनुच्छेदों 63 और

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

145 के प्रावधान एकविध होने चाहियें क्योंकि वे दोनों अनुच्छेद दो समवर्त्ती पदों के विषय में हैं एक तो भारत के महाप्राभिकर्त्ता के बारे में और दूसरा राज्य के महाधिवक्ता के बारे में। इस संशोधन द्वारा मैं जो सिद्धान्त रखना चाहता हूं वह यह है कि भारत के महाप्राभिकर्त्ता और प्रान्तों के महाधिवक्ता की एक ही स्थिति होनी चाहिये। वास्तव में प्रान्तों में महाधिवक्ता मन्त्रिमण्डल का ऐसा अंग होगा कि मन्त्रिमण्डल के पतन अथवा त्यागपत्र की अवस्था में उसे भी अपने पद से अलग होना होगा। यही सिद्धान्त यूनाइटेड किंगडम में है जहां मन्त्रिमण्डल के अलग होते ही महाप्राभिकर्ता को भी स्वत: अलग हो जाना पड़ता है। यह सिद्धान्त कि महाधिवक्ता मन्त्रिमण्डल का अंग होता है और मन्त्रिमण्डल के बनने या बिगड़ने पर वह भी बन या बिगड़ जाता है एक अच्छा सिद्धान्त है। यह भी जरूरी है कि महाधिवक्ता को तब तक कार्यासीन रहना चाहिये जब तक कि उसकी पुनर्नियुक्ति न हो जाये अथवा उसका उत्तराधिकारी नियुक्त न हो जाये, क्योंकि प्रतिदिन के कार्य को गवर्नर अथवा अन्य कोई अधिकारी नहीं चला सकता। महाप्राभिकर्ता एक विशेषज्ञ होता है, अत: उसका अपने पद पर आसीन रहना वांछनीय है, और उसे वह वेतन मिलना चाहिये जो कि गवर्नर निश्चित करे। मेरा निवेदन है कि ऐसा ही सिद्धान्त महाप्राभिकर्त्ता के विषय में लागू होना चाहिये। वास्तव में वह भी सरकार का ऐसा अंग होना चाहिये कि मन्त्रिमण्डल के पदनिवृत्त होने पर वह भी पदनिवृत्त हो जाये। कोई कारण नहीं है कि भारत के महाप्राभिकर्त्ता और राज्य के महाधिवक्ता में कोई अन्तर किया जाये। हो सकता है, मैं कह नहीं सकता, कि शायद यह अन्तर जानबूझ कर न रखा गया हो। शायद अनजाने ही यह त्रुटि रह गई हो तथा सोची-समझी हुई नीति के परिणामस्वरूप यह अन्तर न रखा गया हो। इसी कारण मैंने परिषद् का ध्यान इस अन्तर की ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न किया है और मेरा सुझाव है कि इस अन्तर को मिटा दिया जाये। क्योंकि कई माननीय सदस्यों को इन दो अनुच्छेदों के बीच के अन्तर पर व्यक्तिगत रूप से सोचने का अवसर शायद न मिला हो, अत: मैंने इस अन्तर को बता दिया है और मुझे आशा है कि वे इस विषय पर उचित रूप से विचार करेंगे।

***प्रोफेसर के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं सविनय निवेदन करता हूं:

"कि अनुच्छेद 63 के खण्ड (4) में 'जो प्रधान' इन शब्दों के स्थान पर 'जो संसद विधि द्वारा' ये शब्द रख दिये जायें।"

यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया गया, तो अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

"महाप्राभिकर्त्ता प्रधान के प्रसाद-काल तक पदासीन रहेगा और उसको वे परितोषण दिये जायेंगे जो संसद् विधि द्वारा निश्चित करे।"

मैं तो इस अनुच्छेद के उस प्रावधान को भी पसंद नहीं करता जिसके अनुसार महाप्राभिकर्त्ता प्रधान के इच्छा-काल तक पदासीन रहेगा। किन्तु हो सकता है कि कोई परम्परा ऐसी बन जाये जिससे कि महाप्राभिकर्त्ता, जैसा कि पिछले संशोधन में कहा गया है, मन्त्रिमण्डल का अंग हो जाये, और वह मन्त्रिमण्डल के साथ ही पद-निवृत्त अथवा पदासीन हुआ करे। यदि विधान में स्पष्टत: इसके विपरीत प्रावधान न हो, तो ऐसी परम्परा के विकसित होने में कोई बाधा न होगी और महाप्राभिकर्त्ता सरकार का मुख्य कानूनी परामर्शदाता हो जाये, जिससे कि उसका पद पारिभाषिक रूप से प्रधान की इच्छा पर निर्भर रहेगा।

जहां तक उसके वेतन आदि का सम्बन्ध है, यदि उसके वेतन का निश्चय प्रधान के आदेश द्वारा न होने दिया जाये, प्रत्युत मन्त्रियों के समान संसद् के कानून द्वारा होने दिया जाये, तो अच्छा हो। यह सच है कि प्रधान मन्त्रियों के परामर्श से कार्य करेगा; किन्तु फिर भी मेरे विचार में उसके वेतन और भत्तों का निश्चय, मेरे ख्याल में, संसद् के कानून द्वारा होना चाहिये, और इसीलिये किसी व्यक्ति के उस पद पर आसीन रहने के काल में उस पर विपरीत प्रभाव डालते हुए उसके वेतनादि में परिवर्तन भी नहीं होना चाहिये। मेरे विचार में इसका आधार सर्वथा स्पष्ट है और मुझे आशा है कि यह संशोधन परिषद् को पसंद आ जायेगा।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं मि. नज़ीरुद्दीन अहमद और प्रोफेसर के.टी. शाह द्वारा पेश किये हुए संशोधनों का विरोध करना चाहता हूं। जिस रूप में अनुच्छेद है उसी रूप में परिषद् द्वारा यह स्वीकृत हो जाना चाहिये। किसी प्रान्त के महाधिवक्ता और भारत के महाप्राभिकर्त्ता में अवश्य अन्तर है। उपखण्ड (4) में प्रावधान है कि महाप्राभिकर्त्ता प्रधान के इच्छा काल तक पदासीन रहेगा और मेरे विचार में यही काफी है। यदि मन्त्रिमण्डल में कोई परिवर्तन हो जाये, तो इसका मतलब यह नहीं होना चाहिये कि महाप्राभिकर्त्ता भी पद-निवृत्त हो जाये, किन्तु प्रान्तों में मन्त्रिमण्डल के परिवर्तन के साथ ही महाधिवक्ता को पद से निवृत्त कर देना चाहिये जब तक कि वह पुनर्नियुक्त न कर दिया जाये। अत: मैं इन संशोधनों का विरोध करता हूं

[श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका]

और विद्यमान रूप में इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***उपाध्यक्षः** डॉक्टर अम्बेडकर!

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** उन्होंने सुना ही नहीं है। वे तो, श्रीमान्, अपने लिये आदेश प्राप्त कर रहे हैं।

***उपाध्यक्षः** यह तो आपने कोई उदारतायुक्त बात नहीं कही है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** नहीं कही है! मुझे बाध्य हो कर यह बात कहनी पड़ी है, श्रीमान्...

***उपाध्यक्षः** क्या माननीय सदस्य कृपा करके अपने स्थान पर बैठ जायेंगे?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): मैं नहीं जानता कि उत्तर की आवश्यकता भी है अथवा नहीं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** नहीं, बिल्कुल नहीं! संशोधन पर कोई बहस ही नहीं हुई है। बिना उत्तर के परिषद् से मत देने के लिये कहना उसके साथ अन्याय होगा। संशोधन पर बिना विचार किये मत लेने की बजाय तो मैं परिषद् से निवेदन करता हूं कि मुझे वह वापस ले लेने दिया जाय।

***उपाध्यक्षः** क्या माननीय सदस्य को परिषद् की ओर से अनुमति है कि वे अपना संशोधन संख्या 1344 वापस ले लें?

***कुछ माननीय सदस्यः** नहीं।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 62 के खण्ड (4) के स्थान पर निम्न खण्ड रख दिया जाये, अर्थात्:

'(4) The Attorney-General shall retire from office upon the resignation of the Prime Minister, but he may continue in office until his successor is appointed or he is re-appointed.

(5) The Attorney-General shall receive such remuneration as the President may determine.'

[(4) अटारनी जनरल (महाप्राभिकर्त्ता) प्रधान मन्त्री के अपने पद से त्यागपत्र देने पर अपने पद से अवकाश प्राप्त कर लेगा, किन्तु जब तक उसका उत्तराधिकारी नियुक्त न हो जाये अथवा वह पुनर्नियुक्त न हो जाये, तब तक वह अपने पद पर रहेगा।

(5) अटारनी जनरल (महाप्राभिकर्त्ता) को उतना वेतन मिलेगा जितना कि प्रधान निश्चित करे।]"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 63 के खण्ड (4) में 'जो प्रधान' इन शब्दों के स्थान पर 'जो संसद् विधि द्वारा' ये शब्द रख रख दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 63 विधान का भाग हो।"

*संशोधन स्वीकर कर लिया गया।*

*अनुच्छेद 63 विधान में जोड़ दिया गया।*

---

## अनुच्छेद 64

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 64 को लेते हैं। परिषद् के समक्ष प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 64 विधान का भाग हो।"

प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से दो संशोधन (1346 और 1348) हैं। वे उन्हें एक-एक करके पेश कर सकते हैं।

*__प्रोफेसर के.टी. शाहः__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 64 के खण्ड (1) में 'प्रधान' शब्द के स्थान पर 'भारत सरकार' ये शब्द रख दिये जायें और,

"कि अनुच्छेद 64 के खण्ड (2) में 'प्रधान' के स्थान में, जहां वह पहली बार प्रयुक्त हुआ हो, 'भारत सरकार' शब्द, प्रधान के स्थान में, जहां वह दूसरी बार प्रयुक्त हुआ हो, 'मन्त्रिपरिषद्' और 'प्रधान' शब्द के स्थान पर, जहां वह तीसरी बार प्रयुक्त हुआ हो, 'भारत सरकार' शब्द क्रमशः रख दिये जायें और खण्ड (2) के अन्त में निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that nothing in this article shall invalidate any act or word of Government expressed in the name of a particular Department or Ministry.'

(परन्तु इस अनुच्छेद की किसी बात से सरकार को कोई कार्य या वचन जो किसी विभाग अथवा मन्त्रालय के नाम से अभिव्यक्त हो अवैध नहीं होगा।)"

इसके बाद संशोधित अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

"'All executive action of the Government of India shall be expressed to be taken in the name of the Government of India.

Orders and other instruments made and executed in the name of the Government of India shall be authenticated in such manner as may be specified in rules to be made by the Council of Ministers, and the validity of an order or instrument which is so authenticated shall not be called in question on the ground that it is not an order or instrument made or executed by the Government of India :

Provided that nothing in this article shall invalidate any act or word of Government expressed in the name of a particular Department or Ministry."

(भारत-शासन की समस्त कार्यवाही भारत-शासन के नाम से की गई कही जायेगी।

भारत-शासन के नाम से दत्त और निष्पादित आदेशों तथा अन्य विलेखों का प्रमाणीकरण उस रीति से किया जायेगा जो मन्त्रिपरिषद् द्वारा बनाये

जाने वाले नियमों में उल्लिखित हो, तथा इस प्रकार प्रमाणीकृत आदेश अथवा विलेख की मान्यता पर कोई आपत्ति इस आधार पर न की जायेगी कि वह भारत-शासन द्वारा दत्त अथवा निष्पादित आदेश अथवा विलेख नहीं है:

परन्तु इस अनुच्छेद की किसी बात से सरकार का कोई या वचन जो किसी विभाग अथवा मन्त्रालय के नाम से अभिव्यक्त हो अवैध नहीं होगा।)

यह मानते हुए भी कि प्रधान शासन का प्रमुख होगा, मैं यह नहीं समझ पाता कि सारा शासन-कार्य प्रधान के नाम में क्यों किया जाये और सारे आदेश उसके नाम से क्यों जारी किये जायें। यदि आप इंग्लिस्तान की परम्परा पर भी चलें, तब भी इंग्लिस्तान की सरकार के आदेश आदि 'सम्राट् की सरकार' द्वारा दिये जाते हैं। नि:संदेह भारत में यह स्थिति नहीं है—और कम से कम मैं तो यही उम्मीद करता हूं कि यह अभिप्राय कदापि नहीं होगा कि आगे चल कर भारतीय सरकार को 'प्रधान की सरकार' कहा जाये। हमारी सरकार तो 'भारत सरकार' के नाम से ही ज्ञात रहेगी। मुझे कोई कारण नहीं दिखाई देता कि 'भारत सरकार' के स्थान पर, जो कि एक अवैयक्तिक एवं सामूहिक रूप का शब्द है, क्यों 'प्रधान' शब्द रखा जाये जो कि वैयक्तिक है। यदि विधान को मैंने ठीक समझा है तो मैं कह सकता हूं कि यह बात उस प्रत्येक सिद्धान्त के विपरीत है जिस पर कि यह विधान अन्यथा आधारित है और मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि अधिशासी क्षेत्र में भारत सरकार के निर्णयों को प्रधान के नाम से क्यों अभिव्यक्त किया जाये। विधान में रखे गये एक स्पष्ट प्रावधान के अनुसार प्रधान दलों के झगड़ों से परे है, पर भारत-सरकार तो निश्चय ही एक दलीय सरकर होगी अथवा मिश्रित सरकार होगी जिसका भाग्य परिवर्तनशील हो सकता है। यदि ऐसा है तो यह सुझाव सर्वथा समुचित है कि सरकार के आदेश सामूहिक रूप से सरकार के नाम में होने चाहियें और प्रधान के नाम में नहीं। इसी कारण प्रथम संशोधन का सुझाव दिया गया है।

दूसरा संशोधन तो प्रथम के फलस्वरूप ही है। आदेशों के निर्माण और जारी करने का विनियमन करने के लिये जो नियम बनाये जायेंगे उन्हें आखिर मन्त्रि-परिषद् ही तो बनायेगी। अत: प्रधान को इस दिशा में जरा भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये, और आदेश भारत सरकार के नाम से होने चाहियें। यदि किसी अवसर पर किसी विभाग को कोई परिपत्र अथवा अध्यादेश अथवा कोई विशेष आदेश निकालना ही पड़े जो कि उस विभाग विशेष के कार्य से सम्बन्धित हो, और वह

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

आदेश विशेष उस विभाग अथवा मन्त्रालय के नाम से अभिव्यक्त किया गया हो, तो वह आदेश केवल इसी कारण अवैध न हो जायेगा कि वह भारत-शासन के नाम से अभिव्यक्त है। मुझे तो यह कार्य-प्रणाली अधिक सरल ही नहीं, वरन् विधान के सिद्धान्त के अधिक अनुकूल भी दिखाई देती है, और इसलिये मुझे आशा है कि परिषद् इसे स्वीकार कर लेगी।

(संशोधन संख्या 1347 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** अब इस अनुच्छेद पर विस्तृत रूप से वाद-विवाद किया जा सकता है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, प्रोफेसर के. टी. शाह ने संशोधन संख्या 1346 और 1348 को पेश किया है और उन्होंने अपने सब संशोधन एक भिन्न योजना के अनुसार, जिसे कि उन्होंने बताया है, पेश किये हैं; और इस योजना के अनुसार ही उन्होंने इस विधान के प्रत्येक खण्ड पर अथवा अधिकांश खण्डों पर संशोधन भेजे हैं। वे इस देश में एक भिन्न प्रकार का शासन अर्थात् प्रधानात्मक व्यवस्था चाहते थे जो संसदात्मक व्यवस्था के विपरीत होती है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** एक भूल सुधार दूं। मैं तो यह चाहता था कि अपने प्रधान को प्रधानात्मक व्यवस्था से पृथक् रखा जाये। मैं तो उनके मसौदे पर ही संशोधन करना चाहता था।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** मुझे प्रसन्नता है कि इस बार तो मेरे मित्र ने दूसरे पक्ष की सहायता करने का प्रयत्न किया है। मेरे मित्र प्रोफेसर शाह देखेंगे कि हमने अनुच्छेद 66 के लिये पहले ही अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी है, जिसमें कहा गया है कि:

> "There shall be a Parliament for the Union which shall consist of the President and two Houses to be known respectively as the Council of States and the House of the People"
>
> (संघ के लिये एक संसद् होगी जो प्रधान और दो आगारों की बनेगी जिनके नाम क्रमश: राज्य-परिषद् और लोक-सभा होंगे।)

अत: संघ का प्रधान भारतीय संघ की संसद् का आन्तरिक भाग बन जाता है। दूसरी धारा के अनुसार कार्यकारिणी शक्ति का विधान-मण्डल की शक्तियों

के साथ सह-विस्तार है। इसलिये एक स्थान पर तो वह अपेक्षित तत्त्व बन जाते हैं और दूसरे स्थान पर वह दिन-प्रतिदिन के प्रशासकीय कोलाहल से परे हो जाता है। प्रोफेसर शाह अनुच्छेद 66 में एक संशोधन द्वारा चाहते थे कि प्रधान को हटा दिया जाये तथा दो सदन ही रह जायें—वे तो एक ही सदन चाहते थे। किन्तु उनका संशोधन गिर गया और प्रधान एक स्थायी अंग बन गया। जहां तक संसद् का प्रश्न है, मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि कार्यकारिणी शक्ति का निर्वाहन उनके नाम से क्यों न हो।

हम अनुच्छेद 42 को लें। उसमें कहा गया है:

"The executive power of the Union shall be vested in the President and may be exercised by him in accordance with the Constitution and the law.

(संघ की अधिशासी शक्ति प्रधान में निहित होगी और वह इसका प्रयोग संविधान तथा विधि के अनुसार कर सकेगा।)"

वह भी इस परिषद् द्वारा पारित किया गया था। अनुच्छेद 42 और 66 के अनुसार, जिनमें पहले के अनुसार प्रधान कार्यपालक प्राधिकारी होगा और दूसरे के अनुसार वह दोनों सदनों के साथ मिल कर संसद् का निर्माण करेगा, प्रधान को दोनों स्थानों पर दृढ़रूपेण बैठा दिया गया है। इस अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 64 द्वारा तो अनुच्छेद 42 और 66 के वास्तविक प्रावधानों को पूरा किया जा रहा है क्योंकि इसमें यह कहा जा रहा है कि:

"भारत-शासन की समस्त अधिशासी कार्यवाही प्रधान के नाम से की गई कही जायेगी।"

वह प्रमुख कार्यपालक प्राधिकारी होगा। वह प्रथम व्यक्ति होगा और संसद् के विलयन का प्रश्न हो, तो कौन ऐसा व्यक्ति है जो उसका विलयन कर सकेगा? प्रधान ही ऐसा व्यक्ति है जिसे यह अधिकार दिया गया है। दिन-प्रतिदिन के प्रशासन-कार्य में विधायक कार्यों और कानूनों के निर्माण के अतिरिक्त शेष कार्यों में मन्त्रियों की अनुपस्थिति में कौन हस्ताक्षर करेगा? यदि संसद् का विलयन हो जाये तो मन्त्रिमण्डल का भी विलयन हो जायेगा। यदि उस प्रकार का कोई अवसर आ जाये तो प्रधान को ही उन शक्तियों का निर्वाहन करना होगा।

अब हम दूसरे तर्क पर भी विचार करें जो पेश किया गया है। मेरे मित्र प्रोफेसर शाह चाहते हैं कि अधिशासी कार्य को सरकार के नाम से किया गया

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

कहा जाना चाहिये। प्रधान का अर्थ है मन्त्रियों की मन्त्रणा पर चलने वाला प्रधान। वह स्वतन्त्ररूपेण कार्य नहीं कर सकता। कार्यवाही उसके नाम से की जाती है यद्यपि वह समस्त सरकार की कार्यवाही होती है। इसलिये इस ढांचे से बाहर निकलना असम्भव है। प्रधान प्रमुख कार्यपालक प्राधिकारी होता है और वह संसद् में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी होता है। अत: स्वभावत: यह परिणाम निकलता है कि कार्यकारिणी कार्यवाही प्रधान के नाम से की गई कही जानी चाहिये।

मैं प्रोफेसर शाह के दोनों संशोधनों—संख्या 1346 और 1348—का विरोध करता हूं और परिषद् से प्रार्थना करता हूं कि अनुच्छेद 64 को वर्तमान रूप में ही स्वीकार कर लिया जाये।

*__श्री राजबहादुर__ (संयुक्त राज्य मत्स्य): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रोफेसर के. टी. शाह द्वारा पेश किये गये संशोधन का विरोध करने के लिये ही यहां आया हूं। वे समय समय पर जो बहुत से संशोधन पेश करते रहे हैं, उनसे मेरा यह ख्याल हो गया है कि वे एक निश्चित योजना के अनुसार प्रस्ताव कर रहे हैं और वे इस देश के लिये जनतंत्र की संसदात्मक प्रणाली के स्थान पर प्रधानात्मक प्रणाली का विधान चाहते हैं। किन्तु, उनके पांडित्य और अनुभव का आदर करते हुए भी, मैं देखता हूं कि उसमें भी वह सामंजस्य नहीं रखते हैं। जब हमने अनुच्छेद 42 पर विचार किया जिसके अनुसार संघ की समस्त अधिशासी शक्ति प्रधान में निहित होगी, तब उन्होंने स्वयं उस अनुच्छेद पर दो संशोधन संख्या 1040 और 1045 पेश किये थे और उनका एक संशोधन यह था:

"The sovereign executive power and authority of the Union shall be vested in the President, *and shall be exercised by him* in accordance with the Constitution and in accordance with the laws made thereunder and in force for the time being."

(संघ की सार्वभौमिक अधिशासी शक्ति और प्राधिकार प्रधान में निहित होंगे और उनका प्रयोग विधान के अनुसार तथा उसके अन्तर्गत निर्मित तथा संप्रति चलन में जो कानून होंगे उनके अनुसार करेगा।)

इसका यह स्पष्ट फलितार्थ है कि सारे अधिशासी कार्य प्रधान द्वारा और उसके नाम में किये हुए कहे जाने चाहियें और विचाराधीन अनुच्छेद 64 का भी ठीक यही आशय, अर्थ तथा फलितार्थ है। अत: मैं समझ नहीं पाता कि प्रोफेसर के.टी. शाह अपने संशोधन की शर्तों से क्यों अब विमुख हो रहे हैं जिन्हें उन्होंने अनुच्छेद 42 पर पेश किया था। हमारा तो स्पष्टतया यही आशय है कि संघ की

समस्त अधिशासी शक्ति प्रधान में निहित होनी चाहिये और सारे सरकारी अदेश तथा निर्देश प्रधान के नाम पर जारी होंगे। प्रधान के नाम में आदेश जारी करने में किसी ज्ञात जनतंत्रात्मक सिद्धान्त के अन्तर्गत कोई परस्पर वैपरीत्य अथवा असामंजस्य नहीं है, और इसलिये, मेरा निवेदन है, कि प्रोफेसर शाह के संशोधन को स्वीकार करने का परिषद् के लिये कोई कारण नहीं है।

***माननीय डॉक्टर बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, मेरे विचार में उत्तर की कोई आवश्यकता नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 64 के खण्ड (1) में 'प्रधान' शब्द के स्थान पर 'जो संसद् विधि द्वारा' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है :

"कि अनुच्छेद 64 के खण्ड (2) में 'प्रधान' के स्थान में, जहां वह पहली बार प्रयुक्त हुआ हो, 'भारत सरकार' शब्द, प्रधान के स्थान में, जहां वह दूसरी बार प्रयुक्त हुआ हो, 'मन्त्रिपरिषद्' और 'प्रधान' शब्द के स्थान पर जहां वह तीसरी बार प्रयुक्त हुआ हो, 'भारत सरकार' शब्द क्रमश रख दिये जायें और खण्ड 2 के अन्त में निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that nothing in this article shall invalidate any act or hord of Government expressed in name of a particular Department or Ministry.'

(परन्तु इस अनुच्छेद की किसी बात से सरकार को कोई कार्य या वचन जो किसी विभाग अथवा मन्त्रालय के नाम से अभिव्यक्त हो अवैध नहीं होगा।)"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 64 विधान का भाग हो।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*अनुच्छेद 64 विधान में जोड़ दिया गया।*

## अनुच्छेद 65

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1349 का तो नकारात्मक प्रभाव है, अत: उसे पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती।

संशोधन संख्या 1350 श्री एच.वी. कामत के नाम में है और पेश किया जा सकता है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं, श्रीमान्:

"कि अनुच्छेद 65 के खण्ड (क) में 'President' शब्द के पश्चात् एक कामा (अर्ध-विराम) तथा 'as soon as they are made' ये शब्द रख दिये जायें। (हिन्दी अनुवाद में 'प्रधान' शब्द के पूर्व 'ज्यों ही वे किये जायें' ये शब्द रखे जायें।)"

वर्तमान रूप में खण्ड इस प्रकार है:

"प्रधान मन्त्री का कर्त्तव्य होगा–

'संघ के प्रशासन सम्बन्धी मन्त्रिपरिषद् के समस्त निर्णय, प्रधान को पहुंचाना.....।' "

यदि मेरा संशोधन परिषद् स्वीकार कर ले तो संशोधित रूप में खण्ड इस प्रकार हो जायेगा:

"It shall be the duty of the Prime Minister—

to communicate to the President, as soon as they are made, all decisions of the Council of Ministers."

(प्रधान मन्त्री का कर्त्तव्य होगा–

'संघ के प्रशासन सम्बन्धी मन्त्रिपरिषद् के समस्त निर्णय, ज्यों ही वे किये जायें, प्रधान को पहुंचाना।')

यह संशोधन महज रस्म के तौर पर ही है और इससे तो खण्ड के अर्थ में स्पष्टता आ जायेगी। मेरे विवेकानुसार विधान में ऐसे खण्ड की कोई आवश्यकता नहीं है, और मेरे विचार में इसे मन्त्रिमण्डल के कार्य-नियमों में ही रखा जा सकता है। किन्तु किसी तरह यह चीज़ विधान में आ गई है और कोई संशोधन जो इसे हटाने के लिये है उसकी अनुमति नहीं दी जायेगी, क्योंकि यह प्रस्ताव

का निराकरण करता है। व्यक्तिगत रूप से मैं यह चाहता था कि यह सारा अनुच्छेद होता ही नहीं, क्योंकि यह तो मन्त्रिमण्डल के कार्य-नियमों का ही एक नियम है; और इस विषय में केवल इतना ही करना चाहिये था कि इसे मन्त्रिपरिषद् के कार्य-नियमों में रख दिया जाता। किन्तु क्योंकि यह हमारे समक्ष पेश हुआ है तो मैं यहां संशोधन पेश करना चाहता हूं ताकि इस उपखण्ड (क) के विषय में और स्पष्टीकरण हो जाये, क्योंकि यदि मन्त्रिपरिषद् के निर्णयों को, ज्यों ही वे किये जायें, तुरन्त ही प्रधान के पास पहुंचाना चाहिये,—हां, हो सकता है कि वे उसके पश्चात् तुरन्त ही पहुंचा दिये जायेंगे,–किन्तु इसे पूर्णतः स्पष्ट करने के लिये हम इसके बारे में प्रावधान भी कर सकते हैं कि मन्त्रिमण्डल के सब निर्णयों को, ज्यों ही वे किये जायें, प्रधान के पास पहुंचाना चाहिये। इससे यह होगा कि यदि कोई ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाये, जैसी कि उपखण्ड (ख) और (ग) में कल्पना की गई है, तो प्रधान विवरण मांग सकता है और यदि प्रधान कहे तो किसी विषय पर, जिस पर पहले ही मन्त्रिमण्डल में निर्णय हो चुका हो, फिर विचार किया जा सकता है, जैसा कि इस अनुच्छेद के उपखण्ड (ग) में लिखा है। अन्य मामलों के समान इस मामले में भी विलम्ब भयावह हो सकता है और इसलिये इस विषय में किसी भी विलम्ब को हटाने के उद्देश्य से किसी टालमटोल को हटाने के लिये मैं प्रस्ताव करता हूं, श्रीमान्, कि मन्त्रिमण्डल के निर्णयों को, ज्यों ही वे किये जायें, प्रधान के पास पहुंचा देना चाहिये। मैं संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1350 को पेश करता हूं और परिषद् से इसको स्वीकार करने के लिये अनुरोध करता हूं।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर एक संशोधन है जो पंचम सूची (षष्ठ सप्ताह) का संशोधन संख्या 71 है और श्री आर.के. सिधवा के नाम में है, जो परिषद् में नहीं है।

तत्पश्चात् हम संशोधन संख्या 1351 को लेते हैं जो श्री ए. के. मैनन और श्री बी. एम. गुप्त के नाम में है।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 1352 प्रोफेसर के. टी. शाह के नाम में है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह :** यह तो विस्तार का विषय है और मैं चाहता हूं कि इस संशोधन को पेश करने के विषय में मुझे क्षमा किया जाये।

***उपाध्यक्षः** इस समय परिषद् के समक्ष केवल एक संशोधन रह गया है और अब इस खंड पर व्यापक वाद-विवाद हो सकता है। डॉक्टर अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना पसंद करेंगे?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** नहीं श्रीमान्, मैं श्री कामत के संशोधन को स्वीकार नहीं करता।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 65 के खण्ड (क) में 'President' शब्द के पश्चात् एक कामा (अर्धविराम) तथा 'as soon as they are made' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 65 विधान का भाग हो।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*अनुच्छेद 65 विधान में जोड़ दिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** साधारणतया हम अपने मुस्लिम भाइयों की सुविधा के हेतु 1 बजे कार्य समाप्त करते है। आज हम अपनी सुविधा के लिये अभी समाप्त कर देते हैं। परिषद् कल प्रात: के दस बजे तक के लिये स्थगित होती है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** क्या मैं आपसे प्रार्थना कर सकता हूं, श्रीमान्....

***उपाध्यक्ष:** परिषद् स्थगित हो गई है, अब कोई कार्य नहीं हो सकता।

*तत्पश्चात् परिषद् शनिवार, 8 जनवरी, 1949 को प्रात: के दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।*

Con. 3. VII. 36. 49
250

अंक 7
संख्या 36

शनिवार,
8 जनवरी
सन् 1949 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

मतदाता सूचियां तैयार करने का प्रस्ताव..... 2387-2454

विधान का मसौदा-(जारी)..... 2455-2463

[अनुच्छेद 149 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

शनिवार, 8 जनवरी, सन् 1949 ई.

---

*उपाध्यक्ष (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में कांस्टीट्यूशन हाल नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे विधान-परिषद् की बैठक हुई।*

---

## मतदाता-सूचियां तैयार करने का प्रस्ताव

***उपाध्यक्ष** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): कार्यावली में दिया हुआ विषय यह है कि सभापति की ओर से एक प्रस्ताव उपस्थित किया जायेगा।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): एक औचित्य सम्बन्धी प्रश्न है श्रीमान्, क्या मैं आपसे यह निवेदन कर सकता हूं कि आप हमें यह बताने की कृपा करें कि हमारी परिषद् की कार्य-प्रणाली के किस नियम के अनुसार यह प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा पेश किया जा रहा है? मेरी जानकारी में परिषद् के नियमों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिसके अनुसार इस प्रकार का कोई भी प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा प्रस्तुत किया जा सके। अतः श्रीमान्, हम यह जानना चाहते हैं कि किस असाधारण प्रावधान अथवा नियम के अन्तर्गत इस प्रणाली को ग्रहण किया जा रहा है क्योंकि मैं पूर्ण विनम्रता के साथ यह कहूंगा कि जिस प्रस्ताव का मसौदा आज इस सभा के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है वह केवल आलोचना का ही विषय नहीं है वरन् उसमें केवल मसौदा सम्बन्धी त्रुटियों को ही नहीं बल्कि सार सम्बन्धी त्रुटियों तक को सही करने की गुंजाइश है। इसलिये मैं आपसे यह निवेदन करूंगा कि आप हमें यह बता दें कि क्या कोई ऐसा नियम है जिसको हम स्वीकार कर चुके हों और जो अध्यक्ष को इस प्रकार के प्रस्ताव रखने का अधिकार प्रदान करता हो और यह भी बतावें कि अध्यक्ष द्वारा पेश करने पर क्या इस प्रस्ताव पर सारी आलोचना और पर्यालोचना बन्द हो जायगी।

---

*इस चिन्ह का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***श्री रोहिणीकुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): क्या मैं भी आपसे यह निवेदन कर सकता हूं कि आप कृपा कर इस बात पर प्रकाश डालें कि क्या इस प्रस्ताव पर कोई संशोधन रखा जा सकेगा क्योंकि इस प्रस्ताव में कुछ विवादास्पद विषय भी हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): मैं भी यह समझता हूं कि इस संकल्प में कुछ संशोधनों की आवश्यकता है। यदि यह प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा पेश किया जायेगा तो हमारे लिये उस पर कोई संशोधन प्रस्तुत करना अथवा उस पर पर्यालोचन तक करना असम्भव हो जायेगा। मैंने सर बी. एन. राउ को कुछ संशोधनों का सुझाव दे दिया है। इन परिस्थितियों में यह बहुत ही अच्छा होगा कि किसी मंत्री द्वारा इस संकल्प को पेश करने दिया जाये जिस से कि हम इस विषय पर पर्यालोचन कर सकें। यह बहुत ही संतोषजनक होगा।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): श्रीमान्, मेरा प्रश्न यह है कि क्या यह सभा ऐसा संकल्प पारित करने की क्षमता रखती है जिसे आप प्रस्तुत करने वाले हैं। मैं समझता हूं कि धारा 291 के अनुसार अधिराज्य की संसद् ही मताधिकार और निर्वाचन सम्बन्धी आदेश निकाल सकती है। श्रीमान्, आपको याद होगा कि हमारे अध्यक्ष ने, मुझे यह नहीं मालूम की किस अधिकार से, भाषावार प्रान्त बनाने के विषय पर विचार करने के लिये एक कमीशन नियुक्त करने का आदेश निकाला था। उस पर मेरे मित्र श्री भारती ने यह दावा किया था और अध्यक्ष को एक पत्र लिखा था कि धारा 290 के अन्तर्गत प्रान्तों का निर्माण केवल भारतीय सरकार तथा अधिराज्य की संसद् द्वारा ही किया जा सकता है। श्रीमान्, मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या इस सभा को भारतीय सरकार की धारा 291 के अन्तर्गत स्पष्ट प्रावधान के होते हुए इस प्रकार के संकल्प को जिसको आप प्रस्तुत करने वाले हैं पारित करने का अधिकार है।

***पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, अभी तक दो विशिष्ट बातें उठाई गई हैं एक मेरे माननीय मित्र श्री कामत द्वारा और दूसरी मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा द्वारा। श्री कामत यह चाहते हैं कि आप उस विशिष्ट नियम को बतायें जिसके द्वारा आपको इस प्रकार के प्रस्ताव रखने का अधिकार हो जो आज के कार्यक्रम में दिया हुआ है। इस सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि यह

एक सुनिश्चित प्रणाली है कि कभी-कभी सभा की अनुमति से अध्यक्ष प्रस्ताव पेश कर सकता है। हमारे समक्ष अभी हाल का एक उदाहरण है जब कि डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अध्यक्ष पद से मि. मुहम्मदअली जिन्ना की मृत्यु पर शोक प्रस्ताव पेश किया था। यह उदाहरण हमारे सामने है और मैं समझता हूं कि इस प्रस्ताव के रखने में अध्यक्ष के लिये कोई रुकावट नहीं है; यद्यपि व्यक्तिगत रूप में मैं यह पसन्द करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर अथवा अन्य कोई व्यक्ति इस प्रस्ताव को पेश करे।

श्री सिधवा द्वारा उठाई गई दूसरी बात के सम्बन्ध में मैं समझता हूं और मुझे यह विश्वास है कि इस बात में सभा मुझसे सहमत होगी कि चूंकि यह सभा सम्पूर्ण सत्तायुक्त है अत: इस सम्पूर्ण सत्तायुक्त सभा के मार्ग में इस प्रकार का संशोधन प्रस्तुत करने में कोई रुकावट नहीं है। यह सत्य है कि विधायी-परिषद् के रूप में इस विधान-परिषद् को इस प्रकार का आदेश पारित करने की क्षमता है। परन्तु विधान-निर्मातृ-परिषद् के रूप में विधान-परिषद् को विधायी-परिषद् की अपेक्षा अधिक वृहद् तथा व्यापक अधिकार है। मैं समझता हूं कि यह बिल्कुल ठीक है और प्रान्तीय सरकार को आगामी निर्वाचनों से सम्बन्धित आवश्यक प्रारम्भिक कार्रवाइयों के करने का अधिकार प्रदान करने के संकल्प को पारित करना इस सभा की कार्य क्षमता के पूर्णतया अन्तर्गत है। अत: मैं समझता हूं कि दूसरी बात जिसे श्री सिधवा ने उठाया है उसमें कोई महत्त्वपूर्ण सार नहीं है।

श्रीमान्, श्री सिधवा ने भाषावार प्रान्त निर्माण करने के कमीशन की नियुक्ति के सम्बन्ध में एक और प्रश्न उठाया था। यह सत्य है कि इस सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। एक वर्ग का यह मत है कि यह सामर्थ्य के परे की बात है। मैं उस प्रश्न के औचित्य तथा कमीशन नियुक्त करने के आदेश के औचित्य में नहीं जाना चाहता हूं। पर मैं यह बताना चाहूंगा कि उस आशय का कोई भी प्रस्ताव विधान-परिषद् मे पेश अथवा पारित नहीं किया गया था। इस बात को ध्यान में रखना चाहिए। यहां तो प्रश्न ही सर्वथा भिन्न है। यहां तो यह सभा, यह विधान-परिषद् एक संकल्प द्वारा प्रान्तीय सरकारों को कुछ काम करने के लिये अधिकार दे रही है और मैं समझता हूं कि इस सम्बन्ध में कोई भी गैर कानूनी अथवा नियम विरोधी बात नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, एक व्याख्या सम्बन्धी बात पर मैं केवल यही कहूंगा कि शोक प्रस्ताव और इस प्रकार के प्रस्ताव में जमीन आसमान का फर्क है। (*हंसी*)

***श्री आर. वी. धुलेकर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं यह निवेदन करता हूं कि एक सर्वसत्तायुक्त सभा विधान-मण्डल को आदेश दे सकती है। यह विधान-परिषद् अपने विधायी पक्ष को इस संशोधन के पारित करने का आदेश दे सकती हैं और इस प्रकार हम उस कठिन स्थिति से मुक्त हो सकते हैं जो इस समय उत्पन्न हो गई है। यदि अध्यक्ष द्वारा यह संशोधन पेश किया जाता है तो एक ओर तो यह कठिनाई आ जाती है कि संशोधन पेश नहीं किये जा सकते हैं और दूसरी ओर यह आपत्ति है कि इस समय हम यहां पर विधायी सभा के रूप में नहीं बैठ रहे हैं। अतः मैं दो मार्ग बताऊंगा और उनमें से किसी एक का अनुसरण किया जा सकता है। या तो इस प्रस्ताव को विधान-परिषद् के विधायी पक्ष को भेज दिया जाये और या हम इस परिषद् को एक या दो दिन के लिये अथवा केवल एक ही दिन के लिये विधायी-परिषद् के रूप में परिणित कर दें। मैं निवेदन करता हूं कि इन दोनों में से किसी एक मार्ग का अनुसरण किया जा सकता है।

**श्री जगतनारायण लाल** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं एक तीसरा मार्ग बता सकता हूं। यदि अध्यक्ष द्वारा प्रस्ताव पेश किये जाने के बारे में सभा का एक मत नहीं है तो उसे किसी अन्य सदस्य द्वारा पेश होने दिया जाये और फिर उसे एक सामान्य प्रस्ताव समझा जाये और उस पर वाद-विवाद होने दिया जाये यद्यपि मैं समझता हूं कि इस प्रस्ताव पर कोई वाद-विवाद करने की गुंजाइश नहीं है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, जहां तक प्रस्ताव के गैर कानूनी होने का प्रश्न है इस सम्बन्ध में मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस प्रस्ताव को पेश करने की अध्यक्ष को पूर्ण क्षमता है। यह एक सम्पूर्ण सत्तायुक्त संस्था है और मैं नहीं समझ पाता हूं कि अध्यक्ष इस प्रकार का प्रस्ताव क्यों नहीं रख सकते हैं। मैं केवल यह चाहता हूं कि सभा इस प्रश्न पर विचार करे कि क्या यही उपयुक्त मार्ग है। सामान्यता अध्यक्ष द्वारा ऐसे प्रस्ताव रखे जाते हैं जिन पर वाद-विवाद करने की आवश्यकता नहीं होती है। पर मेरी कठिनाई

तो यह है कि इस प्रस्ताव में बड़े ही विवादास्पद विषय हैं और स्वयं मैंने इस पर दो संशोधन रखे हैं। खण्ड (4) के सम्बन्ध में मेरे संशोधन द्वारा इस बात का प्रयास किया गया है कि शरणार्थियों को अपने इरादे इत्यादि-इत्यादि की घोषणा लिख कर देने के उत्तरदायित्व से न लादा जाये और न उनको कोई ऐसा आदेश दिया जाये। यह बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न है क्योंकि पचास या साठ लाख लोगों को न्यायालय भेजना और इस प्रकार के घोषणा-पत्र भरवा कर दाखिल कराना आसान काम नहीं है। इसी प्रकार से खण्ड (3) पर मैंने एक संशोधन भेजा है कि 31 मार्च 1948 के स्थान में 31 मार्च 1949 कर दिया जाये।

***उपाध्यक्षः** मैं पारिभाषिक व्यवस्था से अपरिचित हो सकता हूं पर अति विनीत भाव से क्या मैं यह संकेत कर सकता हूं कि जब तक प्रस्ताव को पेश नहीं किया जाये तब तक किसी संशोधन का हवाला नहीं दिया जा सकता है?

**पं. ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान्, मैं अपना संशोधन पेश नहीं कर रहा हूं वरन् केवल यह निवेदन कर रहा हूं कि यदि अध्यक्ष द्वारा इस प्रस्ताव को पेश किया जाता है तो अन्य कोई संशोधन पेश नहीं होने दिया जायेगा। मैं उन लोगों की उत्सुकता को भली प्रकार से समझता हूं जो 1950 में निर्वाचन करना चाहते हैं और मैं भी इसी विचार का हूं कि जितनी जल्दी हो सके निर्वाचन किये जायें। अतः रुकावट डालने की अपेक्षाकृत मैं तो सहायक होना चाहता हूं। पर इसके साथ ही साथ मैं यह भी चाहता हूं कि सभा में संशोधन पेश करने दिये जायें। यदि अध्यक्ष द्वारा प्रस्ताव पेश किया जाता है तो हम संशोधन पेश नही कर सकेंगे और खण्ड (3) और (4) के बारे में कुछ नहीं कह सकेंगे। अतः अनुग्रहपूर्वक श्री धुलेकर के सुझाव को स्वीकर किया जाये और इस विषय को विधायी पक्ष को भेज दिया जाये या इस सभा द्वारा विधायी पक्ष को एक निदेशक भेज दिया जाये और इस विधान-परिषद् के आदेशानुसार वह सभा इस पर कार्यवाही करे।

***सेठ गोविन्ददास** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, जो वाद-विवाद यहां उठाया गया है, मैं उसे नहीं समझ सका हूं। श्रीमान्, मेरा ख्याल है कि वाद-विवाद इस बात पर उठाया गया है.....

***एक माननीय सदस्यः** कृपया हिन्दी में बोलिये।

**सेठ गोविन्ददासः** मेरे मत से जो विवाद यहां पर खड़ा किया गया है, उसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। जो प्रस्ताव यहां पर आप रखना चाहते हैं और प्रस्ताव

[सेठ गोविन्ददास]

में जितनी बातें कही गई हैं, वह करीब-करीब सब हम गत दो या तीन दिन में पास कर चुके हैं। इस प्रस्ताव में केवल यह कहा गया है कि आगे के चुनाव जल्दी सन् 1950 ई. में हो जायें। और वही हमारा उद्देश्य था जब हमने 67 और 148 धारायें यहां स्वीकृत कीं।

यह विवाद उठाना कि सभापतिजी को इस प्रस्ताव को रखने का अधिकार है या नहीं, मैं समझता हूं, निरर्थक है। सभापति के कुछ मौलिक अधिकार होते हैं और इन अधिकारों का यदि नियमों में उल्लेख नहीं भी हुआ हो तो भी ये अधिकार उसको प्राप्त रहते हैं और समय पर इन अधिकारों का वह उपयोग कर सकता है। फिर यह प्रश्न उठाना कि असेम्बली को इस तरह के प्रस्ताव पास करने का अधिकार है या नहीं, मैं समझता हूं, यह भी निरर्थक है, क्योंकि हम इस बात को मंजूर कर चुके हैं, एक बार नहीं, अनेक बार, कि इस असेम्बली को सारे अधिकार प्राप्त हैं। जब मैं प्रस्ताव की तरफ आता हूं तो मुझे उसमें विवाद की कोई बात नजर नहीं आती। प्रस्ताव में इधर-उधर कुछ सुधार किये जा सकते हैं। वाक्यों और शब्दों को और भी ठीक किया जा सकता है या बिना कोई सुधार के भी प्रस्ताव जैसा का तैसा पास कर दिया जाय तो भी कोई अनर्थ नहीं होगा। जैसा मैंने आपसे कहा है कि इस प्रस्ताव की बातों के हम दो तीन दिन हुए पास कर चुके है, उनका जिक्र इस प्रस्ताव में है। मेरी समझ में नहीं आता कि इस पर विवाद करने की क्या जरूरत हुई। हमारे पास बहुत काम है और जो प्रस्ताव आपने पेश किया है, उसको हम सब एक मत से पास कर दें।

***श्री एच. वी. कामतः** क्या मैं नियम 25 के उपनियम (2) की ओर संकेत कर सकता हूं जिसमें यह कहा गया है कि सदस्य द्वारा प्रत्येक प्रस्ताव की सूचना दी जायेगी? श्रीमान्, जब आप अध्यक्ष हैं तो मैं यह दावे के साथ कह सकता हूं कि आपको सदस्य नहीं समझा जा सकता।

***उपाध्यक्षः** कदाचित् मेरे लिये यह बड़ा ही कष्ट साध्य कार्य है कि जिस प्रणाली को मैंने अंगीकार करना चाहा था उसकी मुझे रक्षा करनी पड़ी है। पर मैं एक आधारभूत तथ्य को स्वीकार करता हूं और वह यह है कि यह सभा सर्वोच्च सभा है और इस प्रकार के प्रस्ताव की आवश्यकता है। इन तथ्यों को मैं नहीं भूल सकता हूं। मैं यह भी मानता हूं कि यदि इस सर्वोच्च सभा द्वारा यह प्रस्ताव

स्वीकार कर लिया जाता है तो वह स्वयं ही इस कार्यप्रणाली को न्यायसंगत बना देगा। (*धन्य, धन्य*) मेरा यह विचार है।

और फिर मैं यह देखता हूं कि अभी तक दो ही संशोधन आये हैं जिससे यह बात स्वयं सिद्ध हो जाती है कि इस प्रस्ताव पर लगभग सारी सभा मेरे साथ है। अत: मैं इस प्रस्ताव को अध्यक्ष द्वारा पेश करने का विचार प्रस्तुत करता हूं।

मैं यह जानता था कि यहां नियमों और कार्यप्रणाली के कुछ ऐसे धुरंधर पंडित हैं जो अध्यक्ष को इस अतिआवश्यक प्रस्ताव के पेश करने में रुकावट डालने का प्रयत्न करेंगे। इसलिये मैंने एक विवरण तैयार किया है जिसे मैं अब सभा के समक्ष रखूंगा। माननीय सदस्य इस बात में मुझसे सहमत होंगे कि इस प्रस्ताव के पेश करने की तथा पारित करने की आवश्यकता है।

पिछले कुछ दिनों इस विधान-परिषद् में हम अपना ध्यान विधान के मसौदे के उन अनुच्छेदों की ओर देते रहे जो हमारे भावी केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान-मण्डलों की रचना और निर्माण से सम्बन्ध रखते थे। जैसा कि माननीय सदस्यों को विदित है यह प्रस्ताव इस विचार से प्रस्तुत किया गया है कि ऐसे आवश्यक निर्वाचक तन्त्र की स्थापना की जा सके जिससे कि निर्वाचक सूचियों और अन्य सम्बद्ध विषयों की तैयारी का कार्य अविलम्ब हाथ में लिया जा सके।

अध्यक्ष के आदेशानुसार विधान-परिषद् के सचिवालय ने इस प्रयोजन हेतु कुछ कार्य आरम्भ कर भी दिया है। कुछ प्रांतों और राज्यों में इस कार्य के प्रथम भाग को अर्थात् प्रारम्भिक सूचियां तैयार करने के कार्य को लगभग पूरा कर लिया है। जिन अनुच्छेदों को अब तक हमने स्वीकार कर लिया है वे उन सिद्धान्तों तथा मूलभूत बातों का निर्धारण करते हैं जिनके अनुसार निर्वाचन कार्य किया जायेगा। पर इतना ही काफी नहीं है। हमें वह समय भी बताना है जिसमें हम निर्वाचनों को समाप्त करना चाहते हैं क्योंकि नियत तिथि के हिसाब से निर्वाचक सूचियां तैयार करनी होंगी। हमें मतदाताओं की योग्यता इत्यादि का भी अधिकृत रूप में विनिधान करना है।

स्टीयरिंग कमेटी की 5 जनवरी 1949 की बैठक में इस विषय पर विचार किया गया और उस कमेटी ने यह तय किया कि परिषद् के समक्ष इस विषय का एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाये और यदि यह प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा पेश किया जाये तो उपयुक्त होगा। साथ ही साथ संयोगवश यह प्रस्ताव उन संदेहों को भी दूर

[उपाध्यक्ष]

करेगा जो कुछ क्षेत्रों में उत्पन्न हो गये हैं कि हम नये विधान को शीघ्र लागू करने के बारे में बहुत गम्भीर नहीं हैं और ऐसे संदेह न्यायसंगत न हों।

मुझे सभा को यह और स्मरण कराना है कि जनता उन कठिनाइयों को भली प्रकार नहीं समझ पाती हैं जिनका हमें आज सामना करना पड़ता है। भारत के अनेकों क्षेत्रों से मेरे पास पत्र आ रहे हैं और सभा इस बात से परिचित ही है कि मैं उस सम्प्रदाय का हूं जो पहले अल्पसंख्यक सम्प्रदाय था परन्तु आज वह बहुसंख्यक सम्प्रदाय है। मेरे सम्प्रदाय के सदस्य, जिनके सम्पर्क में मैं रहा हूं, भारत के समस्त भागों से मुझे पत्र भेज रहे हैं कि इतनी देर क्यों लगाई जा रही है। ये लोग उन कठिनाइयों को नहीं समझ पाते हैं जिनका हम सामना कर रहे हैं अर्थात् सर्वप्रथम भारत के विभाजन के पश्चात् जो विपत्तियां आईं, शरणार्थियों की समस्या, हैदराबाद की विपत्ति, काश्मीर की विपत्ति और फिर देश की आर्थिक स्थिति में व्यापक विशृंखलता। जो इन कठिनाइयों को नहीं समझते वे सोचते हैं कि यह महान् संस्था अपने कार्य में कुछ ऐसे कारणों से देर लगा रही है जो अनुदारता से परिपूर्ण हैं और जिनका मैं उल्लेख करना नहीं चाहता हूं। देश में जो भावना व्यापक है उसकी कुछ जानकारी बहुत से सदस्यों की भी है। अतः यह आवश्यक है कि इन भ्रमों का निवारण किया जाये। यह आवश्यक है कि जनता यह जान ले कि हम लोग जितनी जल्दी हो सकता है उतनी जल्दी चुनाव करने के बारे में गम्भीरता से सोच रहे हैं।

मैं और भी कुछ कहूंगा और वो यह कि मैं एक विशिष्ट राजनैतिक संस्था का व्यक्ति हूं। मैं आशा करता हूं कि सदस्य इस बात को मानेंगे कि इस सभा के कार्य संचालन में अपने राजनैतिक विचारों को मैंने किसी रूप में भी नहीं आने दिया है। उस राजनैतिक संस्था पर अनेकों क्षेत्रों से हमले हुये हैं अतः यह आवश्यक है कि उसकी स्थिति को स्पष्ट कर दिया जाये। यही कारण है कि अध्यक्ष पद से मैं इस प्रस्ताव को पेश कर रहा हूं। मैं आशा करता हूं कि माननीय सदस्य इसके महत्त्व को समझेंगे और बिना किसी वाद-विवाद और संशोधन के इसे स्वीकार करेंगे। मैं फिर यह कहे देता हूं कि मैं किसी भी संशोधन को स्वीकार नहीं करूंगा। (*हंसी*)

प्रस्ताव यह है :

"Resolved that instructions be issued forthwith to the authorities concerned for the preparation of electoral

rolls and for taking all necessary steps so that elections to the Legislatures under the new Constitution may be held as early as possible in the year 1950.

Resolved further that the State electoral rolls be prepared on the basis of the provisions of the new Constitution already agreed to by this Assemetebly and in accordance with the principles hereinafr mentioned, namely:—

(1) That no person shall be included in the electoral roll of any constituency—

(a) if he is not a citizen of India; or

(b) if he is of unsound mind and stands so declared by a competent court.

(2) That 1st January 1949 shall be the date with reference to which the age of the electors is to be determined.

(3) That a person shall not be qualified to be included in the electoral roll for any constituency unless he has resided in that constituency for a period of not less that 180 days in the year ending on the 31st March 1948. For the purposes of this paragraph, a person shall be deemed to be resident in any constituency if he ordinarily resides in that constituency or has a permanent place of residence therein.

(4) That subject to the law of the appropriate legislature, a person who has migrated into a Province or Acceding State on account of disturbances or fear of disturbances in his former place of residence shall be entitled to be included in the electoral roll of a constituency if he files a declaration of his intention to reside permanently in that constituency."

[यह निश्चय किया जाता है कि तत्सम्बन्धी अधिकारियों को मतदाताओं की सूचियां तैयार करने और समस्त आवश्यक प्रबंध करने के लिये आदेश दे दिये

[उपाध्यक्ष]

जायें जिससे कि नये विधान के अन्तर्गत विधान-मण्डलों का निर्वाचन सन् 1950 में शीघ्र से शीघ्र किया जा सके।

आगे यह और निश्चय किया जाता है कि राज्यों की मतदाताओं की सूचियां नये विधान के प्रावधानों के आधार पर, जो परिषद् द्वारा स्वीकार किये जा चुके हैं तथा उन सिद्धान्तों के अनुसार जो यहां दिये गये हैं, तैयार की जाये, अर्थात्.....

(1) किसी व्यक्ति को किसी निर्वाचन-क्षेत्र की मतदाताओं की सूची में नहीं रखा जायेगा–

(क) यदि वह भारत का नागरिक न हो; या

(ख) यदि उसकी बुद्धि विक्षिप्त हो और किसी अधिकार सम्पन्न न्यायालय द्वारा ऐसी घोषणा कर दी गई हो।

(2) 1 जनवरी सन् 1949 की तिथि मतदाताओं की आयु निश्चित करने के लिये होगी।

(3) कोई व्यक्ति किसी निर्वाचन-क्षेत्र की मतदाताओं की सूची में सम्मिलित किये जाने के योग्य नहीं होगा जब तक कि तारीख 31 मार्च सन् 1948 ई. को समाप्त होने वाले वर्ष में उसने उस निर्वाचन- क्षेत्र में कम से कम 180 दिनों तक निवास न किया हो। इस पैरा के प्रयोजन के लिये कोई व्यक्ति उस निर्वाचन-क्षेत्र का निवासी समझा जायेगा, जिसमें वह सामान्यतया रहता हो या जिसमें उसका स्थायी निवास-स्थान हो।

(4) समुचित विधान-मण्डल के कानून के आधीन यदि कोई व्यक्ति अपने पूर्वनिवास-स्थान से उपद्रव के कारण या उपद्रव से डर कर किसी प्रान्त या भारतीय संघ में सम्मिलित किसी रियासत में चला गया हो तो वह उस निर्वाचन-क्षेत्र की मतदाताओं की सूची में सम्मिलित कर लिया जायेगा जिसमें अपने स्थायी रूप से निवास करने के उद्देश्य का वह लिखित घोषणा-पत्र दाखिल कर दे।)"

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, एक बात के स्पष्टीकरण के सम्बन्ध में क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि दोनों अनुच्छेद 67 (6) और 149 (2) को पारित करने के पश्चात् भी केवल विक्षिप्तावस्था की निर्योग्यता को ही इस प्रस्ताव के पैरा 1 के खण्ड (ख) में क्यों रखा गया है जब कि उन दोनों अनुच्छेदों में अन्य निर्योग्यताएं जैसे कि पातक अथवा भ्रष्ट या अवैध आचरण रखे गये हैं। यह केवल स्पष्टीकरण के लिये है।

दूसरी बात यह है कि आपके प्रस्ताव के पैरा (1) के उपखण्ड (क) में यह दिया गया है कि "किसी व्यक्ति को किसी निर्वाचन-क्षेत्र की मतदाताओं की सूची में नहीं रखा जायेगा यदि वह भारत का नागरिक न हो," परन्तु दुर्भाग्यवश हमने नागरिकता सम्बन्धी अनुच्छेद को अभी पारित नहीं किया है इस कारण मतदाताओं की सूचियां तैयार कराने वाले अधिकारी अथवा गणना करने वाले व्यक्तियों को कठिनाई होगी कि कौन नागरिक है और कौन नहीं।

(श्री रोहिणीकुमार चौधरी बोलने के लिये खड़े हुये।)

***उपाध्यक्ष:** क्या आप इस विषय पर कुछ कहना चाहते हैं? मैं किसी संशोधन अथवा वाद-विवाद के लिये आज्ञा नहीं दे सकता हूं, पर यदि आप श्री कामत द्वारा उठाये गये प्रश्नों का उत्तर देना चाहते हैं तो आपका स्वागत है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं एक विषय पर आपका स्पष्टीकरण चाहता हूं। सर्वप्रथम प्रस्ताव के उपखण्ड (1) (ख) में दिया गया है कि "किसी व्यक्ति को किसी निर्वाचन-क्षेत्र की मतदाताओं की सूची में नहीं रखा जायेगा यदि उसकी बुद्धि विक्षिप्त हो और किसी अधिकार सम्पन्न न्यायालय द्वारा ऐसी घोषणा कर दी गई हो। इसका आशय यह है कि कोई व्यक्ति.....

***उपाध्यक्ष:** मैं किसी प्रकार का वाद-विवाद नहीं होने दे रहा हूं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं केवल एक प्रश्न पूछ रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** शान्ति, शान्ति। श्री त्यागी आप आइये।

**श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं आपसे निवेदन करता हूं कि किसी प्रकार के वाद-विवाद की आज्ञा न देने वाले अपने आदेश पर आप कृपा कर फिर से विचार करें। मुझे यह आशा है कि अध्यक्ष के आदेश

[श्री महावीर त्यागी]

के सम्बन्ध में अध्यक्ष से निवेदन करने का मुझे अधिकार है। यदि कोई ऐसा प्रस्ताव है जिस पर समस्त सभा सहमत है तब तो वह प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा पेश किया जा सकता है। संसद् में केवल ऐसे संशोधन ही अध्यक्ष द्वारा पेश किये जाते हैं। परन्तु यदि प्रस्ताव का विषय ऐसा है कि उसमें संशोधनों का होना उचित है तो उस प्रस्ताव को अध्यक्ष द्वारा पेश नहीं किया जाना चाहिये। श्रीमान्, मैं यह निवेदन करता हूं कि यह सम्पूर्ण सत्तायुक्त सभा है अत: आपके आज के आदेश को प्रान्तीय विधान-मण्डल उद्धृत कर सकेंगे। भविष्य में भी ऐसे अवसर आ सकते हैं जब कि किसी प्रकार के वाद-विवाद को बन्द करने के लिये अध्यक्ष द्वारा प्रस्ताव पेश किये जा सकेंगे। श्रीमान्, मैं यह निवेदन करता हूं कि इस कार्य से समस्त भारत में एक प्रकार की परम्परा स्थापित हो जायेगी। मैं यह निवेदन करता हूं कि आप कृपा कर किसी सदस्य अथवा किसी मंत्री द्वारा इस प्रस्ताव का प्रस्तुत कराना स्वीकार कर लें जिससे कि यदि कोई सदस्य भाषा अथवा विचार को सुधारना चाहता हो अथवा इसका विरोध करना चाहता हो तो उसे ऐसा करने में कोई रुकावट न हो। मैं निवेदन करता हूं कि आप अपने आदेश पर फिर से विचार करें या कम से कम यह घोषणा कर दें कि भविष्य में इसको उदाहरणस्वरूप नहीं माना जायेगा।

***माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, कदाचित् मैं नहीं बोलता परन्तु कर्त्तव्य मुझे एकाध शब्द बोलने के लिये विवश करता है यद्यपि वे शब्द बहत मधुर नहीं होंगे। मैं निवेदन करता हूं कि अध्यक्ष द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव पर वाद-विवाद को दबाने के लिये जिस कार्यप्रणाली को ग्रहण करने के लिये इस समय विचार प्रस्तुत किया गया है वह ऐसी कार्यप्रणाली है कि जिसके बारे में सुना तक नहीं गया है। संसदीय कार्यप्रणाली का जो कुछ ज्ञान मुझे है उसके आधार पर गम्भीरतापूर्वक मैं यह निवेदन करता हूं कि अध्यक्ष को केवल वही प्रस्ताव प्रस्तुत करन चाहिये जो समस्त सभा को मान्य हो और यदि एक भी व्यक्ति ऐसा है—मैं दो तक के लिये नहीं कह रहा हूं—जो संशोधन पेश करना चाहता है तो अध्यक्ष का कर्त्तव्य यह हो जाता है कि वह उस प्रस्ताव को पेश नहीं करे बल्कि किसी सदस्य को पेश करने के लिये आमन्त्रित करे। यदि वर्तमान सरकार इस प्रस्ताव के पक्ष में है तो वह उसे प्रस्तुत करे परन्तु अध्यक्ष

इस आधार पर कि यह प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया है वाद-विवाद के दबाने में सहायक न हो।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, टण्डनजी ने जो कुछ भी कहा है मैं उसके एक-एक शब्द का समर्थन करता हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि टण्डन जी जैसे गण्यमान्य व्यक्ति ऐसे निर्दोष प्रस्ताव का विरोध करते हैं और उस पर आक्षेप करते हैं।

***माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन:** मैं प्रस्ताव को तो स्वीकार कर लूंगा परन्तु वह तो केवल कार्यप्रणाली ही है जिसके प्रति मेरा निवेदन है कि वह मान्य नहीं है और जिसको अंगीकार करने के लिये विचार प्रस्तुत किया गया है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** लगभग साठ लाख शरणार्थी इसमें आते हैं और उन सबको लिखित घोषणा-पत्र दाखिल करने के लिये और कम से कम प्रति व्यक्ति दो रुपया खर्च करने के लिये विवश किया जायेगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** श्रीमान्, आखिर संशोधन द्वारा चाहा क्या गया है?

***माननीय सदस्यगण:** नहीं, नहीं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** मैं केवल कार्यप्रणाली के विषय पर भाषण दूंगा। श्रीमान्, आपने जिस प्रस्ताव को पेश किया है उसका मैं समर्थन करता हूं।

***माननीय सदस्यगण:** नहीं, नहीं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** औचित्य सम्बन्धी उठाये गये प्रश्न में कोई बात ही नहीं है। पहले भी अध्यक्ष द्वारा ऐसे प्रस्ताव पेश किये गये हैं।

जहां तक स्वयं प्रस्ताव का सम्बन्ध है वह तो बहुत पहले ही आ जाना चाहिये। इस प्रस्ताव को बहुत पहले ही प्रस्तुत कर देना चाहिये था। जनता यह जानना चाहती है कि सभा में क्या हो रहा है। इस सभा की प्रतिष्ठा और इस देश

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

की प्रतिष्ठा को इस बात की आवश्यकता है कि इस प्रकार का प्रस्ताव पेश किया जाये। जितना शीघ्र हम इसे स्वीकार करेंगे उतना ही हमारे लिये अच्छा है।

***श्री अलगूराय शास्त्री** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं यह जानना चाहता हूं कि ये माननीय सदस्य स्वयं ही इस प्रस्ताव को क्यों नहीं पेश करते हैं।

***उपाध्यक्ष:** जब मैंने इस विशेष कार्यप्रणाली को ग्रहण करने के लिये विचार प्रस्तुत किया था उस समय मैंने यह सोचा थे कि सिवा एक माननीय सदस्य के जिसने दो संशोधन भेजे थे बाकी लगभग समस्त सभा मेरे साथ है। अभी जो कुछ हुआ है उससे यह विदित होता है कि बड़ा ही मतभेद है और अधिकांश सदस्यों अथवा कई सदस्यों का यह विचार है कि यह प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा पेश नहीं होना चाहिये। आखिरकार मैं हूं तो सभा के आधीन ही और मैं इस बात को मानता भी हूं। पर माननीय सदस्य इस बात को स्वीकार करेंगे कि जो कुछ भी मैंने किया है उसके सम्बन्ध में सदैव सभा की अनुमति प्राप्त कर ली थी। और इससे ज्यादा क्या कि मैंने प्रत्येक कार्य में इस प्रकार की अनुमति प्राप्त कर ली थी। मैं यह मानता हूं कि यहां मैंने सभा के विचारों का गलत अनुमान लगाया। कदाचित् यह इस कारण हुआ कि मैं अब कांस्टीट्यूशन हाउस में नहीं हूं। जो कुछ भी हो ऐसी भावना तो विद्यमान है ही। अत: मैं प्रार्थना करता हूं कि कोई भी माननीय सदस्य इस प्रस्ताव को पेश कर दे।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** आपको नियमानुसार इस प्रस्ताव को वापस लेना पड़ेगा।

***उपाध्यक्ष:** ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रस्ताव के किसी अन्य सदस्य द्वारा पेश करने के पूर्व मुझे इस प्रस्ताव को नियमानुसार वापस लेना होगा। क्या मुझे नियमानुसार वापस करना पड़ेगा?

***माननीय सदस्यगण:** जी हां, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** बहुत अच्छा, सभा की अनुमति से वह वापस लिया गया।

(अनेकों सदस्य बोलने के लिये खड़े हुये।)

***उपाध्यक्ष:** पंडित नेहरू बोलना चाहते हैं। पंडित नेहरू।

***माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं निम्न प्रस्ताव पेश करता हूं:

"Resolved that instructions be issued forthwith to the authorities concerned for the preparation of electoral rolls and for taking all necessary steps so that elections to the Legislatures under the new Constitution may be held as early as possible in the year 1950.

Resloved further that the State electoral rolls be prepared on the basis of the provisions of the new Constitution already agreed to by this Assembly and in accordance with the principles hereinafter mentioned, namely:—

(1) That no person shall be included in the electoral roll of any constituency—

(a) if he is not a citizen of India; or

(b) if he is of unsound mind and stands so declared by a competent court.

(2) That 1st January 1949 shall be the date with reference to which the age of the electors is to be determined.

(3) That a person shall not be qualified to be included in the electoral roll for any constituency unless he has resided in that constituency for a period of not less than 180 days in the year ending on the 31st March 1948. For the purposes of this paragraph, a person shall be deemed to be resident in any constituency if he ordinarily resides in that constituency or has a permanent place of residence therein.

(4) That, subject to the law of the appropriate legislature, a person who has migrated into a Province or Acceding State on account of disturbances or fear of disturbances in his former place of residence shall

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

be entitled to be included in the electoral roll of a constituency if he files a declaration of his intention to reside permanently in that constituency."

(यह निश्चय किया जाता है कि तत्सम्बन्धी अधिकारियों को मतदाताओं की सूचियां तैयार करने और समस्त आवश्यक प्रबंध करने के लिये आदेश दे दिए जायें जिससे कि नये विधान के अन्तर्गत विधान-मंडलों का निर्वाचन सन् 1950 में शीघ्र से शीघ्र किया जा सके।

आगे यह और निश्चय किया जाता है कि राज्यों की मतदाताओं की सूचियां नये विधान के प्रावधानों के आधार पर जो परिषद् द्वारा स्वीकार किये जा चुके हैं तथा उन सिद्धान्तों के अनुसार जो यहां दिए गए हैं, तैयार की जायें, अर्थात्.....

(1) किसी व्यक्ति को किसी निर्वाचन-क्षेत्र की मतदाताओं की सूची में नहीं रखा जायेगा–

(क) यदि वह भारत का नागरिक न हो; या

(ख) यदि उसकी बुद्धि विक्षिप्त हो और किसी अधिकार सम्पन्न न्यायालय द्वारा ऐसी घोषणा कर दी गई हो।

(2) 1 जनवरी सन् 1949 की तिथि मतदाताओं की आयु निश्चित करने के लिए होगी।

(3) कोई व्यक्ति किसी निर्वाचन-क्षेत्र की मतदाताओं की सूची में सम्मिलित किये जाने के योग्य नहीं होगा जब तक कि तारीख 31 मार्च सन् 1948 ई. को समाप्त होने वाले वर्ष में उसने उस निर्वाचन-क्षेत्र में कम से कम 180 दिनों तक निवास न किया हो। इस पैरा के प्रयोजन के लिए कोई व्यक्ति उस निर्वाचन-क्षेत्र का निवासी समझा जायेगा जिसमें वह सामान्यतया रहता हो या जिसमें उसका स्थायी निवास-स्थान हो।

(4) समुचित विधान-मण्डल के कानून के अधीन यदि कोई व्यक्ति अपने पूर्व निवास-स्थान से उपद्रव के कारण या उपद्रव से डर कर

किसी प्रान्त या भारतीय संघ में सम्मिलित किसी रियासत में चला गया हो तो वह उस निर्वाचन-क्षेत्र की मतदाताओं की सूची में सम्मिलित कर लिया जायेगा जिसमें अपने स्थायी रूप से निवास करने के उद्देश्य का वह लिखित घोषणा-पत्र दाखिल कर दे।)

इस प्रस्ताव पर मैं केवल एक शंका का निवारण करने के अतिरिक्त और अधिक नहीं कहना चाहता हूं।

किसी माननीय सदस्य ने शायद यह उल्लेख किया था कि सरकार इस प्रस्ताव को पेश कर रही है। वास्तव में सरकार ने स्वयं इस प्रस्ताव को पेश नहीं किया है और न सरकार इस रूप में इस परिषद् में कार्य ही कर रही है। यह प्रस्ताव स्टीयरिंग कमेटी से आया है। यह स्टीयरिंग कमेटी का ही उत्तरदायित्व है। उस कमेटी ने यह विचारा कि वे एक ऐसा प्रस्ताव रख रहे हैं जिसमें वही विषय है जिसे इस सभा ने पहले ही स्वीकार कर लिया है और उसमें कोई नई या अनूठी बात नहीं है और इसी लिये उसने यह सुझाव देने का साहस किया कि माननीय उपाध्यक्ष महोदय अध्यक्ष पद से इस प्रस्ताव को पेश कर सकते हैं। वह ठीक था या नहीं मैं समझता हूं कि इस विषय में हमें पड़ने की ज़रूरत नहीं है। स्टीयरिंग कमेटी के विचार में यह कभी नहीं आया कि इस प्रस्ताव में कोई भी ऐसी अनूठी बात हो सकती है जिस पर कि आपत्ति की जायेगी।

जहां तक सरकार का सम्बन्ध है, सरकार ने कुछ समय पूर्व प्रान्तीय सरकारों को मतदाताओं की सूचियां तैयार करने के लिये कहा था। सच बात तो यह है कि चाहे यह प्रस्ताव स्वीकार न हो तो भी सरकार इन सूचियों को तैयार करने के काम को ले सकती है, पर एक यह कठिनाई हो जायेगी कि बाद में कदाचित् विधान-परिषद् के निर्योग्यता अथवा अन्य बात में परिवर्तन कर देने पर सारी मतदाताओं की सूचियां जो तैयार हो गई हैं या तैयार की जा रही हैं व्यर्थ हो जायेंगी अतः इस विषय पर विधान-परिषद् की इच्छाओं का कुछ संकेत प्राप्त करना वांछनीय था। पिछले कुछ दिनों से यह सभा निर्वाचन सम्बन्धी प्रावधानों पर विचार कर रही है उसे समाप्त करने के पश्चात् यह प्रस्ताव केवल उन्हीं प्रावधानों का समावेश मात्र करता है।

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

किसी माननीय सदस्य ने इस बात का हवाला दिया है कि खण्ड (1) में केवल दो योग्यतायें अथवा निर्योग्यतायें ही दी गई हैं। इस प्रस्ताव में केवल यही कहा गया है कि विधान-परिषद् ने अब तक जो कुछ निश्चय किया है उस पर विचार किया जाये। उन सब बातों का कहना आवश्यक नहीं समझा गया।

और फिर खण्ड (3) में आप यह देखेंगे कि निवास के सम्बन्ध में एक नियत तिथि दी गई है—अर्थात् 31 मार्च, 1948 में समाप्त होने वाले वर्ष में 180 दिन। यह तारीख वहां केवल इसलिये रखी गई है कि इस आधार पर कुछ सूचियां तैयार कर ली गई हैं और यदि यह तिथि नहीं रखी जाती तो वे सब व्यर्थ हो जातीं और उनको फिर से तैयार किया जाता।

मैंने एक यह आपत्ति सुनी थी, ऐसा मेरा ख्याल है कि मैंने सुना था कि खण्ड (4) के अन्तर्गत अनेकों शरणार्थियों तथा अन्य लोगों को सूची में नाम लिखाना कठिन हो जायेगा। बात यह है कि इस कार्य में कोई कठिनाई अथवा रुकावट पैदा करने का इरादा नहीं है परन्तु किसी न किसी प्रकार का विचार तो प्रकट करना ही पड़ेगा; अन्यथा आप प्रत्येक व्यक्ति का नाम सूची में लिख ही नहीं सकते हैं चाहे वह वहां रहना चाहे, रहने का विचार करे अथवा नहीं। इस विधि को सरल बनाने का कार्य प्रान्तीय सरकारों पर है। मान लीजिये एक व्यक्ति जिसका नाम सूची में लिख लिया जाता है उसका वहां ठहरने का विचार न हो। अत: यहां यह विचारा गया है कि स्थायी निवास-स्थान के सम्बन्ध में किसी न किसी प्रकार के इरादे की घोषणा करनी चाहिये आप यह देखेंगे कि यह खण्ड वास्तव में शरणार्थियों के लाभ के लिये है क्योंकि सामान्यता किसी स्थान में निवास-स्थान इत्यादि के लिये आप कुछ योग्यतायें रखते ही हैं। चूंकि बहुत से शरणार्थी जो यहां आ गये हैं वे उस योग्यता को नहीं रखते हैं इसलिये उनके आने में सुविधा देने के लिये यह खण्ड रखा गया है। शायद कुछ लोग यह समझते हैं कि यह खण्ड एक रुकावट है। यह खण्ड इसलिये रखा गया है कि निवास-स्थान का खण्ड उन पर लागू नहीं होता। यदि निवास-स्थान का खण्ड लागू हो जाये तब तो कोई कठिनाई नहीं है। चूंकि अभी हाल के आने वालों पर निवास-स्थान का खण्ड लागू नहीं होता इसलिये उनको सूची में सम्मिलित करना तब तक बड़ा कठिन हो जाता है जब तक उनके लिये कोई दूसरी शर्त न रखी जाये और वह शर्त यह

है कि भविष्य में निवास करने के इरादे की वे घोषणा कर दे। यदि भूत और भविष्य न हो तो वर्तमान भी नहीं रहता। कोई व्यक्ति यह नहीं जान सकता कि किस को सम्मिलित किया जाये और किसको नहीं। अत: मैं निवेदन करता हूं कि इस प्रस्ताव में जो कुछ भी कहा गया है वह इस सभा ने जो कुछ निश्चय किया है उससे केवल उद्‌भूत ही नहीं वरन् वास्तव में उसी से उद्‌भूत है और सम्मानपूर्वक मैं यह सच कहता हूं कि इस प्रस्ताव में ऐसा कुछ भी नहीं है जिस पर कोई वाद-विवाद हो। श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव को पेश करता हूं।

***श्री अलगूराय शास्त्री:** श्रीमान्, क्या मैं आपसे यह प्रार्थना कर सकता हूं कि आप मुझे प्रस्तावक महोदय से एक बात स्पष्ट करने के लिये निवेदन करने की आज्ञा देंगे? नागरिकता सम्बन्धी खण्ड अभी तक रुका पड़ा है। जब तक हम इस बात का निर्णय न करें कि भारत का कौन नागरिक है और कौन नहीं तब तक मतदाताओं की कोई सूची किस प्रकार बन सकती है?

***माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू:** मतदाताओं की सूचियां तैयार की जा सकती हैं और तैयार हो रही हैं। नागरिकता के खण्ड पर विधान-परिषद् का भविष्य में चाहे जो कुछ भी निर्णय हो उससे इन सूचियों की तैयारी पर थोड़ा-सा ही प्रभाव पड़ेगा। नागरिकता सम्बन्धी खण्ड का प्रभाव देश के अधिकांश व्यक्तियों पर नहीं पड़ता है। उसका प्रभाव केवल दो प्रकार के व्यक्तियों पर पड़ता है (1) उन लोगों पर जिनको "शरणार्थी" कहा जाता है और (2) वे भारतीय जो भारत से बाहर रहते हैं—जिनको मैं अधिक महत्त्वपूर्ण मानता हूं। वास्तव में इन्हीं लोगों पर इस खण्ड का प्रभाव पड़ता है। जहां तक शरणार्थियों का सम्बन्ध है जो कुछ मैंने अभी कहा था वे उसके अन्तर्गत आ जाते हैं अर्थात् हम किसी भी व्यक्ति को जो अपने आपको भारत का नागरिक कहता है भारत का नागरिक स्वीकार करते हैं। परन्तु भारत से बाहर रहने वाले लोगों के सम्बन्ध में कठिनाई है। चूंकि इस विषय पर परिषद् बाद में निर्णय करेगी। अत: उस समय इनके लिये प्रबन्ध करना कोई कठिन कार्य नहीं है। विधान-परिषद् के निर्णय को जान लेने के पश्चात् उनका प्रश्न उपस्थित होगा। इसके कारण कार्य में कोई बाधा नहीं पड़ती है। जब तक आप इस बात का निर्णय नहीं करते हैं तब तक के लिये केवल थोड़ा-सा कार्य रुक जायेगा। जैसे ही आप इस बात का निर्णय करते हैं उसी समय उसको अमल में लाया जायेगा।

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

***उपाध्यक्ष:** मैं यह सुझाव रखता हूं कि जो माननीय सदस्य किसी बात का स्पष्टीकरण चाहते हैं अच्छा हो कि वे अपनी बातों को प्रकट करें जिससे कि हमारे प्रधान मन्त्री उत्तर दे सकें—केवल वे ही लोग बोलें जो किसी बात का स्पष्टीकरण चाहते हैं।

***श्री महावीर त्यागी:** संशोधनों के बारे में क्या विचार है?

***उपाध्यक्ष:** वे बाद में प्रस्तुत किए जायेंगे। यदि यह प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा पेश किया जाता तब तो उस पर वाद-विवाद नहीं हो सकता था, परन्तु अब चूंकि सभा के एक माननीय सदस्य द्वारा यह प्रस्ताव पेश किया गया है अत: इस पर वाद-विवाद होगा—लेकिन समय का ख्याल रखते हुए सीमित वाद-विवाद होना चाहिये।

***सरदार भूपेन्द्रसिंह मान** (पूर्वी पंजाब : सिख): एक बात स्पष्ट करानी है। यद्यपि निवास करने के सम्बन्ध में साधारणतया 180 दिन रखे गये हैं परन्तु शरणार्थियों के लिए यह लागू नहीं होगा। उनको तो निर्वाचन-क्षेत्र में केवल स्थायी रूप से निवास करने के अपने इरादे का लिखित घोषणा-पत्र दाखिल करना होगा। इस सम्बन्ध में मैं यह बात स्पष्ट कराना चाहता हूं कि अपने इरादे का लिखित घोषणा-पत्र किसके यहां दाखिल किया जायेगा। यदि उसे किसी डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट के समक्ष घोषणा-पत्र दाखिल करना होगा तब तो यह स्पष्ट है कि इसमें बड़ा खर्चा और कठिनाई होगी। मैं चाहता हूं इस कार्य में कम से कम खर्चा हो जिससे कि शरणार्थियों को जो अधिकार प्रदान करने का प्रयास किया जा रहा है उसमें कोई क्षति न हो।

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय,.....

***श्री महावीर त्यागी:** एक औचित्य सम्बन्धी बात है : मैं यह कहना चाहता हूं कि आप इस समय जिस प्रणाली का अनुसरण कर रहे हैं वह विलक्षण प्रणाली है। प्रत्येक आपत्ति पर प्रस्तावक महोदय से उत्तर प्राप्त करने से यह आशय निकलता है कि प्रस्तावक महोदय को बहुत से भाषण देने पड़ेंगे और वे प्रश्नों का स्पष्टीकरण करते रहेंगे। मैं सुझाव रखता हूं कि जैसे पहले वाद-विवाद होता था उसी प्रकार वाद-विवाद किया जाये।

***उपाध्यक्षः** असाधारण अवसरों पर असाधारण प्रणाली का अनुसरण होना चाहिये।

***श्री एच.वी. कामतः** मतदाताओं की निर्योग्यताओं के बारे में जो इन नई सूचियों में रखी जायेंगी। मैंने अभी जिस प्रश्न को उठाया था उसको मैं कुछ और अधिक स्पष्ट कराना चाहता हूं। इस प्रस्ताव का खंड (1) (ख) केवल एक ही निर्योग्यता का उल्लेख करता है अर्थात् यदि उसकी बुद्धि विक्षिप्त हो और किसी अधिकार सम्पन्न न्यायालय द्वारा ऐसी घोषणा कर दी गई हो। परन्तु श्रीमान्, मैं आपका तथा सभा का ध्यान अनुच्छेद 67 (6) की ओर तथा अनुच्छेद 149 (2) की ओर भी आकर्षित करूंगा जिनको यह सभा स्वीकार कर चुकी है। मैं इन अनुच्छेदों में से किसी एक के तत्सम्बन्धी भाग को पढ़कर सुनाऊंगा क्योंकि वे दोनों एक समान हैं। वह भाग जो वर्तमान विषय से सम्बन्ध रखता है इस प्रकार है:—

> "प्रत्येक नागरिक जिसकी अवस्था इक्कीस वर्ष से कम नहीं है और जिसको इस संविधान अथवा संसद् के किसी अधिनियम के अधीन, अनिवास, मनोविक्षेप, पातक अथवा भ्रष्ट या अवैध आचरण के आधार पर निर्योग्य नहीं किया गया है, ऐसे निर्वाचन में मतदाता के रूप में रजिस्टर में दर्ज किये जाने का अधिकारी है।"

यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि बाद में संसद् इन निर्योग्यताओं का विनिधान अथवा निर्धारण करेगी। पर श्रीमान्, हमने दो निर्योग्यताओं को ही रखा है—एक अनिवास और दूसरी मनोविक्षेप।

आज के प्रस्ताव के खंड (1) और खंड (3) दो निर्योग्यताओं का उल्लेख करते हैं: एक अनिवास है और दूसरी मनोविक्षेप। मैं यह जानना चाहता हूं कि निर्योग्यताओं की सूची में से अन्य तीन निर्योग्यताओं को अर्थात् पातक अथवा भ्रष्ट या अवैध आचरण को क्यों निकाल दिया गया है। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या कोई व्यक्ति जो पहले किसी पातक का अपराधी हो चुका हो अथवा पहले निर्वाचनों में भ्रष्ट या अवैध आचरण का अपराधी हो वह मतदाता रूप में रजिस्टर में दर्ज होने के योग्य समझा जायेगा। क्या वे व्यक्ति जो पहले भ्रष्ट या अवैध आचरण के अपराधी सिद्ध हो चुके हैं, अब शुद्ध अन्तःकरण से कार्य आरम्भ करेंगे अथवा वे किसी प्रकार का प्रायश्चित करेंगे। नये विधान के उपलक्ष

[श्री एच.वी. कामत]

में, जिसे हम ग्रहण करने वाले हैं, क्या वे सब पापों और पातकों से मुक्त घोषित कर दिये जायेंगे और वे निष्कलंक होकर शुद्ध अन्तःकरण से कार्य करेंगे?

स्पष्टीकरण के लिए दूसरा प्रश्न नागरिकता के सम्बन्ध का है। उसका हवाला मेरे मित्र दे ही चुके हैं और मैंने भी इसके पहले इसका हवाला दिया था। यदि यह परिषद् नागरिकता के अनुच्छेद में संशोधन अथवा परिवर्तन करती है तो स्थिति कदाचित् कठिन हो जायेगी। उसका आशय यह होगा कि मतदाताओं की सूचियों में परिवर्तन करने में तत्सम्बन्धी अधिकारियों के लिए और अधिक कार्य बढ़ जायेगा।

मैं केवल यही कहूंगा कि इस सम्बन्ध में मेरी इच्छा किसी से कम प्रबल नहीं है कि निर्वाचन बहुत ही शीघ्र किये जायें। मैं तो इस बात को अधिक पसन्द करता कि इस वर्ष के अन्त में ही निर्वाचन हो जाये जिससे लोगों की यह धारणा न हो सके कि सरकार अपने आपको वर्तमान स्थिति में रखने का प्रयत्न कर रही है। असाधारण कार्यप्रणाली द्वारा आज इस प्रस्ताव को लाने की आवश्यकता ही न होती।

***उपाध्यक्षः** आपने स्पष्टीकरण चाहा था। मेरा ख्याल है कि उस सम्बन्ध की बातें समाप्त हो गईं।

***श्री एच.वी. कामतः** यदि परिषद् गत मई और अक्तूबर में अधिवेशन कर लेती जैसा कि हमने योजना बनाई थी। परन्तु दुर्भाग्यवश अधिवेशन न हुआ और उसका यह फल है।

***उपाध्यक्षः** यह केवल समय व्यर्थ खोना है। आप स्पष्टीकरण चाहते थे और आपने अपनी बातें रख दी हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैंने अपनी बातें रख दी हैं।

(इस समय श्री अलगूराय शास्त्री माइक की ओर चले आ रहे थे।)

***उपाध्यक्षः** कृपया अपनी बारी आने तक ठहरें। श्री चौधरी से भाषण देने के लिये कहा जा चुका है: केवल एक बात स्पष्टीकरण के लिये और कुछ नहीं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** आज किसी आश्चर्यजनक अनुरूपता के कारण मेरी और मेरे मित्र की बुद्धि समान रूप से कार्य कर रही है। मैं एक बड़ी पुष्ट बात का हवाला देना चाहता था और वह इस प्रस्ताव के खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) के सम्बन्ध में थी। उपखण्ड (ख) में कहा गया है कि किसी व्यक्ति को किसी निर्वाचन-क्षेत्र की मतदाताओं की सूची में नहीं रखा जायेगा। "यदि उसकी बुद्धि विक्षिप्त हो और किसी अधिकार सम्पन्न न्यायालय द्वारा ऐसी घोषणा कर दी गई हो।"

यदि यह इसी रूप में रहता है तो जब तक किसी अधिकृत न्यायालय की घोषणा नहीं है तब तक किसी भी व्यक्ति को, जिसकी बुद्धि विक्षिप्त है, मतदाताओं की सूची से नहीं निकाला जा सकता है। विक्षिप्त मनुष्यों के लिये यह एक महान् विशेषाधिकार दिया जा रहा है। सामान्यतया हम यह जानते हैं कि प्रत्येक गांव तथा नगर में अमुक नाम का व्यक्ति पागल है। हम यह भली-भांति जानते हैं। परन्तु यदि हम प्रस्ताव के इसी रूप को अमल में लाते हैं तो ऐसे विक्षिप्त मनुष्यों को, जो किसी अधिकृत न्यायालय द्वारा विक्षिप्त घोषित नहीं किये गये हैं यह अधिकार होगा कि उनका नाम मतदाताओं की सूची में रखा जाये। मैं आशा करता हूं कि माननीय प्रस्तावक महोदय इस बात पर ध्यान देंगे कि किसी व्यक्ति को विक्षिप्त घोषित कराना बड़ा कठिन है और उसमें बहुत देर लगती है। हमें अपने जिले के न्यायाधीश के पास जाना होगा और फिर एक क्यूरेटर नियुक्त करने के लिये आवेदन-पत्र भेजना होगा और यह घोषणा-पत्र भी प्रस्तुत करना पड़ेगा कि अमुक व्यक्ति की बुद्धि विक्षिप्त है। इस कार्य में बड़ी देर लगती है, और यदि हम आज किसी विक्षिप्त मनुष्य को मतदाताओं की सूची से पृथक् करने का कार्य आरम्भ करते हैं तो हमें फौरन ही दीवानी दावा चला देना चाहिये। ऐसी घोषणा के अभाव में ऐसे मनुष्य मतदाताओं की सूची में रह सकते हैं और वे उन सूचियों में रहेंगे। यदि इस प्रस्ताव पर अमल किया जाता है तो यह स्थिति होगी और किसी प्रकार से हम विक्षिप्त मनुष्यों को पृथक् नहीं कर सकते हैं। ऐसी और कोई शर्त नहीं है: ऐसी और कोई बात नहीं है–

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य सामान्य वाद-विवाद में पड़ रहे हैं। मैं समझता हूं कि वे स्पष्टीकरण चाहते हैं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** यह स्पष्टीकरण के लिये ही है–

क्या आप इस उपखण्ड द्वारा यह चाहते हैं कि जिन विक्षिप्त लोगों को अधिकृत न्यायालय द्वारा विक्षिप्त घोषित नहीं किया गया है उन सबको मतदाताओं की सूची में रखा जाये?

इस विधान के अन्य स्थलों में हम यह देखते हैं कि इस शब्द को इस रूप में व्यंजित नहीं किया गया है। वहां "विक्षिप्त मनुष्य" कहा गया है। यहां उससे कुछ और अधिक दिया गया है। केवल यही नहीं है कि वह "विक्षिप्त" हो परन्तु यह भी है कि किसी अधिकृत न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान हो।

तत्पश्चात्, श्रीमान्, खण्ड (4) की अन्तिम दो पंक्तियों में यह कहा गया है कि उन लोगों का नाम निर्वाचन-क्षेत्र की मतदाताओं की सूची में दर्ज किया जायेगा जो उस निर्वाचन-क्षेत्र में स्थायी रूप से निवास करने का लिखित घोषणा पत्र दाखिल करते हैं। मैं नहीं समझ पाता हूं कि हम 'स्थायी' शब्द को क्यों रखें। हम सब जानते हैं कि साधारणतया शरणार्थियों को शरणार्थी शिविरों में रखा जाता है और उनको एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता है। आज कोई भी शरणार्थी, उसके इरादे चाहे जो कुछ हों, यह नहीं कह सकता कि वह किसी खास जगह स्थायी रूप से निवास करेगा। अत: मैं निवेदन करूंगा कि इस प्रस्ताव में से 'स्थायी' शब्द को निकाल दिया जाये। अन्यथा शरणार्थियों पर बड़ा भारी प्रतिबन्ध लग जायेगा और कोई भी ईमानदार शरणार्थी न तो इस प्रकार की घोषणा कर सकेगा और न निर्वाचक सूची में दर्ज होने का अधिकारी होगा।

तत्पश्चात्, मैं एक और प्रश्न पूछ रहा था और वह यह है कि नागरिकता के अधिकार पर अभी तक वाद-विवाद नहीं हुआ है। क्या हम यह समझ लें कि 'नागरिक' शब्द की व्याख्या उसी प्रकार से की जायगी जिस प्रकार से कि हम साधारणतया इस शब्द को समझते हैं या इस शब्द के साथ कोई पारिभाषिक अर्थ जोड़ा जायेगा? मैं सभा को और कम से कम उन लोगों को जो मेरे समकालीन हैं यह याद दिलाऊंगा कि लीवार्नर द्वारा रचित एक पाठ्य-पुस्तक "भारत के नागरिक" नाम की प्रवेशिका (ऐंट्रेंस) के पाठ्यक्रम में थी। क्या हम उसमें दी

हुई परिभाषा को मानें या नये विधान में किसी परिभाषा के अभाव में साधारण परिभाषा को मानें?

एक और बात है श्रीमान्, और इस सम्बन्ध में मैं विशेषकर '31 मार्च, 1948' शब्दों के प्रयोग का हवाला देता हूं। इसका आशय यह है कि 31 मार्च, 1948 से पूर्व 180 दिवस। मैं समझता हूं कि यदि हम इस रीति के आधार पर गणना करेंगे तो केन्द्रीय परिषद् के अनेकों सदस्य नागरिक अधिकार से वंचित हो जायेंगे क्योंकि हम यहां जनवरी 1948 से अधिवेशन कर रहे हैं।

**श्री अलगूराय शास्त्री:** श्रीमान्, उपाध्यक्ष जी, मैं यह निवेदन कर रहा था कि इस प्रस्ताव में जो अभी माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू ने पेश किया है इस बात के लिये कोई व्यवस्था नहीं है कि निर्वाचन-क्षेत्र कैसे बनेंगे। जब तक निर्वाचन-क्षेत्र का निर्णय न हो और उसके सम्बन्ध में कोई व्यवस्था न कर दी जाये तब तक इलेक्टोरल रोल कैसे तैयार होगा। क्योंकि जो मतदाताओं की सूची बनती है, उसमें उनके नाम किसी न किसी निर्वाचन-क्षेत्र में अंकित होते हैं। जब तक निर्वाचन-क्षेत्र की व्यवस्था नहीं हो जाती, तब तक सूची कैसे तैयार होगी। मतदाताओं का नाम किस जगह अंकित होगा यह तो हम एक मर्दुमशुमारी की तरह निर्वाचन सूची बनाने चले हैं। इस प्रकार खास-खास निर्वाचन-क्षेत्रों में उन मतदाताओं का नाम अंकित नहीं हो सकता तो जो हम परिश्रम करेंगे, वह बेकार चला जायेगा। जहां आपको यह चिन्ता है, जहां इस हॉउस को और हम सबको यह चिन्ता है कि चुनाव जल्दी से जल्दी होना चाहिये और उस जल्दी के लिये ही हमने यह प्रस्ताव पेश किया है, वहां ऐसा न हो कि निर्वाचन-क्षेत्रों का निर्णय न होने के कारण हम इस सूची को ठीक तौर पर तैयार न कर सकें। या अगर उसे तैयार करना शुरू करें तो बाद में वह बेकार साबित हो। इसलिए निर्वाचन-क्षेत्र के सम्बन्ध में कोई व्यवस्था इस प्रस्ताव में आवश्यक है।

पहली बात जो मैंने नागरिकता अर्थात् सिटीजनशिप के सम्बन्ध में पूछी थी, वह पंडित जी ने कुछ साफ कर दी है किन्तु यदि थोड़े से आदमियों के बारे में भी दिक्कत पैदा हो सकती है तो कोई ऐसी व्यवस्था इस प्रस्ताव में होनी चाहिए

[श्री अलगूराय शास्त्री]

कि एक भी मतदाता अपने मतदान के अधिकार से वंचित न किया जा सके, क्योंकि मतदाताओं का यही एक अधिकार है और उन्हें वह अधिकार मिलना ही चाहिये। कोई न कोई व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि कोई भी व्यक्ति ऐसा न हो जो मतदान से वंचित हो जाये। इस सवाल के कारण जो कठिनाई पैदा हो रही है वह अभी साफ नहीं हुई है। इसी प्रस्ताव में कुछ ऐसा अंश शामिल कर देना चाहिये कि जिससे स्पष्ट हो जाये कि निर्वाचन का अधिकार किसको प्राप्त है। जब निर्वाचन-क्षेत्र साफ तौर से निर्दिष्ट हो जाये तो उन्हीं के अन्दर मतदाताओं की सूची तैयार की जायेगी। इस कारण नागरिकता का प्रश्न और निर्वाचन-क्षेत्र का प्रश्न पहले सुलझ जाना आवश्यक है।

यदि यह दो बातें पूरी नहीं होतीं तो मुझे सन्देह है कि जिस मंशा से यह प्रस्ताव रखा गया है वह पूरा होगा। मैं अनुरोध करूंगा कि इस सम्बन्ध में कुछ सफाई हो जानी चाहिये। नागरिकता और निर्वाचन-क्षेत्र मतदाताओं की सूची अर्थात् इलेक्टोरल रोल की आधारशिला है। इनके बिना मतदाताओं की सूची नहीं बन सकती। बन सकती है तो कैसे, वह स्पष्ट होना चाहिए।

***श्री देशबन्धु गुप्ता** (देहली): उपाध्यक्ष महोदय, मैं औचित्य के जिस प्रश्न को उठाना चाहता हूं वह यह है: प्रस्ताव का दूसरा भाग इस प्रकार है कि मतदाताओं की सूचियां नये विधान के प्रावधानों के आधार पर, जो स्वीकार किये जा चुके हैं, तैयार की जायें, परन्तु अनुच्छेद 149, जो वयस्क मताधिकार इत्यादि से सम्बन्ध रखता है, और अन्य सब प्रावधान अभी इस परिषद् द्वारा निश्चित नहीं किये गये हैं। अत: मैं निवेदन करता हूं कि जब तक अनुच्छेद 149 स्वीकार नहीं किया जाता है तब इस प्रस्ताव को रोक दिया जाये, अन्यथा इस सभा की परिस्थिति बड़ी बुरी हो जायेगी।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, क्या मैं अपना संशोधन प्रस्तुत कर सकता हूं?

***उपाध्यक्ष:** मेरा यह आदेश है कि सबसे पहले माननीय सदस्यों द्वारा जो प्रश्न उठाये गये हैं उनका उत्तर पंडित नेहरू देंगे और उसके बाद हम यह निर्णय करेंगे कि किस प्रकार आगे बढ़ा जाये।

***माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू:** श्रीमान्, बार-बार आने और बार-बार बोलने की मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं है परन्तु यह इच्छा मेरी अवश्य है कि इस सम्बन्ध में जो कुछ भी भ्रम हो उसका निवारण किया जाये। वास्तव में इस प्रस्ताव को पेश करने का मेरा कोई इरादा न था। यह किसी रूप में भी सरकारी प्रस्ताव नहीं है। मैंने समझा कि सरकार के बारे में कुछ भ्रम पैदा हो रहा है और आपने भी यह चाहा था कि कोई व्यक्ति इस प्रस्ताव को पेश कर दे। यदि मुझे आज्ञा हो तो मैं यह कहूंगा कि दो या तीन प्रश्न जो यहां उठाये गये हैं वे किसी भ्रम के कारण ही हैं; क्योंकि मैं स्वयं उन प्रश्नों के महत्त्व को नहीं समझ सका। उदाहरण के रूप में श्री कामत द्वारा एक प्रश्न यह उठाया गया था कि केवल दो निर्योग्यताओं का जिक्र किया गया है अन्य का नहीं। यदि आप प्रस्ताव पर ध्यान देंगे तो उसमें यह कहा गया है कि "रियासतों की मतदाताओं की सूचियां नये विधान के प्रावधानों के आधार पर जिनको यह परिषद् स्वीकार कर चुकी है तैयार की जायेंगी।" यह एक बात है और दूसरी बात यह है कि "सिद्धान्तों के अनुसार"। इसका अर्थ यह हुआ कि विधान में जिनका जिक्र कर दिया गया है वे तो हैं ही और उनके साथ-साथ कुछ और भी हैं जो यहां दिये गये हैं। वे दो बातें हैं: यदि वह भारत का नागरिक न हो और यदि वह विक्षिप्त हो। मैं सभा में यह स्पष्ट स्वीकार करूंगा कि यह कहना कि "यदि वह भारत का नागरिक न हो" कदाचित् अनावश्यक है। मेरा आशय यह है कि यह एक सत्य है; विधान इसी बात पर आश्रित है, और यदि इसको छोड़ दिया जाता है तो कोई अन्तर नहीं पड़ता। मैं यह कहूंगा कि यह वास्तव में बात को घुमा फिरा कर कहना है और इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

श्री रोहिणीकुमार चौधरी ने एक और प्रश्न उठाया था और ऐसा प्रतीत होता है कि वे उसको कुछ महत्त्व देते हैं। वह प्रश्न मनोविक्षेप के बारे में है.....

***श्री एच.वी. कामतः** एक स्पष्टीकरण सम्बन्धी प्रश्न है। क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि क्यों.....

***माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरूः** इस प्रकार से तो कार्य करना कठिन है। प्रत्येक शब्द और प्रत्येक वाक्य का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता है।

***माननीय सदस्यः** शान्ति, शान्ति।

***माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरूः** क्या मैं सभा में भाषण दे रहा हूं या नहीं?

***उपाध्यक्षः** (कामत को आदेश करते हुये) आप सदैव स्पष्टीकरण के लिये प्रश्न किया करते हैं।

***माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरूः** क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि स्पष्टीकरण के प्रश्नों की भी सीमा होनी चाहिये कि कोई माननीय सदस्य 10 मिनट में कितने प्रश्न रख सकता है।

***श्री एच.वी. कामतः** यह अध्यक्ष के निर्णय करने का काम है।

***माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरूः** मैं अध्यक्ष से निवेदन कर रहा हूं। व्याख्या और स्पष्टीकरण के बहाने से सभा का बहुत-सा समय ले लिया जाता है। मैं समझता हूं कि यह वास्तव में सभा के समय का दुरुपयोग करना है।

***श्री एच.वी. कामतः** ये पंडित नेहरू के विचार हो सकते हैं परन्तु श्रीमान्, इसका निर्णय आपको करना चाहिये।

***माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरूः** श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि श्री चौधरी के प्रश्न के सम्बन्ध में मनोविक्षेप के बारे में परिषद् ने जो निर्योग्यतायें स्वीकार कर ली हैं, वे वास्तव में मानी जायेंगी जिनमें यह आ जाता है कि "इस संविधान अथवा संसद् के किसी अधिनियम के अधीन, अनिवास, मनोविक्षेप पातक अथवा भ्रष्ट या अवैध आचरण इत्यादि।" यह स्पष्ट है कि विक्षिप्त मनुष्य इस विशेषाधिकार के प्रयोग करने के लिये सामान्यतया अयोग्य समझा जाता है। पर यह कौन निर्णय करे? कानून। और जब कानून बन गया तो सब ठीक है। पर अभी ऐसा कोई कानून नहीं है। यहां जो कुछ कहा गया है वह यह है कि यदि कोई अधिकृत न्यायालय ऐसा निर्णय करता है तो उसको स्वीकार करना चाहिये।

मैं श्री चौधरी के तर्क को ठीक-ठीक न समझ सका। उस ओर से कोई मनुष्य जो कुछ कहता है उसको इधर आसानी से नहीं सुना जा सकता। जो कुछ समझ सका वह यह है कि : क्या प्रत्येक व्यक्ति को न्यायालय में इस घोषणा के लिये जाना पड़ेगा कि कोई व्यक्ति विक्षिप्त है? मैं नहीं समझ पाता हूं कि क्यों कोई भी व्यक्ति न्यायालय में जाये। कुछ विक्षिप्त मनुष्य सूचियों में दर्ज हो सकते हैं। पर बहुत से मनुष्य जिनकी बुद्धि विक्षिप्त है परन्तु उनको विक्षिप्त घोषित नहीं किया गया है वे वहां पहुंच जाते हैं और केवल मत ही नहीं देते वरन् और भी बहुत से कार्य करते हैं। हम इसमें कोई मदद नहीं कर सकते। हम तो केवल इस बात से बचना चाहते हैं कि किसी ईर्ष्या अथवा गलत निर्णय के कारण कोई मनुष्य रह न जाये। मत गिनने वाले के पास कोई आधार होना चाहिये। जो मनुष्य मतदाताओं की सूची तैयार करता है उसे न्यायालय का निर्णय अवश्य मानना चाहिये। शेष व्यक्तियों के लिये यदि विधान-परिषद् कोई और कानून बना दे तो मैं समझता हूं कि अच्छा होगा। पर यह असम्भव है कि न्यायालय का निर्णय न माना जाये। मैं निवेदन करता हूं कि अभी आपके लिये यह कहना कि "किसी अन्य नियम के अधीन जो बनाया जायेगा" आवश्यक नहीं है। यदि यह सभा अन्य नियमों को स्वीकार करती है तो गणना करने वाले को उन्हें मानना पड़ेगा। यह तो मतदाताओं की प्रारम्भिक सूची है। इसकी आप विस्तारपूर्वक व्याख्या नहीं कर सकते हैं। बाद में परिषद् द्वारा अथवा प्रान्तीय परिषदों द्वारा, जैसी भी स्थिति हो, स्वीकृत नियमों के अनुसार इन सूचियों की ज़रूर जांच की जायेगी। परन्तु आरम्भ में अधिक विस्तारपूर्वक इनको नहीं लिया जा सकता है। आपको यह याद रखना चाहिये कि जो मनुष्य इनको तैयार करेगा वह साधारण कोटि का गणना करने वाला मनुष्य होगा और उसको अपने अनुभव से कार्य करना पड़ेगा जो कि उसे बहुत अधिक नहीं होगा। उसके बाद उनकी अन्य सम्बद्ध व्यक्तियों द्वारा जांच की जायेगी। इस प्रकार सबसे पहले जैसे-जैसे विधान स्वीकृत होता चला जायेगा उसी रूप में विधान में दी हुई निर्योग्यताओं को ज़रूर अमल में लाया जायेगा। यदि आप चाहते हैं तो आप इसे छोड़ सकते हैं कि "यदि वह भारत का नागरिक न हो" क्योंकि यह व्यर्थ और निरर्थक है। परन्तु दूसरी बात वांछनीय है क्योंकि

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

मनोविक्षेप के लिये कोई कसौटी नहीं है। और भी अच्छी कसौटी हो सकती हैं। और यह भी ठीक ही कसौटी है कि यदि कोई अधिकृत न्यायालय किसी मनुष्य को विक्षिप्त घोषित कर देती है तो हम उसे मान सकते हैं। यदि न्यायालय की ऐसी घोषणा नहीं है तो हम यह मान सकते हैं कि वह विक्षिप्त हो अथवा न हो। यदि हम आगे और नियम स्वीकार करते हैं तो उनको माना जायेगा।

एक माननीय सदस्य ने यह पूछा कि निवास करने के इरादे का घोषणा-पत्र कहां दाखिल किया जायेगा यह स्पष्ट है कि रजिस्टर में दर्ज करने वाले अधिकारियों के यहां दाखिल किया जायेगा। किसी न्यायालय में जाने की आवश्यकता नहीं है। गिनने वाले के सामने वह घोषणा कर सकता है और गिनने वाला उसका नाम लिख लेगा। बात यह है कि शरणार्थियों के लिये हम इसे जितना सरल और आसान बना सकते हैं उतना सरल और आसान बनाना चाहिये। सबसे सुगम मार्ग यही है कि गिनने वाले को सूचना दे दी जाये।

शरणार्थी शिविरों में रहने वाले लोगों के बारे में श्री चौधरी ने एक प्रश्न और उठाया था। वह एक न्यायसंगत प्रश्न है। मैं समझता हूं कि उन लोगों के मत देने के लिये कोई विशेष प्रावधान बनाना चाहिए। यकायक मैं यह नहीं कह सकता हूं कि वह प्रावधान क्या होगा। पर मैं इस बात से पूर्णतया सहमत हूं कि यह एक न्यायसंगत प्रश्न है और इसके लिये विशेष प्रावधान बनाना चाहिये। यह सच है और इरादा यही है कि वे मतदान करें। शरणार्थी शिविरों में कोई व्यक्ति स्थायी रूप से निवास नहीं करेगा। (*बाधायें*)

***उपाध्यक्ष:** हम और अधिक बाधायें नहीं करने देंगे।

***माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू:** एक महत्त्वपूर्ण विषय है जिससे सम्भव है कि कुछ भ्रम पैदा हो जाये। खण्ड (4) में यह कहा गया है कि "समुचित विधान-मण्डल के कानून के अधीन यदि कोई व्यक्ति अपने निवास-स्थान से इत्यादि, इत्यादि"। 'समुचित विधान-मण्डल के कानून के अधीन' शब्द शंका तथा गड़बड़ी पैदा कर सकते हैं। सभा की और श्रीमान् आपकी अनुमति के अधीन मैं "समुचित विधान-मण्डल के अधीन" शब्दों को हटा कर इस प्रकार कहना चाहता हूं कि "खण्ड (3) में किसी बात के होते हुये भी यदि कोई

व्यक्ति अपने निवास-स्थान से इत्यादि।" खण्ड (4) का उद्देश्य यह था कि खण्ड (3) में दी हुई निवास-स्थान सम्बन्धी शर्तें शरणार्थियों पर लागू न की जायें। मैं समझता हूं कि यह खण्ड इस प्रकार पढ़ा जाये: "(4) खण्ड (3) में किसी बात के होते हुये भी कोई व्यक्ति किसी प्रान्त या भारतीय संघ में सम्मिलित किसी रियासत इत्यादि, इत्यादि।" मैं समझता हूं कि इस परिवर्तन से यह खण्ड स्पष्ट हो जाता है।

***श्री आर.के. सिधवा:** खण्ड (4) पंक्ति 6 में से 'permanently' (स्थायी) शब्द को निकाल दिया जाये।

***माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू:** दो चार हफ्ते के लिये निवास करने का इरादा पर्याप्त नहीं होगा। मैं सभा को यह आश्वासन दे सकता हूं कि यह प्रस्ताव एक प्रकार का निदेशक सा है। मैं सभा से इस बात पर विचार करने के लिए प्रार्थना करूंगा कि यह प्रस्ताव विधान का अंग नहीं है। यह कोई कानून नहीं है। कानून के रूप में इसके शब्दों पर यथार्थ ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। इसमें सरकार को साधारण आदेश दिये गये हैं और वह गिनने वाले तथा अन्य सम्बद्ध व्यक्तियों को यही आदेश देगी। जैसा कि मैंने कहा था इस प्रस्ताव के बिना भी सरकार इन कामों को कर सकती है, पर वह इस बात के अधीन रहेगी कि यह सभा बाद में कोई नई शर्तें लगा सकती है और उन शर्तों से उन सूचियों में गड़बड़ी हो सकती है जो पहले तैयार की जा चुकी होंगी। मैं इस बात से पूर्णतया सहमत हूं कि शिविरों का प्रश्न लोगों के मतदान करने में आड़े नहीं आना चाहिये। परन्तु यदि आप स्थायी शब्द को निकाल देते हैं तो आप इस प्रस्ताव को बहुत ही कमजोर बना देते हैं। कोई भी व्यक्ति यह कह सकता है कि "मैं अमुक स्थान में निवास करने का इरादा रखता हूं" और इससे उसका आशय यह हो सकता है कि वह आगामी दो सप्ताह तक वहां निवास करने का इरादा रखता है। यह तो एक तमाशा-सा हो जायेगा। विचार यह है कि यह तो कोई निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता है कि वह अपने शेष जीवन में क्या करेगा पर कम से कम उस क्षेत्र में स्थायी रूप से निवास करने का इरादा तो होना चाहिये।

***श्री बिक्रमलाल सौंधी** (पूर्वी पंजाब : जनरल): यह कहा जा सकता है कि "भारतीय संघ में स्थायी रूप से निवास करना।" वह एक शिविर से दूसरे शिविर में जा सकता है।

***माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू:** शिविरों में रहने वाले लोगों के सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार करना चाहिये। मैं सभा को यह आश्वासन दे सकता हूं कि निवास सम्बन्धी खण्ड उनके आड़े नहीं आयेगा।

***श्री बिक्रमलाल सौंधी:** "स्थायी" शब्द को निकाल देने में क्या हानि है?

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू:** शिविरों में रहने वाले लोगों के लिये आप "स्थायी" शब्द को छोड़ सकते हैं। यह शब्द उन पर लागू नहीं होता है। उनके लिये कोई मार्ग खोजना पड़ेगा। यदि आप उन लोगों के लिये भी "स्थायी" शब्द को हटा देते हैं जो शिविरों में नहीं रहते हैं अन्य स्थानों में रहते हैं तो अन्य देशों से आये हुये लोग भी इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। यह खण्ड तो शरणार्थियों के पक्ष में है।

***श्री बिक्रमलाल सौंधी:** क्या इस घोषणा के लिय सरकारी कागज की आवश्यकता होगी।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू:** इसका सभा निर्णय करेगी। हम इस काम को सरल बनाना चाहते हैं और सरकारी कागज इत्यादि रख कर उसे कठिन नहीं बनाना चाहते अभी तो मैं इस विषय पर यही कह सकता हूं कि मैं नहीं समझता हूं कि सरकारी कागज की आवश्यकता होगी। मैं नहीं सोच पाता हूं कि सरकारी कागज क्यों आवश्यक है।

***श्री बिक्रमलाल सौंधी:** प्रान्तीय सरकारें इस घोषणा को सरकारी कागज पर चाहती हैं।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू:** सरकारी कागज की कोई आवश्यकता नहीं है। इसको सरल बनाने के लिये हम प्रान्तीय सरकारों को यह सूचना दे देंगे कि घोषणा के लिये सरकारी कागज आवश्यक नहीं है।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): हमारे बहुत से आदमी निरक्षर हैं। यह और भी अच्छा होगा कि घोषणा मौखिक कर दी जाये। (*बाधायें*)

***माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू:** मुझे विश्वास है कि सभा यह चाहती है कि इस कार्य को सरल कर दिया जाये और सरकारी कागज, फीस इत्यादि के

रूप में कोई रुकावट न रखी जाये। प्रान्तीय सरकारों को ऐसे आदेश भेजने के लिये हम सोच रहे हैं। इस समय इसका पूर्ण विवरण देना कठिन है। मैं समझता हूं कि ऐसी हिदायतें भेजी जा चुकी हैं कि इस कार्य के लिये कोई फीस अथवा सरकारी कागज नहीं होना चाहिये।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** "निर्वाचन-क्षेत्र" शब्द को निकाल देना चाहिये। अभी तक हमने निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमायें स्थिर नहीं की हैं। यह कोई नहीं जानता है कि उसका कौन-सा निर्वाचन-क्षेत्र होगा।

***माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू:** "निर्वाचन-क्षेत्र" के स्थान में "क्षेत्र" शब्द रखने को स्वीकार करने के लिये मैं तैयार हूं।

"बुद्धि विक्षिप्त" शब्द रखने के सम्बन्ध में एक बात और है। इस शब्द को वर्तमान भारतीय सरकार के अधिनियम में से लिया गया है। भारतीय सरकार के अधिनियम की छठी अनुसूची में यह कहा गया है कि:

> "किसी भी व्यक्ति को, यदि उसकी बुद्धि विक्षिप्त है और किसी अधिकृत न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान है, किसी प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र की मतदाताओं की सूचियों में सम्मिलित नहीं किया जा सकेगा और न वह किसी प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र के किसी चुनाव में भाग ले सकेगा।"

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, क्या मैं अपना संशोधन पेश कर सकता हूं?

***उपाध्यक्ष:** आप इतने उतावले क्यों हैं? क्या आपको अध्यक्ष में विश्वास नहीं है?

***श्री महावीर त्यागी:** जिस कार्यप्रणाली का अनुसरण किया जा रहा है उसमें मुझे विश्वास नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** एक बार जब कि आदेश दिया जा चुका है तो आपको उस पर आपत्ति करने का कोई अधिकार नहीं है।

***श्री एच.जे. खांडेकर** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, आपसे प्रश्न करने का इस सभा को अधिकार है।

***उपाध्यक्ष:** जिन नियमों को उद्धृत करने के आप बड़े इच्छुक हैं वे नियम ही आपको यह बता देंगे कि आप गलती पर हैं।

मैं जानता हूं कि पंडित नेहरू को बाहर जाना है और जो संशोधन मुझे प्राप्त हुये हैं उनको एक-एक करके पेश करने दिया जायेगा और मैं जानता हूं कि मसौदा-समिति के सभापति, जो यहां उपस्थित हैं, उन संशोधनों का उत्तर देंगे। अब मैं श्री रोहिणीकुमार चौधरी से यह पूछना चाहता हूं कि पंडित नेहरू द्वारा जो अभी व्याख्या की जा चुकी है उस व्याख्या पर विचार करते हुये भी वे अपने संशोधन के दूसरे भाग को पेश करना चाहते हैं जो उपखंड (4) के सम्बन्ध में है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** श्रीमान्, मैं कुछ और अधिक स्पष्टीकरण चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** कृपया ध्वनि-यंत्र पर आइये। अब चूंकि वाद-विवाद आरम्भ हो चुका है और संशोधन प्राप्त हो चुके हैं मैं अब और संशोधन नहीं रखने दूंगा। श्री चौधरी।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): यदि माननीय सदस्य जोर-जोर से नहीं बोलेंगे तो जो कुछ वे कहेंगे उसे सुनना मेरे लिये कठिन होगा।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं:

"कि प्रस्ताव की उपधारा (ख) में से 'and stands so declared by competent court' (और किसी अधिकार सम्पन्न न्यायालय द्वारा ऐसी घोषणा कर दी गई हो) शब्दों को निकाल दिया जाये।"

श्रीमान्, हमें बहुत से निर्वाचनों का अनुभव है और हमने यह देखा कि मतदाताओं की पहली सूचियों में और पहले विधानों ने और यहां तक कि इस विधान में भी जिस पर हम इस सभा में विचार कर रहे हैं कहीं भी "बुद्धि विक्षिप्त" शब्द के साथ ये विशेषण नहीं लगाये गये हैं जो इस प्रस्ताव में दिये हुये हैं और जिन पर मैंने आपत्ति की है। जैसा कि माननीय सदस्यों को विदित है विक्षिप्त मनुष्यों की संख्या बहुत अधिक है और दुर्भाग्यवश भारत में उनके

भाई उनकी कोई चिन्ता नहीं करते हैं। उनमें से कुछ को, कम से कम उनके पुरुष वर्ग को, हम देखते हैं कि वे स्वच्छन्द घूमते फिरते हैं और अपने लिये तथा अपने सम्बन्धियों के लिये कष्ट पैदा करते रहते हैं। ऐसे और भी हैं विशेषकर स्त्रियां जिनके बारे में हम कुछ नहीं जानते हैं और मुझे यह बताया गया है कि स्त्रियों में विक्षिप्तों की संख्या और भी अधिक है। अभी तक इन विक्षिप्तों में से 99 प्रतिशत लोगों के प्रति किसी अधिकृत न्यायालय द्वारा ऐसी घोषणा विद्यमान नहीं है परन्तु कोई भी व्यक्ति, जिस पर मतदाताओं की सूचियां तैयार करने का प्रभार है, इस बात को भली प्रकार जानता है कि ये लोग विक्षिप्त हैं, पर कोई भी व्यक्ति न्यायालय जाने का और उनके लिये घोषणा कराने का कष्ट नहीं करेगा।

***उपाध्यक्ष:** आप उन्हीं तर्कों को दुहरा रहे हैं जिनको आप एक बार सभा के समक्ष रख चुके है। मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि यथाशक्ति कम से कम समय लें। सभा को यह विदित ही है कि हम आज अधिवेशन समाप्त कर रहे हैं। सभा को यह भी विदित है कि कम से कम अनुच्छेद 149 को तो हमें समाप्त करना ही है। क्या मैं आपसे एक बार फिर यह निवेदन करूं कि यदि कोई नया विचार है तब तो आप उसे प्रस्तुत करें परन्तु पुराने तर्कों को प्रस्तुत न करें।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** यदि मुझे बोलने दिया जाये तब तो मैं और भी शीघ्र समाप्त कर दूं। मैं जो कुछ कहना चाहता हूं वह यह है कि अब तक जिस कार्यप्रणाली का अनुसरण किया गया है वह बिल्कुल सही है क्योंकि यदि आप पटवारी या अन्य किसी व्यक्ति को मतदाताओं की सूची तैयार करने के लिये नियुक्त करते हैं तो वह किसी भी व्यक्ति को जिसे वह विक्षिप्त समझता है सूची में नहीं रखेगा। अत: इस निर्योग्यता को निकाल देना चाहिये। मैंने इस निर्योग्यता को कहीं भी नहीं देखा है। इसी कारण मैं यह कहता हूं कि इसको निकाल दिया जाये और इसके निकाल देने से कोई कठिनाई पैदा नहीं होगी क्योंकि यदि किसी व्यक्ति को यह शिकायत होती है कि उसको गैर कानूनी तरीके से अलग किया गया है तो वह उच्च अधिकारियों के पास जा सकता है और निर्वाचन अधिकारी ऐसी सब बातों पर विचार करेगा। यदि आप इनको अलग नहीं करते हैं तो सब

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

विक्षिप्त मनुष्य मतदाताओं की सूचियों में आ जायेंगे। मेरा दूसरा संशोधन यह है:

"कि उपखण्ड (4) में से 'permanently' (स्थायी) शब्द को, जो पंक्ति 6 में आता है, निकाल दिया जाये।"

अब यदि मैं एक उदाहरण दूं तो मैं समझता हूं कि माननीय सदस्यों को मेरे संशोधन की यथार्थता के सम्बन्ध में विश्वास हो जायेगा। मैंने सुना है कि लगभग 50,000 सिन्धी शरणार्थी, जो बम्बई में हैं, बंगाल या आसाम को भेजे जा रहे हैं। ये लोग इतने दिनों से बम्बई में थे और वे यह घोषणा-पत्र दाखिल करते हैं कि वे स्थायी रूप से बम्बई में रहना चाहते हैं। वे मेरे मित्र श्री सिधवा के निकट रहना चाहते हैं। मतदाताओं की सूचियां तैयार हो चुकेंगी तब उनको आसाम भेजा जायेगा। तो फिर उन सब लोगों को बम्बई के मतदाताओं की सूचियों में रखने से क्या लाभ? इसी प्रकार से यदि निर्वाचन के पूर्व वे आसाम में आ गये और उनको आसाम की मतदाताओं की सूची में न रखा गया क्योंकि वहां की सूचियां इससे पहले ही तैयार हो चुकेंगी और घोषणा-पत्र दाखिल करेंगे का समय बीत चुका होगा तो इस उप-खण्ड के रखने से क्या लाभ जब तक कि आप उसमें से "स्थायी" शब्द को न निकाल दें? अत: शरणार्थियों के लिये, जिनका ऐसा कोई इरादा नहीं है या जहां तक निर्वाचनों का सम्बन्ध है जिनके इरादे से कोई आशय पूरा नहीं होता, यदि आप इस खण्ड में "स्थायी" शब्द को रखते हैं तो आप उनको मताधिकार से वंचित करेंगे। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि इस शब्द को निकाल दिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** मुझे सभा को यह सूचना देनी है कि यदि हम संतोषजनक प्रगति नहीं करेंगे तो आज हमें दोपहर बाद और शायद कल भी कम से कम अनुच्छेद 149 पूरा करने के लिये बैठना होगा। (*बाधायें*) मैं सभा के अधिकार में हूं। कदाचित् सभा यह स्वीकार करेगी ही कि मैंने तो कोई कठिनाई पैदा की नहीं।

***श्री के. हनुमन्थैया** (मैसूर): श्रीमान्, मैं इस अमल का एक संशोधन पेश करना चाहता हूं कि पहले पैरे के अन्त में दिये हुए "in the year 1950"

(सन् 1950 में) शब्दों को निकाल दिया जाये। इसका प्रभाव यह होगा कि इस वाक्य का अन्त इस प्रकार हो जायेगा–

"...that 'elections to the Legislatures under the new Constitution may be held as early as possible' (नये विधान के अन्तर्गत विधान-मण्डलों का निर्वाचन शीघ्र से शीघ्र किया जा सके।)"

इस संशोधन के पेश करने में मेरा उद्देश्य यह है कि जो कुछ हम कहें अथवा जो कुछ हम करें वह बिल्कुल सही हो। श्रीमान्, यह पहला ही अवसर नहीं है कि हमने अपने ऐसे विचार प्रकट किये हों कि निर्वाचन शीघ्र से शीघ्र हो। इसी परिषद् में यह घोषित किया गया था कि निर्वाचन 1948 में हों। यदि हम बार-बार तारीखें निश्चित करते चले जायें जिनका निर्वाह करना अधिकांश असम्भव-सा ही है तो इस विषय में यह सभा लोगों के मनों में अपने प्रति एक प्रकार का द्वेष तथा घृणा पैदा कर देगी। इसलिये अपनी घोषणा में यह कहना अच्छा है कि निर्वाचन शीघ्र से शीघ्र किये जायें। सम्भव है कि हम सन् 1950 में निर्वाचन न कर सकें या यह भी सम्भव हो सकता है कि हम इससे भी शीघ्र निर्वाचन कर लें। हम पहली बार वयस्क मताधिकार लागू कर रहे हैं तथा इस देश को उपयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों में बांट रहे हैं और तत्सम्बन्धी कार्य कर रहे हैं। अत: अपने प्रस्तावों को और अधिक निश्चित रूप देने के लिये मैं इस सभा पर इस बात के लिये जोर दूंगा कि कोई निश्चित तिथि न रखें केवल यही कहें कि.....।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): कोई निश्चित तिथि नहीं दी गई है।

***श्री के. हनुमन्थैया:** तिथि से मेरा आशय सन् 1950 से है। सम्भव है कि हम सन् 1950 में निर्वाचन न कर सकें और हमारा पहला अनुभव भी है कि जो वर्ष हमने निश्चित किया था उसका निर्वाह हम नहीं कर सकें। हमारे प्रधान मंत्री ने एक बार कहा था कि 1948 में निर्वाचन हो जाना चाहिये और यह न हो सका। मैं नहीं चाहता हूं कि हमारे प्रधान मन्त्री तथा इस सभा के शब्दों की यह दशा हो। हम जो कुछ कहते हैं उसके प्रति हमें और भी अधिक गम्भीर होना चाहिये। अत: मैं निवेदन करता हूं कि इस पदावली में थोड़ा परिवर्तन कर दिया

[श्री के. हनुमन्थैया]

जाये और अपने तथा जनता के प्रति ईमानदार होने के लिये हम यह कहें कि निर्वाचन शीघ्र से शीघ्र किये जायें।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि पहले पैरा में 'This Assembly' (हिन्दी रूपान्तर में–'तथा उन सिद्धान्तों के अनुसार जो यहां दिये गये हैं' शब्दों को निकाल कर 'अर्थात्') शब्द के पश्चात् आने वाले समस्त शब्दों को निकाल दिया जाये।"

यदि मेरा यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो यह प्रस्ताव इस प्रकार पढ़ा जायेगा:–

"Resolved that instructions be issued forthwith to the authorities concerned for the preparation of electoral rolls and for taking all necessary steps so that elections to the Legislatures under the new Constitution may be held as early as possible in the year 1950.

Resolved further that the State electoral rolls be prepared on the basis of the provisions of the new Constitution already agreed to by this Assembly."

(यह निश्चय किया जाता है कि तत्सम्बन्धी अधिकारियों को मतदाताओं की सूचियां तैयार करने और समस्त आवश्यक प्रबंध करने के लिये आदेश दे दिये जायें जिससे कि नये विधान के अन्तर्गत विधान-मण्डलों का निर्वाचन सन् 1950 में शीघ्र से शीघ्र किया जा सके।

आगे यह और निश्चय किया जाता है कि राज्यों की मतदाताओं की सूचियां नये विधान के प्रावधानों के आधार पर, जो परिषद् द्वारा स्वीकार किये जा चुके हैं, तैयार की जायें।)

इस संशोधन को पेश करने में मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि आदि से अन्त तक इस संशोधन की भाषा बहुत बुरी और भद्दी नहीं है। सबसे पहले हम सबों को यह बात जाननी चाहिये कि हमारे प्रस्ताव तथा विधान के अनुच्छेदों में

अन्तर है। इसमें संदेह नहीं कि हमारी यह सभा सर्वसत्तायुक्त है परन्तु कानून के सामने जो शब्द यहां कहे जाते हैं तथा जो प्रस्ताव यहां स्वीकार किये जाते हैं उनका वही मूल्य अथवा प्रभाव नहीं है जो कि विधान के नियमित अनुच्छेदों का है। हमको कोई विधेयक या विधान स्वीकार करना चाहिये। इस प्रस्ताव का कोई वैधिक महत्त्व नहीं है और इस प्रस्ताव के आधार पर किये गये कार्य की न्यायता पर आपत्ति की जा सकती है विशेषकर विधान निर्माण के विषय में।

***पंडित बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): इस सभा में जो लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकार किया गया था उसके सम्बन्ध में माननीय सदस्य क्या विचार रखते हैं ?

***श्री महावीर त्यागी:** वह केवल लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव था, और उसका कोई वैधिक महत्त्व नहीं है। महत्त्व इस पुस्तक को है और किसी वस्तु को नहीं।

***उपाध्यक्ष:** आप अपने विषय पर रहें और इस प्रकार से ही हम दोपहर बाद के अधिवेशन से बच सकते हैं। आप जैसे महान् वक्ता को ऐसी बाधाओं से विचलित नहीं होना चाहिये।

***श्री महावीर त्यागी:** धन्यवाद श्रीमान्, मैं यह कहता हूं कि विधान में किसी निश्चित अनुच्छेद के अभाव में सरकार अमल नहीं कर सकती है। प्रत्येक अधिकार विधान के किसी न किसी अनुच्छेद से उत्पन्न तथा प्रादुर्भूत होता है न कि प्रस्ताव से। यह प्रस्ताव केवल सभा की यह इच्छा प्रकट करता है कि जनतन्त्र को जनता में प्रसारित करने में हम विलम्ब नहीं करना चाहते हैं।

***पण्डित बालकृष्ण शर्मा:** निदेशक के बारे में क्या होगा।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं विचलित होना नहीं चाहता हूं। (*हंसी*) जनतन्त्रवाद अथवा स्वतन्त्रता अभी विधान-परिषद् में ही आ पहुंचे हैं जनता तक नहीं पहुंच पाये हैं और जनता तक वे तभी पहुंच पायेंगे जब कि ग्रामीण स्वतन्त्रता का उपभोग करेंगे और मतदान के स्थान में मतदान करेंगे। इसलिये हम इस काम की जल्दी में हैं कि यह स्वतन्त्रता शीघ्र उन तक पहुंच जाये मतदाताओं की सूचियां शीघ्र

[श्री महावीर त्यागी]

तैयार हो जायें। विधान-परिषद् इस बात के लिये उत्सुक है कि निर्वाचन शीघ्र से शीघ्र हों। इस प्रस्ताव में यह कहा गया है कि "राज्य की मतदाताओं की सूचियां नये विधान के प्रावधानों के आधार पर, जो स्वीकार किये जा चुके हैं, तैयार की जायें।" इसका अर्थ यह है कि इस प्रस्ताव के पारित होने के पूर्व स्वीकार किये गये प्रावधान। अब तक हमने आधा ही काम किया है।

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं यह निवेदन करूं कि इस प्रस्ताव का सम्बन्ध समय से नहीं होना चाहिए बल्कि तिथि से।

***श्री महावीर त्यागी:** यह अच्छा है। इससे सायंकाल भी प्रात:काल में शामिल की जा सकती है।

तो, श्रीमान्, जैसा कि मैंने कहा था, यह प्रस्ताव केवल हमारी इच्छा का प्रकाशन है कि हम प्रान्तीय सरकारों को हिदायत देने के लिये उत्सुक हैं जिससे कि मतदाताओं की सूचियां तैयार करने के सम्बन्ध में जिस किसी प्रारम्भिक कार्य की आवश्यकता हो उसको वे तैयार कर लें। इस प्रकार के अधिकार प्रदान करने से, जिनका इस प्रस्ताव में प्रयास किया गया है, मतदाताओं की सूचियां न तो तैयार हो पायेंगी और न हो सकती हैं। इस कार्य के लिये सरकारी आदेशों की आवश्यकता है। अत: यह प्रस्ताव सीधा-सादा सा है। विधान-परिषद् की ओर से यह प्रस्ताव प्रान्तीय सरकारों और केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार प्रदान करता है कि मतदाताओं की सूचियां तैयार करने के आवश्यक प्रारम्भिक कार्य में वे अग्रसर हों। अत: पूर्ण विवरण को न लेते हुए यदि हम स्थिति की आवश्यकता के अनुसार इस प्रस्ताव के क्षेत्र को सीमित करें, तो हमें उसके प्रथम दो पैरों की ही आवश्यकता है। जब हम उसके पूर्ण विवरण को लेते हैं, तभी कठिनाई उपस्थित होती है। उदाहरणार्थ जैसा कि मेरे मित्र ने कहा था कि नागरिकता खण्ड को स्वीकर नहीं किया गया है। यदि हम आधी रात तक बैंठे तब भी वह पूरा नहीं हो सकता। इस प्रस्ताव के अनुसार अधिकारी वर्ग बिना किसी निर्वाचन-क्षेत्र का नाम दिये हुये मुहल्ले अथवा गांव की मतदाताओं की सूचियां तैयार कर सकते हैं। निर्वाचन-क्षेत्र की सीमा बाद में भी स्थिर की जा सकती है। अब जो

मतदाताओं की सूचियां तैयार की जायेंगी, उनसे बाद में निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमा स्थिर करने में सहायता मिल सकती है। इस प्रकार जो सूचियां तैयार की जायेंगी वे आगे आने वाले वास्तविक कार्य का प्रारम्भिक रूप होंगी। इस प्रस्ताव की भावना में दोष नहीं निकाला जा सकता। यह देश को केवल यह सूचना देता है कि हम निर्वाचन करने के लिये उत्सुक हैं। अभी हमें इसके पूर्ण विवरण को नहीं लेना चाहिये। इन अधूरे और निरर्थक विवरण पर निर्भर रहना इस प्रकार का होगा जैसे कि "आकाश में खूंटा गाढ़ कर उस पर आशा लगाना" (*बाधायें*) इन बाधाओं से विवश होकर मैं चुप होना चाहता हूं।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** क्या मैं यह सूचना प्राप्त करने के लिये निवेदन कर सकता हूं कि जब हमने अल्पसंख्यक-वर्गों से सम्बन्ध रखने वाले तथा अल्पसंख्यक-वर्गों के संरक्षण इत्यादि से सम्बन्ध रखने वाले अनुच्छेद 292 को पारित नहीं किया है, तो प्रस्ताव का क्या मूल्य होगा?

***श्री महावीर त्यागी:** अल्पसंख्यक-वर्गों का प्रश्न उठता ही नहीं है। यह प्रस्ताव सम्बद्ध सरकारों को सब स्थानों में वयस्कों की सूची बनाने का केवल अधिकार प्रदान करेगा।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** अल्पसंख्यक-वर्गों के लिये जनसंख्या के आधार पर स्थान संरक्षित किये गये हैं और यदि बिना जनगणना के मतदाताओं की सूचियां तैयार कर ली गई, तो अल्पसंख्यकों के लिये जनगणना के आधार पर किस प्रकार स्थान नियत किये जा सकते हैं?

***श्री महावीर त्यागी:** अभी यह कठिनाई उपस्थित नहीं होगी। मैं जानता हूं कि निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमायें स्थिर नहीं की गई हैं। इस प्रस्ताव का आशय केवल गावों और नगरों में सब वयस्कों के नामों की सूची बनाने से है। मतदाताओं की ये सूचियां विभिन्न निर्वाचन-क्षेत्रों के साथ, जैसे ही उनको बनाया जाता है और उनकी सीमा स्थिर की जाती है, संलग्न कर दी जायेंगी।

***श्री एच.जे. खांडेकर:** श्रीमान्, माननीय श्री त्यागी जी मुझे समझ नहीं पाये।

***उपाध्यक्ष:** मैं इस वाद-विवाद के लिये अनुमति नहीं दे सकता हूं। श्री खांडेकर अपने भाषण में इन बातों को रख सकते हैं।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, मैं यह निवेदन कर रहा हूं कि वयस्कों की सूचियां तैयार करने से न तो संरक्षण में और न निर्वाचन-क्षेत्र की सीमा स्थिर करने में कोई रुकावट होती है। यह प्रस्ताव केवल विभिन्न स्थानों में निवास करने वाले समस्त वयस्कों की सामान्य सूची तैयार करने का अधिकार प्रदान करता है। अत: यह बड़ा सीधा-सादा सा प्रस्ताव है और मेरे संशोधन द्वारा संशोधित रूप में इसे स्वीकार कर लेना चाहिये। इन शब्दों के सहित मैं इस प्रस्ताव का अपने संशोधन के अधीन समर्थन करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना अब अपना संशोधन पेश कर सकते हैं। मैं उनको केवल पांच मिनट दे सकता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि (1) '1 जनवरी सन् 1949' के स्थान में '1 जनवरी सन् 1950' रखा जाये;

(2) जहां कहीं इस प्रस्ताव में 'constituency' (निर्वाचन-क्षेत्र) आता है उसके स्थान में 'area' (क्षेत्र) रखा जाये;

(3) 'file a declaration of' (का वह लिखित घोषणा-पत्र दाखिल कर दे) के स्थान में 'signifies' (की वह सूचना दे दे) शब्द रख दें;

(4) 'permanently' (स्थायी रूप से) शब्द को निकाल दिया जाये।"

***उपाध्यक्ष:** मैं यह सुझाव देना चाहूंगा कि आप 'स्थायी रूप से' शब्द वाले संशोधन को न लें क्योंकि एक अन्य सदस्य ने इस पर विचार व्यक्त कर दिये हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, हमने 1 जनवरी सन् 1949 ई. तिथि नियत की है, जिसके आधार पर मतदाता की आयु निश्चित की जायेगी। हम यह कह चुके हैं कि निर्वाचन सन् 1950 में होगा। वह दिसम्बर 1950 तक हो सकता है। अत: यदि हम आयु निश्चित करने की यह तिथि स्वीकार कर लेते हैं, तो जो लोग 1 जनवरी सन् 1950 को मत देने के अधिकारी हो जायेंगे उन सभी को

हम मतदान से वंचित करेंगे। मैं अनुभव करता हूं कि इस प्रकार हमें बहुत से लोगों को मताधिकार से वंचित नहीं करना चाहिये। लगभग 1 करोड़ मनुष्य जो 1 जनवरी सन् 1950 को 20 वर्ष के होंगे, वे 1 जनवरी सन् 1950 को 21 वर्ष के हो जायेंगे और पहले निर्वाचन में हमें इन लोगों को मताधिकार से वंचित नहीं करना चाहिये।

तत्पश्चात्, मैं श्री त्यागी से सहमत हूं कि यह प्रस्ताव सरकारों को एक आदेश के रूप में नहीं है। विधान के जिन प्रावधानों को हम स्वीकार कर चुके हैं, उनका अतिक्रमण नहीं कर सकते हैं। अभी तक हमने निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमा स्थिर करने सम्बन्धी प्रावधानों को पारित नहीं किया है। अत: अभी हमें 'क्षेत्र' कहना चाहिये। क्षेत्रों की सूचियां हम तैयार कर सकते हैं और बाद में जब हम विधान पारित कर लें, हम इन क्षेत्रों को मिला कर 'निर्वाचन-क्षेत्र' बना सकते हैं। अभी हमें 'निर्वाचन-क्षेत्र' के स्थान में 'क्षेत्र' शब्द का प्रयोग करना चाहिये। यह अधिक उपयोगी होगा तथा सही भी होगा। जब निर्वाचन-क्षेत्र ही नहीं है तो आप उसकी सूचियां नहीं बना सकते हैं, पर आप प्रत्येक क्षेत्र में मतदाताओं की सूचियां बना सकते हैं। अल्पसंख्यक-वर्गों के लिये और भी अधिक कठिनाई है। संभव है कि उनके लिये स्थान संरक्षित किये जायें और जब तक वे यह न जानें कि किस निर्वाचन-क्षेत्र में उनके लिये स्थान संरक्षित है, उनके लिये यह अधिक उपयोगी नहीं होगा। इस प्रकार का प्रस्ताव परित कर देने भर से हम निर्वाचन-क्षेत्रों का निर्माण नहीं कर सकते हैं। अत: मैं समझता हूं कि 'निर्वाचन-क्षेत्र' के स्थान में 'क्षेत्र' शब्द रखा जाये।

इसके बाद मैं घोषणा-पत्र भर कर दाखिल करने के विषय को लेता हूं। हमारे बहुत से शरणार्थी भाई निरक्षर हैं और आवेदन-पत्र तैयार करने और दाखिल करने के लिये उन्हें आवेदन-पत्र लेखकों की सहायता लेनी पड़ेगी। इसका मतलब यह होगा कि उनको खर्च करना पड़ेगा। मैं समझता हूं कि जो मनुष्य (शरणार्थी) किसी क्षेत्र में मतदान करना चाहता है तो वह केवल यह कह दे कि "मैं इस क्षेत्र में निवास करना चाहता हूं।" यह कहना ही मतदान करने का अधिकार प्राप्त करने के लिये यथेष्ट होना चाहिये।

आवेदन-पत्रों को दाखिल नहीं करना चाहिये। केवल निवास करने के उद्देश्य को प्रकट कर देना काफी होगा। मैं नहीं समझता हूं कि इस कार्य के लिये किसी

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

कठोर प्रणाली की आवश्यकता है। यदि आप एक निरक्षर ग्रामीण को इस प्रकार का आवेदन-पत्र दाखिल करने के लिये कहें तो अन्य मनुष्य उसका शोषण करेंगे और उससे पैसा बनायेंगे। इसीलिये मैं कहता हूं कि सूचियों में दर्ज होने के लिये उस निर्वाचन-क्षेत्र में निवास करने के उद्देश्य को प्रकट कर देना ही काफी होना चाहिये।

इसके पश्चात्, श्रीमान्, 'already' शब्द वहां रखा हुआ है। हमने अनुच्छेद 149 पारित नहीं किया है, अत: 'already' शब्द संगत नहीं है। इसलिये इस शब्द को निकाल देना चाहिये।

एक और बात है जिसको श्री त्यागी ने उठाया था कि हमारे इस प्रस्ताव को कोई वैधिक शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है। मैं समझता हूं कि इस विषय में बहुत कुछ कहा जा सकता है। अनुच्छेद 67 खण्ड (6) में जो कुछ हमने पारित किया है, वह यह है कि "लोकसभा के लिये निर्वाचन प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर होगा; अर्थात् प्रत्येक नागरिक, जिसकी अवस्था इक्कीस वर्ष से कम नहीं है, और जिसको इस विधान अथवा संसद् के किसी अधिनियम के अधीन अनिवास, मनोविक्षेप, पातक अथवा भ्रष्ट या अवैध आचरण के आधार पर निर्योग्य नहीं किया गया है, ऐसे निर्वाचनों में मतदाताओं के रजिस्टर में दर्ज होने का अधिकारी होगा।" श्रीमान्, हम संसद् के रूप में नहीं हैं इस कारण इस प्रस्ताव में यह कहने का कोई अधिकार नहीं है कि केवल ऐसे-ऐसे आदमियों को सूचियों में दर्ज किया जायेगा। अन्य को नहीं। मैं समझता हूं कि यह प्रस्ताव केवल एक प्रकार का निदेश है। इस कारण इसका कोई वैधिक प्रभाव नहीं होगा, जब तक कि कोई अधिनियम पारित न किया जाये कि विक्षिप्त मनुष्य अथवा वे मनुष्य जिसने अपराध किया हो मतदाता नहीं होंगे। मैं समझता हूं कि इस विषय का डॉ. अम्बेडकर ठीक-ठीक अध्ययन करें जिससे कि इस विषय में हमारे सामने कोई कठिनाई न आये।

इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन को सभा के समक्ष प्रस्तुत करता हूं।

***पंडित ठाकुरदास भार्गव:** उपाध्यक्ष महोदय, यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इस प्रकार के प्रस्ताव पर इस सभा में इतनी जल्दबाजी से वाद-विवाद हो। आज सुबह आठ बजे मुझे इस प्रस्ताव की प्रति मिली और जब मैं यहां आया

तब मैंने उन संशोधनों को प्रस्तुत किया जिन पर बोलना चाहता हूं। परन्तु अब मुझे इस प्रस्ताव में और भी अनेकों कठिन समस्यायें विदित हुई हैं और मैं आपसे निवेदन करूंगा कि मुझे जिस समय इस प्रस्ताव पर वाद-विवाद हो उस समय बोलने की कृपया अनुमति दे दें, या इस विषय पर अपनी समस्त आपत्तियों को विस्तारपूर्वक रखने की अनुमति दे दें। यदि आप समूचे प्रस्ताव पर इस समय बोलने की अनुमति दे देंगे तो मैं अपने भाषण को अभी समाप्त कर दूंगा।

***उपाध्यक्षः** आप अपने स्वविवेक का प्रयोग कर सकते हैं।

***पंडित ठाकुरदास भार्गवः** मेरा निवेदन यह है कि इस प्रस्ताव का विषय ऐसा है कि जिसको वास्तव में विधान-मण्डल के अधिनियम में रखना चाहिये। श्रीमान्, सर्वप्रथम तो जैसा कि मेरे मित्र श्री त्यागी ने बताया है, मुझे भी सन्देह है कि क्या इस प्रकार के प्रस्ताव को वही वैधिक शक्ति होगी जो एक अधिनियम को होती है। हम अनुच्छेद 67 खण्ड (6) पारित कर ही चुके हैं। खण्ड (6) में हम यह निर्धारित कर चुके हैं कि मतदाताओं की निर्योग्यतायें या तो विधान के अन्तर्गत हों या अनिवास, मनोविक्षेप, पातक अथवा भ्रष्ट या अवैध आचरण के आधार पर संसद् के अधिनियम के अन्तर्गत हों। जहां तक अनिवास के आधार पर निर्योग्यता के प्रश्न का सम्बन्ध है, इस प्रस्ताव के पैरा (3) और (4) द्वारा उस पवित्र क्षेत्र में हस्तक्षेप होता है जो केवल संसद् के अधिनियम का क्षेत्र है। हम किसी प्रस्ताव के आधार पर यह नहीं कह सकते हैं कि कोई व्यक्ति किसी निर्वाचन-क्षेत्र की मतदाताओं की सूचियों में सम्मिलित किये जाने के लिये उस निर्वाचन-क्षेत्र में निवास करने के उद्देश्य की घोषणा करे। इसमें कोई बन्धनकारी शक्ति नहीं है।

इसी तरह विक्षिप्त मनुष्यों के सम्बन्ध में मैं देखता हूं कि वे विक्षिप्त मनुष्य शामिल नहीं किये जायेंगे जो किसी अधिकृत न्यायालय द्वारा विक्षिप्त घोषित कर दिये गये हैं, परन्तु उन विक्षिप्त मनुष्यों को तो शामिल करना ही होगा जो विक्षिप्त घोषित नहीं किये गये है। अनुच्छेद 67 खण्ड (6) में जिस विचार को प्रस्तुत किया गया है उससे सम्बन्धित संसद् का अधिनियम 1950 अथवा 1949 में पारित हो जायेगा। हम उस अधिनियम की प्रत्याशा में हैं। आप केवल एक प्रस्ताव द्वारा 1 जनवरी सन् 1949 तिथि किस प्रकार नियत कर सकते हैं और यह कह सकते हैं कि "जब तक कि तारीख 31 मार्च सन् 1948 ई. को समाप्त होने वाले वर्ष में उसने उस निर्वाचन-क्षेत्र में कम से कम 180 दिनों तक निवास न किया

[पंडित ठाकुरदास भार्गव]

हो?" मेरा निवेदन यह है कि संसद् के अधिनियम द्वारा ही ऐसी तिथियां नियत की जा सकती हैं। एक प्रस्ताव द्वारा ये तिथियां नियत नहीं की जा सकतीं।

इसी प्रकार देशीयकरण और नागरिकता के बारे में वर्तमान कानून प्रवर्तन में है ही। उन कानूनों को हम इस प्रस्ताव द्वारा नहीं हटा सकते हैं। उन अधिनियमों को कानूनों की शक्ति प्राप्त है और उन कानूनों को केवल यह प्रस्ताव नहीं हटा सकता है। मेरा निवेदन यह है कि यह प्रस्ताव वर्तमान कानून और अनुच्छेद 67 खण्ड (6) में दिये हुये सिद्धान्तों के विरुद्ध है।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, जब तक आप नागरिकता के खण्ड को पारित नहीं कर लेते हैं, तब तक आप मतदान करने वाले नागरिकों की सूचियां नहीं बना सकते हैं। जब निर्वाचन-क्षेत्र की सीमायें स्थिर नहीं हुई हैं तो मुझे सन्देह है "उस निर्वाचन-क्षेत्र में निवास किया हो" शब्द किस प्रकार सार्थक होंगे। जब तक निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमायें स्थिर न की जायें, तब तक हम यह नहीं जान सकते कि कोई व्यक्ति किस निर्वाचन-क्षेत्र में निवास करेगा। पचहत्तर हजार जनसंख्या का आधार है और यह मालूम करना बड़ा कठिन होगा कि कब मतदाताओं की सूचियां तैयार होंगी और कोई व्यक्ति निर्वाचन-क्षेत्र 'क' में रहता है अथवा निर्वाचन-क्षेत्र 'ख' में। मेरा निवेदन यह है कि इस प्रस्ताव में सारी बातें उल्टी प्रतीत होती हैं, क्योंकि अभी तक न तो निर्वाचन-क्षेत्र बने हैं और न नागरिकता सम्बन्धी खण्ड ही पारित हुआ है। यह कहा जा सकता है कि तैयारी करने के हेतु एक रजिस्टर तैयार किया जायेगा, परन्तु यहां तो "मतदाताओं की सूची" शब्द का प्रयोग हुआ है। और यदि उसे तैयार करना ही है, तो उसके लिये किसी प्रस्ताव की आवश्यकता नहीं है। मैं समझता हूं कि गत आठ माह से यह तैयारी हो रही है। क्या वे मतदाताओं की सूचियां जो तैयार हो चुकी हैं अवैध हैं? यदि वे अवैध नहीं हैं, तो यह संशोधन अनावश्यक है और यदि वे अवैध हैं तो इस प्रस्ताव के पारित करने से वे वैध नहीं हो सकती हैं। मेरा निवेदन यह है कि

अच्छा होता यदि हम इस प्रस्ताव को न रखते जिसे संसद् के अधिनियम के रूप में कानून के मुकाबले कोई बन्धनकारी शक्ति नहीं है।

उस विशेष संशोधन के सम्बन्ध में, जिसे मैंने आपके विचारणार्थ प्रस्तुत किया है, उपखण्ड (4) में ये शब्द हैं "अपने उद्देश्य का लिखित घोषणा-पत्र दाखिल करें"। हमसे अभी माननीय प्रधानमन्त्री ने यह कहा कि जब गणना करने वाला—इस शब्द से मैं समझता हूं कि हमारा आशय उस व्यक्ति से है जिस पर मतदाताओं की सूचियां तैयार करने का कार्य है—किसी गांव में जायेगा तो वह शरणार्थियों से घोषणा-पत्र ले लेगा। श्रीमान्, मैं चाहता हूं कि इस संशोधन द्वारा दो बातें स्पष्ट कर दी जायें। पहली यह कि सरकारी कागज में उनका खर्च नहीं होगा। दूसरी यह कि मतदाताओं की सूचियां तैयार करने वाला व्यक्ति उन गांवों में जाये और वहां घोषणा-पत्र प्राप्त करे। केवल एक घोषणा-पत्र, चाहे वह कितने ही बड़े तथा उच्च अधिकारी द्वारा हो, यथेष्ट नहीं होगा। आखिर प्रान्तीय सरकारों को ही यह कार्य करना होगा। वे पटवारियों अथवा गिनने वालों को, जिनको कि इन सूचियों का कार्य सौंपा गया हो, प्रत्येक गांव में न भेज सकें तो फिर ऐसा होगा कि इन शरणार्थियों को 2 रुपये खर्च करने पड़ेंगे और कार्यालय में जाकर घोषणा-पत्र दाखिल करना होगा। उन लोगों को अक्षरज्ञान नहीं है। उनको अनेक प्रकार के अकथनीय कष्ट होंगे। इस सभा के अनेकों सदस्यों को यह पूर्णतया ज्ञात है कि यदि इस प्रकार से घोषणा-पत्र दाखिल कराये गये तो यह होगा कि इन लोगों से बहुत से व्यक्ति किसी न किसी गैर कानूनी रूप से रुपया ऐंठेंगे और जब उन व्यक्तियों को कुछ दे दिया जायेगा तभी वे उनका घोषणा-पत्र दाखिल करेंगे और उनको मतदाता बनने देंगे। इन कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। मेरा निवेदन है कि यदि आप इस प्रकार का नियम रखना चाहते हैं तो चाहे किसी अधिशासी आदेश द्वारा या इस प्रस्ताव में उन बातों को रख कर आपको यह देखना चाहिये कि शरणार्थियों को सब तरह की सुविधा दी जाये, जिससे कि उनके कारण कोई कठिनाई न हो। ये शरणार्थी भारतीय सरकार की एक प्रकार से खास देखभाल में हैं और उनको सब तरह की सुविधायें दी जानी चाहियें।

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

श्रीमान्, मैंने एक और संशोधन की भी सूचना दी है जो 31 मार्च सन् 1948 तिथि के सम्बन्ध का है। मेरा नम्र निवेदन यह है कि इस प्रस्ताव द्वारा तिथि नियत करने की सामर्थ्य नहीं है, परन्तु यदि कोई तिथि नियत की ही जाती है तो मैं नम्रतापूर्वक निवेदन करूंगा कि वही तिथि नियत की जाये जो खण्ड (2) में है। 1 जनवरी सन् 1949 या 31 मार्च सन् 1949 तिथि रखी जिससे कि किसी नागरिक का अधिकार न छीना जा सके, जो आज तक या 31 मार्च सन् 1949 तक या 1 जनवरी सन् 1949 तक नागरिक है। ऐसी कोई बात नहीं है कि जहां तक उसका सम्बन्ध है निवास का प्रश्न उसके आड़े आये। मेरा निवेदन यह है कि या तो यह तिथि वही रहे और या इसको 31 मार्च सन् 1949 कर दिया जाये, क्योंकि मैं नहीं समझता हूं कि मार्च सन् 1949 के पूर्व इन आदेशों अथवा इस प्रस्ताव के विषय पर अमल किया जायेगा और जब तक इनको अमल में नहीं लाया जाता तब तक की हमें तिथि रखनी चाहिये। 31 मार्च सन् 1948 तिथि रखने में कोई अर्थ नहीं है और इस तिथि के रखने से बहुत से लोग पृथक् हो जायेंगे अथवा बहुत से लोगों के मार्ग में रुकावटें आ जायेंगी। इन दोनों संशोधनों के सम्बन्ध में सभा से मेरा निवेदन है कि इनको स्वीकार किया जाये।

***उपाध्यक्ष:** श्री नागप्पा के नाम से एक संशोधन है। पंडित नेहरू ने जो अभी स्पष्टीकरण किया था उसको ध्यान में रखते हुये क्या वे अब भी अपने संशोधन पेश करने का आग्रह करते हैं?

***श्री एस. नागप्पा:** जी हां, मैं अपने नाम के संशोधनों को पेश करने का निवेदन करता हूं, अर्थात्:

> "कि पैरा 4 में से अन्तिम दूसरी पंक्ति में 'constituency' (कर लिया जायेगा) शब्द के पश्चात् आने वाले 'if he files a declaration of his intention to reside permanently in that constituency' (जिसमें अपने स्थायी रूप से निवास करने के उद्देश्य का वह लिखित घोषणा-पत्र दाखिल कर दे) शब्द निकाल दिये जायें।"

इसके लिये यह कारण है। हम जानते हैं कि हमारे देश में केवल 10 या 12 प्रतिशत साक्षर हैं। "लिखित घोषणा-पत्र दाखिल करने" का क्या अर्थ है?

यदि घोषणा "करना" होता तो बात दूसरी थी। मान लीजिये कोई अधिकारी किसी व्यक्ति के पास जाता है, यदि वह उस व्यक्ति द्वारा की गई घोषणा को दर्ज कर लेता है तब तो यह बात मेरी समझ में आ सकती है। परन्तु लिखित घोषणा-पत्र दाखिल करने का यह अर्थ है कि वह घोषणा-पत्र लिपिबद्ध हो। मुझे खुशी है कि माननीय प्रस्तावक महोदय ने यह स्पष्ट कर दिया कि सरकारी टिकट लगाने की आवश्यकता नहीं है परन्तु उस घोषणा-पत्र को भरने, उस पर हस्ताक्षर करने और तत्सम्बन्धी अधिकारी के यहां उसे दाखिल करने के भार से तो वह वंचित नहीं होता है। अतः मेरा प्रश्न यह है कि यदि आप निकालना ही चाहते हैं तो समस्त खण्ड को निकाल दीजिये। नहीं तो मेरा वैकल्पिक संशोधन है। मैं उस संशोधन को भी जिसमें यह कहा गया है कि "वह लिखित घोषणा-पत्र दाखिल कर दे या घोषणा कर दे" आपकी अनुमति से पेश करना चाहूंगा। यदि हम इस प्रकार इस खण्ड को रखें तो दोनों प्रकार के साक्षर और निरक्षर लोगों को मतदाता की सूचियों में दर्ज होने का अवसर मिल जायेगा।

***उपाध्यक्षः** क्या मैं माननीय सदस्य को यह संकेत करूं कि इस संशोधन को डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है?

***श्री एस. नागप्पाः** यदि उसको स्वीकार कर लिया है तो अच्छा है। इस दशा में तो मुझे पेश करने की कोई आवश्यकता नहीं जब कि आप कहते हैं कि आप उसे स्वीकार कर रहे हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैंने माननीय सदस्य की बातें सुन ली हैं और अन्य लोगों की बातें भी मैं सुन चुका हूं। मैं उनके सब तर्कों को समझ गया हूं और मैं समझता हूं कि जहां तक मेरा सम्बन्ध है, इन तर्कों का दुहराना अनावश्यक ही है मैं उनको समझ चुका हूं।

***उपाध्यक्षः** अब इस प्रस्ताव पर सामान्य वाद-विवाद हो सकता है।

**सेठ गोविन्द दासः** उप-सभापति जी, मैं वकील नहीं हूं और मैं बाल की खाल भी नहीं निकालना चाहता। जो प्रस्ताव यहां पर पेश किया गया है, इस प्रस्ताव के उद्देश्य क्या हैं और इसके पीछे कौन-सी भावना है, इसके सम्बन्ध में ही मैं यहां कुछ कहना चाहता हूं।

[सेठ गोविन्द दास]

इस विधान-परिषद् में दो प्रकार के सदस्य हैं। एक वे जिन्हें इस विधान-परिषद् से बाहर का जो सार्वजनिक जीवन है, उससे भी सम्बन्ध है और एक वे जिनका क्षमा करें केवल इस विधान-परिषद् से ही सम्बन्ध है। मैं इस बात को स्वीकार करने को तैयार हूं कि जो हमारे मतदाता हैं या होने वाले हैं, उनकी सूचियां बन रही हैं। मैं इस बात को भी मंजूर करता हूं कि यदि यह प्रस्ताव न भी होता तो भी इस काम में कोई रुकावट पड़ने वाली नहीं थी। परन्तु इसके साथ मैं यह भी कहना चाहता हूं कि उन सूचियों के बनते रहने पर भी देश भर में विधान-परिषद् का कार्य जो इतनी मंदगति से चल रहा है और हमारे विधान को बनाने में जो इतनी देर हो रही है, उससे तरह-तरह की अफवाहें फैली हुई हैं। मेरा इस विधान-परिषद् के बाहर के सार्वजनिक जीवन से थोड़ा-बहुत सम्बन्ध है और बाहर क्या-क्या बातें कही जाती हैं, उन्हें मैं जानता हूं। कुछ लोग यह कहते हैं कि यहां पर जो लोग बैठे हुये हैं, इस विधान-परिषद् में या धारा सभाओं में या जो हमारे मंत्री हैं, केन्द्र में या प्रान्तों में, उनका उद्देश्य यहां पर बैठे रहना है और चुनाव को जितनी भी देर से हो सके उतनी देर से कराना है। कुछ लोग यह कहते हैं कि यदि हम इस देश के रहने वाले प्रत्येक 21 वर्ष वाले को मत देने का अधिकार देना चाहते हैं, तो जब तक 1951 में मर्दुमशुमारी नहीं हो जायेगी, और न जाने और कितनी बातें नहीं हो जायेंगी तब तक चुनाव नहीं होंगे। कुछ लोग यह कहते हैं कि यदि हम बालिग मताधिकार के सिद्धान्त को स्वीकार करने के बाद चुनाव करना चाहते हैं, तो वह चुनाव ही असम्भव हैं। मैं यह कहना चाहता हूं कि इस प्रकार की जो भावनायें इस प्रकार की जो अफवाहें सारे देश में फैली हुई हैं, उनका इस प्रस्ताव के द्वारा बहुत दूर तक उन्मूलन हो जाता है। इस प्रस्ताव को पास करके हम यह सिद्ध कर देते हैं कि हम चुनावों को बहुत देर से करने के अभिलाषी नहीं हैं। हम लोगों को यह भी कहे देते हैं कि इस देश में बालिग मताधिकार पर चुनाव होना संभव है। न जाने क्यों यह बात असम्भव मानी जाती है। इस देश की आबादी बहुत बड़ी है और यह देश बहुत बड़ा है, इसमें सन्देह नहीं है, पर इतना बड़ा देश होने पर भी और हर एक 21 वर्ष की आयु वाले को मताधिकार देने पर भी मैं इस बात को मंजूर करने को तैयार नहीं हूं कि इस देश में चुनाव नहीं हो सकते। कुछ लोग कहते हैं कि इतने अधिक हमारे मतदाता

हो जायेंगे, इतने अधिक पोलिंग स्टेशन होंगे, इतने अधिक आदमियों की उन पोलिंग स्टेशनों पर जरूरत होगी कि चुनाव नहीं हो पायेंगे। मैं इन बातों को हास्यास्पद मानता हूं। यद्यपि इस देश के समस्त निवासी पढ़े-लिखे नहीं हैं तथापि हम ऐसे योग्य लोगों को बुला सकते हैं जो उन पोलिंग स्टेशनों पर चुनाव करवा सकें। अदालतों में यदि असेसर बुलाये जा सकते हैं तो पोलिंग स्टेशनों के लिये भी पढ़े-लिखे ऐसे आदमी बुलाये जा सकते हैं, जो सरकारी नौकर न हों।

इस प्रस्ताव का जो उद्देश्य है। इस प्रस्ताव के पीछे जो भावना है, उनकी ओर हमें दृष्टि रखनी है। हमको बाल की खाल नहीं निकालनी है। हमको शाब्दिक झगड़े, कोलन, सेमीकोलन और कोमों के पीछे ध्यान नहीं देना है। यह प्रस्ताव है, यह कोई बिल नहीं है। ऐसे प्रस्तावों में सरकार को कुछ कहना होता है, प्रस्ताव का अर्थ जनता को आवश्वासन देना होता है। इस प्रस्ताव का उद्देश्य सरकार से तथा जनता से कुछ कहना है, इस प्रस्ताव का उद्देश्य जनता को कुछ आश्वासन देना है। हम यहां पर बैठे हुए हैं, लेकिन हम यहां पर हमेशा बैठे रहने के इच्छुक नहीं हैं। इसके जरिये हम कहना चाहते हैं कि इस देश में 21 वर्ष से ऊपर के जितने लोग रहते हैं, उनको मताधिकार देने के उपरान्त भी हम 1950 में चुनाव को करवा डालना चाहते हैं। इस उद्देश्य और भावना से प्रेरित होकर यह प्रस्ताव इस सभा के सामने आया है और इस उद्देश्य और इस भावना का समर्थन करने के कारण मैं इस मूल प्रस्ताव का समर्थन करता हूं। इस प्रस्ताव को पास करने के बाद इस देश की जनता के हृदय में जो अनेक प्रकार के संदेह रहे हैं, उनका उन्मूलन हो जायेगा और एक नया जीवन आ जायेगा। मैं आपको याद दिलाता हूं कि जिस समय विधान-परिषद् आरम्भ हुई थी उस समय हमें इस देश में कितना जीवन दृष्टिगोचर होता था और विधान-परिषद् की कार्यवाही में लोग कितनी दिलचस्पी लेते थे परन्तु धीरे-धीरे विधान-परिषद् का कार्य इस तरह बढ़ता जा रहा है जिससे कि लोग न जाने क्या-क्या समझने लगे हैं। और विधान-परिषद् की जो रोज की कार्यवाही होती है उसमें लोगों की दिलचस्पी भी बहुत कम रह गई है। इस प्रस्ताव के पास करने से यह सिद्ध हो जाता है कि 1950 में हम चुनाव करना चाहते हैं और यह निश्चित है कि हम इस विधान को भी जल्दी से जल्दी बना देना चाहते हैं और इस तरह लोगों के सन्देहों का उन्मूलन करना चाहते हैं। यदि हम इस प्रस्ताव के उद्देश्यों को देखें और इस प्रस्ताव के पीछे जो भावना है,

[सेठ गोविन्द दास]

उसको देखें, तो हमको मानना पड़ेगा कि इस प्रस्ताव का पास होना चाहे कानून की दृष्टि से आवश्यक न हो, पर इन उद्देश्यों और भावनाओं की दृष्टि से अत्यंत आवश्यक है। मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं सभा का बहुत अधिक समय लेना नहीं चाहता हूं। इस प्रस्ताव के ठीक-ठीक प्रभाव पर विचार करना चाहिये। मैं नहीं समझता हूं कि इस प्रस्ताव को उसी रूप में माना जायेगा जिस रूप में हमारे विधान के खण्डों को माना जायेगा। मैं समझता हूं कि मतदाताओं की सूचियां तैयार करने के लिये कुछ समय तक इसका प्रभाव किसी घोषणा के प्रभाव के समान होगा। जब कोई विधान नियमित रूप से लागू कर दिया जायेगा, तो नये विधान के अधीन अधिकारियों तथा नियमों द्वारा इन प्रावधानों के अनुसार तैयार की गई मतदाताओं की सूचियों की उचित रीति से पुष्टि की जायेगी। इस सबका अर्थ यह है कि जिन अधिकारियों को यह कार्य करना पड़ेगा वे इस बात का ध्यान रखेंगे कि यह प्रस्ताव विधान-परिषद् द्वारा स्वीकार किया गया है और वे इस बात का प्रयत्न करेंगे कि मतदाताओं की सूचियों में कोई परिवर्तन न हो या इन प्रावधानों के अनुसार बनाई गई मतदाताओं की सूचियों में केवल अति आवश्यक परिवर्तन ही किये जायें।

श्रीमान्, मैं समझता हूं कि खण्ड (2) और (3) में तिथियों का अन्तर केवल अनावश्यक ही नहीं वरन् कष्टदायक है। प्रधानमन्त्री ने यह बताया कि खण्ड (3) में 31 मार्च सन् 1948 तिथि इस उद्देश्य से रखी गई है कि भारतीय सरकार के आदेश के अनुसार अब तक जो मतदाताओं की सूचियां तैयार हो चुकी हैं वे ज्यों की त्यों सही बनी रहें। यह बात उचित है अन्यथा समस्त मतदाताओं की सूचियों में परिवर्तन करना पड़ेगा।

खण्ड (2) के अनुसार सब लोग जो 1 जनवरी सन् 1949 तक 21 वर्ष की आयु के हो जाते हैं शामिल किये जायेंगे। इसमें जितने लोगों की संख्या आ जाती है उसकी ओर मैं अभी संकेत करूंगा। मैं समझता हूं कि प्रतिवर्ष लगभग 1 करोड़ व्यक्ति 20 वर्ष की आयु से 21 वर्ष की आयु के होते हैं। भारत में औसत आयु 30 वर्ष है। अत: प्रत्येक आयु-समूह में विशेषकर बीच के आयु-समूहों में

एक-एक करोड़ आदमी होंगे। अत: खण्ड (2) में 1 जनवरी सन् 1949 रखने से हम उन 1 करोड़ में से कम से कम 75 प्रतिशत को ले लेते हैं, अर्थात् तैयार किये हुये रजिस्टरों में 75 लाख मतदाता और दर्ज करने होंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि मतदाताओं की सब सूचियों को ठीक किया जाये। अत: यदि हम मतदाताओं की नई सूचियां तैयार करना चाहते हैं तो हमें पंडित ठाकुरदास भार्गव के सुझावों को स्वीकार कर लेना चाहिये। हम 31 मार्च सन् 1949 रखें जिससे कि आधुनिक काल तक योग्य होने वाले लोगों को मताधिकार प्राप्त हो जाये। यदि हम पुराने रजिस्टरों का उपयोग करना चाहते हैं तो खण्ड (2) में भी हम 31 मार्च सन् 1948 रखें। फिर हमें रजिस्टरों में अधिक संख्यायें दर्ज नहीं करनी होंगी। अत: इन दोनों खण्डों में कुछ एकरूपता होनी चाहिये।

खण्ड (4) में 'स्थायी' शब्द के बारे में बहुत वाद-विवाद हो चुका है। उद्देश्य यह था कि शरणार्थी भारत में स्थायी रूप से निवास करने की घोषणा कर दें फिर चाहे वे किसी खास निर्वाचन-क्षेत्र में कुछ समय के लिये रह सकते हैं। उद्देश्य यह है। किसी नागरिक से भी यह आशा नहीं की जाती है या उसके लिये यह आवश्यक नहीं समझा जाता है कि वह किसी निर्वाचन-क्षेत्र में स्थायी रूप से निवास करे। अत: मैं नहीं समझता हूं कि शरणार्थियों के लिये कोई नई कठिन शर्त रखी जा रही है। केवल यह कहा जा रहा है कि उस निर्वाचन-क्षेत्र में निवास करने के उद्देश्य की वह घोषणा कर दें। इसके साथ-साथ भारत में स्थायी रूप से निवास करने की भी वह घोषणा करें।

एक और बात है, श्रीमान्, और मैं समझता हूं कि वह मतदाताओं की सूचियां तैयार करने से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। वह यह है कि शीघ्रातिशीघ्र निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमायें स्थिर करने के लिये एक कमीशन नियुक्त कर दिया जाये। यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि सीमायें स्थिर करने से पूर्व मतदाताओं की सूचियां तैयार की जायें। मैं नहीं समझता हूं कि यह तर्क ठीक है क्योंकि प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर सीमायें स्थिर करना जितना जनसंख्या पर निर्भर होगा उतना मतदाताओं की सूचियों पर नहीं। अत: दोनों कार्य साथ-साथ नहीं हो सकते और मैं भारतीय सरकार को यह सुझाव देने का अनुरोध करता हूं कि वह शीघ्र ही—और यदि आवश्यक समझा जाये तो विधान-परिषद् के अध्यक्ष के आदेशों से—सीमा स्थिर करने वाले कमीशन की नियुक्ति करे, जिससे कि इस वर्ष के समाप्त होते ही विधान-परिषद् का समस्त कार्य समाप्त हो जाये और जिससे कि

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

मतदाताओं की सूचियों की तैयारी का अन्तिम कार्य और निर्वाचन के लिये अन्य कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति शीघ्रता से की जा सके।

एक और भी विचार है, जिसके कारण सीमा स्थिर करने वाले कमीशन को शीघ्रातिशीघ्र नियुक्त करने की आवश्यकता है। मतदाताओं की सूचियों की तैयारी के सम्बन्ध में भी उनका अन्तिम प्रकाशन तथा अन्य विषयों को निर्वाचन-क्षेत्र के अनुसार ही पूरा किया जा सकता है। अब तक हमने जो प्रावधान स्वीकार किये हैं उनके अनुसार प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में लोगों की संख्या लगभग समान होनी चाहिये। इसलिये जब तक निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमा स्थिर नहीं की जाती है, हम यह नहीं जान सकते कि किस क्षेत्र के लिये मतदाताओं की सूचियां तैयार करनी हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि उनकी अन्तिम तैयारी के लिये निर्वाचन क्षेत्रों के सीमाकरण की प्रतीक्षा करनी होगी। इस कार्य को शीघ्रातिशीघ्र आरम्भ कर देना चाहिये। श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि जो लोग इस प्रस्ताव को अमल में लाना चाहते हैं उनको इन बातों पर विचार करना चाहिये। जैसा कि मैंने आरम्भ में कहा था, यह प्रस्ताव विधान-परिषद् की ओर से भारतीय सरकार को एक सामायिक आदेश के रूप में प्रारम्भिक कार्य तैयार करने के लिये है। यदि सौभाग्यवश अगली 15 अगस्त तक हम इस विधान को लागू कर सकें तो उस तारीख के पश्चात् जो अधिकारी बनेगा उसके द्वारा अथवा अध्यक्ष के द्वारा इस विषय में अन्तिम आदेश दिये जायेंगे।

***श्री मुहम्मद इस्माइल साहिब** (मद्रास : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, यह सत्य है कि निर्वाचनों की तैयारी करने और उनके होने में देर हो गई है। इस देर पर चाहे हम कितना ही खेद प्रकट करें, परन्तु मैं नहीं समझता हूं कि इस प्रकार का प्रस्ताव उस देर की किसी रूप में भी समुचित क्षतिपूर्ति करेगा। इस प्रस्ताव को देखते ही मुझे अनेकों कठिनाइयां दिखाई दे जाती हैं। इस प्रस्ताव के शब्दों से और जैसी कि स्थिति है, उससे मुझे यह विदित होता है कि इस देर में कमी नहीं की जा सकती है। सर्वप्रथम इस प्रस्ताव के पहले खण्ड में यह कहा गया है कि "किसी व्यक्ति को किसी निर्वाचन-क्षेत्र की सूची में नहीं रखा जायेगा" और फिर इसके बाद (क) और (ख) इत्यादि हैं परन्तु हमें यह नहीं बताया गया है कि किनको रखा जायेगा; इसमें विषय को निषेधात्मक रीति से रखा गया है।

जो लोग मतदाताओं की सूचियां तैयार करेंगे वे किस प्रकार कार्य करें यह स्पष्ट नहीं बताया गया है। श्रीमान्, इस प्रस्ताव में केवल एक ही खण्ड (4) स्पष्ट है। उसमें यह कहा गया है कि "समुचित विधान-मण्डल के कानून के अधीन यदि कोई व्यक्ति अपने पूर्व निवास स्थान से उपद्रव के कारण या उपद्रव से डर कर किसी प्रान्त या भारतीय संघ में सम्मिलित किसी रियासत में....." इत्यादि, इत्यादि। केवल यही स्पष्ट खण्ड है। हमें यह नहीं बताया गया है कि वे कौन लोग हैं, जिनको मतदाताओं की सूची में रखा जायेगा। इसको स्पष्ट करना पड़ेगा। और फिर खण्ड (2) और (3) में जो तिथियां दी गई हैं, ऐसी हैं कि वे बहुत से उन लोगों को मताधिकार से वंचित कर देंगी जो चुनाव के समय मत देने के अधिकारी हो जायेंगे। श्रीमान्, इन तारीखों के पक्ष में यह कहा गया है कि यदि हम और कोई आगे की तिथि मान लेंगे, तो मतदाताओं की जो प्रारम्भिक सूचियां तैयार हो चुकी हैं उनमें गड़बड़ी हो जायेगी। मेरा आग्रह यह है कि इस बात के लिये लाखों लोगों को मताधिकार से वंचित नहीं करना चाहिये। मतदाताओं की सूचियां तैयार करने में चाहे कितनी ही असुविधा क्यों न हो, अधिकारियों को इन तिथियों के स्थान में अन्य तिथियां रखनी चाहियें, क्योंकि मतदाताओं की सूचियां तैयार करने में जो अधिकारी लगे हुये हैं उनको जो कुछ भी असुविधायें होंगी उनकी अपेक्षाकृत लोगों का मताधिकार अधिक महत्त्वपूर्ण है। श्रीमान्, इस प्रस्ताव में आयु निश्चित करने की तिथि 1 जनवरी सन् 1949 दी है। यदि मान लीजिये कि 1 जनवरी सन् 1950 से और यहां तक कि 31 मार्च सन् 1950 से भी यदि आयु निश्चित की जाये, तो भी आयु निश्चित करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। यह होना चाहिये, चाहे इससे मतदाताओं की जो सूचियां तैयार हो चुकी हैं उनको सही करने में कुछ असुविधा क्यों न हो।

और फिर, श्रीमान्, निवास के लिये 31 मार्च सन् 1948 तिथि नियत की गई है। इसको सुविधापूर्वक 31 मार्च सन् 1949 कर सकते हैं, क्योंकि जो लोग मतदाताओं की सूचियां तैयार करेंगे उनको यह जानना चाहिये कि कोई व्यक्ति वास्तव में कितने समय तक किस निर्वाचन-क्षेत्र में अथवा किस स्थान में रहा है। इस कारण मैं समझता हूं कि आयु निश्चित करने के लिये जो तिथि हम रखते हैं उसी तिथि को हम यहां नहीं रख सकते हैं। जो कुछ भी हो, यह तिथि 31 मार्च सन् 1949 में परिवर्तित की जा सकती है।

[श्री मुहम्मद इस्माइल साहिब]

तत्पश्चात् खण्ड (4) में मैंने उन कठिनाइयों के सम्बन्ध में कहा था, जो इस प्रस्ताव में दिये हुये विषय से उत्पन्न हो सकती है। इस खण्ड (4) में एक पद है। उसमें कहा गया है कि "समुचित विधान-मण्डल के कानून के अधीन.....।" यह स्पष्ट है कि इस विषय में माननीय प्रस्तावक महोदय के मन में वह कार्य प्रणाली है, जिसको इस विषय के लिये अंगीकार किया जायेगा। परन्तु जिस रूप में यह पद रखा हुआ है, उससे यह आशय प्रकट होता है कि समुचित विधान-मण्डल इस खण्ड के अर्थ में भी परिवर्तन कर सकता है और इसके वाक्य-विन्यास में भी परिवर्तन कर सकता है। इस प्रस्ताव में ऐसी कोई बात नहीं है, जिसमें यह कहा गया हो कि समुचित विधान-मण्डल उन लोगों के मताधिकार में प्रभाव डालने के लिये कोई कार्य नहीं करेगा जिनका इस खण्ड (4) से सम्बन्ध है। अतः इस बात को स्पष्ट करना चाहिए। जो कुछ यहां विचारा जाता है उसको यहां इस खण्ड की पदावली को और भी अधिक स्पष्ट बनाते हुये, स्पष्ट कर देना चाहिये अर्थात्, हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि यहां केवल कार्यप्रणाली से उद्देश्य है न कि स्वयं कानून से, और इस प्रस्ताव के अर्थ में किसी भी कानून-निर्माण से, जो अब से बाद में बनाया जायेगा, कोई अन्तर नहीं होगा और न उस पर कोई प्रभाव पड़ेगा।

इसके पश्चात् इस प्रस्ताव के कुछ शब्दों और पदों के बारे में संशोधन पेश करने वाले कुछ व्यक्तियों ने जो कुछ कहा है उसमें बहुत शक्ति है। यह संकेत किया गया था कि "already" शब्द केवल उन प्रावधानों पर लागू होता है जो इस प्रस्ताव के पारित होने के पूर्व पारित हो चुके हैं। यदि इस शब्द को यहां रखा जाता है तो इससे बहुत अधिक झगड़े तथा वादविवाद उठ खड़े होंगे। इस कारण कोई हानि नहीं है.....।

***उपाध्यक्षः** क्या मैं यह कह सकता हूं कि "already" शब्द को निकालना स्वीकार कर लिया गया है।

***श्री मुहम्मद इस्माइल साहिबः** तब तो ठीक है।

मैं नहीं जानता हूं कि माननीय प्रस्तावक महोदय अथवा उनके प्रतिनिधि इस नागरिकता के विषय में क्या निश्चय करने वाले हैं। इस सम्बन्ध में कुछ आदेश होने चाहियें कि किन-किन व्यक्तियों को शामिल किया जायेगा। यहां तो आपने

यह कहा है कि किन-किन व्यक्तियों को मतदाताओं की सूचियों में शामिल नहीं किया जायेगा। किन-किन व्यक्तियों को शामिल किया जायेगा इस सम्बन्ध में कुछ निश्चित आदेश होने चाहियें।

इसके पश्चात् मैं समझता हूं, कि इस बात में कि इस प्रस्ताव को कोई वैधिक शक्ति प्राप्त नहीं है बहुत कुछ शक्ति है। माननीय श्री सन्तानम् ने यह बताया कि यह प्रस्ताव कोई वैधिक शक्ति अथवा अधिकार प्राप्त करने के लिये नहीं है, यह तो केवल मतदाताओं की सूचियां तैयार करने के प्रारम्भिक कार्य में और सामान्य निर्वाचन की तैयारी के लिए प्रारम्भिक कार्य में सुविधा प्रदान करने के लिये है। सम्भव है ऐसा हो। परन्तु इन तैयारियों के करने में कुछ बातें पैदा हो सकती हैं। उदाहरणार्थ, कुछ लोग अपने नाम शामिल कराने के लिये अथवा अपने नामों के शामिल न किये जाने के विरुद्ध न्यायालय की शरण जायेंगे। इस प्रस्ताव को क्या शक्ति प्राप्त होगी और उन वादियों की क्या दशा होगी और इस प्रस्ताव की क्या स्थिति होगी? इस बात पर भी गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये। इसी कारण मैंने कहा था कि जिस देर की हम क्षतिपूर्ति करना चाहते हैं वह इस प्रकार के संशोधन द्वारा नहीं हो सकती है। यदि हम विधान के पारित करने में शीघ्रता करते और फिर निर्वाचन करने के प्रश्न को लेते तो अच्छा होता।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, अब इस विषय पर मत लिया जाये।

***श्री मुहम्मद इस्माइल साहिब:** इसके बाद, श्रीमान्, अल्पसंख्यक वर्गों के सम्बन्ध में प्रश्न उठाया गया था।

***एक माननीय सदस्य:** कोई अल्पसंख्यक-वर्ग नहीं है।

***श्री मुहम्मद इस्माइल साहिब:** यह कहा जा सकता है कि इस प्रश्न पर मतदाताओं की सूचियां तैयार करने के पश्चात् विचार किया जा सकता है और मतदाताओं की सूचियों का ऐसा प्रबन्ध किया जा सकता है, अथवा उनमें ऐसा परिवर्तन किया जा सकता है कि वे उन प्रावधानों के अनुकूल हो जायें जिनको यह महान् सभा बाद में पारित करेगी। परन्तु इसमें भी बहुत सी कठिनाइयां तथा असुविधायें होंगी और इस प्रकार से हम समय की कुछ भी बचत नहीं कर सकेंगे। यही मैं कहना चाहता था। इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने का पूरा सार यही

[श्री मुहम्मद इस्माइल साहिब]

है कि अधिक विलम्ब करने से बचा जाये। मेरा प्रश्न यह है कि क्या हम वास्तव में ऐसा ही कर रहे हैं?

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** श्रीमान्, मैं फिर प्रस्ताव रखता हूं कि इस विषय पर अब मत लिया जाये।

***कुछ माननीय सदस्य:** नहीं, नहीं।

***उपाध्यक्ष:** मत लेने के प्रस्ताव पर, जो अभी पेश किया जा चुका है, मैं सभा के विचार जानना चाहूंगा।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** आप इस पर मत ले लीजिये, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** मैं वादविवाद बन्द करने के प्रस्ताव पर मत ले रहा हूं:

प्रस्ताव यह है:

"कि अब इस विषय पर मत लिया जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर!

क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि उत्तर देने के पूर्व आप इस प्रस्ताव को जिस रूप में मान लिया गया है उस रूप में पढ़ देंगे।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** जी हां, जिन परिवर्तनों को मैं स्वीकार करूंगा, उनका मैं संकेत कर दूंगा।

***श्री देशबन्धु गुप्ता:** उपाध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर के उत्तर देने के पूर्व क्या मैं यह जान सकता हूं कि जिस औचित्य-प्रश्न को मैंने उठाया था उस पर आपने कोई आदेश दिया है या नहीं। मैंने एक औचित्य प्रश्न उठाया था कि जब तक 'already' शब्द नहीं हटाया जायेगा, इस प्रस्ताव से कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि अनुच्छेद 149.....।

**उपाध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि 'already' शब्द को तो निकाल दिया गया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से इस प्रस्ताव के प्रस्तावक की ओर से मैं वाद-विवाद का उत्तर देता हूं।

विस्तृत रुप में रखे गये संशोधनों को लेने से पूर्व में स्वयं प्रस्तावक द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव में कुछ संशोधन रखना चाहूंगा।

सबसे पहला संशोधन जिसको मैं पेश करता हूं, वह यह है कि पैरा 2 में से 'already' शब्द को निकाल दिया जायें।

मेरा दूसरा संशोधन यह है कि खण्ड (क) के उपखण्ड (1) को निकाल दिया जाये और दूसरे उपखण्ड के आरम्भ में से "(ख)" शब्द को कोष्ठकों सहित निकाल दिया जाये जिससे कि उपखण्ड (1) इस प्रकार पढ़ा जाये:

"That no person shall be included in the electoral roll of any constituency if he is of unsound mind and stands so declared by a competent court."

(किसी व्यक्ति को किसी निर्वाचन-क्षेत्र की मतदाताओं की सूची में नहीं रखा जायेगा, यदि उसकी बुद्धि विक्षिप्त हो और किसी अधिकार सम्पन्न न्यायालय द्वारा ऐसी घोषणा कर दी गई हो।)"

इसके बाद (4) में मैं निम्न संशोधनों का प्रस्ताव रखता हूं। ["subject to the law of the appropriate legislature" (समुचित विधान-मण्डल के कानून के अधीन) शब्द, जो कि उस पैरे की पंक्ति में हैं, उनके स्थान में "notwithstanding anything in paragraph (3) above" उपरोक्त पैरा (3) में किसी बात के होते हुये भी] शब्द रखने का मेरा संशोधन है। उस पैरा की पंक्ति 5 में "a constituency" (निर्वाचन क्षेत्र) के स्थान में "an area" (क्षेत्र) शब्द रखा जाये। इसी पैरे की इसी पंक्ति में "files" (दाखिल कर दे) शब्द के पश्चात् "or makes" (अथवा घोषणा कर दे) शब्द और जोड़ दिये जायें।

उसी पैरे की अन्तिम पंक्ति में "constituency" (निर्वाचन-क्षेत्र) शब्द के स्थान में "area" (क्षेत्र) शब्द रख दिया जाये।

मेरे ये संशोधन हैं। मैं संक्षेप में अपने संशोधनों की व्याख्या करूंगा। "already" शब्द को हटाने के लिये जो संशोधन मैंने पेश किया है, उससे श्री देशबन्धु गुप्त द्वारा उठाये गये औचित्य-प्रश्न की पूर्ति हो जाती है।

***श्री एच.वी. कामतः** एक औचित्य-प्रश्न है श्रीमान्, क्या डॉ. अम्बेडकर ने नये संशोधन पेश किये हैं? यदि किये हैं तो उस अवस्था में इन संशोधनों पर वाद-विवाद होना चाहिये। श्रीमान्, मैं आपका आदेश चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** लेटिन में एक कहावत है, जिसको मैंने वर्षों पूर्व याद किया था:

*"Summum Justice summum injuris."*

(कानून का लेख प्राण हरता है पर उसकी भावना प्राणदान देती है)

***श्री एच.वी. कामतः** इस परिषद् में हमें यथाशक्ति कानून के लेख तथा उसकी भावना दोनों का ही पालन करना पड़ता है।

***उपाध्यक्षः** मैं कानून की भावना का पालन कर रहा हूं। मैं इस बात की चिन्ता नहीं करता कि मैं किन-किन नियमों का उल्लंघन कर जाता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, क्या मैं यह कह सकता हूं.....।

***उपाध्यक्षः** क्या माननीय सदस्य अपना स्थान ग्रहण करेंगे?

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं केवल यही कह सकता हूं कि यह निराशाजनक कार्य-प्रणाली है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, जैसा कि मैंने कहा था यह सच है कि "already" शब्द उन उलझनों को पैदा करता है जो श्री देशबन्धु गुप्त ने बताई हैं और सही मार्ग यही है कि "already" शब्द को हटा कर इन आपत्तियों को मिटा दिया जाये।

खण्ड (1) को निकाल देने के दूसरे संशोधन के सम्बन्ध में, चूंकि उस खण्ड का आशय पैरा (3) और (4) में निहित है, इसलिये वह निरा अनावश्यक प्रतीत होता है।

"समुचित विधान-मण्डल के कानून के अधीन" शब्दों के स्थान में "उपरोक्त पैरा (3) में किसी बात के होते हुये भी" शब्दों को रखने के मेरे आगे के संशोधन के सम्बन्ध में मेरा निवेदन यह है कि इस प्रकार के खण्ड में मूल शब्द वास्तव में अनावश्यक और अनुचित हैं। उपखण्ड (4) वास्तव में उपखण्ड (3) का एक अपवाद है। वह विषय मेरे संशोधन से स्पष्ट हो गया।

इस आलोचना से बचने के लिये कि जिस समय मतदाताओं की सूचियां तैयार की जायेंगी, उस समय निर्वाचन-क्षेत्र नहीं होंगे और कोई व्यक्ति यदि कुछ संकेत कर सकता है तो वह 'क्षेत्र' का न कि 'निर्वाचन-क्षेत्र' का, क्योंकि उस समय तक निर्वाचन-क्षेत्र बन ही न पायेंगे, मैंने 'निर्वाचन-क्षेत्र' के स्थान में 'क्षेत्र' शब्द रख दिया है।

"अथवा घोषणा कर दे" शब्द जोड़ देने का मेरा संशोधन उस आलोचना के सम्बन्ध में है जो यहां की गई थी कि ऐसे बहुत से मनुष्य हैं, जो निरक्षर हैं और जो आवेदन-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं कर सकते हैं तथा किसी अफसर के यहां उसे पेश नहीं कर सकते हैं। "अथवा घोषणा कर दे" जोड़े देने से वे डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट अथवा मतदाताओं की सूचियां तैयार करने वाले अफसर के सामने मौखिक घोषणा कर सकते हैं। मैं समझता हूं कि यह आपत्ति भी उचित रूप से दूर हो गई।

अब मैं अन्य संशोधनों पर विचार करूंगा जो इस प्रस्ताव पर पेश किये गये हैं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** क्या मैं प्रस्तावक महोदय के एक संशोधन का सुझाव दे सकता हूं कि उनका तर्क पैरा (4) में 'निर्वाचन-क्षेत्र' के संशोधन में.....

***उपाध्यक्ष:** आप यह सभा से नहीं कह सकते हैं। डॉक्टर अम्बेडकर से कह सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं समनुवर्त्ती आवश्यक परिवर्तन कर सकता हूं। जैसा कि मैंने कहा था कि मैं अन्य संशोधनों को लूंगा, उसके अनुसार मैं अपने मित्र श्री त्यागी के संशोधन को लेता हूं। यदि मैंने उनको ठीक-ठीक समझा है तो इस संशोधन के सामान्य रूप पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। वे यह चाहते हैं कि इसके विस्तार को हटा दिया जाये। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जो स्थिति श्री त्यागी ने ग्रहण की है उससे यह संकेत मिलता है कि उनके मन में इस प्रस्ताव के लक्ष्य या उद्देश्य के बारे में गड़बड़ी है। इस प्रस्ताव का लक्ष्य तो केवल यही है कि ऐसी घोषणा कर दी जाये कि इस विधान-परिषद् का यह विचार है कि जहां तक हो सके, निर्वाचन सन् 1950 में कर लिये जायें परन्तु

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

इस प्रस्ताव का उद्देश्य यह है समस्त निर्वाचनों की आधारभूत मतदाताओं की सूचियों को तैयार करने वाले प्राधिकारियों को कुछ निश्चित आदेश दे दिये जायें। मतदाताओं की सूचियां तैयार करने के कार्य से सम्बंधित प्राधिकारियों को आदेश दिये बिना केवल यह घोषणा करना कि निर्वाचन 1950 में होंगे, निस्सार तथा निर्रथक होगा। क्योंकि निर्वाचन तिथि से यथेष्ट समय पूर्व यदि मतदाताओं की सूचियां तैयार नहीं होती हैं, तो निर्वाचन किसी प्रकार भी नहीं हो सकता है। इस प्रस्ताव के दूसरे भाग में विभिन्न प्राधिकारियों के लिये आदेश रखे गये हैं और यदि इस प्रस्ताव में आदेश न रखे जायें तो वह एक पवित्र घोषणा मात्र होगा जिसका कुछ भी अर्थ नहीं। जिन विधियों तथा आदेशों के द्वारा लक्ष्य तक पहुंच सकते हैं उनको निश्चित किये बिना यह लक्ष्य स्थिर करने के समान है और मैं समझता हूं कि मेरे मित्र श्री त्यागी यह समझ गये होंगे कि वास्तव में प्रस्ताव के जिस भाग को वे निकालना चाहते हैं, वह उस भाग से अधिक महत्त्वपूर्ण है जिसको वे रखना चाहते हैं। अब मैं अपने मित्र श्री हनुमन्थैया के संशोधन पर आता हूं।

***श्री महावीर त्यागी:** "already" शब्द के प्रति आपके क्या विचार हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं कह चुका हूं कि मैं उसको हटा दूंगा। श्री हनुमन्थैया के संशोधन के सम्बन्ध में वे चाहते है कि 'सन् 1950 में' शब्दों को निकाल दिया जाये। उनके तर्कों में बहुत कुछ सार है, क्योंकि उनके विचारानुसार इस प्रस्ताव द्वारा यदि निर्वाचन-तिथि सन् 1950 नियत करने की यह विधान-परिषद् घोषणा कर दे और कुछ कारणवश, चाहे वे मतदाताओं की सूचियां तैयार करने के सम्बन्ध के हों अथवा अन्य परिस्थितिवश हों, सन् 1950 में निर्वाचन न कर सके तो यह परिषद् एक गम्भीर स्थिति में पड़ जायेगी। इस परिषद् पर यह दोषारोपण किया जायेगा कि उसने इस विषय को तुच्छ समझा जब कि वास्तव में वह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। परन्तु इसके साथ-साथ प्रस्तावक महोदय ने जो कुछ कहा था उसको विचार में रखते हुये कि देश में कुछ ऐसी भावना वर्तमान है कि इस विधान के पारित करने में जिस शीघ्रता से कार्य करना चाहिये, उस शीघ्रता से हम कार्य नहीं कर रहे हैं और हमारी कार्य-प्रणाली बहुत ही अवकाशमय तथा धीमी है और यह इस कारण है कि हम शीघ्र निर्वाचन करने के बारे में गंभीर नहीं हैं—देश में इस प्रकार की भावना को दूर करने के लिये

यह आवश्यक है कि हम कोई तिथि निश्चित करें और इस विचार से 'सन् 1950 में' शब्दों का रखना आवश्यक हो जाता है। यह सच है कि यदि न्यायसंगत कारणों से इस तिथि को स्थगित करना आवश्यक हो जायेगा, तो यह परिषद् निर्वाचन-तिथि को अवश्य स्थगित करेगी और मुझे विश्वास है कि यदि परिषद् ऐसे सारपूर्ण आधारों को देश के सम्मुख रखेगी जो बहाने मात्र न हों तो इसमें सन्देह नहीं कि देश उस परिवर्तन को तथा तिथि-स्थगन को मान लेगा।

मेरे मित्र श्री सक्सेना यह चाहते हैं कि 1 जनवरी सन् 1949 के स्थान में 1 जनवरी सन् 1950 कर दी जाये। श्री भार्गव चाहते हैं कि 31 मार्च सन् 1948 के स्थान में 31 मार्च सन् 1949 रखा जाये। अब तक जो कुछ हो चुका है उस पर विचार करते हुये इन दिनों संशोधनों में से किसी को भी स्वीकार करना सम्भव नहीं है। यदि मैंने ठीक-ठीक समझा है, श्री सक्सेना के संशोधन में यह आपत्ति की गई है कि निर्वाचन करने की तिथि और उस तिथि में जिस तिथि को मतदाताओं की सूचियां तैयार होती हैं बहुत अन्तर नहीं होना चाहिये। दूसरे शब्दों में मतदाताओं की सूचियां पुरानी तथा पिछले समय की नहीं होनी चाहिये। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यदि हमारा निर्वाचन सन् 1950 में होता है तो मतदाताओं के 1 जनवरी सन् 1949 को प्रौढ़ होने के आधार पर जो सूची तैयार की जाती है वह किसी प्रकार से भी पुरानी नहीं समझी जा सकती है। मेरे मित्र श्री सक्सेना इस तथ्य से परिचित होंगे कि मतदाताओं की समस्त सूचियां निर्वाचन-तिथि से एक वर्ष पीछे की होती हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** वह दो वर्ष पुरानी हो जायेंगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अत: यदि एक ही योग्यता के आधार पर कि वे 1 जनवरी सन् 1949 को 21 वर्ष के हो जायें, लोगों को सूचियों में मतदाता बनने का अधिकार मिल जाता है और यदि सन् 1950 में या किसी ऐसी तिथि को जिसका विनिधान नहीं किया जा सकता है, निर्वाचन किया जाता है तो मैं समझता हूं कि यह नहीं कहा जा सकता कि मतदाताओं की सूचियां पुरानी हो जायेंगी।

अब मैं पंडित भार्गव के संशोधन को लेता हूं। वे चाहते हैं कि 31 मार्च सन् 1949 तिथि रखी जाये। इस संशोधन को स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

सन् 1950 में निर्वाचन करने की आशा से प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर मतदाताओं की सूचियां तैयार करने के लिये विभिन्न प्रान्तीय सरकारों को 1 मार्च सन् 1948 को आदेश दिये जा चुके हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि हम पंडित भार्गव के संशोधन को स्वीकार कर लेते हैं, तो इस आधार पर प्रान्तीय सरकारों ने जो कार्य अब तक कर लिया है, उसे हम रद्द कर देंगे। मैं नहीं समझता हूं कि जो काम हो चुका है उसको रद्द किया जायें, क्योंकि 1 जनवरी सन् 1948 को जो प्रौढ़ हो जायंगे वे उन सूचियों में आ जायेंगे जो तैयार हो चुकी हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** क्या उपखंडिका (2) में 1 जनवरी सन् 1949 को 31 मार्च सन् 1948 में परिवर्तित करना भी आवश्यक नहीं है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** नहीं, मैं ऐसा नहीं समझता हूं।

अब मैं अपने मित्र श्री चौधरी के संशोधन को लेता हूं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी ऐसी बात को रखना चाहते हैं जो यदि हास्यास्पद नहीं तो असम्भव अवश्य है। वे कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जो विक्षिप्त है मताधिकार से वंचित रखा जाये। हम सब इस बात में सहमत हैं कि विक्षिप्त मनुष्यों को मतदाताओं की सूचियों में शामिल नहीं करना चाहिये। परन्तु प्रश्न यह है कि यह कौन निश्चित करे कि कौन मनुष्य विक्षिप्त है और कौन नहीं। मैं समझता हूं कि इस प्रस्ताव में जो शर्त दी गई है, कि किसी व्यक्ति को मतदाताओं की सूची से तभी पृथक् किया जायेगा जब कि वह किसी निष्पक्ष न्यायिक प्राधिकारी द्वारा विक्षिप्त मनुष्य ठहरा दिया जाये, वह शर्त सबसे अधिक पुष्ट है। अन्यथा गांव के पटवारी को यह अधिकार देना कि वह जिस किसी को विक्षिप्त समझे उसे मतदाताओं की सूचियों में न रखे प्यादे को फर्जी बनाना है, और मैं समझता हूं कि ऐसा संशोधन स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

मेरे मित्र श्री कामत् ने एक उस खण्ड के सम्बन्ध में आपत्ति उठाई थी, जो उस दिन स्वीकार किया गया था और जिसमें मनोविक्षेप के साथ-साथ कुछ अन्य निर्योग्यताओं का भी उल्लेख किया गया था, विशेषकर अपराध सम्बन्धी निर्योग्यतायें।

***श्री देशबन्धु गुप्तः** क्या पागलखाने के सभी लोगों को मतदाताओं की सूचियों में रखा जायेगा?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अन्य प्रान्तों के बाबत तो मैं जानता नहीं हूं, पर जहां तक बम्बई का सम्बन्ध है जब तक चीफ प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट यह घोषणा न करे कि यह व्यक्ति विक्षिप्त है, तब तक कोई पागलघर उसे दाखिल नहीं करेगा।

***उपाध्यक्षः** और यही बात बंगाल में है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** और बंगाल में भी ऐसी ही बात मालूम होती है। यह बात बुद्धि विक्षिप्त सम्बन्धी अधिनियम में है।

अपराध के प्रश्न पर मुझे केवल यही कहना है कि उस विशिष्ट अनुच्छेद में 'अपराध' शब्द का प्रयोग करने में मसौदा-समिति ने भारतीय सरकार के अधिनियम की छठी अनुसूची में जो प्रावधान था उसको ज्यों का त्यों रख दिया है और मैं समझता हूं कि उस अनुच्छेद में जो कुछ दिया हुआ है उससे अधिक कोई बात मसौदा-समिति के विचार में भी न थी। उस अनुच्छेद के अनुसार किसी अपराध का करना स्वयं कोई निर्योग्यता नहीं है। निर्योग्यता तो तब है जब कि उस व्यक्ति को सज़ा दी जाती है और जेल में रखा जाता है। जेल में रहने के समय उनको मत देने का अधिकार नहीं रहता है। इस प्रश्न को फिर लिया जा सकता है, जब कि हम उस अनुच्छेद में दी हुई निर्योग्यताओं पर विचार करेंगे, जिसका श्री कामत ने उल्लेख किया है।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मैं यह समझूं कि पातक, भ्रष्ट अथवा अवैध आचरण इत्यादि के कारण यदि कोई व्यक्ति पहले अपराधी सिद्ध किया गया हो, तो ये बातें निर्योग्यता के रूप में नहीं होंगी अथवा उसके मतदाता होने में बाधक नहीं होंगी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जी हाँ, और इन बातों का विनिधान संसद् करेगी।

***उपाध्यक्षः** अब मैं एक-एक करके उन संशोधनों पर मत ले रहा हूं, जो इस सभा में पेश किये जा चुके हैं। सबसे पहला श्री रोहिणीकुमार चौधरी के नाम का

[उपाध्यक्ष]

है और उनके दो संशोधन हैं। मैं एक-एक करके उन पर मत ले रहा हूं। प्रस्ताव यह है:

"कि प्रस्ताव की उपधारा (ख) में से 'and stands so declared by competent court' (और किसी अधिकार सम्पन्न न्यायालय द्वारा ऐसी घोषणा कर दी गई हो) शब्दों को निकाल दिया जाये।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं दूसरे भाग पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

"कि उपखण्ड (4) में से permanently (स्थायी रूप से) शब्द को, जो पंक्ति 6 में आता है, निकाल दिया जाये।"

*(बाधायें)*

*प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** मैं जानता हूं कि दीर्घावकाश होने से एक दिन पूर्व स्कूल के छात्र सदैव बुद्धिमता का व्यवहार नहीं करते हैं।

आगे का संशोधन श्री ठाकुरदास भार्गव का है।

प्रस्ताव यह है:

"कि 'files a declaration' (लिखित घोषणा-पत्र दाखिल कर दे) के स्थान में 'expresses the intention' (प्रकट कर दे) शब्द रखे जायें।"

परन्तु डॉ. अम्बेडकर ने जो कुछ स्वीकार कर लिया है, यह उसके अन्तर्गत आ जाता है।

इसके पश्चात् उनका दूसरा संशोधन यह है कि पैरा 3 में "31 मार्च सन् 1948" के स्थान में "31 मार्च सन् 1949" कर दिया जाये।

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** इसके पश्चात् हम श्री हनुमन्थैया के संशोधन को लेते हैं।

***श्री के. हनुमन्थैया:** श्रीमान्, मैं सभा से अपना संशोधन वापिस लेने की अनुमति मांगता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापिस किया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब हम श्री नागप्पा के संशोधन को लेते हैं। परन्तु वह डॉ. अम्बेडकर के संशोधन के अन्तर्गत आ जाता है, अत: उस पर मतदान नहीं होगा।

इसके बाद श्री त्यागी का संशोधन है।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, मैं अपना संशोधन वापिस करने की सभा से अनुमति मांगता हूं।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापिस किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** इसके बाद 1 जनवरी सन् 1949 के स्थान में 1 जनवरी सन् 1950 रखने का प्रो. सक्सेना का संशोधन है।

प्रस्ताव यह है:

"कि '1 जनवरी सन् 1949' के स्थान में '1 जनवरी सन् 1950' रखा जाये।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** दूसरा भाग डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है, अत: उस पर मत लेना आवश्यक नहीं है। इसके बाद हम तीसरे भाग पर आते हैं। परन्तु वह भी डॉ. अम्बेडकर के संशोधन के अन्तर्गत आ जाता है।

परन्तु उनका इस प्रकार का एक और संशोधन भी है।

प्रस्ताव यह है:

"कि उपखण्डिका (4) की अन्तिम पंक्ति में से 'Permanently' (स्थायी रूप से) शब्द को निकाल दिया जाये।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** अब मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधनों द्वारा संशोधित रूप में प्रस्ताव पर मत लेता हूं। क्या सभा यह चाहती है कि मैं उसे पढ़ूं?

***माननीय सदस्य :** जी नहीं।

*उपाध्यक्ष: अत: प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधित रूप में यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाये।"

*संशोधित रूप में प्रस्ताव स्वीकार किया गया।*

---

†Resolved that instructions be issued forthwith to the authorities concerned for the preparation of electoral rolls and for taking all necessary steps so that elections to the Legislatures under the new Constitution may be held as early as possible in the year 1950.

Resolved further that the State electoral rolls be prepared on the basis of the provisions of the new Constitution agreed to by this Assembly and in accordance with the principles hereinafter mentioned, namely:—

(1) That no person shall be included in the electoral roll of any area if he is of unsound mind and stands so declared by a competent court.

(2) That 1st January, 1949 shall be the date with reference to which the age of the electors is to be determined.

(3) That a person shall not be qualified to be included in the electoral roll for any area unless he has resided in that area for a period of not less than 180 days in the year ending on the 31st March, 1948. For the purposes of this paragraph, a person shall be deemed to be resident in any area if he ordinarily resides in that area or has a permanent place of residence therein.

(4) That, notwithstanding anything in paragraph (3) above, a person who has migrated into a Province or Acceding State on account of disturbances or fear of disturbances in his former place of residence shall be entitled to be included in the electoral roll of an area if he files or makes a declaration of his intention to reside permanently in that area.

[यह निश्चय किया जाता है कि तत्सम्बन्धी अधिकारियों को मतदाताओं की सूचियां तैयार करने और समस्त आवश्यक प्रबन्ध करने के लिये आदेश दे दिये जायें, जिससे कि नये विधान के अन्तर्गत विधान-मण्डलों का निर्वाचन सन् 1950 में शीघ्र से शीघ्र किया जा सके।

आगे यह और निश्चय किया जाता है कि राज्यों की मतदाताओं की सूचियां नये विधान के इस परिषद् द्वारा स्वीकृत प्रावधानों के आधार पर तथा उन सिद्धान्तों के अनुसार जो यहां दिये गये हैं, तैयार की जायें, अर्थात्....

(1) किसी व्यक्ति को किसी क्षेत्र की मतदाताओं की सूची में नहीं रखा जायेगा, यदि उसकी बुद्धि विक्षिप्त हो और किसी अधिकार सम्पन्न न्यायालय द्वारा ऐसी घोषणा कर दी गई हो।

(2) 1 जनवरी सन् 1949 की तिथि मतदाताओं की आयु निश्चित करने के लिये होगी।

(3) कोई व्यक्ति किसी क्षेत्र की मतदाताओं की सूची में सम्मिलित किये जाने योग्य नहीं होगा, जब तक कि तारीख 31 मार्च सन् 1948 ई. को समाप्त होने वाले वर्ष में उसने उस क्षेत्र में कम से कम 180 दिनों तक निवास न किया हो। इस पैरा के प्रयोजन के लिये कोई व्यक्ति उस क्षेत्र का निवासी समझा जायेगा, जिसमें वह सामान्यतया रहता हो या जिसमें उसका स्थायी निवास स्थान हो।

(4) उपरोक्त पैरा (3) में किसी बात के होते हुए भी यदि कोई व्यक्ति अपने पूर्व निवासस्थान से उपद्रव के कारण या उपद्रव से डर कर किसी प्रान्त या भारतीय संघ में सम्मिलित किसी रियासत में चला गया हो, तो वह उस क्षेत्र की मतदाताओं की सूची में सम्मिलित कर लिया जायेगा, जिसमें अपने स्थायी रूप से निवास करने के उद्देश्य का वह लिखित घोषणा-पत्र दाखिल कर दे या घोषणा कर दे।]

# विधान का मसौदा-(जारी)

## अनुच्छेद 149-(जारी)

***उपाध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 149 पर आते हैं। मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद पर काफी वाद-विवाद हो चुका है और अब डॉ. अम्बेडकर उत्तर देंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 149 के वाद-विवाद के उत्तर में मैं चाहता हूं कि सबसे पहले मैं अपने संशोधन के सम्बन्ध में, जिसकी संख्या 2255 थी, अपनी स्थिति स्पष्ट कर दूं। इस संशोधन को वापिस करने की मैं सभा से अनुमति चाहता हूं और उसके स्थान में सूची 2 में मि. नज़ीरुद्दीन के संशोधन संख्या 48 द्वारा संशोधित संशोधन संख्या 2249 को मैं स्वीकार करता हूं।

सूची 6 में श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन संख्या 62 और 66 को, श्री भार्गव के संशोधन द्वारा संशोधित रूप में संशोधन संख्या 2252 को और श्री शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन संख्या 67 द्वारा परिवर्तित रूप में संशोधन संख्या 2263 को भी मैं स्वीकार करता हूं।

श्रीमान्, जहाँ तक इस अनुच्छेद पर सामान्य वाद-विवाद का सम्बन्ध है, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि केवल दो ही बातें हैं जिनका उत्तर देना है। पहली बात नये निर्वाचनों के लिये जनगणना के आंकड़ों को स्वीकार करने के सम्बन्ध में है। इस बात पर बहुत से वक्ताओं ने अपने अधिकांश तर्कों को इस बात पर केन्द्रित किया था कि कुछ प्रान्तों में सही जनगणना नहीं हुई है और जहां तक विभिन्न सम्प्रदायों के परस्पर अनुपात का विषय है, वह जनगणना उस अनुपात की सच्ची प्रतीक नहीं है। मैं समझता हूं कि ये तर्क बहुत शक्तिशाली हैं और मैं तो यहां तक कहूंगा कि यदि कोई चाहे तो इस आलोचना को सिद्ध करने के लिये जनगणना के कमिश्नर की रिपोर्टों में से काफी सबूत इकट्ठा कर सकता है। इस विषय पर जनगणना के कमिश्नर ने जो विवरण दिया है, उसका मैंने उल्लेख करना चाहा था। परन्तु चूंकि समय नहीं है, इस कारण यह अच्छा होगा कि मैं उसका उल्लेख न करूं। एक बात और भी है कि अधिकांश सदस्य, जो इस विषय पर बोले हैं, इस विषय में मुझसे अधिक जानते हैं। मैं केवल एक बात

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

और कहना चाहता हूं और वह यह है कि जनगणना में इन कार्यवाहियों के कारण जिन लोगों को सब से अधिक हानि हुई है वे अनुसूचित जातियां हैं। (*वाह, वाह*) उदाहरणार्थ, पंजाब में अन्य सम्प्रदाय अपनी शक्ति बढ़ाने तथा अपने लिये विधान-मण्डलों में और भी अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिये अनुसूचित जातियों को हड़पने का प्रयत्न कर रहे हैं। वे गरीब लोग जो अधिकतर भूमिविहीन मजदूरों की तरह से गांवों में इधर-उधर बिखरे पड़े हैं, जिनको कोई आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं है—प्राधिकारियों, पुलिस अथवा न्याय विभाग का जिनको कोई सहारा नहीं है—उनको कुछ शक्तिशाली सम्प्रदायों द्वारा या तो उसी विशिष्ट सम्प्रदाय के अपने सदस्य को प्रतिनिधि के रूप में भेजने के लिए बाध्य किया गया है, या निर्वाचनों में मतदाता की कोटि में उनको नाम न लिखाने के लिये बाध्य किया गया है। मैं जानता हूं कि बंगाल में ऐसी बातें बहुत हुईं। कुछ कारणोंवश जिनको मैं नहीं समझा सका हूं, वहां की अनुसूचित जातियों के अधिकांश सदस्यों ने अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधि भेजना स्वयं अस्वीकार किया। इस बात को स्वयं जनगणना के कमिश्नरों ने लिखा है। इस कारण मैं उन बातों को पूर्णतया समझता हूं कि जिनको अनेकों सदस्यों ने इस विषय पर भाषण देते हुये बताया था कि इस जनगणना के आंकड़ों को मानना उचित नहीं होगा।

***एक माननीय सदस्यः** आसाम के बारे में क्या है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** आसाम के बारे में भी यही सच होगा। उससे मैं भली प्रकार परिचित नहीं हूं। जैसा कि मैंने कहा था, मैं इस बात को पूर्णतया समझता हूं कि जनगणना के इन आंकड़ों को मानना तथा निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमायें स्थिर करना या विभिन्न निर्वाचन-क्षेत्रों में तथा बहुसंख्यक और अल्पसंख्यकों में स्थान नियत करना उचित नहीं होगा। इस बात के लिये, कि अगला निर्वाचन प्रान्तों की जनगणना के तथा सम्प्रदायों की भी जनगणना के सम्बन्ध में ठीक-ठीक निर्वाचन हो, कुछ न कुछ करना होगा। इस समय मैं केवल यही आश्वासन दे सकता हूं कि जिन लोगों पर इस कार्य की जिम्मेवारी होगी, उनको मैं इन भावनाओं की सूचना भेज दूंगा और इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि इस विषय पर उचित ध्यान दिया जायेगा।

श्रीमान्, यदि उन सदस्यों को जो इस विषय में अभिरुचि रखते हैं, मेरे इस आश्वासन से सन्तोष नहीं है, तो इस समय तो ऐसा नहीं हो सकता है पर फिर कभी वे अनुच्छेद 149 पर संशोधन पेश कर सकते हैं कि यदि अध्यक्ष यह आवश्यक समझे तो जिन शिकायतों का हवाला दिया गया है उनको दूर करने के

लिये बीच में कभी जनगणना करा सकता है। वास्तव में मेरे पास एक मसौदा है जिस पर कभी बाद की तारीख में विचार किया जा सकता है। इस प्रकार के किसी मसौदे पर विचार किया जा सकता है: "आगे और यह प्रावहित किया जाता है कि किसी राज्य के विधान-मण्डलों के अनेक प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों के प्राथमिक प्रतिनिधित्व को उस अन्य रीति से, जिसका अध्यक्ष आदेश द्वारा निर्देश करे, निश्चित किया जा सकता है।" यह यथेष्ट विस्तृत रूप में है और जो कठिनाइयां बताई गई हैं उनको दूर कर देगा।

***एक माननीय सदस्य:** आप इसे इसी समय पेश क्यों नहीं करते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इसके लिये अब समय नहीं है। यदि सदस्य मेरे आश्वासन पर विश्वास करने के लिये तैयार नहीं हैं, तो किसी उपयुक्त समय पर यह प्रस्ताव पेश किया जा सकता है।

मेरे माननीय मित्र प्रो. सक्सेना ने संशोधन संख्या 64 में जिस प्रश्न को उठाया है, उसके सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि मैं उसका हृदय से समर्थन करता हूं। मैं समझता हूं कि जिस परादिक को वे रखवाना चाहते हैं, वह बड़ा ही आवश्यक है। सभा को यह याद होगा कि उसका सम्बन्ध प्रतिनिधान में पासंग से है। इस विधान में हमने हर प्रकार के पासंगों को निकाल दिया है, समस्त अल्पसंख्यक-वर्गों के पासंगों को हमने दूर कर दिया है। केन्द्रीय विधान-मण्डल के प्रतिनिधान में राज्य-क्षेत्रों के पासंग को हमने दूर कर दिया है। ब्रिटिश भारत और राज्यों के प्रतिनिधियों के परस्पर पासंग को हमने दूर कर दिया है। अत: मैं समझता हूं कि ठीक यही है कि उसी सिद्धान्त का विधान-मण्डल के प्रतिनिधान के सम्बन्ध में भी प्रयोग किया जाये। इसलिये मैं उस संशोधन को स्वीकार करता हूं।

श्रीमान्, मैं समझता हूं कि अन्य और कोई बात विचार करने अथवा उत्तर देने के योग्य नहीं है। अत: मैं सभा से अनुच्छेद 149 को संशोधित रूप में स्वीकार करने की सिफारिश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं एक-एक करके संशोधनों पर मत ले रहा हूं।

प्रस्ताव यह है:

"कि खण्ड (2) के पश्चात् निम्न खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(2-a) No person shall be entitled to be a candidate or offer himself for election to either House of a State

[उपाध्यक्ष]

Legislature, if Bicameral, or to the Legislative Assembly of the State, who is duly certified to be of unsound mind, or suffering from any other physical or mental incapacity, duly certified, or is less than 25 years of age at the time of offering himself for election, or has been proved guilty of any offence against the safety, security or integrity of the Union, or of bribery and corruption, or of any malpractice at election, or is illiterate.

'No one who is unable to read or write or speak the principal language spoken in the State for a seat in whose Legislature he offers himself for election, or after a period of ten years from the date of the coming into operation of this Constitution, is unable to read or write or speak the National Language of India, shall be entitled to be a candidate for or offer himself to be elected to a seat in the State Legislature or either House thereof.'

'(2-b) The election shall be on the basis of proportional representation with a Single Transferable Preference Vote. For the purpose of election, every State shall be deemed to be a single constituency, and every member shall be deemed to have been elected in the order of Preference as recorded by the electors; and this arrangement shall hold good in the case of a General Election, as well as at a by-election, if and when one becomes necessary:

Provided that where there is a second chamber in any State, the voters may be grouped, for electing members to the Legislative Council, on the basis of trade, profession, occupation or interest recognised for the purpose by an Act of the State Legislature, each trade, profession, occupation or interest voting as a single constituency for the entire State.' "

[(2-क) राज्य के विधान-मण्डल में या राज्य के विधान-मण्डल के किसी भी आगार में यदि वह द्विआगारिक है तो कोई भी व्यक्ति, जो उचित

रीति से विक्षिप्त अथवा अन्य किसी प्रकार के शारीरिक अथवा मानसिक असामर्थ्य से पीड़ित प्रमाणित कर दिया गया है, या निर्वाचित होने के लिये अपने आपको प्रस्तुत करते समय 25 वर्ष की आयु से कम का है, या संघ की क्षेत्र, सुरक्षा अथवा अक्षुण्णता के विरुद्ध या उत्कोच तथा दुराचार के प्रति या निर्वाचन में भ्रष्टाचार के प्रति किसी अपराध का दोषी सिद्ध कर दिया गया है या निरक्षर है, तो वह निर्वाचित होने के लिये अपने आपको प्रस्तुत करने का या उम्मीदवार बनने का अधिकारी न होगा।

कोई भी व्यक्ति यदि उस राज्य में बोली जाने वाली प्रमुख भाषा को लिख, पढ़ या बोल नहीं सकता है, जिसके विधान-मण्डल में स्थान प्राप्त करने के लिये निर्वाचन में वह अपने आपको प्रस्तुत करता है या इस विधान के प्रवर्त्तन में आने की तिथि से दस वर्ष की अवधि के पश्चात् भारत की राष्ट्रीय भाषा को लिख, पढ़ या बोल नहीं सकता है, तो वह राज्य के विधान-मण्डल या उसके किसी आगार में निर्वाचित होने के लिये अपने आपको प्रस्तुत करने का या उम्मीदवार बनने का अधिकारी न होगा।

(2-ख) निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधान के आधार पर एकल संक्राम्य प्रश्रयात्मक मत-पद्धति के अनुसार होगा। निर्वाचन के लिये प्रत्येक राज्य को एक निर्वाचन-क्षेत्र समझा जायेगा और निर्वाचकों द्वारा लिखित प्रश्रयात्मक क्रम के अनुसार प्रत्येक सदस्य निर्वाचित समझा जायेगा; और सामान्य निर्वाचन करने में तथा यदि कभी आवश्यक हो तो उप-निर्वाचन करने में भी यही प्रबन्ध ठीक समझा जायेगा:

परन्तु किसी राज्य में जहां दूसरा आगार है, वहां इस प्रयोजन के लिये राज्य के विधान-मण्डल के किसी अधिनियम द्वारा अभिस्वीकृत व्यापार, व्यवसाय, वृत्ति अथवा हित के आधार पर मतदाताओं के समूह बनाये जा सकते हैं और समस्त राज्य के लिये प्रत्येक व्यापार, व्यवसाय, वृत्ति अथवा हित एक-एक निर्वाचन-क्षेत्र के रूप में मतदान करेगा।]

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2248 । प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 149 खण्ड (3) को निकाल दिया जाये और उसके स्थान में निम्न खण्ड रखा जाये:

'The representation in the State Legislature shall be on the basis of one representative for every lakh of population:

Provided that the total number of members in the Legislative Assembly of a State shall in no case be less than sixty.' "

(प्रति लाख जनगणना के लिये एक प्रतिनिधि के आधार पर राज्य के विधान-मण्डल में प्रतिनिधान होगा:

परन्तु किसी दशा में भी किसी राज्य के विधान-मण्डल के समस्त सदस्यों की संख्या साठ से कम नहीं होगी।)

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2249 पर पंडित ठाकुरदास भार्गव द्वारा प्रस्तुत किया गया एक अल्पकाल सूचित संशोधन है।

***पंडित ठाकुरदास भार्गव:** श्रीमान्, मैं उसे वापिस लेना चाहूंगा। परिषद् की अनुमति से संशोधन वापिस किया गया।

***उपाध्यक्ष:** सूची 2 का संशोधन संख्या 48 । प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2249 के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये:

'कि अनुच्छेद 149 के खण्ड (3) में "last preceding census" (अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना) शब्दों के स्थान में "last preceding census of which the relevant figures have been published" (अन्तिम पूर्ववर्त्ती जनगणना जिसके आंकड़े प्रकाशित हो चुके हैं) शब्द रखे जायें।' "

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्ष:** सूची 4 का संशोधन संख्या 62 । प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2249 और 2250 के उल्लेख सहित अनुच्छेद 149 के खण्ड (3) में 'every lakh' (प्रत्येक

लाख) के स्थान में 'every seventy-five thousand' (प्रत्येक पचहत्तर हज़ार) शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्षः** श्री बारदोलोई के अल्पकाल सूचित संशोधन द्वारा संशोधित रूप में संशोधन संख्या 2252 पर अब हम आते हैं जो इस प्रकार है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन 2252 के उल्लेख सहित 'autonomous districts of Assam' (आसाम के स्वायत्तशासी-मण्डलों) के पश्चात् (और शिलोंग की म्यूनीसिपल्टी और छावनी का निर्वाचन-क्षेत्र) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्षः** सूची 4 का संशोधन 66। प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2256, 2257 और 2258 के उल्लेख सहित अनुच्छेद 149 के खण्ड (3) के परादिक में 'three hundred' (तीन सौ) शब्दों के स्थान में 'five hundred' (पांच सौ) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर ने अपने संशोधन संख्या 2255 को वापिस करने की अनुमति सभा से मांगी थी। क्या वह अनुमति दे दी गई?

***माननीय सदस्यः** जी हां।

***उपाध्यक्षः** सूची 2 का संशोधन 49। वह रुक जाता है।

इसके पश्चात् हम संशोधन 2256 पर आते हैं।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 149 के खण्ड (3) के परादिक में 'three hundred' (तीन सौ) शब्दों के स्थान में 'four hundred and fifty' (चार सौ पचास) शब्द रखे जायें।"

*संशोधन अस्वीकार किया गया।*

**उपाध्यक्षः** सूची 1 का संशोधन 35 ।

परिषद् की अनुमति से संशोधन वापिस किया गया।

***उपाध्यक्षः** सूची 4 का संशोधन 67 । प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 149 के खण्ड (3) के पश्चात् निम्न नया खण्ड प्रविष्ट किया जाये:

'(3-a) The ratio between the number of members to be allotted to each territorial constituency in a State and the population of that constituency as ascertained at the last preceding census of which the relevant figures have been published shall, so far as practicable, be the same throughout the State.' "

[(3-क) किसी राज्य के प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र में नियत की जाने वाली सदस्यों की संख्या और इस निर्वाचन-क्षेत्र की उस पूर्ववर्त्ती जनगणना द्वारा निश्चित जनसंख्या में, जिसके आंकड़े प्रकाशित हो चुके हैं, अनुपात यथासम्भव समस्त राज्य में समान होगा]

*संशोधन स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 67 पर एक संशोधन है, पर वह रुक जाता है।

प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना, क्या आप चाहते हैं कि मैं आपके संशोधन संख्या 2263 पर मत लूं? उसका संख्या 67 द्वारा संशोधन हो चुका है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** अब उस पर मत लेना आवश्यक नहीं है।

***उपाध्यक्षः** अब मैं वर्तमान रूप में अनुच्छेद पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 149 विधान का अंग माना जाये।"

*प्रस्ताव स्वीकार किया गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 149 विधान का अंग माना गया।*

***उपाध्यक्षः** एक घोषणा करनी है। मुझे प्रधान से यह पक्की सूचना तथा आदेश मिले हैं कि वे विधान-परिषद् का अगला अधिवेशन सोमवार ता. 16 मई

से करना चाहेंगे। कार्य-प्रणाली नियम के 19वें नियम के अनुसार प्रधान को तिथि नियत करने का अधिकार है, परन्तु तीन दिनों से अधिक समय के लिये वे सभा का स्थगन नहीं कर सकते हैं। अतः नियमानुसार इसकी घोषणा करने के लिये मैं सभा की अनुमति मांगता हूं।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** वे पहले से ही तिथि नियत करना क्यों चाहते हैं?

***उपाध्यक्षः** खेद है कि मैं आपको इसका कोई कारण नहीं बता सकता हूं।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** सभा के समक्ष प्रस्ताव रखने और उसके स्वीकार करने से यह तिथि नियत की जा सकती है।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हाः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि सभा 16 मई तक के लिये स्थगित रहे।

*प्रस्ताव स्वीकार किया गया।*

***उपाध्यक्षः** सोमवार ता. 16 मई तक सभा स्थगित की जाती है।

*तत्पश्चात् सोमवार, ता. 16 मई, सन् 1949 तक*
*के लिये सभा स्थगित हुई।*

---